द्वादशारं नयचक्रम्

न्यायागमानुसारिण्या वृत्त्या समलंकृतम्

★

प्रथमो विभागः

★

मुनि जम्बूविजयः

जैन आत्मानंदसभा, भावनगर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री-आत्मानंदजैनग्रंथरत्नमालाया द्विनवतितमं रत्नम्

तार्किकशिरोमणिजिनशासनवादिप्रभावकाचार्यप्रवर-
श्रीमल्लवादिक्षमाश्रमणप्रणीतं

द्वादशारं नयचक्रम्

आचार्य श्रीसिंहसूरिगणिवादिक्षमाश्रमणविरचितया न्यायागमानुसारिण्या
वृत्त्या समलंकृतम्

प्रथमो विभागः

(१–४ अराः)

टिप्पणादिभिः परिष्कृतः

संपादकः

पूज्यपादाचार्यमहाराजश्रीमद्विजयसिद्धिसूरीश्वरप्रशिष्यस्य
पूज्यपादमुनिराजश्रीभुवनविजयस्यान्तेवासी

मुनि जम्बूविजयः

प्रकाशं प्रापयित्री

भावनगरस्था श्रीजैन-आत्मानंदसभा

वीरसंवत् २४९२ विक्रमसंवत् २०२२

ईस्वीसन १९६६ आत्मसंवत् ७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इदं पुस्तकं मुंबय्यां लक्ष्मीबाई नारायण चौधरी इत्येताभिः
डॉ. एम्. बी. वेलकरवीथ्यां
२६-२८ तमे गृहे निर्णयसागरमुद्रणालये
मुद्रापितम्

प्रथमाऽऽवृत्तिः

प्रतयः ७५०

[redacted]

तच्च श्री. खीमचंद चांपशी शाह, प्रमुख,
"श्रीजैन-अत्मानंद सभा-भावनगर" इत्यनेन प्रकाशितं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Śrī Ātmānand Jain Granthamālā Serial No. 92

DVĀDAŚĀRAṂ NAYACAKRAṂ

OF

Ācārya Śrī Mallavādi Kṣamāśramaṇa

With the commentary Nyāyāgamānusāriṇī

OF

Śrī Siṃhasūri Gaṇi Vādi Kṣamāśramaṇa

PART I

(1 - 4 Aras)

Edited with critical notes by

Muni Jambūvijayajī

Disciple of

His Holiness Munirāja Śrī Bhuvanavijayajī Mahārāja

Grand Disciple of

H. H. Ācārya Śrī Vijaya Siddhisūrīśvarajī Mahārāja

Published by

Sri Jain Atmanand Sabha - Bhavnagar

Vīra Samvat 2492 A. D. 1966

Vikrama S. 2022 Ātma S. 70

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Printed by :
Laxmibai Narayan Chaudhari,
at the Nirnaya Sagar Press,
26-28, Dr. M. B. Velkar Street,
Bombay 2.

First Edition : 750 Copies

Published by :
Khimchand Champshi Shah,
President, Jain Atmanand Sabha,
Bhavnagar.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

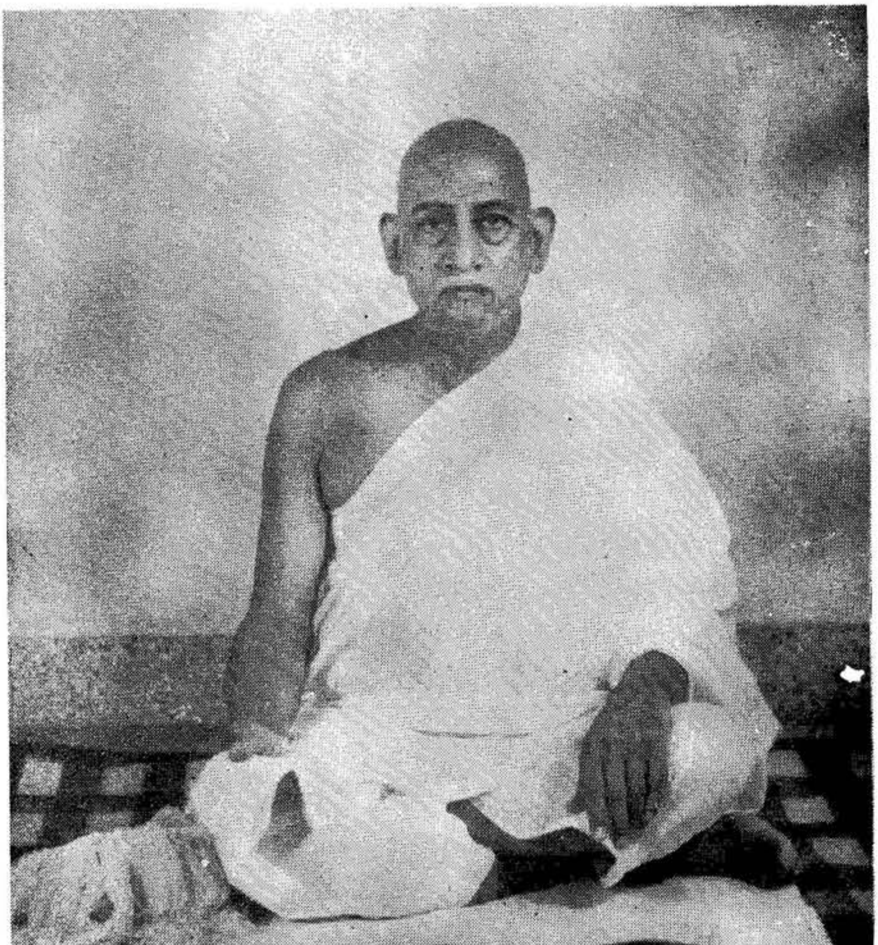

पू. आगमप्रभाकर मुनि श्री पुण्यविजयजी महाराज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकनुं निवेदन.

महातार्किक, शासन प्रभावक, आचार्यप्रवरश्री मल्लवादिसूरीश्वरजी विरचित **द्वादशारं नयचक्रम्** नामे उच्चकोटिनो दार्शनिक आकर ग्रंथ अमारी श्रीजैन आत्मानंद सभा द्वारा प्रकट थाय छे, तेने अमे सभाना अत्यारसुधीना ग्रंथप्रकाशनना इतिहासमां अपूर्व अवसर लेखीए छीए. आ ग्रंथनुं प्रकाशन ए जेम साहित्य-प्रकाशनना इतिहासमां एक ऐतिहासिक अने विरल घटना छे, तेम सभानी सातदायका जेटली सुदीर्घकालीन कार्यवाहीमां एक अनोखो सीमास्तंभ बनी रहे एवी घटना छे. दार्शनिक साहित्यनो आ ग्रंथमणि विद्वद्वर्योना करकमलमां भेट धरतां जाणे कोई लुप्त लेखाता शास्त्रतीर्थनो पुनरुद्धार करवाना सद्भाग्यना सहभागी थया होईए एवी आनंद, गौरव अने कृतकृत्यतानी लागणी अमे अनुभवीए छीए.

आवी सुख-सौभाग्यनी लागणी अनुभववा अमे भाग्यशाली थया तेनो पूरेपूरो यश ए लुप्तग्रंथरत्नना समर्थ पुनरुद्धारक स्व. परमपूज्य मुनिमहाराजश्री भुवनविजयजी महाराजना विद्वान् शिष्यरत्न परमपूज्य मुनिमहाराजश्री जंबूविजयजी महाराजने घटे छे. पूज्य मुनिश्री जंबूविजयजी महाराज जैन साहित्यना तेमज भारतीय समग्र दार्शनिक साहित्यना तलस्पर्शी अने सर्वस्पर्शी ज्ञाता छे. एमनी अति उच्चकोटिनी आ विद्वत्ताए देशविदेशना संख्याबंध विद्वानोने एमना प्रत्ये आकर्ष्या छे. जो तेओए आ ग्रंथना पुनरुद्धारनुं भगीरथ कार्य करवानुं स्वीकार्युं न होत, अने पूरा बे दायका सुधी पोतानी समग्र बुद्धि अने शक्तिनो निचोड ए माटे अर्पण कर्यो न होत, तो लुप्त थई गयेल आ मूळ ग्रंथ जेवा रूपमां अत्यारे प्रकाशित थई रह्यो छे तेवा रूपमां प्रकाशित करवानो विचार पण केवळ दरिद्रना मनोरथ जेवोज लेखात !

जैन साहित्यनो इतिहास तपासतां आचार्यश्री मल्लवादी विरचित आ **द्वादशारं नयचक्रम्** महाग्रंथ विक्रमनी तेरमी सदीना प्रारंभ काळ सुधी हयात होवाना पुरावा मळे छे. पण त्यार पछी ए ग्रंथ अमुक काळे हयात हतो एवा ग्रंथस्थ आनुषंगिक पुरावाओ तो मळे छे, पण ए ग्रंथ त्यार पछी एवी रीते लुप्त थई गयो के आज सुधी एनी एक पण हस्तप्रत कोई पण हस्तलिखित ज्ञानभंडारमांथी उपलब्ध थई शकी नथी. आवो उच्चकोटिनो दार्शनिक महाग्रंथ, अने एनुं आवी रीते सदंतर लुप्त थई जवुं, ए कोईपण तज्ज्ञने ऊंडो आघात आपे एवी दुःखद घटना कही शकाय, पण पूज्य मुनिश्री जंबूविजयजीना खंतभर्या अविरत प्रयत्नोने अंते ए ग्रंथ, लगभग सांगोपांग रूपमां विद्वानोनी समक्ष रजू थई शके छे ए माटे जेटलो संतोष अने आह्लाद मानीए तेटलो ओछो छे, एम कहेवुं अत्युक्ति न गणावुं जोइए के आ ग्रंथना प्रकाशन समये अमे आह्लाद अने संतोषनी जे लागणी अनुभवीए छीए तेने शब्दो द्वारा व्यक्त करवानुं शक्य नथी.

आ ग्रंथना प्रकाशन माटे अमे "पुनरुद्धार" शब्दनो प्रयोग कर्यो छे ते खूब समजपूर्वक कर्यो छे. काळना प्रवाहमां तद्दन लुप्त थयेल ग्रंथने अन्य संख्याबंध साधनोनी सहायथी सजीवन करवो ए काम केटलुं मुश्केल छे, ए तो एवुं काम करनाराज जाणी शके. आवां साधनो नजीक, दूर अने सुदूरथी शोधी शोधीने अने एना ऊपर कलाकोना कलाको अने दिवसोना दिवसो ज नहि पण महिनाओ सुधी ऊंडुं चिंतन मनन करीने आ ग्रंथने सळंग सूत्रमां तैयार करवामां पूज्य मुनिश्री जंबूविजयजी महाराजे केटली चिंता, अप्रमत्तता अने धगश अनुभवी हशे एनी तो केवळ कल्पना ज करवानी रहे छे. अमे आ कार्यने शास्त्रतीर्थनो पुनरुद्धार कहेल छे, ते पण हेतुपूर्वकज कहेल छे. आ कार्य केटलुं कपरुं, अतिश्रमसाध्य अने लगभग अशक्य कही शकाय एवी कोटिनुं हतुं, एनो थोडोक ख्याल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक रूपकथी आपणने आवी शके. आपणे कल्पना करीए के एक प्राचीन, भव्य अने सुविशाल जिनमंदिर कोई काळ ना बळे ध्वस्त थई गयुं, ए विध्वंस ऊपर सैकाओना तडकाछांयडा वीती गया. दरम्यानमां एना रळियामणा अवशेषो पण माईलो सुधी वेर विखेर थई गया ! पछी, जाणे कोई शुभ भवितव्यतानो योग जागी ऊठ्यो होय एम, कोई भावनाशील यात्रिकनुं ध्यान ए तीर्थना एकाद सुविशाल अने सुमनोहर अवशेष तरफ गयुं अने एना अंतरमां ए लुप्त जिन मंदिरने उभुं करवानी अदम्य तमन्ना जागी उठी. ए तमन्ना एवी उत्कट के ए एने क्षणभर पण चेन लेवा न दे अने ए मंदिरना नजीक अने दूर वीखरायेला अवशेषोने एकत्र करीने जिन मंदिरनो पुनरुद्धार करवा प्रेरणा आप्या ज करे. आ रीतनो पुनरुद्धार करवामां केटली जहेमत, केटली महेनत अने चित्तनी केटली एकाग्रता जोईए एनो ख्याल मेळवीए तो पूज्य मुनिश्री जंबूविजयजीए आ ग्रंथना पुनरुद्धारमां जे अतिविरल कार्य करी बताव्युं छे तेनी झांखी थई शके.

आ अति मुश्केल कार्य तेओश्रीए देशपरदेशना विद्वानोनो संपर्क साधी संस्कृत, अर्धमागधी, अंग्रेजी उपरांत तिबेटन, चीनी, फ्रेंच वगेरे भाषाओमां लखायेला संबंधित बौद्ध अने ब्राह्मण ग्रंथोमांथी संदर्भो मेळवी अथाग प्रयत्नोने अंते केवी रीते पार पाड्युं तेनी केटलीक रसप्रद अने प्रेरक विगतो संपादक मुनिश्रीए एमनी प्रस्तावनामां (पृ. ७०)मां आपी छे, ते सौ कोईए वांचवा जेवी छे. आ कार्यमाटे तेओश्रीए खास तिबेटन (भोट) भाषानो अभ्यास कर्यो हतो.

अमारी सभाने आ ग्रंथरत्नना प्रकाशननो यश अपाववा बदल मुनिश्री जंबूविजयजीनो अमे कया शब्दोमां आभार मानीए ते समजी शकातुं नथी. अमे तो तेओने साभार हृदये एटली ज प्रार्थना करीने संतोष मानीए छीए के तेओनी आवी कृपादृष्टि अमारी सभा उपर हमेशां वरसती रहे.

पूज्य मुनिश्री जंबूविजयजीना गुरुवर्य पूज्य मुनिमहाराजश्री भुवनविजयजी महाराजनो पण आ कार्यमां जे साथ अने सहकार मळ्यो छे ते माटे अमे तेओनो पण खूब खूब उपकार मानीए छीए. आ ग्रंथ प्रकाशित थायछे ते समये तेओ पोते विद्यमान नथी एनुं उंडुं दुःख सौ कोई अनुभवे ए स्वाभाविक छे. पण आ ग्रंथनो जेवी रीते सफळतापूर्वक पुनरुद्धार थयो छे अने एमां पूज्य मुनिवर्यश्री भुवनविजयजीनो जे अविस्मरणीय फाळो छे, अने जेनी विशेष नोंध प्रस्तावनामां विगतवार आपेली छे, तेने लीधे तेओनुं नाम चिरस्मरणीय बनी शक्युं छे, एमां शंका नथी. ए स्वर्गस्थ पूज्य मुनिवरना पवित्र आत्माने अमे आ प्रसंगे भावपूर्वक अनेकशः वंदना करीए छीए.

कल्पनातीत कठिनाईओथी भरेलुं आ ग्रंथना संपादननुं महाभारत कार्य पूज्य मुनिश्री जंबूविजयजीए सहर्ष स्वीकार्युं अने एने सांगोपांग पार उतार्युं, ते पूज्यपाद आगम प्रभाकर मुनि महाराजश्री पुण्यविजयजी महाराजना आग्रहभर्या अनुरोधना प्रतापेज. वि. सं. २००१ मां पूज्य मुनिश्री पुण्यविजयजी महाराजे पूज्य मुनिश्री जंबूविजयजीने आगमोना संपादनने बदले आ आकर ग्रंथनुं संपादन करवानुं भारपूर्वक लख्युं; ते पछी ए माटेनी जरूरी बधीज सामग्री एकत्र करी आपी; अने आ माटे जे कंई नवीन सामग्रीनी जरूर पडे तेनी गोठवण करवानुं पण सतत चालु राख्युं, तेमज आ कार्य क्रमे क्रमे निरंतर आगळ वधतुं रहे ए माटे पण एओ पूरी चिंता पण सेवता रह्या. आ रीते आ ग्रंथना प्रकाशनमां पूज्य मुनिश्री पुण्य-विजयजीनो फाळो पण खूबज यादगार बनी रहे एवो छे. ग्रंथना संपादन अने प्रकाशन माटे जरूरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्थिक जोगवाई माटे पण तेओ सतत चिंता सेवता अने जैन संघने ए माटे प्रेरणा आपता रह्या छे, ए कहेवानी जरूर न होय.

अमारी सभा साथे सीमभी सदोना एक समर्थ ज्योतिर्धर अने शासन प्रभावक आचार्य महाराज न्यायांभोनिधि श्रीआत्मारामजी महाराज (श्रीविजयानंदसूरीजी महाराज) नुं पुण्यनाम जोडाएलुं छे. तेथी ए समुदायना विद्वान् अने संशोधन कार्यदक्ष एवा मुनिवरोनी अमने हमेशां सहायता अने हूंफ मळती रहे छे. तेमां ये पूज्यपाद स्वर्गस्थ प्रवर्तकश्री कान्तिविजयजी महाराज, तेओना संशोधनदक्ष शिष्यरत्न स्वर्गस्थ मुनिश्री चतुरविजयजी महाराज, तेमज तेओना शिष्यरत्न संख्याबंध ज्ञानभंडारोना उद्धारक, आगम तेमज इतर ग्रंथोना समर्थ अने आदर्श संशोधक, पूज्यपाद आगमप्रभाकर मुनिवर्यश्री पुण्यविजयजी महाराज—ए मुनिवर त्रिपुटीनी तो अमारी संस्था ऊपर हमेशां अपार कृपा वरसती रही छे. आ संस्था अत्यार सुधीमां संशोधन—संपादननी दृष्टिए नमूनेदार अने उच्चकोटिना लेखी शकाय एवा जैन साहित्य ग्रंथोनुं जे सारी एवी संख्यामां प्रकाशन करी शकी छे, ते आ मुनिवर त्रिपुटीना हार्दिक सहकारने लीधेज.

आगम प्रभाकर पूज्य मुनिश्री पुण्यविजयजी महाराज ए तो सौ कोई जिज्ञासुओ अभ्यासीओ अने विद्वानो माटे ज्ञानना अखूट झरणां रूप छे. एमनी उदारता, सरळता अने सहृदयता अति विरल छे. एमनी पासे जुदी जुदी साहित्य प्रवृत्तिओनो केटलो मोटो गंज खडकायेलो हमेशां रहे छे, एतो एमना कार्यथी परिचित होय तेओ ज जाणी शके. पोतानी आवी अनेकविध प्रवृत्तिओना सतत रोकाण वच्चे पण तेओ अमारी संस्था प्रत्ये जे ममता दाखवता रहे छे, अने समये समये जे जरूरी मार्गदर्शन आपता रहे छे, एज अमारुं साचुं बळ छे. महाराजश्रीनो उपकार शब्दोथी मानवानो उपचार करवाने बदले एमनी कृपादृष्टिनी याचना करवी ए ज अमारे माटे समुचित छे.

अमारी विनतिनो स्वीकार करीने आवा एक उच्च कोटिना ग्रंथ माटे वियेना युनिवर्सिटीना तत्त्वज्ञान विषयना विद्वान प्रोफेसर एरिच फ्राउवाल्नेरे उपयुक्त अंग्रेजी प्रस्तावना (Introduction) लखी आपी छे. आ माटे अमे तेओना प्रत्ये अमारी आभारनी ऊंडी लागणी प्रदर्शित करीए छीए.

पूज्य मुनिश्री पुण्यविजयजी महाराजनी प्रेरणाथी जे जे भावनाशील भाईओ, बहेनो अने संस्थाओए आ कार्यमां अमने उदारता पूर्वक आर्थिक साथ आप्यो छे, तेओना अमे हार्दिक आभारी छीअे. आ सहायकोनी नामावलि अन्यत्र आपवामां आवेल छे.

मुंबईमां सुप्रसिद्ध निर्णयसागर प्रिन्टिंग प्रेसे, पोतानी अनेक मुश्केलीओ वच्चे पण, आ ग्रंथनुं मुद्रण करवानी जवाबदारी स्वीकारी न होत तो अत्यारे आ ग्रंथ जेवा सुघड, स्वच्छ अने व्यवस्थित रूपमां प्रगट थायछे ते रूपे भाग्येज प्रकाशित थई शक्यो होत. आ माटे अमे निर्णयसागर प्रेस अने तेना संचालकोनो आभार मानीए छीए.

अत्यारे आ ग्रंथना बारमांथी चार अरने समावतो पहेलो भाग अमे प्रगट करीए छीए. अने बाकीनो भाग यथाशक्य शीघ्र प्रगट करवानी अमारी उमेद छे. अमारी ए उमेद सफळ थाओ अने उत्तम कोटिना नवा नवा ग्रंथोना प्रकाशनद्वारा जैन शासननी वधुमां वधु सेवा करवानो अमने अवसर मळो, एवी प्रार्थना साथे अमे आ निवेदन पूरूं करीए छीए.

खीमचंद चांपशी शाह, एम्. ए.
प्रमुख, जैन आत्मानंद सभा, भावनगर.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ. प्र. मुनिश्री पुण्यविजयजी महाराजना सदुपदेशथी आ ग्रंथ माटे नाणांकीय सहायकोनां मुबारक नामो
(ई. स. १९४५–१९६०)

५००.००	श्रीजैन सोसाइटी संघ	अमदावाद
१४००.००	श्री· महासुखलालनां धर्मपत्नी श्रीमती चंपाबेन त्रिकमलाल	अमदावाद
८००.००	शेठ खुबचंद रूपचंद	पाटण
२५१.००	शेठ साराभाई पोपटलाल	अमदावाद
१०००.००	शेठ त्रिकमलाल महासुखलाल	अमदावाद
२०००.००	शेठ बाबुलाल मोहनलाल छोटालाल पालखीवाळा	अमदावाद
२०००.००	शेठ समदडीया कुंदनमलजी सरदारजी	नागोर
९००.००	शेठ मणिलाल छोटालाल	पाटण
१०००.००	शेठ हेमचंद मोहनलाल	पाटण
५१००.००	श्रीबीकानेर संघ	बीकानेर
१०००.००	श्रीमरीन ड्राईव (मुंबई) संघ पर्युषणमां ज्ञानखातानी उपजमांथी हः–शेठ चीनुभाई	मुंबई
२१५५.८९	श्रीसीमंधरस्वामी जैन देरासर हः–ट्रस्टीओ, शेठ नवलचंद छगनलाल, शेठ चंद्रकांत मोहनलाल, शा. केसरीचंद नगीनदास	सुरत
१८१०६.८९		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्यपाद संघस्थविर आचार्य भगवान् श्री विजय**सिद्धिसूरीश्वरजी** दादाना पट्टालंकार
पूज्यपाद आचार्य महाराज श्री विजय**मेघसूरीश्वरजी** महाराजना शिष्य.

पूज्य गुरुदेव मुनिराज श्री **भुवनविजयजी** महाराज

जन्म वि. सं. १९५१ दीक्षा वि. सं. १९८८ स्वर्गवास वि. सं. २०१५
श्रावण वदि ५, मांडल जेठ वदि ६, अमदावाद माह सुदि ८, शंखेश्वरजी तीर्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ श्रीसद्गुरुदेवाय नमः । श्रीसद्गुरुः शरणम् ॥

पूज्यपाद अनन्तउपकारी गुरुदेव मुनिराज श्री १००८

भुवनविजयजी महाराज !

बहुपुण्याश्रितं दत्त्वा दुर्लभं नरजन्म मे ।
लालनां पालनां पुष्टिं कृत्वा वात्सल्यतस्तथा ॥ १ ॥

वितीर्य धर्मसंस्कारानुत्तमांश्च गृहस्थितौ ।
भवद्भिः सुपितृत्वेन सुबहूपकृतोऽस्म्यहम् ॥ २ ॥

ततो भवद्भिर्दीक्षित्वा भगवत्त्यागवर्त्मनि ।
अहमप्युद्धृतो मार्गं तमेवारोह्य पावनम् ॥ ३ ॥

ततः शास्त्रोक्तपद्धत्या नानादेशविहारतः ।
अचीकरन् भवन्तो मां तीर्थयात्राः शुभावहाः ॥ ४ ॥

अनेकशास्त्राध्ययनं भवद्भिः कारितोऽस्म्यहम् ।
ज्ञानचारित्रसंस्कारैरुत्तमैर्वासितोऽस्मि च ॥ ५ ॥

ममात्मश्रेयसे नित्यं भवद्भिश्चिन्तनं कृतम् ।
व्यापृताश्च ममोन्नत्यै सदा स्वाखिलशक्तयः ॥ ६ ॥

ममाविनयदोषाश्च सदा क्षान्ता दयालुभिः ।
इत्थं भवदनन्तोपकारैरुपकृतोऽस्म्यहम् ॥ ७ ॥

मोक्षाध्वसत्पान्थ ! मुनीन्द्र ! हे गुरो !
वचोऽतिगा वः खलु मय्युपक्रियाः ।
असम्भवप्रत्युपकारसाधनाः
स्मृत्वाहमद्यापि भवामि गद्गदः ॥ ८ ॥

हे सत्पूरुष ! सर्वदर्शनसमालोचप्रभाभासुरो
विख्यातो **नयचक्र**मित्यभिधया ग्रन्थो महागौरवः ।
युष्मत्प्रेरणमार्गदर्शनबलात् सम्पादितोऽयं मया
कृत्वा दर्शनशास्त्रबोधममलं सम्पद्यतां श्रेयसे ॥ ९ ॥

— तत्रभवदन्तेवासी शिशुर्**जम्बूविजयः**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ શ્રીશંખેશ્વરપાર્શ્વનાથાય નમઃ ॥

સ્વ. પૂજ્ય ગુરુદેવ મુનિરાજ શ્રી ૧૦૦૮ ભુવનવિજયજી મહારાજની

સંક્ષિપ્ત જીવનરેખા

પરમપૂજ્ય ગુરુદેવ **ભુવનવિજયજી** મહારાજનું મૂળ સંસારી નામ ભોગીલાલભાઈ હતું. બહુચરાજી (ગુજરાત) પાસેનું **દેથળી** ગામ એ તેમનું મૂળ વતન, પણ કુટુંબ ઘણું વિશાળ હોવાના કારણે તેમના પિતાશ્રી મોહનલાલ જોઇતારામ શંખેશ્વરતીર્થ પાસે આવેલા **માંડલ** ગામમાં કુટુંબની બીજી દુકાન હોવાથી ત્યાં રહેતા હતા. શ્રી મોહનલાલભાઈનો લગ્નસંબંધ માંડલ ખાતે જ ડામરશીભાઈના સુપુત્રી ડાહીબેન સાથે થયેલો હતો. ભોગીલાલભાઈનો જન્મ પણ વિ. સં. ૧૯૫૧ માં શ્રાવણવદિ પંચમીને દિવસે માંડલમાં જ થયેલો. ડાહીબેનમાં ધાર્મિક સંસ્કારો સુંદર હતા અને ઘર પણ ઉપાશ્રય નજીક જ હતું એટલે અવાર નવાર સાધુ-સાધ્વીજીના સમાગમનો લાભ મળતો.

એક વખતે શ્રી ભોગીલાલભાઈ પારણામાં સુતા હતા તેવામાં તે સમયમાં અત્યંત પ્રભાવશાલી પાયચંદગચ્છીય શ્રી **ભાઈચંદજી** મહારાજ અચાનક ઘેર આવી ચડ્યા. શ્રી **ભોગીલાલભાઈની** મુખમુદ્રા જોતાં જ તેમણે ડાહીબેનને ભવિષ્યકથન કર્યું કે "આ તમારો પુત્ર અતિમહાન્ થશે-ખૂબ ધર્મોદ્યોત કરશે" અને આપણે જાણીએ છીએ કે ૭૦ વર્ષ પૂર્વે ઉચ્ચારાયેલી આ ભવિષ્યવાણી અક્ષરશઃ સાચી નીવડી છે.

શ્રી ભોગીલાલભાઈની બુદ્ધિપ્રતિભા અને સ્મરણશક્તિ બાલ્યાવસ્થાથી જ અત્યંત તેજસ્વી હતાં. સામાન્ય વાંચનથી પણ નિશાળના પુસ્તકોના પાઠો એમને લગભગ અક્ષરશઃ કંઠસ્થ થઈ જતા. નિશાળ છોડ્યા પછી ચાલીસ-ચાલીસ વર્ષ વીતી ગયા બાદ પણ એ પાઠ અને કવિતાઓમાંથી અક્ષરશઃ તેઓ કહી સંભળાવતા હતા. બાલ્યાવસ્થાથી જ જ્ઞાનપ્રેમ એમના જીવનમાં અત્યંત વણાઈ ગયેલો હતો. વ્યવહારમાં પણ એમની કુશળતા અતિપ્રશંસનીય હતી. પરીક્ષાશક્તિ તો એમની અજોડ હતી.

પંદર-સોળ વર્ષની ઉંમરે ઝીંઝુવાડાના વતની શા. પોપટલાલ ભાઈચંદનાં સુપુત્રી મણિબેન સાથે એમનો લગ્નસંબંધ થયો હતો. મણિબેનનાં માતુશ્રી **બેની** બેન ખૂબ ધર્મપરાયણ આત્મા હતા. તેમનું કુટુંબ આજે પણ ઝીંઝુવાડામાં ધર્મઆરાધનામાં શ્રેષ્ઠ ગણાય છે. તેમનાં કુટુંબનાં સંતાનોમાંથી ઘણા જ પુણ્યાત્માઓએ દીક્ષા લઈને જિનશાસનની ખૂબ પ્રભાવના કરી છે અને આજે પણ પ્રભાવના કરી રહ્યા છે. આ રીતે ધર્મસંસ્કારોથી સુવાસિત ધર્મપત્નીના સુયોગથી તેમ જ માતા તરફથી મળેલા ધર્મસંસ્કારોના સુયોગથી તેમના જીવનમાં સોનામાં સુગંધનો યોગ થયો હતો. માંડલથી શંખેશ્વરજી તીર્થ ઘણું નજીક હોવાથી શ્રીશંખેશ્વરજીતીર્થ ઉપર પ્રારંભથી જ એમના હૃદયમાં અપાર ભક્તિભાવ હતો. શ્રી **શંખેશ્વર પાર્શ્વનાથ ભગવાનના** ભોગીલાલભાઈ જીવનના પ્રારંભથી જ પરમ ઉપાસક હતા.

ભોગીલાલભાઈ સત્તર વર્ષની વયે માંડલ છોડી મૂળ વતન દેથળી ગયા. ત્યાં લગભગ બે વર્ષ રહી અમદાવાદ ગયા અને ધંધામાં જોડાયા. તેમને બીજા પણ બે નાના ભાઈઓ અને એક બહેન છે કે જેઓ અમદાવાદમાં રહે છે. વિ. સં. ૧૯૭૯ માં મહા સુદિ ૧ ને દિવસે અઠ્ઠાવીસમા વર્ષે તેમને મણિબાઈની કુક્ષિથી પુત્રરત્નની પ્રાપ્તિ થઈ જે હાલ "મુનિરાજશ્રી જંબૂવિજયજી"ના નામથી પ્રસિદ્ધ છે. પુત્ર ચાર વર્ષની વયનો થતાં બત્રીસમે વર્ષે તેમણે સંપૂર્ણ બ્રહ્મચર્ય પાલનની પ્રતિજ્ઞા લીધી. યુવાવસ્થા, સર્વ પ્રકારની સાધનસંપન્નતા, અનુકૂળ વાતાવરણ આ બધા સંયોગો વચ્ચે પણ આજીવન બ્રહ્મચર્યવ્રતની પ્રતિજ્ઞા સ્વીકારવી એ શ્રી ભોગીલાલભાઈમાં રહેલા દૃઢ આત્મબળની સાક્ષી પુરે છે.

આંતરિક અભિરુચિ, ઘરનું ધાર્મિક વાતાવરણ તેમજ સદ્‌ગુરુ આદિના સતત સંસર્ગ અને પ્રેરણાને પરિણામે ભોગીલાલભાઈનો પ્રભુભક્તિ, ધાર્મિક આચરણ તથા તપ-જપાદિ આરાધના તરફનો ઝોક વધતો ગયો. તેમણે શ્રી સિદ્ધાચળની નવાણું યાત્રા કરી. બીજાં ઘણાં તીર્થસ્થળોની યાત્રા કરી. તેમજ હૃદયમાં ઉંડે ઉંડે પણ દીક્ષાની ભાવના પ્રગટવાથી ધાર્મિક તેમજ સંસ્કૃત અભ્યાસ પણ શરૂ કર્યો. દીક્ષા લીધા પહેલાં જ સંસ્કૃતભાષાનું તથા કાવ્યાદિનું સારું એવું જ્ઞાન એમણે સંપાદન કરી લીધું હતું.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

પૂ. આ. શ્રી વિજય સિદ્ધિસૂરીશ્વરજી દાદાના પટ્ટાલંકાર પૂ. આ. શ્રી વિજય મેઘસૂરીશ્વરજી મહારાજ ઉત્તમ ચારિત્રપાત્ર ગંભીર અને જ્ઞાની સત્પુરૂષ હતા. તેમની ધર્મદેશના ઉચ્ચ કોટિની ગણાતી હતી. ભોગીલાલભાઈના હૃદય તથા જીવન ઉપર તેની ઘણી અસર થઈ હતી અને તેથી એ તેમના પરમ ભક્ત બન્યા હતા. વિ. સં. ૧૯૮૮ માં શ્રી ભોગીલાલભાઈની દીક્ષાની ભાવના બળવત્તર બની, પણ પુત્ર દશ વર્ષનો હતો તેમજ તેમના પોતાના માતા–પિતા વગેરે પણ હૈયાત હતા. તેઓ બધાં આ બાબતમાં સંમતિ આપે કે કેમ તે શંકાસ્પદ હકીકત હતી. એટલે તેમણે ગુપ્ત રીતે જ અમદાવાદમાં પૂ. આ. શ્રી વિજય સિદ્ધિસૂરીશ્વરજી દાદાના વરદ હસ્તે વિ. સં. ૧૯૮૮ ના જેઠ વદિ છઠને દિવસે દીક્ષા લીધી અને પૂ. આ. શ્રી **વિજય મેઘસૂરીશ્વરજી** મહારાજના શિષ્ય તરીકે તેમને સ્થાપવામાં આવ્યા અને '**મુનિરાજશ્રી ભુવનવિજયજી**' તરીકે પ્રસિદ્ધ થયા.

સંયમી જીવનમાં પણ નિરતિચારપણે ચારિત્રપાલન કરતાં તેમણે સારી સુવાસ ફેલાવી હતી. અપ્રમત્તભાવે સતત જ્ઞાનઉપાસના એ એમની એક મોટી વિશિષ્ટતા હતી. દ્રવ્યાનુયોગ, કર્મસાહિત્ય આદિનો અભ્યાસ કરવા ઉપરાંત આગમસાહિત્યનું અવગાહન એમણે શરૂ કર્યું અને અલ્પસમયમાં જ તેમણે શાસ્ત્રોનું ઉંડું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી લીધું હતું. આગમસાહિત્ય પ્રભુની મંગળવાણીરૂપ હોવાને લીધે તેના ઉપર તેમને ઘણો જ અનુરાગ હતો. જીવન દરમ્યાન ૪૫ આગમોમાંથી મોટા ભાગના આગમોનું ટીકા સાથે તેમણે વાંચન–મનન કર્યું હતું. કેટલાંક આગમોનું તો તેમણે અનેકવાર વાંચન–મનન કર્યું હતું.

દૃઢ મનોબળ, અપ્રમત્તતા, નિઃસ્પૃહતા, નિરભિમાનિતા, ઉચ્ચ સંકલ્પ, અખૂટ સત્ત્વ, જીવદયા માટેની પ્રબળ લાગણી, નિર્ભયતા, શૂરવીરતા, અત્યંત નિર્મળ ચારિત્ર, સતત જ્ઞાન ઉપાસના તથા ઉત્કટ પ્રભુભક્તિ આ એમના જીવનની ખાસ વિશિષ્ટતાઓ હતી.

જિનેશ્વરદેવોના પરમકલ્યાણકર સંદેશનો જગતમાં ખૂબજ પ્રચાર અને પ્રસાર થાય એ માટે એમના હૃદયમાં ઘણી જ પ્રબળ ધગશ હતી.

વિ. સં. ૧૯૯૩ માં તેમના સંસારી પુત્રે પણ પંદર વર્ષની વયે પૂ. શ્રી ભુવનવિજયજી મહારાજ પાસે પરમ ભાગવતી દીક્ષા વૈશાખ શુદિ ૧૩ ના દિવસે સ્વીકારી અને '**મુનિરાજશ્રી જંબૂવિજયજી**' તરીકે પ્રસિદ્ધિ પામ્યા. વિ. સં. ૧૯૯૫ માં સંસારી પત્ની મણિબાઈએ પણ તેઓશ્રીના જ સુહસ્તે દીક્ષા સ્વીકારી અને તેમનું નામ સાધ્વીશ્રી મનોહરશ્રીજી રાખવામાં આવ્યું.

મુનિરાજશ્રી જંબૂવિજયજી તીવ્ર બુદ્ધિવાળા હોવાથી તેમને ઘડવા માટે પૂજ્ય મહારાજશ્રીએ પૂરતો પ્રયાસ કર્યો. કમાઉ પુત્રને કયો પિતા સ્નેહથી ન નવરાવે? તેમજ તેજસ્વી શિષ્યથી કયા ગુરુ હર્ષોદ્રેક ન પામે? તેમાંય મુનિશ્રી જંબૂવિજયજી તો સંસારીપણાના પુત્ર, લોહીનો સંબંધ. કૂવાના મધુર જળને જુદી જુદી નીક દ્વારા કુશળ ખેડૂત પોતાના ક્ષેત્રને હરિયાળું બનાવે તેમ મુનિરાજશ્રી જંબૂવિજયજીને જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્રરૂપી ત્રિવેણીના મંગળધામ સમાન બનાવ્યા. કુશળ શિલ્પી મનોહર મૂર્તિ બનાવવા માટે વર્ષોનો પરિશ્રમ સેવે અને પોતાની સર્વ શક્તિનો વ્યય કરે, તેમ ભવિષ્યના મહાન ચિંતક અને દર્શનકાર તેમજ નૈયાયિક મુનિરાજશ્રી જંબૂવિજયજીના ઘડતર માટે સ્વર્ગસ્થ ગુરુદેવે અહર્નિશ પ્રેમભાવે અવિરત પ્રયત્ન કર્યો હતો. અને આજે મુનિરાજશ્રી જંબૂવિજયજીનું નામ વિદ્વાન–ગણમાં મોખરે છે. તેઓ તિબેટી, ઈંગ્લીશ વિગરે અનેક દેશી વિદેશી ભાષા જાણે છે અને "**नयचक्र**" જેવા દુર્ઘટ ગ્રંથનું સંપાદન કરી રહ્યા છે.

"**नयचक्र**" જેવા સ્યાદ્વાદન્યાયરૂપી ઉચ્ચકોટિના ગ્રંથનું સંપાદનકાર્ય કેટલી જહેમત અને સર્વદિશાની વિદ્વત્તા માગી લે છે તે, તે વિષયના જ્ઞાતા જ સંપૂર્ણરીતે સમજી શકે. "**नयचक्र**" ના સાંગોપાંગ સંપાદન માટે તેઓશ્રીએ તિબેટની ભાષાનો અભ્યાસ કર્યો અને ઓગણીસ વર્ષના સતત પરિશ્રમ પછી "**नयचक्र**" નો પ્રથમ વિભાગ જે અત્યારે પ્રકાશિત થઈ રહ્યો છે, તેનો યશ **આત્માનંદ સભાને** જ સાંપડયો છે જે ખરેખર સભાને માટે અત્યંત ગૌરવનો વિષય છે.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

મુનિરાજશ્રી ભુવનવિજયજીને સર્વ પ્રકારે સમર્થ જાણી પૂ. ગુરુદેવે તેમને અલગ વિચરવા આજ્ઞા આપી. જેને પરિણામે તેઓએ મારવાડ, માળવા, મહારાષ્ટ્ર, ખાનદેશ, વરાડ, ગુજરાત તથા સૌરાષ્ટ્રની ભૂમિને વિહારથી પાવન કરી અને સ્થળે સ્થળે આવતાં તીર્થસ્થાનોની સ્પર્શના કરીને સ્વજીવનને સાર્થક બનાવ્યું.

પૂ. શ્રી ભુવનવિજયજી મહારાજમાં જ્ઞાનપ્રાપ્તિનો તેમજ જ્ઞાનદાનનો ઘણો અનુરાગ હતો. ખાસ કરીને આગમ સાહિત્યનો તેમને ઘણો જ પ્રેમ હતો. તેઓ ઇચ્છિતા હતા કે, દરેક આગમો મૂળમાત્ર સંપૂર્ણ શુદ્ધ દશામાં પ્રગટ થાય. જેથી અભ્યાસીઓને આગમ-જ્ઞાન સંબંધી સરળ રીતે અધ્યયન થઈ શકે. આ દિશામાં તેઓશ્રીએ કાર્ય કરવાની ઈચ્છા સેવેલી, પણ તે ઈચ્છા પાર પડે તે પહેલાં તો તેઓ સ્વર્ગસ્થ થયા. આશા રાખીએ કે, વિદ્વાન શિષ્ય પૂ. મુનિરાજશ્રી જંબૂવિજયજી આ કાર્ય હાથ ધરી સ્વર્ગસ્થની મનઃકામના પૂર્ણ કરે.

મહારાષ્ટ્રના વિહાર દરમિયાન નાશિક જીલ્લાના ચંદનપુરી તથા સપ્તશૃંગી બંને ગામોમાં દેવીના મેળા પ્રસંગે બલિદાન કરાતો અને હજારો પશુઓ અકાળે મૃત્યુના મુખમાં હોમાતા. પૂ. ગુરુદેવે આ ભીષણ હત્યાકાંડ અટકાવવા કમર કસી ઉપદેશ કર્યો અને તેઓશ્રીના પુરુષાર્થને પરિણામે તે તે સ્થળોમાં અનેક પશુઓની હત્યા અટકી છે અને **"अहिंसा परमो धर्मः"** નો નાદ આજે ગુંજતા થયા છે.

પાલીતાણાખાતે જ્યારે બારોટના હકક સંબંધી પ્રશ્ન ઉદ્ભવેલો ત્યારે પણ તેઓશ્રીએ મકકમપણે વિરોધ દર્શાવેલો અને તેમની સુંદર કાર્યવાહીથી તેનું ઘણું સારૂં પરિણામ આવેલું. તેઓશ્રીનું મનોબલ ઘણું જ મજબૂત હતું અને જે પ્રશ્ન હાથમાં લેતા તેનો સુંદર નિકાલ લાવવામાં તેઓ હંમેશા તત્પર રહેતા.

વય વધતી જતી હતી અને તેની અસર ક્ષણભંગુર દેહ પર થતી જણાતી હતી, પરંતુ આત્મબળ પાસે દેહને પરાભવ પામવો પડતો હતો. શ્રી સિદ્ધાચળજીની યાત્રા કર્યાબાદ છેલ્લા ત્રણ-ચાર વર્ષથી શ્રી શંખેશ્વરજીના સાન્નિધ્યમાં રહેવાનું તેમનું રટન હતું. જામનગરમાં દમનો ઉપદ્રવ થયો, શરીર કથળતું ચાલ્યું, થોડું ચાલે ત્યાં શ્વાસ ચડે, વળી થોડો વિસામો ખાય અને ચાલે, પણ ડોળીનો આશ્રય લેવાની છેલ્લી ઘડી સુધી તેમણે ના જ પાડી. વિહાર કરતાં કરતાં ઝીંઝુવાડા પહોંચ્યા. ઝીંઝુવાડાથી વિહાર કરીને સં. ૨૦૧૫ ની પોષ વદિ ત્રીજે શ્રી શંખેશ્વરજી આવ્યા. મનનો ઉલ્લાસ વધી ગયો અને હંમેશાં બપોરના જિનાલયમાં જઈ પરમાત્માની શાંતરસ ઝરતી પ્રતિમા સન્મુખ બેસી પેટ ભરીને ભક્તિ કરતા. જાણે ભક્તિ કરતાં ધરાતા જ ન હોય તેમ તેનો નિત્યક્રમ થઈ ગયો અને ભક્તિ-ધારા અવિરત વહેવા લાગી.

સાધ્વીશ્રી મનોહરશ્રીજી પણ શંખેશ્વરજી આવી પહોંચ્યા હતા. વસંતપંચમીના રોજ પૂ. ગુરુદેવે એક બહેનને દીક્ષા આપી સાધ્વીશ્રી મનોહરશ્રીજીની શિષ્યા બનાવી. વચ્ચે-વચ્ચે શ્વાસનો ઉપદ્રવ રહ્યા કરતો હતો, પણ મહા સુદિ ૬ થી અશક્તિ વધી. આ સમયમાં આ. શ્રી ચંદ્રસાગરસૂરિજી મ. વગેરે ૧૦૦-૧૨૫ સાધુ-સાધ્વીનાં ઠાણાં શંખેશ્વરજીમાં બિરાજતાં હતાં. તેઓ પૂ. ગુરુદેવ પાસે તબિયતના સમાચાર પૂછવા અનેકશઃ આવતા હતા. રોજ અશક્તિ વધતી ચાલી, છતાં સાધુ-જીવનની સર્વ ક્રિયા તેમણે સ્વહસ્તે જ કરી. અષ્ટમીના દિવસે પણ શરીર વિશેષ અશક્ત થઈ ગયું, છતાં હંમેશના નિયમ મુજબની ગણવાની વીશ નવકારવાળી તેમણે ગણી લીધી. પછી તેઓ સંથારામાં સૂઈ ગયા. પાસે બેઠેલા શ્રાવકને હાથ-પગ ઠંડા પડતા લાગ્યા, એટલે પૂ. મુનિ શ્રી જંબૂવિજયજીએ સ્તવનાદિ સંભળાવવા શરૂ કર્યા. પૂ૦ આચાર્યશ્રી ચંદ્રસાગરસૂરિજી મ. વગેરે સાધુ-સાધ્વીજીઓ પણ આવી પહોંચ્યા અને સુંદર રીતે નિર્ઝામણા કરાવી.

તેઓશ્રી મનોભાવના પ્રમાણે શ્રી શંખેશ્વરજી પાર્શ્વનાથની પ્રતિમા સન્મુખ મુખારવિંદ રાખીને અરિહંતના અને શ્રી શંખેશ્વર પાર્શ્વનાથ ભગવાનના સ્મરણમાં લીનતા પૂર્વક સમાધિભાવે સં. ૨૦૧૫ ના મહાશુદિ અષ્ટમીએ રાત્રિના ૧-૧૫ કલાકે સ્વર્ગસ્થ થયા. જેવી સાધુતા તેવું જ ઉત્તમ તીર્થસ્થળ. ખરેખર અનંત પુણ્યનો ઉદય હોય ત્યારે જ આવું પુનિત મૃત્યુ પ્રાપ્ત થાય. શાન્તમૂર્તિ મુનિરાજશ્રીને અનેકશઃ વંદના.

શ્રી જૈન આત્માનંદ સભા-ભાવનગર

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

INTRODUCTION

Mallavâdî counts among the great names in the older history of the Śvetâmbara sect. Tradition reports his decisive victory over the Buddhists. Nevertheless until recently nothing had been known of his teachings, because his works have not been handed down to us. No manuscripts have been found so far, and there is but little hope that they will be unearthed. There exists, however, a commentary to one of Mallavâdî's works, the Nyâyâgamânusârinî by Siṃhasūri, the work to which this publication is dedicated. And it is with its help that to a wide extent the reconstruction of Mallavâdî's original is made possible. Above all we get acquainted with Mallavâdî's views and doctrines.

Through this work we come to know Mallavâdî as a remarkable and somewhat selfwilled thinker: it was mainly one aspect of the Jain doctrine with which he was occupied, viz. the doctrine of the Naya, the various possibilities to consider things. By means of quotations we know of a commentary to Siddhasena Divâkara's Sammatitarkaprakaraṇam, which is one of the most important works dating to an earlier period that deal with the subject in question. As the name indicates already also the Nayacakram deals with the same subject, and it is Mallavâdî's merit to develop new possibilities in its treatment.

Mallavâdî's Nayacakram attempts to categorize the old doctrine of the Naya or the various ways of considering things in a new and more systematic order, so as to bring about a refutation of all contradicting doctrines. Mallavâdî's arguments are based on what Siddhasena Divâkara had laid down in his Sammatitarkaprakaraṇam. Besides he is in favour of concepts and trends of thought customary with Indian grammarians. Grammar, he states, has to be recognized by all systems (Sarvatantrasiddhântaḥ), and its views are binding for them all.

The old doctrine of the Naya teaches a number of standpoints which form a basis for the consideration of things. It holds that each of these modes of consideration by itself is onesided and therefore wrong, so that true knowledge of things only becomes possible by the combination and concentration of all modes (Jainism). According to their object the latter have been divided into two groups by Siddhasena Divâkara: modes aiming at the thing per se, i. e. substance (davvatthianayo), or its qualities and states (pajjavanayo). His ideas are based on the Jain view of the essence of things, as we find it clearly defined with patriarchs such as Kundakunda. According to them things consist of their substance (dravyam), or their essence (bhâvaḥ), and their various qualities (guṇâḥ) and states (paryâyâḥ), but they have no

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

essential existence of their own as they have in the Vaiśeṣikam, but are welded into an inseparable unity. The " being " of things (bhāvaḥ) is a " becoming " (bhavanam), i. e. it exists in an incessant continuity of changing phenomena, a process in the course of which they continually shape into a new state.

Here Mallavâdî's trends of thought take their start: the substance of things in contrast to the continually changing states may be accepted as the common and general feature (sâmânyam) within them, while in the conditions the restricted, the special (viśeṣaḥ) manifests itself. Accordingly also the modes of consideration aiming at the substance of things or their states, can be differentiated. If, viz. things are being considered according to their substance, i. e. to their feature general, the result is a general statement, an affirmation or an assent (vidhiḥ, utsargaḥ)[1]. Are they, on the other hand being considered according to their states, i. e. to their special feature, the result is a limited statement, a restriction or a negation (niyamaḥ, apavādaḥ). Thus, for the consideration of things two possibilities are given: general affirmation and assent, or specific restriction and negation. As a third item a connection of both these viewpoints is added.

Thus, Mallavâdî teaches three fundamental modes of considering things: general affirmation (vidhiḥ), affirmation and restriction (vidhiniyamam), pure restriction (niyamaḥ). In addition hereto each of these modes of consideration can be subject of the same three viewpoints, so that finally a total of twelve modes of consideration is brought about. They are

1. vidhiḥ, 2. vidher vidhiḥ, 3. vidher vidhiniyamam, 4 vidher niyamaḥ;

5. vidhiniyamam, 6. vidhiniyamasya vidhiḥ, 7. vidhiniyamasya vidhiniyamam, 8. vidhiniyamasya niyamaḥ ;

9. niyamaḥ, 10. niyamasya vidhiḥ, 11. niyamasya vidhiniyamam, 12. niyamasya niyamaḥ.

Arranged in a circle these twelve modes form the "wheel of modes of consideration" (nayacakram), at the same time the title of Mallavâdî's work. By taking into account these twelve modes of consideration Mallavâdî believes to have exhausted all possibilities in the consideration of things. This entails that all philosophical systems have to range with these modes of consideration. In order to prove them wrong their place in this framework must be defined, whereby their possible onesidedness or their errors may be uncovered.

1. It should be noted that the terminology applied here corresponds to the terminology of grammar.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Thus, the main contents of Mallavâdî's work is the framing and refutation of various philosophical doctrines. It is easily understandable that such procedure was not at all easy, considering the fact that the framework at his disposal was firmly established. His method is often reckless, even on the verge of forcefulness. Yet, it never lacks in intellectual brilliance. The principal line in the first four chapters of the present volume runs as follows:

Chapter 1. The first and simplest viewpoint, the simple, general affirmation (vidhiḥ), is the viewpoint taken by ordinary men (laukikâḥ) towards things. It accepts things as they appear, refuting at the same time the attempt to define them further by a philosophical system, which may either see a common factor in all things (sâmânyam), as does Sâmkhyam, something specific (viśeṣaḥ) as the Buddhists do, or both, as it is the case with Vaiśeṣikam. This viewpoint is vindicated in the fact that it considers the essence of things, i. e. their process of becoming (bhavanam). According to an old rule of grammar the intrinsic which concerns the inmost essentials of things (antaraṅgam), claims priority to all external definitions (bahiraṅgam) of commonness, specificity, or both. This viewpoint is essentially agnostic (âjñânikavâdaḥ) as it renounces a priori any attempt to define the essence of things in concreter terms, stating its futility. Here it coincides with the Pûrvamîmâṃsâ, which declares only the ritualistic precepts of the Veda as essential for man's happiness repudiating any philosophical consideration of things[1]. That is also why Mallavâdî includes the Pûrvamîmâṃsâ in this viewpoint.

Furthermore, this chapter includes a highly interesting sideline. In the attempt to reason his viewpoint the defender of the first mode of consideration bases his argument on perception. He introduces perception as conceived by ordinary men, and repudiates any philosophical doctrine as to its nature. Thus, wide space is given for the discussion of the Buddhist theory of perception.

Chapter 2. As a second viewpoint Mallavādī mentions the express affirmation of the most general kind (vidher vidhiḥ). The first viewpoint had left undetermined the exact nature of being or becoming. The analysis of this word which is effected according to the rules of Indian grammarians by its verbalization, shows that becoming means that something becomes something else (bhavatīti bhāvaḥ). Becoming, therefore, is in need of a subject (kartā) or vehicle. What then, is the vehicle of all becoming? In reply to this question Mallavādī quotes several doctrines of which the

1 The development of the Mīmāṁsā into a philosophical system belongs to the time after Mallavādī.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

following always contradicts the preceding. The first of these doctrines makes a world-soul (puruṣaḥ) the vehicle of becoming, the second necessity (niyatiḥ), the third time (kālaḥ), the fourth "the own being" or the nature of things (svabhāvaḥ), and the fifth finally being per se (bhāvaḥ), which Mallavādī follows with Bhartṛhari's doctrine of the word as the First Cause of all things (śabdabrahmavādaḥ).

Chapter 3. Against this viewpoint stands a third which refutes the vehicle of becoming as the sole principle. It manifests itself in two doctrines: the Sāṃkhya system and the doctrine of a godhead as the creator of all things (īśvaravādaḥ). And again Mallavādī allows the first of the two doctrines to be contradicted by the second. The viewpoint of the Sāṃkhya system reasons in the following way: it differentiates two forms of being or becoming, being present (sannidhibhavanam) and coming about (āpattibhavanam). Only an existent duplicity, however, makes them possible. As concerns being present someone who knows (jñātā) presupposes something that is known (jñeyam), someone who enjoys (bhoktā) presupposes something that is enjoyed (bhogyam) and vice versa. The coming about requires a manifold unity (anekam ekam) which by changing again and again (pariṇāmaḥ) adopts a new form. At the same time it requires a second principle on account of which the change is being brought about. Thus, the two principles of Sāṃkhya, the soul (puruṣaḥ) and original matter (pradhānam) are given. The doctrine of a godhead does away with the differentiation of being present and coming about. It also teaches a duplicity, however: a vehicle and causer of all becoming (bhāvayitā or pravartayitā) besides material principles whose becoming it causes and steers (bhāvyam or pravartyam). Both doctrines hold up express affirmation (vidher vidhiḥ) by presupposing a general vehicle of becoming, restrict it, however, by presupposing a second principle that is only passively steered and does not act as the active subject of becoming (vidher niyamaḥ).

Chapter 4. By a fourth viewpoint the supposition of a subject and separate vehicle of becoming is done away with completely. At first using as examples action (karma) and soul (puruṣaḥ) Mallavādī shows by a number of rather daring conclusions that neither action nor soul can alone be general cause as they converge in one and the same essential existence. The same holds good in general for the steering and the steered, the causing and the caused (pravartakam and pravartyam). Thus, one essential existence remains as the sole vehicle of becoming the "substance that becomes" (dravyam). A subject or causer of becoming (kartā) is eliminated. Thus, the second viewpoint, the additional affirmation (vidher vidhiḥ) which demanded such a subject, is refuted. It is true though, that simple affirmation (vidhiḥ) remains valid and is to be found in the supposition of the general

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

vehicle of becoming. Yet it is restricted to substance (dravyam) i. e. the pure process of becoming (niyamaḥ).

So far the contents of the present volume.

Already this short survey shows clearly Mallavādī's peculiar but also headstrong way of thinking. At the same time the reasons for his success as well as the later disappearance of his works reveal themselves. His entirely new way to see things had to baffle his opponents and at the same time helped him to get the upper hand in disputes. It was also the cause, however, for his works not to hold their ground. The traditional trends of thought as applied in the various systems, their attitude in seeing things, could not all of a sudden be deviated into new channels. Thus, Mallavādī and his works were soon consigned to oblivion. That is also why we find hardly any effect of his thoughts. Even the polemics of his opponents's schools do scarcely mention him.

Still, we can count him among the most peculiar, and from the standpoint of philosophy, most important teachers of the Śvetāmbara sect, his works being of great interest even today. It is through his refashioning of the Naya doctrine that the problem can be seen from a new and more acute angle. There is one thing, however, that scores a special point of interest for his and Siṃhasūri's work: as mentioned, the bulk of it is dedicated to the polemics against other systems. Dating back to a time which is extremely lacking in information as to philosophical systems, it yields quite a number of news on authors and works of which we know very little indeed. To mention a few examples: numerous fragments are preserved in chapters one and eight of Mallavādī's work of Dignāga, the founder of the epistomological school of Budhism, whose works we only know in parts, and from Tibetan and Chinese translations. In the seventh chapter, for the first time, we come across a number of fragments of Rāvaṇa's Kaṭandi, the oldest known commentary to the Vaiśeṣika Sūtras. In the same chapter we also learn of lost works by Praśastapāda while the third chapter is one of the main sources for the classical Sāṃkhya and the principal work of that school, the Ṣaṣṭitantram by Vṛṣagaṇa. Mallavādī's Nayacakram with Siṃhasūri's commentary therefore, is important not only for Jainism, but also for the history of Indian philosophy in general. Its publication by means of a highly useful edition is therefore to be warmly welcomed.

How difficult this task was can only be valued by someone who has himself tried his hand at it. The only thing existent is Simhasūri's commentary which naturally takes Mallavādī's original for granted, and is not understandable without it. Therefore it is imperial to reconstruct the original from Simhasūri. This is difficult and sometimes almost impossible, because as a rule Simhasūri quotes only the first and the last words of the sentence to be

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

explained, allows wider space only to more difficult passages, and passes quickly over others with the remark " easily understood " (sugamam). If, in spite of all these difficulties, Mallavâdî's text, or at least his trends of thought are reconstructed, also Simhasūri's text needs reconstruction, as it is faulty and demands numerous corrections. But even then, the comprehension of the text is not easy, as Mallavādī's work in itself is very difficult indeed.

I am very happy to say that the editor of the present edition, Muni Jambuvijaya, has mastered to perfection all these difficulties, and has given us a text as best as can be achieved at the present time. Clarity has been gained on the extant manuscripts and Muni Jambuvijaya's notes to the text give reliable information as to the tradition, so that a stable basis is supplied for further research. His reconstruction of the original makes it possible to follow Mallavādī's trends of thought also in passages where absolute certainty cannot be achieved. It has been carefully considered and deserves our full attention. At any rate, the text of the commentary is reliable and has been made legible by means of various corrections. Above all this text gains greatly by numerous notes and cross-references to related texts, thus aiding in the comprehension of the original itself. Here special mention should be made of the Bhoṭapariśiṣṭam, which contains the relevant passages from Dignāga's Pramāṇasamuccayaḥ. Thus, the author's painfully accurate labours have opened a way of approach to such an extraordinarily difficult text. The warmest thanks of all interested in Indian philosophy and especially in Jain doctrines are due to the editor who has taken such a tremendous amount of work upon himself, as well as to the directors of the Jain Atmanand Sabha in Bhavnagar who made the publication of this valuable edition possible. There remains but one desire, that Mallavādī's work, only recently made presentable to the public, should find the attention it deserves, and its rewarding contents should bear fruit in further research.

Vienna,
15th September 1958

ERICH FRAUWALLNER

I am greatly indebted to Dr. E. Frauwallner, Professor of Indology and Iranian Philology at the University of Vienna (Austria) and the member of the Austrian Academy of Sciences for writing the foregoing Introduction—Muni Jambuvijaya.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ ॐ ह्रीँ अर्हं श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

आचार्यमहाराजश्रीमद्विजयसिद्धिसूरीश्वरजीगुरुभ्यो नमः ।
आचार्यमहाराजश्रीमद्विजयमेघसूरीश्वरजीगुरुभ्यो नमः ।
सद्गुरुदेवमुनिराजश्रीभुवनविजयजीपादपद्मेभ्यो नमः ।

प्राक्कथनम्[1]

भगवतो गुरुदेवस्य प्रेरणा

जैनशासनवादिप्रभावकाचार्यश्री**मल्लवादि**क्षमाश्रमणविरचितस्य श्री**सिंहसूरि**गणिवादिक्षमाश्रमणविरचितवृत्त्या समलङ्कृतस्य **द्वादशारस्य नयनचक्र**महाशास्त्रस्यारचतुष्टयात्मकं प्रथमं विभागं विदुषां पुरतः प्रकटयन्तो वयमद्यापूर्वमानन्दमनुभवामः ।

विक्रमसंवत् २००१ वर्षे **शहापुर**ग्रामे [जिला **'ठाणा'** मध्ये] वयं चतुर्मासीं स्थितास्तदा कश्चिदागमग्रन्थं सम्पादयितुमस्माकं मनसि विचारः प्रादुर्भूतः । तदानीं च अनेकप्राचीनग्रन्थसङ्ग्रहव्यवस्थापने सिद्धहस्तैः प्राचीनग्रन्थसंशोधने चोत्कटं स्वारस्यं समुद्वहद्भिर्मुनिराजश्री**पुण्यविजयजी**महोदयैरद्यतनशैल्या सम्पाद्य जैनागमग्रन्थान् प्रकाशयितुं 'जैनागमप्रकाशिनी संसद्' इत्यभिधा एका संस्था **पत्तन**नगरे स्थापिताऽऽसीत् । अतो मलधारिश्री**हे**मचन्द्रसूरिविरचितवृत्तिसमेतस्य सैद्धान्तिकप्रवरश्री**जिन**भद्रगणिक्षमाश्रमणविरचित**विशेषावश्यकमहाभाष्य**स्य दुर्लभत्वमुपयोगित्वं च विभाव्य **भगवतां गुरुदेवानां** पूज्यपादमुनिराजश्री१००८ **भुवनविजयजीमहाराजानां प्रेरणया** तत् सम्पादयितुं मुनिराजश्री**पुण्य**विजयजीमहोदयेभ्योऽस्माभिरस्माकं समीहा निवेदिता । तैस्तु एवमुत्तरं लिखितम्—

'मलधारिश्री**हे**मचन्द्रसूरिविरचितवृत्तियुतस्य **वि**शेषावश्यकमहाभाष्यस्य प्रकाशनं तावत् सकृत् सञ्जातमेव । नितान्तमावश्यकता तु **नयचक्र**प्रकाशनस्य वरीवर्ति । **नय**चक्रमद्यावधि अमुद्रितम् । किञ्च, **मल्लवादि**प्रणीतं **न**यचक्रं तावत् कुत्रचिदपि नैवोपलभ्यते । **सिंहसूरि**क्षमाश्रमणविरचिता तदीया **वृत्ति**रेवैका केवलमुपलभ्यते । हस्तलिखितप्रत्यनुसारेण **न**यचक्रवृत्तेः संशोधनं विधाय, तदनुसारेण **न**यचक्रमूलं च संकलय्य, अद्यतनशैल्या च साङ्गोपाङ्गं सम्यक् सम्पाद्य सवृत्तिकस्य **न**यचक्रस्य प्रकाशनं नितान्तमपेक्ष्यते सम्प्रति । यद्यप्येतत् कार्यमतिकठिनं तथापि सर्वथाऽऽवश्यकमुपयोगि चात्यन्तम् । यद्येतत् कार्यं युष्माभिः स्वीक्रियते तर्हि तत्सम्पादनार्थमुपयुक्तां सर्वां हस्तलिखितग्रन्थादिसामग्रीं प्रेषयामि । तस्य मुद्रणप्रकाशनादेः सर्वां व्यवस्थामहं विधास्ये । यदि चैतस्मिन् कर्मणि सहायकत्वेन कश्चित् पण्डितोऽपेक्ष्यते तर्हि तमपि प्रेषयिष्यामि ।'

एवंविधया आग्रहपूर्णया तेषां सूचनया मया सत्वरमेवैतत् कार्यं स्वीकृतं प्रत्युत्तरे चाऽऽवेदितं यथा 'पण्डितस्य नापेक्षा, **नय**चक्रवृत्तेर्हस्तलिखिताः प्रतय एव शीघ्रं प्रेषणीयाः' इति ।

---

१ श्री**शंखेश्वरपार्श्वनाथतीर्थे** विक्रमसंवत् २०१५ वर्षे माघशुक्लाष्टम्यां सोमवासरे पूज्यपादानां **भगवतां गुरुदेवानां** मुनिराजश्री**भुवनविजयजी**महाराजानां स्वर्गवासः सञ्जातः, तेषां स्वर्गवासात् प्रागेव **झींझु**वाडाग्रामे तेषां छत्रच्छायायां लिखितं तेषां दृष्ट्या च पवित्रितमिदं **प्राक्कथनं** प्रायो यथावदेवात्र मुद्र्यते ॥ इदं तु ध्येयम्—**गुरुदेवानां** स्वर्गवासात् प्रागेवास्य ग्रन्थस्य सप्त अरा मुद्रिताः [पृ० १–५५२] । तदनन्तरमष्टमोऽप्यरो मुद्रितः [५५३–७३७] इति तस्याप्युपयोगोऽस्मिन् प्राक्कथने टिप्पणेषु यथायोगं विहितोऽस्माभिरिति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदनन्तरं चतुर्मास्यां परिपूर्णायां शहापुराद् विहृत्य वयं पुण्यपत्तनं [पुनानगरं] गताः । तत्र मुनिराजश्रीपुण्यविजयजीमहोदयैर्नयचक्रवृत्तेरनेका हस्तलिखितप्रतयः प्रेषिताः । पूज्यपादगुरुदेवश्री**भुवनविजयजी**महाराजानामाशीर्वादमधिगम्य **न**यचक्रवृत्तेः संशोधनं मयाऽऽरब्धम् । **न**यचक्रवृत्त्यादर्शानां पदे पदेऽशुद्धिबहुलत्वात् प्राचीना अर्वाचीनाश्च यावत्यो **न**यचक्रवृत्तिप्रतय उपलब्धुं शक्यास्तावत्यः सर्वा अपि इतस्ततः सङ्गृहीताः । किन्तु ताः सर्वा अपि पूज्यपादमहोपाध्यायश्री**यशोविजय**वाचकैर्निर्मितं **न**यचक्रवृत्तेरेकमादर्शमवलम्ब्यैव लिखिता इति तासु सर्वास्वपि प्रायः समाना एव शुद्धाशुद्धपाठा दृष्टिपथमायाताः । अतः श्री**यशोविजय**वाचकैः स्वयं लिखितमादर्शं गवेषयितुमस्माभिर्बहु प्रयतितम् । किन्तु तदानीं स आदर्शः कुत्रचिदपि न लब्धः । अतोऽस्मत्सविधे समायातासु प्रतिषु 'पा० डे० लीं० वि० रं० ही०' इति षण्णां प्रतीनां प्राचीनत्वं विभाव्य तदनुसारेण संशोधनमारब्धम् । हस्तलिखितप्रतीनामशुद्धिभूयिष्ठत्वाद् **न**यचक्रमूलस्य विलुप्तत्वाच्च **न**यचक्रवृत्तेः सम्यग् रहस्यपरिज्ञानं संशोधनं च दुष्करतरं विभाव्य संशोधनायोपायान्तरमपि चिन्तितम् । **न**यचक्रग्रन्थस्य नानाविधदार्शनिकसिद्धान्तचर्चामयत्वात् तत्तद्विषयकग्रन्थान्तरसाहाय्येनास्मदीयं संशोधनकर्म कथञ्चित् सरलीभवेदिति सञ्चिन्त्य **पु**ण्यपत्तने चिरतरमवस्थाय तत्र 'आत्मानन्द जैन लायब्रेरी, भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिटयूट, डेक्कन कॉलेज, डॉ. वासुदेव विश्वनाथ गोखले' इत्यादीनां विशालग्रन्थसङ्ग्रहेभ्यो नानाविधान् ग्रन्थानधिगम्य जैन-बौद्ध-सांख्य-न्याय-मीमांसा-वेदान्तादिदर्शनानां प्रायः सर्वेऽपि प्राचीना ग्रन्था मया परिशीलिताः । अन्यानप्यतिदुर्लभान् हस्तलिखितान् नानाभाषानिबद्धान् युरोपादिदेशेषु प्रसिद्धांश्च ग्रन्थान् महता प्रयत्नेन सञ्चित्य तेषामप्यवगाहनं कृतम् । एतेभ्यो ग्रन्थेभ्यो यद्यपि यथापेक्षं साहायकं न लब्धं तथापि बहुषु स्थलेषु **न**यचक्रवृत्तेः संशोधने **न**यचक्रमूलस्य च संयोजने एतेषां ग्रन्थानां भूयानुपयोगो जातः । ये च ग्रन्था अस्माभिरुपयुक्तास्तेषां निर्देशस्तत्र तत्र टिप्पणेषु विहितोऽस्माभिः । तथाहि—द्विविधानि टिप्पणान्यत्रास्माभिः सङ्कलितानि, कानिचिद् **न**यचक्रे वृत्तेरधस्तनभागे पादटिप्पणरूपेण मुद्रितानि, अपराणि तु **न**यचक्रस्य प्रान्ते पृथक् टिप्पणरूपेण मुद्रितानि, तेषु चानेकानि परिशिष्टान्यपि योजितानि । एतेषां सर्वेषां टिप्पणानां परिशिष्टानां चावगाहनात् '[1]उपयुक्तग्रन्थनामावली'विलोकनाच्च प्राचीनार्वाचीनग्रन्थानां यो महान् राशिरेतस्मिन् सम्पादनेऽस्माभिरुपयुक्तः स स्वयमेव सम्यग् विज्ञास्यते वाचकैः ।

कृत्स्नाया **न**यचक्रवृत्तेर्वाचनादिदमपि मया ज्ञातं यथा येषां येषां सांख्य-बौद्ध-वेदान्त-वैशेषिकादिदर्शनग्रन्थानां मतानि **न**यचक्रकृता चर्चितानि निरस्तानि वा तेषु बहवो ग्रन्थास्तावत् सम्प्रति विलुप्ता एव, केषाञ्चित्तु नामापि न श्रूयते । किन्तु येषां बौद्धग्रन्थानां मतानि **न**यचक्रे **वृत्तौ** चोल्लिखितानि तेषां सम्प्रति संस्कृतभाषायां नष्टप्रायत्वेऽपि केषाञ्चिद् ग्रन्थानां परःशतेभ्यो वर्षेभ्यः पूर्वं **भोट**भाषायां **भोट**देशीयपण्डितैर्विरचिता [2]अनुवादाः प्राप्यन्ते । अतो **भोट**भाषाम[3]धीत्य तद्ग्रन्थांश्चाधिगम्य तदनुसारेण **न**यचक्रवृत्त्यन्तर्गतबौद्धमतसम्बद्धपाठानां संशोधनमत्यन्तं समीचीनं भवेत् तत्र तत्र च **न**यचक्रमूलस्य योजनमपि सुकरं भवेदिति विभाव्य भोटभाषामध्येतुं तद्ग्रन्थांश्च कुतश्चिदप्यवाप्तुमुद्युक्ता वयम् ।

---

१ अस्मिन् प्रथमे विभागे सम्पादनायोपयुक्तानां ग्रन्थानां नामावली **टिप्पृ०** १४७ इत्यतः परं विलोकनीया ॥
२ **'तिब्बत'** देशस्य **'भोट'** इत्यभिधानम्, अतो **भोट**भाषा नाम **तिब्बत**देशीया [Tibetan] भाषा इति ध्येयम् ॥
३ दृश्यतां **टिप्पृ०** ९५ । Oriental Institute, Baroda इत्यतः Gaekwad's Oriental Series No. 136 रूपेण प्रकाशितस्य अस्मत्सम्पादितस्य **चन्द्रानन्दरचितवृत्तियुक्तस्य वैशेषिकसूत्रस्य** सप्तमे परिशिष्टेऽपि [पृ० १५३–१५४] विस्तरार्थिभिर्विलोकनीयम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयचक्रवृत्तेरतिविशिष्टायाः प्रतेरवाप्तिः

तदनन्तरमितस्ततो भृशं गवेषयद्भिरस्माभिर्नयचक्रवृत्तेरेकाऽतिदुर्लभाऽतिविशिष्टा च प्रतिरपि लब्धा। सा हि **धर्ममूर्ति**सूरीणामुपदेशेन **गोविन्द**मन्त्रितनुजेन **पुञ्जेन** लेखिता सम्प्रति **भावनगर**स्थे 'श्रेष्ठि **डोसा**भाई अभेचंदनी पेढी'सत्के ज्ञानभाण्डागारे विद्यतेऽतोऽस्माभिरत्र भा० इति संज्ञिता। उपाध्यायश्री**यशोविजय**वाचकै-र्नयचक्रवृत्तेरादर्शो विक्रमसंवत् १७१० वर्षे लिखितः। **धर्ममूर्ति**सूरिभिस्तु वि. सं. १६५० निकटवर्षे लेखितेयं प्रतिः। अतो **यशोविजय**वाचकलिखितादादर्शात् षष्टिप्रायैर्वर्षैः प्राचीनायामस्यां भा० प्रतौ **यशो-विजय**वाचकवरविरचितादर्शमवलम्ब्य लिखितासु पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतिष्वविद्यमाना बहवो विशुद्धाः पाठा अस्माभिर्लब्धाः। बहुत्र गवेषिताप्यस्माभिः भा० प्रतेराधारभूता प्रतिः क्वचिदपि न लब्धा, न वा भा० प्रतिमवलम्ब्य लिखितापि काचित् प्रतिर्दृष्टा; अत ईदृशी एकैव प्रतिरस्मिन् जगति सम्प्रति विद्यते इति वयं सम्भावयामः। अन्यासु सर्वास्वपि प्रतिष्वलभ्यमानाः परःसहस्राः शुद्धपाठा अनेकाश्च पङ्क्तयो भा० प्रतौ विद्यन्ते। एतच्च **भा०** प्रतेरितरप्रतिभ्यो वैशिष्ट्यं पुरस्तात् प्रतीनां परिचये विस्तरेणोपदर्शयिष्यामः। एवं महता पुण्योदयेनेदृश्या अतिदुर्लभायाः प्रतेरवाप्त्यैव **नयचक्रवृत्तेः** संशोधनं सामञ्जस्येन कर्तुं वयमपारयाम।

अतीतेषु सप्तसु वर्षशतेष्वपि **मल्लवादि**रचित**नय**चक्रस्य लुप्तप्रायत्वात् सम्प्रत्यपि बहुशो गवेषितस्यापि कुत्रचिदनुपलम्भाच्च **नय**चक्रवृत्तिमनुसृत्य तदन्तर्गतान् **नय**चक्रमूलप्रतीकान् संयोज्य **नय**चक्रमूलमस्माभिः सङ्कलयितुं प्रारभ्यत।

प्रकाशनायोपक्रमः

एवं बहूनि वर्षाणि नानाविधान् ग्रन्थानवगाह्य परिशील्य च सततं षोडशभिर्मासैः **सवृत्तिक**स्य **नय**चक्रस्य मुद्रणप्रायोग्य आदर्शः [प्रेसकॉपी] मया स्वयमेवालेखि। तदनन्तरमादर्शो मुद्रणाय प्रेषितः। किन्तु प्रकृत्यस्वास्थ्यादयो नानाविधा विघ्ना अन्तरा समुपस्थिताः। उपयुक्तसामग्रीसञ्चयेऽपि भूयान् कालो व्यतीतः। मुद्रणालये मुद्रणेऽपि भूयान् विलम्बः सञ्जातः। सत्वरमुद्रणानन्तरं टिप्पणपरिशिष्टनिर्माण-मपि द्राघीयसा कालेन निष्पन्नम्। इत्याद्यनेककारणवशादस्य प्रकाशनं चिरतरं विलम्बितम्। अस्य द्वादशसु अरेषु अरचतुष्टयात्मकः प्रथमो विभागः सम्प्रति प्रकाश्यते। अवशिष्टानप्यरान् सम्यक् टिप्पणादिभिरलङ्कृत्य शीघ्रतरमेव प्रकाशयितुमाशास्महे।

विभागयोजना

इदं तु ध्येयम्—द्वादशारमिदं **नय**चक्रं त्रि**मार्ग**म्। **मार्गो** नेमिरित्यनर्थान्तरम्। अतश्चतुर्षु चतुर्ष्व-रेष्वेको मार्गः परिसमाप्यते। एवं च त्रिभिर्विभागैर्ग्रन्थोऽयं प्रकाशनीय इत्यस्माकं प्राग् मनीषाऽभूत्। किन्तु तृतीयो मार्गोऽतीव लघुतरः, प्रथमस्तु बृहत्तरः, भा० प्रतौ समग्रस्य **नय**चक्रस्य ५७२ पत्राणि, तत्र २६८ पत्राण्यादिमारचतुष्टयात्मकस्य प्रथमस्य मार्गस्य, **नय**चक्रवृत्तावपि **'अर्धमेकपुस्तकं समाप्तम्'** इत्युल्लेखः प्रथम-मार्गान्ते [पृ० ३७५ पं० १६] दृश्यते। इत्यादि परिभाव्य विभागद्वयेन समग्रं **नय**चक्रं प्रकाशयितुं

---

१ दृश्यतां पृ० ३७५ पं० १५, पृ० ७३७ पं० २७, टिपृ० ९४ पं० २७–३०। "विध्यादिसकलभङ्गात्मकसम्यग्दर्शनाधिकारे वर्तमाने विकलनयस्वरूपज्ञानमूलत्वात् सम्यग्दर्शनस्य विध्युभयविकल्पचतुष्टयात्मके **तृतीये मार्गे** वर्तमाने तत्र नियमभङ्गं प्रथममुक्त्वा······अत्राप्यपरितुष्यन् नियमविधिभङ्गाररवाह।" इति दशमारे **नय**चक्रवृत्तौ पृ० ४९४–२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सङ्कल्पयामः । तत्रास्मिन् प्रथमे विभागे आद्यमरचतुष्टयं प्रकाश्यते । द्वितीये तु विभागेऽवशिष्टं समग्रमपि **न**यचक्रं प्रकाशयिष्यते ।

ग्रन्थाभिधानम्

[1]विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत् ।
जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम् ॥

इति यत् **पूर्व**[2]**श्रु**तसम्बद्ध**नयप्राभृतां**शभूतं सङ्क्षिप्तमप्यतिगभीरार्थं[3] **गा**थासूत्रं यच्च तद् व्याख्यातुं **मल्लवादि**-क्षमाश्रमणैर्विरचितमतिविस्तृतं [4]भाष्यमेतदुभयमपि '**नयचक्रम्**' इत्याख्यायते । द्वादशारनिबद्धत्वाद् द्वादशार-**न**यचक्रनाम्नोल्लेखस्य क्वचिद् दृश्यमानत्वेऽपि '**न**यचक्र'नाम्नैवास्य प्राधान्येन [5]प्रसिद्धिः ।

आचार्यश्रीमल्लवादिक्षमाश्रमणानां परिचयः

नयचक्रकर्तार आचार्यश्री**मल्लवादि**क्षमाश्रमणा जैनदार्शनिकेषु महावादित्वेन तार्किकशिरोमणित्वेन च परां प्रसिद्धिमुपगताः । **या**किनीमहत्तरासूनुभिराचार्यश्री**हरिभद्र**सूरिभि**रनेकान्तजयपताका**स्वोपज्ञवृत्तौ "उक्तं च **वादिमुख्येन** श्री**मल्लवादि**ना" [पृ. ५८, ११६] इति वादिमुख्यत्वेन वर्णितत्वात्, कलि-कालसर्वज्ञाचार्यश्री**हेमचन्द्र**सूरिभिः **सिद्ध**हेमशब्दानुशासने "उत्कृष्टेऽनूपेन" [२।३।३९] इति सूत्रस्य बृहद्वृत्तौ **"अनु मल्लवादिनं तार्किकाः"** इत्युदाहरणेन **म**ल्लवादिनस्तार्किकेषूत्कृष्टतायाः प्रतिपादितत्वात्, **जिनेश्वर**सूरिभिः **प्र**मालक्ष्मवृत्तौ "अत एव श्रीमन्महा**मल्लवादि**पादैरपि **नयचक्र** एवादरो विहितः" [पृ. ८९] इत्यभिहितत्वाद् जिनप्रवचनस्याष्टसु प्रभावकेषु वादिप्रभावकतया **सङ्घतिलका**चार्य-वाचकवरश्री-**यशोविजयो**पाध्यायादिभिः संस्तुतत्वादन्यैरपि च बहुभिर्ग्रन्थकारैस्तत्र तत्र वर्णितत्वाच्च **मल्लवादि**क्षमा-श्रमणानां महावादित्वं तार्किकचक्रचक्रवर्तित्वं च स्पष्टमेव प्रतीयते ।

नयचक्रवृत्तेः प्रान्तभागे दृश्यमानोल्लेखानुसारेण तेषां श्वेताम्बरत्वं क्षमाश्रमणत्वं विजितानेकवादित्वं तत्प्रणीत**द्वादशार**न**यचक्रस्य प्राचीन**सप्तशतार**न**यचक्राध्ययनानुसारित्वं च स्फुटमेव प्रतीयते । तथाहि—

"अधुना तु शास्त्रप्रयोजनमुच्यते—सत्स्वपि पूर्वाचार्यविरचितेषु **सन्मति-नयावतारा**दिषु नयशास्त्रेषु अर्हत्प्रणीतनैगमादिप्रत्येकशतसंख्यप्रभेदात्मक**सप्तनयशतारनयचक्राध्ययना**नुसारिषु तस्मिंश्चार्षे सप्तनय-

---

१ पृ० ९ ॥ २ "**पूर्व**महोदधिसमुत्पतित**नयप्राभृत**तरङ्गागमप्रभ्रष्टश्लिष्टार्थकणिकमात्रमन्यतीर्थकरप्रज्ञापनाभ्यतीत-गोचरपदार्थसाधनं **नयचक्रा**ख्यं सङ्क्षिप्तार्थं गाथासूत्रम्" [पृ० ९ पं० ४–५] इति स्वयं **म**ल्लवादिन उल्लेखदर्शनाद् **म**ल्लवादिकथानकेष्वपि सर्वेषु 'प्राचीन**नयचक्र**स्थां **विधिनियमभङ्गवृत्ती**त्यादिगाथामवलम्ब्य **म**ल्लवादिना नव्यं **नयचक्रं** प्रणीतम्' इत्युल्लेखदर्शनाच्च **विधिनियमभङ्गवृत्ती**त्यादिगाथा प्राचीनागमगता तद्भाष्यं तु **म**ल्लवादिप्रणीतमिति प्रतिभाति । एवं सत्यपि **भा**ष्यस्यात्र प्रधानभूतत्वाद् 'विधिनियमभङ्गवृत्ती'त्यादिगाथाया **भा**ष्यमध्यपतितत्वाच्च सगाथासूत्रस्य भाष्यस्य **म**ल्लवादिप्रणीतत्वेन प्रसिद्धौ न कश्चिद् दोषः । अत एव "आह **म**ल्लवादी विधिनियमभङ्गवृत्ति······वैधर्म्यम् ॥" इति **न्या**यावतारवार्तिकवृत्तौ [पृ० ११२] **शा**न्तिसूरीणाम् "उक्तं च **म**ल्लवादिना—विधिनियमभङ्गवृत्ति······वैधर्म्यम् ॥" इति **उ**त्पादादिसिद्धेः स्वोपज्ञ**वृ**त्तौ [पृ० २२२] **च**न्द्रसेनसूरीणां चाभिधानमपि सङ्गच्छते । दृश्यतां **टि**पृ० १३ पं० २–१४ । अन्ये त्वाहुः—गाथासूत्रमपि **म**ल्लवादिनैव प्रणीतम्, अर्थतो **न**यप्राभृतानुसारित्वात्तु पूर्वमहोदधिसमुत्पतित**न**यप्राभृततरङ्गा-गमप्रभ्रष्टश्लिष्टार्थकणिकमात्रत्वं तस्योपपादनीयम्, एवं च **शा**न्तिसूरीणां **च**न्द्रसेनसूरीणां च वचनमपि यथावत् सङ्गच्छत इति । किन्त्वस्मिन् मते गाथासूत्रस्य प्राचीनग्रन्थान्तर्गतत्ववर्णनपराणां **म**ल्लवादिकथानकानां कथमपि सङ्गतिर्नोपजायत इति ध्येयम् ॥ **३** टिपृ० १२ पं० १३–२८ ॥ **४ भा**ष्यत्वेनास्य निर्देशः पृ० २८७ पं० ९ पृ० २९७ पं० १५ पृ० ३०० पं० ९ पृ० ५४१ पं० १२ इत्यादिषु द्रष्टव्यः ॥ **५** दृश्यतां टिपृ० १ पं० ११–१५ टि० २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शतार[**नय**][1]**चक्राध्ययने** च सत्यपि द्वादशारनयचक्रोद्धरणं दुःषमाकालदोषबलप्रतिदिनप्रक्षीयमाणमेधायुर्बलोत्साहश्रद्धासंवेगश्रवणधारणादिशक्तीनां श्रवणमेव तावद् दुर्लभम्, श्रुत्वापि तत्त्वावबोधः, बुद्धा तत्त्वमन्य(प्य?)स्य व्यवहारकाले परप्रत्यायनं प्रत्यादरो दुर्लभः, सत्यप्यादरे ग्रन्थार्थसंस्मरणं तदुद्ग्राहणमुद्ग्राहितार्थप्रतिपादनं चात्यन्तखेदायेति मत्वा तत्खेदखिन्नान् विस्तरग्रन्थभीरून् संक्षेपाभिवाञ्छिनः शिक्षकजनाननुग्रहीतुं 'कथं नामाल्पीयसा कालेन **नय**चक्रमधीयेरन्निमे सम्यग्दृष्टयः' इत्यनयानुकम्पया संक्षिप्तग्रन्थं बह्वर्थमिदं **नय**चक्रशास्त्रं श्रीमच्छ्वेत**पटमल्लवादिक्षमाश्रमणेन** विहितं स्वनीतिपराक्रमविजिताशेषप्रवादिविजिगीषुचक्रविजयिना सकल**भरत**विजयवासिनृपतिविजिगीषुचक्रविजयिनेव **भरत**चक्रवर्तिना देवतापरिगृहीताप्रतिहतचक्ररत्नेन स्वपुत्रपरम्परानुयायिजगद्व्यापिविपुलविमलयशसा चक्ररत्नमिव तदिदं नयचक्ररत्नं चक्रवर्तिनामिव चक्ररत्नं पुत्रपौत्रादिनृपतीनां विहितं कृतम्। किमर्थमिति चेत्, उच्यते—चक्रवर्तिनामिव चक्रवर्तित्वविधये । वादिनां जैनानां जिन**शासन**प्रभावनाभ्युद्यतानां वादिचक्रवर्तित्वविधये 'वादिचक्रवर्तित्वं विधेयात्' इत्येत(व)मर्थमित्येतस्य **नयचक्र**शास्त्रस्य विधाने प्रयोजनमभिहितम्। तदेतदेवं **द्वादशारनयचक्रं** सिद्धं प्रतिष्ठितमव्याहतं चक्रवर्तिचक्ररत्नवदेव अन्याविप्रधृष्याचिन्त्यशक्तिपराभिभवनप्रभुशक्तियुक्तं च सिद्धम्।"

भगवतो मल्लवादिनो जीवनवृत्तान्तः

मल्लवादिजीवनवृत्तविषयिकाः संस्कृत-प्राकृतभाषानिबद्धा बह्व्यः कथा उपलभ्यन्ते। विस्तरेण ताः [2]**कथावली-प्रभावकचरिता**दिभ्योऽवगन्तव्याः। अत्र तु प्राचीनकथानां कश्चित् सार एव संक्षेपेण प्रदर्श्यते—

---

१ "आत्मज्ञानादिभेदानामानन्त्यं **नयचक्र**तः ॥ ७७ ॥" इति **अ**कलङ्कदेवप्रणीते **प्रमाणसंग्रहे**। "इति मूलनयद्वयशुद्ध्यशुद्धिभ्यां बहुविकल्पा नया **नयचक्र**तः प्रतिपत्तव्याः पूर्वपूर्वा महाविषया उत्तरोत्तरा अल्पविषयाः शब्दविकल्पपरिमाणाश्च।"–**अष्टसहस्री** पृ० २८८। "संक्षेपेण नयास्तावद् व्याख्यातास्तत्र सूचिताः। तद्विशेषाः प्रपञ्चेन सञ्चिन्त्या **नयचक्र**तः ॥"–**तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक**. पृ० २७६। "इष्टं तत्त्वमपेक्षातो नयानां **नयचक्रतः** ॥ [**न्याय**विनिश्चय. ३।९१] ॥ तदेतेषां सप्तविकल्पानामवान्तरविकल्पादनेकप्रकाराणां नयानामपेक्षातः प्रतिपक्षौदासीन्यलक्षणयाऽपेक्षया तत्त्वं श्रुतविकल्पत्वेन प्रमाणत्वमिष्टमभ्युपगतम्, अन्यथा दुर्नयत्वेन तदनुपपत्तेः। तच्च तेषां तत्त्वं विस्तरतो **नयचक्र**तः तन्नामधेयच्चिरन्तनशास्त्रात् प्रतिपत्तव्यम्।" इति **न्याय**विनिश्चयविवरणे पृ० ३६६–३६७।—इत्येवं दिगम्बरजैनग्रन्थेष्वपि **नयचक्रा**भिधस्य चिरन्तनशास्त्रस्योल्लेखाः प्राप्यन्त इत्यपि ध्येयम् ॥ २ प्रायो विक्रमीयद्वादशशताब्द्या उत्तरार्धे विद्यमानै**र्भद्रे**श्वरसूरिभिर्विरचिते प्राकृतभाषामये **कहावली**नामके ग्रन्थे, विक्रमसंवत् १३३४ वर्षे **प्र**भाचन्द्रसूरिभिर्विरचिते **प्रभावकचरिते** मल्लवादिप्रबन्धे [श्लो० १–७१], विक्रमसंवत् १३६१ वर्षे वैशाखपूर्णिमायां **वर्ध**मानपुरे श्री**मेरु**तुङ्गाचार्यै रचिते **प्र**बन्धचिन्तामणौ **प्र**कीर्णकप्रबन्धे **मल्ल**वादिप्रबन्धे, विक्रम**संवत्** १४०५ वर्षे **राज**शेखरसूरिभिर्विरचिते **प्रबन्धकोशे** **म**ल्लवादिचरिताख्ये सप्तमे प्रबन्धे [श्लो० १–६९], विक्रमसंवत् १४२२ वर्षे **स**ङ्घतिलकाचार्यविरचितायां **सम्यक्त्वसप्ततिवृत्तौ** वादिप्रभावकवर्णने प्राकृतभाषामये **म**ल्लवादिचरिते [श्लो० १–८७] च **म**ल्लवादिचरित्रं तावदुपलभ्यते। एतेषु सर्वेषु **कहावली**ग्रन्थस्य प्राचीनत्वादद्यावधि अमुद्रितत्वाच्च **कहावली**ग्रन्थत उद्धृत्य **मल्लवादि**चरितमत्रोपन्यस्यते—

"वायगसमाणत्था य सामण्णओ वाइ–खमासमण–दिवायरा। भणियं च—

'वाई य खमासमणो, दिवायरो वायगो त्ति एगो(ग)ट्ठा उ। पुव्व-गयं जस्सेसं(मं) **जि**णागमे तम्मि(स्सि)मे नाम ॥'

विसेसओ पुण **पुव्व**गयं वाउ(इ)ता जो वायं दाउं समत्थो, सो वाई नाम जहा **मल्लवाइ** त्ति **मल्लवाय(इ)कहा** भण्णइ—

भरुयच्छे **जिणाणंदो** नाम सूरी। तहा तत्थेव **बुद्धाणंदो** नाम वाई। तेण य 'जो वाए पहारिस्सइ, तद्दरिसणे[णे]ह न चिट्ठव्वयं' ति पइण्णाए दिण्णो दि(जि)णाणंदसूरिणा सह वाओ। तहा[भ]वियव्वयाए पहारियं सूरिणा। तओ सो नीसरिउं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघेण समं भरुयच्छाओ गंतुं ठिओ वलहिपुरीए। सूरिभगिणीए दुल्लहेवी नाम। तीसे य **अजियजसो जक्खो मल्लो** य नाम तिण्णि पुत्ता; तेहि य समं पव्वइया। सूरिसमीवे निस्सेसगुणसंपण्णा य सा जाया सव्वसम्मय त्ति ठाविया समुद्दाएण सूरिं विण्णवित्तु पोत्थु(त्थ)याइ-धम्मो[व]गरण-चिंताए। विउसीकया य सूरिणा सव्वसत्थत्थे ते भाणिज्जा मोत्तुं पुव्वगयं न[य]चक्कगंथं; जओ **पमाणपवायपुव्वुद्धारो** बारसाओ(रो) नयचक्कगंथो। ये(दे)वयाहिट्ठि[त]स्स अरयाणं बारसण्हं पि पारंभपज्जंतेसु चेइय-संघपूयाविहाणेण कायव्यमवगाहणं ति पुव्वपुरिसट्ठिइ(ई)। मय(इ)मेहाइसयसंपण्णो य मल्लचेल्लओ दट्ठुमपुव्वं पि पोत्थयं सयमेवावगाहेइ। विहि(ह)रिउकामो य सूरि तत्थेव मोत्तुं मल्लचेल्लयं दुल्लहेविसमक्खं तं भणइ चेल्लया! मा अवलोएज्जसु नय-चक्क[पो]त्थयं। विहरिए य देसंतरेसु सूरिम्मि मल्लेण किमेयं वा(वा)रित्तयं ति अज्जयं ति चिंतिऊण अज्जयाविरहे उच्छोडियं नयचक्कपोत्थयं। वाइयाइ तम्मि पढमा अज्जा जहा—

"विधि-नियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत्।
जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम्॥"

वियप्पेइ य सो जावेमं निमीलियच्छो बहुभंगेहिं तावाविहि त्ति हिरियं ते(तं) पुत्थयं देवयाए। चिरं च वियप्पिऊणुम्मीलियच्छो तमपेच्छंतो विसण्णो मल्लो। तहा य दट्ठुं पुच्छिएणज्जाहि ए(प)साहिओ तेण सब्भावो। तीए वि समुदायस्स। सो वि नत्थि इमं पोत्थयमण्णथ कत्थइ, ता न सुंदरं कयं वोत्तुं गओ महाविसायं। **नयचक्कुमाहिओ मल्लो** भणइ–'होहं गिरिगुहावासी वल्लभोई य **नयचक्कं** विणा अहं'। सोउं चेमं खरयरमुद्दे[गं] गओ समुद्दाओ। 'पिडिज्जिहिसि तुममेवं वायपत्तेहिं'ति वोत्तुं लग्गो विगइ-परिभोगे तं निबंधउ(ओ) य 'चाउम्मासयपारणपत्थिय तं काइं'ति पव्वण्णपइण्णो **मल्लो** गंतुं वलहिपच्चासण्णगिरिहडलयडोंगरिगा-गुहापट्ठिओ। तं चेवावहारियं नयचक्काइमसिलोगं झायंतो। पडियग्गंति य तं तत्थेय(व) गंतुं भत्त-पाणाईहि साहवो। आरो(रा)हेइ य तवपूयाईहिं विसेसओ सुयदेवयं संघो। दिन्नोउव[ओ]गा य सा रयणीए मल्लं भणइ–'कि (के) मिट्ठा?' तेण भणियं 'वल्ला'। पुणो य गएहिं छहिं मासेहिं देवी भणइ–'केण?'। मल्लेण भणियं 'घयगुडेण'। तओ अहो! मइपगरिसो! त्ति समावज्जिया देवी भणइ–'भो मग्गेसु समीहियं'। मल्लो भणइ 'देसु नयचक्कपोत्थयं'। देवी वि 'निप्फविही तुहावहारियसिलोगो च्चिय पुव्ववाओ सविसेसे **नयचक्कगंथो**' त्ति वोत्तुं जाणाविउं च तमत्थं संघस्स गया सट्ठाणं। मल्लचेल्लओ वि तहेव विरइयनय-चक्कगंथो पवेसिउ(ओ) वलहीए संघेणाणाविओ **जिणाणंदसूरी**। तेणावि जमत्थि पुव्वगयं तं वायाविऊणाजियजस्सो(स)-जक्खेहिं सह मल्लो निवेसिओ सूरिपए। जायाई तिण्णि वि ते वाइणो। नवरं विरइओ **अजियजस्सो** वायगो निओ पमाणगंथो वि, अजियजस्सो वाई नाम पसिद्धो। नाउं च दरिसणमालिन्नमूलं गुरुपरिभवं भरुयच्छे गओ **मल्लवाई**। पण्णविओ राया। सद्दाविया उ भणेण बुद्धाणंमो(दो) सव्वड्ढिया पुव्वपइण्णा। तओ भणियव्वेहिं को जंपेही पढमं?। बुद्धाणंदो भणई–'जित्तो जग्गुरु तस्सीसेणिमिणा बालएणं मे का गणणा? तो दिण्णो मए एयस्सेव वरायस्स अग्गे वाओ'। तओ अणुण्णाएणं छेयपुरिसेहिं बहुवि[य]प्पपडिवियप्पाउलसुवण्णसियमविच्छिण्णवाणीए मल्लवाइणा जा छद्दिणाणि[1]। सत्तमदिणंते 'य दूसेउ तावेत्तियमणुवएउं बुद्धाणंदो' त्ति वोत्तुं वच्चंति सट्ठाणं रायाईया।

बुद्धाणंदो वि गओ नियविहारियाए। संभालेंतो य मल्लवाय(इ)भणियमणुवायत्थं वि भुल्लो तव्वियप्पाडवीए। तउ-(ओ) संबु(खु)द्धो हियएण। से दीवोए विसिऊणोवरिगं ट्टिप्पेइ भित्तीए तव्वियप्पमालं तहा वि न सुमरेइ। तओ 'कहमणु-वइस्सं?' ति छुप्पि(खुब्भि)एणं तत्थेव मओ बुद्धाणंदो। मिलुप्पिएवं(यं) रण्णो [स]भाजणो। रन्ना नागओ बुद्धाणंदो त्ति विसज्जिया तग्गव(वे)सगा पुरिसा। ते वि गंतूण गया भणंति—'देव! उस्सूरसुत्तो नज्जइ वि विसुज्झइ बुद्धाणंदो' त्ति साहियं तप्परिवारेण। रण्णा वि 'अहो! न कोसलिया से ट्टी(दी)हनिद्दा, ता सम्मं नाऊणागच्छह' त्ति वोत्तुं पुणो पट्ठविया पुरिसा। तेहिं वि गंतुं फाडावियकवाडेहिं दिट्ठो उव्वरिगामज्झे मओ बुद्धाणंदो। तं च साहिअं रन्नो।

---

1 'षड् दिनानि यावद् मल्लवादिना राजसभायां स्वपक्ष उपन्यस्तः' इति यथा प्राचीने **कहावली**ग्रन्थे दृश्यते तथैव **सङ्घतिलकाचार्यै**रपि **सम्यक्त्वसप्ततिवृत्तौ** भणितम्। तथाहि—

"बहुहेऊजुत्तिजुत्तं अइगुविलत्थं पसत्थवण्णेहिं।
वुत्तूण पुव्वपक्खं दिणछक्कं निवइपच्चक्खं॥ ६७॥
सत्तमदिणंमि मल्लो बुद्धाणंदं भणइ अणुवायं।
काउं मह वयणाणं वत्तव्वमिओ ठिओ मोणे॥ ६८॥"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थंतरम्मि य मुक्का गयणत्थाहि **मल्लवाइस्सो**वरि सासणदेवयाहिं कुसुमवुट्ठी । साहिओ य रायाईणं जहावट्ठिउ(ओ) बुद्धाणंदवुत्तंतो । तो तेउं(तं) च नाउं 'पराजियं' ति नीसारीउकामो वि बुद्धदरिसणं राया निवारिओ मल्लवाइणा । तओ रन्ना अ(आ)णाविओ **जिणाणंद**प्पमुहो संघो **भरुयच्छे**, पवेसिओ महाविभूईए । वक्खाणिओ य **मल्लवाइणा** विहिपुव्वणे(यं) **नयचक्कगंथो** । एवं च तित्थपभावगो विहरिउं **मल्लवाई** गओ देवलोयं ति । **मल्लवाई** त्ति गयं । जो उण **मल्लवाई** व **पु**व्वगयावगाही खमापहाणो समणो सो खमासमणो णाम, जहा आसी इह संपयं देवलोयगओ जिणभद्दि(द्द)गणिखमासमणो विरइआइं च तेण विसेसावस्सय-विसेसणवईसत्थाणि; जेसु केवलनाणदंसणवियारावसरे पयडियाभिप्पाओ **सिद्धसेण**दिवायरो।"—पृ० २९८-२९९.

विक्रमीयद्वादशशताब्द्याः पूर्वार्धे विद्यमानैर्नेमिचन्द्रसूरिभिर्विरचितस्य **आ**ख्यानमणिकोशस्य

"मोक्खसुहबीयभूयं सत्तीए पवयणुन्नइं कुज्जा । **विण्हुमुणि-वइर-सिरिसिद्ध-मल्ल-समिय**ऽज्जखउडव्व ॥ २३ ॥"

इति गाथाया **आम्र**देवसूरिभिः विक्रमसंवत् ११९० वर्षे निष्पादितायां टीकायामपि **मल्ल**वादिनः कथेत्थमुपलभ्यते—

"इदानीं **मल्ल**वाद्याख्यानकं कथ्यते—

सरसप्पवालकलिए अमियावासे महाअरन्ने व । रयणायरे व्व **भरुयच्छ**पट्टणे निवसए सूरी ॥ १ ॥

नामेण **जिणाणंदो** **बुद्धाणंदा**भिहाणभिक्खू वि । निवपज्जंतो वाओ परोप्परं तेहिं पारद्धो ॥ २ ॥

जो हारइ सो नियमा नयरं परिहरइ विरइया तेहिं । दोहिं वि इमा पइण्णा संजाए तयणु वायम्मि ॥ ३ ॥

भवियव्वयावसेणं विणिज्जिओ भिक्खुणा मुणिवरिंदो । नीहरिउण ससंघो समागओ वलहिनयरीए ॥ ४ ॥

पव्वइया सूरिसमा दुल्लहएवी समं तिहिं सुएहिं । **अ**जियजस-**ज**क्ख-**म**ल्लाभिहेहिं [सुवि]सुद्धबुद्धीहिं ॥ ५ ॥

समहिज्जियसुत्तत्था तिन्नि वि जाया विसेसओ **मल्लो** । मोत्तूणं पुव्वगयं तह **नय**चक्कं समग्गंपि ॥ ६ ॥

बारसअरयपमाणं रइयं पुव्वाओ तं समुद्धरियं । अरयाणं पत्तेयं पारंभे तह य पज्जंते ॥ ७ ॥

कीरइ जिणाण पूया महापयत्तेण इयरहा विग्घं । संजायइ वक्खाणे पढणंमि य सयलसंघस्स ॥ ८ ॥

सूरीहिं तीए अज्जाए अप्पिओ पोत्थयाण भंडारो । अह अन्नया य विहरिउकामेहिं पयंपिओ **मल्लो**॥ ९ ॥

नयचक्कपोत्थयमिणं न वाइयव्वंति विहरिया गुरुणो । अह निग्गयाए अज्जाए तीए केणावि कज्जेण ॥ १० ॥

इह पोत्थयंमि किं चिट्ठइत्ति संजायकोउहल्लेण । **म**ल्लेण तयं घेत्तूण छोडियं तयणु से पत्तं ॥ ११ ॥

पढमं कलिउण करम्मि वाइओ तंमि पढमसिलोगो । निस्सेससत्थभावस्स साहगो महुरवाणीए ॥ १२ ॥

विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत् ।
जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम् ॥१३॥

जा सम्मं परिभावइ तस्सऽत्थं ताव देवयाए तयं । अविहित्ति चिंतिउणं सपत्तमवि पोत्थयं हरियं ॥ १४ ॥

तमपेच्छंतो संतो जा संजाओ विलक्खवयणो सो । ता आगयाए अज्जाए पुच्छिओ किं विसन्नोऽसि ॥ १५ ॥

तेण वि पोत्थयहरणं कहियं तीए वि सयलसंघस्स । तं सोउं साममुहो संघो सव्वोवि संजाओ ॥ १६ ॥

विसमम्मि पविसियव्वं न मए **नय**चक्कपोत्थएण विणा । रुक्खा य भक्खियव्वा केवलया भोयणे वल्ला ॥ १७ ॥

भणिओ संघेणेसो बाहिज्जसि केवलेहिं वल्लेहिं । ता देहरक्खणकए गिण्हसु तं किंपि विगइं पि ॥ १८ ॥

संघाएसं बहु मन्निउण सो वल्ल-घय-गुडाहारो । गंतूण संठिओ गुरुगुहाए **गिरिदुग्गसेलस्स** ॥ १९ ॥

तत्थट्ठियस्स वि **म**ल्लस मुणिवरा दिंति भत्तपाणाइं । तम्मइपरिक्खणत्थं अहऽन्नया देवयाए इमं ॥ २० ॥

भणियं रयणीए के मिट्ठा ? वल्लत्ति जंपियं तेण । पुणरवि पज्जंते तीए जंपियं छण्ह मासाणं ॥ २१ ॥

केण ? त्ति घयगुडेणं [ति] जंपिए **मल्ल**चेल्लएण तओ । तस्सेवं मइपगरिसरंजियहिययाए देवीए ॥ २२ ॥

भणियं जं किं पि मणप्पियं तयं **मल्ला** मग्गसु इयाणिं । तुह तुट्ठाहं तो **मल्ल**चेल्लएणं इमं भणिया ॥ २३ ॥

नयचक्कपोत्थयं मे वियरसु ता देवयाए सो भणिओ । पढमसिलोगाओ च्चिय होही तं तारिसं तुज्झ ॥ २४ ॥

तो देवयाणुभावेण विरइयं तेण तत्थ **नय**चक्कं । संघेण वि **व**लहीए पवेसिओ सो विभूइए ॥ २५ ॥

गुरुणो वि विहरिउणं समागया नायसयलवुत्तंता । **अ**जियजस-**ज**क्ख-**मल्ला** गुणगणजुत्तत्ति तेहिं तओ ॥ २६ ॥

संठविया सूरिपदे जाया परवाइवारणमइंदा । अह अन्नया य सिरि**मल्ल**सूरिणा सुमरियं एयं ॥ २७ ॥

जह भिक्खू **बुद्धदासेण** वायमुद्दाए सूरिणो विजिया । भरुयच्छाओ संघेण संगया तयणु नीहरिया ॥ २८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनानन्दनामानो जैनसूरयो **भृगुकच्छ**नगरे **बुद्धानन्दा**भिधेन वादिना पराजितत्वाद् **भृगुकच्छं** विहाय **सुराष्ट्र**विषये **वलभीपुरं** गताः। तत्र **जिनानन्दसूरीणां** दुर्लभदेवी नाम भगिनी, तस्याश्च अजितयशाः, यक्षः, मल्ल इति त्रयः पुत्राः। सा तत्र त्रिभिरपि पुत्रैः सार्धं सूरीणां समीपे प्रव्रज्यां स्वीचकार। सूरीणां समीपेऽधीयानास्ते त्रयोऽपि बन्धवः सर्वशास्त्रार्थेषु कोविदाधिपा अभूवन्। तेषु **मल्लो** बालोऽपि विशेषेण महाप्राज्ञस्तीक्ष्णबुद्धिश्चाभूत्। तेन श्रुतदेवतामाराध्य वरं लब्ध्वा

'विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत्। जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम्॥'

इति **पूर्वश्रुत**सम्बद्धां प्राचीन**नयचक्रा**न्तर्गतां संक्षिप्तामप्यशेषविस्तरपरमार्थप्रकाशिकां गाथां व्याख्यातुं द्वादशारमयं संक्षिप्तं नव्यं **नयचक्रं** प्रणीतम्। तदनन्तरं **जिनानन्दसूरिभिः** अजितयशा यक्षो मल्ल इति त्रयोऽपि शिष्याः सूरिपदे प्रतिष्ठापिताः। तदनन्तरं **भृगुकच्छं** गत्वा बालोऽप्यप्रतिमबुद्धि**र्मल्लो बुद्धानन्देन** समं षड् दिनानि राजसभायां सर्वजनसमक्षं वादं विधाय **नयचक्र**बलेन बहुविधविकल्पप्रतिविकल्पाकुलाविच्छिन्नवाग्वैभवेन **बुद्धानन्दं** वादे पराजितवान्। ततो राज्ञा **जिनानन्दसूरि**प्रमुखः सङ्घो **वलभीपुरत** आनायितो महाविभूत्या च **भृगुकच्छे** प्रवेशितः। एवं वादेऽतिपटीयस्त्वाद् विजेतृत्वाच्च **मल्लो 'मल्लवादि'**नाम्नैव सर्वत्र प्रसिद्धिं जगाम। अत एव चाचार्यश्रीमल्लवादिक्षमाश्रमणानामष्टसु जिनप्रवचनप्रभावकेषु वादिप्रभावकतया विशेषतः प्रसिद्धिः।

आचार्यश्रीमल्लवादिक्षमाश्रमणानां सत्तासमयः—

"श्रीवीरमुक्तितः शतचतुष्टये चतुरशीति [४८४] संयुक्ते।
वर्षाणां समजायत श्रीमानाचार्यखपुटगुरुः॥ ७९॥

नियगुरुणऽवमाणं संघस्स पराभवं च नाउणं। **मल्ल**मुणिंदो भरुयच्छपट्टणे झत्ति संपत्तो॥ २९॥
कयतारिसपइण्णेण तेण सह भिक्खुणा समारद्धो। निवपज्जंतो वाओ बहुविउससहाए पच्चक्खं॥ ३०॥
एयस्स गुरुवि मए विणिज्जिओ विजियवाइविंदो वि। ता एयम्मि दुहा वि हु बाले किर मज्झ का गणना॥ ३१॥
इय भणिउमग्गवाओ समप्पिओ भिक्खुणा मुणिंदस्स। सो वि हु सुमरिय सासनदेविमुवन्नसिउमारद्धो॥ ३२॥
सियवायसारजिणमयगमहेउभंगपवरजुत्तीहिं। काउणमुवन्नासं धरिओ छद्दिवसपज्जंते॥ ३३॥
भणियं च तेणमणुवइ दूसेयव्वं तए इमं गोसे। तो **बुद्ध**दासभिक्खू नियठाणगओ तमिस्साए॥ ३४॥
दीवयमुज्जालेउण करयले कलिय सेडियं सुब्भं। जमुवन्नसियं मल्लेण तं लिहेउं समारद्धो॥ ३५॥
परिभावणाए मढमज्झिमाए भित्तीए ता न से किं पि। सम्मं संभरइ तओ धसक्किओ हियमज्झम्मि॥ ३६॥
निवपज्जंतसहाए भणियव्वं किह मए पभायंमि। एवभयज्झवसाणेण सो गओ झत्ति पंचत्तं॥ ३७॥
मिलियम्मि विउस्सग्गे बीयदिणे जा न एइ सो भिक्खू। हक्कारणाय ता तस्स राइणा पेसिया पुरिसा॥ ३८॥
ते तत्थ गया भिक्खू नियंति भित्तीसमीवमुवविट्ठं। उत्ताणियनयणजुयं सेडियपाणिं विगयपाणं॥ ३९॥
गंतूण तहिं रण्णो साहियमह भणइ नरवइ एवं। जह कहियमिमेहिं तहा चिंततो सो भयेण मओ॥ ४०॥
तो तेण हारियं तयणु राइणा **मल्ल**वाइणो दिन्नं। जयपत्तं संजाया संघस्स पभावणा महइ॥ ४१॥
निस्सारिउमारद्धं रण्णा भिक्खूण दंसणं सयलं। तो **मल्ल**वाइणा सो निवारिओ जायकरुणेण॥ ४२॥
सूरी वि **जि**णाणंदो निवेण निसेससंघसंजुत्तो। पच्चणीओ गंतूण सम्मुहं गुरुविभूइए॥ ४३॥
विहिया पभूयकालं पभावणा **मल्ल**वाइसूरीहिं। निव्वासिया य सव्वे वि तेण परवाइणो बहुसो॥ ४४॥
सवणोयरसुहसद्देसणाए पडिबोहिउण भवियजणं। सिरि**मल्ल**वाइसूरी मरिउण गओ अमरलोए॥ ४५॥
मल्लाख्यानं समाप्तम्॥ **आ**ख्यानमणिकोशे प्रवचनोन्नत्यधिकारोऽष्टादशः समाप्तः।"—पृ० १७२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादृष्टिसुरेभ्यो येन तदा सुव्रतप्रभोस्तीर्थम् ।
मोचितमिह ताथागतमतस्थितेभ्यश्च वादिभ्यः ॥ ८० ॥
श्रीवीरवत्सरादथ शताष्टके चतुरशीति [८८४] संयुक्ते ।
जिग्ये स मल्लवादी बौद्धांस्तद्व्यन्तरांश्चापि ॥ ८१ ॥

इति **प्रभावकचरित्रे** विजय**सिंहसू**रिप्रबन्धे **प्रभाचन्द्र**सूरिभिरभिहितत्वाद् **वीर**निर्वाणसंवत् ८८४ वर्षे [**विक्रम**संवत् ४१४ वर्षे] **मल्लवादि**सूरीणां विद्यमानत्वमासीदिति निर्णीयते । किञ्च, **मल्लवादि**सूरिभिर्**नय**चक्रे वार्षगण्य[1]-वसुरात[2]-भर्तृहरि[2]-वसुबन्धु[3]-**दिन्ना**पराभिध**दिङ्नाग**प्रभृतीनां येषां येषां मतानि चार्चितानि परीक्षितानि

---

१ "समस्ततन्त्रार्थविघटनमेवेति किमवशिष्यते **वार्षगणे तन्त्रे**" पृ० ३२४ पं० १० ॥

२ "इति **भर्तृहर्यादि**मतम् । **वसुरातस्य भर्तृहर्युपाध्यायस्य** मतं तु......" पृ० ५८१। "एवं तावद् **भर्तृहर्यादि**दर्शमयुक्तम् । यत्तु **वसुरातो भर्तृहर्युपाध्यायः**......"–पृ० ५९४–५९५।

वसुरातो भर्तृहरेर्गुरुरासीदित्येष **नयचक्रा**न्तर्गतो निर्देशोऽन्यतोऽपि समर्थितो भवति। तथाहि—**वाक्यपदीयस्य** द्वितीयकाण्डे ४९० कारिकायां भर्तृहरिणा स्वगुरोरुल्लेखो विहितः, **पुण्यराज**स्तस्य टीकायां '**गुरु**'शब्देन **वसुरात**स्य ग्रहणं कर्तव्यमिति सूचयति । तथाहि—"पर्वतादागमं लब्ध्वा भाष्यबीजानुसारिभिः । स नीतो बहुशाखत्वं **चन्द्राचार्या**दिभिः पुनः ॥ २ । ४८९ ॥ पर्वतात् त्रिकूटैकदेशवर्तित्रिलिङ्गैकदेशादिति । तत्र ह्युपलतले **रावण**विरचितो मूलभूतव्याकरणागमस्तिष्ठति । केनचिच्च ब्रह्मरक्षसानीय **चन्द्राचार्य**वसुरातगुरुप्रभृतीनां दत्तः । तैः खलु यथावद् व्याकरणस्य स्वरूपं तत उपलभ्य सततं च शिष्याणां व्याख्याय बहुशाखित्वं नीतो विस्तरं प्रापित इत्यनुश्रूयते ।......अथ कदाचिद् योगतो विचार्य तत्र भगवता **वसुरात**गुरुणा **ममायमागमः** संज्ञाय वात्सल्यात् प्रणीत इति स्वरचितस्यास्य ग्रन्थस्य गुरुपर्वक्रममभिधातुमाह—' प्रणीतो गुरुणास्माकमयमागमसंग्रहः ॥ २। ४९० ॥"—पृ० २८५–२८६ । ४८६ कारिकाया वृत्तावपि [पृ० २८४] "न तेनास्मद्गुरोस्तत्रभवतो **वसुराता**दन्यः कश्चिदिमं भाष्यार्णवमवगाहितुमलमित्युक्तं भवति । " इत्यभिहितं **पुण्यराजेन** । किञ्चान्यत्, **परमार्थेन** चीनभाषायां लिखिते **वसुबन्धो**र्जीवनचरिते 'महावैयाकरणेन ब्राह्मणेन **वसुरातेन वसुबन्धो**रभिधर्मकोशे व्याकरणविषया दोषा उद्भावितास्ते **च वसुबन्धुना** निरस्ताः' इत्युल्लेखो दृश्यते । **परमार्थ** इदं जीवनचरित्रं विक्रमात् ६०५-६२५ वर्षमध्ये कदाचिदपि चीनभाषायां लिखितवान् । एतच्च चरितं 'तोङ्ग-पो' नामके पत्रे (July 1904) France देशे मुद्रितम् । तदनुसारेण J. Takakusu इत्येभिर्लिखिते A Study of Parmārtha's Life of Vasubandhu and the Date of Vasubandhu इत्यस्मिन् निबन्धे निम्नलिखितं वर्णनं दृश्यते—

"Vasubandhu and Vasurāta—Vasurāta was according to Paramārtha a Brāhmin, husband of a sister i. e. brother-in-law of king Bālāditya. He was well-versed in the Grammar treatise. When Vasubandhu composed the Abhidharmakośa; this Brāhmin attacked his composition on the authority of the Vyākarana thinking that the Buddhist disputer would certainly defend his own work, when the grammatical faults were thus pointed out. Vasubandhu answered : If I do not understand the Vyākarana, how can I ever understand the admirable truth of the Buddhism. Thereupon he composed a treatise utterly refuting the thirty two chapters of the Vyākarana. Thus the 'Vyākarana' was lost while the Abhidharmakośa survived. The king and queen-mother gave him some lacs of gold. Vasurāta further tried to defeat him through the intervention of another scholar". (Journal of the Royal Asiatic Society, London, April, 1904, p. 45).

भर्तृहरिसमयजिज्ञासुभिः '**मल्लवादी** अने भर्तृहरिनो समय' (जैन सत्यप्रकाश, पु. १७, अंक ३, November 1951, पृ०२६–३०, बुद्धिप्रकाश, पुस्तक ९८, अंक ११, November 1951 पृ०३२२–३२५) इत्यस्माकं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च तेषु केषाञ्चिद् मल्लवादितः पूर्वकालीनत्वात् केषाञ्चिच्च मल्लवादिना समकालीनत्वात् निकटकालीनत्वाद्वा प्राचीनग्रन्थानुसारेण प्रभाचन्द्राचार्यैर्निर्दिष्टो मल्लवादिसमयः कथमपि न विरुध्यत इति विदाङ्कुर्वन्तु समयनिर्णयरसिका विद्वांसः।

लेखोऽनन्तरं तृतीये टिप्पणेऽत्रैव प्राक्कथने वक्ष्यमाणा अपरे च लेखा द्रष्टव्याः। Tibetan Citations of Bhartṛhari's Verses and the Problem of his Date by Hajime Nakamura (Studies in Indology and Buddhology. Presented in honour of Professor Susumu Yamaguchi on the occasion of his Sixteenth Birthday, Kyoto, 1955, pp. 122-139) इत्याद्यपि विलोक्यम्॥

३ "**वसुबन्धोः स्वगुरोः** 'ततोऽर्थाद् विज्ञानं प्रत्यक्षम्' [वादविधि.] इति ब्रुवतो यदुत्तरमभिहितं परगुणमत्सराविष्टचेतसा तु येन केनचिदभिप्रायेण स्वमतं दर्शितमेव **दिन्नेन वसुबन्धु**प्रत्यक्षलक्षणं दूषयता।"-पृ० ९६। "**वसुबन्धुं** प्रति उक्ता ये दोषास्ते तत्रापि स्युः।...पुन**र्वसुबन्धुं** दूषयितुकामेन विकल्पितः स एवार्थः।"-पृ० ९९ पं० २५-२९। **दिन्न-वसुबन्ध्वा**दिभ्यो बुद्धाच्च पूर्वकालत्वात् **कापिलस्य तन्त्रस्य आर्हतै**कदेशनयमतानुहारित्वाच्च"-पृ० ६९० पं० १७-१८। "प्रत्यक्षलक्षणवादिनो **दिन्न**भिक्षोः"-पृ० ६३ पं० ५। "**मायेव-दिन्ना**विव"-पृ० ७२। "इति निर्दिष्टं स्वार्थमनुमानं मयैव, न **वादविधिकारा**दिभिरित्याहोपुरुषिकयोपसंहरत्यान्यापोहिकः।"-पृ० ६८० पं० २२-२३।

अत्रेदमवधेयम्-**दिन्न** इति **दिन्नक** इति **दत्तक** इति च **दिङ्नाग**स्यैव नामान्तराणि। एतच्चास्माभिः पञ्चमेऽरे पृ० ५४७-५४८ इत्यत्र टिप्पणे विस्तरेणोपदर्शितमिति तत्र विलोकनीयम्। 'भर्तृहरि और दिङ्नाग का समय' नागरीप्रचारिणी पत्रिका, काशी, वर्ष ६०, अंक ३-४, सं० २०१२, पृ० २२७-२३३) 'भर्तृहरि अने दिङ्नाग' (जैन आत्मानन्द प्रकाश, वर्ष ५०, अंक २ 15-9-52, भाद्रपद मास, पृ० २२-२७) इत्यादयोऽस्मल्लेखा अपि विशेषजिज्ञासुभिर्द्रष्टव्याः-"समाने चार्थे शास्त्रान्वितोऽशास्त्रान्वितस्य निवर्तको भवति, तद्यथा देव**दत्त**शब्दो देव**दिण्ण**शब्दं निवर्तयति, न गाव्यादीन् [१।१।२ आह्निक]...ठाजादूर्ध्वं द्वितीयादचः ५।३।८३। चतुर्थात्। चतुर्थाल्लोपो वक्तव्यः। बृहस्पतिदत्तकः बृहस्पतिकः। प्रजापतिदत्तकः प्रजापतिकः। अनजादौ च। अनजादौ च लोपो वक्तव्यः-देवदत्तकः देवकः यज्ञदत्तकः यज्ञकः। लोपः पूर्वपदस्य च। पूर्वपदस्य च लोपो वक्तव्यः-देवदत्तकः दत्तकः, अप्रत्यये तथैवेष्टः—देवदत्तः दत्तः, यज्ञदत्तः दत्तः।" इति **पात**ञ्जलमहाभाष्यस्य निर्देशानुसा**रेणापि 'दत्तकः'** इति नाम्नः प्रचार उपपद्यते **दत्त-दिन्न**शब्दयोः सम्बन्धश्चावगम्यते। **दिङ्नाग**स्य ग्रन्थेभ्यो **भर्तृहरेर्वाक्य**पदीयं प्राचीनमित्यपि ध्येयम्। **दिङ्नागेन** हि **वाक्य**पदीयस्य तृतीयस्मात् **प्रकीर्ण**काण्डाद् 'विभक्तिभेदो नियमात्......' [३।१४।८] इति कारिका **प्रमाण**समुच्चयस्य पञ्चमेऽपोहपरिच्छेदे द्वितीयकारिकाया **वृत्ता**वुद्धृता, दृश्यतां नयचक्रस्याष्टमेऽरे पृ० ६०७। **वाक्य**पदीयस्य द्वितीयकाण्डात् '१५६,१५७' इति च द्वे कारिके **प्रमाण**समुच्चये पञ्चमस्यापोहपरिच्छेदस्यान्त्यभागे उद्धृते, दृश्यताम् उपरि निर्दिष्टं 'भर्तृहरि और दिङ्नागका समय' इति 'भर्तृहरि अने दिङ्नाग' इति चास्माकं लेखद्वयम्। **भर्तृहरेर्वाक्य**पदीयस्य तृतीयं **प्रकीर्ण**काण्डं चावलम्ब्यैव **दिङ्नागेन त्रै**काल्यपरीक्षा नाम प्रकरणं रचितम्, दृश्यतां Dignāga sein Work und seine Entwiklung by Dr. E. Frauwallner, WZKSO Band III, 1959, pp. 83-164। Landmarks in the History of Indian Logic by E. Frauwallner WZKSO Band V, 1961, pp. 134-135। अस्मत्संपादितस्य वैशेषिकसूत्रस्य सप्तमं परिशिष्टमप्येतदर्थं विलोकनीयम्।

उपरिनिर्दिष्ट**नय**चक्रवृत्त्यन्तर्गतोल्लेखानुसारेण **वसुबन्धुदिङ्नाग**योर्गुरुशिष्यभावः स्फुटमेव प्रतीयते। **बौद्धग्रन्थेष्वपि** तथा वर्णनमुपलभ्यत एव, दृश्यताम् On Yuan-chwang's Travels in India by Thomas-watters, Part II इत्यादि। एवं सत्स्वपि प्रमाणेषु On the Buddhist Master of the Law-Vasubandhu (Serie Orientale Roma III, Roma, 1951) इत्यादौ **वसुबन्धुदिङ्नाग**योः साक्षात् गुरुशिष्यभावे या विप्रतिपत्तिरुपदर्शिता तत्र किमपि बलवत् प्रमाणमस्माभिर्न विलोक्यते॥

१ **वार्षगण्य-वसुरात-भर्तृहरि-वसुबन्धु-दिङ्नागादीनां** समयविषये विदुषां बहवो विवादाः प्रवर्तन्ते, अतस्तेषां सर्वमान्यो निश्चितः समयोऽभिधातुं न शक्यते। तथापि **प्रभाचन्द्राचार्येण** निर्दिष्टेन **मल्लवादि**समयेन तेषां **समयस्याविरोध** उपपादयितुं शक्यत एव॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बरजैनाचार्येण **स**मन्तभद्रेण **आ**प्तमीमांसायां **दि**ङ्नागस्य मतं निराकृतमिति स्पष्टमेव विलोक्यते। अतो **दि**ङ्नागस्य **स**मन्तभद्राचार्यस्य वा समयनिर्णये स्वारस्यं बिभ्रद्भिस्तदपि मनसि निधाय **दि**ङ्नाग-**स**मन्तभद्राचार्ययोः समयनिर्णये यतितव्यम्।

नयचक्रस्यान्तरङ्गं स्वरूपम्

'**म**ल्लवादिसूरिप्रणीतं **न**यचक्रं गद्यत्वेन निबद्धत्वेऽपि द्वात्रिंशद्भिरक्षरैरेकोऽनुष्टुप् श्लोक इति गणनया दशसहस्रश्लोकमितमासीत्। चतुर्विंशतिसहस्रश्लोकमानं **पद्मचरितं** नाम **रा**मायणमपि **म**ल्लवादिसूरिभिर्विरचितम्' इति **प्र**भावकचरितान्तर्गतोल्लेखात् प्रतीयते। **या**किनीमहत्तरासूनुहरिभद्रसूरि-सम्मतिवृत्तिकाराभयदेवसूरिप्रभृतिविहितोल्लेखप्रामाण्यात् **सिद्ध**सेनदिवाकरप्रणीत**स**म्मतिप्रकरणस्य **वृ**त्तिरपि **म**ल्लवादिसूरिभिर्विरचितेति स्फुटमेव प्रतीयते। "सम्मतिवृत्तिर्मल्लवादिकृता ७००" इति **बृहट्टिप्पनिका**यामुल्लेखदर्शनाद् **म**ल्लवादिरचितेयं **स**म्मतिवृत्तिः ७०० श्लोकपरिमितासीदिति प्रतिभाति।

किन्तु सम्प्रत्येतेषु ग्रन्थेषु कश्चनापि नोपलभ्यते। केवलं **सिं**हसूरिगणिक्षमाश्रमणविरचिता १८००० श्लोकपरिमिता **नयचक्रटीकै**व सम्प्रत्युपलभ्यते तदनुसारेण च **न**यचक्रस्य स्वरूपं सम्यक् कल्पयितुं शक्यते।

---

१ "**शब्दान्तरार्थापोहं हि स्वार्थे कुर्वती श्रुतिरभिधत्त इत्युच्यते**" इति **दि**ङ्नागीयं वचः **त**त्त्वसंग्रहपञ्जिकायां श्लो० १०१६, **स**न्मतिवृत्तौ पृ० २०४, **सि**द्धसेनगणिरचितायां **त**त्त्वार्थसूत्रवृत्तौ पृ०३५७, **प्र**माणवार्तिकस्ववृत्तेः **क**र्णकगोमिरचितायां वृत्तौ पृ० २५१, २५३ इत्यादिषु बहुषु स्थानेषूद्धृतम्, विशेषार्थिभिः सप्तमेऽरे पृ० ५४८ इत्यत्र टिप्पणं विलोकनीयम्। एतच्च **दि**ङ्नागीयं वचः **स**मन्तभद्राचार्येण **आप्तमीमांसाया**मित्थं निराकृतम्—

"**वाक्स्वभावोऽन्यवागर्थप्रतिषेधनिरङ्कुशः।**
आह च स्वार्थसामान्यं, तादृग् वाच्यं खपुष्पवत्॥ १११॥

किञ्चान्यत्, "नार्थशब्दविशेषस्य वाच्यवाचकतेष्यते। तस्य पूर्वमदृष्टत्वात् सामान्यं तूपदेक्ष्यते॥" इति **दि**ङ्नागस्य श्लोकं निराकर्तुम् "अर्थशब्दविशेषस्य वाच्यवाचकतेष्यते। तस्य पूर्वमदृष्टत्वे सामान्यादुपसर्जनात्॥" इति प्रतिश्लोको **दि**ङ्नागस्य मतं निराकुर्वता **म**ल्लवादिक्षमाश्रमणेनोपन्यस्तः "अर्थविशेषश्च तवावाच्य एव" इति चोक्तम्। दृश्यतां पृ० ६१५ पं० २,१२, पृ० ६१६ पं० ३, पृ० ७०७ पं० १४-१६। **स**मन्तभद्राचार्येणाप्येतद् **दि**ङ्नागस्य वचः प्रतिविहितमित्थम् **आ**प्तमीमांसायाम्—

"**सामान्यार्था गिरोऽन्येषां विशेषो नाभिलप्यते।**
सामान्याभावतस्तेषां मृषैव सकला गिरः॥ १॥"

२ "**नयचक्रं** नवं तेन श्लोकायुतमितं कृतम्। प्राग्ग्रन्थार्थप्रकाशेन सर्वोपादेयतां ययौ॥ ३४॥......**नयचक्र**महाग्रन्थः शिष्याणां पुरतस्तदा। व्याख्यातः परवादीभकुम्भभेदनकेसरी॥ ६९॥ श्री**पद्मचरितं** नाम **रा**मायणमुदाहरत्। चतुर्विंशतिरेतस्य सहस्रा ग्रन्थमानतः॥ ७०॥" इति **प्र**भावकचरित्रे **म**ल्लवादिप्रबन्धे॥

३ "उक्तं च वादिमुख्येन **म**ल्लवादिना **सम्मतौ**" इति **अ**नेकान्तजयपताकास्वोपज्ञवृत्तौ [पृ० ५८,११६] **ह**रिभद्रसूरयः॥

४ "अत्र चाद्यभङ्गकस्त्रिधा, द्वितीयोऽपि त्रिधैव, तृतीयो दशधा, चतुर्थो दशधैव, पञ्चमादयस्तु त्रिंशदधिकशतपरिमाणाः प्रत्येकं श्री**मल्लवादि**प्रभृतिभिर्दर्शिताः। पुनश्च षड्विंशत्यधिकचतुर्दशशतपरिमाणास्त एव द्व्यादिसंयोगकल्पनया कोटिशो भवन्तीत्यभिहितं तैरेव। अत्र तु ग्रन्थविस्तरभयात् तथा न प्रदर्शितास्तत एवावधार्याः।" इति **सम्मतिवृत्तौ** [२।४०, पृ० ४४७] **अ**भयदेवसूरयः। "इहार्थे कोटिशो भङ्गा निर्दिष्टा **म**ल्लवादिना। मूल**सम्मतिटीका**यामिदं दिङ्मात्रदर्शनम्॥" इति **अ**ष्टसहस्रीतात्पर्यविवरणे [पृ०२१०] **य**शोविजयवाचकाः। किञ्चान्यत्, 'असिद्धः सिद्धसेनस्य विरुद्धो मल्लवादिनः। द्वेधा समन्तभद्रस्य हेतुरेकान्तसाधने॥" इति कारिकाया **न्या**यावतारवार्तिकवृत्तौ [पृ० १०८] दर्शनादेकान्तसाधकानां सर्वहेतूनां विरुद्धत्वं मल्लवादिनोऽभिप्रेतम्, दृश्यतां टिपृ० ११ पं० २०। एतच्च **न**यचक्रवृत्त्या समर्थितं भवति, दृश्यतां पृ० ३०९ पं० २६-२७। **स**म्मतिवृत्तावपि तथाभिहितं भवेदिति सम्भाव्यते॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनदार्शनिकशास्त्रेषु प्रमाणमीमांसा-प्रमाणपरीक्षा-प्रमालक्ष्मादयो ग्रन्थाः प्राधान्येन प्रमाणस्वरूप-प्रतिपादकाः, सन्मति-नयोपदेशादयो ग्रन्था नयस्वरूपप्रतिपादकाः, प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारादयः प्रमाण-नयोभयस्वरूपप्रतिपादकाः, अनेकान्तजयपताकादयो ग्रन्था एकान्तवादनिरसनेनानेकान्तवादव्यवस्थापकाः, नयनिरूपणद्वारेण एकान्तवादनिरसनमनेकान्तवादप्रतिष्ठापनं चास्य **नयचक्रस्य** मुख्यो विषयः। '[1]द्रव्यस्यानेकात्मनोऽन्यतमैकात्मावधारणमेकदेशनयनाद् नयः' इति हि नयलक्षणम्। तेषां च [2]वचनपथतुल्यसंख्यत्वादनन्तत्वेऽपि जैनाचार्यैर्नैगम-सङ्ग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्र-शब्द-समभिरूढ-एवम्भूताख्येषु सप्तसु नयेष्वन्तर्भावो विहितः। एतेषामपि सप्तानां द्वयोर्द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनययोः संक्षेपो विधीयते। नैगम-सङ्ग्रह-व्यवहारा द्रव्यार्थिकस्य भेदाः, ऋजुसूत्रादयस्तु पर्यायार्थिकस्य भेदाः। अयं हि नयवादो जैनदर्शनस्यातिविशिष्टो विषयोऽतस्तद्विषयका अनेके जैनग्रन्था उपलभ्यन्ते।

इदं पुनरवधेयम्—**नयचक्रस्य** नयविषयकत्वेऽपि साक्षाद् नैगमादयो नया न तस्य विषयः, अपि तु निम्नलिखिता [3]विध्यादयो द्वादश नया एव प्राधान्येन **नयचक्रे** प्रतिपाद्यन्ते—

१ विधिः, २ विधिविधिः, ३ विध्युभयम्, ४ विधिनियमः, ५ उभयम्, ६ उभयविधिः, ७ उभयोभयम्, ८ उभयनियमः, ९ नियमः, १० नियमविधिः, ११ नियमोभयम्, १२ नियमनियमः।

एते च विध्यादिनया जिनप्रवचनप्रतिपादितनयैरपि सम्बद्धा एव। विध्यादयः षड् नया [4]द्रव्यार्थिकस्य भेदाः, [5]उभयोभयादयश्च षड् नयाः पर्यायार्थिकस्य भेदाः। एवं नैगमादिष्वपि नयेषु यथा विध्यादयो नया अन्तर्भवन्ति तथा तत्तद्विध्यादिनयनिरूपणान्ते विस्तरेण वर्णितं **मल्लवादि**सूरिभिः। दिङ्मात्रं त्वत्रोपदर्श्यते—

प्रथमस्य विधिनयस्य व्यवहारनये, द्वितीयतृतीयचतुर्थानां सङ्ग्रहनये, पञ्चमषष्ठयोर्नैगमे, सप्तमस्य ऋजुसूत्रनये, अष्टमनवमयोः शब्दनये, दशमस्य समभिरूढे, एकादशद्वादशयोस्तु एवम्भूतनयेऽन्तर्भावः। एतादृशविध्यादिद्वादशनयनिरूपणस्य **नयचक्र** एव दर्शनाद् **मल्लवादिन**श्चिन्तनशैली प्रतिभा च काप्यपूर्वासीदिति स्फुटमेवावगम्यते।

नयचक्रस्य बहिरङ्गं स्वरूपम्

'**नयचक्रम्**' इति चान्वर्थिकैवेयं संज्ञा। रथादि[6]चक्रवदत्रापि 'अर'संज्ञकानि द्वादश प्रकरणानि विद्यन्ते। द्वादशसु प्रकरणेषु क्रमशो द्वादश विध्यादयो नया अत्र निरूप्यन्ते। विध्यादिनयनिरूपणव्याजेन तत्तन्नयानुसारिणस्तत्कालीनाः सर्वेऽपि दार्शनिकविचारा **मल्लवादिसूरिभि**रत्रोपन्यस्ताः। यथा च रथादिचक्रेऽराणां परस्परतोऽन्तरमेवमत्रापि आदौ परपक्षं निरस्यानन्तरं स्वपक्षस्थापनाय विध्यादिनयानां प्रवृत्तत्वात् परपक्ष-निरसनात्मको योंऽशस्तद् द्वादशानामराणां परस्परतोऽन्तरम्। यथा च तत्र नानावयवघटितो नेमिरेवमत्रापि त्र्यवयवघटितो नेमिः,[7] चतुर्षु चतुर्षु अरेषु एकैकस्य नेमेः परिसमाप्तत्वात्। यथा च तत्र सर्वेषामप्यराणामाधारभूतस्तुम्बापरपर्यायो नाभिरन्यथा तदसम्बद्धानां तेषां विशरणात् स्वकार्यकरणासामर्थ्याच्चैवमत्रापि वर्तते सर्वेषामपि विध्यादिद्वादशनयाराणामाधारभूतः स्याद्वादनाभिः, तत्प्रतिबद्धसर्वनयावस्थानादतोऽन्यथा

१ दृश्यतां पृ० १० पं० २४, पृ० ८४ पं० ६। टिपृ० १४ पं० १–५॥ २ पृ० ७ पं० १२। टिपृ० १० पं० ३९॥ ३ पृ० १० पं० १–४ इत्यादि॥ ४ दृश्यतां पृ० ४५४ पं० १ इत्यादि॥ ५ दृश्यतां पृ० ४५५ पं० ६ इत्यादि॥ ६ पृ० ४५३ पं० ७॥ ७ दृश्यतां प्राक्कथनम् पृ० ९ टि० १॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशरणात्। एते हि द्वादशाऽपि नयाः परस्परविरोधेन प्रवर्तमाना विघटन्ते, यदा तु त एव स्याद्वादमाश्रयन्ते तदा स्याद्वादनाभिप्रतिबद्धत्वेनैकवाक्यतया एकप्रबन्धेनान्योन्यापेक्षया प्रवर्तमानाः सत्यार्थत्वेन प्रतिष्ठिता भवन्ति। एवं चान्वर्थकमिदं '**नयचक्रम्**' इति नाम।

चक्राकाररूपेण सर्वेषां नयानामत्र निवेशितत्वाद् द्वादशस्याप्यरस्य मतं पुनः प्रथमादिनयेन निषिध्यते। एवं चानवरतमिदं **नय**चक्रं क्रमते।

नयचक्रे नयोपन्यासपद्धतिः

पूर्वपूर्वविरोधेनोत्तरोत्तरनयस्योत्थानमिति सर्वेऽपि नयवादाः पूर्वपूर्वनयमतदूषणार्थं स्वस्वमतप्रतिष्ठापनार्थं च क्रमशो **नयचक्र** उपतिष्ठन्ते। एवं च विध्यादिनयनिरूपणव्याजेन सर्वेषामपि तत्समयवर्तिनां मुख्यदार्शनिकमतानां व्यवस्थितश्चिन्तनक्रमो **मल्लवादि**भिर्न्यायाधीशवद् माध्यस्थ्येनोपन्यस्तः। एकान्तवादत्यागेन वादपरमेश्वरस्य स्याद्वादस्य संश्रय एव सर्वेषामपि श्रेयानिति च तेषु तेषु [1]विध्याद्यरेषूपवर्णितं **मल्लवादि**भिः। इत्थं च जैनदर्शनस्यानेकान्तवादितया सर्वनयसमूहात्मकत्वमप्रतिमया प्रतिभया सुष्ठूपपादितं **मल्लवादिसूरि**भिः।

नयचक्रे चर्चिता दार्शनिकवादाः

सर्वदर्शनचर्चागर्भितत्वादस्य ग्रन्थस्य सर्वेषामपि दर्शनानां तत्कालीनप्राचीनस्वरूपज्ञानायात्यन्तमुपयोग्ययं ग्रन्थः। अन्यत्र दुर्लभानां बहूनां ग्रन्थानां ग्रन्थकृतां चात्रोल्लेखदर्शनात् तत्तद्दर्शनेतिहासजिज्ञासुभिरवश्यमेवावलोकनीयोऽयं ग्रन्थः। विस्तरार्थिभिस्तावद् **नय**चक्रग्रन्थ एवाभ्यसनीयः। इह तु दिङ्मात्रमुपदर्श्यते–

सांख्यमतस्य विचारणा प्राधान्येन **वार्षगणतन्त्र**मवलम्ब्यैव **मल्लवादि**भिः कृतेति प्रतिभाति। **वार्षगणतन्त्रा**दिष्वाकरग्रन्थेषु विद्यमानेषु **ईश्वरकृष्ण**रचितायाः **सांख्यकारिकाया** अप्राधान्यात् **सांख्यकारिकातः** कोऽपि पाठो **मल्लवादि**ना नोद्धृत इति भाति। [2]**नयचक्रवृत्तौ** तु **सिंहसूरि**क्षमाश्रमणैः **सांख्यकारिकातः** कारिकाद्वयमुद्धृतमिति ध्येयम्। **वार्षगणतन्त्रा**द् बहवः पाठाः संक्षेपेण विस्तरेण वा **नयचक्रवृत्तौ** तत्र तत्रावतारिताः। **वार्षगणतन्त्रा**नुसारिसांख्यसिद्धान्तस्वरूपस्य **नय**चक्रवृत्तौ [पृ. ३१३–३२४] विस्तरेण वर्णनं विलोक्यते। प्राचीनसांख्यमतजिज्ञासूनामत्यन्तमुपयोग्ययं ग्रन्थः। सांख्यमतस्पष्टीकरणाय क्वचित् क्वचिद् **भोट**ग्रन्था अप्यस्माभिरुपयुक्ताः, दृश्यतां **भोट**परिशिष्टम्, टिपृ. १३४, १३६, १४०।

न्यायदर्शनसम्बन्धीनि **अक्षपाद**प्रणीतानि सूत्राणि [3]**नय**चक्रे [4]**नय**चक्रवृत्तौ चानेकत्रोद्धृतानि। ईश्वरचर्चायामीश्वरप्रतिपादकानां केषाञ्चित् प्राचीनग्रन्थानां मतं **नयचक्रे** विस्तरेणोपन्यस्य **मल्लवादि**भिर्निरस्तमिति प्रतीयते; दृश्यतां पृ० ३२५- ३४६। **न्याय**वार्तिककृत **उद्द्योतकर**स्य क्वचिद् नामोल्लेखो न दृश्यते, तथापि 'अचेतनत्वात् स्थित्वा प्रवृत्तेः, तुर्यादिवत्' [पृ० ३२९ पं० २] इतीश्वरसाधनाय **नय**चक्र उपन्यस्तं प्रमाण**मुद्द्योतकर**स्याभिमतमिति **न्याय**वार्तिकादवगम्यते। "**उद्द्योतकर**स्तु प्रमाणयति......स्थित्वा प्रवृत्तेस्तन्तुतुर्यादिवत्" इति **तत्त्वसंग्रहपञ्जिका**कृतः **कमलशील**स्य वचनाच्च तद् **उद्द्योतकर**स्य मतं प्रतीयत इति ध्येयम्। दृश्यतामस्माकं टिप्पणेषु पृ० ३२८ टि० १, टिपृ० ८९ पं० ५–१३।

---

१ पृ० ८३–८४, ४३६, ७१९–७२० इत्यादि॥ २ पृ० ३५, २७७॥ ३ पृ० ६१४॥ ४ पृ० ३६, ५३, १४३, १५६, १६८, २४१, ६१४, ६६७ इत्यादि॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैशेषिकमतविचारणायां **कणाद**प्रणीत**वै**शेषिकसूत्रव्याख्यातॄणां **वाक्यकार-भाष्यकार-टीका**काराणां **कटन्दी**कारस्य च मतं सप्तमेऽरे विस्तरेण चर्चितं **मल्ल**वादिभिः । 'वैशेषिकसूत्राणां संक्षिप्तव्याख्यारूपः कश्चिद् **वाक्य**नामा ग्रन्थ आसीत्, तदुपरि केनचिद् विरचितं **भाष्य**मासीत्, **भाष्य**स्य चोपरि **प्रशस्तमतिना टीका** विरचिताऽभूत्, एवमन्या **'कटन्दी'**नाम्न्यपि वैशेषिकसूत्राणां काचि**ट्टी**काऽऽसीत्, अपरा अपि बह्व्यष्टीका आसन्' इति **न**यचक्रवृत्तिगतनिर्देशानुसारेण प्रतीयते । **प**दार्थधर्मसंग्रहाख्यं **प्र**शस्तपादभाष्यमपि **प्र**शस्तपादापराभिधानेनानेन **प्र**शस्तमतिनैव प्रणीतमिति प्रतीयते । एतत् सर्वमस्माभिः सप्तमारे पृ. ५१२ टि. ७ इत्यत्र[1] विस्तरेणोपदर्शितमिति तत्रैव विलोकनीयम् । प्राचीनवैशेषिकैतिह्यजिज्ञासुभिरवश्यं विलोकनीयोऽयं ग्रन्थः । किञ्च, **क**णादप्रणीतानि वैशेषिकसूत्राण्यपि **न**यचक्रवृत्तावनेकत्रावतारितानि । तेषु कतिचित् सूत्राणि सम्प्रति प्रचलिते **उ**पस्कारकृदाद्यभिमते वैशेषिकसूत्रपाठे नैव दृश्यन्ते, केषुचिच्च सूत्रपाठेषूभयत्र महदन्तरं दृश्यते । मुनिराजश्री**पु**ण्यविजयजीमहाभागैः प्रेषिते पञ्चमारमुद्रणानन्तरमस्म**दृ**ष्टिपथमायाते **च**न्द्रानन्दविरचितप्राचीनवृत्तिसमन्विते प्राचीने **वै**शेषिकसूत्रपाठे तु अत्रान्यत्र[3] च प्राचीनग्रन्थेष्ववतारितानि सर्वाण्यपि सूत्राणि प्रायो यथावदुपलभ्यन्ते इति तस्यातिविशिष्टत्वं[4] विभाव्य **च**न्द्रानन्दविरचितवृत्तियुतः समग्रोऽपि प्राचीनो **वै**शेषिकसूत्रपाठोऽस्माभिः पृथक् पृथक् टिप्पणेष्वत्र मुद्रितः[5] । दृश्यतां वैशेषिकसूत्रसम्बन्धिपरिशिष्टम्, टिपृ. १४१ ।

मीमांसकमतप्रस्तावे **वे**द-**ब्रा**ह्मणादिग्रन्थेभ्योऽनेके पाठा[6] **जै**मिनीयमीमांसादर्शनसूत्राणि चात्रोल्लिखितानि । **मी**मांसादर्शनस्य प्राचीनव्याख्याभ्यो मतमुपन्यस्यात्र परीक्षितमिति प्रतीयते । मीमांसकमतस्य स्थापना प्रथमेऽरे [पृ. ४५, १११], विस्तरेण तत्परीक्षा तु द्वितीयेऽरे [पृ. ११७-१५९] विलोकनीया ।

अद्वैतमतसमीक्षायां पुरुष-नियति-काल-स्वभाव-भावादिवादिनां बहूनामद्वैतवादिनां मतानि द्वितीयेऽरे चर्चितानि, अतस्तदानीं नानाविधा अद्वैतवादिन आसन्निति प्रतीयते । पुरुषाद्वैतादिवादप्रस्तावे **उ**पनिषदादिभ्योऽनेकानि वचांस्यत्रावतारितानि । **उ**पनिषदां प्राचीना व्याख्या अप्यत्रावलम्बिता इति सम्भाव्यते । **बा**दरायणप्रणीत**ब्र**ह्मसूत्रस्य निर्देशो न क्वापि दृश्यते, केवलं "तद्व्यतिरिक्ताः शासनिनः **क**पिल-**व्यास**-**क**णाद-

---

१ Oriental Institute, Baroda इत्यतः Gaekwad's Oriental Series No. 136 रूपेण प्रकाशितस्य अस्मत्सम्पादितस्य **च**न्द्रानन्दविरचितवृत्तियुक्तस्य वैशेषिकसूत्रस्य प्रस्तावनायां [पृ० ६–११] षष्ठे परिशिष्टे [पृ० १४६–१५२, पृ० १५० टि० १] च सविस्तरमेतदुपदर्शितमस्माभिः, अतो विस्तरार्थिभिस्तदपि सर्वं विलोकनीयम् ॥ २ दृश्यतां **टिपृ**० ८ पं० २४ । उपरिनिर्दिष्टस्यास्मत्सम्पादितस्य वैशेषिकसूत्रस्य प्रथमं द्वितीयं च परिशिष्टमपि विस्तरार्थिभिर्विलोकनीयम् ॥ ३ उपरिनिर्दिष्टस्यास्मत्सम्पादित**वै**शेषिकसूत्रस्य **शु**द्धिपत्रकम् [पृ० २२७–२३४] अत्रार्थे विलोकनीयम् ॥ ४ किञ्चान्यत्, अपरमपि वैशिष्ट्यमत्र विद्यते । वैशेषिकसूत्रे दश अध्यायाः, तत्र आद्येषु सप्तस्वध्यायेषु प्रत्यध्यायमाह्निकद्वयम्, अन्तिमे त्वध्यायत्रये न कश्चिदाह्निकविभागश्चन्द्रानन्दस्याभिमतः, **स**र्वदर्शनसङ्ग्रहकारस्य **मा**धवाचार्यस्याप्ययमेवाभिप्रायः प्रतीयते । सम्प्रतितनेषु तु वैशेषिकसूत्रपाठेषु तद्व्याख्यासु च दशस्वप्यध्यायेषु प्रत्यध्यायमाह्निकद्वयं दृश्यते । एतच्चास्माभिरुपरिनिर्दिष्टस्य वैशेषिकसूत्रस्य चतुर्थे परिशिष्टे विस्तरेणावेदितमिति जिज्ञासुभिस्तत्र विलोकनीयम् ॥ ५ **मु**निराजश्री**पु**ण्यविजयजीमहोदयप्रेषितप्रत्यनुसारेणैतन्मुद्रणानन्तरं **शा**रदालिप्यां लिखितमपि चन्द्रानन्दरचितवृत्तेरेकं पुस्तकम् Oriental Institute, Baroda इत्यतोऽस्माभिर्लब्धम् । तदनुसारेण ये शुद्धाः पाठास्तेऽत्र शुद्धिपत्रके पृथक् सङ्गृहीता इति जिज्ञासुभिस्तदपि विलोकनीयम् ॥ ६ पृ० १२१, १२२, १३६, १४१, १४२, १४४, १५४, १५९, १८९, १९०, १९२, २१० इत्यादि ॥ ७ पृ० ४५, ११४ ॥ ८ पृ० १४४, १५४, १९१, २४८, २६६, २६७, ३३२ इत्यादि ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

शौद्धोदनि-मस्करिप्रभृतयः" [पृ. ८ पं. ५] इति **व्यास**स्य नामोल्लेखो **नय**चक्रवृत्तौ दृश्यते । नित्यत्वादिवादिनां मतान्यपि तत्तद्ग्रन्थेभ्योऽत्रोपन्यस्तानि । **भा**[1]वबादिमते संवादार्थं कतिचन **ब्रह्म**वादिकारिका अप्युपन्यस्ताः। चतुर्थारेऽपि [पृ. २७३] ब्रह्मनिरूपणमुपलभ्यते । **भर्तृहरेः** शब्दब्रह्मवादस्याप्युल्लेखः पृ. २३० पं. १६–१८ इत्यत्र दृश्यते ।

बौद्धमतप्रस्तावे क्षणिकवाद[2]-विज्ञानवाद[3]-शून्यवादाद्य[4]नेकवादानां चर्चात्र विलोक्यते । अभिधर्म[5]-पिटक-**प्रकरण**पादादिसंस्कृतबौद्धागमेभ्य **आर्यदेव**कृतचतुः[6]शतकाद् वसुबन्धुप्रणीताभिधर्मकोशाद्[7] **दिङ्नाग**रचित-प्रमाण[8]समुच्चय-वृत्ति-न्याय[9]मुख-आलम्बन[10]परीक्षा-हस्त[11]वालप्रकरण-अपोह[12]विषयकप्रकरणा[13]द्यनेकग्रन्थेभ्योऽन्यग्रन्थेभ्यश्च पाठा अत्रोद्धृताः। प्रथमाष्टमारयोर्महता विस्तरेण **दिङ्नाग**मतं परीक्षितं **मल्ल**वादिभिः । **नय**चक्रादिषु वर्णितं **दिङ्नाग**मतं सम्यगवगन्तुं **भोट**परिशिष्टमपि योजितमत्रास्माभिष्टिप्पणेषु । **प्रमाणसमुच्चया**दीनां **दिङ्नाग**रचितग्रन्थानां संस्कृते विनष्टत्वात् तेषां **भोट**भाषानुवादानां तूपलम्भाद् **भोट**भाषान्तरतः संस्कृते परिवर्तनं विधाय **दिङ्नाग**प्रणीत**प्रमाण**समुच्चयादेः कतिपयोंऽशो **भोट**परिशिष्टे उपन्यस्तोऽस्माभिः, अतो विशेषार्थिभि**र्भोट**परिशिष्टमेव विलोकनीयम्, टिपृ० ९५–१४० । **प्रमाणसमुच्चयस्य**, प्रत्यक्षलक्षणवर्णनपरस्य दिङ्नागस्यैव कस्यचिद् ग्रन्थान्तरस्य वा कश्चि**ट्टीकाकारो**ऽप्यत्र पृ० ९३ पं० २७ इत्यत्र निर्दिष्टः प्रतीयते, **दिङ्नाग**ेन

---

१ पृ० २४१ पं० ४–११ ॥ **२** एकादशेऽरे क्षणिकवादः । तथा दृश्यतां पृ० २४७ पं० १४–१५ ॥ **३** द्वादशेऽरे । तथा दृश्यतां पृ० २४७ पं० १७–२५ ॥ **४** दशमेऽरे बौद्धाभिमतो रूपादिसमुदायवादः प्रतिपादितः । तथा दृश्यतां पृ० २४७ पं० ८–१२ ॥ ५ पृ० ६१, ६२, ६४, ७४, ८२ इत्यादि ॥ ६ पृ० ७३, ८२, ९४ ॥ ७ पृ० ६७, ७८, ७९, ९२ ॥ ८ पृ० ६४, ८६, ८९, ९३, ९६, ३०६ इत्यादि ॥ ९ पृ० ६४, ७३, ३०६ टिपृ० ३०–३१ इत्यादि ॥ **१०** पृ० ९१ ॥ **११** पृ० ९३ पं० १, टिपृ० १३६ ॥ **१२** पृ० ५४७, ६११, ६१२, ७३३, ७३४ इत्यादि ॥ **१३ दिङ्नाग**ेनानेकेषु ग्रन्थेषु अपोहवादः प्रतिपादितः, अतोऽष्टमेऽरे दिङ्नागस्यापोहविषयकात् कस्मात् प्रकरणादपोहविषयकः पूर्वपक्षो **मल्ल**वादिभिरुपन्यस्त इति निर्णेतुं न पार्यते । यद्यपि सम्प्रति उपलभ्यमानस्य प्रमाणसमुच्चयस्य पञ्चमेऽपोहपरिच्छेदेऽपोहप्रतिपादनं दृश्यते, तथापि **मल्ल**वादिना **दिङ्नाग**स्य **प्रमाणसमुच्चयात्** स न साक्षादुपन्यस्तः, यतो **मल्ल**वादिना निर्दिष्टाः केचिदंशाः प्रमाणसमुच्चये तद्वृत्तौ वा दृश्यन्ते, केचित्तु नैव दृश्यन्ते पाठभेदेन क्रमभेदेन वा दृश्यन्ते, दृश्यतां **नय**चक्रे पृ० ५४७ पं० १, ७। पृ० ५४८ पं० १२–१४। पृ० ६०६ टि० ७। पृ० ६०७ टि० ५। पृ० ६०९ पं० १, ६, १४, टि० १, ८। पृ० ६१० टि० १४। पृ० ६११ पं० ५–७, २१–२२, टि० १४। पृ० ६१२ पं० ५। पृ० ६१५ पं० १२। पृ० ६२० पं० १४, पृ० ६२३ टि० ९। पृ० ६२७ पं० ७। पृ० ६२८ पं० ७–८, टि० ४। पृ० ६३० टि० २। पृ० ६३४ टि० २। पृ० ६३७ टि० ३। पृ० ६५० पं० ३ टि० १। पृ० ६५२–६५३। पृ० ७३३ पं० १३, १९। पृ० ७३४ पं० ५। पृ० ७३५ पं० २४। अतो दिङ्नागस्य कुतश्चिदन्यस्मात् ग्रन्थतः स उपन्यस्तः। "न चाकृतसम्बन्धे शब्देऽर्थाभिधानं न्याय्यम्, स्वरूपमात्रप्रतीतेरित्यादि यावद् न गुणत्वादिव्यभिचारात्" [पृ० ६२७] इति **नय**चक्रस्य वृत्तौ "यत्र शब्दस्यार्थेन सम्बन्धोऽव्युत्पन्नो यथा म्लेच्छशब्दानां तत्र शब्दमात्रमेव प्रतीयते इत्यादिः सह **टीकया भाष्य**ग्रन्थो द्रष्टव्यो यावद् न गुणत्वादिव्यभिचारादित्यवधिराचार्येण यावत्कारितः सव्याख्यानः **सामान्यपरीक्षाकार**लिखित एवात्रापीति न लिख्यते" [पृ० ६२७–६२८] इति **नय**चक्रवृत्तिकारेणापोहनिराकरणप्रसङ्गेऽभिधानाद् **दिङ्नाग**स्य **सामान्यपरीक्षात** अपोहविषयकः सर्वः पूर्वपक्षो **मल्ल**वादिभिरुपन्यस्त इति वयं सम्भावयामः । एवं सत्यपि **दिङ्नाग**ेन स्वग्रथितग्रन्थसारसमुच्चयाय **प्रमाणसमुच्चयस्य** विरचितत्वाद् **दिङ्नाग**ेन ग्रन्थान्तरोक्ता विषया अपि **प्रमाणसमुच्चये** केचिदक्षरशः केचित्तु अर्थसाम्येन पुनरपि चर्चिता इति **प्रमाणसमुच्चयस्य नय**चक्रसंशोधनकर्मणि **नय**चक्ररहस्यज्ञाने चोपयुक्तत्वं सुतरामस्त्येव । अत एव च तत्र तत्रास्माभिर्भोटभाषानुवादात् संस्कृते परिवर्त्य **प्रमाणसमुच्चय**स्यानेकेंऽशा उपन्यस्ता इति ध्येयम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत्र स्वरचितग्रन्थस्योपरि वृत्तिर्विरचिता तत्र तादृश्या वृत्तेरत्र नयचक्रवृत्तौ भाष्यत्वेन निर्देशो विहित इति पृ० ७१८ पं० १४ इत्यत्रस्थादुल्लेखात् प्रतीयते, अतोऽयं टीकाकारो दिङ्नागाद् भिन्न एव प्रतीयते। अष्टमेऽरे दिङ्नागरचितस्य ग्रन्थस्य केनचिद् विरचितायाष्टीकाया अनेकेषु स्थानेषु, एकत्र च अनेकेषां टी[३]काकाराणामप्युल्लेखो दृश्यते। ईश्वरसेनेन जिनेन्द्रबुद्धिना च प्रमाणसमुच्चयस्य टीका विरचिता, धर्मकीर्तिना च प्रमाणसमुच्चयं व्याख्यातुं प्रमाणवार्तिकं रचितम्। तत्र ईश्वरसेनस्य समयोऽनिश्चितः, तत्कृता प्रमाणसमुच्चयटीकापि सम्प्रति न प्राप्यते। धर्मकीर्तिजिनेन्द्रबुद्ध्योस्तु मल्लवादिसिंहसूरिभ्यामुत्तरकालीनत्वात् तयोर्निर्देशोऽत्रानवकाश एव। धर्मकीर्त्तिरचितन्यायबिन्दोर्धर्मोत्तरकृतव्याख्यायाष्टिप्पणकारोऽप्यस्त्येको मल्लवादी, किन्तु स नयचक्रकाराद् मल्लवादिनो भिन्न एव। अतः के इमे टीकाकारा इति मृग्यमैतिह्यरसिकैः।

शब्दार्थवाक्यार्थादिविचारणायां भर्तृहरेर्वाक्यपदीयादनेकाः कारिका अत्रावतारिताः। अष्टमेऽरेऽभिजल्पशब्दार्थचर्चायां भर्तृहरेरुपाध्यायस्य वसुरातस्यापि मतोल्लेखो विलोक्यते।

षडङ्गयोगविषयकः संक्षिप्तोऽप्यत्यन्तमुपयोगी निर्देशो नयचक्रवृत्तौ [पृ० ३३२] विद्यते। प्रत्याहाररेचकपूरककुम्भकप्राणायाम-ध्यान-धारणा-तर्क-समाधीनां षण्णां योगाङ्गानां वर्णनं योगजिज्ञासूनामवश्यं विलोकनार्हम्।

पाणिनीयशब्दानुशासनसूत्र-धातुपाठयोः पातञ्जलमहाभाष्यस्य चात्र भूयांस उल्लेखा उपलभ्यन्ते।

---

१ "टीकायां चोदितम्–अनाक्षिप्तैरव्याप्तैरपि सामानाधिकरण्यं भविष्यति विवक्षावशात् 'इदं विशेष्यमिदं विशेषणम्' इति। अत्र भाष्येण पर एवोत्तरमाह–न ह्यसत्यां व्याप्तावित्यादि।"–पृ० ६१८ पं० १४–१६। "सह टीकया भाष्यग्रन्थो द्रष्टव्यः ········· सव्याख्यानः सामान्यपरीक्षाकारलिखित एवात्रापि"–पृ० ६२८ पं० ७–८। "सम्बन्धो यद्यपि द्विष्ठः [प्र० समु० २।१९] इत्यादिकारिकाः सभाष्याः"–पृ० ६७८ पं० १६–१७। "भाष्यग्रन्थमाह—स्वसम्बन्धिभ्योऽन्यत्रादर्शनादित्यादि। अस्य व्याख्या टीकाग्रन्थो यत्र दृष्ट इत्यादिः"–पृ० ७२८ पं० १४–१५। "उत्तरमाह ततः 'अद्रव्यत्वाच्च भेदाच्च' इति कारिकया, चशब्दा[द् भा]ष्ये लिखितम्"–पृ० ७३४ पं० १३–१४॥ २ उपरितनं टिप्पणं द्रष्टव्यं। "यथोक्तमित्यादि टीकाग्रन्थ एव............यद्यपि क्वचिदित्यादि स एव टीकाग्रन्थः"—पृ०६६२ पं० ११–१४॥ ३ "यथा चाहुरित्यादि। टीकाकारैर्यानि साधनान्युक्तानि जातिमत्पक्षदोषप्रदर्शनार्थानि तान्येवापोहवत्पक्षेऽपि तद्दोषप्रदर्शनार्थानि।"–पृ०६२१ पं० २५–२६। अत्रेदमवधेयम्–के इमे टीकाकारा इति निर्णेतुं वयं न शक्नुमः। तथाहि—चीनग्रन्थान्तर्गतोल्लेखानुसारेण 'दिङ्नागस्य शङ्करस्वामी नाम शिष्य आसीत्' इति Dr. E. Frauwallner इत्येभिः WZKSO, Band V, 1961 पृ० १४० इत्यत्रावेदितम्। किन्तु दिङ्नागरचितग्रन्थस्योपरि तेन रचिता काचिदपि टीका न श्रूयते। धर्मपालेन दिङ्नागस्य आलम्बनपरीक्षाया उपरि टीका रचिता, तथापि मल्लवादिना यस्मिन् विषये टीकासन्दर्भा उद्धृतास्ततो भिन्नविषयत्वादालम्बनपरीक्षाया धर्मपालकृतटीकाया अत्रानवकाश एव॥ ४ कर्णकगोमिना प्रमाणवार्तिकस्ववृत्तेष्टीकायां [पृ० १२ पं० २१] अर्चटेन हेतुबिन्दुटीकायां [पृ० १२ पं० २] दुर्वेकमिश्रेण हेतुबिन्दुटीकालोके [पृ० ४०५ पं० १९] च निर्दिष्टेयं टीका॥ ५ अत एव मल्लवादिना ततः किमपि पूर्वपक्षरूपेणोपन्यस्तं न वेत्यपि ज्ञातुं न शक्यते॥ ६ पृ० ३६, ६६, ११४, १२७, २३०, २४२, २४४, ३३३, ३९३, ४५०, ५५८, ५७९–५८२, ६०४, ६२०, ६६९, ७१६, ७३६ इत्यादि॥ ७ अत्र प्राक्कथने पृ० १५ टि० २ इत्यत्र द्रष्टव्यम्॥ ८ पृ० १५, ४९, ५८ इत्यादि॥ ९ पृ० १५, १६ इत्यादि॥ १० पृ० १५, २१, ३३, ५६, १२३, १२५, १२८, १३०, १३३, १३४, १४२, १५५, १७३, १८०, २१९, २४२, २४४, २६१, २६८, ३०४, ३७९, ३८०, ३८३, ३८५, ३८८, ३९५, ३९७, ४१२, ५७०, ५७१, ५७३, ५७५, ५८६, ६१७ इत्यादि॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्यरं '[1]भाव-द्रव्य-पर्याय'शब्दार्थव्युत्पत्तिः **पा**णिनीयसूत्रानुसारेणैवात्र दर्शिता **मल्ल**वादिभिः । '[2]**पा**णिनीय-शिक्षायाः, यास्क[3]**नि**रुक्तस्य, **पा**णिनीयसूत्राणां **वा**र्तिक[4]स्य च पाठा अप्यत्रोद्धृताः । **पा**णिनीयसूत्राणां काचित् प्राचीना **वृ**त्तिर्[5]ऽऽसीदिति **न**यचक्रवृत्त्यवलोकनात् प्रतिभाति । पञ्चमारे **वै**याकरणमतप्रस्तावे '[6]**या**स्कनिरुक्त-**पा**तञ्जलमहाभाष्यादिग्रन्थेभ्योऽनेकानि वचांस्यत्रोद्धृतानि । पृ० ३७९ पं० ८ इत्यत्र "**भा**ष्यकारेण **सां**ख्यादाहृत्योक्तः" इत्युल्लेखदर्शनात् **प**तञ्जलेः **सां**ख्यमतानुसारित्वमपि स्फुटमेव ज्ञायते । **पा**तञ्जलमहाभाष्ये [५। १। ११९] वर्णितं 'गुणसन्द्रावो द्रव्यम्' इति मतमपि सांख्यादेवाहृतं प्रतीयते, दृश्यतां **न**यचक्रवृत्तौ पृ० २६८ पं० ११, पृ० ३०३ इत्यादि । अष्टमेऽरे **तन्त्रार्थसङ्ग्रहा**भिधस्य वैयाकरणग्रन्थस्याप्युल्लेखो [8]**न**यचक्रवृत्तौ दृश्यते । **भाँ**गुरि-**सौ**नागाद्याचार्याणामपि मतं निर्दिष्टमत्र । **च**र[9]कसंहितादिवैद्यकशास्त्रसम्बन्धिनोऽप्यनेके पाठा अत्रोद्धृताः ।

नयचक्रे वृत्तौ च जैनागमादिग्रन्थानां पाठादिनिर्देशः

जैना[10]गमग्रन्थेभ्यो बहवः पाठा अत्रोद्धृताः । **क**र्मप्रकृतिवृत्त्यादिषु दृश्यमानाद् वर्गणास्वरूपवर्णनात् कथञ्चिद् भिन्नं वर्गणास्वरूपवर्णनं **न**यचक्रवृत्तौ [पृ० ३४८] विस्तरेण दृश्यते । बहु[11]षु स्थलेषु प्रसङ्गानुसारेण नानाविधा आगमिकसिद्धान्तसम्बद्धाश्चर्चा अत्र दृश्यन्ते । [12]**त**त्त्वार्थाधिगमसूत्राणि प्रभृतेषु स्थानेष्वत्रोद्धृतानि **न**यचक्रवृत्तौ । **त**त्त्वार्थभाष्यस्याप्यवतरणं [पृ० ११४ पं० २४, पृ० ५९६ पं० ८] [13]**नयचक्रवृत्तौ** दृश्यते । **सि**द्धसेनाचार्यप्रणीतात् **स**न्[14]मतिप्रकरणाद्[15] **द्वा**त्रिंशिकादेश्च[16]ानेकाः कारिका अत्रोद्धृताः । तृतीयेऽरे

---

१ पृ० १५, १७, ११५, १७३, २४४, २६१, ३३४, ३७७, ४१४, ४५४, ७३७ इत्यादि ॥ २ पृ० ५६४–५६५, ५९४ ॥ ३ पृ० १२६, ३८३, ४०६ । "एकोत्तरं शतमुदकनामानि **निरुक्ते** पठ्यन्ते ।"—पृ० ७१५ पं० १५ ॥ ४ "तथा चोक्तम्—**सूत्रे**ष्वेव हि तत् सर्वं यद् **वृत्तौ** यच्च **वार्तिके** । उदाहरणमर्थस्य प्रत्युदाहरणं पशोः ॥ इति ।"—पृ० ३९७ । पृ० ७, २०४, २३२, २६१, ३६५, ३७८, ४११, ४१५, ५९३ इत्यादि ॥ ५ द्रष्टव्यमुपरितनं टिप्पणम् ॥ ६ द्रष्टव्यमत्र प्राक्कथने पृ० २२ टि० १०, पृ० २३ टि० ३ ॥ ७ पृ० ५७९ पं० १५ ॥ ८ पृ० ३७ पं० ११–१२ ॥ ९ पृ० ११८, १५८, १७५, १७६, १८३, २०३, २२५, ३५८ इत्यादि ॥ १० पृ० ३, ११५, १७९, १८३, १८६, १९०, २११, २१८, २२८, २४१, २४२, २५९, २७७, २७८, २९६, ३३४, ३५१, ३५९, ३६१, ३६२, ३७५, ४५०, ४६३, ४७०, ५५०, ५५१, ५५५, ७३७ इत्यादि ॥ ११ पृ० २, पृ० १११ पं० २५, पृ० ११२, पं० ४, पृ० १८२, १८३, २०४–२०५, २११, २१७, ३०१–३०२, ३१३, ३२९, ३३७ पं० १७–२२, पृ० ३४८–३५१, ३६२, ३६६–३६८, ३७२, ४०३, ४७४–४७८, ५४३, ५५१, ५५९, ५९८–५९९ इत्यादि ॥ १२ पृ० १७, २२, ८५, २४८, ३१२, ३१३ इत्यादि द्रष्टव्यं । **त**त्त्वार्थाधिगमसूत्राणां छाया तु **न**यचक्रवृत्तौ नैकेषु स्थलेषु दृश्यते, दृश्यतां पृ० २०४ पं० १९, पृ० २०५, पं० ५–७, पृ० २१४ पं० ५ टि० १० इत्यादि ॥ १३ **नयचक्रमूलेऽपि तत्त्वार्थ-स्वोपज्ञभाष्यस्यावतरणं छाया वाष्टमेऽरे स्फुटमेव विलोक्यते,** दृश्यतां पृ० ५८८ पं० ४, १६, टि० ६, पृ० ५९६ पं० १, ६, ७॥ १४ पृ० २, ७ "णिययवयणिज्ज......... इत्याचार्य**सिद्धसेनः**" पृ० ३५, पृ० ८४, ११५, २४४, ४९६, ५८५ । "तथाचार्य**सिद्धसेनो**ऽप्याह—नामं ठवणा दविएत्ति......" पृ० ५९६ । पृ० ७३६, ७३७ पृ० **५१२**–१ । यथाचार्य**सिद्धसेन**श्चाह—भद्दं मिच्छादंसणसमूह...॥"-**५६३**–१, २ ॥ **१५** पृ० ४, ४६, १२०, २४८ ॥ १६ "तथा चाचार्य**सिद्धसेन** आह—'[I]यत्र ह्यर्थो वाचं व्यभिचरति नाभिधानं [2]तत्' [ ]

I आचार्य**सिद्धसेने**न कस्मिन् ग्रन्थेऽभिहितमेतदिति न ज्ञायते, सम्प्रति तस्य ग्रन्थस्यानुपलब्धेः । **त**त्त्वार्थसूत्रस्य **वृत्तौ** [१।३४, पृ० ११६] **सि**द्धसेनगणिभिरप्युद्धृतमेतत् ॥ 2 एतत्पर्यन्तमाचार्य**सिद्धसेनस्य** वचनम् । अतः परं 'तथा व्याख्यातारोऽपि' इति निर्देशात् तस्य **सिद्धसेना**चार्यवचनस्य केनचिद् विरचितायां व्याख्यायां कुत्रचिद् ग्रन्थान्तरे वा **'नाम-स्थापना-द्रव्य-भिन्नलिङ्गवाच्येष्टाकरणाद्भावयुक्तवाची शब्दः'** इति शब्दनयलक्षणं भवेदिति सम्भाव्यते ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयचक्रवृत्तिगतनिर्देशप्रामाण्येन गद्यमयग्रन्थप्रणयनमपि **सि**[1]द्धसेनाचार्यैः कृतमिति प्रतीयते । **सिद्धसेना**चार्यप्रणीतायां **द्वात्रिंशिकायां तत्त्वार्थसूत्रस्यानुसरणं** स्फुटमेव विलोक्यत इत्यपि ध्येयम्[2] । **म**ल्लवादिक्षमाश्रमणैः **सिद्धसेना**चार्यप्रणीत**सम्म**तिप्रकरणस्य वृत्तिर्विरचितेति प्रागावेदितमेवास्माभिः । अतो **म**ल्लवादिक्षमाश्रमणानां **सिद्धसेना**चार्येभ्य उत्तरकालीनत्वं सिद्धमेव । सम्प्रति एकत्वेन मन्यमाने **न**न्दिसूत्रे पुरा भागद्वयमासीत्—कश्चिदंशः सूत्ररूपः कश्चिच्च ततः पृथग् **भा**ष्यरूप इति [3]अष्टमेऽरे **न**यचक्रवृत्तिगतनिर्देशानुसारेण प्रतीयते । कस्मिंश्चित् समये तु **सू**त्रं **भा**ष्यं च परस्परेण सम्मील्यैकीभावमापन्नमुभयोश्च प्रसिद्धि[4]र्**न**न्दिसूत्रनाम्नैव जातेत्यनुमीयते, दृश्यतां टिपृ० ६८ पं० २–७ । एतद्विषयेऽस्माभिर्विस्तरेण प्रक्रान्तं **सु**रतनगरस्थ'**दे**वचंदलालभाई**पु**स्तकोद्धारफंड'तः प्रकटयिष्यमाणे **दे**वानन्दविशेषाङ्के, अतस्तज्जिज्ञासुभिस्तत्र विलोकनीयम् । किञ्चान्यत्, **न**यचक्रे वृत्तौ च दृश्यमानेष्वागमपाठेषु सम्प्रत्युपलभ्यमानागमपाठेभ्यः सुमहदन्तरं दृश्यते । केचित्त्वत्रोद्धृता[5]ः पाठा आगमग्रन्थेषु सम्प्रति दृश्यन्त एव न । सम्प्रति प्रसिद्धा ह्यागमिकपाठसङ्कलना **दे**वर्धिगणिक्षमाश्रमणतो वीरनिर्वाणसंवत् ९८० वर्षे पुस्तकारूढेति **क**ल्पसूत्रवृत्त्यादिषु श्रूयते, **म**ल्लवादिक्षमाश्रमणास्तु वीरनिर्वाणसंवत् ८८४ वर्षेऽभूवन्, अतस्तेषां प्राचीनागमपाठपरम्परानुसारित्वमूल एवायं महान् पाठभेदः । अत एव च **न**यचक्रवृत्तिकृतां **सिं**हसूरिक्षमाश्रमणानामपि प्राचीनत्वं प्राचीनागमपाठपरम्परानुसारित्वं च स्फुटमेव प्रतीयते । अत आगमशास्त्राणां केषाञ्चित् पाठानां प्राचीनस्वरूपं जिज्ञासुभिरवश्यं विलोकनीयोऽयं ग्रन्थः । **बृ**[6]हत्कल्पाव[7]श्यकनिर्युक्तितः काश्चन **नि**र्युक्तिगाथा अप्यत्रावतारिताः । [8]**यो**निप्राभृतस्यापि निर्देशोऽत्र दृश्यते ।

स्याद्वादस्य पारमार्थिकं स्वरूपं सप्तमेऽरे भगवता **मल्लवादि**ना यद् वर्णितं तदपि स्याद्वादस्य परमार्थं जिज्ञासुभिरवश्यं विलोकनीयम्[9] ।

इति । तथा **व्या**ख्यातारोऽपि प्रस्थिताः—"[1]नाम-स्थापना-द्रव्य-भिन्नलिङ्गवाच्येष्टाकरणाद् भावयुक्तवाची शब्दः' इति।"–पृ० ५८८–५८९॥

१ "सत्तार्था इत्यविशेषेण वचनात्, **अस्ति-भवति-विद्यति-पद्यति-वर्ततयः सन्निपातषष्ठाः सत्तार्थाः'** [ ] इत्यविशेषेणोक्तत्वात् **सिद्धसेनसूरिणा**"–पृ० ३२४ पं० २६–२८॥ २ दृश्यतां टिपृ० ४१ पं० १–४ टि० १॥ ३ पृ० ५५९ पं० १०–१३॥ ४ दृश्यतां पृ० ३२४ पं० ४–५, पृ० ३६१ पं० ६–८ इत्यादि ॥ ५ एतेषां पाठानां **न**यचक्रे **वृ**त्तौ च पृष्ठाङ्काः प्राक्कथने पृ० २३ टि० १० इत्यतो ज्ञातव्याः ॥ ६ "**णिच्छयतो सव्वलहुं**… …॥ ६५॥" इति **बृ**हत्कल्पनिर्युक्तिगाथा **म**ल्लवादिना **न**यचक्रमूले पृ० ३०१ इत्यत्रोद्धृता । अत्र पाठभेदः सिंहसूरिक्षमाश्रमणकृततद्गाथाव्याख्या च विलोकनीया॥ ७ दृश्यतां पृ० १८२, २१२, २४३, ३७३, ४०८, ४१४, ४७८, ५५० इत्यादि ॥ ८ दृश्यतां पृ० २०२ पं० २०–२२॥ ९ दृश्यतां पृ० ४९९ पं० ५–पृ० ५०२ पं० ३ । अस्य **न**यचक्रप्रथमविभागस्य गुर्जरभाषानिबद्धायां प्रस्तावनायामपि जिज्ञासुभिर्विलोकनीयम् ॥

---

1 "लक्षणं च **यथार्थाभिधानं शब्दः** [तत्त्वार्थभाष्य. १।३५], तथा **नाम-स्थापना-द्रव्य-भिन्नलिङ्गवाच्येष्टाकरणाद् भावयुक्तवाची शब्दः** [ ] इति च लक्षणान्तरम्" इति अष्टमेऽरे [पृ० ५९६ पं० ७–९] "यदपि **लक्षणकारेण** शब्दनयलक्षणमुक्तं '**नामस्थापनाद्रव्यभिन्नलिङ्गवाच्येष्टाकरणाद् भावयुक्तवाची शब्दः**' इति" इति नवमेऽरे [पृ० ४९४–१] च पुनरप्युद्धृतमेतद् **न**यचक्रवृत्तौ । **वि**शेषावश्यकभाष्यस्य **को**ट्टार्यगणिविरचितायां **टी**कायामप्युद्धृतमेतत् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयेषु सुनय-दुर्नयविभागः प्राचीनानां श्वेताम्बराचार्याणां सम्मतो वा नेत्यत्र नैकमत्यं पूर्वाचार्याणाम्। सकलविकलादेशस्वरूपविषयेऽपि नानाविधानि मतानि सन्ति। तदत्र भगवद्भिर्**मल्लवादि**क्षमाश्रमणैः **सिंहसूरि**क्षमाश्रमणैश्च यदुक्तं तदस्मिन् विषये विशेषजिज्ञासूनामत्यन्तमुपयोगि भविष्यति। अतस्तज्जिज्ञासुभिः **नयचक्रे** वृत्तौ च तत्र तत्र विद्यमाना एतद्विषयकाः सन्दर्भा अवश्यं विलोकनीयाः। **मालवनगरे** विद्यमानस्य सप्तशतवर्षकालीनस्य घटस्य निर्देशोऽप्यैतिह्यरसिकानां रसप्रदो भविष्यति, दृश्यतां पृ० ४०१, ४६८।

अरचतुष्टयपरिचयः

अस्मिन् विभागे प्रकाशितस्यारचतुष्टयस्य विषयो विस्तरेण विषयानुक्रमाद् वेदितव्यः; इह तु संक्षेपेण दिङ्मात्रं दर्शयामः—

[प्रथमारविषयः]

आदौ मङ्गलार्थमभिधेयगर्भितं जैनशासनस्तवं विधाय अनेकान्तवादस्यैव च सर्वव्यवहारव्यवस्थापकत्वमभिधाय एकान्तप्रतिपादकानामन्यशासनानां विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादसत्यत्वं विधिनियमभङ्गवृत्ति-

---

१ 'सम्पूर्णवस्तुकथनं प्रमाणवाक्यम्, तदेव स्याद्वाद इति अनेकान्तवाद इति सकलादेश इति वाभिधीयते। वस्त्वेकदेशकथनं नयवादः; तत्र यो नाम नयो नयान्तरसापेक्षः स नय इति सुनय इति सम्यगेकान्त इति विकलादेश इति वोच्यते। यस्तु नयान्तरनिरपेक्षः स दुर्नय इति नयाभास इति मिथ्यैकान्त इति वोच्यते। प्रमाणवाक्ये नयवाक्ये च स्यात्पदमवश्यं प्रयोक्तव्यम्, यत्र न प्रयुज्यते तत्रापि सामर्थ्यात् तद् गम्यते।' इति **अकलङ्का**दयो दिगम्बराचार्या मन्यन्ते। श्वेताम्बराचार्येषु त्वत्र विचारभेदः—**अकलङ्का**दुत्तरकालीना **वादिदेवसूरि-यशो**विजयवाचकप्रभृतय उपरिनिर्दिष्टामकलङ्केष्टां व्यवस्थामनुमन्यन्ते। **न्याया**वतारवृत्तिकृतः **सिद्धर्षय**स्तु यद्यपि 'प्रमाणम्, नयः, दुर्नयः' इति विभागं स्वीकुर्वन्ति, तथापि प्रमाणवाक्ये एव स्यात्पदप्रयोगं ते स्वीकुर्वन्ति, न तु नयवाक्ये। एवमेव च **हेम**चन्द्रसूरय **अन्ययोग**व्यवच्छेदद्वात्रिंशिकायां [का० २८] स्वीकुर्वन्ति। **मलय**गिरिसूरयस्तु 'यो नयो नयान्तरसापेक्षतया स्यात्पदलाञ्छितं वस्तु प्रतिपद्यते स परमार्थतः परिपूर्णं वस्तु गृह्णातीति प्रमाणमेव। यस्तु नयवादान्तरनिरपेक्षतया स्वाभिप्रेतेनैव धर्मेणावधारणपूर्वकं वस्तु परिच्छेत्तुमभिप्रैति स नयः, वस्त्वेकदेशपरिग्राहकत्वात्, स च नियमाद् मिथ्यादृष्टिरेव' इति **आवश्यक**वृत्तौ [पृ० ३६९–३७१] प्रतिपादयन्ति, दैगम्बरीं च व्यवस्थां निराकुर्वन्ति। अतस्तेषां मतेन 'प्रमाणम्, नयः' इति च द्वावेव विभागौ, प्रमाणं सम्यक्, नयास्तु सर्वेऽपि मिथ्यावादिनः। **यशो**विजयवाचकैरिदं **मलय**गिरिसूरिमतं **गुरु**तत्त्वविनिश्चयटीकायां विस्तरेण विचारितम्। अस्य **नयचक्र**प्रथमविभागस्य गुर्जरभाषानिबद्धायां प्रस्तावनायामेतानि विविधानि मतानि विस्तरेणास्माभिरुपदर्शितानि, अतो जिज्ञासुभिस्तत्र विलोकनीयम्।

२ 'स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति नास्ति, स्यादस्ति अवक्तव्यः, स्यान्नास्ति अवक्तव्यः, स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्यः' इति सप्तभङ्ग्यां सप्तापि भङ्गा विवक्षया सकलादेशरूपा विवक्षया च विकलादेशरूपा भवन्तीति **अकलङ्का**दयो दिगम्बराचार्या मन्यन्ते। प्राचीनाः श्वेताम्बराचार्याः किं मन्यन्ते स्मेति निर्णेतुं दुष्करम्। **अकलङ्का**दुत्तरकालीनेषु श्वेताम्बराचार्येषु तु तत्त्वार्थटीकाकार**सिद्धसेन**गण्यादयो बहव आचार्या आद्यं भङ्गत्रयं सकलादेशत्वेन स्वीकुर्वन्ति, अवशिष्टांस्तु विकलादेशत्वेन। **वा**दिदेवसूरय अकलङ्कनिर्दिष्टां प्रक्रियां स्वीकुर्वन्ति, **यशो**विजयवाचका अपि आदौ एवमेव स्वीकृतवन्तः, किन्तु अन्ततो गत्वा **अष्ट**सहस्रीतात्पर्यविवरणे **सिद्धसेन**गण्यङ्गीकृतमेव मतं तेऽपि स्वीचक्रुः। कलिकालसर्वज्ञ**हेम**चन्द्रसूरिशिष्याभ्यामाचार्य**राम**चन्द्र-**गुण**चन्द्राभ्यामुभयविधमपि मतं **द्रव्या**लङ्कारस्वोपज्ञवृत्तावुपदर्शितम्। किन्तु यदा आद्यास्त्रयो भङ्गाः सकलदेशा अवशिष्टाश्च विकलादेशास्तदा 'सकलादेशः प्रमाणम्, विकलादेशो नयः' इत्यर्थस्तत्र नाभिप्रेतः, अपि तु अन्य एव। यदा तु सप्तापि भङ्गा विवक्षया सकलादेशा विवक्षया च विकलादेशास्तदा 'सकलादेशः प्रमाणम्, विकलादेशो नयः' इत्यर्थस्य स्वीकारेऽपि विकलादेशसप्तभङ्ग्यां स्यात्पदप्रयोगो **राम**चन्द्र**गुण**चन्द्राभ्यां नाभ्युपगतः। विस्तरार्थिभिरस्य **नयचक्र**प्रथमविभागस्य गुर्जरभाषानिबद्धा प्रस्तावना विलोकनीया॥ ३ पृ० ८४ पं० ५–८ इत्यादि। विस्तरार्थिभिरस्य **नयचक्र**प्रथमविभागस्य गुर्जरभाषानिबद्धप्रस्तावना विलोकनीया॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

युक्तत्वाज्जैनशासनस्यैव च सत्यत्वं प्रतिपादयितुकामेन ग्रन्थकृता 'विधिनियमे'त्यादिप्राचीना गाथा गाथासूत्रत्वेनोपन्यस्ता [पृ. ९ पं. ६]। तद्व्याख्यायां विध्यादीन् द्वादश भङ्गानुद्दिश्य 'यथोद्देशं निर्देशः' इति न्यायेन क्रमशो विध्यादिनयान् विस्तरेण व्याख्यातुकामेनादौ विधिनयस्य निरूपणं प्रारब्धम्। इदं पुनरवधेयम्–आदौ परपक्षनिरसनं ततः स्वपक्षस्थापनं ततो वाक्यपदीयादिप्रतिपादितेषु शब्दार्थ-वाक्यार्थेषु यस्य नयस्य यौ शब्दार्थ-वाक्यार्थावभिमतौ तयोरुपदर्शनमन्ते च यथायोगं नैगमाद्यन्यतमे नयेऽन्तर्भावं द्रव्यादिशब्दार्थं च प्रदर्श्य जिनप्रवचननिबन्धनत्वात् सर्वनयानां यस्य नयस्य यद् निबन्धनं जिनागमेषु तस्योपदर्शनमिति द्वादशस्वपि विध्यादिनयारेषु ग्रन्थकारस्य प्रतिपादनशैली। अत एतच्छैल्यनुसारेण 'यथालोकग्राहमेव वस्तु' इति मन्यमानो लौकिको विधिनय आदौ 'सामान्यम्, विशेषः, कारणे कार्यं सत्, कारणे कार्यमसत्' इत्यादीन्यलौकिकवस्तुविषयकाणि शास्त्रकाराणां मतानि विस्तरेण परीक्ष्य निरस्य च क्रियाविधायिशास्त्रस्यैवार्थवत्त्वं प्रतिपादयति, लोकव्यवहारादतिरिच्य वर्तमानानां सामान्यादिविषयकशास्त्रारम्भाणां वैयर्थ्यात्। अपि च, शास्त्रकाराः स्वाभिमतालौकिकवस्तुसाधनाय प्रत्यक्षादिप्रमाणानामपि अलौकिकं लक्षणान्तरं कल्पयन्ति, अतो विधिनयेन प्रमाणज्येष्ठत्वात् प्रत्यक्षस्य बौद्धाचार्यदिङ्नागाभिमतमलौकिकं प्रत्यक्षलक्षणं विस्तरेण निराकृतम्, तदनन्तरं सांख्याचार्यवार्षगण्यप्रणीतं कणादप्रणीतमपि च प्रत्यक्षलक्षणं दूषितम्। किञ्च, 'सामान्य-विशेषादि लोकतत्त्वं ज्ञातुमशक्यं न च तेन ज्ञातेनापि किञ्चित् फलमतो लोकयात्रानिर्वाहार्थं यथालोकग्राहं वस्तु स्वीकर्तव्यम्' इत्याज्ञानिकवादं बहु मन्यतेऽयं लौकिको विधिनयः। विधिवाक्यानामेव प्रामाण्यमभ्युपगच्छन्तो वेदवादिनो मीमांसका एतन्नयमतानुसारिणः, तेऽपि हि 'इदंकाम इदं कुर्यात्' इति क्रियाविधायिशास्त्रस्यैव प्रामाण्यमामनन्ति, 'को ह वैतद् वेद, किं वाऽनेन ज्ञातेन' इत्याज्ञानिकवादं चोपजीवन्ति। अतो विधिनयनिरूपणद्वारेण मीमांसकमतमस्मिन् नय उपन्यस्तम्। अन्ते शब्दार्थ-वाक्यार्थावपि मीमांसकाभिप्रायेणात्रोपदर्शितौ। सर्वनयानां जिनप्रवचनस्यैव निबन्धनत्वादस्य नयस्य निबन्धनत्वेन भगवतीसूत्रगतं वाक्यं मल्लवादिसूरिभिरुपदर्शितं विधिनयसमाप्तौ।

[द्वितीयारविषयः]

एवं विधिनयेनाभिहिते द्वितीयो विधिविधिनयस्तद्दूषणायोपतिष्ठते। पूर्वपूर्वविरोधित्वादुत्तरोत्तरनयानामाद्ये विधिनये वर्णितं मीमांसकमतमत्र विस्तरेण निराकृतमादौ। 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' इति

---

१ पृ० ११ पं० ३॥ २ पृ० २४ पं० ४॥ ३ पृ० ४५ पं० १ ४ पृ० ५९–१०७॥ ५ पृ० १०७–१०९। टिपृ० ३२ पं० ५–६, टिपृ० ४० पं० १–४, टिपृ० १२१॥ ६ पृ० ११०॥ ७ "एष च वेदवादिभिरपि लोकप्रमाणक आज्ञानिकवाद उपजीव्यते······किञ्चिन्न ज्ञायते, **को ह वैतद्वेद? किं वाऽनेन ज्ञातेन?**···क्रियाया एवोपदेशोऽतः श्रेयान्।"–पृ० १११–११२। पृ० २५ पं० ३, पृ० २६ पं० ६–७, पृ० ११८ पं० १२, पृ० १७४ पं० ११। अत्र वेदवादिनामाज्ञानिकवादोपजीवित्वं यत् प्रतिपादितं तत्रेमे वेदान्तर्गता उल्लेखा अनुसन्धेयाः–

"को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः। अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा को वेद यत आबभूव। ६। इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न। यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद। ७।"–ऋग्वेद. (नासदीयसूक्त) १०।१२९।६–७। "को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत्।"–ऋग्वेद. १०।१०।६। "को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम्"–ऋग्वेद ५।५३।१। "को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति।"–ऋग्वेद १।१६४।४। "न वि जानामि यदिवेदमस्मि"–ऋग्वेद १।१६४।३७॥ इत्यादि॥ ८ पृ० ११५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मीमांसादर्शनप्रसिद्धवाक्यस्य बह्वोऽर्थाश्चर्चयित्वा निरस्ताः[1]। ततो विधिविधिनयः स्वाभिमतम् 'एकमेव कारणं नानाभेदेन विवर्तते' इति सर्वैककारणमात्रत्वसिद्धान्तं स्थापयति[2]। इदं तु ध्येयम्—एतत्सिद्धान्तावलम्बिनः सर्वेऽप्यद्वैतवादा अस्मिन् नयेऽन्तर्भवन्ति। अतो मल्लवादिना परस्परविरोधीनि यथाक्रमं पुरुष-नियति-काल-स्वभाव-भावाद्वैतवादिदर्शनान्यत्र निरूपितानि। एवं च विधिनयाभिमतमाज्ञानिकवादं निरस्य ज्ञानमयः पुरुष एव नानाभेदेन भवतीति 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इत्यादिर्वेदोपनिषत्सु प्रतिपादितः पुरुषाद्वैतवाद आदौ निरूपितः। ततः पुरुषाद्वैतवादं निरस्य नियत्यद्वैतवादः प्रतिपादितः। एवं पूर्वपूर्वनिरासेन पुरुष-नियति-काल-स्वभाव-भावाद्वैतदर्शनानि प्रतिपाद्य विधिविधिनयाभिमतौ शब्दार्थवाक्यार्थौ चोपदर्श्यास्याद्वैतवादस्य भगवती[3]-सूत्रगतेन वाक्येन सम्बद्धत्वमेतन्नयान्ते दर्शितं मल्लवादिसूरिभिः।

[तृतीयारविषयः]

अथ विधिविधिनयदर्शनेऽपरितुष्यन्नुपतिष्ठते तृतीयो विध्युभयारः। प्रकृतिपुरुषरूपेण द्वैतवादिनः सांख्याः 'ईश्वरोऽधिष्ठाता, तदधिष्ठितं चेदं सर्वं[4] जगत् प्रवर्तते' इति ईश्वरेशितव्यात्मकत्वेन द्वैतमभ्युपगच्छन्त ईश्वरवादिनश्चास्मिन् नयेऽन्तर्भवन्ति। तत्रादौ सांख्यः पुरुषाद्यद्वैतवादं निरस्य स्वाभिमतं प्रकृति-पुरुषद्वैत-वादमुपन्यस्यति, सन्निधि[5]भवनापत्तिभवनभेदेन भवनस्य द्वैविध्यात्। किन्तु सांख्येन विधिविधिनयानुसारिष्व-द्वैतवादेषु ये दोषा उद्भावितास्तेषां प्रकृतिकारणवादेऽपि तादवस्थ्याद् वार्षगणतन्त्रवर्णिते सांख्यमते सर्वसर्वा-त्मकत्ववादिना विस्तरेण निरस्ते तत्रास्वारस्यादीश्वरवादी भाव्य[6]-भवितृभेदेन ईश्वरेशितद्वैतवादमुपन्यस्यति। अन्ते च विध्युभयारमतौ शब्दार्थवाक्यार्थौ दर्शयित्वा मल्लवादिसूरिभिर्द्वैतवादस्य जिनप्रवचननिबद्धत्वमुपदर्शितम्[7]।

[चतुर्थारविषयः]

एवं तृतीयनयेनाभिहिते चतुर्थे विधिनियमनयारे ईश्वरस्यापि प्रवर्त्यपुरुषकर्माधीनत्वादनीश्वरत्वात् कर्मप्रवर्तकत्वात् सर्वेषामपि प्राणिनामीश्वरत्वापत्तेश्च कर्मवादिमुखेन ईश्वरवादं विस्तरेण दूषयित्वा तदनन्तरं कर्मैकान्तवादं[8] पुरुषकारैकान्तवादं[9] च निरस्य विधिनियमनयेन स्वमतं प्रतिपादितम्। चेतनाचेतनात्मकस्य सर्वस्य परिवृत्त्या अन्योन्यात्मकत्वानुभवनात् कर्मसम्बद्धपुरुषाणां[11] कर्मकृतत्वात् कर्मणां च पुरुषकृतत्वादात्मनै-वात्मनः कार्यकारणत्वाद् 'एकं सर्वं सर्वं चैकम्' इति हि विधिनियमनयदर्शनम्, विधेर्नियम्यत्वात्। अस्मिंश्च नये द्रव्यमेव शब्दार्थो नित्यः सर्वात्मकः। ॐ ब्रह्म परमार्थः। पृथक् सर्वं पदं वाक्यार्थ इति दर्शयित्वा आचाराङ्गसूत्रान्तर्गतेन वाक्येन सम्बद्धत्वमस्य नयस्य दर्शितं मल्लवादिसूरिभिः।

अत्र च नयचक्रस्य प्रथमो मार्गोऽपि समाप्यतेऽर्धप्रायं च पुस्तकमपि समाप्यते।

नयचक्रमूलस्य विचारः

विक्रमीयैकादशशताब्द्यां विद्यमानैः पूर्णतल्लगच्छीयैः शान्तिसूरिभिर्न्यायावतारवार्तिकवृत्तौ, वादिवेताल-शान्तिसूरिभिरुत्तराध्ययनसूत्रबृहद्वृत्तौ, विक्रमीयद्वादशशताब्द्यां विद्यमानैर्मलधारिहेमचन्द्रसूरिभिरनुयोगद्वारसूत्र-

१ पृ० १२१-१७२ ॥ २ पृ० १७३ ॥ ३ पृ० २४५ ॥ ४ पृ० २६१ ॥ ५ पृ० २६८-३२४ ॥ ६ पृ० ३२४ पं० १४ ॥ ७ पृ० ३३४ ॥ ८ पृ० ३३५-३५२ ॥ ९ पृ० ३५२ पं० ४ ॥ १० पृ० ३५७ पं० ३ ॥ ११ दृश्यतां पृ० ३४८ पं० १-३, पृ० ३५० पं० १,१५-१६ इत्यादि ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्तौ, कलिकालसर्वज्ञहेमचन्द्रसूरिगुरुभ्रातृप्रद्युम्नसूरिशिष्यैराचार्यचन्द्रसेनसूरिभिः विक्रमसंवत् १२०७ वर्षे रचितायाम् उत्पादादिसिद्धिस्वोपज्ञवृत्तौ च नयचक्रास्तित्वस्य निर्दिष्टत्वात्[१] १२०७ वर्षं यावद् नयचक्रस्य विद्यमानत्वं स्पष्टमेव प्रतीयते। किन्तु ततः परं विक्रमसंवत् १३३४ वर्षे विरचिते प्रभावकचरिते प्रभाचन्द्राचार्यैर्नयचक्रानुपलब्धेरावेदितत्वादनयोश्चन्द्रसेनप्रभाचन्द्राचार्ययोरन्तरा कस्मिंश्चित् समये नयचक्रं विलुप्तमिति प्रतीयते। ततः परमुपलभ्यमाना 'नयचक्रवाल'ग्रन्थस्योल्लेखास्तु[३] सिंहसूरिक्षमाश्रमणविरचितां नयचक्रटीकामाश्रित्य प्रवृत्ता इति संभाव्यते। एतद्विषयेऽस्माभिष्टिप्पणेषु[४] विस्तरेण प्रपञ्चितमिति तत्रैवावलोकनीयं विस्तरार्थिभिः।

नयचक्रमूलसङ्कलनोपायाः

एवं चिराल्लुप्तस्यास्माभिरपीतस्ततो भृशं गवेषयमाणैरनुपलब्धस्य मल्लवादिप्रणीतनयचक्रस्य सङ्कलनाय ग्रन्थान्तरेषु नयचक्रादुद्धृताः पाठा अस्माभिश्चिरं गवेषिताः। किन्तु आश्चर्यमेतद् यदस्माद् ग्रन्थाद्

'लौकिकैर्व्यवहारोऽपि न यस्मिन्नवतिष्ठते।
तत्र साधुत्वविज्ञानं व्यामोहोपनिबन्धनम्॥' [पृ. ८ पं. ३]
'विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत्।
जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम्॥' [पृ. ९ पं. ६]

इति कारिकाद्वयमेव ग्रन्थान्तरेषूद्धृतमिदानीमुपलभ्यते[५]। अतो नयचक्रवृत्त्यन्तर्गतप्रतीकाद्यनुसारेण नयचक्रमूलमत्र महता परिश्रमेण सङ्कलितमस्माभिः। वृत्तिकारा हि सिंहसूरिक्षमाश्रमणा न प्रतीकान् धृत्वा नयचक्रं व्याचक्षते, अपि तु प्राधान्येन तात्पर्यमेव प्रकाशयन्ति। अतो बहुषु स्थलेषु प्रतीका विविच्य दुर्निर्णेयाः, बहुषु स्थलेषु सन्दर्भानामाद्यान्त्यभागानुपन्यस्यापराणि पदानि 'इत्यादि-यावत्'शब्दाभ्यां सङ्केतयित्वैव परित्यक्तानि, 'स्पष्टम्, सुगमम्' इत्याद्युक्त्याऽपि बहवो नयचक्रसन्दर्भा वृत्तिकृद्भिरव्याख्याताः। अतः प्रतिपदं पुनः पुनश्चिरं चिन्तयित्वातिपरिश्रमेण यथामति प्रतीकान् विविच्य संकलय्य च नयचक्रमूलमत्र संयोजितमस्माभिः। अस्मिन् संपादने नयचक्रमूलसंयोजनस्यात्यन्तं कठिनत्वात् तत्र सर्वतोऽप्यधिकतमः परिश्रमोऽस्माभिरनुभूतः। या च यावती च सामग्र्यस्माभिर्लब्धा सा सर्वैवाऽत्र कार्येऽस्माभिरुपयुक्ता। यत्र नयचक्रकृता ग्रन्थान्तरेभ्यो वचांस्युद्धृतानि तत्र दुर्लभानपि तान् ग्रन्थानन्विष्य तदनुसारेण योजितमत्र मूलम्। दिङ्मात्रमत्रोदाहरामः—

---

१ दृश्यतां टिप्पृ० १ टि० २, टिप्पृ० १३ पं० २–१४॥ २ दृश्यतां टिप्पृ० २ पं० ८–१०॥ ३ "ख्याताः प्रमाणमीमांसा प्रमाणोक्तिसमुच्चयः। नयचक्रवालतर्कः स्याद्वादकलिका तथा॥ १८॥ प्रमेयपद्ममार्तण्डस्तत्त्वार्थः सर्वसाधनः। धर्मसंग्रहणीत्यादितर्कौघा जिनशासने॥ १९॥' इति विक्रमीयचतुर्दशशताब्द्या उत्तरार्धे पञ्चदशशताब्द्याश्च प्रारम्भे वर्तमानैर्मलधारिराजशेखरसूरिभिर्विरचिते वाराणसेययशोविजयग्रन्थमालातः प्रकाशिते षड्दर्शनसमुच्चये। विक्रमीयचतुर्दशशताब्द्या उत्तरार्धे विद्यमानैर्जिनप्रभसूरिभिः जिनागमस्तवे, विक्रमीयपञ्चदशशताब्द्यां विद्यमानैर्गुणरत्नसूरिभिः हरिभद्रसूरिप्रणीतषड्दर्शनसमुच्चयस्य बृहद्वृत्तौ, बृहट्टिप्पनिकाख्यायां प्राचीनग्रन्थसूच्यां च ये नयचक्रवालविषयका उल्लेखास्तेऽस्माभिः टिप्पृ० २ टि० ६ इत्यत्र प्रदर्शिता एव। यदा नयचक्रं विलुप्तं केवलाया नयचक्रटीकाया एव चोपलब्धिरासीत् तदानीन्तना एव एते सर्वेऽपि नयचक्रवालसम्बन्धिन उल्लेखाः, अतो नयचक्रटीकामाश्रित्येमे उल्लेखाः प्रवृत्ता इति वयं विभावयामः॥ ४ दृश्यतां टिप्पृ० २ टि० ६॥ ५ दृश्यतां पृ० ८ टि० १२। टिप्पृ० १३ पं० २–१४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"यच्चाप्यभिहित**मभिधर्मकोशे** यदेतदनेकप्रकारभिन्नमित्यादि यावदनेकवर्णसंस्थानं पश्यतः" [पृ० ७८ पं० ८] इति पूर्वपक्षमुद्दिश्य **नयचक्रवृत्तौ** तस्य विस्तरेण परीक्षा विलोक्यते । **वसुबन्धुर**चिता **अभिधर्मकोश**-कारिकास्तेषां च स्वोपज्ञं विस्तृतं **भाष्य**मेतदुभयमपि **अभिधर्मकोश**नाम्ना व्यपदिश्यतेऽतो **मल्लवादिक्षमाश्रमणै**-**रभिधर्मकोशभाष्य**मत्राभिधर्मकोशनाम्ना निर्दिष्टम्।[१] **नयचक्र**संपादनारम्भसमये 'सभाष्यः अभिधर्मकोशः संस्कृत-भाषायां नष्टः' इति प्रसिद्धिरभूत् । अस्माभिस्तु संस्कृतभाषायां तदवाप्तये चिरं प्रयतमानैः 'पं० **राहुलसांकृत्या**-यनमहाशयैरचिरादेव **भोट**देशात उपलब्धस्य **अभिधर्मकोशभाष्यस्य** 'फोटो'प्रतिकृतयः **शान्तिनिकेतन**-विद्यालयेऽध्यापकानां विद्वद्वरश्री**प्रह्लादप्रधान**महाशयानां सविधे सन्ति' इति श्रुतम् । अस्मदभ्यर्थितः सर्वोऽप्य-भिधर्मकोशभाष्यांशः **प्रह्लादप्रधान**महोदयैः शीघ्रमेव लिखित्वा महता सौजन्येनास्मत्सविधे प्रेषितः । ततो **मल्लवादि**भिरभिधर्मकोशभाष्यादुद्धृतः सर्वोऽपि पाठस्तदनुसारेण **नयचक्रवृ**त्त्यनुसारेण च पृ० ७८–७९ इत्यत्र **नयचक्रमूले**ऽस्माभिर्दर्शितः । **प्रह्लादप्रधान**महोदयेभ्यो लब्धोऽभिधर्मकोशभाष्यांशः 'पृ० ७८ टि० ५, टिपृ० ३७–३९, ४५, ४६, ४९, ५०' इत्यत्र मुद्रितोऽतस्तज्जिज्ञासुभिस्तत्र विलोकनीयम्।[२]

पृ० ९३ पं० १ इत्यत्र बौद्धग्रन्थाद् **मल्लवादि**भिरुद्धृतः **"रज्ज्वां सर्प इति ज्ञानम्"** इत्यादिश्लोको **नयचक्रवृ**त्त्यनुसारेण हस्तवालप्रकरणस्य **भोट**भाषानुवादानुसारेण च **नयचक्रमूले**ऽस्माभिर्योजितः । दृश्यतां **भोट**परिशिष्टे टिपृ० १३६ । अन्येऽपि 'पृ० ८८ पं० ३, पृ० ३०६ पं० १' ईत्यादिषु **मल्लवादिना** **प्रमाणसमुच्चया**दिबौद्धग्रन्थत उद्धृताः पाठाः सम्प्रति संस्कृतेऽनुपलभ्यमानत्वात् तेषां बौद्धग्रन्थानां **भोटा**दि-भाषान्तरसाहाय्येनास्माभिर्**नयचक्रमूले** योजिताः ।

पृ० १३१ पं० २६ इत्यत्र "उक्तं हि" इत्युल्लिख्य **मल्लवादि**भिरुद्धृता "अनुवादादर" इत्यादि-कारिका **बृहत्कल्पवृ**त्त्याद्यन्तर्गतावतरणसाहाय्येन **नयचक्रमूले**ऽस्माभिर्योजिता । दृश्यतां टिपृ० ५८ पं० ५ ।

दिङ्मात्रमेतत् । ईदृशेष्वनेकस्थानेषु मुद्रितामुद्रितनानादेशोपलब्धनानाभाषानिबद्धग्रन्थानां साहाय्येन **नयचक्रमूल**संकलनाय चिरं प्रयतितमस्माभिः ।

किञ्चान्यत्, अनेकस्थानेषु वृत्त्यनुसारेण दुर्निर्णेया **नयचक्रमूल**पाठा सुदूरं गत्वा **वृत्तिका**रेणातिदेशादि-प्रसङ्गेष्वक्षरशः किञ्चिद्भेदेन वा वृत्तावुपन्यस्ताः । एतादृशान् वृत्त्यन्तर्गतान् सर्वपाठानितस्ततः समुच्चित्य तदनुसारेण यथायोगं **नयचक्रमूल**मनेकस्थानेष्वस्माभिः सङ्कलितमत्र । तथाहि 'पृ० ६५–७०' इत्यत्र **विद्य**-मानं मूलं 'पृ० १०९ पं० २५–पृ० ११० पं० १६' इत्यत्र वर्णितमतिदेशमवलम्ब्य सङ्कलितम् । 'पृ० २४८–२५८' इत्यत्रस्थं मूलं 'पृ० २७५ पं० २८–पृ० २७७ पं० १३' इत्यत्र **नयचक्रवृ**त्तावुल्लिखितं पाठमाश्रित्य योजितम् । एवमन्यत्रापि बहुषु स्थानेषु योजितं **नयचक्रमूलम्** । ये चातिदेश-पूर्वाभिहितस्मारणादि-प्रसङ्गेन निर्दिष्टा **नयचक्रमूल**कल्पने सहायकाः संक्षेपेण विस्तरेण वा **नयचक्रवृ**त्त्यन्तर्गता ईदृशाः पाठास्ते विवेचकानां सौकर्यायात्र विशिष्टेषु [पैका ब्लेक नं० १] अक्षरेषु मुद्रिताः । अतिदेशादिप्रसङ्गवर्णितयद्वाक्य-

---

१ अभिधर्मकोशकारिका-भाष्ययोः **कोश**नाम्ना व्यवहारोऽपि प्रसिद्ध एव, दृश्यताम् **अभिधर्मदीपवृत्तिः** पृ० १८, ३३, ४०, ४१, ४७, ६५, ८१, ९०, ९३ इत्यादि ॥ २ **अभिधर्मकोशभाष्यस्य** परःशतेभ्यो वर्षेभ्यः प्राक् सञ्जातं **भोट**भाषानुवादं **चीन**भाषानुवादं चावलम्ब्य L. de la Vallee Poussin इत्येभिः कृतः **फ्रेंच**भाषानुवादः Paris नगरात् (1931 A. D. वर्षे) प्रकाशित उपलभ्यते, सोऽपि चास्माभिरुपयुक्तोऽत्र ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सन्दर्भानुसारेण च **न**यचक्रमूलं सङ्कलितं तेषामुल्लेखोऽपि तत्र तत्र टिप्पणेषु विहितोऽस्माभिः। इत्थं यथामति यथाशक्ति च **मल्ल**वाद्यभिप्रेतं मूलं कल्पयितुं बहुतरं परिश्रान्तमस्माभिः। यत्र तु मूलं कल्पयितुं वयमसमर्थास्तत्र तावानंशो रिक्तः स्थापितो बिन्दुभिश्च मूले निर्दिष्टः, दृश्यतां पृ० १० पं० १, पृ० ८६ पं० ५, पृ० ९२ पं० ५ इत्यादि।

टीकाकृतां सिंहसूरिगणिवादिक्षमाश्रमणानां परिचयः

"इति नियमभङ्गो नवमोऽरः श्री**मल्लवादि**प्रणीत**नयचक्र**स्य **टीका**यां **न्यायागमानुसारिण्यां सिंहसूरि**गणिवादिक्षमाश्रमणदृब्धायां समाप्तः" इति नवमारसमाप्तौ "इति नियमनियमभङ्गो नाम आदितो विधिभङ्गादारभ्य गम्यमाने द्वादशो भङ्गो **द्वादशार**नयचक्रस्य श्री**मल्लवादि**कृतस्य टीकायां श्रीमत्सिंहसूरिगणिविरचितायां समाप्तः" इति द्वादशारसमाप्तौ चोल्लेखदर्शनादियं **न**यचक्रवृत्तिः **सिंह**सूरिभिर्विरचिता ते च '**वादि-गणि-क्ष**माश्रमण' पदविभूषिता आसन्निति स्फुटमेव प्रतीयते। विविधदार्शनिकमतमतान्तरोल्लेखैरागमसिद्धान्तवर्णनैश्च परिपूर्णत्वादस्याष्टीकाया '**न्या**यागमानुसारिणी' इति **टी**काकृद्विहितो निर्देशः सर्वथा घटमान एव। इयं टीका टीकाकृतां परमं वैदुष्यं स्फुटमेव प्रकाशयति।

"इति **मल्ल**वादिक्षमाश्रमणपादकृत**न**यचक्रस्य तुम्बं समाप्तम्। ग्रन्थाग्रम् १८०००" इति टीकान्त उल्लेखदर्शनाद् 'द्वात्रिंशद्भिरक्षरैरेकः श्लोकः' इति गणनयाष्टादशसहस्रश्लोकमानेयं **टी**का प्रतिभाति। **दार्शनिका**गमिक**यौ**गिक**आ**युर्वेदिकाद्यनेकविधोल्लेखपरिपूर्णा दुरवगाहसूक्ष्मचर्चागहना चेयं **टी**का **टी**काकृतां **सिं**हसूरिक्षमाश्रमणानामनेकशास्त्रपारगामित्वमावेदयति स्वयमेव। एतद् विहायापरं किमपि तेषां जीवनवृत्तं नोपलभ्यते।

विशेषावश्यकभाष्यस्य [2]**को**ट्टार्यवादिगणिमहत्तरप्रणीतायां वृत्तौ **सिं**हसूरिक्षमाश्रमणप्रणीतैका कारिकेत्थमुद्धृता विलोक्यते—

"**सिंहसूरिक्षमाश्रमण**पूज्यपादास्तु—

सामान्यं निर्विशेषं द्रवकठिनतयोर्वार्यदृष्टं यथा किम्?
योन्या शून्या विशेषास्तरव इव धरामन्तरेणोदिता: के?।

---

१ **टी**कानाम्रस्तुलना—"समाप्ता चेय**मागमानुसारिणी मध्यान्तविभागटीका** आचार्य**स्थिर**मत्युपरचिता। [पारमितापञ्च] विंशतिसाहस्रिकायां हृदयं समाप्तम्।" इति बौद्धाचार्य**स्थिर**मतिरचितायां **म**ध्यान्तविभागटीकायाम् पृ० २६२। **परमार्थेन चीन**भाषायां निबद्धाद् **व**सुबन्धुजीवनचरित्राद् 'वसुबन्धुसमकालीनेन बौद्धाचार्येण **सङ्घभद्रे**ण '**न्यायानुसारः**' इत्यभिधान**म**भिधर्मकोशस्य विवरणं रचितम्' इत्यपि ज्ञायते॥ २ भगवद्भि**र्जिनभद्र**गणिक्षमाश्रमणैः प्रारब्धा **वि**शेषावश्यकभाष्यस्य स्वोपज्ञवृत्तिः षष्ठगणधरवक्तव्यतां यावद् विरचिता, ततः परं तेषां दिवंगतत्वादपूर्णा वृत्तिः **को**ट्टार्यगणिवादिमहत्तरैः समाप्तिं नीता। मुनिराजश्रीपुण्यविजयमहोदयानां सौजन्यादस्माभिरस्याः १८६ पत्रात्मको हस्तलिखित आदर्शोऽधिगतः। तत्र ८१ पत्रपर्यन्तं षष्ठगणधरवक्तव्यतां यावद् **जि**नभद्रगणिक्षमाश्रमणविरचिता व्याख्या, ततः परं तु **को**ट्टार्यगणिरचिता व्याख्या। तत्र बौद्धाचार्यस्य **दि**ङ्नागस्यानेकानि वचांसि **को**ट्टार्यगणिभिरुद्धृतानि। विक्रमीयाष्टमशताब्द्यां विद्यमानयोः प्रसिद्धदार्शनिकयोर्मीमांसक**कु**मारिल-बौद्धाचार्य**धर्म**कीर्त्योस्त्वेकमपि वचनमत्रोद्धृतं न विलोक्यते। अतो भगवन्तः **को**ट्टार्यगणिनः **कु**मारिल-**ध**र्मकीर्त्यभ्युदयादवश्यं प्राक्कालीनाः, **आ**वश्यकचूर्णेः **सिं**हसूरिक्षमाश्रमणानां च तत्र नामोल्लेखदर्शनाद् **आ**वश्यकचूर्णिकृतः **सिं**हसूरिक्षमाश्रमणतश्चार्वाचीनाः तयोः समकालीना वेति प्रतीयते। अपरेऽपि सन्ति **कोट्याचार्या** नाम **वि**शेषावश्यकभाष्यस्य टीकाकाराः, किन्तु ते **को**ट्टार्यगणिभ्यो भिन्ना अर्वाचीनाश्चेति सम्भाव्यते। **को**ट्याचार्यैर्बहुषु स्थलेषु **ध**र्मकीर्त्यादेर्वचांसि उद्धृतानि। अतो **धर्म**कीर्तेरर्वाग्भावित्वं तेषां स्फुटमेव प्रतीयते॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किं निर्मूलप्रशाखं सुरभि खकुसुमं स्यात् प्रमाणप्रमेयम् ?
स्थित्युत्पत्तिव्ययात्म प्रभवति हि सतां प्रीतये वस्तु जैनम् ॥

अस्य दार्शनिकविचारसारगर्भितस्य पद्यस्य प्रणेतृत्वेन **कोट्टार्य**गणिभिर्निर्दिष्टाः **सिंह**सूरिक्षमाश्रमणपूज्यपादा **नयचक्र**टीकाकृद्भ्यः **सिंह**सूरिक्षमाश्रमणेभ्योऽभिन्ना इति वयं सम्भावयामः । यद्यस्माकं सम्भावना यथार्था तर्हि **नय**चक्रटीकाकृद्भिरपरोऽपि ग्रन्थः प्रणीत इति सुवचम् ।

टीकाकृतां समयः

टीकाकृतां **सिंह**सूरिक्षमाश्रमणानां नियतः समयः क्वापि निर्दिष्टो न दृश्यते । तथापि विक्रमीयाष्टमशताब्दीवर्तिनां **कुमारिल-धर्म**कीर्त्यादीनां प्रसिद्धदार्शनिकग्रन्थकाराणां मतोल्लेखस्य **नय**चक्रवृत्तौ क्वाप्यदर्शनाद् **न**यचक्रवृत्तिकृतां तेभ्यः प्राचीनत्वं स्पष्टमेव प्रतीयते । यद्यपि **न**यचक्रवृत्तौ पृ. ६ इत्यत्रोद्धृतं "जं चोद्दस" इत्यादिकारिकात्रयं किञ्चित् क्रमभेदेन **वि**शेषावश्यकभाष्ये दृश्यते, **वि**शेषावश्यकभाष्यस्य च ५३१ शकसंवत्सरोल्लेखिगाथाद्वयेन[१] सहिता तालपत्रेषु लिखितैका प्राचीना प्रति**र्जे**सलमेरनगरे[२] विद्यते तथापि तदनुसारेणात्र **वि**शेषावश्यकभाष्य-**न**यचक्रवृत्त्योः पूर्वापरभावो निर्णेतुं न पार्यते । तथाहि–एतत् कारिकात्रयं **जिन**भद्रगणिक्षमाश्रमणैरपि ग्रन्थान्तरादुद्धृतं सम्भाव्यते, अतः **सिंह**सूरिक्षमाश्रमणानां समयनिर्णय एतन्न बहूपयुज्यत इति वयं मन्यामहे । विस्तरार्थिभिः टिपृ. ९ पं. २५–टिपृ. १० इत्यत्र विलोकनीयम् ।

इदं तु सम्भावयामः । **बौद्ध**न्यायस्य पितृत्वेन प्रसिद्धो **दिङ्ना**गाचार्यः 'अपोहः शब्दार्थः' इति वादस्य प्रणेता । **प्र**माणसमुच्चयस्यापोहपरिच्छेदेऽन्यत्र चापोहविषयके प्रकरणे विस्तरेण स्वमतमिदं प्रतिपादितं तेन । **नयचक्र**वृत्तौ च पृ. १९ पं. १८ इत्यत्र **सिंह**सूरिक्षमाश्रमणैः "कुतोऽर्थान्तरापोहलक्षणं विद्वन्मन्याद्यतनबौद्धपरिक्लृप्तं सामान्यम्" इति 'अद्यतन'शब्देन अपोहवादिनो निर्देशाद् **दिङ्ना**गस्य **सिंह**सूरेश्च समीपकालभावित्वं प्रतीयते । **वीर**संवत् ९८० वर्षे [विक्रमसंवत् ५१० वर्षे] **दे**वर्धिगणिक्षमाश्रमणतः पुस्तकारूढायाः सम्प्रति विद्यमानाया आगमिकपाठपरम्परायाः **सिंह**सूरिक्षमाश्रमणादृतागमिकपाठपरम्परातः सुतरां भिन्नत्वादपि **सिंह**सूरिक्षमाश्रमणानां प्राचीनत्वं प्रतीयते । **न**यचक्रवृत्तौ 'पृ. १४५ पं. १९, पृ. २४० पं. १०' इत्यादौ क्वचि**न्न**यचक्रपाठभेदोल्लेखदर्शनाद् **मल्ल**वादि-**सिंह**सूरिक्षमाश्रमणयोः परस्परतः कालकृतमपि किञ्चिदन्तरं प्रतिभाति ।

---

१ **शक**संवत्सरतो विक्रमसंवत्सरस्य १३४ वर्षैराधिक्यं चैत्रमासे । अतोऽत्र ६६५ **विक्रमसंवत्सरोऽत्र** भवतीति ध्येयम् ॥ २ अत्रेदमवधेयम् । **जे**सलमेरनगरे विद्यमानस्य **वि**शेषावश्यकभाष्यस्यान्ते ५३१ शकसंवत्सरोल्लेखीदं गाथाद्वयमित्थं दृश्यते—

"पंच सता इगतीसा **स**गणिवकालस्स वट्टमाणस्स । तो चेत्तपुण्णिमाए बुधदिण सातिंमि णक्खत्ते ॥
रज्जेऽणुपालणपरे **सी**[लाइ]च्चम्मि णरवरिंदम्मि । **व**लभीणगरीए इमं महवि......मि जिणभवणे ॥"

अस्मिन् गाथाद्वये ५३१ **शक**संवत्सरस्य **व**लभीनगर्यां **शी**लादित्यस्य राज्यश्चोल्लेखो दृश्यते । अन्तिमे तु चरणे कानिचिदक्षराणि त्रुटितानि, अतस्तस्मिन् संवत्सरे किं जातं कृतं वेति न ज्ञायते । इदं च गाथाद्वयं केनचिद्टीकाकृतापि न व्याख्यातम्, अन्येषु भाष्यादर्शेष्वपि क्वचिन्न दृश्यते । अतः '५३१ **शक**संवत्सरे चैत्रपूर्णिमायां **बु**धवासरे **स्वा**तिनक्षत्रे **व**लभ्यां नगर्यां **शी**लादित्ये राज्ञि राज्यमनुपालयति **जि**नभद्रगणिक्षमाश्रमणैः किञ्चित् कृतं तेषां वा सम्बन्धी कश्चिद् व्यतिकरो जातः' इत्यर्थोऽत्र विवक्षित इति सम्भाव्यते ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सम्पादनोपयुक्तानां नयचक्रवृत्तिप्रतीनां परिचयः

नयचक्रवृत्तेः सम्पादने निम्नलिखिताः प्रतयोऽस्माभिरुपयुक्ताः—

भा०—भावनगरस्थायाः 'श्रेष्ठि श्री **डो**साभाई अभेचन्दनी पेढी' इत्यभिधाया जैनसङ्घसञ्चालितायाः संस्थाया ज्ञानभाण्डागारान्तर्गता ५७२ पत्रात्मिका प्रतिः। प्रतिपत्रं पृष्ठद्वयम्। प्रतिपृष्ठं १३ पङ्क्तयः। प्रतिपङ्क्ति प्रायः ४० अक्षराणि। अस्यां प्रतिपत्रं पार्श्वभागे [In the margin] '**न**यचक्रवालवृत्तिः' इत्युल्लेखो दृश्यते। इयं च प्रतिः पाठान्तरप्रदर्शनेऽत्र भा०संज्ञया व्यवहृता। अस्याः प्रारम्भे "ॐ नमो वीतरागाय। नमः श्रीमल्लवादिने।" इत्युल्लेखो दृश्यते। प्रान्ते तु प्रतेर्लेखयितॄणामीदृश उल्लेखो विलोक्यते—

"इति श्रीमन्**मल्ल**वादिक्षमाश्रव(म)णपादकृत**न**यचक्रस्य तुम्बं समाप्तं। ग्रन्थाग्रं १८००० । शुभं भवतु।

श्री**आर्यरक्षित**सूरेः प्रसृते विशाले गच्छे लसन्मुनिकुले **विधिपक्ष**नाम्नि।
सूरीश्वरा **गुणनिधान**सुनामधेया आसन् विशुद्धयशसो जगति प्रसिद्धाः॥ १॥
तत्पट्टपद्मतरणिः सरणिर्भवाब्धौ श्री**धर्ममूर्ति**रिति सूरिवरो विभाति।
सौभाग्यभाग्यसुखसद्गुणरत्नरत्नगोत्रः पवित्रचरितो महितो विनेयैः॥ २॥
तेन स्वश्रेयसे ज्ञानभाण्डागारे हि लेखिते। नन्दता**न्न**यचक्रोरुतुम्बपुस्तकमुत्त[म]म्॥ ३॥
पुञ्जो मुञ्जोपमो लक्ष्म्या मन्त्रि**गोविन्द**नन्दनः। श्रीगुरोराज्ञया सुज्ञः शास्त्रमे[त?]मलीलिखत्॥ ४॥"

विधिपक्षगच्छीयपट्टावल्यादिदर्शनेन **धर्ममूर्ति**सूरयो विक्रमीयसप्तदशशताब्द्यामासन्निति विक्रमसंवत् १६५० वर्षप्रायसमये ततः प्रागेव वा तैरियं प्रतिर्लेखिता प्रतीयते। विस्तरेण **धर्ममूर्ति**सूरीणां समय-जीवनचरितादिजिज्ञासुभि**र्वि**धिपक्षगच्छीयपट्टावल्येव विलोकनीया।

य०—समर्थश्रुतधरतार्किकशिरोमणिपवित्रनामधेयपूज्यपादसुप्रसिद्धन्यायविशारदन्यायाचार्यय**शोविजयो**पाध्यायैरनेकमुनिवृन्देन सह पत्तने लिखिता ३०९ पत्रात्मिका प्रतिः। सम्प्रतीयं प्रतिः अहम्मदाबादस्थे '**दे**वशानो पाडो' इत्यत्र विद्यमाने पं० **म**हेन्द्रविमलजीसत्के ज्ञानभाण्डागारे विद्यते। अस्या आद्यान्त्यपत्रयोः पार्श्वभागे [In the margin] '**न**यचक्रवालटीका' इत्युल्लेखो विलोक्यते, प्रारम्भे इत्थमुल्लेखो दृश्यते—

"भट्टारकश्री**हीरविजय**सूरीश्वरशिष्यमहोपाध्यायश्री**क**ल्याणविजयगणिशिष्यपण्डितश्री**ला**भविजयगणिशिष्यपण्डितश्री**जी**तविजयगणिसतीर्थ्यपण्डितश्री**नय**विजयगणिगुरुभ्यो नमः।

प्रणिधाय परं रूपं राज्ये श्रीविजय**दे**वसूरीणाम्।
नयचक्रस्यादर्शं प्रायो विरलस्य वितनोमि॥ १॥ ऐँ नमः॥"

अन्ते तु ईदृश उल्लेखो दृश्यते—

"इति श्री**मल्ल**वादिक्षमाश्रमणपादकृत**न**यचक्रस्य तुम्बं समाप्तम्॥ छ॥ ग्रन्थाग्रं १८०००॥

---

१ वैक्रमे १५८५ वर्षे धर्ममूर्तिसूरीणां जन्म, १५९९ वर्षे दीक्षा, १६०२ वर्षे सूरिपदम्, १६७० वर्षे स्वर्गगमनम्॥ २ एभिराचार्यैर्बहवः प्रतिष्ठाः कारिता बहवश्च ग्रन्था लेखिताः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मया । यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ॥ १ ॥

संवत् १७१० वर्षे पोसवदि १३ दिने श्री**पत्तन**नगरे॥ पं० श्री**यश**विजयेन पुस्तकं लिखितं। शुभं भवतु ॥

उदकानलचौरेभ्यो मूषकेभ्यो विशेषतः । कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन प्रतिपालयेत् ॥ १

भग्नपृष्ठकटिग्रीवा दृष्टिस्तत्र अधोमुखी । कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन प्रतिपालयेत् ॥ २ ॥

पूर्वं पं० **यश**विजयगणिना श्री**पत्तने** वाचितम् ॥ छ ॥

आदर्शोऽयं रचितो राज्ये श्रीविजय**देव**सूरीणाम् । सम्भूय यैरमीषामभिधानानि प्रकटयामि ॥ १ ॥

विबुधाः श्री**नयविजया** गुरवो **जयसोम**पण्डिता गुणिनः ।

विबुधाश्च **लाभविजया** गणयोऽपि च **कीर्तिरत्ना**ख्याः ॥ २ ॥

तत्त्वविजयमुनयोऽपि प्रयासमत्र स्म कुर्वते लिखने ।

सह **रविविजयै**र्विबुधैरलिखच्च **यशोविजय**विबुधः ॥ ३ ॥

ग्रन्थप्रयासमेनं दृष्ट्वा तुष्यन्ति सज्जना बाढम् । गुणमत्सरव्यवहिता दुर्जनदृक् वीक्षते नैनम् ॥ ४ ॥

तेभ्यो नमस्तदीयान् स्तुवे गुणांस्तेषु मे दृढा भक्तिः । अनवरतं चेष्टन्ते जिनवचनोद्भासनार्थं ये ॥ ५ ॥

श्रेयोस्तु ॥

सुमहानप्ययमुच्चैः पक्षेणैकेन पूरितो ग्रन्थः । कर्णामृतं पटुधियां जयति चरित्रं पवित्रमिदम् ॥ ६ ॥ श्रीः ॥"

पा०–**पत्तन**स्थजैनसङ्घसत्कज्ञानभाण्डागारीया प्रतिः । पत्रसङ्ख्या ४६९ । अन्त्यानि त्रिचतुराणि पत्राणि न विद्यन्तेऽतः प्रत्यन्ते किं लिखितमिति न ज्ञायते । प्रतेः प्रारम्भे तु य० प्रतिवदेव पाठ इति **य०** प्रतिमवलम्ब्यैवेयं प्रतिर्लिखितेति स्पष्टमेव ।

डे०–**अहमदाबाद**नगरे '**डे**लानो उपाश्रय' इत्यत्रस्थे जैनज्ञानकोशे विद्यमाना ४४८ पत्रात्मिका प्रतिः । इयमपि प्रतिः य० प्रतिमवलम्ब्य लिखिता । अस्या अन्ते ईदृश उल्लेखः–"ग्रंथाग्रं १८००० । संवत् १७२९ वर्षे कार्तिकवदि ७ शुक्रे लषीतं पुस्तकं श्रीरस्तु ॥"

लीं०–**लींबडी**नगरस्य जैनज्ञानभाण्डागारे विद्यमाना प्रतिः । इयं प्रतिः **डे०** प्रतितो लिखिता प्रतीयते । चतुर्थारपर्यन्तानि २४७ पत्राण्येवास्या अस्माभिर्लब्धानि । अतोऽन्ते कीदृश उल्लेख इति न ज्ञायते ।

वि०–पञ्चनददेशे **जीरा**ग्रामे **वि**जयानन्दसूरीणां ज्ञानमन्दिरे विद्यमाना ३८७ पत्रात्मिका प्रतिः । इयमपि प्रतिः परम्परया य० प्रतिमवलम्ब्यैव लिखिता । अस्याः प्रारम्भे ईदृश उल्लेखः—

"ॐ नमः श्रीजिनाय । प्रणिधाय परं रूपं राज्ये श्रीविजय**देव**सूरीणाम् । **न**यचक्रस्यादर्शं प्रायो विरलस्य वितनोमि ॥ ऐँ नमः ॥"

प्रत्यन्ते पुनरित्थमुल्लेखः—"ग्रन्थमानसंख्या १८००० । संवत् १७५३ वर्षे शाके १६१८ प्रवर्तमाने पौषमासे कृष्णपक्षे ३ तिथौ जीववासेर श्री**शर**षेजग्रामे लिखितमिदं पुस्तकम् ।"

रं०–**वि**जापुरनगरे **रं**गविमलजीगणिजैनग्रन्थभाण्डागारे विद्यमाना ५५२ पत्रात्मिका प्रतिः । इयमपि प्रतिः परम्परया य० प्रतित एवावतारिता । अस्याः प्रारम्भे "भट्टारकश्री**हीरविजय**सूरीश्वरशिष्य......" इत्यादिरुल्लेखो य० प्रतिवदेव । अन्तेऽपि "ग्रन्थाग्रं १८००० श्रीरस्तु । पूर्वं पं० **यश**विजयगणिना श्रीपत्तने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाचितम्" इत्यत आरभ्य "जयति चरित्रं पवित्रमिदम्" इत्यन्त उल्लेखो य० प्रतिवदेव। तदनन्तरमियांस्त्वधिको निर्देशः—"संवत् १७२४ वर्षे फाल्गुनकृष्णे १ प्रतिपदा भौमे लिखितमिदं पुस्तकं शुभं भवः। श्रीरस्तु।"

ही०–**वाराणसीस्थे सुपार्श्वनाथजैनमन्दिरे** विद्यमाने श्री**ही**राचन्द्रजीयतिसत्कज्ञानकोशे विद्यमाना ५३४ पत्रात्मिका प्रतिः। इयं प्रतिः परम्परया य० प्रतितः साक्षात् तु रं० प्रतितोऽवतारिता प्रतीयते पाठसाम्यात्। अस्याः प्रारम्भे "प्रणिधाय परं रूपम्......" इत्यादिरुल्लेखो य० प्रतिवदेव। अन्तेऽपि "पूर्वं पं० **य**शविजयगणिना वाचितम्" इत्यादिः "जयति चरित्रं पवित्रमिदम्" इत्यन्त उल्लेखो य० प्रतिवदेव।

इदं तु ध्येयम्–**य**० प्रतौ, य० प्रतिमवलम्ब्य लिखितासु सर्वासु पा० डे० आदिप्रतिषु च पार्श्वभागे '**न**यचक्रवालटीका' इत्युल्लेखो दृश्यते।

इदमपि ध्येयम्–वि० रं० ही० प्रतिषु षष्ठेऽरे [पृ० ४२५ पं० २४–पृ० ४२७ पं० १८] एकपत्रपरिमितस्य पाठस्य पतितत्वदर्शनाद् वि० रं० ही० प्रतयो न साक्षाद् य० प्रतितोऽवतारिताः, अपि तु **य**० प्रतितोऽवतारितात् कुतश्चिदन्यस्मादेवादर्शाल्लिखिता इति स्पष्टमेव प्रतीयते।

प्रतीनां समानत्वासमानत्वे

पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतीनां य० प्रतितोऽवतारितत्वादस्मिन् सम्पादने वस्तुतो भा० प्रतिः य० प्रतिश्चेति द्वे एव प्रती आधारभूते। किन्तु सम्पादनकाले सप्तमारमुद्रणपर्यन्तं य० प्रतेरनुपलब्धत्वात् तत्स्थाने पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतयोऽस्माभिरुपयुक्ताः। सप्तारमुद्रणानन्तरं विक्रमसंवत् २०१२ वर्षे 'अहमदाबाद'नगरे 'देवशानो पाडो' इत्यत्र पं० महेन्द्रविमलजीसत्कज्ञानकोशतोऽकल्पितैव य० प्रतिप्राप्तिः सञ्जाता। मुनिराजश्री**पु**ण्यविजयजीमहाभागैः शीघ्रमेव य० प्रतिरस्मत्सविधे '**पा**लिताणा'नगरे प्रेषिता। य० प्रतिविषयको विस्तृतो वृत्तान्तो जिज्ञासुभि**र्गु**र्जरभाषानिबद्धास्मदीयप्रस्तावनातोऽवसेयः। पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतिषु ये केचन परस्परतः पाठभेदा विलोक्यन्ते ते य० प्रत्यक्षराणां सम्यगनवगमादिकारणवशाल्लेखकहस्तादेव प्रसूताः। **क्वचिच्च** य०प्रतिस्थसङ्केतानवगमाल्लेखकैर्भूयान् पाठव्यत्ययोऽपि कृतः। अष्टमेऽरे ६६६–६७६ पत्रेष्वीदृशो भूयान् व्यत्ययः सञ्जातः। एवं च पा० डे० लीं० रं० ही० प्रतीनां य०प्रतिमूलकत्वाद् य०प्रतौ भा०प्रतौ च यत् परस्परतो वैशिष्ट्यं तदेवात्रोपदर्श्यते—

---

१ दृश्यतां पृ० ३६३ पं० २४ टि० ६, टिपृ० ९३ पं० २१–२४॥ २ अष्टमेऽरे **"शब्दलिङ्गगतपक्षापक्ष°"** [पृ० ६६६ पं० १०] इत्यत्र य० प्रतौ २३० पत्राङ्कः समाप्यते तदनन्तरं २३४ तमे पत्रे प्रमादात् २३१ इत्यङ्को लिखितः, एवं २३१ तमे पत्रे २३२ इत्यङ्कः, २३२ तमे २३३ इत्यङ्कः, २३३ तमे च २३४ इत्यङ्को लिखितः। य० प्रतौ प्रमादादेवं लिखितेष्वप्यशुद्धाङ्केषु तत्रैव वामकोणे शुद्धाङ्का अप्युपन्यस्ताः। पा० प्रतिलेखकस्येदं सम्यग् विज्ञातमासीत्, अतस्तेन शुद्धाङ्कानुसारेणैव पा० प्रतिर्लिखिता। किन्तु य० प्रतिमवलम्ब्य कैश्चिदन्यलेखकैर्याः प्रतयो लिखितास्तैस्त्वेतदपरिज्ञानादशुद्धाङ्कानुसारेणैव स्वप्रतयो लिखिता इति २३० पत्रानन्तरम् २३४ तमं पत्रं तैर्लिखितमिति तासु महान् पाठव्यत्ययः सञ्जातः। अतो **°सिष्यते** [पृ० ६७४ पं० १४] इत्यत आरभ्य **अत्रशब्दवाच्यस्याग्निविशिष्टस्य धू०** [पृ० ६७६ पं० २२] इत्यन्तः पाठोऽसम्बद्ध एव **शब्दलिङ्गगतपक्षापक्ष°** [पृ० ६६६ पं० १०] इत्यनन्तरमापतितः, यच्च तस्य स्वस्थानं ततः परिभ्रष्टः। एवं पाठव्यत्ययदूषितप्रत्यनुसारेण यदि सम्पादनं क्रियते तदा बहूनि पत्राणि पाठव्यत्यासेन भ्रष्टानि स्युः। भगवतो **गुरुदेवस्य** कृपयास्माकं सौभाग्याद् भा०य०पा०प्रतीनामस्मत्सविधे सद्भावान्नायं पाठदोषोऽस्माकं सम्पादने आयात इति सुधीभिरवधेयम्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भा० प्रतिः **य०** प्रतितः पूर्वं लिखिता, **य०** प्रतावविद्यमानाः परःशताः शुद्धपाठा अनेकाश्च पङ्क्तयो[1] **भा०** प्रतौ सुरक्षिता विद्यन्ते, पञ्चमेऽरे पृ. ३९७ पं. १५ पृ. ४०० पं. १८ इत्यत्र **य०** प्रतौ भूयान् पाठविपर्यासो दृश्यते[2]। **भा०** प्रतौ तु यथावत् पाठः। द्वादशेऽरे[3] एकत्र सार्धपत्रप्रमितः पाठो य. प्रतौ न विद्यते, भा. प्रतौ तु उपलभ्यते। **नय**चक्रवृत्तेर्भा०प्रतौ ये पाठा आगमग्रन्थेभ्य उद्धृतास्तत्र 'त'कार[4]-बाहुल्यं तथा 'ध'कारप्रयोग इत्यादीनि जैनागमानां प्राकृतभाषायाः प्राचीनानि लक्षणानि सुरक्षितानि, **य०** प्रतौ तु तत्र यथाक्रमं क्वचिद् 'य'कारः 'ह'कारश्चेत्यादि किञ्चित् परिवर्तनमपि दृश्यते। एतदादयो य.प्रतितो विशेषा भा.प्रतौ विलोक्यन्ते। एवं य.प्रतावपि भा.प्रतितो भूयांसो विशेषा विलोक्यन्ते। तथाहि—**य०** प्रतेराधारभूत आदर्शः कश्चिदन्य एवातो **भा०** प्रतौ यत्र परःसहस्रा अशुद्धपाठा दृश्यन्तेऽनेकाश्च पङ्क्तयः[5] पतितास्तत्र य. प्रतौ यथावत् पाठा उपलभ्यन्ते। **यशो**विजयोपाध्यायैरादौ स्वयं वाचयित्वा सूक्ष्मेक्षिकया सावधानतया च निर्मितत्वाद् **य०** प्रतिः **भा०** प्रत्यपेक्षया बहुषु स्थानेषु शुद्धतरा। विविधजैनज्ञानभाण्डागारेषूपलभ्यमानानां भा० प्रतिव्यतिरिक्तानां सर्वासामपि **नय**चक्रवृत्तिप्रतीनां य० प्रतिमूलकत्वादियं शुद्धपाठपरम्परा **यशो**विजयोपाध्यायैरेव बाहुल्येन सुरक्षिता। एवमपि अनेका अशुद्धयो[6] य० भा०प्रत्योः समाना एवातः परम्परया द्वे अपीमे कस्याश्चिदेकस्या एव प्रतेरवतीर्णे इति निश्चितमेव प्रतीयते। अत एवं प्रतीयते—

---

१ दृश्यतां पृ० ८ पं० ११ टि० ५, पृ० २० पं० ९ टि० ३, पृ० ४९ टि० ६, पृ० ९० टि० ६, पृ० १४४ टि० ५, पृ० १५५ टि० २, पृ० १९८ टि० २, पृ० २४९ टि० ९, पृ० २५४ टि० ६, पृ० २७६ टि० १, पृ० २८४ टि० ३, पृ० २८७ टि० ४, पृ० २९० टि० १, पृ० २९५ टि० ४, पृ० ३०५ टि० ७,९, पृ० ३०९ टि० ७, पृ० ३११ टि० ५, पृ० ३२४ टि० १, पृ० ३२७ टि० ३, पृ० ३३० टि० ७, पृ० ३४७ टि० ८, पृ० ३७३ टि० ४, पृ० ३७९ टि० ६, पृ० ३९१ टि० ४, पृ० ४०३ टि० ५, पृ० ४१४ टि० ७, पृ० ४२२ टि० २, पृ० ४२४ टि० १४, पृ० ४२५ टि० ८, पृ० ४३१ टि० ८, पृ० ४५० टि० ३, पृ० ४७४ टि० ७, पृ० ५०४ टि० ६, पृ० ५०५ टि० १०, पृ० ५६१ टि० १, पृ० ६६० टि० ६, पृ० ७२१ टि० २ इत्यादि ॥ २ दृश्यतां पृ० ३९७ टि० ७ ॥ ३ "सोऽपि क्षणो नास्ति यश्चैत्रदण्डित्वव्यपदेशकारणदण्डस्थानीयस्त्वभाक्, येन सम्बन्धात् क्षणोऽस्यास्तीति क्षणिक उच्यते ततोऽन्यः। अतः" इत्येतदनन्तरं द्वादशेऽरे **"सा क्षणिकताऽत्र नास्त्येव शब्दार्थः"** इत्यादिः **"विशेषमपि चात्र ब्रूमः- ननूक्तवस्तु°"** इत्यन्तः सार्धपत्रपरिमितः पाठो य० प्रतौ त्रुटितत्वाद् नास्त्येव। गुरुदेवकृपया भा० प्रतौ तु [पृ० ५२१-२ तः ५२३-१ मध्ये] स उपलभ्यते। अतोऽत्र भा० प्रतिरत्यन्तमुपकरोति ॥ ४ दृश्यतां पृ० ११५ पं० ७, २४, टि० १४-१५, पृ० ११६ पं० १ टि० १ इत्यादि ॥ ५ दृश्यतां पृ० ३ पं० २० टि० १७, पृ० ७ पं० १४ टि० ९, पृ० ७३६ पं० २४ टि० ११ इत्यादि ॥ ६ दृश्यतां पृ० १० पं० १५ टि० ७, पृ० २८ पं० ११ टि० ६, पृ० ८७ पं० ७ पृ० ८८ पं० १६ टि० ८, पृ० १८१ टि० १, पृ० २२२ टि० ३, पृ० ३३० टि० ९, पृ० ३६१ टि० ६, पृ० ३७८ टि० ६, पृ० ४०५ टि० ४, पृ० ४०६ टि० १, पृ० ४७० टि० ४ इत्यादि ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

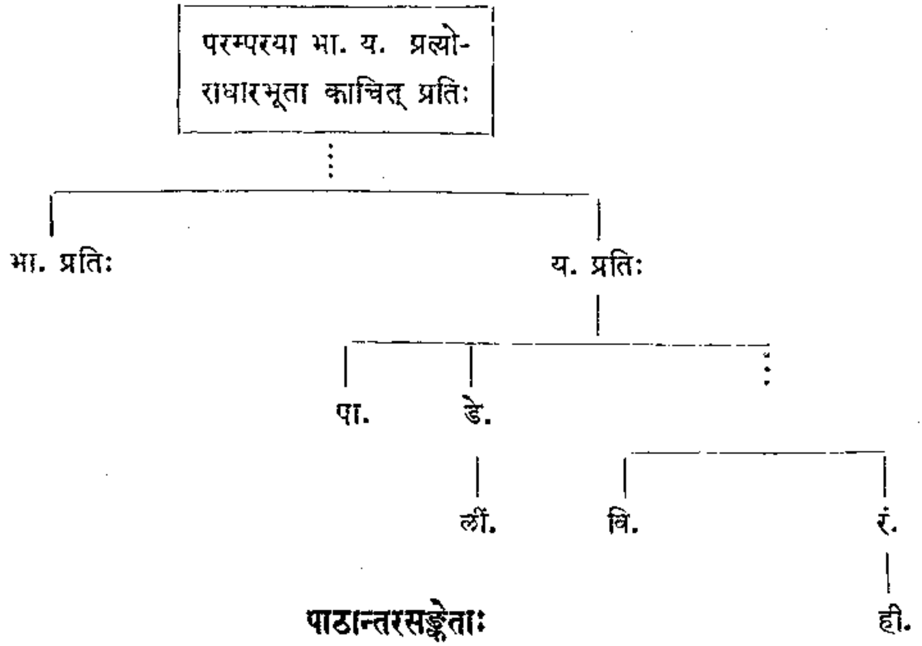

पाठान्तरसङ्केताः

भा० पा० डे० आदिसंङ्केतैः भा० पा० डे० आदिप्रतिस्थाः पाठभेदाष्टिप्पणेषु दर्शिताः। सप्तमार-मुद्रणपर्यन्तं य० प्रतेरनुपलम्भेऽपि पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतीनां य० प्रत्यवलम्बित्वाद् यत्र पा० आदिषु सर्वासु समानः पाठस्तत्र तत्स्थः पाठभेदो य० सङ्केतेनैव टिप्पणेषु दर्शितः। यत्र तु भा० प्रभृतिषु सर्वास्वपि प्रतिषु अशुद्धः पाठस्तत्र स पाठः प्र०सङ्केतेन टिप्पणेषु दर्शितः, अस्मदभिमतस्तु शुद्धः पाठो ग्रन्थे निवेशितः।

नयचक्रवृत्तेः संशोधनायावलम्बिता पद्धतिरुपायाश्च

नयचक्रवृत्तेः संशोधनं प्रभूतग्रन्थसाहाय्येनास्माभिर्विहितमित्यसकृदावेदितं प्राग्। इदमन्यदप्यत्रानु-सन्धेयम्। केवलं व्याकरणादिनियमानुसारेण यथाकथञ्चिच्छुद्धपाठकल्पनेन विषयसङ्गतिकरणेन च संशोधन-कार्यं न सम्यग् निर्वहति, शुद्धपाठोऽपि ग्रन्थकृदभिप्रेत एव कल्पनीयो भवति। तत्र चोपायान्तरमपि विद्यते। तथाहि–केषाञ्चिदक्षराणामाकृतयः कालक्रमेण परिवृत्तिमापन्नाः, एतल्लिपिपरिवर्तनं तु सम्यगजानाना बहवो लेखका वाचकाश्चाकृतिसाजात्यादन्यथाक्षराणि कल्पयन्ति, अन्यथा च लिखन्ति। पृष्ठमात्रानिवेशनमपि सम्यगविविञ्चन्तोऽयथास्थानं च पृष्ठमात्रा निवेशयन्तो लेखका बहुशो मिथ्यापाठान् सृजन्ति। अत्र यदि सूक्ष्मेक्षिकया लिपिपरिवर्तनमवेक्ष्य संशोधनं विधीयते तदानायासेनैव ग्रन्थकृदभिप्रेताः शुद्धपाठा अवाप्यन्ते। अतोऽयमुपाय एतद्ग्रन्थसंशोधने प्राधान्येनावलम्बितोऽस्माभिः। तत्साहाय्येन ग्रन्थकृत्सम्मताः परःशताः शुद्धपाठा अस्माभिर्यथावदेव लब्धाः। तथाहि–'पृ० १६ पं० १४, पृ० ४७ पं० ७' इत्यत्र 'करकट' शब्दो हस्तलिखितप्रतिषु दृश्यते, वस्तुतस्तु प्राचीनलिप्यां 'क्ख' इत्यक्षरं 'रक' इति लिख्यते स्म, अतस्तत्र 'कक्खट' इत्येव शुद्धपाठः। बौद्धमतस्यात्र प्रस्तुतत्वात् 'कक्खटलक्षणा पृथिवी' इति च बौद्धाना-मभिमतत्वात् 'कक्खट' इति पाठो बौद्धमतेनापि सर्वथा संवदति, दृश्यतां पृ० १६ टि०८। अतोऽत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'कक्खट' इति पाठ एव ग्रन्थकृतोऽभिमतः शुद्धश्चेति स एवात्रादरणीयः। एवमाकृतिसारूप्यादिकारणैर्बहूनामक्षराणां हस्तलिखितनयचक्रवृत्तौ परिवर्तनं सञ्जातम्। ईदृशानि अन्योन्यं परिवर्तितानि कानिचिदक्षराण्यत्रोदाह्रियन्ते—

ऽ = अ	ण्व = श्व	त्व = ड्व	नु = उ	म = न
ऽ = इ	त = न	त्स = स्	नु = तु	रु = भ
ए = प = य	त = व	द = ह	- न = न्न	ग्रे = गै
क = वा	तत्र = तन्न	दि = भि	प = य	ळ = त
ऋ = ृ	तृ = त्रि	दि = पि	पृत = वृत्त	श = त्रा
रक = क्ख	त्त = तृ	द्य = ड्य	प्य = ण्य	स = भ
ग = म	त्त = क्त	ध = व	ब = व	स्त = सू
च = व	त्त = न्त	धा = क	भ = त	• च = श्च
ज्ञ = प्र	त्थ = च्छ	न = ण	भू = चु	ाा = ी
ट = ङ	त्व = च	नतु = नतु	म = स	ाा = य

एतल्लिपिपरिवर्तनं मुहुर्मुहुः सूक्ष्मैक्षिकया विचिन्त्य विविच्य च यथास्थानं यथासम्भवं शुद्धः पाठ आदृतोऽस्माभिः। **भोट**ग्रन्थानामपि शुद्धपाठनिर्णयेऽस्माभिर्व्यधायि बहुषु स्थानेषूपयोगः। तथाहि—पृ० ९३ पं० २३ इत्यत्र भा० प्रतौ 'तदंशदृष्टौ' इति पाठो दृश्यते, य० प्रतिषु तु 'तददृष्टौ' इति पाठः। **भोट**भाषान्तरसंवादादर्थसङ्गतेश्च 'तदंशदृष्टौ' इति पाठ एव शुद्धत्वात् तत्रास्माभिरादृतः, दृश्यतां **भोट**परिशिष्टे टिपृ० १३६। एवं पृ० ३१४ पं० ४ पृ०३२१ पं० १६ इत्यत्र च मुद्रितोऽशुद्धः पाठो **नयचक्र**मुद्रणानन्तरं समासादित**भोट**ग्रन्थसाहाय्येन टिपृ० १३८ पं० ६ टिपृ० १४० पं० ८ इत्यत्र चास्मभिः शुद्धीकृतः।

यत्र कश्चित् पाठः खण्डित इत्यस्माकं मतं तत्र खण्डितपाठपूरणाय [ ] एतादृशकोष्ठकान्तरस्मत्सम्भावितः पाठो निवेशितः। यत्र च सर्वासु प्रतिष्वशुद्धः पाठस्तत्स्थाने शुद्धपाठं च सम्यक् कल्पयितुं वयमसमर्थास्तत्राशुद्धपाठस्याग्रे (?) एतादृशं चिह्नं स्थापितमस्माभिः, यथा पृ० २५७ पं० १४ इत्यत्र। यत्र त्वशुद्धपाठस्थाने कश्चिच्छुद्धः पाठोऽस्माभिः सम्भावितो न तु निश्चितस्तत्राशुद्धपाठस्याग्रे (?) एतादृशकोष्ठकान्तरस्मत्सम्भावितः पाठोऽस्माभिर्निवेशितः, यथा पृ० १६ टि० १० इत्यादौ। यत्र चान्यथापि पाठः कल्पयितुं शक्यते तत्र वैकल्पिकी पाठसम्भावनापि टिप्पणेषु तत्र तत्रास्माभिः प्रदर्शिता, यथा पृ० १४ टि० ९, पृ० १८ टि० १३, पृ० ७२ टि० ८ इत्यादौ।

नयचक्रवृत्तौ ग्रन्थान्तराणां प्राचीना विशिष्टपाठाः

मल्लवादि-सिंहसूरिक्षमाश्रमणानामतिप्राचीनत्वात् तेषां समक्षं **वेदो**पनिषत्-**सां**ख्यादिदर्शनशास्त्र-**पा**णिनीयशब्दानुशासनसूत्र-धातु-**पा**तञ्जलमहाभाष्य-**जै**नागमादिग्रन्थानां प्राचीना पाठपरम्परासीदिति निर्विवादमेव। कालक्रमेण ग्रन्थेषु अन्यान्यलेखकहस्तैः पाठभेदा जायन्ते वर्धन्ते चेति विदितमेव विदुषाम्। अतो **नयचक्र**वृत्तावुद्धृतेषु **वे**दादिपाठेषु सम्प्रत्युपलभ्यमानपाठेभ्यो न्यूनाधिकभेददर्शनेऽपि अत्रोद्धृताः प्राचीन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम्परानुसारिणः पाठाः प्रायस्तदवस्था एवास्माभिः परिरक्षिताः। यथा च सम्प्रति पाठभेदो दृश्यते तथा टिप्पणेषु तत्र तत्र दर्शितमस्माभिः। अतो टिप्पणान्यप्यत्रावश्यं विलोकनीयानि।

पृष्ठाङ्काः

अस्मिन् ग्रन्थेऽस्य मुद्रितग्रन्थस्य पृष्ठाङ्कः सर्वत्र पृष्ठस्य शीर्षके उपन्यस्तः। यस्तु पार्श्वभागे [In the margin] पृष्ठाङ्कः स भा० प्रतेर्वेदितव्यः। भा० प्रतेर्हि ५७२ पत्राणि, प्रतिपत्रं च पृष्ठद्वयम्, अतो भा० प्रतेर्यस्मिन् पत्रे यस्मिंश्च पृष्ठे यो यो विभाग आयाति तस्य प्रारम्भे २-१, २-२, ३-१, ३-२, ४-१, ४-२ इत्यादिक्रमेण सर्वे पृष्ठाङ्का अत्रास्माभिः पार्श्वभागे उपन्यस्ताः। २-१ = भा० प्रतेर्द्वितीयपत्रस्य प्रथमं पृष्ठम्, २-२ = द्वितीयपत्रस्य द्वितीयं पृष्ठम्, ३-१ = तृतीयपत्रस्य प्रथमं पृष्ठम्, ३-२ = तृतीयपत्रस्य द्वितीयं पृष्ठमित्यादिरर्थः ५७२-१ पर्यन्तं सर्वत्र स्वयमेवोह्यः। अस्मिन् ग्रन्थेऽधोनिर्दिष्टेषु टिप्पणेषु पृथग् योजितेषु च टिप्पणेषु यत्र यत्रामुद्रितवक्ष्यमाणपाठावलोकनार्थमस्माभिः सूचितं तत्र तत्रास्याङ्कस्य विशेषेणोपयोगः। **न**यचक्रवृत्तेः संशोधने हि पूर्वापरसन्दर्भाणां भूयानुपयोगोऽस्माभिर्विहितः। बहुषु च स्थलेषु पूर्वाभिहितपाठानामर्थो वक्ष्यमाणसन्दर्भसाहाय्येनैव स्पष्टतयावगम्यते पाठशुद्धिर्मूलसंकलनं च यथावत् कर्तुं पार्यते। एवं चेदृशेषु स्थलेषु यत्रामुद्रितवक्ष्यमाणपाठावलोकनार्थमस्माभिः सूचितं तत्रास्य भा० प्रतिपृष्ठाङ्कस्योपयोगोऽस्माभिर्विहितः। यथा पृ० ९ टि० १० इत्यादौ। अस्मिन् विभागे **न**यचक्रमुद्रणानन्तरं पश्चाद्भागे पृथग् योजितानां टिप्पणानां पृष्ठाङ्कोऽपि पृथगेवात्र निर्दिष्टः, एवं च यत्र यत्र **टिपृ०** इत्यस्माभिर्लिख्यते तत्र तत्र **न**यचक्रमुद्रणादूर्ध्वं पृथग् योजितानां टिप्पणानामेव पृष्ठाङ्कोऽवगन्तव्यः।

टिप्पणानां द्वैविध्यम्

अत्र द्विविधानि टिप्पणानि योजितान्यस्माभिः—**न**यचक्रग्रन्थेऽधस्ताद् मुद्रितानि पादटिप्पणरूपाणि, अपराणि पुनर्नयचक्रमुद्रणानन्तरं योजितानि। अधोमुद्रितेषु पादटिप्पणेषु प्राधान्येन पाठान्तराणि दर्शितानि संशोधनोपयोगिनः सन्दर्भाश्च ग्रन्थान्तरेभ्य उद्धृताः, क्वचित् क्वचिच्च ग्रन्थस्य स्पष्टीकरणं तुलनादिकमपि च विहितम्। **न**यचक्रमुद्रणानन्तरं योजितेषु तु टिप्पणेषु विस्तरेण विवेचनं तुलनादिकं चानुष्ठितम्, तेषु तेषु प्रसङ्गेषु ग्रन्थान्तरेभ्य उद्धृत्य बहवो दुर्लभाः पाठा अप्यत्रोपन्यस्ताः, ऐतिह्यादिकमपि चार्चितम्, ग्रन्थमुद्रणसमयेऽस्माभिरज्ञाता या अशुद्धयोऽनन्तरमस्मद्बुद्धौ स्फुरितास्तत्तत्स्थाने शुद्धपाठा अपि तत्रास्माभिर्निर्दिष्टाः। एवं च एतैर्नयचक्रमुद्रणानन्तरं योजितैष्टिप्पणैः सहैवायं सवृत्तिको **न**यचक्रग्रन्थो विद्वद्भिः पठनीयः। किञ्च, एतेषां टिप्पणानामेवाङ्गभूतं '**भोट**परिशिष्टम्, **वैशे**षिकसूत्रसम्बन्धिपरिशिष्टम्, **य०**प्रतिपाठपरिशिष्टम्' इति परिशिष्टत्रयमपि योजितमत्र। तेषां वैशिष्ट्यमुपयोगित्वं च तदवलोकनादेव सम्यग् ज्ञातुं शक्यते। किञ्चित्त्वत्र दर्शयामः—

---

१ दृश्यतां टिपृ० १० पं० ३७, टिपृ० २४ पं० २२, टिपृ० ५० पं० १, टिपृ० ५१ पं० १३ इत्यादि। विशेषार्थिभिस्तु शुद्धिपत्रकं विलोकनीयम्॥ २ तत्रास्मिन् विभागे पृ० ६४, ८६, ८८, ८९, ९१, ९३, ९६, ९७, ९९, १००, १०१, १०२, ३०६ इत्यादिस्थलेषु दिङ्नागस्य वचांसि **न**यचक्रमूले **वृ**त्तौ चोद्धृतानि यथायोगं च परीक्षितानि॥ ३ दृश्यतां पृ० १५ पं० ८, टिपृ० १६ पं० ६-१७, पृ० ५६ पं० १६ टि० १२, पृ० १२० पं० १७ टि० १०, पृ० १२२ पं० ५ टि० २, पृ० १२७ पं० १४ टिपृ० ५६ पं० १-५, पृ० १५४ पं० १६ टि० ७, पृ० १७५ पं० १९ टि० ६, पृ० १७६ पं० २८ टि० ६, पृ० १८३ पं० १५ टि० ४, पृ० १८३ पं० २३ टि० ९, पृ० १९७ पं० ७ टि० ४, पृ० ३१४ पं० १ टि० २, पृ० ३३२ पं० १, पृ० ३३१ टि० ३ इत्यादि॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. भोटपरिशिष्टम् (टिपृ० ९५–१४०)

बौद्धन्यायस्य पितृत्वेन प्रसिद्धेन **दिङ्नागा**चार्येण रचितानां **प्रमाणसमुच्चया**दीनां बहूनां ग्रन्थानां खण्डन-मण्डनादिकं प्रभूतेषु प्राचीनग्रन्थेष्ववाप्यते । **न**[1]**यचक्रे** महता विस्तरेण **दिङ्नाग**मतं चर्चितम् । सम्प्रति [2]**न्याय**-**प्रवेशं** **यो**[3]**गावतारं** [4]**प्रज्ञापारमितापिण्डार्थसंग्रहं** च विहाय **दिङ्नाग**रचिताः केऽपि ग्रन्थाः संस्कृतभाषायां नोपलभ्यन्ते । केषाञ्चित् **प्रमाणसमुच्चया**दीनां ग्रन्थानां परःशतेभ्यो वर्षेभ्यः पूर्वं विहिता [5]भोटभाषानुवादास्तू-पलभ्यन्ते । **नयचक्रा**न्तर्गताया **दिङ्नाग**मतपरीक्षायाः सम्यगाशयपरिज्ञानार्थं **दिङ्नाग**मतपरिज्ञानस्यात्यन्तमाव-श्यकत्वाद् **भगवतो गुरुदेवस्य कृपया भोट**भाषामधीत्य **प्रमाणसमुच्चया**दिग्रन्थानां **भोट**भाषानुवादांश्च महता परिश्रमेण **अमेरिका-युरोप-जापाना**दिदेशेभ्योऽनेकेषां विदुषां सौजन्येन 'मायक्रोफिल्म-फोटो' आदिरूपेणासाद्य **भोट**भाषानुवादतः संस्कृतभाषायां परिवर्त्य च **प्रमाणसमुच्चया**दिग्रन्थानामत्रोपयुक्ता बहवः सन्दर्भा अस्मिन् प्रथमविभागान्तर्गते **भोट**परिशिष्टेऽस्माभिरुपन्यस्ता[6]: । अष्टमेऽप्यरे **दिङ्नाग**[7]स्य वचांसि निर्दिश्य महता विस्तरेण **दिङ्नाग**मतपरीक्षा **नयचक्रे** विलोक्यते, तत्रोपयुक्तः **प्रमाणसमुच्चया**द्यंशस्तु द्वितीयविभागे टिप्पणेषु [8]तत्र तत्रो-

---

१ दृश्यतां पृ० ३३ पं० १० टि० ७, पृ० ४० पं० १० टि० ५, पृ० ४५ टि० ९, पृ० ६६ टि० २, पृ० ६७ टि० ३, पृ० २५२ टि० १ इत्यादि ॥ २ Gaekwad's Oriental Series, Oriental Institute, Baroda इत्यतोऽयं ग्रन्थः प्रकाशितः ॥ ३ नवकारिकात्मकोऽयं ग्रन्थो **विधुशेखरभट्टाचार्येण** Indian Historical Quarterly IV/1928 (पृ० ७७५–७७८) इत्यत्र प्रकाशितः । **दुर्गाचरण चेटरजी** इत्यनेन तु स एव **भोटभाषानु**-**वादेन सह** Journal and Proceedings, Asiatic Society of Bengal (New Series) Vol. XXIII/1927 (पृ० २४९–२५९) इत्यत्र प्रकाशितः ॥ ४ अष्टपञ्चाशत्कारिकात्मकोऽयं ग्रन्थः Prof. Giuseppe Tucci इत्यनेन Journal of the Royal Asiatic Society, London, 1947 (पृ० ४३–७५) इत्यत्र भोटभाषानुवादेन सह प्रकाशितः ॥ ५ दृश्यतां टिपृ० ९५ । विस्तरार्थिभिरस्मत्सम्पादितस्य **वैशेषिकसूत्रस्य** सप्तमे परिशिष्टे पृ० १५३–१५५ इत्यत्र E. Frauwallner लिखिते Dignaga, sein Werk und seine Entwiklung (WZKSO, BD. III, Wien, Austria, 1959, pp. 83-164) इति जर्मनभाषानिबद्धे निबन्धे च विलोक-नीयम् ॥ ६ अस्मिन् विभागेऽन्येष्वपि केषुचिट्टिप्पणेष्वेते **प्रमाणसमुच्चया**द्यंशा अस्माभिरुपन्यस्ताः, दृश्यतां पृ० ६० टि० १५, पृ० ६४ टि० ६, पृ० ७९ टि० ७, पृ० ८८ टि० १०, पृ० ९६ टि० १, पृ० ३०६ टि० १, टिपृ० ७३ पं० १०–१३ टिपृ० ७४–७५, टिपृ० ७७ पं०२६–२८ टि० २; टिपृ० ८४ पं० १७–१९ टि० २, टिपृ० ८५ पं० १–६, ११–१२ टि० ४ ॥ ७ दृश्यतां पृ० ६०६ पं० ६ टि० २, पृ० ६०९ पं० १, ६, पृ० ६११ पं० ५–६, पृ० ६१२ पं० ५–६, पृ० ६१३ पं० ६, २७, पृ० ६१५ पं० १२–१३, पृ० ६२० पं० १४, पृ० ६२१ पं० २८, पृ० ६२७, पृ० ६३८ पं० २, पृ० ६४७ पं० ४, १४, पृ० ६४८ पं० १८, पृ० ६४९ पं० ११, १४–१५, पृ० ६५० पं० १,३, पृ० ६५२–६५३, पृ० ६६१ पं० १,१०,१२,१४, पृ० ६६३ पं० ४–५, पृ० ६६९ पं० २३, पृ० ६७० पं० २२, पृ० ६७२ पं० ३, पृ० ६७४ पं० ६, पृ० ६७५ पं० १–४, पृ० ६७८ पं० ५,१७, पृ० ६७९–६८०, पृ० ६८३,६८४,६८५,६८६, पृ० ६८७ पं० १३, पृ० ६८८ पं० १–३, पृ० ६९१ पं० ६,९, पृ० ६९३ पं० ३, १९, पृ० ६९४ पं० ३०, पृ० ६९९, पृ० ७०२ पं० ५, ७०३ पं० १९, पृ० ७०४ पं० २३, पृ० ७०५ पं० ३,१४,१९, पृ० ७०६ पं० २१, पृ० ७११ पं० ११, पृ० ७१८ पं० २, पृ० ७२० पं० ४, पृ० ७२२ पं० ९, पृ० ७२४ पं० २३, पृ० ७२७ पं० १०, पृ० ७२८ पं० २०,२२, पृ० ७३० पं० २,११, पृ० ७३१ टि० १, पृ० ७३२ पं० २१, पृ० ७३३ पं० ४,१३,१९ टि० १, पृ० ७३४ पं० ५, पृ० ७३५ पं० २४ ॥ ८ दृश्यतां पृ० ६०७–६०८, पृ० ६१४ टि० १, पृ० ६१७ टि० १, पृ० ६२९–६३३, पृ०६३८–६४०, पृ० ६५०–६५१, पृ० ६६३ टि० १, पृ० ६८३–६८४, पृ० ७२४–७२९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदार्शितः । एतद् भोटपरिशिष्टं नयचक्रस्याध्येतॄन् यथोपकरोति तथा सामान्यतो न्यायाद्यनेकप्राचीनदर्शनशास्त्राध्येतॄन् विशेषतश्च प्रमाणवार्तिक-तत्त्वसङ्ग्रहादिबौद्धदर्शनशास्त्राध्येतॄनप्यत्यन्तमुपकरिष्यति । अनेकवर्षाणि भृशं परिश्रम्यास्माभिः सङ्कलितमिदं भोटपरिशिष्टमेव विस्तरार्थिभिर्विलोकनीयम् ।

वैशेषिकसूत्रसम्बन्धि परिशिष्टम् (टिपृ. १४१)

चन्द्रानन्दविरचितवृत्तिसमन्वितस्य कणादप्रणीतवैशेषिकदर्शनस्यास्मिन् ग्रन्थे पृथक् पृथक् स्थाने टिप्पणेषु साकल्येन मुद्रणे कारणं टिपृ० ८ पं० २२--३० इत्यत्र विस्तरेण दर्शितमेवास्माभिः । किञ्चित्त्वत्रापि प्राक्कथने प्रतिपादितम् । वैशेषिकसूत्राणामत्र पृथक् पृथक् टिप्पणेषु मुद्रितत्वात् कतमं सूत्रं क्व मुद्रितमिति साररयेनान्वेष्टुं वैशेषिकसूत्रसम्बन्धिपरिशिष्टमत्र सङ्कलितमस्माभिः ।

इदं तु ध्येयम्—वैशेषिकसूत्राणामविज्ञातकर्तृका एका व्याख्या २०१३ विक्रमाब्दे बिहारप्रदेशे दरभंगानगरस्थेन मिथिलाविद्यापीठेन प्रकाशिता । तन्मातृकायां पृथक् सूत्रपाठो नास्ति । तथापि तत्सम्पादकैः श्रीमदनन्तलालदेवशर्मविद्वन्महोदयैर्व्याख्यानुसारेण यः सूत्रपाठः सम्भावितः स चन्द्रानन्दाभिमतवैशषिकसूत्रपाठेन बहुलं संवदति । वैशेषिकसूत्राणामुपस्कारकृच्छङ्करमिश्रः खिष्टीयपञ्चदशशतके आसीत्, मिथिलाविद्यापीठप्रकाशितव्याख्याकारस्तु त्रयोदशे खिष्टीयशतके तदनन्तरं वा लब्धोदय इति प्रतीयते । अयं चन्द्रानन्दस्तु उभाभ्यामप्येताभ्यां भृशं प्राचीन इत्यपि ध्येयम् ।

किञ्च, P. प्रत्यनुसारेण चन्द्रानन्दरचिता वृत्तिरत्र मुद्रिता । ततः परम् Oriental Institute, Baroda इत्यतोऽपि शारदालिप्यां लिखिता चन्द्रानन्दरचितवृत्तेरेका प्रतिर्लब्धा । कदाचिदपरिचितामपि शारदालिपिं भगवतो गुरुदेवस्य कृपयाधीत्य तत्र P. प्रत्यपेक्षया ये शुद्धपाठा विद्यन्ते तेऽस्माभिः पृथक् शुद्धिपत्रके दर्शिताः ।

---

१ न्यायवार्तिके न्यायवार्तिकतात्पर्यटीकायां मीमांसाश्लोकवार्तिके तद्व्याख्यासु युक्तिदीपिकाख्यायां सांख्यकारिकावृत्तौ ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यादौ च दिङ्नागस्य वचांस्युद्धृत्य दिङ्नागमतं तत्र तत्र निराकृतम् । अतस्तादृशेषु स्थानेष्विदं भोटपरिशिष्टमष्टमे चारेऽस्माभिष्टिप्पणेषु न्यस्ताः प्रमाणसमुच्चयाद्यंशा नयचक्रे तद्वृत्तौ चोद्धृतानि दिङ्नागवचांसि च न्यायवार्तिकाद्यध्येतॄणां भृशमुपकरिष्यन्ति । अस्माभिः सम्पादितस्य वैशेषिकसूत्रस्य (Gaekwad's Oriental Series No. 136, Baroda) सप्तमे परिशिष्टे [पृ० १६९–२१९] प्रमाणसमुच्चये तद्वृत्तौ विशालामलवत्यां च तट्टीकायां विद्यमाना वैशेषिकदर्शनसम्बन्धिनी प्रायः सर्वापि चर्चा न्यायदर्शनसम्बन्धिनी च भूयसी चर्चा भोटभाषान्तरतः संस्कृते परिवर्त्योपन्यस्ता, अतस्तज्जिज्ञासुभिस्तदपि विलोकनीयम् ॥ २ धर्मकीर्तिरचितं प्रमाणवार्तिकं हि प्रमाणसमुच्चयस्य व्याख्यानरूपम् । तत्र प्रमाणवार्तिकस्य प्रमाणपरिच्छेदः प्रमाणसमुच्चयप्रथमपरिच्छेदस्य प्रथमां कारिकां तद्वृत्तिं चावलम्ब्यैव प्रवृत्तः, प्रत्यक्षपरिच्छेदः प्रमाणसमुच्चयप्रथमपरिच्छेदस्य २–१४ कारिकास्तद्वृत्तिं चावलम्ब्य प्रवृत्तः, परार्थानुमानपरिच्छेदस्तु प्रमाणसमुच्चयस्य तृतीयपरिच्छेदस्य प्रारम्भिकस्तिस्रः कारिका अन्याश्च काश्चित् कारिकास्तद्वृत्तिं चावलम्ब्य प्रवृत्तः । एतच्च प्रायः सर्वमपि भोटभाषान्तरतः संस्कृतेऽनूद्यास्य नयचक्रग्रन्थस्य भोटपरिशिष्टेऽन्यत्र च तत्र तत्र टिप्पणेषूपन्यस्तम् । अतोऽस्मिन् ग्रन्थे मुद्रितानां भोटपरिशिष्टटिप्पणानां प्रमाणवार्तिकाध्ययने उपयोगित्वं स्फुटमेव, प्रज्ञाकरगुप्तेन रचितः प्रमाणवार्तिकभाष्यरूपो वार्तिकालङ्कारः तत्त्वसंग्रहादयश्च बौद्धग्रन्था अपि तदनुसारिण इति तत्रापीमानि भोटपरिशिष्ट-टिप्पणानि भृशमुपयोगीनि भविष्यन्ति तदध्येतॄणाम् ॥ ३ अस्मत्सम्पादितस्य वैशेषिकसूत्रस्य द्वितीयं परिशिष्टं (पृ० १०९–१२२) विस्तरार्थिभिर्विलोकनीयम् ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

य० प्रतिपाठपरिशिष्टम् (टिप्प. १४२–१४६)

वाचकवरश्रीयशोविजयोपाध्यायैर्लिखिताया य०प्रतेः सप्तारमुद्रणं यावदनासादितत्वाद् य० प्रत्यनुसारिण्यः पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतयो य०प्रतेः स्थानेऽत्रास्माभिरुपयुक्ताः । य० प्रत्यक्षराणां सम्यगनवगमादिकारणवशाल्लेखकहस्तेन सञ्जाताः केचन पाठभेदाः पा० डे० आदिसङ्केतैष्टिप्पणेषु तत्र तत्र दर्शिताः। य० प्रत्यवाप्त्यनन्तरं तु ते पाठभेदा अनतिप्रयोजनाः, अतः पा० डे० आदिप्रतिषु यत्र परस्परतः पाठभेदस्तत्र य० प्रतौ यादृशः पाठस्तमुपदर्शयितुं य० प्रतिपाठपरिशिष्टमत्र संयोजितम् । एवं च सप्तारमुद्रणादूर्ध्वमवाप्तापि वाचकवरश्रीयशोविजयोपाध्यायैर्लिखिता य० प्रतिरत्र साकल्येनोपयुक्तास्माभिरिति विदाङ्कुर्वन्तु विद्वांसः । अतः परमष्टमाद्यराणां मुद्रणे भा० य० प्रती एवोपयोक्ष्येते, न तु पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतय इत्यपि ध्येयम् ।

उपसंहारः

काश्चनाशुद्धयोऽस्माभिष्टिप्पणेषु प्रमार्जिता एव । प्रुफाद्यवलोकनेऽनवधानादिजास्त्वशुद्धयः शुद्धिपत्रके एव विशेषतो दर्शिताः । अनष्टिप्पणानि शुद्धिपत्रकं चानुसन्धायैवायं ग्रन्थोऽध्येतव्यो विद्वद्भिः ।

एवं संशोधनाय सुबहु कृतेऽपि यत्ने नयचक्रमूलाभावात्, हस्तलिखितनयचक्रवृत्तिप्रतिष्वशुद्धिबाहुल्यात्, मल्लवादि-सिंहसूरिक्षमाश्रमणाभ्यां येषां मतानि चर्चितानि तेषां भूयसां प्राचीनग्रन्थानां सम्प्रति विनष्टत्वेन संशोधनोपयोगितथाविधग्रन्थान्तरसामग्र्यभावात, अस्मन्मतिमान्द्यात्, भगवद्भिर्गुरुदेवैः महता परिश्रमेण स्पष्टमुच्चार्य सम्यगवधाय च सर्वेष्वपि शोधन[प्रुफ]पत्रेषु चतुःकृत्वः पञ्चकृत्वो वा पठितेष्वपि शोधन[प्रुफ]पत्राणामवलोकने ममैव सम्यगनवधानाद् मुद्रणावसरे सीसकाक्षरविपर्यासाच्च याः काश्चन स्खलना अत्र दृष्टिपथमवतरेयुस्ताः सर्वा अपि विविच्य सज्जना विद्वन्महोदया एतद्ग्रन्थाध्ययनाध्यापनादिना अस्माकं परिश्रमं फलेग्रहिं कुर्युरिति बाढमभ्यर्थयामहे ।

धन्यवादवितरणम्

एवं महता परिश्रमेण सुचिरं संशोध्य सम्पाद्य चास्य नयचक्रमहाशास्त्रस्य प्रथमो विभागोऽद्य विदुषां पुरः प्रकाश्यते । अद्यतनशैल्या साङ्गोपाङ्गं संशोधनं सम्पादनं च विधायेमं ग्रन्थं प्रकाशयितुं प्राचीनग्रन्थसंशोधनेऽनेकप्राचीनग्रन्थसङ्ग्रहव्यवस्थापने च सिद्धहस्तानां मुनिराजश्रीपुण्यविजयजीमहाराजानां चिरादुत्कटा समीहासीत् । तेषां प्रेरणयैवैतत् कार्यं मयाङ्गीकृतम् । नयचक्रवृत्तेर्हस्तलिखिताः सर्वा अपि प्रतयस्तैरेव भृशं परिश्रम्येतस्ततः सञ्चित्य मत्समीपे प्रेषिताः । अत्र सम्पादने उपयुक्ताः पत्तन-जेसलमेरादिनगरस्थानां विशेषावश्यकभाष्यस्वोपज्ञटीका-कोट्यार्यगणिरचितटीका-सम्मतिवृत्ति-वैशेषिकसूत्र-चन्द्रानन्दरचितवृत्ति-न्यायभाष्य-न्यायवार्तिक-न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका-न्यायकन्दली-सांख्यकारिकावृत्ति-तत्त्वसङ्ग्रहपञ्जिकादिग्रन्थानां प्राचीना दुर्लभतमाश्च हस्तलिखिता आदर्शा अपि तेषां सकाशादेव मयाधिगताः । किं बहुना ? ये च यावन्तश्च ग्रन्था एतत्सम्पादने मयापेक्षितास्ते सर्वेऽपि यावदुपलम्भं तैर्मह्यं दत्ताः । किञ्च, अस्य ग्रन्थस्य संशोधनं सम्पादनं च यद्यपि मयैव व्यधायि तथापि भूरिद्रव्यव्ययसाध्या एतद्ग्रन्थमुद्रण-प्रकाशनादिव्यवस्था तैरेव व्यधायि । एवं च नयचक्रग्रन्थसंशोधनोपयोगिविविधसामग्रीप्रदानेन प्रभूतं साहाय्यं तैरत्रानुष्ठितम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युरोपखण्डे ओस्ट्रियादेशे विएनानगरे विश्वविद्यालये भारतीयदर्शनशास्त्राध्यापकैः संस्कृत-हिन्दी-बङ्गला-चीन-भोट-फ्रेंच-जर्मन-आङ्ग्लाद्यनेकभाषाविद्भिः Prof. Dr. Erich Frauwallner[1] महाशयैश्चिरं नयचक्रग्रन्थमधीत्य मुहुर्मुहुश्चिन्तनमननादि च विधाय अस्य आङ्ग्लभाषामयी प्रस्तावना लिखिता, भोटपरिशिष्टेऽपि तैर्बह्वयो विशिष्टा उपयोगिन्यश्च सूचना विहिताः ।

पुण्यपत्तने फर्ग्युसनविद्यालये जर्मनभाषाध्यापकैर्भारतीयदर्शनशास्त्रविशारदैः संस्कृत-चीन-भोटादि-नानाविधभाषानिष्णातैः श्रीमद्भिः 'वासुदेव विश्वनाथ गोखले' इत्येतैर्महाभागैर्मदर्थं भोटभाषानुवादग्रन्थावाप्तये भृशं प्रयतितम्, स्वयं च भोटभाषाध्ययनाय तैरहमत्यन्तं प्रोत्साहितः, भोटपरिशिष्टेऽपि तेषां बह्व्यः सूचना अत्युपयोगिन्यः सञ्जाताः । प्राध्यापकश्रीप्रह्लादप्रधानमहोदयैरभिधर्मकोशभाष्यस्य दुर्लभा अंशा लिखित्वा परमसौजन्येन प्रेषिताः । येषां च [3]Prof. Dr. Yensho Kanakura, Dr. [4]H. Kitagawa, [5]Mr. Walter H. Maurer प्रभृतीनां जापान-अमेरिकादिदेशवासिनां विदुषां सौजन्येन विविधा दुर्लभा भोटग्रन्था अस्माभिरधिगतास्तेषां नामग्राहमुल्लेखो भोटपरिशिष्टेऽस्माभिर्विहित एव । निर्णयसागरमुद्रणालयस्थैः पण्डित श्री० 'नारायण राम आचार्य' इत्येभिः शास्त्रिमहोदयैः प्रतिपृष्ठं मूल-टीका-टिप्पणानां यथास्थानं विन्यासेऽतिपरिश्रान्तम् । विविधाक्षरेषु निर्णयसागरमुद्रणालयेऽस्य ग्रन्थस्य सम्यग् मुद्रणाय तैर्भृशं प्रयतितम् । एतेभ्यः सर्वेभ्यो विद्वन्महोदयेभ्यः सहस्रशो धन्यवादान् वितरामि ।

भगवतां गुरुदेवानामुपकाराणां स्मृतिः

विशेषतस्त्वत्र येषां साहाय्यादाशीर्वादाच्चेदं कार्यं परिपूर्णतामगमत् ते मदीया भगवन्तः प्रातःस्मरणीया पूज्यपादा गुरुदेवाः प्रामुख्येन संस्मरणीयाः । प्रातःस्मरणीय-परमपूज्य-परमकृपालु-परमाराध्य-गुरुदेव-श्री १००८ मुनिराजश्रीभुवनविजयजीमहाराजानां कृपया साहाय्येन पुण्यप्रभावेणैव चायं सर्वोऽपि ग्रन्थो मया सम्पादितः । तेषां सम्मत्यैवैतत् सम्पादनकार्यं मया अङ्गीकृतम् । अस्य ग्रन्थस्य सर्वाण्यपि प्रूफपत्राणि वपुषोऽपाटवेऽप्यविगणय्य स्वशरीरकष्टं तैरेव महता परिश्रमेण चतुःकृत्वः पञ्चकृत्वश्चावलोकितानि वाचितानि च । विविधान् दुर्लभान् ग्रन्थानवाप्तुमवाप्य च परिरक्षितुं तैर्भृशं प्रयतितम् । एतेषु सर्वेष्वपि वर्षेषु मदीयमन्तरङ्गं बहिरङ्गं च सर्वमपि चिन्ताभारं कार्यभारं चोद्वहद्भिरेतस्मिन्नतिदुष्करे संशोधनसम्पादनकर्मणि तैः सर्वतोऽपि साहाय्यं मे प्रदत्तम् । तेषामसीमवात्सल्यात् सर्वथा साहाय्याच्चैवेदं कार्यं निश्चिन्तमनसा मया सम्पादितम् । किञ्च, ते मम गृहस्थावस्थायां पितृचरणाः, सम्प्रति श्रमणावस्थायां तु गुरुदेवाः । एवं च पितृत्वेन विविधशास्त्राध्यापकत्वेन धर्मसंस्काराधायकत्वेन च तेषां ज्ञाननिधानानां भगवतां गुरुदेवानामनन्त उपकारभरो मयि वरीवर्त्येव । संसारार्णवतरणाय तरणिकल्पां दीक्षां प्रदाय ग्रहणासेवनाशिक्षे च चिरं सम्यग्

---

१ Head, Indological Institute, University of Vienna, Austria, Europe.
२ Principal, Fakir Mohan College, Balasore, Orissa.
३ Dean, Indian Seminar, Professor of Indology, Tohoku University, Sendai, Japan.
४ Nagoya University, Nagoya, Japan.
५ Reference Librarian for the South Asia Section, Orientalia Devision, the Library of Congress, Washington, U. S. A.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्राहयित्वा तैर्यदहमुपकृत उद्धृतश्च तत् कथमपि वर्णयितुं न शक्यते, वाचामगोचरत्वात्। मदीया सर्वाप्युन्नतिस्तेषां कृपाबलादेव। तेषां हि पीयूषवर्षिणी कृपादृष्टिः सर्वदाह्लादयति मच्चेतः पदे पदे च मामत्यर्थमुपकरोति।

इत्थमनन्तोपकारिणामाराध्यपादपरमपूज्यतीर्थस्वरूपगुरुदेवश्री १००८ **भुवनविजयजी**महाराजानामनन्ता उपकाराः कथमपि मया वर्णयितुं न शक्यन्ते।

अनन्तं यस्य वात्सल्यमनन्ता चोपकारिता।
महिमानं गुरोस्तस्य को वा वर्णयितुं क्षमः? ॥

तेषामेव कृपा-साहाय्यबलादवशिष्टानपि **नय**चक्रस्यारान् द्वितीये विभागे सम्यक् सम्पाद्य शीघ्रतरं प्रकाशयितुमाशासे।

सिद्धगिरीशस्य भगवतो युगादिदेवस्य ऋषभजिनेशस्यार्चनम्

इत्थं चिरपरिश्रमेण सम्पादितमिदमनेकान्तवादप्रतिष्ठापकं **नय**चक्रमहाशास्त्रं युगादीशस्य **श** श्रयतीर्थाधिपतेः **परमात्मनः** श्री**ऋषभजिनेशितुः** करकमलयोः समर्प्य परमां कृतार्थतां परमं च प्रमोदमनुभवामि।

यस्य प्रभोः प्रभावादित्थं सम्पादितो मया ग्रन्थः।
तं श्रीसिद्धगिरीशं महयाम्येतेन कुसुमेन ॥

—इत्यावेदयति

विक्रमसंवत् २०१५, मार्गशीर्षबहुलदशमी
प्रभुश्री**पार्श्वनाथ**जन्मकल्याणकदिनम्
झींझुवाडा

पूज्यपादाचार्यमहाराजश्रीमद्विजय**सिद्धिसूरीश्वर**पट्टशिष्य–
पूज्यपादाचार्यमहाराजश्रीमद्विजय**मेघसूरीश्वर**शिष्य–
पूज्यपाद**गुरुदेव**मुनिराजश्री**भुवनविजयान्ते**वासी
मुनि **जम्बूविजयः**

॥ ॐ ह्रीँ अर्हं श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

आचार्यमहाराजश्रीमद्विजयसिद्धिसूरीश्वरजीगुरुभ्यो नमः ।

आचार्यमहाराजश्रीमद्विजयमेघसूरीश्वरजीगुरुभ्यो नमः ।

सद्गुरुदेवमुनिराजश्रीभुवनविजयजीपादपद्मेभ्यो नमः ।

प्रस्तावना[1]

गुरुदेवनी प्रेरणा

जैनशासनमां 'वादिप्रभावक' तरीकेनी प्रसिद्धि पामेला तार्किकशिरोमणि आचार्यश्री **मल्लवादि** क्षमाश्रमणे रचेला द्वादशार **नयचक्रना** चार आरा जेटला प्रथम विभागने आचार्यश्री**सिंहसूरि**गणिक्षमाश्रमणविरचित **न्यायागमानुसारिणी** टीका साथे विद्वानो समक्ष प्रसिद्ध करतां आजे अमने अपूर्व आनंद थाय छे ।

विक्रमसंवत् २००१ मां **शहापुर** (जिल्ला **ठाणा**) मां अमारुं चातुर्मास हतुं ते वखते पूज्यपाद भगवान् गुरुदेव मुनिराज श्री १००८ **भुवनविजयजी महाराजानी प्रेरणाथी** कोई पण आगम ग्रंथनुं संपादन करवानो अमारो विचार थयो । मलधारिश्री**हेम**चन्द्रसूरिकृतटीकासहित **वि**शेषावश्यकमहाभाष्यने दुर्लभ तेमज उपयोगी समजीने ए ग्रंथनुं सम्पादन करवानी अमारी इच्छा अमे प्राचीन ज्ञानभंडारोना उद्धारक तथा अनेक ग्रंथोना संशोधक मुनिराज श्री**पुण्य**विजयजी महाराजने दर्शावी, कारण के जैनागमग्रंथोनुं प्रकाशन करवा माटे थोडा समय पहेलां ज तेमणे '**जि**नागमप्रकाशिनी संसद्' नामनी संस्थानी स्थापना करी हती । परन्तु तेमणे जणाव्युं के 'ए ग्रंथनुं प्रकाशन एक वार थई गयुं छे अने बीजी आवृत्तिनुं संपादन तो कोई पण करशे, परंतु **न**यचक्रनुं अद्यतन शैलीथी सांगोपांग संशोधन, संपादन अने प्रकाशन थवानी खास जरुर छे, कारण के ए अद्यावधि अमुद्रित छे अने तेनुं संशोधनकार्य पण घणुं कठिन छे, केमके आचार्यश्री **मल्लवादि**रचित **नयचक्र मूळ** तो मळतुं ज नथी, तेना उपर आचार्य श्री**सिंह**सूरिक्षमाश्रमणे रचेली अतिविस्तृत **न**यचक्रवृत्ति ज मात्र मळे छे, एटले एनुं संशोधन–संपादन करवानी खास अगत्य छे । जो ए कार्य तमे स्वीकारो तो एने अंगेनी जोईती तमाम हस्तलिखितग्रंथादि सामग्री तथा पंडितनी जरुर होय तो मददमां पंडितने पण मोकली आपुं, एना मुद्रण–प्रकाशननी बधी व्यवस्था हुं करीश ।' एमनी आ प्रकारनी आग्रहभरी सूचनाथी में ए कार्यनो तरत स्वीकार कर्यो अने उत्तरमां जणाव्युं के 'पंडितनी मारे जरुर नथी, पण **न**यचक्रवृत्तिनी हस्तलिखित प्रतिओ मोकली आपो ।'

---

१ **शंखेश्वर** तीर्थमां श्री**शंखेश्वरपार्श्वनाथ** भगवाननी छत्रछायामां पूज्यपाद **गुरुदेव** श्री १००८ **भुवनविजयजी** महाराजानो विक्रमसंवत् २०१५ मां माघ शुक्ल अष्टमीनी रात्रे स्वर्गवास थयो तेथी थोडा समय पहेलां ज **झींझुवाडा** गाममां आ **प्रस्तावना** लखाई गई हती । पूज्यपाद **गुरुदेवनी** छत्रछायामां लखायेली ते **प्रस्तावना** ज लगभग अक्षरशः आजे अहीं रजु करवामां आवे छे । **पूज्यपाद गुरुदेवना** स्वर्गवास पूर्वे सात अर सुधी (पृ० ५५२) आ ग्रंथ छपाई गयो हतो अने आठमा अरना मुद्रणनो प्रारंभ थयो हतो । **पू० गुरुदेवना** स्वर्गवास पछी अत्यारसुधीमां आठमो अर तथा नवमा अरनो केटलोक भाग (पृ० ७४४ सुधी) पण छपाई गयो छे । ते उपरांत, जेसलमेरना भंडारमांथी मळी आवेला अने अमे सम्पादित करेला चन्द्रानन्दरचितवृत्तिसहित वैशेषिकसूत्रनुं पण महाराजा सयाजीराव गायकवाड युनिवर्सीटिना Oriental Institute, Baroda (प्राच्यविद्यामंदिर, वडोदरा) तरफथी प्रकाशन हमणां थई गयुं छे । एने ध्यानमां राखीने क्वचित् टिप्पणो आ प्रस्तावनामां अमे उमेर्यां छे ।—**मुनि जम्बूविजय,** विक्रमसंवत २०१८, वैशाख शुक्ल चतुर्थी, **शंखेश्वर** ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयचक्रना संपादननो प्रारंभ

शहापुरनुं चोमासुं पूर्ण थया पछी त्यांथी विहार करीने अमे पुना गया। त्यां तेमणे **नयचक्रवृत्तिनी** अनेक हस्तलिखित प्रतिओ मोकली आपी। पूज्यपाद गुरुदेव श्री १००८ **भुवनविजयजी** महाराजश्रीना आशीर्वाद मेळवीने में **नयचक्रवृत्तिनुं** संशोधनकार्य आरंभ्युं। **नयचक्रवृत्तिनी** प्राचीनमां प्राचीन जेटली हस्तलिखित प्रतिओ मळी शके ते बधी य अमे भेगी करी। **परंतु** ए तपासतां जणायुं के ए बधी ज प्रतिओ न्यायाचार्य न्यायविशारद वाचकवर **श्रीयशोविजयजी** महाराजे विक्रम संवत् १७१० मां तैयार करेला आदर्श उपरथी ज साक्षात् अथवा परंपराए लखवामां आवेली हती, एटले उपाध्याय श्रीयशोविजयजी महाराजे स्वयं लखेला ए आदर्शने शोधी काढवा तथा मेळववा अमे घणो ज प्रयास कर्यो छतां ते समये तो एनो पत्तो न लाग्यो, परंतु पाछळथी बहु मोडो मोडो—प्रस्तुत ग्रंथनो सात आरा जेटलो भाग छपाई गया पछी—एनो पत्तो लाग्यो हतो, ए विषे विस्तारथी अमे आगळ जणावीशुं। एटले **नयचक्रना** संपादनना प्रारंभ समये अमारा पासे आवेली प्रतिओमांथी पा० डे० लीं० वि० रं० ही० आ छ प्रतिओ पसंद करीने तेना उपरथी अमे संशोधनकार्य आरंभ्युं। वांचतां जणायुं के बधामां घणा अंशे समान ज अशुद्धिओ भरेली हती, वळी **नयचक्र** मूळ तो हतुं ज नहि तेथी **नयचक्रवृत्तिनुं** रहस्य समजवानुं तेम ज संशोधननुं कार्य घणुं जटिल हतुं। एटले संशोधनमाटे बीजा ग्रंथो तरफ में नजर करी, कारण के **नयचक्र** ए दार्शनिक ग्रंथ होवाथी **नयचक्रमां** वर्णवेली चर्चा जो बीजा दार्शनिक ग्रंथोमां मळी आवे तो तेना आधारे **नयचक्रवृत्तिनुं** संशोधनकार्य अमुक अंशे सरल बने, एटला माटे घणा समय सुधी पुनामां रोकाईने त्यांनी आत्मानंद जैन लायब्रेरी, डेक्कन कोलेज, भांडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीटयुट, डो० वासुदेव विश्वनाथ गोखले वगेरेना विशाल ग्रंथसंग्रहमांथी पुस्तको मेळवीने जैन-बौद्ध-मीमांसा-सांख्य-वेदांत-न्याय आदि दर्शनोना लगभग बधा ज प्राचीन ग्रंथोनुं हुं अवलोकन करी गयो। केटलाक अत्यंत दुर्लभ हस्तलिखित ग्रंथो तेमज अनेक भाषामां देश-परदेशमां छपायेला ग्रंथोने पण घणा घणा प्रयत्ने मेळवीने तेमनुं पण अवलोकन कर्युं। आ बधा ग्रंथोमांथी हुं धारतो हतो तेटली सहायता संशोधनमां जोके प्राप्त न थई तो पण एमांथी संशोधनमां उपयोगी घणी ज सामग्री मळी आवी के जेनो अमे टिप्पणोमां ठाम ठाम निर्देश कर्यो छे। आ संस्करणमां अमे बे जातनां टिप्पणो योजेलां छे। एक तो **नयचक्रमां** नीचे ज फुटनोटरूपे आपेलां छे, ज्यारे बीजां **नयचक्रनी** पाछळ जोडेलां छे। ज्यां अमे टिप्पृ० शब्द वापर्यो छे त्यां आ **नयचक्रनी** पाछळ जोडेलां टिप्पणोनो ज पृष्ठांक समजवो। ए टिप्पणोमां अमे अनेक परिशिष्टोनी पण संकलना करेली छे; ए बधां टिप्पणो तथा परिशिष्टोनुं अवलोकन करवाथी तथा संपादनमां अमे जे जे ग्रंथोनो उपयोग कर्यो छे ते ग्रंथोनी (टिप्पृ० १४७ पछी जोडेली) सूची उपर दृष्टिपात करवाथी केटला विशाळ प्रमाणमां अमे प्राचीन-अर्वाचीन ग्रंथराशिनो उपयोग कर्यो छे ए वस्तु वाचको स्वयमेव सारी रीते जाणी शकशे।

नयचक्रवृत्ति संपूर्ण वांची गया पछी मने लाग्युं के सांख्य-वैशेषिक-बौद्ध आदि दर्शनोना जे जे ग्रंथोनुं **नयचक्रमां** खंडन करेलुं छे तेमांथी मोटा भागनुं साहित्य आजे नामशेष थई गयुं छे, तेम छतां **नयचक्रमां** जे बौद्धग्रंथोनी समीक्षा करवामां आवी छे ते बौद्धग्रंथो संस्कृतभाषामां आजे नष्ट थई गया होवा छतां तेमांना केटलाक ग्रंथोनुं टिबेटन भाषामां लगभग १००० वर्षो पूर्वे थएलुं भाषांतर मळे छे, एटले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ए भाषा जो शीखी लेवामां आवे तो ए टिबेटन भाषांतरोने आधारे **न**यचक्रमां आवती घणी चर्चाओ स्पष्ट समजाय ए हेतुथी टिबेटन भाषा शीखवानी तथा ए टिबेटन भाषांतरना ग्रंथोने मेळववानी पण में तैयारी करी।

नयचक्रनी अत्यंत महत्त्वनी प्रतिनी प्राप्ति

त्यारपछी घणी शोधने अंते **न**यचक्रवृत्तिनी एक अत्यंत दुर्लभ प्रति के जे अमारी धारणा प्रमाणे विश्वमां आ जातनी एक ज प्रति छे अने जे उ० श्री**य**शोविजयजी महाराजे वि० सं. १७१० मां लखेली **न**यचक्रवृत्तिनी प्रतिथी पण लगभग ५०–६० वर्ष पूर्वे लखायेली छे तेनो अमने पत्तो लाग्यो। ए प्रति आचार्यश्री **ध**र्ममूर्तिसूरिना उपदेशथी **गो**विंदमंत्रिना पुत्र **पुं**जे लखावी हती अने अत्यारे ए **भा**वनगरनी शेठश्री **डो**साभाई **अ**भेचंदनी जैनसंघनी पेढीना ज्ञानभंडारमां छे एटले अमे अहिं अमारा संपादनमां एनी **भा०** (भावनगरनी प्रति) एवी संज्ञा राखी छे। आ **भा०** प्रतिने घणा प्रयासे मेळवीने अमे जोयुं तो अमारी तमाम प्रतिओमां न हता एवा सेंकडो शुद्ध पाठो एमांथी अमने मळी आव्या।[1] केटलेक ठेकाणे तो अनेकानेक अधिक पंक्तिओ पण एमांथी अमने मळी आवी। पांचमा अरमां पृ० ३९७ पं० १५–पृ० ४०० पं० १८ मां अमारी पासेनी बीजी बधीज प्रतिओमां एक आखुं पानुं आगळपाछळ लखाएलुं छे त्यां आ भा० प्रतिमां बराबर पाठ लखाएलो छे। बारमा अरमां बीजी बधी ज प्रतिओमां लगभग एक आखुं पानुं पडी गयुं छे त्यां आ भा० प्रतिमां ए पाठ सारी रीते सचवाएलो छे, इत्यादि अनेक विशेषताओ आ **भा०** प्रतिमां छे। ते ज प्रमाणे **भा०** प्रतिमां ज्यां सेंकडो स्थळे अशुद्ध पाठो छे तेमज अनेक स्थळे पाठो किंवा पंक्तिओ पडी गयेली छे, त्यां अमारी पासेनी **पा० डे० लीं० वि० रं० ही०** प्रतिओमां शुद्ध पाठो सारी रीते सचवाएला छे। एटले अमारी पासे बे जातनी प्रतिओ थई। एक बाजु भा० प्रति अने बीजी तरफ पा० डे० लीं० वि० रं० तथा ही० प्रति। पूज्यपाद न्यायविशारद न्यायाचार्य वाचकवर श्री **य**शोविजयजी महाराजे वि० सं १७१० मां **न**यचक्रवृत्तिनी प्राचीन प्रति उपरथी जे प्रति लखेली तेनी अमे अमारा संपादनमां य० संज्ञा राखी छे। पा० डे० लीं० वि० रं० ही० आ प्रतिओ य० प्रति उपरथी ज साक्षात् किंवा परंपराए लखवामां आवेली छे, एटले एम पण कही शकाय के एक बाजु भा० प्रति अने बीजी बाजु य० प्रति तथा पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतिओ। भावनगर सिवाय भिन्न भिन्न स्थानोना ज्ञानभंडारोमां **न**यचक्रवृत्तिनी जे प्रतिओ जोवामां आवे छे ते बधी ज आ य० प्रति उपरथी साक्षात् किंवा परंपराए लखवामां आवेली छे एवो अमने अनुभव थयो छे। एटले आ प्रमाणे बन्ने य जातनी **न**यचक्रवृत्तिनी हस्तलिखित प्रतिओ मळवाथी अमारुं संशोधनकार्य घणे अंशे सरल थयुं। जो एक ज जातनी प्रति मळी होत तो आ ग्रंथ घणे अंशे अशुद्ध रहेत, परंतु सद्भाग्ये बन्ने य जातनी प्रतिओ अमने मळी गई तेथी आ ग्रंथना संशोधननुं अमारुं कार्य घणुं सरळ थयुं। आम छतां बीजुं तो घणुं कठिन कार्य अमारे करवानुं हतुं ज, कारणके आ प्रमाणे **न**यचक्रवृत्तिनी बन्ने य जातनी हस्तलिखित प्रतिओ मळ्या पछी पण लेखकदोषथी परापूर्वथी चाली आवती समान प्रकारनी अनेक अशुद्धिओ बन्ने य जातनी प्रतिओमां हती ज, छतां बीजा अनेक ग्रंथोना आधारे पाठोने शुद्ध करवा माटे अमे यथामति सर्व प्रयत्नो कर्या छे। वळी तपास करतां जणायुं के **न**यचक्रमूळ तो लगभग ७०० वर्ष पहेलांथी ज नष्ट थई गयेलुं छे अने ते मळवानी अत्यारे आशा ज नथी, एटले **न**यचक्रमूळ पण अमे वृत्ति उपरथी तैयार करवा मांड्युं।

---

१ जुओ प्राक्कथन पृ० ३५ टि० १,२,३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयचक्रनुं प्रकाशन अने भागोनी योजना

आ प्रमाणे घणां वर्षो सुधी विविध ग्रंथोनुं अवगाहन तथा चिंतन-मनन करीने पछी सतत १६ मास सुधी वृत्तिसहित नयचक्रनी प्रेसकोपी में एकला हाथे तैयार करी अने पछी प्रेसमां छापवा मोकली। ते पछी प्रेसमां छपातां घणो विलंब थयो, अमारी प्रकृतिनी अस्वस्थता वगेरे अनेक प्रकारनां विघ्नो आव्यां, उपयोगी ग्रंथसामग्री मेळवतां पण घणो समय लाग्यो, टिप्पणो अने परिशिष्टो तैयार करवा पाछळ पण पुष्कळ समय लाग्यो इत्यादि अनेक कारणोथी प्रस्तुत ग्रंथना प्रकाशनमां घणो ज विलंब थयो छे। अत्यार सुधी सात आरा जेटलो भाग छपाई गयो छे, तेमांथी पूज्यपाद गुरुदेवनी कृपाथी चार आरा जेटला प्रथम-विभागने विद्वानो समक्ष प्रगट करवा हुं आजे भाग्यशाळी थयो छुं, ए मारे मन मोटो आनंदनो विषय छे, बाकीना भागने पण जल्दी प्रगट करवानी अमारी धारणा छे। आ प्रथम विभागमां चार अर तथा द्वितीय विभागमां बाकीनो बधो अंश प्रगट करवानी अमारी योजना छे।

विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत्।
जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम्॥

आ पूर्वश्रुतसंबंधी नयप्राभृतनी एक प्राचीन गाथा तथा आ गाथानी व्याख्यारूपे जे महान ग्रंथनी रचना आचार्यश्री मल्लवादीए करी छे ते नयचक्रना नामथी प्रसिद्ध छे। जो के आ ग्रंथ बार आरानो होवाथी 'द्वादशारनयचक्र' एवो पण उल्लेख कोईक कोईक स्थळे जोवामां आवे छे, छतां एनुं मुख्य नाम नयचक्र छे, ए वात अमे टिपृ० १ मां टिप्पणमां विस्तारथी जणावी छे, माटे जिज्ञासुओए त्यां जोई लेवुं।

आचार्यश्री मल्लवादी

नयचक्रकार आचार्यश्री मल्लवादी जैनदार्शनिकोमां उत्कृष्ट कोटिना तार्किक तरीके प्रसिद्ध छे। याकिनीमहत्तरासूनु आचार्यश्री हरिभद्रसूरिजी महाराजे अनेकान्तजयपताकानी स्वोपज्ञवृत्तिमां मल्लवादीने वादिमुख्य तरीके वर्णव्या छे। कलिकालसर्वज्ञ आचार्यश्री हेमचंद्रसूरिमहाराजे सिद्धहेमशब्दानुशासननी बृहद्वृत्तिमां "उत्कृष्टेऽनूपेन २।२।३९। उत्कृष्टेऽर्थे वर्त्तमानाद् अनूपाभ्यां युक्ताद् गौणान्नाम्नो द्वितीया भवति। अनु सिद्धसेनं कवयः। अनु मल्लवादिनं तार्किकाः। उपोमास्वातिं संग्रहीतारः। उप जिनभद्रक्षमाश्रमणं व्याख्यातारः। तस्मादन्ये हीना इत्यर्थः।" आ प्रमाणे उत्कृष्ट तार्किक तरीके वर्णव्या छे। जैन प्रवचनना आठ प्रभावको पैकी वादिप्रभावकना निरूपणमां संघतिलकसूरि तथा उपाध्यायश्री यशोविजयजी महाराज वगेरेए मल्लवादीजीनुं ज उदाहरण खास आपेलुं छे। बीजा पण अनेक ग्रंथोमां एमनुं महान वादि तरीके वर्णन आवे छे। ए जोतां जैनशासनमां वादि अने तार्किक तरीके एमनुं स्थान उत्कृष्ट छे ए स्पष्ट जणाई आवे छे।

---

१ "अस्य चार्थस्य पूर्वमहोदधिसमुत्पतितनयप्राभृततरङ्गागमभ्रष्टश्लिष्टार्थकणिकमात्रमन्यतीर्थकरप्रज्ञापनाभ्यतीतगोचर-पदार्थसाधनं नयचक्राख्यं संक्षिप्तं गाथासूत्रम्–विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत्। जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम्॥"–नयचक्र पृ० ९। विशेष विचारणा माटे जुओ प्राक्कथन पृ० ९ टि० २। २ "उक्तं च वादिमुख्येन मल्लवादिना सम्मतौ"-पृ०५८, ११६। ३ जुओ सम्यक्त्वसप्ततिवृत्तिमां मल्लवादिकथा। प्राक्कथन पृ० ११ टि० २। ४ "वादि त्रीजो रे तर्कनिपुण भण्यो, मल्लवादी परे जेह। राजद्वारे रे जयकमला वरे, गाजंतो जिम मेह। धन्य धन्य शासनमंडन मुनिवरा।"—उ० यशोविजयजीकृत समकितना ६७ बोलनी सज्झाय। ५ जुओ प्राक्कथन पृ० ११ टि० २॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयचक्रनी टीकाने अंते टीकाकार श्रीसिंहसूरिक्षमाश्रमणे मल्लवादिजीना संबंधमां जे उल्लेख कर्यो छे ते जोतां मल्लवादीजी श्वेतांबर परंपराना हता, 'क्षमाश्रमण' पदवीथी विभूषित हता, अनेक वादीओ उपर तेमणे विजय मेळव्यो हतो अने नयचक्रनुं अध्ययन करनाराओ 'वादीओमां चक्रवर्ती बने' ए हेतुथी तेमणे नयचक्रनी रचना करी हती, वळी तेमना समयमां आर्ष (प्राचीनमहर्षिप्रणीत) सप्तशतारनयचक्र अध्ययन हतुं ज छतां ते विस्तृत होवाथी संक्षेपरुचि अध्येताओने माटे तेमणे संक्षेपमां द्वादशार नयचक्रनी रचना करी हती, ए हकीकत स्पष्ट जणाय छे। ए उल्लेख प्राक्कथन पृ० १०-११ मां अमे आपेलो छे।

मल्लवादीजीना संबंधमां संक्षिप्त छतां ए सौथी प्राचीन उल्लेख छे। "पूर्वाचार्यविरचितेषु सन्मति-नयावतारादिषु नयशास्त्रेषु अर्हत्प्रणीतनैगमादिप्रत्येकशतसंख्यप्रभेदात्मकसप्तनयशतारनयचक्राध्ययनानुसारिषु" आ प्रमाणे टीकाकारे अहिं करेला उल्लेख उपरथी ए पण फलित थाय छे के नयावतारग्रंथ तेम ज जैन दार्शनिक साहित्यमां अनेकान्त अने नयविषयमां अत्यारे महत्त्वनो गणातो श्रीसिद्धसेनदिवाकरजीरचित सम्मतितर्क ग्रंथ ए नय के न्याय विषयना आद्य ग्रंथो नथी, एना पहेलां सप्तनयशतारनयचक्र नामनो नयविषयनो आकर ग्रंथ विद्यमान हतो ज अने श्री सिद्धसेनदिवाकरप्रणीत सन्मतितर्क तथा नयावतार वगेरे ग्रंथो पण प्राचीन सप्तनयशतार नयचक्र अध्ययन उपरथी बनेला हता। नयावतार ग्रंथ अत्यारे मळतो नथी। अत्यारे जे न्यायावतार मळे छे ते आनाथी जुदो छे, कारणके न्यायावतारमां नयनी चर्चा नहिंवत् ज छे, ज्यारे अहिं तो नयावतारने 'नयशास्त्र' तरीके वर्णव्यो छे। आ नयावतारना कर्ता कोण हता ए विषे अहिं कोई स्पष्ट उल्लेख नथी छतां सन्मतिनी साथे तेनो निर्देश होवाथी संभव छे के तेना कर्ता पण सिद्धसेन दिवाकर होय। वळी 'तस्मिंश्चार्षे सप्तनयशतारनयचक्राध्ययने च सत्यपि' आ प्रमाणे नयचक्रटीकाकारे करेला उल्लेख उपरथी तेमना समयमां सप्तनयशतारनयचक्र ग्रंथ हतो ज, परंतु विक्रमनी ११ मी शताब्दीमां वादिवेताल शांतिसूरिजीए उत्तराध्ययनसूत्रनी बृहद्वृत्तिमां तथा विक्रमनी १२ मी शताब्दीमां मलधारी हेमचंद्रसूरिजीए अनुयोगद्वारसूत्रनी वृत्तिमां "सप्तशतारं नयचक्राध्ययनमासीत्" एवो उल्लेख कर्यो होवाथी तेमना समयमां सप्तशतारनयचक्र ग्रंथ मळतो नहोतो ज ए स्पष्ट जणाय छे। विस्तारथी उत्तराध्ययनसूत्रबृहद्वृत्ति वगेरेना उल्लेख जाणवा माटे जुओ टिपृ० १ टि० २।

आचार्यश्री मल्लवादीनुं जीवनचरित्र

मल्लवादीजीना जीवनचरित्र विषे कंईक अंशे भिन्न अने कंईक अंशे समान वर्णनवाळी भद्रेश्वरसूरिकृत कहावली, आम्रदेवसूरिकृत आख्यानमणिकोशटीका, प्रभाचंद्रसूरिकृत प्रभावकचरित्र, संघतिलकसूरिकृत सम्यक्त्वसप्ततिवृत्ति आदि ग्रंथोमां अनेक कथाओ मळी आवे छे। विस्तारथी जाणवानी इच्छावाळाओए ए कथाओ जोई लेवी। अहिं संक्षेपमां प्राचीन आख्यायिकाओनो सार जणाववामां आवे छे—

भरुचनगरमां जिनानंद नामना जैनाचार्यनो बुद्धानंद नामना बौद्धवादीने हाथे वादमां पराजय थयो तेथी जिनानंदसूरि भरुचथी नीकळीने सौराष्ट्र देशमां वलभीपुर नगरमां आव्या, त्यां तेमनी दुर्लभदेवी नामनी भगिनी रहेती हती। तेने अजितयशा, यक्ष तथा मल्ल ए नामना त्रण पुत्रो हता। आ त्रणेय पुत्रो

१ नयचक्र तथा नयचक्रटीकामां आगमग्रंथो माटे ज आर्ष शब्द वापरेलो छे। २ आ पैकी कहावली तथा आख्यान-मणिकोशमां आवती आख्यायिका माटे जुओ प्राक्कथन पृ० ११ टि० २, कहावली आदिनो समयनिर्देश पण त्यां करेलो छे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साथे दुर्लभदेवीए जिनानंदसूरिपासे दीक्षा लीधी । त्रणेय बंधुओ जिनानंदसूरिपासे अभ्यास करीने अनेक शास्त्रोमां पारंगत थया । मल्लनी उंमर नानी होवा छतां तेमनी बुद्धि घणी तीक्ष्ण हती तेमज अपूर्व प्रतिभा हती । कथानकमां जणाव्या प्रमाणे 'प्राचीन नयचक्रमां रहेली—

विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत् ।
जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम् ॥

आ एक गाथा उपरथी तमे नवुं नयचक्र रची शकशो' एवुं देवी तरफथी तेमने वरदान पण मळ्युं हतुं । एटले तेमणे ए गाथाने अवलंबीने नवीन नयचक्रनी रचना करी हती । त्यारपछी भरुच जईने मल्लवादीए भरुचनी राजसभामां छ दिवस सुधी वाद करीने बुद्धानंद नामना बौद्धवादीनो पराजय कर्यो हतो । आ प्रमाणे एमनुं मूळ नाम मल्ल होवाथी तेमज ए महासमर्थ वादी होवाथी एमनी मल्लवादी तरीके प्रसिद्धि थई हती । गुरुमहाराजे तेमने सूरि पदवी पण आपी हती। आ रीते तेमणे वादिप्रभावक तरीके जैन शासननी महान प्रभावना करी हती।

मल्लवादीनो सत्तासमय

मल्लवादीना समयविषेनो जे चोक्कस उल्लेख प्रभावकचरित्रमां विजयसिंहसूरिप्रबंधमां छे ते प्राक्कथन पृ० १४–१५ मां अमे आपेलो छे ।

एमां आचार्य खपुट वीरसंवत् ४८४ (एटले विक्रमसंवत् १४ मां) हता, तेमज मल्लवादीए वीर संवत् ८८४ (एटले विक्रमसंवत् ४१४ मां) बौद्धो उपर जीत मेळवी हती एम जणाव्युं छे ।

मल्लवादीनो आ समय नयचक्रग्रंथमां जेमना मतनो उल्लेख आवे छे ते ग्रंथकारोना समय साथे सरखावतां बराबर मळी रहे छे । नयचक्रमां वार्षगण्य,[1] वसुरात,[2] वसुरातशिष्य भर्तृहरि,[3] वसुबंधु,[4] वसुबंधु-शिष्य दिङ्नाग[5] आदिना मतोनी चर्चा विस्तारथी आवे छे । आ बधा प्राचीन ग्रंथकारोना समय विषे विद्वानो घणा समयथी चर्चाओ कर्या ज करे छे, परंतु एमणे ए चर्चाओ करती वखते मल्लवादीनो आ समय पण ध्यानमां लेवो ज जोईए । दिङ्नागना समयनी विचारणा करती वखते ए वात पण ध्यानमां लेवी जोईए के दिगम्बरजैनाचार्य श्री समन्तभद्ररचित आप्तमीमांसा दिङ्नागना ग्रन्थ पछी रचाएली छे[5] । भर्तृहरिनुं वाक्यपदीय दिङ्नागना प्रमाणसमुच्चय पूर्वेनुं छे, कारण के प्रमाणसमुच्चयना पांचमा परिच्छेदमां वाक्यपदीयनी बे कारिकाओ छे ए विषे में[6] घणा लेखोमां जणाव्युं छे । त्रैकाल्यपरीक्षा नामना ग्रंथनी रचना पण दिङ्नागे भर्तृहरिना वाक्यपदीयना प्रकीर्णकांडने सामे राखीने ज करी हती[7] । दिङ्नाग अपोहवादनो मुख्य प्रणेता गणाय छे । प्रमाणसमुच्चयमां तथा अपोहविषयक कोई स्वतंत्रग्रंथमां पण दिङ्नागे अपोह विषे खूब चर्चा करी छे । नयचक्रवृत्ति पृ० १९ पं० १८ मां "कुतोऽर्थान्तरापोहलक्षणं विद्वन्मन्याद्यतनबौद्ध-परिक्लृप्तं सामान्यम्" आ प्रमाणे 'अद्यतनबौद्ध' शब्दथी अपोहवादीनो उल्लेख छे ए जोतां नयचक्रटीकाकार सिंहसूरिक्षमाश्रमणना समयमां पण अपोहवादी बौद्ध 'अद्यतन' गणाता हता, ए उपरथी एम लागे छे के मल्लवादी तथा दिङ्नाग परस्पर निकटकालीन होय ।

---

१ जुओ प्राक्कथन. पृ० १५ टि० १ ॥ २ जुओ प्राक्कथन पृ० १५ टि० २ ॥ ३ जुओ प्राक्कथन पृ० १६ टि० ३ ॥ ४ दिन्न अने दत्तक वगेरे नामो पण दिङ्नागनां मळे छे. जुओ प्राक्कथन पृ० १६ टि० ३ ॥ ५ आ वात अमे विस्तारथी प्राक्कथन पृ० १७ टि० १ मां जणावी छे ॥ ६ जुओ प्राक्कथन पृ० १५ टि० २ ॥ ७ जुओ प्राक्कथन पृ० १६ टि० ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मल्लवादिक्षमाश्रमणे नयचक्रमां तथा सिंहसूरिक्षमाश्रमणे वृत्तिमां ज्यां ज्यां जैन आगम ग्रंथोमांथी पाठो उद्धृत करेला छे त्यां त्यां ए पाठोमां अने वर्तमानमां प्रचलित आगमपाठोमां थोडुं घणुं पण अंतर जोवामां आवे छे, ज्यारे केटलाक पाठो तो प्रचलित आगमपाठपरंपरामां छे ज नहिं। वर्तमानमां प्रचलित पाठ-परंपरा भगवान् देवर्धिगणिक्षमाश्रमणे वलभीमां करेली संकलनाथी प्रतिष्ठित थई छे एम प्रसिद्ध छे। देवर्धिगणिक्षमाश्रमणे वीरनिर्वाणसंवत् ९८० (एटले विक्रमसंवत् ५१०) मां वलभीमां संकलना करी हती, ज्यारे मल्लवादी वीरनिर्वाणसंवत् ८८४ (एटले विक्रमसंवत् ४१४) मां हता। एटले ए पाठभेदनुं कारण पण समजी शकाय छे के आचार्यश्री मल्लवादी पासे तथा आचार्यश्री सिंहसूरिक्षमाश्रमण पासे जैनागमोनी जे पाठपरंपरा हती ते अत्यारे प्रचलित आगमपाठपरंपराथी कंईक जुदी अने प्राचीन हती। नयचक्र तथा नयचक्रवृत्तिमां उद्धृत आगमपाठो अने प्रचलित पाठोमां केवुं अंतर छे ए अमे ते ते स्थळोए टिप्पणोमां जणाव्युं छे।

मल्लवादिरचित ग्रन्थो

मल्लवादीए सिद्धसेनदिवाकरप्रणीत सम्मतिप्रकरण उपर वृत्ति रची हती, एम याकिनीमहत्तरासूनु [3]हरिभद्रसूरिमहाराज वगेरेए करेला उल्लेख उपरथी जणाय छे, अने ते वृत्तिनुं प्रमाण ७०० श्लोक जेटलुं हतुं एवो [4]बृहट्टिप्पणिकामां उल्लेख नजरे पडे छे। प्रभावकचरित्रमां मल्लवादिप्रबंधमां आवता उल्लेख उपरथी जणाय छे के ‘मल्लवादीजीए रचेलुं नयचक्र १०००० श्लोक जेटलुं हतुं, तेमणे २४००० श्लोक-प्रमाण [6]पद्मचरित नामना रामायणग्रंथनी पण रचना करी हती’।

अत्यारे तो मल्लवादिरचित सम्मतिवृत्ति, पद्मचरित तथा नयचक्र एमांथी एक पण ग्रंथ मळतो नथी। वि० सं० १३३४ मां प्रभावकचरित्रकार प्रभाचंद्राचार्य जणावे छे[7] के ‘मल्लवादीए बुद्धानंद नामना जे बौद्धवादीने हराव्यो हतो ते मरीने व्यंतर थयो छे अने ते व्यंतर पूर्व जन्मना वैरथी मल्लवादीना नयचक्र तथा पद्मचरित आ बे ग्रंथो जगतमां विद्यमान होवा छतां कोईने वांचवा देतो नथी’। आ उल्लेख उपरथी स्पष्ट समजी शकाय छे के वि० सं० १३३४ मां पण नयचक्र अप्राप्य हतुं, एटले आजथी लगभग सातसो वर्ष पहेलां पण नयचक्र मळतुं नहोतुं।

परंतु सद्भाग्ये नयचक्र उपर सिंहसूरिगणिवादिक्षमाश्रमणे रचेली १८००० श्लोकप्रमाण अतिविस्तृत टीका अत्यारे मळे छे तेना अधारे नयचक्रनी रचनाशैली तेम ज विषयनुं स्वरूप सारी रीते जाणी शकाय तेम छे।

नयचक्रनो विषय

जैनदर्शनना प्रमाणमीमांसा आदि ग्रंथोमां प्रमाणनुं प्रतिपादन छे, सम्मति आदि ग्रंथोमां नयोनुं तथा अनेकान्तवादनुं निरूपण छे, प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार आदि ग्रंथोमां प्रमाण तथा नय ए बन्नेयनुं

---

१ जुओ प्राकथन पृ० २३ टि० १० ॥ २ जुओ प्राकथन पृ० २४ टि० ४ ॥ ३ जुओ प्राकथन पृ० १७ टि० ३ ॥ ४ जुओ प्राकथन पृ० १७ टि० ४ ॥ ५ जुओ प्राकथन पृ० १७ पं० ९ ॥ ६ जुओ प्राकथन पृ० १७ टि० २ ॥ ७ “बुद्धानन्दस्तदा मृत्वा विपक्षव्यन्तरोऽजनि। जिनशासनविद्वेषिप्रान्तकालमतेरसौ ॥ १२ ॥ तेन प्राग्वैरतस्तस्य ग्रन्थद्वय-मधिष्ठितम्। विद्यते पुस्तकस्थं तद् वाचितुं स न यच्छति ॥ १३ ॥”—प्रभावकचरित्रमां मल्लवादिप्रबंध ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिपादन छे, अनेकान्तजयपताका आदि ग्रंथोमां सत्-असत् नित्य-अनित्य वगेरे एकांतवादोनुं निराकरण करीने अनेकान्तवादनी स्थापना करी छे, ज्यारे नयोना निरूपणद्वारा एकान्तवादी सर्वदर्शनोनुं निराकरण तथा जैनदर्शनसम्मत अनेकान्तवादनी स्थापना ए **नयचक्र**नो मुख्य विषय छे। अनेकात्मक वस्तुना एक देशनुं अवधारण करनारी दृष्टिने नय कहेवामां आवे छे। आवा नयो अनंत छे, छतां जैनाचार्योए ते बधायनो संक्षेप सात नयोमां करेलो छे, जेमके १ नैगम, २ संग्रह, ३ व्यवहार, ४ ऋजुसूत्र, ५ शब्द, ६ समभिरूढ, ७ एवंभूत। आ ७ नयोनो पण १ द्रव्यार्थिक तथा २ पर्यायार्थिक एम बे नयोमां समावेश करवामां आवे छे[४]। आ नयवाद ए जैनदर्शननो तद्दन स्वतंत्र तथा अत्यंत महत्त्वनो विशिष्ट विषय छे अने ए विषे जैनसाहित्यमां पुष्कळ ग्रंथो रचायेला छे। प्रस्तुत **नयचक्र**ग्रंथ नयविषयक होवा छतां एमां जे नयोनुं निरूपण छे ते भिन्नप्रकारना विधि आदि १२ नयो छे, तेमनां नाम नीचे प्रमाणे छे—

१ विधिः, २ विधिविधिः, ३ विध्युभयम्, ४ विधिनियमः, ५ उभयम्, ६ उभयविधिः, ७ उभयोभयम्, ८ उभयनियमः, ९ नियमः, १० नियमविधिः, ११ नियमोभयम्, १२ नियमनियमः।

आ विधि आदि बार नयोनो जैनप्रवचनप्रतिपादित सात नयो साथे पण संबंध तो छे ज। जैन प्रवचनमां मूळनय बे छे १ द्रव्यार्थिक तथा २ पर्यायार्थिक। प्रारंभना विधि आदि छ नयो द्रव्यार्थिक-नयना भेदो[५] छे, ज्यारे पाछळना उभयोभयम् आदि छ नयो पर्यायार्थिकनयना भेदो[६] छे। ते ज प्रमाणे विधि आदि बारे नयोनो नैगमादि सात नयोमां पण यथायोग्य रीते अंतर्भाव थई जाय छे। विधि आदि कया नयनो अंतर्भाव नैगमादि कया नयमां थाय छे ए विषे ग्रंथकारे ते ते विधि आदि नय निरूपणना अंते जणाव्युं छे, तेनुं सामान्य दिशासूचन आ प्रमाणे छे—

पहेला विधिनयनो अंतर्भाव व्यवहार नयमां थाय छे, बीजा, त्रीजा तथा चोथा नयनो अंतर्भाव संग्रहनयमां थाय छे, पांचना तथा छट्ठा नयनो अंतर्भाव नैगमनयमां, सातमा नयनो ऋजुसूत्रमां, आठमा तथा नवमानो शब्दनयमां, दशमानो समभिरूढनयमां तथा अगिआरमा अने बारमा नयनो अंतर्भाव एवंभूत नयमां थाय छे।

एक अरमां एक नयनुं निरूपण ए रीते **नयचक्र**ना बार अरमां विधि आदि बार नयोनुं निरूपण छे। आ जातना बार नयोनुं निरूपण मात्र **नयचक्र**मां ज जोवामां आवे छे, ए उपरथी आचार्यश्री **मल्लवादी**नी चिंतनशैली तथा प्रतिपादनशैली केवी अपूर्व हती, तथा तेमनी प्रतिमा केवी अद्भुत हती ए स्पष्ट जणाई आवे छे।

नयचक्रनी रचनाशैली

ग्रंथकारे '**नयचक्र**' नाम बराबर सार्थक राखेलुं छे। जेम रथादिना चक्रमां बार आरा होय छे तेम आमां पण अरात्मक बार प्रकरणो छे। एक एक अरमां अनुक्रमे विधि आदि बार नयोना निरूपणमां विधि

१ "अत एव श्रीहरिभद्रसूरिपादैः श्रीमदभयदेवपादैश्च परपक्षनिरासे तैर्यतितमनेकान्तजयपताकायां तथा **सम्मतिटीका**यामिति। अत एव श्रीमन्महामल्लवादिपादैरपि **नयचक्र** एवादरो विहित इति न तैरपि प्रमाणलक्षणमाख्यातं परपक्षनिरासादपि स्वपक्षस्य पारिशेष्यात् सिद्धिरिति।"–**जिनेश्वरसूरि**कृत स्वोपज्ञ **प्रमालक्ष्मवार्तिकवृत्ति** पृ० ८९॥ २ यथोक्तम्–"द्रव्यस्यानेकात्मनोऽन्यतमैकात्मावधारणमेकदेशनयनान्नयः"–**नयचक्रवृत्ति** पृ० १० पं २४॥ ३ जुओ **नयचक्रवृत्ति** पृ० ७ पं १२॥ ४ जुओ **सम्मतितर्क**नी त्रीजी गाथा॥ ५ जुओ पृ० ४५४ पं० १ वगेरे॥ ६ जुओ पृ० ४५५ पं० ६ वगेरे॥ ७ जुओ पृ० ४५३ पं० ७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि ते ते नय साथे संबंध धरावता ते समयना बधा ज दार्शनिक विचारोने मल्लवादीए **नय**चक्रमां समावी लीधा छे । जेम चक्रना आराओमां वच्चे अंतर होय छे तेम आमां पण अंतर छे । दरेक अरमां पर-मतनुं खंडन अने स्वमतनी स्थापना आवे छे । आ जे खंडनात्मक विभाग छे ते विध्यादि अरो वच्चेनुं अंतर छे । चक्रमां जेम अनेक **मार्गो** होय छे तेम आमां पण मल्लवादीए त्रण **मार्गो**नी योजना करी छे । टीकाकारे 'मार्ग' शब्दनो 'नेमि' अर्थ करेलो छे, एटले आ **नय**चक्रनी नेमि त्रण खंडोनी बनेली छे । पहेला खंडमां 'विधिः' आदि चार नयो छे, बीजा खंडमां 'उभयम्' आदि ४ नयो छे, ज्यारे त्रीजा खंडमां 'नियमः' आदि चार नयो छे, वळी चक्रना आराओमां परस्पर अंतर होवा छतां पण जेम बधा आराओ मध्यमां रहेली नाभिमां जोडाएला होय छे तेम आमां पण विधि आदि बार अरोना निरूपण पछी स्याद्वादनाभि आवे छे, तेमां ए प्रमाणे सिद्ध कर्युं छे के आ बधा नयरूपी अरो स्याद्वादरूपी नाभि साथे जोडाएला रहे तो ज प्रतिष्ठित थई शके, नहितर जेम चक्रमां नाभि विना आराओ टकी शकता नथी तेम आ बधा नयवादो स्याद्वादनो आश्रय लीधा सिवाय जरा पण टकी शके तेम नथी । स्याद्वादनाभिनुं ज बीजुं नाम **नय**चक्रतुंब छे । आ प्रमाणे आ ग्रंथनुं **नय**चक्र नाम बराबर सार्थक छे ।

चक्र आकारे विधि आदि नयवादोनी योजना करवाथी ए पण सूचित थाय छे के आ नयोनुं खंडन-मंडननुं चक्र हंमेशां चाल्या ज करे छे । एमना वादविवादनो कोई अंत ज नथी । 'वादपरमेश्वर' स्याद्वादनो आश्रय लेवामां आवे तो बधा नयोना झगडाओनो तरत ज अंत आवी जाय । जेम परमेश्वरनो आश्रय लेवाथी सर्व क्लेशोनो अंत आवी जाय छे तेम वादोमां परमेश्वर अनेकान्तवाद–स्याद्वादनो आश्रय लेवाथी सर्व विग्रहोनो अंत आवी जाय छे ।

नयचक्रनी एक खास विशिष्टता ए छे के विधिवाद, अद्वैतवाद, द्वैतवाद, ईश्वरवाद आदि कोई वादोनुं जैनो तरफथी सीधुं खंडन तेमां नथी । भिन्न भिन्न नयो ज एक बीजानुं खंडन करे छे । ग्रन्थकार तो न्यायाधीशनी जेम तटस्थ दृष्टिथी जोया ज करे छे अने ज्यारे प्रसंग आवे छे त्यारे वादपरमेश्वर स्याद्वादनो आश्रय लेवानुं सूचन करे छे के जेथी तेमना विग्रहनो अंत आवी जाय । छेवटे **नय**चक्रतुम्बमां तेमणे जणाव्युं छे के विधिनय, विधिविधिनय, विध्युभयनय (द्वैतवाद–ईश्वरवाद) आदि बधा नयो जो स्याद्वादनो आश्रय ले तो सत्य छे, नहितर ए बधा एकान्तवादो मिथ्या छे । परस्परसापेक्षता – स्याद्वाद ए बधा नयोनी सत्यतानो आधार छे ।

पूर्वपूर्व नयना मतनुं खंडन करवा माटे उत्तरोत्तर नय उपस्थित थाय छे । आ रीते **नय**चक्रमां नयोनी गोठवणी छे । आ शैलीथी ते समयना तमाम दार्शनिक विचारोनो व्यवस्थित चिंतनक्रम तथा खंडन-मंडनक्रम

१ जुओ **प्राकथन** पृ० ९ टि० १ ॥ २ जुओ पृ० ८३, ८४, ४३६, ७१९, ७२०, ४९७-२ ॥ ३ आ स्थळे **सन्मतितर्क**नी बे कारिकाओ ध्यानमां लेवा जेवी छे—'एवं सव्वेवि णया मिच्छादिट्ठी सपक्खपडिबद्धा । अण्णोण्णणिस्सिआ उण हवंति सम्मत्तसब्भावा ॥ १।२१ ॥' (भावार्थ—) सर्वे नयो जो पोतपोताना पक्षना एकान्ते आग्रही होय तो मिथ्या-दृष्टि छे, पण जो अन्योन्यसापेक्ष होय तो तेओ साचा छे । 'णिययवयणिज्जसच्चा सव्वणया परवियालणे मोहा । ते पुण अदिट्ठसमओ विभजइ सच्चे व अलिए वा ॥ १।२८ ॥' सर्वे नयो पोताना मन्तव्यनुं प्रतिपादन करवामां सत्य होय छे, परंतु बीजानुं खंडन करवा लागे छे त्यारे तेओ निष्फळ जाय छे । जे मनुष्यने शास्त्रना रहस्यनुं ज्ञान नथी ते माणस ज 'आ नय सत्य ज छे अथवा आ नय असत्य ज छे' एवो विभाग करे छे,—अर्थात् शास्त्रना रहस्यने जाणनार मनुष्य 'आ नय सत्य ज छे अथवा आ नय असत्य ज छे' एवो विभाग करतो नथी । जुओ **नयचक्रवृत्ति** पृ० ३५ पं० २३-२६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तटस्थदृष्टिथी गोठवीने बधा नयवादोनो समावेश **मल्लवादीए** **नयचक्रमां** बहुज सुंदर पद्धतिथी कर्यो छे[1]। नयवादो केवी रीते अनेकान्तवादनो आश्रय ले छे ए पण अनेक स्थळे जणाव्युं छे अने ते ते दरेक नयोनुं बीज जैनागमग्रंथोना कया कया वाक्यमां रहेलुं छे ए पण दरेक नयने अंते **मल्लवादीजीए** जणाव्युं छे। आ रीते अनेकान्तदृष्टिथी जैनदर्शननी सर्वनयसमूहात्मकता सिद्ध करवामां **मल्लवादीए** पोतानी अप्रतिम प्रतिभानो परिचय कराव्यो छे।

नयचक्रमां चर्चेला दार्शनिक वादो

आ प्रमाणे ते समयनां सर्वदर्शनोनी विचारणा आ ग्रंथमां होवाथी ते समयना दार्शनिक विचारोनुं स्वरूप तथा इतिहास जाणवा माटे आ ग्रंथ अत्यंत उपयोगी छे। दार्शनिक इतिहासना संशोधको माटे आ ग्रंथमां विशाळ सामग्री भरेली छे। दार्शनिक ग्रंथ–ग्रंथकारोनां नामोना तथा पाठोना अन्यत्र दुर्लभ एवा अनेक उल्लेखो आ ग्रंथमां विपुल प्रमाणमां छे। विस्तरार्थीओए ग्रंथनुं अवगाहन करवुं तथा टिपृ० १४७ मां आपेली सूचि जोई लेवी। अहिं तो अमे दिङ्मात्र जणावीए छीए।

वेद्—वेदनी संहिताओ तथा **उपनिषद्** वगेरेमांथी आमां अनेक स्थळे पाठो उद्धृत करेला छे। अत्यारे प्रचलित पाठो अने अहिं उद्धृत करेला पाठो वच्चे केटलेय स्थळे अल्प अथवा अधिक भेद छे। अमे अहिं **नयचक्रवृत्ति**नी प्रतिमां मळता प्राचीन पाठो ज जाळवी राख्या छे। जुओ पृ० १५४ पं० ११–१६, पृ० १२१ पं० २०-२१, पृ० २१० पं० २१–२२, पृ० ३३२ पं० ३, पृ० १९२ पं० ३ वगेरे। अत्यारे केवो पाठभेद मळे छे ए अमारां टिप्पणोमां अमे केटलेक स्थळे जणाव्युं छे[2]। नयचक्रवृत्तिमां उद्धृत करेला पाठो प्राचीन पाठपरंपरा साथे केवी रीते बराबर मळी रहे छे एनुं उदाहरण टिपृ० ६० पं० १९–२४ मां जोई लेवुं।

सांख्य—वार्षगण्यप्रणीत **वार्षगणतंत्र** सांख्यदर्शननो अत्यंत महत्त्वनो प्राचीन आकर ग्रंथ हतो ते अत्यारे मळतो नथी। **नयचक्रवृत्ति** पृ० ३२४ पं० १२ मां एनो **वार्षगणतंत्र** नामथी उल्लेख करेलो छे। केटलाक संशोधक विद्वानोनुं मानवुं छे के **षष्टितंत्र** ए **वार्षगण** तंत्रनुं ज बीजुं नाम छे[3]। आचार्यश्री **मल्लवा-दीए** सांख्यमतनी विचारणा करती वखते **वार्षगणतंत्र**नो तथा तेना **भाष्य**नो अनेकस्थळे उपयोग करेलो छे। **वार्षगणतन्त्र** अने तेना **भाष्य**मांथी अनेकपाठो संक्षेप अथवा विस्तारथी **नयचक्रवृत्ति**मां उद्धृत करेला छे। **वार्षगणतन्त्र**मां जे प्रमाणे सांख्यदर्शनना सिद्धांतो वर्णवेला हता तेनुं विस्तारथी निरूपण **नयचक्रवृत्ति** पृ० ३१३–३२४ मां छे। प्राचीन सांख्यदर्शनना जिज्ञासुओने माटे आमां घणी सामग्री छे। **वार्षगणतंत्र** जेवो आकरग्रंथ विद्यमान हशे त्यारे **ईश्वरकृष्णरचित** **सांख्यकारिका**नुं कशुंज महत्त्व नहि होय एम लागे छे। [4]**दिङ्नागे** पण **प्रमाणसमुच्चयमां** **वार्षगणतंत्र**नुं खंडन करेलुं छे, एथी सांख्यमतना स्पष्टीकरण माटे कोई कोई स्थळे **प्रमाणसमुच्चयादि** ग्रंथोना टिबेटन भाषांतरोनो पण अमे टिप्पणोमां उपयोग कर्यो छे, जुओ **भोट**परिशिष्ट टिपृ० १३४, १३६–१४०। **नयचक्रमूलमां** **मल्लवादीए** **ईश्वरकृष्णरचित**

---

१ जुओ प्राक्कथन पृ० ३८ टि० १॥ २ जुओ टिपृ० ४० पं० १–५, टिपृ० १३१ टि० १॥ ३ **नयचक्रवृत्तिमां** आठमा अरमां पृ० ६८५ पं० २० टि० १ मां आ **भाष्य**नो नामोल्लेख छे। **प्रमाणसमुच्चय** उपर **जिनेन्द्रबुद्धि**नी **विशालामलवती** टीका जोतां तेना आधारे पण '**वार्षगणतंत्र** उपर अनेक व्याख्याओ हती' एम जणाय छे, जुओ टिपृ० ७८ पं० १२, टिपृ० १३८ टि० १, ३॥ ४ **वसुबन्धुए** **अभिधर्मकोशभाष्यमां** [५।२६] **वार्षगण्य**नो उल्लेख कर्यो जणाय छे। **अभिधर्मदीपवृत्तिमां** पण **वार्षगण्य**नो उल्लेख छे. जुओ **अभिधर्मदीपवृत्ति** पृ. २५९ पं. १४ टि. २॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सांख्यसप्ततिनो कोई पण उपयोग कर्यो जणातो नथी, परन्तु **न**यचक्रवृत्तिमां पृ० २७७ मां टीकाकार श्री **सिं**हसूरिक्षमाश्रमणे **सां**ख्यसप्ततिमांथी बे कारिकाओ उद्धृत करी छे।

न्याय—अक्षपादप्रणीत **न्याय**सूत्रमांथी अनेक सूत्रो अहीं उद्धृत करेलां छे[1]। ईश्वरवादमां आवती चर्चा जोतां जणाय छे के न्यायदर्शनना कोई प्राचीन ग्रंथोनो आमां उपयोग कर्यो हशे। जुओ पृ० ३३८, ३४१-३४४ वगेरे। **न**यचक्रवृत्ति पृ० ३४१ पं० २४ मां **माहेश्वरो योगविधिः** एवो उल्लेख छे, ए जोतां **मा**हेश्वरदर्शन साथे **न्या**यदर्शननो संबंध जणाय छे। **न्याय**वार्तिककार **उद्द्योतकरनो** आमां कोई नामोल्लेख नथी, परंतु **मल्ल**वादीए ईश्वरवादमां [पृ० ३२९ पं० २] "अचेतनत्वात् स्थित्वा प्रवृत्तेः तुर्यादिवत्" वगेरे जे प्रमाणो **न**यचक्रमां रजु कर्यां छे ए प्रमाणो **न्याय**वार्तिकमां (४।१।२१) विस्तारथी छे, तेमज **त**त्त्वसंग्रहपंजिकाकार **क**मलशीले पण ए **उ**द्द्योतकरनो मत छे एम जणाव्युं छे[2]। ए जोतां **उद्द्योत**करना मतनी पण **मल्ल**वादीए समीक्षा करी होय एवो संभव छे। ईश्वरवादमां **म**हाभारत तथा **उपनिषदमांथी** पण कारिका उद्धृत करेली छे, जुओ पृ. ३३०, ३३२।

वैशेषिक—कणादप्रणीत **वै**शेषिकसूत्रो आमां अनेकस्थळे उद्धृत करेलां छे। **वै**शेषिकसूत्र उपर **वाक्य** नामनी कोई व्याख्या हती, तेना उपर कोई **भाष्य** हतुं अने तेना उपर **प्र**शस्तमतिए **टीका** लखेली हती। **वै**शेषिकसूत्र उपर **कटंदी** नामनी स्वतंत्र टीका पण हती, ते उपरांत बीजी पण अनेक टीकाओ हशे एम **न**यचक्रना सातमा अरमां आवती विस्तृत चर्चा उपरथी जणाय छे[3]। एमां **वा**क्यकार, **भा**ष्यकार, **टी**काकार, **क**टंदीकारना उल्लेखो घणे स्थळे छे। **वाक्य-भाष्य-कटंदी**ना पाठोनो सर्वप्रथम उल्लेख आ ग्रंथमां ज जोवामां आवे छे। प्राचीन वैशेषिक दर्शनना इतिहास उपर आ ग्रंथ घणो प्रकाश पाडे छे। '**प्र**शस्तपाद तथा **प्रशस्त**मति एक ज व्यक्ति छे, तेणे बे ग्रंथो रच्या लागे छे, एक तो वैशेषिकदर्शनना सिद्धान्तविषेनो स्वतंत्र ग्रंथ **प**दार्थधर्मसंग्रह के जे अत्यारे **प्र**शस्तपादभाष्यना नामथी ओळखाय छे, बीजो ग्रंथ ते **वै**शेषिकसूत्रना **वाक्य**भाष्यनी टीका' आ हकीकत सातमा अरमां पृ० ५१२ टि० ७ मां अमे विस्तारथी जणावी छे[4]। जिज्ञासुओए त्यां जोई लेवुं। **प्र**शस्तपाद **दि**ङ्नागना **प्र**माणसमुच्चयथी पूर्ववर्ती जणाय छे[5]। एटले **प्र**शस्तमतिना समय साथे **म**ल्लवादीना **वी**रनिर्वाणसंवत् ८८४ (विक्रमसंवत् ४१४) मां अस्तित्वनो कोई विरोध आवतो नथी।

---

१ जुओ प्राक्कथन पृ० १९ टि० ३, ४॥ २ जुओ **न**यचक्रवृत्ति पृ० ३२८ टि० १॥ ३ जुओ **न**यचक्रवृत्ति पृ० ४५८ पं० १०, पृ० ४६१ पं० ११, पृ० ४६२ पं० १०, पृ० ४९५ पं० १८, पृ० ४९८ पं० २४, पृ० ४९९ पं० २१, पृ० ५१२ पं० १४-१५, पृ० ५१३ पं० १४, पृ० ५१६ पं० १९-२०, पृ० ५११ पं० ९, १०, १४; पृ० ५२८ पं० १५ वगेरे॥ ४ **पदा**र्थप्रवेशक ए **प**दार्थधर्मसंग्रहनुं ज बीजुं नाम छे॥ ५ Oriental Institute, Baroda थी Gaekwad's Oriental Series No. 136 रूपे प्रकाशित थयेला वैशेषिकसूत्रनी प्रस्तावनामां (पृ० ६-११) तथा तेना छट्ठा परिशिष्टमां पण (पृ० १४६-१५२, पृ० १५० टि० १) अमे विस्तारथी आ बधुं जणाव्युं छे, जिज्ञासुओए त्यां जोई लेवुं॥ ६ **दि**ङ्नागे **वृ**त्तिसहित **प्र**माणसमुच्चयमां तथा **जि**नेन्द्रबुद्धिए तेनी **वि**शालामलवती नामनी टीकामां वैशेषिकदर्शन संबंधी जे जे विचारणा करी छे लगभग ते बधानो तथा नैयायिक संबधी चर्चानो टिबेटन भाषांतर उपरथी संस्कृतभाषामां अनुवाद करीने (उपरना टिप्पणमां जणावेला) **वै**शेषिकसूत्रना सातमा परिशिष्टमां (पृ० १७१-२२१) अमे आप्यो छे अने तेना आधारे अमने आ हकीकत जणाय छे, जुओ **वै**शेषिकसूत्रनी प्रस्तावना पृ० ११॥ ७ आ वात श्री० **ए**री **फ्रा**उवल्नरे (Prof. Dr. Erich Frauwallner, University of Vienna, Austria) पण **प्र**माणसमुच्चयना टिबेटन भाषान्तर वगेरेने आधारे 'चन्द्रमति und sein दशपदार्थीशास्त्रम्' ए नामना जर्मन लेखमां पृ० ७१ मां जणावी छे। आ जर्मन लेख Studia Indologica (University of Bonn, Germany) मां छपायो छे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयचक्र तथा वृत्तिमां उद्धृत करेला **वै**शेषिकसूत्रना पाठो घणा प्राचीन छे । आमां उद्धृत करेला केटलांक सूत्रो अत्यारे प्रचलित **उ**पस्कारादिसम्मत वैशेषिकसूत्रपाठमां छे ज नहिं, ज्यारे केटलांक सूत्रो थोडा घणा पाठभेद साथे नजरे पडे छे । **उ**पस्कारनी रचना **शं**करमिश्रे विक्रमनी प्रायः सोळमी शताब्दीमां करेली छे ते पूर्वे रचायेला दर्शनशास्त्रोना अनेक ग्रंथोमां उद्धृत करेलां **वै**शेषिकसूत्रो अने **उ**पस्कारसंमत पाठ वच्चे अनेकस्थळे अंतर पडे छे। परंतु पांचमो अर छपाई गया पछी **वै**शेषिकसूत्रनी एक बहु ज प्राचीन **वृ**त्तिनी हस्तलिखित प्रति **जे**सलमेरना जैनभंडारमांथी मळी आवी हती, तेमां प्राचीन **वै**शेषिकसूत्रपाठ पण अलग आपेलो छे अने साथे साथे **च**न्द्रानन्दरचित वृत्ति पण एमां छे । **न**यचक्रमां तथा बीजा पण प्राचीन **द**र्शनशास्त्रोमां उद्धृत करेलां बधां ज वैशेषिकसूत्रो आ प्रतिमां लगभग अक्षरशः मळे छे[१] । अत्यारे मळती **वै**शेषिकसूत्रनी तमाम वृत्तिओमां आ वृत्ति सौथी प्राचीन छे[२], एटले एनुं महत्त्व समजीने अमे अमारा आ **न**यचक्र ग्रंथमां जुदा जुदा टिप्पणोमां ए **च**न्द्रानन्दरचित वृत्ति सहित **वै**शेषिकसूत्रने संपूर्ण छापी दीधुं छे, जुओ वैशेषिकसूत्रसंबंधि परिशिष्ट टिपृ. १४१ ।

मीमांसा—मीमांसकमतनी चर्चा प्रथम तथा बीजा अरमां विशेषे करीने छे । तेमां **जै**मिनिप्रणीत **मी**मांसादर्शनना सूत्रोनो तथा **वे**द आदि ग्रंथोना पाठोनो उल्लेख छे[३] । **मी**मांसादर्शननी **शा**बरभाष्य जेवी प्राचीन वृत्तिओने पण ग्रंथकारे सामे राखी हशे एम लागे छे[४] । मीमांसादर्शनना प्रसिद्ध पंडित **कु**मारिल अने **प्र**भाकरथी **म**ल्लवादी तथा **सिं**हसूरि बन्ने पूर्ववर्ती छे । एटले तेमना **न**यचक्रमां तथा **न**यचक्रवृत्तिमां जे कंई मीमांसकमतनी चर्चा छे ते मीमांसादर्शनना प्राचीन ग्रंथोने अनुलक्षीने छे ।

अद्वैतवाद—अद्वैतवादनी चर्चामां पुरुष, नियति, काल, स्वभाव, भाव वगेरे अनेक अद्वैतवादोनी चर्चा बीजा अरमां छे, ए जोतां ते समये घणा अद्वैतवादो प्रचलित हता एम जणाय छे। एमां पुरुषाद्वैतवादनी चर्चामां अनेक पाठो **वे**द तथा **उ**पनिषदोमांथी उद्धृत करेला छे[५] । वेदान्तदर्शनना प्रसिद्ध ग्रंथ **बा**दरायण-प्रणीत **ब्र**ह्मसूत्रनो आमां कोई पण स्थळे उल्लेख नथी, परन्तु "तद्व्यतिरिक्ताः शासनिनः **क**पिल-**व्यास**-**क**णाद-**शौ**द्धोदनि-**म**स्करिप्रभृतयः" आ प्रमाणे **व्यास**नो नामोल्लेख **न**यचक्रवृत्ति पृ० ८ पं० ५ मां छे। **म**हाभारत तथा **गी**ताना प्रणेता **व्यास**ऋषि प्रसिद्ध छे । **ब्र**ह्मसूत्रना रचयिता **बा**दरायणनुं पण बीजुं नाम **व्या**स छे। **म**हाभारतना कर्ता **व्यास** अने **ब्र**ह्मसूत्रना कर्ता **व्यास** बंने एक ज छे के भिन्न छे ए विषे विद्वानोमां मत-भेद छे। अहीं **न**यचक्रवृत्तिमां **व्यास** शब्दथी कोई पण **व्यास** विवक्षित होय एवो संभव छे। नियति आदि

---

१ जुओ अमे संपादित करेला वैशेषिकसूत्रनुं वृद्धिपत्रक पृ. २२९-२६४ ॥ २ **वै**शेषिकसूत्र ६।२।४ नी वृत्तिमां **च**न्द्रानन्दे **उ**द्योतकरनो उल्लेख कर्यो छे एटले **च**न्द्रानन्द **न्याय**वार्तिककार **उ**द्योतकर पछी छे ए निश्चित छे। १।२१ सूत्रनी वृत्तिमां एक **वृ**त्तिकारनो पण उल्लेख छे । वैशेषिकसूत्र उपर घणी वृत्तिओ रचाएली हती, एटले एमां ए **वृ**त्तिकार कोण छे ते कंई कही शकातुं नथी। संभव छे के ए **वृ**त्तिकार **प्र**शस्तमति पण होय। **मि**थिलाविद्यापीठे विक्रम सं० २०१३ मां प्रकाशित करेली **अ**ज्ञातकर्तृकव्याख्या तथा **शं**करमिश्रे रचेलो **उ**पस्कार वगेरे बधी ज वृत्तिओ **च**न्द्रानन्द पछी घणा समये रचाएली छे। वैशेषिक सूत्रना ८, ९, तथा १० मा अध्यायमां **चं**द्रानंदे आह्निकविभाग पाड्यो नथी, ए खास ध्यानमां लेवानी हकीकत छे। **स**र्वदर्शनसंग्रहमां **मा**धवाचार्ये वैशेषिकसूत्रनुं स्वरूप वर्णव्युं छे त्यां पण ८, ९ तथा १० मा अध्यायमां आह्निकविभाग बताव्यो नथी, ए खास बतावी आपे छे के चन्द्रानन्दनी वृत्तिमां केवी प्राचीन परंपरा सचवाएली छे। विशेष जिज्ञासुओए अमे संपादित करेला **वै**शेषिकसूत्रनां प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ परिशिष्टो तथा प्रस्तावना जोई लेवां ॥ ३ जुओ **प्रा**क्कथन पृ० २० टि० ६, ७॥ ४ जुओ **न**यचक्र पृ० ११९ टि० ८ ॥ ५ जुओ **प्रा**क्कथन पृ० २० टि० ८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अद्वैतवादो ते ते दर्शनोना ग्रंथोने आधारे चर्चेला जणाय छे, पण अत्यारे ए ग्रंथो मळता नथी। **नयचक्रवृत्ति** पृ० २३० पं० १६ मां **भर्तृहरि**ना शब्दब्रह्मवादनो उल्लेख छे। भाववादमां आवता एक पाठनी **भर्तृहरि**ए **वाक्यपदीय**नी स्वोपज्ञवृत्तिमां उद्धृत करेला ब्रह्मवादीओना पाठ साथे घणी समानता छे, जुओ **नयचक्र** पृ० २३९ टि० ३। भाववादीए पोताना मतना समर्थनमां ब्रह्म विषे पृ० २४१ मां प्राचीन चार कारिकाओ उद्धृत करी छे के जे कारिकाओने **भर्तृहरि**ए पण **वाक्यपदीय**नी स्ववृत्तिमां उद्धृत करी छे, ते उपरांत बीजा पण अनेक ग्रंथोमां ब्रह्माद्वैतवादना समर्थनप्रसंगे ए पैकीनी कारिकाओ उद्धृत करेली जोवामां आवे छे। चोथा अरमां 'ॐकार ज सत्य छे, ॐकार ब्रह्मस्वरूप छे अने ए ज परमार्थ छे एवो चोथा विधिनियम नयनो मत छे' एम जणावेलुं छे[1]। **शंकराचार्य मल्लवादी**थी तथा **सिंहसूरि**क्षमाश्रमणथी पाछळ थयेला होवाथी **शंकराचार्य**ना मतनो आमां कोई निर्देश छे ज नहि। **शंकराचार्य**नो समय विक्रमनी नवमी शताब्दीमां गणाय छे।

बौद्ध—बौद्धोना अनेक वादोनी चर्चा आ ग्रंथमां छे अने ते प्रसंगे बौद्धोना ते ते विषयना ग्रंथोमांथी अनेक अवतरणो अहिं उद्धृत करेलां छे, ११ मा तथा १२ मा अरमां क्षणिकवाद तथा शून्यवादनी विस्तारथी चर्चा छे। ११ मा अरमां पृ० ५१४–२ मां

जहुक्खित्तम्मि लेट्ठुम्मि उप्पादे(डे) अत्थि कारणं।
पडणे कारणं णत्थि अण्णत्थुक्खेवकारणात् ॥

आ गाथा बौद्ध आगमग्रंथमांथी उद्धृत करेली छे[2]। ते सिवाय बौद्धग्रंथोमांथी उद्धृत करेला बीजा अनेक संस्कृत पाठोनी पण समीक्षा छे। आठमा अरमां **दिङ्नाग**ना अपोहवादनुं विस्तारथी खंडन छे। **प्रमाणसमुच्चय** उपरांत बीजो पण अपोहविषयक ग्रंथ **दिङ्नागे** रचेलो हतो एम स्पष्ट जणाय छे, कारण के आठमा अरमां उद्धृत करेला **दिङ्नाग**ना केटलाक पाठो **प्रमाणसमुच्चय**मां जोवामां आवता नथी[3] अने केटलाक पाठोमां पाठभेद किंवा निरूपणमां क्रमभेद नजरे पडे छे। संभव छे के **दिङ्नाग**ना **सामान्यपरीक्षा** नामना ग्रंथमांथी ज अपोहविषयक पूर्वपक्ष लईने तेनुं खंडन करवामां आव्युं होय। कारण के आ प्रसंगमां **सामान्यपरीक्षा**नो नामनिर्देश **नयचक्रवृत्ति**मां आठमा अरमां एक स्थळे छे। **हेतुमुख**मां पण **दिङ्नागे** अपोहनुं प्रतिपादन कर्युं हतुं एम Prof. Dr. E. Frauwallner नुं कहेवुं छे। **दिङ्नाग**ना अनुमान संबंधी विचारोनुं पण आठमा अरमां निरूपण अने तेनुं विस्तारथी खंडन छे। पहेलाँ अरमां **दिङ्नागे प्रमाणसमुच्चय** वगेरेमां जणावेला प्रत्यक्ष प्रमाणना लक्षणनुं विस्तारथी खंडन छे अने ए प्रसंगमां **अभिधर्मपिटक, प्रकरण**-

---

१ जुओ पृ० ३७३ पं० ७—पृ० ३७४ पं० १॥ २ बौद्धाचार्य **नागार्जुने** रचेली **मध्यमककारिका** उपर **चन्द्रकीर्ति**ए रचेली **वृत्ति**मां पण आ गाथा उद्धृत करेली छे, जेमके—"यतोऽप्युक्तम्—'यथ उक्खित्ते लोढम्मि उक्खेवे अत्थि कारणं। पडने कारणं णत्थि अण्णं उक्खेवकारणात् ॥' इति। यथाप्यत्र क्षेपः (यथाप्युत्क्षेपः?) पतनकारणं नान्यत् एवमिहापि जातिमेव कारणत्वेन विनाशस्य वर्णयामो नान्यत् इति नास्त्यहेतुकता विनाशस्य। जातिहेतुकत्वाच्चास्योद्गमनमेव [विनाशस्य] हेतुरिति कृत्वा एषापि गाथा सुनीता भवति—'ए विमे संखता धम्माः संभवन्ति सकारणाः। स भाव एव धम्माणां यं विभोन्ति समुद्गताः ॥"—**मध्यमकवृत्तिः** पृ० २२२–२२३॥ ३ जुओ **प्राक्कथन** पृ० २१ टि० १३॥ ४ पृ० ६२८ पं० ८॥ ५ जुओ पृ० ६७४–६७५, ६७८–६८०, ६८३–६८८, ६९१, ६९३, ७०७, ७२०, ७२४–७२७॥ ६ पृ० ६४, ८६, ८८, ८९, ९१, ९३, ९६, ९७, ९९, १००, १०१, १०२, ७ पृ० ६१, ६२, ६४, ७४, ८२ इत्यादि॥ ८ पृ० ६१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाद आदि अनेक बौद्ध आगम ग्रंथोमांथी अनेक पाठो उद्धृत करेला छे। वसुबंधुए रचेला अभिधर्मकोश-भाष्यना एक पाठनी मल्लवादीए विस्तारथी समीक्षा करेली[1] छे, ते उपरांत हेस्तवालप्रकरण, आर्यदेव रचित चतुःशतक वगेरे बौद्ध ग्रंथोमांथी पण पाठो उद्धृत करेला छे। बौद्धोना विज्ञानवादनो पृ० १०५-१०६ मां उल्लेख छे। दशमा अरमां रूपादि समुदायवादनुं, अगियारमा अरमां क्षणिकवादनुं तथा बारमा अरमां विज्ञानवाद-शून्यवादनुं निरूपण छे[4]। आ ग्रंथमां दिङ्नागनो दिन्न नामथी उल्लेख अनेकवार करेलो छे। दिन्न अने दत्तक पण दिङ्नागनां ज नामो हतां एम अमे सातमा अरमां पृ०[7] ५४७ टि० ५ तथा टि० ९ मां जैन तथा बौद्ध ग्रंथोने आधारे विस्तारथी जणाव्युं छे। आठमा अरमां पृ० ६२८ मां सामान्यपरीक्षानो पण उल्लेख[5] छे, आ ग्रंथ पण दिङ्नागे रचेलो छे। अत्यारे ए संस्कृतमां मळतो नथी। दिङ्नागे रचेला सामान्यलक्षणपरीक्षा नामना एक लघु ग्रंथनुं प्राचीन चीनी भाषांतर मळे छे[6]। दिङ्नागना प्रमाणसमुच्चय, आलंबनपरीक्षा, सामान्यपरीक्षा, न्यायमुख आदि अनेक ग्रंथोना पाठोनो उल्लेख अने खंडन आ ग्रंथमां छे। अत्यारे दिङ्नागना लगभग बधा ज ग्रन्थो संस्कृत भाषामां नष्ट थई गया छे परंतु तेमांना केटलाक ग्रंथोनुं टिबेटन भाषांतर मळे छे एटले नयचक्रमां आवती दिङ्नागना मतनी चर्चा स्पष्टरीते समजी शकाय ए माटे टिबेटन भाषा शीखीने दिङ्नागादि रचित ग्रंथोना टिबेटन भाषांतरो मेळवीने तेना उपरथी संस्कृतमां अनुवाद करीने अमे जरूरी अने उपयोगी अंशो भोटपरिशिष्टमां अने फुटनोटोमां आपेला छे। आ भोटपरिशिष्ट (टिपृ० ९५-१४०) जैन, न्याय, सांख्य, मीमांसा, वेदांत, बौद्ध आदि दर्शनोना प्राचीन ग्रंथोना अभ्यासीओने घणुं उपयोगी छे।

प्रमाणसमुच्चय अथवा दिङ्नाग रचित बीजा कोई ग्रन्थना टीकाकारनो पण नयचक्रवृत्ति पृ० ९३ पं० २७ वगेरेमां उल्लेख छे[10]। प्रमाणसमुच्चय उपर स्वोपज्ञवृत्ति तथा ते उपरांत बीजी पण घणी टीकाओ

---

१ पृ० ७८॥ २ पृ० ९३, टिपृ० १३६॥ ३ पृ० ७३, ८२, ९४॥ ४ समुदायवाद, क्षणिकवाद अने विज्ञानवादनो पृ०२४७ मां पण उल्लेख छे॥ ५ जुओ प्राकथन पृ० २१ टि० १३॥ ६ जुओ अमे संपादित करेला वैशेषिकसूत्रनुं आठमुं परिशिष्ट पृ० १६९॥ ७ पृ० ९१, पृ० ५४१-१॥ ८ पृ० ६४, ७३, ३७६, टिपृ० ३०-३१ इत्यादि॥ ९ बौद्धन्यायना पिता तरीके गणाता बौद्धाचार्य दिङ्नागे नाना मोटा सो ग्रंथो रच्या हता एम कहेवाय छे। एम वेरविखेर वर्णवेला प्रमाण संबंधी विचारोने एणे प्रमाणसमुच्चय अने तेनी स्वोपज्ञवृत्तिमां संगृहीत कर्या छे एम दिङ्नागे पोते ज प्रमाणसमुच्चयना प्रारंभमां जणाव्युं छे। भिन्न भिन्न प्रकरणोना दोहनरूप होवाथी प्रमाणसमुच्चय कंईक अंशे संक्षिप्त छे एम अमने लागे छे, अने मल्लवादी दिङ्नागना मतने विस्तारथी रजु करी तेनुं खंडन करे छे एटले संभव छे के मल्लवादीए केटलेक स्थळे दिङ्नागना ते ते प्रकरणोमांथी सीधो ज ते ते विषयनो पूर्वपक्ष नयचक्रमां रजु कर्यो होय। आथी ज मल्लवादीए ते ते चर्चाओना प्रसंगमां उद्धृत करेला दिङ्नागना पाठो पैकी केटलाक पाठो प्रमाणसमुच्चयमां अक्षरशः मळे छे, केटलाक पाठभेद अथवा क्रमभेदथी मळे छे, अने केटलाक नथी मळता। तेम छतां प्रमाणसमुच्चय ए दिङ्नागनो सर्वोपरि तेमज अतिमहत्त्वनो (Masterpiece) आकर ग्रंथ होवाने लीधे दिङ्नागे भिन्न भिन्न प्रकरणोमां करेलां निरूपण अने प्रमाण-समुच्चयमां करेलां निरूपणोमां अनेक स्थळे अक्षरशः तो अनेक स्थळे अर्थथी समानता जोवामां आवे ए स्वाभाविक ज छे। आ दृष्टिए जोतां नयचक्रमां आवती दिङ्नागना मतनी चर्चा समजवामां प्रमाणसमुच्चय अत्यंत उपयोगी होवाने लीधे प्रमाणसमुच्चय, तेनी स्वोपज्ञवृत्ति तेमज जिनेन्द्रबुद्धिरचित विशालामलवती नामनी प्रमाणसमुच्चयटीकाना (टिबेटन भाषांतरो उपरथी संस्कृतमां अनुवाद करीने) अनेक अनेक अंशो अमे भोटपरिशिष्ट तथा फुटनोटोमां आप्या छे॥ १० जुओ प्राकथन पृ० २२ टि० १, ३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचाएली छे, अहीं स्वोपज्ञवृत्तिकार **दिङ्नाग** ज '**टी**काकार' शब्दथी विवक्षित होय एम लागतुं नथी। अत्यारे **प्रमाणसमुच्चय** उपर **दिङ्नागे** रचेली स्वोपज्ञवृत्ति तथा **जिनेन्द्रबुद्धिए** रचेली **विशालामलवतीटीका** ज टिबेटन भाषांतरना रूपमां मळे छे। **धर्मकीर्तिनुं** **प्रमाणवार्तिक** पण **प्रमाणसमुच्चयना** केटलाक पाठो उपरनी स्वतंत्र व्याख्या छे । **धर्मकीर्ति** तथा **जिनेन्द्रबुद्धि** बन्ने य **नयचक्रकार** श्री **मल्लवादी** तथा **नयचक्रटीकाकार** **सिंहसूरिक्षमाश्रमण** पछी थएला छे, एटले **धर्मकीर्ति** तथा **जिनेन्द्रबुद्धिना** मतना उल्लेखनो अहीं संभव ज नथी, आ बधी बाबतो विषे अमे विस्तारथी **प्राक्कथनमां** [पृ० ११] जणाव्युं छे । जिज्ञासुओए त्यां जोई लेवुं ।

'**दिङ्नाग** ए **वसुबंधुनो** शिष्य हतो छतां तेणे मत्सराविष्ट थईने पोताना गुरु **वसुबंधुना** ग्रंथनुं (वादविधिनुं) खंडन कर्युं छे' एवो स्पष्ट उल्लेख **नयचक्रवृत्ति** पृ० ९६ मां छे, एटले **दिङ्नाग** **वसुबंधुनो** शिष्य हतो आ जातनुं जे वर्णन [१]बौद्ध कथाग्रंथमां आवे छे तेने पण आनाथी समर्थन मळे छे। **नयचक्रवृत्तिकार** **सिंहसूरिक्षमाश्रमण** **दिङ्नागना** लगभग समीप काळमां ज थएला छे, एटले एमनो आ विषेनो उल्लेख तद्दन प्रमाणभूत छे, एटले **वसुबंधु** अने **दिङ्नागना** गुरुशिष्यभाव विषे कोई कोई संशोधको जे आशंका करे छे तेने हवे स्थान ज रहेतुं नथी[३]।

भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय—शब्दार्थ, वाक्यार्थ विगेरेनी विचारणामां **भर्तृहरिना** **वाक्यपदीयनी** अनेक कारिकाओ आ ग्रंथमां उद्धृत करेली छे। आठमा अरमां अभिजल्प शब्दार्थनी चर्चामां **भर्तृहरिना** **वाक्यपदीयनुं** विस्तारथी खंडन छे। **वसुरात** **भर्तृहरिनो** उपाध्याय (गुरु) हतो अने **भर्तृहरि** **वसुरातनो** शिष्य हतो एवो स्पष्ट उल्लेख आठमा अरमां छे। **वसुरातना** मतनुं खंडन पण आठमां अरमां छे। '**वसुरात** मोटो वैयाकरण हतो अने तेणे **वसुबंधुना** **अभिधर्मकोशमां** व्याकरणसंबंधी भूलो जणावी हती' एवो उल्लेख बौद्ध ग्रंथमां आवे [४]छे। **वसुरात** पासे **भर्तृहरिए** अभ्यास कर्यो हतो एवो उल्लेख **वाक्यपदीयमां** पण आवे छे। **दिङ्नागे** **भर्तृहरिना** **वाक्यपदीयमांथी** बे कारिका उद्धृत करेली छे तेमज **त्रैकाल्यपरीक्षानी** रचना करती वखते **दिङ्नागे** **वाक्यपदीयना** **प्रकीर्णकांडनी** अनेक कारिकाओनो उपयोग कर्यो छे ए वात अमे **मल्लवादिना** समयनी चर्चामां जणावी दीधी छे । **भर्तृहरिना** शब्दब्रह्मवादनो निर्देश पृ० २३० पं० १७ मां छे ए अमे पहेलां कही गया छीए।

योग—षडंगयोगविषयक संक्षिप्त छतां अत्यंत उपयोगी उल्लेख **नयचक्रवृत्ति** पृ० ३३२ मां छे। एमां प्रत्याहार, रेचक-पूरक-कुंभक प्राणायाम, ध्यान, धारणा, तर्क तथा समाधि आ योगना छ अंगोनुं सुंदर वर्णन छे। योगना अभ्यासीओए ए वर्णन जरूर वांचवा जेवुं छे।

---

१ **प्रमाणसमुच्चय** उपर एक Darm rinchen नामना टिबेटन लेखके टिबेटन भाषामां घणां वर्षो पूर्वे एक टीका लखेली छे अने तेना Derge edition ना फोटाओ थोडा समय पूर्वे जापानीझ विद्वान् **हाकुयु हाडानो** (Prof. Dr. Hakuyu Hadano, Tohoku University, Sendai, Japan) पासेथी अमने मळ्या छे । परंतु ए टीका मूळथी ज टिबेटन भाषामां लखेली होवाथी अमे अहीं एनो निर्देश कर्यो नथी । **विशालामलवतीथी** आ टिबेटन टीका घणी ज अर्वाचीन छे ए पण ध्यानमां रहे ॥ २ जुओ **प्राक्कथन** पृ० १६ टि० ३ ॥ ३ जुओ **प्राक्कथन** पृ० ३ टि० ३ ॥ ४ जुओ **प्राक्कथन** पृ० १६ टि० १६ ॥ ५ जुओ पृ० ५८१, ५९५। जुओ **प्राक्कथन** पृ० १५ टि० २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैद्यक—चरकसंहिता आदि वैद्यकशास्त्रोमांथी अनेक पाठो प्रसंगे प्रसंगे उद्धृत करेला छे[1]। 'त्रिफलां घी साथे खावां जोईए, गोळ साथे नहि, कारणके गोळ आंखने नुकसान करे छे' आ अर्थवाळो उल्लेख अक्षिवैद्यकमांथी नयचक्रवृत्ति पृ० १५८ पं० २४ मां छे।

व्याकरण—व्याकरणनो आ ग्रंथमां ठाम ठाम उपयोग करेलो छे। विधि आदि नयोनां मते द्रव्य तथा पर्याय शब्दनो जे जुदो जुदो अर्थ थाय छे ते दरेक नयमां छेवटे ग्रंथकारे व्याकरणने आधारे दर्शाव्यो छे, भाव शब्दना अर्थनी पण ते ते नय प्रमाणे व्याकरणनी व्युत्पत्तिने अनुसरीने अनेक स्थाने चर्चा छे। ग्रंथकारे पाणिनिव्याकरणने लगता ग्रंथोनो ज आमां मुख्यतया उपयोग कर्यो छे। पाणिनिव्याकरणनां सूत्रो, पाणिनीय धातुपाठ, पाणिनीय शिक्षा, यास्कनिरुक्त, पाणिनिव्याकरण उपर कात्यायने रचेलुं वार्तिक तथा पतंजलिए रचेला पातंजलमहाभाष्यमांथी आमां अनेक पाठो उद्धृत करेला छे[2]। विशिष्टता ए छे के नयचक्रकार तथा नयचक्रटीकाकार बन्ने य घणा प्राचीन होवाथी तेमनी सामे पाणिनीयव्याकरण, पाणिनीय-धातुपाठ तथा पातंजलमहाभाष्यनी जुनी पाठपरंपरा हती, ते पछी तो आजे सेंकडो वर्ष वीती गयां ते दरम्यानमां अनेक स्थळे पाठभेद थई गया छे। संशोधको सारी रीते जाणे छे के उत्तरोत्तर लेखकोने हाथे कालान्तरे अनेक पाठभेदो निर्माण थाय छे, एटले अत्यारे प्रचलित पाणिनीयसूत्रपाठ तथा पाणिनीयधातु-पाठमां अने नयचक्रवृत्तिमां उद्धृत करेला पाठ वच्चे क्वचित् भेद पण जोवामां आवे छे, जेमके नयचक्रवृत्ति पृ० १५ पं० ८ मां "अन्यार्कियत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् (५।३।९१)" आ प्रमाणे पाणिनीय व्याकरणमांथी सूत्र उद्धृत करेलुं छे, पण अत्यारे तो "।किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्" एवो ज पाठ मळे छे। आ विषे अमे टिप्पणमां (टिपृ०१६ पं०६–१७) विस्तारथी चर्चा करी छे। जिज्ञासुओए त्यां जोई लेवुं। आवां बीजां पण पाठभेदनां उदाहरणो आ ग्रंथमां छे।ए उपरथी एम चोक्कस जणाय छे के पाणिनीय सूत्रपाठनी जुनी पाठपरंपरा नयचक्रवृत्तिकार सिंहसूरिक्षमाश्रमण पासे हती। नयचक्रवृत्तिमां उद्धृत करेला पाणिनीय धातुपाठमां पण ए रीते पाठभेद क्वचित् क्वचित् जोवामां आवे छे[3]। खास करीने अहिं उद्धृत करेला पातंजलमहाभाष्यना पाठो अने वर्तमान पातंजलमहाभाष्यना पाठो वच्चे विशेष भेद जोवामां आवे छे, जेमके नयचक्रवृत्ति पृ० १२४ पं ०८ तथा पृ० १३४ पं० १३ मां 'दशदाडिमादिश्लोक' एवो उल्लेख छे, छतां अत्यारे तो पातंजलमहाभाष्य (१।१।१, १। २।४५) मां ए पाठ गद्यरूपे मळे छे, जुओ टिपृ०५५ पं० १६; परंतु याकिनीमहत्तरासूनु श्री हरिभद्रसूरिमहाराजे ए पाठ आवश्यकनिर्युक्ति उपरनी टीकामां पृ० ३७५ मां नीचे मुजब श्लोकरूपे उद्धृत कर्यो छे—

१ जुओ प्राक्कथन पृ० १५ टि० २ ॥ २ जुओ प्राक्कथन पृ० २३ टि० ९ ॥ ३ जुओ प्राक्कथन पृ० २३ टि० ११ ॥ ४ जुओ प्राक्कथन पृ० २३ टि० १० ॥ ५ पृ० २३ टि० १-४ ॥ ६ नयचक्रवृत्तिमां दशमा अरमां 'अव रक्षणगति-कान्तिप्रीतितृप्त्यवगमनप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसादहनभाववृद्धिषु' ए प्रमाणे 'अव्' धातुना १९ अर्थो आप्या छे, छतां अत्यारे पाणिनीय धातुपाठमां 'अव रक्षणगतिकान्तितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छा-दीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसादानभागवृद्धिषु' एवो पाठभेद जोवामां आवे छे, पण हैमधातुपाठ (४८९) मां नयचक्रवृत्तिप्रमाणे ज अक्षरशः पाठ छे, एटले नयचक्रवृत्तिकार तथा हेमचन्द्राचार्य पासे पाणिनीयधातुपाठनी जुनी परंपरा हती अने अत्यारे प्रचलित पाणिनीय धातुपाठमां पाठभेदो थई गया छे, ए निश्चित छे। आवां बीजां पण धातुपाठभेदनां उदाहरणो नयचक्रवृत्तिमां छे ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दश दाडिमानि षडपूपाः कुण्डमजाजिनं पललपिण्डः ।
चर कीटिके दिशमुदीचीं स्पर्शनकस्य पिता प्रतिशीनः ॥

एटले नयचक्रवृत्तिकार सिंहसूरिक्षमाश्रमणे 'दशदाडिमादिश्लोक'नो जे उल्लेख कर्यो छे ए बराबर मळी रहे छे। आ उपरांत बीजा स्थळोए पण जे पाठभेद जोवामां आवे छे ते उपरथी एमना पासे पातंजलमहाभाष्यनी प्राचीन पाठपरंपरा हती ए नक्की थाय छे।

पांचमा अरमां वैयाकरणोना मतनुं प्रतिपादन छे अने छट्ठा अरमां एनुं विस्तारथी खण्डन छे। ए चर्चामां पातंजलमहाभाष्य उपरांत व्याकरणना सिद्धान्तोने लगता बीजा पण प्राचीन ग्रंथोनो ग्रंथकारे उपयोग कर्यो हशे एम लागे छे। आठमा अरमां (पृ० ५७९ पं० १५) तंत्रार्थसंग्रह नामना व्याकरण-संबंधी ग्रंथनो नामोल्लेख नयचक्रवृत्तिमां छे। पृ० ३७ पं० ११–१२ मां भागुरि अने सौनाग नामना वैयाकरणोना मतनो पण उल्लेख छे। पांचमा अरमां पृ० ३७९ पं० ८ मां "भाष्यकारेण सांख्यादाहृत्योक्तः" आ जातनो उल्लेख नजरे पडे छे, वळी 'गुणसन्द्रावो द्रव्यम्' आ प्रमाणे पतंजलिए पातंजलमहाभाष्य (५।१।११९) मां जे द्रव्यनुं लक्षण वर्णवेलुं छे ते पण सांख्योना ग्रंथमांथी–संभवतः वार्षगणतंत्रमांथी लीधेलुं छे, जुओ नयचक्रवृत्ति पृ० २६८ पं० ११, पृ० ३०३ वगेरे। ए उपरथी पतंजलि सांख्यमतानुसारी होय एम जणाय छे।

नयचक्रमां जैन आगमादि संबंधी निर्देशो

जैन—जैन आगमसाहित्य तथा बीजा पण जैन ग्रंथोमांथी आमां अनेक पाठो उद्धृत करेला छे। आचारांगसूत्र, सूत्रकृतांग, स्थानांग, भगवतीसूत्र, नंदिसूत्र, जीवाभिगमसूत्र, पन्नवणा, अनुयोगद्वारसूत्र आदि आगमोना पाठो आमां उद्धृत करेला छे[1]। भद्रबाहुस्वामि रचित निर्युक्तिनी गाथाओनो पण अनेकवार उल्लेख छे। "तत्संवादि निर्युक्तिलक्षणमाह–'वत्थूणं संकमणं होति अवत्थू णये समभिरूढे'' आ जातनो दशमा अरमां (पृ० ५१०–२) नयचक्रवृत्तिकारे उल्लेख करेलो छे, आ गाथा चतुर्दश पूर्वधर भगवान् भद्रबाहुस्वामिकृत आवश्यकनिर्युक्तिनी (७५७ मी गाथा) छे एटले चतुर्दशपूर्वधारी भगवान् भद्रबाहुस्वामि रचित निर्युक्तिनी गाथा पण मल्लवादीए उद्धृत करेली छे। तत्त्वार्थसूत्रनो तो आमां विपुलप्रमाणमां उपयोग करेलो छे। नयचक्रवृत्तिमां अनेक स्थळे तत्त्वार्थसूत्रनां वाक्योनो समावेश छे। नयचक्रवृत्ति पृ० ११४ पं० २४ पृ० ५९६ पं० ८ मां तत्त्वार्थभाष्यनुं पण अवतरण छे। आठमा अरमां (पृ० ५५९) आवता एक उल्लेख उपरथी फलित थाय छे[5] के अत्यारे जेने आपणे नंदिसूत्र मानीए छीए तेमां भाष्यनी गाथाओ दाखल थई गई छे अर्थात् प्राचीन काळमां नंदिसूत्र अने नंदिसूत्र उपरनुं भाष्य ए बन्नेय जुदां हतां पण पाछळथी कोई समये सूत्र अने भाष्य एक थई जईने बधुंय नंदिसूत्रने नामे ओळखावा लाग्युं छे। आ विषे टिपृ० ६८ पं० १–७ मां अमे जणाव्युं छे, ते उपरांत सुरतना 'देवचंद लालभाई पुस्तकोद्धार-

---

१ जुओ प्राक्कथन. पृ० २३ टि० १० ॥ २ जुओ प्राक्कथन. पृ० २४ टि० ६७ ॥ ३ जुओ प्राक्कथन पृ० २३ टि० १२ ॥ सिद्धसेनदिवाकरजीनी द्वात्रिंशिकामां पण तत्त्वार्थसूत्रनो उपयोग थयो छे एम स्पष्ट जणाय छे, जुओ टिपृ० ४१ पं० १–४, टि० १ ॥ ४ जुओ प्राक्कथन. पृ० २३ टि० १३ ॥ ५ जुओ प्राक्कथन. पृ० २४ टि० ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फंड' तरफथी भविष्यमां प्रगट थनारा देवानंद विशेषांकमां अमे विस्तारथी चर्चा करी छे, जिज्ञासुओए त्यां जोई लेवुं। वळी नयचक्र तथा नयचक्रवृत्तिमां उद्धृत करेला आगमपाठो तथा अत्यारे प्रचलित पाठो वच्चे खास पाठभेद जोवामां आवे छे। ए उपरथी एटली वात निश्चित छे के मल्लवादी तथा सिंहसूरिक्षमाश्रमण पासे आगमोनी बहु प्राचीन पाठपरंपरा हती। सिद्धसेनदिवाकरप्रणीत सम्मतितर्कनी तथा द्वात्रिंशिका वगेरेनी अनेक कारिकाओ आमां उद्धृत करेली छे, पृ० ३२४ पं० २७ मां "अस्ति–भवति–विद्यति–पद्यति–वर्ततयः सन्निपातषष्ठाः सत्तार्थाः इत्यविशेषेणोक्तत्वात् सिद्धसेनसूरिणा" ए जातनो उल्लेख जोतां सिद्धसेनदिवाकरजीए कोई गद्यात्मक ग्रंथनी पण रचना करी हशे एम लागे छे। संस्कृत–प्राकृत जैन ग्रंथोमांथी आमां अनेक अवतरणो लीधेलां छे। ए बधां कया कया ग्रंथमांथी लीधां हशे, ए कंई कही शकातुं नथी। योनिप्राभृतनो पण आमां पृ० २०२ पं० २०–२३ मां उल्लेख छे।

जैन शास्त्रीय विषयोनुं निरूपण आ ग्रंथमां अनेक स्थळे छे, जेमके पृ० २१७ मां सुषमसुषमादि छ आराओना स्वरूपनुं वर्णन छे, पृ० ३४८ मां औदारिकादि आठ वर्गणाओनुं स्वरूप विस्तारथी वर्णवेलुं छे, तेमां कर्मप्रकृतिवृत्ति आदिमां आवता वर्गणाओना वर्णनथी आमां जे विशिष्टता छे ते खास ध्यान दईने वांचवा जेवी छे। निर्वृत्ति-उपकरण द्रव्येन्द्रिय अने लब्धि-उपयोग भावेन्द्रियनुं वर्णन आमां अनेक स्थळे छे। ए उपरांत बीजा पण अनेक स्थळे शास्त्रीय विषयोना उल्लेखो छे, एमां केटलेक स्थळे विशिष्टता पण छे तेथी आगमादि शास्त्रोना अभ्यासीओए ए उल्लेखो खास वांचवा जेवा छे।

विक्रमनी आठमी-नवमी शताब्दीमां विद्यमान दिगम्बर जैनाचार्य अकलंके श्रुतज्ञानना बे भेदो रूपे स्याद्वाद अने नयनुं निरूपण करेलुं छे। सकलादेश ए स्याद्वाद छे अने विकलादेश ए नय छे। स्याद्वाद प्रमाण छे, ज्यारे नयवाद प्रमाणरूप नथी छतां सम्यक् तो छे ज। कारण के अकलंकना मते नयवाक्य सापेक्ष

---

१ जुओ प्राक्कथन पृ० २३ टि० ११-१६॥ २ जुओ पृ० १८३ पं० १७–२१, पृ० ४७४–४७७॥ ३ विक्रमार्कशकाब्दीयशतसप्तप्रमाजुषि। कालेऽकलङ्कयतिनो बौद्धैर्वादो महानभूत्॥—आ अकलंकचरितना श्लोकमां आवता 'विक्रमार्कशक' शब्दना अर्थ विषे मतभेद छे। 'विक्रम संवत् ७०० मां अकलंकनो बौद्धो साथे वाद थयो' एम केटलाक अर्थ करे छे, ज्यारे केटलाक 'शक संवत् ७०० मां वाद थयो' एवो अर्थ करे छे॥ ४ 'उपयोगौ श्रुतस्य द्वौ स्याद्वाद-नयसंज्ञितौ। स्याद्वादः सकलादेशो नयो विकलसङ्कथा॥ ६२॥ अनेकान्तात्मकार्थकथनं स्याद्वादः। यथा जीवः पुद्गलः धर्मोऽधर्मः आकाशं काल इति। तत्र जीवो ज्ञानदर्शनवीर्यसुखैरसाधारणैः अमूर्तत्वासंख्यातप्रदेशत्वसूक्ष्मत्वैः साधारणासाधारणैः सत्त्वप्रमेयत्वागुरुलघुत्वधर्मित्वगुणित्वादिभिः साधारणैः अनेकान्तः। तस्य जीवस्यादेशात् प्रमाणं स्याद्वादः। तथा इतरे परमागमतो योज्याः। 'ज्ञो जीवः सुखदुःखादिवेदनात्' इत्यादिविकलादेशो नयः। साकल्यमनन्तधर्मात्मकता। वैकल्यमेकान्तो धर्मान्तराविवक्षातः।......स्यात्पदप्रयोगात् सर्वथैकान्तत्यागात् स्वरूपादिचतुष्टयविशेषणविशिष्टो जीवोऽभिधीयत इति स्वेष्टसिद्धिः। नयोऽपि तथैव सम्यगेकान्तः। 'स्याज्जीव एव' इत्युक्तेऽनेकान्तविषयः स्याच्छब्दः। 'स्यादस्त्येव जीवः' इत्युक्ते एकान्तविषयः स्याच्छब्दः। अप्रयुक्तोऽपि सर्वत्र स्यात्कारोऽर्थात् प्रतीयते। विधौ निषेधेऽन्यत्रापि कुशलश्चेत् प्रयोजकः॥ ६३॥"—स्वोपज्ञवृत्तिसहित लघीयस्त्रय (न्यायकुमुदचन्द्रमां पृ० ६८६–६९१)॥ ५ भेदाभेदात्मके ज्ञेये भेदाभेदाभिसन्धयः। ये तेऽपेक्षानपेक्षाभ्यां लक्ष्यन्ते नय-दुर्नयाः॥ ३०॥"—लघीयस्त्रय। "तत्प्रतिक्षेपो दुर्नयः। तदपेक्षो नयः, स्वार्थप्राधान्येऽपि तद्गुणत्वात्। तदुभयात्मार्थज्ञानं प्रमाणम्।"—लघीयस्त्रय (का० ४८) स्वोपज्ञवृत्ति, (न्यायकुमुदचन्द्र पृ० ६५०)। "धर्मान्तरादानोपेक्षाहानिलक्षणत्वात् प्रमाण-नय-दुर्णयानां प्रकारान्तरासम्भवाच्च। प्रमाणात् तदतत्स्वभावप्रतिपत्तेः, तत्प्रतिपत्तेः, तदन्यनिराकृतेश्च।"—अष्टशती (अष्टसहस्री पृ० २९०)॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छे[1] अने नयवाक्यमां पण 'स्यात्' पदनो प्रयोग अकलंके स्वीकार्यो छे[2]। जे निरपेक्ष (स्यात् पदना प्रयोग विनानुं) नयवाक्य छे ते दुर्नय छे अने बधा दुर्नयो मिथ्या छे। आ रीते अकलंकप्रणीत प्रक्रिया मुजब १ प्रमाण, २ नय अने ३ दुर्नय एवा त्रण भेदो थाय छे। प्रमाणनो विषय अनेकान्त छे, नयनो विषय सम्यगेकान्त छे, दुर्नयनो विषय मिथ्या एकान्त छे। वस्तुने अनन्तधर्मात्मक रूपे दर्शावतुं जे वचन ते सकलादेश कहेवाय छे। वस्तुना बीजा धर्मोनी विवक्षा न होय अने वस्तुना एकदेशनुं (एक अन्तनुं) ज जेमां प्रतिपादन होय तेवुं वचन विकलादेश कहेवाय छे। सप्तभंगीना सौते भंगो विवक्षा प्रमाणे सकलादेश अथवा विकलादेश बनी शके छे। आ प्रमाणे अकलंकनुं मन्तव्य छे।

अकलंके दर्शावेला आ विचारोने त्यार पछी थएला अनन्तवीर्य, विद्यानन्दी, माणिक्यनन्दी, प्रभाचन्द्र, वादिराजसूरि आदि दिगंबर आचार्योए स्वीकारी लीधा जणाय छे। परंतु श्वेतांबर आचार्योमां आ विषे घणो मतभेद छे। वादिदेवसूरि के जेओ विक्रम संवत् ११४३ थी १२२६ सुधी विद्यमान हता तेमणे–तेमना प्रसिद्ध ग्रंथ प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारमां प्रमाण, नय अने दुर्नय एवा भेदो स्वीकार्या छे, तेमज "नयवाक्यमपि स्वविषये प्रवर्तमानं विधिप्रतिषेधाभ्यां सप्तभङ्गीमनुव्रजति [१५। ५३]" एम कह्युं छे। आ सूत्र उपर तेमना ज शिष्य रत्नप्रभाचार्ये रचेली रत्नाकरावतारिका टीकामां (पृ० १३६) जणाव्युं छे के "नयवाक्यं प्राग्लक्षितविकलादेशस्वरूपं........सप्तभङ्गीमनुगच्छति, प्रमाणसप्तभङ्गीवदेतद्विचारः कर्तव्यः, नयसप्तभङ्गीष्वपि प्रतिभङ्गं स्यात्कारस्यैवकारस्य च प्रयोगात्। तासां विकलादेशत्वादेव सकलादेशात्मिकायाः प्रमाणसप्तभङ्ग्या विशेषव्यवस्थापनात्। विकलादेशस्वभावा हि नयसप्तभङ्गी वस्त्वंशमात्रप्ररूपकत्वात्, सकलादेशस्वभावा तु प्रमाणसप्तभङ्गी संपूर्णवस्तुस्वरूपप्ररूपकत्वादिति।"–आ जोतां वादिदेवसूरि पण नयवाक्यमां 'स्यात्' पदनो प्रयोग मान्य करे छे।

न्यायावतारना टीकाकार सिद्धर्षिगणी तथा कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि महाराजे प्रमाण नय अने दुर्नय एवा त्रण भेदो तो स्वीकार्या छे, परन्तु नयवाक्यमां स्यात् पदनो प्रयोग तेमणे मान्य राख्यो नथी,

---

१ अकलंक नयोने सापेक्ष माने छे, छतां अपेक्षा शब्दनो अर्थ उपेक्षा करे छे ए ध्यानमां राखवानुं छे। जुओ "निरपेक्षत्वं प्रत्यनीकधर्मस्य निराकृतिः, सापेक्षत्वमुपेक्षा"–अष्टशती (अष्टसहस्री पृ० २९०)॥ २ तत्त्वार्थराजवार्तिक तथा लघीयस्त्रयमां नयवाक्यमां स्यात्पदनुं विधान अकलंके स्पष्ट शब्दोमां करेलुं छे, छतां प्रमाणवाक्यने ज ए 'स्याद्वाद' कहे छे ए पण विचारणीय छे। कारण के नयवाक्यमां पण जो स्यात् पदनो प्रयोग होय तो नयवादने पण स्याद्वाद कहेवो जोईए॥ ३ "यत्र यदा यौगपद्यं तदा सकलादेशः······एकगुणमुखेनाशेषवस्तुरूपसंग्रहात् सकलादेशः।... तत्रादेशवशात् सप्तभङ्गी प्रतिपदम्। यदा तु क्रमं तदा विकलादेशः...निरंशस्यापि गुणभेदादंशकल्पना विकलादेशः। तत्रापि तथा सप्तभङ्गी।"–तत्त्वार्थराजवार्तिक॥ ४ विशेष जिज्ञासुओए सिद्धिविनिश्चयटीका, अष्टसहस्री, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, परीक्षामुख, प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र, न्यायविनिश्चयविवरण आदि ग्रंथो जोई लेवा॥

५ "तदेवमनेकधर्मपरीतार्थग्राहिका बुद्धिः प्रमाणम्। तद्द्वारायातः पुनरेकधर्मनिष्ठार्थसमर्थनप्रवणः परामर्शः शेषधर्मस्वीकारतिरस्कारपरिहारद्वारेण वर्तमानो नयः।... अयमेव च स्वाभिप्रेतधर्मावधारणात्मकतया शेषधर्मतिरस्कारद्वारेण प्रवर्तमानः परामर्शो दुर्नयसंज्ञामश्नुते। तद्बलप्रभावितसत्ताका हि खल्वेते परप्रवादाः। (पृ० ८२)...... ननु च यद्येकैकधर्मसमर्थनपरायणाः शेषधर्मतिरस्कारकारिणोऽभिप्राया दुर्नयतां प्रतिपद्यन्ते तदा वचनमप्येकधर्मकथनद्वारेण प्रवर्तमानं सावधारणत्वाच्च शेषधर्मप्रतिक्षेपकारि अलीकमापद्यते। ततश्चानन्तधर्माध्यासितवस्तुसन्दर्शकमेव वचनं यथावस्थितार्थप्रतिपादकत्वात् सत्यम्। न चैवं वचनप्रवृत्तिः।...न चैकैकधर्मसन्दर्शकत्वेऽप्यमूनि वचनान्यलीकानि वक्तुं पार्यन्ते, समस्तशाब्दव्यवहारो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धर्षि तथा **हेम**चन्द्राचार्यना मते प्रमाणवाक्यमां ज 'स्यात्' पदनो प्रयोग होई शके, धर्मान्तरनिराकरणार्थक एवकार अने स्यात् पद विनानुं जे वाक्य छे ते नय छे, जेमां स्यात् पदनो प्रयोग **न होय**

च्छेदप्रसङ्गात्, तदलीकत्वे ततः प्रवृत्त्यसिद्धेरिति । अत्रोच्यते—इह तावद् द्वये प्रतिपादकाः— लौकिकास्तत्त्वचिन्तकाश्च । तत्र प्रत्यक्षादिप्रसिद्धमर्थमर्थित्ववशाल्लौकिकास्तावद् मध्यस्थभावेन व्यवहारकाले व्यपदिशन्ति।...न च तद्वचनानामलीकता, शेषधर्मान्तरप्रतिक्षेपाभावात्, तत्प्रतिक्षेपकारिणामेवालीकत्वात्। 'सर्वं वचनं सावधारणम्' इति न्यायात् तेषामपि शेषधर्मतिरस्कारित्वसिद्धेर्भवत्त्येवालीकत्वमापद्यत इति चेत्, अवधारणस्य तदसम्भवमात्रव्यवच्छेदे व्यापारात्।... (पृ० ९१)... न च समस्तधर्मयुक्तमेव वस्तु प्रतिपादयद् वचनं सत्यमित्यभिदध्महे येनैकधर्मालिङ्गितवस्तुसन्दर्शकानामलीकता स्यात्, किं तर्हि? सम्भवदर्थप्रतिप्रतिपादकं सत्यमिति । सम्भवन्ति च शेषधर्माप्रतिक्षेपे वचनगोचरापन्ना धर्माः, तस्मात् तत्प्रतिपादकं सत्यमेव। यदा तु दुर्नयाभिनिविष्टबुद्धिभिस्तीर्थान्तरीयैस्तद्धर्मिगतधर्मान्तरनिराकरणाभिप्रायेणैव सावधारणं तत् प्रयुज्यते यथा. नित्यमेव वस्तु अनित्यमेव वा इत्यादि तदा निरालम्बनत्वादलीकतां प्राप्नुवत् केन वार्येत? तत्त्वचिन्तकाः पुनः प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धमनेकान्तात्मकं वस्तु दर्शयन्तो द्वेधा दर्शयेयुः तद्यथा—विकलादेशेन सकलादेशेन वा । तत्र विकलादेशो नयाधीनः, सकलादेशः प्रमाणायत्तः । तथाहि–यदा मध्यस्थभावेनार्थित्ववशात् किंचिद्धर्मं प्रतिपिपादयिषवः शेषधर्मस्वीकरणनिराकरणविमुखया धिया वाचं प्रयुञ्जते तदा तत्त्वचिन्तका अपि लौकिकवत् सम्मुग्धाकारतयाचक्षते यदुत 'जीवोऽस्ति कर्ता प्रमाता भोक्ता' इत्यादि। अतः सम्पूर्णवस्तुप्रतिपादनाभावाद् विकलादेशोऽभिधीयते, नयमतेन सम्भवद्धर्माणां दर्शनमात्रमित्यर्थः । यदा तु प्रमाणव्यापारमविकलं परामृश्य प्रतिपादयितुमभिप्रयन्ति तदाङ्गीकृतगुणप्रधानभावा अशेषधर्मसूचककथञ्चित्पर्यायस्याच्छब्दभूषितया सावधारणया वाचा दर्शयन्ति 'स्यादस्त्येव जीवः' इत्यादिकया, अतोऽयं स्याच्छब्दसंसूचिताभ्यन्तरीभूतानन्तधर्मकस्य साक्षादुपन्यस्तजीवशब्दक्रियाभ्यां प्रधानीकृतात्मभावस्य अवधारणव्यवच्छिन्नतदसंभवस्य वस्तुनः सन्दर्शकत्वात सकलादेश इत्युच्यते, प्रमाणप्रतिपन्नसम्पूर्णार्थकथनमिति यावत्। तदुक्तम्–सा ज्ञेयविशेषगतिर्नयप्रमाणात्मिका भवेत् तत्र । सकलग्राहि तु मानं विकलग्राही नयो ज्ञेयः॥" **न्याया**वतारटीका पृ० ९२ ॥

१ "सदेव, सत्, स्यात् सदिति त्रिधार्थो मीयेत दुर्नीति-नय-प्रमाणैः।...॥ २८ ॥"—**अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका** । अस्या **मल्लिषेण**सूरिप्रणीता **स्याद्वादमञ्जरी** नाम व्याख्या–"अर्थ्यते परिच्छिद्यत इत्यर्थः पदार्थः **त्रिधा** त्रिभिः प्रकारैः **मीयेत** परिच्छिद्येत... दुर्नीति-नय-प्रमाणैः । नीयते परिच्छिद्यते एकदेशविशिष्टोऽर्थ आभिरिति नीतयो नयाः । दुष्टा नीतयो दुर्नीतयः दुर्नया इत्यर्थः । नया नैगमाद्याः । प्रमीयते परिच्छिद्यतेऽर्थोऽनेकान्तविशिष्टोऽनेनेति प्रमाणं स्याद्वादात्मकं प्रत्यक्ष-परोक्षलक्षणम्। दुर्नीतयश्च नयाश्च प्रमाणे च दुर्नीति-नय-प्रमाणानि, तैः । केनोल्लेखेन मीयेतेत्याह–सदेव, सत्, स्यात् सदिति।...सदेवेति दुर्नयः । सदिति नयः । स्यात् सदिति प्रमाणम्। तथाहि–दुर्नयस्तावत् 'सदेव' इति ब्रवीति । 'अस्त्येव घटः' इति अयं वस्तुन्येकान्तास्तित्वमेवाभ्युपगच्छन्नितरधर्माणां तिरस्कारेण स्वाभिप्रेतमेव धर्मं व्यवस्थापयति। दुर्नयत्वं चास्य मिथ्यारूपत्वात्। मिथ्यारूपत्वं च तत्र धर्मान्तराणां सतामपि निह्नवात्। तथा 'सत्' इत्युल्लेखवान् नयः । स हि 'अस्ति घटः' इति घटे स्वाभिमतमस्तित्वधर्मं प्रसाधयन् शेषधर्मेषु गजनिमीलिकामालम्बते । न चास्य दुर्नयत्वम्, धर्मान्तरातिरस्कारात् । न च प्रमाणत्वम्, स्याच्छब्देनालाञ्छितत्वात्। 'स्यात्' सत् इति स्यात् कथञ्चित् सद्वस्तु इति प्रमाणम्। प्रमाणत्वं चास्य दृष्टेष्टाबाधितत्वाद् विपक्षे बाधकसद्भावाच्च। अनया दिशा असत्त्व-नित्यत्वा-ऽनित्यत्व-वक्तव्यत्वा–ऽवक्तव्यत्व-सामान्य-विशेषाद्यपि बोद्धव्यम्।" पृ० १५९-१६० Bombay Sanskrit and Prakrit Series. No. LXXXIII ॥ २ उपरनुं १ मुं टिप्पण जोतां ए पण स्पष्ट जणाय छे के **न्याया**वतारटीकाकार **सिद्धर्षि** गणी 'प्रमाणवाक्यथी एक धर्मनुं मुख्यरूपे अने शेष अनन्तधर्मोनुं गौणरूपे प्रतिपादन थाय छे' एम स्वीकारे छे। परन्तु **लघीयस्त्रय**नी स्वोपज्ञवृत्तिमां (का० ४८) आवता "तत्प्रतिक्षेपो दुर्नयः । तदपेक्षो नयः, स्वार्थप्राधान्येऽपि तद्गुणत्वात् । तदुभयात्मार्थज्ञानं प्रमाणम्।" आ पाठ उपर **न्याय**कुमुदचन्द्रमां (पृ० ६५१) आ प्रमाणे व्याख्या **करेली छे**–"कुतः स नय इत्यत्राह–**स्वार्थे**त्यादि । **स्वो** विषयीक्रियमाणो यो**ऽर्थः** तस्य **प्राधान्येऽपि तद्गुणत्वात्** अविवक्षितधर्माणामप्रतिक्षेपेण गुणीभूतत्वात्। यदि एवंविधो नयो भवति प्रमाणं तर्हि कीदृशमित्याह–**त**दित्यादि । **तद्** अगुणीभूतं विवक्षिताविवक्षितधर्मो**भयमात्मा** यस्य **अर्थस्य** तस्य **ज्ञानं प्रमाणम्**।" आ जोतां प्रमाणवाक्यमां सर्वधर्मोनुं मुख्यतया प्रतिपादन अने नयवाक्यमां एक धर्मनुं मुख्यतया तथा शेषधर्मोनुं गौणतया प्रतिपादन दिगम्बर आचार्योने अभीष्ट होय एम जणाय छे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अने धर्मान्तरनिराकरणार्थक एवकारनो प्रयोग होय ते दुर्नय छे। हेमचन्द्रसूरिमहाराजना शिष्य आचार्य रामचन्द्र अने गुणचन्द्रनो पण आ ज अभिप्राय जणाय छे।

आचार्यश्री मलयगिरिनुं कहेवुं एम छे के 'प्रमाण, नय अने दुर्नय एम त्रण विभागो वाळी प्रक्रिया

---

१ आचार्य रामचन्द्र अने गुणचन्द्रे तेमना गुरु कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरिमहाराजनी विद्यमानतामां ज द्रव्यालंकार नामना ग्रंथनी रचना करी हती, एमां १ जीवप्रकाश, २ पुद्गलप्रकाश अने ३ अकम्पप्रकाश एवा त्रण परिच्छेदो छे। तेना उपर तेमनी स्वोपज्ञवृत्ति छे अने तेमनुं पोतानुं ज टिप्पण पण छे। विक्रम संवत् १२०२ मां (ग्रन्थकारनी विद्यमानतामां ज) लखायेली अने ग्रन्थकारे पोते ज सुधारेली स्वोपज्ञवृत्तिनी छेल्ला बे प्रकाश जेटली एक प्रति जेसलमेरमां अत्यारे विद्यमान छे, तेना फोटाओ मुनिराजश्री पुण्यविजयजी महाराज पासेथी हमणां अमने मळ्या छे। द्रव्यालंकार मूळमात्रनी संपूर्ण प्रति अमदावादमां हाजापटेलनी पोळमां संवेगीना उपाश्रयना ज्ञानभंडारमां छे, एनी फोटो कोपी अत्यारे अमारी पासे छे, एमां प्रारंभमां "अनन्तवेद्यपि ज्योतिर्यस्य सद्व्यातवेदितम्। गमितं पञ्चभिर्द्रव्यैर्नमस्तस्मै परात्मने ॥ १ ॥ मृगोऽपि वन्द्यतां याति मृगलाञ्छनमाश्रितः। स्वगुरूप्रीतसूत्रस्य व्याख्यामिति वितन्वहे ॥ २ ॥" ए प्रमाणे बे कारिकाओ छे। ए जोतां तेमना गुरुदेवे दर्शावेली पद्धतिने अनुसरीने तेमणे आ ग्रंथ रच्यो छे, एटले एमां आवता विचारो हेमचन्द्राचार्यने मान्य हता एम कही शकाय। आ ग्रंथनी त्रीजा प्रकाशनी वृत्तिमां तेमणे आ प्रमाणे जणाव्युं छे—"एवं सदसद्रूपयोरेकत्राविरोधसिद्धौ सप्तभङ्ग्यपि सिद्धा। सा चैवम्—स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति च नास्ति च, स्यादस्ति चावक्तव्यश्च, स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यश्च। (पृ० १०५) ....अत्र चाद्यास्त्रयो भङ्गाः सकलादेशाः [सकलाश्च ते आदेशाश्च भणनानि टि०] वस्तुनः खण्डीकृत्यानभिधानात् [मुख्यया वृत्त्या अस्ति च नास्ति चेति न खण्डीकृतम् टि०]। शेषास्तु विकलादेशाः, वस्तुनः खण्डीकृत्याभिधानात्। अत्र हि सत्त्वासत्त्वाभ्यां विभागीकृत्य वस्त्वभिधीयते। अथवा प्रमाणादेशेन [स्याद्वादाभिप्रायेण टि०] सर्वेऽपि सकलादेशाः, प्रमाणस्य परिपूर्णाभिधायित्वात्। नयादेशेन तु विकलादेशाः [एतेऽपि 'स्यात्'पदरहिताः सन्त इत्यर्थः टि०] नयस्य खण्डाभिधायित्वात्। इयं च सप्तभङ्गी श्रुतं [आगमलक्षणं टि०] प्रमाणम्, शब्दादर्थप्रतीतेरिति।

सत्त्वासत्त्वावचनविषयं चोभयं च क्रमेण, सत्त्वासत्त्वावचनविषयत्वेन युक्तं क्रमेण।
सत्त्वासत्त्वावचनविषयं चाक्रमात् सप्तभङ्गी, सैषा नीतिर्नियमरहिता, 'स्यात्'पवित्रा तु मानम् ॥ १ ॥······

सकलादेशाः पूर्वा एकध्वनिशासनात् त्रयो भङ्गाः।
अन्ये विकलादेशाः, प्रमा-नयैर्वा विभागोऽयम् ॥ ३ ॥" (पृ० १०९–११०)।

आमां चोरस कोष्ठकमांना पाठो आचार्य रामचन्द्र अने गुणचन्द्रे पोतेज टिप्पणरूपे लखेला छे। एटले नयादेशेन जे सप्तभंगी छे एमां स्यात् पदनो प्रयोग नथी ए वात 'विकलादेशाः' शब्दना 'स्यात्पदरहिताः' ए टिप्पणमां तेमणे स्पष्ट जणावी छे। 'स्यात्' पदवाळी सप्तभंगीमां ज्यां प्रारंभना त्रण भंगोने सकलादेश अने विकलादेश रूपे एमणे स्वीकार्या छे त्यां 'सकलादेश'नो प्रमाण अने 'विकलादेश'नो नय एवो अर्थ तेमने इष्ट नथी, पण जुदो अर्थ इष्ट छे। विचार करवाथी आ वात स्पष्ट समजाशे ॥

२ "अनेकधर्मात्मकं वस्तु अवधारणपूर्वकमेकेन नित्यत्वाद्यन्यतमेन धर्मेण प्रतिपाद्यस्य बुद्धिं नीयते प्राप्यते येनाभिप्रायविशेषेण स ज्ञातुरभिप्रायविशेषो नयः।...इह हि यो नयो नयान्तरसापेक्षतया स्यात्पदलाञ्छितं वस्तु प्रतिपद्यते स परमार्थतः परिपूर्णं वस्तु गृह्णाति इति प्रमाणे एवान्तर्भवति। यस्तु नयवादान्तरनिरपेक्षतया स्वाभिप्रेतेनैव धर्मेण अवधारणपूर्वकं वस्तु परिच्छेत्तुमभिप्रैति स नयः, वस्त्वेकदेशपरिग्राहकत्वात्। अत एवोक्तमन्यत्र–'सव्वे नया मिच्छावाइणो'। यत एव च नयवादो मिथ्यावादस्तत एव च जिनप्रवचनतत्त्ववेदिनो मिथ्यावादित्वपरिजिहीर्षया सर्वमपि स्यात्कारपुरस्सरं भाषन्ते, न तु जातुचिदपि स्यात्कारविरहितम्। यद्यपि च लोकव्यवहारपथमवतीर्णा न सर्वत्र सर्वदा स्यात्पदं प्रयुञ्जते तथापि तत्राप्रयुक्तोऽपि सामर्थ्यात् स्याच्छब्दो द्रष्टव्यः प्रयोजकस्य कुशलत्वात्। (पृ. ३६९B)...दिगम्बरी त्वियं प्रमाणनयपरिभाषा–सम्पूर्णवस्तुकथनं प्रमाणवाक्यं यथा स्याज्जीवः स्याद्धर्मास्तिकाय इत्यादि। वस्त्वेकदेशकथनं नयवादः, तत्र यो नाम नयो नयान्तरसापेक्षः स नय इति वा सुनय इति वोच्यते। यस्तु नयान्तरनिरपेक्षः स दुर्नयो नयाभास इति। तथा चाहाकलङ्कः–'भेदाभेदात्मके ज्ञेये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बरोनी ज छे, 'श्वेताम्बर आचार्योने तो स्याद्वाद अने नय एवा बे विभागो ज मान्य छे। स्याद्वाद प्रमाण छे अने सर्वे नयो एकान्तवादी तेमज मिथ्या [1]छे।'

सप्तभङ्गीमां सकलादेश–विकलादेशनी बाबतमां अकलंक पछीना श्वेताम्बर ग्रंथकारोमां वादि देवसूरिजीए प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारमां "इयं सप्तभङ्गी प्रतिभङ्गं सकलादेशस्वभावा विकलादेशस्वभावा च [४। ४३]" एम कह्यु छे, अने बीजा पण केटलाक ग्रंथकारोए एम कह्युं छे। सप्तभङ्गीना सकलादेश–विकलादेशनी बाबतमां अकलंकनी प्रक्रिया पण एवी ज छे। छतां अनेक श्वेतांबर ग्रंथकारोनुं मानवुं एवुं छे के सप्तभङ्गी पैकीना प्रारंभना १ स्यादस्ति २ स्यान्नास्ति ३ स्यादवक्तव्यम्–आ त्रण भङ्गो सकलादेश छे अने ते पछीना ४ स्यादस्ति नास्ति, ५ स्यादस्ति अवक्तव्यम्, ६ स्यान्नास्ति अवक्तव्यम्, ७ स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्यम्–आ चार भङ्गो विकलादेश छे। आ विषे उ० यशोविजयजी महाराजे पण केटलाक विचारो रजु कर्या छे।

नयचक्रकार मल्लवादी अने टीकाकार सिंहसूरिक्षमाश्रमण बंने श्वेताम्बर परम्पराना प्राचीन आचार्यो छे। एटले ए बंनेनो आ बधी बाबतो विषे केवो अभिप्राय सूचित थाय छे ए जाणवानी आपणने जिज्ञासा

भेदाभेदाभिसन्धयः। यतोऽपेक्षानपेक्षाभ्यां लक्ष्यन्ते नय–दुर्नयाः॥ [लघीयस्त्रय. का० ३०] अस्याः कारिकाया लेशतो व्याख्या–भेदो विशेषः, अभेदः सामान्यम्, तदात्मके सामान्यविशेषात्मके इत्यर्थः, ज्ञेये प्रमाणपरिच्छेद्ये वस्तुनि ये भेदाभेदाभिसन्धयः सामान्यविशेषविषयाः पुरुषाभिप्राया अपेक्षानपेक्षाभ्यां लक्ष्यन्ते ते यथासंख्यं नय–दुर्नया ज्ञातव्याः। किमुक्तं भवति? विशेषसाकाङ्क्षः सामान्यग्राहको वाभिप्रायः सामान्यसापेक्षो विशेषग्राहको वा नयः। इतरेतराकाङ्क्षारहितस्तु दुर्नयः। नयचिन्तायामपि च ते **दिगंबराः** स्यात्पदप्रयोगमिच्छन्ति, तथा **चाकलङ्क** एव प्राह–'नयोऽपि तथैव सम्यगेकान्तविषयः स्यात्' इति। अत्र टीकाकारेण व्याख्या कृता–'**नयोऽपि** नयप्रतिपादकमपि वाक्यं न केवलं प्रमाणवाक्यमिति 'अपि'शब्दार्थः **तथैव** स्यात्पदप्रयोगप्रकारेणैव सम्यगेकान्तविषयः स्यात् यथा स्यादस्त्येव जीव इति। स्यात्पदप्रयोगाभावे तु मिथ्यैकान्तगोचरतया दुर्नय एव स्यात्' [न्यायकुमुदचन्द्र पृ० ६९१] इति। तदेतदयुक्तम्, प्रमाण–नयविभागाभावप्रसक्तेः। तथाहि–'स्याज्जीव एव' इति किल प्रमाणवाक्यम्, 'स्यादस्त्येव जीवः' इति नयवाक्यम्। एतच्च द्वयमपि लघीयस्त्रय्यलङ्कारे साक्षादकलङ्केनोदाहृतम्। अत्र चोभयत्राप्यविशेषः। तथाहि–'स्याज्जीव एव' इत्यत्र जीवशब्देन प्राणधारणनिबन्धना जीवशब्दवाच्यताप्रतिपत्तिः, 'अस्ति' इत्यनेन उद्भूतविवक्षितास्तित्वगतिः, एवकारप्रयोगात्तु यदाशङ्कितं सकलेऽपि जगति जीवस्य नास्तित्वं तद्व्यवच्छेदः, स्यात्प्रयोगात् साधारणासाधारणप्रतिपत्तिरित्युभयत्राप्यविशेष एव" (पृ० ३७१) – आवश्यकसूत्रमलयगिरिरचितवृत्ति॥

१ तुलना – "तम्हा सव्वेवि णया मिच्छादिट्ठी सपक्खपडिबद्धा। अण्णोण्णणिस्सिया उण हवंति सम्मत्तसब्भावा॥"— **सन्मति** १।२१। "एगेण वत्थुणोऽणेगधम्मुणो जमवधारणेणेव। नयणं धम्मेण तओ होई नओ सत्तहा सो य॥ २६७६॥" —**विशेषावश्यकभाष्य.**। "नयन्तीति नया अनन्तधर्मात्मकं वस्तु एकधर्मेण नित्यमेवेदमनित्यमेवेति वा निरूपयन्ति"—**तत्त्वार्थसूत्रहारिभद्रीवृत्ति** १।६, **तत्त्वार्थसूत्रसिद्धसेनीयवृत्ति** १।६।

२ **य**शोविजयजी महाराजे **म**लयगिरि महाराजना कथन विषे केटलाक विचारो **गुरुतत्त्वविनिश्चयटीकामां** (पृ० १७) रजु कर्या छे। 'स्यात् पद अनेकान्तद्योतक छे, नियमात् अनन्तधर्मपरामर्शक नथी' एम कहीने त्यां तेओए समाधान कर्युं छे। परन्तु **न्यायावतारनी** टीकामां "निर्दिश्यमानधर्मव्यतिरिक्ताशेषधर्मान्तरसंसूचकेन स्याता युक्तो वादोऽभिप्रेतधर्मवचनं स्याद्वादः" (पृ० ९३) ए प्रमाणे **सिद्धर्षिगणीए** कहेलुं छे॥ ३ जुओ तत्त्वार्थसूत्रसिद्धसेनीयवृत्ति. पृ० ४१५, **सन्मतिटीका** पृ० ४४६ इत्यादि॥ ४ उ० **य**शोविजयजी महाराजे **जैनतर्कभाषा** (पृ० २०) **गुरुतत्त्वविनिश्चयटीका** (१५) **शास्त्रवार्तासमुच्चयटीका** (पृ० २५४) मां विवक्षा प्रमाणे साते भंगो सकलादेश तथा विकलादेश थई शके छे एम जणाव्युं छे, छतां **अष्टसहस्रीतात्पर्यविवरणमां** (पृ० २४८) तेमणे 'प्रारंभना त्रण भंगो सकलादेश अने पछीना चार भंगो विकलादेश छे' ए मन्तव्यने ज व्याजबी ठरावेलुं छे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थाय ए स्वाभाविक छे। तेथी **न**यचक्रमां तेमज **न**यचक्रटीकामां भिन्न भिन्न प्रसंगे आवता आ विषय संबंधी उल्लेखो ए दृष्टिथी जिज्ञासुओए अवश्य वांचवा—विचारवा जेवा छे।

स्याद्वादना पारमार्थिक स्वरूपना जिज्ञासुओए आचार्यश्री **मल्ल**वादीए सातमा अरमां स्याद्वादनुं जे पारमार्थिक स्वरूप जणाव्युं छे ते खास जोवा जेवुं छे।

मालवनगरमां विद्यमान ७०० वर्षना घडानो उल्लेख पुरातत्त्वविदोने खास रसदायक नीवडशे।

आ प्रमाणे विविध विषयना अनेक शास्त्रपाठोना विपुल उल्लेखो आ ग्रंथमां छे, ए जोतां तेमज अनेक

---

१ आमां **नय** संबंधी केटलाक उल्लेखो नीचे मुजब छे—"तथा भवन्ति नान्यथेति नित्य एवाकृतकत्वादाकाशवत्, अनित्य एव कृतकत्वाद् घटवद्वेति । यथोक्तम्—'द्रव्यस्यानेकात्मनोऽन्यतमैकात्मावधारणमेकदेशनयनान्नयः' इति।"—**नय**चक्रवृत्ति. पृ० १० पं० २३।२४ । "जैनसत्यत्वसाधनवृत्ता तु वृत्तिर्विवक्षितद्वादशविकल्पविशेषणा, अन्यथा अवृत्तित्वमेव वक्ष्यमाणवत् ।"—**न**यचक्र. पृ० १० पं० ५ । (वृत्तिः–) तत्समाहारैकरूपतया तत्त्वान्वाख्यानमित्यर्थः...। अन्यथैत्येकान्तावधारणे...अवृत्तित्वमेव वक्ष्यमाणवदिति...."-**न**यचक्रवृत्ति, पृ० ११ पं० ७–१०। "स्याद्वादैकदेशाश्च नया एकान्तवादाः। यथोक्तम्–'भद्दं मिच्छद्दंसण' (सम्मति ३।५९) गाहा। नैताः स्वमनीषिकाः, लक्षणमपि तथैव नयानाम्, उक्तं हि—'द्रव्यस्यानेकात्मकत्वेऽन्यतमात्मकैकान्तपरिग्रहो नयः स्वप्राधान्येनार्थनयनाद् नयः' [ ]। **स च मिथ्यादृष्टिर**नेकाकारार्थस्य विपरीतप्रतिपत्तित्वात् । अनेकात्मकवस्तुप्रतिपत्तित्वात् **स्याद्वादस्य याथार्थ्यम्**।"—**नय**चक्रवृत्ति पृ० ८४ इत्यादि। **सकलादेश** संबंधी केटलाक उल्लेखो नीचे मुजब छे—"अनेकान्तवादो हि वादनायकः, सर्ववादविरोधाविरोधयोर्निग्रहानुग्रहसमर्थत्वात्, अर(रि)विजिगीष्वादीनामिवोदासीननृपः । स चेत्थम्–स्यादन्यत् स्यादनन्यत् कारणात् कार्यमित्यादि। कुतः ? तदतत्समर्थविकल्पत्वात्। तस्मिंश्चातस्मिंश्च विकल्पे समर्थत्वात् 'कारणे कार्यं सदनन्यत्, असदन्यत्' इति वा पक्षे समर्थो विकल्पोऽस्येति अनन्तरोक्त**विकलादेश**हेतुद्वयसमाहारैकरूपोऽयं हेतुः पक्षद्वयसाधनसमर्थः।" इति षष्ठेऽरे **न**यचक्रवृत्तौ पृ० ४३६। "द्रव्यार्थस्य विकल्पाः षट् संक्षेपेणात्रोक्ताः, पर्यायार्थस्य षट्। तेषामुपग्राहकं जिनवचनं तद्यथा—'इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी किं सासता असासता?' इति पृष्टे व्याकरणं **'सिता सासता सिता असासता' इति समग्रादेशात्**। पुनः 'से केणट्ठेणं भंते। एवं एवं वुच्चति सिता सासता सिता असासता' इति व्याख्यापनार्थः प्रश्नः। तस्य **विकलादेशाद् व्याकरणं** रत्नप्रभायाः स्वतत्त्वमुभयात्मकं विभागेन विदधाति— **दव्वट्ठताए सासता वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं संठाणपज्जवेहिं असासतत्ति।**" इति **न**यचक्रतुम्बे नयचक्रवृत्तौ पृ० ५६३–२। "विध्यादिसकलभङ्गात्मकसम्यग्दर्शनाधिकारे वर्तमाने विकलनयस्वरूपज्ञानमूलत्वात् सम्यग्दर्शनस्य"—इति दशमेऽरे **न**यचक्रवृत्तौ पृ० ४९४–२। "विध्यादिसर्वभङ्गात्मकैकवृत्तिसम्यग्दर्शनाधिकारे प्रत्येकवृत्तिमिथ्यादर्शनत्वापादनार्थं प्रवृत्तत्वादाह"—इति द्वादशारान्तरे **न**यचक्रवृत्तौ पृ० ५४८–२॥

२ "को हि नाम सोऽनेकान्तवाद्येवं ब्रूयात्—प्रागुत्पत्तेः मृदात्मना सत् कार्यं घटात्मना चासदिति । एवं हि मृदोऽकार्यत्वे......को भेदः? अभूत्वोत्पत्तिवाचिप्राक्छब्दोच्चारणादेव साक्षादसत्त्वैकान्ताभ्युपगमः। अन्येन मृदात्मना भवति स्वेन च घटात्मना न भवतीत्येवं ब्रुवन् प्रत्यक्षादिविरुद्धं मत्तोन्मत्तकादिवत् स्यात्। देशकालभेदलक्षणोभयपर्यायमात्रत्वादेवमयमसद्वाद एव स्यात्। इत्थं पुनः कोऽनेकान्तवादी ब्रूयात् आपेक्षिकमृदात्मसत्त्वम् असद्वादिवत्। आपेक्षिकमृदात्मसद्विशेषणात्तु असदभिधानमेवेदम्, अभिधेयस्वतत्त्वनिरसननियतत्वात्, अग्न्यनुष्णत्वाभिधानवत्। अव्युदासे तु घटात्मनापि सन्नेव तद्भावत्वात्। सदसदात्मकवस्तुतत्त्वप्रत्यक्षीकरणार्थं **जै**ना एकमेवात्मानं परमार्थं द्रव्यार्थपर्यायार्थोभयलक्षणमुपवर्णयन्ति, खपुष्पवदन्यथाऽसम्भवात्। द्रव्यशब्दं च मृदादिरूपाद्यतीतानागतवर्तमानभेदाभेदार्थं पर्यायशब्दं सर्वाभेदभेदार्थं, मृदात्मानं द्रव्यार्थपर्यायार्थं घटात्मानं च द्रव्यार्थपर्यायार्थं च।"—**नयचक्र.** पृ० ५००–५०२। एतदर्थंजिज्ञासुभि**र्न**यचक्रवृत्तिर्द्रष्टव्या॥ ३ "कालोऽपि केषाञ्चित् कारकमिति तद्दर्शयन्नाह—**मालवनगरे सप्त वर्षशतानी**ति। तत्र आम एव घटो वर्षे प्रदर्श्यते संगोप्यते च 'संगोपितसाराणि द्रव्याणि' इति ख्यापनार्थम् [पृ० ४०१–४०२] । ......यथा **मालवनगरे** घटो दृढीभूत आर्द्रादिसामिशुष्क-नव-युव-मध्यम-पुराणाद्यवस्थासु अन्यथा भवनेऽपि घटत्वमनतिक्रामन् सप्तसु वर्षशतेषु नीतेष्वपि स एव तथा भवति एवं तदपि कार्यं द्रव्यादीति [पृ० ४६८]"—**न**यचक्रवृत्तिः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दार्शनिकवादोनी विस्तृत चर्चाओथी आ ग्रंथ परिपूर्ण छे, ए जोतां नयचक्रकार आचार्यश्री मल्लवादी तथा टीकाकारश्री सिंहसूरिक्षमाश्रमण अनेक शास्त्रोनुं केवुं अगाध पांडित्य धरावता हता, ए स्पष्ट जोई शकाय छे। दार्शनिक प्रतिवादीओनी सामे एकेक विषयमां अनेक विकल्पो रजु करीने तेमनुं खंडन करवामां मल्लवादी अत्यंत कुशळ हता ए आखा ग्रंथमां सर्वत्र जोई शकाय छे। दार्शनिक चर्चाओमां हजारो भांगाओनी जाळ उभी करवी ए मल्लवादीनी खास विशिष्टता छे, जुओ पृ० ३११ पं० ६, २५। नयचक्रमां अंते पृ० ~~४७९-१~~ ८८३ मां अनेकान्तवादनी सिद्धि पदोना[1] संयोगोथी थता १६७६९०२५ भांगाथी करी छे। सम्मतिटीकामां पण मल्लवादीजीए पोतानी विशिष्ट शैली प्रमाणे करोडो भांगाओनी रचना करी हशे एम सम्मतिटीकामां अभयदेवसूरिजी महाराज तथा अष्टसहस्रीतात्पर्यविवरणमां उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराजे करेला उल्लेख उपरथी जणाय छे, एटले प्रतिवादीओनी सामे विकल्पजाळ अने भंगजाळनी रचना ऊभी करीने सामा पक्षनो पराजय करवो ए मल्लवादीनी खास विशिष्टता छे।

आ प्रमाणे नयचक्रमां उल्लिखित ग्रंथ, ग्रंथकार, वाद वगेरेनो स्वल्प परिचय आपीने हवे आ प्रथम भागमां प्रकाशित करेला चार अरनो विषय अहिं संक्षेपमां जणावीए छीए। विस्तारार्थीओए विषयानुक्रम ज जोई लेवो।

चार अरोनो विषय

ग्रंथना प्रारंभमां मंगलाचरणमां अनेकान्तवादात्मक जैनशासननी स्तुति करीने पछी जैनेतरदर्शनो विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्त होवाथी असत्य छे, अर्थात् विधिनियमभङ्गवृत्तियुक्त होवाथी जैनशासन ज सत्य छे एम जणावता—

विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत्।
जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम्॥

आ प्राचीन गाथासूत्रनो उपन्यास करीने तेना विवरणमां विधि आदि बार नयोनो ग्रंथकारे नामोल्लेख कर्यो छे। पछी 'यथोद्देशं निर्देशः' ए न्यायथी विधिनयनुं निरूपण ग्रंथकारे शरू कर्युं छे।

प्रथम विधि अर

पहेलां परपक्षनुं खंडन, पछी स्वमतनुं स्थापन, पछी ते ते नयसंमत शब्दार्थ तथा वाक्यार्थनुं निरूपण, पछी ते ते नयनो नैगमादिनयमां यथायोग्य अंतर्भाव अने जैनदर्शन सर्वनयसमूहात्मक होवाथी जैनागमोमां ते ते नयवादनुं क्यां बीज रहेलुं छे ए दरेक नयने अंते बताव्युं छे[2]। आ प्रतिपादनशैली आखा य ग्रंथमां व्यापक छे। ए शैलीप्रमाणे विधिवादी पहेलां परमतना खंडननो प्रारंभ करे छे। 'यथालोकग्राहं वस्तु' लोकोमां जे रीते अनुभव थाय छे ते प्रमाणे ज वस्तुनुं स्वरूप छे, एवी विधिनयनी मान्यता[3] छे। एकांत

---

१ बौद्ध ग्रंथोमां भंग माटे विभंग शब्दनो प्रयोग जोवामां आवे छे. पदोना संयोगोथी थता आवा अनेक विभंगोनुं वर्णन अभिधर्मपिटकना विभंगप्रकरण वगेरे ग्रंथोमां छे जुओ The Methodology of Vibhangaprakaraṅa by Dr. D. Dhammaratana, The Nava-Nalandā-Mahavihāra Research Publication Volume II pp. 235-320॥ २ जुओ प्राक्कथन पृ० १७ टि० ४॥ ३ विधिनयनी मान्यता तथा दिङ्नाग, वार्षगण्य, कणाद आदिनुं तेणे करेलुं खंडन कया कया स्थाने छे ते वगेरे जाणवा माटे जुओ प्राक्कथन पृ० २६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामान्य, विशेष, सामान्यविशेषनानात्व, सत्कार्यवाद, असत्कार्यवाद वगेरेनुं भिन्न भिन्न शास्त्रोमां शास्त्रकारोए पोतानी कल्पनाथी जे प्रतिपादन करेलुं छे ते तद्दन असंगत अने निरर्थक छे। वळी बौद्ध, सांख्य आदि शास्त्रकारोए पोतानुं मंतव्य सिद्ध करवा प्रत्यक्ष प्रमाणनां पोतानी कल्पनाथी जे अलौकिक लक्षणो कल्प्यां छे ते पण तद्दन खोटां छे। आ प्रसंगमां बौद्धाचार्य दिङ्नागे कल्पेला प्रत्यक्षप्रमाणना लक्षणनुं विस्तारथी खंडन छे। ते पछी सांख्याचार्य वार्षगण्यप्रणीत तथा कणादप्रणीत प्रत्यक्षलक्षणनुं विधिनये खंडन कर्युं छे। लोकयात्रानो केम निर्वाह करवो ए ज आ नयनी दृष्टिए महत्त्वनी वात छे। जगतना सूक्ष्मस्वरूपनुं ज्ञान प्राप्त करवुं अशक्य छे अने प्राप्त थाय तो पण एनुं कंई फळ नथी, तेथी आ नय जगतना स्वरूप विषे अज्ञानवादने ज पसंद करे छे अने 'अमुक फळ इच्छनारे अमुक क्रिया करवी जोईए' एवां क्रियाविधायि शास्त्रोने ज आ नय सार्थक माने छे। मीमांसकोनी पण आवी विचार सरणी छे। वेदमां आवतां वाक्योमां 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' वगेरे क्रियाविधायि विधिवाक्योने ज मीमांसको प्रमाणभूत गणे छे, तेथी विधिवादी तरीके मीमांसको प्रसिद्ध छे। [1]नयचक्र तथा वृत्तिमां मीमांसकमतना समर्थनमां उद्धृत करेला 'को ह्येतद्वेद, किं वाऽनेन ज्ञातेन' इत्यादि पाठ उपरथी जणाय छे के मीमांसको जगतना स्वरूप विषे अज्ञानवादने पसंद करता हशे। तेथी आ रीते आटले अंशे मीमांसको विधि-नयानुसारी होवाथी आ अरमां मीमांसकमतनुं प्रतिपादन छे, तेथी पृ० ११४ मां शब्दार्थ अने वाक्यार्थ पण मीमांसकमत प्रमाणे दर्शाव्या छे। छेवटे आ नयनो व्यवहारनयमां अंतर्भाव थाय छे। एम बतावीने पृ० ११५ मां आ विधिनयनुं बीज भगवतीसूत्रना 'आता भंते ! णाणे अण्णाणे ? गोतमा णाणे णियमा आता, आता पुण सिया णाणे सिया अण्णाणे' [१२।१०।४६८] आ वाक्यमां रहेलुं छे, एम जणाव्युं छे।

बीजो विधिविधि अर

आ पछी बीजो विधिविधिनय शरू थाय छे। दरेक उत्तरोत्तरनय प्रारंभमां पूर्वपूर्वनयना मतनुं खंडन करे छे अने पछी स्वपक्षनी स्थापना करे छे, ए शैली होवाथी प्रारंभमां विधिवादी मीमांसकोनुं विस्तारथी खंडन छे, ए प्रसंगमां 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' आ मीमांसादर्शनमां प्रसिद्ध वाक्यना अनेक अर्थविकल्पो करीने तेनुं विस्तारथी खण्डन करेलुं छे[2]। पछी विधिविधिनयना मतनी स्थापना छे। एक ज कारणमांथी नानारूपे जगतनी सृष्टि थाय छे एवुं आ नयनुं मंतव्य छे, एटले आ नयना मतने अनुसरता पुरुषवाद, नियतिवाद, कालवाद, स्वभाववाद, भाववाद आदि अद्वैतवादोनो आ नयमां समावेश छे। तेमां पहेलां अज्ञानवाद(विधिनय)नुं खण्डन करीने ज्ञानमय पुरुषाद्वैतवादनी स्थापना छे। वेद, उपनिषद वगेरेमां 'पुरुष एवेदं सर्वम्' एवो जे मत छे तेनुं अहीं प्रतिपादन छे, पछी पुरुषवादनुं खण्डन करीने नियति-वादनी स्थापना छे के 'नियतिथी ज जगत चाले छे'। पछी नियतिवादनुं खंडन करीने कालवादनी स्थापना छे के 'काळ ज जगतमां बधुं करे छे'। पछी कालवादनुं खंडन करीने स्वभाववादनी स्थापना छे के 'स्वभावथी ज जगतनी रचना थएली छे'। ते पछी स्वभाववादनुं खंडन करीने भाववादनी स्थापना छे के 'जगतना

१ जुओ पृ० ३५ पं० ४, पृ० ३६ पं० ६, ७, पृ० ११२ पं० ४, पृ० ११८ पं० १२, पृ० १३४, १७४ ॥
२ जुओ प्राक्कथन पृ० २७ टि० १-३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बधा ज पदार्थोमां 'भवनं भावः' आ अद्वैत सर्वत्र अनुस्यूत छे'। पुरुषादि अद्वैतवादोनुं स्वरूप जणावीने छेवटे विधिविधिनयसंमत शब्दार्थ तथा वाक्यार्थ बतावीने अने विधिविधिनयनो संग्रहनयमां अंतर्भाव जणावीने भगवतीसूत्रमां आ नयनुं बीज क्यां रहेलुं छे ते जणाव्युं छे।

त्रीजो विध्युभय अर

त्यारपछी विध्युभय नय शरू थाय छे। आ नय द्वैतवादने माने छे, एटले प्रकृति-पुरुषरूपे द्वैतने माननारा सांख्योनो अने जगत तथा जगतना अधिष्ठाता (स्रष्टा) ईश्वररूपे द्वैतने माननारा ईश्वरवादीओनो आमां समावेश थाय छे। प्रारंभमां पुरुषादि अद्वैतवादनुं विस्तारथी खंडन करीने पछी सांख्यसंमत द्वैतवादनी स्थापना छे[१]। पछी 'पुरुषादि कारणवादमां जे दोषो छे ते ज दोषो प्रकृतिकारणवादमां पण आवीने ऊभा रहे छे' आ जातनुं दोषारोपण सर्वसर्वात्मकवादी करे छे। आ प्रसंगमां सांख्योना वार्षगणतंत्रनो मत विस्तारथी जणावीने तेनुं खंडन करेलुं छे। आ रीते सांख्यसंमत द्वैतवाद घटतो न होवाथी ईश्वरवादी शास्त्रकारो 'भाव्य जगत् अने तेनो अधिष्ठाता भविता ईश्वर' आ जातना द्वैतवादनी स्थापना करे छे। अंतमां आ नयसंमत शब्दार्थ तथा वाक्यार्थ वर्णवीने आ नयनो संग्रहमां अंतर्भाव बतावीने द्वैतवादनुं बीज जैनागम ग्रंथोमां क्यां रहेलुं छे ते जणाव्युं छे।

चोथो विधिनियम अर

हवे चोथो अर शरू थाय छे। एना प्रारंभमां ईश्वरवादनुं विस्तारथी खंडन छे। जगतमां सुखदुःखो दरेक प्राणीओना पोतपोताना कर्मने आधीन छे, सर्व प्राणी पोताना ईश्वर छे, जगतनो कोइ एक ज नियत आदिकर्ता ईश्वर छे ज नही वगेरे दलीलोथी सृष्टिकर्ता ईश्वरनुं खंडन करीने[३] पछी कर्म एकान्तवाद तथा पुरुषकार एकान्तवादनुं पण खंडन करीने विधिनियमनये स्वमतनुं प्रतिपादन कर्युं छे। आत्मा कर्मरूपे बने छे अने कर्म आत्मारूपे बने छे, आ रीते जगतना चेतनाचेतन सर्व पदार्थो अन्योन्यात्मकरूपे परिणमे छे। बधामां एक ज अविभक्त भवन रहेलुं छे एवो आ नयनो मत छे। आ नयनो अंतर्भाव संग्रहनयमां थाय छे। आ नय द्रव्यने ज माने छे। बधा ज पदार्थो अन्योन्यात्मक होवाथी 'एकं सर्वं सर्वं चैकम्' एवो आ नयनो मत छे। नित्य सर्वात्मक द्रव्य ए ज आ नयमां शब्दार्थ छे, कारण के 'ॐ ब्रह्म' ज आ नयमां परमार्थ छे। त्यारपछी वाक्यार्थ बतावीने 'जे एगणामे से बहुणामे' ए आचारांगसूत्रमां आ नयवादनुं बीज छे एम जणावीने आ नयना वर्णननी समाप्ति करी छे। अहीं पहेलो मार्ग एटले नयचक्रनी प्रथम नेमि समाप्त थाय छे अने समग्र नयचक्रनो लगभग अर्धो जेटलो भाग पण चार अरोमां आवी जाय छे तेथी चार अरने अंते 'अर्धमेकमेकपुस्तकं समाप्तम्' एवो उल्लेख नयचक्रवृत्तिनी बधी हस्तलिखित प्रतिओमां छे।

नयचक्र मूळ

विक्रमनी ११ मी शताब्दीमां थएला पूर्णतल्लगच्छीय शांतिसूरिमहाराजे न्यायावतारवार्तिकनी

---

१ सन्निधिभवन अने आपत्तिभवन रूपे भवनना बे प्रकार छे। प्रकृति अने पुरुष रूपे द्वैत होय तो आ बंने प्रकारनुं भवन घटी शके छे। आ रीते सांख्यमत साथे आ नयनो संबंध छे॥ २ जुओ प्राक्कथन पृ० २७ टि० ४–७॥ ३ जुओ प्राक्कथन पृ० २७ टि० ८–११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्तिमां करेला उल्लेख प्रमाणे तेमना समयमां नयचक्रनुं अस्तित्व हतुं । विक्रमनी ११ मी शताब्दीमां थएला वादिवेताल श्री शांतिसूरिमहाराजे उत्तराध्ययनसूत्रनी बृहद्वृत्तिमां (पृ० ६८ मां) "इदानीमपि नयचक्रमास्ते' एम जणाव्युं छे । मलधारि हेमचंद्रसूरिमहाराजे पण अनुयोगद्वारसूत्रनी वृत्तिमां (पृ० २६७ मां) "इदानीमपि द्वादशारं नयचक्रमस्ति" एम जणाव्युं छे, एटले तेमना समयमां नयचक्रनुं अस्तित्व हतुं ए सर्वथा' निश्चित छे । कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचंद्रसूरिमहाराजना गुरुबंधु श्री प्रद्युम्नसूरिना शिष्य श्री चंद्रसेनसूरिए उत्पादादिसिद्धिनी वि० सं० १२०७ मां रचेली स्वोपज्ञवृत्तिमां "उक्तं च मल्लवादिना—

'विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत् ।
जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम् ॥'

एतत्कारिकाविशेषभावार्थः स्वस्थानादवसेयः" आ प्रमाणे 'स्वस्थान' एटले नयचक्र जोवानी जे भलामण करी छे ते जोतां वि० सं० १२०७ सुधी पण नयचक्र मूळनुं अस्तित्व हतुं ए निश्चित छे, परंतु त्यारपछी थोडा वखते गमे त्यारे नयचक्र अदृश्य थई गयुं होवुं जोईए, केमके वि० सं १३३४ मां प्रभावकचरित्रकार प्रभाचंद्राचार्यना समयमां नयचक्र मळतुं नहोतुं, ए वात अमे प्रथम जणावी गया छीए, त्यारपछीना कोई कोई ग्रंथमां नयचक्रवालना अस्तित्वनो निर्देश मळे छे, परंतु 'नयचक्रवाल' ए नाम नयचक्रवृत्ति माटे वापरवामां आवेलुं होय एवो संभव छे । विशेष जिज्ञासुओए आ विषे अमे टिपृ० २ टि० ६ मां चर्चा करी छे त्यां जोई लेवुं ।

नयचक्रमूळनी संकलना माटेना उपायो

आ रीते नयचक्रमूळनी अप्राप्तिनो इतिहास लगभग ७०० वर्ष जेटलो जुनो छे, तेमज अमे पण प्राचीन भिन्न भिन्न भंडारमां घणी तपास करवा छतां नयचक्र मूळ न मळ्युं, एटले नयचक्रनुं मूळ केवी रीते तैयार करवुं ए अमारा सामे घणो ज विकट प्रश्न हतो, केमके मूळ विना वृत्तिनो अर्थ समजवानुं कार्य अत्यंत दुष्कर छे । आथी नयचक्रना पाठोनां अवतरणो कोई बीजा ग्रंथोमांथी मळी आवे तो एटलुं मूळ तो अमने अनायासे प्राप्त थई जाय, ए आशयथी अमे प्राचीन—अर्वाचीन संख्याबंध ग्रंथोनुं अवलोकन कर्युं, परंतु उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति तथा प्रवचनसारोद्धारनी टीकामांथी

"लौकिकैर्व्यवहारोऽपि न यस्मिन्नवतिष्ठते ।
तत्र साधुत्वविज्ञानं व्यामोहोपनिबन्धनम् ॥"

नयचक्र पृ० ८ मांनी आ एक कारिका तथा बीजा ग्रंथोमांथी

"विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत् ।
जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम् ॥

—आ एक कारिका, एम बे कारिका जेटलुं मूळ अमने मळी आव्युं । आ सिवाय नयचक्रना बीजा कोई ज भागनुं उद्धरण कोई पण ग्रंथमां अमारा जोवामां आव्युं नहीं । एटले नयचक्रना शेष अंशनी संकलना अमे टीकामां रहेलां मूळनां प्रतीको वगेरेने आधारे अमारी कल्पनाथी ज करेली छे, कारण के टीकाकार मूळना प्रत्येक पदनुं विवरण करता नथी । मूळना ते ते संदर्भोना आदि तथा अंतना केटलाक शब्दोने प्रतीकरूपे दर्शावीने बाकीना वचला भागने 'इत्यादि यावत्' एवा शब्दोथी ज टीकाकार घणी वार सूचित

१ जुओ प्राकथन पृ० २८ टि० १, २ ॥ २ नयचक्र पृ० ८ ॥ ३ नयचक्र पृ० ९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करे छे, वचला अंशना जरूरी शब्दोनी व्याख्या करे छे अने शेष अंशनुं तात्पर्य जणावी दे छे, एटले टीकामां मूळनां बधां पदो प्रतीकरूपे लीधेलां न होवाथी टीका उपरथी मूळनां बधां पदोनी अविच्छिन्न संकलना करवी अशक्य छे। टीकानी शैली एवा प्रकारनी छे के एमां मूळनां प्रतीको कयां कयां छे एनो निर्णय करवानुं कार्य पण अतिशय विकट छे। केटलेक स्थळे 'सुगमम्, सुबोधम्, गतार्थम्' वगेरे कहीने टीकाकार कशी व्याख्या ज आपता नथी, आम छतां मूळनी संकलना करवा माटे अमे अपार परिश्रम कर्यो छे। केटलाक संदर्भोमां मूळ शोधी काढवा माटे पचास पचास अने सो सो वार पण चिंतन कर्युं छे। आ संपादनमां मूळनी संकलना करवामां अमने सौथी वधारे परिश्रम लाग्यो छे। वारंवार चिंतनने अंते जे अनेक विकल्पो स्फुर्या तेमांथी पसंद करीने यथामति कल्पना प्रमाणे मूळनी संकलन[1] करी छे। प्रतीको उपरांत बीजां पण जे जे साधनोथी **न**यचक्र मूळनो उद्धार करवानुं शक्य होय ते सर्व साधनोनो अहीं यथायोग उपयोग कर्यो छे, जेमके **न**यचक्र मूळमां अनेक स्थळे परमतनो उल्लेख करीने **मल्ल**वादीए तेनुं खंडन कर्युं छे। ज्यां शक्य होय त्यां ते ते स्थळे ते ते दर्शनना अनेक दुर्लभ ग्रंथो शोधी काढीने तेना आधारे तेटलो **न**यचक्र मूळनो भाग आपवानो अमे प्रयत्न कर्यो छे। तेनां केटलांक उदाहरणो अहीं आपीए छीए।

"यच्चाप्यभिहित**मभिधर्मकोशे** यदेतदनेकप्रकारभिन्नमित्यादि यावदनेकवर्णसंस्थानं पश्यतः" आ प्रमाणे **न**यचक्रवृत्ति पृ० ७८ मां **न**यचक्रनां प्रतीकोनो उल्लेख छे। अहीं **मल्ल**वादीए **अ**भिधर्मकोशभाष्यना एक पाठ उपर विस्तारथी चर्चा उपाडेली छे। टीकाने आधारे ए पाठनी यथावत संकलना करवानुं कार्य विकट छे, अने ज्यांसुधी **अ**भिधर्मकोशना ए पाठमां शुं लखेलुं छे ए जाणवामां न आवे त्यां सुधी एना उपरनी लांबी चर्चानो बराबर आशय समजवानुं काम पण मुश्केल छे। बौद्धाचार्य **व**सुबंधुकृत **अ**भिधर्मकोशकारिका तथा तेना उपरनुं विस्तृत स्वोपज्ञभाष्य ए बन्ने **अ**भिधर्मकोशना नामथी प्रसिद्ध छे, परंतु ज्यारे आ ग्रंथनुं संपादन कार्य चालतुं हतुं त्यारे **अ**भिधर्मकोशभाष्य संस्कृतमां नष्ट थई गएलुं मनातुं हतुं, मात्र एना प्राचीन टिबेटन तथा चीनी भाषांतरो उपरथी **बे**ल्जियमना विद्वान् **ला वालि पूर्षिने** फ्रेंच भाषामां करेलुं भाषांतर विद्यमान हतुं। ए मेळववा माटे अमे घणा प्रयत्नो कर्या त्यारे अनेक महिनाओ पछी अमने आ देशमां ए फ्रेंच भाषांतरनुं पुस्तक मळी शक्युं हतुं। त्यारपछी **न**यचक्रमां आवतो ए भाग एमां शोधी काढीने फ्रेंच उपरथी अंग्रेजी अने अंग्रेजी उपरथी संस्कृत करीने **न**यचक्रमां उपयोगी मूळ अमे तैयार करी राख्युं हतुं, तेटलामां अमे सांभळ्युं के हस्तलिखित संस्कृत **अ**भिधर्मकोशभाष्य पण ताजेतरमां **टि**बेटमां जडयुं छे अने तेना भारतमां लाववामां आवेला फोटा **शां**तिनिकेतनमां प्राध्यापक श्री **प्र**ह्लाद **प्र**धान पासे छे, एटले **पु**नाना विद्वान् डो० **वा**सुदेव विश्वनाथ **गोखले** द्वारा ए **भाष्यना** अमारा कार्यमां उपयोगी अंशो मेळववा माटे अमे प्रयत्न कर्यो। **प्र**ह्लाद **प्र**धाने पण घणा ज सौजन्यथी **अ**भिधर्मकोशभाष्यना ते ते अंशो लखीने अमने मोकली आप्या। पृ० ७८ टि० ५ टिपृ० ३७–३९, ४५ ४६, ४९, ५० वगेरे स्थळे ए अंशो अमे छाप्या छे। एना आधारे पृ०७८–७९ मां आवतुं नयचक्रनुं मूळ अमे बराबर तैयार करी शक्या अने ते उपरनी बधी ज चर्चा विशद थई गई।

नयचक्रवृत्ति पृ० ९३ मां "अत्रापि ज्ञापकोदाहरणं तत्संवादमभिहितं **रज्ज्वां सर्प इति ज्ञानम्**" ए प्रमाणे पाठ छे। **न**यचक्रवृत्तिना आधारे मूळने बराबर तारववुं अघरुं छे। तपास करतां अमने जणायुं के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बौद्ध ग्रंथ **हस्तवालप्रकरणमांथी मल्लवादीए** एक कारिका अहीं उद्धृत करेली छे अने ते **हस्तवालप्रकरण संस्कृतमां** अत्यारे नष्ट थई गयुं छे पण तेना प्राचीन टिबेटन अने चीनी अनुवादो मळे छे। **लंडननी रोयल एशिया-टिक सोसायटीना** सन् १९१८ ना जर्नलमां ए अनुवादो छपाया छे एटले ए टिबेटन अनुवाद मेळवीने तेना उपरथी संस्कृतमां कारिका तैयार करीने **नयचक्रमां** मूळरूपे अमे गोठवी दीधी अने ए कारिका **नय-चक्रवृत्तिमां** आवलां प्रतीको साथे बराबर मळी रहे छे ए वाचको जोई शकशे।

ए उपरांत बौद्धाचार्य **दिङ्नागरचित प्रमाणसमुच्चय** आदि अनेक ग्रंथोमां आवता पाठोने पण **मल्ल-वादीए** खंडन करवा माटे **नयचक्रमां** उद्धृत करेला छे। ए ग्रंथो संस्कृतमां नष्ट थई गया छे, छतां जे केटला-कना टिबेटन भाषांतरो मळे छे तेना उपरथी संस्कृतमां पाठो तैयार करीने **नयचक्रमूळमां** अनेक स्थळोए ते ते पाठोने ते ते स्थाने अमे गोठव्या छे अने टिबेटन ग्रंथने आधारे तैयार करेला **नयचक्र** मूळ साथे **नय-चक्रवृत्ति** पण बराबर मळी रहे छे।

पृ० १३१ पं० २६ मां '**उक्तं ही**ति पुनरुक्तापवादमर्थविशेषापेक्षं दर्शयति **अनुवादादर**।' आ प्रमाणे प्रतीकोनो उल्लेख करीने **नयचक्रवृत्तिमां** एनी विस्तारथी व्याख्या छे। '**उक्तं हि**' एम कहीने **मल्लवादीए** अन्यग्रंथमांथी कयो पाठ उद्धृत कर्यो छे ए टीकाना आधारे नक्की करवानुं शक्य ज नथी, परंतु **विशेषावश्यकभाष्य** उपरनी **कोट्टार्यगणिरचितवृत्ति** वगेरेमां नीचे मुजब आ उद्धरण संपूर्ण आवे छे—

'अनुवादादरवीप्साभृशार्थविनियोगहेत्वसूयासु।
ईषत्सम्भ्रमविस्मयगणनास्मरणेष्वपुनरुक्तम्॥'

एटले एने आधारे अमे ए कारिकाने पृ० १३१ पं० ६ **नयचक्रमूळमां** गोठवी दीधी।

आ तो उदाहरणोनुं मात्र दिग्दर्शन छे। अनेक देशोमां छपाएला अने अनेक भाषाओमां रचाएला विविध साहित्यने आधारे आवा अनेक स्थळे अमे **नयचक्रनुं** मूळ तैयार करवानो प्रयत्न कर्यो छे। वाचको समग्र ग्रंथनुं तथा टिप्पणोनुं परिशीलन करवाथी आ वस्तु सहज जोई शकशे।

आ उपरांत **नयचक्रनुं** मूळ तैयार करवा अमे बीजो मार्ग पण लीधो छे। केटलेय स्थळे वृत्तिमां आवतां प्रतीको उपरथी मूळनो निर्णय थई शके तेम नथी, छतां वृत्तिकारे दूर गया पछी अतिदेशादि प्रसंगोमां ते ते मूळनो अक्षरशः अथवा कंईक भेदथी निर्देश करेलो छे। **नयचक्रवृत्तिनुं** संपूर्ण अवलोकन करीने आवा आवा पाठो एकत्र करीने तेना आधारे ते ते अनेक यथायोग्य स्थाने अमे **नयचक्रमूळनी** योजना करी छे। आ उपायथी अमने घणे ज स्थळे मूळनी योजना करवामां सुगमता थई छे, जेमके पृ० ६५–७० मां आवतुं **नयचक्रमूळ** पृ० १०९ पं० २५–पृ० ११० पं० १६ **नयचक्रवृत्तिमां** आवता अतिदेशने आधारे ज मुख्यतया तैयार कर्युं छे। पृ० २४८ थी पृ० २५८ सुधीनुं **नयचक्रमूळ** मुख्यतया पृ० २७५ पं० २८–पृ० २७७ पं० १३ **नयचक्रवृत्तिमां** आवता अतिदेश उपरथी तैयार कर्युं छे। मूळ तैयार करवा माटे आवा आवा नाना मोटा अतिदेशादि प्रसंगोमां **नयचक्रवृत्तिमां** आवता अनेक संदर्भोनो अमे अनेक स्थळे उपयोग कर्यो छे अने वाचकोना ख्यालमां तरत आवे ते माटे ए संदर्भोने अमे जुदा टाईपोमां (पैका ब्लेक नं० १) मां छापेला छे। अतिदेशादिवाळां वाक्यो वृत्तिमां क्यां क्यां आवेलां छे ए पण अमे टिप्पणोमां स्थळे स्थळे जणाव्युं छे। **नयचक्रवृत्तिने** आधारे मूळनी संकलना करवानुं कार्य अत्यंत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुष्कर होवा छतां आ रीते घणा उपायो द्वारा मल्लवादिसम्मत मूळनी कल्पना करवानो अमे यथामति अने यथाशक्ति प्रयत्न कर्यो छे, परंतु ज्यां कोई पण रीते मूळ तारववुं अमने तद्दन अशक्यप्राय लाग्युं त्यां खाली भाग राखीने .... आवां टपकां ज आप्यां छे, जुओ पृ० १० पं० १,पृ०८६ पं० ५, पृ० ९२ पं० ५ वगेरे।

नयचक्रटीकाकार सिंहसूरिक्षमाश्रमण

"इति नियमभङ्गो नवमोऽरः श्रीमल्लवादिप्रणीतनयचक्रस्य टीकायां न्यायागमानुसारिण्यां सिंहसूरिगणिवादिक्षमाश्रमणदृब्धायां समाप्तः।" आ प्रमाणे नवमा अरने अंते (पृ० ४९४-२) तेमज "इति नियमनियमभङ्गो नाम आदितो विधिभङ्गादारभ्य गम्यमाने द्वादशो भङ्गो द्वादशारनयचक्रस्य श्रीमन्मल्लवादिकृतस्य टीकायां श्रीमत्सिंहसूरिगणिरचितायां समाप्तः" आ प्रमाणे बारमा अरने अंते (पृ० ५४८-२) नयचक्रटीकामां आवता उल्लेख उपरथी 'आना टीकाकार सिंहसूरि हता अने तेओ 'गणि, वादी तथा क्षमाश्रमण' पदवीथी विभूषित हता' एम स्पष्ट जणाय छे। एमणे पोतानी टीका माटे '[1]न्यायागमानुसारिणी' एवो जे उल्लेख कर्यो छे ते तद्दन यथार्थ छे, कारण के आ टीका दार्शनिक अने आगमिक उल्लेखोथी भरपुर छे। टीकामां आवती अनेकविध सूक्ष्म चर्चाओ जोतां तेमज जैन आगमादि ग्रंथो, वेद, उपनिषद्, सर्वदर्शनोना आकर ग्रंथो, योगसाहित्य, आयुर्वेदिक साहित्य, व्याकरणना ग्रंथो वगेरेना विपुल उल्लेखो जोतां टीकाकार श्री सिंहसूरि क्षमाश्रमण अनेकशास्त्रोनुं केवुं अगाध पांडित्य धरावता हता ए स्पष्ट जोई शकाय छे। आ विषे विस्तारथी अमे प्रथम जणावी गया छीए। आ सिवाय एमना जीवनचरित्र विषे बीजी कोई ज माहिती कोई पण ग्रंथमां अमे जोई नथी। "इति मल्लवादिक्षमाश्रमणपादकृतनयचक्रस्य तुम्बं समाप्तम्। ग्रंथाग्रं १८०००।" आ प्रमाणे बधी प्रतिओमां अंते उल्लेख मळे छे तेथी '३२ अक्षरनो एक श्लोक' ए गणत्री प्रमाणे आ टीका १८००० श्लोकप्रमाण छे। पाना उपरथी अमे करेली स्थूल गणना प्रमाणे पण आ १८००० श्लोकप्रमाण मळी रहे छे।

भगवान् जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणे पोते रचेला विशेषावश्यकभाष्य उपर स्वोपज्ञटीका रचवा मांडी हती, परंतु छठ्ठा गणधरनी वक्तव्यता सुधी टीकानी रचना करीने तेओ स्वर्गवासी थया हता, एटले शेष रहेला लगभग अर्धा भागनी टीका कोट्टार्यवादिगणिमहत्तरे पूर्ण करी छे। जेसलमेरना ज्ञानभंडारमां

---

१ तुलना-असङ्गविरचित व्याख्या तेमज वसुबन्धुविरचित भाष्य सहित [बौद्धाचार्यमैत्रेयरचित] मध्यान्तविभाग नामना ग्रंथ उपर स्थिरमतिए रचेली टीका माटे पण आगमानुसारिणी एवो निर्देश मळे छे. जुओ प्राक्कथन पृ० १७ टि० १। स्थिरमति अने गुणमति ए बंने वलभी पुरना बौद्ध विहारना नामांकित विद्वानो हता। स्थिरमतिनो समय विक्रमनी छठ्ठी शताब्दी आसपास गणाय छे। बौद्ध विद्वान संघभद्र के जे बौद्धाचार्य वसुबन्धुनो मोटो प्रतिस्पर्धी हतो तेणे वसुबन्धुना अभिधर्मकोश उपर न्यायानुसार नामनी व्याख्या लखी हती एवो उल्लेख बौद्ध ग्रंथोमां मळे छे। संघभद्रनो समय विक्रमनी पांचमी शताब्दी आसपास होवो जोईए॥ २ ए बे गाथा नीचे मुजब छे—"पंच सता पणतीसा सगणिवकालस्स वद्दमाणस्स। तो चेत्तपुण्णिमाए बुधदिण सातिंमि णक्खत्ते॥ रज्जेणुपालणपरे सी[लाइ]च्चम्मि णरवरिंदम्मि। वलभीणगरीए इमं महवि......मि जिणभवणे॥"—शक संवत् ५३१ मां चैत्री पूर्णिमाने दिवसे बुधवारे स्वाति नक्षत्रमां शीलादित्य राजाना राज्यमां वलभी नगरीमां जिनभवनमां कंईक थयुं होय एवो आ गाथामां निर्देश छे। पानुं जराक खंडित थयुं होवाने लीधे थोडो पाठ त्रुटित थयो होवाथी 'ते दिवसे शुं कर्युं छे' ए चोक्कस जणातुं नथी। वळी ए गाथा बीजी कोई प्रतिमां मळती नथी तेमज एना उपर कोईए टीका पण करी नथी। ते दिवसे ए प्रति लखवामां आवी होय ए पण बनवा जोग छे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्यमान **वि**शेषावश्यकभाष्यनी ताडपत्र उपर लखायेली एक प्राचीन प्रतिना अंतमां बे गाथाओ जोवामां आवे छे अने तेमां शक संवत् ५३१ मां चैत्र शुक्ल पूर्णिमाने दिवसे **व**लभीपुरमां बनेली **कोई** बाबतनो उल्लेख छे। ए जोतां **वि**शेषावश्यकभाष्यनी रचना शक संवत् ५३१ (एटले विक्रम संवत् ६६५) सुधीमां थई गई हती एम जणाय छे। **जि**नभद्रगणिक्षमाश्रमण विरचित स्वोपज्ञटीकामां **दि**ङ्नागना **प्र**माण-समुच्चयना बीजा स्वार्थानुमान परिच्छेदनी "आप्तवादाविसंवादसामान्यादनुमानता" आ अर्धी कारिका उद्धृत करेली छे, तेमज बीजे केटलेक स्थळे पण **दि**ङ्नागनी न्यायपरिभाषा एमां दृष्टिगोचर थाय छे। **को**ट्टार्यगणिरचित टीकामां पण **दि**ङ्नागना **प्र**माणसमुच्चय तथा **न्या**यमुखमांथी केटलाक पाठ उद्धृत करेला छे। परंतु बन्ने य टीकामां मीमांसक विद्वान् **कु**मारिलना मतनुं तथा **बौ**द्धाचार्य **ध**र्मकीर्तिना मतनुं कंई पण नाम-निशान नथी, एटले भगवान् **जि**नभद्रगणिक्षमाश्रमण तो प्राचीन छे ज पण टीकाकार **को**ट्टार्यगणिवादी पण घणा प्राचीन छे। **को**ट्याचार्ये रचेली **वि**शेषावश्यकभाष्यनी टीकामां **ध**र्मकीर्तिना **प्र**माणवार्तिकमांथी उद्धरणो लीधेलां छे परंतु **को**ट्टार्यगणिरचित टीकामां नथी, एटले [2]**को**ट्टार्यगणिरचित टीका **को**ट्याचार्य-रचित टीकाथी प्राचीन छे ए निर्विवाद छे। आ **वि**शेषावश्यकभाष्यनी टीकामां [2]**को**ट्टार्यगणिवादिमहत्तरे एक **सिं**हसूरिक्षमाश्रमणनो नीचे प्रमाणे उल्लेख करेलो छे–

"**सिं**हसूरिक्षमाश्रमणपूज्यपादास्तु—

सामान्यं निर्विशेषं द्रवकठिनतयोर्वार्यदृष्टं यथा किम् ?
योन्या शून्या विशेषास्तरव इव धरामन्तरेणोदिताः के ? ।
किं निर्मूलप्रशाखं सुरभि खकुसुमं स्यात् प्रमाणप्रमेयम् ?
स्थित्युत्पत्तिव्ययात्म प्रभवति हि सतां प्रीतये वस्तु जैनम् ॥"

आ उल्लेख जोतां अहीं निर्दिष्ट पूज्यपाद **सिं**हसूरिक्षमाश्रमण दार्शनिक विद्वान् छे ए नक्की छे। **न**यचक्रटीकाकार **सिं**हसूरिक्षमाश्रमण पण महादार्शनिक विद्वान् छे। अमने तो लागे छे के **न**यचक्रटीकाकार **सिं**हसूरिक्षमाश्रमण अने **को**ट्टार्यगणिए जेमनो निर्देश कर्यो छे ते पूज्यपाद **सिं**हसूरिक्षमाश्रमण एक ज व्यक्ति होवी जोईए। जो अमारी संभावना साची होय तो **न**यचक्रटीका उपरांत बीजा पण दार्शनिक ग्रंथनी एमणे रचना करी हशे।

नयचक्रटीकाकार सिंहसूरिक्षमाश्रमणनो समय

नयचक्रटीकाकारना समय विषे कोई चोक्कस उल्लेख जोवामां आवतो नथी। **न**यचक्रटीकामां मीमांसक विद्वान् **कु**मारिलना मतनुं तेम ज बौद्ध विद्वान् **ध**र्मकीर्तिना मतनुं क्यांय नाम-निशान नथी, एटले **न**यचक्रटीकाकार **सिं**हसूरिक्षमाश्रमण **कु**मारिल अने **ध**र्मकीर्तिथी पूर्वे ज थएला छे[1]। अर्थान्तरापोहना

१ **कु**मारिल तथा **ध**र्मकीर्तिना समय विषे विद्वानोमां वादविवाद चाल्या ज करे छे, पण एटलुं तो नक्की छे के–**कु**मारिले '**मी**मांसाश्लोकवार्तिक'मां **दि**ङ्नागना मतनुं विस्तारथी खंडन कर्युं छे, एटले **कु**मारिल **दि**ङ्नागनी पछी ज थएल छे। **कु**मारिलनुं खंडन **ध**र्मकीर्तिए कर्युं छे। चीनी यात्री **इ**त्सिंगे विक्रम सं० ८४८ मां लखेला भारतनी यात्राना वर्णनमां **ध**र्मकीर्तिनो बहुमान पूर्वक उल्लेख करेलो छे, एटले ते पहेलां **ध**र्मकीर्तिनुं अस्तित्व जणाय छे। २ **को**ट्टार्यगणि अने **को**ट्याचार्य ए बन्नेय जुदी जुदी व्यक्ति छे, ए विषे जिज्ञासुओए **आ**त्मानंदप्रकाशना वि. सं. २००४ ना फागण मासना अंकमां मुनिराज श्री **पु**ण्यविजयजी महाराजे लखेलो '**वि**शेषावश्यकमहाभाष्यस्वोपज्ञटीकानुं अस्तित्व' ए नामनो लेख जोई लेवो॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख्य प्रणेता तरीके दिङ्नागनुं नाम प्रसिद्ध छे, ए अमे मल्लवादीना समयनी विचारणामां जणावी गया छीए। नयचक्रटीकामां पृ० १९ पं० १८ मां "कुतोऽर्थान्तरापोहलक्षणं विद्वन्मन्याद्यतनबौद्धपरिक्लृप्तं सामान्यम्" आ प्रमाणे उल्लेख आवे छे। एमां 'अपोहवादी'ने माटे 'अद्यतनबौद्ध' एवो शब्द टीकाकारे वापर्यो छे, ए जोतां सिंहसूरिक्षमाश्रमण दिङ्नागना समीपकालीन होय एम जणाय छे। नयचक्रटीकामां पृ० १४५ पं० १९, पृ० २४० पं० १० वगेरे कोईक कोईक स्थळे नयचक्रना पाठभेदनो टीकाकारे निर्देश कर्यो होवाथी मल्लवादी अने सिंहसूरि वच्चे समयनुं कंईक पण अन्तर जरूर हशे एम लागे छे। टीकाकारे उद्धृत करेला जैन आगमोना पाठो अने अत्यारे प्रचलित वलभीसंकलनाना पाठो वच्चे महत्वनुं अन्तर जोवामां आवे छे, ए जोतां पण नयचक्रटीकाकार प्राचीन छे ए निर्विवाद छे।

नयचक्रटीका पृ० ६ मां 'जं चोद्दस ....' वगेरे त्रण गाथाओ उद्धृत करेली छे। ए त्रणेय गाथाओ कंईक क्रमभेदथी विशेषावश्यकभाष्यमां पण जोवामां आवे छे एटले ए त्रण गाथाओ विशेषावश्यकभाष्यमांथी नयचक्रटीकाकारे उद्धृत करेली छे एवी कल्पना उठे ए स्वाभाविक छे, परंतु ए त्रणेय गाथाओ भगवान् जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणे पण बीजा कोईक ग्रंथमांथी विशेषावश्यकभाष्यमां उद्धृत करी होय एवो संभव जणाय छे, ए विषे अमे विस्तारथी टिप्पणमां जणाव्युं छे। जिज्ञासुओए टिपृ० ९–१० मां जोई लेवुं। एटले मात्र ए त्रण गाथाओने आधारे विशेषावश्यकभाष्य तथा नयचक्रटीकाना पूर्वापरभाव विषे अमे निर्णय करी शकता नथी।

प्रति परिचय

आ ग्रंथना संपादनमां भा० य० पा० डे० लीं० वि० रं० ही० आ आठ प्रतिओनो अमे उपयोग कर्यो छे, तेमां पण वस्तुतः भा० अने य० ए बे प्रति ज महत्वनी छे, परंतु य० प्रति प्रस्तुत ग्रंथनो सात अर जेटलो भाग (पृ० ५५२) छपाई गयो त्यां सुधी घणी तपास करवा छतां पण अमने क्यांय मळी नहोती, पाछळथी ज मळी आवी, एटले आ संपादनना प्रारंभ समये य० प्रतिनी जग्याए अमे य० प्रति उपरथी ज साक्षात् किंवा परंपराए लखायेली पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतिओनो उपयोग कर्यो हतो, पण हवे तो य० प्रति मळी आवी छे, एटले पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतिनो परिचय संक्षेपमां ज आपीशुं अने भा० य० प्रतिनो परिचय विस्तारथी आपीशुं।

भा०—आ प्रति भावनगरना जैन संघनी शेठ श्री डोसाभाई अभेचंदनी पेढीना ज्ञानभंडारनी छे। मोटा अने सुंदर अक्षरोमां लखेली छे। पानां ५७२ छे। एना अंतमां आ प्रति लखावनारनो परिचय एक पुष्पिकामां आपेलो छे। आ पुष्पिका प्राक्कथन पृ० ३२ मां अमे आपेली छे।

ए पुष्पिका उपरथी जणाय छे के विधिपक्षगच्छीय महान् आचार्यश्री धर्ममूर्तिसूरिजीना उपदेशथी गोविंद मंत्रिना पुत्र पुंजे आ पुस्तक लखावी ज्ञानभंडारमां मूक्युं हतुं। धर्ममूर्तिसूरिजीए घणे स्थळे प्रतिष्ठाओ करावी हती तेमज ज्ञानभंडारो पण तैयार कराव्या हता। विधिपक्षगच्छनी पट्टावली जोतां धर्ममूर्तिसूरिजी विक्रमनी १७ मी शताब्दीना मध्यभागमां विद्यमान हता, एटले आ प्रति पण तेमणे

१ विधिपक्षगच्छनी पट्टावली जोतां धर्ममूर्तिसूरिनो जन्म विक्रम संवत् १५८५, दीक्षा १५९९, सूरिपद १६०२ अने स्वर्गवास १६७० मां जणाय छे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ए अरसामां लखावी हशे एम जणाय छे। आ प्रति अमने केवी उपयोगी नीवडी छे ए अमे पहेलां जणावी गया छीए। आ प्रति जेना उपरथी लखवामां आवी हशे ते प्रति हजु सुधी क्यांय जोवामां आवी नथी, तेमज आ प्रति उपरथी लखायेल कोई प्रति पण क्यांय अमारा जोवामां आवी नथी, एटले आ जातनी प्रति विश्वमां एक ज छे एम धारीए छीए।

य०–आ प्रति न्यायविशारद न्यायाचार्य पूज्यपाद उपाध्याय श्री**य**शोविजयजी महाराजे अनेक मुनिवरो साथे लखेली छे। आ ग्रंथना सात अर (मुद्रित पृ० ५५२) छपाई गया पछी वि० सं० २०१२ मां आ प्रति मुनिराजश्री **पु**ण्यविजयजी महाराजने अणधारी ज मळी आवी हती अने तेमणे तरतज अमारा उपर **पा**लीताणामां मोकली आपी हती। आ प्रति केवी रीते मळी आवी अने तेनुं केवुं स्वरूप छे ए विषे मुनिराजश्री **पु**ण्यविजयजी महाराजे आचार्यश्री**व**ल्लभसूरिस्मारकग्रंथमां 'श्री**य**शोविजयोपाध्याय अने तेमणे लखेली हाथपोथी **न**यचक्र' ए लेखमां (पृ० १८१–१८४) विस्तारथी माहिती आपी छे। ए लेखमांथी उपयोगी अंशने अहीं अमे नीचे उद्धृत करीए छीए—

"प्रस्तुत **न**यचक्रग्रंथ, के जे **भा**वनगरनी श्री **आ**त्मानंद सभा तरफथी प्रकाशित थशे तेना संशोधन माटे अमे जे अनेक प्राचीन प्रतिओ एकत्र करी हती तेमां **ब**नारसना खरतरगच्छीय मंडलाचार्य यतिवर श्री **ही**राचंद्रजी महाराजना संग्रहनी अने पूज्यपाद आचार्य महाराज **रं**गविमलजी महाराजना संग्रहनी प्रतिओ पण सामेल छे। ए प्रतिओना अंतमां जे पुष्पिका छे ते जोतां खातरी थई हती के **द्वा**दशारनयचक्रटीका ग्रंथनी एक प्रति पूज्यपाद न्यायविशारद न्यायाचार्य महोपाध्याय श्री **य**शोविजयजी महाराज अने तेमना सहकारी मुनिवरोए मळीने लखी हती। आजे जाणवा–जोवामां आवेली **न**यचक्रटीकाग्रंथनी प्राचीन–अर्वाचीन हाथपोथीओमांथी मात्र **भा**वनगर श्रीसंघना ज्ञानभंडारनी प्रतिने बाद करतां बाकीनी बधी ज प्रतिओ ए उपाध्यायजीए लखेली प्रतिनी ज नकलो छे। आ बधी नकलो लेखकोना दोषथी एटली बधी कूट अने विकृत थई गई छे के जेथी आ ग्रंथना संशोधनमां घणी ज अगवडो उभी थाय। आ स्थितिमां प्रस्तुत ग्रंथना संशोधनमां प्रामाणिकता वधे ए माटे उपाध्यायजी महाराजे लखेली मूळ प्रतिने शोधी काढवा माटे हुं सदाय सचेत हतो, पण ते प्रति क्यांयथी मळी नहिं।

परंतु जैन श्रीसंघना कहो, के प्रस्तुत ग्रंथना रसिक विद्वानोना कहो, के प्रस्तुत ग्रंथना संशोधन पाछळ रातदिवस अथाग परिश्रम सेवनार मुनिवरश्री **जं**बूविजयजीना कहो, महाभाग्योदयनुं जागी उठवुं के–जेथी मारा प्रत्ये पूज्यभावभर्या मित्रभावथी वर्तता अने सदाय मारी साथे रहेता–पूज्यपाद श्री १००८

---

१ **को**डाय (कच्छ) ना भंडारमांथी मळी आवेली विक्रमसंवत् १६६२ मां लखाएली **सि**द्धिविनिश्चयटीकानी अत्यंत दुर्लभ प्रति पण आ महा श्रुतज्ञानरसिक आचार्ये लखावेली हती, तेना अंतमां नीचे मुजब उल्लेख छे—"संवत् १६६२ वर्षे लिखितं विष्णुदासेन। श्री **आ**र्यरक्षितगुरोः प्रसृते विशाले गच्छे लसन्मुनिकुले विधिपक्षनाम्नि। सूरीश्वरा **गु**णनिधान-सुनामधेया आसन् विशुद्धयशसो जगति प्रसिद्धाः॥ तत्पट्टरेक(खैक?)तरणि स्तरणिर्भवाब्धौ श्री**ध**र्ममूर्तिरिति सूरिवरो विभाति। सौभाग्यभाग्यमुखसद्गुणरत्नरत्नगोत्रः पवित्रचरितो महितो विनेयैः॥ [तेन स्व]श्रेयसे ज्ञानभाण्डागारे लेखिते **सि**द्धिविनिश्चयटीका वाच्यमाना चानन्दतु। **ना**गडागोत्रजो...गिरा। साधुः श्री**ध**नराजाह्वो ग्रन्थमेनमलीलिखत्॥" पृ० ५८१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

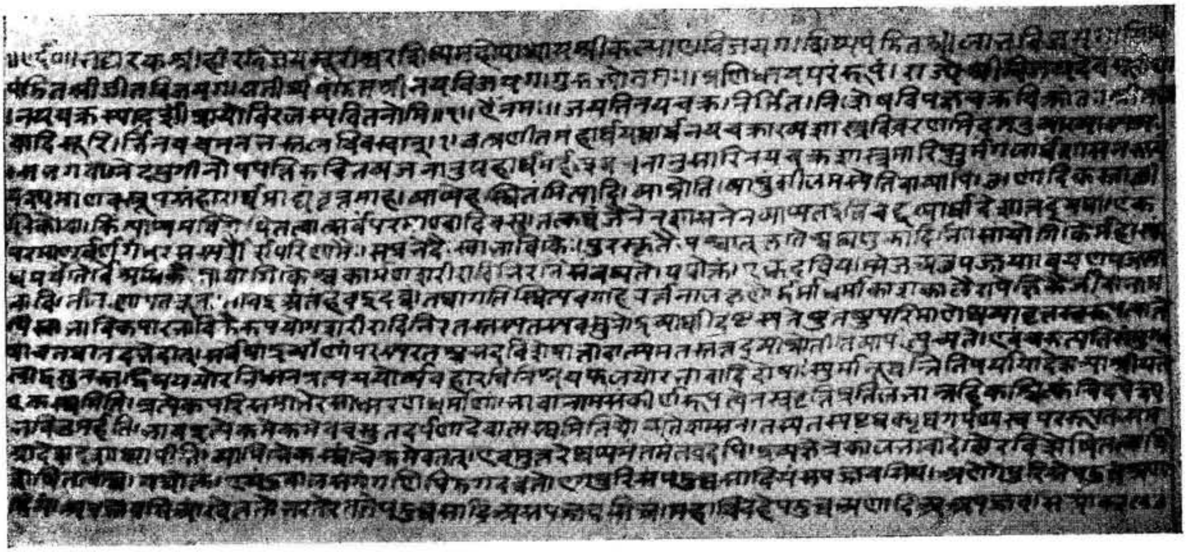

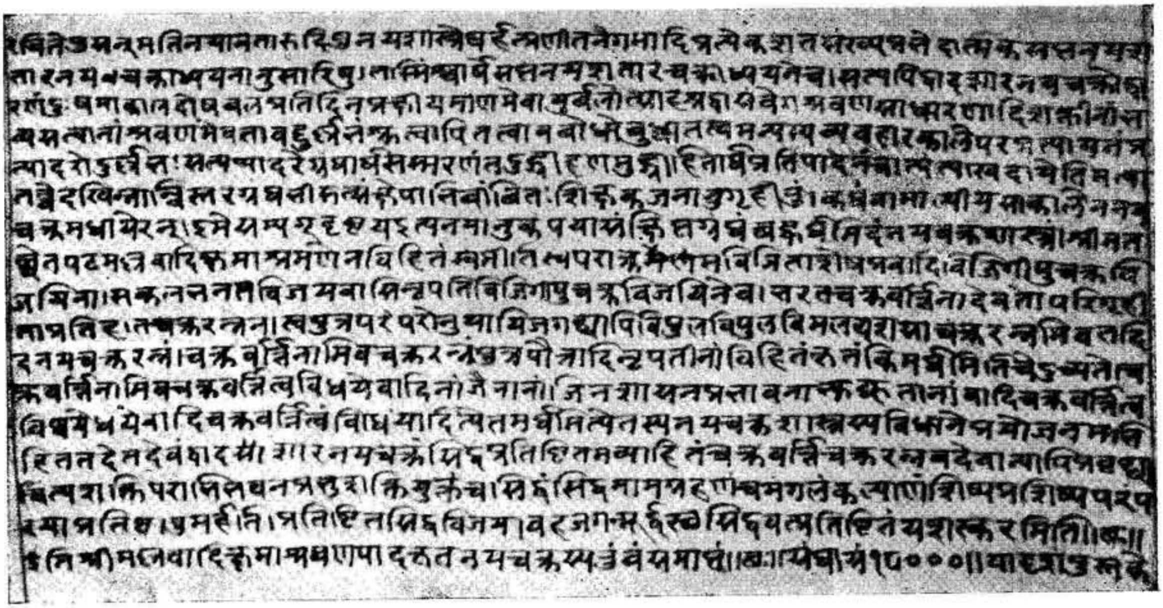

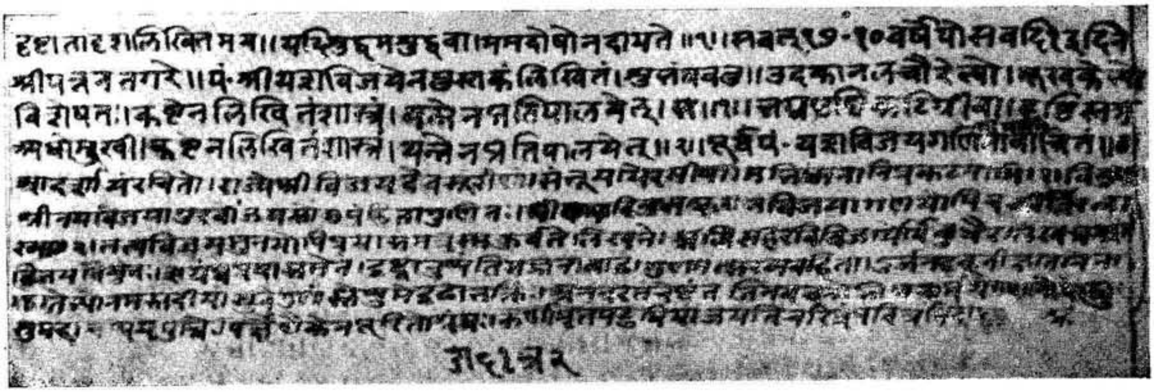

उपाध्याय श्रीयशोविजयजी महाराजना हस्ताक्षरमां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेठ श्री डोसाभाई अभेचंदना भंडारनी हस्तप्रति

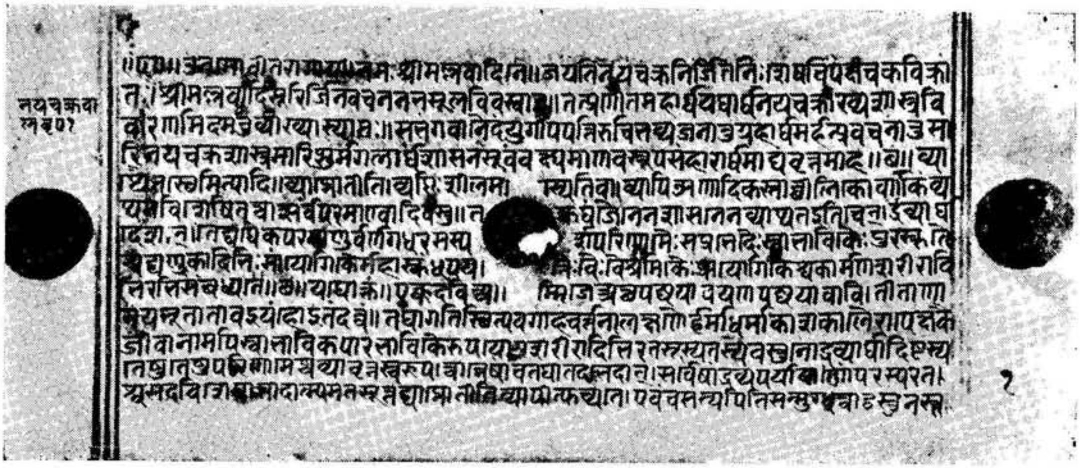

पत्रांक १

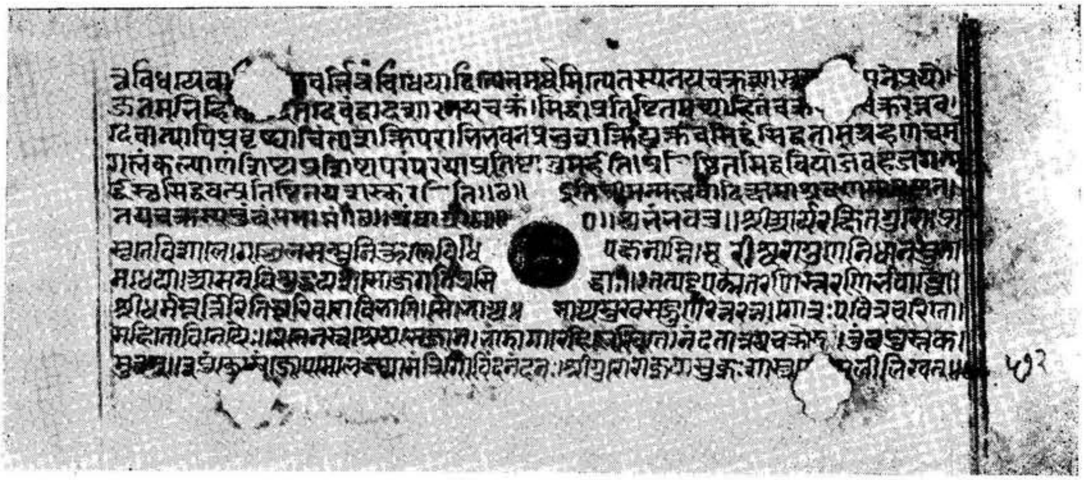

पत्रांक ५१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शांतमूर्ति श्रीहंसविजयजी महाराजना प्रशिष्य पन्यास मुनिवरश्री रमणीकविजयजीए आ वर्षे देवसाना पाडाना उपाश्रयमांना पन्यासजीश्री महेन्द्रविमलजी महाराजना ज्ञानभंडारने जोवानो उपक्रम तेमना शिष्य श्री हर्षविमलजीनी उदारताथी कर्यो। आ उपक्रमथी ए ज्ञानभंडारनुं अवलोकन करतां पं० श्री रमणीक-विजयजीना हाथमां श्री यशोविजयजी महाराजना त्रण अलभ्य ग्रंथो तेमना पोताना ज हस्ताक्षरमां प्राप्त थया अने ते तेमणे मने आप्या। एमां एक वादमाला नामनो ग्रंथ (छपाएल वादमालाथी जुदो) बीजो वीतरागस्तोत्रअष्टमप्रकाशवृत्ति (स्याद्वादरहस्य) अन्तिमश्लोकव्याख्या अपूर्ण पर्यंत अने त्रीजो मल्लवादिआचार्यरचित नयचक्र उपर सिंहसूरिक्षमाश्रमणे रचेली टीकानी प्रति–ए रीते त्रण अपूर्व ग्रंथो मने आप्या। आ त्रणमांथी नयचक्रटीका ग्रंथनी पोथी जोतां मने हर्षरोमांच प्रकटी गया अने अपूर्व आनंदनो अनुभव थयो।

आ प्रतिना अंतमां उपाध्यायजी महाराजे जे पुष्पिका आलेखी छे ए तो वर्षो पहेलां भावनगरथी प्रसिद्ध थता 'श्रीआत्मानंदप्रकाश' मां मुनि जंबूविजयजीए प्रसिद्ध करी ज दीधी छे। ते छतां प्रस्तुत स्मारक ग्रंथमां उपाध्यायजी महाराजनी ए पोथीना प्रतिबिंबने साक्षात् जोनारा रसिक भक्त वाचकोने अतृप्ति न रहे ते माटे ए आखी पुष्पिका अहीं आपवामां आवे छे–

'प्रतिष्ठितसिद्धविजयावहजगन्मूर्द्धस्थसिद्धवत् प्रतिष्ठितं यशस्करमिति ॥ छ ॥ इति श्रीमल्लवादिक्षमा-श्रमणपादकृतनयचक्रस्य तुम्बं समाप्तम् ॥ छ ॥ ग्रंथाग्रं १८००० ॥

यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मया। यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ॥ १ ॥

संवत् १७१० वर्षे पोस वदि १३ दिने श्रीपत्तननगरे। पं. श्रीयशविजयेन पुस्तकं लिखितं। शुभं भवतु

उदकानलचौरेभ्यो मूषकेभ्यो विशेषतः। कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन प्रतिपालयेत् ॥ १ ॥

भग्नपृष्ठिकटिग्रीवा दृष्टिस्तत्र अधोमुखी। कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन प्रतिपालयेत् ॥ २ ॥

पूर्वं पं. यशविजयगणिना श्रीपत्तने वाचितम् ॥ छ ॥

आदर्शोऽयं रचितो राज्ये श्रीविजयदेवसूरीणाम्।
सम्भूय यैरमीषामभिधानानि प्रकटयामि ॥ १ ॥
विबुधाः श्रीनयविजया गुरवो जयसोमपण्डिता गुणिनः।
विबुधाश्च लाभविजया गणयोऽपि च कीर्तिरत्नाख्याः ॥ २ ॥
तत्त्वविजयमुनयोऽपि प्रयासमत्र स्म कुर्वते लिखने।
सह रविविजयैर्विबुधैरलिखच्च यशोविजयविबुधः ॥ ३ ॥
ग्रन्थप्रयासमेनं दृष्ट्वा तुष्यन्ति सज्जना बाढम्।
गुणमत्सरव्यवहिता दुर्जनदृक् वीक्षते नैनम् ॥ ४ ॥
तेभ्यो नमस्तदीयान् स्तुवे गुणांस्तेषु मे दृढा भक्तिः।
अनवरतं चेष्टन्ते जिनवचनोद्भासनार्थं ये ॥ ५ ॥ श्रेयोस्तु ॥
सुमहानप्ययमुच्चैः पक्षेणैकेन पूरितो ग्रन्थः।
कर्णामृतं पटुधियां जयति चरित्रं पवित्रमिदम् ॥ ६ ॥ श्रीः'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ पुष्पिकामां एम जणाववामां आव्युं छे के–'प्रस्तुत हाथपोथी **पा**टणमां वि. सं. १७१० मां लखी छे। ए लखवा पहेलां उपाध्यायजी महाराजे आ आखो ग्रंथ पाटणमां वांची लीधो हतो अने त्यार पछी श्री**न**यविजयजी महाराज, श्री**ज**यसोमपंडित, श्री**ला**भविजयजी महाराज, श्री**की**र्तिरत्नगणि, श्री**त**त्त्वविजयजी, श्री**र**विविजय पंडित अने श्री**य**शोविजय महाराज पोते–एम सात मुनिवरोए मळीने १८००० श्लोक प्रमाण आ महाकाय शास्त्रनी मात्र एक पखवाडीयामां ज नकल करी छे'।

आ ग्रंथ केटलो महत्त्वनो अने जैनदार्शनिक वाङ्मयना अने जैनशासनना आधारस्तंभरूप छे! एनी प्रतीति आपणने एटलाथी ज थाय छे के श्री**य**शोविजयजी महाराज जेवाए आ ग्रंथनी नकल करवानुं कार्य हाथ धर्युं।

प्रस्तुत प्रतिने लखवामां जे सात मुनिवरोए भाग लीधो छे तेमना अक्षरो व्यक्तिवार पारखवानुं शक्य नथी। आमांथी मात्र श्री **य**शोविजयजी म० अने तेमना गुरुवर श्री**न**यविजयजी म० ना हस्ताक्षरोने पारखी शकीए तेम छीए। आ ग्रंथमां पत्र १ थी ४४, ५७ थी ७६, २५१ थी २५५, अने २९१ थी २९४ एम कुल ७३ पानां श्री**य**शोविजयजीए लखेलां छे, जे अक्षरो झीणा होई एकंदर ४५०० थी ४८०० जेटली श्लोकसंख्या थाय छे। श्री**य**शोविजयजी महाराज पंदर दिवसमां चोकसाईभर्युं आटलुं बधुं लखी काढे, ए एमनी लेखनकलाविषयक सिद्धहस्तताने अपूर्व नमूनो छे अने सौने ए आश्चर्यचकित करे तेवी हकीकत छे। प्रस्तुत प्रतिनां कुल ३०९ पानां छे। तेमां पंक्तिओना लखाणनो कोई खास मेळ नथी। सौए पोतानी हथोटी प्रमाणे लींटीओ लखी छे, छतां मोटे भागे १७ थी ओछी नथी अने २४ थी वधारे नथी। प्रतिनी लंबाई–पहोळाई १०×४॥ इंचनी छे। ३०९ मा पानामांनी अंतिम छ श्लोक प्रमाण पुष्पिका श्री**य**शोविजयजी महाराजे लखी छे।"

पा०–आ प्रति पाटणना तपागच्छीय जैनसंघना ज्ञानभंडारनी छे। एनां ४६९ पानां मळे छे, छेवटनां त्रण चार पानां मळतां नथी, एटले ए प्रति क्यारे लखाई हती ए अमे चोकस कही शकता नथी, छतां य० प्रति उपरथी वि०सं० १७१० पछी गमे त्यारे पा० प्रति लखाई छे ए वात नक्की छे। प्रतिनुं स्वरूप जोतां वि० सं० १७१० पछी थोडा वखतमां ज पा० प्रति लखाई होवी जोईए एम लागे छे।

डे०–अमदावादना डेलाना उपाश्रयना ज्ञानभंडारनी आ प्रति छे। ४६८ पानां छे। विक्रमसंवत् १७२९ मां कार्तिक वदि ७ शुक्रवारे आ प्रति लखेली छे।

लीं०–आ प्रति लींबडी (सौराष्ट्र) ना जैनसंघना ज्ञानभंडारनी छे। अमारी पासे आनां चार आराना २४७ जेटलां पानां ज आव्यां हता, एटले संपूर्ण पत्रसंख्यानी अमने खबर नथी। आ प्रति डे० प्रति उपरथी लखाई छे एम बन्नेनी तुलना करतां जणाय छे।

वि०–पंजाबना जीरा गाममां आवेला विजयानंदसूरिजी (आत्मारामजी) महाराजना ज्ञानभंडारनी आ प्रति छे। ३८७ पानां छे। वि० सं० १७५३ मां पोष वदि त्रीज गुरुवारे सरखेज (अमदावाद जिल्ला) गाममां आ प्रति लखायेली छे।

रं०–आ प्रति विजापुर(गुजरात)मां विद्यमान रंगविमलजी जैन ज्ञानभंडारनी छे। पानां ५५२ छे। वि० सं० १७२४ मां फागण वदि १ मंगळवारे लखाएली छे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही०—आ प्रति यति श्री **ही**राचंद्रजीना **का**शीना **सु**पार्श्वनाथ जैनमंदिरमां विद्यमान ज्ञानभंडारनी छे। ५३४ पानां छे। रं० अने ही० प्रतिओनी तुलना करतां ही० प्रति रं० उपरथी लखवामां आवी छे एम चोक्कस जणाय छे।

छट्ठा अरमां मुद्रित **न**यचक्रवृत्ति पृ० ४२५ पं० २४ थी पृ०४२७ पं० १८ सुधीनो एक पाना जेटलो पाठ वि० रं० ही० आ त्रणेय प्रतिओमां देखातो नथी, एटले य० प्रति उपरथी लखेली जे प्रतिमां एटलो पाठ पडी गयेलो हशे तेना उपरथी वि० रं० ही० आ त्रणेय प्रतिओ साक्षात् के परंपराए लखाएली छे।

भा० प्रतिमां मार्जिनमां (हांसियामां) दरेक पानामां **न**यचक्रवालवृ० एवुं लखाण छे, ज्यारे य० प्रति अने य० उपरथी लखायेली उपर जणावेली पा० वगेरे प्रतिओमां आदि अने अंतना पानामां मार्जिनमां **न**यचक्रवालटीका एवुं लखाण छे।

भा० आदि प्रतिओमां जे परस्पर पाठभेद छे ते अमे **न**यचक्रवृत्तिनी नीचे टिप्पणोमां—फुटनोटमां दर्शाव्या छे। भा० प्रतिमांथी लीधेलां पाठांतरो पासे अमे भा० एवो संकेत वापर्यो छे। पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतिओ जो के य० प्रति उपरथी ज लखवामां आवी छे, छतां केटलेक स्थळे य० प्रतिना अक्षरो बराबर न उकेली शकवाथी तथा बीजां पण कारणोथी लेखकोने हाथे पा० आदि प्रतिओमां क्वचित् क्वचित् गंभीर विपर्यास थई गयो छे[1] अने अनेक स्थाने पाठांतरो पण निर्माण थयेलां छे। आवा पाठांतरो ज्यां अमने जणाववां जरूरी लाग्यां छे त्यां ते ते पाठांतरो पासे पा० आदि संकेतो अमे वापर्या छे। पा० डे० लीं० वि० रं० ही० मां ज्यां एक सरखो ज पाठ छे, त्यां ए बधायनी आधारभूत य० प्रतिमां ए पाठ छे ज एम धारी लईने एवा पाठांतर आगळ अमे य० संकेत ज वापर्यो छे, जुओ पृ० २. टि० ४ वगेरे। य० प्रति मळ्या पछी अमे तेमां तपासीने जोयुं तो अमारी धारणा प्रमाणे ज य० प्रतिमां प्रायः बधे ते ते पाठो छे। सातमा अर सुधीना संपादनमां पा० डे० लीं० वि० रं० ही० नो उपयोग करवामां आव्यो छे, पण हवे तो तेमनी आधारभूत य० प्रति मळी गई छे, तेथी **न**यचक्रवृत्तिना आठमा अरथी शरू थता बाकीना संपादनमां भा० अने य० ए बे प्रतिओनो ज उपयोग करवामां आवशे। भा० अने य० ए बन्नेय प्रतिओ वच्चे पुष्कळ पाठवैषम्य होवाथी भा० अने य० ए बेय प्रतिओ कोई जुदी जुदी प्रतिओ उपरथी ज लखाएली छे, छतां लेखकोना हाथे थएला अने परापूर्वथी चाल्या आवता एवा पण सेंकडो अशुद्ध पाठो छे के जे भा० अने य० ए बन्नेय प्रतिओमां एक सरखा छे। ज्यां आवा अशुद्ध पाठोने अमे अमारी समज प्रमाणे सुधार्या छे त्यां अमे शुद्ध करेला पाठो **न**यचक्रवृत्तिमां स्थाप्या छे अने बधी ज प्रतिओमां एक ज सरखो अशुद्ध पाठ छे ते पाठ अमे नीचे टिप्पणोमां दर्शावीने तेनी आगळ प्र० एवो संकेत वापर्यो छे, जुओ पृ० ८ टि० ९ वगेरे। 'सर्व प्रतिओमां मळतो अशुद्ध पाठ' एवो प्र० नो अर्थ छे। आ प्रमाणे केटलाक अशुद्ध पाठो बन्नेयमां समान होवाने लीधे भा० अने य० ए बे य प्रतिओ केटलाक

---

१ जुओ टिपृ० ९३ पं. २१-२४। **आठमा अरमां लगभग पांच पानांनो भयंकर विपर्यास आ कारणथी थयो छे,** जुओ पृ० ६६६ टि० २। प्राक्कथन पृ० ३४ टि० २। अमारी पासे भा० अने य० प्रति होवाने लीधेज खास करीने ए भयंकर पाठविपर्यासमांथी अमे बची गया छीए॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशुद्ध पाठोवाळी कोई एक ज प्रतिमांथी परंपराए उतरी आवेली छे ए चोक्कस छे। उपरनी चर्चा उपरथी प्रतिओनी वंशावली जे प्रमाणे फलित थाय छे ते अमे प्राक्कथन पृ० ३६ मां आपेली छे।

नयचक्रवृत्तिना संशोधननी सामग्री

भा० अने य० प्रतिनी जे विशिष्टताओ छे ते विषे अमे पहेलां विस्तारथी जणावी गया छीए। आ बंनेय जातनी प्रतिओनी मददथी पाठशुद्धि करवामां अमने घणी ज सरलता थई छे, तेम छतांय लेखक-दोषथी पूर्वकाळथी चाली आवेली सेंकडो अशुद्धिओ बंनेय प्रतिओमां समान रूपे जोवा मळे छे। आ अशुद्धिओ दूर करवा माटे व्याकरणना नियमो, दार्शनिक परिभाषा, ग्रंथकारनी शैली, नयचक्रवृत्तिमां आवता पूर्वापर संदर्भो, अनेक दार्शनिक ग्रंथो तेमज बीजा पण विविध विषयना ग्रंथोनो ज्यां ज्यां शक्य होय त्यां अमे उपयोग कर्यो छे, अने सहायभूत थएला ग्रंथोना पाठोनो उल्लेख टिप्पणोमां अनेक स्थळे कर्यो छे। ते उपरांत प्राचीन लिपिना अक्षरोनी आकृतिने बराबर न समजी शकवाथी पाछळना लेखकोए अनेक स्थळे जे अक्षर परिवर्तन करी नांख्युं छे तेनो पण सूक्ष्मताथी अभ्यास करीने तेना आधारे सेंकडो स्थळे अमे अत्यंत खात्री पूर्वक पाठशुद्धि करी शक्या छीए, जेमके पृ० १६ पं० १४ मां 'शब्द-स्पर्श-रूपरसगन्धात्मा पृथिवी कर कटलक्षणा वेति' आवो पाठ तमाम हस्तलिखित प्रतिओमां छे, अहीं 'करकट-लक्षणा' आ पाठ अशुद्ध लागवाथी 'कर्कशलक्षणा' एवो सुधारो मनथी अमे कल्प्यो तो खरो परंतु आगळ पृ० ४७ पं० ६ मां पण 'करकट' एवो पाठ अमारी दृष्टिमां आव्यो। 'लेखको सर्वत्र एक जातनी अशुद्धि करे' ए अमारी बुद्धिमां उतर्युं नहिं तेथी 'कर्कशलक्षणा' एवो सुधारो अमे पडतो मूक्यो। त्यार पछी रशियामां पेट्रोग्राड (वर्तमान लेनिनग्राड) थी 'बिब्लिओथेका बुद्धिका' सीरिजमां प्रकाशित थएला बौद्धाचार्य शान्तिदेव रचित शिक्षासमुच्चयमां (पृ० २४५ मां) "कतमश्च महाराज! बाह्यः पृथिवीधातुः? यत् किञ्चिद् बाह्यं **कक्खटत्वं** खरगतमनुपात्तमयमुच्यते बाह्यः पृथिवीधातुः" आवो उल्लेख एक वखत अमारी नजरे पड्यो, ते जोतां ज खात्री थई गई के नयचक्रवृत्तिमां साचो पाठ 'कक्खटलक्षणा' ज होवो जोईए। 'कक्खटलक्षणा पृथिवी' ए बौद्धोनो मत छे। त्यार पछी लिपि विषे विचार करतां जणायुं के प्राचीन देवनागरी लिपिमां **क्ख** अक्षर **रक** एम ज लखातो हतो एटले 'कक्खटलक्षणा' पाठनी सत्यता विषे कोई पण शंकाने अवकाश ज न रह्यो। आ प्रमाणे भिन्न भिन्न ग्रंथोनी सहायथी तेमज लिपिसादृश्यमूलक अक्षर परिवर्तनना निरीक्षणथी अमे सेंकडो स्थलोए पाठोने यथावत् शुद्ध करी शक्या छीए। आ ग्रंथनी हस्तलिखित प्रतिओमां जोवामां आवता लिपिसादृश्यमूलक अक्षरपरिवर्तनना केटलांक उदाहरणो प्राक्कथन पृ० ३७ मां अमे आपेलां छे। ते उपरांत पृष्ठमात्रा (पडिमात्रा) नी विपरीत योजनाथी पण घणा अशुद्ध पाठो हस्तलिखित प्रतिमां छे, टिप्पणोमां आपेलां पाठांतरो उपरथी वाचको आ संबंधमां सारी रीते समजी शकशे।

टिबेटन ग्रंथोनो पण संशोधनमां उपयोग करवामां आव्यो छे; जेमके पृ० ९३ पं० २१ मां प्रारंभमां बधी ज प्रतिओमां 'तदद्दष्टौ' पाठ मळ्यो हतो, परंतु बौद्ध ग्रंथ हस्तवालप्रकरण के जेमांथी ए पाठ उद्धृत करवामां आव्यो जणाय छे तेना टिबेटन भाषांतरने आधारे त्यां 'तदंशदृष्टौ' पाठो होवो जोईए एवो अमे निर्णय कर्यो हतो, अने ते पछी मळी आवेली भा० प्रतिमां पण 'तदंशदृष्टौ' एवो पाठ मळी

१ आगमग्रंथोमां आठ स्पर्शोना निरूपणमां 'कक्खड' स्पर्शनो उल्लेख आवे छे त्यां पण 'कक्खट' स्पर्श ज विवक्षित छे। कक्खट=खर=कठिन।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

आव्यो हतो। तेथी अमारी धारणा साची पडी हती। आ प्रमाणे बीजा स्थळोमां पण टिबेटन ग्रंथोनो संशोधनमां उपयोग कर्यो छे।

पृष्ठांकस्पष्टीकरण

आ मुद्रित ग्रंथमां बे जातना पृष्ठांको अमे आपेला छे। एक पृष्ठांक जे दरेक पानाना मथाळे छे ते आ मुद्रित ग्रंथनो पृष्ठांक छे। बीजो पृष्ठांक जे दरेक पानाना मार्जिनमां आपेलो छे ते हस्तलिखित भा० प्रतिनो पृष्ठांक छे अने ते खास हेतु पूर्वक अहीं आपवामां आव्यो छे। नयचक्रमूल तथा वृत्तिना केटलाक पाठोना स्पष्टीकरण, समर्थन तथा संशोधन माटे नयचक्रवृत्तिमां रहेला पूर्वापर संदर्भोनो अमे ठाम ठाम उपयोग कर्यो छे। अने ते ते संदर्भो कया कया पृष्ठमां आवेला छे ते पण अमे टिप्पणोमां जणाव्युं छे। मुद्रणकार्य चालतुं हतुं त्यारे मुद्रित थई गयेला पाठ माटे तो अमे मुद्रित पृष्ठांक आप्यो छे, पण जे अंश भविष्यमां मुद्रित थवानो हतो ते माटे भा० प्रतिना पृष्ठांकनो अमे निर्देश कर्यो छे। भा० प्रतिमां एकंदर ५७२ पत्र छे, दरेक पत्रमां उपरनुं अने नीचेनुं एम बे पृष्ठ छे। भा० प्रतिमां जे जे भाग जे जे पृष्ठमां शरू थाय छे ते ते भागनी समीपमां मुद्रित नयचक्रवृत्तिमां मार्जिनमां (हांसियामां) भा० प्रतिना ते ते पृष्ठांक आखाय ग्रंथमां सळंग आपेला छे, जेमके २–१ एटले भा० प्रतिना बीजा पत्रनुं प्रथम पृष्ठ, २–२ एटले बीजा पत्रनुं बीजुं पृष्ठ, ए प्रमाणे ३–१, ३–२ वगेरेनो अर्थ पण समजी लेवो, स्थूल टाईपमां छापेलो प्रथम अंक भा० प्रतिनो पत्रांक दर्शावे छे, ज्यारे बीजो अंक १ अने २ अनुक्रमे उपरनुं तथा नीचेनुं पृष्ठ दर्शावे छे। जेमके मुद्रित पृ० ९ पं० २२ मां 'भवति शुद्धपदोच्चारणवद्' एवो पाठ छे, आनुं विस्तारथी स्पष्टीकरण नयचक्रवृत्तिमां अंतभागे भा० प्रतिना पृ० ५६८–१ मां आवे छे, एटले ए भाग जोई लेवा माटे अमे वाचकोने मुद्रित पृ० ९ टि० १० मां भलामण करी छे, अर्थात् मुद्रित नयचक्रवृत्तिमां अंतभागमां मार्जिनमां ज्यां ५६८–१ लख्युं होय त्यां वाचकोए ए भाग जोई लेवो। आ रीते पृ० ३३ टि० ७, पृ० ४५ टि० ९ वगेरे अनेक स्थळे स्पष्टीकरणादि माटे भा० प्रतिना ते ते पृष्ठांको साथे संबंध धरावता पाठो जोवानी भलामण करी छे।

टिप्पणो

आ मुद्रित ग्रंथमां बे प्रकारनां टिप्पणो छे–एक तो नयचक्रमां ज नीचे फुटनोटरूपे आपेलां छे, ज्यारे बीजां नयचक्रनी पाछळ जोडेलां छे। फुटनोटमां मुख्यतया पाठांतरो आपेलां छे, छतां केटलेक स्थळे बीजी पण महत्त्वनी सामग्री रजु करेली छे, केटलाक मां अमे स्वीकारेला पाठनुं समर्थन छे, केटलाकमां स्पष्टीकरण छे, केटलाकमां ऐतिहासिक दृष्टिए तुलना आदि छे।

नयचक्रनी पाछळ जे टिप्पणो जोडेलां छे ते घणां विस्तृत छे। नयचक्र तथा नयचक्रवृत्तिमां आवता ते ते पाठोनुं समर्थन, स्पष्टीकरण तथा तुलना आदि ए टिप्पणोमां विस्तारथी आपेलुं छे। संशोधन, समर्थन अने स्पष्टीकरण बने त्यां सुधी बीजा ग्रंथोना आधारथी करवुं के जेथी ए प्रमाणभूत बने आ अमारी पद्धति छे। तेथी ए कार्यमां अमे जे अनेक प्राचीन-अर्वाचीन ग्रंथोना पाठोनो आधार लीधो छे तेनो उल्लेख आ टिप्पणोमां अमे स्थळे स्थळे कर्यो छे। नयचक्र छपाती वखते जे केटलीक अशुद्धिओ रही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गई अने जे पाछळथी अमारा ध्यानमां आवी तेनुं परिमार्जन पण आ टिप्पणोमां अनेक स्थळे कर्युं छे। नयचक्र छपाया पछी जे टिबेटन ग्रन्थोनी सामग्री मळी तेना आधारे पण क्वचित् शुद्धि करी छे जेमके मुद्रित पृ० ३१४ पं० ४ मां 'वीतस्य वा भावः पञ्चप्रदेशः' ए प्रमाणे पाठ हस्तलिखित प्रतिओमां मळे छे त्यां 'वीतस्य [आवीतस्य] वा भावः पञ्चप्रदेशः' एम अमे सुधार्युं हतुं, पण पाछळथी टिबेटन ग्रंथोना आधारे जणायुं के 'वीतस्य वाक्यभावः पञ्चप्रदेशः' एवो ज पाठ साचो छे एटले अमे टिपृ० १३८ पं० २ मां ए प्रमाणे सुधार्युं छे। ए प्रमाणे पृ० ३२१ पं० १६ ना पाठने अमे टिपृ० १४० पं० ८ मां टिबेटन ग्रंथने आधारे सुधार्यो छे। आ टिप्पणो विस्तृत होवाथी अने एमां विविध माहिती अनेक स्थळे होवाथी एक प्रकारनी टीका जेवां छे। दुर्लभ अने उपयोगी अनेकविध माहिती एमां छे। विशेष जिज्ञासुओए टिप्पणोनो विषयानुक्रम ज जोई लेवो। आ टिप्पणोना ज अंगरूपे १ भोटपरिशिष्ट, २ वैशेषिकसूत्रसंबंधि परिशिष्ट तथा ३ य० प्रतिपाठ परिशिष्ट एम त्रण परिशिष्टोनी योजना करेली छे। तेनी उपयोगिता तथा स्वरूप नीचे प्रमाणे छे—

भोटपरिशिष्ट (टिपृ० ९५–१४०)

आ परिशिष्ट तैयार करवामां अमने अति परिश्रम पड्यो छे। दिङ्नाग बौद्ध न्यायनो पिता गणाय छे। तेथी जैन, सांख्य, न्याय, मीमांसा, बौद्ध आदि अनेक दर्शनोना प्राचीन ग्रंथोमां दिङ्नागना मतनी विस्तारथी चर्चा जोवामां आवे छे। परंतु तेणे नाना मोटा जे अनेक ग्रंथो रचेला ते लगभग बधाज ग्रंथो संस्कृत भाषामां अत्यारे नष्टप्राय थई गया होवाथी ए बधी चर्चाओनो सार समजवो अति विकट छे। प्रमाणसमुच्चय, तेनी स्वोपज्ञवृत्ति, न्यायमुख, आलम्बनपरीक्षा वगेरे दिङ्नागना थोडाक ग्रंथोनां टिबेटन तथा चीनी भाषामां लगभग हजार वर्ष पूर्वे थएलां भाषांतरो मळे छे, तेथी ए भाषाओ शीखीने भारत, युरोप, अमेरिका, जापान आदि देशोना विद्वानो दिङ्नागना ग्रंथोनुं रहस्य समजवा माटे अनेक वर्षोथी परिश्रम करे छे, कारणके प्रमाणसमुच्चय आदि ग्रंथोनां टिबेटन भाषांतरो अत्यंत दुर्बोध अने क्लिष्ट होवाथी टिबेटन भाषाना विद्वानोने पण ए समजतां घणी मुसीबत पडे छे। नानां नानां प्रकरणोमां पोते चर्चेली छूटी–छवाई वातोने एकत्र करवा माटे, व्यवस्थित करवा माटे अने आवश्यक संस्कार आपवा माटे दिङ्नागे प्रमाणसमुच्चयनी रचना करी होवाथी ए एनो सौथी महत्त्वनो ग्रंथ गणाय छे। तेना उपर ईश्वरसेन आदि अनेक विद्वानोए टीका रची हती, परंतु ते बधामांथी अत्यारे तो जिनेन्द्रबुद्धिए रचेली विशालामलवती नामनी मात्र एक ज टीकानुं टिबेटन भाषांतर मळे छे। नयचक्रवृत्तिनो लगभग एक षष्ठांश जेटलो भाग दिङ्नागना मतनी विचारणामां रोकायेलो छे। तेथी टिबेटन भाषा शीखीने पछी प्रमाणसमुच्चय आदि ग्रंथोनां टिबेटन भाषांतरो वांचीने एना आधारे दिङ्नागनुं मंतव्य यथावत् जाणवा माटे प्रयास करवो ए ज अमारा माटे श्रेष्ठ मार्ग हतो के जेथी नयचक्रमां आवती चर्चाओनो आशय पण बराबर समजाय अने नयचक्रवृत्तिमां आवता अनेक पाठोनी शुद्धि पण बराबर थई शके। तेथी टिबेटन भाषा शीखवानो प्रारंभ कर्यो अने परम कृपालु पूज्यपाद गुरुदेवनी कृपाना प्रभावथी अल्प समयमां ए

१ "प्रमाणभूताय जगद्धितैषिणे प्रणम्य शास्त्रे सुगताय तायिने। प्रमाणसिद्ध्यै स्वमतात् समुच्चयः करिष्यते विप्रसृतादिहैकतः॥" प्रमाणसमुच्चयः ॥ १ । १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषानुं अध्ययन पण कर्युं। त्यारपछी **प्रमाणसमुच्चय** आदिनां टिबेटन भाषांतरो मेळववानो प्रयत्न कर्यो, परंतु ए मेळवतां अमने जे अपार कष्टनो अनुभव थयो छे तेनुं वर्णन करवा बेसीए तो पानांओनां पानां भराय। आखरे अनेक वर्षोना प्रयत्नने अंते अमेरिका, युरोप, जापान आदि देशोना अनेक विद्वानोना सहकार अने सौजन्यथी त्यांना पुस्तकालयोमां विद्यमान ते ते टिबेटन भाषांतरो माइक्रोफिल्म आदि रूपे अमने मळी शक्यां। फिल्म उपरथी घणा खर्चे फोटाओ तैयार कराव्या। त्यारपछी तेमांना उपयोगी अंशनुं महिनाओ सुधी चिंतन करीने जे संस्कृत तैयार करी शकायुं ते अमे भोटपरिशिष्टमां आप्युं छे। **टिबेटनुं** मूळ नाम **भोट** छे अने तेनी भाषा **भोट** भाषा कहेवाय छे। तेथी आ परिशिष्टनुं अमे **भोटपरिशिष्ट** नाम राख्युं छे। अमने आशा छे के आचार्य श्री **मल्लवादीए नयचक्रमां** तथा **सिंहसूरिक्षमाश्रमणे नयचक्रटीकामां** **दिङ्नागना मतनी** जे विचारणा करी छे तेनुं तात्पर्य समजवामां आ भोटपरिशिष्ट वाचकोने अत्यंत सहायक थशे। **विशालामलवतीटीका** सहित तेमज **स्वोपज्ञवृत्तिसहित प्रमाणसमुच्चयना** प्रत्यक्ष, **स्वार्थानुमान,** परार्थानुमान, दृष्टांत आ चार परिच्छेदोमांथी **नयचक्रमां** आवती चर्चामां उपयोगी अंशनुं तथा बीजा पण प्रसक्तानुप्रसक्त घणा अंशनुं तेमज **दिङ्नागरचित आलम्बनपरीक्षावृत्ति,** हस्तवालप्रकरण अने **आर्यदेवरचित चतुःशतकना** अमुक अंशनुं पण टिबेटन भाषांतर उपरथी संस्कृत करीने भोटपरिशिष्टमां अमे आप्युं छे[1]। **नयचक्रना** आठमा अरमां **दिङ्नागना** मतनी जे अति विस्तृत विचारणा छे ते **प्रमाणसमुच्चयना** बीजा स्वार्थानुमान परिच्छेद, त्रीजा परार्थानुमान परिच्छेद अने पांचमा अपोह परिच्छेद साथे संबंध धरावे छे। टीका तथा स्वोपज्ञवृत्ति सहित **प्रमाणसमुच्चयनो** एटलो अंश टिबेटन भाषांतर उपरथी संस्कृत करीने **नयचक्रना** आठमा अरमां टिप्पणोमां (फुट नोटमां) आपवामां आवशे। अमने आशा छे के टिबेटन भाषांतरो उपरथी संस्कृतमां तैयार करेला आ बधा अंशो जैन, सांख्य, मीमांसा, न्याय, बौद्ध आदि दर्शनोना प्राचीन ग्रंथोमां ज्यां **दिङ्नागना** मतनी चर्चा आवे छे त्यां पण ते ते चर्चा समजवामां अभ्यासीओने खास उपयोगी थशे।

वैशेषिकसूत्रसम्बन्धि परिशिष्ट (टिप्पृ० १४१)

चन्द्रानन्दरचितवृत्तिसहित प्राचीन **वैशेषिकसूत्र नयचक्रमां** जुदे जुदे स्थळे संपूर्णतया अमे शा माटे छाप्युं छे तेनां कारणो अमे पहेलां जणावी गया छीए। टिप्पृ० ८ पं० २२-३५ मां पण आ विषे अमे जणाव्युं छे। वैशेषिकसूत्रना दश अध्यायो छे, तेमां प्रथम सात अध्यायोमां दरेकमां बे बे आह्निक छे। आ बधां सूत्रो नयचक्रमां भिन्न भिन्न स्थळे टिप्पणोमां छापेलां होवाथी ते ते सूत्रो कया कया पानामां छपाएलां छे ए जणाववा माटे आ परिशिष्टनी अमे संकलना करी छे।

मुनिराज श्री **पुण्यविजयजी** महाराज पासेथी मळेली **जेसलमेरनी** एक प्रति के जेनी P. संज्ञा राखी छे तेना आधारे **चन्द्रानन्दरचितवृत्तिसहित वैशेषिकसूत्र** अमे अहीं छाप्युं हतुं। परंतु त्यारपछी वडोदराना

---

१ टिबेटन लिपि तद्दन जुदा प्रकारनी होय छे, एना टाईपो आ देशमां सहेलाईथी मळी शके नहीं, एटले भोटपरिशिष्ट छापती वखते टिबेटन लिपि उपरथी देवनागरीमां रूपांतर करीने **प्रमाणसमुच्चय** अने स्वोपज्ञवृत्तिना ते ते अंशनुं टिबेटन भाषांतर पहेलां छाप्युं छे अने त्यारपछी ते ते अंशोनुं संस्कृत आप्युं छे॥ २ जुओ पृ० ६०७-६०८, ६१४, ६१७, ६२९-६३३, ६३८-६४०, ६५०-६५१, ६६३, ६७०, ६७४, ६७५, ६७८-६८०, ६८३, ६८४, ६८८, ६९३, ७०२, ७०३, ७२०, ७२४-७३०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Oriental Institute प्राच्यविद्यामंदिरमांथी पण आ ग्रंथनी शारदा लिपिमां लखेली एक प्रति मळी आवी छे के जेनी अमे O. संज्ञा राखी छे। शारदा लिपि बहु जुदा ज प्रकारनी होय छे, गुरुदेवनी कृपाथी ए लिपि जाणीने पछी तेनी साथे P. प्रति सरखावतां O. प्रतिमां महत्त्वना जे केटलाक शुद्ध पाठो अमने मळी आव्या ते शुद्ध पाठो अलग शुद्धिपत्रकमां दर्शाव्या छे। एटले नयचक्रना टिप्पणोमां वैशेषिकसूत्र वांचती वखते वाचकोए आ भागना अंते आपेलो 'चन्द्रानन्दरचितवृत्तियुतस्य वैशेषिकसूत्रस्य अध्यायक्रमेण O. पुस्तके शुद्धपाठाः' ए विभाग पण जोई लेवो।

नयचक्रवृत्तिमां पांचमा अर सुधी जे वैशेषिकसूत्रो उद्धृत करवामां आव्यां छे तेनो सूत्रांक अमे उपस्कारसहित वैशेषिकसूत्र प्रमाणे आप्यो हतो, पण त्यारपछी मळेला चन्द्रानन्दरचितवृत्तिसहित वैशेषिकसूत्रमां सूत्रांक जुदो होवाथी वाचकोए एने आधारे सूत्रांक बदलीने वांचवो।

य० प्रतिपाठपरिशिष्ट (टिपृ० १४२-१४६)

पूज्यपाद उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराजे सात मुनिवरो साथे मळीने विक्रम संवत् १७१० मां लखेली नयचक्रवृत्तिनी प्रति के जेनी अमे य० संज्ञा राखी छे ते नयचक्रना सात अर छपाई गया त्यां सुधी मळी नहोती तेथी सात अर सुधीना मुद्रणमां य० प्रति उपरथीज साक्षात् किंवा परंपराए लखाएली पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतिओनो यथायोग उपयोग कर्यो छे, आ वात अमे विस्तारथी पहेलां जणावी गया छीए। लेखकोना हाथे पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतिओमां जे केटलाक पाठभेद थई गया छे एमांना महत्त्वना पाठभेदो अमे नयचक्रवृत्तिनी नीचे फुटनोटोमां जणाव्या छे, परंतु हवे तो ए बधायनी आधारभूत य० प्रनि मळी गई छे, एटले य० प्रतिमां वस्तुतः केवो पाठ छे ते जणाववा माटे 'य० प्रतिपाठ परिशिष्ट'नी योजना करी छे। उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराजे लखेली नयचक्रवृत्तिनी प्रति घणी मोडी मळी होवा छतां एनो अमारा संपादनमां आ रीते अमे सम्पूर्ण उपयोग करी लीधो छे।

पारिभाषिक तथा लाक्षणिक शब्दो

आ ग्रंथमां केटलाक पारिभाषिक शब्दो आवे छे ए अमे यथावत् जाळवी राखवा काळजी राखी छे, जेमके 'वीत अने आवीत' ए हेतुप्रयोगोनां पारिभाषिक नाम छे। सांख्य ग्रंथोमां ए शब्दो खास वपराता हता, एटले सांख्य मतनो ज्यां निर्देश छे त्यां तेमज बीजा प्रसंगोमां पण 'आवीत' शब्दनो अनेकशः प्रयोग आ ग्रंथमां छे, जुओ पृ० ९ पं० १०, पृ० १८ पं. ८, पृ० ३१४ पं० १ वगेरे। वाचस्पतिमिश्र वगेरेए सांख्यग्रंथोमां 'आवीत' शब्दने स्थाने 'अवीत' शब्दनो प्रयोग कर्यो छे पण प्राचीन शब्द 'आवीत' ज हतो, एटले अर्वाचीन सांख्य ग्रंथोने अनुसरीने 'आवीत' ना स्थाने अमे 'अवीत' सुधार्युं नथी, किन्तु नयचक्रवृत्तिनी हस्तलिखित प्रतिओमां अनेक स्थाने आवतो 'आवीत' 'आवीत' शब्द ज अमे सर्वत्र आ ग्रंथमां जाळवी राख्यो छे। दिङ्नागे पण सांख्यमतनी चर्चामां 'आवीत' शब्द ज वापर्यो छे, जिनेन्द्रबुद्धिरचित विशालामलवती टीकामां 'आवीत' शब्दनी विशिष्ट व्याख्या पण आपेली छे. जुओ टिपृ० १३८ पं० ३, १७,१८। कुमारिले पण 'आवीत' शब्दनो प्रयोग कर्यो छे जुओ नयचक्र पृ० ३१४ टि० २। आ बधाने आधारे स्पष्ट जणाय छे के प्राचीन वार्षगणतंत्रमां 'आवीत' शब्दनो प्रयोग हतो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'ऊर्ध्व' ना स्थाने 'उर्द्ध' शब्दनो प्रयोग तथा द्व्यणुकना अर्थमां 'त्रुटि' शब्दना स्थाने 'तुटि' शब्दनो प्रयोग पण आ ग्रंथमां अनेक स्थळे छे।[1] पृ० ३४१ पं० २४, पृ० ३४३ पं० १९ वगेरेमां 'सायोज्य' शब्दनो प्रयोग आ ग्रंथमां छे त्यां अमे अर्वाचीन ग्रंथोने आधारे 'सायुज्य' एम सुधार्युं नथी, पण आ ग्रंथमां अनेक स्थळे आवतो 'सायोज्य' एवो प्राचीन शब्दप्रयोग अमे जाळवी राख्यो छे। आ ग्रंथमां आवता बीजा पण आवा प्राचीन शब्दोने बने त्यांसुधी यथावत् जाळवी राखवा ध्यान राख्युं छे।

जैन आगमादि ग्रंथोनी प्राचीन प्राकृतभाषामां 'गोयमा' ने बदले 'गोतमा', 'कओ' ने स्थाने 'कतो', 'कयं' ने स्थाने 'कतं' ए प्रमाणे 'त' कारनो बहुलतया प्रयोग थतो हतो, एज प्रमाणे 'ह'-कारने स्थाने 'ध'कारनो पण क्वचित् प्रयोग थतो हतो, जेमके 'वयणपहा'ने स्थाने 'वयणपधा'। **न**यचक्र तथा तेनी वृत्तिमां आगम वगेरे प्राकृत ग्रंथोमांथी ज्यां पाठो उद्धृत करेला छे त्यां आगमिक प्राकृत भाषानां 'त'कारबाहुल्य वगेरे प्राचीन लक्षणो खास जोवामां आवे छे, एटले आ ग्रंथमां 'गोतमा, आता' वगेरे पाठोने अमे कायम राख्या छे, जुओ पृ० ११५ पं० ४ वगेरे। तेमां पण **न**यचक्रवृत्तिनी भा० प्रतिमां आगमिक 'प्राकृतभाषानां' प्राचीन लक्षणो विशेष जळवाई रह्यां छे, य० प्रतिमां क्वचित् क्वचित् परिवर्तन पण थई गएलुं छे। आ ग्रंथमां शरुआतना मुद्रण वखते भा० अने य० प्रतिमांथी प्राकृतभाषाना पाठोने पसंद करवामां अमे बहु नियम जाळवी शक्या नथी, पण पाछळथी आवा प्रसंगोमां अमे भा० प्रतिमां आवता प्राकृत पाठोने खास पसंद कर्या छे।

उपसंहार

अन्य ग्रंथोमांथी **न**यचक्र तथा **न**यचक्रवृत्तिमां उद्धृत करेला पाठोनां मूळस्थानो शोधी काढवा माटे अमे शक्य प्रयत्नो कर्या छे, उद्धृत करेला पाठो वाचकोनी अनुकूलता माटे खास पैका ब्लॅक नं. १ टाईपमां छाप्या छे अने एना पछी तरतज [ ] आवा चोरस कोष्टकमां ते ते पाठोनां मूळस्थानो ज्यां अमने मळी शक्यां त्यां दर्शाव्यां छे, ज्यां न मळ्यां त्यां चोरस कोष्टक खाली राख्यां छे।

नयचक्रवृत्तिमां जे पाठो अमने **न**यचक्रमूलना खास प्रतीकरूपे लाग्या छे ते पाठोने मोटा टाईपमां छाप्या छे, एथी नयचक्रमूलनी संकलना करवामां तथा नयचक्रवृत्तिमां आवतुं एनुं विवरण समजवामां वाचकोने अनुकूलता रहेशे।

आ प्रमाणे अनेक हकीकतोने ध्यानमां राखीने, भा० अने य० ए बन्नेय जातनी प्रतिओना पाठोनी तुलना करीने, लिपिपरिवर्तननी शैलीनुं झीणवटथी चिंतन करीने, अन्यग्रंथोनो विपुल प्रमाणमां उपयोग करीने अने ते ते पाठो उपर घणा समय सुधी वारंवार चिंतन अने मनन करीने आ ग्रंथमां आवता पाठोने शुद्ध करवा अमे यथाशक्ति अने यथामति घणो घणो प्रयत्न कर्यो छे। ज्यां पाठ पडी गयो छे अने अधिक पाठ उमेरवानी जरूर छे एम अमने लाग्युं छे त्यां अमारी संभावनानो पाठ [ ] आवा चोरस

---

१ जेम द्व्यणुक (बे अणु) माटे 'तुटि' शब्दनो प्रयोग **न**यचक्रवृत्तिमां अनेक स्थाने छे तेम बे क्षणने माटे 'तुटि' शब्दनो प्रयोग काश्मीरथी प्रकाशित थयेला प्राचीन शैव ग्रंथमां अनेक स्थाने जोवामां आवे छे, जेमके-'क्षणद्वयं तुटिर्ज्ञेया' एवो उल्लेख काश्मीर सीरीज XLI मां प्रकाशित थयेली तन्त्रालोकवृत्तिमां दशमा आह्निकमां पृ० १२९ मां छे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोष्ठकमां अमे उमेर्यो छे। हस्तलिखित प्रतिओमां विद्यमान अशुद्ध पाठने ज्यां बनी शक्युं त्यां शुद्ध करवानो अमे प्रयत्न कर्यो छे, पण ज्यां अमे शुद्ध करी शक्या नथी अने ज्यां अमने खास शंका छे त्यां अशुद्ध पाठनी आगळ (?) आ प्रमाणे प्रश्नचिन्ह आप्युं छे, जुओ पृ० २५७ पं० १४। हस्तलिखित प्रतिओमां ज्यां अशुद्ध पाठो छे अने शुद्ध पाठोनी निश्चित संभावना ज्यां अमे करी शक्या नथी त्यां अमे कल्पेला शुद्ध पाठो ( ) आवा कोष्ठकमां गोठवीने प्रश्न चिन्ह साथे टिप्पणमां ज खास करीने घणी जग्याए दर्शाव्या छे, जुओ पृ० १०६ टि० १० वगेरे। केटलेक स्थळे बीजी रीते पण पाठ होई शके एम अमने लाग्युं छे, त्यां ए पण टिप्पणोमां जणाव्युं छे, जुओ पृ० १४ टि० ९, पृ० १८ टि० १३, पृ० ७२ टि० ८ वगेरे।

नयचक्र छपाती वखते महत्त्वना जे पाठो अशुद्ध रही गया अने पाछळथी अमारा ध्यानमां आव्या ते पाठो **न**यचक्रनी पाछळ जोडेलां टिप्पणोमां सुधारी लीधा छे। मुद्रणदोषथी अने प्रूफ वांचतां दृष्टिदोषथी जे अशुद्धिओ रही गई ते अमे खास करीने शुद्धिपत्रकमां सुधारी लीधी छे, एटले वाचकोए नयचक्रनी पाछळ जोडेलां टिप्पणो तथा शुद्धिपत्रकनो खास उपयोग करवा पूर्वक आ ग्रंथनुं वांचन करवुं एवी अमारी खास विनंति छे।

आ प्रमाणे अनेक वर्षो सुधी चिंतन, मनन अने परिश्रम करीने अनेकविध साहित्यना उपयोग करवा पूर्वक आ ग्रंथनुं सांगोपांग संशोधन अने संपादन करवा अमे यथामति सर्व प्रयत्न कर्यो छे। छतां **न**यचक्र मूळना अभावने लीधे, हस्तलिखित प्रतिओना अशुद्धिबाहुल्यने लीधे, संशोधनमां उपयोगी तथाविध सामग्रीना अभावने लीधे, अमारी मतिमंदताने लीधे, तथा क्वचिद् दृष्टिदोषथी प्रूफ वांचवा वगेरेमां थएली असावधानताने लीधे आ ग्रंथमां जे कांई अशुद्धिओ रही गई होय तेनुं स्वयं प्रमार्जन करीने हंस जेम क्षीर अने नीरनुं पृथक्करण करीने क्षीरने ग्रहण करे छे तेम विद्वानो आ ग्रंथनुं अध्ययन अने मनन करीने अमारा परिश्रमने सफल करे एवी अमारी हार्दिक नम्र प्रार्थना छे।

धन्यवाद

'आ ग्रंथनुं संशोधन अने संपादन सांगोपांग अने बहु व्यवस्थित रीते थाय' एवी मुनिराज श्री **पु**ण्यविजयजी महाराजनी चिरकाळथी उत्कट इच्छा हती, एटले तेमनी खास प्रेरणाथी में आ कार्य स्वीकार्युं हतुं। ज्यारथी में आ कार्य स्वीकार्युं त्यारथी मांडीने अत्यार सुधीमां आ अतिदुष्कर कार्यने पार पाडवा माटे तेमणे मने घणीज वार प्रोत्साहन आप्युं छे। **न**यचक्रवृत्तिनी बधीज हस्तलिखित प्रतिओ घणा घणा परिश्रमे अनेक स्थानेथी एमणेज मेळवीने मारा उपर मोकली आपी हती। पा० प्रतिनी कोपीने भा० प्रति साथे मेळवी भा० प्रतिमां आवतां पाठान्तरोनी नोंध पण तैयार करीने एमणे मोकली हती। पाटण अने जेसलमेर वगेरेना ज्ञानभण्डारोमां रहेली **वि**शेषावश्यकभाष्यनी स्वोपज्ञटीका, **को**ट्टार्यगणिकृत टीका, **च**न्द्रानन्दरचितवृत्तिसहित वैशेषिकसूत्र, **न्याय**भाष्य, **न्याय**वार्तिक, **न्याय**कंदली, **सां**ख्यकारिकावृत्ति, **त**त्त्वसंग्रहपंजिका वगेरे ग्रंथोनी प्राचीन हस्तलिखित प्रतिओना आदर्शो के जेनो आ ग्रंथनां संपादनमां अमे अनेक स्थाने उपयोग कर्यो छे ए पण एमनी पासेथी ज मळी शक्या छे। किं बहुना? आ ग्रंथना संशोधनमां जे जे ग्रंथोनी जरुर पडे ते ते ज्यांसुधी बनी शके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यांसुधी घणा परिश्रमे पण मेळवीने एमणे मने पुरा पाड्या छे। जो के आ ग्रंथना संशोधन अने संपादननी संपूर्ण जवाबदारी मारी एकलानी ज छे, छतां विपुल द्रव्यना व्ययथी साध्य आ ग्रंथना मुद्रण–प्रकाशननी बधी व्यवस्था तेमणे ज करी छे, एटले आ ग्रंथना मुद्रण तेमज प्रकाशननी बधी व्यवस्थाना योजक तरीके तेमनो महत्त्वनो फाळो छे। ए बद्दल हुं तेमनो अत्यन्त आभारी छुं।

संस्कृत-हिन्दी-बंगाली-चीनी-टिबेटन-जर्मन-फ्रेंच तथा इंग्लीश आदि अनेक भाषाओना ज्ञाता डॉ. एरी फ्राउवल्नर (Prof. Dr. E. Frauwallner) के जेओ ओस्ट्रीयामां वियेनानी युनिवर्सिटीमां भारतीय विभागना प्रमुख छे अने भारतीय दर्शनशास्त्रोना मुख्य अध्यापक छे तेमणे बहु मनन करीने आ ग्रंथनी इंग्लीश प्रस्तावना लखी छे, प्रमाणसमुच्चयस्वोपज्ञवृत्तिना कनकवर्मकृत टिबेटन भाषांतरना पेकिंग एडिशनना फोटा पण पेरीसमांथी मेळवीने मोकली आप्या छे, तेमज भोट परिशिष्टमां अनेक उपयोगी सूचनाओ करी छे। पुनाना प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् अने संस्कृत-पाली-चीनी-टिबेटन-जर्मन-फ्रेंच-इंग्लीश आदि भाषाओना ज्ञाता डॉ. वासुदेव विश्वनाथ गोखले महाशये टिबेटन ग्रंथो वगेरे दुर्लभ सामग्री अमारा माटे मेळववा निःस्वार्थ भावथी घणो प्रयत्न कर्यो हतो, टिबेटन भाषा शीखवा माटे पण खास प्रेरणा एमणे करेली हती, भोट परिशिष्ट छपाती वखते पण एमणे घणी उपयोगी सूचनाओ करी हती। जापानमां सेन्डाइ शहेरमां आवेली टोहोकु युनिवर्सिटीमां भारतीय विभागमां मुख्य अध्यापक, जापानमां जैनसाहित्यना खास अभ्यासी डॉ. येन्शो कानाकुरा (Prof. Dr. Yensho Kanakura) तथा जापाननी नागोया युनिवर्सिटीमां भारतीय विभागना अध्यापक डॉ. हिदेनोरी कितागावाए (Dr. Hidenori Kitagawa) प्रमाणसमुच्चयस्वोपज्ञवृत्ति उपर जिनेन्द्रबुद्धिरचित ९००० श्लोकप्रमाण विशालामलवती टीकाना टिबेटन भाषांतर वगेरेना 'देर्गे' एडीशनना दुर्लभतम फोटाओ भेट मोकली आप्या हता। डॉ. हिदेनोरी कितागावाए प्रमाणसमुच्चय स्वोपज्ञवृत्तिना बन्ने टिबेटन भाषान्तरोना केटलाक भागनी नार्थंग एडीशननी घणी महेनते Mimeograph करेली कोपी पण मोकली आपी हती। अमेरिकन विद्वान श्री. वोल्टर हार्डिंग माउरर (Mr. Walter H. Maurer) नी प्रेरणाथी अमेरिकामां वोशिंग्टनमां आवेली कोंग्रेस लायब्रेरीए (The Library of Congress, U. S. A.) टिबेटन भाषांतरना छोनी एडीशनना चालीस जेटला टिबेटन ग्रंथोनी माइक्रोफिल्म घणा परिश्रमे तैयार करीने भेट मोकली आपी हती। विद्वद्वर श्री. प्रह्लादप्रधाने अभिधर्मकोश भाष्यना अमारे जरूरी हता ते ते अतिमहत्त्वना अंशो फोटा ऊपरथी लखीने घणाज सौजन्यथी मोकली आप्या हता। म्हैसूरना श्री रंगास्वामी आयंगर (Dr. H. R. R. Iyengar) तथा जापानना Prof. H. Kimura वगेरे जे विद्वानो पासेथी टिबेटन ग्रंथो मळेला तेमनो नामोल्लेख अमे भोटपरिशिष्टमां टिपृ० ९७ मां कर्यो छे। आ उपर्युक्त बधा सज्जन महाशयोने हुं अंतःकरण पूर्वक धन्यवाद आपुं छुं।

निर्णयसागर प्रेसना मेनेजर, पंडितजी श्री. नारायण राम आचार्य तथा कंपोझिटरोए नयचक्र प्रेसमां छपातुं हतुं ते वखते ते ते पानामां मूळ, टीका तथा टिप्पणने यथास्थाने गोठवा माटे घणी घणी महेनत उठावी

१ टिबेटन भाषांतरोनां देर्गे आदि विविध संस्करणोना परिचय माटे जुओ गायकवाड सीरीजमां छपाएला अमे संपादित करेला वैशेषिक सूत्रनुं सातमुं परिशिष्ट पृ० १५५–१६६॥

छे, ते उपरांत जुदा जुदा टाईपोमां आ ग्रंथ व्यवस्थित रीते अने शुद्धपणे छपाय ते माटे तेमणे घणीज काळजी लीधी छे। तेमने अंतःकरणथी मारा खूब खूब आशीर्वाद छे। आत्मानंद सभाना कार्यवाहको प्रॉ. **खीमचंदभाई चांपसी** तथा **श्री फत्तेहचंद झवेरभाईए** आ ग्रंथनुं मुद्रण अने प्रकाशन सुंदर अने शीघ्र थाय ते माटे अंगतरीते घणो रस अने प्रयत्न सेव्यो छे, तेने हुं भूली शकुं तेम नथी ज, तेमने अंतःकरणथी मारा खूब खूब आशीर्वाद छे।

भगवान् गुरुदेवना उपकारो

अंतमां मारे खास संस्मरण मारा **गुरुदेवश्रीनुं** करवानुं छे। आ आखोय ग्रंथ तैयार करवामां प्रातः-स्मरणीय परमपूज्य पूज्यपाद परमाराध्य मारा गुरुदेव श्री १००८ मुनिराज श्री **भुवनविजयजी महाराजानी** मने अनुपम सहाय मळी छे। सटीक पीस्तालीश आगमो अने धर्मशास्त्रो ए एमनो मुख्य विषय छे। ए विषयनुं एमनुं आजीवन परिशीलन अने तलस्पर्शी ज्ञान छे। एटले प्रस्तुत ग्रंथना संशोधनमां ज्यारे ज्यारे ए अंगे जरूर पडती त्यारे त्यारे एमनी पासेथी मने मार्गदर्शन मळ्युं छे। वळी आ ग्रंथनुं संशोधन–संपादनकार्य में तेओश्रीनी सम्मतिथी ज स्वीकार्युं हतुं। छाती दुःखी जाय त्यां सुधी सतत बोलवुं पडे छतां जरापण कंटाळ्या विना उल्लास पूर्वक आ आखाय ग्रंथना प्रुफोनुं चार चार वार तथा पांच पांच वार वांचन एमणे एकलाए ज कराव्युं छे। तदुपरांत मारी अंतरंग तथा बहिरंग तमाम चिंताओनो भार आ बधा वर्षोमां तेओश्रीए ज उठाव्यो छे। आ ग्रंथना संशोधन-संपादनमां उपयोगी हस्तलिखित तेमज मुद्रित विविध-विषयक दुर्लभ ग्रन्थो अने टिबेटन ग्रंथोने मेळववा माटे तेमज साचववा माटे तेमणे पार विनानी रात-दिवस चिंता उठावी छे अने घणोज परिश्रम लीधो छे।

आ अंगे एमणे उठावेलां विविध कष्टोनो हुं ज्यारे ज्यारे विचार करुं छुं त्यारे त्यारे आनंद, आश्चर्य अने बहुमान पूर्वक तेमना चरणोमां मारुं मस्तक नमी पडे छे। तेमनां अपार वात्सल्य, अनंत कृपा तथा संपूर्ण सहायथीज आ ग्रन्थ हुं निश्चितरूपे तैयार करी शक्यो छुं। आ ग्रंथ तैयार करवा निमित्ते तेओश्रीए अनेक वर्षो सुधी जे परिश्रम उठाव्यो छे, जे भोग आप्यो छे, रात-दिवस जे अपार चिंताओ सेवी छे अने मने अनेक रीते जे सहाय करी छे तेनुं वर्णन शब्दो द्वारा माराथी थई शके तेमज नथी, वळी तेओ पूर्वा-वस्थाना मारा परमपूज्य **पिताश्री** छे अने अत्यारे श्रमण अवस्थामां मारा तारक **गुरुदेवश्री** छे। पिता तरीके मारा उपर एमनो अनंत उपकार छे ज, मारा जीवनने एमणे ज धर्मसंस्कारोथी वासित कर्युं छे, संसार समुद्र तरवा माटे नौका समान भागवती दीक्षा आपीने तेमज दीक्षा आप्या पछी पण घणाज परिश्रम अने काळजी पूर्वक ग्रहणशिक्षा अने आसेवना शिक्षा मने ग्रहण करावीने एमणे मारा उपर जे अनंत उपकारो कर्या छे एनुं वर्णन कोई पण रीते थई शके तेम नथी। मारो अंतरंग तथा बाह्य समग्र जीवन विकास तेमनी अमृतवर्षिणी कृपादृष्टि अने एमना आशीर्वादने ज आभारी छे। आवा अनंत उपकारी परमवत्सल परमपूज्य परमाराध्य मारा गुरुदेव तथा मारा पिताश्री पूज्यपाद श्री १००८ **भुवनविजयजी महाराजाना** अनंत उपकारोनुं वर्णन करवा माटे मारी पासे शब्दो ज नथी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तं यस्य वात्सल्यमनन्ता चोपकारिता ।
महिमानं गुरोस्तस्य को वा वर्णयितुं क्षमः ? ॥

आगामी भाग पण एमनी कृपा, सहाय अने आशीर्वादथी शीघ्र बहार पाडी शकुं एवी परमकृपालु परमात्माने हुं प्रार्थना करुं छुं ।

भगवान् श्री आदीश्वर दादाने समर्पण

आ रीते चिरकाल सुधी घणा परिश्रमे संशोधन-संपादन करीने तैयार करेला आ अनेकान्तवादना महान् जैनदार्शनिक ग्रंथने आ युगना आदिदेव **शत्रुंजयतीर्थाधिपति** परमात्मा श्री १००८ **आदीश्वर-दादाना** करकमलमां अर्पण करीने कृतार्थ थाउं छुं ।

यस्य प्रभोः प्रभावादित्थं सम्पादितो मया ग्रन्थः ।
तं श्रीसिद्धगिरीशं महयाम्येतेन कुसुमेन ॥

— निवेदक

पूज्यपादाचार्यमहाराजश्रीमद्विजय**सिद्धिसूरीश्वर**पट्टशिष्य-
पूज्यपादाचार्यमहाराजश्रीमद्विजय**मेघसूरीश्वर**शिष्य-
पूज्यपाद**गुरुदेव**मुनिराजश्री**भुवनविजया**न्तेवासी
मुनि **जम्बूविजय**

विक्रमसंवत् २०१५, मागसरवदि १०
प्रभुश्री**पार्श्वनाथ**जन्मकल्याणकदिन
झींझुवाडा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

‘न्यायागमानुसारिणी’ वृत्त्यलङ्कृतस्य सटिप्पणस्य
नयचक्रप्रथमविभागस्य विषयानुक्रमकोशः

विषयः	पृष्ठम्
१. प्रथमो विध्यरः	**१–११६**
[1]**जैनशासनस्तवः**	१–१०
[‘जत्थ आभिणिबोहियनाणं’ इति **नन्दीसूत्रस्य** वृत्तिः]	४
[**सिद्धहेमशब्दानुशासनलघुन्यासे स्याद्वाद**मन्तरेण सामानाधिकरण्यविशेषणविशेष्यभावानुपपत्तेर्विचारः]	५
विध्यादीनि भङ्गनामानि	१०–११
सामान्यपरीक्षा	११–२२
[**शिक्षासमुच्चयादौ** कक्खटशब्दार्थः]	१६
विशेषपरीक्षा	२२–२९
सामान्यविशेषपरीक्षा	२९–३३
वस्तुस्वरूपनिरूपणम्	३३–३५
सदसत्कार्यवादः	३६–४४
[**विशेषावश्यकभाष्यस्य कोट्टार्यरचितायां वृत्तौ** अन्त्यविशेषविचारः	२५
न्यायभाष्ये दशावयवोल्लेखः	३६
महाभारते त्रिवर्षपरमोषितब्रीजैर्यज्ञविधानोपदेशः	३७
‘रूपैः सप्तभिः . . . . .’ इति सांख्यकारिकावृत्तिः]	४१
लौकिकार्थे शास्त्रवैयर्थ्यम्	४४–४६
प्रत्यक्षाप्रामाण्ये दोषाः	४६–४८
सामान्यविशेषैकान्ते दोषाः	४८–५३
लोकाप्रामाण्ये दोषाः	५३–५७
दिङ्नागकल्पितं प्रत्यक्षलक्षणम्	५७–६०
बौद्धागमवर्णितं प्रत्यक्षस्वरूपम्	६१–६२
दिङ्नागकल्पितप्रत्यक्षनिरासः	६२–७८
वसुबन्धुवर्णितप्रत्यक्षे दोषाः	७८–८१
[‘रूपं द्विधा विंशतिधा. . . .’ इति अभिधर्मकोशकारिकाया **भाष्यम्**]	७८–७९
अनेकान्तवादसंश्रयापादनम्	८१–८५
[**कौटिलीये**ऽर्थशास्त्रे षाड्गुण्यस्वरूपम्]	८३
दिङ्नागकल्पितप्रत्यक्षे दोषाः	८५–१०३
[**अभिधर्म**कोशभाष्ये संवृतिसत्य-परमार्थसत्ययोः स्वरूपम्]	९२
विज्ञानवादिबौद्धमतनिरासः	१०३–१०७
[**ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्ये** बौद्धाभिमतानां प्रतिसंख्याप्रतिसंख्यानिरोधाकाशानां स्वरूपम्]	१०४
वार्षगण्यकल्पितप्रत्यक्षे दोषाः	१०७–१०९
वैशेषिककल्पितप्रत्यक्षे दोषाः	११०–११३
सर्वस्याज्ञानप्रतिबद्धत्ववर्णनम्	११३–११४
पदार्थादिनिरूपणमुपसंहारश्च	११४–११६
[**वाक्यपदीये** गोशब्दव्युत्पत्तिनिमित्तानि]	११४
२. द्वितीयो विधिविध्यरः	**११७–२४५**
विधिवादिमीमांसकमते दोषाः	११७–१२१
[अननुभूतस्याश्रुतस्य वाऽर्थस्यास्मृतौ **शाबर**भाष्ये वन्ध्यापुत्रदौहित्रस्मरणाभावो दृष्टान्तः]	११९
अग्निहोत्रं जुहुयादित्यत्र दोषाः	१२१
[वसन्तादिषु ब्राह्मणादेरग्न्याधानं होलाकादिविभागश्च]	१२१
अग्निहोत्रस्याकर्तव्यतापादनम्	१२२–१२३
हवनं कुर्यादित्यर्थे दोषाभिधानम्	१२३–१२५
अग्निहोत्रं कुर्यादित्यर्थे दोषाः	१२६–१३०
अग्निहोत्रहवनविध्यनुवादयोर्दोषाः	१३०–१३१
जुहोत्यर्थाविवक्षायां दोषाः	१३२–१३६
विध्यन्तरविधानशैल्या साधने दोषाः	१३६–१४०
[श्रौतसूत्रेषु यूपस्वरूपम्]	१३७
अग्निहोत्रस्यापूर्वार्थकत्वे दोषाः	१४०–१४२

१ नयचक्रे विद्यमानो विषयः स्पष्टप्रतिपत्त्यर्थं स्थूलाक्षरैरत्र निर्दिष्टः ॥ २ टिप्पणेषु विद्यमानो विषयो द्रागेव स्थलप्रतीतिर्भूयादिति सूक्ष्माक्षरैरत्र निर्दिष्टः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयः	पृष्ठम्
पुरुषप्रमाणकत्वापादनम्	१४२–१४४
[अग्निप्रजापतिसूर्येभ्य आज्यादिना हवनम्]	१४२
असत्कार्यवादनिराकरणम्	१४४–१४६
कर्तव्यतायाः कारणात्मकत्वेऽपि दोषाः	१४६–१४७
कारणमात्रकार्यदर्शने दोषाभिधानम्	१४८–१५०
असत्कार्यवादोक्तावप्यत्र दोषाः	१५०–१५३
प्राप्तिप्रतिपाद्यप्रसिद्धौ दोषाः	१५३–१५८
वेदस्याप्रमाणत्वापादनम्	१५८–१६०
असत्कार्यवादनिराकरणम्	१६०–१६८
असत्कार्यवादिन आक्षेपः	१६९–१७०
असत्कार्यवादिकृताक्षेपस्य निरसनम्	१७०–१७१
अथ पुरुषवादः	१७२
पुरुषप्रतिपादनम्	१७५–१७९
[दन्तनिष्पीडित-यान्त्रिकरसस्वभावः]	१७५
सर्वज्ञतासाधनम्	१७९–१८२
जाग्रत्सुप्तसुषुप्ततुरीयावस्थानिरूपणम्	१८२–१८५
[अष्टादश क्षायोपशामिका भावाः]	१८३
करणात्मनः कार्यात्मनश्च व्याख्यानम्	१८५–१८६
स्वतन्त्रस्याप्यात्मनो बन्धप्रतिपादनम्	१८६–१८७
देशकालभेदे भवनाभावदोषाभिधानम्	१८८–१८९
पुरुषस्यैवात्मादिशब्दवाच्यत्वाभिधानम्	१८९–१९१
अथ नियतिवादः	१९२
नियतिनिरूपणम्	१९३–१९६
नियतिसमर्थनम्	१९६–१९८
[पातञ्जलमहाभाष्ये प्रतिकारकं क्रियाभेदः]	१९४
नियतिबलेन सर्वभावव्यवस्थोपपादनम्	१९८–२०२
नियतौ विहितानामाक्षेपाणां निरसनम्	२०२–२०५
[पातञ्जलमहाभाष्ये छिदिक्रियास्वरूपम्	२०४
तत्त्वार्थसूत्रे धर्मास्तिकायाद्युपकारस्य संवरनिर्जरामोक्षादेश्च स्वरूपम्]	२०४
अथ कालवादः	२०५
कालवादिना नियतौ दोषाभिधानम्	२०६–२१०
कालवादिमतनिरूपणम्	२१०–२१२
[श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य धनादित्यागः	२११
केवलिसमुद्घातस्वरूपम्]	२११
वर्तनस्वतत्त्वकालनिरूपणम्	२१२–२१४
कालवादे संसारानादितोपपादनम्	२१४–२१७
तत्त्वार्थसूत्रे आश्रवनिरूपणम्	२१५
सुषमसुषमादिषु तृणनिरूपणम्	२१७
[निमित्तज्ञानस्य तथ्यातथ्यते]	२१८
अथ स्वभाववादः	२१९
स्वभाववादिना कालवादिमतदूषणम्	२२०–२२३
स्वभावोपपादनमाक्षेपाणां निरसनं च	२२३–२२५
[सतोऽर्थस्य सांख्योक्ताष्टविधानुपलब्धिः]	२२४
स्वभाववादिमतनिरूपणम्	२२५–२३०
[तनन–वितनन–पायनस्वरूपम्	२२६
स्थानाङ्गे वस्तूनां द्विप्रत्यवतारत्वम्	२२८
स्थानाङ्गे सर्वेषां जीवाजीवयोरन्तर्भावः]	२२८
अथ भाववादः	२३०
स्वभाववादिमतदूषणम्	२३१–२३३
भावनिरूपणम्	२३३–२३५
भेदनिराकरणम्	२३५–२३७
अभेदप्रतिपादनम्	२३७–२३९
भाववादिमतनिरूपणम्	२४०–२४२
['यथा विशुद्धमाकाशम्...' इत्यादिकारिकाः	२४१
भगवतीसूत्रे पृथिवीकायिकादीनामन्यत्वादि	२४१
पातञ्जलमहाभाष्येऽव्यक्ते नपुंसकत्वम्]	२४२
विधिविधिनये पदार्थनिरूपणम्	२४२–२४३
[पातञ्जलमहाभाष्ये धातूनां भूवादित्वम्]	२४४
आर्षे निबन्धनप्रदर्शनम्	२४३–२४५
३. तृतीयो विध्युभयारः	२४६–३३४
पुरुषादिवाददूषणम्	२४६–२४७
पुरुषाद्वैतवादनिरासः	२४७–२५०
पुरुषस्य सर्वगतत्वनिरासः	२५१
पुरुषस्य एकत्वान्यत्वाभ्यामवाच्यत्वनिरासः	२५१–२५३
'पुरुष एवेदं सर्वम्' इत्यत्र दोषाः	२५३–२५५
पुरुषाद्वैतनिरासः	२५५–२५८
पुरुषस्य सर्वत्वनिरासः	२५९–२६०
[न्यायप्रवेशे दृष्टान्ताभासभेदाः]	२६०
नियत्यादिवादनिरासः	२६०–२६१
सान्निध्यापत्तिभवनयोर्निरूपणम्	२६१–२६४
सांख्यमतेन सृष्टिनिरूपणम्	२६५–२६६
सांख्यमतेन प्रकृतिपुरुषनिरूपणम्	२६६–२६७
सांख्यमतखण्डनम्	२६८–२७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयः	पृष्ठम्
[पञ्चभ्यस्तन्मात्रेभ्यः सांख्यमते भूतसृष्टिः]	२६८
सांख्यमते प्रकाशप्रवृत्त्योरैक्यापादनम्	२७३–२७५
सांख्यमते प्रकाशप्रवृत्तिनियमानामैक्यापादनम्	२७६–२७७
सांख्यमते सुखदुःखमोहानामन्यत्वापादनम्	२७८–२८०
[पुद्गलानां सुरभिदुरभित्वेन परिणमनम्]	२७८
सांख्यमते प्रकाशनियमयोरभिन्नत्वापादनम्	२८१–२८६
सांख्यमते सुखदुःखमोहानामभेदापादनम्	२८६–२८७
सांख्यमते सत्त्वरजस्तमसामैक्यापादनम्	२८८–२९०
[न्यायभाष्ये विकल्पसमजातिस्वरूपम्]	२८९
सांख्यस्य असत्कार्यवादित्वापादनम्	२९०–२९३
सांख्यमते प्रकाशप्रवृत्तिनियमानामैक्यापादनम्	२९३–२९८
[भगवतीसूत्रेऽस्तित्वनास्तित्वपरिणामः	२९६
सांख्यमतेन त्रयोदशविधस्य करणस्य दशविधस्य च कार्यस्य निरूपणम्]	२९८–२९९
सांख्यमते सुखदुःखमोहानामन्यत्वनिराकरणम्	२९९–३००
सांख्यमते सुखदुःखमोहान्यत्वसाधकहेतूनां निरासः	३००–३०४
[बृहत्कल्पसूत्रनिर्युक्त्याद्यनुसारेण गुरु-लघु-गुरुलघ्वगुरुलघुद्रव्याणां निरूपणम्]	३०१
सांख्यमते सुखदुःखमोहानामैक्यापादनम्	३०४–३१२
[प्रमाणसमुच्चयादौ दिङ्नागेन प्रत्यक्षागमबलीयस्त्वाभिधानम्	३०६
पातञ्जलमहाभाष्येऽसमर्थसमासः	३०७
बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानम्]	३०८
प्रधानसाधकहेतूनामतथार्थत्वाभिधानम्	३१३
[वीतावीतहेतूनां प्रतिज्ञादीनां च पञ्चानामवयवानां वार्षगण्याभिमतं स्वरूपम्]	३१३
सांख्यमतेन वीतहेतुभिः प्रधानास्तित्वसाधनम्	३१४–३२१
सांख्यमतेन आवीतहेतुभिः प्रधानास्तित्वसाधनम्	३२१–३२३
['आवीत' पाठस्य शुद्धत्वे ग्रन्थान्तरसम्मतिः	३१४
सांख्यकारिकावृत्तिषु प्रधानास्तित्वसाधनानि	३१४
सांख्यमते रूप-प्रवृत्ति-फलानि	३१५
सांख्यमते धृति-श्रद्धा-सुखा-विविदिषा-ऽविविदिषाख्यपञ्चकर्मयोनिस्वरूपम्	३१५
सांख्यानां चतुर्दशविधा सृष्टिः	३१५
सांख्यमतेन सूक्ष्म-मातापितृज-प्रभूताख्य-त्रिविधविशेषाणां षण्णामष्टानां वा कोशानां विपर्यया-ऽशक्ति-तुष्टि-सिद्ध्याख्यस्य च प्रत्ययसर्गस्य निरूपणम्	३१५
सांख्यमतेन तारकादयोऽष्ट सिद्धयः	३१६
सांख्यमतेन आध्यात्मिकादिदुःखत्रयस्य नवविधायाश्च तुष्टेर्निरूपणम्	३१६
आध्यात्मिकतुष्टीनां विषयोपरमजन्यानां बाह्यतुष्टीनां च स्वरूपम्	३१७
अष्टाविंशतिभेदाया अशक्तेः स्वरूपम्	३१७–३१८
सांख्यमते पञ्च विपर्ययाः	३१८
भेदानां परिणामात् प्रधानस्यास्तित्वम्	३१८
महाभूतादीनां परस्परार्थकारित्वम्	३१९
शक्तितः प्रवृत्तेः प्रधानास्तित्वसिद्धिः	३१९
वैश्वरूप्यस्याविभागात् प्रधानास्तित्वम्	३२०
पातञ्जलमहाभाष्ये 'ततः' इत्यर्थे 'ते' शब्दः	३२०
सांख्यमते दश मूलिकार्थाः	३२०–३२१
सांख्यमते द्विविधः पुरुषार्थः	३२१
पुरुषवादिनामीश्वरादिवादिनां च सांख्यप्रतिपक्षत्वम्	३२१
सांख्यमते पृथिव्यादीनामाकारादयो धर्माः	३२२
सांख्याभिमतो विकारः	३२२
सांख्यदर्शनेऽष्टादशविधं लिङ्गम्]	३२२
ईश्वरवादिना सांख्यमतखण्डनम्	३२४–३२५
ईश्वरसाधनम्	३२५–३३०
[ईश्वरस्य कारणत्वे उद्द्योतकरोक्तो न्यायः]	३२८
ईश्वरवादे आक्षेपाणां निरसनम्	३३०–३३२
षडंगयोगस्वरूपवर्णनम्	३३२
[सगुणनिर्गुणध्यानयोः स्वरूपं धारणायाश्च नाभ्यादीनि स्थानानि]	३३२
विध्युभयारनयस्वरूपशब्दार्थाद्यभिधानम्	३३३
विध्युभयारनयोपनिबन्धनभूतस्यार्षवाक्यस्योपन्यासः	३३४
४. चतुर्थो विधिनियमारः	**३३५–३७५**
ईश्वरवादनिरासः	३३५–३४६
[विशेषावश्यकभाष्ये कर्मोदयादौ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-भवानां हेतुत्वम्	३३८
प्रशस्तमत्यादिभिरीश्वरसर्वज्ञत्वसाधनम्]	३४२
आदिकरस्य कर्तृत्वप्रतिपादनम्	३४६–३४७
पुरुषकर्मणोरन्योन्यादिकरत्ववर्णनम्	३४८–३५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयः	पृष्ठम्
[विशेषावश्यकभाष्ये कुचिकर्णदृष्टान्तेन वर्गणानिरूपणम्	३४८
योगशास्त्रवृत्तौ कुचिकर्णचरित्रम्	"
पञ्चसंग्रहवृत्तौ योगानुरूपं कर्मदलग्रहणं भाषानपानमनोयोग्यद्रव्यावलम्बनं च	३४९
स्थानाङ्गसूत्रवृत्तौ मनोयोगादिस्वरूपम्]	३४९
कर्मकर्मिणोरन्योन्यादिकरत्ववर्णनम्	३५०–३५२
[बृहत्कल्पभाष्येऽक्षरस्यानन्तभागस्य नित्यो-द्घाटितत्वनिरूपणम्]	३५१
कर्मकारणैकान्तवादिमतनिरूपणम्	३५२–३५७
पुरुषकारकारणैकान्तवादिमतनिरूपणम्	३५७–३५८
कर्मपुरुषकारकारणैकान्तयोः खण्डनम्	३५८–३५९
आत्मकर्मणोरैक्यप्रतिपादनम्	३६०–३६२
मत्यादिपुद्गलयोरैक्यप्रतिपादनम्	३६२–३६४
कर्मैकान्तवादनिरसनम्	३६४–३६६
आत्मपुद्गलाकाशधर्माधर्माणामैक्यवर्णनम्	३६६–३६९
[बद्ध-पुष्ट-निकाचितकर्मस्वरूपम्	३६६
हठस्य वनस्पतिविशेषत्वे सम्मतिः	३६६
तत्त्वार्थभाष्येऽपवर्तनीयानपवर्तनीय-सोपक्रमनिरुपक्रमायुर्निरूपणम्	३६८
पातञ्जलयोगदर्शनस्य व्यासभाष्ये सोपक्रम-निरुपक्रमयोरायुर्विपाककर्मणो-र्निरूपणम्]	३६८
भावस्य सर्वात्मकत्वप्रतिपादनम्	३६९–३७३
द्रव्यशब्दव्युत्पत्तिशब्दार्थादिवर्णनम्	३७३–३७५
विधिनियमनये वाक्यार्थाभिधानम्	३७५

नयचक्रप्रथमविभागस्य टिप्पणादीनामनुक्रमकोशः

मुख्यविषयसूचिः	टि० पृ०	पंक्तिः
ग्रन्थनामविचारः	१	
नयचक्रमूलविचारः	२	१–१४
नयचक्रवृत्तिनामविचारः	२	१६–२२
अनुयोगद्वारवृत्तौ नयभेदतदन्तर्भावादिविचारः	३	१–५
तत्त्वार्थभाष्ये पुद्गललक्षणविचारः	३	७–१२
विशेषावश्यकभाष्यवृत्तौ एकवस्त्वनन्तधर्मात्मकत्वविचारः	३	१२–१७
सूर्यप्रज्ञप्त्याद्यनुसारेण पुरस्कृतपश्चात्कृतशब्दार्थः	३	१९–२५
तत्त्वार्थभाष्ये स्कन्धानां संघातभेदजन्यत्वम्	३	२६–३०
महास्कन्धस्य विस्रसापरिणामजन्यत्वम्	३	३१
सन्मतिवृत्तौ एकद्रव्यस्यार्थपर्यायवचनपर्यायाः	४	६–१३
तत्त्वार्थसूत्रभाष्यादौ जीवाजीवाश्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षाणां लक्षणानि	४–५	
प्रमाणमीमांसायां प्रमाणविषयविचारः	५	८–१५
सवृत्तिके नन्दीसूत्रे द्वादशाङ्ग्याः सादिपर्यवसिततादिविचारः	५–६	
सवृत्तिके नन्दीसूत्रे तत्त्वार्थभाष्ये च ज्ञानपञ्चकस्वरूपनिरूपणम्	६–७	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख्यविषयसूचिः	टि० पृ०	पंक्तिः
प्रमाणमीमांसादौ एकान्तक्षणिकवादे प्रतिपादिता दोषाः	७	२६–३१
श्वेताश्वतरोपनिषत्–सन्मत्यादौ जगत्कारणानां काल-स्वभावादीनामुल्लेखाः	७	३४
ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्ये तत्त्वार्थराजवार्तिके चोपदर्शित एकस्मिन् पुरुषे पितृ–पुत्रत्वाद्यविरोधः	८	२–१०
तत्त्वसंग्रहपञ्जिकादौ बौद्धमतेन सन्तानस्वरूपम्	८	१६–२१
वैशेषिकसूत्राणां प्राचीनसूत्रपाठस्य चन्द्रानन्दविरचितायाः प्राचीनवृत्तेश्चावाप्तिः	८	२२–३९
"जं चोद्दस...॥ पण्णवणिज्जा...॥ अक्खरलंभेण...॥" इति गाथात्रयस्य मूलस्थानविचारः जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणविरचिता कोट्याचार्यरचिता च तद्वृत्तिः	९–१०	
"जावइया वयणपहा...॥" इति सन्मतिगाथाया व्याख्या	१०–११	
"जावन्तो वयणपहा...॥" इति विशेषावश्यकभाष्यगाथाया व्याख्या	११	५–१०
सिद्धसेन–मल्लवादि–समन्तभद्राचार्याभिप्रायेण एकान्तसाधकहेतूनां यथाक्रममसिद्धत्व-विरुद्धत्व-व्यभिचारित्वानि	११	१६–२४
न्यायबिन्दौ बौद्धमतेन प्रत्यक्षानुमानयोर्लक्षणं भेदाश्च	११	२८–३७
सामान्य-विशेषयोः परस्पराविनाभावित्वम्	१२	५–७
अङ्गबाह्याङ्गप्रविष्टश्रुतज्ञानस्य तत्त्वार्थभाष्याद्यनुसारेण विस्तरेण निरूपणम्	१२	१६–३९
'विधिनियमभङ्गवृत्ती'त्यादिगाथायाः शान्तिसूरिकृता व्याख्या, उत्पादादिसिद्धौ च तदुद्धरणम्	१३	२–१४
शुद्धपदस्य सार्थकत्वे विशेषावश्यकभाष्यस्य सम्मतिः	१३	२०–२६
बृहत्कल्पभाष्ये विधेरेकार्थिकपदानि	१३	२७–२९
छन्दोनुशासनाद्यनुसारेण आर्याछन्दसो लक्षणम्	१३	३३–३९
नयस्य लक्षणानि	१४	१–५
स्याद्वादमञ्जर्यनुसारेण व्यवहारनयाभिप्रायः	१४	७–११
व्यपदेशिवद्भावः	१४	१९–२६
प्रकृतेर्महदाद्युत्पत्तौ सांख्याचार्याणां विविधानि मतानि निर्दिश्य 'प्रकृतेर्महान्' इत्यादिसांख्यकारिकाया व्याख्या	१४–१५	
सांख्यमते तन्मात्र–बुद्धीन्द्रिय–कर्मेन्द्रियाणां स्वरूपम्	१५	१८–३५
सांख्यमते शब्दाद्युपलब्धेर्गुणपुरुषान्तरोपलब्धेश्च स्वरूपम्	१५–१६	
सांख्यमते प्रधान–पुरुषसंयोगजन्या सृष्टिः	१६	३–५
'अन्य–किं–यत्–तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्' इत्यस्य विविधव्याकरणसूत्रैस्तुलना	१६	६–१७
सिद्धहेमशब्दानुशासनबृहद्वृत्तौ द्रव्यशब्दस्य व्युत्पत्तिः	१६	२४–२९
विशेषावश्यकभाष्ये द्रव्यशब्दस्य व्युत्पत्तिः	,,	,,
पातञ्जलमहाभाष्ये द्रव्यस्य गुणसन्द्रावत्वम्	१६–१७	
विशेषावश्यकभाष्ये क्षेत्रलक्षणम्	१७	१०–११
विशेषावश्यकभाष्यादौ काललक्षणम्	२०	४–८
मेघानां गर्भाधानादिना सम्बद्धा मासा मारुताश्च	२१	५–११
तत्त्वार्थसूत्रे द्रव्यलक्षणम्	२१	१५–१६
न्यायभाष्ये शब्दादर्थे प्रत्ययस्य सामयिकत्वम्	२१–२२	
पातञ्जलमहाभाष्ये नित्यलक्षणम्	२३	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख्यविषयसूचिः	टि० पृ०	पंक्तिः
आगमादिशास्त्रेषु सद्भावासद्भावस्थापनास्वरूपम्	२४	१–९
विशेषावश्यकभाष्येऽन्त्यविशेषस्वरूपम्	२४	२०–२१
'णिययवयणिज्जसच्चा...' इति सन्मतिगाथाया वृत्तिः	२५	२५–३५
'असदकरणात्...' इति सांख्यकारिकाया वृत्तिः	२६	१–१४
स्थानाङ्गसूत्रे बीजयोनिविच्छेदकालवर्णनम्	२६	२४–२७
सांख्यदर्शने बुद्धिधर्म-प्रकृति-पुरुषे-न्द्रियवृत्त्यादिस्वरूपम्	२७	
अनुयोगद्वार–तत्त्वार्थभाष्यादौ चित्र-पुस्त-काष्ठ-लेप्यकर्मादिस्वरूपम्	२७–२८	
न्यायप्रवेशे हेतोस्त्रैरूप्यनिरूपणम्	२८	२९–३२
न्यायभाष्ये प्रतिज्ञाद्यवयवपञ्चकम्	२९	
'स्वार्थमभिधाय शब्दो...' इत्यादि पातञ्जलमहाभाष्यश्लोकव्याख्या	२९	
वाक्यपदीये पदानां वाक्यादपोद्धारप्रतिपादनम्	३०	५–१३
दिङ्नागाभिमतं प्रत्यक्षप्रमाणस्वरूपम्	३०–३१	
वार्षगण्याभिमतं प्रत्यक्षप्रमाणस्वरूपम्	३२	
अभिधर्मकोशे भाष्ये चाष्टादशधातुस्वरूपम्	३७	
मध्यमकवृत्त्यादावुक्ताश्चत्वारो हेत्वादयः प्रत्ययाः	३८	
अभिधर्मपिटकस्य विभागानां तत्प्रणेतॄणां सौत्रान्तिकशब्दार्थादेश्च निरूपणम्	३८–३९	
अभिधर्मसमुच्चये चित्तविप्रयुक्तसंस्कारा नामकायादीनां च स्वरूपम्	३९	६–१०
'गुणानां परमं रूपम् ...' इति वार्षगण्योक्तायाः कारिकाया मूलस्थानादि	४०	१–८
केशोण्डुकशब्दार्थविचारः	४०	१०–१६
'भ्रान्तिसंवृति...' इति प्रमाणसमुच्चयकारिकाया व्याख्यादि	४०	१७–३२
सिद्धसेनीयद्वात्रिंशिकाया हस्तलिखितादर्शे मुद्रितादधिकायाः कारिकाया अवाप्तिः, तत्र च तत्त्वार्थसूत्रस्य छाया	४१	१–४
अभिधर्मसमुच्चयेऽष्टादशधातुनामादि	४१	६–९
न्यायबिन्दौ बौद्धमता दृष्टान्तदोषाः	४३	२–३
'अन्यथा दाहसम्बन्धात्' इत्यस्य व्याख्यादि	४३	६–११
न्यायप्रवेशे षडनैकान्तिकप्रकाराः	४४	१३–१७
अमरकोषे बुद्धनामानि	४४	१८–१९
'विजानाति न विज्ञानम्...' इति चतुःशतककारिकाया व्याख्यादि अभिधर्मकोशभाष्ये चक्षुःश्रोत्रमनसोऽप्राप्यत्वस्य 'संघाताः कथं स्पृशन्ति' इत्यस्य च विचारः	४५	१३–३५
'षट्केन युगपद् योगात्...इति विंशतिकाविज्ञप्तिमात्रतासिद्धिकारिकायाः स्ववृत्तौ अणुषडंशतायाः पिण्डाणुमात्रकत्वस्य चापादनम्	४६	३–११
अभिधर्मसमुच्चयेऽष्टादशानां धातूनां सनिदर्शनत्व–सप्रतिघत्वादि	४६	१२–३९
'यदा तत्प्रकारव्यवच्छेदः' इत्यादेरभिधर्मकोशभाष्यस्य व्याख्या	४७	
संयुक्तनिकाये चक्षुरादि रूपादि च प्रतीत्य चक्षुरादिज्ञानोत्पत्तिः	४७	२५–२८
'भद्दं मिच्छादंसण...' इति सन्मतिगाथाया वृत्तिः	४७	३६–
स्याद्वादे विरोध–सङ्करादिदोषसंख्यादिविचारः	४८	५–११
त्रिंशिकाविज्ञप्तौ बाह्यार्थेन विना विज्ञानस्यैवार्थाकारतयोत्पत्तिसाधनम्	४८	३०–३६
अभिधर्मकोशे स्फुटार्थायां संवृतिसत्य–परमार्थसत्ये भाष्ये च	४९	५–१५
अभिधर्मकोशे प्रतिसंख्यानिरोधादयोऽनास्रवाः	४९–५०	२६–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख्यविषयसूचिः	टि० पृ०	पंक्तिः
'द्यौः क्षमा वायुः...' इति वाक्यपदीयकारिकाया वृत्त्यादि	५०	४–११
बौद्धानां त्रैधातुकं जगत्	५०	१२–१४
'अस्त्यर्थः सर्वशब्दानाम्...' इति वाक्यपदीयकारिकावृत्तिः	५१	१४–१८
'अर्थैकत्वादेकं वाक्यम्' इति मीमांसासूत्रस्य शाबरभाष्यम्	५१	२२–२६
'आया भंते नाणे...' इति भगवतीसूत्रस्य वृत्तिः	५१	३०–३९
'तित्थयरवयणसंगह...॥ दव्वट्ठियनय पगडी...॥' इत्यनयोः सन्मतिगाथयोर्वृत्तिः	५२	१–३१
एकविंशतेः पाकयज्ञ–हविर्यज्ञ–सोम–संस्थानां श्रौत–गृह्य–धर्मसूत्राणां यज्ञादेश्च विस्तरेण स्वरूपम्	५३–५४	
'वायव्यं श्वेतमालभेत...' इति तैत्तिरीयसंहितायाः सायणभाष्यम्	५४	१–१०
पातञ्जलमहाभाष्यादौ भेद-संसर्गस्वरूपम्	५४–	१२–
मीमांसाग्रन्थेषु वाक्यभेदस्वरूपम्	५५	१९–२१
'पूर्वापरीभूतं भावम्...' इति यास्कनिरुक्तस्य वृत्तिः 'संसर्गो विप्रयोगश्च...' इति वाक्यपदीयश्लोकयोर्वृत्तिः पाठस्य च विचारः	५६	
पातञ्जलमहाभाष्ये सापेक्षस्य समासः	५७	१७–२०
पातञ्जलमहाभाष्यादावपशब्दस्वरूपम्	५७	२१–२६
विशेषावश्यकभाष्यवृत्त्यादौ 'अनुवादादर...' इति कारिकाया उद्धरणम्	५८	५–६
नक्षत्रं दृष्ट्वा वाग्विसर्गस्य वेदसंहितासूल्लेखाः	५८	२०–२३
भद्रबाहुसंहिताया मुख्यविषयाः	५८	२७–३३
'पुरुष एवेदं सर्वं...' इति वेदवाक्यस्य उवट-महीधर-सायणरचितानि भाष्याणि	५९	१८–२८
शाबरभाष्ये यूपसंस्कारविचारः	५९	२९–३७
शाबरभाष्ये धर्मशब्दार्थविचारः	६०	४–९
अभिधानचिन्तामणिवृत्तौ 'काकु'शब्दार्थः	६०	३५–३७
न्यायसूत्रे वाक्छलादिस्वरूपम्	६१	४–६
'इषे त्वोर्जे त्वा...' इति यजुर्वेदीयमन्त्रस्य सायणभाष्यम्	६१	२४–२९
मुण्डकोपनिषदि परापरविद्याप्रतिपादकस्य पाठस्य शाङ्करभाष्यम्	६१	२९–३८
मीमांसकानां नियोगशब्दार्थः	६२	३–७
याज्ञवल्क्य-नारदस्मृत्योः कोशपानस्वरूपम्	६२	१२–१८
न्यायभाष्ये पुनरुक्तस्वरूपम्	६२	२४–२९
गुडश्चक्षुषे न हितः (चरकसंहितानुसारेण)	६२	३२–३३
असदुत्तरस्य जातित्वम् (न्यायसूत्रानुसारेण)	६३	१५
विशेषावश्यकभाष्यस्वोपज्ञवृत्तौ सिन्धुविषयेऽमेर्मङ्गलनाम	६३	१९–२०
अमरकोषे दुग्धस्य तद्विकाराणां च नामानि	६४	२६–२८
भगवतीसूत्रे परमाणोर्द्रव्यादित्वेन भेदाः	६५	१–२
सांख्याभिमतश्चतुर्दशविधः सर्गः	६५	६–८
तत्त्वार्थसूत्रे संज्ञिनां समनस्कत्वम्	६५	११–१४
'सुत्ता अमुणी...' इत्याचाराङ्गसूत्रवृत्तिः	६५	३४–
तत्त्वार्थभाष्येऽष्टादश क्षायोपशमिकभावाः	६६	४–७
स्थौल्यकार्श्यचिकित्साप्रधानभूतनिद्रानिरूपणम्	६६	२४–२८
तत्त्वार्थभाष्ये मिथ्यादर्शनादयो बन्धहेतवः	६६	३०–३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख्यविषयसूचिः	टि० पृ०	पंक्तिः
'एगे भवं......' इति भगवतीसूत्रवृत्तिः	६७	८–२२
'सव्वागासपएसग्गं...' इति नन्दीसूत्रवृत्तिः	६७	२३–३६
'जति पुण...' इति नन्दीसूत्रे प्राचीनपाठविचारः	६७	३७–४०
नन्दीसूत्रेण भाष्यस्य मिश्रणम्	६८	१–७
'यथोर्णनाभिः सृजते...' इति मुण्डकोपनिषदि पाठस्य शाङ्करभाष्यम्	६८	२७–३५
'तदेजति तन्नेजति...' इति शुक्लयजुर्वेदे पाठस्य उवटरचितं भाष्यम्	६९	
योगाङ्गनामानि यमनियमयोश्च भेदाः	७०	२४–२७
'कूटस्थम्, अविचालि' इत्यादिपातञ्जलमहाभाष्यपदानां व्याख्या	७१	२९–३७
चरकसंहितायां नास्तिक्यबुद्धेस्त्यागस्योपदेशः पदार्थानामप्रत्यक्षत्वे च कारणानि	७२	१९–२१
तत्त्वार्थभाष्ये कालविभागः	७२	२८–३१
न्यायमुखादिषु साभाससाधनदूषणोल्लेखः	७३	३–९
दिङ्नागमतेन पक्ष–परार्थानुमानादिस्वरूपम्	७३	१०–३२
दिङ्नागमतेन स्वपरार्थानुमानहेतु–तदाभासादि	७४	
दिङ्नागमतेन दृष्टान्त–तदाभासादिस्वरूपम्	७५	१–१०
दिङ्नागमतेन दूषण–तदाभासादि	७५	११–२०
'अनादिनिधनं ब्रह्म...' इति वाक्यपदीयकारिकाया व्याख्यादि	७५–७६	२१–
ब्रह्मणः प्रदेशोऽपि सार्वरूप्यमनतिक्रान्तः	७७	१३–१७
दक्षिणोत्तरमथुरयोर्विचारः	७७	२२–२४
वार्षगण्यप्रणीतमनुमानलक्षणं भाष्यटीकोपेतम्	७७–७८	२६–
'यथा विशुद्धम्...' इत्यादिकारिकाचतुष्टयम्	७८	३०–३५
वाक्यपदीयेऽविद्याया विद्योपायत्वम्	७९	२–५
बौद्धमते शब्दानां विकल्पयोनित्वम्	७९	९–१०
'कमलदलविपुलनयना...' गाथाविचारः	७९	२५–२७
भगवतीसूत्रे पृथिवीकायिकादीनामन्धत्वादि	७९	३१–३३
'यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित्...' इति श्वेताश्वतरोपनिषत्पाठस्य शाङ्करभाष्यम्	८०	५–७
सिद्धसेनीयद्वात्रिंशिकायां पञ्चानामनिवृत्तकेवलत्वोक्तेस्तात्पर्यम्	८०	१०–११
'माउओयं पिउसुक्कं...' इत्यस्य तन्दुलवैचारिकसूत्रस्य वृत्त्यादि	८०	२५–३६
माठरवृत्तौ सांख्यमतेन पुरुषस्य सन्निधिसत्ता	८१	१–२
श्वेताश्वतरे 'अजामेकाम्...' इत्यस्य शाङ्करभाष्यम्	८१	२६–२९
श्वेताश्वतरे 'द्वा सुपर्णा...' इत्यस्य शाङ्करभाष्यम्	८१	२९–३७
'संघातपरार्थत्वात्...' इति सांख्यकारिकाया वृत्तिः	८२	२५–३२
भगवतीसूत्रेऽस्तित्वनास्तित्वयोः परिणामः	८२	३३–३८
'सत्त्वं लघु प्रकाशकम्...' इति सांख्यकारिकाया वृत्तिः	८३	२१–३८
बौद्धमतेन विरुद्धाव्यभिचारिनिरूपणं न्यायप्रवेशादौ	८४	११–३८
प्रमाणसमुच्चयटीकायां विरुद्धाव्यभिचारिणः संशयहेतुत्वाद् निश्चयोपायः	८५	१–७
विरुद्धाव्यभिचारे संशयोत्पत्तिः (प्रमाणसमुच्चये)	८५	११–३८
बौद्धमते पक्षदोषौ धर्मधर्मिस्वरूपविरोधौ	८६	५–६
न्यायप्रवेशकवृत्तौ तद्गुणसंविज्ञानस्यार्थः	८६	१०–१३
न्यायप्रवेशके विरुद्धस्य चतुःप्रकारत्वम्	८६	२०–२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख्यविषयसूचिः	टि० पृ०	पंक्तिः
प्रवचनसारोद्धारवृत्तौ द्विकादिसांयोगिकभङ्गसङ्ख्यानयनोपायः	८७	
महादेवस्याष्टौ मूर्तयः	८९	१-२
अविद्धकर्णोद्द्योतकराभ्यामुक्तानि ईश्वरसाधने प्रमाणानि	८९	५-१३
न्यायभाष्यादौ ईश्वरस्य कारणत्वे हेतवः	८९	२५-३६
'सायोज्य'शब्दाङ्गीकारे कारणम्	९०	१-२
श्वेताश्वतरे 'एको वशी...' इत्यस्य शाङ्करभाष्यम्	९०	३१-३५
न्यायभाष्ये पूर्ववदाद्यनुमानस्वरूपम्	९०	३६-४०
'जोगेहिं तयणुरूवं...' इति कर्मप्रकृतिगाथावृत्तिः	९१	२९-३९
समयसारे जीवकर्मणोरन्योन्यनिमित्तेन परिणामः	९२	५-१२
तत्त्वार्थसूत्रवृत्तौ स्कन्धानां कर्मतया परिणमनादौ दृष्टान्ताः	९२	२८-३२
हडस्य वनस्पतिविशेषस्य स्वरूपम्	९३	३१-३२
प्राचीनेषु धातुपाठेषु 'अव' धातोरेकोनविंशतिरर्थाः	९४	१८-२०
मार्गो नेमिरित्यर्थे विचारः	९४	२७-३०
'जे एगं णामे...' इत्याद्याचाराङ्गसूत्रस्य वृत्तिः	९४	३४-३७
भोटपरिशिष्टम्	९५-१४०	
दिङ्नागरचिताः प्रमाणसमुच्चयादयो ग्रन्थाः	९५	
प्रमाणसमुच्चयादिभोटभाषानुवादस्वरूपम्	९६	
दिङ्नागविरचितः प्रमाणसमुच्चयः (स्ववृत्ति-टीका-भोटभाषानुवादसहितः)	९७-१३४	
तत्र प्रथमस्य प्रत्यक्षपरिच्छेदस्य १९ कारिकाः	९७-१२१	
द्वितीयस्य स्वार्थानुमानपरिच्छेदस्य कतिपयोंऽशः	१२१-१२३	
तृतीयस्य परार्थानुमानपरिच्छेदस्य कतिपयोंऽशः	१२३-१३२	
चतुर्थस्य दृष्टान्तपरिच्छेदस्य कतिपयोंऽशः	१३२-१३४	
'वर्णो गन्धो रसः...' इति कारिका	१३४	
'गुणानां परमं रूपम्...' इति वार्षगण्योक्तश्लोकस्य टीका-भोटभाषानुवादादि	१३४	
चतुःशतकभोटभाषानुवादपरिचयः	१३४-१३५	
आलम्बनपरीक्षाया वृत्तिसहितायाः कतिपयोंऽशो भोटभाषानुवादस्य च परिचयः	१३५	
हस्तवालप्रकरणस्य कर्तुस्तस्य भोटभाषाद्यनुवादानां च विचारः	१३६	
भोटभाषानुवादाद्यनुसारेण सङ्कलितो वार्षगणतन्त्रे क्रियमाणोऽनुमानद्वैविध्यविषयकः पाठः	१३७	
वार्षगणाभिमतयोर्वीतावीतहेत्वोः प्रमाणसमुच्चयवृत्त्यादौ स्वरूपम्	१३८	
वार्षगणाभिमतस्य प्रधानास्तित्वसाधकपाठस्य भोटभाषानुवादाद्यनुसारेण संकलना	१३८-१३९	
वार्षगणतन्त्रस्य केषाञ्चिद् वाक्यानां भोटभाषानुवादाद्यनुसारेण संकलना	१४०	
वैशेषिकसूत्रसम्बन्धिपरिशिष्टम्	१४१	
य० प्रतिपाठपरिशिष्टम्	१४२-१४६	
नयचक्रे वृत्तौ वा चतुर्थेरेखोल्लिखितानां वाद-वादि-ग्रन्थ-ग्रन्थकृन्नाम्नां सूचिः	१४७-१४८	
सम्पादनोपयुक्तग्रन्थसूचिः संकेतादिविवरणं च	१४९-१५७	
चन्द्रानन्दरचितवृत्तियुतस्य वैशेषिकसूत्रस्य अध्यायक्रमेण O. पुस्तके शुद्धपाठाः	१५८-१६१	
नयचक्रप्रथमविभागस्य शुद्धिपत्रकम्	१६२-१६६	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

॥ णमो त्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

॥ नमः श्रीअन्तरिक्षपार्श्वनाथाय ॥

तार्किकचक्रचक्रवर्ति-प्रवचनप्रभावकाचार्यभगवच्छ्री-

मल्लवादिक्षमाश्रमणप्रणीतं

श्रीमत्सिंहसूरिगणिवादिक्षमाश्रमणसन्दृब्धया न्यायागमानुसारिण्या

नयचक्रवालवृत्त्या समलङ्कृतं द्वादशारं

नयचक्रम् ।

(टीकान्तर्गतप्रतीकाद्यनुसारेण सङ्कलितम्)

[प्रथमो विध्यरः]

मूलम्

व्याप्यैकस्थमनन्तमन्तवदपि न्यस्तं धियां पाटवे
व्यामोहे न, जगत्प्रतानविसृतिव्यत्यासधीरास्पदम् ।
वाचां भागमतीत्य वाग्विनियतं गम्यं न गम्यं क्वचि-
ज्जैनं शासनमूर्जितं जयति तद् द्रव्यार्थ-पर्यायतः ॥

न्यायागमानुसारिणी नयचक्रवालवृत्तिः

॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥ ऐँ नमः ॥

जयति नयचक्रनिर्जितनिःशेषविपक्षचक्रविक्रान्तः ।
श्रीमल्लवादिसूरिर्जिनवचननभस्तलविवस्वान् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्प्रणीतमहार्थयथार्थ**नयचक्रा**ख्यशास्त्रविवरणमिदमनुव्याख्यास्यामः[1] । स भगवानैदंयुगीनोपपत्तिरुचिभव्यजनानुग्रहार्थमर्हत्प्रवचनानुसारि **नयचक्र**शास्त्रमारिप्सुर्[2]मङ्गलार्थं शासनस्तवं वक्ष्यमाणवस्तू[3]पसंहारार्थमाद्यं वृत्तमाह—[4]**व्याप्येकस्थमि**त्यादि । [5]व्याप्नोतीति व्याप्तुं शीलमस्येति वा व्यापि, औणादिकस्ताच्छीलिको वा[6] । किं व्याप्यम्? अविशेषितत्वात् सर्वं परमाण्वादि वस्तु । तत् कथं जैनेन शासनेन व्याप्यत इति चेत्, **द्रव्यार्थादेशात्** । तद्यथा—एकपरमाणुर्वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शपरिणामैः सप्रभेदैः स्वाभाविकैः पुरस्कृतैः पश्चात्कृतैश्च द्व्यणुकादिभिः सांयोगिकैर्महास्कन्धपर्यन्तैर्वैस्रसिकैः[7] प्रायोगिकैश्च कार्मणशरीरादिभिरभिसम्बध्यते । यथोक्तम्—

एक्कदवियम्मि[8] जे अत्थपज्जया वयणपज्जया वा वि ।
तीताणागतभूता तावइअं[9] तं हवइ दव्वं ॥ [सन्मति० १।३१]

तथा गति-स्थित्यवगाह-वर्तनालक्षणैर्धर्माधर्माकाशकालैरापेक्षिकैः जीवानामपि स्वाभाविकपारभाविकैरुपयोग-शरीरादिभिः । अतस्तस्य तस्य वस्तुनो द्रव्यार्थादिष्टस्य तेषु तेषु [10]परिणामेषु अव्यावृत्तस्वरूपत्वात् तेषां च तथा तदभेदात् सर्वेषां द्रव्य[11]-पर्यायाणां परस्परतश्च सदविशेषात् तादात्म्यम् । अतस्तत् तद् व्याप्नोतीति 'व्यापि' इत्युच्यते ।

टिप्पणम्

सिद्धचक्रं नमस्कृत्य हृदये प्रणिधाय च ।
नयचक्रमहाशास्त्रे टिप्पणं क्रियते मया ॥

१ भगवन्तः श्री**मल्लवादि**क्षमाश्रमणपूज्यपादाः **'विधि-नियमभङ्गवृत्ती'**त्यादिवक्ष्यमाणैककारिकामात्रं मूलभूतमतिसङ्क्षिप्तार्थं गाथा**सूत्रं** व्याचिख्यासवः सर्वमिदं **भाष्या**त्मकं विवरणं विरचयामासुः । अस्यापि च विवरणस्यातिगम्भीरस्य बोधागाधस्य महासमुद्रभूतस्य दुरवगाहत्वात् तदुत्तितीर्षूणामुपकारार्थं श्री**सिंहसूरि**गणिवादिक्षमाश्रमणपूज्या नौयानभूतां **न्यायागमानुसारिणीं** टीकां प्रणीतवन्तः । एवं च श्री**मल्लवादि**क्षमाश्रमणविरचितभाष्यात्मकविवरणस्य अनुव्याख्यानरूपत्वादस्य टीकाग्रन्थस्य 'अनुव्याख्यास्यामः' इत्यभिहितं टीकाकृद्भिः । अनु पश्चादर्थे, भगवान् **मल्लवादी** व्याख्यास्यति, अयं च टीकाकृदनुव्याख्यास्यति इति भावः ॥ २ "अत्र लोपोऽभ्यासस्य" [पा० ७।४।५८] इति सूत्रेण 'आरिप्सुः' इति सिद्धम् ॥ ३ 'अनेकान्त एव परमार्थः, तत्प्रतिपादकत्वाच्च जैनमेव शासनं सत्यम्' इति वक्ष्यमाणं वस्तु ॥ ४ **व्याप्येहस्थितमि**° य० । **व्याप्येतस्थमि**° भा० ॥ ५ **व्याप्नोति व्याप्तुं शील**° य० । **व्याप्नोतीति व्याप्तिः शील**° भा० ॥ ६ व्याप्तुं शीलमस्येति ताच्छील्ये योगे "सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये" [पा० ३।२।७८] इति सूत्रेण 'व्यापि' इति सिध्यति । अयोगे तु ताच्छील्ये औणादिकं रूपम् ॥ ७ °**श्रसिकैः** प्र० ॥ ८ °**दविअम्मि** भा० ॥ ९ °**गयभूता तावइयं होइ तं दव्वं** भा० ॥ १० **परिमाणेषु** भा० लीं० विना ॥ ११ **द्रव्यापर्या**° डे० ¹० । **द्रव्यानापर्या**° पा० ॥

एवं च स[1]ति अतिसम्मुग्धत्वाद् वस्तुनस्तद्विषययोरभिधान-प्रत्यययोर्व्यवहा[2]र-विनिश्चयफलयोरभा- २-१
वादिदोषाः स्युः। मा भूवन्निति पर्यायादेश आश्रीयते–एकस्थमिति, प्रत्येकपरिसमाप्तेरसाधारणधर्माणां भावानामसङ्कीर्णरूपत्वेन स्ववृत्तिप्रतिलम्भात्, न हि कश्चित् कञ्चिदपेक्ष्य भवितुमर्हति भाव इत्येकमेकमेव वस्तु। तदर्पणात् '[3]एकस्थम्' इति चोच्यते शासनम्, [4]तस्य तस्य पृथक् पृथगर्पणात् स्व-पररूपतः। समग्रादेश[5]वशाद् व्यापीति व्यापि च एकस्थं चैकमेव तत्। एवमुत्तरेष्वपि।

अनन्तमन्तवदपि, द्रव्य क्षेत्र-काल-भावादेशैरविशेषितत्वाद् विशेषितत्वाच्च। यथोक्तम्–

एयं दुवालसंगं गणिपिडगं दव्वतो [6]एगं पुरिसं पडुच्च सादियं सपज्जवसियं, अणेगे पुरिसे पडुच्च अणादियं अपज्जवसियं[7]। खेत्ततो भरतेरवते पडुच्च सादियं सपज्जवसियं, महाविदेहे पडुच्च अणादियं अपज्जवसियं। [8]कालओ उस्स[9]प्पिणि-अवसप्पिणीओ पडुच्च सादियं सपज्जवसियं, णोउस्स[10]प्पिणि-अवसप्पिणीओ पडुच्च अणादियं अपज्जवसियं। [भावओ] जे जदा जिणपण्णत्ता भावा इत्यादिना **सादियं सपज्जवसितमेव** [नन्दिसू० ४२]।

अथवा नास्मिन्नन्तोऽस्तीति अनन्तम्, अन्तोऽस्तीति अन्तवत्। कस्य? अविशेषितत्वात् सर्वस्य। तद्यथोक्तम्–

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी किं सासया असास[11]ता? गोतमा! सिया सासया सि[12]या असासया? से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–सिया सासया सिया असासय[13]त्ति? [14]गोतमा! दव्वट्ठताए सासता, वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं संठाणपज्जवेहिं असास[15]ता [जीवाभि० सू० ३।१।७८] इत्यादि। २-२

न्यस्तं धियां पाटवे[16]। न्यस्तं निक्षिप्तं धियामाभिनिबोधिकभेदानां पटुतायां कर्तव्यायां कारणत्वेनेत्यर्थः। यथोक्तम्– जत्थाभिनिबोहि[17]अनाणं तत्थ [18]सुअनाणं। जत्थ सुअनाणं तत्थाभि-

१ सत्यपितिसन्मुग्ध° भा० ॥ २ °रनिश्चय° भा० ॥ ३ एवात्मस्थम् य० ॥ ४ तस्य तस्य तस्य पृथक् भा०। तस्य पृथक् य० ॥ ५ °वशाद् व्यापि चैकमेव तत् भा०। अत्र 'समग्रादेशवशाद् व्यापि चैकस्थं चैकमेव तत्' इति पाठः साधुरिति प्रतीयते। द्रव्यार्थादेशाद् व्यापि, पर्यायार्थादेशादेकस्थम्, समग्रादेशवशात्—द्रव्यार्थ-पर्यायार्थोभयादेशवशात् तद् 'व्यापि च एकस्थं च' इत्यभिप्रायः ॥ ६ एकं भा० ॥ ७ °अं य०। एवमग्रेऽपि य०प्रतिषु °यं इत्यस्य स्थाने °अं इति पाठोऽवसेयः ॥ ८ कालउ उसप्पिउसप्पिणीउ भा० ॥ ९ °सप्पि° प्र०। एवमग्रेऽपि ॥ १० °सप्पिणि–णुसप्पि° भा० ॥ ११ भा० विनाऽन्यत्र —°सया गोयमा सिअ वि०। °सया गो सिय पा० डे० लीं० रं० ही० ॥ १२ सिअ य०। एवमग्रेऽपि ॥ १३ °यत्ति य० ॥ १४ गो दव्वट्ठयाए सासया य० ॥ १५ °सया य० ॥ १६ 'पाटवे' इत्यत्र निमित्तसप्तमी, तेन धियां पाटवस्य हेतुरिति भावः। एवं 'व्यामोहे न' इत्यस्याऽपि वक्ष्यमाणमूलग्रन्थस्य 'न व्यामोहहेतुः' इत्यर्थः ॥ १७ °णिबोधियणाणं भा०। एवमग्रेऽपि ॥ १८ सुतणाणं भा०। एवमग्रेऽपि ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निबोहिअनाणं [नंन्दिसू० २४] [2]ति । [3]श्रुतज्ञानसंस्कृतधियां 'नित्य एव, अनित्य एव, अवक्तव्य एव' इत्येवमाद्येकान्तवादिग्राहेषु घटादेः कुम्भकारादिचेतनदानाद्यभावप्रसङ्गान्न नित्य एव, चिकीर्षा-स्मरण-प्रत्यभिज्ञान-संरक्षणाद्यभावप्रसङ्गान्नानित्य एव, स्वरूपानवधारणे वाग्व्यवहारोच्छित्तिप्रसङ्गात् 'अवक्तव्यः' इति वक्तव्यत्वावक्तव्यत्वयोः स्ववचनविरोधान्नावक्तव्य इत्येवमादिदोषप्रदर्शनेन, स्यान्नित्यः, स्यादनित्यः, स्यादवक्तव्यः' इत्यनेकान्ताभ्युपगमाद् यथाप्रमाणं धर्म-धर्मिव्यवस्थानात् तद्दोषपरिहारेण वस्तुस्वरूपोपपादनेन परमतनिषेधानुज्ञानाभ्यां प्रवादिनां परस्परविरोधनिरोधैकवाक्योपानयनाद् मध्यस्थसाक्षिवत् प्रमाणीभूतम्, तेषामपि तत्त्वावबोधपाटवाधानसमर्थत्वात् ।

स्यान्मतम्—[4]नन्वत एव स्थाणु-पुरुषादिविषयसंशय-विपर्ययवद् नित्यानित्याद्येकान्तविकल्पात्मकत्वाद् **व्यामोहहेतुरपि**, काल-नियति-स्वभाव-पुरुष-[5]दैवेश्वर-यदृच्छाद्येकान्तकारणविकल्पजगत्प्र[6]तानविसृतिदर्शनादिति । अत्रोच्यते—न[7]; **व्यत्यासधीरास्पदत्वात्** । एकपुरुषपितृ-पुत्रत्वादिवज्जैनं हि **शासनं** कालादिजगत्प्रभेदैकान्तगतीर्व्यत्यस्य व्यावर्त्य परस्परविरोधनिवारणेन अनेकान्तात्मकप्रतिष्ठानसमाधान-
३-१ कारणमेकान्तानेकवादसमाहारात्मकैकप्रतिपत्तिकं परमतनिषेधानुमोदनाभ्यामेव । न काल एव, न नियतिरेव, एककारणवादिनां कारणसत्त्ववत् कार्यसत्त्वेऽनैकान्तिकत्वात्, कारणस्यापि कार्यवत्त्वेऽनवस्थादोषादनेककारणत्वप्रसङ्गादनेककारणत्वस्य सिद्धेः, अनेककारणत्वेऽपि सदाद्यविशेषादनन्वयस्वाभावादित्यादिदोषात् 'कालोऽपि, नियतिरपि' इत्यादि, एकान्ते दोषदर्शनादनेकान्ते [9]चादोषप्रदर्शनाद् लौकिकवादसंवादि । यथोक्तम्—

क्वचिन्नियतिपक्षपातगुरु गम्यते ते वचः
स्वभावनियताः प्रजाः समयतन्त्रवृत्ताः क्वचित् ।
स्वयङ्कृतभुजः क्वचित् परकृतोपभोगाः पुन-
[8]र्न वा विशदवाद ! दोषमलिनोऽस्यहो विस्मयः ॥ [सिद्ध० द्वा० ३।८] इति ।

तदेवंविधं शासनमूर्जितम्, स्वातन्त्र्यात् परमतोप[10]जीवनवैक्लव्यरहितत्वात् परैराघ्रातस्य [11]सुसिद्धान्ता(न्तस्या)त्यागात् कल्पनान्तराश्रयणाभावादनाकुलत्वाच्च । जेतृत्वाद्वा ऊर्जितम् । अनन्तरोक्तैर्हेतुभि**र्जयति**, परस्परानुवर्तिनयोत्साहबलसम्पदुपेतत्वाद्वा जयत्येव, उदितपुण्यनयोपेतचक्रवर्तिशासनवत् ।

---

१ अत्र 'जत्थ आभिणिबोहियणाणं तत्थ सुयणाणं । जत्थ सुयणाणं तत्थाभिणिबोहियणाणं । दोऽवि एयाइं अण्णमण्णमणुगयाइं"—इति **नन्दिसूत्रे** पाठः । अस्य व्याख्या—"जत्थेत्यादि । यत्र पुरुषे आभिनिबोधिकज्ञानं तत्रैव श्रुतज्ञानमपि । तथा यत्र श्रुतज्ञानं तत्रैवाभिनिबोधिकज्ञानम् । आह—यत्राभिनिबोधिकज्ञानं तत्र श्रुतज्ञानमित्युक्ते यत्र श्रुतज्ञानं तत्राभिनिबोधिकज्ञानमिति गम्यत एव, ततः किमनेनोक्तेन ? इति; उच्यते—नियमतो न गम्यते, ततो नियमावधारणार्थमेतदुच्यत इत्यदोषः । नियमावधारणमेव स्पष्टयति—द्वे अप्येते आभिनिबोधिक-श्रुते अन्योन्यानुगते परस्परप्रतिबद्धे ।"—**नन्दिसूत्रमलय० वृ०** ॥ २ "इतेः स्वरात् तश्च द्विः" [प्रा० व्या० १।४२] इति सूत्रेण 'इति'शब्दस्य आदेरिकारस्य लुक् ॥ ३ 'श्रुतज्ञानसंस्कृतधियाम्' इत्यस्य वक्ष्यमाणेन 'प्रवादिनाम्' इत्यनेन सम्बन्धः प्रतिभाति ॥ ४ **नत्वत** य० ॥ ५ **दैवथेरयद**° य० ॥ ६ °**तारवि**° य० ॥ ७ र **व्यत्या**° य० ॥ ८ °**णत्वे** य० ॥ ९ °**र्न चाददोष** भा० ॥ १० °**जीविनवै**° य० ॥ ११ **सुसिद्धतात्यागात्** भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्तु सर्वथा योगिनां **गम्यम्**, सर्वनयप्रपञ्चसंस्कृतधिया[1]मननुविषयप्रज्ञत्वात् तेषाम्। अस्मदादिभिरेकदेशमाहात्म्यदर्शनाच्छेषमाहात्म्यमनुमानेन गम्यते। **न गम्यं क्वचिदिति**, यथैकदेशागम्य[2]त्वेऽनभिभवनीयत्वेऽपि अन्यत्र गम्यता [3]विषयखण्डपतेस्तथा मा भूदिति न गम्यं क्वचित्। अथवा गमनीयं **गम्यं** प्रतिपादनीयम्। न **गम्यं** प्रतिपादनीयम्, लोकप्रसिद्धव्यवहारानुपातिस्याद्वादपरिग्रहस्फुटपदार्थत्वादेकदेशगतेः शेषसुगमत्वात्। अयोग्यपुरुषापेक्षया वा न गमयितव्यम्, यथा— ३-२

स्थूलमतये न वाच्याः सूक्ष्मा अर्थाः स तानगृह्णानः।
व्याकुलितम[4]ना मिथ्यात्वं वा गच्छेदपरिणामात्॥ [ ]

अथवा प्रागसमीक्ष्योक्तार्थसमीकरणार्थं कल्पनान्तरैर्न गमनीयं क्वचित्। यथा **बौद्धे**[5] 'सर्वं क्षणिकम्' इति प्रतिज्ञाय स्मृत्यभिज्ञान-बन्ध-मोक्षा[6]द्यभावदोषपरिहारा[7]र्थं सन्तानकल्पना। प्रधाननित्यतां[8] प्रतिज्ञाय परिणामकल्पना व्यक्तात्मना **कापिले**। **क्रिया[9]वद् गुणवत् समवायिकारणम्** [वै० सू० १।१।१५] इति सामान्यद्रव्यलक्षणं प्रतिज्ञाय एकान्तनित्यानित्यवादे[10] च तदव्याप्तिपरिहारार्थम् 'अद्रव्यमनेकद्रव्यं च द्विविधं द्रव्यम्' इति 'द्रव्यत्वं च सामान्य-विशेषाख्यं तत्त्वम्' इति द्रव्य-पर्यायनयद्वयाश्रयणेन पदार्थप्रणयनं **काणभुजे**। तथा **'द्रव्य-गुण-कर्माणि नाना'** इति **प्रतिज्ञाय** तदत्यन्तभेदे नीलोत्पलादि-सद्द्रव्यादि[11]सामानाधिकरण्य-[विशेषण]विशेष्यत्वादिव्यवहाराभावदोषभयात्

---

१ °**मतनु**° वि०। 'विषयानुगामिनी प्रज्ञा अनुविषयप्रज्ञा, योगिनस्तु अननुविषयप्रज्ञाः। ते हि न एकदेशमाहात्म्यदर्शनाच्छेषमाहात्म्यमनुमानेन अवगच्छन्ति' इति **'अननुविषयप्रज्ञत्वात्'** इति पाठस्य आशयः प्रतिभाति। अथवा **'अननुमानविषयप्रज्ञत्वात्'** इत्यपि पाठोऽत्र स्यादिति सम्भाव्यते॥ २ °**त्वेनाभि**° पा०। °**त्वेनामे**° वि०॥ ३ **विषयखण्डयतेस्तथा** प्र०। अत्र **विषयो** देशः इत्यर्थः॥ ४ °**मन्य मिथ्या**° विसं० विना॥ ५ **बौद्धेः** भा० विसं०। **बौद्धौ** मा० विसं० विना। अत्र पूर्वापरसन्दर्भानुसारेण **'बौद्धे'** इत्येव पाठः समुचितः टीकाकृदभिप्रेतश्चेति भाति॥ ६ °**क्षाभाव**° य०॥ ७ °**रार्थसंता**° प्र०॥ ८ °**त्मता** भा०। "हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्। सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥ १०॥"—**साङ्ख्यका०**॥ ९ "क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्"—इति **वैशेषिकसूत्रे** पाठः॥ १० वि० विनाऽन्यत्र—°**वादं च** भा० पा०। °**वाद च** डे० लीं० ही०॥ ११ "तथा तम् [=स्याद्वादम्]अन्तरेण सामानाधिकरण्यं विशेषण-विशेष्यभावोऽपि नोपपद्यते। तथा हि भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तयोः शब्दयोरेकत्रार्थे वृत्तिः सामानाधिकरण्यम्। तयोश्चात्यन्तभेदे घट-पटयोरिव नैकत्र वृत्तिः। नाप्यत्यन्ताभेदे, भेदनिबन्धनत्वादस्य, न हि भवति—नीलं नीलमिति। किञ्च नीलशब्दादेव तदर्थप्रतिपत्तौ उत्पलशब्दानर्थक्यप्रसङ्गः। तथैकं वस्तु सदेवेति नियम्यमाने विशेषण-विशेष्यभावाभावः। विशेषणं विशेष्यात् कथञ्चिदर्थान्तरभूतमवगन्तव्यम्। अस्तित्वं चेह विशेषणं, तस्य विशेष्यं वस्तु तदेव वा स्यादन्यदेव वा? न तावत् तदेव, न हि तदेव तस्य विशेषणं(ष्यं) भवितुमर्हति। असति च विशेष्ये विशेषणत्वमपि न स्यात्, विशेष्यं विशिष्यते येन तद् विशेषणमिति व्युत्पत्तेः। अथ अन्यत्, तर्हि अन्यत्वाविशेषात् सर्वं सर्वस्य विशेषणं स्यात्। अतो नासावत्यन्तं भेदेऽभेदे वा सम्भवतीति भेदाभेदलक्षणः स्याद्वादोऽकामेनाप्यभ्युपगन्तव्य इति।"—**सिद्धहेम० लघुन्यासे** पृ० २-१॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

शेषशासनन्यग्भावेनैव जेष्यति तद् यदेवम्विधम्। एवम्विधतैव तु प्रतिपादनीया। किमेव प्रतिपाद्यमस्ति? द्रव्यार्थ-पर्यायार्थद्वित्वाद्यनन्तान्तविकल्पो-

---

तत्सिद्ध्यर्थं सदिति[1] यतो द्रव्य-गुण-कर्मसु द्रव्य-गुण-कर्मभ्योऽर्थान्तरं सा सत्ता [वै० सू० १।२।७-८] इत्याश्रितपदार्थव्याजेन द्रव्यार्थ-पर्यायार्थाश्रयणं सङ्करदोषपरिहारार्थं च सामान्यस्यान्त्यविशेषस्य च परिकल्पनेति ।

वाचां भागमतीत्य वाग्विनियतमिति, प्रज्ञापनीयेष्वेव भावेषु अनन्तासङ्ख्येयसङ्ख्येयभाग-गुणहानिवृद्धिभ्यां क्षयोपशमविशेषापेक्षया मतिविशेषाभ्युपगमाच्चतुर्दशपूर्वधराणामेव परस्परतः, अद्यतनपुरुषेन्द्रियशक्त्युत्कर्षापकर्षवत् । उक्तं च —

[2]जं [3]चोद्दसपुव्वधरा छट्ठाणगया [4]परोप्परं होंति ।
[5]तेण तु अणंतभागो [6]पण्णवणिज्जाण जं सुत्तं ॥
४–१ पण्णवणिज्जा भावा अणंतभागो [7]उ अणभिलप्पाणं ।
पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो [8]सुअणिबद्धो ॥
अक्खरलंभेण समा ऊण[9]हिया होंति [10]मइविसेसेहिं ।
ते वि [11]य [12]मईविसेसे [13]सुअणाणब्भंतरे जाण ॥ [विशेषाव० भा० ६३, ६२, ६४]

शेषशासन[14]न्यग्भावेनैवेत्यादि । परवादतिरस्करणेन जेष्यत्येव तदवश्यम्, स्तुतिद्वारेण भवता तत्सामर्थ्याङ्गीकरणात्, नूनमेतत् प्रतिपादयिष्यति [15]भवान्—न तदनुरोधेनैव कस्यचिदिति। किं तत् कस्यचित् प्रसादेन जयति? विवदमानस्य गले पादं कृत्वा जयतीत्यभिप्रायः। यदेवम्विधमिति, यद् योगिनामेव सर्वथा गम्यम्, न गम्यं क्वचिदप्यन्येषाम्, वाचां भागमतीत्य वाग्विनियतम्, व्याप्येकस्थ-मनन्तमनन्तवदपि, न्यस्तं धियां पाटवे, व्यामोहे [न], जगत्प्रतानविस्तृतिव्यत्यासधीरास्पदं

---

१ "सदिति यतो द्रव्य-गुण-कर्मसु सा सत्ता । द्रव्य-गुण-कर्मभ्योऽर्थान्तरं सत्ता"-इति **वैशेषिकसूत्रे** पाठः । **"सदिति यतो द्रव्य-गुण-कर्मसु सा सत्ता।** इतिकारेण प्रत्यय-व्यवहारयोः प्रकारमुपदिशति । तथा च द्रव्यादिषु त्रिषु 'सत् सत्' इतिप्रकारको यतः प्रत्ययः 'सदिदं सदिदम्' इत्याकारकः शब्दप्रयोगो वा यदधीनः सा सत्ता ॥ ननु द्रव्य-गुण-कर्मभ्यः पृथग्भावेन सत्ता नानुभूयतेऽतो द्रव्याद्यन्यतमदेव सत्ता...इत्यत आह-**द्रव्य-गुण-कर्मभ्योऽर्थान्तरं सत्ता** । द्रव्यादयोऽननुगताः, सत्ता चानुगता । तथा च अनुगतत्वाननुगतत्वलक्षणविरुद्धधर्माध्यासेन तेभ्यो भेदस्य सिद्धत्वात् ।"-**वैशे० सू० उप० पृ०** ४० ॥ २ **समिति°** य० ॥ ३ **चउद्दस°** य० ॥ ४ **परुप्परं** य० ॥ ५ **तेणं अणंत°** य० । **तेणं तु अणंत°** भा० । "तेण उ अणंत°" -**विशेषाव० भा०** ॥ ६ **पन्न°** य० । एवमग्रेऽपि ॥ ७ **तु** भा० ॥ ८ **सुत°** भा०। "सुय°"-**विशेषाव० भा०** ॥ ९ **°हिआ हुंति** य० ॥ १० **मइविसेसेण** भा० । "मइविसेसेहिं"-**विशेषाव० भा०** ॥ ११ **अ** य० ॥ १२ **मती°** भा० ॥ १३ **सुतणाण°** भा० । "सुयणाण°"-**विशेषाव० भा०** ॥ १४ **°न्यग्भावेनेवेत्यादि** भा० । **°न्यग्भावेन वेत्यादि** य० ॥ १५ **भवान् तदनु°** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पक्लृप्तविधि-भेदपदार्थैकवाक्यविधिविधानादशेषज्ञानावयवमवबोधसमुद्रावयवीभूतं शासनमेवम्विधमेव ।

जगत्प्रतानविसृतिव्यत्यासेन धीरमास्पदमचलं प्रतिष्ठानं च यस्य तत्र किमाश्चर्यं 'जयत्यूर्जितं च' इति ? किं तर्हि ? **एवम्विधतैव तु प्रतिपादनीया** अन्यमतासाधारणगुणता । सैव विरोधधर्मसम्भावनाऽ[1]भावाद् दुष्प्रतिपादेत्यभिप्रायः ।

[2]अत्राचार्य आह—[3]**किमेव प्रतिपाद्यमस्ति?** प्रतिपादितमेव तत् । यस्माद् **द्रव्यार्थपर्यायार्थे**त्यादि । द्रव्येणार्थो द्रव्यार्थः, द्रव्यमर्थोऽस्येति वा । अथवा द्रव्यार्थिकः, द्रव्यमेवार्थो यस्य सोऽयं द्रव्यार्थः, स्वार्थिकोऽयं '[4]ठन्' प्रत्ययः 'द्रव्यार्थिकः' । एवं पर्यायार्थः पर्यायार्थिको वा । **अर्थाच्चासन्निहिते** [पा० वार्ति० ५।२।१३५] इति वचनादर्थि-प्रत्यर्थिवदिनिरेव स्यादिति चेत्, न; असन्निधानाभावात् तदर्थस्य । अथवा 'अस्ति' इत्यस्य मतमास्तिकः, द्रव्य आस्तिको द्रव्यास्तिकः । [5]तयोर्द्वयोर्भावो **द्वित्वं** न, तदादयोऽ[6]नन्तान्ता **विकल्पाः**, वचनपथतुल्यसङ्ख्यपरसमय[7]तुल्यसङ्ख्यत्वान्नयानाम् । ४-२

जा[8]वइया [9]वयणपहा तावइआ चेव [10]होंति णयवाया ।
जावइआ णय[11]वाया तावइआ चेव परसमया ॥ [सन्मति० ३।४७]

एवंविध**विकल्पोपक्लृप्त**नयजालोप[12]ष्टम्भविधि-**भेदपदार्थानामेकवाक्यविधिः,** तस्य **विधानाद्-शेषज्ञानान्यवयवा** अस्य सर्वनयजनितानि । अवबोधसमुद्र एवाभेदेनावयवीभूतो यस्मिंस्तद्वबोध-**समुद्रा[13]वयवीभूतं शासनं** दुरवगाहगम्भीराक्षोभ्यपदार्थरत्नाकरत्वसामान्यात्, **एवम्विधमेवे**ति, उक्तनय-तरङ्गभङ्गसङ्ग्रह-प्रस्तारात्मकमविकल्प[14]पदार्थावद्योतनादनेकादित्यसमूहवत् कृतप्रकाशं तमसोऽवकाशाभावात् सवितृसहस्रवद् भास्वरत्वादनभिभवनीयम् ।

---

१ °**संभावनाभावाद् दुःप्रति**° य० । °**संभावाद् दुःप्रति**° भा० ॥ २ **अत्राचार्य आह** इति पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ३ **किमव** भा० । **किमेवं** पा० डे० लीं० ॥ ४ "अत इनिठनौ" **पाणिनिव्या०** ५।२।११५ ॥ ५ अत्र '**तयोर्द्वयोर्भावो द्वित्वम्, तदादयोऽनन्ता विकल्पाः**' इत्यपि पाठः स्यादिति सम्भाव्यते । यथाश्रुतं तु 'तयोर्द्वयोर्भावो द्वित्वमेव केवलं न; किं तर्हि? तदादयोऽनन्तान्ता विकल्पाः' इत्यर्थाभिप्रायेण सङ्गमनीयम् ॥ ६ °**नंतान्नाविकल्पाः** भा० वि० विना । °**नंतात्रा विकल्पाः** भा० वि० । अत्र '**अनन्ता अत्र विकल्पाः**' इत्यपि पाठः स्यादिति सम्भाव्यते, तथा सम्भावनायां च मूलमपि °**द्वित्वाद्यनन्तविकल्पोपक्लृप्त**° इति सम्भावनीयम् । '**अनन्तान्ताः**' इति पाठे तु "अन्तः स्वरूपे निकटे प्रान्ते निश्चयनाशयोः । अवयवेऽपि" इति **हैमकोशा**नुसारेण **अन्त**शब्दस्य स्वरूपवाचित्वमवयववाचित्वं वा गृहीत्वा सङ्गमनीयम् ॥ ७ °**तुल्यत्वान्नयानां** य० ॥ ८ °**वतिया** भा० । एवमग्रेऽपि ॥ ९ **वयणपधा** भा० ॥ १० **हुंति** य० ॥ ११ °**वादा** भा० ॥ १२ °**ष्टंभविण्वभेद**° भा० ॥ १३ °**वयविभूतं** भा० । अयं भा० प्रतिपाठोऽपि साधुरेव भाति । अत्र च पाठे 'अवबोधसमुद्र एवाभेदेन अवयवी भूतो यस्मिंस्तदवबोधसमुद्रावयविभूतम्' इति विग्रहः कार्यः, अभूततद्भावाविवक्षायां च्विप्रत्ययायोगात् 'इ'कारस्य दीर्घत्वाभावेऽपि न क्षतिरिति ध्येयम् ॥ १४ **पदार्थावद्योतमद्योतमादनेका**° भा० । °**पदार्थावबोधतमद्योतनादनेका**° ते० ही० । °**पदार्थावद्योतमद्योतमादनेका**° भा० ते० ही० विना ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेषशासनिवचनानि प्रत्यक्षानुमानविनिश्चेयपदार्थविपर्ययप्रणयनेन अश्रावणशब्दवादिवचनवदाशङ्कामपि सत्यत्वे न जनयितुमलम् ।

लौकिकव्यवहारोऽपि न यस्मिन्नवतिष्ठते ।
तत्र साधुत्वविज्ञानं व्यामोहोपनिबन्धनम् ॥

तद्व्यतिरिक्ताः शासनिनः कपिल-व्यास-कणाद-शौद्धोदनि-मस्करिप्रभृतयः, तेषां **वचनानि**। **प्रत्यक्षानुमानविनिश्चेयपदार्था** रूपादयो घटादयोऽग्न्यादयश्च । तेषां विपर्ययेण प्रणयनं तैः कृतम् । तेन **विपर्ययप्रणयनेन** निरुक्तीकृतं[1] विसंवादत्वम् । तत् कथम् ? प्रत्यक्षविनिश्चेयास्तावद्[2] युगपद्भाविषु प्रतिनियतेन्द्रियविषयेषु घटाद्याधारादृते[3] ग्रहणाभावान्न रूपादय एव, रूपाद्यन्यतमधर्मग्रहणद्वारमन्तरेण घटाद्यग्रहणात् तदभावे तदभावाच्च न द्रव्यमात्रमेव । अयुगपद्भाविष्वपि पिण्ड-शिवकादिषु मृद्ग्रहणे पिण्ड-शिवकाद्यग्रहणात् मृदभावे पिण्ड-शिवकाद्यभावात् न पर्याया एव । मृदोऽपि शिवकाद्यन्यतमावस्थाविशेषावस्थानमन्तरेण अग्रहणादभावाच्च न द्रव्यमेव। एतेनाग्न्यादि-धूमादिलिङ्ग-लिङ्गिव्यवहारो[6] व्याख्यातः
५-१ कार्यानुमानविनिश्चेयेऽपि[7] न विशेषा एव, निर्मूलत्वात्, खपुष्पवत् । न सामान्यमेव, अविशेषितत्वात्, खपुष्पवत् । तस्मादेवं प्रत्यक्षानुमानविनिश्चेयपदार्थेषु सर्वलोकप्रसिद्धेषु[8] विपर्ययप्रणयनमन्यशासनिनाम्—रूपादय एव घटः, घट एव रूपादयः, रूपादयश्च घटश्च[9] रूपादिगुणोऽवयवीत्यर्थः, न रूपादयो न घट इति वा । **अश्रावणशब्दवादिवचनवदि**ति सर्वलोकप्रसिद्धेन्द्रियप्रत्यक्षविरोधिवचनोदाहरणादनुमानविरोधाद्यप्युदाहृतमेव[10] । **आशङ्कामपि सत्यत्वे न जनयितुमल**मिति[11], निःसन्दिग्धमेवासत्यत्वं तेषामित्यर्थः ।

अपि च—[12]**लौकिकव्यवहारोऽपी**त्यादि यावद् **व्यामोहोपनिबन्धन**मिति । सातिशयबुद्धिभिरपि[13] परीक्षकैर्निरतिशयलोकप्रसिद्ध्यनुवर्तिभिः परात्ममतविशेषप्रतिपत्तिनिराकरण-तत्त्वप्रतिपादने कार्ये[14], इतरथा साक्षिविरहितव्यवहारवदनियतार्थैव[15] परीक्षा स्यात् । लौकिकास्तु नित्यानित्यावक्तव्याद्यनेकान्तरूपमेव घटादिकमर्थमव्युत्पन्ना[16] अपि प्रतिपद्य व्यवहरन्तो[17] दृश्यन्ते । तद्पक्षेव[18]प्रवृत्तयश्चैकान्तवादाः 'नित्य एव, अनित्य एव, अवक्तव्य एव घटः' इत्यादयः । **तत्र** शेषशासनेषु 'साध्विदं[19] साधु त्विदम्' इति विचारो व्यामोहस्यैव[20] **निबन्धनं** हेतुरित्यर्थः, विचारानवकाशाद् विसंवादाच्च ।

---

१ **निरुक्तं** भा० ॥ २ °**यस्तावद्** प्र० । °**येषु तावत्** इत्यपि पाठः स्यादत्र ॥ ३ °**घटद्योवारादृते** भा० । **घटद्योवारादने** य० ॥ ४ **शिबिका**° य० । एवमग्रेऽपि ॥ ५ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः °**वस्थानमन्तरेण** इत्यत आरभ्य **न विशेषा** इत्यन्तः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ६ °**लिंगलिंगलिंगिव्यवहारो** भा० ॥ ७ °**मानविनिश्चयेपि** भा० ॥ ८ **सर्वलोके प्र** भा० ॥ ९ **रूपादयं च घटं च** प्र० ॥ १० °**दनुमानुविरो** य० । °**दनुविरो**° भा० ॥ ११ **जनयतितुमल** भा० ॥ १२ "उक्तं हि-**लौकिकव्यवहारोऽपि न यस्मिन्नवतिष्ठते । तत्र साधुत्वविज्ञानं व्यामोहोपनिबन्धनम्** ॥" इत्येवमुद्धृता सम्पूर्णा कारिका **उत्तराध्ययनसूत्रबृहद्वृत्तौ** [पृ० २-१] **प्रवचनसारोद्धारटीकायां** [पृ० २-१] च १३ °**शययुद्धिभि**° प्र० ॥ १४ **कार्ये** प्र० ॥ १५ °**वदिनियतार्थैव** प्र० ॥ १६ °**त्पन्न अपि** प्र० ॥ १७ **व्यवहारंतो** भा० । **व्यवहारतो** य० ॥ १८ °**पक्षेव प्रवृ**° प्र० ॥ १९ **साध्वेदं** प्र० ॥ २० **व्यामोहस्येव निब**° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकप्रत्यक्षादिनिश्चयेऽपि शेषशासनविसंवदनजनितास्थं च प्रमाणद्वयसंसिद्धिसम्पादितप्रत्ययप्रतिष्ठापितात्यन्तपरोक्षार्थश्रद्धानं जिनशासनम् ।

अस्य चार्थस्य पूर्वमहोदधिसमुत्पतितनयप्राभृततरङ्गागमप्रभ्रष्टश्लिष्टार्थकणिकमात्रमन्यतीर्थकरप्रज्ञापनाभ्यतीतगोचरपदार्थसाधनं नयचक्राख्यं सङ्क्षिप्तार्थं गाथासूत्रम्—

विधि-नियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत् ।
जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम् ॥

लोकप्रत्यक्षादिनिश्चयेऽपि¹, किं पुनरतीन्द्रियार्थे ? **शेषशासनविसंवदनजनितास्थं च,** शेषशासनानां विसंवदनेन जनिता आस्था अस्मिन् **जिनशासने**ऽस्माकम् 'इदं वरिष्ठम्' इति परपक्षदौःस्थित्यादेव स्वपक्षसिद्धिरावीतेनेति । अथवा स्वपक्षसौस्थित्यानुमानमप्यस्तीत्याह – **प्रमाणद्वयसंसिद्धी**त्यादि । लौकिकपरीक्षकाणां प्रत्यक्षानुमानप्रामाण्यं प्रत्यविसंवादात् पूर्वन्यायेन स्थितास्थितमृत्त्वपृथुबुध्नादिसंस्थानोपादानकारणाभ्यां² द्वयेन द्वयस्य वा प्रत्यक्षेणानुमानेन च तद्विनिश्चेयपदार्थद्वयस्य संसिद्धिः, तया³ **सम्पादितः प्रत्ययः** प्रमाणं⁴ जैन्यां प्रक्रियायाम्, तत एव च **प्रतिष्ठापितमत्यन्तपरोक्षे**ऽप्यर्थे मेरूत्तरकुरुद्वीप-समुद्र-विमान-भवन-नरकप्रस्तारप्रमाणादौ **श्रद्धानं** यस्मिंस्तदिदम् 'ऊर्जितं जयति' इति प्रत्याम्नायते, अन्यथा प्रामाण्याभावात् । यथोक्तम् – प्रत्यक्षग्राहे च सिध्यति परोक्षग्राहः⁵ 'सिध्येत् । **तदसिद्धौ**⁶ **सम्भावनाऽभाव एव, प्रत्यक्षविसंवादित्वात्, उन्मत्तवाक्यवत्** [ ] इति । ५–२

अस्य चार्थस्येत्यादि यावद् **गाथासूत्र**मित्यनेन शास्त्रारम्भ-सम्बन्ध-प्रयोजनाभिधानम् । **पूर्वमहोदधिसमुत्पतितनयप्राभृततरङ्गागमप्रभ्रष्टश्लिष्टार्थकणिकमात्र**⁷मिति सम्बन्धः, न स्वमनीषिकयोच्यते, प्रमाणागमपरम्परागतमेवेदमित्यर्थः । **अन्यतीर्थकरप्रज्ञापनाभ्यतीतगोचरपदार्थसाधनं**⁸ प्रयोजनम्, शिष्यानुग्रहस्यान्यथा कर्तुमशक्यत्वात् । **नयचक्राख्य**मारभ्यं शास्त्रम्, तदन्तरेण तदसिद्धेः । शिष्यस्य प्रसङ्गविप्रसृतधियो मा भूद्व्यामोह इति **सङ्क्षिप्तार्थं गाथासूत्र**मिदम् – **विधि-नियमे**त्यादि । अन्यशासनानृतत्वप्रतिपादनसाधनमिदम्⁹ । अर्थापत्त्या तु **'भवति'**शुद्धपदोच्चारणवद् विधि-नियमभङ्गवृत्तियुक्तत्वाज्जैनं वचः सत्यमिति गम्यते¹⁰ ।

---

१ °**क्षादिनिश्चयेपि** प्र० ॥ २ °**करणाभ्यां** प्र० ॥ ३ **तथा सम्पा**° प्र० ॥ ४ **प्रमाणां** य० ॥ ५ **परोक्षाग्राहः** प्र० ॥ ६ **सिध्यति तदसिद्धौ** य० ॥ ७ °**तरङ्गामगप्रभ्रष्ट**° प्र० ॥ ८ °**प्रज्ञानाभ्य**° भा० ॥ ९ °**नृतत्वाप्रतिपा**° प्र० ॥ १० एतच्च **नयचक्रवृत्ति**कार एव ग्रन्थान्ते इत्थं स्पष्टीकरिष्यति — "इत्येवमनेन समस्तेन ग्रन्थेनैतदभिहितम् — विधि-नियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवज्जैनादन्यच्छासनमनृतम् । जैनमेव शासनं सत्यम्, विधि-नियमभङ्गवृत्त्यात्मकत्वात्, भवतिवद् घटवद्वेति"—**नयचक्रवृ०** पृ० ५६८–१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विधिराचारः स्थितिः...... । नियमः...... । तयोर्भङ्गाः—१ विधिः, २ विधि-विधिः, ३ विधेर्विधि-नियमम्, ४ विधेर्नियमः, ५ विधि-नियमम्, ६ विधि-नियमस्य विधिः, ७ विधि-नियमस्य विधि-नियमम्, ८ विधिनियमस्य नियमः, ९ नियमः, १० नियमस्य विधिः, ११ नियमस्य विधिनियमम्, १२ नियमस्य नियमः । तेषां वृत्तिः स्वविषयसम्पातनेन भावना अर्थानाम् । जैनसत्यत्वसाधनवृत्ता तु वृत्ति-

---

तद्व्याचक्षाणः **सूरिः** 'विधि-नियमशब्दावलौकिकौ' इति परो मा मंस्तेति तत्पर्यायशब्दानु-
६-१ चारयति—**विधिराचार** इत्यादि । विधीयत इति विधिर्भावसाधनो[1]ऽध्याहृतकर्त्रर्थः । यो विदधाति स कर्ता द्रव्यार्थः । को विदधाति ? पिण्डशिवकादिभावान् मृद्विदधाति । तथा हि मृदा शिवकादयो विधीयन्ते । लक्षणतस्तु अनपेक्षितव्यावृत्तिभेदार्थो द्रव्यार्थो **विधिः**, लोके दृष्टत्वात् । [2]आदानमर्यादया [3]चार **आचार** आत्मरूपापरित्यागः पररूपानपेक्षः । एवं **स्थित्यादिषु** योज्यम् । पर्यायार्थतस्तु **नियमः**, निराधिक्ये, आधिक्येन यमनं नियमः परस्परप्रतिविविक्तभवनादिधर्मलक्षणः प्रतिक्षणनियतोऽवस्था-विशेषो युगपद्भाव्ययुगपद्भावी[4] वा रूपादिः [5]शिवकादिश्च यो यो भवति स एव स एवेति । पर्यायशब्दानां शेषाणामप्ययमर्थो यथाक्षरं योज्यः ।

[6]**तयोर्भङ्गा विधिर्विधि[विधि]**रित्यादि । तत्र विधिरनपेक्षितभेदानुगतिव्यावृत्तिव्यापारो यथा गौरिति । [7]***विधिविधिस्तु** शुक्लादिभेदनियमवादिनं प्रत्यभेदप्रतिपादनव्यापृतः—कोऽयं शुक्लादिभेदो नाम गोत्वव्यतिरिक्तः ? इति । [9]**विधेर्नियमो**ऽतिप्रसक्तस्य विशेषेऽवस्थापनं विधिप्रधानस्यैव तदंशेऽवस्थापनम्, यथा गां शुक्लामानयेति । तदुभयात्मकं [10]**विधेर्विधि-नियमम्** । **विधि-नियमं** तु विधिश्च नियमश्च विधि-नियमम्, द्वन्द्वैकवद्भावः, तुल्यकक्षौ विधिनियमावेव सहितौ, द्व्यात्मकं सर्वमिति । शेषा यथायोगमेतद्व्याख्यानुसारेण व्याख्येया भङ्गाः । सामान्येन तु कारणं विधिः, कार्यं नियमः, उभयं* विधि-नियमम्, शेषास्तद्विकल्पा एव ।

एवं भङ्गान्[11] व्यवस्थाप्येदानीं वृत्तिं व्याख्यातुकाम आह—**तेषां** विधि-नियमभङ्गानां **वृत्तिरिति** । तस्यास्तु लक्षणम्[12]—**स्वविषयसम्पातनेन भावना अर्थानाम्**, आत्मीय आत्मीये विषये विषयेऽवर्तीये[13] यया तदर्था भाव्यन्ते । तथाहि—तथा भवन्ति नान्यथेति, नित्य एवाकृतकत्वादाकाशवत्, अनित्य एव कृतकत्वाद् घटवद् वेति । यथोक्तम्—द्रव्यस्यानेकात्मनोऽन्यतमैकात्मावधारणमेकदेशनयनान्नयः [ ] इति । प्रत्यक्षानुमानाभ्यां [14]पूर्ववत् स्थितास्थितमृत्त्वपृथुबुध्नादिसंस्थानोपादानकारणाभ्यां[15] वृत्ति-

---

१ °धनो व्याहृ° प्र० ॥ २ आदानं मर्यादया य० ॥ ३ चार आत्मरूपा° य० । चार आचार आचार आत्मरूपा° भा० ॥ ४ °द्भावी रूपादि य० ॥ ५ शिवकादिं च भा० । शिविकादि च य० ॥ ६ तयो-र्भंगा भा० । तयोर्भागा य० ॥ ७ * * एतच्चिह्नान्तर्गतो विधिविधिस्तु इत्यत आरभ्य उभयं इत्यन्तः पाठो भा० प्रतौ नास्ति ॥ ८ °व्यावृत्तः य० ॥ ९ विधिर्नियमो य० ॥ १० विधिर्विधेर्नियमं य० ॥ ११ भंगा-व्यवस्थाप्ये° प्र० ॥ १२ लक्षणं विषयलस्पा° य० ॥ १३ °वताय प्र० ॥ १४ पूर्वावस्थिता° य० ॥ १५ करणाभ्यां भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवक्षितद्वादशविकल्पविशेषणा, अन्यथा अवृत्तित्वमेव वक्ष्यमाणवत्। सा च विध्यादिप्रत्येकवृत्तिरूपाख्यानसमधिगम्या।

तत्र विधिवृत्तिस्तावद् यथालोकग्राहमेव वस्तु, स्वपरविषयतायां सामान्यविशेषयोरनुपपत्तेरसंस्ततो विवेकयत्नः शास्त्रेष्विति।

सामान्यविशेषौ हि स्वविषयौ परविषयौ वा स्याताम्। तत्र सामान्यं तावदेकस्य सर्वत्वाद् यदि स्वविषयम्, सामान्यविरोधः। यदि सामान्यम्, तत

तत्त्वमित्यत आह–**जैनसत्यत्वसाधनवृत्ता**[1] **तु वृत्तिर्विवक्षितद्वादशविकल्पविशेषणेति**, तत्समा- ६-२ हारैकरूपतया तत्त्वान्वाख्यानमित्यर्थः,[2] अनेकसम्बन्धिदेवदत्तपितृपुत्रत्वादिधर्मसमाहारैकरूपवस्तु-[3] तत्त्वान्वाख्यानवत्। **अन्यथे**त्येकान्तावधारणे प्रत्येकं स्वरूपानवधारणात् **अवृत्तित्वमेव वक्ष्यमाणव**दिति, तदित्थमिदमेव शास्त्रं वत्स्यतीति परस्परव्याहततरत्वास्त्ववृत्तय एव ता इत्यर्थः। वृत्तितत्त्वविनिश्चिचीषायां **सा च विध्यादिप्रत्येकवृत्तिरूपाख्यानसमधिगम्ये**ति तद्व्याख्या कार्या। किं कारणम्? तत्समुदायकार्यत्वात् तस्याः।

इममर्थं विस्तरेण व्याख्यातुकाम उद्दिशति – **तत्र विधिवृत्तिरि**त्यादि। **तत्र** एतास्वनन्तरोद्दिष्टासु विध्यादिवृत्तिषु **विधिवृत्तिस्तावद् यथालोकग्राहमेव वस्तु**। लोकस्य ग्राहः, ग्राहवद् ग्राहः, यथा जलचरो ग्राहः ग्राण्यन्तराण्यभ्यात्माकर्षति तथा लोकोऽपि स्वाभिप्रायसकाशं सर्वमाकर्षति। यो यो लोकग्राहो यथालोकग्राहम्, एवेत्यवधारणाल्लोकाभिप्रायं नातिवर्तते वस्त्वित्यर्थः। परीक्षकाभिमानिनां तु तीर्थ्यानां **स्वपरविषयतायां सामान्यविशेषयोरनुपपत्तेरसंस्ततो** लोकाभिप्रायाद्[4] **विवेकयत्नः शास्त्रेष्विति**। इतिशब्दो हेत्वर्थे, यस्मादेतमर्थं प्रतिपादयिष्यामस्तस्माद् यथालोकग्राहमेव वस्तु, ततो लोकाभिप्रायाद्विवेकयत्नानर्थक्यम्।

तत् कथमिति चेत्, उच्यते – **सामान्यविशेषौ हि स्वविषयौ परविषयौ वा स्याताम्,** वस्तुनः सामान्यं घटादेर्वस्तुन आत्मनि वर्तेत, परस्य वा पटादेरात्मनि घटाद्व्यतिरिच्यमाने। चतुर्ष्वप्येषु विकल्पेषु **साङ्ख्या**दीनां दोष इति मन्यमानो लौकिकः पक्षं[5] ग्राहयति दुर्दूषयिषुः[6] सोपपत्तिकम् —तत्र आद्यं **सामान्यं तावदेकस्य सर्वत्वाद् यदि स्वविषयम्**। सर्वमेकमेकं च सर्वम्,[7] ७-१ कस्मात्? कारणस्य वैश्वरूप्यात्। यथाह–

सर्वं सर्वात्मकम्। यद्येवं कस्मात् सर्वमेकत्र नोपलभ्यते सर्वत्र चैकमिति? उच्यते—देशकालाकारनिमित्तावबन्धात्तु न समानकालमात्माभिव्यक्तिः। ते मन्यामहे जलभूम्योरप्येतत् पारिणामिकं रसादिवैश्वरूप्यं[8] स्थावरस्य जङ्गमतां गतस्य जङ्गमाभ्यवहृतवनस्पत्यादेर्जङ्गमशरीरपरिणामापन्नस्य, जङ्गमस्यापि स्थावरतां गतस्य स्थावराभ्यवहृतस्य[9] तत्परिणतस्य, एवं स्थावरस्य स्थावरतां गतस्य जङ्गमस्य जङ्गमतां गतस्य। तस्मात् सर्वं सर्वात्मकम् [ ]।

---

१ °वृत्तानुवृत्ति° प्र० ॥ २ तत्त्वाद्व्याख्यान° प्र० ॥ ३ °संबंधेदेव प्र० ॥ ४ °प्रायोद्विवेक° प्र० ॥ ५ पक्ष्यं भा० ॥ ६ उद्दूष° भा० ॥ ७ सर्वमेकं च य० ॥ ८ रसादिधैण्वरूपं य०। रसादिधैथेरूप्यं भा० ॥ ९ °व्यवहृत° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा न भवति, अनेकार्थविषयत्वात् सामान्यस्य; अथ आत्मा, ततो न सामान्यम्, एकत्वादात्मनः; सेनाहस्तिनोरिव ।

अथोच्येत – आत्मैव सामान्यम्। सत्त्वादिर्घटादेरात्मा, स हि तत्समुदायकार्य-

---

तत एकस्य सर्वत्वात् सर्वस्य चैकत्वात् स्वविषयं सामान्यं घटस्यात्मनि वर्तेत इति परमतं प्रदर्श्योत्तरमाह– यद्येवम्, **सामान्यविरोधः** सामान्यस्य विरोधः सामान्येन च विरोधः ।

तत् कथम्? उच्यते – **यदि सामान्यम्, तत आत्मा न भवति, अनेकार्थविषयत्वात् सामान्यस्य ।** कश्चिदर्थः केनचिदर्थेन कैश्चिद्धर्मैः समानो भवतीति कृत्वानेकार्थविषयं सामान्यम् । तस्मादनेकार्थविषयत्वात् सामान्यस्य वस्तुनः स्वमात्मा घटादेरेकरूपस्य न भवति, एकत्वादात्मनः, सामान्यस्य च निवृत्तेरात्मनश्च आत्माभावात् कस्य सामान्यम्? । **अथ** मा भूदेष दोष **इत्यात्मे**ष्यते, **ततो**ऽपि **न सामान्यम्, एकत्वादात्मनः** केन सामान्यं तस्य? इत्यात्मनः सामान्येन विरोधः, समानभावो हि सामान्यम् । **सेनाहस्तिनोरिवे**ति, हस्त्यश्वरथपदातिसमूहः सेनेत्यनेकार्थापेक्षां दर्शयति, हस्तीति चैकार्थतां दर्शयति ।

अथोच्येतेति स परिहर्तुकामस्य परस्याभिप्रायमाह । स्यादेव विरोधो यदि 'आत्मनः सामान्यम्'
७-२ इति भेदेन स्वत्वमभ्युपगम्येतेति । यद्यपि व्यतिरेकार्थषष्ठीप्रापितः स्वस्वाम्यादिभेदः तथाप्यदोषः, व्यपदेशिवद्भावात् 'राहोः शिरः' इत्याद्यव्यतिरेकषष्ठीदर्शनादिति । किं तर्हि? ब्रूमः – इह तु **आत्मैव सामान्यम्** । किं तत्? **घटादेः सत्त्वादिरात्मा** । यथोक्तम् –

आध्यात्मिकाः कार्यात्मका भेदाः शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धाः पञ्च त्रयाणां सुख-दुःख-मोहानां सन्निवेशमात्रम् । कस्मात्? पञ्चानां पञ्चानामेककार्यभावात्, सुखानां शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धानां प्रसादलाघवाभिष्वङ्गोद्धर्षप्रीतयः कार्यम्, दुःखानां शोषतापभेदोपष्टम्भोद्वेगापद्वेषाः, मूढानां वरणसदनापध्वंसनबैभत्स्यदैन्यगौरवाणीति । तथा करणात्मकाः श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-जिह्वा-घ्राण-वाग्-हस्त-पाद-पायू-पस्थ-मनांस्येकादश तैर्यग्योन-मानुष-दैवानि बाह्याश्च भेदाः सत्त्वरजस्तमसां कार्यं समन्वयदर्शनात् [ ] इति ।

एवं पृथिव्यादि गवादि घटादि । तस्मात् **सत्त्वादिर्घटादेरात्मा । स हि तत्समुदायकार्यत्वात् सामान्यम्** । तस्मादात्मैव सामान्यमिति ।

---

१ **सामान्यवस्तुनः** भा० ॥ २ व्यतिकार्थषष्ठीप्रापितस्वस्वा° प्र० ॥ ३ °**भेदापष्वम्भो**° भा० । **भेदापस्तम्भो**° य० । अत्र °**भेदापष्टम्भो**° इति °**भेदापस्तम्भो**° इति °**भेदावष्टम्भो**° इति वा पाठोऽपि भवेत् । किन्तु अधुना उपलभ्यमानेषु प्रायः सर्वेष्वपि साङ्ख्यसिद्धान्तप्रतिपादकग्रन्थेषु '**उपष्टम्भ**'शब्दस्य '**उपस्तम्भ**'शब्दस्य वा प्रयोगदर्शनादस्माभिरपि स आदृत इति ज्ञेयम् । मुद्रित**न्यायकुमुदचन्द्र**स्य टिप्पण्यां तु [पृ० ३५०] '**उपष्टम्भ**'शब्दस्थाने **व० ज० भां० श्र०**प्रतिषु '**अवष्टम्भ**' इति पाठान्तरमपि उल्लिखितमस्तीति ध्येयम् ॥ ४ **तैर्यग्योन**° भा० । **तैर्यग्यौन**° य० ॥ ५ **कार्यसमन्वय**° य० ॥ **कायं समन्वय**° भा० । अत्र '**कार्यम्**' इति पाठश्चेत् सम्भाव्यते तर्हि 'बाह्याश्च भेदाः सत्त्वरजस्तमसां कार्यम्, समन्वयदर्शनात्' इति योजनीयम् । **य०** प्रतिपाठानुसारेण तु 'त्रयाणां सुखदुःखमोहानां सन्निवेशमात्रम्' इति पूर्वतनवाक्यमनुवर्त्य 'बाह्याश्च भेदाः त्रयाणां सुखदुःखमोहानां सन्निवेशमात्रम्, सत्त्वरजस्तमसां कार्यसमन्वयदर्शनात्' इति योजनीयम् ॥ ६ °**कायत्वा सामा**° भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वात् सामान्यम् । एवं सति आत्मभेदः – सुखं सुखं च सुखादिसमुदयश्च, तदात्मत्वात् । एवं शेषावपि । ततश्च त्रिगुणविपरिणामकारणकल्पनावैयर्थ्यम् ।

नित्यमेव त्र्यात्मकमिति चेत्, एकत्वनित्यत्वात् प्रकाश-प्रवृत्ति-नियमभेदाभावादनारम्भः । उभयस्य चाभावः । यथा च प्रधानावस्थायां त्रित्वैकत्वादिविरोधधर्मसम्बन्धोऽव्यतिरिक्तत्रिगुणैकरूपता चेष्यते सदा त्रिगुणैकत्वात् त्रित्वै-

---

अत्र ब्रूमः — **एवं सत्यात्मभेदः**, समुदायैककार्यत्वात् सुखादि एकमसामान्यमितीष्टस्य सामान्यस्य भेदः । तत् कथमिति चेत्, उच्यते – **सुखं सुखञ्च सुखादिसमुदयश्च** । सत्त्वं सुखम्, रजो दुःखम्, तमो मोहः । तत् त्रयमैकात्म्यापन्न[1]मेकमेवेति सुखस्य सुखत्वं तत्समुदायत्वं च प्राप्तम्[2] । किं कारणम् ? **तदात्मत्वात्**, यस्मात् सुखाद्यात्मकः समुदायः समुदायात्मकं च सुखम् । **एवं शेषावपी**ति दुःखमोहावतिदिशति । एवं दुःखं दुःखञ्च दुःखादिसमुदायश्च, मोहो मोहश्च मोहादिसमुदयश्च । ततः को दोष इति चेत्, **ततश्च त्रिगुणविपरिणामकारणकल्पनावैयर्थ्यम्** । समुदायैककार्याणां ८-१ त्रयाणामेकत्वाभ्युपगमादेकस्तत्साम्यावस्थाविशेषः, तस्माच्चावस्थाविशेषादप्रच्युतत्वात् कुतो गुणानां वैषम्यम् ? वैषम्याभावे कुतः प्रकृतेर्महदहङ्कारतन्मात्रभूतेन्द्रियादिपूर्वोत्तरहेतुकार्यभावः ?

अत्राशङ्का — **नित्यमेव त्र्यात्मकमिति चेत्**, प्रधानावस्थायामपि त्रिगुणत्वान्नित्यं सर्वकालं[3] **त्र्यात्मकं** सत्त्वरजस्तमआत्मकम[तो] गुणवैषम्य-विपरिणाम-कारणत्वान्युपपद्यन्ते सुखादिसमुदायात्मकत्वेऽप्यात्मभेददोषश्च नास्तीति । एतदपि वाङ्मात्रत्वादनुत्तरम्, तथापि तु सुतरां तथा, **एकत्वनित्यत्वात् प्रकाश-प्रवृत्ति-नियमभेदाभावादनारम्भः** । एकत्वस्य नित्यत्वात् एकत्वेन वा नित्यत्वात्, सदैकत्वादित्यर्थः । प्रकाश-प्रवृत्ति-नियमकार्यभेदः सत्त्वरजस्तमसां योऽभ्युपगम्यते भवद्भिराचार्य-पवन-पाषाणवत्, तद्यथा – नाटकाचार्यः स्वहस्तोत्क्षेपणादिना प्रकाशात्मना आत्मनो नर्तिकायाश्च व्यवतिष्ठते, पवनः पर्णचलनादिना स्वपरप्रवर्तनेन व्यवतिष्ठते, नौस्तम्भनपाषाणकः स्वपरनियमनेन[4] व्यवतिष्ठते तथा सत्त्वरजस्तमांसि इत्येतन्नोपपद्यते, सर्वकाल**मेकत्वनित्यत्वात्**[5] त्रित्वाभावः[6], **ततस्तदनारम्भः** प्रधानावस्थायामिव गुणानां सर्वकालं कार्यानारम्भो निर्व्यापारत्वात् । वैषम्यनिर्मूलता च, आरम्भाभावात् । **उभयस्य चाभावः** कारणस्य कार्यत्वस्य च, अथवा आत्मनः सामान्यस्य च, सुखादेः समुदायिनस्तत्समुदायस्य च प्रधानस्य । किं कारणम् ? अन्यतराव्यवस्थानेऽन्यतरस्याव्यवस्थानात् । तत् कथं भाव्यत इति चेत्, उच्यते — **यथा च प्रधानावस्थाया**मित्यादि यावत् **त्रित्वैकत्वादिव्यतिक्रमेणे**ति । **त्रित्वैकत्वादी**त्युक्तपरामर्शः, यथा त्रित्वमेकत्वं च विरुद्धौ[7] धर्मौ विष्येते ८-२ एवमवयवा अवयवी च, अन्यदनन्यच्च, आत्मा चानात्मा च, सर्वमसर्वं चेत्यादि । **आदिग्रहणात् सूक्ष्मं**

---

१ °पन्नमेवेति भा० ॥ २ प्राप्तं च किं प्र० ॥ ३ सर्वं भा० ॥ ४ °नियमेन व्यव° य० ॥ ५ °त्वात्तित्वा° भा० । °त्वात्तत्वा° य० ॥ ६ °भावस्तदनारम्भः य० ॥ ७ विरुद्धौ च धर्मौ भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कत्वादिव्यतिक्रमेण, एवं शब्दादौ त्रिगुणाव्यतिरेकैकरूपत्वं विरोधधर्मसम्बन्धश्च तन्मयत्वात्। ततश्च सर्वस्यावस्थानात् कारणकार्यनियमाभावाद् यदृच्छामात्रत्वादङ्गीकृतपुरुषार्थयत्नार्थहानिः।

सामान्यविशेषयोश्च सम्बन्धित्वादेकतराभ्युपगमेऽन्यतरस्यावश्यापेक्ष्यत्वात् सामान्याभ्युपगमे नियमपक्षापत्तिरपि।

परविषयतायामपि असमानावस्थानादसामान्यम्। किं कारणम्? अनवधृतैकतरकारणत्वाद् द्रव्यादीनाम्।

स्थूलं चेत्यादि सामर्थ्यादापादनीयम्। एष दृष्टान्तः। साधर्म्यं **सदा त्रिगुणैकत्वा**दिति। [1]यथा तत्र **त्रित्वैकत्वाद्या**त्मस्व[2]तत्त्व**व्यतिक्रमेणे**ति **विरोधधर्मसम्बन्धोऽव्यतिरिक्तत्रिगुणैकरूपता** चेष्यत इति प्रधानस्यैव दृष्टान्तस्य [3]वर्णनम्। **एवं शब्दादा**विति दार्ष्टान्तिकोपनयः, **त्रिगुणाव्यतिरेकैकरूपत्वं विरोधधर्मसम्बन्धश्च** शब्दतन्मात्रादिषु, तत्कार्येष्वाकाशादिषु भूतेष्वेकगुणादिवृद्धेषु, तद्विकारेषु च गवादि[4]र्घटादिषु च, श्रोत्रादिष्वेकादशस्विन्द्रियेषु च प्रधानधर्मा आपाद्याः। किं कारणम्? **तन्मयत्वात्**, सत्त्वादिगुणमयं हि तत्। **ततश्च सर्वस्यावस्थानात्** प्रधानावस्थायामिव न किञ्चित् सूत्रादि [5]पटादि वा कस्यचित् [6]**कारणं कार्यं** वा प्रमाणं प्रमेयं [7]वेति **नियमाभावात्** सर्वत्र यादृच्छिकी प्रवृत्तिः प्रसक्ता, यदृच्छामात्रत्वान्न प्रधानमहदहङ्कारादिकारणकार्यनैयम्यम्। ततश्च **यदृच्छामात्रत्वादङ्गीकृतपुरुषार्थयत्नार्थहानिः**। पुरुषश्चैतन्यस्वरूपः, तस्यार्थो द्विविधः—शब्दाद्युपलब्धिरादिः गुणपुरुषान्तरोपलब्धिर[8]न्तः, [9]तत् कृत्वा तद्विनिवर्तत इति तस्मै पुरुषार्थाय यत्नः प्रधानस्य, तस्य यत्नस्य **अर्थः** प्रयोजनम्, तस्य हानिर्यादृच्छिकत्वात्। तस्य च हानौ प्रधान-पुरुष-संयोगत्रित्वपरिज्ञानार्थशास्त्रयत्ना[र्थ]हानिरपि।

सामान्यविशेषयोश्च सम्बन्धित्वादित्यादि यावद् **नियमपक्षापत्तिरपि**। सामान्यं विशेष

९-१ इत्येतौ परस्परसम्बन्धिनौ, आद्यन्तवत् पितापुत्रवद्वा। तत्र यदि सामान्यमभ्युपगम्यते विशेषापेक्षित्वात् सामान्यस्य [10]विशेषोऽवश्यैष्यः, पितृत्वाभ्युपगमे पुत्रत्वाभ्युप[11]गमवत्। विशेषाभ्युपगमे च सामान्याभ्युपगमस्तद्वदेवेत्यतस्ते बलादेव विशेषपक्षापत्तिरपि **नियमपक्षापत्ति**रित्यर्थः। **अपि**शब्दात् प्रागुक्तदोषापत्तिः। एवं तावत् स्वविषयत्वे सामान्यस्य दोषा उक्ताः।

परविषयतायामप्यसमानावस्थानादसामान्यम्। अमुख्यसामान्यानां सदृशानुप्रवृत्तिव्यावृत्ति-

---

१ **यथा त्रित्वैकत्वा**° य० ॥ २ °**तत्त्वातिक्रमेणेति** प्र० ॥ ३ **वर्णनमेव शब्दादाविति** प्र० ॥ ४ °**घटादिष्वेकादश**° भा० ॥ ५ **पदादि** य०। **पदाटादि** भा० ॥ ६ **कारणं वा कार्यं वा** य० ॥ ७ **चेति** य० ॥ ८ °**रतः** य०। "प्रधानस्य पुरुषार्थो प्रवृत्तिः। स च पुरुषार्थो द्विविधः—शब्दाद्युपलब्धिरादिर्गुणपुरुषान्तरोपलब्धिरन्तश्च"—**साङ्ख्यका० माठरवृ०** पृ० ७९ ॥ ९ अत्र '**तत् कृत्वा**' इति पाठः सामान्ये नपुंसकमित्यभिप्रायेण सङ्गमनीयः, अन्यथा 'तं कृत्वा' इति स्यात् ॥ १० **विशेषषोवस्यैष्यः** भा०। **विशेषेषोत्वस्यैष्यः** य० ॥ ११ °**गमत्वात्** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र द्रव्यमपि भवनलक्षणं युगपदयुगपद्भेदभाविमृद्भवनपरमार्थरूपादिशिवकादिवृत्ति व्यापि ।

लक्षणानां [1]परेष्टानां परेष्टानां परविषयाणामसम्भवात् स्वेष्टसमानभवनलक्षणसामान्यसम्भवात् [2]परकीयमसामान्यमेवेत्युपरि उपसंहरि[3]ष्यति लौकिकः, तत् सिद्धं कृत्वा तावदाह – **अस[4]मानावस्थानादसामान्य**मिति । तत् पुनर्द्रव्यक्षेत्रकालभावविषयम्, ते हि द्रव्यादयः परे परैरिष्यमाणा घटादेर्वस्तुनः, तदपि परस[5]त्तैदपेक्षया समानमित्युच्यते नात्मानमेवेति परविषयम् । **किं पुनः कारणं** तदसामान्यम्? इत्यत आह – **अनवधृतैकतरकारणत्वा**दिति, [6]नावध्रियते द्रव्यमेव क्षेत्रमेव काल एव भाव एव वा कारणमिति । एवं तर्हि 'एकतमकारणत्वात्' इति वाच्यम्; न चात्र डतरडतमौ प्राप्नुतः, कस्मात्? **अन्य-किं-यत्-त[7]दो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् । वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्** [पा० ५।३।९१-९२] [8]इत्यत्र 'एक'शब्दस्यापठितत्वात् । एवं त[9]र्ह्यातिशायिकः तरप्प्रत्ययः । समानगुणेषु हि स्पर्द्धा भवति, गुणवचनाभावान्नेति चेत्, कारणत्वगुणतोऽतिशयो भविष्यति । एवं तर्हि [10]तमबस्त्विति चेत्, द्वयोर्द्वयोः प्रकर्षविवक्षायां [11]तरबित्यदोषः । अथवा **एकाच्च प्राचाम्** [पा० ५।३।९४] इति जातिपरिप्रश्नेऽस्त्येव डतरजित्यदोषः । केन ९-२
अनवधृतमेकतरकारणत्वं द्रव्यादीनामिति चेत्, उच्यते – लौकिकैर्व्यवहारनयप्रधानैः, स च आर्हतनयैकदेश एव । न पुनर्यथा शास्त्रकाराः सामान्यमेव विशेष एव द्रव्याद्यन्यतमदेव वा कारणं [12]कार्यं वेत्यवधारयन्ति ।

कथं पुनर्द्रव्यादिकारणतावधार्यते [13]न वेति? उच्यते – द्रव्यं तावत् **[14]तत्र द्रव्यमपि भवनलक्षणं व्यापी**त्यभिसम्भन्त्स्यते । **अपि**शब्दात् क्षेत्रमपि । सर्वतन्त्रसिद्धान्ते व्याकरणे **[15]द्रव्यं च भव्ये** [पा० ५।३।१०४] इत्युक्तत्वाद् भवतीति भव्यं भवनयोग्यं वा द्रव्यम् । द्रवति द्रोष्यति दुद्रावेति द्रुः, द्रोर्विकारोऽवयवो वा द्रव्यम्, **दु द्रु गतौ** [पा० धा० ९४४-९४५], सदैव गत्यात्मकत्वाद् विपरिणामात्मकं हि तत् । [16]न तु यथा **गुणसन्द्रावो द्रव्यम्** [पातञ्जलम० ५।१।११९] **क्रियावद् गुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्** [वै० सू० १।१।१५] इति वा । कथं भवतीति चेत्, भिद्यते इति भेदः, भेदेन भवितुं [17]शीला तस्या धर्मो वा साधु भवतीति [वा] भेदभाविनी मृत्, तस्या भवनं भेदभाविमृद्भवनम्, तदेव परमोऽर्थः, कोऽसौ? रूपादयः शिवकादयश्च । ते पुनर्यथासङ्ख्यं युगपदयुगपच्च भेदभाविमृद्भवनपरमार्थरूपादिशिवकादयः, समानाधिकरणसमासः । पुनरपि ते वृत्तिरस्य तेषु वा वृत्तिरस्य तदिदं **युगपदयुगपद्भेदभाविमृद्भवनपरमार्थरूपादिशिवकादिवृत्ति** । किं तत्? द्रव्यम् । व्याप्नोतीति **व्यापि**,

---

१ **परेष्टानां परविषया**° भा० ॥ २ **परकीयसामान्य**° प्र० ॥ ३ °**ष्यते** य० । एतत्पाठानुसारेण तु 'उपसंहरिष्यते । लौकिकस्तत् सिद्धं कृत्वा तावदाह' इति योजनीयम् ॥ ४ °**मानादस्थानादसामान्य**° य० । °**मानादसामान्य**° भा० ॥ ५ अत्र 'नात्मानमेव' इति सङ्गमयितुं 'तदपेक्ष्य' इति पाठः स्याच्चेत् साधु ॥ ६ **नावध्रियंते** भा० ॥ ७ °**तदोर्निर्धा** भा०रं०ही० विना ॥ ८ **इनाचैकंश**° भा० । **इत्यचैकश**° य० ॥ ९ °**शायिकः** भा० ॥ १० **तमवस्त्विति** रं० वि० विना ॥ ११ **तरपित्य**° प्र० ॥ १२ **कार्यं चेत्य**° य० । **कायं वेत्य**° भा० ॥ १३ अत्र **तवेति** इति पाठः समीचीनः प्रतिभाति, तथा च 'तव पक्षे कथं पुनर्द्रव्यादिकारणतावधार्यते' इति प्रष्टुराशयो भाति ॥ १४ **तत्च द्रव्यमपि** प्र० ॥ १५ **द्रव्ये च** भा० । **द्रव्य च** य० ॥ १६ **ननु यथा** य० ॥ १७ **शीलस्तस्या** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्रमपि सर्वगतिनिवासवृत्तिस्वतत्त्वमेकैकभावार्थसङ्घातसमवस्थानात्मा रूपादि-ग्रीवाद्येकगमनसमवस्थानव्यवस्थापितपृथिव्यादि-घटादि व्यापि विश्वस्य सद्द्रव्ययुगपदयुगपद्भाविरूपादिशिवकादिभावविस्पन्दितस्य ।

न कचिदपि न प्रवर्तते । यथा रूपादिशिवकादयो मृदो भवनमात्रं तथा युगपद्भूतं पृथिव्या[1]दि परमार्थः पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशादि [2]द्रव्यभवनमात्रम् । [3]पृथिव्याश्चाश्मलोष्टादि, तथाऽपां हिमकरकादि, तेजसोऽ- १०-१ प्यर्चिरादिस्वभेदा इत्यादि । अयुगपद्भूतं व्रीहि-बीजा-ङ्कुर-पत्र-नाल[4]-काण्ड-पुष्प-फल-[5]शूक-कण-तुषादि परमार्थ इति सर्वं द्रव्यभवनमात्रम्, एकपुरुषपितृपुत्रत्वादिवसात्तां(वत्तांस्तान्) भावान् [6]भवतीति द्रव्यम्।

क्षेत्रमपि व्याकरणसिद्धान्तगत्यैव **क्षि निवासगत्योः** [पा० धा० १४०७] इति सर्वस्य सिद्धं **सर्वगतिनिवासवृत्तिस्वतत्त्वम् । गति**र्व्याप्तिः । **निवास**स्तथावस्थानम् । सर्वभावानां प्राप्त्यवस्थानोपकारेण वर्तत इति तद्वृत्तिस्वतत्त्वम् । प्रदेशरचनाविशेषो हि क्षेत्रम् । **एकैकभावार्थसङ्घातसमवस्थानात्मा,** एकैकस्य घटपटादेर्भावस्यार्थे पृथुबुध्नादिरूपेण संहत्य समवस्थितस्य **आत्मा** स्वरूपतत्त्वं प्रधानमित्यर्थः । किं कारणम् ? क्षेत्राभावे तदभावात् क्षेत्रानुग्रहादेव तद्भावात् । यथासङ्ख्यं **रूपादि-ग्रीवाद्येकगमनसम- वस्थानव्यवस्थापितपृथिव्यादि-घटादि ।** यथास्व[7]प्रक्रियं **वैशे**[8]**षिकादीनाम् रूप-रस-गन्ध-स्पर्शवती पृथिवी** [वै० सू० २।१।१], शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धात्मा पृथिवी, [8]कक्खटलक्षणा वेति । एवं घटोऽप्यवयवी, गुणसमुदयमात्रम्, प्रज्ञप्ति[9]सन् वेति विकल्पनामात्रम् । लोक[10]नयेन तु [त] एव हि रूपग्रीवाद्यवयवा रूपादयो ग्रीवादयश्चैकगतयस्तथा तथा समवस्थिताः पृथिव्यादीन् [11]घटादींश्च व्यवस्थापयन्ति यत्र तत् क्षेत्रम् । किं हि तत् पृथिव्याः पृथिवीत्वं रूपाद्येकगतिसमवस्थानादन्यत्, घटस्य वा ग्रीवाद्येकगतिसम- वस्थानादन्यद् घटत्वम् ? तस्मात् सर्वगतिनिवासवृत्तिस्वतत्त्वं तत् । **व्यापि** [12]विश्वस्येत्यादि याव- [13]**द्विस्पंदितस्य ।** [14]**विश्वं सद्द्रव्यं** च व्याप्नोति **युगपदयुगपद्भाविरूपादिशिवकादिभावविस्पंदितं** पृथिव्य[15]वादि घटपटादि विपरिणामजातं चेत्यर्थः ।

---

१ °**व्यादेः पर**° प्र० ॥ २ **द्रव्यं भवन**° प्र० ॥ ३ **पृथिव्यां चाश्म**° प्र० ॥ ४ °**ताल**° य० ॥ ५ °**शूक**° प्र० ॥ ६ **भवंतीति** प्र० । "द्रव्यमिति भव्यमाह । द्रव्यं च भव्ये । भव्यमिति प्राप्यमाह । 'भू प्राप्तावात्मनेपदी' [पा० धा० १८४५] । तदेवं प्राप्यन्ते प्राप्नुवन्ति वा द्रव्याणि"—इति **तत्त्वार्थभाष्ये** १।१।५। "**१८४५ भू** प्राप्तावात्मनेपदी भावयते भवते । णिचूसन्नियोगेनैव आत्मनेपदमित्येके । भवति ।"—पा० **सिद्धान्तकौमुदी** ॥ ७ °**प्रक्रियां** प्र० ॥ ८ **करकट**° प्र० । '**क्ख**' इत्यक्षरं '**रक**' इत्येवमालिख्यते स्म प्राचीनलिप्यामिति ध्येयम् । "निष्ठुरः कक्खटः क्रूरः परुषः कर्कशः खरः ॥ दृढः कठोरः कठिनो जरठः.........।"—इति **अभिधानचिन्तामणौ** ६।२२-२३ । "कतमश्च महाराज ! आध्यात्मिकः पृथिवीधातुः ? यत् किञ्चिदस्मिन् कायेऽध्यात्मं कक्खटत्वं खरगतमुपात्तम् । तत् पुनः कतमत् ? तद्यथा—केशा रोमाणि नखा दन्ता इत्यादि । अयमुच्यते आध्यात्मिकः पृथिवीधातुः । कतमश्च महाराज ! बाह्यः पृथिवीधातुः ? यत् किञ्चिद् बाह्यं कक्खटत्वं खरगतमनुपात्तमयमुच्यते बाह्यः पृथिवीधातुः"—इति **शिक्षासमुच्चये** पृ० २४५ ॥ ९ °**सत्त्वेति** प्र० ॥ १० °**नये तु त एव** इत्यपि पाठः स्यादत्र ॥ ११ **पटादीं च** भा० ॥ १२ **विण्वस्ये**° य० ॥ १३ °**द्विस्यंदि**° भा० ॥ १४ **विण्वं** य० ॥ १५ °**व्यपादि**° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालोऽपि युगपदयुगपत्कालस्वतत्त्वभूतपदार्थनिरूपितवृत्तिः – अनेकप्रभेदोपवर्ण्यास्तिकायपृथिव्यादियुगपद्वृत्तिः, आदान-धारण-पाचन-निसर्जनसलिलनिर्वर्त्यव्रीहिकणौदनादिनिर्वृत्तिवृत्तिषु अयुगपद्वृत्तिः ।

द्रव्याद्यपि तु रूपादिशिवकादियुगपदयुगपद्भाविभावाः, उक्तवदेव तथा

कालोऽपीत्यादि । कालोऽपि परविषयं सामान्यम् । परिणामवती क्रियैव कालः, कलनं कालः, कलासमूहो वा।[1] यथा – मासमास्ते गोदोहमास्त इति । वर्तनं भवनमिति तत्पर्यायो वर्तनालक्षणो वा द्रव्यात्मा । स च **युगपदयुगपत्कालस्वतत्त्वभूतपदार्थनिरूपितवृत्तिः,** पूर्वोक्तरूपादिशिवकादिपरिणतिवद्[2] वक्ष्यमाणास्तिकायसलिलनिर्वर्त्यपृथिवी व्रीहिकणौदनादिवद्वा[3] । तद्यथा – युगपद्वृत्तिस्तावद**नेकप्रभेदोपवर्ण्ये**त्यादि[4] यावद् **युगपद्वृत्तिः** । साङ्ख्यादिप्रक्रियोपवर्ण्यास्त एव हि धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवा**स्तिकायाः** सप्रभेदाः, अथवा **पृथिव्यादय** एव **अस्तिकायाः** विद्यमानकायाः, ते यत्र युगपद्वर्तन्ते स तद्युगपद्वृत्तिः कालः । यत्र च **आदान-धारणे**त्यादि यावन्निर्वृत्तिवृत्तिष्वयुगपद्वृत्तिरिति । यथोक्तम् – ५ १०-२

> आदानीयास्त्रयो मासास्त्रयो मासास्तु धारणाः ।
> पाचनीयास्त्रयो मासास्त्रयो मासौ विसर्जनाः[5] ॥ [ ]

इति । ई(प्र)दान्याः[6] पूर्वे उत्तरः पूर्वोत्तरश्च[7] वायवः, शेषाः शोषकाः । अत्रापि प्रतिप्रक्रियमादित्यसन्तापापीतसलिलधारण-पाचन-[नि]सर्जनवत्, धूम-ज्योतिः-सलिल-मरुत्सङ्घातमेघादान-धारण-पाचन-[नि]सर्जनवत्, विस्रसापरिणतपुद्गलविकाराभ्रत्वादिवद्वा, पुद्गलाविनाभावाद् देववैक्रियादेरपि आदानाद् धारणम्, धारणात् **पाचनम्**, पाचनान्निसर्जनम् । निसृष्टस्य सलिलस्य कार्याणि भूमिद्रवीभाववनस्पत्योषधिप्ररोहपुष्पफलप्राणिशरीराप्यायनादीनि । ततोऽपि कार्यान्तराण्याहारबलवपुःस्थामादीनि[8] घटपटादिनिर्वृत्तयश्चेत्यादि[9] । **निर्वृत्तयः** कार्याणि, तासां निर्वृत्तीनां **वृत्तिष्वयुगपद्वृत्तिः** काल एव, तदुपष्टम्भजन्यत्वात् तेषां भावानामिति । ११-१

इदानीं भाव उच्यते । स तु पूर्वोक्तेषु द्रव्यादिषु भवनं भाव इत्युक्तत्वादुक्त एव[10] । तद्दर्शयन्नाह – **द्रव्याद्यपि** त्वित्यादि । **गुणपर्यायवद् द्रव्यम्** [तत्त्वार्थसू० ५।३७] इत्युक्तम् । गुणा **रूपादयः, शिवकादयः** पर्यायाः, ते **युगपदयुगपद्भाविनः,** त एव **भावाः** । क्षेत्रकालौ[11] च द्रव्यमेव, भवनसामान्याद्भाव एव वा । तस्मान्न तानि द्रव्यादीनि युगपदयुगपद्भाविभावव्युदासेन भवितुमर्हन्ति

---

१ **कालनं कालः कालसमूहो वा** प्र० ॥ २ °**णतवद्** य० ॥ ३ °**व्रीहिनरौदनादिवद्वा** इति सर्वास्वपि प्रतिषु पाठ उपलभ्यते, किन्त्वत्र **नर**शब्दस्यासङ्गतत्वाद् युगपदयुगपत्कालस्वतत्त्वभूतपदार्थनिरूपणप्रस्तावे युगपद्भाविनां पृथिव्याद्यस्तिकायानामयुगपद्भाविनां च व्रीहि-कणौ-दनादीनां विवक्षितत्वाच्च °**व्रीहिकणौदनादिवद्वा** इति पाठः सम्भावितोऽस्माभिः । अथवा "निसृष्टस्य सलिलस्य कार्याणि भूमिद्रवीभाववनस्पत्योषधि**प्ररोह**पुष्पफलप्राणिशरीराप्यायनादीनि" इत्यनन्तरं वक्ष्यमाणत्वात् तदनुसारेण °**व्रीहिप्ररोहणादिवद्वा** इत्यपि पाठोऽत्र स्यादिति ध्येयम् ॥ ४ °**वर्णेत्यादि** प्र० ॥ ५ **विसर्जनाः** य० ॥ ६ **इदान्याः** य० । एतदनुसारेण **इहान्त्याः** इत्यपि पाठः सम्भवेदत्र । अस्मिंस्तु पाठे '**इह** आदानीयादिषु चतुर्षु **अन्त्या** विसर्जनाः पूर्वे उत्तरः पूर्वोत्तरश्च वायवः' इत्यर्थसङ्गतिर्द्रष्टव्या । अत्र **इहाऽऽप्याः** इत्यपि पाठश्चिन्त्यः ॥ ७ °**त्तरं च** प्र० ॥ ८ °**स्थावादीनि** प्र० ॥ ९ °**त्तयश्चेत्यादि** भा० । °**त्तय एवेत्यादि** य० ॥ १० **इत्युक्तत्वात् क एव** प्र० ॥ ११ °**कालौ द्रव्यमेव** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवनात् तेषाम्, अन्यथा द्रव्यादीनां वन्ध्यापुत्रवदभावत्वापत्तेः। भावोऽपि सर्ववस्तुतत्त्वव्यापी।

अत एतानि घटादिवस्त्वात्मसामान्यपक्षग्राहिणाप्यवश्यापेक्ष्याणि, प्रत्यक्षत एव तथात्मत्वात्; किमु परविषयमुख्यसामान्यपक्षवादिना? प्रत्यक्षत एव तथा तथा परविषयस्य समानस्य भवनात्, परेण समानेन भूयते।

कथञ्चिदपीति **उक्तवदेव** इत्यतिदिशति। **तथा[1]भवनात् तेषा**मिति तदेव भवनं हेतुत्वेन व्यापारयति। **अन्यथे**ति भवनसामर्थ्याभावे **द्रव्यादीनां [2]वन्ध्यापुत्रवदभावत्वापत्तेः,** न सन्ति द्रव्यादीनि भवनशून्यत्वाद् वन्ध्यापुत्रवत्। पञ्चमीनिर्देशात् तद्वैधर्म्येण भवनहे[3]तुत्वमावीतेनाह। नेष्यते च द्रव्यादीनामभावत्वम्, भावत्वमेवैषाम्। [4]भावश्च भवनसम्बन्धी घटवत्। अतो द्रव्यादीनि भवनसम्बन्धीनि। भवनं द्रव्यादीन् व्याप्नोतीत्यत आह—**भावोऽपि सर्ववस्तुतत्त्वव्यापी**ति।

अत [5]एतानीत्यादि यावद**पेक्ष्याणी**ति। एतस्मात् प्रतिपादितोपपत्तिबलाद् द्रव्यादीनि भावपर्यन्तानि भवन[6]प्रधानान्यप्रत्याख्येयानि तस्माद् **घटादिवस्त्वात्मसामान्यपक्षग्राहिणापि** स्वविषयसामान्यवादिनेत्यर्थः। **अपि**[7]शब्दात् स्वग्राहरक्तमनसापि सता त्वया **अवश्या[8]पेक्ष्याणि** सारं [9]सारमेषितव्यानीत्यर्थः। किं कारणम्? **[10]प्रत्यक्षत एव तथात्मत्वात्।** दृश्यते एव हि द्रव्याद्येकरूपभवनसामान्यतोक्तविधिना। **किमु परविषयमुख्यसामान्यपक्षवादिने**ति, द्रव्यादीनां परस्परभिन्नानां समानभवनान्मुख्यं सामान्यम्,

११-२ [11]लोकश्चैवंविधसामान्यवादी, व्यवहारनयानुयायित्वात्। [12]न तु यथा [13]साङ्ख्यादिषु सादृश्यान्यापोहतत्त्वादि [14]प्रमाणविरुद्धम्। [15]तच्चोपचरितं भवितुमर्हति न मुख्यम्, सादृश्यानुवृत्तीनां लोके 'समानेन भूयते' इति सामान्यलक्षणस्यादृष्टत्वाद् दृष्टत्वाच्चास्मदिष्टस्य लौकिकस्य सामान्यस्येत्यत आह—**[16]प्रत्यक्षत एव तथा तथा परविषयस्य समानस्य भवनात्**, तेन तेन प्रकारेण द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षयुगपदयुगपद्भाविभावस्य [17]रूपादिशिवकादिरूपस्य समानस्य भवनात्। सर्वतन्त्रसिद्धान्तेन व्याकरणेन लोकानुवृत्तिना नि[18]रुक्ति तत्त्वानुवादिनीमप्याह—**परेण समानेन भूयत** इति, समानो भवतीत्यर्थः। समानभावः सामान्यम्, यद् भवन्ति सर्वभावाः स तेषां भाव इति स्वार्थिको भावप्रत्ययः। स्वभावसम्बन्धार्थो चात्र कर्तृलक्षणा षष्ठी 'तस्य भावः' इति। यथा—'शिलापुत्रकस्य शरीरम्' इति।

---

१ °भावनात्तेषां° भा०। °भावना तेषा° य० ॥ २ वंध्यादिपुत्र° य० ॥ ३ हेतुमावीतेनाह य० ॥ ४ भावं च प्र० ॥ ५ एवानीत्यादि प्र० ॥ ६ °प्राधान्यप्रत्या° य० ॥ ७ °शब्दाश्च ग्राह° प्र० ॥ ८ श्यापेक्षाणि प्र० ॥ ९ मारसषितव्यानी° भा०। मारमषितव्यानी° य० ॥ १० प्रत्यक्ष एव प्र० ॥ ११ लोकंविवंविध° प्र० ॥ १२ ननु यथा प्र० ॥ १३ सांख्यादीषूसादृ° भा०। एतदनुसारेण सांख्यादीष्टसादृ° इत्यपि पाठोऽत्र स्यात्, यतः "दृष्टत्वाच्चाऽस्मदिष्टस्य लौकिकस्य सामान्यस्य" इति वक्ष्यतेऽनन्तरमेव ॥ १४ प्रमाणावि° भा० ॥ १५ तच्चोपवनितं प्र० ॥ १६ प्रत्यक्ष एव प्र० ॥ १७ रूपाशिवकादि प्र०। अत्र रूपशिवकादि° इत्यपि पाठः सम्भवेत् ॥ १८ निरुक्तितत्वादिवादिनाप्याह य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा च सर्वस्यास्य जगतो द्रव्याद्यपेक्षया तथा तथा विशेषणैकता, तद्भेदत्वसम्बन्धत्वाभ्याम्, विकचसुरभिशरन्नीलोत्पलवत्। तत्रान्यस्य कस्यचिदपोह्यस्य सदृशस्य तत्तत्त्वस्य वा समानस्याभावात् सामान्यानुपपत्तिः। उदितदोषानुबद्धा एकसर्वत्वात् स्वसामान्यापत्तिर्वा।

एवं सामान्यं व्याख्यायेदानीं [1]तदर्थोपसंहारेणानुमानमाह – **तथा चे**त्यादि यावद् **विशेषणैकता**। **तथा चे**ति एवं च कृत्वा प्रतिपादितपर[2]स्परभेदत्वे परस्परसम्बन्धैक्यापत्तौ च **सर्वस्यास्य जगतो द्रव्य**देशकालभावा**पेक्षया** तेन तेन प्रकारेण **विशेषणैकता**। द्रव्यं क्षेत्रेण कालेन [3]भावेन च विशिष्यते, द्रव्येण क्षेत्रमितरौ च, एवं [4]तैस्तत् परस्परतश्च तानि। यथाङ्गुलिर्वक्रप्रगुणताद्ययुगपद्भाविभावैः रूपादियुगपद्भाविभावैः [5]देशेन तद्र(तद्द्र)व्यान्तरैश्च विशिष्यते 'अङ्गुलिर्वक्रा ऋज्वी प्रदेशेऽस्मिन्नाकाशस्य वर्तते प्रदेशिनी अधुना' इत्यादि तथैकैकमपि वस्तु घटपटादि न [6]केनचिन्नाभिसम्बध्यते तथा तथा [7]विशिष्यते [8]च **तद्भेदत्वसम्बन्धत्वाभ्याम्**। प्रयोगश्चात्र – [9]द्रव्यादिविशेषणसम्बन्धी घटः, वस्तुभेदत्वे १२-१ सति तत्सम्बन्धत्वात्, **विकचसुरभिशरन्नीलोत्पलवत्**। **विकच**-मुकुलितादि क्षेत्रविशेषणम्, **सुरभि**-[10]**नील**तादि सहक्रमभाविरूपादिभावविशेषणम्, [11]**शर**दिति कालविशेषणम्। **उत्पल**मिति द्रव्यम्, तदपि तेषां विशेषणमेव व्यवच्छेदकत्वात्।

एवमनेकत्वसामान्यमापाद्य प्राक् [12]प्रतिज्ञातं [13]परविषयतायामप्यसमानावस्थानादसामान्यं परेषामिति तद्दर्शयति—**तत्रान्यस्य कस्यचिदपोह्यस्य सदृशस्य तत्तत्त्वस्य वा [14]समानस्याभावात् सामान्यानुपपत्तिः**। एवमापादितपरस्परविशिष्टैकत्वजगतो घटैकत्वमात्रत्वेऽर्थान्तराभावात् कुतोऽर्थान्तरापोहलक्षणं विद्वन्मन्याद्यतनबौद्ध[15]परिक्लृप्तं सामान्यम्? कुतो वा समानं दृश्यत इति सदृशम्, सदृशभावः सादृश्यमिति सादृश्यलक्षणं सामान्यम्, [16]सदृशस्य तस्याभावात्? कुतो वा तत्तत्त्वम्? तस्य भावस्तत्त्वम्, तत्तत्त्वमस्य तत्तत्त्वम्, तत्तु भिन्ने भवति समानानेकार्थानुवृत्तिलक्षणं सत्त्वद्रव्यत्वगुणत्वकर्मत्वादि।

स्यान्मतम् – परस्परविशिष्टैकत्वादेव तत्समुदयः परविषयसामान्यमिति। एतच्चायुक्तमित्यत आह— **उदितदोषानुबद्धैकसर्वत्वात् स्वसामान्यापत्तिर्वा**। यदुक्तं प्राक् '[17]स तत्समुदायका[18]र्यत्वात् सामान्यम्' इत्यत्र एवं सत्यात्मभेदः – सुखं सुखं च सुखादिसमुदयश्च, तदात्मत्वात्। एवं शेषावपि

---

१ तदर्थोप्रसारेणा° य० ॥ २ °स्परभेदात्त परस्पर° भा० । °स्परभेदंते परस्पर° य० ॥ ३ भावेन विशि° य० ॥ ४ तैभूत् पर° य० ॥ ५ अत्र देशेन द्रव्यान्तरैश्च इत्यपि पाठः सम्भाव्यते ॥ ६ केनचिंताभि° भा० ॥ ७ विशेष्यते य० ॥ ८ चातद्भेद° भा० ॥ ९ द्रव्यादिविशेषेण य० ॥ १० °मीलनादि य० ॥ ११ शरदिति कालविशेषणम् इति पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ १२ प्रीतिज्ञानं भा० । प्रीतिज्ञान य० ॥ १३ परविषयिता° प्र० । दृश्यतां पृ० १४ पं० ६ ॥ १४ सामानस्य भा० ॥ १५ परिक्लिसं भा० । परिक्षिप्तं य० ॥ १६ सदृशस्यातस्य भा० । अस्मिंस्तु भा० पाठे 'न सः असः' इति नञ्तत्पुरुषं कृत्वा षष्ठ्यन्तं रूपं ज्ञेयम् 'अतस्य' इति, तद्भिन्नस्येत्यर्थः । तथा च 'सदृशस्यान्यस्याभावात्' इति भा० पाठानुसारेणार्थः प्रतीयते ॥ १७ दृश्यतां पृ० १२ पं० ३ ॥ १८ °कायत्वसामान्यम् य० । कायत्वमासान्यम् भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सङ्घातावस्थानभेदाद्वा घटपटवदत्यन्तभेद एव सर्वार्थानाम्। तथाहि – परमाण्वादीनां घटो भवति, घटस्य वा कपालानि । अनवस्थाने वा नित्यप्रवृत्तत्वात् सर्वार्थानां समयमपि तथा समवस्थानं नास्ति यथा समानता निरूप्येत ।

अथान्तरेण रूपप्राप्तिमुक्तिप्रत्ययाभ्यां दण्डिवद् व्यक्तिभिन्नार्थसिद्धि-

---

इत्यादि यावत् [1]सामान्यविशेषयोश्च तत्सम्बन्धित्वादेकतराभ्युपगमे नियमपक्षापत्तिरपि इति । **स्वविषयसामान्यापत्तिर्वेति** वाशब्दो विकल्पार्थः स्वसामान्यपक्षाभिहितसर्वपूर्वोत्तरपक्षविकल्पप्रदर्शनार्थः, 'द्रव्यं
१२-२ द्रव्यं च द्रव्यादिसमुदयश्च' इत्यादि विकल्पजातं सर्वमि[2]हापि संभवतो योज्यम् ।

तथा **सङ्घातावस्थानभेदाद्वा घटपटवदत्यन्तभेद एव सर्वार्थानाम्** । यदि सङ्ग्रहनयदर्शनेन [3]*सर्वमेकम्, अथ ऋजुसूत्रनयदर्शनेन सर्वं भिन्नम्, तथापि सङ्घातेनावस्थितानां घटपटवदत्यन्तं परस्परतो भेद एव, नैकत्वं सर्वार्थानाम् । न*नूक्तम् – सङ्ग्रहनयदर्शनेनैकमिति, सत्यमुक्तम्, तत्तु सङ्घातेनावस्थितानां नोपपद्यते दृष्टविरुद्धत्वादित्यभिप्रायः । ततः किमिति चेत्, **तथाहि** – एवं च कृत्वा, किं? **परमाण्वादीनां घटो भवति घटस्य वा कपालानि,** पिता पुत्रः कः सम्बन्ध इत्यर्थः । **घटस्य वा कपालानी**ति तद्विनाशजन्यत्वस्याप्यसम्बन्धं दर्शयति । **आदि**ग्रहणाद् व्यणुकत्र्यणुकादीनां ग्रीवादीनां चान्यत्र सङ्घातसमवस्थानभेदात् समवस्थानकृत एव तेषां सम्बन्धः, तथा च समानं [4]भवन्ति ते ।

स्यान्मतम् – एवं व्याख्यातुस्तवैव मतेन परस्परविलक्षणानामर्थानां भेदादेवानवस्थानं प्राप्तम्, द्रव्यादिभेदभिन्नानामन्योन्यनिरपेक्षाणां सङ्घातसमवस्था[5]नाभावादिति । अत्रोच्यते – **अनवस्थाने वा नित्यप्रवृत्तत्वात् सर्वार्थानां समयमपि तथा समवस्थानं नास्ति यथा समानता निरूप्येत,** परस्परनिरपेक्षोत्पादविनाशत्वादित्यर्थः ।

एवं सर्वैकभिन्नपक्षयोः [6]सामान्याभाव उक्तः । पक्षान्तरेऽपि वक्तुकामः ग्राहयति – **अथान्तरेण रूपप्राप्ति**मित्यादि यावत् **सिद्धिरिष्यत** इति । अन्तरेणैकरूपप्राप्तिं भेदरूपप्राप्तिं वा **उक्तिप्र[7]त्ययाभ्यां दण्डिवदि**ति, नागृहीतविशेषणा विशेष्ये बुद्धिरुत्पद्यते, विशेषप्रत्ययानामनाकस्मिकत्वाच्च दण्डनिमित्तदण्डिप्रत्ययाभिधानवत्, 'दण्डोऽस्यास्तीति दण्डी' इत्यत्र हि दण्डसंयोगनिमित्तौ देवदत्ते दण्ड्युक्तिप्रत्ययौ
१३-१ यथा दृष्टावेवं द्रव्यत्वघटत्वादिसामान्यविशेषसमवायनिमित्तौ द्रव्यघटाद्युक्तिप्रत्ययौ स्याताम्, नान्यथा। **व्यक्तिभिन्नार्थसिद्धिरिष्यत** इति, उक्तिप्रत्ययाभ्यां द्रव्यघटादिव्यक्तितो भिन्नस्य द्रव्यत्वघटत्वादेरर्थस्य सिद्धिरिष्यते । एवं गुणकर्[8]मणोश्च सङ्ख्योत्क्षेपणादिव्यक्तिभिन्नतत्त्वार्थसिद्धिरेषितव्या, भिन्नेष्वर्थेष्वभिन्नोक्तिप्रत्ययदर्शनादिति ।

---

१ दृश्यतां पृ० १४ पं० ४ ॥ २ °**हापि तंभवतो** प्र० ॥ ३ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः **सर्वमेकम्** इत्यत आरभ्य **सर्वार्थानाम् । न°** इत्यन्तः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ४ **भवति ते** भा० ॥ ५ °**स्थानभावादिति** प्र० ॥ ६ **सामान्यभाव** प्र० ॥ ७ °**प्रत्यया दण्डिवदिति** य० ॥ ८ °**कर्मगवाश्च** भा० रे० ही० । °**कर्मगवाश्च** भा० रे० ही० विना ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रिष्यते । न, अन्यतोऽपि तयोः सिद्धेः । तौ हि कस्मिंश्चिदेव आकारादिमात्रे, सामयिकत्वाच्छब्दादर्थे प्रत्ययस्य वृद्धव्यवहारादाकारादिमात्रे प्रतिपत्तेः । तथाहि –

अत्रोच्यते – [1]**तन्न, अन्यतोऽपि तयोः सिद्धेः ।** अपिशब्दान्नियमाभावेन लोकसिद्धं [2]नामादिकमप्युक्तिप्रत्ययकारणमाह । कयोः सिद्धिः ? उक्तिप्रत्यययोः । तन्नियमाभावं दर्शयति – **तौ हि कस्मिंश्चिदे[3]वाकारमात्रे ।** आदिग्रहणान्नाममात्रे । आकरणमाकारः, बुद्ध्या यो यथा परिगृह्यतेऽर्थः नाम्ना वा निर्दिश्यते स एव तस्याकारः । स च तावन्मात्रो न ततोऽधिकः, यथा – आकाशं डित्थ इति वा, स [4]वान्यथा वान्यथा वा, आकाशादिषु विनानुवृत्त्या आकाशकालदिशां त्वन्मतेऽप्येकत्वात् कुतो भिन्नेष्वभिन्नाभिधानप्रत्ययौ ? कुतो वाकाशादितत्तत्त्वानीति ? [5]दृश्येते चात्राप्युक्तिप्रत्ययौ । तस्मान्नास्ति सामान्यम् । घटत्वादिसामान्योपचारात्तेष्वभिधानप्रत्ययाविति चेत्, न, मुख्यसामान्यासिद्धेः साधर्म्याभावाच्चोपचाराभावात् तत्त्वपरीक्षायामुपचारस्यावकाशाभावाद् मिथ्याभिधानप्रत्ययत्वप्रसङ्गादाकाशादिष्विति ।

किञ्चान्यत् – **सामयिकत्वा[6]च्छब्दादर्थे प्रत्ययस्य ।** समयाय प्रभवति समयः प्रयोजनमस्य समयभवो वा सामयिकः । यथोक्तम् – **सामयिकः शब्दादर्थे प्रत्ययः** [वै० सू० ७।२।२०] इति, न सामान्यनिमित्त इति । तौ चाभिधानप्रत्ययौ लोकवृद्धव्यवहारात्मकौ वृद्धव्यवहारं दृष्ट्वा बालानामभिधानप्रत्ययौ [7]भवतोऽशिक्षितविचित्रशास्त्रव्यवहाराणामपि अन्वयव्यतिरेकात्मकाद्वृद्धव्यवहारादेव । न तत्त्वानुवृत्ति- १३-२
व्यावृत्तिकृतौ, लोकस्य तत्तत्त्वाद्यज्ञानात् । न तत्त्वात्, तत्तत्त्वाज्ञानात्तेषाम् ।

स्यान्मतम् – **संज्ञाकर्म त्वस्मद्विशिष्टानां लिङ्गम्, प्रत्यक्षपूर्वकत्वात् संज्ञाकर्मणः** [वै० सू० २।१।१८–१९] इत्युक्तं शास्त्रे । तस्माद् [8]**मन्वा**दयोऽन्तरालप्रलय-महाप्रलयेषु व्युच्छिन्नव्यवहाराणामपि शब्दार्थानां सम्बन्धं पश्यन्ति । तस्माद् [9]घट-घटत्वसमवायसम्बन्धोऽपि सामयिकः 'अस्यायं वाचकः' इति यथा 'अयं पनसः' इति समयं ग्राह्यते बाल इति । एतच्चायुक्तम्, अनवस्थाप्रसङ्गात् – येन शब्देन समयः क्रियते तस्यान्येन कार्य इत्यनुषक्तः, [10]उत्तरस्यार्थाप्रतीतौ अस्य समयो न [11]प्रकल्पते । तत्समयानपेक्षा स्वाभाविकी यस्यार्थे वृत्तिः स नित्य इति च शब्दार्थसम्बन्धपरिज्ञानप्रयोगव्यवहारपरम्पराया अव्यवच्छेदादुक्तम् । यथाह **पतञ्जलिः – न हि तदेव नित्यं यत् [12]ध्रुवं कूटस्थमविचाल्यनपायोपजनवि[13]कार्यनुत्पत्त्यवृद्ध्यव्यययोगि । किं तर्हि ? तदपि हि नित्यं यस्मिंस्तत्त्वं न विहन्यते । तद्भावस्तत्त्वम् । आकृतौ चापि तत्त्वं न विहन्यते** [पातञ्जलम० १।१ पस्पशा०] इति । समयप्रत्याख्यानवत् प्रतिपादनप्रत्याख्यानातिदेशो [14]**वृद्धव्यवहारादाकारादिमात्रे प्रतिपत्ते**रित्यदोषाय, 'न शब्दादेव' इति वक्ष्यमाणत्वात् ।

---

१ नत्त अन्यतो° य० । नित्त अन्यतो° भा० ॥ २ नामादिमप्युक्ति° प्र० ॥ ३ °वाह्वारमात्रे भा० ॥ ४ वान्यथा २ वाकाशादिषु य० ॥ ५ दृश्यते प्र० ॥ ६ °च्छब्दार्थे य० ॥ ७ भवतो शिक्षित° य० । भवतौ शिक्षित भा० ॥ ८ माम्वादयोन्तरालप्रत्ययमहा° प्र० ॥ ९ घटपटत्वसम° प्र० ॥ १० उत्तरास्यार्थाप्रतीतौ ऽस्य समयो भा० । उत्तरास्यार्थाप्रतीतो स्वसमयो य० ॥ ११ प्रकल्पते भा० रं० ही० विना ॥ १२ तद्ध्रुवं प्र० ॥ १३ °विकायनुत्पत्त्यवृद्ध्यव्यययोगि प्र० ॥ १४ वृद्ध्यव्यव° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तरेण तत्त्वमारब्धद्रव्याभावेऽपि छिद्रबुध्नघटादौ घटाभिधानप्रत्ययौ दृष्टौ। आभामात्रेऽपि तु तौ तत्र तत्त्वोपनिलयनात् कृताविति चेत्, स्थाणु-मृगतृष्णिकयोर्नर-सलिलत्वप्रसङ्गः, तत्र तदभिधानप्रत्ययसद्भावात्। नरत्वसलिलत्वानुपनिपाते नरसलिलोक्तिप्रत्ययौ मा भूताम्। अनुपचरितकिञ्चिद्भूताकारात्तु किञ्चिदुक्तिप्रत्ययौ स्याताम्।

तथा विशेषोऽपि। यदि स्वविषयः, विशेषविरोधः। यदि विशेषस्तत आत्मा

तत्त्वसम्बन्धादृतेऽप्यभिधानप्रत्यययोः प्रवृत्तिं दर्शयंश्चाह – **तथा ह्यन्तरेणे**त्यादि। [1]तत्त्वं हि द्रव्ये समवैति। द्रव्यञ्च द्विधा – अद्रव्यमनेकद्रव्यञ्च। अद्रव्ये त्वाकाशादौ तत्त्वाभावे[2]ऽप्युक्तिप्रत्ययावुक्तौ। अनेकद्रव्यमारब्धद्रव्यम्, तच्च समवाय्यसमवायिकारणैरारभ्यते। समवायिकारणं घटस्य कपालानि,
१४-१ असमवायिकारणं तत्संयोगाः। 'आङ्' [3]इति च विध्युपायमर्यादोपसङ्ग्रहार्थः। को विधिः? स्वतः स्वात्मनि च, [4]कः उपायः? संयोगादिनिमित्तान्तरसहितानि, का मर्यादा? आ अन्त्यावयविद्रव्यात् द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते। विनाशोऽपि कारणविभागात् कारणविनाशाद्वा। तत्र**च्छिद्र[5]बुध्ने घटे** कारणविभागा[6]दुत्पन्ने संयोगाभावादा**रब्धद्रव्याभावेऽपि घटाभिधानप्रत्ययौ दृष्टौ,** तथा कुड्यलिखिते समवाय्यसमवायिकारणाभावे शिशूनां च [7]क्रीडनके लोष्टपाषाणादौ सद्भावासद्भावस्थापनाकृते। [8]भवेदेतत् – **आभामात्रेऽपि तु** आकारमात्रे संस्थानमात्रे सादृश्यमात्र इत्यर्थः, **तौ** चोक्तिप्रत्ययौ **तत्र तत्त्वस्य** घटत्वस्योपनिलयनात् **कृतमि(कृतावि)ति चेत्,** तत्र तत्त्वाभाव उक्तः, सत्यपि च तत्त्वेऽसदिष्टाकार[9]मात्रोक्तिप्रत्ययौ चोक्तौ, अथाप्याभा[10]मात्रे तत्त्वोपनिलयनमिष्यते त्वया ततः **स्थाणु-मृगतृष्णिकयोर्नर-सलिलत्वप्रसङ्गः, तत्र तदभिधानप्रत्ययसद्भावात्** तत्तत्त्वोपनिल[11]यनाच्च, घटत्वोपनिलयनाद् घटवत्। **अनुपनिपाते नरत्वस्य** स्थाणौ **सलिलत्वस्य** मृगतृष्णिकायां **नरसलिलोक्तिप्रत्ययौ मा भूताम्,** तौ च दृष्टौ, कथमगृहीतविशेषणत्वान्नरत्वसलिलत्वानुपनि[12]पाते नायुक्तौ? तत्रोपचार[13]लभ्यौ हि तौ, इह तु लोकनये विनोपचारेण लभ्यौ। कथमिति चेत्, **अनुपचरितकिञ्चिद्भूता[14]कारात्तु किञ्चिदुक्तिप्रत्ययौ स्यातां** भवितुमर्हतः, आकारस्यासम्पूर्णस्य दृष्टत्वादेव। भवत्पक्षे पुनर्न हि तत्त्वं किञ्चिन्निलीनं [15]किञ्चिन्न निलीनमित्यस्ति।

१४-२ एवं तावत् सामान्यं विकल्पद्वये विचारितम्, विशेषोऽधुना विचार्यः। तत आह – **तथा विशेषोऽपीति**। सोऽपि द्वयीं कल्पनां नातिवर्तते – स्वविषयः परविषयो वेति। तत्र **यदि स्वविषयः, विशेषविरोधः**। विशेषस्य विरोधो विशेषाभावापत्तेः, विशेषेण विरोध आत्माभावापत्तेः। किं वाऽऽ-

---

१ तत्वं हि द्रव्यसमवैति भा०। तत्वं च द्रव्ये समवैति य०॥ २ °भावे व्यक्तिप्रत्ययाबुद्धौ। अनेक° प्र०॥ ३ इत च विध्युपायमर्यादायसंग्रहार्थः प्र०॥ ४ क इति पाठः प्रतिषु नास्ति॥ ५ °द्रबुध्ने प्र०॥ ६ °भागा उत्पन्ने प्र०॥ ७ क्रीडनकेलाबुपाषाणादौ य०॥ ८ भवेदेतदातामात्रे° य०। भवेदेतामात्रे भा०॥ ९ °मात्राऽक्तिप्र° भा०। °मात्र उक्तिप्र इत्यपि स्यादत्र पाठः॥ १० °भासमात्रे य०॥ ११ °यनात्व घट° भा०॥ १२ °पातनेनायुक्तौ य०॥ १३ लभ्यौ इ तौ भा०॥ १४ °कारातु प्र०॥ १५ किंचिन्निलीनमित्यस्ति य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न भवति, अन्यत्वाद् विशेषस्य गुणतः कालतो वा; अन्यथा घटादौ सामान्यापत्तेः। अथ आत्मा, ततो विशेषो न भवति, एकत्वादात्मनः।

अथोच्येत – नैकत्वान्यत्वविरोधदोषौ, 'आत्मैव विशेषः' इत्यनपादानादिप्रतिज्ञानात्। यद्यात्मापेक्ष एव विशेषः एक एवान्य इत्यात्मनोऽन्यथाभवनादनात्मत्वं रूपादिरूपेण घटरूपादिपूर्वोत्तराणामभावत्वम्। तथा चोभयाभावः।

त्रेण ? नेत्युच्यते, **यदि विशेषस्तत आत्मा न भवति, अन्यत्वाद्विशेषस्य**। [1]विशेषेण विरोधस्तावद् **यदि** घटादावात्मनि **विशेषो** वर्तते स्वविषयः **तत** [2]**आत्मा न, अन्यत्वाद्विशेषस्य** रूपादेर्देशतः परस्परतो विशिष्यमाणस्येति तद्दर्शयति – **गुणत** इति। **कालतो वा** प्रतिक्षणा[3]न्यान्योत्पत्त्या [4]विनंष्टेषु रूपादिषु कस्तदात्मा ? इत्यात्माभावः। तदभावे कस्य विशेषः ? **अन्यथा घटादौ सामान्यापत्तेः। अन्यथे**ति रूपादीनां समुदायैक्यापे[5]त्त्यभ्युपगमे विशेषपक्षत्यागः सामान्यपरि[6]ग्रहश्चापद्यते, तत्र चोक्ता दोषाः [7]**सुखं सुखं च सुखादिसमुदयश्च** इत्यादयः, त एवात्र 'रूपं रूपं [च] रूपादिसमुदयश्च' इत्यादयः। मा भूदात्माभावदोषः तस्मिंश्चात्माभावे विशेषाभावदोष इति पक्षान्तरं गृह्णीयात् – **अथात्मा** सविशेषः, आत्मा एक एव स एवानन्य इति। **ततो विशेषो न भवति, एकत्वादात्मनः**, घटादेर्वस्तुन एकत्वादात्मनस्तत्त्वादित्यर्थः, अन्यो हि विशेषः।

एतद्दोषपरिहारार्थ**मथोच्येत** परेण – **नैकत्वान्यत्वविरोधदोषौ**। 'आत्मनो विशेषः' इति सम्बन्धापादानयोः षष्ठीपञ्चमीनिर्देशे भेदेन 'आत्मनि विशेषः' इत्यधिकरणसप्तम्या [8]निर्देशे वा स्यातामेतौ दोषौ। किं तर्हि ? **'आत्मैव विशेषः' इत्यनपादानादिप्रतिज्ञाना**न्नैकत्वान्यत्वविरोधदोषौ ममेति। १५-१
अत्रोच्यते – **यद्यात्मापेक्ष एव विशेष** इति तत्प्रत्युच्चारणम्, द्वितीयविकल्प आयातो विशेषस्य विरोध इति। अत्राप्ययं दोषः – **एक एवान्य इत्यात्मनोऽन्यथाभवनादनात्मत्वं रूपादिरूपेण**। किं वाङ्मात्रेण ? नेत्युपपत्तिमाह – **अन्यथाभवना**दिति। तन्निदर्शयति – **घटरूपादिपूर्वोत्तराणामभावत्वम्**। तत् कथम् ? [10]अन्येऽन्ये रूपादय एव भवन्तीति घटाभावः, तदभावे कस्य [11]विशेषः ? घट [12]एव वान्यथा [13]भवतीति रूपाद्यभावः। ततश्चोत्तरेषां शिवकादीनां पिण्डावस्थातः पूर्वेषां च मृत्त्वादीनामभावः। अथवा घटतोऽन्यत् पटत्वम्, रूपतोऽन्यच्छब्दादित्वम्, तेन प्रकारेण **अन्यथाभवनाद्** घटा[14]भावो रूपाद्यभावश्च। **तथा चोभयाभावः**, आत्माभावो विशेषाभावश्च अथवा रूपाद्यभाव[15]प्रापितो घटात्माभावो घटात्माभावप्रापितो रूपाद्यभाव इति।

---

१ विशेषेण विरोधस्तावद् यदि घटादावात्मनि विशेषेण विरोधस्तावद् यदि घटादावात्मनि इति सर्वासु प्रतिषु द्विर्भूतः पाठः ॥ २ आत्मनोन्यत्वाद्वि° य०। आत्मानोऽन्यत्वाद्वि° भा० ॥ ३ °णान्यान्योत्पत्य य०। °णानान्योत्पत्त्य भा० ॥ ४ विनंष्टपुरुपादिषु कस्तदात्मा प्र० ॥ ५ °पत्त्याऽभ्युप° भा०। °पत्या-ऽभ्युप° य० ॥ ६ °ग्रहं चाप° प्र० ॥ ७ पृ० १३ पं० १ ॥ ८ निर्देश वा प्र० ॥ ९ °भवनात्मत्वं य० ॥ १० अन्योन्यरूपा° य०। अन्ये रूपा° भा० ॥ ११ विशेषाः भा० ॥ १२ एवान्यथा भा० ॥ १३ भवंतीति प्र० ॥ १४ °भावौ रूपाद्यभावं च प्र० ॥ १५ °प्रासितो य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एतदनिष्टतायां तु परापेक्षपक्षापत्तिः। तथापि द्रव्यभेदः। का हि वृत्तिसाहायकादृते सिद्धवृत्तेर्घटस्य पटाद्यपेक्षा? तथात्मैवास्य भिद्येत। अथ वा पार्थिवत्वादपेक्षा, समानजातित्वादपेक्ष्यते घटेन पटः; विजातीयात् तर्हि विशेषाभाव उदकादेः। द्रव्यत्वापेक्षा तत्रापीति चेत्, विजातीयाभ्यां गुणकर्मभ्यामविशेषः। तत्रापि सत्तापेक्षेति चेत्, विजातीयात् तर्ह्यत्यन्तासतो जातेरिवाजातेः कार्याद्वा कथम्? इति भावाभावयोरविशेषः। तथापि चोभयाभावः।

एतदनिष्टतायां[1] **तु परापे[क्षप]क्षापत्तिरिति**। 'घटादेरात्मनोऽन्यथाभवनादनात्मत्वं[2] ततश्च विशेषस्यात्मनश्चाभावः' इत्युक्तविरोधदोषानभ्युपगमे **परापेक्षपक्षः** 'परविषयो विशेषो न स्वविषयः' इत्यापन्नः। स किन्नामको दोष इति चेत्, स्वपक्षपरित्यागनामकः। उपचर्यं[3] च एवमभ्युपगम्यमानेऽप्ययमपरो दोषः – **तथापि द्रव्यभेदः**, द्रव्यस्य घटादेरात्मनः स्वरूपपररूपाभ्यां द्विधात्मावस्थानं प्रसक्तं परापेक्षत्वाद्विशेषस्य। स्यान्मतम् – पटाद्यवृत्त्यात्मक एव घटः पटाद्यपेक्षत इति। तन्नेत्युच्यते – **का हि वृत्तिसाहायकादृते सिद्धवृत्तेर्घ[टस्य प]टाद्यपेक्षा**। सहाय[भावः साहाय]कम्, वृत्तेः साहायकं[4] वृत्तिसाहायकम्[5], घटवृत्तेः सहायभावं पटस्य मुक्त्वा स्वत एव सिद्धवृत्तेः पूर्वमेव घटस्य कान्या उत्तरकाला पटाद्यपेक्षा? नास्त्येवेत्यर्थः। किं कारणम्? प्रयोजनाभावात्। **तथात्मैवास्य भिद्येत**, तेन प्रकारेण **तथा** घटस्वरूपमेव भिद्येत, सहायापेक्षवृत्तित्वात्, शिबिकोद्वाहात्मवृत्तिवत्।

१५-२

अथ वा पार्थिवत्वादपेक्षा, अस्ति घटस्य पटाद्यपेक्षेत्याह। का सा? समाना जातिः। **समानजातित्वादपेक्ष्यते घटेन पटः**। का समानजातिः? पार्थिवत्वम्। विशेषः कथमिति चेत्, घटात्मत्वाद्विशेषः पटादेरिति। अत्रोच्यते – **विजातीयात् तर्हि विशेषाभाव उदकादेः**। यदि समानजात्यपेक्षया विशेष इष्यते एवं तर्ह्यसमानजातीयादुदकादेर्घटस्य विशेषाभावः प्राप्नोति। अनिष्टं चैतत्। **द्रव्यत्वापेक्षा तत्रापीति चेत्**, द्रव्यत्वसामान्यापेक्षया[6] घटस्य उदकादेर्विशेषो भविष्यतीति चेत्। **विजातीयाभ्यां गुणकर्मभ्यामविशेषः**, न हि विजातीययोर्गुणकर्मणोर्द्रव्यत्वापेक्षास्ति, ताभ्यामपि च घटस्य विशेष इष्यते। **तत्रापि सत्तापेक्षेति चेत्**[7], **विजातीयात् तर्हि अत्यन्तासतः**[8] 'अविशेषः' इति वर्तते। एवमपि खरविषाणादेरत्यन्तासतो विशेषाभावः स्यात्, अपेक्ष्याभावात्। किमिव? **जातेरिव अजातेः**। पार्थिवत्वजातेश्च भवत्सिद्धान्तेन अपगतजातेर्जात्यन्तरापेक्षा नास्ति, तस्याः[9] कथं जात्यन्तरादुदकादेर्वा व्यक्त्यन्तराद् विशेषो भवति, अपेक्षाभावात्[10]? **कार्याद्वा कथं** 'विशेषः' इति वर्तते। कार्यं हि भवत्सिद्धान्ते प्रागविद्यमानं समवाय्यसमवायिकारणसान्निध्ये पश्चादुत्पद्यते[11], 'क्रियागुणव्यपदेशाभावा-

१६-१ दसत् कार्यम्' इति सिद्धान्ताभ्युपगमात्, कारणावस्थायां कारणानां कार्यस्यासत्त्वादेव अपेक्षा नास्तीति

---

१ °तायां मु परापेक्षोपपत्तिरिति य० ॥ २ °त्मत्वं नतंच विशेष° भा० ॥ °त्मकत्वं नतंच विशेष° य० ॥ ३ उपचयं च भा० ॥ ४ सहायकं प्र०। "योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्" [५-१-१३२] इति पाणिनिसूत्रेण 'साहायकम्' इत्येव साधु ॥ ५ °वृत्तिसहा° य० ॥ ६ द्रव्यत्वं सामा° प्र० ॥ ७ तत्रापि सापेक्षेति प्र० ॥ ८ अत्यंतासतासतः य०। अत्यंतासतासतासतः भा० ॥ ९ तस्या कथं भा०। तस्यां कथं रं० ही० विना य०। तस्यात्कथं रं० ही० ॥ १० अपेक्ष्याभावात् रं० ही० ॥ ११ पंचात्पद्यते प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्थिवत्वादितुल्यत्वाच्च तद्वत् तदात्मत्वं, तत्तत्त्वेन अपेक्ष्यत्वादिति विवेक-

---

विशेषाभावः प्राप्तः । निष्पन्ने चोपरतव्यापारावस्थायां सिद्धत्वात् कार्यस्य कारणानां कारणत्वाभावात् कार्यकारणविशेषाभावः । इतिशब्दो हेतूपसंहारार्थः, इत्युक्तहेतुपारम्पर्याद् **भावाभावयोरविशेषः,** यथा पूर्वोक्तविधिना सतो[1]ऽसदपेक्षाऽभावाद् विशेषाभावः, एवमसतोऽपि सदपेक्षाऽभावादविशेषः । असतो वा कापेक्षा ? एवमनयोरविशिष्टत्वात् [3]सत्त्वमेव वा अभावस्य भाववत्, असत्त्वमेव वा भावस्य अभाववत् । **तथापि चोभयाभावः,** भावाभावयोरभावः सामान्यविशेषयोरात्मविशेषयोर्वा घटादेरिति ।

एवं तावद् घटादेः पार्थिवत्वाद्यपेक्षा न युक्ता । अभ्युपेत्यापि तदपेक्षां[2] **पार्थिवत्वादितुल्यत्वाच्च[4] तद्वत् तदात्मत्वम्** । कार्यस्य घटस्य कारणेन मृदा सह **पार्थिवत्वेन** धर्मेण **तुल्यत्वात् तद्व**दिति घटस्य घटभवनात्मत्ववत्[5] **तदात्मत्वं** मृत्त्वं, पार्थिवत्वात्मघटत्ववद्वा । किं कारणम् ? **तत्तत्त्वेनापेक्ष्य[6]त्वात्** । तस्य भावः तत्त्वम्, भवनं भावः, तस्य तत्त्वं तत्तत्त्वम्, **तत्तत्त्वेनापेक्ष्यत्वात्**, घटभवनवद[7]पेक्ष्यते हि पार्थिवत्वम्, तस्मात् प्राप्तं **तदात्मत्वं** घटत्वं[8] पार्थिवत्वस्य घटात्मवद् घटत्वेनापेक्ष्यत्वात् । **इति**शब्दो हेत्वर्थे, अतस्तदा[9]त्मत्वादपेक्ष्यमाणस्य **विवेकयत्नार्थहानिः** विशेषार्थापेक्षाप्रतिपादनयत्नहानिः । **अविशेष** इति, एवं च कृत्वा स एव अविशेषः । **आदि**ग्रहणात् द्रव्यत्वादितुल्यत्वात् [10]सत्त्वतुल्यत्वादित्येवमेवाविशेष आपाद्यः ।

स्यान्मतम्—अयं विशेष एव न भवति, आपेक्षिकत्वात् सामान्यविशेषाणां द्रव्यत्वादीनामौपचारिकत्वाच्च । **द्रव्यत्वं गुणत्वं [कर्मत्वं] च सामान्यानि विशेषाश्च** [वै० सू० १।२।५] इत्युक्तानि, किं १६-२
पुनर्गोत्वघटत्वादीनीति ? कस्तर्हि विशेषो मुख्यः ? अन्त्य एव । सामान्यमपि मुख्यं भाव एवेत्यभिप्रायः । यस्मादणुष्वेका[11]काशदेशातीतप्राप्तेषु अन्यत्वज्ञानाभिधानप्रभावविभावितोऽन्त्यो विशेषः, न हि आकस्मिकावन्योक्तिप्रत्ययौ, तस्मादस्त्यसौ । स एव च विशेषो मुख्यः । यथोक्तम्—**अन्यत्रान्त्येभ्यो विशेषेभ्यः** [वै० सू० १।२।६] इति । तथा भाव [एव] च मुख्यसामान्यम्, [12]**सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु द्रव्यगुणकर्मभ्योऽर्थान्तरं सा सत्ता** [वै० सू० १।२।७-८] इति वचनात् । द्रव्यत्वादीनामौपचारिक[13]त्वात्तद्व्यात्मतयोपपादितमिति ।

---

१ **सतोदसदपेक्षा**° प्र० ॥ २ **तदपेक्षा**° य० ॥ ३ **सत्वमेवावभावस्य** प्र० । '**सत्वमेवाभावस्य**' इत्यपि पाठः सम्भवेदत्र ॥ ४ °**त्वाच्चा तद्वत्** भा० ॥ ५ **घटभावनात्सत्ववत्** प्र० ॥ ६ °**नापेक्षत्वात्** प्र० ॥ ७ °**घदनपेक्ष्यते हि** भा० । °**वदनपेक्ष्यत्वे हि** य० ॥ ८ **घटत्वं** भा० प्रतौ नास्ति ॥ ९ °**दात्मतादपे** प्र० ॥ १० **सत्यतुल्य**° य० ॥ ११ °**काशवेशाती**° य० । °**काशवेत्साती**° भा० । "आकृतिः संस्थानम् । परिमण्डलसंस्थानाः सर्व एव परमाणव इति तुल्याकृतित्वं पार्थिवाणूनां पार्थिवाणुभिः सर्वैः समानगुणत्वम् । 'अणुमनसोश्चाद्यं कर्म' [वै० सू० ५-२-१३] इत्यदृष्टकारितक्रियावत्त्वं सर्वेषां समानमिति । आधारोऽप्येकदेशः । तस्मादाकाशदेशात् कश्चित् परमाणुरतिक्रान्तः, कश्चिच्च तत्समकालमेव तत्र आयातः । तत्र 'अयमन्यः पूर्वस्मात्' इति अन्यप्रत्ययो निर्निमित्तः परमर्षेरपि न भवति । दृष्टश्च अन्यप्रत्ययः । तस्य अन्यप्रत्ययस्य यो हेतुः सोऽन्त्यविशेषस्तस्मात् परमाणुद्रव्यादन्य इत्येवं नैगमनयस्य बुद्धिः"—इति **विशेषावश्यकभाष्यस्य कोट्टार्यवादिगणिमहत्तर**विरचितायां **वृत्तौ** पृ० १५५-२ ॥ १२ दृश्यतां पृ० ६ टि० १ ॥ १३ °**कत्वात्तद्व्यात्मतयो**° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत्नार्थहानिः, अविशेषः । अन्त्येऽपि तद्द्रव्यादिप्रभेदगतिग्राह्यत्वात्, अन्यथा योगिनामज्ञानप्रसङ्गात् ।

अत्रोच्यते – **अन्त्येऽपि तद्द्रव्यादिप्रभेदगतिग्राह्यत्वात्** [1] । अन्ते भवोऽन्त्यः [2], अन्त्येऽपि तस्मिन् [3] विशेषे विशेषाभाव इति **अपि**शब्दात् सम्बन्धः । को हेतुः ? **तद्द्रव्यादिप्रभेदगतिग्राह्यत्वात्** । द्रव्यमादिर्येषां त एते द्रव्यादयः द्रव्यक्षेत्रकालभावाः, तेषां प्रभेदः तत्प्रभेदः, तत्प्रभेदेन **गतिः** परिणामो वृत्तिर्विकल्पः, यथा [4] 'अस्य कार्यस्येयं गतिः' इति दृष्टत्वात् । तया गत्या ग्राह्यत्वम्, कस्य ? अन्त्यविशेषस्य । तस्मात् तद्द्रव्यादिप्रभेदगतिग्राह्यत्वाद् नान्त्यविशेषः कल्प्यः, द्रव्यादिव्यतिरेकेण प्रत्यक्षानुमानाभ्यामग्राह्यत्वात् तत्स्वरूपेणैव ग्राह्यत्वाच्च । तद्यथा – योगी प्रत्यक्षेणैकं परमाणुं पश्यन् द्व्यणुकत्वात् प्रच्युतं पश्यति अन्यं त्र्यणुकत्वात् प्रच्युतमन्यं [5] द्व्यणुकसमवेतमन्यं त्र्यणुकसमवेतं [6] च, द्रव्यतः स्वत एव च भिन्नानि तानि परमाण्वादिद्रव्याणि पश्यति, तत्र किमन्त्यविशेषेण ? एवं [7] क्षेत्रतो ऽप्यूर्ध्वभागस्थितमेकमपरमर्वा-
१७-१ ग्भागस्थितम् । कालतोऽपि किञ्चित् [8] प्रथमे समये स्थितम्, अन्यं द्वितीये स्थितमागतं वा । युगपदागतस्थितयोरपि [9] द्रव्यक्षेत्रभावकृतं नानात्वमस्त्येव । भावतः किञ्चित् [10] कृष्णं शुक्लं किञ्चित् सुरभिमसुरभिं तिक्तं कटुकं वेत्यादि, अथवा कृष्णमन्यं कृष्णतरं कृष्णतमं द्विगुणत्रिगुणसङ्ख्येयासङ्ख्येयानन्तगुणकृष्णादिं वा [11] । एवं शेषवर्णगन्धरसस्पर्शैश्च सप्रभेदैर्दर्शनं वाच्यम् । **अन्यथे**ति परस्परविशिष्टद्रव्यादिविशेषाभावे विषयनिरपेक्षत्वाद् **योगिनामज्ञानप्रसङ्गात्** । अवश्यं द्रव्यादयो विषयाः स्वत एव विशिष्टा एषितव्याः । न चेत्, योगिनो मिथ्याज्ञानप्रसङ्गः, अन्यथास्थितस्यार्थस्य अन्यथादर्शनात् । अन्त्यविशेषाणां च परस्परविशेषोक्तिप्रत्ययप्रवृत्तौ निमित्तान्तरं कल्प्यम् । स्वत एव विशिष्टत्वेऽन्त्यविशेषस्य कल्पना वा त्याज्या, परमाणूनामपि तद्वद् विशेषो निमित्तनिरपेक्षः किं नेष्यते ? विशेषेष्वपि निमित्तान्तराणि चेत्, अनवस्थाप्रसङ्गः, ततश्च विशेषोक्तिप्रत्ययानुपपत्तिरेवेत्यलं प्रसङ्गेन । स्थितम् – न स्वविषयो विशेष इति ।

परविषयविशेषपरीक्षावसरः, तत आह – **परविषयतायां तु विशेषस्यानवस्थानादविशेषः ।** ननु प्रागप्युक्तम् – **परापेक्षपक्षापत्तिर्वा** [12] इति, सत्यम्, तत्र [13] उपात्तपरित्यागादहृदयत्वापादनद्वारेण प्रसङ्गतोऽन्येऽपि

---

१ लीं० विनान्यत्र – **तत्तद्द्रव्यादि**° य० । **तद्रव्यादि** भा० ॥ २ **अन्त्ये भवो** प्र० । "अन्तेषु भवा अन्त्याः" [प्रशस्त० भा० पृ० १६८] इति **प्रशस्तपादभाष्या**नुसारिण्येव **अन्त्य**शब्दव्याख्या प्रायः सर्वत्रापि बहुमता स्वीकृता च । **शङ्करमिश्र**स्तु **वैशेषिकसूत्रोपस्कारे** मतद्वयमत्रोपन्यस्यति — "अन्तेऽवसाने भवन्तीत्यन्त्याः, यतो न व्यावर्तकान्तरमस्तीत्या**चार्याः** । उत्पादविनाशयो**रन्ते** अवसाने भवन्तीत्यन्त्या नित्यद्रव्याणि । तेषु भवन्तीत्यन्त्या विशेषा इति **वृत्तिकृतः**"–**वै० सू० उप० १।२।६** ॥ ३ **तस्मिं विशेषाताव इति** भा० ॥ ४ **यथास्य कायस्येयं** भा० । **यथा कायस्येयं** य० । अत्र **'कायस्य** शरीरस्य' इत्यर्थाभिरुचौ तु यथाश्रुतो **भा**०प्रतिपाठः साधुरेवेति ध्येयम् ॥ ५ **प्रच्युताशनं द्व्यणुक**° य० । **प्रच्युद्युताशनां द्व्यणुक**° भा० । अत्र **प्रच्युतात्मानं द्व्यणुक**° इति पाठोऽपि सम्भवेत् ॥ ६ **त्र्यगुणसम**° भा० ॥ ७ **क्षेत्रतोपूर्वभागस्थितमेकपरमवाभाग**° भा० । **क्षेत्रतोपूर्धभागस्थितमेकपरमर्वाग्भाग**° य० । **ऊर्ध्व**शब्दसमानार्थक एव **ऊर्ध**शब्दोऽपि शब्दकोषेष्वस्ति । अत्र च **नयचक्रवृत्तौ** प्रायः सर्वत्रापि **ऊर्ध्व**शब्दस्थाने **ऊर्ध**शब्द एव दृश्यत इति ध्येयम् । **अवाग्भाग** अधोभाग इत्यर्थः ॥ ८ **किंचित्** प्र० ॥ ९ °**दागतयोरपि** य० ॥ १० **किंचित्** य० ॥ ११ **कृष्णादि वा** प्र० ॥ १२ पृ० २४ पं० १ ॥ १३ **तद उपात्त**° य० । **तऽपात्त**° भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परविषयतायां तु विशेषस्यानवस्थानादविशेषः । इह द्रव्यादिप्रत्यपेक्षया सर्वस्यास्य सम्बद्धत्वादेकैकस्य निरवशेषमिदं जगद् विशेषणं स्यात्, एकघटसंहतनानावस्थगुणवत् । तत्र सर्वार्थानां नित्यप्रवृत्तत्वात् समयमपि नास्ति तेषां समवस्थानं यदाश्रयो विशेषार्थोऽवस्थाप्येत, आत्तवत् ।

दोषा उक्ताः, इह तु प्राधान्येनैव अन्येन च प्रकारेण दोषाभिधानं प्रक्रियते । **अनवस्थानादविशेष** इति
साधयिष्यमाणमनवस्थानं सिद्धं कृत्वाह । यथा च प्राक् '[1]**असमानावस्थानादसामान्यम्**' इति प्रक्रम्य
सामान्याभावः प्रतिपादितस्तथेहापि तद्विपर्ययेण तदेव प्रकरणं योज्यम् – **किं कारणम् ? [2]अनवधृतैकतर-**
कार्यत्वादित्यादि सर्वं तादृगेव यावत् तै[3]त **एतानि घटादिवस्त्वात्मविशेषपक्ष[4]ग्राहिणाप्यवश्यापेक्ष्याणि,** १७-२
प्रत्यक्षत एव तथा तथा परेण विशिष्टत्वादात्मनः; किमु परविषयमुख्यविशेषवादिना ? प्रत्यक्षत
एव तथा तथा परविषयस्य विशेषस्य भवनात् परेण विशिष्टेन भूयत इति । **इहे**ति परविषयविशेषपक्षे
द्रव्यादिप्रत्यपेक्षया सर्वस्यास्य सम्बद्धत्वादेकैकस्य निरवशेषमिदं जगद् विशेषणमिति, पूर्ववदेव
द्रव्यं द्रव्यान्तराणि क्षेत्रं कालं भावं च प्रत्यपेक्षते स्वप्रभेदान् परप्रभेदांश्च, एवं क्षेत्रं कालो भावश्चेति सर्वं सर्वेण
सम्बद्धम्, तस्मात् सर्वस्य सम्बद्धत्वात् पूर्ववत् [5]सहक्रमवृत्तिरूपादिशिवकादिपृथिव्यादिव्रीह्याद्यङ्कुरादिसम-
वस्थानाद् द्रव्याणां क्षेत्रतोऽपि तेषामेकगतिसमवस्थानात् कालतोऽप्यनेकप्रभेदोपवर्ण्यधर्मा[च]स्तिकाय-
पृथिव्यादिपानीयादानधारणादिसमवस्थानाद् भावतोऽपि पूर्ववद् द्रव्यादिरूपादिशिवकादिभवनसमवस्थानात्
स्यादेकघटसंहतनानावस्थगुणवदिति । यथोक्तम् – **द्रव्यमेव हि तथावस्थानाद् रूपादिभावं लभते, एक-**
पुरुषपितृपुत्रत्वादिवत् [ ], द्रव्यमेव हि घटाख्यं रूपं रसो गन्धः स्पर्शः सङ्ख्या संस्थानं
शुक्लं नीलं तिक्तं कटु सुरभि मृदु कर्कशं शुक्लतरं शुक्लतमं चेत्यादिविशेषणतां नातिवर्तते । त एव ह्येते गुणाः
पर्यायाश्च नानावस्थाः परस्परविशिष्टाः परस्परस्य द्रव्यस्य च विशेषणम्, द्रव्यमेव गुणाः पर्यायाश्च ।
तथान्येऽपि द्रव्यक्षेत्रकालभावाः सप्रभेदा इति । **स्वाच्छन्दात्** पुनः [6]स्यादेतदेवं यद्येतद् वक्ष्यमाण-
दोषेण न व्याहन्येतेत्यत आह – **तत्र सर्वार्थानां नित्यप्रवृत्तत्वात् समयमपी**त्यादि यावद् **यदा-**
श्रयो विशेषार्थोऽवस्थाप्येतेति । एवं परस्परविशेषणत्वेन सर्वेऽर्था नित्यं प्रवृत्ता एवेति समयमात्रमपि
नास्ति तेषां समवस्थानम् । समवस्थानाश्रयो हि विशेषोऽवस्थाप्येत, तदभावात् कुतो विशेषः ? **आत्त-** १८-१
वदिति तत्कालावगृहीतक्षणो[7]त्पन्नविनष्टभाववदित्यर्थः । ततः किमिति चेत्, [8]समवस्थानाभावान्निराश्रयः
खपुष्पवन्नास्ति विशेषः ।

स्यान्मतम् – सम्बन्धदेशो न दूष्यते, उपेक्ष्यत इति । किमुक्तं भवति ? सम्बन्धदेशान् द्रव्यादीन् मुक्त्वा निराश्रयत्वाद् विशेषो मा भूत्, सम्बन्धदेशस्थानां तु घटपटादीनां किमिति [9]मुधा विशेषो न स्यात्

---

१ दृश्यतां पृ० १४ पं० ६ ॥ २ **अनवृत्तिकतरकायत्वात्** भा० । **अनिवृत्तिकतरकायत्वात्** य० । दृश्यतां पृ० १४ पं० ६ ॥ ३ दृश्यतां पृ० १८ पं० ३ ॥ ४ °**ग्राहिणाप्यवश्यापेक्ष्याणि प्रत्यक्षग्राहिणाप्यवश्यापेक्ष्याणि प्रत्यक्ष**° इति य० प्रतिषु द्विर्भूतः पाठः ॥ ५ **साह**° प्र० ॥ ६ **स्यादेवं** भा० ॥ ७ °**त्पश्यविनंष्ट** भा० । °**त्पत्त्य-विनष्ट**° य० ॥ ८ **संस्थानाभावा**° प्र० ॥ ९ **मुवा** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्धदेशोपेक्षायामुपात्तत्यागोऽकस्मात्, तुल्यत्वात् सामान्याभ्युपगमात्। रूपादिभेदसम्बन्ध एव विशेषः, न, अन्यासम्बन्धेऽरूपादित्वाच्छुद्धानां क्वचिदप्यभावात्। लोके दृष्टो ननु च वायुः शुद्ध एव स्पर्शः, तत्रापि हि क्षेत्रादिद्रव्यस्य रूपादयो न गृह्यन्ते, अनभिव्यक्तिसौक्ष्म्यात्, द्रव्यादिवत्।

तदाश्रयत्वाद् विशेषस्य? इति। अत्रोच्यते – **सम्बन्धदेशोपेक्षायामु[1]पात्तत्यागोऽकस्मात्।** एवं सति अकस्मादेवो[2]पात्तस्य विशेषस्य त्यागः, **सामान्याभ्युपगमात्।** कथं सामान्यमभ्युपगतमिति चेत्, **तुल्यत्वात्** सम्बन्धदेशस्थानां द्रव्यक्षेत्रकालभावप्रत्यासत्ति[3]तुल्यलक्षणत्वात् [4]सामान्यस्य समानभावस्य।

अत्राह – **रूपादिभेदसम्बन्ध एव विशेष** इति। रूपरसगन्धस्पर्शसङ्ख्यासंस्थानादीनां सप्रभेदानां सम्बन्ध एव विशेष उच्यते, त एव हि परस्परतो विशिष्यमाणा विशेषाख्या इति। अत्रोच्यते – तद् **न, अन्यासम्बन्धेऽरूपादि[5]त्वात्।** अन्यैर्द्रव्यादिभिरसम्बन्धे तेषामरूपादित्वं प्रसज्यते, यस्मात् सर्वे सर्वत्र सर्वदा सर्वथा द्रव्यक्षेत्रकालभावाविभाग[6]*सम्बद्धरसा एव हि रूपादयः। किं कारणम्? **[7]शुद्धानां क्वचिदप्यभावात्,** प्रागुक्तं द्रव्यादि*सम्बन्धाभावे रूपादिस्वरूपाभावात् तत्सम्बद्धानामेव दृष्टत्वात् सप्रभेदद्रव्यादिसम्बन्धाभावे रूपादयो न सन्त्येवेत्यरूपादित्वं तेषां प्रसक्तम्।

इतर आह – **लोके दृष्टो ननु च वायुः शुद्ध एव स्पर्शः।** स्यादरूपादित्वं यदि 'द्रव्यक्षेत्रकालरूपरसादिभिरसम्बन्धे रूपाद्यभाव एव' इत्ययमेकान्तः स्यात्, स्याच्चानुमानं यदि दृष्टेन न बाध्यते, दृष्टश्च
१८-२ वायुः स्पर्शमात्र एव, न हि दृष्टाद् गरिष्ठं प्रमाणमस्तीति। अत्रोच्यते – **तत्रापि हि क्षेत्रादिद्रव्यस्य रूपादयो न गृह्यन्ते, अनभिव्यक्तिसौक्ष्म्यात्,** वैधर्म्येण **द्रव्यादिवत्।** यथा द्रव्यादयो गृह्यन्ते प्रत्यक्षेण न तथा [8]वायौ रूपरसगन्धादयोऽनभिव्यक्तिसौक्ष्म्याद् गृह्यन्ते। किं कारणम्? चक्षुरादीन्द्रिय[9]ग्राह्यत्वपरिणत्यभावाद् हेत्वनुमेयताभावात्। यथोक्तं सङ्ग्रहान्तरे—

[10]मूर्तिः कथं न [11]वायोर्नास्वाद्येत च कथं न रूप्येत।
तद्व्यक्तिग्रहणं प्रति न शक्नु[12]यात् त्विन्द्रियैः कश्चित्॥ [ ] इति।

गन्ध[13]वन्तोऽवग्निवायवः, मूर्तत्वात्, पृथिवीवत्। एवं रसवन्तौ अग्निवायू, मूर्तत्वात्, भूम्यम्बुवत्। रूपवान् वायुः, मूर्तत्वात्, अग्निभूमिजलवत्। रूपरसगन्धस्पर्शवन्ति वाय्वग्निजलानि, मूर्तत्वात्, पृथिवीवत्। इहापि च साधर्म्यदृष्टान्त उच्यते – वातायनरेणुस्पर्शरसरूपगन्धादिवद् न गृह्यन्त इति, तेषां हि [14]रविकरोद्द्योतव्यक्तानां रूपमेव ग्राह्यम्।

---

१ °मुपांत्यत्यागो° य० ॥ २ °वात्तस्य भा०। °पांत्यस्य य० ॥ ३ 'तुल्यक्षणत्वात् य० ॥ ४ सामानभवनस्य भा० ॥ ५ °त्वादन्यैर्द्रव्यादिभिरसंबंध तेषामरूपादित्वादन्यैर्द्रव्यादिभिरसंबंधे तेषामरूपादि° इति द्विर्भूतः पाठः सर्वासु प्रतिषु ॥ ६ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः °सम्बद्धरसा इत्यत आरभ्य द्रव्यादि° इत्यन्तः पाठो भा० प्रतौ नास्ति ॥ ७ शुद्धानं य० ॥ ८ वायो रूप° भा०। अत्र 'वायो' इत्यस्य षष्ठ्यन्तत्वे भा० प्रतिपाठोऽपि साधुरेव ॥ ९ °ग्राह्यपरि° य० ॥ १० मूर्तिं कथं प्र० ॥ ११ वायोर्नास्वाप्येत य०। वायोर्णास्वाप्येत भा० ॥ १२ °या त्विन्द्रियैः कंचित् प्र० ॥ १३ °वन्तो। पग्नि° भा०। °वन्तोपग्नि° य० ॥ १४ रविकारो° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथोच्येत – एककालसहावस्थानादर्थानां विशेषो भविष्यति, अवतिष्ठते हि किञ्चित् कञ्चित् कालम्। एवमपि तथाभूतसामान्याभ्युपगमादविशेषत्वमेव। सर्वसामानाधिकरण्याच्च एकविकारेऽपि सर्वस्यान्यथात्वं जायते, तन्मात्रेऽन्यत्वात्, गन्धोनाधिकभ्वम्भोवत्।

अथ तु तद्बुद्ध्यासन्नमेव ग्रहीष्यते सामान्यविशेषयोः, एवं तर्हि द्रव्यगुणकर्मणां न सामान्यं नापि विशेषः, तेषां परस्परासत्त्यभावात्। तद्बुद्ध्या-

---

अथोच्येत परेण – यदि सम्बन्धदेशसमवस्थानादर्थानां विशेषो न भवति, **एककालसहाव[1]स्थानादर्थानां विशेषो भविष्यति,** यस्माद**वतिष्ठते हि किञ्चित् कञ्चित् कालम्,** यथा पूर्वापरस्थितघटपटाविति। ननु विशेषकारणमत्र वक्तुं प्राप्तम्, इदं तु सामान्यकारणमेव आशङ्कितमिति। अत्रोच्यते – सामान्यद्वारेण विशेषः सिद्ध्यतीति तदसिद्धिद्वारेण विशेषासिद्धिरिति सर्वत्र ग्राह्यम्। अत्राप्याचार्य उत्तरमाह – **एवमपि तथाभूतसामान्याभ्युपगमादविशेषत्वमेव।** पराभ्युपगम एव उत्तरत्वमापद्यते, एककालाव[2]स्थाने कालसामान्याभ्युपगमा[3]द् देशसम्बन्धसामान्याभ्युपगमव[4]दुपात्तत्यागोऽकस्मात् तुल्यत्वादित्यविशेषत्वमेव।

किञ्चान्यत् — प्रागुक्तविधिना **सर्वसामानाधिकर[5]ण्याच्च** विशेषस्वतत्त्वस्य परस्परापेक्षत्वा[6]द् १९-१ विशिष्यमाणत्वाद् भावानां परस्परतः सर्वं जगदेकाधिकरणम्, तत्रै**कविकारेऽपि सर्वस्य[7]** शेषस्याप्यशेषस्य तदपेक्षत्वा**द[8]न्यथात्वं** विकारो **जायते**। कुतः? **तन्मात्रेऽन्यत्वात्**। को दृष्टान्तः? **गन्धोनाधिक[9]भ्वम्भोवदिति,** यथा भ्वम्भसोरयथासङ्ख्येन गन्धोनस्य अम्भसो गन्धाधिकायाश्च भुवः त[10]द्धीनाधिकभावेन [11]विकारो दृष्टः – गन्धहीना आपः तदधिका भूरिति। तस्मान्नास्त्येव अनवस्थानान्निराश्रयः खपुष्पवद् विशेष इति।

अथ तु तद्बुद्ध्यासन्नमेव ग्र[12]हीष्यते सामान्यविशेषयोरिति। अथेत्यधिकारान्तरे। तुर्विशेषणे प्राक्तनादेशकालास[13]त्त्यधिकाराद् बुद्ध्यासत्त्यधिकारं विशिनष्टि। बु[14]द्ध्या आसन्नं, 'सः' इति बुद्धिस्तद्बुद्धिः, योऽसौ प्रथमो घटः स एव द्वितीय इति बुद्धिः। का सा? तत्त्वानुवृत्तिबुद्धिः, व्यावृत्तिबुद्धिरपि तद्बुद्ध्यासत्त्या द्रव्यत्वबुद्धौ प्रसक्तायाम् 'नापो न सिकता न शिवकादिर्घट एव' इति। यथोक्तम् – अनुवृत्तिप्रत्ययकारणं सामान्यम्, व्यावृत्तिबुद्धिहेतुर्विशेषः [ ] इति। अत्र ब्रूमः – **एवं तर्हि द्रव्यगुणकर्मणां न सामान्यं नापि विशेषः।** किं कारणम्? **तेषां परस्परासत्त्यभावात्।** तया तद्बुद्ध्या द्रव्यस्य गुणस्य क[15]र्मणो वासत्तिर्गृह्यते, किं द्रव्यबुद्ध्या गुणो गृह्यते कर्म वा? द्रव्यबुद्ध्या हि तद् द्रव्यमेव,

---

१ °वस्थानार्थानां प्र० ॥ २ °स्थाने ककाल° य० ॥ ३ °मादेश° प्र० ॥ ४ °वद्रपांतत्यागो° य० । °वद्दृष्टांतत्यागो° भा० । दृश्यतां पृ० २८ पं० १ ॥ ५ °ण्यात्व विशेष° भा० ॥ ६ °त्वाद्वि विशि° य० ॥ ७ °स्याशेषस्याप्य° य० । °स्य शेषस्य शेषस्याप्य° भा० ॥ ८ °दन्यथात्वधिकारो प्र० ॥ ९ °कत्वंभावदिति यथा भ्वंभसोरयथासंख्येन न गंधोनस्य प्र० ॥ १० तर्हिनाधिक° प्र० ॥ ११ धिकारो य० । ऽधिकारो भा० ॥ १२ गृही° य० ॥ १३ °सत्य° प्र० । एवमग्रेऽपि ॥ १४ बुध्यासन्नः स इति बुद्धियोऽसौ य० ॥ १५ कर्माणं वा भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्नता हि द्रव्यस्य द्रव्यस्य च, तत्रैव सामान्यविशेषौ स्याताम्, न गुणकर्मणोः। एवं च तयोः सत्त्वसामान्य-द्रव्यारम्भादिविशेषाभावः। तथासत्तिः सिकतानां वज्रस्य च, तेषां सामान्यविशेषौ स्याताम्, न भूम्यम्भसोः; यावत् तुल्यजाति-

---

तदासन्नत्वाद् 'द्रव्यम्' इति गृह्यते[1], **तत्रैव** च **सामान्यविशेषौ[2] स्यातां न गुणकर्मणोः**। कस्मात्? यस्मात् **तद्बुद्ध्यासन्नता द्रव्यस्य द्रव्यस्य च**, न द्रव्यस्य गुणस्य च, तथा न द्रव्यस्य कर्मणां[3] च, न
१९-२ गुणस्य कर्मणश्चेति सामान्याभावो विशेषाभावश्च[4], तद्बुद्ध्यासत्त्यभावात्। **एवं च** कृत्वा **तयोः सत्त्व[5]-[6]*सामान्य-द्रव्यारम्भादिविशेषाभावः**। तयोः द्रव्यगुणयोर्गुणकर्मणोर्द्रव्यगुणकर्मणां च तयोश्च तयोश्चेत्यावृत्त्या सत्त्वलक्षणं* सामान्यं मा भूत्। तस्मात् 'सत्' इति त्रयाणामविशेष इत्ययुक्तम्। तथा 'अनित्यं द्रव्यवत् कार्यं कारणं सामान्यविशेषवत्' इति च सामान्यं द्रव्यगुणकर्मणां मा भूत्। उक्तं च वः शास्त्रे— **सदनित्यं द्रव्यवत् कार्यं कारणं सामान्यविशेषवदिति द्रव्यगुणकर्मणामविशेषः** [वै० सू० १।१।८]। 'एवं तर्हि अनानात्वं द्रव्यगुणकर्मणां प्राप्तम्' इति चोदिते विशेष उच्यते—नाविशेष एव, आरम्भानारम्भ[7]भेदात्, **द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते गुणाश्च गुणान्तरम्। कर्म कर्मसाध्यं न विद्यते** [वै० सू० १।१।१०-११] इति। किञ्चान्यत्—लक्षणभेदात्, **क्रियावद् गुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्, द्रव्याश्रयी अगुणवान् संयोगविभागेष्व[8][कारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम्, एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्व]नपेक्षं कारणमिति कर्मलक्षणम्** [वै० सू० १।१।१५-१६-१७]। तथा विरोधाविरोधभेदात्, कार्याविरोधि द्रव्यं कारणाविरोधि[9] च, उभयथा गुणः[10], कार्यविरोधि[11] कर्म [वै० सू० १।१।१३-१४]। इत्येवमादिद्रव्यगुणकर्मनानात्वहेतुकलापश्च विशेषाभावादनर्थक आपद्यते। एवं तावद् द्रव्यस्य [द्रव्यस्य] च **सामान्यविशेषौ स्याताम्, न गुणकर्मणोः**।

इतर आह—यथा द्रव्ययोः प्रत्यासत्तिर्द्रव्यत्वाभिसम्बन्धात् तथा सत्त्वाभिसम्बन्धाद् द्रव्यगुणकर्मणां भविष्यति। यथोक्तम्—**सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु द्रव्यगुणकर्मभ्योऽर्थान्तरं सा सत्ता** [वै० सू० १।२।७-८] इति। अत्र ब्रूमः[12]—द्रव्ययोरपि त्वदनुकम्पाद्रवीकृतचेतसा मया त्वयि चित्तानुवृत्त्या उक्तम्, तत्राप्याशां[13] मा कृथाः, तदपि नोपपद्यते बुद्ध्यासत्तिकृतसामान्यविशेषवादिनो भवतः सामान्याभावे विशेषाभावात्। **तथासत्तिः सिकतानां वज्रस्य च**, पार्थिवत्वसामान्यानुविद्धत्वादश्मसिकतालोष्टवज्रादीनाम्। **तेषां सामान्यविशेषौ स्याताम्, न भूम्यम्भसोः**, अन्यतरस्य पार्थिवत्वाभावात्[14]।
२०-१ तेनैव हेतुक्रमेण तथासत्तिः पिण्डघटयोः, न मृत्-सिकतानाम्; एवं परतः परतो **यावत् तुल्यजाति-**

---

१ **गृह्येत** य० ॥ २ °**विशेषे स्यातां** य०। **विशेषस्यातां** भा० ॥ ३ '**कर्मणश्च**' इति स्यादत्र पाठः ॥ ४ °**भावं च** प्र० ॥ ५ **सत्त्वं** य० ॥ ६ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः °**सामान्य**° इत्यत आरभ्य **सत्त्वलक्षणं** इत्यन्तः पाठो य०प्रतिषु नास्ति ॥ ७ **आरंभमारंभभेदात्** य० ॥ ८ °**भागेष्वनपेक्षं** प्र० ॥ ९ **कारणविरोधि च** प्र०। "न द्रव्यं कार्यं कारणं च वधति"—**वै० सू०** १।१।१२। अस्य व्याख्या—"द्रव्यं न स्वकार्यं हन्ति न वा स्वकारणं हन्ति, कार्यकारणभावापन्नयोर्द्रव्ययोर्वध्यघातकभावो नास्तीत्यर्थः, आश्रयनाशारम्भकसंयोगनाशाभ्यामेव द्रव्यनाशादिति भावः। वधतीति सौत्रो निर्देशः"—**वै० सू० उप०** पृ० २० ॥ १० "गुणाः"—**वै० सू०** ॥ ११ **कार्यं वि**° प्र० ॥ १२ **क्रमः** प्र०। एवमग्रेऽपि ॥ १३ **नेमाप्या**° प्र० ॥ १४ °**वत्वालत्वाभावात्** भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणक्रिययोरण्वोरेव, न तु तयोरपि अन्त्यविशेषसमवायेन अपक्षिप्तप्रत्यासत्त्योः। तस्मात् सामान्याभावाद् विशेषाभावः, सर्वत्रैवोभयाभावः।

अर्थाश्लेषलक्षणायां त्वासत्तौ पृथिवीघटरूपादीनामेव स्यात् सामान्यविशेषता, नेतरसामान्यविशेषयोः।

गुणक्रिययोरण्वोरेव[1] **'स्यातां सामान्यविशेषौ'** इति वर्तते[2] । तथासत्तिः घटकपालयोः, न पिण्डघटयोः; एवं कपालशकलयोः[3], न घटशकलयोः; शकलशर्करयोः, न घटशर्करयोः; पांशुशर्करयोः, न शकलशर्करयोः; पांशुधूल्योः, न धूलीशर्करयोः; धूलीत्रुट्योः[4], न पांशुत्रुट्योः; त्रुटिपरमाण्वोः, न धूलीपरमाण्वोः। अथवा घटस्य च घटस्य च, न घटस्य कपालस्य चेत्यादि। तयोरपि अण्वोः पार्थिवशुक्लगतिसमवायिनोरेवाण्वोः[5], न आप्यपार्थिवादिनीलशुक्लगतिस्थितिजातिगुणक्रिययोः। **न तु तयोरपी**त्यादि यावद**पक्षिप्तप्रत्यासत्त्यो**रिति । तुल्यजातिगुणक्रियासमवायिनोरन्यत्वप्रत्ययप्रभावोल्लिङ्गितान्त्य**विशेषयोः** तत्**समवायेनापक्षिप्ता** अपहृता **प्रत्यासत्ति**स्तयोरपि इति कृत्वा कुतस्तद्बुद्ध्यासन्नप्रकरणम्[6] ? **तस्मात् सामान्याभावाद् विशेषाभावः, सर्वत्रैवोभयाभाव** इति द्रव्यगुणकर्मणां[7] न सामान्यं **नापि विशेषः** इत्यतः प्रभृति यावत् 'अण्वोः'[8] इत्येतदवधिमध्याभिहितोपपत्तिबलाद् यथोपपादितसामान्यविशेषाभावं स्मारयति ।

अत्राह—सा द्विधा प्रत्यासत्तिः, अर्थसम्बन्धादनर्थसम्बन्धाच्च । तत्रानर्थलक्षणा सद्-द्रव्य-पृथिवी-मृद्-घटादितत्त्वानुवृत्तिबुद्धिग्रहणा यथोक्ता, सामान्यविशेषसमवायानामर्थत्वाभावात् । अर्थलक्षणा तु द्रव्यगुणकर्मसम्बन्धात्मिका, तेषामर्थसंज्ञितत्वात् । यथोक्तम्—**अर्थ इति द्रव्यगुणकर्मसु**[9] [वै० सू० ८।२।३]। तत्र **क्रियावत्**[10] [वै० सू० १।१।१५] इत्यादि द्रव्यलक्षणम् । तद्भेदलक्षणं च—**रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी, रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाश्च**[11], **तेजो रूपस्पर्शवत्, वायुः**[12] **स्पर्शवान्** [वै० सू० २।१।१-४], यत्र रूपादिचातुर्गुण्यं सा पृथिवी, गन्धहीना द्रवस्नेहाधिकाश्चापः, द्रवस्नेहरसगन्धहीनं तेजः, रूपहीनो वायुः, द्रव्याश्रय्यादिलक्षणो[13] गुणः । **श्रोत्रग्रहणो**[14] **योऽर्थः स शब्दः** [वै० सू० २।२।२१]। चक्षुर्ग्रहणो योऽर्थः स रूपम् । इत्याद्यर्थलक्षणनियतया प्रत्यासत्त्या सामान्यविशेषौ स्यातामिति । २०-२

अत्रोच्यते—**अर्थाश्लेषलक्षणायां त्वासत्तौ पृथिवीघटरूपादीनामेव स्यात् सामान्यविशेषता,** लक्षणोद्देशनिर्देशकृतैवेत्यर्थः । **नेतरसामान्यविशेषयोः** 'सामान्यविशेषता' इति वर्तते, सत्त्व-

---

१ °रणधारेध भा० । °रण्वादेरेव य० ॥ २ वर्तते प्र० ॥ ३ °घाकलयोः पा० वि० ॥ ४ °तुट्योः भा० । एवमग्रेऽपि । य० प्रतिष्वपि प्रायः सर्वत्राप्यग्रे 'तुटि'शब्द एव दृश्यते ॥ ५ °वायिनोरेवण्वोः भा० । °वायिनोरण्वोः य० ॥ ६ °द्बुद्ध्यासंतप्रहरणं प्र० ॥ ७ पृ० २९ पं० ५ ॥ ८ पृ० ३१ पं० १ ॥ ९ °कर्मवस्तु य० ॥ १० "क्रियावद् गुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्"–वै० सू० ॥ ११ "स्निधाः"–वै० सू० ॥ १२ "स्पर्शवान् वायुः"–वै० सू० ॥ १३ "द्रव्याश्रयी अगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम्"—वै० सू० १।१।१६ ॥ १४ °ग्रहणोऽर्थः स शब्दः भा० । °ग्रहणोऽर्थः शब्दः य० ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

तथापि स्वविषयसामान्यविशेषापत्तिः । सा चोक्तदोषा ।
तस्मात् सर्वथान्तरङ्गं स्वमूर्तिस्थं प्रधानं व्यवस्थितमनपेक्षम् — न हि तस्य

द्रव्यत्वपृथिवीत्व[1]गुणत्वरूपत्वाद्यनुवृत्तिव्यावृत्तिबुद्धिलक्षणयोर्न स्यात् । इष्यते च तयोरपि **वैशेषिकैः** गुणसमुदायद्रव्यत्वादिभिश्च सादृश्यानुवृत्तिनिवृत्तिलक्षणसामान्यविशेषता । कोऽभिप्रायः ? अर्थाश्लेषलक्षणासत्तिकृतसामान्यविशेषाभ्युपगमे तत्त्वा[2]नुवृत्तिव्यावृत्तिबुद्धिग्रहणौ न स्याताम् । तत्त्वानुवृत्तिनिवृत्तिकृतयोर्वाभ्युपगमेऽर्थाश्लेषकृतप्रत्यासत्त्योरभाव इति विरोधाद् न [3]प्रकल्पते इत्ययमभिप्रायः ।

किञ्चान्यत् – **तथापि स्वविषयसामान्यविशेषापत्तिः** । अर्थाश्लेषलक्षणासत्तौ सत्यामपि 'स्वविषयमेव सामान्यम्, स्वविषय एव विशेषः' [4]इत्येतौ प्रागुक्तौ विकल्पावापन्नौ । **सा चोक्तदोषा**, सापि च स्वविषयसामान्यविशेषापत्तिरुक्तदोषैव – [5]**यदि स्वविषयम्, सामान्यविरोधः । यदि सामान्यं तत**
२१-१ **आत्मा न भवति, अनेकार्थत्वात् सामान्यस्य । अथ आत्मा ततो न सामान्यम्, एकत्वादात्मनः । अथ आत्मैव सामान्यम्, रूपादिर्घटादेरात्मा तत्समुदायकार्यत्वात्; एवं सत्यात्मभेदः – रूपं रूपं च रूपादिसमुदयश्च** इत्यादि । [6]**तथा विशेषोऽपि । यदि स्वविषयः, विशेषविरोधः । यदि विशेषस्तत आत्मा न भवति, अन्यत्वाद्विशेषस्य गुणतः कालतो वा, अन्यथा घटादौ सामान्यापत्तेः । अथ आत्मा ततो विशेषो न भवति, एकत्वादात्मनः । अथोच्येत – नैकत्वान्यत्वविरोध[7]दोषौ, 'आत्मैव विशेषः' इत्यनपादानादिप्रतिज्ञानात्; यदि आत्मापेक्ष एव विशेषः, [8]एक एव अन्य इत्यात्मनोऽन्यथाभवनादनात्मत्वमि**त्यादिपूर्वोक्तदोषसम्बन्धिनी स्वविषयसामान्यविशेषापत्तिः ।

अत्राह संसर्ग[9]वादी – यदि 'आत्मैव सामान्यम्, आत्मैव विशेषः' इति ब्रूयां **साङ्ख्य-बौद्ध[10]वत् स्युरेते दोषा ममापि** । न पुनरहमेवंपक्षः । मम तु सामान्यविशेषौ द्रव्यगुण[11]कर्मभ्योऽर्थेभ्योऽत्यन्तभिन्नौ, [12]नागृहीतविशेषणा विशेष्ये बुद्धिरस्तीति 'सत्त्वाभिसम्बन्धात् सत्, द्रव्यत्वाभिसम्बन्धाद् द्रव्यम्' इत्यादिसामान्यविशेषवादिनः कथं स्वविषयसामान्यविशेषपक्षदोषाः ? इति । अत्रापि परविषयसामान्यविशेषवादिप्रत्याख्यानात् का गतिः ? इत्यलं प्रसङ्गेन ।

तस्मादित्युक्तदोषोपसंहारार्थः, एतद्दोषापेतं **सर्वथान्तरङ्गं वस्तु इति प्रतिपत्तव्यं** घटादि इत्यभिसम्भन्त्स्यामः । सर्वेण प्रकारेण **सर्वथा** [13]यां तां गतिं गत्वा 'सामान्यमेव, विशेष एव' इत्येवमादिना विचार्य [14]विचार्य **अन्तरङ्गं वस्तु** घटस्य केनचित् प्रतिविशिष्टेनाकारेण उदकाद्याहरणधारणादिसमर्थेन भवनं समानेन चार्थान्तरैस्तदेवाश्रयणीयम्, न बहिरङ्गं सत्त्वद्रव्यत्वादि स्वपरविषयसामान्यविशेष[15]वादि-

---

१ °गुणरूपत्वा° य० ॥ २ °नुवृत्तिबुद्धि° य० ॥ ३ प्रकल्प्यते य० । अत्र प्रकल्पेते इति भा० पाठे 'सामान्यविशेषौ न प्रकल्पेते' इत्यर्थो ज्ञेयः । प्रकल्प्यते इति इति य० पाठे तु 'सामान्यविशेषता न प्रकल्प्यते' इत्यभिसम्बन्धो ज्ञेयः ॥ ४ भा० विनान्यत्र—इत्येतो प्रागुक्तौ विक° डे० लीं० । इत्युतो प्रागुक्तौ विक° पा० रं० ही० । इत्युक्तौ विक° वि० ॥ ५ दृश्यतां पृ० ११ पं० ६ ॥ ६ पृ० २२ पं० ६ ॥ ७ °दोषो ही० विना ॥ ८ एक एक एव भा० ॥ ९ °वावी य० ॥ १० °वत्स्युरेते भा० । °वत्परेते य० ॥ ११ कर्मभ्योत्यंतभिन्नौ य० ॥ १२ नागृहीतविशेषणविशेषणविशेष्ये भा० ॥ १३ यां गतां गतिं य० । "एवं यां तां गतिं गत्वा कल्पयित्वापि सर्वथा सर्वप्रकारेण"—नयचक्रवृ० पृ० ९२-२ ॥ १४ विचारांतरंगं य० ॥ १५ °षतादिपरि° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुवृत्त्यपेक्षा घटान्तरेषु। यदि स्यात् ततोऽनुवर्तेत स तेष्वपि, ततश्च सर्वसामान्यात् स एव स स्यात्, तद्यथा–पूर्वाह्णापराह्णयोरेक एव घटः। तत्सन्निवेशस्वरूपा-

---

परिकल्पितम्। यथोक्तम्–अन्तरङ्गबहिरङ्गयोरन्तरङ्गो विधिर्बलवान्।[1] य एष प्रेक्षापूर्वकारी पुरुषः स प्रातरुत्थाय प्रत्यङ्गवर्तीनि स्वानि कार्याणि कुरुते, ततः सम्बन्धिनाम्, ततः सुहृदाम्, ततः शेषाणाम् [पा० म० भा० १।१।५६] इति। तदन्तरङ्गत्वं कुतः? **स्वमूर्तिस्थ**त्वात्, स्वा मूर्तिर्ग्रीवाद्यात्मिका,[2] तत्रस्थत्वाज्जलाद्याहरणसमर्थस्य[3] भवनस्य। **प्रधानत्वाच्च** तदेव[4] ग्राह्यम्। कुतः प्रधानम्? तदर्थत्वात् सामान्यविशेषयोः, कन्यार्थवस्त्रालङ्कारवत्, घटार्थो हि सामान्यविशेषकल्पनाव्यापारः। व्रीहिकणार्थपलालादिवदप्रधानत्वात्[5] सामान्यविशेषयोस्त्याज्यता। **व्यवस्थित**त्वाच्च तदेव घटभवनं ग्राह्यम्। व्यवस्थितं च आत्मन्येव स्थितत्वात्,[6] न यथा तौ सञ्चारिणौ सामान्यविशेषावव्यवस्थितौ परापेक्षत्वादव्यवस्थितत्वाच्चावस्तु वन्ध्यापुत्रवत्। क्व पुनः सञ्चारिणौ? सद्द्रव्यादिषु। सद्-द्रव्य-पृथिवी-मृद्-घटत्वाभिसम्बन्धात् 'अस्ति द्रव्यं पार्थिवो मार्तिको घटः' इति घटे सम्प्रत्ययैः [ ] इत्युक्तं ह्याचार्येण।[7] घटभवनस्योदकाद्याहरणासक्तात्मनः[8] पुनः क्व सञ्चरणम्?

अनपेक्षत्वाच्च, **'तदेव वस्तु'** इत्यभिसम्भन्त्स्यते प्रत्येकं सर्वत्र। तद्धि घटभवनं न घट इति वा पट इति वा घटपटादिद्रव्यान्तरमपेक्षते यथा अनुवृत्तिव्यावृत्तिसामान्यवादिमते तदर्थं घटपटाद्यर्थान्तरापेक्षा व्यावृत्तिविशेषवादिमते च तदर्थं पटादिद्रव्यान्तरापेक्षा।[9] लौकिकानुवर्तिव्यवहारनयवादिमते तु सन्निहितस्वाधीनवृत्तित्वाद् घटात्मभवनस्य[10] न तदपेक्षास्तीति तद्दर्शयति–**न हि तस्यानुवृत्त्यपेक्षा[11] घटान्तरेषु।** अर्थापत्त्या न व्यावृत्त्यपेक्षा पटादिद्रव्यान्तरेषु। **यदि स्या**दपेक्षा **ततोऽनुवर्तेत स** घटः **तेष्वपि** २२-१
घटान्तरेष्वपि। न पुनरपेक्षास्ति, तस्य स्वसामर्थ्येनैव सिद्धत्वाद् घटात्मनः। यद्यपेक्षेत[12] घटो घटान्तराणि, घटान्तरेष्वप्यनुवर्तेत। **ततश्च सर्वसामान्यात्[13] स एव स स्यात्,** 'घटान्तरमपि घटात्मैव स्यात्, तत्तत्त्वानुवृत्तेः, घटात्मवत्' इति दोषः स्याद् देशभिन्नेष्वपि घटेषु कालभिन्नघटवत्। तन्निदर्शयति–**तद्यथा–पूर्वाह्णापराह्णयोरेक एव घट** इति। नापि घटस्तत्त्वानुवृत्तिमपेक्षते, घटात्मन्यसिद्धे तत्त्वानुवृत्त्यसिद्धेः; तत एव च न पटादिव्यावृत्तिमपेक्षते, तदायत्तत्वादित्यत आह–**तत्सन्निवेशस्वरूपा-**[14]

---

१ "**असिद्धं बहिरङ्गलक्षणमन्तरङ्गलक्षणे** इति। बहुप्रयोजनैषा परिभाषा। अवश्यमेवैषा कर्तव्या। सा चाप्येषा लोकतः सिद्धा। कथम्? प्रत्यङ्गवर्ती लोको लक्ष्यते। तद्यथा—पुरुषोऽयं प्रातरुत्थाय यान्यस्य प्रतिशरीरं कार्याणि तानि तावत् करोति, ततः सुहृदाम्, ततः सम्बन्धिनाम्"–इति पाठः **पातञ्जलमहाभाष्ये** ॥ २ **मूर्तिर्ग्रीवा**° प्र० ॥ ३ °**स्थत्वाजला**° प्र० ॥ ४ **प्रधानत्व। तदेव** भा०। **प्रधानत्वाच्च देव** य० ॥ ५ °**पलादि**° प्र० ॥ ६ **आत्मन्यवस्थितत्वात्** य० ॥ ७ एतच्च **आचार्यीयं** वचनं **नयचक्रवृत्तिकारः** पुनरप्यग्रे उद्धरिष्यतीत्थम्—"यथोक्तम्—'**सद्द्रव्यपृथिवीमृद्घटादि(भि)सम्बन्धादस्ति द्रव्यं पार्थिवो मार्तिको घट इति घटे सम्प्रत्ययः**' इति"–**नयचक्रवृ०** पृ० ४२२-१ ॥ ८ °**हरणसक्ता**° पा० ॥ ९ °**रापेक्ष्या** प्र० ॥ १० **घटाताभव**° प्र० ॥ ११ °**वृत्त्य घटा**° य० ॥ १२ **पद्यपेक्षेत** भा०। **पटाद्यपेक्षेत** य० ॥ १३ °**सामान्याश एव** भा० पा०। **सामान्यांश एव** भा० पा० विना। तुलना—"ततश्च सर्वविशिष्टत्वात्स एव न स्यात्"–**नयचक्रवृ०** पृ० ३४ पं० १३ ॥ १४ °**शास्वरू**° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पेक्षत्वाच तस्यास्तदपेक्षा व्यर्था, इतरेतराश्रयदोषापादनात्। तथा विशेषेऽप्यस्य नापेक्षा, तथाहि स एव न स्यात्, उक्तवत्। — पूर्वं यथालोकप्रसिद्धमनपेक्षितपूर्वापरप्रभेदं 'प्रकृतिः' इति वा 'अन्यत्' इति वा वर्तमानं नित्यं न प्रलयभाक् सद् वर्तते भावो योऽसौ तदेव वस्त्विति प्रतिपत्तव्यम्। किं न एतेन? यदि कारणम्, यदि कार्यम्।

पेक्षत्वाच्च तस्याः तदपेक्षा व्यर्था । घटावयवसन्निवेशस्वरूपमपेक्षते घटान्तरानुवृत्तिः पटादिव्यावृत्तिश्चेति[1] युक्ता अनुवृत्तेर्घटापेक्षा व्यावृत्तेश्च[2] पटादेः । घटस्य पुनरनुवृत्तिव्यावृत्त्यपेक्षा व्यर्था, स्वत एव सिद्धत्वात् । स्यान्मतम् – घटोऽपि घटत्वापेक्षात्मलाभः, तत्त्वानुवृत्तिरपि घटात्मलाभापेक्षेति । एतच्चायुक्तम्, **इतरेतराश्रयदोषापादनात्** । घट-घटत्वानुवर्तनयोरितरेतराश्रयत्व[3]दोषमापादयत्येषा कल्पना, इतरेतराश्रयाणि च कार्याणि न प्रकल्पन्ते[4], तद्यथा – नौर्नावि बद्धा नेतर[5]त्राणाय । इत्युक्तम् – सामान्यं नापेक्षत इति । **तथा विशेषेऽप्यस्य नापेक्षे**ति । यथा सामान्यापेक्षा नास्ति घटात्मलाभस्य तथा विशेषेऽपीति प्रोक्तहेतुविधिनातिदिशति । तथा च योजितमस्माभिरर्थतः । ग्रन्थतो योजनापि – **तथा हि स एव न स्या[6]दुक्तवदि**ति । न[7] हि तस्य व्यावृत्त्यपेक्षा पटादिषु[8] । यदि स्यात्, स तेभ्योऽपि व्यावर्तेत । ततश्च सर्वविशिष्टत्वात् स एव न स्याद् घटोऽपि, घटपटयोरिव । तत्सन्निवेशस्वरूपापेक्षत्वाच्च तस्याः तदपेक्षा व्यर्था, इतरेतराश्रयदोषापादनादिति सर्वमतिदेश्यम् ।

किञ्चान्यत् – **पूर्वत्वाच्च** घटात्मभवनस्य । सामान्यविशेषाभ्यां हि पूर्वं[9] घटभवनम् । तत् कथमिति
२२-२ चेत्, **यथालोकप्रसिद्धम्** । लोके प्रसिद्धं लोकप्रसिद्धम्, यथैव लोके[10] प्रसिद्धं तथा घटभवनम्, आकारादिमात्रमेव च घट इति लोके प्रसिद्धम्, तदेव पूर्वम्, **अनपेक्षितपूर्वापरप्रभेद**त्वात्। के पुनः पूर्वापरप्रभेदाः ? घटादारभ्य यावत् प्रकृतिस्ते पूर्वप्रभेदाः साङ्ख्यानाम्, 'सत्' इति वा वैशेषिकाणाम्, अपरे प्रभेदाः यावदन्त्यविशेषकृतमन्यत्, इति साङ्ख्यवैशेषिकाभ्यां कल्पितम्, अत आह – **प्रकृतिरिति वान्यदिति वा** । बौद्धेन वा क्षणिकत्वादत्यन्तमन्यदिति । **वर्तमान**त्वाच्च, वर्ततेरस्त्यर्थत्वात्, अस्तिभवतिविद्यतिपद्यतिवर्ततयः सन्निपातषष्ठाः सत्तार्थाः[11] [   ] इति वचनात् । अत एव **नित्यं** जलाहरणादिव्यवहारसन्निपाति सततमतीतानागतकालयोरपि घटपटा[12]द्यवस्थानात् । **न प्रलयभा**गिति, न अम्भस्तरङ्ग[13]वत् स्वात्मप्रवेशम्, न प्रदीपज्वालानलवदत्यन्तविनाशम्, द्विविधमपि प्रलयं न भजते, द्रव्यस्य पर्यायान्तरेण पर्यायस्यापि द्रव्या[14]विनाभावादेव, एकान्तासदुत्पत्तिविनाशवादयोरहेतुदृष्टान्तत्वादेकान्तनित्यवादे[15] च धर्माविर्भाव[16]तिरोभावाभावात् । तद्धि तेन रूपेण[17] सर्वकालं **सद्**, वर्ततेः[18] सत्तार्थत्वादिति तदेव व्याचष्टे –

---

१ °व्यावृत्तिरेवति भा० । °व्यावृत्तिरेवेति य० ॥ २ व्यावृत्तेएव पटादेः प्र० ॥ ३ °यत्वादोष° प्र० ॥ ४ प्रकल्प्यंते भा० ही० लीं० विना ॥ ५ भा० विनान्यत्र – तरतारणाय °डे० लीं० । °तरचारणाय पा० वि० रं० ही० । "तदिदमितरेतराश्रयं भवति । इतरेतराश्रयाणि च कार्याणि न प्रकल्पन्ते । तद्यथा नौर्नावि बद्धा नेतरत्राणाय भवति" – इति पातञ्जलमहाभाष्ये १।१।१ ॥ ६ स्याद्रक्तवदिति प्र० ॥ ७ दृश्यतां पृ० ३२ पं० २ ॥ ८ पदादिषु प्र० ॥ ९ पूर्षघट° प्र० ॥ १० लोकप्रसिद्धं भा० वि० ॥ ११ भा० विनान्यत्र — सत्वार्थाः पा० । सत्तार्थाः डे० लीं० । सस्वार्थाः वि० रं० ही० ॥ १२ °पटयोवस्था° य० ॥ १३ °स्तरंगधत् प्र० ॥ १४ द्रव्याविभावादेव भा० ॥ १५ °वादे व पा० वि० विना । °वादेन वि० ॥ १६ °तिरोभावाभावाभावात् भा० । °तिरोभावात् वि० लीं० ॥ १७ भूपेण भा० ॥ १८ वर्तते सत्ता° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को हि वादानामन्तं कर्तुं शक्नुयात्? आह च —

णिययवयणिज्जसच्चा सव्वणया परवियालणे मोहा।
ते पुणअदिट्ठसमयो विभजइ सच्चे व अलिए वा॥ [सन्मति० १।२८]
को ह्येतद् वेद? किं वाऽनेन ज्ञातेन? [ ]

वर्तत इति। **भाव** इति वृत्तिभवनयोः प्रागुक्तं पर्यायशब्दत्वं दर्शयति। **योऽसाविति** [1]प्रत्यामनति, य एवं व्याख्यातो भावः सोऽसौ **तदेव वस्तु** नान्यदिति **प्रतिपत्तव्यमि**ति निगमयति। **तदन्तरङ्गं प्रधानमनपेक्षं** [2]**पूर्वं वर्तमानं च** तद् वस्तु। **इति**शब्दः परिसमाप्त्यर्थोऽवधारणार्थो वा, इयानेव पर्याप्तोऽर्थः, [3]नातोऽधिको न्यूनो वा, येऽन्येऽन्यत् कल्पयन्ति – कारणमेव, कार्यमेव, सामान्यमेव, विशेष एव, तदुभयमेव, अन्यतरोपसर्जनप्रधानमेव, नैव वास्त्युभयमिति। **किं न एतेन? यदि कारणम्, यदि** २३.१
कार्यम्, ततः को दोषः? दृश्यते हि कारणमपि कार्यमपि, यथा – परमाणुकारणं द्व्यणुकादि मृत्पिण्ड-शिवकादीनां कार्यमपि, तद्भेदजत्वात्। एवं द्व्यणुकत्र्यणुकादीनामपि कारणकार्यभावः सङ्घातभेदाभ्याम्। सामान्यं द्रव्यक्षेत्रकालभावानां स्वपरभवनसामान्यानतिवृत्तेः। स्वपरविशिष्टभवनात्मक[4]त्वाद् विशेषः। एवमुभयमन्यतरोपसर्जनप्रधानत्वं सहक्रमस्वातन्त्र्यपारत[5]न्त्र्यविवक्षावशात्। न चास्त्युभयम्, एकान्त-रूपस्य परस्पराप्रतिबद्धस्यासिद्धेरसिद्ध्यादिशून्यतानुभवनात्।

स एव व्यवहारनयाश्र[6]याल्लौकिको ब्रूते – **को हि वादाना**मिति एकान्तवादानाम् **अन्तं कर्तुं शक्नुयात्** – उच्छेदं शक्नुयात् कर्तुमिति। किं कारणम्? न हि साङ्ख्याभिहि[7]ताः सत् कारणे कार्यम्,

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्यम्॥ [साङ्ख्यका० ९]

इत्येवमादयो हेतवः, न वा वैशेषिकोक्ताः **क्रियागुणव्यपदेशाभावादसत्** [वै० सू० ९।१।१] इत्यादयः, 'क्षणिका घटादयः प्रत्ययायत्तजन्मत्वात्' इत्यादयो वा बौद्धोक्ताः परस्परेणोच्छेत्तुं शक्यन्ते, अभियुक्त-बुद्ध्युत्कर्षपरम्पराया अदृष्ट[8]निष्ठत्वात्। एतस्मिन्नर्थे ज्ञापकमाह – **आह चे**ति, नाहमेव स्वमनीषिकया [9]ब्रवीमि, किं तर्हि? अन्येऽप्येवं ब्रुवते।

णिययवयणिज्जसच्चा सव्वणया परवियालणे मोहा।
ते पुण अदिट्ठ[10]समयो विभजइ सच्चे व अलिए वा॥ [सन्मति० १।२८]

स्वविषयसत्यत्वादेवाविचाल्या इति तच्चालने मोघाः। तेषामनेकान्तस्थितिस्वतत्त्वानवबोधात् 'सत्यमेव, असत्[11]यमेव वा' इत्यदृष्टसमयस्तान् विभजते इत्याचार्य**सिद्धसेनः**।

---

१ '**म्ना** अभ्यासे' [पा० धा० ९२९] इति धातोः **प्रत्या**पूर्वकस्य रूपमिदम्॥ २ **पूर्ववर्त**° प्र०॥ ३ **नातो न्यूनोधिको वा** भा०॥ ४ °**कत्वा विशेषः** प्र०॥ ५ °**तन्त्र्याविवक्षा**° भा०॥ ६ °**याल्लौकिका** य०॥ ७ °**हिता सत्** य०॥ ८ पा० विनान्यत्र – °**ष्टनिष्ठत्वात्**। °**ष्टानिष्टत्वात्** पा०। **निष्ठा** समाप्तिरन्त इति पर्यायाः, तथा च **अदृष्टनिष्ठत्वात्** अदृष्टपर्यन्तत्वादित्यर्थः॥ ९ **ब्रूमि** भा०॥ १० °**समउं** भा०॥ ११ °**त्यमेवेत्यदृष्ट**° य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा च कारणे कार्यसदसत्त्वानियमः, कारणे सत्येव भावाभावाभ्यामसति च सेवाद्युद्योगफलानियमात्। तद्यथा – वातकर्कोटकीपुष्पं दृष्टमसत्कार्यम्। अव्यक्त-

---

तथान्येऽपि —

यत्नेनानुमितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः ।
अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते ॥ [वाक्यप० १।३४] इति ।

२३-२ अनुमानान्तरबाध्यत्वेऽनवस्थितानुमानत्वाल्लोकप्रसिद्धिरेव प्रमाणमित्यर्थः । **को ह्येतद् वेद** इत्यशक्यप्राप्तिं दर्शयति **किं वानेन ज्ञातेन**[2] इति प्रयोजनाभावं च । यस्मात् प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनानां जिज्ञासा-[3]संशय-शक्यप्राप्ति-प्रयोजनपूर्वाणां संशयव्युदासः फलमन्ते भविष्यतीति दशावयववादिनां मतम्, तथा च व्यवहारप्रसिद्धिः। तस्मात् त्यज्यन्तामद्यतना[4]व्याप्यतिप्रसङ्गागमकाक्षरदरिद्रकुसृतिकाररचितन्यायलक्षणानीति ।

तथा च कारणे कार्यसदसत्त्वानियमः[5] । एवं च कृत्वानेन न्यायेन यथा 'कारणमेव, न कार्यम्; कार्यमेव, न कारणम्; सामान्यमेव, न विशेषः; विशेष एव, न सामान्यम्; उभयम्; अन्यतरोपसर्जनम्; उभयाभावो वा' इत्ययं नियमो नास्त्युक्तविधिना तथा कारणे कार्यस्य सत्त्वमेव [6]असत्त्वमेवेत्ययमपि नियमो नास्ति । कथम्? यदि कार्यं[7] सत् ततः 'कारणमेव' इति नास्ति, कार्यस्यापि सत्त्वात् । कथम्? क्रियानिमित्तकत्वात् कारणकार्यत्वयोः कार्याभावे कारणाभावः [8]कारणाभावे कार्याभाव इति । तथा यदि कारणं सत्, ततः कार्यमेव न भवति, कारणस्यापि सत्त्वात् । एवं सामान्यविशेषोभयान्यतरोपसर्जनोभयाभावेष्वपि भावनीयम् । तत्र तावत् कारणे कार्यं सदेव असदेव सदसच्चैव इति वा ये ब्रुवते तेषां नियमाभाव उक्तः अन्यतरोपसर्जनोभयाभावयोर[9]प्युक्त एव भवतीत्यभिप्रायः । 'कारणे कार्यं सदेव, असदेव' इत्यनियमः । को हेतुः? **कारणे सत्येव भावाभावाभ्यां**[10]मित्ययथासङ्ख्यं हेतू । सत्येव भावात् 'असत् कारणे कार्यम्' इत्यनियमः, [11]सत्येवाभावात् 'सदेव' इत्यनियमः । **असति च** 'कारणे कार्यस्य सदसत्त्वानियमः' इति वर्तते । कुतः? **सेवाद्युद्योगफलानियमात्** । दृष्टो हि

२४-१ लोके [12]कृषीवलवणिग्राजपुरुषशिल्[13]प्यादीनां कृषिवाणिज्[14]यसेवाशिल्[15]पादिषु कारणेषूद्युक्तानां फलानियमः । स सत्स्वसत्सु च दृष्टः । तद्यथा – **[16]वातकर्कोटकीपुष्पं** फलकारणं सत्कार्यम्, पुष्पत्वात्, आम्रपुष्पवदित्यनुमानप्रसङ्गेऽपि च **दृष्टमसत्कार्यम्** । असत् कार्यं पुष्पफलमस्मिन्नित्यसत्कार्यम् । तस्याफलत्वदर्शनाद् दृष्टविरुद्धमनुमानम् । अतोऽसत्कार्यं तदिति ।

अव्यक्तमिति चेत् । स्यान्मतम् – अव्यक्तानि वात[17]कर्कोटकी-वञ्जुल-जपाकुसुमादीनां फलानि

---

१ °रपाध्यत्वेऽनुवस्थिता° भा० । °रपाध्यत्वेनुवस्थिता° य० ॥ २ ज्ञानेन प्र० ॥ ३ °संशय-सम्यक्प्राप्ति° य० । "प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनान्यवयवाः [न्यायसू० १।१।३२]। दशावयवानेके नैयायिका वाक्ये सञ्चक्षते जिज्ञासा संशयः शक्यप्राप्तिः प्रयोजनं संशयव्युदास इति"—इति न्यायसूत्रभाष्ये १।१।३२ ॥ ४ °व्याप्य-व्याप्त्यतिप्रस° य० । °व्याप्यतिप्रस° भा० ॥ ५ कार्यसदसत्त्वानिवसः य० । कार्यसत्त्वानिवसः भा० ॥ ६ असत्वमेव त्ययमपि भा० लीं० । अत्र 'असत्त्वमेव वेत्ययमपि' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ७ कार्यात्सत्ततः प्र० ॥ ८ कारणभावे भा० ॥ ९ °सर्जनाभावयो° प्र० ॥ १० °भ्यामिति यथासंख्यं प्र० ॥ ११ सत्येवात् भा० । सत्येव भावात् य० ॥ १२ कृषीबल° प्र० । एवमग्रेऽपि ॥ १३ °शिल्पादीनां प्र० ॥ १४ °ज्यासेवा° य० ॥ १५ °शिल्पादिषूद्युक्तानां य० ॥ १६ वातककेटिकी° भा० । वातककोटिक° य० ॥ १७ °कर्कोटिकी° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिति चेत्, न, व्यक्तिकार्यस्य अव्यक्तकार्यत्वादसत्त्वतुल्यत्वात्। बीजादीनामप्यकारणतैव क्वचिदकरणादिति कारणमप्यकारणमेव, कार्यकारणाव्यभिचाराभावात्। कार्यसदसत्त्वानियमात्तु कारणे कारणतायामेव करणाकरणे कार्यस्य, अविदितवेदनार्थविधिपरतायां वाक्यप्रवृत्तेस्तस्यामवस्थायामनुपजनितविषयत्वादपवाद-

---

कार्याणीति। एतच्चायुक्तम्, **व्यक्तिकार्यस्य अव्यक्तकार्यत्वादसत्त्वतुल्यत्वात्।** व्यक्तिः कार्यमस्येति व्यक्तिकार्यम्। किं तत्? कार्यम्। तस्य कार्यस्य अव्यक्तकार्यत्वात्, असत्त्वेन तुल्यम्, तद्भावोऽसत्त्वतुल्यत्वम्, तस्मादसत्त्वतुल्यत्वान्नाव्यक्तं कार्यमस्तीति। अथवा व्यक्तिश्च[1] सा कार्यं तद् व्यक्तिरेव कार्यम्, तदव्यक्तं कार्यमव्यक्तकार्यम्, तस्याव्यक्तकार्यत्वादसत्त्वतुल्य[2][त्व]म्, तस्मादसत्तद् वातकर्कोटक्यादिपुष्पफलम्, नाव्यक्तं कार्यमिति।

स्यान्मतम्—करोतीति कारणम्। यथोक्तम्—

[3]छिवसिव्योर्ल्युट्परयोर्दीर्घत्वं वष्टि भागुरिः।
करोतेः कर्तृभावे च सौनागाः सम्प्रचक्षते॥ [ ]

तस्मात् स्वकार्यस्या[4]करणादकारणत्वमेवेति। एतदपि नोपपद्यते, यस्माद् **बीजादीनामप्यकारणतैव क्वचिद[5]करणा**दिति प्राप्तम्। **इति**शब्दो हेत्वर्थे। यस्मात् तेषामपि बीजानां त्रि[6]वर्षपरमोषितानामङ्कुराद्युत्पादने शक्त्यभावः, आदिग्रहणाद् [7]मृदादेर्घटाद्युत्पादने। ततः को दोषः? **कारणमप्यकारणमेवास्तु [8]कार्यकारणाव्यभिचाराभावा**दिति। एवं च सति कृषीवलादीनां सकृद्दृष्टबीजाङ्कुरादिकारणकार्यभावव्यभिचाराणां [9]तदर्थप्रवृत्तेः पुनरनारम्भात् [10]करणाभावे कारणाभाव एव स्यात्, अनिष्टं चैतत्। लोके २४- पुनरुपपद्यते—**[11]कार्यसदसत्त्वानियमात्तु [12]कारणे** बीजादौ **कारणतायामेव** सत्यां **करणाकरणे** सन्निहिते तन्त्वादौ कारणे **कार्यस्य** पटादेश्च, कादाचित्कयोः करणाकरणयोर्दर्शनात्।

स्यान्मतम्—कारणे कार्यस्य सदसत्त्वयोः करणाकर[13]णयोश्चानियमे किमर्थं पुनः 'करोतीति कारणम्' इति शब्दव्युत्पत्तिराश्रीयते? [14]इति। अत्रोच्यते—**अविदितवेदने**त्यादि। अज्ञातज्ञापनमविदितवेदनमर्थोऽस्य विधेरिति **अविदितवेदनार्थो विधिः, तत्परतायां वाक्यप्रवृत्तेः तस्यामवस्थायामनुपजनितविषयत्वादपवादस्पर्शस्य।** तदा हि 'करोतीति कारणम्' इति कारणत्वविधानमात्रं क्रियते देशकालादिविशेषाविशेषणादसति स्वविषये कमर्थमपवादः स्पृशेत्—किं करोत्येष न करोत्यपि क्वचित् कदाचिदिति?

---

१ **व्यक्तिंच** प्र० ॥ २ अत्र 'तदव्यक्तं कार्यमव्यक्तकार्यं तस्याव्यक्तकार्यत्वादसत्त्वतुल्यम्' इति योजनायां यथाश्रुतमपि समीचीनमेवेति भाति ॥ ३ **छिवसीव्योर्लुट्पर**° य० । **छिवूसीव्योर्लुट्पर**° भा० । "छिवु निरसने"–**पा० धा०** ५६०, ११९० । "षिवु तन्तुसन्ताने"–**पा० धा०** ११०८ । "छिविषिव्योर्ल्युटि वा दीर्घः"–इति **अमरकोषटीकायां क्षीरस्वामी** ॥ ४ °**स्याकरणात्कारणत्वमे**° य० । °**स्याकारणाकारणत्वमे**° भा० ॥ ५ °**दकारणा**° प्र० ॥ ६ **त्रिवर्षे परमोषितामंकुराद्युउत्पादनं** । **शक्तय**° भा० । **त्रिवर्षपरिमोषितामंकुराद्यउत्पादनाशक्त्य**° य० । "विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मस्तेषु महान्भवेत्। यज बीजैः सहस्राक्ष **त्रिवर्षपरमोषितैः** ॥"–**महाभा० आश्वमे०** ९१।१६ ॥ ७ **मृदादिघटा**° प्र० ॥ ८ **कार्यकरणाव्य**° भा० ॥ ९ **तदर्था[याः ?] प्रवृत्तेः** प्र० ॥ १० **कारणाभावे** प्र० ॥ ११ **कायसदसदसत्त्वानिय**° भा० । **कासद्सत्वानिय**° य० ॥ १२ **करणे** प्र० ॥ १३ °**णयोएवानियमे** प्र० ॥ १४ **इत्युच्यते अविदित**° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्शस्य, नीलोत्पलवत् । तथा न्यग्रोधफलमसत्कारणं दृष्टम् । आम्रपुष्पफले सत्कार्यकारणे दृष्टे ।

सर्वसर्वात्मकत्वसर्वकारणत्वात् सेवादिक्रियाकलापो यथा अर्थप्राप्तेः कारणं तथा क्लेशप्राप्तेरपि ।

नन्वत एव क्लेशोऽपि भवतीति चेत्, एवं सतीप्सितेन तावद्भवितव्यम्, सन्निहिततच्छक्त्यभीहितत्वात्, सर्वशास्त्रज्ञान्यतरव्याख्यानवत् ।

तदा स मन्यते वक्ता – इदं तावत् प्रतिष्ठां यातु 'करोतीति कारणम्' इति । प्रतिष्ठिते चास्मिंस्तत उत्तरकालं सिद्धे सति कारणत्वे सं[1]भवतः कार्यसत्त्वासत्त्वयोः तेन विशेषणप्रकारेण क[2]रोत्येव न करोत्येवेति विकलादेशवशान्नियमोपपत्तेर्विशेषणमाश्रीयते । को दृष्टान्तः ? **नीलोत्पलम्** । यथा हि 'नीलोत्पलं भवति' इति तद्भवनमात्रं विधीयते 'नीलमेव, उत्पलमेव' इति वा नियमविशेषानाश्रयणात्, तथा 'करोतीति कारणम्' इति क्रियाभवनमात्रं विधीयते 'करोत्येव, न वा' इत्यनाश्रित्य विशेषनियमम् । यथा वा नीलं तिल-कम्बलादिविशेषानपेक्षम् उत्पलमपि रक्ततादिविशेषानपेक्षं परस्परविशिष्टमुभयमुच्यते तथा 'करोतीति कारणम्' इति करणमात्रं देशकालादिकार्यप्रतिबन्धाप्रतिबन्धनिरपेक्षमुच्यते । अथवा शबलोत्पलत्वे सत्यपि तस्य धर्मभेदानपेक्षं 'नीलोत्पलम्' इत्युच्यते, तथा का[3]रणभावाभावभेदधर्मनिरपेक्षं क्रियामात्रं 'करोतीति कारणम्' इत्युच्यते ।

तथा न्यग्रोधफलम् । तेन प्रकारेण त[4]था, यथा प्रागुक्तं[5]**सदसत्त्वानियमात्तु कारणे कार्यस्य**

२५-१ **कारणतायामेव करणाकरणे** तथा कार्यकरणाकरणानियमात्तु कारणस्य कार्यस्य कार्यत्वानियमः । वटन्यग्रोधोदुम्बरादिफलानां फलत्वात् पुष्पकार्यत्वानुमानप्रसङ्गे फल**मसत्कारणं दृष्ट**[6]मिति पूर्ववद् व्यभिचारः । **आम्रपुष्पफले सत्कार्यकारणे दृष्टे** इत्यत्रापि कादाचित्कयोरेव कार्यकारणयोर्दर्शनात् कार्यकारणसदस[7]त्करणाकरणानियममेव दर्शयति ।

इतश्च कार्यकारणसदसत्त्वानियमः – **सर्वसर्वात्मकत्वसर्वकारणत्वात्** । स्थावरजङ्गमाभ्यवहृतान्योन्यरसरुधिरादिरूपादिपरिणामापत्तिवैश्वरू[8]प्यदर्शनात् सर्वं सर्वात्मकम्, तत एव सर्वं सर्वस्य कारणं कार्यं चेति कृत्वा **सेवादिक्रियाकलापो यथा अर्थप्राप्तेः कारणं तथा क्लेशप्राप्तेरपि** प्र[9]कल्प्यत एव कारणम् । तदपि च फलमर्थक्लेशप्राप्त्यादि अनियतम्, उभयत्र व्यभिचारात् ।

इतर आह – **नन्वत एव क्लेशोऽपि** कार्यसत्त्वादेव **भवती**ति 'नियतं कारणे कार्यम्' इत्यापन्नं [10]चेदित्येवं चेन्मन्यसे । **एवं सति ईप्सितेन तावद् भवितव्यम्** । किं च तदीप्सितं फलम् ? अर्थप्राप्तिः, न क्लेशः **सेवकस्य** । किं कारणम् ? **सन्निहिततच्छक्त्यभीहितत्वात्** । सन्निहिता सा

२५-२ शक्तिरस्य सोऽयं सेवकः **सन्निहिततच्छक्तिः** अप्रोषितार्थप्राप्तिशक्तिः, [11]सेवा वा सन्निहिता, सा शक्तिरस्याः सा सन्निहिततच्छक्तिः, तया **अभीहितत्वात्** चेष्टितत्वादिति वृत्तिवृत्तिमतोरनन्यत्वात् सेवा-

---

१ **सम्भवतः** इति पञ्चम्यर्थे 'तसि'प्रत्ययान्तः शब्दप्रयोगः, कार्यसत्त्वासत्त्वयोः सम्भवादित्यर्थः ॥ २ **करोत्येव वेति** दे० ही० । **करोत्येव न करोत्येवेवेति** पा० । अत्र 'करोत्येव न करोत्येव वेति' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ३ **कारणभावा**° य० ॥ ४ **तथा तथा प्रागुक्त**° य० । **तथा प्रागुक्त**° भा० ॥ ५ पृ० ३७ पं० ३ । अत्र '**प्रागुक्तं**' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ६ **दृष्टवदिति पूर्ववद्** प्र० ॥ ७ **सत्करणाकारणनियम**° प्र० ॥ ८ °**रूपदर्शनात्** पा० विना ॥ ९ **प्रकल्पत** प्र० ॥ १० **वेदिव्यचेन्मन्यसे** य० ॥ ११ **सवा वा** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र देशकालाकारनिमित्तावबद्धत्वान्नेष्टमेव फलमवाप्यते, ज्ञाव्याख्यानवत् । अथ देशादयः किम् ? यदि ते कार्यं ततस्तेषामकारणत्वादसर्वत्वादतत्त्वत्वादप्रतिबन्धकत्वम् । अथ ते कारणं ततः सर्वकारणत्वसर्वात्मकत्वात् किमिति सर्वं न भवति, समुदितकारणत्वात्, संयुक्ततन्तुपटवत् ?

अथ वा सर्वं न भवति, अनभिव्यक्तत्वाद्देशादेः, प्रधानसाम्यावस्थानवद्

सेवकयोर्यथेष्टं विग्रहसम्बन्धौ । युक्तं हि ताभ्यामीप्सितार्थप्राप्तियुक्ताभ्यां भवितुम्, नानीप्सितक्लेशभाग्भ्याम् । को दृष्टान्तः ? **सर्वशास्त्रज्ञान्यतरव्याख्यानवत्** । यथा सर्वशास्त्रज्ञः पुरुषो व्याकरणाद्यन्यतमच्छास्त्रमीप्सितमेव व्याचष्टे तथैतदिति ।

अत्र ब्रूमः — **तत्र देशकालाकारनिमित्तावबद्धत्वान्नेष्टमेव फलमवाप्यते** सेवकेनेव प्रसन्ननृपादपि, स्वनगरभाण्डागारादिक्षेत्रप्रतिबन्धवत्[1] श्वःप्रभातादिकालप्रतिबन्धवत् प्रसाददानाभिमुख्याकारावबन्धवत् द्वितीयकर्मण्यताप्रदर्शनादिनिमित्तावबन्धवत् । शा[2]स्त्रज्ञदृष्टान्तस्यापि तादृग्विधावबन्धसद्भावे सति अव्याख्या[3]नवदनियम एव फलस्येत्यत आह — **ज्ञाव्याख्यानवत्**, [4]सर्वशास्त्रज्ञोऽप्येभिरेवावबन्धैरीप्सितं न व्याचष्ट इति ।

लौकिको ब्रवीति — **अथ देशादयः किम् ?** इति । विकल्पद्वयान्तःपातेन निरोत्स्याम्येतदित्यभिप्रायः । ये देशादयोऽवबन्धकाभिमतास्ते य[5]दि **कार्य**तयेष्टा**स्ततस्तेषाम[6]कारणत्वादसर्वत्वम्** । कारणभावाद्धि सर्वं सर्वात्मकं स्यात्, तदभावादसर्वत्वं देशादीनां प्राप्तम् । असर्वत्वाच्च तेषामतत्त्वं तेषु, कस्यचित् तदधीनवृत्तित्वाभावात् । ततोऽतत्त्वाद**प्रतिबन्धकत्व**मपि ।

अथाचक्षीथाः — **ते** देशादयः **कारण**मिति । **ततः** कारणं चेत्, **सर्वकारणत्वात् सर्वात्मकत्वात् किमिति सर्वं न भवति ?** भवत्येवेत्यर्थः । कस्मात् ? **समुदितकारणत्वात्**, समुदितकारणत्वं सर्वकारणत्वात् सर्वात्मकत्वाच्च । अत्र प्रयोगः — सर्वं सर्वत्र स्यात्, समुदितकारणत्वात्, **संयुक्ततन्तुपटवत्** । यथा तन्तूनां परस्परसंयोगे सति नियमात् पटो भवति स्वकारणवसंनिधानादेवं सर्वकारणत्व- २९-१
सर्वात्मकत्वसद्भावे को देशादिप्रतिबन्धो नाम अन्य इति किमिति मुधा[7] सर्वं न भवेदिति ?

अथ वा सर्वं न भवतीत्यादि स एव लौकिक आशङ्कते । अथ मतं भवतः **साङ्ख्यस्य** — सर्वं न भवति शरीरक्लेशसुखार्थानर्थप्राप्त्यादि । कुतः ? **अनभिव्यक्तत्वात्** । अञ्जू[8] व्यक्तिम्रक्षणगतिषु [पा० धा० १४५९], म्रक्षितमभिव्यक्तं स्फुटीकृतम्, अनभिव्यक्तमस्फुटम्, अनभिव्यक्तत्वाद् **देशादेः** कारणस्य सर्वं न भवति । को दृष्टान्तः ? **प्रधानसाम्यावस्थानवत्** । यथा प्रधानं सत्त्वरजस्तमस्त्रिगुणत्वसाम्यावस्थानेऽनभिव्यक्तत्वात् सर्वकारणम[9]पि सत् सर्वान् भावान्न प्रकरोति घटपटादीन्, अथ च प्रकरणात् 'प्रकृतिः' प्रधीयन्ते भावास्तत इति 'प्रधानम्' इत्यादिभिर्नामभिरुच्यते, तस्य चानभिव्यक्तत्वं तत्साम्यावस्थानान्म-

---

१ °वत् धेःप्रभाता° प्र० ॥ २ शास्त्रज्ञादृष्टान्तस्यापि य० । शास्त्रस्यापि भा० ॥ ३ °ख्यानवादनि° य० ॥ ४ सर्वेश्वशास्त्रज्ञो° य० ॥ ५ यदे कार्य° प्र० ॥ ६ °मकारत्वाद° प्र० ॥ ७ मुवा भा० । मुचा य० ॥ ८ "अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु" – पा० धा० १४५९ । "अञ्जौप् व्यक्तिम्रक्षणगतिषु" – हैमधा० ७।१६ ॥ ९ °मपि न् भावान्न भा० । °मपि सत् सर्वा भावान्न य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मयूराण्डकरसगतग्रीवादिवद्वा । ननु च देशादेः सर्वत्वात् सर्वात्मकत्वाद् वैषम्यावस्थैव इति लौकिकप्रकृतित्वमेव प्रकृतेः, सर्वात्मकत्वात्, देशादिवत् ।

अनभिव्यक्तिसाम्यावस्थाने चायुक्ते, अप्रयोजनत्वात्, निर्वृत्तानिर्वृत्तार्थक्रियौदासीन्यवत् । प्रकृतिकारणत्यागेन कारणान्तरस्य वा तथाप्रणेतुरापत्तिः ।

न्येथाः तथा हि देशादिकारणं साम्यावस्थानादनभिव्यक्तं प्रधानवत् सर्वं कार्यं न कुरुते । लोकप्रसिद्धमप्यत्रोदाहरणम् – **मयूराण्डकरसगतग्रीवादिवत् ।** यथा मयूराण्डकरसावस्थायामेव मेचकवर्णग्रीवाद्यवयवानभिव्यक्तिः तत्साम्यावस्थानात्, अतः सर्वं न भवति मयूराण्डकरसावस्थायामिव तद्ग्रीवादीति ।

अत्रोच्यते – मैवं मंस्थाः, **ननु चे**त्यादि । नन्वित्यनुज्ञापने, त्वयाप्येतदिष्टम् – सर्वं देशादीति ।
२६-२ तस्माद् **देशादेः सर्वत्वात्** सर्वात्मकत्वम्, **सर्वात्मकत्वाच्च वैषम्यावस्थैव ।** इतिशब्दो हेत्वर्थे, यस्मा**ल्लौकिकप्रकृतित्वमेव प्रकृतेः** सूक्ताभिमतायाः । कथम् ? यथा हि लौकिकी प्रकृतिर्देशादिर्विषमावस्थैव सती सर्वकारणात्मिका कार्यात्मिका विषमा समा च व्यक्ता चाव्यक्ता च तथा **साङ्ख्य**परिकल्पित-प्रकृतिरपि स्यात् । किं कारणम् ? **सर्वात्मकत्वात्, देशादिवद्** मयूराण्डकरसवद् वा वैषम्यावस्थैवेत्यर्थः । साम्यावस्थैव वा देशादेरपि, सर्वात्मकत्वात्, प्रकृतिवदिति ।

किञ्चान्यत् – एते अपि च कल्पने **नोपपन्ने** – देशादीना**मनभिव्यक्तिः** प्रकृतेः **साम्यावस्थान**मिति । कस्मात् ? **अप्रयोजनत्वात् ।** न हि देशादीनामनभिव्यक्तौ प्रयोजनमस्ति, पुरुषविमोक्षणहेतोर्व्यक्तरूपतया प्रवर्तमानानां तथा पुरुषार्थसिद्धेः, अनिर्वृत्तौदनस्य पचिक्रियायामौदासीन्यवत् । नापि निर्वर्तितार्थायाः प्रकृतेः पुनरात्मानमुपसंहृत्य साम्यावस्थाने किञ्चित् प्रयोजनमस्ति, सिद्धौदनस्य ओदनार्थरन्धनादिप्रवृत्तिवत् । अथवा प्रकृतेरेव **अनभिव्यक्तिसाम्यावस्थाने न युक्ते, अप्रयोजनत्वात् ।** अप्रयोजनत्वं निर्वृत्तानिर्वृत्तार्थत्वात् । यदि निर्वृत्तार्था, सिद्धौदनरन्धनवदयुक्तं साम्यावस्थानम् । अनिर्वृत्तार्थं चेत् प्रधानम्, असिद्धौदनौदासीन्यवदयुक्तं साम्यावस्थानम् । तथानभिव्यक्ति. । किं कारणम् ? प्रकाशनार्थं प्रवृत्ताया व्यक्तिवैषम्याभ्यां तदर्थसिद्धेः, ताभ्यामृते चासिद्धेः, अनभिव्यक्तिसाम्यावस्थानयोरपि प्रवृत्तिविशेषत्वात्, द्विधाप्यप्रयोजनत्वादयुक्तमिति । अथवाऽप्रयोजना अनभिव्यक्तिः, निर्वृत्तार्थत्वात्, देशादिरूपेण प्रकाशितात्मवृत्तिः किमर्थं नाभिव्यज्यते ? किमर्थं वा सर्वं पुरुषार्थमकृत्वा साम्येन अवतिष्ठते ?
२७-१ **साङ्ख्यैश्च** द्विविधपुरुषार्थसिद्ध्यै प्रकृतिप्रवृत्तिरिष्टा, नाकस्मिकी यदृच्छावादिमतवत् । न चेश्वरस्वभावादिकारणवादिमतवद् वा कारणान्तरम् । यथासङ्ख्यं चात्र दृष्टान्तद्वयं दर्शयति – **निर्वृत्तानिर्वृत्तार्थक्रियौदासीन्यव**दिति, पचनापचनवदोदनस्येत्यर्थः । स्यान्मतम् – तस्याः प्रकृतेरव्यक्तिसाम्यावस्थाने कालनियतियदृच्छास्वभावेश्वराद्यन्यतमकारणवशादिति । एतच्चायुक्तम्, **प्रकृतिकारणत्यागेन** अभ्युपेतविरोधदोष-

---

१ °वर्णाग्रीवा° प्र० ॥ २ °नादतः सर्वं न भवति मयूराण्डकरसादतः सर्वं न भवति मयूराण्डावस्थायामिव य० ॥ ३ प्रकृतेष्टक्ताभिमतायाः प्र० । तुलना – "समस्ततन्त्रार्थविघटनमेवेति किमवशिष्यते वार्षगणे तन्त्रे ? सुभाषिताभिमतस्याज्योऽयमनुपपन्नपरोक्षार्थवादः" – नयचक्रवृ० पृ० २३२-२ ॥ ४ °देशादिविषमा° प्र० ॥ ५ विषमा च व्यक्ता चा° भा० ॥ ६ °स्थानामिति प्र० ॥ ७ °पार्थसिद्धिः भा० ॥ ८ अनिवृत्तौ° प्र० ॥ ९ °वनस्पते क्रियाया° वि० ॥ १० ओदनाथोरन्धनादि° भा० । ओदनाथोरचनादि° य० ॥ ११ °त्तार्था चेत् य० ॥ १२ प्रवृत्तयो १० ही० विना ॥ १३ प्रकाशिका ता(वा?)त्मवृत्तिः प्र० ॥ १४ °कारणित्वत्यागेन भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मान्तरत्वप्रकाशनं हि ज्ञानार्थस्य स्वतन्त्रस्य अप्रतिहतसर्वगतत्वस्य प्रधानस्य धर्मः। अतस्तेन नित्यप्रवृत्तेनैव भवितव्यम्, तत्स्वभावत्वात्, यथा

सम्बन्धिनी यस्मात् **कारणान्तरस्य वा तथाप्रणेतुरापत्तिः,** कारणादन्यत् कारणं कारणान्तरम्, प्रकृतेरन्यत् कारणं यत् [1]प्रकृतिं तथा प्रणयति तदस्ति स्वभावनियतिकालयदृच्छेश्वरादीनामन्यतमदित्यापन्नम्, अनिष्टं चैतत्।

कारणान्तरनिरपेक्षस्य कारणस्य स्वकार्याकरणं च युक्तिविरुद्धमित्यत आह – **आत्मान्तरत्वप्रकाशनं हीत्यादि** यावत् **प्रधानस्य धर्म** इति। आत्मनोऽन्य आत्मा आत्मान्तरम्, तस्य भाव आत्मान्तरत्वं परस्परविभिन्नमहदहङ्काराद्यवस्थान्तरत्वम्, तस्य प्रकाशनम्। **हि**शब्दो यस्मादर्थे, यस्मादनभिव्यक्तेः साम्यावस्थानस्य च प्रतिपक्षोऽवस्थान्तरप्रकारत्वेन आत्मप्रकाशनमयं प्रकृतेर्धर्मः। स्यान्मतम् – [2]उपायानभिज्ञत्वात् कारणान्तरं साचिव्यगुणोपेतमपेक्षत इति, एतच्चायुक्तम्, **ज्ञानार्थ**त्वात्। उक्तं च – **धर्म[3]ज्ञानवैराग्यैश्वर्याणि बुद्धिधर्मः(र्मा) अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्याणि च। तेषामष्टानां [4]सप्तभिर्बध्नाति एकेन मोचयति** [　　　] इति **तस्य** प्रधानस्य **ज्ञानार्थस्य** परिणत्यवस्थात्मकस्यायुक्ता सचिवापेक्षा। स्यान्मतम् – परतन्त्रत्वात् सहायान्तरमपेक्षते, तच्च न, **स्वतन्त्र**त्वात्। स्यान्मतम् – क्वचित् प्रधानं कारणं क्वचिदन्यत्, [5]अव्यापित्वात्, लौकिककालादिकारणवदिति। एतच्चायुक्तम्, **अप्रतिहतसर्वगतत्वात्** तस्य।

अथवा [6]**आत्मान्तरत्वप्रकाशन**मिति आत्मा पुरुषः, आत्मनोऽन्य आत्मा आत्मान्तरम्, तस्य भाव आत्मान्तरत्वं पुरुषाद्भिन्नं त्रिगुणस्वभावं स्वमात्मानं प्रधानं पुरुषाय प्रकाशयति। पुरुषाद्वान्यः २७-२
पुरुष आत्मान्तरम्, तस्य भाव आत्मान्तरत्वं पुरुषान्तरत्वम्, तस्मै पुरुषाय [7]प्रकाश्य आत्मस्वरूपं पुरुषान्तराणां प्रकाशयति, पुरुषान्तरत्वं वा चैतन्यस्वरूपमध्यस्थशुद्धकेवलत्वैः परस्परभिन्नैः पुरुषान्तरस्थैः पुरुषान्तरेषु प्रकाशितेष्वपि अन्येषां पुरुषाणां यत् पुरुषान्तरत्वं तैरेव चैतन्यादिभिर्युक्तं प्रकाशयति। प्रकृतेर्वा स्वयमचेतनाया [8]आचैतन्यस्वरूपस्य प्रकाशनम्। अयं **हि धर्मस्तस्य ज्ञानार्थस्य स्वतन्त्रस्य अप्रतिहतसर्वगतत्वस्य प्रधानस्य।**

एवं तस्य स्वभावधर्मं समर्थ्य इदानीमनभिव्यक्तिसाम्यावस्थानप्रतिपक्षभूतं नित्यप्रवृत्तत्वं प्रधानस्यानुमिमीते – **अतस्तेन नित्यप्रवृत्तेनैव भवितव्य**मिति प्रतिज्ञा। **अत** इत्यनन्तरोक्तधर्मत्वात् प्रधानस्य, तद्धर्मत्वमिदानीं हेतुत्वेन व्यापारयितुमाह सामान्यतः – **तत्स्वभावत्वा**दिति, स स्वभावो धर्मो यस्य तत् तत्स्वभावं प्रधानं पूर्वोक्तैर्हेतुभिर्विशेषितमतस्तन्नित्यप्रवृत्तं भवितुमर्हति। इह [9]यद् यद् यत्स्वभावं तत् तत्

---

१ प्रकृति तथा य० ॥ २ उपायानभिज्ञत्वात् य०। उपयानभिज्ञत्वात् भा०॥ ३ °ज्ञानवैराग्या° प्र०॥ ४ सयुक्तिर्बध्नाति प्र०। "रूपैः सप्तभिरेवं बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः। सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण॥ [साङ्ख्यका० ६३]। रूपैरिति सप्तमी रूपैः प्रकृतिरात्मानं बध्नाति। कतमैः? तदुच्यते – धर्माधर्माज्ञानवैराग्या-वैराग्यैश्वर्यानैश्वर्याणि एतानि सप्त रूपाणि। एतैः सप्तभी रूपैरात्मानं बध्नाति। ······। सैव च पुरुषार्थं विमोचयत्येकरूपेण। किं तदेकरूपम्? ज्ञानम्। तेन ज्ञानेन आत्मानं पुरुषाद् विमोचयति एकेन" – जे० साङ्ख्यका० वृ० B॥ ५ अव्यासित्वात् प्र० ॥ ६ आत्मान्तरप्रका° प्र० ॥ ७ प्रकाशाष्यात्मस्वरूपं भा०। प्रकाशाप्यात्मस्वरूपं य० ॥ ८ अचैतन्य° य० ॥ ९ यद्यत्स्वभावं तत्तेनैव य० ॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

अग्निर्दहनप्रकाशनप्रवृत्तः।

ननु भस्मच्छन्नोऽग्निरपि न दहति न प्रकाशयति। अथ कथं जीवति? कथं ज्ञायते 'अग्निः' इति अदहन्नप्रकाशयन् वा तावत् कोशकादि स्वाश्रयमात्रम्, गृहप्रदीपकवत्? छादनाभावोऽपि च प्रधाने।

तेनैव स्वभावेन नित्यप्रवृत्तं दृष्टम्, **यथाग्निर्दहनप्रकाशनप्रवृत्तः।** यत् पुनर्नित्यप्रवृत्तं न भवति न तत् तत्स्वभावम्, यथा न किञ्चित् तादृगिति।

दहनादितत्स्वभावस्याग्नेस्तथाप्रवृत्त्यदर्शनात् साध्यधर्मवैकल्यं दृष्टान्तदोष इति तन्निदर्शयन्नाह— **ननु भस्मच्छन्नोऽग्निरपि न दहति न प्रकाशयती**ति, दहनतपनयोरभेदादिति। अत्रोच्यते—**अथ**
२८-१ **कथं जीवति?** इति। जीवनमग्नेश्चेतनत्वात्, चैतन्यमाहारलाभालाभयोः पुष्टिग्लान्यादिदर्शनाद् मनुष्यवत्। स[1] चेन्धनं दहन् जीवति, स्थितेर्जीवितपर्यायत्वात् स्थितेरिन्धनदहनाविनाभावात्। अचेतनत्वमभ्युपगम्यापि स्थितिप्र[2]काशनेन्धनदहनात्मकस्याग्नेः प्रत्यक्षानुमानविषयस्य सतस्तथा प्रत्यक्षानुमानाभ्यामग्रहणेऽस्तित्वे प्रमाणान्तरासिद्धेः **कथं ज्ञायते 'अग्निः' इति अ[3]दहन्** अप्रकाशमानः **अप्रकाशयन् वा** द्रव्यान्तरं **तावत् कोशकादि स्वाश्रयमात्रम्?** तत् प[4]रिमाणमस्य तावत्, स्वपरिमाणमात्रमपि स्वाश्रयद्रव्यं कोशकादि अप्रकाशयन् कथम् 'अग्निः' इत्युच्यते? **कोशक** इत्युच्[5]यतेऽन्नपुलिका। दृष्टान्तो **गृह[6]प्रदीपकः। गृहे** प्रज्वालितः प्रदीपको गृहप्रदीपकः, यथा गृहप्रदीप[7]कोऽन्नपुलिकामात्रमपि यदि न प्रकाशयति प्रकाशात्मकः सन्न 'प्रदीपः' इति ज्ञा[8]यते; अग्निवैधर्म्यदृष्टान्तो वा—गृहप्रदीपो गृहं प्रकाशयन्नस्ति, यदि न तथाग्निः स्वमाश्रयं प्रकाशयति प्रकाशात्मकः संस्ततो नास्तीति गम्यते। किञ्चान्यत्, भ[9]स्मच्छन्नाग्निसाधर्म्याभावोऽपि च प्रधानस्य च्छादनाभावादित्यत आह—**छादनाभावोऽपि च प्रधान** इति। अ[10]ग्नेर्भस्मवत् प्रकृतेरावरणाभावाद् भस्मच्छन्नाग्नितुल्यं न भवति प्रधानमतो विशेष्य ब्रूमः—निरावरणाग्निदहनप्रकाशनवत् तत्स्वभावत्वान्नित्यप्रवृत्तेनैव भवितव्यम्। इति तदवस्था नित्यप्रवृत्तता। ततश्चानभिव्यक्तिसाम्यावस्थानानुपपत्तिः।

स्यान्मतम्—यद्यपि प्रधानं महदादिभावेनात्मान्तरत्वप्रकाशनार्थं पुरुषस्य प्रवर्तते तथापि केषाञ्चित् पुरुषाणां कृते प्रयोजनेऽन्येषामकृते कालक्रमेण व्यक्त्यव्यक्तिसाम्यवैषम्यावस्थाः प्रतिपद्यते, सा चास्य

---

१ **स चेनं** भा०। **स चेतनत्वनं** य० ॥ २ °**प्रकाशनेत्वमदहना**° प्र० ॥ ३ **अदहनप्रकाशमानः** प्र० ॥ ४ **परिणमस्य** प्र०। "यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्"—**पा०** ५।२।३९ ॥ ५ °**च्यतेऽन्नपुलिका** य०। °**च्यतेन्नपुलिका** भा०। सर्वास्वपि प्रतिषूपलभ्यमानस्य **'अन्नपुलिका'** इति पाठस्यात्र कोऽर्थ इति सम्यग् न विज्ञायते, तथापि भाजनविशेषोऽत्राभिप्रेतः स्यादिति मत्वा **अन्नपुलिका** इति पाठोऽत्र सम्भाव्यते। **'अन्न'** इति **'पुलिका'** इति च पृथक् पदद्वयं तु नैवात्र जाघटीति। अग्रेऽपि **गृहप्रदीपकोऽन्नपुलिकामात्रमपि** [पं० १५] इति वचनात् तत्र च **'अन्न'** इति पृथक् पदस्य सर्वथा अनावश्यकत्वादसङ्गतत्वाच्चेति ध्येयम् ॥ ६ **गृहीदीपकः** प्र० ॥ ७ °**पकःऽन्नपुलिका**° प्र० ॥ ८ **ज्ञायतेग्निरिति वैधर्म्य**° य०। य०प्रतिपाठानुसारेणात्र 'ज्ञायते तथा न ज्ञायतेऽग्निरिति। वैधर्म्यदृष्टान्तो वा' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ९ **भस्म**° य०। एवमग्रेऽपि ॥ १० **अग्निर्भ**° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालादिकारणान्तरनिरपेक्षस्य तस्य स्वतन्त्रत्वात् सर्वपुरुषार्थप्रवृत्तत्वाच्च निरवशेषपुरुषविषये स्वान्यत्वज्ञापने कृते कृतकृत्यत्वात् किं साम्यावस्थानेन? अकृतेऽप्यकृतकृत्यत्वात् किं प्रतिनिवृत्त्या प्रयोजनम्?

अनभिव्यक्तिसाम्यावस्थानानुपपत्तेश्च किमिति सततसमवस्थितसमनुप्रवृत्ति प्रत्यक्षकारणनानाभेदाभिव्यक्तिस्वभावमेवेदं जगन्नाभ्युपगम्यते? मृत्पिण्ड-

---

प्रवृत्तिः स्वभावाद् नियतेः कालाद् यदृच्छाया[1] वेति। एतदपि नोपपद्यते, **कालादिकारणान्तरनिरपेक्षस्ये-** २८-२
त्यादि। प्रधानं हि कारणं नियतिकालस्वभावेश्वरयदृच्छाद्यन्यतमानपेक्षं कारणं जगतोऽभ्युपगतं भवता,
न तु यथा लोकनये कश्चित् कालोऽपि नियतिरपीत्यादि। **स्वतन्त्रत्वाच्च तस्य** प्रकृतिपुरुषयोः स्वरूप-
भेदपरिज्ञापनस्य स्वार्थस्यानुरूपश्रोत्राद्येकादशेन्द्रियग्रामस्य शब्दबुद्ध्यादिविकल्पग्रामस्य वचनादानविहरणा-
नन्दोत्सर्गकर्मशब्दाद्यर्थग्रामस्य च निर्वर्तने स्वतन्त्रत्वान्न कारणान्तरापेक्षास्ति। **सर्वपुरुषार्थप्रवृत्तत्वाच्च**
कृतार्थस्याकृतार्थस्य च यथासङ्ख्यं साम्यावस्थाने निवृत्तौ[2] च प्रयोजनाभाव इत्यत आह — **निरवशेष-
पुरुषविषये स्वान्यत्वज्ञापने कृते कृतकृत्यत्वात् किं साम्यावस्थानेन? अकृतेऽप्यकृतकृत्य-
त्वात् किं प्रतिनिवृत्त्या प्रयोजनम्,** असिद्धौदनसूपकारनिवृत्तिवत्? इति तदवस्थमप्रयोजनत्वम्।
अत्र चोद्यम् — ननु प्रागुक्तम्[3] — **अनभिव्यक्तिसाम्यावस्थाने** चायुक्ते[4], **अप्रयोजनत्वात्, निर्वृत्तानिर्वृत्ता-
र्थक्रियौदासीन्यवदिति,** अतः पुनरुक्तमिति। अत्र ब्रूमः — न, कारणान्तरापेक्षाप्रतिषेधपरत्वादस्य, प्रवृत्ति-
निवृत्त्योः प्रधानस्य अप्रयोजनत्वमात्रप्रतिपादनपरत्वात् तस्येत्यदोषः।

अव्यक्तिसाम्यावस्थानानुपपत्तेश्चेति। अप्रयोजनत्वादिभिरनभिव्यक्तिसाम्यावस्थाने अनुपपन्ने,
ततश्चाव्यक्तिसाम्यावस्थानानुपपत्तेः[5] **किमिति** किं कारणं जगदेवंस्वभावमिति न गृह्यते? इत्यभिसम्बन्धः।
सततसमवस्थितसमनुप्रवृत्तीति, सततं सर्वकालं समवस्थिता नित्यानुपरता[6] समनुप्रवृत्तिः कारण-
कार्यप्रवृत्त्यात्मिका प्रकर्षेण वृत्तिर्यस्य तदिदं जगत् सततसमवस्थितसमनुप्रवृत्ति[7]। **प्रत्यक्षकारणनाना-
भेदाभिव्यक्तिस्वभावमिति,** प्रत्यक्षाणि च तानि कारणानि च[8] प्रत्यक्षकारणानि मृत्पिण्डदण्डचक्रोदकसूत्र- २९-१
कुलालादीनि घटादीनां कार्याणाम्, तानि नानाजातीयानि, तन्तुतुरीवेमकुविन्दादीनि पटादीनामित्येवं-
प्रकाराणि, तेषां भेदाः प्रत्यक्षकारणनानाभेदाः, तैस्तेषां वाभिव्यक्तिर्घटपटादिकार्यरूपेण, सैव स्वभावो
यस्य तदिदं प्रत्यक्षकारणनानाभेदाभिव्यक्तिस्वभावम्। किं तत्? **जगत्।** एवेत्यवधारणे, किमवधारयति?
प्रत्यक्षदृष्टशुक्रशोणिताहारादिकारणान्येव इत्यवधारयति[9]। किमतो निरस्तम्? अव्यक्तादि अदृष्टं[10] कारणा-
न्तरम्। तस्माद् **दृष्टकारणनानाभेदाभिव्यक्तिस्वभावमेवेदं जगत् किमिति नाभ्युपगम्यते?**
किमित्यदृष्टं कारणान्तरं परिकल्प्यते? इति। एवं तावत् कारणे कार्यसदसत्त्वानियम उक्तः।

---

१ **यदृच्छायद्यत्यतदपि** प्र० ॥ २ **निवृत्ते च** प्र० ॥ ३ पृ० ४० पं० ३ ॥ ४ **वायुक्ते** य० ॥ ५ **नुपपत्तिः** प्र० ॥ ६ **नित्या अनुप°** भा० ॥ ७ **°प्रवृत्ति क्षकारणनानाभेदादिव्यक्ति°** प्र० ॥ ८ **च तानि प्रत्यक्ष°** भा० ॥ ९ **इत्यवधारयंते** भा० । **इत्यवधार्यते** पा० डे० लीं० । **इत्यवधार्यते** वि० १० ही० । तुलना — "एवेत्यवधारणे, किमवधारयति? लोकेऽर्थमवधारयति" — **नयचक्रवृ०** पृ० ३९-२ ॥ १० **अदृष्टकारणा°** भा० वि० विना ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

शिवकस्थासकोसकुशूलघटकपालशकलशर्करिकापांशुवातायनरेणुपुनरुपचयप्रासानन्त्यस्कन्धपांशुमृत्पिण्डादेरनियतादिसदसद्भूतकारणाध्यासाविमुक्त्यनिर्मूलत्वं कार्यस्य ।

अतोऽवगम्यतां न किञ्चिदन्यत् फलं तच्छास्त्रेण क्रियते यल्लोकव्यवहार-

---

कार्यानियमोऽपि च । कार्यमेव[1] सदसद्भूतकालादिविशेषकारणमेवेत्यनियमः प्रधानादिशास्त्रकारपरिकल्पितकारणपूर्वकमेवेति वा । किं कारणम् ? तथानुगम्यमानदृष्टान्ताभावात् । किं तर्हि ? एतावान्नियमः — **कारणाध्या[2]साविमुक्त्यनिर्मूलत्वं कार्यस्ये**ति, तथानुगम्यदृष्टार्थत्वात्, **मृत्पिण्डशिवके**त्यादि**पांशुमृत्पिण्डादे**रित्य[3]न्तस्य दण्डकस्योपरि **अनियतादिसदसद्भूतकारणाध्यासाविमुक्त्यनिर्मूलत्व**मिति वक्ष्यमाणसम्बन्धत्वात् । कार्यमेव, सदेव असदेव वा[4] कारणं कालादि, सादिकारणमित्यस्य वाऽनियमप्रदर्शनार्थमुदाहरणमाह — **मृत्पिण्डशिवके**त्यादि यावत् **पांशुमृत्पिण्डादे**रिति, एषां मृत्पिण्डाद्यवस्था-
२९-२ विशेषाणां वातायनरेणुपर्यन्तानामेव लोके दृष्टत्वात् पुनरुपचयात् प्राप्तमानन्त्यं येषां स्कन्धानां ते **पुनरुपचयप्राप्तानन्त्यस्कन्धाः** वातायनरेणुभ्यः प्रभृति पुनरुपचयक्रमेण पांशु-मृत्पिण्ड-शिवक-स्थास-कोसक[5]-कुशूल-[घट-कपाल-]शकल-शर्करिका-पांशु[6]-वातायनरेणव इति चक्रकक्रमेण कारणकार्या[7]नियमो दृष्टः । उत्क्रमेणापि च सङ्घातभेदाभ्यां कार्यकारणसदसत्त्वानियमो दृष्टः, पिण्डमुपमृद्य शिवककरणात् शिवकं चोपमृद्य पिण्डकरणात् स्थासकादीनामन्यतममवस्थाविशेषमुपमृद्यापि पिण्डादिकरणात् क्रियाक्रियाफलक्रमेण च कदाचित् कारणकार्यानियमदर्शनादित्य**नियतादि**, इत्थमनियत आदिरस्येत्यनियतादि, जगदिति सम्बध्यते, तदेव अनियतसदसद्भूतकारणकार्यम्, अ[नियतादिसद]सद्भूतं कारणम्, तस्य अध्यासस्ते[8]र्न वा कारणेन अध्यासोऽधिष्ठानम् । तेन कारणाध्यासेन अविमुक्तिरत्यागः कारणसामान्याविनाभावः, न तु अत्यन्तनिर्मूलोत्पत्तिविनाशलक्षणकार्यत्वं खपुष्पवत्, तथैव लोके दृष्टत्वात् । तया अविमुक्त्या अनिर्मूलत्वं कार्यभूतस्य जगतः ।

अतः प्रोक्तहेतोर्दृष्टकार्यकारणसदसत्त्वानियमात् परपरिकल्पितप्रधानाद्यदृष्टैककारणानुपपत्तेः कालादिविशेषकारणैक्यानुमानाभावाच्च कारणसामान्यमात्रानुमानाच्चा**वगम्यताम् — न किञ्चिद[9]न्यत् फलं तच्छास्त्रेण क्रियते,** निरर्थका[10]नि शास्त्राणीत्यर्थः । किं तत् ? **यल्लोकव्यवहारफलादतिरिच्य वर्तेत,**
३०-१ यदपेक्ष्य शास्त्राणि सार्थकानि स्युः । तस्मादवगम्यताम् — इदं जगल्लोकप्रसिद्धमेव अनियतानुपरताद्य[11]न्तदृष्टकारणकार्यप्रबन्धमिति । न तु यथान्यैः कल्पितम् — उपरतव्यापारं सत् प्रधानमतीन्द्रियं पुनरिन्द्रियग्राह्यत्वादिभावेन जगत् सृजति, पुनरात्मानं संहृत्य उ[12]परतव्यापारं तिष्ठति । न चात्यन्तासत्कार्यं क्षणोत्पन्नविनष्टमसम्बद्धमूलं वैतदिति । **इतिशब्दो** हेत्व[13]र्थः । को हेतुः ? शास्त्रनैरर्थक्यम् । कस्मिन् साध्ये ?

---

१ **कार्यमेव सद्भूतकालादि**° प्र० ॥ २ °**ध्यासाधिमुक्त्य**° प्र० ॥ ३ °**त्यंत्यस्य** य० । °**त्यस्य** भा० ॥ ४ **वा कालादि कालादि सादि** भा० ॥ ५ °**कोसकुशूलशर्करिका**° य० ॥ ६ °**पांसु**° भा० ॥ ७ **कारणाकार्या**° भा० ॥ ८ °**स्तेन कारणेन** प्र० ॥ ९ °**दन्यत्र फलं** प्र० ॥ १० °**काणि शास्त्रा**° य० ॥ ११ °**द्यन्तरदृष्ट**° य० ॥ १२ **उपहृतव्यापारं** य० ॥ १३ **हेत्वर्थो** भा० । अत्र **हेत्वर्थे** इति पाठः समीचीनतर इति भाति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फलादतिरिच्य वर्तेत इति वृथैवमादौ शास्त्रारम्भः। अत्र तु शास्त्रमर्थवत् स्यात् – इदङ्काम इदं कुर्यादिति। अर्थ्यो हि क्रियाया एवोपदेशः, चित्रादिवत्, न तु लौकिके एव गृह्यमाणेऽर्थे इदमेवं नैवं वेति विचारः। अनुपहतेन्द्रियमनःप्रत्यक्षेण लोके यथासौ

शास्त्रारम्भवृथाभावे, अत आह – **वृथा एवमादौ शास्त्रारम्भः** । क तर्हि शास्त्रमर्थवत् स्यादिति चेत्, अतीन्द्रिये पुरुषार्थसाध्यसाधनसम्बन्धे । कोऽसौ ? इत्यत आह – **अत्र तु शास्त्रमर्थवत् स्यात् – इदङ्काम इदं कुर्यादिति । इदं** शब्देन सर्वनाम्ना सामान्य[1]वादिना सर्वाः क्रियाः फलेच्छाप्रेरितास्तत्साधनीः सूचयति 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः, पुत्रकामो यजेत, पशुकामो यजेत, अन्नाद्यकामो यजेत' [2]इत्याद्याः, क्रियाक्रियाफलसम्बन्धस्यातीन्द्रिय[3]त्वात् । उक्तं च – **अप्राप्ये शास्त्रमर्थवत्** [मीमांसाद० ६।२।१८], प्रत्यक्षादिप्रमाणैरनधिगम्ये इत्यर्थः ।

अर्थ्यो हीत्यादि । अर्थादनपेतोऽर्थ्यः । हिशब्दो [4]यस्मादर्थे, यस्मात् **क्रियाया एवो[5]पदेशोऽर्थ्यः** ससाधनायाः फलादि[6]सम्बन्धिन्याः, **चित्रादिवत्** । आदिग्रहणाच्चित्रपुस्तकाष्ठकर्मादिवत् । यथावयवस्थानविन्यासवर्णसंयोगप्रविभागविषयविनियोगाद्युपदेश एवोपयोगात् सार्थकः, न कुड्यवर्णचित्रकारादिस्वरूपोपदेशः तत्र तदनुपयोगात्, **तथा** नित्य[7]क्षणिकत्वादितत्त्ववर्णनं घटपटादेः त्रिगुणकारणपूर्वकत्वादिवर्णनं जगतः सततसंप्रवृत्तिक्षणिकानुपाख्यत्वादिवर्णनं वा । स्यान्मतम् – प्रधानक्षणभङ्गादिवादारम्भोऽप्रत्यक्षविषयत्वात् [8]सार्थकः, क्रियाक्रियाफलसम्बन्धोपदेशवदिति । एतदपि नोपपद्यते, यस्माद् **न तु लौकिक एव गृह्यमाणेऽर्थे [9]इदमेवं नैवं वेति** सार्थको **विचार** इत्यभिसम्बन्धः, प्रसिद्धार्थवि[10]पर्ययस्य विचारस्यानिष्ठादोषनिष्ठत्वात् । **ने**ति प्रतिषेधे, [11]तुर्विशेषणे लोके भवो लौकिकः, देशकालपुरुषक्रिया- ३०-२
विशेषाद्यपेक्षरूपादि[12]मदर्थे कार्यकारणमृत्पिण्डादिघटा[13]द्याकारादिके प्रत्यक्षत एव गृह्यमाणे 'इदं सर्वं सत्त्वरजस्तमः[14]संक्षित्रिगुणात्मकमेव, न चैतदेवम्; क्षणभङ्गजन्मात्मकम्, [15]न चैवम्' इत्यादिविचारः किंसम्बन्धः ? किम्फलः ? को वात्र पुरुषार्थसाधनपरिज्ञानोपयोगः ? इति विमृश्यतां भवद्भिरेव ।

---

१ °**वाविना** डे० लीं० । अत्र °**वाचिना** इति पाठः समीचीनतर इति भाति ॥ २ **इत्याद्याः क्रियाः क्रियाफल**° य० । भा० प्रतौ तु **इत्याद्याः क्रि**° इति पाठादनन्तरः **अर्थादनपेतोऽर्थ्यः** इत्यन्तः सर्वोऽपि पाठो नास्त्येवात्र । तुलना— "क्रियाक्रियाफलक्रमेण च" पृ० ४४ पं० १५। "क्रियाक्रियाफलसम्बन्धोपदेशवदिति" पं० १५॥ ३ °**त्वाद्युक्तं धप्राप्ये** य० । "अशास्त्रा तूपसम्प्राप्तिः शास्त्रं स्यान्न प्रकल्पकम् । तस्मादर्थेन गम्येताप्राप्ते **वा शास्त्रमर्थवत्** ॥" – इति **जैमिनि**प्रणीते **मीमांसादर्शने** पाठः ॥ ४ **यस्मादर्थो** भा० ॥ ५ °**पदेशोर्थः** य० । °**पदेशार्थः** भा० ॥ ६ °**सम्बन्धेत्याः** भा० । °**सम्बन्धत्याः** रं० ही० । **सम्बन्धेव्याः** रं० ही० विना य० ॥ ७ °**क्षणिकचादित्वतत्ववर्णनं** रं० ही० । °**क्षणिकवादित्वतत्त्ववर्णनं** रं० ही० विना य० । °**क्षणिकवादितत्त्ववर्णनं** भा० ॥ ८ **सार्थकः क्रियाफलसम्बन्धो**° भा० ॥ ९ **इदमेवं वेति** प्र० । "लौकिक एव गृह्यमाणेऽर्थे **इदमेवं नैवं चेति** विचारोऽर्थवान्न भवति । यदि भवेत् चतुष्पात्त्वे सति उत्लुत्य गमनात् लोमशो हरिणवद् मण्डूकः, तत एव निर्लोमा हरिणो मण्डूकवत् स्यादिति प्रसिद्धिविपरीतं सिध्येल्लोकाप्रामाण्यकरण इति तत् प्रसक्तमिहापीत्यत आह — न तु लौकिक एव गृह्यमाण इत्याद्युक्तदर्शनवदिति ।" इति वक्ष्यते **नयचक्रवृत्तौ** पृ० ९८-२ ॥ १० °**षयस्य निष्ठादोषनिष्ठत्वात्** भा० । °**षयस्य विचारस्यानित्वादोषनिष्ठत्वात्** य० । अत्र **अनिष्ठा** अनवस्था, तथा च अनवस्थादोषवत्त्वादित्यर्थः ॥ ११ **तुविशेषणे** य० ॥ १२ °**मर्थे** य० ॥ १३ °**द्याकाशादिके** प्र० ॥ १४ °**संक्षित्रि**° भा० ॥ १५ **न चैवम्** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवस्थितस्तथा गृह्यत एव। तत्र पुनर्वचनं प्रत्यक्षप्रसिद्धेर्बाधकमापद्यते 'अनुवादादिभावाभावे सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः' इति लोके दृष्टत्वात्—न यथेदं लोकेन गृह्यत इति।

प्रत्यक्षाप्रमाणीकरणे सर्वविपर्ययापत्तिस्तर्कतः—अलोमा हरिणः, चतुष्पात्त्वे सत्युत्लुत्य गमनात्, मण्डूकवत्। मण्डूकोऽपि लोमशः, तस्मादेव, हरिणवत्।

स्यान्मतम्—लोकदर्शनं[1]मप्रमाणम्, अव्युत्पन्नलोकप्रत्यक्षव्यभिचारात्, मृगतृष्णिकादिष्विवेति[2]। अत्रोच्यते—तथा सति प्रत्यक्षस्य अप्रमाणीकरणं प्रमाणज्येष्ठस्य। मा[3] च मंस्थाः—मृगतृष्णिकादिप्रत्यक्षज्ञान[4]व्यभिचारात् सर्वं प्रत्यक्षं व्यभिचरतीति। किं तर्हि? अनुपहतेन्द्रियमनःप्रत्यक्षं यत् तन्न व्यभिचरतीति गृह्यताम्। तादृशा च प्रत्यक्षेण लोके घटपटादिर्यथासौ येन प्रकारेण येन स्वरूपेण व्यवस्थितस्तथा गृह्यत एव स्वस्थेन्द्रियमानसैः[5], तत्र तादृशेऽर्थे पुनर्वचनम् इदमेवं नैवं वेति, प्रत्यक्षप्रसिद्धेर्बाधकमापद्यते यदि तद् वचनं प्रमाणं स्यात्। न पुनस्तत् प्रमाणम्[6], तया प्रसिद्ध्या स्वयमेव बाध्यमानत्वात्। प्रसिद्धार्थे वचनं न नियमादनुवादाद् वा अन्यत्र प्रमाणं स्यादित्यतो ज्ञापकमाह—अनुवादादिभावाभावे यः सिद्धे सति आरम्भो नियमार्थः स इति परिभाषाया लोके दृष्टत्वात्, लोकव्यवहारानुवादि व्याकरणादिशास्त्रमपि लोकत एवेति कृत्वा। कीदृक् पुनस्तद् वचनम्? इत्यत आह—न यथेदं लोकेन गृह्यत इति। इतिशब्दः प्रदर्शने, इदं तद्वचनं प्रसिद्धेर्बाधकाभिमतमिति प्रदर्श्यते। कथम्?

३१-१ नेति प्रतिषेधे[7], येन प्रकारेण यथा, यथा मृत्पिण्डदण्डचक्रसूत्रोदककुलालपरिस्पन्दनिर्वृत्तो घटः पृथुबुध्नादिस्वरूप उदकाद्याहरणसमर्थ इति लोकेन[8] चक्षुरादिभिर्गृह्यते नायमेवंस्वभावः। किं तर्हि? यथाहं ब्रुवे सर्वसर्वात्मकत्वात् पटकटरथादिरूपोऽपि, गुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाश्रयः परमाण्वाद्यसदत्यन्तापरोक्षपार्थिवद्रव्यारब्धस्तद्व्यतिरिक्तोऽवयवी, रथाङ्गादिवद्[9] बुद्ध्या विभज्यमानो विभज्यमानो न परमाणुषु[10] न रूपादिषु न बुद्धिमात्रे[11] वा तिष्ठति निरुपाख्यत्वादिति वा, तथा तथा भवतीति। शास्त्रविद्वचनं मा भूदनर्थकमिति प्रसिद्धेर्[12]बाधकमापद्यते इति न्याय्यमुच्यते। यथोक्तम्—

> प्रमाणानि प्रवर्तन्ते विषये सर्ववादिनाम्।
> संज्ञाभिप्रायभेदात्तु विवदन्ते तपस्विनः॥ [सिद्ध० द्वा० २०।४] इति।

तस्मादप्रमाणं प्रत्यक्षविरुद्धत्वाच्छास्त्रकारवचनम्।

शास्त्रकारवचनप्रामाण्ये वा प्रत्यक्षाप्रामाण्यम्। एवं च सति को दोषः? तत्र प्रत्यक्षाप्रमाणीकरणे सर्वविपर्ययापत्तिस्तर्कतः[13], सर्वभावानां प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धानां विपर्यय आपादयितुं शक्यते। तद्यथा—अलोमा हरिणः, चतुष्पात्त्वे सत्युत्लुत्य गमनात्, मण्डूकवत्। मण्डूकोऽपि लोमशः[14], तस्मादेव हेतोः, हरिणवत्। यूका पक्षिणी, षट्पात्त्वात्[15], भ्रमरवत्। भ्रमरोऽपक्षः, षट्पात्त्वात्[16],

---

१ °नमप्रमा° प्र० ॥ २ °कादिष्वेवेति प्र० ॥ ३ मा व मंस्थाः प्र० ॥ ४ °प्रत्यक्षं ज्ञान° प्र० ॥ ५ °मानसेस्तत्र प्र० ॥ ६ प्रमाणतया प्र० ॥ ७ प्रतिषेध भा० । प्रतिषेधः य० ॥ ८ लोके चक्षु° भा० ॥ ९ रथाङ्गादिवद्बुद्ध्या प्र० ॥ १० °माणुषु न प्र० ॥ ११ °मात्रे या तिष्ठति प्र० ॥ १२ अत्र 'प्रत्यक्षप्रसिद्धेर्बाधकमापद्यते' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १३ सर्वविषययापत्ति° भा० । सर्वविषयापत्ति° य० ॥ १४ लोमश[शो?]वैतस्मा° भा० ॥ १५ पद्यात्वात् य० । षट्पदत्वात् भा० ॥ १६ पद्यात्घात् य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथिवी अवसुधा, पदार्थत्वात् महाभूतत्वात्, आकाशवत्। एवं शेषपदार्थेष्वपि दृष्टान्तभेदात्।

शास्त्रनिरूपणविपरीतमप्रमाणं न हरिणस्वरूपादि, निरपवादत्वात्। न,

यूकावत्। तथा [1]**पृथिव्यवसुधा, पदार्थत्वात्, आकाशवत्।** असाधारणधर्मसम्बन्धेनापि रूपरसगन्धस्पर्शधर्मसम्बन्धिनी न भवति। [2]*पृथिव्यवसुधा, **महाभूतत्वात्**, आकाशवत्। आकार-गौरव-रौक्ष्यादिधर्मसम्बन्धिनी न भवति*, तत एव, तद्वत्। तथा बौद्धमतेऽपि पृथिवी न भूः, महाभूतत्वाद् रूपत्वाच्च, जलवत्; न [3]कक्खट-धारणधर्मा, तत एव, तद्वत्। **एवं शेषपदार्थभेदेष्वपीति** जलानला- ३१-२
निलेषु व्योमनीन्द्रियादिषु आत्मादिषु यथाप्रक्रियं यथासम्भवं च स्वरूपनिराक[4]रणम्, असाधारणधर्मनिराकरणे च पदार्थत्वमहाभूतत्वरूपत्वादिहेतुकानि साधनानि योज्यानि महदहङ्कारतन्मात्रेन्द्रियशब्दादिषु आत्मनि च द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायेषु सप्रभेदेषु नामरूपयोः संज्ञाविज्ञानवेदनासंस्कारेषु क्षित्युदकज्वलनपवनेषु चक्षुरादिषु रूपादिषु च। **दृष्टान्तभेदा**दिति भूमेराकाशदृष्टान्तवदाकाशस्य भूम्यादिदृष्टान्तेन तथा जलादेरपि परस्परतस्ते ते धर्मा निराकार्या इतरमितरस्य दृष्टान्तं कृत्वेति।

तार्किक आह – **शास्त्रनिरूपणविपरीतमप्रमाण**मित्यादि। शास्त्रेण निरूपणं शास्त्रे निरूपणं वा शास्त्रनिरूपणम्। सन्दिग्धविपर्य[5]स्ताव्युत्पन्नबुद्ध्यनुग्र[6]हार्थं हि शास्त्रेण निरूपयन्ति सन्तो वस्तु अनुग्राह्येभ्यः शिष्येभ्यः – प्रकृतिपुरुषावेव, क्षणभङ्गः, विज्ञानमात्रमेव, द्रव्यगुणादि वा, इति शास्त्रस्यापवादत्वाच्छास्त्रेणापोदिताद् विपरीतं [7]वस्तूच्यमानमप्रमाणम्, शास्त्रस्य सन्देहाद्यपवादत्वात्। **न** हरिणादिस्वभावादि अप्रमाणम्, तत्र शास्त्रेण [8]मोह एव व्यापार इति तन्निरपवादं **हरिणस्वरूपादि,** तस्य **निरपवादत्वात्** तत्तु लोकेन यथा गृहीतं तथैव। **आदि**[9]ग्रहणाद् मण्डूकस्वरूपादि। तत् प्रमाणमेव, निरपवादत्वात्, अग्नेरिवौष्ण्यमिति। अत्रोच्यते – **न, स**[10]**र्वस्यैवापोदितत्वात्।** यथा हि शास्त्रं घटादिव[11]स्तु परिकल्प्य अपवादप्रवृत्तं तथा हरिणादिस्वरूपं प्रत्यक्षतो लोकप्रसिद्धमप्यपवदति निरङ्कुशत्वात्। तत् कथमिति चेत्, **देशका**[12]**लकृतविशेषैकान्तिन** इत्यादि।

अथवा **शास्त्रनिरूपणविपरीतमप्रमाणम्,** 'निरपवादत्वात्' इति वक्ष्यते, शास्त्रनिरूपणं [13]पृथिवीगन्धवत्त्वादि प्रकृतिपुरुषादि वा, तस्य [14]वा विपरीतं तर्कतः प्रतिपाद्यमानमप्रमाणम्, प्रत्यक्षतर्कयो- ३२-१

---

१ **पृथिव्यप्सुधा** य०। **पृथिव्यचूसुधा** भा० ॥ २ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः **पृथिव्यवसुधा** इत्यत आरभ्य **न भवति** इत्यन्तः पाठो य० प्रतिषु नास्ति॥ ३ **करकट**° य०। दृश्यतां पृ० १६ टि० ८। "खरस्वभावा न मही, भूतत्वात्, तद्यथा अनिल इत्यादिषु हेत्वाद्यसिद्धिः स्वत एव योज्या।"–**माध्यमिकवृ०** पृ० ३३ ॥ ४ °**करणं असाधा**° प्र०। अत्र 'स्वरूपनिराकरणेऽसाधारणधर्मनिराकरणे च' इत्यपि पाठः स्यात्॥ ५ °**स्तात्युत्पन्नबुद्ध्यनु**° य०। °**स्तायुत्पन्नबुद्ध्यनु**° भा० ॥ ६ °**ग्रहार्थं किं शास्त्रेण** प्र०। अत्र पूर्वापरसन्दर्भानुसारेण 'किं'स्थाने 'हि' इत्येव शुद्धं प्रतीयते। प्राचीनलिप्यां ककारहकारयोः समानलेखदर्शनात् 'हि' इत्यस्यैव 'किं' इति विकृतिर्जातेति प्रतिभाति॥ ७ **वस्तूभ्यमानप्रमाणं** भा०। **वस्तूभ्यनुमानप्रमाणं** य० ॥ ८ **नोह एव** वि० विना। अस्मिन् पाठे तु 'न ऊह एव' इत्यर्थः स्यात्॥ ९ **ज्यादिग्र**° य० ॥ १० **सर्वस्येवा**° वि० विना॥ ११ °**वस्तु परपरिकल्प्यापवा**° य०। °**वस्तु परिकल्पापवा**° भा० ॥ १२ °**कालकृतविशेषैकान्तिर्कन इत्यादि** भा०। °**कालविशेषैकान्तिकंत इत्यादि** य० ॥ १३ **पृथिवीयत्ववत्वादि** प्र० ॥ १४ **चा विप**° भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वस्यैवापोदितत्वाद्देशकालकृतविशेषैकान्तिनः । सर्वसर्वात्मकैकान्ते मण्डूकोऽपि लोमश एव, अर्थानर्थविषयसामान्यविशेषनानात्वैकान्तेऽतदात्मकत्वात्

---

[1]रविषयार्थत्वाच्छास्त्रस्य केनापोद्यते शास्त्रम्? **न हरिणस्वरूपादि ।** 'विपरीतमप्रमाणम्' इति वर्तते, कस्य? [2]प्रत्यक्षप्रसिद्धेः। कस्मात्? सापवादत्वात्। तद्धि हरिणालोमत्वादि प्रत्यक्षप्रसिद्धेन लोमशत्वा[3]दिना निराक्रियमाणत्वादप्रमाणमेवेति। लौकिक आह—**न, सर्वस्यैवापोदितत्वा**दिति। शास्त्रेष्वपि हि हरिणस्वरूपादि प्रत्यक्षसिद्धमपोद्यत एव, कथं निरपवादत्वं शास्त्राणाम्? वरं हरिणस्वरूपादिविपरीतप्रतिपादनं तर्कतः तन्मात्रापवादात्, तार्किकैस्तु शास्त्रेण सर्वमपोद्यते प्रत्यक्षतो लोकप्रसिद्धं कारणं कार्यं च । तत् कथमिति चेत्, **देशकालकृतविशेषैकान्तिनः,** [4]देशकृतः कालकृतश्च विशेषो देशकालकृतविशेषः, स एवैकान्तः, स यस्यास्त्यसौ देशकालकृतविशेषैकान्ती, तस्य वादिनः प्रतिदेशं प्रतिसमयं च सर्वं [5]विशिष्टमेव न समानं किञ्चित्। अतो यावदणुशो रूपादिशो विज्ञानमात्रशो निरुपाख्यत्वशश्च भेदात् कुतो हरिणः? कुतस्तस्य लोमाद्यवतिष्ठते? अतः सर्वमपोदितम्, [6]किं वा नापोदितम्? किं वात्र प्रत्यक्षमनुमानं चेति?

तथा **सर्वसर्वात्मकैकान्ते मण्डूकोऽपि लोमश एव,** **स्थावरस्य जङ्गमतां गतस्य स्थावरस्य स्थावरतां जङ्गमस्य स्थावरतां जङ्गमस्य जङ्गमतां गतस्य** [ ] इति वचनादिति । ननु तेन वादिना सर्वं समर्थितम्, नापोदितमिति चेत्, सर्वस्य सर्वात्मकत्वे सर्वैक्यात् किं तत् सर्वम्? इत्यपोदितमेवेति, भिन्नार्थसमूहवाचित्वात् सर्वशब्दस्य ।

३२-२ **अर्थानर्थविषयसामान्यविशेषनानात्वैकान्ते ।** अर्थविषयं सामान्यम्, अर्थविष[7]यश्च विशेषः । तद्यथा—द्रव्यस्य पृथिव्यादेरर्थविषयं सामान्यम्—**रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी** [वै० सू० २।१।१], यत्रैतच्चातुर्गुण्यं सा पृथिवी, रूपस्पर्शरसद्रवस्नेहवत्य आपः, एवं यत्र रूपस्पर्शौ तत् तेजः, यत्र स्पर्श एव स वायुरिति सामान्यम् । विशेषः पुनरितरेतरधर्मव्यावृत्तिभिरि[8]तरत्र चतुःपञ्चद्व्येकगुणत्वं यथासङ्ख्यम् । तेषामेवानर्थसामान्यं पृथिवीत्वम्, तत्सम्बन्धलभ्यत्वात् पृथिवीबुद्ध्यभिधानयोः, एवमप्तेजोवायुत्वानि सामान्यानि, [9]विशेषाश्चेतरेतरेभ्यस्त एव, स्वसामान्यभेदा वा [10]विशेषाः । तानि द्रव्याणि [11]गुणाः कर्म सामान्यानि विशेषाः तत्समवायलक्षणश्च सम्बन्ध इत्येते पदार्था [12]नाना, स्वतत्त्व-प्रयोजन-लक्षण-[13]मत्यभिधान-

---

१ °**रविषयत्वार्थद्धशास्त्रस्य** भा०। °**रविषयार्थत्वाच्छाच्छास्त्रस्य** य०। अत्र °**रविपर्ययार्थत्वाच्छास्त्रस्य** इत्यपि पाठः सम्भवेत् ॥ २ **प्रत्यक्षसिद्धेः** य० ॥ ३ °**त्वादिना निरा**° भा० डे० ॥ ४ **प्रदेश**° प्र० ॥ ५ **सर्वविशिष्ट**° डे० लीं० विना ॥ ६ **किं वा नापोदितम्** इति पाठो भा० प्रतौ नास्ति ॥ ७ °**विषयं च** प्र० ॥ ८ °**रित्यत्र** भा० ॥ ९ **विशेषाण्वेतरे**° भा०। **विशेषावेतरे**° य० ॥ १० **विशेषा एतानि** य० ॥ ११ **गुणाकर्म । सामान्यानि** भा० ॥ १२ **नानात्वस्वतत्व**° प्र०। अत्र **नाना, स्वस्वतत्त्व**° इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १३ °**मित्य**° प्र०। '**मतिः** बुद्धिः' इत्यर्थप्रत्यवेक्षया अत्र °**मत्य**° इति शुद्धं प्रतीयते। °**मित्य**° इति यथाश्रुतपाठेऽभिरुचौ तु 'मानं मितिः' इति व्युत्पाद्य **मितिः** प्रमितिः यथार्था बुद्धिरित्यर्थो ज्ञेयः। तुलना—"अभिहाणबुद्धिलक्खणभिन्ना वि जहा सदत्थओऽणन्ने । दिक्कालाइविसेसा तह दव्वाओ गुणाइआ ॥ [विशेषाव० भा० २११०] । एतदेव हि विशेषाणां विशेषत्वं यत्ते परतो विशिष्यन्ते। एतदेव लक्षणं भेदानां संज्ञा-स्वालक्षण्य-स्वतत्त्व-प्रयोजन-**मतिभेदात्**"—इति **विशेषावश्यकभाष्यस्य कोट्टार्य**गणिवादिमहत्तरविरचितटीकाया हस्तलिखितप्रतौ पृ० १७४-२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुतोऽणुहरिणमण्डूककारणकार्यधरणिसंयोगगुणोत्प्लवनकर्मभवनव्यावृत्तितथासमवायाः, द्रव्यादीनामितरेतरानात्मकत्वादत्यन्तमन्यत्वान्निर्मूलत्वात् सर्वथा तत्त्ववृत्तिव्यतीतत्वात्, खपुष्पवत्; अन्यथा बालकुमारवत्।

भेदादिति ये वदन्ति तेषां तन्नानात्वैकान्ते **अतदात्मकत्वात् कुतोऽणुहरिणमण्डूककारणकार्यधरणिसंयोगगुणोत्प्लवनकर्मभवनव्यावृत्तितथासमवायाः?**[1][2] अणुग्रहणेन हरिणमण्डूकसमवायिकारणद्रव्यग्रहणं परमतेन। हरिणमण्डूकग्रहणेन सम्बद्धाणुद्व्यणुकाद्यारम्भनिर्वृत्तावयविद्रव्यं कार्यं गृह्यते[3]। तस्य हरिणमण्डूकादिद्रव्यस्य धरण्यां संयोगो गुणः, उत्प्लवनं कर्म, भवनं भावः सत्ता, व्यावृत्तिरन्यभवनविलक्षणो[4] विशेषः, तेषां तथासमवायः सम्बन्ध इति षडप्येते पदार्था वक्ष्यमाणखपुष्पदृष्टान्ता[5] न सन्ति। का तर्हि भावना? नास्ति परपरिकल्पितं द्रव्यम्, गुणकर्मसामान्यविशेषानात्मकत्वात्, *[6]खपुष्पवत्, तेभ्योऽत्यन्तमन्यस्वभावत्वाद्वा ३३-१। न गुणकर्मणी स्तः, अद्रव्यात्मत्वात्, खपुष्पवत्। एवं सामान्यविशेषसमवायाः। न द्रव्यं सत्, अगुणकर्मत्वात्[7], खपुष्पवत्*; असामान्यविशेषात्मत्वात्, खपुष्पवत्। न पृथिवी 'पृथिवी' इति व्यपदेश्या, पृथिवीत्वाद**त्यन्तमन्यत्वात्**, जलवत्। पृथिवीत्वं 'पृथिवीत्वम्' इति न व्यपदेश्यम्, पृथिव्या अत्यन्तमन्यत्वात्, जलतावत्। न सन्ति गुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाः, अद्रव्यात्मकत्वात्, खपुष्पवत्। एवमेकैकमपि **इतरानात्मकत्वात्** खपुष्पवन्नास्ति, इतरस्वरूपवद् वा न स्वात्मस्वरूपमिति[8] शेषपदार्थदृष्टान्तभेदादायोज्यमिति[9]। द्रव्यं[10] भव्यम्, **द्रव्यं च भव्ये** [पा० ५।३।१०४] इति वचनाद् भवतीति भव्यं द्रव्यम्, भवनं च भावः। भवनादन्यत्वाद् द्रव्यादयो न सन्त्येव वन्ध्यापुत्रवत्। भवनमपि द्रव्यादन्यत्वाद् नास्त्येव वन्ध्यापुत्रवत्। न भवति वा द्रव्यम्, भवनस्वरूपानापत्तेः, वन्ध्यापुत्रवत्। एवं भवनमपि द्रव्यस्वरूपानापत्तेः तद्वत्। एवं गुणादयोऽपि। एवं व्यावृत्तिः समवायश्चेति।

अथवा 'क्रियागुणव्यपदेशाभावादसदेव कार्यं पश्चाज्जायते'[11] इति, तन्नोपपद्यते, **निर्मूलत्वात्**, खपुष्पवत्। न सन्ति गुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाः, अद्रव्यत्वात्, खपुष्पवत्। एवमगुणत्वाद् गुणादन्ये, असामान्यत्वात् सामान्यादन्ये, अविशेषत्वाद् विशेषादन्ये, अकारणत्वात् कारणादन्यत्, अकार्यत्वात् कार्यादन्यद् नास्ति। एतेभ्यो हेतुभ्यः **कुतोऽणुहरिणमण्डूककारणकार्यधरणिसंयोगगुणोत्प्लवनकर्मभवनव्यावृत्तितथासमवायाः?**[12] न सन्तीत्यर्थः। तदुपसंहृत्योच्यते[13] – **सर्वथा तत्त्ववृत्तिव्यतीतत्वात्**। तस्य भावस्तत्त्वम्, तत्त्वस्य वृत्तिस्तदतत्त्वेन तत्स्वरूपान्यस्वरूपेण च वृत्तिः, ३३-२

---

१ **कुतोऽणुमण्डूकहरिणकारणकार्यधरणि°** प्र०। अत्र पूर्वापरसन्दर्भपर्यालोचनेन **कुतोऽणुहरिणमण्डूककारणकार्यधरणि°** इति पाठ एव समीचीन इति प्रतीयते। दृश्यतां पं० २२॥ २ **°वाय। अणु°** भा०। **°वाय अणु°** य०॥ ३ **संबंधाणु** भा० वि० विना॥ ४ **°रव्यभवन°** य०॥ ५ अत्र 'वक्ष्यमाणखपुष्पदृष्टान्तास्न सन्ति' इत्यपि पाठः स्यात्॥ ६ * * एतादृशचिह्नान्तर्गतः **खपुष्पवत्** इत्यत आरभ्य **अगुणकर्मत्वात् खपुष्पवत्** इत्यन्तः पाठो य०प्रतिषु नास्ति॥ ७ अत्र **अगुणाकर्मत्वात्** इत्यपि पाठः स्यात्। तुलना–"अगुणाकर्मत्वादिभ्यो हेतुभ्यः पूर्वोक्तवदभाव एव" पृ० ५३ पं० ५॥ ८ **स्वात्मरूप°** भा०॥ ९ **°भेदाद्योज्य°** भा०॥ १० **द्रव्यं भव्यं द्रव्यवदभव्य इति** भा०। **द्रव्यं द्रव्यवदभव्य इति** य०॥ ११ **पंचक्षोयत इति** य०। **पचाक्षायत इति** भा०॥ १२ **°हरिणामण्डूकाकारणकार्यधरणि°** य०। **°हरिणामण्डूकाकारणाकार्याधरणि** भा०॥ १३ **तद्रूप°** भा०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिणादिस्वरूपविपरीतोक्तौ प्रसिद्धिविरुद्धप्रतिज्ञत्वादेवातथात्वमिति चेत्, न, उक्तवत् तुल्यत्वाल्लोकस्य चाप्रमाणीकृतत्वादेवं वचनेऽभ्युपगमविरोधात्।

लोमशालोमशैक्ये सपक्षासपक्षावृत्तिवृत्त्योरतर्क इति चेत्, न, दृष्टान्तस्य

यथा द्रव्यमेव वर्तते तथा तथा रूपरसादि[1]गुणस्थितिगत्यादिक्रियाभवनव्यावृत्तिसम्बन्धि, एकपुरुषपितृपुत्रत्वादिधर्मसम्बन्धित्ववदिति । तां[2] वृत्तिं सर्वथा व्यतीतत्वा[3]दणुद्रव्यादिषट्पदार्थानां सविकल्पानामसत्त्वम् । **खपुष्पवदित्यन्ते** दृष्टान्त उपदिष्टः सर्वत्र द्रष्टव्यः, तथा च योजितम् । **अन्यथेति** वैधर्म्येण **बालकुमारवत्** । यदस्ति तत् तदतत्स्वरूपतत्त्वव्यतीतं न भवति, यथा बाल एव कुमारः कुमार एव च बालः, अन्यौ च तौ अवस्थाभेदात्, [4]बालत्वमूलं कुमारत्वं कुमार[5]त्वान्यच्च बालत्वमिति तदतत्त्वरूपा तत्त्ववृत्तिः, तां व्यतीत्य न स बालः कुमारो वेति, स च संस्तत्त्ववृत्तिव्यतीतो न भवतीति ।

हरिणादिस्वरूपवितथोक्तौ प्रसिद्धिविरुद्ध[6]प्रतिज्ञत्वादेवातथात्वमिति चेत् । चेदित्याशङ्कायाम्, [7]स्यादाशङ्का – हरिणस्वरूपं लोमशत्वम्, तस्य वितथोक्तिरलोमा हरिण इति, तस्यां वितथोक्तौ प्रसिद्धिविरुद्धा प्रतिज्ञा यस्य स प्रसिद्धिविरुद्धप्रतिज्ञः, तद्भावः प्रसिद्धिविरुद्ध[8]प्रतिज्ञत्वम्, तस्मादेव [9]अतथात्वमिति । अत्रोच्यते – **न, उक्तवत् तुल्यत्वात्** । नेति प्रतिषेधे, नैत[10]दप्युपपद्यते । [11]किंवत्? **उक्तवत्**, उक्तेन तुल्यमुक्तवत् । यथो[12]क्तम् – **शास्त्रनिरूपणविपरीतमप्रमाणं निरपवादत्वादिति**, तेनैतदपि तुल्यम् – 'हरिणादिस्वरूपवितथोक्तौ प्रसिद्धिविरुद्ध[13]प्रतिज्ञत्वादेव अतथात्वम्' इति, अत्रापि उत्तरस्यापि तुल्यत्वात् ।
३४-१ कथमिति चेत्, [14]न, **सर्वस्यैवापोदितत्वादित्यादि** सर्वं तदेव यावत् [15]**खपुष्पवत्**, **अन्यथा बालकुमारवदिति** । किञ्च, **लोकस्य चाप्रमाणी[16]कृतत्वात्तथा** कुतः प्रसिद्धिविरोधः? [17]क्व वा तत् [18]प्रसिद्धमिति । किञ्चान्यत् – [19]**एवं वचनेऽभ्युपगमविरोधात्** । ननु भवतामेकान्तवादिनां लोकमप्रमाणीकृत्य लोकप्रसिद्धिविरुद्ध[20]प्रतिज्ञत्वदोषा[21]पादनमभ्युपगमविरोधाय कल्पते, तस्मादयुक्तमेवं वक्तुमिति ।

स्यान्मतम् – [22]प्रतिज्ञादोषद्वारेण हरिणस्वरूपादिविपरीतप्रतिपादनाप्रामाण्यं न शक्यते मयाभ्यु[23]पेतविरोधात्, हेतुदोषद्वारेण शक्नोमीत्यत आह – **लोमशालोमैक्ये सपक्षासपक्षा[24]वृत्तिवृत्त्योरतर्क इति चेत्** । 'चतुष्पात्त्वे सति उत्प्लुत्य [25]गमनाद् हरिणो [26]निर्लोमा, लोमशो मण्डूकः' इत्युभयोरुभय-

---

१ °गुणास्थिति° य० । °गुणेस्थिति° भा० ॥ २ ता वृत्ति य० ॥ ३ °त्वात् गुणद्रव्यादि° य० । 'कुतोऽणुहरिणमण्डूककारणकार्यधरणिसंयोगगुणोत्प्लवनकर्मभवनव्यावृत्तितथासमवायाः' [पृ० ४९ पं० १] इत्यत्र उल्लिखिता अणुद्रव्यादयः षट् पदार्था अत्राभिप्रेता इति बोध्यम् ॥ ४ बालत्वमूलं य० । बालत्वमलं भा० ॥ ५ °रत्वान्यं च य० । °रत्वात्पंच भा० ॥ ६ °प्रतिज्ञात्वा° प्र० ॥ ७ स्यादाशंक्यहरिकहरिण° प्र० ॥ ८ °प्रतिज्ञात्वम् भा० ॥ ९ अतथातथात्व° य० ॥ १० °दप्युपद्यते भा० । °दप्युत्पद्यते य० ॥ ११ किंवद्रुक्तवत् प्र० ॥ १२ दृश्यतां पृ० ४७ पं० ३ ॥ १३ °प्रतिज्ञात्वादेव प्र० ॥ १४ दृश्यतां पृ० ४७ पं० ३ ॥ १५ दृश्यतां पृ० ४९ पं० ३ ॥ १६ अत्र °कृतत्वात्त्वया कुतः इति पाठः स्यादिति सम्भाव्यते ॥ १७ क्व वा प्र० ॥ १८ प्रसिद्धिमिति य० ॥ १९ भा० विनान्यत्र—एवं वने वि० २० ही० । एवं चने पा० डे० लीं० ॥ २० °प्रतिज्ञपत्वदोषा° प्र० ॥ २१ °पादान° य० ॥ २२ प्रतिज्ञादोषद्धारेण स्वरूपादि° भा० । प्रतिज्ञादौषद्द्वारेण स्वरूपादि° य० ॥ २३ °पेतविधात् हेतु° भा० । °पेतविधात हेतु° य० ॥ २४ °क्षवृत्ति° य० ॥ २५ गमनाद् इति पाठः सर्वासु प्रतिषु नास्ति ॥ २६ निलोमा प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्यक्षप्रसिद्धिविषयत्वाल्लोकस्याप्रमाणीकृतत्वात् प्रत्यक्षस्य च इहेव तवैव सर्वत्रापि सपक्षासपक्षवृत्त्यवृत्त्योरसत्त्वापत्तेः। अविशेषैकान्ते तावत् कुतोऽन्यपक्षोऽसपक्षो

धर्मापत्तौ लोमशालोम्नोरैक्ये सति अयं हेतुर्धर्मपरिकल्पकृताद्भेदाद् हरिणालोमत्वे साध्ये सपक्षे निर्लोमन्यवृत्तेः असपक्षे च लोमशे वृत्तेर्विरुद्धो हेतुः 'चतुष्पात्त्वे सति उत्लुत्य गमनात्' इत्यापद्यते, सपक्षासपक्षवर्[1]तित्वात् साधारणानैकान्तिको वा, लोमशालोमैक्ये पक्षाभेदाद् धर्माभेदे च सपक्षासपक्षाभावाद[2]-साधारणानैकान्तिको वा। तस्मादेषोऽतर्कः। अतर्कत्वाच्चास्य हरिणादिस्वरूपविपरीतप्रति[3]पादनमप्रमाणम्। चेदित्याशङ्कायाम्, एवं चेन्मन्यसे, त[4]न्न, **दृष्टान्तस्य प्रत्यक्षप्रसिद्धिविषयत्वात्**। दृष्टान्तो हि लोके प्रत्यक्षप्रमाणप्रसिद्धो घटपटादिरर्थः, तद्विषयं च साध्यसाधनसमन्वयव्यतिरेकविभावनम्, सर्वानुमानस्य सर्वावयवानां च तद्बलेन साध्यसिद्धौ सामर्थ्यसिद्धेः। यथोक्तम् – **दृष्टान्तबलाद्व्यवयवसिद्धिः, तदाश्रयत्वात् सर्वावयवानाम्। तेन दृष्टान्तस्वतत्त्वम[5]न्विष्यते। प्रत्यक्षत्वाच्च तस्य तद्वद् वस्तुप्रतिपत्तेरशेषं त[6]व सिद्धान्तदर्शनमवभोत्स्यते। प्रत्यक्षग्राहे च सिध्यति परोक्षग्राहः सिध्येत्, तदसिद्धौ स[7]म्भावनाऽभाव एव [ ]** इति। ततस्तस्य दृष्टान्तस्यासिद्धिः, **लोकस्याप्रमाणीकृतत्वात् प्रत्यक्षस्य च**। दृष्टान्तस्याभावे कुतो दार्ष्टान्तिकसाध्यसाधनसमन्वयव्यतिरेका इति प्रत्यक्षनिराकरणे त[8]र्कासिद्धिरेव, कुतस्तर्कातर्कत्वविचारः? इति तदवस्थो हरिणादिस्वरूपविपरीतापत्तिदोषः। ३४-२

किञ्चान्यत् – इ[9]हेवेत्यादि यावदसत्त्वापत्तेरिति। य[10]था हरिणस्वरूपनिराकरणे भवान् [11]यं यं दोषं ममापादयति स स **तवैव**, अत्र च वीप्सार्थो द्रष्टव्यः – तव तवैव ए[12]कान्तवादिनः, **एव**कारोऽवधारणे, **यथा**स्मिन् साधने 'मम दोषो नास्ति, तवैव' इति त्वदभ्युपगमानुरूप्येणोपपादितं त[13]था नात्रैव, किं तर्हि? **सर्वत्रान्यत्रापि** पक्षहेतुदृष्टान्तेषु दोषास्तवैव न ममेत्यर्थः। **अप्रमाणीकृतत्वाल्लोकस्य प्रत्यक्षस्य च** इति वर्तते, कारणान्तरोपन्यासोऽप्येषोऽभिधीयते – **सपक्षासपक्षवृत्त्यवृत्त्योरसत्त्वापत्तेः**। यदिष्टं भवतान्वयव्यतिरेकाभ्यामर्थानुमानम्, तौ च सपक्षासपक्षयोर्वृत्त्यवृत्ती, तद्बलेन साध्यसिद्धिः, तयोरेव चा[14]सत्त्वमापद्यते। ततस्त[15]स्याः सपक्षासपक्षवृत्त्यवृत्त्योर्यथासङ्ख्यमसत्त्वापत्तेः तवैव अविशेषैकान्तवादिनो [16]विशेषैकान्तवादिनः तदुभयानेकत्वैकान्तवादिनो वेति हेतूद्देशमात्रमेतत्। तदिदानीं प्रत्येकं विधीयते – तत्र **तावदविशेषैकान्ते कुतोऽन्यपक्षः, असपक्षः, व्यावृत्तिर्वा?** अविशेषः सामान्यम्, 'अविशेष एव' इत्येकान्तः सर्वं सर्वात्मकमिति, त[17]स्मिन्नविशेषैकान्ते तव ग्राहे कुतोऽन्यपक्षः, अन्यस्य पक्षोऽन्यपक्षः, प्रति-

---

१ **वर्तित्वाधारणा°** प्र०॥ २ **°भावसाधारणा°** प्र०॥ ३ **°पादनप्रमाणम्** य०। **°पादितप्रमाणम्** भा०॥ ४ **तत्र** प्र०॥ ५ **°मन्विध्यते** प्र०॥ ६ **तत्सिद्धान्तदर्शनमेवं भोत्स्यते** य०॥ ७ **संभावनाभाव एव** प्र०॥ ८ **तर्कासिद्धेरेव कुतसुतर्कातर्कत्व°** भा०॥ ९ **इहैवे°** प्र०। अत्र पूर्वापरप्रत्यवेक्षया **इहेव** इति पाठ एव साधुरित्याभाति। तुलना—"इति साधूच्यते – तवैव अविशेषैकान्तवादिनः सपक्षासपक्षवृत्त्यवृत्त्योर्हरिणादिस्वरूपविपरीतापादनसाधनेष्विव असत्त्वापत्तिरिति" – पृ० ५२ पं० १३॥ १० **तथा हरिण°** प्र०॥ ११ **यं यं दोषं यं ममापादयति** भा०। **यं यं दोषमापादयति** य०॥ १२ **एकान्तरवादिनः** प्र०॥ १३ **तथा मात्रैव** प्र०॥ १४ **वासत्वमा°** प्र०॥ १५ 'तस्याः' इति पञ्चम्यन्तमेतत्। तस्या असत्त्वापत्तेरित्यभिसम्बन्धः॥ १६ **विशेषैकान्तवादिनः** इति पाठो य० प्रतिषु नास्ति॥ १७ **तन्मिन्नविशेषांते तव** प्र०॥

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

व्यावृत्तिर्वा, तत्त्व एव तथाभिव्यक्तेः? विशेषैकान्ते कुतस्तत्पक्षः सपक्षस्तत्सत्त्वं वा, तथाऽस्थितेः? उभयानेकत्वैकान्ते साध्यसाधनधर्मधर्मिण एव कुतः, तथाऽपूर्वत्वात्?

३५-१ वादिनोऽ[1]न्यस्याभावात् तवापि चान्येनाविशेषात् सर्वसर्वात्मकैकत्वाविशेषात्। अथवा अन्यस्य वचनस्या-
भावात् त्वद्वचनात्मकत्वादेव सर्ववचनानां त्वदन्य[2]वचनत्वविशेषाभावादेव वा। अथवा [3]किं नः परवादि-
[4]वचनयो[5]रभावाभ्युपगम-निष्ठुरवचनाभ्याम्? अन्यश्चासौ पक्षश्चेत्यन्यपक्षोऽर्थोऽस्तु, स कुतः, [6]त्वत्पक्षसर्वै-
[7]कात्मकत्वादर्थाविशेषैकान्तात्? एवं 'नि[8]त्यः शब्दः, अकृतकत्वात्, आकाशवत्' इति वादिनोऽनित्यशब्द-
पक्षवक्तृवचनवाच्यानामभावः। तद्वत् तदनित्यधर्मसामान्येन समानस्य घटादेरभावान्नित्यैकान्तवादिनोऽ-
सपक्षाभावः। तदभावाद् व्यावृत्त्यभावः। वाशब्दात् कुतः स्वपक्षः सपक्षः तद्वृत्तिर्वा, सर्वसर्वात्मकैक-
त्वाभेदादेव? स्यान्मतम्—आविर्भावतिरोभावयोरभूत्वा भावाद् भूत्वा [9]चाभावादनित्यत्वकृतकत्वे स एव
अविशेषवादिनोऽपीति। एतच्चायुक्तम्, कुतः? **तत्त्व एव तथाभिव्यक्तेः।** तत्त्वमेकत्वम्, तस्मिंस्तत्त्व
एव **तथा** तेन प्रकारेण तथा अभिव्यक्तेः। किमुक्तं भवति? मृद एवाभिन्नाया अन्तर्लीनाविर्भावतिरोभाव-
मात्रत्वादङ्गुलिवक्रप्रगुणावस्थयोरिव अव[10]स्थाविशेषाभिव्यक्तेः किमन्या मृत् सा पिण्डशिवक[11]घटाद्यवस्थासु?
तस्मात् तत्त्व एव तथाभिव्यक्तेः कुतोऽ[12]न्यपक्षोऽसपक्षो व्यावृत्तिस्तत्पक्षः सपक्षस्तत्सत्त्वं चेति साधूच्यते—[13]तवैव
अविशेषैकान्तवादिनः सपक्षासपक्ष[14]वृत्त्यवृत्त्योर्हरिणादिस्वरूपविपरीतापादनसाधनेष्विव असत्त्वापत्तिरिति।

तथा **विशेषैकान्ते कुतस्तत्पक्षः सपक्षस्तत्सत्त्वं [15]वा?** देशतः परमाणुशो रूपादिशो विज्ञान-
मात्रशोऽनुपाख्यत्वशश्च भेदात् कालतोऽत्यन्तपरमनिरुद्धक्षणा[16]दूर्द्धमनवस्थानाच्च कुतस्तत्पक्षः, अत्रापि तस्य
३५-२ [17]पक्षो वक्तुर्वचनस्य वा, 'स एव पक्षः' इत्यर्थ एव वा, 'अनित्यः शब्दः' इति धर्मधर्मिणोर्विशेषणविशेष्ययो-
श्चासम्भवात्। कुतः सपक्षः, अर्थान्तरसम्बद्धसामान्याभावात्, साध्याभावसामान्याभ्युपगमे [18]सपक्षासपक्षा-
विशेषप्रसङ्गात्। कुतः सत्त्वं तत्र, तदभावात् कृतकत्वादिसविकल्पधर्मान्तराभावात् परस्परविलक्षणनिर्व्या-
पारधर्ममात्रत्वात् सर्वधर्माणां निरु[19]पाख्यत्वशून्यत्वपरमार्थत्वाच्च। पूर्ववच्च [20]प्रतिवादिपक्षासपक्षव्यावृत्त्यभावो
वाशब्दात्। [21]पूर्ववचोपसंहृत्य तदर्थावबोधनो हेतुरुच्यते—**तथाऽस्थितेः।** तेन प्रकारेण **तथा** क्षणिक-
निर्व्यापारशून्यत्वप्रकारेण अस्थितेः कस्यचिदर्थस्येति विशेषैकान्तेऽपि सर्वत्र सपक्षवृत्त्याद्यसत्त्वापत्तिरित्थमिति।

तथा **उभयानेकत्वैका[22]न्ते। उभय**मिति सामान्यविशेषौ, 'तदुभय[23]**मनेकं** भिन्नं परस्परतः'
इत्येतस्मिन्नप्येकान्ते **साध्यसाधनधर्मधर्मिण एव कुतः?** साध्यस्य [24]तावदनित्यत्वस्याभावः, धर्ममात्रस्य

---

१ °न्यस्यभावात् प्र० ॥ २ °वचनत्वंविशेषा° य० ॥ ३ किं न पर° प्र० ॥ ४ °रचनयो° भा० ॥
५ °रभावाद्युपगमनिष्ठुरवचनान्याम् प्र० ॥ ६ त्वत्पक्षं सर्वै° प्र०। अत्र त्वत्पक्षे सर्वै° इत्यपि पाठः स्यात् ॥
७ °कात्मत्वाद° य० ॥ ८ नित्यशब्दः प्र० ॥ ९ चाभावानित्यत्व° प्र० ॥ १० °विशेषोभिव्यक्तेः य० ॥
११ °घटाव्यवस्थासु प्र० ॥ १२ °न्यपक्षे। सपक्षे। व्यावृत्ति° भा०। °न्यपक्षे सपक्षाव्यावृत्ति° य० ॥
१३ ते चैव य०। दृश्यतां पृ० ५१ पं० १ ॥ १४ वृत्त्यवृत्त्याहरिणा° य० ॥ १५ वा देशतः पर° भा०। चादेशतः
पर° य० ॥ १६ दृश्यतां पृ० २६ टि० ७ ॥ १७ पक्षे। वक्तु° भा०। पक्षेर्वक्तु° य० ॥ १८ सपक्षासपक्षविशेष° य० ॥
१९ °पाख्यशून्यत्व° भा० ॥ २० प्रतिवादिपक्षव्यावृत्त्यभावो प्र०। यथा पूर्वं वाशब्दात् स्वपक्ष-सपक्ष-तद्वृत्त्यभावो
विवक्षितस्तथात्रापि वाशब्दात् प्रतिवादिपक्षासपक्षव्यावृत्त्यभावो विवक्षित इति भावः। दृश्यतां पं० ८ ॥ २१ पूर्वावचो°
य० ॥ २२ °कान्तेन उभयमिति य० ॥ २३ °मनेकांभिन्नं भा०। °मनेकाभिन्नं य० ॥ २४ तावनित्वस्याभावः प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टान्ताभ्युपगमात् प्रत्यक्षप्रमाणीकरणाल्लोकत्वापत्तेः प्रतिज्ञातव्याघातः।

शास्त्रत्वादलोकत्वमिति चेत्, न, लोकाश्रयत्वात् तेषां शास्त्राणाम्। तानि हि शास्त्राणि सामान्यविशेषकारणकार्यमात्राणां सर्वत्राध्यारोपेण प्रणीतानि।

निर्मूलत्वात्, खपुष्पवत्; तथा साधनस्यापि कृतकत्वस्य। कृतमित्यनुकम्पितं कुत्सितमज्ञातं वा कृतकम्। निर्मूलत्वं पुनर्द्रव्यादत्यन्तभिन्नत्वादिति धर्मयोरभावः। धर्मिणोरपि शब्दघटयोः अगुणाकर्मत्वादिभ्यो हेतुभ्यः पूर्वोक्तवदभाव एव। तत्सङ्ग्रहहेतुरप्युच्यते – **तथाऽपूर्वत्वात्।** अपूर्वत्वममूलत्वम्, द्रव्यगुणादीनां परस्परतोऽत्यन्तमन्यत्वात्। एवं तावत् सपक्षासपक्षवृत्त्यवृत्तिविपरीतत्वात् तथैव अतर्कत्वदोषो दृष्टान्तबलात् तर्कसिद्धेरित्यविशेषविशेषोभयानेकत्वैकान्तवादेषू[1]क्ता दोषाः।

किञ्चान्यत्, दृष्टान्तस्य प्रत्यक्षत्वात्, अनुमानत्वाद्धेतोः, उपनयस्य उपमानत्वात्, आगमत्वात् ३६-१ प्रतिज्ञायाः, **दृष्टान्ताभ्युपगमात् प्रत्यक्षप्रमाणीकरणमापन्नम्।** तस्माच्च **लोकत्वम्**, दृष्टान्तसंवादित्वप्रतिपादनार्थत्वाच्छास्त्रार्थस्य तार्किकाणां तर्कैरुपतिष्ठतां व्या[2]ख्यार्थम्। यथोक्तम् – **लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तः** [न्यायसू० १।१।२५] इति। [3]तथा लोको दृष्टान्तः, [4]तद्विरुद्धं यदभिधीयते तद् दृष्टान्तविरुद्धमिति। ततः को दोष इति चेत्, **प्रतिज्ञातव्याघातः।** किं प्रतिज्ञातम्? [5]**शास्त्रनिरूपणविपरीतमप्रमाणम्, न हरिणस्वरूपादि, निरपवादत्वादिति,** तद्बा[6]ध्यते शास्त्रप्रमाणीकरणे, प्रत्यक्षबलाल्लोकस्य प्रवृत्तत्वात्।

शास्त्रत्वादलोकत्वमिति चेत्। स्यान्मतम् – ननूक्तं **शास्त्रकाराः स्वदृष्टार्थप्रतिपादनकुशला बुद्धिसंवादार्थं दृष्टान्तप्राणैस्तर्कैः शास्त्रार्थान् प्रतिपादयन्ति, न पुनः शास्त्रार्था [7]लोके प्रत्यक्षीकर्तुं शक्याः। तत एव तदर्थवाचीनि [8]शास्त्राण्यलोकः** [   ] इति। तच्च **न, लोकाश्रयत्वात् तेषां शास्त्राणाम्। तानि हि शास्त्राणि,** यस्मादर्थे हिशब्दः, यस्मात् तानि **सामान्यविशेषकारणकार्यमात्राणां** सामान्यमात्रस्य द[9]ध्नि कारणमात्रस्य स्नेहशौक्ल्यादेर्दृष्टस्य विशेषमात्रस्य चार्चिष्षु नवनवोत्पादविनाशरूपस्य दृष्टस्य **सर्व[10]त्राध्यारोपेण प्रणीतानि।** क्षीरस्यैव स्नेहादिसामान्यस्य कारणाख्यस्य संस्थानमात्रं दृष्ट्वा दध्याद्यवस्थाविशेषमन्तरेण तस्य सामान्यस्य स्थित्यभावमपश्यद्भिः 'यथेदं संस्थानमात्रम्, न कार्यं न विशेषस्तथान्येऽपि घटपटादयोऽर्थास्त्रि[11]गुणप्रधानसंस्थानमात्रम्' इति सर्वत्राध्यारोप्य तदर्थानि शास्त्राणि प्रणीतानि 'कारणमेव सामान्यमेव सर्वत्र' इत्येतस्यार्थस्य प्रतिपादनप्रसङ्गेन। ३६-२ तथा अर्चिषां प्रतिक्षणोत्पत्तिविनाशपा[12]र्थक्यानि दृष्ट्वा रूपरसस्पर्शगन्धमूर्त्यादिसामान्यावस्थानमन्तरेण तदसम्भवमपश्यद्भिः 'यथेदं विशेषमात्रम्, न सामान्यं न कारणं तथान्येऽपि महीमहीध्रसरित्समुद्रद्वीपगगनतारानक्षत्रग्रहगणादयो भावाः' इति सर्वत्राध्यारोप्य तदर्थानि शास्त्राणि तत्प्रतिपादनप्रसङ्गवचनरचनाविभङ्गतरङ्गापारतोयसमुद्रीभूतानि [13]प्रणीतानि।

---

१ °वादेषूक्ता प्र० ॥ २ व्याख्यार्थयथोक्तलौकिक° प्र० ॥ ३ यथा लोको य० ॥ ४ तद्विरुद्धपदभिधीयते य० ॥ ५ दृश्यतां पृ० ४७ पं० ३ ॥ ६ °हन्यते प्रमाणी° भा० ॥ ७ लोकप्रत्यक्षीकर्तुं भा० वि०। लोकं प्रत्यक्षीकर्तुं भा० वि० विना ॥ ८ शास्त्रान्यलोकः प्र० ॥ ९ दध्निकारण° य० ॥ १० °त्राव्यारोपेण भा०। त्राध्यारोपेण य० ॥ ११ °र्थास्ति गुण° भा०। °र्थास्तेगुण° य० ॥ १२ °पार्थस्यानि य० ॥ १३ प्रापितानि प्र० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अन्यत्र दृष्टस्याध्यारोपाद् घटतत्त्ववदलौकिकत्वमिति चेत्, न, व्यामोहस्य मृगतृष्णिकादिवदलौकिकत्वात्तथा।

तथाच तत्र प्रतिज्ञादीनामप्यनुपपत्तिः, यदि यथा लोकेन गृह्यते न तथा वस्तु, प्रतिज्ञा तावद् यथा गृह्यमाणा अविशेषादेर्न तथा स्यात्। ततश्चांशे

अ[1]न्यत्र दृष्टस्याध्यारोपाद् घटतत्त्ववदलौकिकत्वमिति चेत्। स्यान्मतम्—'लौकिकम्' इति इन्द्रियग्राह्यमुच्यते घटरूपादिवत्। य[2]दत्र घटे घटत[3]त्त्वं पृथुकुक्ष्याद्याकारविशेषस्तदन्यत्र घटान्तरेऽध्यारोप्यते, तच्च नास्ति अध्यारो[4]पादेव। लोकसंवादात्तु प्रतिपादनार्थोऽध्यारोपः। एवं शास्त्राणामप्यध्यारोपादेवालौकिकत्वमिति नास्ति प्रतिज्ञातव्याघातदोषो यं भवान् मन्यते लोकै[5]त्वापत्तेरिति। अत्र ब्रूमः—**न, व्यामोहस्य मृगतृष्णिकावदलौकिकत्वात् तथा।** तेन प्रकारेण **तथा,** सत्यम्, भवति तदलौकिकमविशुद्धत्वाद् मृगतृष्णिकादिज्ञानवत्। विशुद्धलोकस्य न पुनरुपपद्यते, मृगतृष्णिकावदेव तस्य व्यामोहस्याप्रामाण्यप्रसङ्गात्। ऊ[6]षरभूप्रदेशे ग्रैष्मोष्मसन्तप्तचक्षुषो रविकिरणाः पतिताः प्रत्युत्पतन्तो दूराद् व्यामोहहेतवस्तोयवदाभासन्ते। तस्माच्छा[7]स्त्रविज्ञानस्य मृगतृष्णिकाविज्ञानवदप्रामाण्यप्रसङ्गादसमञ्जसोद्ग्राहम्।

किञ्चान्यत्—**तथा च तत्र प्रतिज्ञादीनामप्यनुप[8]पत्तिः।** न केवलं शास्त्रविज्ञानाप्रामाण्यमेव, किं तर्हि? तेन प्रकारेण **तथा च** ए[9]वं च कृत्वा तत्र सति तस्मिन्नलौकिके मृगतृष्णिकावत् प्रतिज्ञादी-
२७-१ नामप्यवयवानां[10]मनुपपत्तिः। कथम्? **यदि यथा लोकेन गृह्यते न तथा वस्तु। यदी**ति पराभ्युपगमं दर्शयति, यदि प्रतिपादनकौशलेन प्रतिपादनबुद्धिसंवादमात्रत्वेन दृष्टान्तमुपादाय यथाहं युक्त्योपपादयामि शास्त्रेण च तथा तद् वस्तु न तु यथा लोकेन गृह्यते तथेति भवतोऽभिप्रायः। तत्र **प्रतिज्ञा तावद् यथोक्ता गृह्यमाणा अविशेषादेर्न तथा स्यात्।** अविशेषैकान्तवादे तावत् सर्वस्य सर्वात्मकत्वात् 'नित्यः शब्दः' इति प्रतिज्ञा यथा श्रोत्रेण गृह्यते न तथा भवितुमर्हति। किं कारणम्? नेत्रादिग्राह्यरूपाद्यात्मिकापि सेति कृत्वा। एवं विशेषैकान्तवादेऽपि 'अनित्यः शब्दः' इति प्रतिज्ञा 'अ'कार-'नि'कारादिवर्णविज्ञानानां देशकालकृतात्यन्तनानात्वक्षणिकत्वशून्यत्वनिरुपाख्यत्वात् परस्परापेक्षाभावे सर्वभावाभावे च यथा गृह्यते न तथा स्यात्। एवमुभयानेकत्वैकान्ते पूर्ववदन्यतरग्राह्यस्य इतरपक्षनिरपेक्षस्याभावात्।

ततश्चांशे प्रत्यक्षविरोधः। ततश्चेति तस्मादेव हेतोर्लोके गृह्यमाणस्य विपरीतत्वादविशेषैकान्ते तावत् प्रत्यक्षविरोधः, **अंशे** भागे, तस्यैव वस्तुनः अविशेषैकान्तवादिपरिकल्पितस्य प्रत्यक्षोपलभ्यस्य विशे-

---

१ **अन्यत्र दृष्टस्याध्यारोद् घटतत्वदवलौकिक**° प्र० ॥ २ **यद्ध घटे** प्र० ॥ ३ °**तत्वं विकुक्ष्याद्या**° प्र०। अग्रेऽपि किञ्चिदीदृश एव अशुद्धः पाठ इत्थं दृश्यते—"घटेनैव घटः क्रियत इति मृत्पिण्डघटेन ऊर्द्धग्रीवकुण्डलौष्ठपृथि(थु)कुक्षिबुध्नादिघटः क्रियते प्रकाश्यते, करोतेः प्रकाशार्थत्वात्"—**नयचक्रवृ**० पृ० २१५-२। एतदनुसारेण अत्रापि **पृथुकुक्ष्या**° इति शुद्धं सम्भाव्यते। यथाश्रुताग्रहे तु **विकुक्ष्या**° इति पाठः कल्प्यः, 'विशाला कुक्षिर्विकुक्षिः पृथुकुक्षिः' इति च तदर्थो ज्ञेयः ॥ ४ °**पादेव** य० ॥ ५ दृश्यतां पृ० ५३ पं० १ ॥ ६ **जटरभू**° भा० ॥ ७ °**च्छास्त्रविज्ञानस्य** भा० ॥ ८ °**पत्तिः केवलं** य० ॥ ९ **एवं कृत्वा** य० ॥ १० °**नामुपपत्तिः** भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्यक्षविरोधः, अंशे स्ववचनविरोधः, अंशेऽभ्युपगमविरोधः, स्वोक्तविपर्ययरूपाभ्युपगमात्। अथ तथा ततो न तर्हि लोकगृहीतमन्यथा।

किञ्चित् तथा किञ्चिदन्यथा उन्मत्तप्रतिपत्तिवदिति चेत्, एवं तर्हि साक्षाल्लोकपक्षापत्त्याभ्युपगमविरोधः, किञ्चिद्ग्रहणात्तथाग्रहणादन्यथाग्रहणाच्च। भेदवद-

---

षत्वात् प्रत्यक्षविरोधः। **अंशे स्ववचनविरोधः**, तत्काले प्रतिपादन[1]शब्दविशेषत्वेष्टेः। **अंशेऽभ्युपगम-
विरोधः**, स्वशास्त्रे सर्वत्र प्रसिद्धेन पूर्वकालाभ्युपगतेन [2]सर्वात्मकत्वेनाधुनातनधर्मधर्मिविशेषस्य विरोधात्।
स्वोक्तविपर्ययरूपाभ्युपगमादित्यन्ते कारणमुक्तम्, प्रत्यक्ष[3]स्ववचनाभ्युपगमानामभ्युपगमाविशेषात्। ३७-२
एवं विशेषैकान्ते श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यस्य शब्दस्य तावन्मात्रकाला[4]वस्थातुः पूर्वोत्तरवर्णसम्बन्धतद्बुद्ध्यवस्था[5]नसोपा-
ख्यत्वप्रत्यक्षत्वात् [6]प्रत्यक्षविरोधः। [7]तथैव स्ववचनस्योपपत्तेः स्ववचनेन अनित्यशब्दप्रतिज्ञा विरुध्यते। अत
एव चाभ्युपगमेन विरोधः। पूर्ववत् स एव हेतुरत्रापि। तथा उभयानेकत्वैकान्ते प्रागभिहितसाधना-
न्येवात्र व्यापार्याणि 'अद्रव्यत्वाद् वन्ध्यापुत्रवद् नानित्यत्वम्, न शब्दोऽस्ति' इत्यादिस्वरूपाभावः। **अचाक्षुष-
प्रत्यक्षगुणस्य [8]सतोऽपवर्गः कर्मभिः साधर्म्यम्, सतो लिङ्गाभावात्** [वै० सू० २।२।२५-२६] [9]**कार्यत्वात्
कारणतो विकारात्** इत्यादिशास्त्रविहितहेतु[10]व्याख्यानार्थं प्रतिपादनकाले तत्प्रयोगात् प्रत्यक्षीकरणाद्या-
नित्यत्वशब्दत्वाद्यभावात् प्रत्यक्षविरोधः। स्ववचनस्य तत्कालस्य तथावस्थानाभ्युपगमात् स्ववचनविरोधः।
पूर्वाभ्युपगमेन चेदानीन्तनस्य विरोधादभ्युपगमविरोधः। पूर्ववत् **स्वोक्तविपर्ययरूपाभ्युपगमा**दिति
सर्वत्र हेतुरिति।

अथ तथा। अथैते दोषा मा भूवन् वितथत्वाश्रया इति 'तथैव' इत्यभ्युपगम्यते परैः। **ततो न तर्हि लोकगृहीतमन्यथा** इत्यापन्नम्। लोकत्वाच्च प्रतिज्ञातव्याघातस्तदवस्थ इति।

किञ्चित् तथा किञ्चिदन्यथा, उन्मत्तप्रतिपत्तिवदिति चेत्। स्यान्मतम् — किञ्चिल्लोकेन गृहीतं
तथैव भवति प्रतिज्ञादि, किञ्चिदन्यथा घटादि, लोकस्यापरीक्षकत्वात्। परीक्षकाश्च पद-वाक्य-प्रमाणविदः।
दृष्टान्त उन्मत्तप्रतिपत्तिः। यथोन्मत्तोऽपरीक्षकः पदवाक्यप्रमाणानभिज्ञः किञ्चित् तथा प्रतिपद्यते किञ्चि-
दन्यथा, तत्प्रतिपत्तिश्चाप्रमाणं सदसतोरविशेषाद् यदृच्छोपलब्धेश्च, तद्वल्लोकप्रतिपत्तिरपीति। ३८-१

अत्रोच्यते – **एवं तर्हि [11]साक्षाल्लोकपक्षापत्त्याभ्युपगमविरोधः**। साक्षादिति प्रत्यक्षत एव लोकपक्षापत्तिः। [12]कथम्? **किञ्चिद्ग्रहणात् तथाग्रहणादन्यथाग्रहणाच्च**। किञ्चित्त्वादेव न [13]सर्वं सर्वात्मकम्, सर्वासर्वत्वसिद्धिश्च विभागनिर्देशात् 'किञ्चित्' इति। एवं तेन प्रकारेण **तथा** इति स चान्य-

---

१ °शब्दनिःशेषत्वेष्टेः भा० ॥ २ **सर्वात्मकत्वेन्यधुना** य०। **सर्वात्मकत्वेभ्यधुना** भा० ॥ ३ **°स्ववचनान्यपगमा°** प्र० ॥ ४ **°वस्थास्तु** प्र० ॥ ५ **°नसोवाख्यत्व°** प्र० ॥ ६ **प्रत्यविरोधः** य० ॥ ७ **तथैव च तस्योपपत्तेः** य० ॥ ८ **सतोपसर्गः** प्र० ॥ "अचाक्षुषप्रत्यक्षगुणस्य सतोऽपवर्गः कर्मभिः साधर्म्यम्। सतो लिङ्गाभावात्। नित्यवैधर्म्यात्। अनित्यश्चायं कारणतः। न चासिद्धम्, विकारात्।"— **वै० सू०** २।२।२५—२९ ॥ ९ **कायत्वात्** प्र० ॥ १० भा० विनान्यत्र—**°व्याख्यातार्थं प्रति°** पा० डे० लीं०। **°व्याख्यानार्थप्रति°** खं० ही०। **°व्याख्यातार्थप्रति°** वि० ॥ ११ **साक्षाल्लोकपक्षाभ्युपगम°** प्र०। अत्र **साक्षाल्लोकपक्षापत्त्याभ्युपगम°** इत्येव पाठो युक्तः, टीकायां तथैव व्याख्यातत्वात्। दृश्यतां पृ० ५७ पं० १९ ॥ १२ **कथंचिद्ग्रहणात्** प्र० ॥ १३ **सर्वसर्वात्म°** प्र० ॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

भेदपदार्थोपादानाच्च 'न तथा' इति पुनर्नवोऽभ्युपगमविरोधः ।

स्तयोश्च क[1]श्चिद्धर्मः प्रकारव्यपदेशभागेषितव्यः, तेषु त्रिष्वपि सिद्धेषु यस्मात् 'तथा' इति घटते । एवम् 'अन्यथा' इत्यपि, 'अयमन्यस्मादन्यः, अन्यश्च अस्मादन्यः' इति सर्वासर्वत्वसिद्धेर्लोकपक्षापत्तिः । एवं विशेषैकान्ते देशकालकृतात्यन्तभेदनिरुपाख्यशून्यत्वेषु किं तत् स्यात् 'किञ्चित्' इति विभज्य अन्यस्मादवस्थितादनवस्थितमसद्वान्यदिति [2]वोच्येत विलक्षणमिति ? एवं तथा अन्यथा इति च न घटेते । एवमुभयानेकत्वैकान्ते पूर्ववद् द्र[3]व्यादीनामितरेतरानात्मकत्वात् सामान्यविशेषयोः कार्यकारणयोर्वा **निर्मूलत्वादिभ्यो** वा हेतुभ्योऽसत्त्वाद् वस्तुनः 'किञ्चित्त[4]थान्यथा' इत्यनुपपत्तेर्लोकपक्षापत्तिः । तया च सह सर्वसर्वात्मकत्वादिशास्त्राभ्युपगमो विरुध्यते । एवं तावत् प्रतिज्ञा दु[5]ष्टा । प्रतिज्ञावद्धेतुदृष्टान्तावपि दु[6]ष्टावेव, तदसा[7]धकत्वात् । उन्मत्त इति च दृष्टान्तो लोकपक्षपातादृते न सिध्यति, उत्कृष्टो म[8]द उन्माद इति मदान्तरापेक्षो विमदत्वापेक्षो वा निर्देशः, स च लौकिक एव, तमभ्युपगम्य त[9]न्निराचिकीर्षव एवोन्मत्ततरा इति ।

३८-२ एवं तावद् वाक्यविषयो दोषः । इदानीमेकपदविषय उच्यते – **भेदवदभेदपदार्थोपादानाच्च 'न तथा' इति पुनर्नवोऽभ्युपगमविरोधः ।** भेदोऽस्यास्तीति भेदवान्, नास्य भेद इत्यभेदः, भेदवां[10]श्च अभेदश्च स एवेति भेदवदभेदः, कोऽसौ ? **पदार्थः** वृ[11]क्ष इत्यादिः स्वार्थ-द्रव्य-लिङ्ग-सङ्ख्या-कर्मादिकारकरूपः । यदुक्तं क्रम-यौगपद्यचिन्तायाम् –

स्वार्थमभिधाय शब्दो निरपेक्षो द्रव्यमाह समवेतम् ।
स[12]मवेतस्य तु वचने लिङ्गं सङ्ख्यां विभक्तिं च ॥
अभिधाय तान् विशेषानपेक्षमाणस्तु कृत्स्नमात्मानम् ।
प्रियकुत्सनादिषु तथा प्रवर्ततेऽसौ विभक्त्यन्तः ॥ [पा० म० भा० ५।३।७४]

इति व्याकरणे सर्वतन्त्रसिद्धान्ते । तत्र स्वार्थ इति जातिराकारो [वो]च्येत[13] स्व एवार्थः स्वार्थ इति सोऽन्यापेक्षत्वादन्येन विना [14]न 'स्वः' इति स्यात्, अतो द्रव्यादिसिद्धेर्भेदवान् पदार्थः । तेषामेव च स्वार्थादीनामत्यन्तभेदेऽन्योन्या[15]नात्मकत्वात् खपुष्पवदभावः स्यात्, देशकालाद्यभेदोपलब्धेश्च अभेदसिद्धेरभिन्नः पदार्थः । तस्माद् भेदवदभेदपदार्थ उपात्तः पदं प्रयुञ्जानेन शास्त्रविदा स्वार्थमात्रवादिनापि । तथा द्रव्ये

---

१ **कंचिद्धर्मः** प्र० ॥ २ **चोद्येत** य० । **वोद्येत** भा० । "वद व्यक्तायां वाचि" [पा० धा० १००९] इति धातोरत्र विवक्षायां तु प्रतिस्थो यथाश्रुतपाठोऽपि साधुरेव ॥ ३ दृश्यतां पृ० ४९ पं० २ ॥ ४ °**त्तथा अन्यथा** भा० ॥ ५ **द्रष्टाः** प्र० ॥ ६ **द्रष्टावेव** भा० । **इष्टावेव** य० ॥ ७ °**साधत्वात्** य० ॥ ८ **माद** य० । "मदोऽनुपसर्गे" [पा० ३।३।६७] इति **सूत्रण** 'अप्'प्रत्ययस्य विधानात् **मद** इति भा० पाठ एव साधुः । "मदनं मदः 'व्यधजपमद्भ्यः' [सिद्धहेम० ५-३-४७] इत्यल्" — **अभि० चिन्ता० स्वो०** २।२२६ ॥ ९ **तस्माल्लोकाभ्युपगमाल्लोकप्रमाणीकृत एव किंचिदकिंचित्तथान्यथेत्यादिपरस्परविलक्षान्निरा**° वि० । अत्र च वि०प्रतिपाठे °**स्मा**° इत्यत आरभ्य °**विलक्षा**° इत्यन्तः पाठांशोऽग्रेतनात् [पृ० ५७ पं०१७] स्थानात् उत्पत्य इह आगतः सर्वथा निरर्थकोऽशुद्धः परित्याज्य एव ॥ १० °**वाण्व** भा० ॥ ११ **वृक्ष इत्यादिस्वार्थ**° य० । अत्र **वृक्षजात्यादिः स्वार्थ**° इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १२ "समवेतस्य च वचने लिङ्गं वचनं विभक्तिं च । अभिधाय तान् विशेषानपेक्षमाणश्च कृत्स्नमात्मानम् । प्रियकुत्सनादिषु पुनः प्रवर्ततेऽसौ विभक्त्यन्तः" – इति **पातञ्जलमहाभाष्ये** पाठः ॥ १३ **व्येत** भा० ॥ १४ भा० विनान्यत्र — **न भ्व इति** पा० । **न भू इति** डे० लीं० । **न त्व इति** रं० ही० । **नत्र इति** वि० ॥ १५ °**न्येन्यानात्म**° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ प्रतिज्ञैवाभ्युपगमः, तस्या लोकाप्रामाण्यात्। नन्वविशेषादिष्वसतः पक्षादेरुपादानाल्लोकाभ्युपगमात् 'लोकवदेव चार्थः' इति व्यवस्थाप्य शब्द-

---

लिङ्ग सङ्ख्यायां कारके कुत्सादौ पदार्थे च योऽयं क्रमेण [1]युगपद्वा वाच्ये। तमभ्युपगम्याविशेषवादिनो विशेषवादिन उभयानेकत्ववादिनो वा 'न तथा' इति तमेव पुनर्ब्रुवतो [2]नैवोऽभ्युपगमविरोधः। [3]नैव इति न स्वशास्त्राभ्युपगमेन, किं तर्हि? तत्कालाभ्युपगमेनेत्यर्थः। स च सर्वत्राभ्युपगमविरोध इति।

अथ प्रतिज्ञैवाभ्युपगमः। स्यान्मतम्—न हि पदप्रयोगविषयोऽभ्युपगमोऽस्ति, पदार्थाभावात्, पदार्थस्य उत्प्रेक्षाविषयत्वाद् वाक्यार्थाधिगमोपायत्वेन उद्धृत्य [4]वाक्यार्थाद् व्याख्येयत्वात्। वाक्यमेव ३९-१
शब्दः, तदर्थ एव च शब्दार्थः। तस्मात् प्रतिज्ञैवाभ्युपगमः, तत्साधनार्थत्वाच्छेषवाक्यावयवव्यापारस्य। कस्मात्? **तस्या लोकाप्रामाण्यात्।** ततः **तस्याः** प्रतिज्ञायाः हेतुभूतायाः, तद्बलादित्यर्थः, **लोकाप्रामाण्यात्** लोकस्याप्रमाणत्वसिद्धेः। 'नित्यः शब्दोऽकृतकत्वादाकाशवत्' इति नित्यत्वे सिद्धे तद्बलाद् नित्यानित्याद्यनेकरूपैकवस्तुप्रतिपत्तिर्लोकोऽप्रमाणीभवतीति।

अत्रोच्यते—**[5]नन्वविशेषादिष्वसतः पक्षादेरुपादानाल्लोकाभ्युपगमादिति।** '[6]सर्वं सर्वात्मकम्' इत्येतस्मिन्नविशेषैकान्तेऽभ्युपगते पुनः 'नित्यः शब्दः' इत्यस्य पक्षस्य तद्धेतोर्दृष्टान्तस्य [7]चाभावः पूर्वोक्तेभ्यो हेतुभ्यो निर्विशेषत्वादिभ्यः। तथा विशेषैकान्ते पूर्वोक्तहेतुभ्य एव [8]पक्षादीनामभावो निर्मूलत्वादिभ्यः। उभयानेकत्वैकान्तेऽपि परस्परविभिन्नस्वभावानां सामान्यविशे[9]षकार्यकारणानामभाव इत्युक्तम्। तस्मादविशेषादिष्वसतः पक्षादेर्लो[10]कमतसिद्धस्योपादानाल्लोक एव पुनरभ्युपगतो भवति अगतिभिः शास्त्रविद्भिः। तस्माल्लोकाभ्युपगमाल्लोकः प्रमाणीकृत एव 'किञ्चिदकिञ्चित्तथान्यथा' इत्यादिपरस्परविलक्षणव्यवहाराभ्युपगमाच्च [11]लोकाप्रामाण्यं न सिध्यतीति ते यूयं सुदूरमपि गत्वा लोकमेव शरणं गन्तु[12]मर्हथ शास्त्रविदः। एवं शास्त्रव्यवहारो लोकदर्शनमन्तरेण न सिध्यतीति वाक्यविषयः पदविषयो वा ततः साक्षाल्लोकपक्षापत्त्याभ्युपगमविरोध इत्युक्तः।

तथा तद्विषयः स्ववचनविरोधोऽपि प्रतिपत्तव्यः। कस्मात्? **लोकवदेव चार्थ इति व्यवस्थाप्य** ३९-२
शब्दप्रयोगात्। लोकेन तुल्यं वर्तते लोकस्येव लोक [13]इव वा लोकवत्, **एवे**त्यवधारणे, किमवधारयति? लोकेऽर्थमवधारयति नार्थे लोकम्, शास्त्रविदामपि लोकत्वात्। [14]पृथक्त्वेऽप्यर्थलोकयोरुभयत्र वाय**मेव**कारो द्रष्टव्यः—लोकवदेवार्थः अर्थवदेव लोक इति, द्वयोरपि परस्पराव्यभिचारात् शास्त्रविदां लोकपृथक्त्वे

---

१ **युगपद्वाच्यां** भा०। **युगपद्वाच्यं** य०। "अपोद्धारपरिकल्पनाव्यवस्थामाश्रित्य 'स्वार्थमभिधायशब्दो निरपेक्षो द्रव्यमाह समवेतम्' इति प्रतिपत्तिक्रमनियमानुगममात्रं क्रियते। न हि शब्दस्य क्रमवती विरम्य विरम्य स्वार्थादिषु वृत्तिः सम्भवति, सकृदुच्चारणादर्थेन च नित्यमवियोगात्। प्रतिपत्तिक्रमो ह्ययं श्रोतुरभिधातुर्वा न व्यवस्थितः। सर्वविशेषणविशिष्टं हि वस्तु संसर्गिणीनां मात्राणां कलापं यौगपद्येन एकस्या बुद्धेर्विषयतामापन्नमुत्तरकालमिच्छन् बुद्ध्यन्तरैः प्रविभजते"—इति **भर्तृहरिविरचितायां वाक्यपदीयस्ववृत्तौ** १।२६॥ २ **नवाभ्यु°** य०॥ ३ **नवति न शास्त्रा°** य०। **न स्वशास्त्रा°** भा०॥ ४ **वाक्यार्थद्** रं० ही०। **वाक्यार्थाद्** रं० ही० विना॥ ५ **नत्वविशेषा°** भा० पा० डे० लीं०। **तत्वविशेषा°** वि० रं० ही०॥ ६ **सर्वंसर्वात्मकत्वम्** वि०। **सर्वंसर्वात्मकम्** वि० विना॥ ७ **वाभावः** भा०॥ ८ **परोक्षादी°** प्र०॥ ९ **°षाकार्य°** प्र०॥ १० **°लोकमसिद्ध°** य०॥ ११ **लोकप्रामाण्यं** य०॥ १२ **°मर्हश्च शास्त्र°** प्र०॥ १३ **इ वा लोकवत्** प्र०॥ १४ **पृथक्त्वप्यर्थ°** प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयोगात् तथासत्यत्वसिद्धे शब्दार्थे पुनः 'न यथालोकग्राह्यं वस्तु' इति विरुध्येत स्ववचनेन। लोकविरोधस्तु प्रस्तुत एव, तदविरोधेऽप्रवृत्तेः। लोकाप्रामाण्ये च सर्वत्र प्रत्यक्षानुमानविरोधावुपस्थितावेव, तत्स्थत्वात्तयोः।

लौकिकार्थपृथक्त्वे च तत्कल्पितार्थानाम्। इतिशब्दः प्रकारे, अनेन प्रकारेण इत्थं **व्यवस्थाप्य** बुद्ध्या अभ्युपगम्य स्वनिश्चितार्थप्रतिपादनार्थं परेषां शब्दप्रयोगात्, पदावधिको वाक्यावधिको वा शब्दप्रयोगव्यवहारो लोकानुप्रातीत्थमिष्टं तैरपि शास्त्रकारैः[1]। तत्र च **तथासत्यत्वसिद्धे शब्दार्थे**, तेन प्रकारेण **तथा**, येन प्रकारेण मृद्रूपादिपृथुकुक्ष्यादिकेऽर्थे घटशब्दो लोकेन प्रयुक्तस्तेनैव प्रकारेण सत्यत्वेन सिद्धे सत्य[2]त्वसिद्धे लोके शब्दं प्रयुञ्जानैः शास्त्रविद्भिः 'लोकोऽभ्युपगतोऽस्माभिः' इत्युक्तमेव भवत्यर्थात्। ततः **पुनः 'न यथालोकग्राह्यं वस्तु' इति विरुध्येत**। लोकस्य ग्राह्यो लोकग्राह्यः, ग्राह्य इव ग्राह्यः, यो यो लोकग्राह्यो यथालोकग्राह्यम्। किं तत्? वस्तु। यथैवागोपालप्रसिद्धं वस्तु ब्रुवाणो वादी 'यो यः प्रयुज्यते मया शब्दः स स न तथार्थः स्यात्' इत्यनेन **स्ववचनेनैव** विरुद्धमाह, स्वेन वचनेन तत्तद्वचनं विरुध्येत। **विरुध्येत**

४०-१ इति **आशंसावचने**[3] **लिङ्** [पा० ३।३।१३४], कथं मुखनिष्ठुरं 'विरुध्यत एव' इत्यवधार्योच्यते? 'कथञ्चिद् विरुध्येत' इति दाक्षिण्यमाचार्यः स्वकं दर्शयति। एवं तावत् स्ववचनविरोधः।

लोकविरोधस्तु[4] प्रस्तुत एव। रूढिविरोधो लोकविरोधः, स तु प्रस्तुत एव। **तदविरोधेऽप्रवृत्तेः**, तेन लोकेन अविरोधे शास्त्राणामप्रवृत्तेः, तस्या रूढेः शब्दप्रयोगादेवाभ्युपगताया विरोधमनुपपाद्य शास्त्राणामविशेषविशेषोभयानेकत्वैकान्तप्रतिपादनार्थानामप्रवृत्तेः। कथमप्रवृत्तिः? तानि रूढमेवार्थमनुब्रूयुः, अरूढं[5] वा व्युत्पादयेयुः? यदि रूढमनुवदन्ति[6], व्यर्थानि। अथारूढं व्युत्पादयन्ति रूढिविरोधिनमर्थम्, विरुध्यन्त[7] एव लोकेन निःसंशयमिति साधूच्यते – **तदविरोधेऽप्रवृत्तेर्लोकविरोधः प्रस्तुत एवेति।**

किञ्चान्यत् – **लोकाप्रामाण्ये[8] च** शास्त्रकाराणां **सर्वत्र** पदे पदे वाक्ये वाक्ये **प्रत्यक्षानुमानविरोधावुपस्थितावेव**। तत्र तावत् [9]अंशे प्रत्यक्षविरोध इत्याद्यभिहितं पूर्वम्, इदानीं सर्वत्र प्रत्यक्षविरोधो वाच्य इति विशेषः। अनुमानविरोधो वा नोक्तः सोऽभिधेयः[10], तदनुषङ्गेण पुनः प्रत्यक्षविरोधवचनं च तत्पूर्वकत्वादनुमानस्येति। शास्त्रकारप्रवृत्तेर्लोकविरुद्धत्वादेव प्रत्यक्षानुमानविरोधावप्युपस्थितावेव। एवेत्यवधारणे, न न भवतः, भवत एवेत्यर्थः। किं कारणम्? **तत्स्थत्वात् तयोः**। लोकनाद्धि लोकोऽनुपहतेन्द्रियमनस्कः प्राणिगणो लोक इत्युच्यते। तयोः तस्मिँल्लोके स्थितत्वात् प्रत्यक्षानुमानयोः [11]लोकश्चेदप्रमाणं लोकस्थे प्रत्यक्षानुमाने प्रागेवाप्रमाणे। अथवा[12] स एव स्थितस्तत्स्थः, **सुपि स्थः** [पा० ३।२।४]

४०-२ इति **वचनात्**, लोक एव प्रामाण्येन व्यवस्थितः। क्व? तयोः प्रत्यक्षानुमानयोः। स एव लोकः प्रत्यक्षानुमानज्ञानाधारत्वात् तद्रूपापत्तेश्च प्रत्यक्षमनुमानं[13] च, ततस्तदप्रामाण्ये तयोरप्रामाण्यमिति।

---

१ °पातीत्यमिष्टस्तैरपि भा०। °पातीत्यनिष्टस्तैरपि पा०। °पातीत्यनिष्टास्तैरपि डे० लीं०। °पातीत्यनिष्टैरपि वि०। °पातीत्यलिष्टस्तैरपि १० ही० ॥ २ सत्यसिद्धे प्र० ॥ ३ आशंकावचने लिङ् प्र० ॥ ४ °धस्तुत एव प्र० ॥ ५ अरूढं वा प्युत्पा° भा०। अरूढ वा युत्पा° य० ॥ ६ °नुवंदिति य० ॥ ७ °ध्यत एव य० ॥ ८ लोकप्रामाण्ये य० ॥ ९ पृ० ५४ पं० ४ ॥ १० °य तदनु° य० ॥ ११ लोकं चेद° प्र० ॥ १२ °वा एव य० ॥ १३ °मानश्च भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रवदेव तयोरप्यलौकिकत्वकल्पनार्थं लक्षणान्तरं कल्प्यं सामान्यविशेषैकान्तसंवादि । घटादिकल्पनापोढं प्रत्यक्षम् । अथ का कल्पना ? नामजातिगुण-

---

स्यान्मतं भवताम् – कथं प्रमाणज्येष्ठं प्रत्यक्षं न प्रमाणीक्रियेत ? इति । तत्र वः संप्रधारमिमं प्रयच्छामि – तदपि च प्रत्यक्षमेवं कल्प्यं **शास्त्रवदेवे**त्यादि । शास्त्रे ज्ञातेऽपि तद्विहितक्रियासाध्यत्वात्तदिष्टफलस्य क्रियायाश्चाव्यभिचाराज्ज्ञाने, यथोक्तम् –

जानानाः सर्वशास्त्राणि च्छिन्दन्तः सर्वसंशयान् ।
न च ते तत् करिष्यन्ति गच्छ स्वर्गं न ते भयम् ॥ [   ] इति ।

तस्मात् ज्ञानं फलस्याव्यभिचारि कारणं क्रियासाधनवादिनोऽपि, किमङ्ग पुनर्ज्ञानमात्रसाधनवादिनः ? इति तदेव विचार्यते – **शास्त्रवदेवे**त्यारभ्य यावद् **व्यञ्जनकाय** इति । शास्त्र इव शास्त्रवत्, यथा शास्त्रेऽभिहिताः पदार्था अत्यन्तविलक्षणास्तथा प्रत्यक्षमपि लौकिकप्रत्यक्षविलक्षणं तथानुमानं चास्तु, **तयोरप्यलौकिकत्वकल्पनार्थं** प्रत्यक्षानुमानयोरप्यलौकिकत्वस्य कल्पनार्थं **लक्षणान्तरं कल्प्यम्** । किं तत् ? **सामान्यविशेषैकान्तसंवादि**, सामान्यं च विशेषश्च सामान्यविशेषौ, सामान्यविशेषौ च सामान्यविशेषौ च सामान्यविशेषा इत्येकशेषः सरूपत्वात् 'सामान्यमेव, न विशेषः; विशेष एव, न सामान्यम्; तौ परस्परविलक्षणौ वा' इति त एव एकान्ता लौकिकपदार्थविलक्षणाः शास्त्रेषु कल्पिताः । तैः संवदितुं शीलमस्य तदिदं सामान्यविशेषैकान्तसंवादि । घट आदिर्यस्याः कल्पनायाः सा **घटादिकल्पना** घटसङ्ख्योत्क्षेपणसत्ताघटत्वाद्यध्यारोपात्, तस्याः ततः कल्पनाया **अपोढं प्रत्यक्षं** कल्पनीयम् । स्यादाशङ्का – ४१-१
कल्पनापोढं प्रत्यक्षं विशेषैकान्तवादिन एव मतं नेतरयोः, तयोः कथमलौकिकत्वमिति चेत्, अत्रोच्यते – यत् तावद् विशेषमात्रं स्वलक्षणविषयमनिर्देश्यं प्रत्यक्षं तत् कल्पनापोढत्वादलौकिकं तत् सामान्यानात्मकत्वात् खपुष्पवदसदिति सिद्धम् । तथा विशेषानात्मकत्वात् खपुष्पवत् सामान्यमात्रं सर्वं सर्वात्मकं कल्पनापोढं वस्तु तदसत्, असत्त्वात् तज्ज्ञानमपि तद्वत् । तथोभयानेकत्वैकान्ते तयोरितरेतरानात्मकत्वात् खपुष्पवदभाव इत्यलौकिकत्वम् । यद्यपि सामान्यविशेषव्यपाश्रयं लक्षणमभिहितम् – **श्रोत्रादिवृत्तिः प्रत्यक्षम्** [षष्टित०], **आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षाद् यद् निष्पद्यते तदन्यत्** [वै० सू० ३।१।१८] इत्यादि, तथापि सामान्यविशेषैकान्तवादिनां बलात् तदेव कल्पनापोढमलौकिकं चेत्यापन्नम्, तस्य चोभयात्मकत्वाभ्युपगमे प्रतिज्ञाहानिः । अथवा तेनैव दूषितत्वात् कस्तौ हतौ हनिष्यति ? इति तस्यैवोपरि बध्यते परिकर इत्यनेनाभिप्रायेण पूर्वमेव ताव[त्त]त्परिकल्पितप्रत्यक्षलक्षणमुपन्यस्य दूषयितुकामः **सूरि**रित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

प्रकृतमुच्यते – **अथ का कल्पना** ययापोढं ज्ञानं प्रत्यक्षमिति ? अत्रोच्यते – **नाम-जाति-गुण-**

---

१ **संप्रवारं** भा० । **संप्रचारं** य० । "एवं तावत् कल्पितमेव भवत्सिद्धान्ते किं सम्प्रधारणया अत्र" – इति वक्ष्यते *परमतोपन्यासान्तेऽत्रैव **नयचक्रवृत्तौ** पृ० ६२ पं० २६* ॥ २ **शास्त्रे ज्ञानेपि** *य०* । **शास्त्रे । ज्ञानेपि** *भा०* ॥ ३ °**याश्च । व्यभि**° भा० । °**याश्च व्यभि**° य० ॥ ४ °**साधकवादिनः** प्र० ॥ ५ °**कार्य इति** पा० । °**कार्येत्ति** डे० लीं० । °**कार्येति** रं० ही० वि० ॥ ६ **पदार्थात्यंत**° प्र० ॥ ७ **वास्तु** प्र० ॥ ८ "आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षाद्" – इति मुद्रिते **वैशेषिकसूत्रे** पाठः, किन्तु अपपाठ एव सः । तुलना – "आत्मेन्द्रियमनोर्थानां सन्निकर्षात्प्रवर्तते । व्यक्ता तदात्वे या बुद्धिः प्रत्यक्षं सा निरुच्यते ॥" – **चरकसं०** १।११।२० ॥ ९ **हृषितत्वात्** य० । **हृषितत्वात्** भा० ॥

क्रियाद्रव्यस्वरूपापन्नवस्त्वन्तरनिरूपणानुस्मरणविकल्पना। ततोऽपोढमक्षाधिपत्योत्पन्नमसाधारणार्थविषयमभिधानगोचरातीतं प्रत्यात्मसंवेद्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्। चक्षु-

---

क्रिया-द्रव्यस्वरूपापन्नवस्त्वन्तरनिरूपणानुस्मरणविकल्पना[1]। **ततोऽपोढम्** अपेतम्। 'नाम संज्ञा शब्दः' इत्यनर्थान्तरम्, तद्वारिका कल्पना। सा द्विविधा समासतः—याद्दच्छिकी[2] नैमित्तिकी च। नामग्रहणाद् याद्दच्छिकी जात्यादिग्रहणाच्च नैमित्तिकी गृहीता। निमित्तनिरपेक्षं नाम याद्दच्छिकं 'डित्थो

४१-२ डवित्थः' इत्यादि। शब्दद्वारत्वे[3] सत्यपि जात्यादिनिमित्तापेक्षा भिन्ना। तत्र 'गौः' इति जात्या 'शुक्लः' इति गुणतः मतुब्लोपादभेदोपचाराद्वा विशेषणस्वरूपापन्नं[4] ततो विशेषणादन्यद् वस्तु तयोर्विशेषणविशेष्ययोरभेदसम्बन्धनात्मिकया[5] कल्पनया पूर्वं मनसा निरूप्यते पश्चादनुस्मर्यते। तथा डित्थादिष्वपि 'अस्येदम्, सोऽयम्' इति वा भिन्नयोरर्थाभिधानयोरभेदसम्बन्धनया निरूपणानुस्मरणे, शब्दार्थयोर्निमित्तनैमित्तिकयोर्भिन्नयोरभेदाध्यारोपात्। क्रियाशब्देषु 'पाचकः'[6] इत्यादिषु नाभेदोपचारः अभिन्नरूपत्वात् क्रियाक्रियावतोः, अतो न निरूपणं[7] किन्तु अनुस्मरणमेव। सर्वत्र[8] च शब्दार्थाभेदोपचारान्निरूपणानुस्मरणे स्त एव। तथा द्रव्यशब्देषु संयोग-समवायनिमित्ताद् 'दण्डी, विषाणी' इत्यादिषु। तस्याः कल्पनाया अपोढम्। **अक्षाधिपत्योत्पन्नम्**इति,

रूपालोकमनस्कार[9]चक्षुर्भ्यः सम्प्रवर्तते।
विज्ञानं मणि-सूर्यांशु-गोशकृद्भ्य इवानलः॥ [　　　]

चक्षुः प्रतीत्य रूपं च आलोकं[10] च बाह्यं समनन्तरनिरुद्धं[11] मनःसंज्ञितं चित्तं चित्तान्तरावकाशदानात्मकं प्रतीत्य चक्षुर्विज्ञानमुत्पद्यते, **चतुर्भिश्चित्तचैत्ताः**[12] [अभि० को० २।६४] इति सिद्धान्तात्। तथापि च अधिपतिना चक्षुषा व्यपदिश्यते 'चक्षुर्विज्ञानम्' इति, असाधारणकारणत्वात्, यथा यवाङ्कुर इति [13]बीजर्तुवारिमारुताकाशसंयोगे सत्यपीति। **असाधारणार्थविषयम्**इति, चक्षुरादिज्ञानानां परस्परविविक्त-

४२-१ रूपादिनिर्विकल्प[14]स्वलक्षणविषयत्वात्। **अभिधानगोचरातीतम्**, मनोनिरूपितार्थविषयत्वादभिधानस्य तद्गोचरातीतम्। किं कारणम्? **प्रत्यात्मसंवेद्यत्वात्**, आत्मानमात्मानं प्रति प्रत्यात्म, प्रत्यात्मना संवेद्यते नान्यस्मै शक्यमाख्यातुं शूलादिवेदनास्वरूपवत्। **ज्ञानम्**इति कल्पनाया[15] अन्यत्रासम्भवात् सम्बन्धः। **प्रत्यक्षम्**, अक्षमक्षं प्रति वृत्तेः पञ्चेन्द्रियजम्।

---

१ °**नुस्मरणं विकल्पना** य०। "निरूपणानुस्मरणविकल्पेनाऽविकल्पकाः।"—**अभि० को०** १।३३॥ २ भा० विनाऽन्यत्र—**याहत्तिकी** पा०। **यावृत्तिकी** वि० डे० लीं० रं० ही०॥ ३ **द्वारत्वे सत्यपि** भा०। **द्वाराच्च सत्यपि** य०॥ ४ °**स्वरूपायत्तं ततो** प्र०॥ ५ भा० विनान्यत्र °**काया कल्पनया** पा० डे० लीं० वि०। °**काया कल्पनाया** रं० ही०॥ ६ **पारकः** प्र०॥ ७ °**पणां** भा० वि०। °**पणा** भा० वि० विना॥ ८ **सर्वत्र च शब्दार्थभेदो** भा०। **सर्वत्र शब्दार्थाभेदो**° य०॥ ९ °**नमस्कार**° वि०॥ १० **आलोकं बाह्यं** य०॥ ११ °**रुद्धमनः**° य०॥ १२ °**त्तचैत्ता** प्र०॥ १३ **बीजर्तुवारि**° भा०। **बीजंतुवारि**° य०। "यच्चासाधारणं तद्व्यपदेशभाग् भवति, तद्यथा—ऋत्वादिकारणात् प्रादुर्भवन्नंकुरो न ऋत्वादिभिर्व्यपदिश्यते, अपि त्वसाधारणेन बीजेन व्यपदिश्यते 'यवाङ्कुरः' इति। तथेहापीत्यदोषः।"—**न्या० वा०** १।१।४, पृ० ९९। "जलकर्षणबीजर्तुसंयोगात् सस्यसम्भवः।"—**चरकसं०** १।११।२३॥ १४ °**कल्पस्य लक्षण०** य०॥ १५ **कल्पनायाऽन्यत्र** भा०। **कल्पनमन्यत्र** य०। "स्वरूपविप्रतिपत्तिनिराकरणार्थमाह—प्रत्यक्षमित्यादि। अक्षं प्रतिगतं प्रत्यक्षम्। इदं लक्ष्यम्। कल्पनापोढमिति लक्षणम्। कल्पनापोढनिर्देशाच्च तज्ज्ञानात्मकमिति प्रतीयते। यस्माज्ज्ञाने एव कल्पनासंसर्गोऽस्ति तस्मात् तत्प्रतिषेधेन तदेव प्रतीयते। यथा 'अवत्सा धेनुरानीयताम्' इति वत्सप्रतिषेधेन गोधेनुरेव प्रतीयते, नान्या।"—**प्र० समु० टीका** १।३। "कल्पनाप्रतिषेधाच्च ज्ञानस्य सामर्थ्यलब्धत्वात्, अवत्सा धेनुरानीयतामिति यथा वत्सप्रतिषेधेन गोधेनोः"—**तत्त्वसं० पं०** पृ० ३६७॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

विज्ञानसमङ्गी नीलं विजानाति नो तु ‘नीलम्’ इति अभिधर्मागमोऽपि। प्रकरणपादेऽप्युक्तम्-

नीलः स नाम नीलं न नीलार्थोऽनक्षरः स च।
नीलमिति भाषमाणो नीलस्यार्थं न पश्यति॥

एतस्यैवार्थस्य भावना तु – अर्थेऽर्थसंज्ञी, न त्वर्थे धर्मसंज्ञी [अभि० पि०]। अर्थे रूपादिके

“चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी नीलं विजानाति नो तु ‘नीलम्’ इति” अभिधर्मागमोऽपीति [1]विश्वस्तमेव लौकिकप्रत्यक्षविलक्षणं [2]कल्प्यमानमचीक्लृपः, तवागमोऽप्येवमेवेति दर्शयति। **चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी** चक्षुर्विज्ञानसमन्वयी सन्तानः, [3]**अगि रगि लगि गत्यर्थाः** [पा० धा०], चक्षुर्विज्ञानं समङ्गितुं शीलमस्येति चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी, एवं श्रोत्रादिविज्ञान[4]समङ्गिनः। **नीलं विजानाति,** रसादिविविक्तं रूपं स्वलक्षणं विजानाति। **नो तु ‘नीलम्’ इति** विजानाति, **इति**शब्दस्य शब्दपर्यायत्वात् ‘इदं तद् नीलम्’ इति शब्दनिर्देश्यं न [5]विजानाति, अपटुत्वादिन्द्रियविज्ञानस्य कुतः शक्तिरेवं कल्पयितुम्।

प्रकरण[6]पादेऽप्युक्तमिति [7]भवत्संमतागमव्याख्यानग्रन्था[8]न्तरेऽप्येतदर्थानुवादिन्यभिहितमिति दर्शयति। **नीलः स[9] नाम नीलं [ने]**ति श्लोकः। यदेतन्नीलमेतदिति नाम्ना [10]निर्देशो नीलमस्य नाम एतन्निरूपणविकल्पकृतम्। **न नीलार्थः** नीलस्य रूपस्य [11]वस्तुनश्चक्षुरिन्द्रियविषयस्य परमार्थः स्वरूपतो**ऽनक्षरः** अक्षरैर्व्यञ्जन-पद-नामकायैरनभिलपनीयः। **स च** पुरुषो निरूपण[12]काले स्वयं निश्चिन्वन्ननुस्मरणकाले वानुस्मरन् परं [13]प्रतिपिपादयिषन् वा **नीलमिति** वाचं **भाषमाणो नीलस्यार्थ**मनभिलाप्यस्वरूपं स्वज्ञानांश[14]वद्विकल्पं **न पश्यति,** तदा तत्स्वरूपविषयस्याविक[15]ल्पस्य नीलार्थविज्ञानस्य च निरुद्धत्वात् तदान्यस्य ४२-२ नीलशब्दाभि[16]लाप्यस्याध्यारोपितस्य सामान्यस्य इन्द्रियगोचरानागतेः।

एतस्यै[17]वार्थस्य भावना तु। तुशब्दो विशेष[18]णार्थः, एतमेवार्थं [19]भावनयाऽनया विशेषयति। भवति [20]एषोऽर्थः, तं भवन्तं ‘भव भव’ इति बुद्धौ भावयति यया व्याख्यया सा भावना। का पुनः सा? **अर्थेऽर्थसंज्ञी, न त्वर्थे धर्मसंज्ञीति।** एतस्य भावनावाक्यस्य पुनर्व्याख्या – **अर्थे रूपादिके** प्रत्यक्षविज्ञानविषये

---

१ **विश्वस्तमेत लौकिक**° भा०। **विधेस्तमेत लौकिक**° य०। अत्र **विश्वस्तमेतल्लौकिक**° इत्यपि पाठः सम्भवेत्॥ २ **कल्प्यांमानचीकृपः** भा०। **कल्प्यंमानंचीकृपः** पा०। **कल्प्यंमानचीकृपः** भा० पा० विना॥ ३ “१२८ उख १२९ उखि १३० वख १३१ वखि १३२ मख १३३ मखि १३४ णख १३५ णखि १३६ रख १३७ रखि १३८ लख १३९ लिखि १४० इख १४१ इखि १४२ ईखि १४३ वल्ग १४४ रगि १४५ लगि १४६ अगि १४७ वगि १४८ मगि १४९ तगि १५० त्वगि १५१ श्रगि १५२ श्लगि १५३ इगि १५४ रिगि १५५ लिगि गत्यर्थाः”–इति **पाणिनीयधातुपाठे**॥ ४ °**समंगिलः निलं** प्र०॥ ५ **विजानातपटुत्वा**° प्र०॥ ६ °**पदे** य०। “यच्च शास्त्रमिति **अभिधर्म**शास्त्रमभिप्रेतम्। तत्तु सानुचरम्......। अन्ये तु व्याचक्षते शास्त्रमिति **ज्ञानप्रस्थानम्**। तस्य शरीरभूतस्य षट् पादाः–**प्रकरणपादो विज्ञानकायो धर्मकायः प्रज्ञप्तिशास्त्रं धातुकायः संगीतिपर्याय** इति। अतस्तदपि शास्त्रं सानुचरमेव।”–**अभि० को० स्फु० व्याख्या** १।२॥ ७ **भवत्संगतागम**° प्र०॥ ८ °**न्तरेण्यतदर्थानुवादिन्यभि**° भा०। °**न्तरेण तदर्थानुवादिनाभि**°॥ ९ **स नाम नीलं ति स्तोकः पदेतन्नी**° य०। **स नाम नीलं ति स्तोकः पदेतन्नी**° भा०॥ १० अत्र ‘निर्देशे’ इत्यपि पाठः सम्भवेत्॥ ११ **वस्तुनं चक्षु**° प्र०॥ १२ °**कालो** य०॥ १३ **प्रतिपिपादयिषित्वा नील**° य०। **प्रतिपादयिषत्वा नील**° भा०॥ १४ °**शचवद्**° भा०॥ १५ °**कल्प-नीलार्थ**° भा०॥ १६ °**लाप्यसाध्यारोपि**° प्र०॥ १७ डे० लीं० विनान्यत्र – **भावनात् तुशब्दो** भा० पा० वि० रं० ही०। **भवेत् तुशब्दो** डे० लीं०॥ १८ °**णार्थं भाव**° भा०॥ १९ **भावनयानया** प्र०॥ २० **एवोर्थः** य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूपसंज्ञी, अर्थस्वरूपविशेषमात्रालम्बनया संज्ञया निर्विकल्पया सम्प्रयुक्तं स्वलक्षणविषयमस्य सन्तानस्येति। न त्वर्थे रूपादिके यदृच्छादिनामसंज्ञी। एवमभिधर्मे उक्तम्–धर्मो नामोच्यते नामकायः पदकायो व्यञ्जनकायः।

कल्पितमपि त्विदमफलमलौकिकत्वात्। स्ववचनव्यपेक्षाक्षेपदुस्तरविरोधपरि-

रूपरसगन्धशब्दस्प्रष्टव्यलक्षणे **स्वरूपसंज्ञी** रूपादिमात्रसंज्ञी, संजानातीति संज्ञी, स्वरूपसंज्ञा अस्यास्तीति वा स्वरूपसंज्ञी। किमालम्बना सा संज्ञा किंस्वरूपा वा [1]यया सम्प्रयुक्तं तत् प्रत्यक्षं रूपादिचित्तं निर्विकल्पं चैतसिक्या सम्प्र[2]युक्तकधर्माख्यया योगात् [3]संज्ञया संज्ञीत्युच्यते तत्सन्तानः? इत्यत आह–**अर्थस्वरूपविशेषमात्रालम्बनया निर्विकल्पया [3]संज्ञया [4]सम्प्रयुक्त**मिति गतार्थं व्याख्यातत्वाद् **भाष्येण**। तदेव **स्वलक्षणविषयम्**, स्वमेव विशेष एव लक्षणम्, लक्ष्यत इति लक्षणम्, **कृत्यल्युटो बहुलम्** [पा० ३।३।११३] इति कर्मणि ल्युट्प्रत्ययः, स्वलक्षण[विषय]मनन्यविषयमित्यर्थः। **अस्य सन्तानस्ये**ति चक्षुर्विज्ञानसमङ्गिनः, चक्षुर्विज्ञानवत् चक्षुरादिपञ्चविज्ञानकाया व्याख्याता इत्थं कल्पनापोढा [5]इति प्रदर्श्यते। '[6]यत् पुनरुक्तं कल्पनात्मकं ज्ञानं न तत् प्रत्यक्षम्, अर्थस्वलक्षणाविषयत्वात्, गवि अश्वज्ञानवत्' इति साधनम्। इतश्च सविकल्पकं 'नीलमिदम्' इत्यादिज्ञानं न प्रत्यक्षम्, विशेषणाध्यारोपात्, उत्पलाधार-
४३-१ सुरभ्यादिज्ञानवदिति। **इति** परिसमाप्त्यर्थः, '[7]अर्थेऽर्थसंज्ञी' इत्येतस्य व्याख्यानमिति परिसमाप्तम्।

'न त्वर्थे धर्मसंज्ञी' इत्यस्य व्याख्या–**न त्वर्थे। ने**ति प्रतिषेधे, **तु** विशेषणे, तमर्थमध्यारोपविशिष्टं प्रतिषेधति। तस्मिन्नेव **रूपादिके**ऽर्थे [8]न तु **यदृच्छादिनामसंज्ञी** यदृच्छा-जाति-गुण-क्रिया-द्रव्य-शब्दसंज्ञी, 'धर्म'शब्दस्य 'शब्द'शब्दार्थपर्यायत्वात् धर्मसंज्ञी न भवति शब्दसंज्ञी न भवतीत्यर्थः। नैषा स्वमनीषिकोच्यते, किं तर्हि? **एवम[9]भिधर्मे उक्तम्** अभिधर्मपिटकेऽभिहितम्। किमुक्तम्? **[10]धर्मो नाम उच्यते नामकाय** इत्यादि। [11]नामैव नामकायः, कायवत् प्रतिक्षणं शरारुत्वा[12]च्चतुर्भूतसङ्घातत्वाच्च नाम्नां वा विज्ञानादीनां सङ्घातत्वात्, संज्ञाशब्दानां क्षणिकानामपि संहतानामेव उत्पत्तिविनाशाभ्युपगमात्। यथोक्तम्—

> वर्णो गन्धो रसः स्पर्शश्चत्वारोऽपि च धातवः।
> [13]अष्टावेतेऽविनिर्भागाः सहोत्पादाः सहक्षयाः॥ [ ]

इति सिद्धान्तात्। पदानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताः, तत्कायः **पदकायः**। व्यञ्जनानि अक्षराणि, अर्थस्य व्यञ्जकत्वात्। तत्कायो **व्यञ्जनकाय** इति।

एवं तावत् कल्पितमेव भवत्सिद्धान्ते, किं सम्प्रधारणया अत्र? इदानीं परमार्थो विचार्यते—**कल्पितमपि तु इदमफल**मित्यादि। नास्य फलमिति अफलम्। किं कारणम्? **अलौकिकत्वात्**, खरविषाणकुण्ठतीक्ष्णादिकल्पनवत्। कस्मादलौकिकत्वमिति चेत्, **स्ववचनव्यपेक्षाक्षेपदुस्तरविरोधपरि-**

१ यथा सम्प्र° य० ॥ २ °युक्तधर्मा° य० ॥ ३ संज्ञाया भा० ॥ ४ संयुक्त° वि० विना ॥ ५ भा० विनान्यत्र–इति प्रदर्शने वि०। इतिः प्रदर्शने पा० डे० लीं० रं० ही० ॥ ६ अत्र 'यत् पुनरुक्तकल्पनात्मकं' इत्यपि पाठः सम्भवेत् ॥ ७ अर्थेऽर्थःसंज्ञी प्र० ॥ ८ मतु यदृच्छा° भा०। मनु यदृच्छा° य० ॥ ९ °मभिधर्मस्य उक्तम् वि०। °मभिधर्मपउक्तम् पा० ॥ १० धर्म्यो प्र० ॥ ११ अत्र 'नामैव कायो नामकायः' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १२ °चतुर्भूतीसङ्घातत्वाच्च प्र० ॥ १३ अष्टावेते विनि° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हारं त्वदुक्तिवदेवेदमप्रत्यक्षम्, कल्पनात्मकत्वान्निरूपणविकल्पात्मकत्वादालम्बन-विपरीतप्रतिपत्त्यात्मकत्वादध्यारोपात्मकत्वात् सामान्यरूपविषयत्वात् तदत-द्विषयवृत्तित्वात् सदसदभेदपरिग्रहात्मकत्वात् सर्वथा साधारणार्थत्वादेः, अनुमा-नादिज्ञानवत् ।

हारम् । यस्मात् स्वं वचनं स्ववचनं प्रत्यक्षलक्षणवादिनो **दिङ्नभिक्षोः**, स्ववचनस्य स्ववचने वा **व्यपेक्षा**
प्रत्यवमर्शः स्ववचनव्यपेक्षा, सैव आक्षेपः, तेन आक्षेपेण दुस्तरो विरोधस्य परिहारोऽस्येति स्ववचन- ४३१
व्यपेक्षाक्षेपदुस्तरविरोधपरिहारम्, [1]स्वेनैवैतद्वचनेन पौर्वापरेण प्रत्यवमृश्यमानेन विरुध्यते 'सदाहं [2]मौन-
व्रतिकोऽस्मि, पिता मे कुमारब्रह्मचारी' इत्यादिवचनवत्, न तु असदुपपत्तिवद् दूष्यमिदम्, तदर्थे
दृष्टान्तमाह – **त्वदुक्तिवदेवेदम्**, यथेयं त्वदुक्तिः कल्पनात्मिका सती न प्रत्यक्षं तथैवेद**मप्रत्यक्ष**मिति
प्रतिज्ञा । कल्पनापोढलक्षणलक्षितं ज्ञानमत्र धर्मि, तदप्रत्यक्षत्व[3]धर्मविशिष्टं [4]साध्यते । को हेतुः ? **कल्पना-
त्मकत्वात्** । नन्विदमसिद्धं कल्पना[5]त्मकत्वं तस्य ज्ञानस्य कल्पनापोढत्वात् । अत्रेदं तत्साधनार्थम-
भिधीयते धर्मान्तरम् – तत् कल्पनात्मकं **निरूपणविकल्पात्मकत्वात्**, 'इदम् इत्थम्' इति ज्ञानं निरूप-
णम्, स एव विकल्पः, तदात्मकं तत् प्रत्यक्षं घटत्वादिज्ञानवदिति । आह – निरूपणविकल्पात्मकत्वम-
प्यसिद्धमिन्द्रियज्ञानस्येति, [6]आचार्योऽत्र तत्साधनार्थमाह – **आलम्बनविपरीतप्रतिपत्त्यात्मकत्वात्** ।
[7]तत्रालम्बनं द्रव्यसन्तो नीलादिपरमाणवो न तत्समूहो नीलपीताद्याकारवान्, संवृतिसत्त्वात् । तस्यापि
नीलपीताद्याकारस्य प्रत्येकं तारतम्यवत्त्वात् यथा प्रतिपत्तिर्न तथालम्बनमित्यालम्बनविपरीतप्रतिपत्त्यात्मकं
तत् । यदालम्बनविपरीतप्रतिपत्त्यात्मकं न तत् प्रत्यक्षम्, यथा स्थाणौ पुरुषप्रतिपत्तिरिति । स्यान्मतम् –
द्रव्यसतामेवाणूनां नीलपीताद्याकारत्वान्न* विपरीता प्रतिपत्तिरिति, एतच्चायुक्तम्, आकारस्य **अध्यारोपा-** ४४-१
त्मकत्वात्, माणवके सिंहत्वाध्यारोपवत् । [8]स चाध्यारोपित इति कुतो गम्यते ? **सामान्यरूपविषय-
त्वात्** । तत्सामान्यं च कारीष-तौष-तार्ण-पार्णादिविशेषानाश्रिताग्नित्ववत् । तदपि असिद्धमिति चेत्,
सिद्धमेव, **तदतद्विषयवृत्तित्वात्** । [9]स च असश्च विषयस्तदतद्विषयौ, तत्र वृत्तिरस्येति तदतद्विषयवृत्ति तद्
ज्ञानम्, अनेकपरमाणुसमूहजत्वात् तस्य समूहे तेषु च वृत्तत्वात्, [10]समूहस्य असत्त्वात् समूहिनामेव
द्रव्यसतामणूनां सत्त्वात् तयोश्च अभेदेन नीलाद्याकारपरिग्रहेण ज्ञानोत्पत्तेः । समूहासत्त्वं च तदग्रहे
तद्बुद्ध्यभावात्, बलाकापङ्क्ति-मुष्टि-ग्रन्थ्यादिवत् । उक्तं च –

गुणानां परमं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति ।
यत् तु दृष्टिपथप्राप्तं तन्मायेव [11]सुतुच्छकम् ॥ [षष्टित०] इति ।

---

१ स्वेनैवेतद्वच° य० ॥ २ यौनप्रतिकौस्मि प्र० ॥ ३ °त्वविशिष्टं य० ॥ ४ साध्यते प्र० ॥ ५ °त्मकं तस्य य० ॥ ६ आचार्योतु तत्साध° प्र० ॥ ७ अत्र ** एतादृशचिह्नान्तर्गतो यः तत्रालम्बनं इत्यत आरभ्य नीलपीताद्याकारत्वान्न इत्यन्तः पाठस्तत्स्थाने सर्वास्वपि य० प्रतिषु एवंविधः पाठ उपलभ्यते – यथाप्रतिपत्तिरिति स्यान्मतं द्रव्यसतामेवाणूनां नीलपीताद्याकारवान् संवृतिसत्त्वात् तस्यापि नीलपीताद्याकारस्य प्रत्येकं तारतम्यवत्त्वात् यथाप्रतिपत्तिरिति स्यान्मतं द्रव्यसतामेवाणूनां नीलपीताद्याकारत्वान्न । अयं य० प्रतिस्थः पाठः खण्डितत्वात् परिभ्रष्टत्वात् क्वचिद्विर्भूतत्वाच्चासङ्गत इति परित्याज्य एव ॥ ८ सदाध्यारोपित प्र० ॥ ९ स च सश्च भा० । स चासंश्च य० ॥ १० समूहस्यात्सत्वात् प्र० ॥ ११ सतुच्छकं वि० । समुत्थकं पा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्तं वोऽभिधर्मे एव – सञ्चितालम्बनाः पञ्च विज्ञानकायाः, रूपादिपरमाणोरेकस्यासञ्चितस्यालम्बनस्य घटनीलादिष्वभावात् । तथा सम्भावनेऽपि तेषामतीन्द्रियत्वादालम्बनत्वानुपपत्तेश्चक्षुरादिविज्ञानानां रूपादिपरमाणुसङ्घात एवालम्बनम् । ततः प्रत्येकमालम्बनपरमाणूनां परमार्थसतामेषामविषयता ।

अतः **सदसदभेदपरिग्रहात्मकत्वात्** तैमिरि[1]ककेशोण्डुकादिज्ञानवत् तदतद्विषयत्वमस्य । किञ्चान्यत् – **सर्वथा साधारणार्थत्वात्** । साधारणोऽर्थोऽस्य ज्ञानस्येति साधारणार्थम् । तत्साधारणार्थत्वमभेदपरिग्रहात्मकत्वात् । **आ[2]दिग्रहणात्** 'अन्वयव्यतिरेकार्थविषयत्वात् सामान्यविशेषात्मकार्थविषयत्वात्' इत्यादिभ्यो हेतुभ्यः । दृष्टान्तोऽनुमानादिज्ञा[3]नानि त्वयैवोदाहृतानि –

भ्रान्तिसंवृतिसं[4]ज्ञानमनुमानानुमानिकम् ।
स्मा[5]र्ताभिलाषिकं चेति त[6]दाभासं सतैमिरम् ॥ [प्र० समु० १।८] इति ।

तस्माद्धेतुपारम्पर्येण कल्पनात्मकत्वसिद्धेरेकैकस्माद्वोक्तहेतोरप्रत्यक्षमिदं कल्पनापोढलक्षणलक्षितं ज्ञानम्, **अनुमानादिज्ञानवदिति**, यथा अनुमानादिज्ञानं कल्पनात्मकत्वादप्रत्यक्षं तथा भ[7]वतेष्टमिन्द्रियज्ञानम् ।

४४-२ मा मंस्थाः 'प्रोक्तकल्पनात्मकत्वा[8]दिहेत्वसिद्धिः' इति । यस्मादुक्तं **वोऽभिधर्म एव** अभिधर्मपिटक एव **बुद्धवचनेऽभिहितम् – सञ्चितालम्बनाः पञ्च विज्ञानकाया** इति । [9]नित्यं सम्प्रयुक्तकधर्मैर्युक्तत्वाद् रागादिभिः काया इत्युच्यन्ते पञ्च चक्षुरादिविज्ञा[10]नानि । **रूपादिपरमाणोरेकस्य अ[11]सञ्चितस्य** अन्यैः समानजातीयैरसङ्गतस्य **आलम्बन[12]स्य** विषय[13]स्येन्द्रियबुद्धि[14]ग्राह्यत्वस्य **घटादिषु** घटपटरथादिषु **नीलादिषु** रूपरसगन्धस्पर्शशब्देषु तद्गुणेषु प्रत्यक्षाभिमतेषु संवृतिसत्सु **अभावात्** सञ्चिताणुघटनीलाद्याकार एव गृह्यते चक्षुरादिभिः । तस्यां चावस्थायां परमाणुत्वेन अवस्थानम् **आर्हतान्** प्रत्यसिद्धम्, प[15]रिणामान्तरापत्त्यभ्युपगमात् । **वैशेषिकाणां** परमाण्वारब्धावयविद्रव्यम् । **साङ्ख्यानां** समवस्थानविशेषापन्नाः सत्त्वादयो गुणाः । **लौकिकानां** तु स्थूलकार्यानुमिततज्जातीयसूक्ष्मकारणमात्रसम्भावनम् – सन्ति केचित् सूक्ष्मा बह्वः स्थूलस्य कारणभूताः पटस्येव तन्तव इति । सम्भावितानां **तथासम्भावनेऽपि तेषां** सङ्घात-परिणामाभ्यामृते चाक्षुषत्वाद्यभावो लोकव्या[16]प्ताणुवत्, अतो**ऽतीन्द्रियत्वा[17]दा**लम्बनत्वानुपपत्तिः । अतश्चा**लम्बनत्वानुपपत्ते**र्द्रव्यसतां परमाणूनामेतत् प्रतिपत्तव्यम् – **चक्षुरादिविज्ञानानां रूपादिपरमाणुसं[18]घात एव आलम्बन**मिति । **आदिग्रहणाद्** रसादिपरिमण्डलादिपरमाणुसङ्घात एव आलम्बनम् । ततः किमिति चेत्, **ततः प्रत्येकमालम्बनपरमाणूनाम्**, आलम्बनार्थाः परमाणव आलम्बनपरमाणवः, तेषां **परमार्थसतामेषाम्**, त एव हि परमार्थसन्तो न समूहो नीलादिर्घटादिश्च संवृतिसत्त्वात्, भव-
४५-१ त्सिद्धान्तेनैव **अविषयता** परमाणूनाम् ।

---

१ °केशोंडुका° य० । °केशोंदुका° भा० ॥ २ आविग्र° भा० वि० विना ॥ ३ °ज्ञानानि तथैवोदाहृतानि प्र० ॥ ४ °संज्ञान° प्र० ॥ ५ साभिलाषिकं य० ॥ ६ "प्रत्यक्षाभं सतैमिरम्" – प्र० समु० ॥ ७ भवतीष्ट° प्र० ॥ ८ °त्वादिहेत्तसिद्धि° भा० । °त्वादिहेतुसिद्धि° य० ॥ ९ नित्यसंप्र° य० ॥ १० °नानि तानि हि रूपादिपरमाणो° य० ॥ ११ असंचितस्यान्मैः समान° भा० । असंचितस्यत्मैः समान° य० ॥ १२ °नस्याविषय° य० ॥ १३ °यसेंद्रिय° प्र० ॥ १४ अत्र '°ग्राह्यस्य' इति पाठः सम्भाव्यते ॥ १५ परिमाणांतरा° य० ॥ १६ °व्याप्त्याणु° य० ॥ १७ °त्वाद्यलंबन° भा० । °त्वाद्यालंबन° य० ॥ १८ °संबोधत प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र प्रतिविविक्तरूपान्तराविविक्तस्वतत्त्वे रूपसङ्घाते इन्द्रियसन्निकृष्टे आलम्बनविपरीता येयं प्रतिपत्तिरव्यपदेश्यैकात्मकनीलरूपविषया ननु हेत्वपदेशव्यपदेश्यैव सा । यतः सञ्चयग्रहणापदेशेन व्यपदेश्यं धूमेनेवाग्निरिव गृह्यते ततोऽन्यत् कल्पितमेकं सामान्यं नीलरूपं तद्द्वारेण ।

---

[1]**तत्र प्रतिविविक्तरूपान्तराविविक्तस्वतत्त्वे,** प्रत्येकं विविक्तानि रूपान्तराणि प्रतिपरमाणु वा रसादिभेदेन वा, तेषामेव रूपान्तराणामविविक्तं [3]स्वतत्त्वं यस्य सोऽयमविवि[4]क्तस्वतत्त्वः । कोऽसौ ? रूपसङ्घातः, रूपधातुभेदपरमाणुसङ्घातः अधिकृतचक्षुर्विषयाभिमतरूपसङ्घातो वा । तस्मिन् **रूपसङ्घाते इन्द्रियसन्निकृष्टे** [5]स्वविषय्याभिमुख्येन उपस्थिते **आलम्बनविपरीता** परमार्थत आलम्बनभूतेभ्यः परमाणुभ्यः 'नीलम्' इति वा 'घटः' इति वा **येयं प्रतिपत्तिः** सा विपरीता, तदग्रहे तद्बुद्ध्यभावात्, बलाकासु पङ्क्तिज्ञानवत्, [6]**अव्यपदेश्यैकात्मकनीलरूपविषया,** व्यपदेश्यानेकपरमाण्वाल[7]म्बनेभ्योऽन्योऽव्यपदेश्य एक आत्मा अस्येति अव्यपदेश्यैकात्मकम्, किं तत्? नीलरूपम्, तद् विषयोऽस्या इति **अव्यपदेश्यैकात्मकनीलरूपविषया** अभिमता 'प्रतिपत्तिः' इति वर्तते । सैव वा प्रतिपत्तिरव्यपदेश्या [8]ऐकात्मकानेकपरमाणु[9]नीलरूपविपरीतैकनीलरूपविषया, तद्व्याख्यानार्थम**भिधर्मपिटके** भवतां यथोच्यते – **नीलं विजानाति, नो तु 'नीलम्' इति** । नाव्यपदेश्या सा प्रतिपत्तिरित्यभिप्रायः, तं प्रदर्शयति – **ननु हेत्वपदेशव्यपदेश्यैव सा** । यस्मादुक्तम् – **हेतुरपदेशो निमित्तं लिङ्गं प्रमाणं कारणमित्यनर्थान्तरम्**[10] [वै० सू० ९।२।४] इति । न चावश्यं शब्दाभिधेयमेव व्यपदेश्यम्, किं तर्हि ? [11]यद्यदर्थान्तरेणाधिगम्यते तत्तद्व्यपदेश्यम्, अर्थान्तरस्य हेत्वपदेशनिमित्तादिपर्यायत्वात् । [12]तथापि च **यतः सञ्चयग्रहणापदेशेन** निमित्तान्तर[13]जन्यमि- ४५-२
न्द्रियज्ञानमिष्टं तस्माद् **व्यपदेश्यं** तत् । तथा चोक्तम् – **सञ्चितालम्बनाः पञ्च विज्ञानकायाः** [अभि० पि०] इति, न सञ्चयालम्बना इति । एतस्यार्थनिदर्शनार्थमुदाहरणमाह – **धूमेनेव अग्निरिव गृह्यते,** यथा धूमेन अर्थान्तरभूतेन 'अग्निरत्र' इति ज्ञानमुत्पद्यमानं व्यपदेश्यं दृष्टं तथैतदपि नीलरूपादिविषयं चक्षुरादिविज्ञानं परमाणुभिरर्थान्तरैर्जनितत्वाद् व्यपदेश्यम् । **ततोऽन्यदि**त्यादि । तत एव यथा व्यपदेश्यं तथा धूमादग्निरिव तद् **नीलरूपं ततः** परमाणुभ्यः परमार्थसद्भ्यः [14]**अन्यत् कल्पित**मकल्पितेभ्य **एकं** बहुभ्यः **सामान्यं** विशेषेभ्यः, न साक्षादिन्द्रियैरव्यवहितं गृह्यते, किं तर्हि ? व्यवहितमेवार्थान्तरैः परमाणुभिः **तद्द्वारेण** परमाणुद्वारेण गृह्यते, न स्वत एवेति ।

---

१ **तच्च प्रति°** भा० ॥ २ **°क्तस्य तत्वे** य० ॥ ३ **स्वं तत्वं** भा० । **स्वतंत्वं** वि० ॥ ४ **°क्तंस्व°** य० ॥ ५ **स्वविषयाभि°** य० ॥ ६ **अध्यपदे°** प्र० ॥ ७ **°म्बनेभ्योन्येन्यपदेश्य** प्र० ॥ ८ **एकात्मिकानेक°** य० । **एकाऽनेक°** भा० । अत्र यद्यपि य०प्रतिषु **एकात्मिका°** इति पाठ उपलभ्यते तथापि प्रतिपत्तेरेकात्मकत्वस्य आलम्बनविपरीतप्रतिपत्तित्वासाधकत्वात् एकात्मकनीलरूपविषयत्वस्यैव तत्साधकत्वाच्च **एकात्मकानेक°** इत्येव पाठोऽत्र समीचीन इति भाति ॥ ९ **नीलविपरीतै°** भा० ॥ १० "हेतुरपदेशो लिङ्गं प्रमाणं करणमित्यनर्थान्तरम्"–**वै० सू०** ॥ ११ **यदर्था°** डे० लीं० वि० । **मदर्था°** रं० ही० ॥ १२ **तथापि च** प्र० ॥ १३ **°जनामि°** प्र० ॥ १४ **अन्यकल्पित°** प्र० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

ननु च सञ्चयस्य कारकहेतुत्वेनापदेशः प्रत्यक्षप्रतिपत्तेर्न धूमवज्ज्ञापकहेत्वपदेशतया अग्नेरिवार्थान्तरस्यैकरूपत्वस्य। नन्विदमस्यैवार्थस्य प्रदर्शनार्थं प्रस्तुतमस्माभिः, यदीदं प्रत्यक्षं स्यात् कारकादेव स्वार्थादालम्बनाद्धेतोर्जायेत दाहानुभवनवत् प्रत्यक्षत्वादव्यवहितप्रतिपत्त्यात्मकत्वात् प्रत्यक्षस्य स्वलक्षणविषयत्वादनध्यारोपात्मकत्वादिति यावत्।

अत्राह – **ननु च सञ्चयस्येत्यादि** यावदर्[1]थान्तरस्यैकरूपत्वस्येति। **नन्वित्यनुज्ञापने, चशब्दः** प्रसिद्धभेदसमुच्चये, नन्विदं प्रसिद्धम् – अन्यः कारको हेतुरन्यो ज्ञापक इति। तस्मादणूनां तत्सञ्चयस्य नीलस्य च कारकसम्[2]बन्धाद् धूमस्याग्नेश्च ज्ञापकसम्बन्धात् प्रत्यक्षानुमानप्र[3]तिपत्त्योर्वैषम्यमतः साध्य[4]धर्मवैकल्यं दृष्टान्त[5]स्य इष्टविघाताद् विरुद्धता हेतोरिति वाक्यार्थः। अक्षराण्युत्तानार्थान्येवेति न विवृण्महे।

अत्राचार्यो दोषद्वयं परिहरन्नाह – **नन्विदमस्यैवार्थस्य प्रदर्शनार्थं प्रस्तुतमस्माभिः**। नैतदनिष्टमस्माकं न वा साध्यधर्मवैकल्यं यत् सञ्चयस्य ज्ञापकत्वप्रसङ्गात् प्रत्यक्षप्रतिपत्तेस्तद्दोषद्वयमस्मान् प्र[6]त्यापाद्येत। न पुनरे[7]वमेतत्, अस्यैव प्रतिपिपादयिषितत्वात्। तदुच्यते – **यदि** भवन्मत**मिदं प्रत्यक्षं स्[8]यात्,**
४६-१ **कारकादेव** निष्पादकादेव चक्षुरादिविज्ञानस्य नीलपीतादेः **स्वार्था**भिमता**दालम्बन**भूता**द्धेतोर्ज[9]ायेत** सञ्चयाख्यात् संवृतिसतः, न परमार्थसतोऽण्वादेरपि स्यात्, भवति तु। तस्मान्न प्रत्यक्षम्, ज्ञापकधूमाद्यपेक्षाग्निज्ञानवत्, वैधर्म्येण **दाहानुभवनवत्**। स्वार्थमात्रालम्बनं वा स्यात् **प्रत्यक्षत्वाद्** दाहानुभवनवत्। यथोक्तम् –

[10]अन्यथा दाहसम्बन्धाद्दाहं दग्धोऽभिमन्यते।
अन्यथा दाहशब्देन दाहार्थः सम्प्रतीयते॥ [वाक्यप० २।४२१]

अव्यवहितप्रतिपत्त्यात्मकत्वात् प्रत्यक्षस्येति तस्यैवोपचयहेतुः, अर्थान्तरेणाव्यपेतस्यार्थस्य ग्राहकं प्रत्यक्षं दृष्टम्, यथा दाहानुभवः, तथा तस्य स्वलक्षणविषयत्वात् प्रत्यक्षस्यार्थान्तरनिरपेक्षता स्यात्, न पुनरस्तीति **स्वलक्षणविषयत्वादनध्[11]यारोपात्मकत्वादिति यावत्,** सर्वत्रार्थान्तराध्यारोपवृत्त्यर्थान्[12]तरहेयतयोत्पन्नं न ज्ञानमिति यावदुक्तं भवति तावदुक्तं भवति **स्वलक्षणविषयत्[13]वादव्यवहितप्रतिपत्त्यात्मकत्वात् प्रत्यक्षत्वा**दित्यादि। अर्थान्तरनिमित्तग्राह्यं [14]चाप्रत्यक्षं दृष्टम्, यथा दाहशब्दजनितज्ञानमिति। एवं तावत् कारकतां सञ्चयस्याभ्युपगम्य दोष आपादितः।

---

१ °**र्थान्तस्यैक**° भा० वि० विना। दृश्यतां पृ० ७७–२॥ २ °**संबद्धाधूमस्य** प्र०॥ ३ °**प्रतिपत्त्योर्थैषम्यतः साध्य**° य०॥ ४ °**धर्मविकल्पं** प्र०॥ ५ °**न्तस्यैष्ट**° वि० विना॥ ६ **प्रत्यापाद्येव** भा०। **प्रत्यपाद्येव** य०॥ ७ भा० विनान्यत्र – °**वमेवदस्यैव** पा० वि०। °**वमेवचस्यैव** डे० लीं०। °**वमेववस्यैव** रं० ही०॥ ८ भा० विनान्यत्र – **स्यादकारका**° वि० डे० लीं०। **स्यावकारका**° रं० ही०। **स्यावकारका**° पा०॥ ९ °**ज्ञावत्** भा० विना॥ १० "अन्यथैवाग्निसम्बन्धाद्दाहं दग्धोऽभिमन्यते। अन्यथा दाहशब्देन दाहार्थः प्रतीयते॥" – **वाक्यप०**॥ ११ °**ध्यारोपत्वादिति** य०॥ १२ °**न्तराहपतयोत्पन्नं तज्ज्ञानमिति** य०। °**न्तराह**॥ **पतयोसन्नं तज्ज्ञानमिति** भा०॥ अत्र 'अर्थान्तराध्यारोपवृत्ति अर्थान्तरहेयतयोत्पन्नं न ज्ञानम्' इत्यर्थः प्रतिभाति। अर्थान्तरहेयतया अर्थान्तरगम्यतयेत्यर्थः, 'हि गतौ' [पा० धा० १२५८] इति 'हि'धातोर्गत्यर्थत्वात् सर्वेषां गत्यर्थानां च ज्ञानार्थत्वात्। तुलना – "अतस्तदर्थत्रयमुपसंहृत्य हेतुहेयनिगमनार्थमाह" – **नयचक्रवृ०** पृ० ९७–२। "अर्थान्तरनिमित्तग्राह्यं चाप्रत्यक्षं दृष्टम्" [पं० २३] इति च वक्ष्यते॥ १३ °**त्वादेव्यव**° भा०॥ १४ **वा[ऽ]प्रत्यक्षं** प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारकतापि च सञ्चयस्य नैव तस्य, परमार्थतोऽसत्त्वादलातचक्रवत् प्रत्यवयवव्यवस्थानमात्रत्वात्। लोकवत्तु सञ्चयसत्त्वे विशिष्टोऽपदेशो व्यपदेशो ग्राह्यादन्यः, तेन व्यपदेशेन व्यपदेश्यं प्रमेयमनुमेयं न प्रत्यक्षम्, धूमानुमिताग्निवत्,

इदानीं कारकतामपि दूषयितुकाम आह – **कारकतापि च सञ्चयस्य नैवास्ति तस्येति** प्रतिज्ञा, **परमार्थतोऽसत्त्वादिति** हेतुः। **अलातचक्रवदिति** दृष्टान्तः। परमार्थतोऽसत्त्वं संवृतिसत्वाद् भवन्मतेन घटवत्। यथोक्तम् –

> [1]यस्मिन् भिन्ने न तद्बुद्धिर[2]न्यापोहे धिया च [3]तत्।
> घटा[4]म्बुवत् संवृतिसत् परमार्थसदन्यथा ॥ [अभि० को० ६।४] इति।

यथा उल्मुकं भ्रमद् भ्रान्तदृष्टेश्चक्रव[5]दाभाति, न तच्चक्रमस्ति, अग्निकणानां नैरन्तर्याभावात्, चक्रस्य पर- ४६-२
[6]मार्थतोऽसत्त्वाच्च चक्रविज्ञानस्य अकारकता एवं सञ्चयस्य संवृतिसत्त्वा[7]न्नीलविज्ञानस्य अकारकता। तथा
अतीन्द्रियत्वादणुनीलानाम्। इतश्च सञ्चयस्य अकारकता, **[8]प्रत्यवयवव्यवस्थानमात्रत्वात्,** अवयव-
म[9]वयवं प्रति प्रत्यवयवम्, अवयवा नीलादिपरमाणवः, तेषामेव [10]संहत्यैकत्र परस्परासत्त्या व्यवस्थानमात्रं
सञ्चयो न तेभ्योऽर्थान्तरमिष्टं भवताम्। अतः परमार्थतो नास्त्येवासौ सञ्चयो [11]नाम कश्चित्। तस्य असतः
[12]खरविषाणस्येव का कारकता ?

अभ्युपेत्यापि सञ्चयस्य सत्त्वं दोषं ब्रूमः – **लोकवत्तु सञ्चयसत्त्वे,** यथा लोकस्य अव्युत्पन्नस्यापि
समुदायिव्यतिरेकेण सन्नेव अवयवी [13]परिणामान्तरं तत्समुदायो वा योऽस्तु सोऽस्तु परैर्व्युत्पादितः [14]सन्नेवासौ
तन्तुपटादिषु बुद्धि-शक्ति-कार्या-ऽभिधान-सङ्ख्यादिभेददर्शनादि[15]ष्टैः, तत्राक्षरार्थानुसारेण व्यपदेशोऽस्त्येवेति
[16]गृह्यताम्। ततश्च 'अव्यपदेश्यो विषयः प्रत्यक्षस्य, प्रत्यक्षं चाव्यपदेश्यम्' इत्युभयमनृतम्। तत् कथमिति
चेत्, **विशिष्टोऽपदेशो व्यपदेश** इति विशब्दस्य विशिष्टार्थताम् **अपदेश**शब्दस्य [17]हेत्वर्थतां च
दर्शयति। विशिष्टोऽन्य इत्यर्थः। कुतोऽन्य इति चेत्, उच्यते – **ग्राह्यादन्यः,** ग्राह्यो नीलादिः, तस्मा-
द[18]न्यः सञ्चयस्तद्व्यपदेशः। **तेन** सञ्चयेन **व्यपदेशेन** हेतुना **व्यपदेश्यम्,** किं तत् ? **[19]प्रमेयं** नीलादि
त्वदभिमतप्रत्यक्षप्रमाणगम्यम्। किं भवति तन्नीलादिरूपम् ? **अनुमेयं** प्राप्नोति, व्यपदेशव्य[20]पदेश्यत्वात्,
न प्रत्यक्षम्। तस्य ज्ञेयस्यास्मादेव हेतोः प्रत्यक्षत्वाभावोऽनुमेयभावश्च साध्यते, [21]तद्विज्ञानस्य अप्रत्यक्षता ४७-१
[22]अनुमानता च साध्यते। को दृष्टान्तः ? **धूमानुमिताग्निवत्।** यथा धूमेन व्यपदेशेन साधितोऽग्नि-

---

१ "यत्र भिन्ने" – इति **अभिधर्मकोशे** पाठः ॥ २ °**रन्यापोहधिया** य० ॥ ३ **यत्** प्र०। अत्र '**तत्**' इति **अभिधर्मकोशे** पाठस्तथैव च व्याख्यातो **वसुबन्धुना तद्भाष्ये। नयचक्रवृत्ति**कृतामपि '**तत्**' इति पाठ एव सम्मतः, यतस्तैरेव अस्य श्लोकस्य विवरणावसरे इत्थं व्याख्यास्यते – "यस्मिन् घटे भिन्नेऽवयवशो न तद्बुद्धिर्भवति **तद्** घटवत् संवृतिसत्" – **नयचक्रवृ०** पृ० ६६–१ ॥ ४ °**म्बुवृत्** भा० वि० विना ॥ ५ °**दाहाति** भा० ॥ ६ °**मार्थतो-सत्वाच्चक्र**° पा० ले० ही०। °**मार्थसतोसत्वाच्च चक्र**° भा० ॥ ७ °**त्वान्नीलंविज्ञा**° य० ॥ ८ °**प्रत्यवयवस्थान**° प्र० ॥ ९ °**मवयं प्रति** य० ॥ १० **संहतैकत्र** प्र० ॥ ११ **नाम कंचित्** भा०। **न मे कंचित्** य० ॥ १२ **खर-विषाणस्यैव** भा०। **रसविषाणस्यैव** य० ॥ १३ **परिणामान्तरत्**। **तत्समु**° भा०। **परिमाणान्तरवत्**। **तत्समु**° य०। दृश्यतां पृ० ६४ पं० १९ ॥ १४ **सन्नैवासौ** भा० ॥ १५ °**ष्टसुत्राक्ष**° प्र० ॥ १६ **गृह्यतान्**। भा० ॥ १७ **हेत्वर्थतां त दर्श**° य०। **हेत्वर्थतां दर्श**° भा० ॥ १८ °**न्य सञ्च**° प्र० ॥ १९ **अमेयं** प्र० ॥ २० °**पदेश। त्वात्** भा०। °**पदेशत्वात्** य० ॥ २१ **तद्ब्ज्ञानस्य** भा०। **तज्वज्ञानस्य** य० ॥ २२ °**मानत्वव साध्यते** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारकतायामकारकतायां वा वस्तुनः पितृधूमादिवत् ।

अभिधानाव्यपदेश्यतैकात्मकत्वे अपि च नैव, अनुमिताग्निवद् बहुविषयत्वाद् नीलस्य ।

तद्धि नीलरूपनिरूपणं विकल्पः, प्रतिपरमाणुपरस्परप्रतिभिन्नस्वतत्त्वानेक-

---

रनुमेयोऽप्रत्यक्षश्च तथा 'नीलरूपम्[1] । यथा च धूमालम्बनोत्पादिताग्निज्ञानमनुमानमप्रत्यक्षं च तथा नीलज्ञानं संयोगोत्पादितमिति ।

किञ्चान्यत् – सर्वथा तद् नीलादिज्ञानं तेन सञ्चयेन व्यपदेश्यं तदविनाभावात् तस्य, **कारकतायामकारकतायां[2] वा** न कश्चिद् विशेषो व्यपदेश्यत्वसिद्धौ **वस्तुनः** । कुतः ? अर्थान्तरनिमित्तादेव, **पितृधूमादिवत्**, यथा[3] पिता पुत्रस्य जनकः, तेन व्यपदिश्यते कारकेण पुत्रः धूमेन ज्ञापकेन अग्निः, अविशिष्टत्वाद्वस्तुनः । ततस्तुल्ये[4] व्यपदेश्यत्वहेतौ अप्रत्यक्षत्वानुमानत्व[5]साधनसमर्थे सत्यव्यपदेश्यनिरोधकोऽ[6]यमनर्थको विचारः कारको ज्ञापक इति कारकत्वमभ्युपेत्याप्येष दोषोऽभिहितः । एवं तावदर्थकृतोऽस्य नीलस्य व्यपदेशः सिद्धो यत्सिद्धेरप्रत्यक्षानुमेयत्वे सिद्धे । तत्सिद्धेश्च तज्ज्ञानस्य[7] अनुमानत्वं सिध्येत् अव्यपदेश्यत्वादिलक्षणविरोधश्च । एवं तावदर्थतो व्यपदेश्यमेव ।

यदपीष्टम् – अभिधानतो न व्यपदेश्यं तन्नीलादिपरमाणुरूपं परमाणुसमूहाभेदादेकं 'चेति[8], एते द्वे **अभिधानाव्यपदेश्यतैकात्मकत्वे अपि च नैव** स्तो नीलरूपस्य इति प्रतिज्ञा । दृष्टान्तोऽ**नुमिताग्निवदिति** प्रतिपत्तिसौकर्यात् प्रागेव हेतोर्दृष्टान्त उक्तः, तद्बलावयवसिद्धेः[9] । हेतुसमर्थनार्थत्वात् दृष्टान्तस्य

४७-२ हेतुस्तर्हि क इत्यत्रोच्यते – **बहुविषयत्वात्** । यथा धूमज्ञानानुमितोऽग्निरवादिविनिवृत्त्युपलक्षितो देशकालादिभेदभिन्नोऽपि अभिधानव्यपदेश्योऽनेकात्मकत्वापन्न एव गृह्यते तथा **नीलार्थो**ऽपि स्याद् बहुपरमाणुविषयत्वात्, तथा ज्ञानमपीति ।

इदानीं प्रागभिहितकल्पनात्मकत्वादिभि[11]र्हेतुभिरनुमानात् पापीयस्त्वं तस्य प्रत्यक्षस्य प्रतिपादयितुकाम आह – **तद्धि नीलरूपनिरूपण**मित्यादि । **तदिति** प्रागपदिष्टं विकल्पात्मकत्वम्, हिशब्दो यस्मादर्थे, यस्मान्नीलरूपस्य निरूपणमुक्तन्यायेन अर्थव्यपदेशेन शब्दव्यपदेशेन वा दृष्टम्[12], स च **विकल्प** एवेत्यविकल्पकत्वं नास्ति, अतः 'कल्पनापोढम्' इति दुष्टं[13] लक्षणं ज्ञानार्थयोः । अध्यारोपाच्च निरूपणं तस्य, तत् कथमिति चेत्, उच्यते – **प्रतिपरमाणु** परमाणुं परमाणुं प्रति प्रतिपरमाणु **परस्परतः प्रतिभिन्नानि स्वानि तत्त्वानि ।** यो यस्य भावः स तस्य तत्त्वम्, न[14] सोऽन्यत्र भवति, भवनमेव हि तत्त्वम्, अतो विभिन्नानि प्रतिपरमाणु तत्त्वानि, एकैकस्य परमाणोः परमाण्वन्तरेभ्योऽत्यन्तभिन्नं स्वं तत्त्वम्, भावान्तरमनपेक्ष्य[15]

---

१ **नीलं रूपम्** य० ॥ २ °**कतया वा** य० ॥ ३ **थथा** भा० ॥ ४ °**स्तुल्यो** प्र० ॥ ५ °**मानसाधन**° य० ॥ ६ °**निरोधिकोऽयम**° प्र० ॥ ७ **तद्ज्ञानस्य** य० । **तज्ञानस्य** भा० ॥ ८ **चेति** प्र० ॥ ९ 'तद्बला चासौ अवयवसिद्धिश्चेति तद्बलावयवसिद्धिः' इति समासे यथाश्रुतपाठः सङ्गच्छते । 'तद्बलादवयवसिद्धेः' इत्यपि सम्भवेदत्र पाठः, दृश्यतां पृ० ५१ पं० ९ ॥ १० °**रपादि**° प्र० ॥ ११ °**त्वादिभिर्हे**° य० । °**त्वादितिहे**° भा० ॥ १२ **दृष्ट** य० ॥ १३ **दृष्टं** य० । **द्रष्टव्यं** भा० ॥ १४ **नासो**° प्र० ॥ १५ °**मनवेक्ष** रं० । °**मनपेक्ष** ही० । °**मनवेक्ष्य** रं० ही० विना ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपैकतत्त्वैकरूपाध्यारोपाद् रूपान्तरसामान्यरूपविषयत्वात् तदतद्विषयवृत्तत्वादतदनपोहाद् नाऽप्यनुमानवत् तत्सामान्यात्मकतैव, प्रज्ञप्तिपरमार्थस्थितसञ्चयपरमाणुपरिग्रहाभेदात्मकत्वात् सर्वथा साधारणार्थता, कल्पनात्मकत्वान्न प्रत्यक्षम्, अप्रत्ययप्रत्ययात्मकत्वात्, शब्दाश्रावणत्वप्रत्ययवत्। संवृत्यतीन्द्रियत्वाभ्यां हि

स्वरसेनैव[1] भवनाद् भावानामेकवच(द)साधारणभवनत्वात्[2] परमाणूनां स्वानि तत्त्वानि भिन्नानि । तथा[3]
तेषां परमाणूनां नीलादिरूपाण्यप्यनेकरूपाण्येव । तेषां च स्वतत्त्वानां तेषां च नीलादिस्वरूपाणामनेक-
रूपाणामेकद्वित्रिगुणादिभिन्नानां यथासङ्ख्यम् **एकतत्त्वैकरूपाध्यारोपात्** सर्वपरमाणुतत्त्वानामेकस्वतत्त्वा-
ध्यारोपात् सर्वपरमाणुरूपाणामेकनीलरूपाध्यारोपादर्थान्तरनिरूपणम् । स चाप्यध्यारोपो **रूपान्तरसामान्य-** ४८-१
रूपविषयत्वात्, रूपादन्यद् रूपं रूपान्तरम्, परमाणुरूपात् परमाण्वन्तररूपं रूपान्तरम्, एवं सर्वाणि
परमाण्वन्तररूपाणि, तेषां रूपं नीलमित्यभेदेन यत् सामान्यं[4] बुद्ध्या गृह्यते सोऽध्यारोपस्तद्विषयः । तदपि
सामान्यं **तदतद्विषयवृत्तत्वात्** सामान्यमित्युच्यते, स चान्यश्चार्थो विषयोऽस्येति कृत्वा । ततश्चात्र
प्रत्यक्षेऽन्यस्यानपोहः, अनुमाने त्वनभ्रेरभ्रेरन्यस्यापोहः[5] । तस्मा**दतदनपोहात्**[6] प्रत्यक्षमविविक्तविषयं स्व-
विषयाभिमतेऽन्यत्र चापरित्यागेन अभेदेन च वृत्तेः, नानुमानं[7] स्वविषये सामान्यमात्र एव वृत्तेः। अतोऽनु-
मानात् परपरिकल्पितं प्रत्यक्षं पापीयः सङ्कीर्णतरविषयत्वादिति । तस्माद् **नाऽप्यनुमानवद्**[8]दिति तत् अप्यनु-
नुमानतुल्यमपि तन्न भवति, अपोह्यार्थापोहशक्तिशून्यत्वात् । तस्मात् **तत्सामान्यात्मकतैव** ह्यनु-
मानस्य, न प्रत्यक्षस्येति तस्य नीलादेरर्थस्य प्रत्यक्षविषयस्य तज्ज्ञानस्य[9] च तदवस्था सङ्कीर्णरूपता ।

किञ्चान्यत्—तदतद्विषयवृत्ततापि न नीलरूपादेस्तज्ज्ञानस्य वोपपद्यते । किं कारणम् ? सदसतोः
सम्बन्धाभावात्, घटखपुष्पवत् । तत उपचरितमेव[10] तदतद्विषयवृत्तत्वमपीति तत्प्रदर्शनार्थमाह—**प्रज्ञप्ति-**
परमार्थस्थितसञ्चयपरमाणुपरिग्रहाभेदात्मकत्वात्[11] । प्रज्ञप्तिसन् सञ्चयः, परमार्थसन्तस्तु तथास्थिताः
परमाणवः, तेषां परिग्रहः सदसदभेदात्मकः, तस्मात् सदसत्परिग्रहाभेदात्मकत्वात् तदतद्विषयवृत्तता ।
सा च **सर्वथा साधारणार्थता**[12], सर्वथा एतेष्वनन्तरोक्तेषु हेतुषु । ततो मूलहेतुः '**कल्पनात्मकत्वात्**'
इति[13] स एवैतैः साधितः, तस्मान्न तत् **प्रत्यक्षं** न चानुमानवदसङ्कीर्णस्वविषयमित्येतदर्थभावनार्थाः ४८-२
पुनस्त एव हेतवो व्यापारिताः प्रत्येकमपि पूर्ववदेतस्मिन्नर्थे योज्याः । इतश्च तज्ज्ञानमप्रत्यक्षम्, **अप्रत्यय-**
प्रत्ययात्मकत्वात्, शब्दाश्रावणत्वप्रत्ययवदिति । प्रत्ययः कारणं हेतुरित्यर्थः, न प्रत्ययोऽस्येति अप्रत्ययः,

---

१ **स्वरसोनेव** य० ॥ २ **भावनामेकवचसाधारणभवनत्वाद्भवनत्वत्वात्पर°** भा० । **भावानामेकवचसाधारणभवनत्वा २ त्पर°** य० । अत्र 'भावानामेकवदसाधारणभवनत्वादसाधारणभवनत्वात् परमाणूनाम्' इत्यपि पाठः य०प्रतिपाठानुसारेण सम्भाव्यते । एकैकवत् सर्वेषां परमाणूनामत्यन्तभिन्नं स्वतत्त्वमित्यभिधातुम् 'असाधारणभवनत्वादसाधारणभवनत्वात्' इति वीप्सया प्रयोग इति भाति । अथवा 'भावानाम्, एवं चासाधारणभवनत्वात् परमाणूनाम्' इत्यपि पाठोऽत्र स्यात् ॥ ३ **तथा तथा तेषां** भा० ॥ ४ **सामान्यबुद्ध्या** य० ॥ ५ **त्वनभ्रेरन्यस्या°** भा० ॥ ६ **°दतनपो°** भा० ॥ ७ **नानुमात्रं** प्र० । 'यथा प्रत्यक्षमविविक्तस्वविषयं तथा नानुमानमविविक्तस्वविषयम्, स्वविषये सामान्यमात्रे एव वृत्तेः' इत्याशयोऽत्र भाति ॥ ८ **°वददि तत्** य० । अत्र '°वदपि तत्' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ९ **तज्ज्ञानस्य** प्र० ॥ १० **°चरितमंच तद°** प्र० ॥ ११ **°ग्रहभेदा°** य० ॥ १२ **°णार्थाता** भा० ॥ १३ **इति एवैतैः** य० ॥

नाणुषु न सञ्चये प्रत्ययता तथाप्रतिपत्तिं प्रति। अनुमानज्ञानमपि च तन्न प्रतिपूर्यते सम्बद्धगृहीतस्यान्यथाप्रतिपत्तेः, विरुद्धादिज्ञानवत्।

तिष्ठतु तावत् प्रत्यक्षविधिविधानाभ्युपगमेन स्वलक्षणमात्रविषयप्रत्यक्षत्वस्य

कोऽसौ? प्रत्ययः, प्रत्ययो विज्ञानम्, द्वितीयस्य **प्रत्यय**शब्दस्य विज्ञानार्थत्वात्, अकारणज्ञानत्वादित्युक्तं भवति। कथं पुनरकारणं तज्ज्ञानम्[1]? **संवृत्यतीन्द्रियत्वाभ्यां** यस्मान्नाणुषु **न सञ्चये प्रत्ययता तथाप्रतिपत्तिं प्रति,** द्रव्यसतामविषयत्वात् तस्य, द्रव्यसन्तो हि परमाणवोऽतीन्द्रियत्वादेव न प्रत्यक्षज्ञानहेतवः; तथा नीलत्वादयः संवृतिसन्तः, तत्सञ्चयोऽसत्त्वादेव अकारणम्। तस्मादुभयथापि अप्रत्ययः स प्रत्ययः 'नीलं रूपम्' इति। को दृष्टान्तः? यथा 'अश्रावणः शब्दः' इति प्रत्ययोऽप्रत्ययोऽप्रत्यक्षं च[2] तथेदमपीति।

स्यान्मतम्—कल्पनात्मकत्वादिभ्य[3] एव हेतुभ्योऽनुमानज्ञानं तर्हि चक्षुरादिविज्ञानं भविष्यतीति। अत्रोच्यते—**अनुमानज्ञानमपि च तन्न[4] प्रतिपूर्यते।** कर्मकर्तर्यात्मनेपदं यक्[5] च, तत्प्रतिषेधाद् 'न प्रतिपूर्यते' इति रूपम्, यथाऽयमोदनो विपन्नत्वात् पूतिमांसवदात्मानं न भोजयति न भुज्यते स्वयमेव तथेदमपि[6] ज्ञानमात्मानं न प्रतिपूरयति न प्रतिपूर्यते। कस्माद्धेतोः? **सम्बद्धगृहीतस्यान्यथाप्रतिपत्तेः।** सम्बद्ध एव गृहीतः, तस्य सम्बद्धगृहीतस्यान्यथाप्रतिपत्तेः[7], तस्य ज्ञानस्य अन्यथाप्रतिपद्यमानसम्बद्धगृहीतार्थत्वादित्यर्थः। यद्[8] ज्ञानं सम्बद्धमेवार्थं[9] गृह्णत् तमेवार्थमन्यथा[10] प्रतिपद्यते तद्[11] ज्ञानं नानुमानमपि सम्पूर्णं

४९-१ भवति। तद्यथा—**विरुद्धादिज्ञानम्।** यथा 'कृतकत्वान्नित्यः शब्दः' इति पक्षधर्मज्ञानं शब्दसम्बन्धि[12] घटादिष्वनित्यानुगमसम्बद्धं गृहीत्वा नित्यं शब्दं[13] प्रतिपद्यमानं विरुद्धहेत्वाभासज्ञानं भवति, **आदिग्रहणात्** प्रमेयश्रावणत्वद्वारं नित्यज्ञानं वा शब्दविषयमनैकान्तिकाभासं यथा तथेदमपि न सम्पूर्णमनुमानज्ञानमपीति।

अथवा **तिष्ठतु तावदित्यादि** यावत् **प्रत्यक्षविषयत्वाभ्युपगमविरोध** इति। स्थितं तावदस्तु[14] विदूरस्थेन आगमेनाभ्युपगतेन प्रत्यक्षविषयत्वस्य विरोध इत्येतत्। इदमेवास्मिन् प्रकरणे यदुदाहृतं 'पूर्वं[15] **चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी** इत्यादि तदेव न घटत इति वाक्यार्थः। **प्रत्यक्षस्य विधिः** प्रत्यक्षस्य जन्म, तस्य **विधानं** व्याख्यानम्—**सञ्चितालम्बनाः[16] पञ्च विज्ञानकायाः** [अभि० पि०] इति, स एव **अभ्युपगमः** प्रत्यक्षविधिविधानाभ्युपगमः। **स्वलक्षणमात्रविषयप्रत्यक्षत्वमेव[17],** स्वलक्षणमात्रं विषयो यस्य तत् स्वलक्षणमात्रविषयम्, किं तत्? प्रत्यक्षम्, तस्य भावः स्वलक्षणमात्रविषयप्रत्यक्षत्वम्[18], **तस्य प्रत्यक्षविधि-**

---

१ **पुनः कारणं तद् ज्ञानम्** य०। **पुन कारणं तज्ज्ञानम्** भा०॥ २ **इति प्रत्ययोऽप्रत्यक्षं च** प्र०॥ ३ °**त्वादिभ्यो हेतुभ्यो** य०॥ ४ **तन्न प्रति°** य०॥ ५ **यक्क तत्प्रति०** प्र०। "भावकर्मणोर्यग्विधाने कर्मकर्तर्युपसङ्ख्यानम्"—**पा० वा०** ३।१।६७। "कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः [पा० ३।१।८७]। कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवत् स्यात्, कार्यातिदेशोऽयम्, तेन **यगात्मनेपदचिण्चिण्वदिटः** स्युः। कर्तुरभिहितत्वात् प्रथमा। पच्यते ओदनः। भिद्यते काष्ठम्।"—**पा० सिद्धान्तकौ०** ३।१।८७॥ ६ **तथ्वदमपि** भा०॥ ७ **सम्बद्धागृही°** य०॥ ८ **यज्ज्ञानं** भा०॥ ९ **सम्बद्धमर्थं** भा० डे० लीं०। **सम्बद्धमवार्थं** भा० डे० लीं० विना॥ १० **गृह्णत्तामवार्थ°** भा०॥ ११ **तज्ज्ञानं** भा०॥ १२ °**संबंधे घटादिस्वनित्या°** प्र०॥ १३ **शब्द प्रति°** य०॥ १४ **तावद्वस्तु** य०॥ १५ **पूर्वचक्षुर्विज्ञा°** पा०। **पूज्ञक्षुर्विज्ञा°** भा० डे० लीं०। **तच्चक्षुर्विज्ञा°** रं० ही० वि०। दृश्यतां पृ० ६० पं० २॥ १६ दृश्यतां पृ० ६४ पं० १॥ १७ °**प्रत्यक्षणमात्रं विषयो यस्य** भा०। अत्र 'प्रत्यक्षत्वम्, एवं स्वलक्षणमात्रं विषयो यस्य' इत्यपि पाठः स्यात्॥ १८ °**त्वन्। तस्य** भा०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरोधः प्रत्यक्षविषयत्वाभ्युपगमविरोधः। 'चक्षुर्विज्ञानसमङ्गिनीलविज्ञानम्' इत्येतदेव तु न घटते प्रत्यक्षलक्षणोदाहरणम्।

एवं ते सञ्चयस्य रूपमात्रत्वात् तद्ग्रहणे तत्प्रत्यक्षत्वात् सञ्चितालम्बनकल्पनावैयर्थ्यादतन्मात्रत्वे संवृतिसत्त्वादरूपत्वाच्च चक्षुर्नैव चक्षुः स्यात्, उभयथापि रूपाग्राहित्वात्, घटादिवत्।

विधानाभ्युपगमेन विरोधः समनन्तरग्रन्थोपपादितोऽसौ स्थित एव। [1]**चक्षुर्विज्ञानसमङ्गिनीलविज्ञानमित्येतदेव तु न घटते।** तुशब्दो विशेषणे, किं विशिनष्टि? पूर्वस्माल्लक्षणवाक्यादागमस्यास्याशुद्धतरतां विशिनष्टि। चक्षुषः चक्षुषि चक्षुषा वा विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानमसाधारणविषयम्, तत् समङ्गति समन्वेतीति **चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी,** कः? सन्तानः, विज्ञानस्य तदर्थैकगमनात् तद्द्वारेण तत्सन्तानोऽपि समङ्गतीत्युच्यते। तत्समङ्गिनो **नीलविज्ञानम्।** तदेव 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढमनिर्देश्यं स्वलक्षणविषयम्' इत्यादि वचनं तेन लक्षितस्य **उदाहरणम्** 'इदं तत्' इति प्रत्यक्षीकरणं प्रदर्शनम्, यथा **वृद्धिरादैच्** ४९-२
[पा० १।१।१] इत्युपलक्षित[2]स्य 'आश्वलायनः' इत्युदाहरणम्।

कथं तन्न घटते? तत आह–**एवं ते सञ्चयस्येत्यादि** यावत् **सञ्चितालम्बनकल्पनावैयर्थ्यादिति। एवं ते** उदाहरणत्वेष्टौ सत्यां **सञ्चयस्य रूपमात्रत्वात्,** किं भवति? सञ्चितालम्बनकल्पनावैयर्थ्यं स्यादित्यभिसम्भन्त्[3]स्यते। रूपमात्रत्वं सञ्चयस्य कुत इति **तद्ग्रहणे तत्प्रत्यक्षत्वात्,** यद्ग्रहे यस्य प्रत्यक्षत्वं तत् तावन्मात्रमेव दृष्टम्, यथा दाहग्रहे दाहप्रत्यक्षत्वे दाहमात्रमेव नातोऽन्योऽर्थ ई[4]ष्ट एवं सञ्चयग्रहे नीलरूपमात्रमेव। अतः किम्? सञ्चितालम्बनकल्पनावैयर्थ्यम्, सञ्चयाभावात्। सञ्चयाभावो रूपमात्रत्वात्। सञ्चितालम्बनकल्पनावैयर्थ्याच्चोदाहरणमेव तु न घटते 'चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी' इत्यादि।

अतन्मात्रत्वे संवृतिसत्त्वादित्यादि यावदु**भयथापि** [5]**रूपाग्राहित्वाद् घटादिवत्।** अथ मा भूदेष दोष इति न रूपमात्रं सञ्चयः, स एव च गृह्यत इतीष्यते, ततः सञ्चयस्य संवृतिसत्त्वादरूपत्वं खरविषाणवत्। संवृतिसत्त्वं प्रागुपपादितम्। **अरूपत्वाच्च** न चक्षुर्ग्राह्यः स्यात् सञ्चयः, रूपादन्यत्वात्, शब्दवत् खपुष्पवद्वा। ततः को दोष इति चेत्, उच्यते–**चक्षुर्नैव चक्षुः स्यात्,** रूपस्याग्राहकत्वात्, घटवत् जिह्वावत् त्वग्वदित्यादि। कथं 'रूपस्याग्राहकं चक्षुः' इति दृष्ट-प्रसिद्धिविरुद्धमुच्यत इति ५०-१
चेत्, तवैव दृष्टप्रसिद्धिविरोधावापाद्येते मया। किं कारणम्? **उभयथा रूपाग्राहित्वात्तस्य।** यदि सञ्चयस्तथा[6]प्यसन्नरूप एवेत्युक्तत्वादचक्षुर्विषयो रूपम्, ततो रूपस्याग्राहकत्वाच्चक्षुरचक्षुः श्रोत्रवत्। अथासञ्चितमेव परमाणुनीलरूपमिष्टं तथाप्यतीन्द्रियत्वादचक्षुर्विषयो रूपम्, अतो रूपस्याग्राहकत्वाच्च चक्षुर्न च चक्षुः स्यादुक्तवदिति सूक्तम्–उभयथापि रूपस्याग्राहकं चक्षुरिति। एवं तावत् 'चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी' इत्यत्र चक्षुषोऽचक्षुष्ट्वाच्चक्षुर्ग्रहणमनर्थकम्।

---

१ **चक्षुर्विज्ञानमित्येतदेव तु घटते** प्र० ॥ २ °**तस्याण्वलायन** भा०। °**तस्यापवलायन** य०। अश्वलो नाम मुनिः, तस्य अपत्यमाश्वलायनः। नडादिषु परिगणितात् 'अश्वल'शब्दात् "नडादिभ्यः फक्" [पा० ४।१।९९] इति सूत्रेण 'फक्'प्रत्यये विहिते "तद्धितेषु अचामादेः" [पा० ७।२।११७] इति सूत्रेण "वृद्धिरादैच्" [पा० १।१।१] इति वृद्धौ 'आश्वलायनः' इति रूपम् ॥ ३ °**न्त्स्यंते भूपमात्रत्वं** भा० ॥ ४ **द्रष्ट** य० ॥ ५ **रूपादिग्राहि**° पा० वि० ॥ ६ °**प्यासन्नरूप एवेत्यक्त**° य० ॥

विज्ञानमपि न विज्ञानं स्यात्, अन्यथार्थप्रतिपत्तेः, अलातचक्रादिज्ञानवत्। न च चक्षुर्विज्ञानं समङ्गति, रूपादन्यत्रासम्भवात्। न हि सञ्चयो रूपम्। यदपि च तद्रूपं तद्विषयमपि चक्षुर्विज्ञानस्य समङ्गनं नास्ति, अविषयत्वात्, अन्येन्द्रियविषयवत्। सञ्चयविषयमपि संवृतिसत्त्वात् खपुष्पवत्।

नीलविज्ञानसम्बन्धी न भवति तत्सन्तानः, तदाकारज्ञानोत्पत्तिहेत्वभावात्, अदग्धस्य दाहज्ञानवत्।

विज्ञानग्रहणमप्यत एवानर्थकमित्यत आह – **विज्ञानमपि न विज्ञानं स्या**दित्यादि यावत् ख**पुष्पव**दिति। [1]'विशेषेण ज्ञानं विज्ञानं तद्भवदभिमतं प्रत्यक्षं मुख्यं विज्ञानं न स्यात्, इतरथा कथमाचार्यश्री**मल्लवादी** 'विज्ञानं न [2]स्यादिति स्ववचनविरोधं **मायेय-दिन्नाविव** ब्रूयात्? किं कारणं पुनर्विज्ञानं तन्न स्यात्? **अन्यथार्थप्रतिपत्तेः**, अरूपस्य सञ्चयस्य रूपत्वेन प्रतिपत्तेः सञ्चयत्वेन वा रूपमात्रस्य प्रतिपत्तेः। को दृष्टान्तः? **अलात[3]चक्रादिज्ञानवत्।** यथोल्मुकाग्निकणमात्रमर्थं 'चक्रम्' इति प्रतिपद्यमानं न विज्ञानमेवं तदपि। **आदिग्रहणात्** [4]स्थाणौ पुरुषज्ञानमित्यादि। एवं तावच्चक्षुरिति [5]'विज्ञानमिति च द्वयं दूषितम्। 'चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी' इत्यत्र समङ्गित्वमपि दूषयितुकाम आह – **न[6] च चक्षुर्विज्ञानं समङ्ग**तीति, तद्द्वारेण पुरुषाख्यसन्तानैकगमनं समङ्गनं ततस्तन्निषेधः। कस्मान्न समङ्गति? चक्षुर्विज्ञानस्य **[7]रूपादन्यत्रासम्भवात्**, न वा तत्सन्तानोऽन्यत्र सम्भवति, उक्तं हि – **सति सम्भवे व्यभिचारे च विशेषण-**

५०-२ **विशेष्यभावः** [ ] इति। सञ्चयापेक्षो व्यभिचारोऽस्त्यतो विशेष्यत इति चेत्, तन्न, यस्मान्न **सञ्चयो रूपम्।** अरूपत्वाच्चक्षुर्विज्ञानसङ्गत्यभावः। स्यान्मतम् – नीलरूपाव्यभिचारादेव तदेकगमनात् समङ्गीत्युच्यते चक्षुर्विज्ञानमिति, एतच्चायुक्तम्, तस्याप्यतीन्द्रियत्वाच्चक्षुर्विज्ञानाविषयत्वादरूपत्वम्। अभ्युपेत्यापि त्वन्मतेन **यदपि च तद्रूपम्**, रूपत इति रूप्यम्, चक्षुर्विज्ञानेन किल रूप्यत इति, **तद्विषयं** स विषयो यस्य तत् तद्विषयम्, किं तत्? **एकगमनम्**, कस्य? **चक्षुर्विज्ञानस्य, तदपि नास्ति।** कस्मात्? **अविषयत्वात्।** अविषयत्वमतीन्द्रियत्वात् प्रस्तुतप्रत्यक्षस्य। **अन्येन्द्रियविषयवत्**, यथा शब्दोऽन्येन्द्रियविषयश्चक्षुर्विज्ञानेन न समङ्ग्यते तथा तदपि रूपमिति। स्यान्मतम् – सञ्चयश्चक्षुर्विज्ञानसङ्गतियोग्यः स्यादिति, अत्र ब्रूमः – **सञ्चयविषयमपि 'चक्षुर्विज्ञानस्य समङ्गनं नास्ति'** इति वर्तते। कस्मादसत्त्वम्? **संवृतिसत्त्वात् खपुष्पव**दिति [8]सङ्गमनाभावसाधर्म्येण दृष्टान्तः। एवं तावद् 'रूपम्, चक्षुः, विज्ञानम्, समङ्गी' इत्येतानि दूषितानि।

इदानीं 'नीलम्, विजानाति' इति च दूष्यम्। तत्र नीलं पदार्थतो दूषितमेव, विजानातीति च दूषितमेव पदार्थतः, रूपचक्षुर्विज्ञानानां सङ्गतेश्च दूषितत्वात्। मा भूदक्षरस्थानं दूषणशून्यमिति कृत्वा वाक्यार्थतोऽपि दूष्यते – **नीलविज्ञानसम्बन्धी न भवति तत्सन्तानः, तदाकारज्ञानोत्पत्तिहेत्वभावात्।** स आकारोऽस्येति तदाकारं ज्ञानं नीलाकारम्, तस्योत्पत्तिस्तदाकारज्ञानोत्पत्तिः, तस्या हेतुः सञ्चयो नीलरूपं वा स्यात्, उभयमपि तन्न भवत्युक्तविधिनैव, [9]अतस्तदाकारज्ञानोत्पत्तिहेत्वभावात्।

---

१ **विशेषणज्ञानं** प्र० ॥ २ **स्यादितिरथा** प्र० ॥ ३ °**चक्रज्ञान**° य० ॥ ४ **स्थाणुपुरुष**° य० ॥ ५ **वज्ञान**° य० ॥ ६ **न चक्षु**° भा० ॥ ७ **रूपाद्यन्यत्रा**° प्र० ॥ ८ **सङ्गमना**° प्र०। 'समङ्गना°' इत्यपि पाठः स्यादत्र ॥ ९ **अस्तदा**° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीलं च सञ्चयं च प्रत्येकसमुदितकारणत्वाद् विज्ञास्यतीति चेत्, न, युगपज्ज्ञानासम्भवात्, ज्ञानस्य क्रियावैधर्म्यात्।

तयोरेकज्ञानत्वादेकज्ञेयत्वे इतरेतरत्वे सर्वसर्वात्मवादिता। सर्वनीलैक्ये हि समवायग्रहणे प्रत्येकैकनीलग्रहणं स्यात्। ततश्च यथात्र सन्द्रावात् सर्वनीलैकता

को दृष्टान्तः? **अदग्धस्य दाहाज्ञानवत्**, यथा अदग्धस्य दाहानुभवज्ञानं तदाकारज्ञानोत्पत्तिहेत्वभावान्नास्ति तथा नीलविज्ञानसम्बन्धी न भवति तत्सन्तान इति। एवं नीलरूपतत्सञ्चययोर[1]न्यतरविषयत्वेष्टौ दोषा उक्ताः। ५१-१

इदानीं प्रत्येकं त एव समुदिता इत्युभयैकविषयत्वे दोषं वक्तुकामः पक्षान्तरं ग्राहयति—**नीलं च सञ्चयं च प्रत्येकसमुदितकारणत्वाद्विज्ञास्यतीति चेत्**, स्यान्मतम्—त एव हि नीलपरमाणवः प्रत्येकं शिबिकोद्वाहन्यायेन समुदिताश्च कारणं न चैकैकः, न च समुदायस्तद्व्यतिरिक्तोऽ[2]स्तीत्युभयकारणत्वं ज्ञानस्य, तस्माज्ज्ञानोत्पत्तिहेत्वभावासिद्धिरिति। एतन्न, **युगपज्ज्ञानासम्भवात्**, द्वयोरर्थयोर्युगप[3]देकज्ञानाभावा[4]देकैकस्मिंश्चार्थे युगपज्ज्ञानयोरभावाद्भवतः। यथोक्तम्—

विजानाति न विज्ञानमेकमर्थद्वयं यथा।
एकमर्थं विजानाति न विज्ञानद्वयं तथा॥ [चतुःश० २६८] इति।

स्यान्मतम्—हस्तेन अनेकबदरामलकाद्यर्थग्रहणवत् स्यादिति। एतच्चायुक्तम्, **ज्ञानस्य क्रियावैधर्म्यात्।** ज्ञानं च प्रत्यक्षमुच्यते, [5]कल्पनाया ज्ञानाव्यभिचारात्, **प्रत्यक्षं कल्पनापोढं यज्ज्ञानमर्थे रूपादौ** [[6]न्यायप्र०] इति वचनात्। एवं रूपरूपसमुदाययोर्नानात्वे दोषः।

यद्यपि स्यात् **तयोरेकज्ञानत्वादेकज्ञेयत्वम्**, एकं ज्ञानमनयोरित्येकज्ञाने, तयोरेकज्ञानत्वात् एकमेव [7]ज्ञेयं तद्भाव एकज्ञेयत्वं दाहानुभववत्, तस्मिन्नेक**ज्ञेयत्वे इतरेतरत्वे** अन्योन्यात्मापन्नत्वे सति **सर्वसर्वात्मवादिता।** कथम्? समुदायानर्थान्तरत्वाद् रूपं समुदाय एव समुदायस्वरूपवत्, समुदायो वा रूपमेव रूपानर्थान्तरत्वाद् रूपस्वरूपवत्। एवं रसादि-घटादि-रूपादिसमुदायान्तराभिमतार्थानामनर्थान्तरत्वात् सर्वसर्वात्मकत्ववादिता। तस्मात् **सर्व**परमाणु**नीला**नां सञ्चयानर्थान्तरत्वा**दैक्ये** सति **समवायग्रहणे** युवतिकेशपाशसमुदाये गृह्यमाणे, **हि**शब्दो यस्मादर्थे, यस्मात् **सर्वनीलैक्यं** तस्मादेकमेव नीलं रूपमेककेशगतं गृह्येत, एकमेकं [8]प्रति **प्रत्येकैकनीलग्रहणं स्यात्**, एकनीलवा[9]लग्रहणेऽपि च सर्वनीलकेशपाशग्रहणमेकनीलात्मकत्वात् समुदायस्य। **ततश्च यथात्र स[10]न्द्रावात् सर्वनीलैकता**, गु[11]णसन्द्रावो द्रव्यम्, नार्थान्तरम्, [12]सन्द्रुत्य सर्वनीलगुणा एकतामापन्नाः, **तथा रूपादिपञ्चकस्यापि** रूपरस[13]गन्धस्पर्शशब्दपञ्चकस्यापि '[14]सन्द्रावादेकता स्यात्' इति वर्तते। कस्माद्धेतोः? **गुणत्वात्**, धर्मत्वादित्यर्थः, न हि वैशेषिकवद् द्रव्यगुणभेदोऽस्तीति कृत्वा। दृष्टान्तो **नीलैकत्ववत्**, यथा सर्वनीलानां गुणत्वाद्धर्मत्वा- ५१-२

---

१ 'अन्यतरविषयत्वस्य इष्टौ' इत्यर्थः॥ २ °**स्तीत्युरुषकार**° भा०। °**स्तीतिपुरुषकार**° य०॥ ३ °**पदेदज्ञाना**° प्र०॥ ४ °**वादेकास्मि**° भा०॥ ५ दृश्यतां पृ० ६० टि० १५॥ ६ "आत्मप्रत्यायनार्थं तु प्रत्यक्षमनुमानं च द्वे एव प्रमाणे। तत्र प्रत्यक्षं कल्पनापोढं यज्ज्ञानमर्थे रूपादौ नामजात्यादिकल्पनारहितं तदक्षमक्षं प्रति वर्तत इति प्रत्यक्षम्"—**न्यायप्र०** पृ० ७॥ ७ **ज्ञेयत**° प्र०॥ ८ **प्रति प्रति प्रत्येकै**° भा०॥ ९ °**बाल**° प्र०॥ १० **सद्भावात्** प्र०॥ ११ दृश्यतां पृ० १५ पं० २०॥ १२ **संहृत्य** य०॥ १३ °**गन्धशब्दस्पर्शशब्दपंचक**° प्र०॥ १४ **सद्भावा**° य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा रूपादिपञ्चकस्यापि, गुणत्वात्, नीलैकत्ववत्। ततश्च गुणसन्द्रावद्रव्यत्वात् सर्वथा पृथिव्यादीनाम्, तेषामपि रूपादिपरमार्थत्वात् सर्वसर्वात्मकत्वम्।

अयं तु सन्द्रावातिशयो मायेयीयः, सञ्चितालम्बनाभ्युपगमाद् रूपादिपरमाणूनां सञ्चितानामसञ्चितानां प्रागनभ्युपगमात्। आगम एवोक्तं हि वः—सङ्घाता एव सङ्घातान् स्पृशन्ति, सावयवत्वात् [ ]। तत्र परस्परस्पर्शनिरूपणे सर्वात्म-

देकत्वं तथा रूपरसाद्येकत्वम्। **ततश्च** सन्द्रावसिद्धौ[1] गुणानां रूपाद्यैक्ये सति को दोषः? उच्यते—**गुणसन्द्रावद्रव्यत्वात्** गुणानां संहुति[2]मात्रमेव यस्माद्द्रव्यं तस्मात् **सर्वथा पृथिव्यादीनां** पृथिव्यप्तेजोवाय्वादीनाम् 'एकत्वम्' इति वर्तते। किं कारणम्? तदेव रूपाद्येकत्वं कारणम्, तत आह—**तेषामपि रूपादिपरमार्थत्वा**दिति, रूपादय एव परमार्थो गुणसन्द्रावद्रव्यत्वात्, तेषां चैक्यम्, अतः पृथिव्यप्तेजोवायुघटपटसरित्समुद्रज्योतिरादेः सर्वस्य लोकस्य तदात्मकत्वादैक्यं प्राप्तमिति। तदुपसंहृत्यैवाह—**सर्वसर्वात्मकत्व**मिति। अतः साधूच्यते—सर्वसर्वात्मवादित्वैव[3] विशेषैकान्तवादिनोऽप्यविशेषैकान्तवादिन इवेति।

५२-१ अविशेषैकान्तवादिनमतिशेते च विशेषैकान्तवादीति तद्व्याचिख्यासुराह गुणसन्द्रावात्मकद्रव्यत्वापादनाय[4]—[**अयं**] **त्वि**त्यादि यावत् **स सञ्चयाद्दते सम्भवती**ति। **तु**शब्दो विशेषणार्थः, किं विशिनष्टि? रूपादीनामैक्यापत्तेः प्राक् पृथक्स्वरूपैस्तन्मात्रैः[6] शब्दादिभिराहङ्कारिकैराकाशाद्यारम्भाभ्युपगमवादिनामविशेषैकान्तवादिनां[7] कदाचिदसञ्चिताः सन्त्यपि रूपादय इति प्रक्रिया, विशेषैकान्तवादिनां तु सञ्चिततयैक्यापत्तिरेव[8] कचित् पृथगसञ्चितरूपाद्यनभ्युपगमात् सर्वसर्वात्मकवादातिशय इति विशिनष्टि व्याख्यातार्थं सन्द्रावातिशयोऽयं[9] मायेयीयः[10] सञ्चितालम्बनाभ्युपगमाद्रूपादिपरमाणूनामिति ग्रन्थम्[11]। तत्सञ्चयत्व[12]कारणप्रदर्शनार्थमाह—**सञ्चितानामसञ्चितानां प्रागनभ्युपगमात्**, प्रागसञ्चिताः परमाणुरूपादयः पश्चात्[13] सञ्चित्य आलम्बनीभूता[14] इति नाभ्युपगम्यते यस्माद् मायासूनवीयैः। अवश्यं चैतदेवं भवद्भिरभ्युपगतमेतदिति तदर्थोपप्रदर्शनार्थम् **आगम एवोक्तं हि वः**। हिशब्दो यस्मादर्थे, यस्मादुक्तं हि वः सिद्धान्ते, किमुक्तम्? **सङ्घाता एव सङ्घातान् स्पृशन्ति सावयवत्वा**दित्युक्तम्। **किं परमाणवः परस्परं स्पृशन्ति? न स्पृशन्ति? स्पृशन्तोऽपि किं देशेन देशं स्पृशन्ति? सर्वं वा? सङ्घातं[15] वा? सङ्घाता वा सङ्घातान् स्पृशन्तो देशेन वा देशं सर्वं वा स्पृशन्ति? [ ]** इति परिप्रश्नोपक्रमं **तत्र परस्परस्पर्शनिरूपणे** इत्यादि, सर्वात्मस्पर्शनास्पर्शनयोर्दोषापादनेन निर्द्धारितम्—**सङ्घाताः सङ्घातान् देशेन स्पृशन्ति देशमेव [ ]** इति। यदि परमाणुः परमाणुं स्पृशेद्[16] देशाभावात् सर्वात्मना

५२-२ स्पृशेत्, ततश्च स तत्प्रवेशेन **पिण्डोऽणुमात्रकः** स्यात्[17] सप्रतिघत्वहानं चास्य स्यात्। तथा सङ्घातोऽपीति

१ **सद्भाव°** प्र०। एवमग्रेऽपि ॥ २ **संहृति°** य० ॥ ३ **°वाचितैव** प्र० ॥ ४ **°नाया** वि० ॥ ५ **°श संचया°** भा० ॥ ६ **°स्तन्मात्रैः** भा०। **°स्तसात्रै** वि०। **°स्तसात्वै** भा० वि० विना ॥ ७ **°वादिनाविशेषै°** प्र० ॥ ८ **सञ्चितयैक्या°** प्र० ॥ ९ **°शयोय** य० ॥ १० **मायेयीयः** प्र० ॥ ११ **ग्रंथां** प्र० ॥ १२ **°यत्वंका°** य० ॥ १३ **पंचात्** प्र० ॥ १४ **संचितालम्बनी°** य० ॥ १५ **संघातं वा** इति पाठो भा० प्रतौ नास्ति ॥ १६ **परमाणुऽपरमाणुं स्पृशेद्** भा०। **परमाणुं स्पृशेद्** य० ॥ १७ **स्यात्मप्रतिपद्यत्वहानं** प्र०। "सनिदर्शन एकोऽत्र रूपं सप्रतिघा दश। रूपिणोऽव्याकृता अष्टौ त एवारूपशब्दकाः ॥ १।२९ ॥ सप्रतिघा दश रूपिण इति रूपिग्रहणमरूपिनिरासार्थम्, रूपणं रूपम्, तदेषामस्तीति रूपिणः। दशेति चक्षुर्धात्वादयः पञ्च तद्विषयधातवश्च पञ्चेति।"—**अभि० को० स्फुटा० १।२९॥**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्शनास्पर्शनयोः पिण्डाणुमात्रकत्वसप्रतिघत्वाभावादिदोषापत्तेर्देशस्पर्श एवोपात्तः। न स सञ्चयादृते सम्भवति।

यत्तूक्तं नो नीलमिति एतदेवैकं संवदति, कदाचिदपि नीलपरमाण्वाकारनियतज्ञानोत्पत्तिहेत्वभावात्, समुदायस्यानीलत्वात्। भेदतत्त्वाभिमतप्रत्येकसमुदायपरिग्रहेऽपि तेषामितरेतरनीलत्वेनानीलत्वादतद्रूपत्वाज्जात्याकारादिना अनन्यत्व-

---

सर्वात्मना स्पर्शाभावः। अस्पर्शनेऽपि **सप्रतिघत्वाभावः।** परमाणुषु चा[1]विद्यमानः प्रतिघातः सिकतास्विवासत् तैलं तत्सङ्घातेऽपि न स्यात्, स च दृष्टः सङ्घाते, तस्मान्नात्यस्पर्शनं परमाणूनां सङ्घातानां च। तस्मात् सङ्घाता एव सङ्घातान् देशेन स्पृशन्ति। **आदि**ग्रहणाद् गतिप्रतिबन्धाभावदोषै[2]स्तेषां स्यात्, ततश्च सङ्घाताभावादालम्बनाभावः स्यादित्या**दिदोषापत्तेः देशस्पर्श एवोपात्तः। सोऽपि च स्पर्शो न च सञ्चया[3]दृते स सम्भवति** कथञ्चिदिति साधूच्यते — सन्द्रावातिशयो **मा**येयीय इति। एवं 'नीलं विजानाति' इति वाक्यार्थोऽपि न घटत इत्युक्तम्।

एतत्तु तस्मि**न्नभिधर्मे** प्रत्यक्षलक्षणोदाहरणवाक्ये संवदत्यर्थतः। केनार्थेन कतमत्? **यत्तूक्तं नो [4]नीलमिति** 'विजानाति' इति वर्तते। अ-मा-नो-नाः प्रतिषेधे, 'नीलं न विजानाति' इति **एतदेवैकं संवदति** नान्यत् किञ्चित्। किं कारणम्? **कदाचिदपि नीलपरमाण्वाकारनियतज्ञानोत्पत्तिहेत्वभावात्।** ये तावत् परमाणवो नीला उच्यन्ते तेषां कदाचिदपि नीलाकारे नियतस्य ज्ञानस्योत्पत्तौ हेतुत्वं न भूतं न भवति न भविष्यति चातीन्द्रियत्वात्, अतोऽसौ त्वदभिमतचक्षुर्विज्ञानसमङ्गी न कदाचिन्नीलं विजानातीति सुनिश्चितोपपत्तिकं वचः। [6]स्यान्मतम् — सञ्चयस्येन्द्रियविषयत्वान्नीलात्मकत्वाच्च त[7]स्य नीलं विजानातीति, एतच्चायुक्तम्, **समुदायस्यानीलत्वात्।** यदि समुदाये संवृतिसति नीलत्वं स्यात् ५३-१ स्या[8]देतदेवम्, न पुनरभावस्य नीलतास्तीति 'न विजानाति नीलम्' इत्येतदेवात्र सुभाषितमिति।

स्यान्मतम् — न विजानीयान्नीलं [9]येद्येकैकं परमाणुमतीन्द्रियं पश्यतीति ब्रूयात् तत्समुदायं वा खपुष्पस्थानीयमिति, किं तर्हि? तानेव परमा[10]णून् प्रत्येकं भिन्नान् संहतान् सर्षपप्रचयवदेकस्थान् पश्यतीति। एतच्चायुक्तम्, **भेदतत्त्वाभिमते**त्यादि। भेदा एव तत्त्वं भेदतत्त्वम्, तद्भावस्तत्त्वम्, 'भेदतत्त्वम्' इत्यभिमताः **प्रत्येकं** त एव **समुदायः**, न समुदायप्राधान्यम्, किं तर्हि? भेदप्रधान एव समुदायः **प्रत्येकसमुदायः** स[11]:, त**त्परिग्रहेऽपि** भेदस्वरूपपरस्परविशिष्टसमुदायपरिग्रहेऽपि, शिबिकोद्वाहकन्यायेन प्रत्येकमसामर्थ्येऽपि तत्प्रधानसमुदाये नीलज्ञानोत्पत्तिहेतुसामर्थ्यमस्त्वित्येतस्मिन्नपि च पक्षे परिगृह्यमाणे नीलाभावान्न नीलं विजानाति। कस्मात्? **तेषामितरेतरनीलत्वेनानीलत्वात्।** तानि नीलत्वानि प्रतिपरमाणु भिन्नानि स्वाश्रयपरमाणुतोऽन्यत्र न वर्तन्ते, [12]स्वैरसोत्पत्तिभङ्गवत्त्वादर्थान्तरासम्बन्धाच्च भावानाम्। तस्मादितरस्य नीलत्वमितरत्र नास्ति, [13]तस्यापि नीलत्वमितरत्र नास्ति। किं कारणम्? **अतद्रूपत्वात्,**

---

१ चा[ऽ]विद्य° प्र० ॥ २ °षतेषां स्यात् ततं च प्र० ॥ ३ °दृते संभवति भा० ॥ ४ नीलविजानाति पा० डे० लीं० ऐ० ही० । नीलं विजानाति वि० ॥ ५ °कारनियत° य० ॥ ६ स्यान्मतं चयस्ये° य० ॥ ७ तस्या प्र० ॥ ८ स्यातेदेवम् य० ॥ ९ यद्येकं य० ॥ १० °माणू प्रत्येकं प्र० ॥ ११ सस्तत्परि° य० ॥ १२ स्वरस्योत्प° भा० । स्वरस्योत्प° य० ॥ १३ तस्यापि नीलत्वमितरत्र नास्ति इति पाठो य०प्रतिषु नास्ति ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

करस्यानुपपत्तेरत्यन्तव्यावृत्तार्थत्वाद्द्रव्यसद्रूपत्वाद् ग्रहणाभावान्न नीलं विजानाति।

अत एव प्रत्यक्षविधिविधायकवाक्यस्यैषोऽर्थ आपद्यते – चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी सञ्चितालम्बनः सन्तानः सञ्चयं संवृतिसन्तं नीलं विजानाति, तस्यासतश्चक्षुषा

तदेव रूपं तद्रूपम्, न[1] तद्रूपमतद्रूपम्, तद्भावोऽतद्रूपत्वम्, तस्मादतद्रूपत्वात्। न हि तन्नीलमितरनील[2]रूपं भवति। यदि भवेत् तदेव त[3]त् स्यात्, तद्रूपत्वात्, तद्वत्; न तु भवति। अथवा तद्रूपमस्य तद्रूपम्, न तद्रूपमस्य रूपमित्यतद्रूपम्। केन रूपेण? **जात्याकारादिना,** न हि तन्नीलमितरनीलरूपं जात्या नीलत्व-
५३-२ लक्षणया सामान्यभूतया आकारेण वा संस्थानविशेषेण वृत्तपरिमण्डलादिना, जातिरूपेणाकाररूपेण वा यत् स्या[4]दनन्यत्वकरं तयोर्नीलयोः परमाण्वोस्तस्य त्व[5]न्मतेन कस्यचिदनुपपत्तेरतद्रूपत्वम्। अ[6]तो न नीलं नीलान्तररूपेणास्ति, तद्वन्नीलान्तरमपि तद्रूपेण नास्ति। **आदिग्रहणात्** प्रथमक्षणदृश्यं द्वितीयक्षणदृश्यरूपं न भवति, तदपीत[7]ररूपं न भवतीति। देशतोऽपि देशान्तरदृश्यं देशान्तरदृश्यरूपं न भवति। **अतोऽनन्यत्वकरस्यानुपपत्तेर**तद्रूपत्वम्। अनन्यत्वकरस्यानुपपत्ति**रत्यन्तव्यावृत्तार्थत्वात्। अर्थ** इति परमार्थसन् नीलपरमाणुरेव, ते च परमाणवोऽत्यन्तमितरेतरव्यावृ[8]त्तासाधारणरूपाः। कस्मात्? **द्रव्यसद्रूपत्वात्,** द्रव्यसतो ह्येतद् रूपं यदन्यनिरपेक्षविविक्तस्वरूपत्वम्, तत्र यथा तद् रसरूपेण गन्धरूपेण वा नास्ति द्रव्यसद्रूपत्वात् तथा नीलान्तररूपेणापि नास्ति। तदपि च द्रव्यसद्रूप[9]माणीषाद्यभावे रथाभाववत् नीलान्तररूपाभाववद्वा तदभावेऽपि न भवत्येव, नीलत्वशून्यत्वाद्वा नीलान्तरनीलवत्। तदपि परनीलं तद्वदनीलम्। अतः कतरत् तन्नीलं स्याद्यद्विज्ञायेत चक्षुषा चक्षुर्विज्ञानस[10]मङ्गिना? इति **ग्रहणाभावान्न नीलं विजानाति** चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी। अनन्यत्वकरस्य जात्यादेरभावादेव वा रूपमिति वा रस इति वात्यन्तभिन्नानां परमाणूनामभेदेन द्रव्यसतां ग्रहणाभावान्न नीलं विजानाति। इतरेतराभावपरमार्थत्वाद्वोक्तन्यायेनैव न नीलं नीलान्तरं चास्ति रूपरसादिवद[न]न्यरूपमिति ‘न नीलं विजानाति’ इत्येतदेव संवदतीति सू[11]क्तमिति।

अत एवेत्यादि। **अत** इत्यनन्तरनिर्दिष्टनीलार्थचक्षुर्विज्ञानसमङ्गनाभावात्, **एवे**त्यवधारणे, वक्ष्यमाणवाक्यार्थापत्तिः, **प्रत्यक्षविधेः** प्रत्यक्षजन्मनो **विधायकस्य वाक्य[12]स्यैषोऽर्थ आपद्यते,** ‘नो तु नील-
५४-१ मिति’ इत्यत्र ‘इति’शब्दस्य प्रकारार्थवाचित्वादेवंप्रकारो वाक्यार्थ आपद्यत इति। कतमस्य वाक्यस्येति स्फुटीकरणार्थं प्रस्तुतमेव प्रत्यक्षलक्षणोदाहरणवाक्यं प्रत्युच्चार्य प्रदर्शयति – **चक्षुर्विज्ञान** इत्यादि तदेव। **चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी सञ्चितालम्बनः** पूर्वोक्तः **सन्तानः** चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी सञ्चितमालम्बनमस्येति सञ्चितालम्बनः **सञ्चयं संवृतिसन्तं नीलं** रूपं [13]**विजाना**त्यसदवस्तु नीलाभिमतं जानाति, न सत् किञ्चिदित्ययमर्थो जायते। किं कारणम्? **तस्य** नीलस्य सञ्चयस्य **असतः चक्षुषा** चक्षुरिन्द्रियेण

---

१ **न तद्रूपं तद्भावो°** य० ॥ २ **°तरस्य नील°** य० ॥ ३ **त स्यात्** भा० ॥ ४ **स्यादनत्वकरं तयो°** भा०। **स्यादनत्वकरतयो°** य० ॥ ५ **तन्मतेन** य० ॥ ६ **अत्ये न** भा०। **अन्ये न** य० ॥ ७ **°तरूपं** प्र० ॥ ८ **°वृत्ताऽसाधा°** भा०। **°वृत्यासाधा°** रं० ही० ॥ ९ **°माणीयाद्यभावे** प्र०। “अक्षाग्रकीले त्वण्याणी। अक्षस्य नाभिक्षेप्यस्य काष्ठस्याग्रेऽन्ते बन्धार्थं कीलस्तत्र, अणति शब्दायते अणिः, आणिः ‘कृशृकुटि’ [उणादि० ६१९] इति वा णिदिः” – **अभि० चिन्ता० स्वो०** ३।४२०। ईषा रथावयवः ॥ १० **°समंगिने ग्रहणाभावान्न नीलं** भा०। **°समंगिनेति नीलं** य० ॥ ११ दृश्यतां पृ० ७५ पं० ३ ॥ १२ **°स्यैर्थोर्थं** प्र० ॥ १३ **विज्ञानात्यत्य°** भा०। **विज्ञानान्य°** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहणात्। नो तु नीलमेवं भवति, परमार्थसत्परमाणुनीलत्वात्।

भावना त्वस्य – अनर्थेऽर्थसंज्ञी, न च कदाचित् कश्चिदप्यर्थे धर्मसंज्ञी। अनर्थे संवृतिसति समुदाये द्रव्यसन्नीलसंज्ञी, न त्वर्थेऽर्थसंज्ञी, न त्वर्थे एव द्रव्यसति अर्थसंज्ञी तस्यातीन्द्रियत्वात्। न च कदाचित् कश्चिदप्यर्थे धर्मसंज्ञी, अतीन्द्रियत्वादत्यन्तं सर्वकालमग्राह्यत्वात्। अनर्थे एव धर्मसंज्ञी, अनर्थे एवासति नामादिधर्मसंज्ञ्यपि, सञ्चयस्य नामादीनां च कल्पनात्मकत्वात् कल्पनापोहासम्भवात्।

ग्रहणात्। नो तु नीलमेवं भवति, एवम्प्रकारमसद्रूपं नीलं न भवति, सदेव हि तन्नीलं न जानाति परमार्थसत्। किं कारणं तन्नीलं न भवतीति चेत्, **परमार्थसत्परमाणुनीलत्वात्,** परमार्थसन्तो हि परमाणव एव नीला न सञ्चयः। तस्मान्न नीलं विजानाति चक्षुर्विज्ञानसमङ्गीति।

भावना त्वस्येत्यादि। उक्तोपपत्तिबलादेव त्वदुक्ता[1] भावना न[2] घटते – **अर्थेऽर्थसंज्ञी, न त्वर्थे धर्मसंज्ञी** [अभि० पि०] इति। कथं तर्हि घटते? इत्यत्राह – **भावना त्वस्य अनर्थेऽर्थसंज्ञी, न च कदाचित् कश्चिदप्यर्थे धर्मसंज्ञी**ति। तद्व्याचष्टे – **अनर्थे संवृतिसति समुदाये।** अनर्थो हि संवृतिसत्त्वात् समुदायः, तदग्रहे तद्बुद्ध्यभावात्, यथोक्तं **यस्मिन्[3] भिन्ने न तद्बुद्धिः** [अभि० को० ६।४] इति श्लोकः, पङ्क्त्यादिवत्। इति त्वन्मतेनैव तस्मिन्नसल्लक्षणे समुदाये **द्रव्यसन्नीलसंज्ञी** परमार्थसत्परमाणुनीलसंज्ञी, तेषामेवार्थत्वात्। 'अनर्थेऽर्थसंज्ञी' इत्येतस्माद्भावनावाक्यादर्थाक्षिप्तमेतल्लभ्यते – **न त्वर्थेऽर्थसंज्ञी**ति। तद्व्याचष्टे – **न त्वर्थ एव द्रव्यसति** परमाणुनीले एव **अर्थसंज्ञी** भवति। कस्मात्? **तस्यार्थस्यातीन्द्रियत्वा**दित्येतत् कारणं ५४-२ पुष्कलमस्त्यस्मिन्नस्मत्कल्पितभावनावाक्य इति दर्शयति। यद्येवमर्थे धर्मसंज्ञी भवतु, नेत्युच्यते, **न च कदाचित् कश्चिदप्यर्थे धर्मसंज्ञी। कदाचि**दिति समुदायस्यैवेन्द्रियविषयत्वात् तद्ग्रहणकाले[4] इतरकाले वा न धर्मसंज्ञ्यप्यर्थे[5] भवितुमर्हति। अथवा प्रत्यक्षकालेऽनुमानकाले वा। किं कारणम्? **अतीन्द्रियत्वात्, अत्यन्तं सर्वकालं** 'कदाचित्' इत्यस्य व्याख्यानम्, **अग्राह्यत्वात्।** कस्य? परमाणुनीलादेः। ततोऽर्थादेतदप्यापन्नम् – **अनर्थ एव धर्मसंज्ञी**ति। तद्व्याचष्टे – **अनर्थ एवासति नामादिधर्मसंज्ञ्यपि[6]।** किं कारणम्? **सञ्चयस्य नामादीनां च कल्पनात्मकत्वा**द[7]नर्थेऽनर्थसंज्ञीति यावत्, कल्पनात्मके सञ्चयेऽनर्थेऽनर्थकल्पनात्मकशब्दादिधर्मसंज्ञी। कस्मात्? **कल्पनापोहासम्भवात्** समुदाये समुदायाश्रयनामादिषु वा, नामजात्यादियोजना च कल्पना, तदपोहस्तस्य ज्ञानस्य कल्पितसमुदायतन्नामादिविषयस्य न सम्भवत्येव। तस्मादस्मदुक्तैषा भावना घटते। अथवा त्वदीयैरेवाक्षरैरेषोऽर्थो भाव्यते – **अर्थेऽर्थसंज्ञी न,** अर्थे नीलादौ परमार्थसत्यर्थसंज्ञी न भवत्यतीन्द्रियत्वात् तस्य। **तुशब्दो** विशेषणे, **अर्थे धर्मसंज्ञी** 'न' इति वर्तते, यस्तावदर्थ एवार्थसंज्ञी न भवतीति स कुतोऽर्थे धर्मसंज्ञी भवति? इति विशेषस्तुशब्दात्। अर्थापत्त्या पूर्ववदनर्थेऽर्थसंज्ञी तस्मिन्नेव च धर्मसंज्ञीति।

---

१ दृश्यतां पृ० ६१ पं० ४॥ २ **न घते** प्र०॥ ३ दृश्यतां पृ० ६७ पं० ७॥ ४ °**कालेऽत्तइत्तर**° भा०। °**कालेत्तइत्वर**° य०। अत्र °'काले उत्तरकाले वा' इत्यपि पाठः स्यात्॥ ५ °**संज्ञाप्यर्थे** प्र०॥ ६ °**संज्ञपि** प्र०॥ ७ °**दनर्थेऽनर्थ यावत्** य०॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

ततः शून्यशून्यप्रत्युत्पादनावदसद्विषयत्वान्निर्मूलकल्पनामात्रसत्यता ।

यच्चाप्यभिहितमभिधर्मकोशे – यदेतदनेकप्रकारभिन्नं रूपायतनं तत्र कदाचिदेकेन

५५-१ **ततः** किं जातम् ? **[1]शून्यशून्यप्रत्युत्पादनाव**दसद्विषयत्वं दोषजातमपि तस्याः कल्पनायाः । यथा शून्यं शून्येन गुणितं जातं शून्यमेवेति [2]यथा गणकानां क्वचित् कल्पनमसद्विषयं शिष्यमतिपरिकर्मार्थं तथेदमसद्विषयम् । ततश्च **असद्विषयत्वान्निर्मूलकल्पनामात्रसत्यता,** [3]निर्बीजा समुदयकल्पना तद्धर्मकल्पना च, निर्मूले द्वे अपि कल्पने, ते प्रमाणमस्य तन्मात्रम्, तन्मात्रमेव सत्यम्, नान्यत् किञ्चित् सत्यं भवत्कल्पिते प्रत्यक्षे। तस्मान्निर्मूलकल्पनामात्रसत्यत्वाल्लौकिके[4]ष्टसत्सलिलादिबीजमृगतृष्णिकादिकल्पनाभ्योऽपि पापीयस्यौ प्रत्यक्षानुमानकल्पने युष्मदीये ।

यच्चाप्यभिहितमभिधर्मकोशे [5]यदेतदनेकप्रकारभिन्नमित्यादि **यावदनेकवर्णसंस्थानं पश्यत**

---

१ **शून्यशून्यप्रत्युपादना**° य० । **शून्यप्रत्युपादना**° भा० । अत्र **प्रत्युत्पादना** गुणनमित्यर्थः ॥ २ **तथा** य० ॥ ३ **निर्बीजात्समु**° य० ॥ ४ °**ष्टमत्सलिला**° भा० । °**ष्टमंसलिला**° य० ॥ ५ **यतदनेक**° प्र० । अभिधर्मकोशस्य तद्भाष्यस्य च **वसुबन्धु**प्रणीतत्वा**दभिधर्मकोश**शब्देन **अभिधर्मकोशभाष्य**मेवात्र विवक्षितम् । तत्र च विद्वद्वरश्री**वासुदेवविश्वनाथगोखले**महोदयानां प्रयासेन भदन्तश्री**शान्तिभिक्षु**महोदयसाहाय्येन च विद्वद्वरश्री**प्रह्लादप्रधान**महोदयानां सौजन्यात् समुपलब्धे हस्तलिखिते**ऽभिधर्मकोशभाष्ये** एवम्विधः पाठः—

"रूपं द्विधा विंशतिधा शब्दस्त्वष्टविधो रसः । षोढा चतुर्विधो गन्धः स्पृश्यमेकादशात्मकम् ॥ १।१० ॥ निर्दिष्टानि पञ्चेन्द्रियाणि । अर्थाः पञ्च निर्देश्याः । तत्र तावद् **रूपं द्विधा** – वर्णः संस्थानं च । तत्र वर्णश्चतुर्विधो नीलादिः, तद्भेदा अन्ये । संस्थानं सप्तविधं दीर्घादि विसातान्तम् । तदेव रूपायतनं पुनरुच्यते **विंशतिधा,** तद्यथा–१ नीलम्, २ पीतम्, ३ लोहितम्, ४ अवदातम्, ५ दीर्घम्, ६ ह्रस्वम्, ७ वृत्तम्, ८ परिमण्डलम्, ९ उन्नतम्, १० अवनतम्, ११ सातम्, १२ विसातम्, १३ अभ्रम्, १४ धूमः, १५ रजः, १६ महिका, १७ छाया, १८ आतपः, १९ आलोकः, २० अन्धकारमिति । केचिद् नभश्चैकवर्णमिति एकविंशतिं सम्पठन्ति । तत्र सातं समस्थानम्, विसातं विषमस्थानम्, महिका नीहारः, आतपः सूर्यप्रभा, आलोकः चन्द्रतारकाग्न्योषधिमणीनां प्रभा, छाया यत्र रूपाणां दर्शनम्, विपर्ययादन्धकारम् । शेषं सुगमत्वान्न विपञ्चितम् । अस्ति रूपायतनं वर्णतो विद्यते न संस्थानतः नीलपीतलोहितावदातच्छायातपालोकान्धकाराख्यम् । अस्ति संस्थानतो न वर्णतः दीर्घादीनां प्रदेशः कायविज्ञप्तिस्वभावः । अस्त्युभयथा परिशिष्टं रूपायतनम् । आतपालोकावेव वर्णतो विद्येते इत्यपरे, दृश्यते हि नीलादीनां दीर्घादिपरिच्छेद इति । कथं पुनरेकं द्रव्यमुभयथा विद्यते ? अस्ति उभयस्य तत्र प्रज्ञानात्, ज्ञानार्थो ह्येष विदिः, न सत्तार्थः । कायविज्ञप्तावपि तर्हि प्रसङ्गः । उक्तं रूपायतनम् । **शब्दस्त्वष्टविधः** उपात्तानुपात्तमहाभूतहेतुकः सत्त्वासत्त्वाख्यश्चेति चतुर्विधः । स पुनर्मनोज्ञामनोज्ञभेदादष्टविधो भवति । तत्रोपात्तमहाभूतहेतुको यथा हस्तवाक्छब्दः । अनुपात्तमहाभूतहेतुको यथा वायुवनस्पतिनदीशब्दः । सत्त्वाख्यो वाग्विज्ञप्तिशब्दः । असत्त्वाख्योऽन्यः । उपात्तानुपात्तमहाभूतहेतुकोऽप्यस्ति शब्द इत्यपरे, तद्यथा – हस्तमृदङ्गसंयोगज इति । स तु यथैकवर्णपरमाणुर्न भूतचतुष्कद्वयमुपादायेष्यते तथा नैवेष्टव्य इति उक्तः शब्दः । **रसः षोढा,** मधुराम्ललवणकटुकतिक्तकषायभेदात् । **चतुर्विधो गन्धः,** सुगन्धदुर्गन्धयोः समविषमगन्धत्वात् । त्रिविधस्तु शास्त्रे – सुगन्धो दुर्गन्धः समगन्ध इति । **स्पृश्यमेकादशात्मकम्,** स्प्रष्टव्यमेकादशद्रव्यस्वभावम् — चत्वारि महाभूतानि श्लक्ष्णत्वं कर्कशत्वं गुरुत्वं लघुत्वं शीतं जिघत्सा पिपासा चेति । तत्र भूतानि पश्चाद् वक्ष्यामः । श्लक्ष्णत्वं मृदुता । कर्कशत्वं परुषता । गुरुत्वं येन भावास्तुल्यन्ते । लघुत्वं विपर्ययात् । शीतमुष्णाभिलाषकृत् । जिघत्सा भोजनाभिलाषकृत्, कारणे कार्योपचारात्, यथा – 'बुद्धानां सुख उत्पादः सुखा धर्मस्य देशना । सुखा सङ्घस्य सामग्री समग्राणां तपः सुखम् ॥' इति । तत्र रूपधातौ जिघत्सापिपासे न स्तः, शेषमस्ति । यद्यपि तत्र वस्त्राण्येकशो न तुल्यन्ते सञ्चितानि पुनस्तुल्यन्ते । शीतमुपघातकं नास्ति, अनुग्राहकं किलास्ति ।

यदेतद् बहुविधं रूपमुक्तं तत्र कदाचिदेकेन द्रव्येण चक्षुर्विज्ञानमुत्पद्यते यदा तत्प्रकारव्यवच्छेदो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्येण चक्षुर्विज्ञानमुत्पाद्यते यदा नीलादितत्प्रकारव्यवच्छेदो भवति, कदाचिदनेकेन यदा न तत्प्रकारव्यवच्छेदः, तद्यथा दूरान्मणिसमूहमनेकवर्णसंस्थानं पश्यतः। अत्रापि कथमनेकप्रकारभिन्न-

---

इति बुद्धवचनं प्रत्यक्षलक्षणानुषङ्गागतं चक्षुर्विज्ञानसमङ्गिनीलविज्ञानोदाहरणसभावनवाक्यवन्नोपपद्यते एवेत्युपपादयि[1]ष्यन्नुपन्यस्यति। इदं पुनर्बुद्धवचनं 'प्रमाणम्' इति **अभिधर्मकोशे** निदर्शितं तद्विचार्यम्। **तत्रानेकः प्रकारः** प्रकृष्टः कारः, कोऽसौ ? अन्योन्यातुल्यत्वम्। केन प्रकारेण **भिन्नं रूपायतनम् ?** नीलपीतादिप्रकारभिन्नम्। **तत्र** तस्मिन् रूपायत[2]नेऽनेकप्रकारभिन्ने **कदाचिदेकेन द्रव्येण चक्षुर्विज्ञानमुत्पाद्यते।** कदा पुनरेकेन द्रव्येणोत्पाद्यते ? **यदा नीलादितत्प्रकारव्यवच्छेदो भवति,** 'नीलमेवेदं न पीतादि, पीतमेवेदं न नीलादि' इत्येकप्रकारव्यवच्छेदो यदा भवति तदा चक्षुर्विज्ञानमेकेन द्रव्येणोत्पाद्यते। **कदाचिदनेकेन,** [3]कदा पुनरनेकेन ? [4]**यदा न तत्प्रकारव्यवच्छेदो भवति,** नीलादिप्रकारव्यवच्छेदो यदा न भवति तदा चक्षुर्विज्ञानमनेकेन द्रव्येणोत्पाद्यते। अस्मिन्नर्थे उदाहरणमप्याह – **तद्यथा दूरान्मणिसमूह**मित्यादि। विप्रकृष्टदेशस्थितं मणीनां समूह**मनेकवर्णसंस्थान**मनेकेन वर्णेन संस्थानं ५५-२ व्यवस्थानमस्य तमनेकवर्णसंस्थानं **पश्यतः,** अनेकवर्णमनेकसंस्थानं च पश्यत इति वा। यो नीलपीताद्यनेकवर्णो [5]वृत्तत्र्यस्राद्यनेकसंस्थानो वज्रेन्द्रनीलमरकतसस्यकपुष्परागपद्मरागस्फटिकादिमणिसमूहोऽनेकप्रकारभिन्नस्तं पश्यतः पुरुषस्य दूरान्न व्यवच्छेदो भवति, आरात्तु व्यवच्छेदो [6]भवति—अयमिन्द्रनीलो वज्रादीनामन्यतमो वेति।

तत्र कल्पनापोढस्वलक्षणविषयप्रत्यक्षलक्षणचोद्योपक्रमप्रसङ्गेन [7]**यत्तर्हीदं 'सञ्चितालम्बनाः पञ्च विज्ञानकायाः'** [अभि० पि०] **इति तत् कथं यदि तदेकतो न विकल्[8]पयति ?** इति, **यच्चोक्त**मनेकप्रकारभिन्नैकानेकद्रव्योत्पाद्यज्ञा[9]नतेत्यत्र कल्पनात्मकत्वप्रसङ्गोऽस्वलक्षणविषयत्वप्रसङ्गश्चेति चोदिते तत्परिहारार्थम्— **'आयतनस्वलक्षणं प्रत्येते स्वलक्षणविषया न द्रव्यस्वलक्षणम्'** [अभि० को० भा० १।१०] **इति कथं तत् कल्पनापेतम् ?** इत्यत्र विचारः करिष्यते। इ[10]दमेव तावद्विचारयामो बुद्धवचनम् – कदाचिदेकेन द्रव्येण ज्ञानमुत्पाद्यते कदाचिदनेकेनेति। **अत्रापि कथमनेकप्रकारभिन्नसामान्यवृत्तिरूपायतनतायां**

भवति। कदाचिद् बहुभिर्यदा न व्यवच्छेदः, तद्यथा सेनाव्यूहमनेकवर्णसंस्थानं मणिव्यूहं चा(वा) दूरात् पश्यतः। एवं श्रोत्रादिविज्ञानं वेदितव्यम्। कायविज्ञानं तु परं पञ्चभिः स्प्रष्टव्यैरुत्पद्यते इत्येके चतुर्भिर्महाभूतैरेकेन च श्लक्ष्णत्वादिना। सर्वैरेकादशभिरित्यपरे। **ननु चैवं समस्तालम्बनत्वात् सामान्यविषयाः पञ्च विज्ञानकायाः प्राप्नुवन्ति, न स्वलक्षणविषयाः। आयतनस्वलक्षणं प्रत्येते स्वलक्षणविषया इष्यन्ते न द्रव्यस्वलक्षणमित्यदोषः।** इदं विचार्यते – कायजिह्वेन्द्रिययोर्युगपद् विषयप्राप्तौ सत्यां कतरद् विज्ञानं पूर्वमुत्पद्यते ? यस्य विषयः पटीयान्। समप्राप्ते तु विषये जिह्वाविज्ञानं पूर्वमुत्पद्यते भोक्तृकामतावर्जितत्वात् सन्ततेः। उक्ताः पञ्चेन्द्रियार्था यथा च तेषां ग्रहणम्।" १।१० ॥

१ °**ष्यन्न पश्यति** य०। °**ष्यन्न पव्यति** भा०। अत्र °**ष्यन् पठति** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ २ °**तने नैक**° प्र० ॥ ३ **कय पुन**° वि० विना। **कथं पुन**° वि० ॥ ४ **यदा तत्प्रकार**° य० ॥ ५ **वृत्तत्र्यस्रा**° प्र० ॥ ६ **भवत्ययमिन्द्र** य० ॥ ७ "एवं प्रत्यक्षं कल्पनापोढमुपपन्नम्, **अभिधर्मे**ऽप्युक्तम् – 'चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी नीलं विजानाति नो तु नीलमिति। अर्थेऽर्थसंज्ञी न त्वर्थे धर्मसंज्ञी' इति। यत्तर्हीदं 'सञ्चितालम्बनाः पञ्च विज्ञानकायाः' [अभि० पि०] इति तत् कथं यदि तदेकतो न विकल्पयति ? यच्चोक्तम्–'आयतनस्वलक्षणं प्रत्येते स्वलक्षणाविषया न द्रव्यस्वलक्षणं प्रति' [अभि० को० भा० १।१०] इति तत् कथम् ? इति चेत्, **तत्रानेकार्थजन्यत्वात् स्वार्थे सामान्यगोचरम्।** अनेकद्रव्योत्पाद्यत्वात् तत् स्वायतने सामान्यगोचरमित्युच्यते न तु भिन्नेष्वभेदकल्पनात्।"–इत्युक्तमिदं चोद्यतत्परिहारादिकं **दिङ्नाग**विरचितायां **प्रमाणसमुच्चयस्ववृत्तौ** १।४ ॥ ८ °**ल्पयंतीति यच्चो**° भा०। °**ल्पयति यच्चो**° य० ॥ ९ °**ज्ञानेत्यत्र** य० ॥ १० **इदमेतावद्वि**° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामान्यवृत्तिरूपायतनतायां तद्रूपायतनं पश्यतस्तस्य तद्विषयत्वात् स्वलक्षणविषयाः पञ्चविज्ञानकायाः पठ्यन्ते इति वक्तव्यम्। कथं चेति सञ्चितालम्बनतायामविभागसमवस्थसमूहात्मकत्वादेकप्रकारावच्छेदो मणिसमूहप्रभानुविद्धवर्णसंस्थानवत्?

एकस्य च द्रव्यस्य कदाचिदग्रहणादेकेन द्रव्येण कथं चक्षुर्विज्ञानमुत्पाद्यते, रसानास्वादनरसाज्ञानवत्। एकद्रव्यज्ञानोत्पादने तु सञ्चितालम्बनकल्पना निरर्थिकैव, तदभ्युपगमविरोधः।

यावत् पै[1]ठ्यन्त इति **वक्तव्यम्। कथं वक्तव्य**मिति सम्बन्धः। अ[2]नेकप्रकारे भिन्ने सामान्ये वृत्तिरस्य रूपायतनस्य तदनेकप्रकारभिन्नसामान्यवृत्तिरूपायतनम्, तद्भावस्ताद्रूप्यायतनता, तस्यां सत्यामनेकप्रकारभिन्नसामान्यवृत्तिरूपायतनतायां **तद्रूपायतनं पश्यतः** समूहात्मकं तदालम्बनत्वात् **तस्य** चक्षुर्विज्ञानस्य **तद्विषयत्वात्** सामान्याख्यसमूहरूपायतनविषयत्वात् कथं स्वलक्षणविषयं तदुच्यते? तथा
५६-१ सर्वरूपादिपञ्चविज्ञानकाया रूपायतनतद्विज्ञानयोरुदाहरणमात्रत्वात् **कथं स्वलक्षणविषयाः पञ्च विज्ञानकायाः पै[3]ठ्यन्त इति वक्तव्यो**ऽत्र समाधिः। आयतनस्य सामान्यरूपत्वा[4]न्न स्वलक्षणतेत्यर्थः।

कथं चेतीत्यादि यावद**एकप्रकारावच्छेद** इति। **कथ**मिति हेतुपरिप्रश्ने, **च**शब्दो दोषसमुच्चये, **केन हेतुना** तस्यामनेकप्र[5]कारभिन्नसामान्यवृत्तिरूपायतनतायाम्, **इति**शब्दः प्रकारवाची, इत्थं ना[6]नारूपं रूपायतनं पश्यतः **सञ्चितालम्बनतायामविभागसमवस्थसमूहात्मकत्वात्**, अविभागेनैक्यापत्त्या समवस्था यस्य समूहस्य सोऽयमविभागसमवस्थसमूहः, तदात्मकत्वाद्रूपायतनस्य कथ**मेकप्रकारावच्छेदः?** न भवितुमर्हतीत्यर्थः। किमिव? **मणिसमूहप्रभानुविद्धवर्णसंस्थानवत्**, यथा नानावर्णानां मणीनां समूहे तत्प्रभयानुविद्धे वर्णसंस्थाने नास्त्येकप्रकारावच्छेदस्तथैकद्रव्यावच्छेदाभाव इति।

किञ्चान्यत्—**एकस्य च द्रव्यस्य कदाचिदग्रहणात्** एकस्य च द्रव्यस्य परमाणोः सर्वदाप्यतीन्द्रियस्य ग्रहणाभावा**देकेन द्रव्येण कथं चक्षुर्विज्ञानमुत्पाद्यते?** न कदाचित् कथञ्चिदुत्पाद्यत इत्यर्थः। तस्मात् '**कै[7]दाचिदेकेन द्रव्येण ज्ञानमुत्पाद्यते यदा नीलादिप्रकारव्यवच्छेदो भवति**' इति किमेतदबुद्धवचनं बुद्धवचनम्? इति चिन्त्यताम्। किमिव पुनरेकस्य द्रव्यस्य कदाचिदग्र[8]हणाच्चक्षुर्विज्ञानं नोत्पाद्यते
५६-२ इति चेत्, उ[9]च्यते—**रसानास्वादनरसाज्ञानवत्**, रसनेन्द्रियेणानास्वादिते यथा रसज्ञानं नोत्पद्यत एवं चक्षुषा न गृहीते चक्षुर्विज्ञानं नास्ति। यदि चास्य बुद्धवचनस्य बुद्धवचनत्वसिद्ध्यर्थमेकेन द्रव्येण ज्ञानमुत्पाद्यत इ[10]त्यभ्युपगम्य[11]ते तत **एकद्रव्यज्ञानोत्पादने तु सञ्चितालम्बनकल्पना निरर्थिकैव।** यदा चैवं प्रत्येकं चक्षुर्विषयता अणूनामिष्यते तदेदमपरं बुद्धवचनमबुद्धवचनं निरर्थकं च जायते। कतमत्? **सञ्चितालम्बनाः पञ्चविज्ञानकायाः** [अभि० पि०] इति। एतस्य वा[12] सत्यत्वे तदसत्यता स्थितैवेति परस्परतो वचनद्वयविषयोऽभ्युपगमविरोध इत्यत आह—**तदभ्युपगमविरोधः।**

---

१ **पठ्यंत** प्र० ॥ २ अत्र **अनेकप्रकारभिन्ने** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ३ **पठ्यंत** भा० ॥ ४ °**त्वान्न च लक्षण**° भा०। °**त्वात्तश्चलक्षण**° य० ॥ ५ °**प्रकारसामान्य**° प्र०। दृश्यतां पं० ९ ॥ ६ **नानारूपि** य० ॥ ७ दृश्यतां पृ० ७८ पं० २ ॥ ८ °**ग्रहणचक्षु**° प्र० ॥ ९ **उच्यते सानास्वादन**° प्र०। अत्र 'उच्यते रसनानास्वादने' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १० **इत्यन्युप**° वि०। **इत्यनुप**° वि० विना ॥ ११ °**गम्यते त एक**° भा० पा० ॥ १२ **चा** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकारावच्छेदानवच्छेदानेकप्रकारभिन्नत्वज्ञानान्यपि न स्युः, रूपायतनस्य सञ्चितगतेरेव, नरसिंहवत्। नरसिंहानेकप्रकारगतिरपि हि नरत्वसिंहत्वसञ्चययोः पूर्वं भेदेन दर्शनात्। असञ्चये तु तद्द्रव्येष्वणुषु प्रकारग्रहणमेव नास्ति, असञ्चितस्यादर्शनात्; कुत एव तद्व्यवच्छेदादि ?

'अनेकेन' इति वचनात् संवृतिसत्सामान्यासत्कल्पनविषयाः पञ्च विज्ञानकायाः,

---

किञ्चान्यत् – **प्रकारावच्छेदे**त्यादि यावत् **सञ्चितगतेरेव**[1]। न **'प्रकारः, अवच्छेदः, अनवच्छेदः, अनेकप्रकारभिन्नत्वम्'** इत्येतान्यपि **ज्ञानानि** भवितुमर्हन्ति। कस्मात्? **रूपायतनस्य सञ्चितगतेरेव,** सञ्चितमेव हि रूपायतनं गम्यते[2] नासञ्चितम्। अतो न 'प्रकारः' इति ज्ञानं घटते प्रकृष्टः कारः प्रकारः नीलः पीत इति, अयमस्माद्विशिष्ट इति परस्परतोऽत्यन्तभेदाभावे प्रकाराभावात्[3], अभेदगतेः सामान्ये न तु प्रकारज्ञानं घटते, तथावच्छेदोऽन्यस्मादन्यस्य भेदाभेदविकल्पनात्, तथानवच्छेदः, 'अनेकः' इति, 'अनेकेन च प्रकारेण भिन्नः' इति भिन्नानामभेदगतिः। सञ्चितगतेर[4]भेदगतेश्च न प्रकारादिज्ञानानि अकल्पनात्मकानि स्वलक्षणविषयाणि च भवितुमर्हन्ति। किमिव? **नरसिंहवत्,** यथा नरस्याकारोऽधस्त्यः सिंहस्याकारः शिरोभागः, तदुभयाभेदगतेर्नरसिंह इत्युच्यते एवं प्रकारादिज्ञानान्यपि भिन्ने- ५७-१
ष्वभेदकल्पनादेव स्युर्नान्यथेति। नरे सिंहे च नरसिंहाविति भिन्नयोरभेदगत्यभावाददृष्टान्ततेति चेत्, न, सञ्चययोरेवाभेदरूपत्वात्। **नरसिंहानेकप्रकारगतिरपि ही**त्यादि, तयोर्हि प्रत्येकं नर इति सिंह[5] इति च भिन्नयोरपि प्रकारगतिर्यस्मा**न्नरत्वसिंहत्वसञ्चययोः**, नीलादिपरमाण्वादिद्रव्याणां पूर्वं[6] भेदेन दर्शनादभेदकल्पनात्मिका भेदगतिरिति युक्ता[7], न तथा तु।

अभ्युपेत्यापि[8] नरसिंहप्रकारगतिमेव च **असञ्चये तु तद्द्रव्येष्वणुष्वि**त्यादि। **सञ्चितालम्बनाः पञ्च विज्ञानकाया** इति यदुक्तं त्वया तद्विस्मृत्येदमुक्तम् – **यदेतदनेकप्रकारभिन्नं रूपायतनं तत्र कदाचिदेकेन द्रव्येण ज्ञानमुत्पाद्यत**[9] इति। **'चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी नीलं विजानाति नो तु नीलमिति'**[10] एतदपि विस्मृत्येदमुक्तम् – **कदाचिदनेकेन यदा तद्व्यवच्छेदो न भवति,**[11] तद्यथा – **मणिसमूहमनेकवर्णसंस्थानं पश्यत** इति, नीलपीताद्यनेकरूपस्य युगपद्ग्रहणाभ्युपगमे नीलैकरूपविज्ञानविरोधादित्यलं प्रसङ्गेन। प्रकृत- ५७-२
मुच्यते – द्रव्यसत्सु **अणुषु** नीलपीतादि**प्रकारग्रहणमेव नास्ति** तदसञ्चये। किं कारणम्? **असञ्चितस्यादर्शनात्।** असञ्चितानामदर्शनमतीन्द्रियत्वादित्युक्तम्। **कुत एव**[13] **तद्व्यवच्छेदादि?** सति हि दर्शने तद्व्यवच्छेदानवच्छेदप्रकारभिन्नत्वज्ञानानि सम्भाव्येरन्, असति दर्शने दूरादेव तानि न स्युः। एवं तावत् 'एकेन द्रव्येण' इत्ययुक्तम्[14]।

यदपि चोक्तम् 'अनेकेन[12] द्रव्येण कदाचिज्ज्ञानमुत्पाद्यते' इति, एतस्मात् **'अनेकेन' इति वचनात्** तस्या[15]नेकद्रव्यस्य **संवृतिसत्त्वात्** सामान्यता, **सामान्यत्वादसत्कल्पनं** तत्, **तद्विषयाः पञ्च विज्ञानकायाः,** असत्कल्पनविषयत्वादनुमानतदाभासज्ञानवदप्रत्यक्षमप्रमाणं वा दूरान्मणिसमूहदर्शनवद्वेति

---

१ °गतेरिव य० ॥ २ गम्यते वासंचितम् य० ॥ ३ प्रकारभावात् प्र० ॥ ४ संस्विगते° य० ॥ ५ नरसिंह इति च य० ॥ ६ पूर्वभेदेन प्र० ॥ ७ युक्ता ४० ही० ॥ ८ अभ्युपेत्यादि नर° भा० । अभ्युपेत्येत्यादि नर° य० ॥ ९ दृश्यतां पृ० ६४ पं० १ ॥ १० दृश्यतां पृ० ७८ पं० २ ॥ ११ दृश्यतां पृ० ६१ पं० १ ॥ १२ दृश्यतां पृ० ७९ पं० १ ॥ १३ एतद्व्यवच्छे° प्र० ॥ १४ इत्युक्तम् य० ॥ १५ तस्यनेकद्रव्यसंवृति° य० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

न स्वलक्षणविषयाः, एकविज्ञानानेकविषयतापि ।

यदपि च बुद्धेनोक्तम् – द्वयं प्रतीत्य विज्ञानस्योत्पत्तिर्भवति। कतमद् द्वयं प्रतीत्य ? चक्षुः प्रतीत्य रूपाणि चोत्पद्यते चक्षुर्विज्ञानम् । श्रोत्रं प्रतीत्य शब्दांश्चोत्पद्यते श्रोत्रविज्ञानम् । घ्राणं प्रतीत्य गन्धांश्चोत्पद्यते घ्राणविज्ञानम् । जिह्वां प्रतीत्य रसांश्चोत्पद्यते जिह्वाविज्ञानम् । कायं प्रतीत्य स्प्रष्टव्यांश्चोत्पद्यते कायविज्ञानम् । मनः प्रतीत्य धर्मांश्चोत्पद्यते मनोविज्ञानम् [ ] । **अत्रापि यदि व्यक्त्यपेक्षो निर्देशः सङ्ख्यवचनाय ततोऽयमेव दोषः। अथ द्रव्योक्तये तत इहाभ्युपगमविरोधः। बुद्ध्यादेरपि चैन्द्रियकत्वम्, अतीन्द्रियत्वात्, रूपवत्। यश्चात्र विरोधः स तुल्यः परमाण्वैन्द्रियकत्वेन। अतीन्द्रियत्वादनुमानविरोधः।**

न स्वलक्षणविषयाः प्रसक्ताः । न च [1]केवलमस्वलक्षणविषयतैव दोषः, किं तर्हि ? **एकविज्ञानानेकविषयतापि** दूरदर्शनवद्[2]देवेति ।

बुद्धवचनासमञ्जस[3]त्वप्रतिपादनप्रसङ्गेनेदमप्युपन्यस्तम् – **यदपि च बुद्धेनोक्त**मित्यादि यावद् **धर्मांश्चोत्पद्यते मनोविज्ञान**मिति । यद्यनेकेन द्रव्येण ज्ञानमुत्पाद्यते, साक्षाद् बुद्धेनोक्तं यदपि च **द्वयं प्रतीत्ये**त्यादि विरुध्यत इत्यभिसम्बन्धः । आध्यात्मिकमायतनं बाह्यं च **द्वयं प्रतीत्य विज्ञानस्योत्पत्तिर्भवति** इत्युक्त्वा स्वयमेव पुनः प्रतिपृच्छ्य व्याकरोति – [4]**कतमद्द्वयं प्रतीत्य ? [5]चक्षुः प्रतीत्य रूपाणि च** प्रतीत्य इत्यादि विभज्य वाच्यं गतार्थमेव तत् । द्वयषट्काद् विज्ञानषट्कमुत्पद्यत इति पूर्वपक्षः । तथा चाह –

५८-१ विजानाति न विज्ञानमेकमर्थद्वयं यथा ।
एकमर्थं विजानाति न विज्ञानद्वयं तथा ॥ [चतुःश० २६८] इति ।

अत्रोत्तरमाह – **अत्रापि** 'चक्षुः प्रतीत्य रूपाणि च प्रतीत्य चक्षुर्विज्ञानस्योत्पत्तिर्भवति' इति द्वयी गतिर्बहुवचननिर्देशस्य – सङ्ख्यापेक्षयातीन्द्रिया[6]णामपि रूपाणां व्यक्तिपदार्थाश्रयः स्यात् ? **जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्** [पा० १।२।५] इति जातिपदार्थाश्रयो वा ? तत्र **यदि व्यक्त्यपेक्षो निर्देशः सं[7]ञ्चयवचनाय ततोऽयमेव** [8]संवृतिसत्सामान्यासत्कल्पनविषयाः पञ्च विज्ञानकाया न स्वलक्षणविषया इति **दोषः । अथ द्रव्योक्तये** तज्जातीयाः परमाणव एकरूपनिर्देशेन सर्वे निर्देष्टव्या इत्येकस्मिन् बहुवचनं **तत इहाभ्युपगमविरोधः**, अभ्युपगतं त्वया 'अतीन्द्रियाः परमाणवः' इति, तेन विरोधः । अस्मिंश्चाभ्युपगमेऽन्यदप्यनिष्टापादनमुच्यते – **बुद्ध्यादेरपि चैन्द्रियकत्वम्, अतीन्द्रियत्वात्, रूपवदि**ति । बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषवेदनादयो धर्माश्चाक्षुषाः स्युर्भवत्परिकल्पिताः, अतीन्द्रियत्वात्, रूपवत् । रूपं वा न चक्षुर्ग्राह्यं स्यात्, अतीन्द्रियत्वात्, बुद्ध्यादिवत् । ब्रूयास्त्वम् – नन्वतीन्द्रियत्वं चक्षुर्ग्राह्यत्वं च परस्परतो [9]विरुध्येते इति । तन्मा मंस्थाः, भवतोऽनिष्टापादनपरत्वाद् भवद्बुद्धिनिवर्तनफलत्वाच्चास्य प्रयोगस्येति । अथापि **यश्चात्र विरोधः** सम्भाव्येत **स तुल्यः पर[10]माण्वैन्द्रियकत्वेन,** [11]परमोऽणुः परमाणुः,

---

१ केवल अस्वलक्षण° प्र० । अत्र केवलोऽस्वलक्षण° इत्यपि पाठः स्यात् ॥ २ °दर्शनमवदेवेति प्र० ॥ ३ °सस्वप्रति° य० ॥ ४ कतद्वयं प्र० ॥ ५ चदुः य० ॥ ६ णामपिरूपाणामरूपाणां प्र० ॥ ७ संचयवरनाय ततो° य० । संचय ततो° भा० ॥ ८ दृश्यतां पृ० ८१ पं० ५ ॥ ९ विरुध्येतेति य० ॥ १० °माण्वेंद्रिय° प्र० ॥ ११ परमाणुः परमाणु अणुशब्दः य० । परमाणुः परमाणुशब्दः भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्तभावनावत् स्ववचनविरोधोऽपि।

वादपरमेश्वरसंश्रयश्चैवम्। न च नस्तेन सह विरोधः, तस्य लोकनाथत्वात्। स हि विलुप्यमानस्य लोकतत्त्वस्य त्राता। कथं संश्रय इति चेत्, अनेकात्मकरूपायतनाभ्युपगमात्।

अणुशब्दः सूक्ष्मपर्यायः, परमशब्दस्तदतिशयवाची, स चातीन्द्रियत्वे घटते, तस्यातीन्द्रियस्यैन्द्रियकत्वं चाक्षुषत्वं यथा विरुद्धमेवमिदमपि बुद्ध्यायैन्द्रियकत्वं तुल्यमिति समानदोषतया विरोधोद्भावनमस्तु को दोषः? किञ्चान्यत्, 'चक्षुः प्रतीत्य रूपाणि च प्रतीत्य चक्षुर्विज्ञानमुत्पद्यते' इति चा**तीन्द्रियत्वादनुमान**- ५८-२ **विरोधः**, स्थूलानां सूक्ष्मपूर्वकत्वात् कार्यानुमानसिद्धाः परमाणवः, तस्मान्नित्यानुमेयानां तेषां चक्षुर्विषयत्वाभ्युपगमे [1]वचनयोरनुमानविरोधिता। किञ्चान्यत्—**उक्तभावनावत् स्ववचनविरोधोऽपि,** [[2]उक्ता भावना] उक्तभावना, तद्वदुक्तभावनावत्, अनयैव परमाणुरतीन्द्रिय[3]त्वाच्चाक्षुषश्चेत्यनुमानविरोध[4]भावनयोक्तया तुल्यत्वात् 'अतीन्द्रियाभिमतः परमाणुश्चक्षुर्विषयतामायाति' इति ब्रुवतः स्ववचनविरोधोऽपि।

वादपरमेश्वरसंश्रयश्चैवम्। एवं च भवत एकान्तवादिनस्तत्त्यागेनानेकान्तवादाश्रयः। वादाः सर्व एव लोकं स्वसात्कर्तुं समर्थत्वाल्लोकस्य ईशते एकान्ता अपि। तेषां तु सर्वेषामनेकान्तवादः परमेश्वरस्तद्वशवर्तिनामीष्टे। तेषां स्वार्थोन्नयनसमर्थानामपि परस्परविरोधदोषवतामुदासीनमध्यमनृपतिवत् [5]सन्ध्यादिषाड्गुण्यान्यतमगुणाश्रयिणां विजिगीषूणां परार्पणलक्षणसंश्रयगुणाधारः परमेश्वरः स्याद्वादः, तत्संश्रयेणैव स्ववृत्तिलाभात् तदसंश्रये परस्पर[6]कार्यविलोपात् स्वयं विनाशाच्च तेषाम्। लौकिको व्यवहारनय आह—**न च नस्तेन सह विरोधः।** कस्मात्? **तस्य लोकनाथत्वात्।** [7]लोको हि व्यवहारनयस्तद्वशवर्तित्वेन तन्मतविलोकनात्, तस्य लोकस्य नाथत इति लोकनाथः स्याद्वादः। कस्मात्? **स हि** इतोऽमुतो **विलुप्यमानस्यै**कान्तवा[8]दिभिर्**लोकतत्त्वस्य** लोकसारस्य सम्यग्दर्शनरत्नस्य **[9]त्राता** त्राणशीलस्त्राणधर्मा साधु त्राणकारी वेति। कथं त्रातेति चेत्, **सर्ववादभेदे**त्यादि, लोकभूतानां सर्ववादानां भेदाः सर्ववादभेदा नित्यानित्याद्येकान्ताः, तेषां **[10]याथार्थ्यानि** यथार्थभावाः स्वविषय[11]समर्थनानि, तेषां लोकसंवादेनोपग्रा[12]हयितृ- ५९-१ त्वात् परस्परसाम्यावस्था[13]र्पणेन **परिपालनात्** त्रातेत्युच्यते।

इतर आह—**कथं संश्रय इति चेत्।** अस्तु तावद्वादपरमेश्वरत्वं लोकत्रा[14]णात् स्याद्वादस्य लोकत्राणं च परस्पराविरोधोपपादनेनैकीकरणाच्च तेषाम्, वादपरमेश्वरसमाश्रयः कथमेकान्तवादानाम्? इत्यत्रोच्यते—**अनेकात्मकरूपायतनाभ्युपगमात्।** अनेक आत्मा यस्य तदिदमनेकात्मकं रूपायतनं यत् तदेकेन

---

१ 'अतीन्द्रियश्चाक्षुषश्च' इति वचनयोः॥ २ अत्र 'उक्ता भावना, तद्वदुक्तभावनावत्' इत्यपि पाठः स्यात्॥ ३ °**यश्चाक्षुष**° भा०। °**यत्वाक्षुष**° रं० ही०॥ ४ °**नायोक्तया** प्र०॥ ५ **संध्यादि**° प्र०। "षाड्गुण्यस्य प्रकृतिमण्डलं योनिः। 'सन्धि-विग्रहा-ऽऽसन-यान-संश्रय-द्वैधीभावाः षाड्गुण्यम्' इत्याचार्याः।......तत्र पणबन्धः सन्धिः १, अपकारो विग्रहः २, उपेक्षणमासनम् ३, अभ्युच्चयो यानम् ४, परार्पणं संश्रयः ५, सन्धि-विग्रहोपादानं द्वैधीभावः ६ इति षड् गुणाः। परस्माद्धीयमानः सन्दधीत १। अभ्युच्चीयमानो विगृह्णीयात् २। न मां परो नाहं परमुपहन्तुं शक्त इत्यासीत ३। गुणातिशययुक्तो यायात् ४। शक्तिहीनः संश्रयेत ५। सहायसाध्यकार्ये द्वैधीभावं गच्छेत् ६ इति गुणावस्थापनम्।"—इति **कौटिलीयार्थशास्त्रे** ७।९८-९९॥ ६ °**कायविलो**° य०। °**कार्यावलो**° भा०॥ ७ **कलोको** य०॥ ८ °**वादिनेभि**° य०॥ ९ **तात्ता** य०। **ताता** भा०॥ १० **यथार्थ्यानि** भा०। **यथार्थानि** य०॥ ११ **समर्थभानिला तेषां** य०॥ १२ °**ग्राहयित्वात्पर**° प्र०॥ १३ °**पनेन पालनात्** य०॥ १४ °**त्राणास्याद्वादस्या** प्र०॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अत्र चैकरूपायतनाधारतया 'तत्र'शब्देन अनन्तरनिर्दिष्टमेव रूपायतनमुक्तं तस्यैवोभयरूपता पुनर्दर्शिता। एवं च तस्यैवैकानेकता, तथाऽविभक्ततत्त्वेन ज्ञानोत्पत्तेः। ततश्च स्यादेकं रूपायतनं स्यादनेकं रूपायतनम्, उक्तहेतुवत्।

द्रव्येण कदाचिज्ज्ञानमुत्पादयति कदाचिदनेकेनेति तद्व्यवच्छेदाव्यवच्छेदाभ्यामिति, तदभ्युपगमात् स्याद्वादसमाश्रयः। स्याद्वादैकदेशाश्च नया एकान्तवादाः, यथोक्तम्– **भद्दं मिच्छदंसण** [सन्मति० ३।६९] गाहा। नैताः स्वमनीषिकाः, लक्षणमपि तथैव नयानाम्, उक्तं हि– **द्रव्यस्यानेकात्मकत्वेऽन्यतमात्मकैकान्तपरिग्रहो नयः स्वप्राधान्येनार्थनयनान्नयः** [ ], स च मिथ्यादृष्टिरनेकाकारार्थस्य विपरीतप्रतिपत्तित्वात्, अनेकात्मकवस्तुप्रतिपत्तित्वात् स्याद्वादस्य याथार्थ्यम्[1]। कथं पुनर्लोकभूतेन व्यवहारनयेनैकान्तवादिनो निगृह्यन्त[2] इति चेत्, लोकनाथसमाश्रितत्वात् तेषां लोकनाथपक्षसमाश्रय एव प्रतिवादिपक्षाभ्युपगमः, स निग्रहस्थानमेकान्तवादिनामभ्युपगमसमकालमेवावसितो वाद[3] इति।

५९-२ **अत्र चैकरूपायतनाधारतये**त्यादि[4]। त्वयापि स्याद्वाद्यभ्युपगतानेकात्मकवस्त्वेकानेकत्वानेकान्तवादोऽभ्युपगत एव, यस्मादनेकप्रकारभिन्नमित्यादि यावदनेकवर्णसंस्थानं **पश्यत** इत्यत्र च वाक्ये एकमेव रूपायतनं ज्ञानाधार इतीष्टम्[5], यस्मात् तदाधारतया पुनः **तत्र** इत्यधिकरणवाचिप्रत्ययान्तेन **'तत्र'-शब्देनानन्तरनिर्दिष्टमेव रूपायतनमुक्त**मव्यतिरेकमभेदं तस्य वस्तुन आगृह्योक्तम्। **तस्यैवोभयरूपता**[6] **पुनर्दर्शिता** 'कदाचिदेकेन द्रव्येण कदाचिदनेकेन ज्ञानमुत्पाद्यते' इति ब्रुवता। रूपायतनस्यैवैकानेकसङ्ख्यानिर्देश्यत्वमनभ्युपगच्छता कथं 'तत्र'शब्दसामानाधिकरण्यमापादयितुं[7] शक्यते? यदि तदेकमनेकं च न स्यात्, तथा इतरथा तत्र च रूपायतनेऽन्यत्र वेति स्यात्, न तु भवति।

तस्मा**देवं चे**त्यादि। **एवं चो**क्तविधिना **तस्य** त्वयैवोक्तस्य रूपायतनस्यैकस्यै**वैकतानेकता च** अतस्त्वयैवोक्ता। कस्मात्? **तथाऽविभक्ते**त्यादि। तेन प्रकारेण **तथा, अविभक्तं तत्त्वं** तद्भावस्तत्त्वं यस्य तदिदमविभक्ततत्त्वम्, तद्भावस्तत्त्वमेकानेकत्वाद्यविभक्तवस्तुतत्त्वम्[8], तेन **तथाऽविभक्ततत्त्वेन ज्ञानोत्पत्ते**रिति हेतुः। कस्मिन् साध्ये? **तस्यैवैकानेकतायाम्**। दृश्यते हि तदेव रूपायतनमेकमनेकं च परमाणवस्तत्समूहश्चेति ज्ञानोत्पत्तिः[9]। **दूरान्मणिसमूहमनेकवर्णसंस्थानं पश्यत**[10] इत्युदाहरणमप्येवमेवैकानेकरूपद्रव्यरूपायतनत्वे साध्ये चक्षुर्विज्ञानाधारस्य वस्तुनः साधर्म्यदृष्टान्तत्वं भजते, न एकान्तैकानेकरूपत्वे। **ततश्चावश्यमेषोऽर्थ** आपद्यते– **स्यादेकं**[11] **रूपायतनं स्यादनेकं रूपायतन**मिति। कस्मात्? स्निग्धरूक्षत्वाभ्यां[12] बन्धैक्यपरिणामापत्तेस्तत्समूहग्राह्यत्वादेकम्, द्रव्यार्थावस्थानात् परमाणूनां स्वरूप-

६०-१ भिन्नानां भेदादनेकम्। तत एव द्रव्यम्, रूपादिगुणपर्यायपरिणामापत्तेरद्रव्यम्। प्रतिस्वमसाधारणरूपादिपरिणामापेक्षया स्वलक्षणविषयम्। साधारणीभूतभेदसमूहापेक्ष[13]चाक्षुषत्वादिपरिणामापत्तेः सामान्यविषयम्,

---

१ यथार्थ्यं भा०। यथार्थं य० ॥ २ °वादिभिगृह्यन्त य०। °वादिभिर्गृह्यन्त भा० ॥ ३ वाद प्रति य० ॥ ४ दृश्यतां पृ० ७८ पं० २ ॥ ५ इतिष्टं रं० ही०। इमिष्टं रं० ही० विना ॥ ६ तस्यैवोरूपरूपता य०। तस्यैवोरूपरूपरूपता भा० ॥ ७ अत्र °ण्यमुपपादयितुं शक्यते इति पाठः स्यादिति भाति ॥ ८ °वस्तुत्वम् भा० ॥ ९ °त्पत्ति प्र० ॥ १० दृश्यतां पृ० ७९ पं० २ ॥ ११ स्यादेकं पररूपा° य० ॥ १२ °त्वाभ्यां चवैक्यपरि° प्र०। "स्निग्धरूक्षत्वाद् बन्धः"–तत्त्वार्थसू० ५।३२ ॥ १३ °हापेक्षं चाक्षुष° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ननु कदाचिच्छब्दः कालान्तरवचनः, न, एककाल एवोभयरूपत्वात् स्यात् तत् तत् स्यान्न तत् तत्, ग्रहणापदेशविशिष्टार्थत्वात्, अनेकवर्णमणिरूपवदेकपुरुषपितृपुत्रत्वादिवद्वा।

अतोऽनपेक्षितस्वाभ्युपगममनेकान्तदूषणमापद्यते। अविभावितैवमर्थ्यपूर्वा-

---

यथोक्तम् – **भेदसङ्घाताभ्यां चाक्षुषाः** [तत्त्वार्थ० ५।२८] इति। **उक्तहेतुव**दिति, तथाऽविभक्ततत्त्वज्ञानोत्पत्तेर्भेदाभेदात्मकज्ञानोत्पत्तिर्वेदेतदपि वस्तु भेदाभेदात्मकमिति।

इतर आह – **ननु कदाचिच्छब्दः कालान्तरवचनः।** तस्मिन्नेव हि वस्तुनि कदाचित् कालान्तरे ज्ञानमेकाकारमुत्पद्यते कदाचिदनेकाकारम्, ज्ञानस्यैवाकारवत्त्वान्निराकारबाह्यवस्तुपक्षे इति। अत्रोच्यते– **तन्न, एककाल एवोभयरूपत्वात्।** एकस्मिन्नेव हि काले नीलपरमाणुसमूहाकारज्ञानस्य भेदाभेदात्मकत्वं दृष्टम्, अतो न सम्यगुक्तम् – 'कदाचिच्छब्दः कालान्तरवचनः, तस्मादेकाकारं कदाचित् कदाचिदनेकाकारं ज्ञानमुत्पद्यते तस्मिन्नेव वस्तुनि' इति। तस्माचैककाल एवोभयरूपत्वात् **स्यात् तत् तत्,** तदेव तद्वस्तु परमाणुद्रव्यसमूहाभेदात्। **स्यान्न तत् तत्,** रूपादिपरिणामभेदात्। हेत्वन्तरमप्यत्रोच्यते – **ग्रहणापदेशविशिष्टार्थत्वात्,** ग्रहणं ज्ञानम्, ज्ञानमेवापदेशो हेतुः, तेन हेतुना विशिष्टो ग्रहणापदेशविशिष्टश्चासावर्थश्च, तद्भावो ग्रहणापदेशविशिष्टार्थत्वम्। यस्माच्चक्षुर्विज्ञानाद्धेतोर्विशिष्टोऽर्थो रूपं समुदायसमुदाय्यात्मकं गृह्यते तस्मादनेकात्मकं तद्वस्तु। को दृष्टान्तः? **अनेकवर्णमणिरूपवत्,** एक एव वा मणिर्मेचकस्फटिकाद्यन्यतमस्तद्रूपवत्, नानावर्णानां वा मणीनां समूहस्य रूपवत्। यथा तद् ग्रहणापदेशविशिष्टं ज्ञानपरिच्छिन्नं विभिन्नरूपं तथा चक्षुर्विषयाभिमतं वस्तु। **एकपुरुषपितृपुत्रादिवद्वे**ति ग्रहणापदेशविशिष्टत्वसाधर्म्यदृष्टान्तान्तरम्। यथैकः पुरुषोऽनेकसम्बन्धिजनापेक्षया 'पिता पुत्रो भागिनेयो मातुलः' इत्येवमादिव्यपदेश्यत्वं भजते न चास्य विरोध-सङ्करा-ऽनवस्थाप्रसङ्गदोषा ग्रहणापदेशविशिष्टार्थत्वादेवं चक्षुर्विज्ञानविज्ञेयं वस्तु प्रतिपत्तव्यम्। ६०-२

अतोऽनपेक्षितेत्यादि। अत एव कारणाद् येऽत्र चोदयन्ति **परस्परविरुद्धानां कथमेकत्र सम्भवः** [ ] इति, तेषां तद**नपेक्षितस्वाभ्युपगममनेकान्तदूषणमापद्यते,** स्वोऽभ्युपगमः स्वाभ्युपगमः, स नापेक्षितो यस्मिन् दूषणे तदनपेक्षितस्वाभ्युपगममनेकान्तदूषणम्। तद्यथा – सर्वं सर्वात्मकमविशिष्टं प्रतिज्ञाय परिणामभेदव्याख्यानं चानपेक्ष्यानेकान्तदूषणम्, देशकालकृतात्यन्तविशिष्टत्वं प्रतिज्ञाय सन्तानाविशेषव्याख्यानं चानपेक्ष्यानेकान्तदूषणम्, असत्कार्योत्पत्तिं प्रतिज्ञाय तुल्यजातीयद्रव्यगुणान्तरारम्भनियमव्याख्यानं चानपेक्ष्यानेकान्तदूषणं च। कस्माद्धेतोः? **अविभावितैवमर्थ्यपूर्वाभ्युपगमत्वात्त्वेकान्तवादिनाम्।** उक्तानेकान्तस्वरूपोऽर्थ एवमर्थः, तद्भाव ऐवमर्थ्यम्, अविभावितमैवमर्थ्यं पूर्वाभ्युपगमश्च यैस्त ६१-१

---

१ चाक्षुष इति भा० ॥ २ °वदेपदपि वस्तु भेदात्मकमिति प्र० ॥ ३ काल नील° प्र० ॥ ४ ग्रहणाविशिष्ट° य० ॥ ५ °साधर्थश्च प्र० ॥ ६ °दायात्मकं य० ॥ ७ °चकः स्फटिका° य० ॥ ८ °शविशिष्टं ज्ञानं परिच्छिन्नं विभिन्नरूपं भा० । °शविशिष्टज्ञानं परिच्छिन्नविभिन्नरूपं य० ॥ ९ स्वाभ्युप° प्र० ॥ १० नापेक्षतो भा० । नापेक्षते य० ॥ ११ तदान° य० ॥ १२ स्तानपेक्ष्या° प्र० ॥ १३ एवमर्थ्यम् प्र० ॥ १४ °भातमै° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भ्युपगमत्वात्त्वेकान्तवादिनां न विशेषदोषः कस्यचिदपि।

आयतनस्वलक्षणं प्रत्येते स्वलक्षणविषयाः, न द्रव्यस्वलक्षणं प्रति [अभि० को० भा० १।१०]

इत्येतत्तु प्राक् चोदितमेव दोषं प्रतिष्ठापितवानसि। यत्तु 'समस्तालम्बनं विज्ञानं सामान्यविषयं प्राप्नोति, न स्वलक्षणविषयम्' इत्येतत् प्रतिष्ठापितमेव कृतम्। एष तु विशेषदोषः—अज्ञानत्वप्रसङ्गः स्फुटतरकः............कुतः प्रत्यक्षत्वम्?

योऽपि चैकाकारपरिकल्पनात् प्रत्यक्षस्य कल्पनात्मकत्वप्रसङ्गोऽस्वलक्षणविषयत्वप्रसङ्गश्च सञ्चितालम्बनतायामिति चोदिते समाधिरभिधीयतेऽस्वलक्षणत्वदोषपरिहारः—

अनेकार्थजन्यत्वात् स्वार्थे सामान्यगोचरम्।

अनेकद्रव्योत्पाद्यत्वात् तत् 'स्वायतने सामान्यगोचरम्' इत्युच्यते, न तु भिन्नेष्वभेदकल्पनात् [प्र० समु० वृ० १।४] तेषु पृथक् पृथग्ग्रहणाभावात्। यथा हि शमीशाखापत्रेषु सर्व-

---

इमेऽविभावितैवमर्थ्यपूर्वाभ्युपगमा एकान्तवादिनः, तद्भावादविभावितैवमर्थ्यपूर्वाभ्युपगमत्वादुन्मुग्धभ्रान्तमत्तादिवदनपेक्षितस्वाभ्युपगममनेकान्तदूषणम्[1]। तस्मात् कस्य वयं विशेष्य 'अयमेव उन्मुग्धो भ्रान्त उन्मत्तो वा' इति दोषं ब्रूमः? सर्व एव यूयमेवं दोषदुष्टाः[2], किं तपस्विना विशेषैकान्तवादिनैवापरार्द्धं[3] वादपरमेश्वर[4]परिरक्ष्यलोकतत्त्वविलोपनोद्यमिना? इत्यत आह—न विशेषदोषः कस्यचिदपीति प्रागभिहितम्।

सम्बन्धागतकल्पनात्मकत्वापादनचोद्यदूषणमनुक्त्वा तदभ्युपगमेन परिहारोक्तिः 'आयतन[5]स्वलक्षणं प्रत्येते स्वलक्षणविषया न द्रव्यस्वलक्षणं प्रति' इत्येतत्तु व्याख्यानं प्रागुच्चार्य चोदितमेव दोषं चलयित्वा प्रतिष्ठापितवानसि स्थिरीकृतवानसीत्यर्थः। यत्तु समस्तालम्बनमित्यादि[6] यावदित्येतत् प्रतिष्ठापितमेव कृतमिति। एष तु विशेषः कल्पनात्मकत्वदोषादन्यो दोषः। कतमः? अज्ञानत्वप्रसङ्गः। तद्यथा—स्फुटतरक इत्यादि यावत् कुतः प्रत्यक्षत्वमित्येतदुपदर्शितमिति गतार्थम्।

योऽपि चैकाकारेत्यादि[7] चोद्यप्रत्युच्चारणमेतद् यावत् सञ्चितालम्बनतायाम्। एतदुक्तं भवति[8]—यदि तदेकतो न विकल्पयति कथं सञ्चितालम्बनता? कल्पनानान्तरीयिका[9] हि सा कल्पनामन्तरेण न सम्भवतीति चोदिते तत्रोत्तरो वक्ष्यमाणो यः समाधिरभिधीयते स एव च किल अस्वलक्षणत्वदोष-

६१-२ परिहारोऽभिमतोऽर्थद्वयवाचित्वाविरोधादस्य[10] वाक्यस्येति[11] तत् प्रत्युच्चारयति सव्याख्यानम्—अनेकार्थजन्यत्वात् स्वार्थे सामान्यगोचरमित्यादि यावत् तेषु पृथक् पृथग्ग्रहणाभावादिति गतार्थम्। पिण्डार्थस्तु—यद्यपि परमाणुसमूहजन्यत्वान्न ज्ञानमर्थतः सामान्यगोचरं तथापि रूपं रसो वा स्वार्थोऽन्यापृक्तत्वा[12]दर्थान्तरकल्पने तस्य ज्ञानस्यापटुत्वात्, तच्च विज्ञानमुत्पादयितुं शिबिकोद्वाहवत् संहत्य समर्थाः परमाणवो नान्यथेति सामान्यगोचरतास्तु, को दोषः। यदि तद् भिन्नेष्वभेदं कल्पयदुत्पद्येत स्यात् कल्पना-

---

१ °गमनेकान्त° प्र० ॥ २ दोषद्रष्टाः भा०। दोषद्रष्टारः य० ॥ ३ °परात्वं य० ॥ ४ वादिपरमेश्वर° प्र०। दृश्यतां पृ० ८३ पं० २ ॥ ५ °तनं स्वल° प्र०। दृश्यतां पृ० ७९ पं० २४ ॥ ६ दृश्यतां पृ० ७९ पं० २३ ॥ ७ दृश्यतां पृ० ७९ टि० ७ ॥ ८ भवता भा० ॥ ९ °नन्तरी° प्र० ॥ १० °मतोर्थयद्वाचित्वा° य० ॥ ११ वाकस्येति य०। वावस्येति भा० ॥ १२ स्वार्थोऽन्यापृथक्त्वाद° वि०। स्वार्थोन्यापृक्तत्वाद° वि० विना ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्रालम्बनं ज्ञानमविवेकेनोत्पद्यते, न च सङ्घातः कश्चिदेकोऽस्ति तेषामनारब्धलक्षणकार्यत्वात्, एवमणुष्वपि । अयमसमाधिरेव, अङ्गीकृतार्थविनाशित्वात्, शब्दकृतकत्वाभिव्यक्तिस्थापनार्थप्रवृत्तवैशेषिकवत् स्वविषयतां प्रतिज्ञाय तदतदभूतसामान्यगोचरोपसंहारात् । नन्वत एव न तत् प्रत्यक्षम्, स्वार्थे सामान्यगोचरत्वात्, अनुमानवत् । अनुमानमपि वा न ।

त्मकम्, न तु भिन्नेष्वभेदैकाकारपरिकल्पनात् तदुत्पद्यते इति । अस्यार्थस्य दृष्टान्तः – **यथा हि शमीशाखापत्रेष्वित्यादि** । यथा **सर्वपत्रालम्बनं ज्ञानम**न्तादिमध्याविवे**केनोत्पद्यते** एवं प्रत्यक्षमपि । [1]*स्यान्मतम् – तद्व्यतिरेकेण पत्रे समुदाये च यथा ज्ञानं प्रत्यक्षमपि* तथा स्यादिति । एतच्चायुक्तम् – **न च सङ्घातः कश्चिदेकोऽस्ति, तेषामनारब्धलक्षणकार्यत्वात्**[2] । न हि समुदायो वैशेषिककल्पितकार्यद्रव्यवत् पृथगस्ति । नापि परिणामान्तरमापन्नम्, तेषां कारणभूतानां क्षणिकत्वादारम्भनिष्ठाकालभेदावस्थानाभावादिति । **एवमणुष्वपी**ति दार्ष्टान्तिकं [3]निदर्शयति ।

अत्रोत्तरमुच्यते – **अयमसमाधिरेव** । कुतः ? अर्थस्यास्य जरत्कुटीरवदारोटनाक्षमत्वात्[4] त्वद्वाक्यजनितस्य प्राक्चोदितदोषस्यायं[5] समाधिरप्यसमाधिरेव, **अङ्गीकृतार्थविनाशित्वात्, शब्दकृतकत्वाभिव्यक्तिस्थापनार्थप्रवृत्तवैशेषिकवत्** । वैशेषिकस्येव वैशेषिकवत्, '**अचाक्षुषप्रत्यक्षस्य गुणस्य सतोऽपवर्गः कर्मभिः साधर्म्यम्, सतो लिङ्गाभावात्** [वै० सू० २।२।२५–२६] कार्यत्वात्'[6] इत्यादिभिरनित्यत्वं वैशेषिकत्वात् सिद्धं कृतकत्वं च, तस्याभिव्यक्तिस्थापनार्थं प्रवृत्तस्य वैशेषिकस्येवाङ्गीकृतार्थनाशित्वमेवम् 'अनेकार्थजन्यत्वात् स्वार्थे सामान्यगोचरम्' इत्यर्थवचनयोर्दोषः । तद्व्याचष्टे, कुतस्तत्साधर्म्यमिति चेत्, उच्यते – **स्वविषयतां प्रतिज्ञाय तदतद्विषयतया तदतदभूतसामान्यगोचरोपसंहारात्** । स चासश्च विषयोऽस्य स तदतद्विषयः, [7]तद्भावस्तदतद्विषयता । [8]तदतदभूतं सामान्यम्, तद् गोचरोऽस्य विषय उपसंहारस्य, तस्मादुपसंहारात् । स चान्यश्च विषयः सामान्यस्येति तदन्यतरत्रैव न प्रवर्तते एकतरत्रादृष्टत्वात्, त्वन्मतेनैव [9]प्रतिस्वं नियतत्वाद्भावानां नैकरूपमपि [10]तन्न च तत्र वृत्तं न चातोऽन्यत्र । तत्रावृत्तत्वात् तन्न भवति, अतत्रावृत्तत्वादतन्न भवति । ततस्तदतदभूतं सामान्यं गोचरोऽस्योपसंहारस्य यः स तदतद्विषयतया त्वयेदानीं क्रियते । तस्मात् तदतद्विषयतया तदतदभूतसामान्यगोचरोपसंहारादङ्गीकृतप्रत्यक्षविनाश इत्यत आह – **नन्वत एव [11]न तत् प्रत्यक्षं स्वार्थे सामान्यगोचरत्वादनुमानवत्** । स्वार्थे इति स्वविषये स्वग्राह्ये वस्तुनि, [12]यत् स्वग्राह्ये वस्तुनि सामान्यगोचरं[13] तज्ज्ञानमप्रत्यक्षं दृष्टं यथानुमानमिति । **अनुमानमपि वा ने**ति, नानुमानमपि तत् स्यात्, स्वार्थे सामान्यगोचरत्वात्, प्रत्यक्षवत् ।

६२-१

---

१ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः **स्यान्मतम्** इत्यत आरभ्य **प्रत्यक्षमपि** इत्यन्तः पाठो भा० प्रतौ नास्ति ॥ २ °**काय**° प्र० ॥ ३ **निर्द(र्दि?)शति** भा० ॥ ४ °**वादा**° प्र० । रुट प्रतिघाते, प्रतिघाताक्षमत्वादित्यर्थोऽत्र भाति ॥ ५ °**तपेषस्यायं** प्र० ॥ ६ °**कायत्वात्** प्र० । दृश्यतां पृ० ५५ पं० १२ ॥ ७ **तद्भावस्तदतद्वि**° य० । **तदतद्वि**° भा० ॥ ८ **तदतद्भूतं** य० ॥ ९ **प्रतिष्ठं** प्र० ॥ १० **तत्र** य० ॥ ११ **न त्प्रत्यक्षं** य० ॥ १२ **यत् स्वग्राह्ये वस्तुनि** इति पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ १३ °**चरात्तद् ज्ञानम**° प्र० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

स्ववचनविरोधि कुमारब्रह्मचारिपितृवचनवच्चैतत् 'अस्वार्थविशिष्टे स्वार्थे स्वविषये रूपादिप्रकारे सामान्यगोचरम्' इति, यस्मादर्थविषयशब्दौ लक्षणार्थावेव, उक्तं हि त्वयैव—प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणे । यस्माल्लक्षणद्वयं प्रमेयम् । न हि स्वसामान्यलक्षणाभ्यामन्यत् प्रमेयमस्ति । स्वलक्षणविषयनियतं प्रत्यक्षम्, सामान्यलक्षणविषय-

---

'स्वार्थे सामान्यगोचरम्' इत्येतत् **स्ववचनविरोधि**[1] । किमिव ? **कुमारब्रह्मचारिपितृवचनवच्चैतत्**, यथा कश्चिद् ब्रूयात् 'पिता मे कुमारब्रह्मचारी' इति, तस्य तद्वचनं स्वत एव विरुध्यते—यदि पिता कथं कुमारब्रह्मचारी ? अथ कुमारब्रह्मचारी कथं पिता ? इति, तथेदमपि यदि तज्ज्ञानं स्वार्थे कथं
६२-२ सामान्यगोचरम् ? अथ सामान्यगोचरं कथं तत् स्वार्थे ? स्वार्थ इति च त्वया न चक्षुषोऽन्यस्य वेन्द्रियस्य विषय इति विशेषमाश्रित्य लक्षणमभिधीयते, किं तर्हि ? प्रमेयमुच्यते सामान्यतो वस्तु 'स्वलक्षणं स्वार्थः' इति । तथा सामान्यलक्षणमिति[2] न धूमानुमेयाग्निमात्रम्, किं तर्हि ? लिङ्गगम्यं सर्वम् । एतस्यार्थस्य प्रतिपादनार्थमाह स्वार्थलक्षणमेव निरूपयन्—**अस्वार्थविशिष्टे**, स्वोऽर्थः स्वार्थः, न स्वार्थोऽस्वार्थः स्वार्थादन्यः, ततो विशिष्टैः[3] स्वार्थः, तस्मिन् **स्वार्थे**, तमेवार्थं पर्यायेणाह—**स्वविषये**, किमुक्तं भवति ? एकस्मिन्[4] **रूपादिप्रकारे** प्रकृष्टे कारे रूपे रसेऽन्यस्मिन्नेव **सामान्यगोचरमिति**, सामान्यविषयं च स्वार्थे[5] ज्ञानमिति च विस्पर्धितमेतत् परस्परतो द्वयम् । **यस्मादर्थविषयशब्दौ लक्षणार्थावेव** लक्षणशब्दपर्यायवाचिनौ तस्मात् स्वार्थः स्वविषयः[6] स्वलक्षणमित्येतद्विवक्षितं भवतः, तद्विस्मृत्य भ्रान्तेन नेन्द्रियग्राह्यस्वार्थसामान्यभेदकल्पनात्[7] परिहारो युज्यते वक्तुम् । कस्मात् ? प्रत्यक्ष*[8]व्याख्याविषयत्वात् स्वार्थस्वलक्षणस्वविषयशब्दानाम् ।

मा मंस्थाः—नैतदेवं[9] भवतीति, **उक्तं हि** प्रमाणसङ्ख्यानिरूपणे **त्वयैव*—प्रत्यक्षमनुमानञ्च[10] प्रमाणे** इत्यादि । प्रमाणद्वित्वं नियम्यते, प्रमेयद्वित्वात्, परिमेयद्वित्वनियतप्रस्थतुलादिपरिमाणद्वित्ववत् । तद्दर्शयति—**यस्माल्लक्षणद्वयं प्रमेयम्** । स्यान्मतम्—प्रमेयान्तरं स्वसामान्य[11]द्विरूपलक्षणम्, तदपेक्षया प्रमाणान्तरं स्यादिति । तन्निवारणार्थमाह—**न हि स्वसामान्यलक्षणाभ्यामन्यत् प्रमेयमस्ति**, प्रत्यक्षानुमानाभ्यामग्रहणात्, खरविषाणवत् । स्यान्मतम्—तत्रैव विषयद्वये विकल्पसमुच्चयाङ्गा[12]ङ्गिभावैः प्रत्यक्षानुमाना-
६३-१ गमादीनां प्रमाणानां वृत्तिर्भविष्यतीति, तन्न भवति, यस्मात् **स्वलक्षणविषयनियतं प्रत्यक्षं सामान्यलक्षणविषयनियतमनुमान**मित्युक्तम् । कथं पुनर्लक्षणशब्दोऽर्थपर्यायः ? अर्यते[13] गम्यत इत्यर्थः । तथा लक्ष्यत इति लक्षणं कर्मसाधनत्वाल्लक्षणशब्दस्य । तच्च लक्षणं वस्तु स्वभावः स्वरूपमर्थः प्रमेयमिति पर्यायाः । तत् पुनर्द्विरूपं परिच्छेद्यं द्वाभ्यां[14] प्रमाणाभ्यां परिच्छेद्यत्वात्, प्रमाणं परिच्छेदकं प्रमेयं परिच्छेद्यमित्यर्थः ।

---

१ °चनविरोधे प्र० ॥ २ **सामान्यं लक्ष°** प्र० ॥ ३ °**ष्टः तस्मिं** भा० ॥ ४ **एकस्मिन्नपादि°** प्र० ॥ ५ **सार्थे** प्र० ॥ ६ °**षय स्वलक्षणमित्येतद्विपक्षितं** प्र० ॥ ७ °**कल्पना परि°** प्र० ॥ ८ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः **प्रत्यक्ष°** इत्यत आरभ्य **त्वयैव** इत्यन्तः पाठो भा० प्रतौ नास्ति ॥ ९ **नैतदेवं न भवतीति** य० । अत्र 'नैतदेवं संभवतीति' इत्यपि पाठः स्यात् । भा० प्रतौ तु अत्र सर्वोऽपि पाठो नास्त्येव ॥ १० "प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणे द्वे एव । यस्माल्लक्षणद्वयं प्रमेयम् । न हि स्वसामान्यलक्षणाभ्यामन्यत् प्रमेयमस्ति । स्वलक्षणविषयं हि प्रत्यक्षम्, सामान्यलक्षणविषयं ह्यनुमानम्"—**प्र० समु० वृ०** १।२ ॥ ११ °**न्यद्वित्वरूप°** य० ॥ १२ °**ङ्गाङ्गीभावैः** प्र० ॥ १३ **अयते** प्र० । 'ऋ गतौ' [पा० धा०] इति धातोः 'अर्यते' इति रूपम् । "अर्यतेऽसौ अर्थः"—**अभि० चिन्ता० स्वो०** २।१०६ ॥ १४ **स्वाभ्यां** भा० ॥

नियतमनुमानम् [प्र० समु० वृ० १।२]। प्रमेयाधिगमनिमित्तं हि प्रमाणम्। न चैतददृष्टार्थम्। न च प्रमाणयोर्विषयसङ्कर इत्यधिगम्यस्य द्वित्वात् तदधिगमनिमित्तं द्विरूपमित्येवं व्यवस्थापिते सामान्यगोचरव्यावृत्तार्थेन स्वार्थेन भवितव्यम्। ततः 'स्वार्थे सामान्यगोचरम्' इत्येतद् विरुध्यते।

सामान्ये स्वविषये प्रत्यक्षं ज्ञानमुत्पद्यते इति चेत्, सामान्यमेव स्वविषयः, स्वलक्षणं नास्ति। अतो लक्षणद्वयाभावात् प्रमेयप्रमाणद्वित्वावधारणकल्पना व्यर्था, प्रमाणयोर्वा विषयसङ्करः प्राप्तः। प्रत्यक्षमपि वानुमानभेद एव स्यात्, अनेकार्थजनितसामान्यगोचररूपादिप्रकारपरिग्रहात्, धूमबलाकालिङ्ग-

---

यस्माल्लोके दृष्टं प्रमेयाधिगमनिमित्तं प्रमाणम्, हिशब्दस्य हेत्वर्थत्वात्, **प्रमेयाधिगमनिमित्तं हि प्रमाण**मिति। **न चैतत्** 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः, दानं दद्याद्धर्मकामः' [ ] इत्येवमाद्यागमव[1]**ददृष्टार्थम्**, [2]प्रत्यक्षदृष्टार्थमेवैतदुपलम्भकत्वादुपलभ्यस्य द्विविधस्य दृष्टत्वात्। **न च प्रमाणयोर्विषयसङ्कर** इति प्रागुक्तयुक्तिकां विविक्तविषयतां दर्शयति। इतिशब्दः प्रदर्शने, एतावानत्र सङ्क्षेपेणार्थः, तद्विस्तरोऽपरो ग्रन्थ इति सूचयति।

इदानीं व्यवस्थापितार्थोपसंहारार्थमिदं वाक्यमाह – **अधिगम्यस्य द्वित्वात् तदधिगमनिमित्तं द्विरूपमित्येवं व्यवस्थापिते** लक्षणशब्दोऽर्थपर्यायवाची नेन्द्रियग्राह्यविशेषार्थप्र[3]कृत इत्येतस्मिंश्चार्थे स्थिते प्रत्यक्षानुमानयोः स्वरूपाभावः स्ववचनविरोध[4]श्च दोषाः 'स्वार्थे सामान्यगोचरम्' इति ब्रुवतः प्रोक्तविधिनेति स्थितम्। पुनश्चात्र दोषः – एवमवस्थिते **सामान्यगोचरव्यावृत्तार्थेन स्वार्थेन भवितव्यम्। ततः** को दोषः ? **'स्वार्थे सामान्यगोचरम्' इत्येतद्विरुध्यते,** न हि तादृशः [6]स्वार्थस्य सामान्यतासम्बन्धोऽस्ति, नापि सामान्यस्य स्वार्थसम्बन्ध इति। ६३-२

मा भूदेष दोष इति तस्मिन्नेव **सामान्ये स्वविषये स्वार्थे प्रत्यक्षं ज्ञानमुत्पद्यत इति चेत्,** तत एवं **सामान्यमेव स्वविषयः स्वलक्षणं नास्ति। अतः** परिभाषितासाधारणस्वलक्षणविषयाभावादेवं कल्प्यमाने **लक्षणद्वयं** नास्ति, एकमेव सामान्यल[7]क्षणम्, **द्वयाभावात्** तद्विषयमेकमेवानुमानं प्रमाणं स्यात्। ततश्च **प्रमेयप्रमाणद्वित्वावधारणकल्पना व्यर्था,** मा भूदवधारणवैयर्थ्यमिति, स्वार्थे सामान्ये च प्रत्यक्षं प्रवृत्तं तथानुमानं चेति **प्रमाणयोर्वा विषयसङ्करः प्राप्तः।** वाशब्दादेकस्य ज्ञानस्य द्व्यर्थता वा। **प्रत्यक्षमपि वा** परपरिकल्पित**मनुमानभेद एव स्यात्।** कस्माद्धेतोः ? **अनेकार्थजनितसामान्यगोचररूपादिप्रकारपरिग्रहात्।** मा ज्ञासीदसिद्धोऽयं हेतुरिति, त्वयैवोक्तं हि –

तत्रानेकार्थजन्यत्वात् स्वार्थे सामान्यगोचरम्। [प्र० समु० १।४] इति।

अनेकेन भिन्नेनार्थेन अभिन्नमेकं सामान्यं रूपं रस इत्यादिप्रकारं परिगृह्योत्पद्यमानं ज्ञानं तेन जनितं तत्, तस्मादनेकार्थजनितसामान्यगोचररूपादिप्रकारपरिग्रहात् तस्य ज्ञानस्य। को दृष्टान्तः ? **धूम-**

---

१ °वददृष्टार्थं य० ॥ २ प्रत्यक्षं दृष्टार्थं° प्र० ॥ ३ °प्राकृत प्र०। अत्र °प्रवृत्त इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ४ °ध च प्र० ॥ ५ °त्तार्थेन भवितव्यम् य० ॥ ६ स्वार्थस्य प्र० ॥ ७ °लक्षणद्वया° य० ॥ ८ °धारणे य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जनितज्ञानवत्। अस्वलक्षणविषयत्वं चोभयत्र।

अनेकैकत्वापत्तिसामान्यगोचरस्वलक्षण एवासावर्थ इति चेत्, न, आरात्परान्तमध्यवर्णप्रमाणसंस्थानविविक्तवृत्त्यवस्थपत्रविशेषस्वलक्षणविषयसामान्यानात्मकत्वात्। न च सङ्घातः कश्चिदस्ति, तेषामनारब्धलक्षणकार्यत्वात्। एवमणुष्वपि,

---

बलाकालिङ्गजनितज्ञानवत्, 'धूमादत्राग्निः, बलाकाभ्योऽत्र जलम्' इति लिङ्गजनितयोरग्निजलज्ञानयोरपि स्वरूपतोऽनुमानत्वाभेदः, एवं रूपादिषूत्पद्यमानानां प्रत्यक्षाभिमतानामनुमानत्वाभेदः। एतस्मादेव हेतो-
६४-१ **रस्वलक्षणविषयत्वं च,** अस्वलक्षणविषयं प्रत्यक्षम्, अनेकार्थजनितसामान्यगोचररूपादिप्रकारपरिग्रहात्, अनुमानवत्। **उभयत्रे**त्यनेन अनुमानेऽप्यस्वलक्षणविषयत्वम्, तत एव हेतोः, अनन्तरभावितप्रत्यक्षवत्। अथवा **उभयत्रे**ति स्वलक्षणे सामान्यलक्षणे [2]चास्वलक्षणविषयत्वम्। कथम्? स्वलक्षणाभिमतमस्वलक्षणम्, अनेकैकीभावात्, समुदायवत्। तत्सामान्यमपि न स्वलक्षणम्, अत एव, अनन्तरोक्तसमुदायवत्। सामान्यास्वलक्षणत्वं सिद्धं साध्यत इति चेत्, न, 'स्वार्थ एव सामान्यगोचरम्' इति वचनात् स्वा[3]र्थत्वेनाभ्युपगतत्वादिति। अवश्यं चैतदेव[4]मभ्युपगन्तव्यम्, यतः शमीशाखापत्रसङ्घाताविशेषदर्शनोदाहरणेन च स्फुटमेव दर्शितमप्रत्यक्षत्व[5]मननुमानत्वमप्रमाणत्वमस्वलक्षणविषयत्वं विषयसङ्कर इत्येवमादि दोषजातम्।

[6]**अनेकैकत्वापत्तिसामान्यगोचरस्वलक्षण एवासावर्थ इति चेत्।** स्यान्मतम्—अनेकस्यैकत्वापत्तिः सामान्यम्, स एव गोचरोऽस्येति* अनेकैकत्वापत्तिसामान्य[7]गोचरः, स एव स्वलक्ष[8]णः सामान्यगोचर एव स्वलक्षणः, असावेवार्थः प्रत्यक्षस्येत्येषा भवत [9]आशंसा चेत्, **न,** [10]**आरात्परान्तमध्ये**त्यादि यावत् **स्वलक्षणविषयसामान्यात्मकत्वात्।** नैतदुपपद्यते, [11]पूर्वपरादिपरस्परविविक्ताव[12]स्थपत्रविषयसामान्यात्मकत्वात्। आरादन्तः, परान्तः, मध्यः, नीलप्रकर्षादि**र्वर्णः**, ह्रस्व[13]दीर्घाल्पमहत्त्वादि **प्रमाणम्,** वृत्तादि **संस्थानं** च, तैर्विविक्ता वृत्तयोऽवस्थाश्च येषां पत्रविशेषाणां ते **तैर्विविक्तवृत्त्यवस्थप[14]त्रविशेषाः,** त एव स्वलक्ष[15]णाः, ते विषयोऽस्य सामान्यस्य तत् स्वलक्षणविषयं सामान्यमात्मा स्वरूपमस्य, तद्भावः
६४-२ सामान्यात्मकत्वम्, तस्मात् सामान्यात्मकत्वात्। एतदुक्तं भवति—देशाकृ[16]तिवर्णप्रमाणसंस्थानादिभिरत्यन्तविशिष्टानां स्वलक्षणानामेव सामान्यात्मकत्वम्, नान्यत् सामान्यमस्ति, अतोऽनुपपन्नम्—अनेकैकापत्ति[17]सामान्यगोचरस्वलक्षण एवार्थ इति। ननूक्तमनेकैकापत्तिसामान्यगोचरमिति, तन्न, यस्माद् **न च सङ्घातः कश्चिदस्ति।** चशब्दान्नावयवी, न च परिणामान्तरं तद्व्यतिरिक्तं त्वन्मतेन। कस्माद्धेतोः?

---

१ °विप्रत्य° प्र० ॥ २ च स्व° प्र० ॥ ३ स्वार्थत्वेचाभ्यु° प्र० ॥ ४ °वभ्युप° भा० ॥ ५ °मनुमानत्व° प्र०। 'प्रत्यक्षमपि वानुमानमेद एव स्यात्' [पृ० ८९ पं० ७] इति वचनानुसारेण "°मनुमानत्व°" इति सर्वप्रतिषु दृश्यमानस्य पाठस्यात्र सङ्गतत्वेऽपि शमीशाखापत्रसङ्घाताविशेषोदाहरणानन्तरम् 'नन्वत एव न तत् प्रत्यक्षम्, स्वार्थे सामान्यगोचरत्वात्, अनुमानवत्। अनुमानमपि वा न' [पृ० ८७ पं० ४] इत्यभिहितत्वात् "°मननुमानत्व°" इति पाठोऽत्र समीचीनतर इति प्रतिभाति ॥ ६ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः **अनेकैकत्वा°** इत्यत आरभ्य **°ऽस्येति** इत्यन्तः पाठो य०प्रतिषु नास्ति ॥ ७ °न्यं गोचरः प्र० ॥ ८ °क्षण सामा° य० ॥ ९ आसं चेत् भा० ॥ १० आचात्परान्त° प्र० ॥ ११ पूर्वापरा° भा० ॥ १२ °वस्थापत्रवि° भा०। °वस्थापत्रवि° य० ॥ १३ °दीर्घाभ्यमह° य० ॥ १४ °पत्रशेषाः प्र० ॥ १५ °क्षणाः स्वविषयो य०। °क्षणाः। स विषयो भा० ॥ १६ °कृतियोवर्ण° य०। °कृतियोर्वर्ण° भा० ॥ १७ °सामान्यसामान्यगोचर° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न हि तदनेकद्रव्योत्पाद्यम्। न च सञ्चयः कश्चिदस्ति, अत एव न प्रत्ययस्यालम्बनं युज्यते, अनालम्बनत्वाच्चाभासार्थोऽपि न तत्रास्ति वन्ध्यापुत्रपुत्रत्वानाभासनवत्।

स्वाभासां हि विज्ञप्तिं जनयदालम्बनं युज्यते। अस्वत्वात्त्वस्य अद्रव्यत्वात् कुत आभासविज्ञापनम्? स्वे तु परमाणवो नाभासमुत्पादयितुमलम्, अतीन्द्रियत्वात्। इति प्रत्यक्षज्ञानं नोत्पद्यते, निरालम्बनत्वात्, खपुष्पवत्।

तेषां पत्राणामनार[1]ब्धलक्षण**कार्यत्वात्।** न हि पत्रविशेषैरारब्धं किञ्चित् कार्यान्तरमस्ति, ते एव [2]ह्यनारब्धलक्षणाः पत्रविशेषाः सञ्चित्य का[3]र्यीभूताः, तस्मान्न तेष्वन्यत् सामान्यमस्ति। **एवमणुष्वपि,** परमाणुष्वपि तथा न किञ्चित् सामान्यमस्ति। तस्मान्न स्वार्थे सामान्यगोचरं त[4]ज्ज्ञानमिति।

यदपि चोक्त[5]म् – **अनेकद्रव्योत्पाद्यत्वात् तत् स्वायतने सामान्यगोचरमित्युच्यते न तु भिन्नेष्वभेदकल्पनात्** [प्र० समु० वृ० १।४] इति, सा त्वदिष्टा सामान्यगोचरतापि च न घटते, यस्मान्न **तदनेकद्रव्योत्पाद्यम्।** कुतस्तर्ह्युत्पद्यते? सञ्चयात्। **न च सञ्चयः** सामान्यम्, ततो न च स रूपादिभ्यो भेदेन **कश्चिदस्ति** रूपादिसञ्चयः। **अत एव न प्रत्ययस्यालम्बनं युज्यते,** प्रत्ययो ज्ञानम्। किं कारणम्? अभूतत्वाद् व[6]न्ध्यापुत्रवत्। स्यादाशङ्का – स्वाभासज्ञानोत्पत्तेरालम्बनं भविष्यति समुदायोऽकारणत्वे सत्यपीति। एतत् कुतः? अकारणत्वादेवालम्बनत्वाभावे का प्रत्याशा आभासार्थस्य? इत्यत आह– **अनालम्बनत्वाच्च आ[7]भासार्थोऽपि न तत्रास्ति।** किमिव? **वन्ध्यापुत्रपुत्रत्वानाभासनवत्।** यथा ह्यसत्त्वादनालम्बनं वन्ध्यापु[8]त्रोऽनालम्बनत्वाच्चानाभासस्तथा सञ्चय इति। ६५-१

स्वा[9]भासां हीत्यादि। विषयो हि **नाम यस्य** ज्ञानेन स्व[10]भावोऽवधार्यते [आलम्बनपरीक्षावृ० १] इति त्वदुक्तोपपत्तिरेवात्र व्यापार्यते। तत् पुनः कुतः? **अस्वत्वा**दनात्मकत्वात्। यस्त्वात्मना स्वभावेनासिद्धः स विषयः स्याज्ज्ञानस्येति का युक्तिः? **अस्वत्वात्त्वस्याद्रव्यत्वात्** परमार्थसत्त्वाभावात् **कुत आभास[11]विज्ञापनं** परवाचोयुक्त्या, विज्ञा[12]पनं विज्ञप्तिर्बुद्धिरिति पर्यायाः, दूरत एव नास्तीत्यर्थः। एवं तर्हि **स्वे तु परमाणव** आ[13]त्मानः ते विषयतां यान्तु, नेत्युच्यते, ते **नाभासमुत्पादयितुमलमतीन्द्रियत्वात्।** अतीन्द्रियत्वं निराभासत्वाद् वियद्वदिति। इति[14]शब्द उपसंहारे, इतीत्थमनालम्बनत्वं सञ्चयस्याणूनां च सिद्धं प्रत्यक्षज्ञानस्य, तस्मात् **प्रत्यक्षज्ञानं नोत्पद्यते, निरालम्बनत्वात्, खपुष्पवत्।** अतः प्रत्यक्षस्य निरालम्बनस्य खपुष्पवदनुत्पत्तेरुक्तोपपत्तिविधिना कल्पनापोढस्य सविषयस्य प्रत्यक्षस्य ज्ञा[15]नस्य वाऽभावे प्रतिपादिते स्ववचनव्यपेक्षाक्षेपदुस्तरविरोधप्रस्तुतेश्च 'कल्पनापोढं प्रत्यक्षम्' इत्येतल्लक्षणमनर्थकं स्यात्, लक्ष्यस्याभावात्, खरविषाणकुण्ठतीक्ष्णादिनिर्णयवत्।

---

१ °रब्धस्वलक्षणकायत्वात् प्र०। तुलना–"तेषामनारब्धलक्षणकार्यत्वात्" पृ० ८७ पं० १॥ २ तए ह्यना° य०॥ ३ कायीभूताः वि० विना॥ ४ तज्ञान° प्र०॥ ५ दृश्यतां पृ० ८६ पं० १०। पृ० ७९ टि० ७॥ ६ स्यादंशंका य०॥ ७ आभार्थोपि भा०॥ ८ °पुत्रे° प्र०॥ ९ स्वाभासं ही° य०॥ १० स्वाभावोववायत इति भा०। स्वभावोववाय इति य०॥ ११ °सविज्ञानं भा०॥ १२ विज्ञपनं रं० ही० विना॥ १३ आत्मनः य०॥ १४ °शब्दोपसं° प्र०॥ १५ ज्ञानस्योनावेऽप्रति° भा०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभ्युपेतेऽपि तु सञ्चितालम्बनप्रत्ययत्वे नैवास्य प्रत्यक्षता, तदाभासत्वात् कल्पनात्मकत्वाद् भ्रान्तिज्ञानात्मकत्वात् संज्ञासंस्थानसङ्ख्यावर्णान्यथाकल्पनात्, मृगतृष्णिकाप्रत्ययवदलातचक्रप्रत्ययवद् द्विचन्द्रप्रत्ययवत् कामलोपहतचक्षुषो नीलरूपपीतप्रत्ययवत्। अत इदं नैव प्रत्यक्षम्, अतथाभूतार्थाध्यारोपात्मकत्वात्, भ्रान्तिवत् संवृतिसज्ज्ञानवत्, यथा गोपाल.........तथा संवृतिसति.........। यथोक्तम्—

यस्मिन् भिन्ने न तद्बुद्धिरन्यापोहे धिया च तत्।
घटाम्बुवत् संवृतिसत् परमार्थसदन्यथा ॥ [अभि० को० ६।४]

अभ्युपेतेऽपि तु विषये दोषः। स चाभ्युपगम्यमानोऽपि विषयः सञ्चय एव सम्भाव्येत, न परमाणवोऽतीन्द्रियत्वात्। स चालम्बनप्रत्ययो ज्ञानस्य सञ्चयः, तस्मिन्नभ्युपेते**ऽपि तु सञ्चितालम्बनप्रत्ययत्वे नैवास्य प्रत्यक्षता** सिध्यति त्वन्मतेनैव, **तदाभासत्वात्**। तदाभासत्वं **कल्पनात्मकत्वात्**,
६५-२ उक्ता च कल्पनात्मकता। तदुभयमपि **भ्रान्तिज्ञानात्मकत्वात्**। भ्रान्तिः [1]**संज्ञासंस्थानसङ्ख्यावर्णान्यथाकल्पनात्**, [2]संज्ञा च संस्थानं च सङ्ख्या च वर्णश्च, तेषां तैर्वान्यथाकल्पनात्। अन्यथाप्रतिपत्तिरे[3]वात्र कल्पनाभिमता। संज्ञासंस्थानसङ्ख्यावर्णानामन्यथाप्रतिपत्ते**र्मृगतृष्णिकाप्रत्ययवदलातचक्रप्रत्ययवद् द्विचन्द्रप्रत्ययवत् कामलोपहतचक्षुषो नीलरूपपीतप्रत्ययव**दिति यथासङ्ख्यं दृ[4]ष्टान्ताः यथाक्रमं च[5] हेतवो भ्रान्तिज्ञानात्मकत्वे साध्ये ततश्च प्रत्यक्षत्वाभावे साध्ये। तत्समर्थनार्थं उत्तरो ग्रन्थः। तदर्थमुपसंहृत्यान्ते साधनम्—**अत इदं नैव प्रत्यक्षम्, अतथाभूतार्थाध्यारोपात्मकत्वात्, भ्रान्तिवत्**, नावारूढस्य तीरवृक्षधावनदर्शनात्मिकामेकां क्रियाभ्रा[6]न्तिं मुक्त्वा प्रोक्तचतुर्विधभ्रान्तिवत्। उपनयस्तु व्यवहारप्रसिद्धस्य परमाणुनीलत्वग्रहणस्य सर्वत्रातथाभूतार्थप्रतिपत्तिसाधर्म्यात्। अथवा तत एव हेतोः **संवृतिसज्ज्ञानव**दप्रत्यक्षम्। तद्व्याख्या—**यथा गोपाले**त्यादिना दृष्टान्तं समर्थ्य **तथा संवृतिसती**त्यादिना दार्ष्टान्तिकसमर्थनम्।

संवृतिसल्लक्षणे ज्ञापकमाह—[7]**यस्मिन् भिन्ने** श्लोकः। यस्मिन् घटे भिन्ने कपालशकलशर्करादिभावेन घटाभिमताद्वस्तुनोऽन्येर्ष्वप्यपोढेषु कपालादिषु न घटबुद्धिरस्ति, तदग्रहे तद्बुद्ध्यभावात्, अङ्गुल्य-

---

१ **संज्ञासंख्यासंस्थानवर्णा°** य० ॥ २ **संज्ञा च संस्थानं च वर्ण च** प्र० ॥ ३ **°वात्कल्पना°** प्र० ॥ ४ **दृष्टान्तः** य० ॥ ५ **हेतोर्वा भ्रांति°** य० ॥ ६ **भ्रान्तिमुक्त्वा** प्र० ॥ ७ दृश्यतां पृ० ६७ पं० ७। "चत्वार्यपि सत्यान्युक्तानि **भगवता** द्वे अपि सत्ये—संवृतिसत्यं परमार्थसत्यं च। तयोः किं लक्षणम्? यत्र भिन्ने न तद्बुद्धिरन्यापोहे धिया च तत्। घटाम्बुवत् संवृतिसत् परमार्थसदन्यथा ॥ ६।४ ॥ यस्मिन्नवयवशो भिन्ने न तद्बुद्धिर्भवति तत् संवृतिसत्, तद्यथा—घटः। तत्र हि कपालशो भिन्ने घटबुद्धिर्न भवति। यत्र चान्यानपोह्य धर्मान् बुद्ध्या तद्बुद्धिर्न भवति तच्चापि संवृतिसद् वेदितव्यम्, तद्यथा—अम्बु। तत्र हि बुद्ध्या रूपादीन् धर्मानपोह्य अम्बुबुद्धिर्न भवति, तेष्वेव तु सा संवृतिसंज्ञा कृता इति संवृतिवशाद् घटश्च अम्बु चेति ब्रुवन्तः सत्यमेवाहुः न मृषेति एतत् संवृतिसत्। अतोऽन्यथा परमार्थसत्यम्। यत्र भिन्नेऽपि तद्बुद्धिर्भवत्येव अन्यधर्मापोहेऽपि बुद्ध्या तत् परमार्थसत्, तद्यथा—रूपम्। तत्र हि परमाणुशो भिन्ने वस्तुनि रसादीनपि च धर्मानपोह्य बुद्ध्या रूपस्वभावबुद्धिर्भवति। एवं वेदनादयोऽपि द्रष्टव्याः। एतत् परमार्थेन भावात् परमार्थसत्यमिति। यथा लोकोत्तरेण ज्ञानेन गृह्यते तत्पृष्ठलब्धेन वा लौकिकेन तथा परमार्थसत्यम्, यथान्येन तथा सत्यं संवृतिसत्यमिति पूर्वाचार्याः। उक्तानि सत्यानि।"—इति विद्वद्वरश्री**प्रह्लादप्रधान**महोदयैः सौजन्यतः प्रदत्तेऽभिधर्मकोशभाष्ये ६।४ ॥ ८ **°ष्वपो°** भा० डे० लीं० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रज्ज्वां सर्प इति ज्ञानं रज्जुदृष्टावनर्थकम् ।
तदंशदृष्टौ तत्रापि सर्पवद् रज्जुविभ्रमः ॥ [हस्तवाल० १]

यच्चोक्तम्—'आयतनस्वलक्षणं प्रत्येते स्वलक्षणविषया न द्रव्यस्वलक्षणं प्रति' इति तत् कथमिति चेत्,

तत्रानेकार्थजन्यत्वात् स्वार्थे सामान्यगोचरम् ।

अनेकद्रव्योत्पाद्यत्वात् तत् स्वायतने सामान्यगोचरमित्युच्यते, न तु भिन्नेष्वभेदैकाकारपरिकल्पनात् [प्र०समु०वृ०१।४]। **अत्राप्यनेकार्थविषयैकप्रत्ययत्वात् सामान्यरूपत्वादस्वलक्षणविषय-**

भावे मुष्टिबुद्धिवत् । अतोऽङ्गुलिव्यतिरेकेण मुष्ट्यभाववत् कपालादिव्यतिरेकेण घटाभाव इति संवृतिसन् घटः । एवं क्रियासम्भवे क्रियया अपोहे[१] । यत्रापि क्रिययाऽपोहो न सम्भवति तत्रापि धियाऽपोहेऽन्येषां रूपादीनां घटस्य समुदायाद् न तद्बुद्धिरस्ति । रूपादिसमुदायस्य च परमाणुरूपाद्यपोहे **'न तद्बुद्धिरस्ति'** इति वर्तते[३], दृष्टान्तः—**अम्बुवत्**, एकस्मिन्नपि जलबिन्दौ जलबुद्धिदर्शनात्, रूपादिषु पुनर्बुद्ध्यापोढेषु न ६६-१ तोयबुद्धिरस्तीत्येतत् संवृतिसतो लक्षणम् । अथवा यस्मिन् घटे भिन्नेऽवयवशो न तद्बुद्धिर्भवति **तद् घटवत् संवृतिसत्** । यत्र चाम्बुबुद्ध्याऽर्थान्तरापोहे न तद्बुद्धिरर्थान्तरनिवृत्तिरूपस्य वस्तुनः स्वरूपाभावादग्निवाय्वादिनिवृत्तिमात्रं व्यवहारप्रसिद्धाम्बुवत्[४] तदपि संवृतिसत् । **परमार्थसदन्यथा,** एतद्विपरीतलक्षणं स्वत एव विविक्तरूपं यद्विद्यते रूपं रस इत्यादि तत् परमार्थसत् प्रत्यक्षगोचरमिति ।

एतदपि परमार्थसदित्यभिमतं संवृतिसल्लक्षणानतिवृत्तेरसदेव, यथोक्तविधिना संवृतिसदेव सर्वमपीत्यत्रापि ज्ञापकोदाहरणं तत्संवाद्यभिहितम्—**रज्ज्वां सर्प इति ज्ञानम्**, तावदेव रज्ज्वां सर्प इति विपर्ययज्ञानं भवति यावदस्पन्दादिविशेषलिङ्गादर्शनम्[५] । विशेषतस्तु तदवधारण**दृष्टौ** सत्यां प्राक्तनं सर्पदर्शनं जायते**ऽनर्थकम्** । सापि रज्जुबुद्धिस्तदवयवे दृष्टौ सत्यां यथा सर्प इति ज्ञानमनर्थकं तथानर्थिका, तत आह—**तदंशदृष्टौ[६] तत्रापि सर्पवद् रज्जुविभ्रम** इति । एवमनया कल्पनया सर्वपिण्डज्ञानानां संवृतिसद्विषयतैवेति साधूक्तम्—अप्रत्यक्षं नीलादिविषयं चक्षुरादिविज्ञानं शाक्यपुत्रीयं भ्रान्तिवदिति । एवं तावत् कल्पनापोढप्रत्यक्षलक्षणसञ्चितालम्बनपञ्चविज्ञानकायग्रन्थविरोधोद्भावनचोद्योपक्रमायातपरिहारार्थस्यानेकार्थजन्यस्वार्थसामान्यगोचरवाक्यस्य सप्रसङ्गो दोषोऽभिहितः[७] ।

अधुना यदेतदनेक[प्रकारभिन्न]रूपेत्यादिग्रन्थचोद्यद्वारायातकल्पनात्मकपरिहारार्थं[८] **यच्चोक्तम्[९] 'आयतनस्वलक्षणं [प्रत्येते स्वलक्षणविषया न द्रव्यस्वलक्षणं] प्रति' इति तत् कथ**मित्येतत्परि- ६६-२ हारार्थस्य तस्य वाक्यस्य दोषं वक्तुकामः परपक्षमेव तावत् प्रत्युच्चारयन् व्याचष्टे सूरि**ष्टीकाकार**लिखितं लिखन् याव**देकाकारपरिकल्पना**दिति गतार्थम् । उत्तरं तु **अत्रापि**, 'अपि'शब्दात् पूर्वस्मिन्नर्थविकल्पे व्याख्याता दोषास्तेऽत्रापि सम्भवन्ति । कथमिति चेत्, **अनेकार्थविषयैकप्रत्ययत्वात्**, अनेकोऽर्थः परमाणवः, तद्विषय एक इति प्रत्ययः सोऽनेकार्थविषयैकप्रत्ययः, तद्भावादनेकार्थविषयैकप्रत्ययत्वात् ।

---

१ अपोढे प्र० ॥ २ घटास्य(स्य?)समु° भा० ॥ ३ वर्तते प्र० ॥ ४ °हाराप्रसि° भा० ॥ ५ °दस्पंदस्पंदादि° भा० ॥ ६ तददृष्टौ य० ॥ ७ दोभिहितः य० ॥ ८ दृश्यतां पृ० ७८ पं० २ ॥ ९ दृश्यतां पृ० ७९ पं० २४ । पृ० ७९ टि० ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वात्। प्रत्यक्षस्याप्रत्यक्षत्वसाधने च द्वे लेशेनोन्नीते त्वयैव – त्वदभिमतप्रत्यक्षमप्रत्यक्षमनेकार्थजन्यत्वादनुमानवत्। अनुमानमपि हि पक्षधर्माद्यनेकार्थजन्यम्।

ज्ञापकः स हेतुरिति चेत्, कारकादपि अनेकस्मादर्थाज्जायते साध्यसाधनधर्मान्वयैकान्तवतः।

न, असञ्चितानेकार्थजन्यत्वादनुमाने। ननु धूमादिरपि सञ्चय एव गृहीतोऽ-

---

तेषु परमाणुषु प्रत्येकमतीन्द्रियेषु समुदितेष्वसमुदितेषु वा प्रत्ययाभावात् तत्समूहेऽनेकार्थविषयः स एवैकः प्रत्ययः, समूहालम्बनतदाभासज्ञानोत्पत्त्य[1]भ्युपगमात्। अर्थभेदविषयज्ञानाभ्युपगमे च **विजानाति न विज्ञानम्**[2] [चतुःश० २६८] इत्यादि विरुध्येत। तस्मादेकः प्रत्ययोऽनेकार्थविषय एकार्थरूपः। तत एव **सामान्यरूप**स्तदतद्विषयतया तदतद्भूतसामान्यगोचरः। ततश्च **अस्व[3]लक्षणविषयः**, त एव हि परमाणवः स्वलक्षणं न तत्स[4]मूहः सामान्यत्वात्। अत एव संवृ[5]तिसंश्च सः। तस्माद**स्वलक्षणविषयत्वात्** कल्पनात्मको निर्देश्यश्चेत्येवमाद्यस्माभिः प्राक् प्रक्रान्तं तत् सुतरामशेषं त्वयैव भावितम् **'अनेकार्थजन्यत्वात् स्वार्थे सामान्यगोचरम्'** [प्र० समु० १।४] इति परिहारं ब्रुवता।

किञ्चान्यत्, भवदभिमत**प्रत्यक्षस्याप्रत्यक्षत्वसाधने च द्वे [6]लेशेनोन्नीते त्वयैव**, मा भूत् स्वाभ्युपगमदोषव्य[7]क्तिरिति कुशलजनतर्क[8]गम्ये, न स्फुटे। कतमे द्वे? अनेकार्थजन्यत्वात् स्वार्थे सामान्यगोचरत्वादिति चैते द्वे। तत्र तावत् प्रथमं साधनम् – **[9]त्वदभिमतप्रत्यक्षमप्रत्यक्षम्, अनेकार्थजन्यत्वात्,**
६७-१ **अनुमानवत्**। दृष्टान्तेऽनुमानेऽनेकार्थजन्यत्वमसिद्धमिति मा मंस्थाः, यस्मा**दनुमानमपि पक्षधर्माद्यनेकार्थजन्यम्**, पक्षधर्मः सपक्षानुगमो विपक्षव्यावृत्तिरित्यनेकार्थेन जन्यतेऽग्न्यनित्याद्यनुमानज्ञानं तथेदमपि प्रत्यक्षमनेकपरमाण्वर्थजन्यमिति। **ज्ञापकः स हेतुरिति चेत्।** स्यान्मतम् – अनुमाने पक्षधर्मादिरनेकोऽप्यर्थो धूमकृतकत्वादिर[10]ग्न्यनित्यादिज्ञानस्य न कारकः, किं तर्हि? पूर्वप्रसिद्धमेवाविनाभाविनं सम्बन्धं स्मारयतीति ज्ञापकः स हेतुः, इतरस्तु प्रत्यक्षज्ञानस्य कारकोऽर्थः, तस्माद्वैधर्म्याददृष्टान्त इति। एतच्चायुक्तम्, अत्रापि तुल्यत्वात्, **कारकादपी**त्यादि, 'अनुमानमपि' इति [11]वर्तते, अनुमानमपि स्वार्थं कारकाद**नेकस्मादर्थाज्जायते**। [12]कतमस्मात्? **साध्यसाधनधर्मान्वयैकान्तवतः** पक्षधर्मसपक्षानुगमविपक्षव्यावृत्तिमत ऐकान्तिकात्, 'अग्निमान् प्रदेशो [13]धूमवत्त्वाच्चुल्लीमूलवत्, अनित्यः शब्दः कृतकत्वाद् घटवत्, न नदीवन्नाकाशवत्' इति कारकहेतुतैवानुमानेऽपि तदर्थस्य।

इतर आह – **न, असञ्चितानेकार्थजन्यत्वादनुमाने**। नैतत् साधर्म्यमुपपद्यते, कस्मात्? असञ्चितानेकार्थजन्यत्वादनुमानस्य सञ्चितानेकार्थजन्यत्वाच्च प्रत्यक्षस्य। देशकालभिन्नसन्निहितासन्निहितार्थविषयं ह्यनुमानम्, तद्विपरीतविषयं प्रत्यक्षमिति। अत्रोच्यते – **ननु धूमादिरपि सञ्चय एव गृहीतोऽ-**

---

१ °त्पत्त्युपगमात् भा० ॥ २ दृश्यतां पृ० ७३ पं० १३ ॥ ३ °लक्षणाविषयः प्र० ॥ ४ °मूहसामा° प्र० ॥ ५ °संचय स तस्मा° पा० डे० लीं० रं० ही०। °संचयः स तस्मा° वि० ॥ ६ लेशेनीते प्र० ॥ ७ °व्यतिरिति प्र० ॥ ८ °गम्यते न स्फुटे भा०। अत्र "°गम्ये ते, न स्फुटे' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ९ तदभिमत° प्र० ॥ १० °रग्निनित्यादि° प्र० ॥ ११ वर्तेते भा० ॥ १२ कतस्मात् य० ॥ १३ धूमत्वाच्चु° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ह्यादिमणूनिव गमयति।

हेतुप्रत्ययोऽसौ, अनधिपतिप्रत्ययः कल्पनाया इति चेत्, कारकादप्यनेकस्मादर्थाज्जायते साध्यसाधनधर्मान्वयैकान्तवतः।

अथ कथमसावनधिपतिः? इन्द्रियाविषयत्वात्। ननु सञ्चयहेतुप्रत्ययोऽप्यनधिपतिरिन्द्रियाविषयत्वात्। तथा स्वार्थे सामान्यगोचरत्वादनुमानवदप्रत्यक्षम्। अनुमानं वा प्रत्यक्षं स्यात्, अनेकार्थजन्यत्वात् स्वार्थे सामान्यगोचरत्वात्, प्रत्यक्षवत्। द्वयमप्येतदेकमेव, एकलक्षणत्वात्।

ह्यादिमणूनिव गमयति। **नन्विति** प्रसिद्धानुज्ञापने, ननु धूमोऽग्निमत्त्वविशिष्टप्रदेशधर्मश्चतुर्भूतसङ्घातोऽन्वयव्यतिरेकसहितोऽग्निमत्त्वविज्ञानं प्रदेशे जनयत्यणुसमुदय इव रूपविज्ञानम्, **गमयत्यग्निं**[1] ६७-२ तज्ज्ञानं जनयतीति ज्ञानोत्पत्तौ कारकत्वाव्यभिचारादुभयत्रेति।

हेतुप्रत्यय इत्यादि। स्यान्मतम् – [2]हेतुः प्रत्ययो [3]निमित्तमनालम्बनमित्यर्थः, **असौ** धूमोऽनुमाने निमित्तम्। **अनधिपतिप्रत्ययः, कल्पनाया** हेतोः, निर्विकल्पं हि ज्ञानमधिपतिप्रत्ययं प्रत्यक्षम्, न तथानुमानम्, अतो वैधर्म्यान्न दृष्टान्त **इति चेत्,** एवं चेन्मन्यसे।

अत्र परेणैवोत्तरं वाचयितुकाम आह – **अथ कथ**मित्यादि। [4]ईदमसि त्वं प्रष्टव्यः – **कथमसावनधिपति**र्धूम इति, अनालम्बनमित्यर्थः। इतर आह – **इन्द्रियाविषयत्वा**द्धेतुप्रत्ययस्यार्थस्याण्व्यादिलक्षणस्य। आचार्य आह – **ननु [5]सञ्चयहेतुप्रत्ययोऽप्यनधिपतिरिन्द्रियां[6]विषयत्वात्।** परमाणुसञ्चय एव [7]प्रत्यक्षेऽप्यनधिपतिः, तस्मादेव हेतोरिन्द्रियाविषयत्वात्, सञ्चयस्य परमाणुव्यतिरिक्तस्यासत्त्वादिति विस्तरेण प्रागभिहितमेतत्। तस्मात् सर्वथा तुल्यमुभयं कारकत्वेनेति। **तथा स्वार्थे सामान्यगोचरत्वादनुमानवदप्रत्यक्ष**मित्येतस्मिन् साधने कारकहेतुत्वप्रतिपादनार्थः प्रपञ्चस्तुल्य इत्यतिदिशति।

अनुमानं वेत्यादि। वाशब्दो विकल्पार्थः, यदि प्रतिपादितमिदं [8]युक्तिवशात् प्रत्यक्षस्य त्वदभिमतस्यानुमानत्वं मया तत् त्वया स्वग्राहरक्तमनसा स्वसमयप्रसिद्ध्यनुपातिना नेष्यते प्रत्यक्षत्वमेवेष्यते ततस्तस्मात् साधर्म्या**दनुमानं वा प्रत्यक्षं स्यादनेकार्थजन्यत्वात् स्वार्थे सामान्यगोचरत्वा**दित्येताभ्यामेव **हेतुभ्यां प्रत्यक्षव**दित्येते अपि द्वे साधने लेशेनोन्नीते, न स्फुटमिति।

किञ्चान्यत्, एतस्मादेव हेतुद्वयाद्विषयैक्यापत्तेः प्रमाणैक्यमित्यत आह – **[9]द्वयमप्येतदेकमेव, एक-** ६८-१ **लक्षणत्वात्।** स्वसामान्यलक्षणं ह्येकमेव वस्तु विषयोऽस्य प्रमाणद्वयस्येत्युक्तविधिना प्रसक्तत्वात् प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं तदुभयं स्यात्, अनेकार्थजन्यसामान्यैकगोचरत्वात्, चक्षुरादिद्वारजन्मप्रत्यक्षभेदप्रत्यक्षत्ववत्। अनुमानमेव वा स्यात्, तत एव कारणात्, धूमकृतकत्वाद्यनुमिताग्न्यनित्यादिज्ञानानुमानवत्।

---

१ **°त्याग्नि न ज्ञानं जनयतीति** प्र० ॥ २ अत्र 'हेतुप्रत्ययो' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ३ **निमित्तमालम्बन°** प्र०। अत्र 'निमित्तं नालम्बन°' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ४ **इदमसिद्धं द्रष्टव्यंः कथं साधनधिनऽधिपतिधूमः** भा०। **इदमसिद्धं द्रष्टव्यं कथं साधनधिपतिधूमः** य० ॥ ५ **संचयनहेतु°** य० ॥ ६ **°यविषयत्वात्** प्र० ॥ ७ **प्रत्यक्षोप्यन°** प्र० ॥ ८ **युक्तिवक्तात्प्रत्य°** भा०। **युक्तिवत्तात्प्रत्य°** य० ॥ ९ **°ह्यमित्यादि°** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकार्थजन्यत्वाच्च स्वार्थसामान्यगोचरतायां यदाभासं तेषु ज्ञानमुत्पद्यते तथा त आलम्बनम्, प्रत्येकं परमाणुरूपस्य बुद्धावसन्निवेशात् समुदयकृततन्निर्भासतयालम्बनमिति प्राप्तम्। एवं च सति अर्थसन्निकर्षादक्षं प्रति यदुत्पद्यते तज्ज्ञानं

इदानीं [1]वसुबन्धोः स्वगुरोः **'ततोऽर्थाद् विज्ञानं प्रत्यक्षम्'** [वादवि०] इति ब्रुवतो यदुत्तरमभिहितं परगुणमत्सराविष्टचेतसा तत्त्वपरीक्षायां परमोदासीनचेतसा तु येन केनचिदभिप्रायेण स्वमतं दर्शितमेव **दिन्नेन वसुबन्धु**प्रत्यक्षलक्षणं दूषयता, तस्य पुनरर्थो योऽस्तु सोऽस्तु किं नोऽनेन? इदमेव तावदस्तु — **रूपादिष्वालम्बनार्थो** वक्तव्यः [प्र० समु० वृ० १।१५] इति विकल्प्य विकल्पद्वये दोषजातं तल्लक्षणे प्रक्रान्तं तत् तवापि समानमिति प्रतिपादयिष्यन् **नयचक्रकारः** सविशेषं [2]तन्मतविरोधहेतुं स्ववचनजनितमाह — **अनेकार्थजन्यत्वाच्च स्वार्थसामान्यगोचरताया**मित्यादि **शिष्याचार्ययोस्तुल्योत्तरत्वात्।** स्वार्थ इति नीलादिः, स [3]एव किल सामान्यमनेकार्थजन्यत्वात्, [4]अनेकोऽर्थः परमाणवः तज्जन्यं नीलविषयं प्रत्यक्षमत इन्द्रियस्य स्वार्थ इत्येतस्यामनेकार्थजन्यत्वाच्च स्वार्थसामान्यगोचरतायां **यदाभासं तेषु ज्ञानमुत्पद्यते तथा त आलम्बनं** रूपादय इति नीलपीतादित्वेन यथैवाभासन्ते तथैवालम्बनमित्येत-
६८-२ दिष्टम्। किं कारणं त एव नीलादिपरमाणवो नालम्बनमिति चेत्, उच्यते — **प्रत्येकं परमाणुरूपस्य बुद्धावसन्निवेशात्,** [5]एकमेकं प्रति प्रत्येकं परमाणूनां यन्नीलादिरूपं तस्यातीन्द्रियत्वाद्बुद्धौ न सन्निवेशः, तस्मात् किं प्राप्तम्? **समुदयकृततन्निर्भासतयालम्बन**मित्येतत् **प्राप्तम्,** नीलादिरूपस्य तत्समुदायात्मकत्वात्।

एवं च सति परमाणुसञ्चयनीलादिनिर्भासतयालम्बनत्वे सति प्रत्यक्षार्थ एवं [6]जायते, तद्यथा — **अर्थसन्निकर्षादक्षं प्रति यदुत्पद्यते तज्ज्ञानं प्रत्यक्ष**मिति ज्ञानमर्थेन [7]विशेष्यते, अर्थेनेन्द्रियस्य सन्नि-

---

१ 'ततोऽर्थाद् विज्ञानं प्रत्यक्षम्' इति प्रत्यक्षलक्षणं **वादविधौ** बौद्धाचार्येण **वसुबन्धु**नाऽभिहितम्। वसुबन्धोः शिष्यो **दिन्नः**। 'दिन्नः' इति च **दिङ्नागस्यैव** नामान्तरम्। दिन्नेन स्वगुरोर्वसुबन्धोः प्रत्यक्षलक्षणं दूषयितुकामेन **प्रमाणसमुच्चये** **तद्वृत्तौ** च विस्तरेण प्रक्रान्तमित्थम् — "ततोऽर्थाद्विज्ञानं प्रत्यक्षम् [वादवि०] इत्यत्र **ततोऽर्थादिति सर्वश्चेद् येन तत् तत एव न।** यदि 'ततः' इत्यनेन सर्वः प्रत्यय उच्यते, यज्ज्ञानं यस्माद्विषयाद्भवति तस्य व्यपदिश्यते, तत एव तु न भवति, आलम्बनप्रत्ययादेव ज्ञानं न भवति 'चतुर्भिश्चित्तचैत्ताः' [अभि०को० २।६४] इति सिद्धान्तात्। **आलम्बनं चेत् स्मृत्यादिज्ञानं नान्यदपेक्षते** ॥ १५ ॥ यदि 'ततोऽर्थात्' इत्यनेन विषयमात्रम्, स्मृत्यनुमानाभिलाषादिज्ञानमपि आलम्बनान्तरं नापेक्षते, अग्न्यादिज्ञानं हि न धूमाद्यालम्बनम्। रूपादिष्वालम्बनार्थो वक्तव्यः — किं यदाभासं तेषु ज्ञानमुत्पद्यते तथा ते आलम्बनम्, अथ यथा विद्यमाना अन्याभासस्यापि ज्ञानस्य कारणं भवन्ति? ततः किमिति चेत्, यदि यदाभासं तेषु ज्ञानमुत्पद्यते तथा पञ्चानां विज्ञानकायानां सञ्चितालम्बनत्वात् संवृतिसदेवालम्बनमितीष्टं नीलाद्याभासज्ञानेषु ततोऽर्थाद् विज्ञानत्वात् प्रत्यक्षत्वं भवति, तथाहि — तेषु तत्समुदायाध्यारोपे सत्यपि द्रव्यसदाकारो लभ्यते। द्रव्यसङ्ख्याद्याकारोऽपि लप्स्यते, त एव हि द्रव्यादित्वेनाभासन्ते। अथ यथा विद्यमाना अन्याभासस्यापि ज्ञानस्य कारणं भवन्ति तथा सति द्रव्यादिप्रसङ्गदोषो नास्ति तथा तेषामसत्त्वात्, तथापि येन तस्य व्यपदेश इत्येतन्न लभ्यते, प्रत्येकं च ते समुदिताः कारणं न समुदायो व्यवहारसत्त्वात्। एतदेवाह — **यदाभासा न सा तस्माच्चितालम्बं हि पञ्चकम्। यतः सा परमार्थेन तत्र न व्यपदिश्यते** ॥ १६ ॥ इत्यवसरकारिका। चक्षुरादीनामप्यालम्बनत्वप्रसङ्गः, तेऽपि हि परमार्थतोऽन्यथा विद्यमाना नीलाद्याभासस्य द्विचन्द्राद्याभासस्य च ज्ञानस्य कारणीभवन्ति' — **प्र० समु० वृ०** १।१५-१६ ॥ २ **तन्मतविरोधं हेतुं** य० ॥ ३ **एव विकल°** य० ॥ ४ **अनेकार्थः** य० ॥ ५ **एकमेकं प्रत्येकं** प्र० ॥ ६ **ज्ञायते** प्र०। दृश्यतां पृ० ७६ पं० २७ ॥ ७ **विशिष्यते** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्यक्षम्। न तदुपपद्यते, तस्यार्थस्याभावात्। न च सञ्चयोऽर्थः, संवृतिसत्त्वात्। अतो नासावुत्पत्तिप्रत्यय इष्यत इति विशेषणविशेष्यत्वाभावाज्ज्ञानत्वप्रत्यक्षत्वाभ्युपगमहानिः।

चक्षुरादिज्ञानेष्वतः स्वनिर्भासव्यतिरिक्तप्रमेयाभावादसत्सत्प्रतिपत्तेरप्रत्यक्षत्वेन प्रसिद्धेन प्रत्यक्षत्वनिराकरणादनुमानविरोधः।

यथा चात्र समानानेकार्थजन्येन्द्रियस्वार्थाद्यदुत्पद्यते तदपि च तैमिरकवद-

---

कर्षादुत्पद्यमानं ज्ञानमक्षं प्रति वृत्तेः प्रत्यक्षमिति ज्ञानेऽर्थस्य विशेषणता। सन्निकर्षाद्वा अक्षं प्रति यो वर्ततेऽर्थः स प्रत्यक्षः, अर्थेन्द्रियसन्निकर्षादक्षं प्रति वृत्तेः प्रत्यक्षमितत्वादुपचरितवृत्तिरर्थोऽक्षेण [1]विशेष्यते इति। अत्रोत्तरमुच्यते – **न तदुपपद्यते** प्रत्यक्षं **तस्यार्थस्याभावात्**। 'एवं च सति' इत्युच्चार्य सञ्चयः प्रसक्त इत्यभ्युपग[2]म्य दूषयति – यस्मान्न **च सञ्चयोऽर्थः**। किं कारणं नार्थः सञ्चय इति चेत्, **संवृतिसत्त्वात्**। संवृतिसत्त्वमद्रव्यत्वाद् वान्ध्येयवत्। **अत** एतस्मात् कारणाद् **[3]नासावुत्पत्तिप्रत्यय [4]ईष्यते,** उत्पत्तौ प्रत्यय आलम्बनप्रत्यय इत्यर्थः, सोऽसत्त्वान्नेष्यते। **इति**शब्दो हेत्वर्थे, एतस्मात् कारणात् सोऽर्थो न विशेषणेन विशेष्यस्तस्मा**द्विशेषणविशेष्यत्वाभावाज्ज्ञानत्वप्रत्यक्षत्वाभ्युपगमहानिः,** 'ज्ञानं प्रत्यक्षम्' इत्येतदभ्युपगतं विशेषणस्य विशेष्यस्य चार्थस्याभावात् किम्विषयं ज्ञानं प्रत्यक्षं च स्यादिति हीयते।

किञ्चान्यत् – **चक्षु[5]रादिज्ञानेष्वत** इत्यादि याव**दनुमानविरोधः**। चक्षुरादीन्द्रियबुद्धयः स्वविषयनिर्भासस्वरूपमात्रा एव, ज्ञानत्वात्, वस्तुत्वात्, सत्त्वात्, तैमिरिकादिज्ञानवत्। अतश्चक्षुरादिविज्ञानेषु A६९-१ **स्वनिर्भासव्यतिरिक्तप्रमेयाभावः**। ततश्च तैमिरिकस्य केशोन्दुक-मशक-मक्षिका-द्विचन्द्रादिदर्शनवत् सा तु **असत्सत्प्रतिपत्ति**रेव, 'असदवस्तु सद्वस्तु' इति [6]प्रतिपत्तिः। तस्माद्धेतो**रसत्सत्प्रतिपत्ते**र्विपर्ययप्रतिपत्तेस्तस्य ज्ञानस्याप्रत्यक्षत्वं प्रसिद्धमलातचक्रादिज्ञानवत्, तेन **अप्रत्यक्षत्वेन प्रसिद्धेन** त्वया प्रतिज्ञातं तत्**प्रत्यक्षत्वं** निराक्रियते, त**न्निराकरणादनुमानविरोधः**। ननु प्रत्यक्षनिराकरणात् प्रत्यक्षविरोधोऽयं कथमनुमानविरोधः? इत्यत्रोच्यते – त्वन्मते[7]न प्रत्यक्षधर्मस्य विकल्पस्योक्तानुमानेन निराकरणान्निर्विकल्पकप्रत्यक्ष[8]त्वाभावात् कतमत् तत् [9]प्रत्यक्षं येन निराक्रियेत यद्वा निराकुर्यात्? अतोऽनुमानविरोध एवायम्।

किञ्चान्यत् – घटसङ्ख्योत्क्षेपणसत्ताघटत्वाद्याकारज्ञानानामपि प्रत्यक्षत्वप्रसङ्गः। कथमिति चेत्, उच्यते – **यथा चात्रे**त्यादि [10]दार्ष्टान्तिकं मुक्त्वा दृष्टान्तं तत्साधर्म्यं च वर्णयति। यथा चात्र भवन्मतेन **[11]समानानेकार्थजन्येन्द्रियस्वार्थात्,** समानेन नीलवर्णेनाऽनेकेन परमाणुसङ्घातलक्षणेनार्थेन जन्य इन्द्रियस्वार्थः, नासाधारणो वस्त्वभिमतस्वलक्षणस्वार्थः, कस्मात्? [12]त्यक्त्वा **तत्रानेकार्थजन्यत्वात् [13]स्वार्थे सामान्य-गोचरं ज्ञानम्** [प्र० समु० १।४] इति वचनादन्यादृशः स्वार्थस्येष्टत्वात्, तादृशः स्वार्थाद् **यदुत्पद्यते**

---

१ **विष्यते** प्र० ॥ २ °**गमय्य दूष**° भा० ॥ ३ **नासाधूत्पत्ति** य० । **नासात्पत्ति**° भा० ॥ ४ **हीष्यते** वि० ॥ ५ °**रादिषु ज्ञाने**° य० ॥ ६ **प्रतिपत्तितस्तसा**° य० ॥ ७ °**न सत्पक्षधर्मस्य विकल्पस्यो**° भा० । °**न सत्पक्षधर्मस्य विपक्षस्यो**° य० ॥ ८ °**प्रत्यत्वाभावात्** भा० ॥ ९ **प्रत्यक्ष येन** य० ॥ १० **दार्ष्टान्तिकमुक्त्वा** य० ॥ ११ **समानासमानानेका**° प्र० ॥ १२ अत्र 'तन्त्यक्त्वा' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १५ **स्वार्थसामान्य**° य० ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

प्रमाणम्, समानानेकार्थातथाभूतार्थान्नीलादिसङ्घातात् प्रज्ञप्तिसत आलम्बनात् परमार्थसदाकारो लभ्यते, त एव हि परमाणवो नीलादित्वेनाभासन्ते इति तद्विषयं ज्ञानं प्रत्यक्षमिष्टं तथा घटसङ्ख्याद्याकारेभ्यः प्रत्यक्षज्ञानजनकार्थसधर्मभ्यः समानानेकार्थजन्येन्द्रियस्वार्थेभ्यः समानानेकार्थातथाभूतार्थेभ्यः परमार्थसदाकारो लप्स्यते इति घटादिज्ञानं प्रत्यक्षं स्यात्, संवृतिसदालम्बनत्वात्, नीलादिज्ञानवत्। नीलादिज्ञानं वा न प्रत्यक्षं स्यात्, घटादिज्ञानवत्। त एव हि ते परमाणव आभासन्ते। एवमुभयोस्तुल्ये जनकत्वे कुत एतत्–नीलाद्याभासं ज्ञानं प्रत्यक्षं न घटाद्याभासमिति। यथैव हि परमाण्ववयवसमुदाये त एवाभासन्ते तथा घटादिज्ञानेष्वपि समुदितास्त एवाभासन्ते, तथास्थेष्वेव घटबुद्धिः प्रवर्तते प्रज्ञप्तिश्च एवं तथास्थेष्वेव नीलादिरूपबुद्धिः प्रवर्तते प्रज्ञप्तिश्च।

'ज्ञानम्' इत्यभिसम्भन्त्स्यते, **तदपि च तैमिर[1]कवदप्रमाणम्,** तिमिरे भवं तैमिरम्, यथा द्विचन्द्र-
A६९-२ दर्शनं तथा समानेनाप्यनेकवर्णमणिसमूहेन जन्य इन्द्रियस्वार्थो मेचकस्तस्मादुत्पद्यमानं तदपि च तैमिर[1]कवदप्रमाणम्। कुतः? यस्मात् समानानेकार्थात् तस्मादतथाभूतार्थात् त[2]न्नीलादिसङ्घाताज्ज्ञानमुत्पद्यते, अतथाभूतार्थत्वमस्य संवृतिसत्त्वमत आह – **स[3]मानानेकार्थातथाभूतार्थान्नीलादिसङ्घातात् प्रज्ञप्तिसत आलम्बनात्** संवृतिसतः **परमार्थसदाकारो** नीलादिको **लभ्यते,** यतस्त **एव हि** परमार्थसन्तः **परमाणवो नीलादित्वेनाभासन्त इति तद्विषयं ज्ञानं** नीलादिप्रत्यक्ष**मिष्टम्। तथा** निरा[4]कृतेभ्यः प्रत्यक्षत्वेन **घटसङ्ख्याद्याकारेभ्यो** घटसङ्ख्योत्क्षेपणसत्ताघटत्वाद्याकारेभ्यः **प्रत्यक्षज्ञानजनकार्थसधर्मभ्यः,** कतमेन सा[5]धर्म्येण सधर्मभ्य इति चेत्, उच्यते – **स[6]मानानेकार्थजन्येन्द्रियस्वार्थेभ्य** इत्येतत्सधर्मभ्यः। किमुक्तं भवति? **स[6]मानानेकार्थातथाभूतार्थेभ्यः, परमार्थसदाकारो लप्स्यते** नीलादिसङ्घातवदित्यतस्तदुपसंहृत्य साधनमाह – **घटः** संयुक्तो वियुक्तः परोऽपरः स्पन्दत **इत्यादि ज्ञानं प्रत्यक्षं** स च तद्विषयः प्रत्यक्षः **स्यात्, संवृतिसदालम्बनत्वात्, नीलादिज्ञानवत्। नीलादिज्ञानं** तदर्थश्च **न प्रत्यक्षे वा स्याताम्,** संवृतिसत्त्वात्, **घटादिज्ञानार्थवत्।** वाशब्दस्य विकल्पार्थत्वादुभयत्र ज्ञानोत्पादकार्थाविशेषात्। तत् समर्थयति – **त एव हि ते परमाणवो** य एव घटादित्वे**नाभासन्ते** य एव नीलादित्वेनाभासन्त इति। **एवमुभयो**र्नीलादिघटादिज्ञानयो**स्तुल्ये जनकत्वे** तत् **कुत एतत्–नीलाद्याभासं ज्ञानं प्रत्यक्षं न घटाद्याभासमिति?** स्वरुचिमात्राद[7]न्यत् कारणं नास्तीत्यर्थः।

यथैव हीत्यादि यावत् **समुदितास्त एवाभासन्त** इति बुद्धावाभासनसामर्थ्याविशेषाच्च जनकहेत्वविशेषमेव दर्शयति। अत्र च यथा **परमाण्ववयवस[8]मुदाये त एव** नीलप्रत्यवभासत्वाज्ज्ञानस्या-
B६९-१ कारसन्निवेशविशिष्टाः सामान्यत **आभासन्ते तथा घटादिज्ञानेष्वपि** आकारविशेषेण **समुदितास्त ए[9]वाभासन्ते,** नान्यो घटो नामास्ति यस्तथाभासेत। **तथास्थेषु** तेन प्रकारेण स्थितेषु रूपादिष्वेव **घट**

---

१ °रिकवद° य०॥ २ तन्नादिसंघातजनमुत्पाद्यते प्र०॥ ३ समानासमानानेका° प्र०॥ ४ °कृतेभ्यः सत्पक्षत्वेन घट° य०। °कृतेभ्या घट° भा०॥ ५ साधर्म्येन य०॥ ६ समानासमानानेका° य०॥ ७ °दन्यत्र प्र०॥ ८ °समुदायनाव नीलप्रत्य° प्र०॥ ९ एव भासंते य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथोच्येत – नीलादिसमुदाये द्रव्यसदाकारो विद्यते, तदण्वात्मकत्वात् तथासत्त्वात् तत्प्रत्यक्षत्वं न्याय्यम् । न तु घटाद्याकारः, अतत्परमाणुत्वात् तथाऽसत्त्वात् । एतच्च तुल्यमुभयत्राविशेषात् । यथैव तस्मिन् घटाद्यनाकारता तदनणुत्वात् तथाऽसत्त्वात् एवं रूपाद्याकारस्यानाकारता सञ्चितस्यैन्द्रियकत्वादालम्बनत्वात् तदनणुत्वात् तथाऽसत्त्वादन्यथाऽविषयत्वादनालम्बनत्वादप्रत्यक्षत्वात् ।

पक्षान्तरापत्तिश्चैवं यथा ते विद्यन्ते तथा त आलम्बनमिति । यथा चोक्तं प्रत्येकं

इति बुद्धिः प्रवर्तते प्रज्ञप्तिश्च एवं तथास्थेष्वेव परमाणुषु नीलादिरूपबुद्धिः प्रवर्तते प्रज्ञप्तिश्चेति सर्वमुभयत्र तुल्यम् ।

अत्र परेणोभयोर्वैधर्म्यप्रदर्शनार्थम**थोच्येत – नीलादिसमुदाय**[1] इत्यादि यावत् **तदण्वात्मकत्वात् तथासत्त्वा**दिति । **नीलादिसमुदाये** नीलादि**द्रव्यसदाकारः** परमार्थसदाकारः स **विद्यते** । किं कारणम्? **तदण्वात्मकत्वात्** तेषां नीलादीनामण्वात्मकत्वात् अणूनां द्रव्य**सत्त्वात्** । **तत्प्रत्यक्षत्वं न्याय्यम्**, न्यायादनपेतं न्याय्यं युक्तमित्यर्थः, तद्विषयस्य च ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वं तत्प्रत्यक्षत्वम् । **न तु घटाद्याकारो** न त्वस्ति घटसङ्ख्योत्क्षेपणाद्याकारः, **अतत्परमाणुत्वात्**, तस्याकारस्य परमाणुत्वं तत्परमाणुत्वम्, न तत्परमाणुत्वमतत्परमाणुत्वम्, अतोऽतत्परमाणुत्वात् । ततः किम्? **तथाऽसत्त्वात्**, तेन प्रकारेणासत्त्वात् परमाणुत्वेन तेषां घटाद्याकाराणामसत्त्वात् ।

अत्राचार्य उत्तरमाह–**एतच्च तुल्यमुभयत्राविशेषात्**, परमाणुजन्यत्वादेव नीलादिघटाद्याकारप्रत्यक्षयोः । **यथैव तस्मिन्** रूपादिसमुदाये **घटाद्यनाकारता तदनणुत्वात्**, तस्य घटाद्याकारस्यानाकारता तस्याकारस्यानणुत्वात्, **तथाऽसत्त्वा**दनणुसत्त्वेन घटाद्याकारेणासत्त्वाद्[2]णुत्वेनैवासत्त्वात् । **एवं रूपाद्याकारस्यानाकारता** अनन्तरोक्तहेतोः **सञ्चितस्यै[3]न्द्रियकत्वात्** परमाणुसमुदायस्यैन्द्रियकत्वात् तस्यै**वालम्बनत्वात्**, असञ्चितस्यातीन्द्रियत्वादत एवानालम्बनत्वात्, **तदनणुत्वात्** तस्य सञ्चितस्यै[4]न्द्रियकस्यालम्बनस्यानणुत्वात् **तथाऽसत्त्वा**दनणुत्वादेवासत्त्वात्, **अन्यथा[ऽ]विषयत्वात्** परमाणुत्वेनाविषयत्वात्, अविषयत्वादेव **अनालम्बनत्वात्**, अत एव **अप्रत्यक्षत्वात्** । B६९-२

किञ्चान्यत्–**पक्षान्तरापत्तिश्चैवम्** । **यदाभासं[5] तेषु ज्ञानमुत्पद्यते तथा त आलम्बनम्** [प्र० समु० वृ० १।१५] इत्येवं पक्षं परित्यज्य **यथा ते विद्यन्ते तथा त आलम्बनमि**त्ययं पक्ष आश्रितो भवति, पक्षान्तरगमनं च वादावसानायेति । किञ्चान्यत्, अस्मिन्नपि च पक्षे त्वयैव **वसुबन्धुं** प्रत्युक्ता ये दोषास्ते तवापि स्युः । यस्मात् त्वयापि चायं पक्षोऽङ्गीकृत एव । कथमिति चेत्, तद्दर्शयति–**यथा च** प्रत्यक्षोत्पत्तिबीजसञ्जननार्थमुक्तम्–**प्रत्येकं च ते समुदिताः कारण**मिति । **तत्रानेकार्थजन्यत्वात् स्वार्थे सामान्यगोचरम्** [प्र० समु० १।४] इत्यस्य व्याख्यायां[6] पुनर्वसुबन्धुं दूषयितुकामेन विकल्पितः स एवार्थः – '**किं[7] यथा विद्यमाना अन्याभासस्यापि विज्ञानस्य कारणं भवन्ति** तथा प्रत्यक्षस्यालम्बनं **रूपादयः**' इति पूर्वपक्षत्वेन । एतयोश्च वचनयोरेकाकारार्थत्वादसावपि पक्षोऽभ्युपगतस्त्वया । ततः को

---

१ °समुदयेत्यादि प्र० ॥ २ °दणुत्वेनैव सत्वात् भा० ॥ ३ °स्यैन्द्रियिकत्वात् य० ॥ ४ °स्यैन्द्रियिक° भा० ॥ ५ दृश्यतां पृ० ९६ पं० २५ ॥ ६ व्याख्याया य० । व्याख्यया भा० ॥ ७ दृश्यतां पृ० ९६ पं० २६ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

च ते समुदिताः कारणम् [प्र० समु० वृ० १।१५]। **एवमपि न त आलम्बनमतीन्द्रियत्वात्। एवम्विधालम्बनतायां च धूमोऽग्निप्रत्यक्षज्ञानालम्बनं स्यात्, तथा विद्यमानत्वेऽन्यथाभासस्यापि ज्ञानस्य कारणीभवनात्, त्वदुक्तप्रत्यक्षालम्बनवत्। चक्षुराद्यपि वालम्बनं स्यात्।**

न च ग्राह्यस्य नीलादेर्विषयस्य चक्षुरादिविज्ञानस्य नीलादिपरमाणव आल-

---

दोष इति चेत्, **एवमपि न त आलम्बनमतीन्द्रियत्वा**दिन्द्रियगोचरातीतत्वाद् [1]**गगनव**दिन्द्रियज्ञानालम्बनं न भवन्ति परमाणवः।

किञ्चान्यत्, उत्तरदोष उच्यतेऽभ्युपगम्यापि **एवंविधालम्बनतायां चे**त्यादि यावत् **त्वदुक्तप्रत्यक्षालम्बनव**दिति। 'अन्यथा विद्यमानाः परमाणवोऽतीन्द्रियत्वेन विद्यमानाः समूहाभासस्यापि ज्ञानस्य कारणं भवन्ति' इत्येवंविधालम्बनतायां सत्यां **धूमोऽग्निप्रत्यक्षज्ञानालम्बनं स्यात्, तथा**

७०-१ **विद्यमानत्वेऽन्यथाभासस्यापि ज्ञानस्य कारणीभवनात्।** धूमत्वेन विद्यमानो धूमोऽग्न्याभासस्यान्याभासस्यास्वाभासज्ञानस्य कारणीभवन्नुपलभ्यत इति पक्षधर्मत्वमस्त्यस्य। **त्वदुक्तप्रत्यक्षालम्बनव**दिति दृष्टान्ते तस्य सपक्षानुगमनं दर्शयति। यथा त्वदुक्तस्य प्रत्यक्षस्यालम्बनं परमाणवोऽन्यथा विद्यमानाः परमाणुत्वेन विद्यमानाः समूहाभासज्ञानस्य कारणं भवन्ति तथा धूमोऽपि तत्साधर्म्यात् तज्जनितज्ञानालम्बनस्याग्नेः प्रत्यक्षालम्बनतया व्याप्तत्वात् प्रत्यक्षालम्बनतामात्मनः साधयति। धूमनिमित्ताग्निज्ञानं वा प्रत्यक्षं स्यात्, तथा विद्यमानत्वेऽन्याभासविज्ञानजनकार्थालम्बनत्वात्, त्वदुक्तप्रत्यक्षवत्। तत्साधर्म्यादेवं[2] वा त्वदुक्तप्रत्यक्षं [3]सहार्थेनाप्रत्यक्षं स्याद् धूमजनिताग्न्यर्थज्ञानवत्।

किञ्चान्यत्, तस्मादेव हेतो**श्चक्षुरा[4]द्यपि वालम्बनं स्यात्**, एवमयमतिप्रसङ्गदोष एवंवादिनः। यदि कारणमालम्बनं विज्ञानस्या[5]न्याभासस्यापीष्टं ततश्चक्षुरादीन्द्रियाणि चक्षुरादिविज्ञानानामालम्बनानि स्युः, अन्यथा विद्यमानत्वेऽन्याभासस्यापि विज्ञानस्य कारणीभवनाच्चक्षुरिन्द्रियं चक्षुर्विज्ञानस्यालम्बनं स्याद् रूपादिपरमाणुवत्। तज्ज्ञानं वा चक्षुरिन्द्रियालम्बनं स्यात्, तज्जन्यत्वे सत्यन्याभासत्वात्, परमाणुजन्यरूपविज्ञानवत्। एवं श्रोत्रादिज्ञानानि। परमाण्वाल[6]म्बनत्वमभ्युपगम्यायं दोष उक्तः।

७०-२ **न च ग्राह्यस्य नीलादेर्विषयस्ये**त्यादि। चक्षुरादिभिर्ग्राह्यस्य नीलादेः समूहात्मकस्य, विषयो गोचरः, सम्बन्धि **चक्षुरादिविज्ञानम्**, तस्य **नीलादिपरमाणवो** न **आलम्बनम्, अन्यथा परमार्थतो विद्यमानत्वात्।** [7]**अन्यथे**ति स्वाभासादन्यथाभासन्ते न तथा परमार्थतो विद्यन्ते परमार्थतस्तु स्वलक्षणा अप्यग्राह्या विद्यन्ते, तस्मादन्यथा परमार्थतो विद्यमानत्वात्[8] **चक्षुरादिव**न्नीलादिग्राह्यविषयज्ञानालम्बना न भवन्ति परमाणवः। यथा चक्षुरादीन्द्रियाण्यन्यथा परमार्थतोऽनीलादिपरमाण्वात्मकानि सन्ति अन्यथा नीलादिज्ञानोत्पत्तौ हेतुभावं बिभ्रति नालम्बनानि तथा परमाणव इति। इतश्च परमाण्वालम्बनं न भवति

---

१ **गमनव**° प्र०॥ २ °**म्यादेव वा तदुक्त**° भा०। °**म्यादेव तावदुक्त**° य०॥ ३ भा० विनान्यत्र–**सहात्सहार्थेन** वि०। **सहात्महार्थेन** पा०। **सतात्महार्थेन** डे० लीं०। रं०ही० प्रत्योस्तु अयं पाठ एव नास्ति॥ ४ °**रादपि** प्र०॥ ५ °**स्याभास**° प्र०॥ ६ °**लम्बनमभ्यु**° य०॥ ७** एतच्चिह्नान्तर्गतः **अन्यथेति** इत्यत आरभ्य °**मानत्वात्** इत्यन्तः पाठो य० प्रतिषु नास्ति॥ ८ **परमानत्वात्** भा०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

म्बनम्, अन्यथा परमार्थतो विद्यमानत्वात् तदसाधारणविषयत्वाद्वा, रसज्ञानवत्।

ननु च प्रत्येकमेव ते समुदिताः कारणम्, तथासन्त एव समुदिताः परमाणवश्चक्षुरादिज्ञानोत्पत्तिहेतुत्वादालम्बनम्, तदवस्थानां ज्ञानोत्पादनशक्त्यभिव्यक्तेः, चक्षुरादिपरमाणूनामिव। न ह्येक इन्द्रियपरमाणुर्विषयपरमाणुर्वा विज्ञानमुत्पादयितुमलम्, न तत्समुदायः प्रज्ञप्तिसत्त्वात्। प्रत्येककारणतायामणूनां समुदाये दर्शनशक्तिव्यक्तिः, शिबिकावाहकसमुदायवहनशक्तिवत्, अन्धपङ्क्तिवत् प्रत्येकादर्शनवैलक्षण्येन।

चक्षुर्विज्ञानम्, **तदसाधारणविषयत्वाद्वा,** तस्या[1]साधारणविषयत्वाच्चक्षुर्विज्ञानस्य। असाधारण एकैको नीलपरमाणुर्विषयोऽस्येति तदसाधारणविषयत्वम्, तच्च सिद्धम्, **प्रत्येकं च ते समुदिताः कारणम्** [प्र[2]० समु० वृ० १।१५] इति वचनात्। तस्मादसाधारणविषयत्वाद्वा **रसज्ञानवत्,** यथा रसज्ञानमसाधारणविषयत्वान्नीलपरमाण्वालम्बनं न भवत्येवं चक्षुर्विज्ञानमपि। **वा**शब्दात् तन्नीलपरमाणवश्चक्षुर्विषया न भवन्ति, **असाधारणविषयत्वात्,** असाधारणाश्च ते विषयाश्च, **रसज्ञानवत्,** रसज्ञाने इव रसज्ञानवत्, यथा रसज्ञाने रसलक्षणोऽर्थोऽसाधारणविषयत्वात् त्वन्मतेनैव चक्षुर्विज्ञानविषयो न भवति एवं नीलपरमाणव इति।

इतर आह – **ननु च प्रत्येकमेव ते समुदिताः कारण**मित्यादि या[3]वद**न्धपङ्क्तिवत् प्रत्येकादर्शनवैलक्षण्येने**ति। ननु मया विशेष्योक्तम् – प्रत्येकमेव ते समुदिताः कारणमिति। किमुक्तं भवति? ७१-१ **तथासन्त एव** परमाणुत्वेन परमार्थसन्त एव **समुदिताः परमाणवश्चक्षुरादिज्ञानोत्पत्तिहेतुत्वादालम्बनम्।** किं कारणम्? **तदवस्थानां ज्ञानोत्पादनशक्त्यभिव्यक्तेः,** समुदाय अवस्था येषां ते तदवस्थाः, तदवस्था एव हि ज्ञानमुत्पादयितुं शक्ताः, सा हि ज्ञानोत्पादनशक्तिः प्रत्येकं विद्यमा[4]नापि नाभिव्यज्यते, समुदायेऽभिव्यज्यते। को दृष्टान्तः? **चक्षुरादिपरमाणूनामिव** प्रत्येकं रूपदर्शनशक्तानामपि न सा शक्तिरभिव्यज्यते समुदाये त्वभिव्यज्यते, तद्वदालम्बनपरमाणूनामपि। विषय-विषयिपरमाणूनां प्रत्येकं तच्छक्तीनामप्यसमुदितानां शक्त्यभावं तुल्यं दर्शयति – **न ह्येक इन्द्रियपरमाणुर्विषयपरमाणुर्वा विज्ञानमुत्पादयितुमल**मिति। **न तत्समुदायः प्रज्ञप्तिसत्त्वात्,** नापि तेषामिन्द्रियविषयपरमाणूनां समुदायो विज्ञानमुत्पादयितुमलं प्रज्ञप्तिसत्त्वात् परमार्थतोऽसत्त्वादित्यर्थः। तस्मादेकमेकं प्रति कारणभावः प्रत्येककारणता, तस्यां सत्यामेव **प्रत्येककारणतायामणूनां समुदाये दर्शनशक्तिव्यक्तिः।** किमिव? **शिबिकावाहकसमुदायवहनशक्तिवत्,** यथा शिबिकावाहकानां प्रत्येकं विद्यमानैव सा वहनशक्तिः समुदायेऽभिव्यज्यते तथेन्द्रियविषयपरमाणूनां दर्शनदृश्यशक्तिः। वैधर्म्येण **अन्धपङ्क्तिः प्रत्येकादर्शनवैलक्षण्येन,** यथान्धानां प्रत्येकमसती द[5]र्शनशक्तिव्यक्तिस्तत्पङ्क्तावपि न भविष्यति त[6]थेहेन्द्रियविषयद्रष्टृदृश्यशक्तयो नाभविष्यन्, भवन्ति तु। तस्मात् प्रत्येकं विद्यमानशक्तय एवेन्द्रियविषयपरमाणवः समुदायेऽ- ७१-२ भिव्यक्तशक्तयो भवन्तीति।

---

१ **तस्य साधा**° प्र० ॥ २ दृश्यतां पृ० ९६ पं० ३० ॥ ३ **यावदत्वपंक्तिव प्रत्येका**° भा०। **यावदत्वपंक्ति च प्रत्येका**° य० ॥ ४ °**मानाभिव्यज्यते** य० ॥ ५ **दर्शनीशक्ति**° प्र० ॥ ६ **तथेन्द्रि**° य० ॥

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

नन्वेवमभ्युपगतनिराकरणफलैवेयं प्रत्यक्षव्यवस्था, असञ्चितपरमाण्वालम्बनश्रयणात् प्रत्येकदर्शनशक्तिख्यापनाज्जनकानन्यथात्वात् सञ्चयाभावात् ।

आदिप्रतिज्ञानवत् स्वलक्षणविषयत्वप्रतिसमाधानेन निर्वहणमेतदनेकार्थजन्यस्वार्थसामान्यगोचरनिरसनम् । प्रत्यवेक्षितपूर्वापरानुमतनिगमनपरिग्रहेण वा

अत्रोच्यते – **नन्वेवमभ्युपगतनिराकरणफलैवेयं प्रत्यक्षव्यवस्था** । अभ्युपगतं सञ्चितालम्बनाः **पञ्च** विज्ञानकायाः [[1]अभि० पि०] इति, तस्याभ्युपगतस्य निराकरणं फलमस्याः प्रत्यक्षव्यवस्थायाः । कुतः ? **असञ्चितपरमाण्वालम्बनश्रयणात्**, प्रत्येकं दर्शनशक्तिमतामिन्द्रियविषयपरमाणूनां दर्शनशक्तिव्यक्तिरित्यस्यां कल्पनायां नन्वसञ्चिताः परमाणवश्चक्षुर्विज्ञानोत्पाद[2]नशक्ता इत्येतदाश्रितं भवति पञ्चानां विज्ञानकायानामसञ्चितालम्बनत्वम् । तच्चाभ्युपगतं [3]निरुणद्धि सञ्चिता[4]लम्बनत्वमिदं कल्पनान्तराश्रयणम् । किं कारणम् ? **प्रत्येकदर्शनशक्तिख्यापनात्**, शिबिकावाहकसाधर्म्यात् त एव हि दर्शनशक्तियुक्ताः प्रत्येकमिति भवति । स्यान्मतम् – ननु प्रत्येकशक्तानामेव सञ्चये तच्छक्त्यभिव्यक्तिरित्युक्तम् । आचार्य आह – [5]सत्यम्, उक्तमेतत्, अयुक्तम्, किं कारणम् ? **जनका[6]नन्यथात्वात्**, न हि ज्ञानस्य जनकेभ्यः परमाणुभ्योऽन्यः सञ्चयोऽस्तीति प्रागेतद् विस्तरेण प्रतिपादितम्, तस्माज्जनका[7]नन्यथात्वात् **सञ्चयाभावात्** प्रत्येकं दर्शनशक्त्यभिर्व्यक्ति[8]प्रत्यक्षव्यवस्था अभ्युपगतनिराकरणफलैवेयम् । अथवा जनकानामन्यः प्रकारोऽ[9]न्यथा, तद्भावोऽन्यथात्वम्, तत्प्रतिषेधो जनकानन्यथात्वम्, तस्माज्जनकानां परमाणूनामतीन्द्रियाणामनन्यथा[10]त्वादैन्द्रियकत्वव्यवस्थाना[11]भावात् सञ्चयस्यार्थान्तरभूतस्याभावा[12]दसञ्चितपरमाण्वालम्बनश्रयणं तदवस्थम् ।

अथवा युक्तैषा कल्पना त्वयाश्रयितुं 'स्वलक्षणविषयं प्रत्यक्षम्' इत्येतत्प्रतिज्ञानसंवादित्वात् तन्नि-
७२-१ र्वोढुकामेन । यस्मात् **प्रत्येकं ते समुदिताः कारणम्** [[13]प्र० समु० वृ० १।१५] इत्येतत् प्रत्यक्षविषयसमर्थनवचनमादिप्रतिज्ञानेन तुल्यं वर्तत इति **आदिप्रतिज्ञानवत्**, आदिप्रतिज्ञानानुरूपम्, या हि प्रतिज्ञा 'स्वलक्षणविषयं प्रत्यक्षम्' इति सैतेन वचनेन निरुह्यते, यस्मात् **स्वलक्षणविषयत्वप्रतिसमाधानेन निर्वहणमेतत्** 'स्वलक्षणविषयं प्रत्यक्षम्' इति आदौ प्रतिज्ञाय [13]प्रत्येकं ते समुदिताः कारणमिति ब्रुवताऽणूनां स्वलक्षणत्वात् [14]प्रत्यवेक्षितपौर्वापर्यसाध्यसाधनसम्बन्धं हि वक्तव्यम् । अहो साधु, किन्तु पुनरत्र देवानांप्रिय भवतो दोषजातम् । किं तत् ? **अनेकार्थजन्यस्वार्थसामान्यगोचरनिरसनम्**, तत्रा**नेकार्थजन्यत्वात् स्वार्थे सामान्यगोचरम्** [प्र० समु० १।४] इति चोद्योत्तरपक्षपरिग्रहेण [15]प्रत्यवेक्षितपौर्वापर्यसौस्थित्यार्थनिगमनवचनमनेन तु निरस्यते । अथ मा भूदेष दोष इति **प्रत्यवेक्षितपूर्वापरानुमत-**

---

१ दृश्यतां पृ० ६४ पं० १ ॥ २ °दनशक्त्या य० । °दननशक्ता भा० ॥ ३ निरुद्धि प्र० ॥ ४ °लंबनत्वमिदं य० । °लंबमनत्वमिदं भा० ॥ ५ 'सत्यम्, उक्तमेतत्, अयुक्तं तूक्तम्' इत्यपि पाठः सम्भवेदत्र ॥ ६ °नन्यथात् प्र० ॥ ७ °नन्यत्वात् य० ॥ ८ °व्यक्तप्रत्यक्ष° वि० । अत्र °व्यक्तेः प्रत्यक्ष° इति सम्भवेत् पाठः ॥ ९ °न्यथान्यथा भा० । °न्यथा २ य० ॥ १० °त्वादैन्द्रियिकत्व° भा० ॥ ११ °भावा संचय° प्र० ॥ १२ °दसत्तिपरमाण्वा° प्र० ॥ १३ दृश्यतां पृ० ९६ पं० ३० ॥ १४ प्रत्यवेक्षितप्योर्थोपर्यसाध्य° भा० । प्रत्यवेक्षितव्योर्थौपर्यसाध्य° य० ॥ १५ प्रत्यवेक्षितयाथापर्यं सौस्थित्या° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिप्रतिज्ञातार्थनिरसनम् ।

अनेकान्तवद्द्वयोरन्तयोरवस्थातव्यम्–प्रत्येकतायां चावस्थेयमग्न्यम्भोवच्च तदशक्यशक्ते समुदाये, साक्षात् त्वदुक्ततत्त्वत्वादनेकैकत्वभृशगत्यर्थसमुदायपरिग्रहाच्च ।

इतरथापि चैषां समुदाय एव न स्यात्, प्रत्येकमभूतत्वात्, वन्ध्यापुत्रवत् । बौद्धैरेवोक्ता त्रयातिरिक्तसंस्कृतक्षणिकानित्यत्वाभ्युपगमेन सहासङ्गतिरस्य, प्रत्येक-

---

निगमनपरिग्रहेण वा आदिप्रतिज्ञातार्थनिरसनम् । वाशब्दस्य [1]विकल्पत्वात् स्वलक्षणविषयप्रत्यक्षत्वं वा निरस्यते, अनेकार्थजन्यस्वार्थसामान्यगोचरता वा, उभयं वा निरस्यत इति ।

किञ्चान्यत्, [2]**प्रत्येकं ते समुदिताः कारणमिति** वचनादव्यस्ता इत्येतदर्थादापन्नमिति [3]तदेव पुनः [4]स्मारयति दोषान्तरैः – **अनेकान्तवद् [5]द्वयोरन्तयोरवस्थातव्यम् ।** द्वावन्तौ द्वौ देशौ, द्वयोर्देशयोरवस्थेयं तैः परमाणुभिरेकतः प्रत्येकसमुदितैः । किमिव ? अनेकान्तवत् । अनेकान्तेन तुल्यं वर्तत इत्यनेकान्तवत्, यथा द्रव्यान्त[6]पर्यायान्तयोरवतिष्ठमानाः परमाणवस्त एव तत्समुदायश्चेति व्यपदिश्यन्ते तथा **प्रत्येकतायां चावस्थेय**मित्यनेकान्तसाधर्म्यं दर्शयति । **च**शब्दः समुच्चये, किं समुच्चिनोति ? समुदायमुपरितनम्, ७२-२
प्रत्येकतायां च समुदाये [7]चावस्थातव्यमिति । **[8]अग्न्यम्भोवच्च तदशक्यशक्ते समुदाये,** अग्नेः शक्यं दहनादि ह्लादनस्नेहनाद्यशक्यम्, अम्भसस्तु स्नेहनह्लादनादि शक्यमशक्यं दहनादि, तदशक्ये शक्तस्तदशक्यशक्तः प्रत्येकाशक्ये शक्तः समुदायः । वाक्यार्थस्तु लोकव्यापिनोऽपि परमाणवः सङ्घातभेद[9]परिणामापेक्षा एव चाक्षुषत्वादिभाजो भवन्ति नान्यथेत्यु[10]भयान्तात्यागवादिनो जैना यद् वदन्ति तदेव तवाप्यापन्नम् । कुतः ? **[11]साक्षात्त्वदुक्ततत्त्वत्वात्,** त्वयैव साक्षादुक्तं तत्त्वमेषां परमाणूनाम् 'प्रत्येकं चक्षुर्विज्ञानोत्पादने न [12]शक्ताः, समुदिताः शक्ताः' इति । एवं तावत् साक्षादनेकान्ताभ्युपगमः । अर्था[13]पत्त्या वाभ्युपगत एव, **अनेकैकत्वभृशगत्यर्थसमुदायपरिग्रहाच्च ।** समित्येकीभावे, स चैकीभावोऽनेकस्य, इण् गतौ [पा० धा० १०४५], अयनं गमनं गतिराय इति पर्यायाः, उत्कटाय [14]उदायः, सङ्गतो भृशमायः, समुदायशब्दस्य तत्परिग्रहात् 'प्रत्येकं ते समुदिता अनेकैकीभूतभृशगतयः' इत्यर्थः कृतः, तस्माच्चानेकान्तवादाभ्युपगमः ।

किञ्चान्यत्, **इतरथापि चैषां समुदाय एव न स्यात्,** न्यायतोऽपीत्यर्थः, एतत् प्रतिज्ञानम् । समुदाय एव न स्यात्, **प्रत्येकमभूतत्वात्, वन्ध्यापुत्रव**दित्येष न्यायः, यथा प्रत्येकमभूतानां वन्ध्यापुत्राणां समुदायो नास्ति तथा परमाणूनामिति । नन्वयमन्यायः प्रत्येकमभूतत्वासिद्धेः परमाणूनामिति चेत्, नेत्युच्यते, **बौद्धैरेवोक्ता त्रयातिरिक्तसंस्कृतक्षणिकानित्यत्वाभ्युपगमेन सहासङ्गतिरस्य ।**

---

१ **विलक्षणत्वात् स्वल°** य० ॥ २ दृश्यतां पृ० ९६ पं० ३० ॥ ३ **तदेवं** य० ॥ ४ **स्मरयति** प्र० ॥ ५ **द्वयोरन्तरयो°** य० ॥ ६ **°पर्यायांतरयो°** य० ॥ ७ **चावस्था°** प्र० ॥ ८ **अग्न्यंभावच्च** भा० । **अग्न्यभावच्च** य० ॥ ९ **°परिमाणापेक्षा** य० ॥ १० **°भयानां त्याग°** प्र० ॥ ११ **साक्षात्तदुक्ततत्वत्वात् तयैव** प्र० ॥ १२ **शक्तः** प्र० ॥ १३ **°पत्यवाभ्यु°** वि० भा० । **°पत्यु वाभ्यु°** वि० भा० विना ॥ १४ **उदाय संगतो भृशं आयः** प्र० ॥

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

त्वप्राप्त्यनन्तरमेव विनष्टत्वात्। प्रत्येकत्वप्राप्तिरपि चैवं नैव, असत्त्वात्, वन्ध्यापुत्रवत्। सहोत्पादाददोष इति चेत्, न, तुल्यत्वात्। किं भूतस्य सहता? अभूतस्य? यदि भूतस्य भवनानन्तरविनष्टत्वात् कुतः सहता, उक्तवदसत्त्वापत्तेरेव?

यदुक्तं वः सिद्धान्ते –

बुद्धिबोध्यं त्रयाद[1]न्यत् संस्कृतं क्षणिकं च तत्। [ ] इति।

७२-१ आकाश-प्रतिसङ्ख्या-ऽप्रतिसङ्ख्यानिरोधाख्यात्[2] त्रयादन्यत् प्रत्ययजनितत्वात् संस्कृतम्, संस्कृतत्वाच्च क्षणिकानित्यम्, क्षणोऽस्यास्तीति क्षणिकम्, क्षणमात्रमेवास्य कालो न परत इति क्षणिकानित्यमेव न कालान्तरावस्था[4]य्यनित्यत्वं लौकिकाभिमतघटादिवदित्येतेनाभ्युपगमेन सह **प्रत्येकं ते समुदिताः कारणम्**[5]इत्यस्याभ्युपगमस्य सङ्गतिर्नास्ति। किं कारणम्? **प्रत्येकत्वप्रा[6]प्त्यनन्तरमेव विनष्टत्वात्**, एकैकस्य परमाणोः स्वरूपलाभसमनन्तरमेव विनष्टत्वात् कः प्र[7]त्येकसमुदायः? को वा देशतोऽत्यन्तं रूपादिभेदेन यावदनभिलाप्यतथाव[8]स्थानां भिद्यमानानां प्रत्येकं भावः? इति सिद्धं प्रत्येकमभूतत्वं देशतः कालतश्चावस्थान्तराप्राप्तेरिति। **प्रत्येकत्वप्राप्तिरपि चैवं नैव**, निर्मूलत एव परमाणूनां यापि प्रत्येकत्वप्राप्तिः सापि चैवमुक्तविधिना नैवास्ति, स्वरूपप्राप्तिमात्रदेशकालाप्र[9]तीक्षित्वविनाशित्वा**दसत्त्वात्, वन्ध्यापुत्रवत्**, यथा वन्ध्यापुत्राणां प्रत्येकत्वप्राप्तिर्नास्ति तथा परमाण्वभिमतानां तथानवस्थानामभावान्न प्रत्येकत्वप्राप्तिरिति।

सहो[10]त्पादाददोष इति चेत्, तेषां परमाणूनामसत्त्वमसिद्धं तथानवस्थानामपि देशै[11]क्येन कालैक्येन च सहोत्पादाभ्युपगमात्, तस्मादस्ति प्रत्येकत्वप्राप्तिरिति। एतच्च **न, तुल्यत्वात्** परमाण्वसत्त्वस्य, देशकालभेदोत्पादासत्त्वेन सहोत्पादासत्त्वस्य तुल्यत्वात्, विकल्पद्वयेऽपि यौगपद्यासिद्धेरिद[12]मसि त्वं प्रष्टव्यः – **किं भूतस्य सहता? अभूतस्य?** इति विकल्पद्वयानति[13]वृत्तेरेष प्रश्न उभयथापि न घटत

७२-२ इत्युत्तरं वक्तुमनसः। इतर आह – अभूतस्य सहतेत्ययुक्तो विकल्[14]पः, क एवं ब्रूयात् 'अभूतस्य खपुष्पस्येव सताऽसता वा सहता' इति यतः स विकल्पः पूर्वप[15]क्ष्यते? तस्माद्भूतस्य सहतेति ब्रूमः। अत्राचार्य आह – त्वमेवैतद्विकल्पद्वयं 'तथावस्थाः प्रत्येकं समुदिताः कारणं परमाणवः' इति ब्रुवाणश्चिन्तय क एवमाहेति। किं न ए[16]तेन? यो ब्रवीति स ब्रवीतु, **यदि भूतस्य** यदि तावद् भूतस्य सहोत्पादः, **भवनानन्तरविनष्टत्वात्** क्षणिकवा[17]दे **कुतः सहता?** नास्त्यत्र कारणं सहत्वे कस्यचित् केनचिदित्यर्थः। **उक्तवदि**त्यतिदेशाद्देशकालाभ्यामत्यन्तभेदे निरभिलाप्यस्वभावानां प्रत्येकत्वप्राप्तिरेव नास्तीत्युक्तं तथा तेषा**मसत्त्वाप[18]त्तेरेव**ाणूनां 'कुतः सहता' इत्यभिसम्बन्धः। प्रतिलब्धसहत्वस्य चोत्पाद उच्यते त्वया, तत्तु

---

१ °**दन्य सं**° प्र०। "अपिच **वै**नाशिकाः कल्पयन्ति 'बुद्धिबोध्यं त्रयादन्यत् संस्कृतं क्षणिकं च' इति। तदपि च त्रयं प्रतिसङ्ख्याप्रतिसङ्ख्यानिरोधावाकाशं चेत्याचक्षते। त्रयमपि चैतदवस्तु अभावमात्रं निरुपाख्यमिति मन्यन्ते। बुद्धिपूर्वकः किल विनाशो भावानां प्रतिसङ्ख्यानिरोधो नाम भाष्यते, तद्विपरीतोऽप्रतिसङ्ख्यानिरोधः, आवरणाभावमात्रमाकाशमिति"-**ब्रह्मसूत्रशाङ्करभा**० २।२२॥ २ **आकास्या प्रति**° भा०। **आकाशस्याप्रति**° य०॥ ३ °**ख्या त्रया**° प्र०॥ ४ °**स्थाय्येनि**° प्र०॥ ५ दृश्यतां पृ० ९६ पं० ३०॥ ६ °**प्रातानन्त**° भा०। °**प्रानन्त**° य०॥ ७ **प्रत्येकं समु**° य०॥ ८ °**वस्थानं** य०। °**वस्थं** भा०॥ ९ °**प्रतीक्षितविना**° भा०॥ १० °**त्पाददोष** प्र०॥ ११ °**क्येन सहो**° य०॥ १२ °**मसिद्धं द्रष्टव्यः** भा०। °**मसिद्धं द्रष्टव्यं** य०॥ १३ °**वृत्तेरेय** प्र०॥ १४ °**ल्पः एवं** य०॥ १५ °**पक्षते** प्र०॥ १६ **एतेम** प्र०॥ १७ °**वादेः** भा०। °**वादः** य०॥ १८ °**पत्तेरणूनां** य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथाभूतस्य वन्ध्यापुत्रसमुदायोऽपि स्यात्, अभूतत्वादस्थितत्वात्, अणुसमुदायवत्। सन्तानादिति चेत्, सोऽप्येवमेव।

अथोच्येत – बाह्यवस्तुस्वतत्त्वप्रतिपत्तिजनितः सर्व एवैष विरोधसंक्लेशः। विज्ञानमात्रकमिदं त्रिभुवनम्। न द्रव्यसंवृत्यादि ततो भिन्नमस्ति।

ननु देवानांप्रिय! त्वन्मतवदेव विज्ञानवादविध्वंसनार्थ एवायमारम्भः।

सहत्वं यौगपद्यमप्रतिलब्ध**मसत्त्वापत्तेरेव**। तस्मात् 'सहोत्पादा[1]ददोषः' इत्यपरिहारः। **अथाभूतस्यो**त्पादो यौगपद्येनेष्यते सापि [2]सहता नोपपद्यतेऽनिष्टप्रसङ्गात्। किमनिष्टम्? **वन्ध्यापुत्रसमुदायोऽपि स्या**दित्यनिष्टम्। कुतः? **अभूतत्वादस्थितत्वादणुसमुदायव**दितीदं साक्षादनिष्टापादनम्। अणुसमु[3]दायोऽपि न [4]स्यादभूतत्वादस्थितत्वाद्वन्ध्यापुत्रसमुदायवत्। अभूतत्वमस्थितत्वं च हेतुद्वयं शून्यक्षणिकवादिनोः सिद्धत्वादुक्तम्। **सन्तानादिति चेत्**, स्यान्मतम् – अभू[5]तत्वमस्थितत्वं चेष्यते तेषाम्, तथापि जन्मविनाश[6]सन्तानस्याव्यवच्छेदात् स्थितत्वमस्त्यतः सहोत्पाददोष इति। एतच्चायुक्तम्, यस्मात् **सोऽप्येवमेव,** सोऽपि सन्तानो भूतो वा स्यादभूतो वा? [7]यदि भूतः कुतः [8]सहता, उक्तवद् भवनानन्तरविनष्टेभ्योऽन्यस्य सन्तानस्याभावात्? अस्ति चेत् तद्विलक्षणो [9]नित्योऽन्य इति सर्वक्षणिकप्रतिज्ञाहानिः। अथाभूतः, ७४-१ वन्ध्यापुत्रवदित्याद्यभिहितदोषाकाङ्क्षमेव।

अथोच्येत – [10]बाह्यवस्तुस्वतत्त्वेत्यादि यावत् **ततो भिन्नमस्ती**ति। **अथे**त्यधिकारान्तरे, अथ [11]सञ्चितालम्बनविषयज्ञानपक्षे कल्पिताः कल्पिता उपपत्तयो विफला भवन्ति सदोषाश्चेति तं परित्यज्येदमुच्येत – **सर्व एवैष विरोधसंक्लेशो बाह्यवस्तुतत्त्वप्रतिपत्तिजनितः**, 'विज्ञानाद् बाह्यं वस्तुतत्त्वमस्ति' इति प्रतिपत्तौ सत्यां जायतेऽयं संक्लेशः। यदि परमाणव आलम्बनं ततोऽतीन्द्रियत्वसञ्चितालम्बनत्वाद्यभ्युपगमविरोधः; अथ समुदायः, असत्त्वात् खपुष्पवदनालम्बनमेव; प्रत्येकं ते समुदिताः, स्ववचनविरोधादिदोषः प्रोक्तन्यायेनेत्येवमादिविरोधोद्भावनजनितेन चित्तसंक्लेशेन किमर्थं [12]बाध्यामहे? एवं तु सर्वदोषविनिर्मुक्तमिदं कल्पनान्तरमाश्रयामहे – **विज्ञानमात्रकमिदं त्रिभुवनम्**। यदुक्तम्—

द्यौः क्षमा वायुराकाशं [13]सागराः सरितो दिशः।
अन्तःकरणतत्त्वस्य भागा बहिरिव स्थिताः॥ [वाक्यप० ३।७४१] इति।

न [14]द्रव्यसंवृत्यादि, न पुनरेतस्यां कल्पनायामेवम्विधः संक्लेशोऽस्ति [15]यत् इदं संवृतिसदिदं परमार्थसदिदमैन्द्रियकमतीन्द्रियमित्यादि विकल्प्यमानं विज्ञानाद्व्यतिरिक्तमर्थजातमिच्छतां स्यात्, न तु तत् **ततो भिन्नमस्ति**। तस्मादनर्थको विचार इति।

अत्रोच्यते – **ननु देवानांप्रिय त्वन्मतवदेव विज्ञानवादविध्वंसनार्थ एवायमारम्भः।** यथेदं

---

१ °दावदोषः य०॥ २ सहिता य०॥ ३ °दायापि य०। °दापि भा०॥ ४ स्यादतो त्यादस्थित° प्र०॥ ५ °ततत्व° य०॥ ६ °सन्तानसाध्यवच्छे° प्र०॥ ७ यवि य०॥ ८ सहेतोक्तवद् प्र०॥ ९ नित्यान्य य०॥ १० वाक्यवस्तु° प्र०॥ ११ संहिताल° वि० विना। सहिताल° वि०॥ १२ वाध्यामहे प्र०॥ १३ सागरः य०। "द्यौः क्षमा वायुरादित्यः सागराः सरितो दिशः। अन्तःकरणतत्त्वस्य भागा बहिरवस्थिताः॥"–इति मुद्रिते वाक्यपदीये पाठः॥ १४ द्रव्यं संवृत्यादि न भा०। द्रव्यसंवृत्या न य०॥ १५ अत्र 'य इदं' इत्यपि पाठः स्यात्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिष्ठतु तावद् बाह्यार्थाभावे विज्ञेयत्वाभावो विज्ञेयत्वाभावे च विज्ञानत्वाभावः। विज्ञानं हि प्रत्यक्षादि। तत्र कतमद् विज्ञानमात्रमिदं सर्वं त्रैधातुकम्? न तावत् प्रत्यक्षविज्ञानमात्रम्, तस्यैवमवस्थत्वात्। नानुमानविज्ञानमात्रम्, तस्यापि तत्पूर्वकत्वात् तदसिद्धावसिद्धेरतन्त्वपटवत्। न संशयभ्रान्त्यादिकल्पनाविज्ञानमात्रं

कल्पनापोढं प्रत्यक्षमित्येतस्य त्वन्मतस्य तत्संवादिनो बुद्धवचनस्य च विध्वंसनार्थोऽयं ममारम्भस्तथा ७४-२ विज्ञानमात्रवादविध्वंसनार्थोऽप्ययमेवारम्भः, त्वत्तीर्थकरा[1]भिहितत्वात् तस्यापि। अथवा तत्परमार्थत्वात् तत्प्रतिपादनार्थत्वाच्च सर्वदेशनानां बौ[2]द्धीनां तद्विध्वंसनार्थ एवायमारम्भः। एतदपि प्रमाणाभावादयुक्तमिति ग्राह्यम्, प्रमाणाभावश्च प्रमेयाभावादिति स दोषः स्थित एवेति दर्शयति – **तिष्ठतु तावदि**त्यादि। तं चोपायेन दर्शयिष्यन्नाह – **बाह्यार्थाभावे विज्ञेयत्वाभावः**, तस्य विज्ञानमात्रत्वात्। **विज्ञेयत्वाभावे च** तस्य **विज्ञानत्वमपि नास्ति,** विजानातीति हि विज्ञानम्, किं विजानाति विज्ञेयाभावे? ततः प्रमेयत्वाभावात् प्रमाणत्वाभावः प्रत्यक्षस्येति ज्ञेय-ज्ञान-प्रमाण-प्रमेयत्वविलक्षणं खपुष्पवत् किं तत् प्रत्यक्षं नाम? इत्येष दोषो दुर्निवारः, स तावत् तिष्ठतु। इदं तावदस्तित्वाभ्युप[3]गमेनैवान्यथा विचार्यते – **विज्ञानं ही**त्यादि। हिशब्दो दृष्टान्तार्थे, दृष्टं हि लोके **विज्ञानं प्रत्यक्षादि,** प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणे विज्ञाने। **आदि**ग्रहणात् संशयविपर्ययानध्यवसायलक्षणानि च विज्ञानानि प्रमाणाभासाभिमतानि। इदमसि त्वं प्रष्टव्यः – **तत्र** निर्धार्ये **[4]कतमद् विज्ञानमात्रमिदं [5]सर्वं त्रैधातुक**मिति, नैकमपि विज्ञानमात्रं भवतीत्यभिप्रायः। ब्रूयास्त्वम् – प्रत्यक्षविज्ञानमात्रमिति, तन्न **तावत् प्रत्यक्षविज्ञानमात्रं तस्यैवमवस्थत्वात्,** ७५-१ तस्य प्रत्यक्षविज्ञा[6]नस्यैवमवस्था यथास्माभिर्व्याख्याता न रूपादिविषया न समुदायविषया न चक्षुरादिनिमित्ता संवृत्या परमार्थेन वा युज्यते इति तस्मान्न प्रत्यक्षविज्ञानमात्रम्। स्यान्मतम् – अनुमानविज्ञानमात्रमिति। तदपि **नानुमानविज्ञानमात्रम्।** किं कारणम्? **तस्यापि तत्पूर्वकत्वात्,** तस्याप्यनुमान[7]स्य तत्पूर्वकत्वात् प्रत्यक्षपूर्वकत्वात्। प्रत्यक्षपूर्वकं हि स्वानुभवोत्तरभाविविकल्पात्मकमविकल्पज्ञानसमनन्तरजन्माऽनुमानं [8]मानसमैन्द्रियमयोगिमानसप्र[9]त्यक्षपूर्वकमेवेष्यते, तस्यैव प्रत्यक्षस्या[10]सिद्धौ कुतोऽनुमानसिद्धिः? अतो नानुमानमात्रमत आह – **तदसिद्धावसिद्धिरतन्त्वपटवत्।** यथा तन्तुपूर्वकस्य पटस्य तन्त्वसिद्धावसिद्धिस्तत्पूर्वकत्वात् तथा प्रत्यक्षासिद्धावसिद्धिरनुमानस्य। एवं तावत् प्रमाणविज्ञानमात्रत्वासिद्धिः। एवं तर्हि संशयभ्रान्त्यादिकल्पनाविज्ञानमात्रमस्तु, [11]तदपि **न संशयभ्रान्त्यादिकल्पनाविज्ञानमात्रं वा,** न संशयमात्रं न भ्रान्त्यादिमात्रम्, **आदि**ग्रहणान्न स्वप्नानुभवानुभूतानुकारमात्रं न तैमिरिककेशेन्दुकाद्याकारमात्रम्, सर्वस्यास्य कल्पनात्मकस्य प्रमाणाभासस्य **[12]अत एव** प्रत्यक्षपूर्वकत्वादेव तदसिद्धाव-

---

१ °राभिहत° प्र०॥ २ बौद्धानां य०॥ ३ °गमेवानान्यथा प्र०। अत्र '°गमेनान्यथा' इत्यपि पाठः स्यात्॥ ४ °मत् विज्ञा° भा०। °मत्तविज्ञा° य०॥ ५ सर्वेत्रैधातु° प्र०॥ ६ °स्येवमवस्था रं० ही०। °स्यैयमवस्था वि०। स्येयमवस्था भा० पा० डे० लीं०॥ ७ °नस्य पूर्वकत्वात् प्रत्यक्षपूर्वकत्वात् य०। °नस्य प्रत्यक्षपूर्वकत्वात् भा०॥ ८ °समिन्द्रिय° प्र०॥ ९ °प्रत्ययंक्षपू° भा०॥ १० °स्यापि(स्याप्य?)सिद्धौ प्र०॥ ११ तदपि संशयभ्रान्त्यादि कल्पनादिमात्रं वा प्र०॥ १२ अंत प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा, अत एव । नानध्यवसायमात्रम्, अनवग्रहात्मकत्वात् तस्य । तस्मान्न विज्ञानमात्रमित्यलमतिविकाशिन्या सङ्कथया ।

अनयैव च दिशा स्ववचनव्यपेक्षैवाक्षेपोऽविशेषैकान्तवादिनोऽपि । सर्वसर्वात्मकतायां श्रोत्रादिवृत्तिः प्रत्यक्षम् [षष्ठित०] **इति ब्रुवतो निर्विकल्पत्वाद्विभागाभावात्**

सिद्धेः । स्यान्मतम् – अनध्यवसायमात्रमस्त्विति । तदपि **नानध्यवसायमात्रम्**, न असङ्क्षेतिताव्यक्तसुख-[1]
दुःखादिस्वरूपमित्यर्थः । किं कारणम्? **अनवग्रहात्मकत्वात् तस्य**[2], न हि तदत्यन्तासङ्क्षेतितं नाम
ज्ञानमस्ति । यद्यप्यव्यक्तज्ञानमस्ति[3] अपटुत्वात् तदर्थावग्रहात्मकं न भवत्यतो विज्ञानमेव न भवति,
यस्माद् विजानातीति विज्ञानमिष्टम्, तच्च न किञ्चिद् विजानातीति नानध्यवसायविज्ञानमात्रम् ।
तस्मान्न विज्ञानमात्रम्, प्रमाणप्रमाणाभासविज्ञानेष्वनन्तर्भावात्[4][5] कतमद् विज्ञानमात्रमिदं सर्वम्? ७५-२
एतेभ्यश्च विज्ञानेभ्यो व्यतिरिक्तस्यान्यस्य विज्ञानस्याभावान्न किञ्चिदेतद्विज्ञानमात्रं सर्वम् । **इत्यलमति-**
विकाशिन्या सङ्कथये[6]ति सङ्क्षिप्योपसंहरति प्रत्यक्षलक्षणस्य सर्वथा दूषितत्वात्, इतरथा ह्यद्यापि[7] दूषण-
वचनप्रपञ्चस्यानेकस्यावकाशोऽस्तीति । एवं तावद्विशेषैकान्तवादिना कल्पितं लौकिकप्रत्यक्षविलक्षणं प्रत्यक्षं
न घटते, स्ववचनव्यपेक्षाक्षेपदुस्तरविरोधत्वात् ।

अनयैव च दिशा स्ववचनव्यपेक्षैवाक्षेपो द्रष्टव्य इति वाक्यशेषः । एषोऽतिदेशः कस्य
चेन[8], **अविशेषैकान्तवादिनोऽपि । अपि**शब्दादनन्तरोक्तस्य विशेषवादिनोऽसम्भवात्[9] उभयवादिनोऽपि ।
तत्र यद् विशेषवादिनः प्रागुक्तं दोषजातं ‘कल्पनापोढं प्रत्यक्षम्’ इच्छतः कल्पनात्मक[त्व]मेव हेतुपर-
म्परयाऽऽपाद्य ‘अप्रत्यक्षत्वम्, अनुमान[त्व]म्, उभयैक्यम्, सङ्करः, अभावः[10], निर्देश्यत्वम्, अस्वलक्ष-
णता च[11], कारकज्ञापकाविशेषापादनादभिधानार्थव्यपदेश्यता च’ पश्चाच्च कल्पनापोढतामभ्युपेत्यापि[12]
‘स्वसामान्ययोर्लक्षणयोरभावाच्चक्षुषो[16] रूपस्य तद्विज्ञानस्य[13] चाभावः’ इत्यादि लक्षणवाक्यमुद्दिश्य तदिदानी-
मुत्क्रमेण वाच्यमिति तद्दिशं दर्शयति – **सर्वसर्वात्मकताया**मित्यादिना याव**दनक्ष**मिति । एवं हि लक्षण-
दूषणातिदेशः – ‘सर्वं सर्वात्मकम्’ इत्यविशेषमिच्छतः **साङ्ख्य**स्यापि सर्वात्मकस्यैकस्य[14] वस्तुनो रूपरसादि-
भेदेन श्रोत्रादिभेदेन च विकल्पयितुमशक्यत्वाद् विशेषैकान्तवादिन इव निर्विकल्पपरमार्थपरमाणुमात्र- ७६-१
साधर्म्यादविकल्पकत्वम्[15] । अविकल्पकत्वाद् यथा पूर्वं प्रत्यक्षलक्षणोदाहरणवाक्ये दोषाः ‘चक्षुर्नैव[16] चक्षुः,
रूपं नैव रूपम्, विज्ञानं नैव विज्ञानम्’ इत्यादयस्तथा **श्रोत्रादिवृत्तिः प्रत्यक्षं** श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वा-
घ्राणानां मनसाऽधिष्ठिता वृत्तिः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु यथाक्रमं ग्रहणे वर्तमाना प्रमाणं प्रत्यक्ष**मिति**
ब्रुवतः सर्वसर्वात्मकत्वे **निर्विकल्पत्वाद्विभागाभावात् किं श्रोत्रं** यत् त्वगादिभ्यो विभक्तम्?
किमश्रोत्रं त्वगादि यच्छ्रोत्राद्विभक्तम्? यच्चोक्तं ‘श्रोत्रादि’ इति, तत्र **क आदिः** सर्वात्मकैकवस्तुत्वे

---

१ **असंचेतिवाऽव्यक्त** य० ॥ २ **तस्या न हि तदत्यंचासंचेतितं** प्र० ॥ ३ अत्र ‘यद्यप्य°’ इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ४ °**णप्रमा**° प्र० ॥ ५ °**भाविज्ञाने**° य० ॥ ६ °**कासिन्या** भा० ॥ ७ **सेद्यापि** भा० ॥ ८ **चित्** प्र० ॥ ९ °**सम्भवत उभ**° भा० ॥ १० **अभावं** प्र० ॥ ११ **च इकारक**° भा० वि० विना ॥ १२ °**त्यादि** य० ॥ १३ °**स्येचाभावः** भा० । °**स्येवाभावः** य० । पृ० ७२ पं० १ ॥ १४ °**त्मकैकस्य** य० ॥ १५ °**कल्पकम्** प्र० ॥ १६ दृश्यतां पृ० ७१ पं० ४ ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

किं श्रोत्रम्? किमश्रोत्रम्? क आदिः? कोऽनादिः? का वृत्तिः? का वाऽवृत्तिः? किं प्रति? किमप्रति? किमक्षम्? किमनक्षमित्यादि?

लोके शास्त्रे च हि वस्तुस्वतत्त्वसाक्षात्प्रतिपत्तिः प्रत्यक्षम्। तत्तु त्वन्मतवन्न त्वेवंलक्षणम् प्रत्यक्षम्, निर्विकल्पत्वासिद्धेः कल्पनात्मकत्वादिभ्यो भ्रान्त्यादिवत्।

सञ्चितालम्बनस्थान उक्तवद् रूपादेरेकस्यासर्वस्यालम्बनस्यासञ्चितवद् घट-

---

प्रथमद्वितीयाद्यन्योन्यापेक्षविभागाभावात्? **कोऽनादि**र्मध्योऽन्तो वा? **का वृत्ति**स्तेषां श्रोत्रादीनां पूर्वमप्रवृत्तानां पश्चाद्वृत्तिः कालभेदेनावस्थान्तरत्वेन च विशिष्टा? **का वाऽवृत्ति**र्वृत्त्युपरमलक्षणा विभागाभावादेव? **किं प्रति,** कतमोऽन्यो भावो[1] यमपेक्ष्य तं प्रत्यक्षमित्युच्यते? नपुंसकलिङ्गस्याव्यक्तगुणसन्देहविषयत्वात् 'किं प्रति' इति प्रश्नः। **किमप्रति,** सर्वसर्वात्मैकैकत्वे[2] कैः किं नापेक्ष्यते? **किमक्ष**मिन्द्रियं यद् विषयव्यतिरिक्तं श्रोत्रादि परस्परव्यतिरिक्तं वा? **किमनक्ष**मिन्द्रियव्यतिरिक्तं विषयो रूपादि परस्परतो वा? **इति** प्रदर्शने, इत्थं विभागाभावाद् विभागेन लक्षणप्रणयनं स्ववचनव्यपेक्षाक्षेपदुस्तर[3]विरोधम्[4]। **आदि**ग्रहणात् किं शब्दादि? किं मनः? किमधिष्ठेयं केन? इति।

किञ्चान्यत्, त्वन्मतेनैव प्रत्यक्षलक्षणायोगा[5]दयुक्तम्। **लोके शास्त्रे च[6] हि वस्तुस्वतत्त्वसाक्षात्प्रतिपत्तिः प्रत्यक्षम्[7],** वस्तुनः स्वं तत्त्वमसाधारणमात्मीयं रूपम्, या तस्य साक्षात्प्रतिपत्तिर्न व्यवहिता सा प्रत्यक्षम्। **तत्तु[8] त्वन्मतवन्न त्वेवंलक्षणं प्रत्यक्षम्,** त्वन्मत इव त्वन्मतवत्, यथा सर्वसर्वात्मकत्वे
७९-२ त्वन्मते श्रोत्रादिवृत्तेः सर्वसर्वात्मकवस्त्वेकदेशशब्दादिविषयत्वात् समुदायरूपत्वाद्वस्तुस्वतत्त्वस्य विभागाभावाच्छ्रोत्रादिवृत्तिर्न सम्भवतीत्युक्तं तथा तस्य निर्विकल्पस्य वस्तुनो वस्तुस्वतत्त्वसाक्षात्प्रतिपत्त्यभिमतं लौकिकं सामयिकं च प्रत्यक्षलक्षणं न घटते, **निर्विकल्पत्वासिद्धेः[9],** नैव तन्निर्विकल्पं[10] प्रत्यक्षं शब्दादिविभागविकल्प[11]विषयत्वात्, अविभागरूपं च सर्वसर्वात्मकं वस्तुस्वतत्त्वम्, तद्विषयं च तन्न भवति, ततश्च कल्पनात्मकम्, **कल्पनात्मकत्वादिभ्यो भ्रान्त्यादिवद्** 'न प्रत्यक्षम्' इति वर्तते, कल्पनात्मकत्वान्निरूपणविकल्पात्मकत्वा[12]दालम्बनविपरीतप्रतिपत्त्यात्मकत्वादध्यारोपात्मकत्वादसामान्यरूपविषयत्वात् तदतद्विषयवृत्तित्वात् सदसदभेदपरिग्रहात्मकत्वात् सर्वथा साधारणार्थत्वात्, भ्रान्तिसंशयानुमानादिज्ञानवदिति।

सञ्चितालम्बनस्थान उक्त[13]वदित्यादि याव**न्नीलादिष्वभावादि**त्यनेनाऽतिदिष्टग्रन्थार्थभावनोपायदिक्प्रदर्शनं करोति मा भूद् व्यामोह इति। यादृक् सञ्चितालम्बनस्थानेऽस्माभिरुक्तम् 'परमाणुनीलादीनां सञ्चयः सामान्यं संवृतिसत्त्वादसत्' इति, इह तु तद्विपरीतं समुदायपरमार्थत्वं नीलादिसंवृतिसत्त्वम्।

---

१ **भावोन्यमपेक्ष्य** य०। **भावोऽन्यमपेक्ष्य** भा० ॥ २ **°त्मकत्वकैकत्वे के कं नापेक्ष्यते** भा०। **°त्मकत्वकैकत्वे कैकं नापेक्ष्यते** य० ॥ ३ **°व्यपेक्षदुस्तर°** य० ॥ ४ **°धनादिग्र°** प्र० ॥ ५ **°णायोगायदुक्तं लोकशास्त्रे** य० ॥ ६ **वहि** प्र० ॥ ७ रं० विनान्यत्र – **प्रत्यक्ष** ही०। **प्रत्यक्षा** पा० डे० लीं वि० भा० ॥ ८ **तनु त्वन्मत°** रं० ही० ॥ ९ **°त्वात्सिद्धेः** प्र० ॥ १० **°कल्पकं** य० ॥ ११ **°विषयित्वात्** प्र० ॥ १२ **°त्मकवत्वा°** य०। दृश्यतां पृ० ६३ पं० १ ॥ १३ दृश्यतां पृ०६४ पं० १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीलादिष्वभावात् तथासम्भावनेऽपि तस्यातीन्द्रियत्वादालम्बनत्वानुपपत्तेश्चक्षुरादिविज्ञानानां रूपादिसङ्घात आलम्बनमिति प्राप्तम्। ते च प्रत्येकं परमार्थतोऽसन्त इति तेषामविषयतेत्याद्यशेषं यथाभागमत्र योज्यं भेदाभेदसंवृतिपरमार्थस्थानव्यवस्थापनया ।

संवृतिसन्तो नीलादय ऐन्द्रियाः, न परमा[1]र्थसत्समुदायः । किं कारणम् ? तस्य रूपाद्यात्मकत्वात् तदेकदेशभूतस्य **रूपादेर**परमार्थसतोऽ[2]र्थविभागावस्थस्य **एकस्यासर्वस्यालम्बनस्यासञ्चितवत्** न ह्येकोऽसर्वः कदाचिदालम्बनं रूपं रसः श[3]ब्दो वा यथाऽसञ्चिताः परमाणवः पूर्वस्मिन् वादे नैन्द्रियका एवमसञ्चित- ७७-१
वदस्मिन् वादे लोकलोकोत्तरव्यवहारप्रत्यक्षाभिमतेषु **घटादिषु नीलादिषु चाभावान्न** प्रत्यक्षं तद्विषयं ज्ञानमित्यभिसम्बन्धः । किमुक्तं भवति ? रूपादयः सर्वैकात्मरूपा एव सन्ति न पृथक्स्वरूपाः। ततस्तद्विषयं ज्ञानमभावविषयत्वादप्रत्यक्षं वन्ध्यासुतादिविषयज्ञानप्रत्यक्षवदिति । अनया दिशा 'यदाभासं प्रत्यक्षं न सोऽस्ति विषयः, योऽस्ति न तदाभासं प्रत्यक्षम्' इत्यादि विशेषैकान्तवादिनं प्रति योऽभिहितः प्रपञ्चः स सर्वो योज्यः। **तथासम्भावनेऽपि चे**त्यादि, रूपादेरे[4]कस्य सत्त्वरजस्तमोगुणसाम्यावस्थानलक्षणप्रधानाख्यपदार्थत्वसम्भावनेऽपि । नैव तत्साम्यावस्थानं शब्दादिभेदैकसर्वात्मकत्वाभावरूपं सम्भाव्यते, सम्भाव्यमानेऽपि च तस्मिन्नव्यक्ते **तस्याऽव्यक्तस्यातीन्द्रियत्वादालम्बनत्वानुपपत्तेश्चक्षुरादिविज्ञानानां रूपादिसङ्घात आलम्बनमिति प्राप्तम्** । **ते च** रूपादयः **प्रत्येकं परमार्थतोऽसन्तः, इति**शब्दो हेत्वर्थे, इत्यतः कारणाद्रूपादिसङ्घातालम्बनत्वात् **तेषां** प्रत्येकं परमार्थसत्त्वाभावान्न **विषयता** । रूपादयो न चक्षुरादिविषयाः, परमार्थतोऽसत्त्वात्, वन्ध्यासुतवत् । रूपादिविषयं वा न प्रत्यक्षम्, परमार्थतोऽसद्विषयत्वात्, वन्ध्यासुतज्ञानवत् । तस्माद् योनि-बीज-प्रकृति-बहुधानक-प्रधाना-ऽव्यक्तादिपर्यायाख्यं यद् वस्तु तदतीन्द्रियत्वादप्रत्यक्षम् । यदिन्द्रियविषयं तत्परिणामभेदे सङ्घाते रूपादि न तत् परमार्थसत्। **इत्या-** ७७-२
द्यशेषं विशेषैकान्तवादिमते **यथाभागं** यो यो भागो यथाभागं तद्विपर्ययेणाविशेषैकान्तवादेऽत्र यद् यत्र भजते तत् तै[9]थानुसृत्य **योज्य**मित्यतीतं ग्रन्थार्थं स्मारयति । तद्योजनोपायदिङ्मात्रप्रदर्शनार्थमप्याह—**भेदाभेदसंवृतिपरमार्थस्थानव्यवस्थाप**[6]**न**येति । ये तत्र भेदरूपाः परमाणवः परमार्थसन्त[7]स्तेऽत्र संवृतिसन्तः सर्वसर्वात्मकपरमार्थवादे, यस्तत्राभेदः परमाणुसमुदायः संवृतिर्सन्[8] सोऽत्र परमार्थसन्नित्यनया व्यवस्थापनया योज्यम् ।

पुनरुत्तरोऽपि ग्रन्थो योज्यः । तद्यथा — **सर्वसर्वात्मकैकरूपान्तराविविक्तस्वतत्त्वे रूपादिसत्त्वादिसङ्घात इन्द्रियसं**[10]**निकृष्ट आलम्बनविपरीतैकरूपेयं प्रति**[11]**पत्तिः व्यपदेश्यानेकात्मकनीलरूपविषया, न च हेत्व**[12]**पदेशाव्यपदेश्यैषा, यतः सर्वात्मकग्रहणापदेशेन धूमेनेवाग्निसामान्यवद् गृह्यते नानिर्देश्यरूपम् ।**

---

१ °मार्थसमु° भा० ॥ २ °थ्यवि(व?)भासावस्थस्य प्र० ॥ ३ शब्दो यथा य० ॥ ४ °कस्या प्र० ॥ ५ °नुष्ठस्य य० । °नुष्वत्य भा० ॥ ६ °पनायेति प्र० ॥ ७ °न्तः । तत्र भा० रं० पा० । °न्तःतत्र डे० लीं० वि० ही० ॥ ८ °सत् सोत्र य० । °स शौत्र भा० ॥ ९ °तथे प्र० । दृश्यतां पृ० ६५ पं० १ ॥ १० °सन्निष्ट य० ॥ ११ अत्र °पत्तिरव्यप° इति समीचीनं भाति ॥ १२ °पदेश । व्यप° भा० । °पदेशाव्यप° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नानात्वैकान्तवादेऽपि आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षाद्यन्निष्पद्यते तदन्यत् [वै० सू० ३।१।१८] **द्रव्यादिनिर्मूलत्वात् किमात्मादि? इति न प्रत्यक्षम्, द्रव्यरूपादिभवनविशेषकारण-**

किं कारणम्? ततोऽन्यत्[1] कल्पितमेकं रूपम्। नेनु[2] सर्वस्य कारकहेतुत्वेनापदेशः प्रत्यक्षप्रतिपत्तेः, न धूमवज्ज्ञापकहेत्वपदेशतयाग्नेरिवाऽर्थान्तरस्यानेकरूपत्वस्य। नन्विदमस्यैवार्थस्य प्रदर्शनार्थं प्रस्तुतमस्माभिः, यदीदं प्रत्यक्षं स्यात् कारकादेव स्वार्थादालम्बनाद्धेतोर्जायेत दाहानुभववत्[3] प्रत्यक्षत्वादव्यवहितप्रतिपत्त्यात्मकत्वात् प्रत्यक्षस्य स्वलक्षणविषयत्वादनध्यारोपात्मकत्वादिति यावत्। अपि[4] च कारकतापि
७८-१ सर्वस्य नैव तत्र, द्वितीयचन्द्रवत् परमार्थतोऽसत्त्वादनुपात्तव्यावृत्तिव्यवस्थानमात्रत्वात्। लोकवत्तु सर्वसत्त्वे विशिष्टोऽपदेशो व्यपदेशो ग्राह्यादन्यः, तेन व्यपदेशेन प्रमेयं व्यपदेश्यमनुमेयं न प्रत्यक्षम्, धूमानुमेयाग्निवत्, अकारकतायां[5] कारकतायां वा वस्तुनः पितृधूमादिवत्।

अभिधानाव्यपदेश्यानेकात्मकत्वे अपि च नैव, अनुमिताग्निवदेवैकानेकविषयत्वान्नीलस्य। तद्धि नीलरूपनिरूपणं विकल्पः, प्रतिपरमाणुपरस्परप्रतिभिन्नस्वतत्त्वानेकरूपैक[6]तत्त्वैकै[7]रूपाध्यारोपात् सर्वसर्वात्मकैकरूपवस्तुरूपाद्यनेकरूपाध्यारोपाद्वा रूपान्तरसामान्यरूपविषयत्वात् तदतद्विषयवृत्तत्वादनपोहादपोहाद्वाऽग्न्यनुमानवत् तत्सामान्यात्मकत्वे परमार्थस्थितसञ्चयप्रज्ञप्तिनीलाणुभेदपरिग्रहात्मकत्वात् साधारणार्थविविक्तकल्पनात्मकत्वान्न प्रत्यक्षम[8]प्रत्ययप्रत्ययात्मकत्वाच्छब्दाश्रावणत्वप्रत्ययवत्। संवृत्यतीन्द्रियत्वाभ्यां हि न नीलादिषु न च सञ्चये कारणता तथाप्रतिपत्तिं प्रति। अनुमानज्ञानमपि च तन्न प्रतिपूर्यते, सम्बद्धगृहीतस्यान्यथाप्रतिपत्तेः, विरुद्धा[9]दिज्ञानवदिति समानमेतत् कल्पनात्मकत्वात्। अन्यदपि यथासम्भवं तत्प्रक्रियापतितं मुक्त्वा यदुभयोः सामान्यं तत् सर्वं योज्यम्। एवं तावद्विशेषाविशेषैकान्तवादयोः स्ववचनव्यपेक्षाक्षेपदुस्तरविरोधत्वाल्लौकिकप्रत्यक्षविलक्षणं प्रत्यक्षं कल्पितम[10]पि त्वयुक्तमित्युक्तम्।

नानात्वैकान्तवादेऽपि सामान्यविशेषयोः 'अयुक्तं प्रत्यक्षम्' इति वर्तते। कीदृशं वा तत् प्रत्यक्षं कथमयुक्तं वा? इति, **[11]आत्मेन्द्रियमनोर्थसन्निकर्षाद् यन्निष्पद्यते तदन्यत्**, आत्मा मनसा
७८-२ मन इन्द्रियेण इन्द्रियमर्थेनेति चतुष्टयत्रयद्वयसन्निकर्षादुत्पद्यमानं प्रत्यक्षमित्येतदपि नानात्वैकान्तवा[12]दिमतं **द्रव्यादिनिर्मूलत्वात् [13]किमात्मादि? इति न प्रत्यक्षम्**, द्रव्यमादिर्येषां त इमे द्रव्यादयो द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवाया अद्रव्यत्वात् [द्रव्येभ्योऽन्ये] खपुष्पवन्न स्युः, एवं गुणेभ्योऽन्ये न स्युरगुणत्वात्, अकर्मत्वात् कर्मणोऽन्ये, असामान्यत्वात् सामान्यतोऽन्ये, अविशेषत्वाद् विशेषेभ्योऽन्ये, असमवायत्वात् समवायादन्ये, निर्मूलत्वाच्च खपुष्पवत् सर्वे। तस्य निर्मूलत्वं चापरिणामित्वाद् वन्ध्यापुत्रवत्। अतोऽसत्त्वादात्मादीनामात्ममनोऽक्षार्थाभावे किमात्मादि, यत्सन्निकर्षाज्ज्ञानमुत्पद्येत? कस्य तत्, आत्मद्रव्याभावात्? किं तत्, गुणाभावात्? इतिशब्दो हेत्वर्थे, 'राजपुरुषोऽस्मीति न बिभेमि' इति यथा तथा **इति न प्रत्यक्षम्**, आत्मादिद्रव्याणां ज्ञानादिगुणानां चा[14]भावान्नास्ति प्रत्यक्षमित्यर्थः। तेषां चात्मादीनामन्यथा परमार्थतो विद्यमानानामनेकान्तात्मकानामेका[15]न्तात्मतया कल्पनादन्यथाध्यारोपात् कल्पनात्मकत्वादिभ्यो हेतुभ्यो भ्रान्त्यादिवन्न प्रत्यक्षमिति पूर्वोक्तं तदेव व्याचष्टे – **द्रव्यरूपादीत्यादि यावत्कल्पनात्।**

---

१ °न्यत कल्पि° प्र० ॥ २ तुलना पृ० ६६ पं० १ ॥ ३ भवत् य० ॥ ४ तुलना पृ० ६७ पं० १ ॥ ५ तुलना पृ० ६८ पं० १ ॥ ६ °रूपरूपैक° प्र० ॥ ७ °कगपाध्या° भा० । दृश्यतां पृ० ६९ पं० १ ॥ ८ °मप्रत्ययात्मकत्वा° प्र० । दृश्यतां पृ० ६९ पं० ४ ॥ ९ °द्धावदिति प्र० ॥ १० °मपि च युक्त° य० ॥ ११ दृश्यतां पृ० ५९ पं० २२ ॥ १२ °वादिनमतं य० ॥ १३ किमादीनि न य० ॥ १४ च भावा° प्र० ॥ १५ °कात्तामेतया प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्यतदतत्पदार्थानेकान्तस्वतत्त्वान्यतमैकान्तकल्पनात् कल्पनात्मकत्वादिभ्यो भ्रान्त्यादिवत् ।

अतः सर्वप्रमाणाविरोधितत्त्वव्यवहारसमवस्थलोकपरिग्रहवदेव सामान्यविशेषौ घटादिविषयाविति विधिः ।

एष च वेदवादिभिरपि लोकप्रमाणक आज्ञानिकवाद उपजीव्यते यस्याय-

द्रव्यग्रहणेन पृथिव्यादीनां तत्कल्पितानां सर्वगुणानां गुणग्रहणेन **भवन**ग्रहणेन सत्तायाः **विशेष**ग्रहणेन गोत्वादीनां यावदन्त्यविशेषस्य **कारण**ग्रहणेनावयवादिद्रव्याणां संयोगादिगुणानां कर्मणां च ग्रहणम् । ७९-१
कार्यग्रहणेन द्व्यणुकाद्यवयविद्रव्याणां चित्रादिगुणानां च ग्रहणम् । तत्र परमार्थतः स च **असश्च पदार्थो**-ऽनन्त[1]रोक्तो द्रव्यादिः, तस्या**नेकान्तः स्वतत्त्वं** द्रव्यमपि रूपाद्यपि भवनमपि विशेषोऽपि कारणमपि कार्यमपीति । तस्य तस्या**न्यतमैकान्तकल्पना**दतत्त्वं द्रव्यमेव गुण एव कर्मैव भवनमेव विशेष एव [2]नेतरस्वतत्त्वमपीति । तस्मात् कल्पनात्मकत्वं सिद्धम् । ततः **कल्पनात्मकत्वादिभ्यो भ्रान्त्यादिव**-दप्रत्यक्षम् । कल्पनात्मकत्वादयः प्रागु[3]क्ताध्यारोपात्मकालम्बनविपरीतप्रत्ययत्वादयः ।

अतः सर्वप्रमाणाविरोधीत्यादि याव**द्विधिरि**ति । अत इत्यनन्तरोक्तसर्वोपपत्तिप्रपञ्चतो यत् प्राक्[4] प्रतिज्ञातं **'यथालोकग्राह्यमेव वस्तु'** इति तन्निगमयति सोपपत्तिकं **सर्वप्रमाणाविरोधितत्त्वव्यवहारसमव[5]स्थलोकपरिग्रहवदेवे**ति, प्रत्यक्षानुमानागमप्रमाणैरनवधारितकारणकार्योभयानुभयात्मकं तस्य तस्य वस्तुनो भावस्तत्त्वमविरोधि, तस्मिंस्तत्त्वे तत्त्वस्य तत्त्वेन वा व्यवहारः, तस्मिन् समवस्था यस्य लोकस्य तस्य लोकस्य परिग्रहः स सर्वप्रमाणाविरोधितत्त्वव्यवहारसमव[6]स्थलोकपरिग्रहः, तद्वत् तेन तुल्यं वर्तत इति । **एवे**त्यवधारणे, तादृग्लोकपरिग्रहवदेव **सामान्यविशेषौ,** न तु सामान्यमेव विशेष एव परस्प[7]रतो भिन्नावभिन्नावेवेति वा यथा शास्त्रेषु कल्पिताविति । अथवा सर्वप्रमाणाविरोधिनि तत्त्वव्यवहारे समवस्था यस्य स लोकः सर्वप्रमाणाविरोधितत्त्वव्यवहारसमव[8]स्थः, तस्य परिग्रहवदेव सामान्यविशेषौ नान्यथेति यथा प्रतिपादितं लोकवदेव **घटादिविषया**विति, यथा लोके घटादिभवनमेव सामान्यं विशेषश्च ७९-२
द्रव्यक्षेत्रकालभावरूपभवनाविशेषविशेषा[9]भ्यामुक्तविधिना कार्यकारणादिभेदेन वा नियतौ सर्वत्र न मर्यादये-त्यनवधृ[10]तस्वभावौ । **इति** [11]विधिः, 'इति' प्रदर्शने, एष विधिरित्थं विचारितो यः पृ[12]थगुद्दिष्टः ।

एष च [13]**वेदवादिभिरपि लोकप्रमाणक आज्ञानिकवाद उपजीव्यत** इति । नयानामेकैकस्य शतधा भेदात् सप्तनयशतानि आर्षे[14] व्याख्यायन्ते, तेषां पुनश्चतुर्धा संक्षे[15]पः क्रिया-ऽक्रिया-ऽज्ञान-विनय-

---

१ °न्तरोक्तो व्यादिः भा० । °न्तरोक्ता व्यादिः य० ॥ २ नतर° य० ॥ ३ °काऽध्यारो° य० ॥ ४ पृ० ११ पं० ३ ॥ ५ °स्थालोक° प्र० ॥ ६ °स्थालोकेप° प्र० ॥ ७ °स्परो भिन्नौ प्र० ॥ ८ °स्थस्य परि° प्र० ॥ ९ °षास्यामुक्त° प्र० ॥ १० °धृतैस्वभावौ प्र० । अत्र '°धृतैकस्वभावौ' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ११ विधेः प्र० ॥ १२ प्रथद्दिष्टः भा० । अत्र 'प्रथम उद्दिष्टः' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १३ वेदनादिभि° प्र० ॥ १४ आर्थे भा० । अर्थे य० ॥ १५ संक्षेपः क्रियाज्ञान° प्र० । "चत्तारि वाइसमोसरणा पण्णत्ता, तं जहा – किरियावाई अकिरियावाई अण्णाणियवाई वेणइयवाई"–इति स्थानाङ्गसूत्रे चतुर्थस्थाने ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

मन्यो भेदः – सर्वमिदमज्ञानप्रतिबद्धमेव जगत् पृथिव्यादि। इन्द्रियाण्यपि च तन्मयान्येवाचेतनानि। तत्करणत्वात् तैः प्रकाशितं स्थूलमज्ञं प्रतिपद्येत ज्ञः। तस्यापि चेन्द्रियसन्निकृष्टस्यासाधारणस्वरूपस्य न निरूपणोपायोऽस्ति, प्रत्येकं समुदाये वा

वादसमवसरणवचनात् तत्रोक्तः,[1] आज्ञानिकवादः 'किञ्चिन्न ज्ञायते, को ह[2] वैतद् वेद? किं वाऽनेन ज्ञातेन? इत्यशक्यप्राप्यफलत्वाभ्यां वस्तुतत्त्वविचारो न युज्यते, क्रियाया एवोपदेशोऽतः श्रेयान्' इति लेशेनाभ्युपगतत्वात्[3]। **यस्यायमन्यो**[4] **भेद** इति तस्यैवाज्ञानवादस्यान्योऽयं[5] भेदः। कतमोऽसौ भेदः? **सर्वमिदमज्ञानप्रतिबद्धमेव**[6] **जगत् पृथिव्यादी**ति। कथम्? रूपादिमत्त्वाद् घटादिवत्। **आदि-**ग्रहणात् पृथिव्यप्तेजोवायवः। नन्वेते पदार्था अज्ञा[7] एव, किमर्थमज्ञानप्रतिबद्धं जगत् पृथिव्यादीत्युच्यते? उच्यते – आकाशकालदिगात्मेन्द्रियमनःप्रभृतीनामपि तद्व्यतिरेकेणानुपलब्धेर्न सन्ति तन्मयत्वादेव च तद्वदचेतनान्यत आह – **इन्द्रियाण्यपि**[8] **च तन्मयान्येवाचेतनानी**ति। तन्मयत्वानुमानं च **भूयस्त्वाद्**

८०-१ **गन्धवत्त्वाच्च पृथिवी गन्धज्ञाने। तथापस्तेजो**[9] **वायुश्च रसरूपस्पर्शेषु रसरूपस्पर्शविशेषात्** [वै० सू० ८।२।५-६] इति।

स्यान्मतम् – प्रत्यभिज्ञानाहङ्कारेच्छादिविशेषलिङ्गदर्शनादात्मा तद्गुणस्तद्व्यतिरिक्तोऽस्तीति। एतच्चायुक्तम्, गुणगुणिनोर्भेदमिच्छतां ज्ञानादन्यत्वसाम्यात् पृथिव्यादिगुणत्वेऽपि तुल्यानुमानत्वात्। अभ्युपेत्यापि आत्मादिव्यतिरेकं **तत्करणत्वात्** तेषामिन्द्रियाणां करणत्वात् तानि वाऽस्य करणानि तत्करणो[10] ज्ञः, **तैः** करणैः **प्रकाशितं** घटादि**स्थूलमज्ञं** प्रकाश्यत्वादेव चान्यमप्यर्थं प्रकाश्य प्रतिपद्यमानोऽपि[11] **प्रतिपद्येत ज्ञः,** सम्भाव्यमानप्रतिपत्तिरपि पुरुषः स्थूलमेवार्थं प्रतिपद्येताज्ञानात्मकम्। करणानि[12] चाज्ञानि। अचेतनकरणप्रकाशितमप्यचेतनं प्रदीपप्रकाशितघटादिवदेव स्यात् स्थूलं च, न परमाण्वादि सूक्ष्मं शुद्धं चेतनस्वरूपपुरुषादि वा स्यादज्ञाना[13]प्रतिबद्धम्। **तस्यापि चेन्द्रियसन्निकृष्टस्ये**त्यादि। सत्यपि च तस्य स्थूलस्य ग्राह्यत्वे तत्स्वरूपाज्ञानादज्ञानसम्बद्धमेव। तस्येन्द्रियसन्निकृष्टस्य[14] द्रव्यान्तरव्यतिरिक्त**मसाधारणं** यत् **स्वरूप**मात्मादेर्वातीन्द्रियस्य[15] तस्य कचित् कदाचिददृष्टत्वात् 'इदमिदम्' इति **न निरूपणोपायोऽस्ति।** निरूपणं निर्णयज्ञानमिष्टम्। किं कारणं न निरूपणोपायोऽस्ति 'इदमिदम्' इति चेत्, उच्यते – **प्रत्येकं समुदाये वा तद्दृष्ट्यनुपपत्तेः**[16], तस्यासाधारणरूपस्यापूर्वस्यापूर्वत्वादेव दृष्ट्यनुपपत्तिर्निर्णयानुपपत्तिश्च[16]। प्रत्येकं तावन्न[17] हि घट एकैकः कृष्णादिरूपोऽपूर्वत्वाद्दृश्यते स्वरूपतः, तत एव प्रत्येकमनिरूपितस्वरूपाणां कुतो निरूपणं समुदाये, सिकतासु प्रत्येकमनिरूपितस्य समुदाये तैलस्य निरूपणाभाववत्? निश्चयेन रूपणं [निरूपणम्], तदुपायाभावात् 'अज्ञानप्रतिबद्धमेव सर्वम्' इति साधूक्तम्।

---

१ **तत्रोक्तं तेज्ञानिकवादः** य०। **तत्रोक्तान्तज्ञानानिकवादः** भा० ॥ २ **कोहं** य० ॥ ३ दृश्यतां पृ० ३५ पं० ४, पृ० ४५ पं० २ ॥ ४ °**मन्ये** डे० लीं०। °**मन्य** पा० रं० ही० वि० ॥ ५ **तस्यैव ज्ञान**° प्र० ॥ ६ °**दज्ञान**° भा०। °**दं ज्ञान**° य० ॥ ७ **अज्ञान एव** य० ॥ ८ °**याद्योपि च तन्मयानेवा**° प्र० ॥ ९ **तथा तेजो** प्र०। "तथापस्तेजो वायुश्च रसरूपस्पर्शाविशेषात्" – इति मुद्रिते वैशेषिकसूत्रे पाठः ॥ १० °**णोऽज्ञः** भा० ॥ ११ **प्रतिपद्यमानेपि प्रतिपद्येत ज्ञः** य०। **प्रतिपद्यत ज्ञः** भा० ॥ १२ **कारणानि च ज्ञानि** य० ॥ १३ °**ज्ञानादिप्रति**° य० ॥ १४ °**कृष्टद्रव्यान्तर**° प्र० ॥ १५ °**न्द्रियस्य कचित्** प्र० ॥ १६ °**ष्ट्यनुप**° य० ॥ १७ **तावंत हि** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदृष्ट्यनुपपत्तेः । स्वसंवेदनेनोच्छ्वसनाभ्यवहृतपरिणतिसुप्तादिचलनकण्डूयनस्फुरणघ्राणरसनादिक्रिया असञ्चेतिताः । इत्थं कल्पिताकल्पिततथाभूतप्रत्ययानुपपत्तेरज्ञानानुविद्धमेव सर्वं ज्ञानम् । परिच्छेदार्थश्च प्रमाणव्यापारः । न चेत्थं तत्परिच्छेदोऽस्ति ।

न च 'अज्ञानम्' इत्युक्तविरोधः, राधकपूर्णकमातृव्यपदेशवद्विशेष्यप्राधान्यादनवधारणाज्ज्ञानाज्ञानयोरविशेषात् संशयविपर्ययानध्यवसायनिर्णयावगमाववबोधार्थत्वात् ।

स्यान्मतम्—अनुभवितुर्बाह्यविषयम् 'इदमिदम्' इति निरूपणं मा भूद् यदि न भवति, स्वसंवेदनं ८०-२
त्वान्तरं सुखदुःखादिषु किं निरूपणं न भवति ? इति । उच्यते—**स्वसंवेदनेनोच्छ्वसना[1]भ्यवहृतपरिणती**त्यादि, व्यभिचारान्न भवति, प्राणापा[2]नावसञ्चेतयन्नेव हि कुरुते सर्वो लोकः, अभ्यवहृतमपि खलरसभावेन रसरुधिरादिभावेन च परिणमयन्न सञ्चेतयति स्वयमेव । तथा **सुप्तादीनां चलनकण्डूयनस्फुरणादिक्रियाः** कुर्वतामसञ्चेतयमानानामेव ताः क्रिया दृश्यन्ते । सुप्त-मत्त-मूर्च्छित-गर्भाः सुप्तादयः । तथान्यमनसामव्यक्तचलनकण्डूयनमशकदंशस्पर्शसंवेदनं गन्धादिज्ञानं सुप्तादीनां चाम्लद्रव्यास्वादनमसञ्चेतितम् । **र[3]सन**मास्वादनमित्यर्थः । **आदि**ग्रहणात् क्षुतजृम्भितका[4]सितादयः । यथैताः क्रिया **असञ्चेतिता**स्तथा स्वसंवेदनमपि । **इत्थं कल्पिताकल्पिततथाभूतप्रत्ययानुपपत्तेः,** कल्पितस्तावत् कल्पितत्वादेव तथाभूतो न भवति प्रत्ययः, अकल्पितोऽपीत्थमुक्तविधिना नोपपद्यते तथाभूतः प्रत्ययः शुद्ध इत्यर्थः । तस्मात् कल्पिताकल्पिततथाभूतप्रत्ययानुपपत्ते**रज्ञानानुविद्धमेव सर्वं ज्ञान**मिति । **परिच्छेदार्थश्च प्रमाणव्यापारः,** प्रमाणं हि व्याप्रियमाणं यथार्थपरिच्छेदार्थमिष्यते, **न चेत्थं तत्परिच्छेदोऽस्ती**ति वैधर्म्यं दर्शयति ।

स्यान्मतम्—'अज्ञानप्रतिबद्धम्' इत्यज्ञानशब्दोच्चारणादेव ज्ञानाभ्युपगमः कृतो भवति प्रतिषेधस्याऽब्राह्मणवदन्यत्र प्रसिद्धविषयत्वात्, अन्यथा प्रतिषेधानुपपत्तेः स्ववचनविरोधाच्च । तदपि **न चाज्ञानमित्युक्तविरोधः** । किमि[5]व ? **राधकपूर्णकमातृव्यपदेशवत्** । कुतः ? **विशेष्यप्राधान्या[6]दनवधारणात्** , ८१-१
का भावना ? य[7]था रा[8]धकस्य पूर्णकस्य वैकैव माता विवक्षिता भवति तदा 'राधकमाता' इति राधकेन विशिष्यमाणा 'पूर्णकमाता' इति पूर्णकेन वा अथ 'राधकपूर्णकमाता' इत्युभाभ्यां वा, सर्वथा राधकस्यैव पूर्णकस्यैव वा मातेत्यवधारणं नास्ति, विशेष्यप्राधान्यात्, **तथा** ज्ञा[9]नाज्ञानाभ्यां तदेव विशिष्यते वस्त्विति विशेष्यप्राधान्यान्नोक्तिविरोधो **ज्ञानाज्ञानयोरविशेषात्** । न तु यथा विशेषणप्राधान्यादवधारणं 'नीलमुत्पलम्' इति । अतस्तेषामवबोधार्थाभेदाज्ज्ञानत्वमज्ञानत्वं चाविशिष्टमिति तत् प्रदर्शयन्नाह—**संशयविपर्ययानध्यवसायनिर्णयावगमाववबोधार्थत्वात्** । **गम्लृ सृप्लृ गतौ** [पा० धा० ९८२-९८३], अव पूर्णगमनमवगमः, अवगमश्चाववोधः, **अबुध वगमने** [पा० धा० ८५८, ११७२] इति वचनात् । सर्वेषां संशयविपर्ययनिर्णयानध्यवसायानामवगमार्थत्वादवगम[10]स्य चावबोधपर्यायत्वात् ।

---

१ °नाद्यवहृत° प्र० ॥ २ °पानार्थसञ्चेत° प्र० ॥ ३ रसेन° प्र० ॥ ४ °काशिता° य० ॥ ५ किमव प्र० ॥ ६ °दन्यव° य० ॥ ७ यथा यथा य० ॥ ८ राधकपूर्णकस्य प्र० ॥ ९ ज्ञानाभ्यां प्र० ॥ १० °मस्य बाधबोधपर्या° प्र० ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

तस्मादेतस्मिन्नयभङ्गेऽज्ञात एव शब्दस्यार्थः । यथा चाहुः—

अस्त्यर्थः सर्वशब्दानामिति प्रत्याय्यलक्षणम् ।
अपूर्वदेवताशब्दैः सममाहुर्गवादिषु ॥ [वाक्यप० २।१२१]

सर्वाणि च पदानि वाक्यार्थः ।

व्यवहारदेशत्वाचास्य द्रव्यार्थता । द्रव्यशब्दो द्रुर्गतिर्यात्रा व्यवहारो लोकस्य

तस्मादेतस्मिन् नयभङ्गेऽज्ञात एव शब्दस्यार्थः । भङ्गग्रहणं भङ्गान्तरसूचनार्थम्, [1]परस्परनिरपेक्षाणां भङ्गानां वृत्तेर्मृषात्वात् [2]तद्विपर्ययायाः सत्यत्वात् तेषां च विधिनियमयोरेव भङ्गत्वान्नयानाम् । तस्मादस्मिन्नेव नयभङ्गे शब्दस्याज्ञातोऽर्थः, नान्येषु, तेष्वप्यन्येऽन्येऽर्था इति । एतस्य दर्शनस्य ज्ञापकमाह—[3]**यथा चाहुः—अस्त्यर्थः सर्वशब्दाना**मिति श्लोकः । सत्तामात्रमर्थः सर्वशब्दानाम्, कोऽप्यस्यार्थोऽस्ति, न निरर्थकः शब्दः, स पुनरर्थो न निरूपयितुं शक्यः 'अयमयम्' इति, एतत् **प्रत्याय्यलक्षणम्** । तत्र दृष्टान्तोऽ**पूर्वदेवतास्वर्ग**शब्दानामर्थाः, यथा तेषामत्यन्ता[4]परिदृष्टत्वात् 'ईदृशोऽपूर्वः स्वर्गो देवता वेदृशी' इति न
८१-२ प्रतिपद्यामहे निरूपणेन तथा गवादिशब्दाना[5]मप्यर्थैस्तत्समैरेव भवितव्यम्, न हि [6]गमनगदनगर्जनादिष्वर्थव्यवस्था विशेषरूपेति 'कश्चिदस्त्यर्थः' इत्येतावत् [7]प्रतिपत्तव्यम् । एतस्मिन्नेव नयभङ्गे **सर्वाणि च पदानि वाक्यार्थः** । तद्यथा—'देवदत्त ! गामभ्याज शुक्लां दण्डेन' इत्यत्र परस्पराविवेकेन सङ्कीर्णरूपाणि पदानि एकार्थानि अन्वयव्यतिरेकाभ्यामनुगम्यमानं सम्पिण्डितमे[8]वार्थं ब्रूयुर्न पृथग्भूतम् । तस्मात् सर्वाणि [9]पदानि वाक्याय वाक्यार्थः, पदान्येव वाक्यार्थः, नैकैकं न तद्व्यतिरिक्तम् । यथोक्तम्—**अर्थैकत्वादेकं वाक्यं साकाङ्क्षं चेद्विभागे स्यात्** [मीमांसासू० २।१।४६] इति । न तु यथान्यैः कल्प्यतेऽन्यथा—

आख्यातशब्दः सङ्घातो जातिः सङ्घातवर्तिनी ।
एकोऽनवयवः शब्दः क्रमो बुद्ध्यनु[10]संहृतिः ॥
पदमाद्यं पृथक् सर्वं पदं सापेक्षमित्यपि ।
वाक्यं प्रति मतिर्भिन्ना बहुधा न्यायदर्शिनाम् ॥ [वाक्यप० २।१–२]

इति, अलौकिकत्वादशक्यप्राप्यफलत्वाभ्यामेव ।

क पुनरयं नयोऽन्तर्भाव्यते, किं द्रव्यनयभेदे ? [11]पर्यायनयभेदे ? उच्यते—**व्यवहारदेशत्वाच्चास्य** [12]**द्रव्यार्थता, लौकिकसम उपचारप्रायो विस्तृतार्थो व्यवहारः** [तत्त्वार्थभा० १।३५] इति वचनात् तस्य

---

१ **परस्परदृ(प्र)तिनिरपेक्षाणां** य० ॥ २ **तद्विपर्यायाः** प्र० ॥ ३ **यथा बहुः** प्र० ॥ ४ °**परदृष्ट**° प्र० ॥ ५ °**प्यर्थो तत्समै**° य० ॥ ६ **गमनागदन**° प्र० । "कैश्चिन्निर्वचनं भिन्न गिरतेर्गर्जतेर्गमेः । गवतेर्गदतेर्वापि गौरित्यत्रानुदर्शितम् ॥ २।१७५ ॥ यथैव हि गमिक्रिया जात्यन्तरैकार्थसमवायिनीभ्यो गमिक्रियाभ्योऽत्यन्तभिन्ना तुल्यरूपत्वविधौ त्वन्तरेणैव गमिमभिधीयमाना गौरिति शब्दव्युत्पत्तिकर्मणि निमित्तत्वेन आश्रीयते तथैव 'गिरति गर्जति गदति' इत्येवमादयः साधारणाः सामान्यशब्दनिबन्धनाः क्रियाविशेषास्तैस्तैराचार्यैः गोशब्दव्युत्पादनक्रियायां परिगृहीताः"—इति **वाक्यपदीयस्ववृत्तौ** २।१७५ । "गच्छति गदति गर्जति वा गौः"—इति **पातञ्जलमहाभाष्यस्य भर्तृहरिविरचितायां त्रिपाद्याख्यायां वृत्तौ** ॥ ७ °**पत्तव्यं तस्मिन्नेव** य० । °**पत्तव्यतस्मिन्नेव** भा० ॥ ८ °**मिवार्थं** प्र० ॥ ९ **पदानि वाक्यार्थः पदान्येव वा वाक्यार्थः** य० । भा० प्रतिपाठे तु "चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः" [पा० २।१।३६] इति सूत्रानुसारेण 'वाक्याय इति वाक्यार्थः' इति चतुर्थीतत्पुरुषोऽत्र विवक्षितो विशेष्यलिङ्गवचनानुसारिता तु नादृतेति भाति ॥ १० °**संहतिः** भा० । °**संवृतिः** य० ॥ ११ **पर्यय**° भा० ॥ १२ **द्रव्यार्थतो** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्या अवयव एकदेशोऽसमस्तवृत्तिरन्यथावृत्तित्वात् । लोके हि तदेकदेशवृत्तिता मृद्घटादिसामान्यविशेषत्वद्रव्यत्वानामिति दिक् ।

तस्मादन्यत्त्ववस्तु, अलौकिकत्वात्, खकुसुमवत्, व्यतिरेके घटवत् ।

निबन्धनं चास्य – आता भंते ! णाणे, अण्णाणे ? गोतमा ! णाणे णियमा आता, आता पुण सिया णाणे सिया अण्णाणे । [भगवतीसू० १२।३।४६७]

---

[1]द्रव्यार्थभेदत्वात् । लोकव्यवहारविषयो हि व्यवहारः, तदेकदेशो विधिनयः, तस्माद्द्रव्यार्थभेदः । यथा –

दव्वट्ठियणयपगती[2] सुद्धा संगहपरूवणा[3]विसओ ।
पडिरूवं पुण वयणत्थणिच्छओ तस्स ववहारो ॥ [सन्मति० १।४]

तस्य शब्दार्थव्युत्पत्तिदर्शनार्थमाह – **द्रव्यशब्द** इति, 'द्रोरवयवो द्रव्यम्' इति व्युत्पादितत्वात् अथ द्रुः कः ? दु द्रु गतौ [पा० धा० ९४४, ९४५], तत्तुल्यार्थमव्युत्पन्नं प्रातिपदिकम्, द्रुद्रुभ्यां[4] मः [पा० ५।२।१०८] इति निपातितत्वात्, तस्यार्थो **द्रुगतिर्यात्रा[5] व्यवहारो लोकस्येति । तस्या** यात्राया **अवयव** ८२-१ **एकदेश** इत्यर्थकथनम्[6] । स एकदेशः क इति चेत्, उच्यते – एकदेशो**ऽसमस्तवृत्तिरन्यथावृत्तित्वात्,** समस्तलोकव्यवहारविपरीतवृत्तित्वान्मि[7]थ्यादृष्टिरित्यर्थः । सा पुनरस्या विधिवृत्तेरेकदेशवृत्तिता कुतः परिच्छिद्यत इति चेत्, लोकत एव परिच्छिद्यत इत्यर्थः । यस्मा**ल्लोके तदेकदेशवृत्तिता मृद्घटादिसामान्यविशेषत्वद्रव्यत्वानाम्,** मृत् सामान्यम्, घटो विशेषः, मृदः सामान्यं द्रव्यत्वम्, घटविशेषश्छिद्रबुध्न-खण्डौष्ठ-सम्पूर्ण-रक्त-कृष्णतादिः । सर्व एवैषोऽपरित्याज्योऽर्थकलापः समस्तवृत्तौ नयानां यथास्वं च[8] प्रमाणवशाद्व्यवस्थाप्यः । तस्याज्ञानानुविद्धत्वैकान्ताद्वक्ष्यमाणदोषसम्बन्धाच्च लौकिकस्याप्यस्याऽयुक्तिः[9] । **इति** परिसमाप्तौ, विधिनयशतभेदे[10] **दिगि**ति ।

तस्मादन्यत् त्ववस्तु, अलौकिकत्वात्, खकुसुमवदिति गतार्थम् । अभिप्रायार्थः – स तु मन्यते "[11]लोकोऽलौकिकैकान्तं **साङ्ख्या**दिपरिकल्पितमवस्त्विति । **व्यतिरेके घटव**दिति, यद्वस्तु तल्लौकिकमेव यथा घटः कार्यं[12] वा कारणं वा सामान्यं वा विशेषो वा यो वा स वास्तु यथालोकप्रसिद्धि पृथुबुध्नादिप्रागुक्तसामान्यविशेषभावनात्[13] स च लौकिक इति । **व्यतिरेके** वैधर्म्ये ।

सर्वनयानां जिनप्रवचनस्यैव निबन्धनत्वात् किमस्य निबन्धनमिति चेत्, उच्यते, **निबन्धनं चास्य** – **आता[14] भंते ! णाणे, अण्णाणे?** इति स्वामी **गौतम**स्वामिना पृष्टो व्याकरोति "[15]**गोतमा ! णाणे**

---

१ **द्रव्यार्थभेदात्** प्र० ॥ २ °**पगई** य० ॥ ३ °**परूपणा**° भा० ॥ ४ **दुद्रुभ्यां** प्र० ॥ ५ °**यंत्रा** प्र० ॥ ६ °**कथनां** भा० । °**कथना** य० ॥ ७ °**रीतवर्त्तित्वान्मि**° प्र० ॥ ८ **यथास्व च प्रमाण**° भा० । **यथास्वप्रमाण**° य० ॥ ९ °**प्यन्या**[थ्या ?] **युक्तिः** य० । °**प्यत्यायुक्तिः** भा० ॥ १०° **शतभेदो** रं० ही० विना । °**शतभेदा** रं० ही० ॥ ११ **लोकोकान्तं** प्र० ॥ १२ **कार्यं कारणं वा** य० ॥ १३ °**भावनात्** प्र० । अस्मिन् पाठे तु स्वारस्ये '°भावितत्वात्' इत्यर्थमभिप्रेत्य सङ्गमनीयम् ॥ १४ **आया भंते नाणे अन्नाणे** य० ॥ १५ **गो० नाणे नियमा अतो** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८२-२ **णियमा आता,** ज्ञानं नियमादात्मा ज्ञानस्यात्मव्यतिरेकेण वृत्त्यदर्शनात्। **आता पुण सिया णाणे सिया अण्णाणे,** आत्मा पुनः स्याज्ज्ञानम्, स्यादज्ञानमप्यसौ ज्ञानावरणीयकर्मवशीकृतत्वात् संशयविपर्ययानध्यवसायबाहुल्यादित्यस्मात् सूत्रादेतद् मिथ्यादर्शनं निर्गतमज्ञानोक्तिविरोधसमाधिमदिति।

इति विधिभङ्गारः प्रथमो द्रव्यार्थभेदः समाप्तः ॥

१ **आया पुण सिय नाणे सिअ अन्नाणे** य० ॥ २ °**मवदिति** प्र० । अत्र '°मवददिति' इत्यपि पाठः स्यात् ॥
३ **इति** य० प्रतिषु नास्ति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

अथ द्वितीयो विधिविध्यरः ।

अयमपि तु विधिवृत्त्येकान्तो विप्रतिषेधादयुक्तः । तद्यदि लोकतत्त्वमज्ञेयमेव लोकतत्त्वव्यावर्तनं तर्ह्यप्रत्ययमेव । यदि तज्ज्ञानमफलमेव किमिति शास्त्रविहितार्थ-

---

अयमपि तु विधिवृत्त्येका[1]न्तो विप्रतिषेधादयुक्त इति । कः पुनः सम्बन्धः ? स्वविषय-[2]संपातनेनार्थानां [3]भावनात्मभिर्विधिनियमवृ[4]त्तिभिर्विदितप्रत्येकत[5]त्त्वाभिः समधिगम्या जैनसत्यत्वसाधनवृत्ता विवक्षितद्वादशविकल्पविशे[6]षेणैकैव वृत्तिरधिकृतेत्यनन्तरोक्ताया विधिवृत्तेरपि प्रत्येकवृत्ताया मिथ्यादृष्टित्वा-दयमपि तु विधिवृत्त्येकान्तस्त्याज्यः । कस्मात् ? अयुक्तत्वात्, अयुक्तत्वं विप्रतिषेधात् । विरु[7]द्धः प्रतिषेधो विप्रतिषेधः, 'सर्वमुक्तं मृषा' इति प्रतिषेधवत् । **अपिशब्दात्** सामान्यविशेषोभयवादैकान्तः प्रथमनयदूषि-तोऽनुमत इत्ययमभिसम्बन्धः ।

कथं विप्रतिषेध इति चेत्, उच्यते—यदुक्तं त्वया '[8]**सर्वमज्ञानानुविद्धमेव ज्ञानम्, न[9] च ज्ञानाज्ञानयोः कश्चिद्विशेषोऽस्ति संशयविपर्ययानध्यवसायनिर्णयानामवबोधैकार्थत्वात्, न** लोकतत्त्वं ज्ञातुं शक्यम्, **वि[10]फलश्च विवेकयत्नः शास्त्रेषु'** इति । **तद्यदि लोकतत्त्वमज्ञेयमेव सर्वशास्त्र-विहितलोकतत्त्वव्यावर्तनं तर्ह्यप्रत्य[11]यमेव** अशक्यप्राप्यफल[12]त्वाभ्याम्, प्रतिषेधस्य प्रतिषेध्य- A८३-१
स्वरूपज्ञानविषयत्वाच्च किं त्वयैवेदं [13]विदित्वाऽविदित्वा वा **[14]सामान्यविशेषौ स्वविषयौ परविषयौ वा स्यातामित्यादि** लोकतत्त्वं शास्त्रान्तरेषु कल्पितं दूषितम् ? विदित्वा चेत्, न तर्हि तन्मतं न विदितम् । अथाविदित्वा ततः कथं दूषितम् ? इत्युभयथापि न युज्यते प्रतिषेधो विरुद्धत्वात्, प्रतिषिध्यते [15]प्रतिषेध्यं च न ज्ञायत इति हास्यमेतत् । स्यान्मतम्—प्रतिषेध्यं ज्ञायते, [16]तैस्तस्य वस्तुनः सत्त्वादिगुणत्रयात्मक-[17]क्षणसद्रूप-द्रव्यादिषट्पदार्थात्मकादितया बहुधा कल्पितस्यानुपपत्तेरिति । एतदपि विप्रतिषि[18]द्धम्, तेषामपि मतानां [19]लोकतत्त्वान्तःपातिनां मिथ्याविधिकत्वं ज्ञातमज्ञातं वा स्यात् ? इति तुल्यविकल्पत्वात्, ज्ञाता-

---

१ °**कान्तो पिप्रति**° प्र० ॥ २ °**संघात**° प्र० ॥ ३ **भावानान्मभि**° पा० डे० लीं० रं० ही० । **भावा-ज्ञात्मभि**° वि० । दृश्यतां पृ० १० पं० ५ ॥ ४ °**वृत्तिभिविदित**° पा० डे० लीं० । °**वृत्तिभिरविदित**° रं० ही० । °**वृत्तिभिरनेकान्तविदित**° वि० ॥ ५ °**तत्ताभिः** य० ॥ ६ °**षेणैकैव** प्र० ॥ ७ °**द्धप्रति**° प्र० ॥ ८ दृश्यतां पृ० ११३ पं० ३ ॥ ९ दृश्यतां पृ० ११३ पं० ६ ॥ १० दृश्यतां पृ० ११ पं० ४ ॥ ११ °**यमेवमशक्य**° प्र० ॥ १२ °**त्वाभ्यां प्रतिषेध्यस्वरूप**° य० ॥ १३ **वेदित्वा** प्र० ॥ १४ दृश्यतां पृ० ११ पं० ५ ॥ १५ **प्रतिषेधं** य० ॥ १६ **तैःस्तस्य** य० । ॥**तेस्य** भा० ॥ १७ °**क्षणतद्रूप**° य० । °**क्षणद्रूप**° भा० ॥ १८ **द्धस्तेषामपि** य० । °**द्धः षेमपि** भा० ॥ १९ **लोकसत्वान्तः**° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिषेधप्रयासः ? क्रियोपदेशन्याय्यत्वाभ्युपगमोऽपि चैवं विघटेत, संसेव्यविषयस्वतत्त्वानुपातिपरिणामविज्ञानविरहितत्वात्, अवैद्यौषधोपदेशवद् बालकाहिग्रहणवत् ।

ज्ञातत्वयोश्च तद्दोषाविमोक्षात् । सामान्यं स्वविषयं परविषयं चेत्थमित्थं च न युज्यते तथा विशेष इति प्रपञ्चितत्वादज्ञातं [1]चेत् तत् सर्वम्, अप्रत्ययत्[2]वान्न प्रतिषेध इत्युक्तम् । ज्ञातं चेत् कथं ज्ञातुमशक्यं लोकतत्त्वम् ? इत्यप्रत्ययमेव । स्वयमसमीक्षितवाच्यवाचकसम्बन्धत्वात् [3]ते वचस उन्मत्तवदेव तावत् 'अशक्यं ज्ञातुं लोकतत्त्वम्' इत्युक्तम्, [4]विप्रतिषेधात् ।

यदप्युक्तम्–[5]अनर्थको विवेकयत्नः शास्त्रेष्विति, तत्रापि विप्रतिषेधात्, **यदि तज्ज्ञानमफलमेव किमिति शास्त्रविहितार्थप्रतिषेधप्रयासः ?** शास्त्रविहितार्थज्ञानं तत्प्रतिषेधोपायज्ञानं [6]चावधार्यम्–किं सफलम् ? अफलम् ? यद्यफलं विज्ञानम्, शास्त्रविहितार्थान् [7]प्रतिषिषेधिषतः A८३-२ प्रयासोऽप्यफल [8]एवाज्ञातत्वात् पूर्ववत् । अथ सफलम्, 'अफलमेव लोकतत्त्वज्ञानम्' इति व्याहन्यते । अतः [9]को ह वैतद्वेद ? किं वाऽनेन ज्ञाते[10]न ? इत्येतदयुक्तमुक्तम्, विप्रतिषेधात् ।

यदप्युक्तं 'वस्तुतत्त्वाशक्यप्राप्तेः [11]क्रियाया एवोपदेशो न्याय्यस्तत्पूर्वकत्वात् सुखाद्याप्तेः' इत्यत्रोच्यते– **क्रियोपदेशन्याय्यत्वाभ्युपगमोऽपि चैवं विघटेत,** 'विघटत एव' इति कथं निष्ठुरमुच्यते ? 'विघटेत' [12]इति तत्सम्भावनयोच्यते दाक्षिण्यलोकज्ञानाभ्याम् । को हेतुर्वि[13]घटने ? [14]**संसेव्यविषयस्वतत्त्वानुपातिपरिणामविज्ञानविरहितत्वात् ।** 'सम्' इत्येकीभावे, आत्मसाद्भावेन सेव्यमानस्य विषय[15]स्य स्वतत्त्वमाहारादेः शब्दस्पर्शरसरूपगन्धात्मकस्य स्वरूपं वातादिप्रकोपशमोपचयप्रलयावहम्–

नागरातिविषामुस्ताक्वाथः स्यादामपाचनः । [चरकसं० ६।१५।९८] इति ।

तत्तत्त्वानु[16]पाती परि[17]णामः, तदनुपतितुं शीलमस्येति, किमुक्तं भवति ? आसेव्यमानस्य वस्तुनस्तत्क्रियात एव स्वरूपानुपातेन विपाकः परिणामः । तद्विज्ञानविरहितत्वम् । स इत्थं विपाकः सुखाय दुःखाय वेत्येतद्विज्ञानं हिताहितप्राप्तिपरिहारार्थम्, [18]तत्तु भवतां नास्त्येव । अतस्तद्विरहितत्वात् क्रियोपदेशोऽपि 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः, तण्डुलान् पचेद्भोक्तुकामः' इत्या[19]दिर्दृष्टादृष्टार्थो न घटते, अज्ञात[20]संसेव्यवस्तुतत्त्वपरि[21]णामत्वात्, **अवैद्यौषधोपदेशवत्,** यथा कस्यचिदविज्ञातरसवीर्यविपाकप्रभावद्रव्यगुणविशेष[22]भागाभागसंयोगस्य देश-

१ चेत्तर्हि सर्वम्° य० ॥ २ °त्वाच भा० । त्वाच्च य० ॥ ३ ते नचस य० ॥ ४ विप्रतिषेधात् यद्यप्युक्तमनर्थको विवेकयत्नः शास्त्रेष्विति तत्रापि विप्रतिषेधात्तु तद् ज्ञानमफलमेव रं० ही० डे० लीं० । विप्रतिषेधोप्युक्तमनर्थको विवेकयत्नः शास्त्रेष्विति तत्रापि विप्रतिषेधात् । यद्यप्युक्तमनर्थको विवेकयत्नः शास्त्रेष्विति तत्रापि विप्रतिषेधात्तु तद् ज्ञानमफलमेव पा० वि० ॥ ५ दृश्यतां पृ० ११ पं० ४ ॥ ६ च वधार्यम् भा० । च वधार्थम् य० ॥ ७ प्रतिषिधित्सतः भा० । प्रतिषेधित्सतः य० ॥ ८ एव ज्ञातत्वात् य० ॥ ९ को हं य० । दृश्यतां पृ० ११२ पं० ४ ॥ १० दृश्यतां पृ० ३५ पं० ४ ॥ ११ दृश्यतां पृ० ४५ पं० २ ॥ १२ इति न संभावनयोच्यते प्र० ॥ १३ °घटते य० ॥ १४ ससेव्य° प्र० ॥ १५ °यस्य तत्त्वमा° प्र० ॥ १६ °पाति य० ॥ १७ °णामतद्° पा० रं० ही० । णामं तद्° डे० लीं० । °णामविज्ञानतद्° वि० ॥ १८ ततु भा० । ननु य० ॥ १९ °दिर्दृष्टार्थो प्र० ॥ २० °तसंवेव्य° भा० । °तवैव्यद्य° पा० । °तवैव्य° डे० लीं० । °तवैव्यद्य° रं० ही० । °तवैधव्य° वि० ॥ २१ °णामवान् य० ॥ २२ °षभागसंयो° भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेशादेव तज्ज्ञानयोग इति चेत्, न, उभयथापि पौरुषेयत्वाद्वेद-

कालातुरप्रकृतिसात्म्याग्निबलबलवाता[1]दिरोगसमुत्थाननिदानादिलक्षणा[2]नभिज्ञस्यौषधोपदेशो न घटते तथा 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' इत्याद्युपदेशः । अथवा हिताहितप्राप्तिपरिहारार्थत्वात् सर्वोपदेशानां तद्- B८३-१ भावात् क्रीडितमेवास्त्वितीदं **बालकाहिग्रहणवत्**[3] तज्ज्ञानविरहितस्योपदेशश्रवणग्रहणधारणतर्कणा[4]नुष्ठाना[5]दि अनर्थानुबन्ध्येव स्यादितीदमर्थप्रदर्शनार्थं द्वितीयमुदाहरणम्[6] ।

उपदेशादेव तज्ज्ञानयोग इति चेत् । स्यान्मतम्—पुरुषस्यातीन्द्रियार्थदर्शन[7]शक्तिशून्यत्वात् स्वर्गापूर्वकर्मसम्बन्धज्ञाने पूर्वविज्ञानकारणाभावाद्वन्ध्याया दौहित्रस्मरणवत्[8] । द्रव्य-गुण-रस-वीर्य-विपाकादि-ज्ञानस्यानुमानं पूर्वविज्ञानकारणं सम्भाव्येत । तस्मादुपदेशादेवाग्निहोत्रकर्मस्वर्गफलाभिसम्बन्धा[9]दि-ज्ञानमिति । एतच्चायुक्तम्, **उभयथापि पौरुषेयत्वात्,** दृष्टादृष्टार्थत्वेनोपदेशज्ञानस्यापि पौरुषेयत्वात्, ज्ञानतो वचनतश्च[10] पुरुषाधीनत्वादिति वा; यथा त्वमतीन्द्रियेष्वर्थेषु पूर्वविज्ञानकारणाभावं मन्यसे पुरुषस्य पुरुषज्ञानवचनानां तद्विषयाणां चाप्रामाण्यं रागादियोगा[11]त्तथा सर्वोप[12]देशस्योपदेष्टृज्ञानस्य[13] श्रोतृज्ञानवचनयोश्च ज्ञानत्ववचनत्वाभ्यां पौरुषेयत्वानतिवृत्तेर्भारतरामायणादिवदप्रामाण्यम् । अग्निहोत्राद्युपदेशस्यातीन्द्रियार्थस्य प्रामाण्यवत् साङ्ख्याद्यतीन्द्रियार्थोपदेशप्रामाण्यं वा । वानरमूलिकादिपरिज्ञानव[14]त् कस्यचित् किञ्चिद्विषयं तत्त्वज्ञानं[15] स्यात्, न तु सर्वौषधादिविषयैकपुरुषज्ञानम्, अतो वैद्यकादिष्वपि पूर्वज्ञानकारणाभावः । तद्विषयैकपुरुषविज्ञानवद[16]तीन्द्रियेन्द्रियग्राह्यसर्वपदार्थविषयैकपुरुषविज्ञानाभ्युपगमो वाऽवश्यम्भावी, किं कारणम्? B८३-२
वेदवचनयोरन्यथानुपपत्तेः, पुरुषमन्तरेण वेदनं वेदो ज्ञानमित्यर्थः तेन च ज्ञातस्य वचनं परप्रत्यायनं[17] तदुभयं प्रत्ययनं प्रत्यायनं च नोपपद्यते, तयोः पुरुषसमवायित्वात्[18] । उक्तं च—

> **रूपं[19] निबन्धः सम्बन्धः प्रामाण्यं प्रत्ययः क्रिया ।**
> **शब्दस्य पुरुषाधीना ज्ञानं चानन्यदात्मनः** [ ] इति ।

---

१ °**बलवतोरोग**° य० ॥ २ °**णाभिज्ञ**° य० ॥ ३ **बालकादिग्र**° य० ॥ ४ °**तर्कमानु**° प्र० ॥ ५ °**ष्वानादि** भा० । °**षानादि** पा० वि० । °**धानादि** रं० ही० । °**थानादि** डे० लीं० ॥ ६ °**हरणार्थमुपदेशादेव न ज्ञानयोग** प्र० ॥ ७ °**दर्शनां शून्यत्वात्** य० ॥ ८ अत्र 'स्वर्गापूर्वकर्मसम्बन्धज्ञाने वन्ध्याया दौहित्रस्मरणवत् पूर्वविज्ञानकारणाभावात् उपदेशादेव तज्ज्ञानयोगः' इत्यर्थमभिप्रेत्य सङ्गमनीयोऽयं पाठः । अन्यथा 'पूर्वविज्ञानकारणाभावो वन्ध्याया दौहित्रस्मरणवत्' इति पाठः स्यात् । "धर्मस्य शब्दमूलत्वादशब्दमनपेक्ष्यं स्यात् । १।३।१ । ......शब्दलक्षणोऽर्थो धर्म इत्युक्तम्, चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म इति, अतो निर्मूलत्वान्नापेक्षितव्यमिति । ननु ये विदुः 'इत्थमसौ पदार्थः कर्तव्यः' इति कथमिव ते वदिष्यन्ति 'अकर्तव्य एवायम्' इति? स्मरणानुपपत्त्या । न ह्यननुभूतोऽश्रुतो वा पदार्थः स्मर्यते । न चास्य वैदिकस्य अलौकिकस्य च स्मरणमुपपद्यते पूर्वविज्ञानकारणाभावादिति । या हि वन्ध्या स्मरेदिदं मे दौहित्रकृतमिति न मे दुहितास्तीति मत्वा न जातुचिदसौ प्रतीयात् सम्यगेतज्ज्ञानमिति"—**मी० शाबरभा०** १।३।१ ॥ ९ °**फलाभिसम्ब**° य० । °**फलादिसम्ब**° भा० ॥ १० **वचनश्च** प्र० ॥ ११ °**योगास्तथा** प्र० ॥ १२ **सर्वेक्षोप**° य० । अत्र **सर्वस्योप**° इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १३ °**पदेष्टज्ञा**° वि० विना० । °**पदिष्टज्ञा**° वि० ॥ १४ °**वत् तस्यत्तद्विषयं** य० ॥ १५ **तत्तद्ज्ञानं** वि० । **तत्तद्ज्ञानं** पा० ॥ १६ °**दतीन्द्रियग्राह्य**° य० ॥ १७ °**यनं च तदु**° य० ॥ १८ °**समायित्वात्** पा० डे० लीं० वि० । °**सामायित्वात्** भा० ॥ १९ **रूपन्निबन्धः** प्र० ॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

वचनयोरन्यथानुपपत्तेः । उपदेशाप्रसिद्धिरपि चैवं भवतः, सर्वस्योपदेशस्य साङ्ख्याद्युपदेशवल्लोकतत्त्वान्वेषणादृते सम्भवाभावात् । तस्यापि त्वनवस्थाने

औषधोपदेशाज्ञानवदग्निहोत्राद्युपदेशाज्ञानम्, तज्ज्ञानवत् तदपि वा प्रमाणान्तरगम्यमिति । एवं तावत् क्रियोपदेशमभ्युपगम्य दोष उक्तः ।

अनभ्युपगम्यापि[1] **उपदेशाप्रसिद्धिरपि चैवं भवतः,** त्वन्मतेनैवेति वाक्यशेषः, **सर्वस्योपदेशस्य साङ्ख्याद्युपदेशवल्लोकतत्त्वान्वेषणादृते सम्भवाभावात्,** उपदेशो व्याख्या, असौ च व्याख्या पदविषया वाक्यविषया[2] प्रमाणविषया तद्विषयवस्तुविषया[3] वा **वेदव्याकरणसाङ्ख्यादिशास्त्र**विकल्पिता यथास्वं प्रक्रियाभिः । तत्र यथा **साङ्ख्या**दिप्रक्रियाभिर्वस्तुतत्त्वं[4] घटादेर्लोकतत्त्वान्वेषणपरया व्याख्यया[5] विना नाधिगम्यतेऽतस्तथा[6] व्याख्यायते एवमग्निहोत्रादि संज्ञासंज्ञिसम्बन्धव्युत्पादनेन व्याख्यायते, प्रकृतिप्रत्ययादिविभागेन पदविषयं वाक्यविषयं प्रमाणविषयं च प्रत्यक्षानुमानागमबाधाभ्युच्चयविकल्पाङ्गाङ्गिभावविकल्पादि लोकतत्त्वान्वेषणमन्तरेण नाधिगन्तुं शक्यमित्युपदेशस्तत्त्वान्वेषणपरः सर्वः प्रवर्तते । तत्र यथा **साङ्ख्याद्युप**-
८४-१ दिष्टार्थेष्वशक्यप्राप्तिरुपदेशानर्थक्यं च तथा **वेदव्याकरणमी**मांसाद्युपदेशानामपीत्युपदेशाप्रसिद्धिः । अथ लोकतत्त्वान्वेषणपराणां तेषामुपदेशानां शक्यप्राप्त्यर्थोपदेशसाफल्ये[7] शक्येते, कः पराभ्युपगमे प्रद्वेषः ? इहापि च यथा लोकत एव प्रत्यक्षानुमानगम्यघटपटादितत्त्वपरिच्छेदः शक्यते कर्तुमेवं पदवाक्यप्रमाणपरिच्छेदोऽपि शक्यः, घटादिपदाच्छब्दार्थप्रत्ययविषयस्य[8] लोकत एव वर्णानुपूर्व्यादिनियतवाच्यवाचकप्रत्ययाव्यभिचारस्य प्रसिद्धेः । एवं वाक्ये प्रमाणे च योज्यम्[9] । उक्तं च—

> **प्रमाणानि प्रवर्तन्ते प्रमेयैः[10] सर्ववादिनाम् ।**
> **संज्ञाभिप्रायभेदात्तु विवदन्ते तपस्विनः ॥** [सिद्ध० द्वा० २०।४] इति ।

तस्मादुपदेशानां त्वन्मतेनैव सर्वेषामप्रामाण्यसिद्धिः, लोकतत्त्वान्वेषणपरत्वे सति अशक्यप्राप्त्यफलत्वेनाभ्युपगतत्वात्, **साङ्ख्यादिशास्त्र**कारोपदेशवत् । अतो दृष्टादृष्टार्थक्रियोपदेशे पदवाक्यप्रमाणविषय[11]विषयव्याख्यावैयर्थ्यप्रसङ्गान्न वेदशास्त्रोपदेशसिद्धिर्लोकतत्त्वान्वेषणपरत्वानतिवृत्तेः, तर्कशास्त्रवाच्यलोकतत्त्वविचारविज्ञानसाफल्यं वा । उपदेशाप्रसिद्धौ परीक्षकत्वहानिः, पदवाक्यप्रमाणविषय[12]विषयाव्यभिचारज्ञानार्थत्वात् परीक्षायाः । परीक्षैव चोपदेशः, परीक्षाव्याख्ययोरनर्थान्तरत्वात् । स चोपदेशस्त्वन्मतेनैवैवं नावतिष्ठते, लोकतत्त्वान्वेषणात्मकत्वात् ।

स्यान्मतम्—पदवाक्यप्रमाणानामपि सामान्यविशेषादिघटादिजगत्तत्त्वविचारवदव्यवस्थैव, प्रमाणानामपि प्रमाणान्तराधिगम्यत्वेऽनवस्थादोषप्रसङ्गादिति । अत्रोच्यते—प्रमाणानवस्था तावन्नास्ति, चन्द्रार्क-
८४-२ मणिप्रदीपादिवत् स्वपरावभासित्वात् प्रमाणानाम् । पदादीनामभ्युपगम्यापि त्वन्मतेनाऽनवस्थामाह[13]—**तस्यापि**

---

१ °**गमस्यापि** य० ॥ २ °**षया वा प्रमा**° भा० ॥ ३ **तद्वस्तुविषया** य० ॥ ४ °**यादिर्वस्तु**° प्र० ॥ ५ **व्याख्याया** प्र० ॥ ६ °**म्यते इत**° प्र० ॥ ७ °**साफलो वाक्येते** प्र० ॥ ८ °**दात् शब्दार्थि**° य० । °**दाशब्दार्थ**° भा० ॥ ९ **चायोज्यम्** भा० ॥ १० दृश्यतां पृ० ४६ पं० २२ । "प्रमाणान्यनुवर्तन्ते विषये सर्ववादिनाम् ।"–**सिद्ध० द्वा०** ॥ ११ °**णविषयव्याख्या**° प्र० । दृश्यतां पृ० १२० पं० ७ ॥ १२ °**णविषयाव्यभि**° भा० रे० ही० । दृश्यतां पृ० १२० पं० ७ ॥ १३ °**नावस्था**° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रियाविधाय्यपि शास्त्रं नावतिष्ठेतेति तत्प्राप्यपुण्याद्यभावः, यथा अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम **इति विधेरप्रसिद्धार्थविषयविधायितयाऽसंव्यवहार्यत्वात्तद्विहितक्रियाफलसम्बन्धाभाव आरोग्यार्थिडित्थभक्षणोक्तिवत् ।**

अथोच्येत – कर्तव्यतां विधाय इतिकर्तव्यताविधानात् 'एवम्प्रकारमेवाग्निहोत्रं नाम कर्म भवति' इति प्रसिद्धं भविष्यति तस्येतरार्थाविचारेण ।

त्वनवस्थाने जगत्तत्त्वस्य प्रमाणविचारस्य वा **क्रियाविधाय्यपि शास्त्रं नावतिष्ठेत,** तस्यापि लोकतत्त्वान्वेषणात्मकत्वानतिवृत्तेरप्रमाणत्वात्[1] । इतिशब्दो हेत्वर्थे, अयं हेतुः 'क्रियाविधायिशास्त्रानवस्थानात्[2]' इति, अत**स्तत्प्राप्यपुण्याद्यभावः,** क्रियाविधायिशास्त्रोपदिष्टक्रियाभिव्यङ्ग्यापूर्वाभाव इत्यर्थः । कतमत् पुनस्तत् क्रियाविधायि शास्त्रम् ? उच्यते, **यथा – '[3]अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः'** इत्येतच्छास्त्रम् । [4]इदं तु पुनः किं विधिः, अनुवादः, अर्थवादः ? उच्यते – **विधिः** । कथमुपलक्ष्यते विधिरिति ? **अप्रसिद्धार्थविषयविधायितया** लक्ष्यते । अत्राप्रसिद्धमग्निसम्प्रदानं हवनं विधीयते, स्वर्गस्य सुखसंज्ञस्य तत्प्राप्त्याश्रयस्य विशिष्टदेशाद्यात्मकस्य वा तदभिलाषस्य च कर्तरि सिद्धत्वात् 'स्वर्गावाप्तावुपायोऽग्निहवनम्' इत्युपायस्यापूर्वत्वात् । कथं पुनस्तत्क्रियाभिव्यङ्ग्यापूर्वाभावः ? त्वन्मता[5]दैवोक्तवत् । इतश्च तर्को[6]त्थापितलोकतत्त्वज्ञानानपेक्षत्वात् तस्य विधेरसंव्यवहा[7]र्यत्वम्, **असंव्यवहार्यत्वात् तद्विहितक्रियाफलसम्बन्धाभावः,** दृष्टान्त **आरोग्यार्थिडित्थभक्षणोक्तिवत्,** यथा आरोग्या[8]र्थिने पुंसे 'डित्थं भक्षय' इत्युक्तिस्तत्क्रिया च त्रिफले अप्रसिद्धत्वादेवं त्व[9]दुक्तिक्रिये अशक्यप्राप्त्यर्थे चेत्यशक्यप्राप्त्यादिमत्साङ्ख्यादिविवेकयत्नतुल्यत्वं तत्रापि ।

अथोच्येतेत्यादि । अत्राह – मा मंस्थाः **साङ्ख्यादियत्नतुल्यत्व**मेतस्य, किं कारणम् ? वैधर्म्यात्, ८५-१ तद्यथा – **कर्तव्यतां विधाय इतिकर्तव्यताविधानात्**, तत्र '[10]अग्निहोत्रं जुहुयात्' इति कर्तव्यतयाग्निहोत्रं विधीयते, ततः [11]पुनरुत्तरत्र [12]विशेष्य इतिकर्तव्यता विधीयते 'तदग्निहोत्र[13]मेवमेवं च कर्तव्यम्' इति यद्यथाग्निष्टोमादिसंस्थाविशेषैर्द्रव्य-गुण-देवता-[14]कर्तृ-काम-काल-देशादिविशेषैश्च, **[15]वसन्ते ब्राह्मणो यजेत, ग्रीष्मे राजन्यः, शरदि [16]वाजपेयेन वैश्यः । [17]होलाका प्राच्यैः, उद्वृषभयज्ञ उदीच्यैः [ ] ।**

---

१ °**माणात्** प्र० ॥ २ °**स्थाना इति** य० । °**स्थान इति** भा० ॥ ३ "अग्नौ ज्योतिर्ज्योतिरग्नौ इत्यग्निहोत्रं जुहुयात्, एतद्वै वाचस्सत्यम्······। द्वादश रात्रीरग्निहोत्रं जुहुयाद् या वा अग्नेर्जातवेदास्तनूस्तयैव प्रजा हिनस्ति ।" इति कृष्णयजुर्वेदस्य **काठक**संहितायाम् ६।७ । "यस्याहुतेऽग्निहोत्रेऽपरोऽग्निरनुगच्छेत् तत एव प्राञ्चमुद्धृत्यान्ववसायाग्निहोत्रं जुहुयात्, अथाभिमन्त्रयेत ।" इति कृष्णयजुर्वेदस्य **मैत्रायणी**संहितायाम् १।८।८ ॥ ४ **इदं पुनः** भा० ॥ ५ °**दैवो**° रं० ही० विना० ॥ ६ °**स्थापितलोकतत्त्वाज्ञाना**° प्र० ॥ ७ °**हार्यत्वात् तद्विहित**° य० ॥ ८ °**र्थिनि पुंसि** य० ॥ ९ **त्वयुक्तं क्रिये** प्र० ॥ १० **अग्नि जुहुयात्** प्र० ॥ ११ **पुनपुरु**° वि० पा० रं० ही० ॥ १२ **विशेषेति**° य० ॥ १३ °**त्रमेवं रेवं च** य० । °**त्रमेवं च** भा० ॥ १४ °**कर्तृकामाकाला**° डे० लीं० । °**कर्तृकामंकला**° पा० वि० रं० ही० । °**कर्तृकाल**° भा० ॥ १५ "ब्राह्मणो वसन्त आदधीत, ब्रह्म हि वसन्तः । तस्मात् क्षत्रियो ग्रीष्म आदधीत, क्षत्रं हि ग्रीष्म । तस्माद्वैश्यो वर्षासु आदधीत, विड् हि वर्षाः ।" इति **शुक्लयजुर्वेद**सम्बन्धिनि **शतपथब्राह्मणे** २।१।३।५ । "वसन्तो ब्राह्मणस्याधानकालः । ग्रीष्मो हेमन्तश्च राजन्यस्य । शरद्वैश्यस्य ।" इति कृष्णयजुर्वेदसम्बन्धिनि **सत्याषाढश्रौतसूत्रे** ३।२ ॥ १६ **वाजयेत** य० ॥ १७ **होलाको प्रान्यैः** भा० । **होलाको प्राक्षैः** य० । "तस्माद् होलाकादयः प्राच्यैरेव कर्तव्याः, आह्नीनैबुकादयो दाक्षिणात्यैरेव, उद्वृषभयज्ञादय उदीच्यैरेव"–**शाबरभा०** १।३।१५ । "होलाकादयः प्राच्यैरेव क्रियन्ते । वसन्तोत्सवो होलाका ।······उद्वृषभयज्ञादय उदीच्यैः, ज्येष्ठमासस्य पौर्णमास्यां बलीवर्दानभ्यर्च्य धावयन्ति सोऽयमुद्वृषभयज्ञः"–इति **जैमिनीयन्यायमालायाः सायणमाधवीये** भाष्ये १।३।८।१५-२३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ननु चैवमपि कर्तव्यताप्रतिपत्तिर्लौकिककर्तव्यताद्यर्थतत्त्वानुसृतेरेव, कर्तव्यताविधानानन्तरं चेतिकर्तव्यतावसरः, यथा घटादिकर्तव्यतायां विहितायां 'घटं कुरु' इति ततः पुनरितिकर्तव्यताक्रमः—एवं निर्वर्तयेरिति। न तु घटवदग्निहोत्रशब्दः

वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः, वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता, वायुमेव स्वेन भागधेयेनोपधावति, स[1] **एवास्मिन् भूतिं**[2] **निधत्ते** [तै० सं० २।१।१] इत्यादि त्वया प्रतिपत्स्यत इति शिष्यमनुशास्ति। तत उत्तरकालम् **'एवम्प्रकारमेवा**[3]**ग्निहोत्रं नाम कर्म भवति' [इति]** विशेषैर्विधायि[4]नार्थप्रतिपत्तिबलेन **प्रसिद्धं**[5] **भविष्यति तस्य** शिष्यस्य **साङ्ख्यादिविवेकप्रयत्नवैलक्षण्येन**[6] **इतरार्थाविचारेण** घटपरमाण्वादिकार्य[7]कारणसामान्यविशेषादिस्वरूपाविचारेणेति।

अत्रोच्यते—**ननु चैवमपी**त्यादि। नन्वित्यनुज्ञापने, 'कर्तव्यता' इति या **कर्तव्यताप्रतिपत्ति**रग्निहोत्रादिविषया सा प्रतिपत्तिर्वा**लौकिककर्तव्यताद्यर्थतत्त्वानु**[8]**सृतेरेव,** प्रत्येकं पतनं प्रतिपत्तिः[9], सा द्विविधा—आध्यात्मिकी बाह्या [10]चेति, तत्राध्यात्मिकी 'इदं कर्तव्यमिदं न कर्तव्यम्' इत्यादिका बुद्धिरेव, बाह्या तु द्विपदचतुष्पदधनधान्याद्यर्थं समीक्रिया। सा द्विविधापि लोकप्रसिद्धमेवार्थमनुसृत्य भवितु-
८५-२ मर्हति नाप्रसिद्धम्, तस्मादग्निहोत्रादिप्रतिपत्तिरपि लोकतत्त्वानुसृतेरेव, नान्यथा। अन्यथा किम्विषया सा स्यान्नालिकेरद्वीपजातवृद्धस्य[11] गोधेनुप्रतिपत्त्यभाववत्? इति तद्दर्शयति—**कर्तव्यता**[12]**विधानानन्तरं चेतिकर्तव्यतावसरः,** 'लौकिककर्तव्यताद्यर्थतत्त्वानुसृतेरेव' इति वर्तते। प्रसिद्धकर्तव्यता[13]प्रतिपत्त्यनन्तरं प्रसिद्धेतिकर्तव्यताप्रतिपत्त्यवसर इति न्यायः, तदुभयमलौकिकत्वादग्निहोत्रसामान्यस्याग्निष्टोमादिविशेषस्य द्रव्यमन्त्रदेवता[14]विधिनियमाद्यात्मनश्चाप्रसिद्धेरयुक्तम्। किञ्चान्यत्[15], तन्न्यायासम्भवश्च। तद्व्यावर्तनार्थं[16] लोकप्रसिद्धकर्तव्यतेतिकर्तव्यतावैधर्म्यं दर्शयन्नाह—**यथा घटादिकर्तव्यतायां विहितायां घटं कुर्विति ततः पुनरितिकर्तव्यताक्रमः, एव**मिति प्रकार[17]निर्देशं दर्शयति, मृत्पिण्डं चक्रमूर्द्धनि संस्थाप्य दण्डेन भ्रमयित्वा द्वाभ्यां पाणिभ्यां शिवकाद्याकार[18]विशेषक्रमेण **निर्वर्तयेरि**ति प्रसिद्धकर्तव्यताविधानोत्तरकालं प्रसिद्धेतिकर्तव्यताविधानं घटादिविषयमुपपन्नं प्रसिद्धार्थत्वात्, न[19] त्वग्निहोत्रकर्तव्यतायाः पशु[20]वधादीतिकर्तव्यतायाश्च प्रसिद्धिः, अप्रसिद्धत्वादग्निहोत्रशब्दस्य काञ्चिदपि इतिकर्तव्यतां[21] कर्तव्यतां वा वक्तुमशक्तत्वात्, अत आह—**न तु घटवदग्निहोत्रशब्दः काञ्चिदपि कर्तव्यतां ब्रवीति,** 'अपि'शब्दादितिकर्तव्यतामपीति।

---

१ **स एवास्मि** प्र० ॥ २ **भूमिं निधत्ते** पा० डे० लीं० रं० ही० । **भूमिं विधत्ते** वि० । **भूमिं धत्ते** भा० । "स एवैनं भूतिं गमयति"—इति कृष्णयजुर्वेदस्य तैत्तिरीयसंहितायां पाठः २।१।१। "स एनं भूत्यै नियति"—इति कृष्णयजुर्वेदस्य मैत्रायणीसंहितायां पाठः २।५।१ ॥ ३ °**रमग्नि**° भा० ॥ ४ °**विधानार्थप्रति**° य० ॥ ५ **सुसिद्धं** प्र० ॥ ६ °**क्षाप्येन** भा० । °**क्ष्यत्वेन** य० ॥ ७ °**कार्या**° य० । °**कार्षा**° भा० ॥ ८ °**तथानु**° प्र० ॥ ९ °**पत्तिस्या** प्र० । °**पत्तिः स्या** भा० ॥ १० **चे तत्रा**° य० । **चेक तत्रा**° भा० ॥ ११ °**स्य धेनु**° य० ॥ १२ °**व्यविधा**° य० ॥ १३ °**व्य प्रति**° य० ॥ १४ °**तत्विग्नि**° य० ॥ १५ °**न्यस्तन्यायासंभवं च** य० । °**न्यत्तन्याय्यासंभवं च** भा० ॥ १६ °**नार्थलोक**° प्र० ॥ १७ °**रनिर्देश्यं** भा० ॥ १८ °**विशेषाक्रमेण** प्र० ॥ १९. **नवग्नि**° पा० डे० लीं० । °**नग्नि**° भा० ॥ २० °**पशुबंधादी**° भा० ॥ २१ °**व्यता कर्तव्यतां** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काञ्चिदपि कर्तव्यतां ब्रवीति। जुहोतेर्हि धातोरयं प्रत्यय उत्पन्नः स तत्कर्तव्यतां हित्वा पदान्तरकर्तव्यतायां कथं प्रवर्तेत? अथ तदेव तत्, प्रसिद्धिविरुद्धं पुनरुक्तं च।

पदान्तरकर्तव्यतायां तावत् परिहारः—हवनं पदान्तरकर्तव्यतामपेक्षते वाक्यन्यायेन सामर्थ्यात्। सामर्थ्यं घटवदग्निहोत्रशब्दस्याप्यर्थवत्त्वायेष्यते। न चेदेवं

स्यान्मतम्—'जुहुयात्' इत्ययं तर्हि ब्रवीति, हु **दानादनयोः** [पा० धा० १०८३] इत्यस्याः प्रकृतेः क्रियावाचिन्या विध्यर्थलिङ्[1]प्रत्ययान्तत्वात्, तच्च हवनमग्निविषयम्, अतस्तत्कर्तव्यतां 'जुहुयात्' इत्येष शब्दो ब्रवीति। अत्रोच्यते—एवमपि तदवस्थम्, सत्यमयं ब्रवीति तत्कर्तव्यताम्, किन्तु हवन- ८६-१
मात्रस्य, तस्याप्यप्रसिद्धस्यैव, न त्वग्नि[2]होत्रकर्तव्यताम्, 'जुहुयात्' इत्याख्यातस्य पूर्वापरीभूतानिष्पन्नावयवक्रियार्थवाचित्वात्, नाम्नां पिण्डितनिष्पन्नार्थवाचित्वात्। किं कारणम्? [3]विविक्तार्थवाचित्वाभिमतानां शब्दानां पदान्तरार्थावृत्तेः। तत आह—**जुहोतेर्हि धातोरयं प्रत्यय [4]उत्पन्नः स तत्कर्तव्यतां हित्वा पदान्तरकर्तव्यतायां कथं प्रवर्तेत?** प्रत्ययग्रहणं प्रकृतिप्रत्ययौ [5]प्रत्ययार्थे सह ब्रूतः [पा० म०भा०३।१।६७] इति परिभाषितत्वादग्नेः।

स्यान्मतम्—**अथ तदेव तत्,** यदेवाग्निहोत्रं तदेव हवनं यदेव हवनं तदेवाग्निहोत्रमिति। एतत् तावदनयोरैकार्थ्यं **प्रसिद्धिविरुद्धम्,** नामाख्यातयोर्भिन्नार्थत्वप्रसिद्धेः। अभ्युपेत्याप्येकार्थवाचित्वमनयोः पौनरुक्त्यपरिहारार्थं लाघवार्थं च 'जुहुयात्' इत्येवास्तु, किम् 'अग्निहोत्रम्' इत्यनेन?

[6]इतरोऽप्रसिद्धिपौनरुक्त्यपरिहारार्थमाह—**पदान्तरकर्तव्यतायां तावदि**त्यादि। तावच्छब्दः क्रमा[7]र्थे, यत् तावदुक्तं **पदान्तरकर्तव्यतायां कथं प्र[8]वर्तेत** इत्यत्र **परिहारः।** अस्मिन् परिहारेऽभिहिते[9] पौनरुक्त्याप्रसिद्धिदोषावपि 'तदेव तत्' इत्येतत्पक्षगतौ परिहृता[10]वेवेत्यभिप्रायः। तत्र **हवनं पदान्तरकर्तव्यतामपेक्षते,** केन न्यायेन? **वाक्यन्यायेन,** को वाक्यन्यायः? [11]भेदसंसर्गाभ्यां परस्पराकाङ्क्षा सम्बन्धः, त[12]याकाङ्क्षया पदान्तरार्थे [13]वर्तते पदम्, यथा 'सब्रह्मचारिणा सहाधीते' इत्युक्ते येन समानो ब्रह्मचारी [14]सब्रह्मचारी तेन सब्रह्म[15]चारिणा य एवाधीते तेनैव समान इत्याकाङ्क्षा भवति **सामर्थ्यात्,** नान्येन केनचित्। **सामर्थ्य**मपेक्षेत्यर्थः। [16]न तु यथा पदार्थे परिच्छिन्ने घट इति न पदार्थान्तरमपेक्ष्यते ८६-२
पदेन। सा पुनरपेक्षा **घटवत्** घटशब्दवत्, अभेदनिर्देशाद् घटार्थत्वेन [17]घटशब्द उक्तः, घटशब्द[18]स्यार्थवत्त्ववद**ग्निहो[19]त्रशब्दस्याप्यर्थव[20]त्त्वायेष्यते,** अन्यथाग्निहोत्रशब्दोऽनर्थकः स्यात्, तन्मा भूदानर्थक्य-

---

१ °**लिट्प्रत्यया**° प्र० ॥ २ °**होत्रे कर्त**° प्र० ॥ ३ **विवक्ता**° प्र० ॥ ४ **उत्पन्नः सत्कर्तव्यतां** भा० पा० डे० लीं०। **उत्पन्नः सकर्तव्यतां** वि० रं० ही०। अत्र 'उत्पन्नस्तत्कर्तव्यताम्' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ५ **प्रत्यया सह** य० ॥ ६ **इतराप्र**° य० ॥ ७ **क्रमार्थो** य० ॥ ८ **प्रवर्तेतेऽन्यत्र** भा० पा० डे० लीं०। **प्रवर्ततेऽन्यत्र** वि०। **प्रवर्तते इत्यत्र** रं० ही० ॥ ९ °**भिहितो** प्र० ॥ १० °**हृतवेवे**° भा०। °**हृतं चेवे**° य० ॥ ११ **भेदः सं**° य० ॥ १२ **तयादूकांक्षया** य० ॥ १३ **वर्तेते** भा० ॥ १४ **सब्रह्मचारी** य० प्रतिषु नास्ति ॥ १५ °**चारिणो** प्र० ॥ १६ **ननु** भा० वि०। **नमु** पा० डे० लीं०। **समु** रं० ही० ॥ १७ **घटः शब्द** य० ॥ १८ °**स्वार्थवत्त्वविद**° पा० डे० लीं० वि०। **स्वार्थवित्त्वनियमाद**° रं० ही०। °**स्वार्थवद**° भा० ॥ १९ °**होत्रसर्वस्याप्यर्थवत्त्वा**° भा०। °**होत्रशब्दोसर्वस्याप्यर्थवत्त्वा**° य० ॥ २० °**त्वापेक्षते** वि० ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

ततोऽग्निहोत्रशब्दः प्रमादाधीत आपद्येत । तत एवं वचनव्यक्तिर्भवति 'अग्निहोत्राख्यं हवनं कुर्यात्' इति, यथा घटं कुर्यादित्युक्ते घटक्रियां कुर्यादिति ।

एतदयुक्तं दृष्टान्तवैषम्यात् । न हि किञ्चिदग्निहोत्रं नाम हवनं घटवत् प्रसिद्धं यदनूद्योच्येत यदग्निहोत्रसंज्ञकं हवनं तत् कुर्यादिति, नापि हवनं यत् कुर्यात् तदग्निहोत्राख्यमिति, वाक्यान्तरेण प्रमाणान्तरेण वाऽप्रसिद्धत्वात् । अत एव तूभय-

---

मित्याकाङ्क्ष्यते[1] । **न चेदेवं ततो** दोष इति, यदि तु निरपेक्षोऽग्निहोत्रशब्दो हवनप्रकृत्यर्थमात्र एव वर्तते[2] ततः को दोषः ? ततोऽ**ग्निहोत्रशब्दः प्रमादाधीत आपद्येत,** अग्निशब्दस्य च न पृथक् कश्चिदर्थो हवनप्रकृत्यर्थमात्रत्वात् स्यात्, ततश्च दशदाडिमादिश्लोकावयववत् प्रमादाधीत आपद्येत[3] निराकाङ्क्षत्वात्, न पुनरेवमिष्यते । **तत एवं वचनव्यक्तिर्भवति**[4]**–अग्निहोत्राख्यं हवनं कुर्यात्** अग्निहोत्रसंज्ञक्रियाकाङ्क्षहवनं[5] कुर्या**दिति** । किमिव ? **यथा 'घटं कुर्यात्' इत्युक्ते** सामान्यचोदनायाः प्लवनाद् विशेषाभिसम्बन्धमन्तरेण नैरर्थक्यं स्यात्, तन्मा भूदिति घटं कुर्याद् **घटक्रियां कुर्यादिति** वचनव्यक्तिस्तथाग्निहोत्रं जुहुयादिति ।

आचार्य आह–**एतदयुक्तं**[6] **दृष्टान्तवैषम्यात्,** अर्थभेदासिद्धेः, अभ्युपेत्यापि आकाङ्क्षाकृतमर्थभेदमग्निहोत्रहवनयोरप्रसिद्धेर्दृष्टान्तेन प्रसिद्धेन घटेन वैषम्यमिति तद्दर्शयति–**न हि किञ्चिदग्निहोत्रं नाम हवनं घटवत् प्रसिद्धं यदनूद्योच्येत,** यथा घटं[8] लोके प्रसिद्धमनूद्य तद्विषयं कर्म कुर्याद् घटं कुर्यादित्युच्यते न तादृगनुवदनमत्रोपपन्नमप्रसिद्धत्वादग्निहोत्रहवनयोर्नाप्याकाङ्क्षाकृतमैक्यमस्तीति[9][10] तद्दर्शयति[11] वैधर्म्येण–**यदग्निहोत्रसंज्ञकं**[12] **हवनं तत् कुर्या**दिति, अग्निहोत्रहवनयोरैक्येन प्रसिद्धौ सत्यां तद्विषयं करणमनुविधीयेत ।
८७-१ **नापि हवनं यत् कुर्या**दिति हवनक्रियामनूद्य **तदग्निहोत्राख्यमि**त्यैक्येन विधानं युज्येत[13] **वाक्यान्तरेणा**ग्निहोत्रस्य हवनस्य वा अविहितत्वाल्लोके शास्त्रान्तरेषु वा **प्रमाणान्तरेण वाऽप्रसिद्धत्वा**दग्निहोत्रहवनक्रिययोः कथमनूद्य विधानं[14] घटते ?

अत एव तूभयमप्यशक्यम् । अत इत्येतस्मादनन्तरोक्ताद्धेतोर्वाक्यान्तरेण प्रमाणान्तरेण वाऽप्रतीतत्वादुभयमप्यशक्यं विशेषणं विशेष्यं च प्रधानमुपसर्जनं च विधिरनुवादश्च शेषः शेषी च उत्सर्गोऽपवादश्च, अन्यतरस्याप्यर्थाप्रतीतेः । किं हवनक्रियाविशेषणमग्निहो[त्रं विशेष्यम् ? अग्निहो]त्रविशेषणं हवनं विशेष्यम् ? एवं विध्यनुवादप्रधानोपसर्जनोत्सर्गापवादशेषशेषिभावादिषु[15] खपुष्पखरविषाणयोरिवायुक्तमिति । **तुशब्द** एव-[16]

---

१ °**कांक्षष्यते** पा० डे० लीं० । °**कांष्यते** रं० ही० । °**कांक्षते** वि० ॥ २ **वर्तेते**° भा० ॥ ३ **आपद्यते** य० ॥ ४ °**चनं**° भा० पा० डे० लीं० । °**चने**° वि० ॥ ५ °**संज्ञाक्रियाकांक्षा**(क्ष्य?)**हवनं** प्र० ॥ ६ **एतदुक्तं** य० ॥ ७ **आकांक्षतमर्थं**° य० ॥ ८ **घट** य० । **घटा** भा० ॥ ९ °**मात्रो**° प्र० ॥ १० °**क्षाष्णक**° पा० डे० लीं० रं० ही० । °**क्षात्मक**° वि० ॥ ११ **वै हि धर्म्येण** डे० लीं० । **ने हि धर्म्येण** पा० । **नाहि धर्म्येण** रं० ही० । **न हि धर्म्येण** वि० ॥ १२ °**त्रं संज्ञिकं** य० ॥ १३ **युज्येत रेणाग्निहोत्रस्य** प्र० ॥ १४ **विधान** प्र० ॥ १५ °**शेषीभावादिषु** य० । अत्र "°शेषिभाव दि खपुष्प°" इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १६ **एवकार्थत्वे विशेषेण** पा० डे० लीं० वि० । **एवकार्थत्वे विशेषणे** रं० ही० । **एकार्थत्वे विशेषेण** भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मप्यशक्यम्, यदि विशेष्येत एवं विशेषणीयम्—हवनं कुर्यात् तच्चाग्निहोत्रसंज्ञकमग्निहोत्रं वा हवनमिति, एतदयुक्तम्, अनुवादविधिविषयत्वे वाक्यभेदापत्तेः। नापि घटादि कर्तव्यतायामिव काचित् क्रिया प्रसिद्धा ययाग्निहोत्राख्यता हवनस्यातिदिश्येत हवनाख्यता वाग्निहोत्रस्य।

कारार्थविशेषणे, प्रोक्तवदेव विशेषणत्वादि न घटत इति विशिनष्टि। कथमशक्यमिति चेद्दर्शयति—**यदि विशेष्येत एवं विशेषणीयम्—हवनं कुर्यात् तच्चाग्निहोत्रसंज्ञक**मिति हवनक्रिययाग्निहोत्रं विशेष्येत, **अग्निहोत्रं वा हवन**मिति 'यदग्निहोत्रं त[1]द्धवनं कर्म' इत्यग्निहोत्रेण हवनं विशेष्येत। **इति** प्रदर्शने, इत्थं विशेष्येत यदि विशे[2]षणविशेष्यतया प्रयोजनमवश्यम्, तच्च नैवं शक्यमप्रसिद्धार्थत्वात्। यदप्युक्तम् 'अनूद्याग्निहोत्रं हवनक्रिया विधीयते, हवनं वानूद्याग्निहोत्रं विधीयते' इति, **ए[3]तदयुक्तं** वाक्यभेदापत्तेरित्यत आह—**अनुवादविधिविषयत्वे वाक्यभेदापत्ते**रिति, तत्रै[4]कमनुवादकमेकं विधायकम्, तयोरन्यतरद् यथेष्टं तेऽस्तु, ततो भिन्नार्थत्वाद् वाक्यभेदोऽनयोरापद्यते, यथा '[5]कुशलोऽयं देवदत्तो ज्ञेयः' इति प्रसिद्धमर्थमनूद्य ८७-२ 'आनयैनम्' इत्यानयनं विधीयते, 'देवदत्तमानय' इति देवदत्तानयनं वा विधाय अविदुषे 'यः कुशलतरोऽनयोः' इत्यनुवादे [6]प्रसिद्धाप्रसिद्धार्थानुवा[7]दविधिविषये द्वे वाक्ये, [8]एवमेकस्यानुवादत्वेऽन्यस्य च विधित्वे वाक्यभेदापत्तिः, अतो नैषोऽपि व्याख्याना[9]ध्वा शोभन इति।

स्यान्म[10]तम्—न वाक्यभेदापत्त्यादिदोषाः सम्भवन्ति, क्रियाया एव विधेयत्वात्। यथोक्तम्—**नैतद्विचार्यते—[11]अनड्वान् नानड्वानिति। किं तर्हि? आलब्धव्यो नालब्धव्य इति [पा० म० भा० १।१।४३]**, तथा **स्वभावसिद्धं द्रव्यम्, क्रिया चैव हि भाव्यते [पा० म० भा० १।३।१]** इति। तस्मादग्निविषया हवनक्रियैव विधीयते, अतो दृष्टान्तवैषम्यं नास्ति द्रव्यस्याविधेयप्रतिषेध्यत्वात् 'घटं कुर्यात्, मा कार्षीत्' इति, किं तर्हि? घटक्रियां कुर्यादिति, तथा हवनं कुर्या[12]दग्निहोत्रं कुर्यादिति हवनाग्निहोत्रक्रि[13]ययोरतिदेशो न्याय्य इति। अत्रोच्यते—**[14]नापि घटादिकर्तव्यताया**मित्येवमादि। यथा घटादिविषया कर्तव्यता मृदानयनमर्द[15]नाद्युपक्रमात्मिका लोके प्रसिद्धा न तथा **काचि**दग्निहवनकर्तव्यता नाम प्रोक्षणबर्हिरास्तरणाज्यप्रक्षेपाद्युपक्रमात्मिका मन्त्रपूर्वक्रिया क्रमवती **प्रसिद्धा यया** कर्तव्यतया**तिदिश्येत** हवनाख्ययाग्**निहोत्राख्यता** अग्निहोत्राख्यया वा **हवनाख्यता**तिदिश्येतेति।

[16]अथ पुनरित्यादि। **अथे**त्यधिकारान्त[17]रे, पक्षान्तरमधिकारान्तरम्। अनन्तरोक्तविधिना **न निर्वहति** 'हवनं कुर्याज्जुहुयात्' इति हवनविधावग्निहोत्रानुवाद इत्यस्मिन्नर्थेऽप्रसिद्धत्वाद्विशेषणविशेष्यताद्यभावाद्वाक्य- ८८-१

---

१ तद्धवनकर्म वि० ॥ २ °षेण° प्र० ॥ ३ पतदुक्तं य० ॥ ४ °कं अनु रं० ही० वि०। °कं द्यू(ह्य?)नु° भा० डे० लीं०। °कं द्य(ह्य?)नु° पा० ॥ ५ कुशलयोर्दे° पा० डे० लीं० रं० ही०। कुशलयोर्दे° वि० ॥ ६ प्रसिद्धार्थानु° प्र० ॥ ७ °वादे य० ॥ ८ पकमेक° य० ॥ ९ °नाद्धा प्र० ॥ १० °तम् वाक्य° य० ॥ ११ अनत्वान्नात्वानिति किं तर्ह्यालसव्यो प्र० ॥ १२ °ग्निहोत्रं कुर्यादिति हवनाग्निहोत्रं कुर्यादिति हवना° प्र० ॥ १३ °योरतिदेश्यो भा०। °योरितिदेश्यो य० ॥ १४ दृश्यतां पृ० १०७–२ ॥ १५ °नाभ्युप° प्र० ॥ १६ दृश्यतां पृ० १०७–२ ॥ १७ °न्तरोपक्षान्तर° भा०। °न्तरापेक्षान्तर° य० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अथ पुनरेवमनिर्वहत्युच्येत – नैव हवनं कुर्यादिति पक्षः, किं तर्हि ? अग्निहोत्रं कुर्यादिति पक्षान्तरमाश्रीयते, अग्निहोत्रशब्दे जुहोतेर्धातोर्दर्शितार्थत्वात् कर्तृप्रत्ययार्थे च कृञः ।

एवमपि कर्तृप्रत्ययकृञ्दर्शनेन जुहोत्यर्थत्यागभेदाभ्यां जुहोत्यर्थत्यागभेदवत् सर्वधात्वर्थविशेषत्यागात्तत्त्यागापत्तिरपि, विशेषाभावे निराश्रयस्य सामान्यस्याभावात् ।

भेदापत्तेश्च द्रव्यस्य क्रियाया[1] वा विधाने निर्दोष्टुमशक्ये परेणोच्येत **– नैव हवनं कुर्यादिती**त्यादि कर्तव्यतावाक्यतात्यागेन परिहारं मन्यते । पक्षान्तरसंश्रये सोपपत्तिकं[2] निर्दोषं च कतमत् पुनः पक्षान्तरम् ? इत्यत आह **– किं तर्हि ? 'अग्निहोत्रं कुर्यात्' इ**त्येतत् **पक्षान्तरमाश्रीयते** । उपपत्तिश्चात्र **– अग्निहोत्रशब्दे जु[3]होतेर्धातोर्दर्शितार्थत्वात् कर्तृप्रत्ययार्थे च कृञो[4]** दर्शितार्थत्वात् । अयं[5] हि 'जुहुयात्' इति 'हु'धातुर्लिङ्[6]प्रत्ययान्तः, स च लिङ् कर्तरि विहितः, **कर्तरि कृल्लः[7] कर्मणि च** [पाँ० ३।४।६७,६९] इति, कर्तृशब्दश्च कृत्प्रकृतिर्स्तृजन्तः[8], कर्तरि क्रियाया निर्वर्तकेऽर्थेऽभिधेये कृतो लकाराश्च भवन्तीति । तथा कर्मणि विहितोऽपि कृल्लकारो वा कृञर्थं[9] नातिवर्तते । भावे विहितस्तु क्रियामात्रार्थत्वात् कृञर्थे[10] एव । 'किं करोति ?' इति सर्वक्रियाविशेषेषु पचत्यादिषु [11]विशेषणप्रश्नप्रदर्शनात् 'जुहुयात्' इत्ययं कुर्यादर्थ एव, तथा 'भूयते देवदत्तेन सुप्यते देवदत्तेन' इत्येवमाद्यकर्मकेष्वपि स्वपिति भवतीति । अग्निहोत्रशब्देन पुनस्तद्विशेषभूतो जुहोतेरर्थोऽभिहित एव, तस्मात् 'अग्निहोत्रं कुर्यात्' इत्ययमर्थ इति ।

अत्रोच्यते **– एवमपि कर्तृप्रत्ययकृ[12]ञ्दर्शनेने**ति परोक्तं प्रत्युच्चारयति । **एवमि**दानीं कुर्यादग्निहोत्रमित्येतत् पक्षान्तरं होत्रशब्दोक्तहवनार्थता कर्तृप्रत्ययान्तकृञर्थता च जुहोतेरित्येतत् त्वयोक्तं मया युक्त्या सहाव-
८८-२ धारितं तथा**पि जुहोत्यर्थस्य त्यागोऽर्थभेदश्च,** जुहोत्यर्थत्यागस्तावत् कर्तृविशिष्टक्रियासामान्यमात्रवाचित्वाभ्युपगमात् जुहोतेश्च क्रियाविशेषत्वात् सामान्यविशेषयोश्चान्योन्यतो भिन्नत्वात् 'कुर्याच्छब्दार्थं जुहुयाच्छब्दो ब्रवीति' इति वचनाद् होत्रशब्देन दर्शितार्थत्वाज्[13]जुहोतिरनर्थक इति त्वयैव त्यक्तत्वात् । ततश्च जुहुयाच्छब्दोऽपि होत्रशब्दार्थं होत्रशब्दोऽपि जुहुयाच्छब्दार्थं ब्रवीतीति नामाख्यातयोः प्रत्येकं द्व्यर्थवृत्तित्वाद्भेदश्च होत्रशब्दः क्रियावाची नामवाची च तथा जुहुयाच्छब्दोऽपीति । [14]एवं सति शब्दार्थसङ्करः प्रसिद्धिविरोधश्च जायते, यथा **– पूर्वापरीभूतं भावमाख्यातेनाऽऽचष्टे व्रजति[15] पचतीत्युपक्रमप्रभृत्यपवर्गपर्यवसानं मूर्तं सत्त्वं नामभिर्व्रज्या पंक्तिः[16]** [निरुक्त. १।१] इति । ततश्च[17] **जुहोत्यर्थत्यागभेदाभ्यां** हेतुभ्यां

---

१ क्रियया य० ॥ २ °पत्तिके प्र० ॥ ३ **जुहोतिधातो**° भा० ॥ ४ **कुञ्छो** य० ॥ ५ **अयं जुहु**° य० ॥ ६ °**र्लिंद**° प्र० ॥ ७ "कर्तरि कृत् ३।४।६७, भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा ३।४।६८, लः कर्मणि भावे चाकर्मकेभ्यः ३।४।६९।"–इति **पाणिनीयव्याकरणे** ॥ ८ °**स्त्वजन्तः** प्र० । "ण्वुल्तृचौ"**–पा०** ३।१।१३३ ॥ ९ **कृत्सवं** प्र० ॥ १० **कर्तर्थे** भा० । **कत्रर्थे** पा० । **कत्रैथे** वि० । **कर्त्तर्थ** रं० ही० । **कत्रार्थ** डे० लीं० ॥ ११ **विशेषेण** भा० । अत्र 'अविशेषेण' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १२ °**कृद्दर्श**° प्र० ॥ १३ °**जुहोते**° य० ॥ १४ **एवं शब्दार्थ**° य० ॥ १५ **प्रजति** भा० डे० लीं० पा० । **प्रेजति** वि० । **परंजति** रं० ही० ॥ १६ **पत्तिः** य० । **पंक्तिः** भा० । "पूर्वापरीभूतं भावमाख्यातेनाचष्टे व्रजति पचतीत्युपक्रमप्रभृत्यपवर्गपर्यन्तं मूर्तं सत्त्वभूतं सत्त्वनामभिर्व्रज्या पक्तिः"–इति **यास्कनिरुक्ते** पाठः ॥ १७ **ततश्च** य० प्रतिषु नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आसन्नश्रुताग्निहोत्रकर्तव्यत्वान्नेति चेत्, न, आसन्नतरश्रुतजुहोत्यर्थत्यागात्। परपदार्थविधानेऽपि च पदान्तरपरिश्रुतहोत्रमात्रवृत्तत्वाज्जुहुयादर्थमात्रमेवेति

जुहोत्यर्थ[1]त्यागभेदवत् सर्वधात्वर्थविशेषत्यागः, यथा जुहोतिः कर्तृप्रत्ययान्त[2]कृञ्प्रकृत्यर्थ[3]वाच्येवं पचतिपठत्यादयः सर्वे धातवो धातुत्वात् तद्वाचिनः, तस्मात् सर्वधात्वर्थविशेषास्त्यक्ताः, विशेषशब्दस्य भेदार्थत्वान्नामाख्यातद्व्यर्थवृत्तित्वात् पूर्वोक्तकरोत्यर्थवद् भिन्नार्थता च। ततश्च **सर्वधात्वर्थविशेषत्यागात् तत्त्यागापत्तिरपि,** तस्य [4]कृञर्थस्य सर्वधात्वर्थसामान्यभूतस्यापि त्याग आपद्यते। किं कारणम्? **विशेषाभावे निराश्रयस्य सामान्यस्याभावात्,** 'करोति' इत्युक्ते 'किं करोति? जुहोति पचति पठति' इत्यादिविशेषसंश्रयेण विना करोतेरर्थाभावात्। **अपि**शब्दात् सङ्कर-प्रसिद्धिविरोध-पौन[5]रुक्त्यदोषाश्च।

आसन्नश्रु[6]ताग्निहोत्रकर्तव्यत्वान्नेति चेत्। स्यान्मतम्—संस[7]र्गादिभेदभिन्नात् सामर्थ्या[8]च्छब्दार्थव्यवच्छेदो विशेषलिङ्गाद् भवति। यथाह— ८९-१

> **संसर्गो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।**
> **अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः॥**
> **सामर्थ्यमौचिती देशः कालो [9]व्यक्तिः स्वरादयः।**
> **शब्द[10]स्यार्थव्यवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥**　　[वाक्यप० २।३१७–३१८] इति।

तत्र यच्छब्दसन्निधिसंज्ञकं सामर्थ्यं तद् व्यवच्छेदकारणमिहाप्यस्ति, तद्यथा—आसन्नश्रु[11]तोऽग्निहोत्रश[12]ब्दैः, तच्चोदितकर्तव्यतैवात्र सम्बध्यते। तस्मान्न जुहोत्यर्थ[13]स्त्यक्तस्तत्कर्तृप्रत्यय[14]कृञर्थदर्शने सत्यपि 'अग्निहोत्रं कुर्यात्' इति हवनविषयस्यैव करणस्योपादानात्। **चे**दित्याशङ्कायाम्, एवं चेन्मन्यसे, तदपि **न, आसन्नतरश्रुतजुहोत्यर्थत्यागात्,** [15]यथासन्नश्रुताग्निहोत्रसान्निध्यात् तदर्थोपादानं न्याय्यं मन्यसे ततोऽप्यासन्नतरश्रुतजुहोतिशब्दार्थोपादानं न्याय्यतरं किं न मन्यसे? स चार्थस्त्यक्तस्त्वया, तदुपादानेऽपि चाप्रसिद्धतादिदोषास्तदवस्थाः, स्वपदार्थं त्यक्त्वा पदान्तरार्थे कथं [16]वर्ततेति चोक्तम्।

अभ्युपे[17]त्यापि पदान्तरार्थाभिधानं दोष उच्यते—**[18]परपदार्थविधानेऽपि च पदान्तरपरिश्रुतहोत्रमात्रवृत्तत्वाज्जुहुयादर्थमात्रमेवेति कुर्यादर्थोपादानमभेदकम्।** पदान्तरेऽग्निहोत्रपदे परिश्रुतं परिगतं ज्ञातम्, किं तत्? [19]होत्रमात्रम्, न तद्व्यतिरिक्तमर्थान्तरं गम्यते, अतो जुहुयादित्येतस्य शब्दस्य योऽर्थस्तन्मात्र एव वृत्तः कुर्याच्छब्दः, **इति**शब्दो हेत्वर्थे, अस्माद्धेतोर्जुहुयाच्छब्दार्थमात्र[20]त्वाद्धोत्रं कुर्यादित्यस्यार्थ-

---

१ °त्यागभेदत्यागवत् प्र०॥ २ °कृत्सप्र° भा०। °त्तत्सर्वप्र° य०॥ ३ °वान्येवं प्र०॥ ४ कृत्सर्वस्य प्र०॥ ५ °रुक्तदो° प्र०॥ ६ °श्रुतोऽग्नि° पा० वि०। °श्रुतिग्नि° रं० ही० डे० लीं०॥ ७ °र्गाभेद° य०॥ ८ °च्छपृच्छब्दार्थ° डे० लीं०। °च्छब्दपृद्धब्दार्थ° पा०। °च्छब्द पृच्छार्थ° वि०। °कृष्टब्दार्थ° रं० ही०॥ ९ व्यक्तिस्व° य०॥ १० °स्यार्थस्यव्य° य०॥ ११ °श्रुत्ताग्नि° पा० डे० लीं०। °श्रुताग्नि° रं० ही०॥ १२ °शब्दास्तच्चो° य०॥ १३ °स्त्यक्तसत्कर्तृ° भा०। °स्तक्तसात्कर्तृ° डे० लीं०। °स्तक्तस्तत्कर्तृ° वि०। °स्तक्तत्कर्तृ° रं० ही०॥ १४ °कृत्सर्वदर्शने प्र०॥ १५ यथासन्न° प्र०॥ १६ वर्तितेति प्र०। दृश्यतां पृ० १२३ पं० २॥ १७ °त्यादि प्र०॥ १८ परपदान्तरपरिश्रुत° भा०। अत्र 'परपदार्थाभिधानेऽपि' इत्यपि पाठः स्यात्॥ १९ होतृमात्रं य०॥ २० °त्वाद्धो कुर्या° प्र०॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

कुर्यादर्थोपादानमभेदकं तिङ्प्रत्ययार्थैकीभूतप्रकृत्यर्थत्वादग्निसमासासत्त्वात्, अपशब्दश्चायमस्मिन्नर्थे।

८९-२ स्योपादानमभेदकम्, नास्ति भेदोऽस्येत्यभेदकमभिन्नार्थम्। कुतो भिन्नार्थं न भवतीति चेत्, 'हवनं कुर्यात्' इत्यस्माद्वाक्यार्थात्। तस्मात् त एव दोषाः। स्यान्मतम्—मात्रग्रह[1]णासिद्धिरग्निपदविशिष्टसमासत्वात्। न हि [2]होत्रमात्रमेव श्रूयते, किं तर्हि? अग्नेरग्नावग्नये वा होत्रमग्निहोत्रम्, तत् कुर्यादिति भिन्नोऽर्थ इति। [3]एतच्चायुक्तम्, [4]**तिङ्प्रत्ययार्थैकीभूतप्रकृत्यर्थत्वाद्** होत्रमात्रवृत्तत्वं सिद्धमेवेत्यर्थः। यत्र तिङ्प्रत्ययार्थेनैकीभूतः प्रकृत्यर्थस्तत्र प्रकृत्यर्थमात्रवृ[5]त्तिर्दृष्टा, यथा प्रलम्ब[6]तेऽध्यागच्छतीति। वैधर्म्येण कुम्भकारवत् काण्डलाववत् समासत्वात्। कुम्भकारवदेव विशिष्टार्थत्वमिति चेत्, तदपि नोपपद्यते, [7]**अग्निसमासासत्त्वात्,** न ह्यस्ति अग्निशब्दस्य होत्रशब्देन [8]तिङ्प्रत्ययार्थसाकाङ्क्षेण समासः, [9]**सुप् सुपा समर्थेन सह समस्यते** [पा० म० भा० २।१।४] इति वचनात्। तिङन्तेन [10]अस्तिक्षीराभीतपिबतादिषु समासदर्शनाददोष इति चेत्, न, परिगणितेभ्योऽन्यत्राभावात् तिङन्तप्रतिरूपकनि[11]पातसु[12]बन्तत्वाच्च तेषाम्, **अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः** [पा० ४।४।६०] इति प्रातिपदिकवत्। अन्यथा 'देवदत्तः पचति' इत्यत्रापि समासः स्यात्, न तु भवति। सामर्थ्याभावाच्च समासानुपपत्तिः, **समर्थः पदविधिः** [पा० २।१।१] इत्यधिकारात्। असामर्थ्यं च सापेक्षत्वात्, यथा श[13]ङ्कुलाखण्डप्रतिप[14]क्ष्येण 'परश्य शङ्कुलया खण्डः' इति समासानुपपत्तिस्तद्वत्। न च प्राधान्याभावात् 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' इत्यनेन तुल्यम्, तत्र तु प्रधानत्वाद्भवति समासः। उक्तं तु—[15]**भवति हि प्रधानशब्दस्य सापेक्षस्यापि समासः** [पा० म० भा० २।१।१] इति। न चात्राग्निशब्दस्य होत्रशब्दस्य वा प्राधान्यमस्ति, कुर्याज्जुहुयादिति तिङन्तस्य क्रियावाचिनः प्राधान्यात् साधनानां साध्यसिद्ध्यर्थप्रवृत्तित्वात्।

९०-१ [16]**अपशब्दो** हि नाम अर्थविशेषविवक्षायां तदभिधायित्वरूपातिक्रमात्। यथा गोणीशब्दो हि सास्नादिमत्य[17]र्थेऽपशब्दः, स तु आवपने शब्द एव। तथा गावीशब्दोऽपि गव्यर्थवसे[18]येऽशक्तिः 'गावी' इत्यस्मिन्नर्थे शब्द[19] एव। तथा चोक्तम्—

> **यस्तु प्रयुङ्क्ते कुशलो विशेषे शब्दान् यथावद्व्यवहारयुक्ते।**
> **सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र वाग्योगविद्दुष्यति चापशब्दैः॥** [पा० म० भा० १।१।१]

तस्मादपशब्द[20]श्चायमस्मिन्नर्थे कुर्यादर्थोपा[21]दानं चाभेदकमिति साधूक्तम्।

---

१ °णासिद्धिः य० ॥ २ होममात्र° य० ॥ ३ एवतच्चा° य० ॥ ४ तिप्प्रत्य° भा० ॥ ५ °वृत्तिर्वा दृष्टा य० ॥ ६ °म्बनेव्यागच्छ° प्र० ॥ ७ °समाससत्वात् भा०। °समासत्वात् य० ॥ ८ तिङ्° प्र० ॥ ९ "सह सुपा ॥ २।१।४ ॥ ... योगविभागः करिष्यते—'सह'। सह सुप् समस्यते, केन? समर्थेन। अनुव्यचलत्। अनुप्राविशत्। ततः सुपा, सुपा च सह सुप् समस्यते।"—इति पातञ्जलमहाभाष्ये पाठः २।१।४ ॥ १० अस्तिक्षीरास्तीतपिवता° भा०। अस्तिक्षारास्तीतपिवता° य० ॥ ११ °निपातत्वाच्च डे० लीं० ॥ १२ °सुपंतत्वाच्च भा०। °सुपातंत्वाच्च पा० वि०। °नुपातंत्वाच्च रं० ही० ॥ १३ संकुला° प्र० ॥ १४ °पक्ष्यण परय संकुलया प्र० ॥ १५ "भवति च प्रधानस्य सापेक्षस्यापि समासः" इति पातञ्जलमहाभाष्ये पाठः २।१।१ पृ० ११, ४८ ॥ १६ अपिशब्दो हि नामार्थे° प्र० ॥ १७ °त्यर्थे सत्वधेयनो शब्द एव य० ॥ १८ °वसेयंसक्तिः प्र० ॥ १९ °शब्दः य० ॥ २० °ब्दाश्चा रं० ही० विना ॥ २१ °पदानं प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यक्तजुहोतिकर्त्रर्थग्रहे तु निष्क्रियकर्तृत्वात् कुर्यादर्थाभावः। जुहोतिप्रयोगासत्त्वम्, त्याज्यत्वात्, व्याधिवत्। क्रियानामस्ववृत्तित्यागोपादानाभ्यां धातुप्रातिपदिकप्रकृतिभेदोऽपि, न पदभेद एव पदान्तरविषयत्वात्, अज्ञातस्याग्निहोत्रस्य क्रियाविशेषणत्वेनानुवादात्।

त्यक्तजुहोतिकर्त्रर्थग्रहे तु [1]**निष्क्रियकर्तृत्वात् कुर्यादर्थाभावः।** अथाचक्षीथाः – एतद्दोषभयात् त्यक्त्वा जुहोत्यर्थं[2] निष्क्रियं कर्त्रर्थमात्रमेव गृह्यते 'कुर्यात्' इति कर्तव्यतामात्रचोदनार्थः। एवं च सति त्यक्तजुहोतिकर्त्रर्थग्रहे तु, **तु**शब्दो विशेषणे, अत्यन्तमर्थाभावेनैव[3] विशेषयति, 'करोति, कुर्यात्' इत्येवमादिशब्दानां कृञ्प्रकृतीनां घटादिकर्मापेक्षामन्तरेण 'किं करोतु, किं कुर्यात्' इत्यनिर्णीतार्थत्वात्[4] कोऽर्थः स्यात्? कृञर्थाभावे[5] कर्त्रर्थस्य निःसाध्यस्य[6] वाऽकर्तृत्वं स्यात्। अतः कुर्याच्छब्दो निरर्थकः, त्यक्तस्वप्रकृत्यर्थत्वात् तादृग्विधस्य कृभ्वादि[7]प्रकृतिरहितस्य यादादिप्रत्ययान्तस्य प्रयोगस्यादर्शनात्। अभ्युपेत्यापि प्रयोगं **जुहोतिप्रयोगासत्त्वं** ब्रूमः, असत्त्वमप्रशस्तत्वम्, कुतः? **त्याज्यत्वात्,** त्याज्यत्वं त्वया त्यक्तत्वादस्मन्मतेनाऽर्थाभावात्। अर्थाभावश्चोक्तविधिना सिद्ध एव। तस्मात् त्याज्यत्वादसत्त्वं 'जुहुयात्' इत्यस्य प्रयोगस्य। दृष्टान्तो **व्याधिवत्,** यथा व्याधिस्त्याज्यत्वादप्रशस्तस्तथा जुहोतिशब्दोऽपि सार्थ इति। किञ्चान्यत्, ९०-२

क्रियानामस्ववृत्तीत्यादि। आख्यातस्य [8]क्रियार्थत्वरूढस्य स्वार्थं विप्रकीर्णावयवकलापं त्यक्त्वा पिण्डितहोत्रसत्त्वार्थोपादानम्, न च तमप्युपादाय तत्रैवावतिष्ठते, किं तर्हि? पुनरपि सत्त्वार्थं[9] त्यक्त्वा क्रियार्थोपादानम्। एवं नामशब्दस्यापि सत्त्ववृत्तिं[10] स्वां त्यक्त्वा क्रियार्थोपादानं[11] क्रियार्थं त्यक्त्वा सत्त्वार्थोपादानमिति। ताभ्यामेव च **त्यागोपादानाभ्यां** 'कुर्यात्, जुहुयात्' इत्येतयोरपि शब्दयोः सामान्यविशेषार्थयोरितरेतरार्थवृत्त्या भेदः स्वप्रकृतिबलेन पिण्डनविप्रकिरणात्[12] तद्भेदवत् तद्बलेनाऽस्यापि। तथा तद्वाचिन्योः[13] प्रकृत्योरपि भेदस्ताभ्यां त्यागोपादानाभ्याम्। कयोः प्रकृत्योरिति चेत्, धातुप्रातिपदिकयोः[14], अत आह – **धातुप्रातिपदिकप्रकृतिभेदोऽपि,**[15] **न**[16] **पदभेद एव,** स कुतः पदभेद इति चेत्, **पदान्तरविषयत्वात्,** पदान्तरस्य विषयोऽस्येति पदान्तरविषयं तत् पदमाख्यातं नाम वा, तद्भावात् पदान्तरविषयत्वात् कुर्याज्जुहुयादिति। अथवा वाक्यार्थविचारप्रधानस्य[17] **मी**मांसकस्य यदुक्तं प्राक्[18] 'वाक्यभेदो विध्यनुवादत्वापत्तेः' इति, स तु न केवलो वाक्यभेदः पदभेद एव वा, किं तर्हि? **धातुप्रातिपदिकभेदोऽपी**त्यभिसम्बध्यते, 'न'[19] इत्यनुवर्तनात्। तत्र को हेतुरिति चेत्, **अज्ञातस्याग्निहोत्रस्य क्रियाविशेषणत्वेनानुवादात्,** अज्ञातार्थो

---

१ निःक्रिया° प्र० ॥ २ °त्यर्थनिःक्रियं प्र० ॥ ३ °न्तामर्थाभावेनैव य०। °न्तमर्थाभावेन भा० ॥ ४ इत्यनिर्णिक्तार्थत्वात् कार्थः स्यात् भा०। इत्यनिर्णिकार्थत्वात् कार्यः स्यात् य० ॥ ५ कृत्सर्वाभावे प्र० ॥ ६ °ध्यस्यककर्तृत्वं भा०। °ध्यस्वचाकर्तृत्वं रं०। °ध्यस्वधाकर्तृत्वं हीं०। °ध्यस्वककर्तृत्वं पा० वि०। °ध्यस्वकर्तृत्वं डे० लीं० ॥ ७ कृद्वादि° प्र० ॥ ८ क्रियार्थं च रूढस्य रं० हीं० विना। क्रियार्थनरूढस्य रं० हीं० ॥ ९ °त्रसस्वार्थौ° भा०। °त्रस्यस्वार्थौ° य० ॥ १० सत्त्वावृत्तिं रं० हीं० विना। सत्तावृत्तिं रं० हीं० ॥ ११ दानं क्रियार्थोपादानुं क्रियार्थ य० ॥ १२ °प्रकरणात् प्र० ॥ १३ तद्वाधिन्योः भा०। तद्वाधिन्याः य० ॥ १४ °योर्निरत डे० लीं०। °योर्निस्ता रं० हीं० वि०। °योर्निस्तं पा० ॥ १५ °प्रकृतिप्रकृति° य० ॥ १६ न सद्भेद रं० हीं०। न लद्भेद डे० लीं०। न तद्भेद वि०। न भेद पा० ॥ १७ °धानमीमां° य० ॥ १८ दृश्यतां पृ० १२५ पं० २ ॥ १९ नत्यनु° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं च श्रुतेर्यासौ प्रतिपत्तिस्तस्या अभावः। स्वप्रत्यवेक्षानुवादन्यायेन च तत्त्यागात् कर्त्राद्यर्थप्रतिपत्तिवशेन शब्दार्थस्थापनाद् नृज्ञानमेव प्रमाणीकृतम्।

एवं तर्हि यथाश्रुति अग्निहोत्रवद्धवनमपि ग्रहीष्यते। नन्वर्थद्वयविधानमशक्यमेकेन वाक्येन।

विधिः, ज्ञातार्थोऽनुवादः, अग्निहोत्रमज्ञातत्वाद् विधीयते, 'तत् कुर्यात्, जुहुयात्, हवनं कुर्यात्' इति जुहोतिक्रियया विशेष्य प्रसिद्धस्य विहितस्यैवानुवदनादिति प्रागुदितमर्थमुपपत्तित्वेनोपदर्शयति।

ततश्च किम्? **एवं चे**त्यादि यावत् [1]**तस्या अभावः। एवं चे**त्यनन्तरनिर्दिष्टक्रियानामस्ववृत्ति-
९१-१ त्यागोपादानाभ्यामेव श्रुतेर्यासौ प्रतिपत्तिर्जुहुयादित्यस्याः पदश्रुतेर्हवनक्रियाविधानमर्थो जुहुयाद् हवनं कुर्यादिति [2]**तस्या अभावः**, सा न भवति, [3]अन्यथार्थाधिगतेः, यच्छब्द आह तन्नः प्रमाणम् [[4]पा० म० भा० २।१।१] इति च हीयते। नामाख्यातयोरर्थभेदत्यागोपादानदोषेभ्यश्च शब्दाव्यव[5]स्थानात् पुरुषबुद्धिवशेन शब्दार्थावस्थानम्, कुतः? **स्वप्रत्य[6]वेक्षानु[7]वादन्यायेन च तत्त्यागात्**, स्वयं प्रत्य[8]वेक्षितोऽर्थस्त्वया 'अयमस्य [9]शब्दोऽस्यार्थ एवं भवति न वेति दोषवत्त्वादयं त्याज्योऽयं गुणवत्त्वादाश्रयणीयः' इति विचार्य स्वमतिप्रमाणीकरणेन श्रुतिप्रामाण्यत्यागः कृतः। ततस्तत्त्यागात् **कर्त्राद्यर्थप्रतिपत्तिवशेन शब्दा[10]र्थस्थापनाद् नुः** पुरुषस्य **ज्ञानमेव प्रमाणीकृतम्**, तस्यैव विध्यर्थवदवस्थितस्यानुवदनात्। अतश्च ते वादावसानं निग्रहस्थानं पुरुषज्ञानप्रामाण्याश्रयेण क्रियोपदे[11]शवाक्याप्रमाणीकरणात् प्रतिज्ञात्याग-प्रतिज्ञान्तरगमनलक्षणम्। एष च प्रतिज्ञात्यागप्रतिज्ञान्तराश्रयणदोष इतरत्राप्यर्थव्याख्याने 'हवनं कुर्यात्' इत्येतस्मिन् भवति, कस्मात्? स्वप्रत्य[12]वेक्षानुवादेन च तत्त्यागात् कर्त्राद्यर्थनियतप्रतिपत्तिवशेन शब्दार्थ-स्थापनादेवमेव सप्रकृतिप्रत्यय एवाग्निहोत्र[13]शब्दोऽवबोध्यते शब्दप्रामाण्यत्यागेन स्वमतिप्रामाण्यावलम्बनात्।

एवं तर्हि यथाश्रुति अग्निहोत्रवद्धवनमपि ग्रहीष्यते। आह—न शब्दार्थं त्यजामि, उक्तदोष-भयात्। किं तर्हि? या या श्रुतिर्यथाश्रुति, यथाग्निहोत्रशब्दश्रवणात् तदर्थो गृह्यते तथा हवनमपि जुहुयाच्छब्द-
९१-२ श्रवणाद्ग्रहीष्यते, ततो न दोषोऽस्तीति। तदेकत्र हवनमग्निसम्प्रदानविशिष्टकर्मकारकतयोच्यते, अन्यत्र स्वविशिष्टकर्तृकतयेति। अत्रोच्यते—**नन्वर्थद्वयविधानमशक्यमेकेन वाक्येन** अग्निसम्प्रदानकस्य कर्म-भूतस्य हवनस्य तद्विशिष्टस्य च [14]कर्तृत्वस्य, यथा ब्राह्मणसम्प्रदानकहविर्दानवाक्येन शुक्लगवानयनमपि।

---

१ **तस्य प्रभावः** प्र० ॥ २ **तस्याभावः** प्र० ॥ ३ **अन्यथार्थाधि°** य०। **अर्थाधि°** भा० ॥ ४ "शब्द-प्रमाणका वयम्, यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्"–इति पातञ्जलमहाभाष्ये पस्पशाह्निके 'समर्थः पदविधिः' [पा० २।१।१] इति सूत्रस्य भाष्ये च पाठः ॥ ५ °**स्थानात् तदव्यवस्थानात्** वि०। °**स्थात् तदव्यवस्थानात्** पा० डे० लीं० रं० ही० ॥ ६ °**त्यक्षानु°** प्र० ॥ ७ °**वादेन्या°** य० ॥ ८ °**त्यपेक्षि°** प्र० ॥ ९ **शब्दो(ब्द?)स्यार्थ** प्र० ॥ १० °**र्थास्थापनां नुः** भा०। °**र्थास्थापनां नु** य० ॥ ११ °**देशिवाक्यो°** भा०। °**देशवाक्यो°** य० ॥ १२ °**त्यपेक्षा°** प्र० ॥ १३ °**शब्दोवाबाध्यते** य०। °**शब्दोवाध्यते** भा० ॥ १४ **कर्तृकत्वस्य** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नैव हवनं विधीयते, किं तर्हि? अग्निहोत्रशब्देन विहितं हवनमनूद्यते। प्राप्तमनूद्यते वाक्यान्तरेण, अप्राप्तं च विधीयते। न च प्राप्तिरस्ति हवनस्य, अविहितत्वात्। यदग्निहोत्रं हवनमेव तत्, पुनरुक्तं तर्ह्येवम्, अनयोरविशेषात्। विधिविहितस्य ह्यनुवदनमनुवादः। अग्निहोत्रहवनविधेयत्वादनुवादायोग्यता।

अथ त्विच्छयैवानुवादो यथाकथञ्चित् स्यात् ततः पुनरुक्तदोषाभाव एव स्यात्। उक्तं हि—

अनुवादादरवीप्साभृशार्थविनियोगहेत्वसूयासु।
ईषत्सम्भ्रमविस्मयगणनास्मरणेष्वपुनरुक्तम्॥ [ ]

इदं त्वनुवादाक्षमम्, विधीयमानत्वात्, आख्यायमानपण्डितत्ववत्। विहित-

---

इतर आह—**नैव हवनं विधीयत** इत्यादि। जुहुयाच्छब्देन[1] नैव हवनं विधीयते, **किं तर्हि? अग्निहोत्रशब्देन विहितं हवनमनूद्यते,** विध्यनुवादयोर्भिन्नलक्षणत्वात्। किं तयोर्लक्षणमिति चेत्, उच्यते—**प्राप्तमनूद्यते वाक्यान्तरेण,** यथा 'पण्डितस्तिष्ठति' इति 'शास्त्रज्ञः पण्डितः' इति वाक्यान्तरविहितपाण्डित्यस्य स्थानानुवादात्। **अप्राप्तं च विधीयते,** यद् वाक्यान्तराप्रापितमविज्ञातं[2] प्रमाणान्तरेण तद् विधीयते, यथा स्वर्गकामो जुहुयादिति। अत्रोच्यते—यद्येतद्विध्यनुवादयोर्लक्षणं नानुवादो हवनस्य युज्यते, यस्मान्न **च प्राप्तिरस्ति हवनस्य, अविहितत्वात्।** इतर आह—अस्ति प्राप्तिर्हवनस्य, अग्निहोत्रस्य हवनत्वात् तस्य च विहितत्वादित्यत आह—**यदग्निहोत्रं हवनमेव[3] तत्, पुनरुक्तं तर्ह्येवमनयो**रग्निहोत्रहवनविधानयो**रविशेषात्।** एतच्चार्थपुनरुक्तम्[4], पुनरुक्तं च नानुवाद उन्मत्तवाक्यवत्। अनुवादलक्षणाभावं चास्य दर्शयति—**विधिविहितस्य हि अनुवदनमनुवाद** इति, हिशब्दो यस्मादर्थे, यस्माद् विधिवाक्यविहितस्यार्थस्य पश्चादर्थविशेषप्रापणार्थो[5] वादोऽनुवादः। तदत्र लक्षणं न घटते, **अग्निहोत्रहवनविधेयत्वात्,** ९२ १
अग्निहोत्रस्य हवनस्य चैकीभूतयोर्विधेयत्वात्। तन्निगमयति—**अनुवादायोग्यते**ति[6]।

अथ[7] त्विच्छयैवानुवादो यथाकथञ्चित् स्यात्। स्यान्मतम्—वक्तुर्विवक्षितपूर्विका शब्दप्रतिपत्तिरित्यस्य हवनस्य [8]विधानं न विवक्ष्यते, अनुवादो विवक्ष्यत इति। एतदपि यथाकथञ्चित् स्याद् विहितार्थाभावात्, विवक्षेच्छयोरनर्थान्तरत्वादिच्छामात्रतश्च निरुपपत्तिकस्यार्थस्यासिद्धेर्न स्यादित्यभिप्रायः। यद्यपि यथाकथञ्चित् स्यात् **ततः पुनरुक्तदोषाभाव एव स्यात्,** इष्यते च पौनरुक्त्यं शब्दतोऽर्थतश्च, उक्तार्थशब्दार्थकथनमविशेषेण पुनरुक्तमन्यत्रादरादिभ्यः [ ] इति पौनरुक्त्याभावः।

उक्तं हीति पुनरुक्तापवादमर्थविशेषापेक्षं दर्शयति **अनुवादादर।** 'पण्डितमानय' इत्युक्ते पण्डितो देवदत्त इत्यनुवादो न पुनरुक्तम्। एवमादरे स्वामिन् स्वामिन्निति। वीप्सायां ग्रामो ग्रामो रमणीयः।

---

१ °ब्दे नैव य०॥ २ °प्रापितमवि° भा०। °प्रापिमतवि° य०॥ ३ °नमेतत् य०॥ ४ °क्तं च नानुवाद° य०॥ ५ °णार्थानुवादोऽनुवादः य०॥ ६ °वादयो° प्र०॥ ७ अर्थात्वच्छदैवानु° भा०। अर्थात्वच्छब्दोवानु° य०॥ ८ विधान विव° भा०। विधानं विव° य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेव त्वनूद्यते च विशेषविधानार्थम् । न चात्र कश्चिज्जुहोतिपुनर्वचनेन विशेषो जन्यते । ततश्च प्राक्तनमेव सञ्जातम् । सर्वथा किमतिरिच्यते पौनरुक्त्यदोषव्यपेतम् ? विधिलिङ्कर्ता आस्ते । अतो नानुवादः, उत्तरविशेषासम्बन्धनात्, विधीयमानपण्डितत्ववत् ।

अथोच्येत – विधिलिङ्कर्त्रर्थे प्रत्ययार्थेऽवशिष्यमाणेऽवश्यवाच्ये प्रकृतिपरव्यव-

---

भृशार्थे [1]घनं घनं मृदु मृदु शनैः शनैरिति । विनियोगे घटं कुरु घटं कुर्विति । हेतौ कृतकत्वादनित्यो घटः, तस्मात् कृतकत्वादिति । असूयायां [2]विपर्यस्याऽऽस्यं हसति हसतीति । ईषदीषदिति, स्तोकं स्तोकमिति । सम्भ्रमे स्वागतं स्वागतमिति । विस्मये विद्याधरो विद्याधर इति । गणने एकमेकं द्वे द्वे इति । स्मरणे आ ! विदितो विदितः पाटलिपुत्रे दृष्टो दृष्टोऽसीति । एवमाद्यर्थविशेषाभावे पुनरुक्तदोषावश्यम्भावाद् न चेदनुवादत्वमस्य पौनरुक्त्यमेवास्य । पौनरुक्त्याभावे नानुवादत्वम् । तस्मा**दिदं त्वनुवादाक्षम**मयोग्यमित्यर्थः,
९२-२ कतमत् ? जुहुयादित्येतत् पदम् । कुतः ? **विधीयमानत्वात्**, योऽर्थो विधीयते न सोऽनूद्यते, **आख्यायमानपण्डितत्ववत्**, यथायं पण्डितो देवदत्त इति विधीयमानपाण्डित्यो देवदत्तो नानूद्यते तथा जुहुयादित्येतदपि अपूर्वोपदेशत्वादनुवादवैधर्म्याच्चास्य [3]तल्लक्षणाभावात् । किं तल्लक्षणमिति चेत्, **विहितमेव त्वनू[4]द्यते च विशेषविधानार्थम्**, यथा – पटुर्देवदत्तः, पयसैनं भोजयेति । तल्लक्षणाभावात् किम् ? तल्लक्षणाभावान्नानु[5]वादोऽपूर्वविधानात्, यत्र न विशेषो विधीयते मौलि[6]विधिरेव सः ।

एवं तर्हि विशेषविधानादनुवादोऽस्तु तद्वदिति चेत्, तन्न भवति, यस्माद् **न चात्र कश्चिज्जुहोतिपुनर्वचनेन विशेषो जन्यते**, 'जुहुयात्' इत्यनेन शब्देन अग्निहोत्रशब्दाभिहितादर्थान्न कश्चिदन्यो विशिष्टोऽर्थोऽभिधीयते यतोऽनुवादः स्यात् । **ततश्च प्राक्तनमेव सञ्जातं** यावदेव 'अग्निहोत्रं कुर्यात्' इति वाक्यविकल्पेऽभिहितं तावदेव 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यत्रापि वाक्ये, ततोऽधिकं न किञ्चिदस्ति । एवं यां तां गतिं गत्वा कल्पयित्वापि **सर्वथा** सर्वप्रकारेण 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यस्मिन् वाक्येऽग्निहोत्रकर्म[7]ण्येवान्तर्भावितहवने जुहुयाच्छब्दप्रकृत्यर्थे **किमतिरिच्यते पौनरुक्त्यदोषव्यपेतम् ? विधिलिङ्कर्ताऽऽस्ते,** विधौ विहितस्य लिङ्प्रत्ययस्य कर्तृकारकस्य तन्मात्रार्थ आस्ते न दूषितः, अन्यत् सर्वं पुनरुक्तादिदोषदुष्टमेवेत्यर्थः 'अग्निहोत्रं कुर्यात्, अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्येतयोर्वाक्यार्थविकल्पयोरुक्तदोषत्वात् । **अतो नानुवादः**, उक्तदोषसम्बन्धादित्यर्थः । कथमिति चेत्, **उत्तरविशेषासम्बन्धनाद् विधीयमानपण्डितत्वव**दित्येतदनन्तरोक्तार्थसमाहारार्थं साधनं गतार्थम् । तस्मात् कर्त्रर्थमात्रमवशिष्यते, शेषं पुनरुक्तम् ।

अथोच्येते[8]ति परमतमाशङ्कते । अथ त्वयोच्येत – **विधिलिङ्कर्त्रर्थः** प्रत्ययार्थोऽनुक्तत्वादवशिष्यते, अवश्यं च वाच्योऽसौ, तस्मिन् **प्रत्ययार्थेऽवशिष्यमाणेऽवश्यवाच्ये, प्रकृतिपरव्यवस्थाया** इति

---

१ घूनं घूनं पा० डे० लीं० वि० । द्यानं घनं भा० । घतघूनं रं० ही० ॥ २ विपर्ययस्यास्यं य० । विपर्यस्यं भा० ॥ ३ तल्लक्ष° पा० रं० ही० ॥ ४ °द्यंते च वि० विना ॥ ५ °वादो यत्र न य० ॥ ६ °विधे° प्र० ॥ ७ °णाहोत्रं य० ॥ ८ °च्यतेति य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थाया आवश्यके प्रकृत्युपादाने प्राप्ते वरमासन्ना प्रकृतिरुपात्ता, अर्थः पुनरस्या न विवक्ष्यते गतार्थत्वात्। एवं तर्हि वरतरकं प्रत्यासन्नतराऽविवक्षितार्था कृञ्प्रकृतिरुपात्ता, वचनस्योपात्तार्थप्रत्यायनार्थत्वात्। सापि चापक्षिप्तवाच्यार्थस्थितिरुक्तवत्।

अस्मिंस्तु न्यायेऽतिलङ्घ्यमाने क्रियोपदेशवादोऽपि तत्त्ववादवदेव त्यक्तः स्यात्, तत्रापि यदृच्छाभ्युपगमात्। को ह वैतद्वेद बालप्रलापवद् व्यवस्थापेतमु-

---

हेत्वर्थे पञ्चमी, प्रकृतेः परः प्रत्ययः प्रयोक्तव्यः[1] [पा० म० भा० ३।१।२] इतीयं व्यवस्था, तस्या व्यवस्थाया मर्यादायाः स्थितेर्हेतोरावश्यकं प्रकृत्युपादानम्, तस्मिंश्चावश्यके **प्रकृत्युपादाने[2] प्राप्ते** 'कतमा प्रकृतिरुपादातुं योग्या' इत्येवं[3] विचारयत इदं मे योग्यमिति प्रतिभाति—**वरमासन्ना प्रकृतिरुपात्ता, अर्थः पुनरस्या न विवक्ष्यते गतार्थत्वात्[4]**, तस्मादविवक्षितार्था सा, सत्यपि नान्तरीयकत्वे प्रत्यासन्नप्रकृत्युपादाने विलक्षणामन्यां परित्यज्याऽविलक्षणा जुहोतिप्रकृतिरेवोपात्तेत्यवसेयम्[5], प्रयोगोऽग्निहोत्रं जुहुयादिति[6]। अत्रोच्यते—**एवं तर्हि वरतरक**मित्यादि। [7]चेन्मन्यसे वरमासन्नप्रकृत्युपादानं नान्तरीयकत्वादिति, तत्राहमेव ते वरतरकं[8] साहायकं ददामि बुद्धेः—कर्तृप्रत्ययार्थसमार्थैव[9] **प्रत्यासन्नतरा** पौनरुक्त्यपरिहारार्थ**मविवक्षिता**- ९३-२ **र्था**ऽनुक्तार्था **कृञ्[10]प्रकृतिरुपात्ता**। किं कारणम्? **वचनस्योपात्तार्थप्रत्यायनार्थत्वात्**, अर्थं प्रत्याययिष्यामीति हि शब्दः[11], कर्तृप्रत्ययान्तया कृञ्प्रकृत्या प्रत्याय्यते स्फुटतरम्, अतोऽग्निहोत्रं कुर्यादित्येवास्तु। इतर आह—[12]त्वयैव समर्थितत्वादेवमेवास्तु। आचार्य आह—स्यादेवं यदि सापि चार्थ[13]स्थितिर्निर्दोषा स्यात्, किन्तु **सापि चापक्षिप्तवाच्यार्थ[14]स्थितिरुक्तवत्**, तस्यामप्यर्थस्थितौ निराकृतो वाच्योऽर्थः **'जुहोत्यर्थत्यागभेदाभ्याम्[15]'** इत्यादिप्रबन्धेन उक्तवद् यथाश्रुतार्थाभावादिदोषात् पौरुषेयत्वादिप्रसङ्गाच्च। एवं तावन्न्यायेन परीक्ष्यमाणमेतद्वाक्यं न युज्यते पुरुषतर्कलक्षणेन।

यद्यपि पुरुषतर्कलक्षणं न्यायम[16]तिलङ्घ्यापौरुषेयो नित्यो वेदाख्यः क्रियोपदेशः पुरुष[17]गतरागादिदोषाशङ्काहेतुविनिर्मुक्तः प्रमाणम्, पुरुषकृतानि हि वाक्यानि अविद्यारागाद्यवियुक्तपुरुषवदप्रमाणानि[18] अफलाशक्यप्राप्ति[19]नित्यानित्यादिवस्तुतत्त्वविचारविषयाणि, सफलशक्यप्राप्तिपुरुषहितोपाय[20]क्रियोपदेशात्तु वेदवादः श्रेयानितीष्टम्, तथापि [21]त्वद्वचनादेवा**स्मिंस्तु न्यायेऽतिलङ्घ्यमाने क्रियोपदेशवादोऽपि तत्त्ववादवदेव त्यक्तः स्यात्**। किं कारणम्? **तत्रापि यदृच्छाभ्युपगमात्**, अविद्यारागाद्यवियोगादेव सर्वपुरुषाणां ९४-१ वक्तृश्रोतृपुरुषाधीनत्वाच्चोपदेशपरम्पराया न कश्चिद्बुद्धिपूर्वं उपदेशः, अतः सुप्तमत्तादिविप्रलापवद् यदृच्छया-

---

१ 'प्रकृतिपर एव प्रत्ययः प्रयोक्तव्यः' इति पातञ्जलमहाभाष्ये पाठः॥ २ **प्रत्युपा**° य०॥ ३ **इत्येव** प्र०॥ ४ **गतार्थात्वात्** य०॥ ५ अत्र '°वसेयं प्रयोगेऽग्निहोत्रं जुहुयादिति' इत्यपि पाठः स्यात्॥ ६ °**दितिऽचोच्यते** भा०। °**दिति चोच्यते** य०॥ ७ **त्वन्मन्यसे** भा०। **त्वनान्यसे** य०॥ ८ **वरवरकं** प्र०॥ ९ **समार्थैव** य०। **समर्थैव** भा०॥ १० **कृत्सप्रकृ** प्र०॥ ११ अत्र कश्चित् पाठस्त्रुटित इव प्रतिभाति। तुलना—"अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः। अर्थं संप्रत्याययिष्यामीति शब्दः प्रयुज्यते। तत्रैकेनोक्तत्वात्तस्यार्थस्य द्वितीयस्य प्रयोगेण न भवितव्यम्, उक्तार्थानामप्रयोग इति"—इति **पातञ्जलमहाभाष्ये**॥ १२ **त्वयैवं** भा०॥ १३ **चार्यस्थि**° प्र०॥ १४ **वाच्यर्थ**° प्र०॥ १५ दृश्यतां पृ० १२६ पं० ४॥ १६ °**मिति**° प्र०॥ १७ °**षं** प्र०॥ १८ °**प्रामाण्यानि** प्र०॥ १९ °**प्राप्तिनित्यादिवस्तु**° य०॥ २० °**क्रियार्थोपदे**° भा०॥ २१ **तद्वचना**° प्र०॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

दितम् ? किं वाऽनेन ज्ञातेन यदेतज्ज्ञा एवमुक्तवन्तोऽव्यक्तं यद्यज्ञानाद् यदि द्वेषादेः ?

को वाऽऽह ज्ञवचनमेतत् ? यदि संशयादियोगान्न ज्ञः प्रमाणं तर्हीदमज्ञोक्तत्वादुन्मत्तवाक्यवत् । अचेतनत्वात् कुतोऽस्य प्रामाण्यम् ? कुतोऽस्य वचनम् ? काष्ठशब्दवदित्थमचेतनत्वेऽपि न घटते वेदवाक्यप्रामाण्यम् ।

भ्युपगतो वेदो वैदिकैः । अत इदमापन्नम्—**को ह वैतद्वेद** 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' इत्येतद् वाक्यं सार्थकं निरर्थकं वेति ? । [1]किमिव न ज्ञायते ? **बालप्रलापवत्**, यथा हि बालैरनियतक्रियाकारक[2]सम्बन्धमुक्तमबुद्धिपूर्वत्वाज्ज्ञातुमशक्यं 'केनार्थेनाऽर्थप्रत्यायनार्थवत् ?' इति । किं कारणम् ? **व्यवस्थापेतत्वात्**, शब्दप्रयोगो ह्यर्थप्रत्यायनार्थः स्वनिश्चितार्थप्रतिपादनसमर्थनियतवर्णानुपूर्वीकः [3]प्रत्यपेक्षितवाच्यवाचकसम्बन्ध इतीयं लोकशास्त्रव्यवस्था, ततोऽपेतं ब्रह्मादिसर्ववेदवादिवचनमविद्यारागाद्यवियोगात्तेषामित्यशक्यप्राप्तिरग्निहवनविधानादिवाक्यार्थस्य । तस्मात् **को ह वैतद् वेद बालप्रलापवद् व्यवस्थापेतमुदितम् ?** किञ्चान्यत्, अफलं चैतदित्यत आह—**किं वाऽनेन ज्ञातेन [4]यदेतज्ज्ञा** वेदज्ञा अग्निहोत्रकर्मज्ञा **एवमुक्तवन्तः** 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इति वाक्य**मव्यक्त**मव्यक्तार्थमस्फुटार्थम्, यस्मादव्यक्तज्ञाना एव ते पुरुषत्वादविद्यायोगाच्च दशदाडिमादिश्लोकवादिवत् । अविद्यायोगं दर्शयति—**[5]यद्यज्ञाना**दिति । रागादियोगं च दर्शयति—**यदि द्वेषादेः ।**

इतर आह—विफलोऽयं प्रयासोऽनिष्टापादने ते, अभ्युपगमत्वात् । **को वाऽऽह—ज्ञवचनमेतत्**, ननु प्रा[6]गुक्तं संशयविपर्ययानध्यवसायसम्पृक्तत्वान्निर्णयस्याप्यज्ञानत्वमेवेति । अथवा **को वाऽऽह ज्ञवचन-**
९४-२ **मेत**दिति ज्ञस्य पुरुषस्य सर्वत्र प्रमाणभूतस्याभावात्, किं तर्हि ? शब्दस्यैव च निर्दोषत्वादिति । अत्राचार्य आह—**यदि संशयादियोगान्न ज्ञः प्रमाणं तर्हीदमज्ञोक्तत्वादुन्मत्तवाक्यव**दिति क्रियोपदेशसाफल्यवादः क गच्छतीति चिन्त्यताम् । एवं तावद् बुद्धिपूर्वकमकारादिवर्णानुपूर्व्या शब्दोच्चारणं चेतनोदीरितं काकवाशितं पुरुषवा[7]शितं वा तुल्यम् । अथाचक्षीथाः—काष्ठपाषाणादिसङ्घट्टजनिताचेतनशब्दवत् सर्वमचेतनम् । तथा**प्यचेतनत्वात् कुतोऽस्य प्रामाण्यम्**, अचेतनत्वात्, आकाशवत् । एवं च कृत्वाऽचेतनत्वात् **कुतोऽस्य वचनम् ?** यच्छब्द आह तद् नः प्रमाणम् [पा० म० भा०] इतीष्टं [8] भ[9]वता, भाषणं वचनमुक्तिः शब्दोच्चारणम्, भावसाधनत्वाद्वचनशब्दस्य, अचेतनत्वाद्वक्तृत्वमस्य नास्तीत्यर्थः । कथम् ? अज्ञोदीरितत्वादेव च वचनत्वमस्य नास्ति, वाच्यार्थप्रतिपादनाभिसन्धि[10]पूर्वकं हि तत्, तद[11]भावेऽनुक्तमित्यत आह—**काष्ठशब्दवदित्थमचेतनत्वेऽपि न घटते वेदवाक्यप्रामाण्यम् ।**

अत्राह—यदुक्तं प्राक् 'को वाऽऽह ज्ञवचनमेतत्' इति [12]द्वितीयो विकल्पो न ब्रूमः सर्ववक्तृवचनाप्रामाण्यमिति, स्ववचनविरोधदोषात् । किं तर्हि ? सर्वज्ञवीतरागाद्यभावाद् ग्रन्थस्य सर्वभावस्वभावविषयस्य कर्तुरप्रामाण्यम्, न तु वक्तुरनादिनिधनस्य वक्तृपरम्परागतस्य, वक्तृवचनयोः कचित् प्रामाण्यादिति ।

---

१ **किमिव ज्ञायते** प्र० ॥ २ °**कारकसम्बद्धमुक्त**° प्र० । अत्र '°कारकमसम्बद्धमुक्त°' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ३ **प्रत्युपे**° य० ॥ ४ **यदेतज्ञा** प्र० ॥ ५ **यद्यद् ज्ञाना**° य० ॥ ६ दृश्यतां पृ० ११३ पं० ६ ॥ ७ °**वासितं** भा० ॥ ८ दृश्यतां पृ० १३० टि० ४ ॥ ९ अत्र '**भवताम्**' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १० °**पूर्वकं तत्** य० ॥ ११ °**भावेनुक्तमि**° भा० । **भावे उक्तमि**° य० ॥ १२ अत्र 'द्वितीये विकल्पे' इत्यपि पाठः स्यात्, दृश्यतां पं० १६–१७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिवक्तृवचोत्तरवक्तर्यपि वातिकमन्त्रादिवज्ज्ञवचनानाश्वासतुल्यता ।

क्वचिच्चार्थे सत्येव अर्थाविवक्षा न्याय्या दृष्टा, तयोः कार्थवत्त्वेन दृष्टयोस्तदविवक्षया च सार्थकत्वं दृष्टम् ? अतोऽन्याय्यमेतदुक्तम् 'अविवक्षितार्थस्य नान्तरीयकत्वात् प्रयोगः' इति, प्रयुक्तस्यानर्थकत्वाभावप्रसङ्गात् । विवक्षाविवक्षयोरनियमेन शब्दप्रवृत्तौ सत्यामप्रयोजनायां चाविवक्षायामग्न्याद्यविवक्षाऽभावे विशेष-

---

अत्रोच्यते – **आदिवक्तृवचोत्तरवक्त[1]र्यपि** । यथाऽऽदिवक्तारोऽप्रमाणमसर्वज्ञत्वादवीतरागत्वाच्च शास्त्राणां सर्व[2]भावस्वभावविषयाणां यथार्थज्ञानवचनहीना[3]स्तथाऽऽदिमदनादिप्रसिद्धीनां शास्त्राणामध्येतारो यथार्थज्ञान- ९५-१
वचनहीनाः, तस्मादुभयेषां ज्ञातृत्ववक्तृ[4]त्वयोरयथार्थयोरनाश्वासस्तुल्यः । किमिव ? **[5]वातिकमन्त्रादिवत्**, यथा धातुविष[6]यबलादिवातिकानां ज्ञानानि मन्त्रवचनानि च विप्रलम्भभूयिष्ठत्वाद[7]नाश्वासनानि, **आदिग्रहणाद्** वशीकरणमन्त्रयोगादिवत् । तत आह – **आदिवक्तृवचोत्तरवक्तर्यपि वातिकमन्त्रादि[8]वज्ज्ञवचनानाश्वासतुल्यते**त्यलमतिप्रसङ्गिन्या कथया ।

[9]किञ्च, यदुक्तम् – अविवक्षितार्था[10]नर्थिकापि कर्तृप्रत्ययसाहायककारिणी जुहोतिप्रकृतिरुपात्तेति । एतदपि न्यायविरोधादयुक्तम्, कथम् ? **क्वचिच्चे**त्यादि । **क्वचिच्चे**ति न सर्वत्र, यथा 'नक्षत्रं दृष्ट्वा वाचो विसृजन्ति' इति, 'कतरद्देवदत्तस्य गृहम् ? अदो यत्रासौ काकः' इति [11]नक्षत्रेक्षणे पक्षिणि [12]चोपयुक्तार्थयोरेव [नक्षत्र]दृष्ट्वा-काकशब्दयोः सार्थकयोः काल-गृहोपलक्षणेऽर्थे **सत्येव** नक्षत्रदर्शन-काका[13]र्थाविवक्षा न्यायादनपेता **न्याय्या दृष्टा** नानर्थकत्वेनोन्मत्तप्रलपितादेस्तथा **तयो**रग्निहोत्रहवनयोः [14]**कार्थवत्त्वेन दृष्टयोस्तदविव[15]क्षया च सार्थकत्वं दृष्टम् ? अतो न्या[16]यापेतमेतदुक्तम् – अविवक्षिता[17]र्थस्य नान्तरीयकत्वात्** प्रकृतेः **प्रयोगो** जुहुयाच्छब्दस्येति । किं कारणम् ? **प्रयुक्तस्यानर्थकत्वाभावप्रसङ्गात्**, यद्येष न्यायः शब्दानां प्रयोगे नियतो न स्यान्नान्तरीयकत्वादपि प्रयोगे साधुत्वमेव स्यात् ततश्च प्रमादादप्रमादाद्वा प्रयुक्तस्य शब्दस्यानर्थकत्वाभाव एव स्यात् प्रमत्ताप्रम[18]त्तवक्तृविशेषश्च स्यात्, न त्वेवं भवति दृष्टशिष्टेष्टविरुद्धत्वात् । स्यान्मतम् – उपलक्षणादिप्रयोजनायां विशेषविवक्षायां किमनया स्वार्थाविवक्षया ? सर्वस्य शब्दप्र[19]योगस्य ९५-२
वक्तुर्विवक्षित[20]पूर्वकत्वात् प्रवृत्तेरविवक्षा [21]विवक्षा वेति । एतदयुक्तम्, **विवक्षाविवक्षयोरनियमेन श[22]ब्दप्रवृत्तौ सत्यामप्रयोजनायां चाविवक्षायामग्न्याद्यविवक्षाऽभावे विशेषहेतुर्वाच्यः**, अग्निशब्दस्यापि जुहोतिप्र[23]कृत्युपादानवन्नान्तरीयकत्वात् प्रयोगोऽर्थोऽस्याविवक्षित इति प्राप्तम् । ततश्च 'भस्महोत्रं जुहुयात्'

---

१ °श्चोतुरवक्तर्यपि प्र० ॥ २ °भासस्व° प्र० ॥ ३ °स्तथाहिमद° प्र० ॥ ४ °त्वयोर्यथार्थयो° प्र० ॥ ५ धातिक° प्र० ॥ ६ °यावलादिवादिकानां य० । °यावलादिवादिकानां भा० ॥ ७ °नास्थासनानि वि० भा० विना ॥ ८ °वत् जुवचना° प्र० ॥ ९ किंच दुक्तम् प्र० ॥ १० ज्ञाय° प्र० ॥ ११ नक्षत्रेच्छुाणपक्षिणि प्र० ॥ १२ वापयुक्ता° भा० । चोवयुक्ता° य० ॥ १३ °र्थापिवक्ष्या प्र० ॥ १४ कार्थवत्वेन प्र० ॥ १५ °क्षया त्वसार्थ° रं० ही० ॥ १६ न्यायोपेत° य० ॥ १७ °तार्थस्यानन्तरी° प्र० । अत्र 'अविवक्षितार्थाया नान्तरीयकत्वात् प्रकृतेः' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १८ °त्तवज्ञवि° प्र० ॥ १९ °प्रयोगवक्तु° य० ॥ २० पूर्विकत्वात् प्र० ॥ २१ विवक्षयेति य० । विवक्षचेति भा० ॥ २२ शब्दासंवृत्तौ प्र० । अत्र 'शब्दानां वृत्तौ' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ २३ °प्रत्युपादा° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेतुर्वाच्यः। युक्ततरी तु तदविवक्षा वक्ष्यमाणन्यायदर्शनादर्थतत्त्वतन्त्रत्वात्तस्याः।

एवं तावदप्रत्यायकत्वमस्य, अप्रत्यवेक्षितार्थयाथातथ्योक्तेः, बालप्रलापवत्।

त्वदभिप्रायवत्तु हवनानुवादविशिष्टाग्निहोत्राभ्युपगमेऽपि चाग्निहोत्रस्य आत्मादिवस्तुतत्त्ववदप्रसिद्धस्वरूपत्वात् करणासिद्धिः।

अथोच्येत – विध्यन्तरविधानशैल्या तत्सिद्धिः, यथा यूपं छिनत्ति ....

इत्येतद्वाक्यं साधीयः 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्येतत् साधीय इति केन हेतुना परिच्छेद्यम्[1]? किञ्चान्यत्, **युक्ततरी तु तदविवक्षा** अग्न्याद्यविवक्षा। किं कारणम्? **वक्ष्यमाणन्यायदर्शनात्,** वक्ष्यमाणो[2] हि विधिविधिनयेऽयं न्यायो द्रक्ष्यते भवता **पुरुष एवेदं सर्वम्** [ऋग्वेद० १०।८।९०] इत्यादि, तद्दर्शनाच्चेदमग्न्यादिविकल्पासत्त्वान्नाग्निहोत्रं न होतेत्यर्थाभावादेवाऽविवक्षा न्याय्या, किं कारणम्? **अर्थतत्त्वतन्त्रत्वात् तस्याः,** अर्थवशाद्धि[3] विवक्षाऽविवक्षा वा भवितुमर्हति, नान्यथेति।

तदुपसंहृत्याह – **एवं तावदित्यादि**[4]। **एवमनन्तरोक्तोपपत्तिविधिना** 'अग्निहवनं कुर्यात्' इत्येतस्मिन्नर्थे प्रदर्शितदोषत्वादथवा 'अग्निहोत्रं कुर्यात्, अग्निहोत्रं जुहुयात्, हवनं कुर्यात्, अग्निहोत्रं हवनं कुर्यात्, जुहुयात्' इत्येवमाद्यर्थेषु प्रदर्शितदोषत्वात्। **तावच्छब्दः** क्रमार्थः, दोषान्तराभिधानमपि

९६-१ भविष्यति, एष तावद्दोष इति। **अप्रत्यायकत्वमस्य** वाक्यस्य, कुतः? **अप्रत्यवेक्षितार्थयाथातथ्योक्ते**[5]**र्बालप्रलापवत्,** यथातथाभावो याथातथ्यम्, अर्थस्य याथातथ्यमर्थयाथातथ्यम्, तस्मादर्थयाथातथ्यात् तस्याप्रत्यवेक्षितस्यार्थस्याविचारितस्य[6] 'किंस्वरूपोऽयमर्थः? प्रमाणम्? प्रमेयः? केन वा रूपेण प्रमाणं[7] प्रमेयो वा?' इत्यप्रत्यवेक्षितस्यार्थस्योक्तेः शब्दस्यार्थस्य वा प्रत्यायकस्वरूपमप्रत्यवेक्ष्योक्तत्वात्[8] तदप्रत्यायकत्वम्। अर्थस्याच्च शब्दस्तदभिधेयो[9] वा प्रत्यवेक्षितयाथातथ्योक्तेरेवं[10] प्रत्यायकः प्रधानादिवदिति वैधर्म्येण। तस्मादप्रत्यवेक्षितार्थयाथातथ्योक्तेर्यदि शब्दद्वारेण यद्यर्थद्वारेणोभयथाप्यप्रत्यायकत्वं सिद्धम्, अतश्चाप्रत्यायकत्वादनुपदेशत्वं बालप्रलापवदेव।

किञ्चान्यत् – 'अग्निहोत्रं हवनं कुर्यात्' इत्यस्मिन्नेवानन्तरोक्तेऽर्थे दोषान्तरं ब्रूमः – **त्वदभिप्रायवदित्यादि**[11]। त्वदभिप्रायेण तुल्यं त्वदभिप्राय[12] इव त्वदभिप्रायवत्, यथा त्वदभिप्रेते[13] 'अग्निहोत्रं हवनं कुर्यात्' इत्येतस्मिन्नर्थे **हवनानुवादेन विशिष्टेऽग्निहोत्रेऽभ्युपगम्य**माने**ऽग्निहोत्रस्य** त्वदिष्टस्य कर्मणः **सां**[14]ख्यादिपरपरिकल्पित**आत्मादिवस्तुतत्त्व**स्यालौकिकस्याप्रसिद्धस्य दुर्ज्ञानत्ववदलौकिकत्वा**दप्रसिद्धस्वरूपत्वाद्** दुर्ज्ञानत्वम्, अविज्ञातस्य च **करणासिद्धिः,** सा हवनक्रिया न सिध्यतीत्यर्थः।

अत्र परेणाथोच्येत परिहारः – **विध्यन्तरविधानशैल्या तत्सिद्धिरिति**। अग्निहोत्रं जुहुयादित्येतस्माद्विधेरन्यो विधिर्विध्यन्तरं 'यूपं छिनत्ति' इत्यादि। तस्य विधानमविवक्षितनिरूपणं[15] पूर्वं पश्चादिति-

१ °च्छेद्यं य०। °च्छिद्यं भा० ॥ २ °माणे हि भा० ॥ ३ °वशाद्धिविक्षा अवितुमर्हति भा० ॥ °वशाद्वा विवक्षा वा भवितुमर्हति य० ॥ ४ तावमित्यादि प्र० ॥ ५ °त्यावेक्षितार्थयथा° प्र० ॥ ६ °स्यावस्या° प्र० ॥ ७ प्रमाणप्रमेयो प्र० ॥ ८ °त्यपेक्ष्यो° प्र० ॥ ९ °भिधेयोऽवा भा० ॥ १० °रेवौ भा०। °रेवा य० ॥ ११ दृश्यतां पृ० १०८-१ ॥ १२ °प्राये भा० ॥ १३ °भिप्रेताग्निहोत्रं प्र०। °भिप्रेतऽग्निहोत्रं भा० ॥ १४ सांख्यादिपरिकल्पि° भा० ॥ १५ °नविव° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

………[1]पालाशमष्टाश्रिमित्यादि । एतदपि न, वैषम्यात् । कालतस्तावन्न हि स छेदनक्रियाकाल एव यूपः, छेदनादिभिः संस्कृतः सन् भविष्यति यूपः, तस्य तदा यूपत्वेनासतो युक्तं यूपस्वरूपं कालान्तरभाव्युपेक्षितुं न पुनरग्निहोत्रस्य तदैव सतः ।

ननु तच्छब्दता तादर्थ्यात्, यथेन्द्रार्था स्थूणा इन्द्रः । छेदनस्य संस्कारता न विहिता स्यात्, यूपस्य निर्वृत्तत्वात् । असत्यां च संस्कारतायां छिदिरविवक्षितार्थः

कर्तव्यताभिर्निरूपणम्, शैली स्वभावः, शैल्या दृष्टया 'विधित्वादस्यापि [2]विधेरेषा शैली' इत्यनुमानात् ९६-२ सिद्धिर्भवति। कस्य पुनर्विधेर्विध्यन्तरविधानशैल्या सिद्धिर्दृष्टा ? **यथा [3]यूपं छिनत्ती**त्यादि यावत् **पालाशमष्टाश्रिमित्यादी**ति शैल्यनुमाने दृष्टान्तमाह । यथात्र पूर्वमविवक्षितनिश्चयावधारणात्मिका कर्तव्यता चोदिता पश्चात् 'अष्टाश्रि [6]पालाशं बैल्वं वा' इत्यादीतिकर्तव्यताचोदनया स्वरूपे व्यवस्थाप्यते तथेहापि । आचार्य आह—**[4]एतदपि न, वैषम्यात्**, दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोः शैलीवैषम्यात् । तद्वैषम्यं कालतः प्रसिद्धितोऽवधारणतश्च । तत्र **कालतस्तावन्न हि स च्छेदनक्रियाकाल एव यूपः**, भवतीति वाक्यशेषः, छेदनाद्यानर्थक्यप्रसङ्गात् । किं तर्हि ? **छेदनादिक्रियाभिः संस्कृतः सन् भविष्यति यूपः ।** इत्थंस्वरूपस्य **तस्य** काष्ठस्य **तदा [8]यूपत्वेनासतो युक्तं यूपस्वरूपं काला[9]न्तरे भाव्युपेक्षितुम्, न पुनरग्निहोत्रस्य तदैव सतः** संस्कारनिरपेक्षस्य कालान्तराभाव्यर्थोपेक्षणमिति वैषम्यम् ।

इतर आह—**[10]ननु तच्छब्दते**त्यादि यावत् **स्थूणेन्द्र** इति । यथात्र **तादर्थ्यात्** ताच्छब्द्यमेवं यूपार्थं दारु यूप इति तत्कालत्वात् । अत्रोच्यते—**छेदनस्य संस्कारता न विहिता स्याद् यूपस्य निवृत्तत्वात्**, [11]तन्निर्वर्तनार्थो हि च्छेदनसंस्कारः, तस्या**मसत्यां च संस्कारतायां छिदिरविवक्षितार्थः स्यात्**, असंस्कारार्थत्वेऽनर्थक एव च्छिदिः स्यादित्यर्थः । तस्माद् यावदेव **यूपं स्वीकरोति** [12]स्वत्वेन परिगृह्णातीत्युक्तं भवति तावदेव **छिनत्ती**त्युक्तं भवति, छिनत्तेः संस्कारार्थरहितत्वात् । मा भूदयं दोषो दृष्टविरुद्धत्वात्, **अदृष्टार्थो वा** 'स्यात्' इति वर्तते । न चादृष्टा[13]र्थस्तत्फलत्वात् । एवं तावत् कालतः शैलीवैषम्यादयुक्तमु[14]क्तम्—**विध्यन्तरविधानशैल्या तत्सिद्धिः, यूपं छिनत्ति पालाशमष्टाश्रिमि-** ९७-१ **त्यादिवदिति ।**

---

१ 'यथा यूपं छिनत्ति इति अविवक्षितनिरूपणं पूर्वं पश्चादितिकर्तव्यताभिर्निरूपणं बैल्वं पालाशमष्टाश्रिमित्यादि' इत्येवं मूलमत्र सम्भाव्यते ॥ **२ विधेरेपा** भा० । **विग्रेरया** पा० ॥ ३ "आज्यशेषमादाय सतक्षा गच्छति यूपम् ।६।१।५। पालाशं बहुलपर्णमशुष्काग्रमूर्ध्वशकलशाखं मध्याग्रोन्नतमव्रणम् ।६।१।८। अभावे खदिरबिल्वरौहितकान् ।६।१।९। अष्टाश्रिं करोत्युपरवर्जम् ।६।१।२६।" इति **का**त्यायनश्रौतसूत्रे "यूप्या वृक्षाः पलाशखदिरबिल्वरौहितकाः ।७।१।१६। अष्टाश्रिरनुपूर्वोऽग्रतोऽणीयान् प्रज्ञाताग्निष्टाश्रिरस्थूलोऽनणुः ।८।३।२।" इति **आ**पस्तम्बश्रौतसूत्रे च विस्तरेण वर्णितं यूपस्वरूपम् ॥ **४ °मादने** य० ॥ ५ **°ताचोदितापिश्चात्** पा० डे० लीं० रं० ही० । **°ता पश्चात्** भा० ॥ **६ पलाशं** य० ॥ ७ दृश्यतां पृ० १०८–२ ॥ ८ **यूपत्वेनामतो** य० । **यूपत्वनामतो** भा० ॥ ९ **°न्तरो** प्र० ॥ **१० ननु वत्सद्वत्तेत्यादि** भा० । **ननु वत्सद्वत्तेत्यादि** य० । "तादर्थ्यात् ताच्छब्द्यं भविष्यति, यथा इन्द्रार्था स्थूणा इन्द्र इति" इति **पा**तञ्जलमहाभाष्ये ६।१।३७ ॥ ११ **तन्निर्वर्तर्थो** प्र० ॥ **१२ सत्वेन** य० ॥ १३ **°र्थस्ततफलत्वात्** पा० रं० ही० । **°र्थस्तफलत्वात्** डे० लीं० ॥ **१४ दृश्यतां** पृ० १३६ पं० ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्याद् यूपं छिनत्ति स्वीकरोतीति यावत्, अदृष्टार्थो वा।

अवधारणवैषम्यमप्यतः। इयं भावना – या तत्र भावना यूपं छिनत्ति च्छेदनेन यूपं स्वीकरोतीति, न च च्छेदनमेवेत्यवधार्यतेऽष्टाश्रिकरणादीनामसंस्कारत्वप्रसङ्गात्, किन्तु करोत्येवेत्यवधार्यते, सेह न शक्याश्रयितुमवधारणासम्भवात्, हवनेन ह्यग्निहोत्रं करोति न प्रव्रज्यादिना, न च करोत्येवेत्यवधार्यते स्वर्गादिकामाभावे करणाभावात्।

अत एव प्रसिद्धिवैषम्यमपि, तस्याप्रसिद्धस्य क्रियाकलापाभिमतार्थनामधेयमात्रत्वात्। शैलीप्रामाण्ये चास्य शैल्या यूपक्रियाऽयाथार्थ्यात्।

अवधारणवैषम्य[1]मप्यत इयमित्यादि। अनन्तरोक्ता येयं भावना, अनयैव भावनयावधारणवैषम्ये[2]मपि भावयिष्यामि, अत आह – **या तत्र भावना यूपं छिनत्ति च्छेदनेन यूपं स्वीकरोतीति** छिदेः संस्काराभावे यूपस्वीकरणार्थताया उक्तत्वात्। तत्र च कथमवधार्यम्? उच्यते – **न च च्छेदनं[3]मेवेत्यवधार्यते,** करोतीति वर्तते। कस्तत्र दोष इति चेत्, यत एवकारस्ततोऽन्यत्रावधारणम्, **[4]अष्टाश्रिकरणादीनामसंस्कारत्वप्रसङ्गः,** तदत्र प्रसक्तम्, तत् तु नेष्यते। **किन्तु करोत्येवेत्यवधार्यते** स्व[5]त्वेनापरिग्रहमात्रप्रतिषेधार्थम्। एषावधारणभावना यूपे। **सेह** हवनविधिवाक्ये **न शक्याश्रयितुम्**। किं कारणमशक्येति चेत्, **अवधारणासम्भवा**द्धवनेनाग्निहोत्रं करोतीति। कथं पुनरसम्भवः? यस्मा**द्धवनेनाग्निहोत्रं करोति न प्रव्रज्यादिना, न च करोत्येवेत्यवधार्यते स्वर्गादिकामाभावे करणाभावा**दित्यवधारणवैषम्यम्।

हवनेनाग्निहोत्रं करोतीति हवना[6]दन्यस्याग्निहोत्रस्याभावा**दत एव प्रसिद्धिवैषम्यमपि, तस्या**ग्निहोत्रस्या**प्रसिद्धस्य क्रियाकलापाभिमतार्थनाम[7]धेयमात्रत्वात्** प्रसिद्धयूपद्रव्यच्छेदनादिवैधर्म्यम्। ९७-२ **मात्र**ग्रहणं नामधेयत्वसामान्यमेवानुमीयेत नार्थविशेषः 'इदं तदग्निहोत्रं नाम[8] वस्तु' इति। तस्मात् प्रसिद्ध्यप्रसिद्धिभ्यामपि वैषम्यमिति।

अतस्तदर्थत्रयमुपसंहृत्य हेतुहे[9]यनिगमनार्थमाह – **शैलीप्रामाण्ये चास्य शैल्या यूपक्रियाऽयाथार्थ्यात्।** शैलीप्रा[10]माण्ये चावलम्ब्य[11]मानेऽस्याग्निहोत्रस्य शैल्या यूपक्रियाया उक्तविधिनैवायाथार्थ्यात्, यथार्थभावो याथार्थ्यम्, न याथार्थ्यमयाथार्थ्यम्, तस्मादयाथार्थ्याद् यूपक्रियया अग्निहोत्रक्रियायाः शैलीसाम्यं नास्ति। अतो न युक्तम् – **विध्य[12]न्तरविधानशैल्या तत्सिद्धिर्यूपच्छित्त्यादिवदिति।** अथवा [13]*शैलीप्रमाणं शैल्यनुमानम्, तस्मिंश्च* शैलीप्रा[14]माण्येऽभ्युपगम्यमाने चाग्निहोत्रस्य शैल्या यूपक्रियाया

---

१ °**स्यप्यत** भा०। °**स्येप्यत** य० ॥ २ °**स्यपि** य० ॥ ३ °**नमवेध्यवधार्य** य०। °**नमवेध्यर्यते** भा० ॥ ४ अत्र 'अतोऽष्टाश्रिकरणादीनामसंस्कारत्वप्रसङ्गः' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ५ **स्वत्वेन परि** प्र० ॥ ६ °**नाद्यन्य**° प्र० ॥ ७ °**मवेयत्रत्वात्** प्र० ॥ ८ **नामस्त्विति** य० ॥ ९ हि गतौ [पा० धा० १२५८], सर्वेषां गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वाद् हिनोति गमयतीति हेतुर्लिङ्गमित्यर्थः, तथा च **हेयं** गम्यं साध्यमित्यर्थः ॥ १० °**प्रमाण्यं** य० ॥ ११ °**मानस्याग्निहोत्रस्य यूपक्रियाया** प्र० ॥ १२ **दृश्यतां** पृ० १३६ पं० ५ ॥ १३ भा० प्रतौ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो नास्त्येव ॥ १४ °**प्रमाण्ये**° भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ननु सेवादिवत् क्रियामात्रत्व इतिकर्तव्यताभ्यः प्रतिपत्तिः, न, भजनार्थसेवाज्ञातत्वे तासां सेवार्थत्वात्। इतरथा प्रतिक्रियं पृथक्त्वापत्तेः।

नात्रापि दानाद्यर्थत्वाद्वैषम्यमुत्तरक्रियामात्रत्वाच्च। एतदपि न, लोकविदितदानाद्यर्थानुबद्धेतिकर्तव्यतामात्रार्थतापत्तेरग्निसम्प्रदानविरोधात् 'न तु लौकिक एव

अयाथार्थ्यात् कथङ्कारं विधिविधन्तरशैल्योस्तुल्या[1] प्रसिद्धिः, अलौकिकत्वादनुमानानुपपत्तेः? लोके हि
दृष्टमनुमीयते, न तु यूपकरणमश्र्याश्र्यादि[2]रूपमग्निहोत्रकर्मधर्मस्वरूपपृथग्भूतं प्रसिद्धमस्ति यतस्तच्छैल्याग्नि-
हवनशैल्यनुमीयेत। तस्माच्छैलीप्रामाण्ये चास्य शैल्या यूपक्रिया[3]ऽयाथार्थ्यात् तत्सिद्धिरयुक्तैव। हवनाग्नि-
होत्रयोर्भेदेऽपि हवनानुवादविशिष्टाग्निहोत्रविधित्वे [4]चोक्तन्यायेन दृष्टान्तवैषम्यान्न शैल्यनुमानमिति।

आह–**ननु सेवादिवत् क्रियामात्रत्व इतिकर्तव्यताभ्यः[7] प्रतिपत्तिः।** यद्यप्यग्निहोत्रक्रिया-
[6]मात्रत्वे यूपच्छेदादिशैलीवैषम्यं तथापि सेवादिक्रियावदेव तद्भविष्यति। यथा हि सेवेत्युपस्थानाञ्जलिकरणादि-
स्वाम्याज्ञानुवृत्तिभजनार्था विशेषे[ण] मनोवाक्कायपरिस्पन्दभेदात्मिका एकैव स्वामिचित्तानुरोधलक्षणा
सेवा एवमग्निहोत्राख्यैका क्रिया, न सा स्वावयवकलापव्यतिरिक्ता काचिदस्ति। तस्मात्ता एव पश्वालम्भन- ९८-१
प्रोक्षणादिक्रियाः 'अग्निहोत्रम्' इत्यभेदेनोच्यन्ते। **आदि**ग्रहणात् कृषिवाणिज्यादिक्रियामात्रत्वे स्वाभ्य एव
इतिकर्तव्यताभ्यः प्रतिपत्तिस्तथेहापीति।

अत्रोच्यते–तन्न, **भजनार्थसेवाज्ञातत्वे तासां सेवार्थत्वात्,** अत्रापि दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयो-
र्वैषम्यादित्यभिसम्बन्धः। तद्दर्शयति–भजनं भक्तिः, सैवार्थः सेवाया इति भजनार्था सेवा, तस्याः सेवाया
ज्ञातत्वे तासां तदवयवाभिमतानामुपस्थानाञ्जलिकरणादीनां सेवार्थत्वात्, अज्ञातत्वे तदर्थाप्रतिपादनात्,
ज्ञाता एव हि ताः 'सेवा' इति प्रतिपत्तिं जनयन्ति, नान्यथा। न त्वेवमग्निहोत्रावयवक्रिया ज्ञाताः,
तस्माद्वैषम्यम्। अवश्यं चैतदेवम्, **इतरथा प्रतिक्रियं[9] पृथक्त्वापत्तेः,** यथा कृषिसेवयोः परस्परं तदङ्ग-
क्रियाणां च पृथक्त्वं तदङ्गत्वेनाज्ञातत्वादेवमग्निहोत्रस्य तदङ्गक्रियाणां च स्यात्, न तु भवति तदङ्गभावेना-
ज्ञातत्वादग्निष्टोमादीनामिति।

आह–**नात्रापि दानाद्यर्थत्वाद्वैषम्यम्।** किं कारणम्? अत्रापि हु दानादनयोः [पा० धा०
१०८३] इति दानाद्यर्थत्वाद्धवनादीनां ज्ञातत्वम्, अतोऽग्निहोत्रस्यापि ज्ञातदानाद्यङ्गक्रियत्वात् साम्यमेव
सेवादिभिः। किञ्चान्यत्–**उत्तरक्रियामात्रत्वाच्च,** यथा सेवाया उत्तरक्रियामात्रत्वमुपस्थानादीनामेव-
मग्निहोत्रस्याग्निष्टोमादीतिकर्तव्यतानामिति। **एतदपि न, लोकविदितदानाद्यर्थानुबद्धेतिकर्तव्यता-
मात्रार्थतापत्तेः[10]।** एवमपि लोकविदितैर्दानाद्यर्थैरनुबद्धाया इतिकर्तव्यताया योऽर्थस्तन्मात्रार्थत्वमापन्न- ९८-२

---

१ °स्तुल्या प्रसिद्धैरलौकि° भा०। °स्तुल्यार्थौ प्रसिद्धौरलौकि° य०॥ २ °श्र्याश्र्यादि° वि० विना। °श्राश्रादि° वि०॥ ३ यूपक्रियायायाथार्थ्यात् य०। यूपक्रियायायार्थ्यात् भा०। दृश्यतां पृ० १०८-२॥ ४ वोक्त° भा०॥ ५ दृश्यतां पृ० १०९-१॥ ६ °मात्रत्व प्र०॥ ७ स्ताभ्य य०॥ ८ दृश्यतां पृ० १३७ पं० १॥ ९ प्रतिक्रियां प्र०॥ १० °आर्थापत्तेः भा०॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

गृह्यमाणे' इत्याद्युक्तदर्शनवत् । नैव सा तथाभूतार्था हवनक्रिया, तदाभत्वात् । प्रधानादिवादसाधुता च, प्रसिद्धिविपरीततत्त्वस्थितार्थत्वात्, वेदवादवत् । वेदवादासाधुता वा तद्वत् ।

अथ 'अग्निहोत्रम्' इत्यस्यापूर्वविशेषाभिधानार्थतैव कल्प्येत तथा सति अपूर्वाभिधाने कोऽर्थः कृतः स्यात्? यः स्वर्गकामः स हवनेन स्वर्गं भावयेदित्ययमर्थः

मग्निहोत्रस्य । लोके ह्यनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्, सङ्गत्य प्रीत्या दानमस्मिंस्तत् सम्प्रदानम्, तस्मै दानं यत्र स्वपरानुग्रहो विद्यते तादृशस्त्यागो दानम्, न तु यत्र कचन मूत्रपुरीषादिविसर्गवद् द्रव्यविसर्गो भस्मनि वा [1]सर्पिःप्रक्षेपवत् । तस्मात् स्वपरोपकारकमेव अग्नौ सर्पिरादिविसर्जनं सर्वं स्यात्, न चैतदिष्टं दृष्टं वा । किं कारणम्? **अग्निसम्प्रदानविरोधात्,** तस्याग्नेर्दहनात्मकस्य सर्वद्रव्याणां विनाशकस्य सम्प्रदानत्वविरोधात्, छिन्नपाणेर्मत्स्याभयदानवत् मुषितस्य वा [2]चौराभयप्रदानदानवत्, 'अग्नये' इति सम्प्रदान[3]विशेषोक्तेर्लोकयज्ञतुल्यत्वा[4]ल्लौकिक एव गृह्यमाणेऽर्थे इदमेवं नैवं चेति विचारोऽर्थवान्न भवति, यदि भवेच्चतुष्पात्त्वे सत्युत्प्लुत्य गमनाल्लोमशो हरिणवद् मण्डूकस्तत एव निर्लोमा हरिणो मण्डूकवत् स्यादिति प्रसिद्धिविपरीतं सिध्येल्लो[6]काप्रमाणीकरणे इति तत् प्रसक्तमिहापीत्यत आह – **न तु लौकिक एव गृह्यमाणे इत्याद्युक्तदर्शनवदिति ।**

[7]नैवं सेत्यादि अत्राप्यनिष्टापादनसाधनम्, **[8]नैवं सा तथाभूतार्था हवनक्रिया तदाभत्वात्,** तदाभत्वमस्याः परमार्थेन अदानात्मिकाया दानत्वेनादानात्, तच्च सिद्धम् । यथा बालरमणकादिक्रियायां स्वाद्वन्नादिसंज्ञादिक्रियायामन्योन्यदानभोजनादिक्रियास्तदा[9]भा एव एवमिदमपि [10]दानमग्नौ प्रक्षेप इति ।

९९-१ इदं चात्रानिष्टापादनम् – **प्रधानादिवादसाधुता च प्रसिद्धिविपरीते**त्यादि, प्रसिद्धेर्विपरीतं तत्त्वम्, तद्भावस्तत्त्वम्, प्रसिद्धिविपरीते [11]तत्त्वे स्थितोऽर्थोऽस्य वादस्य, तद्भावात् **प्रसिद्धिवि[12]परीततत्त्वस्थितार्थत्वाद् वेद[13]वादवत्** साधुता स्यात् प्रधानसंसर्गक्षणभङ्गाद्यात्मकादिवादानाम् । प्रधानादिवादानां वा असाधुताभ्युपगमवदुक्तहेतोर्**वेदवा[14]दासाधुता वा** स्यादित्युभयथाप्यनिष्टापादनम् ।

अथाग्निहोत्रमित्यादि । **अथे**त्यधिकारान्तरे, अथैतेषु विकल्पेष्वग्निहोत्रशब्दस्य क्रियावाचित्वे सर्वथा दोषोत्पादभीतेन परेण **'अग्निहोत्रम्' इत्यस्यापूर्वविशेषाभिधानार्थतैव कल्प्येत ।** न पूर्वोऽ-[15]पूर्वोऽदृष्टो धर्मविशेषः, तदभिधानमर्थः प्रयोजनं व्यापारः, तद्भावोऽपूर्वविशेषाभिधानार्थतैव कल्प्येत । **विशेष**[16]शब्दात् परस्परविशिष्टाभिर्यज्ञसंस्थाभिरग्निष्टोमादिभिरिष्टिभि[17]श्चाभिव्यक्तव्यापूर्वा अपि [18]विशेष्यन्ते द्रव्य-

---

१ **सर्पिःनिक्षेप**° भा० ॥ २ **चौरभय**° य० । **चौरभऽय**° भा० । अत्र 'चौराभयप्रदानवत्' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ३ °**विशेषोर्लोक** य० ॥ ४ °**त्वाद्लौकिक**° प्र० । दृश्यतां पृ० ४५ पं० २ ॥ ५ °**ल्लोममो** य० । °**ल्लोमनो** भा० ॥ ६ °**काप्रामाण्यक**° प्र० । तुलना पृ० ४६ पं० ४ ॥ ७ **नैव स्येत्यादि** प्र० ॥ ८ **नैवं सा** य० ॥ ९ °**दाभाव एवमिदमपि** प्र० ॥ १० **दानमन्यै प्रेक्षे इति** य० । **दानमन्यैः प्रेक्षे इति** भा० ॥ ११ **तथे** भा० । **तथैव** य० ॥ १२ °**रीतत्वस्थि**° प्र० ॥ १३ °**वादत्** भा० । °**वादात्** य० ॥ १४ दृश्यतां पृ० १०९-१ ॥ १५ °**पूर्वः दृष्टो** प्र० ॥ १६ °**शब्दः पर**° प्र० ॥ १७ °**श्चाभिर्व्यक्तव्याऽपूर्वापि** प्र० ॥ १८ **विशेष्यते** डे० लीं० । **विशिष्यते** वि० रं० ही० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतः स्यात्, किमूनीकृतमर्थाविद्यायाः? यावदेव स्वर्गकामो जुहुयादित्युक्तं भवति तावदेव अपूर्वं जुहुयात् स्वर्गकाम इत्युक्तं भवति, ततो भावनस्य गतार्थत्वात्। न च स प्रत्यक्षोऽपूर्वो यतस्तेन निरूपणमारभ्येत—येन हवनेनापूर्वो निर्वर्तते तदनुष्ठातव्यम्।

मन्त्रदेवतादिविशिष्टाभिः। मा भूद् यज्ञसंज्ञायाः क्रियाया एव धर्मत्वं यथा कैश्चिन्मीमांसकै[1]रेवं व्याख्यायते—**यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्**[2] [ऋग्वेद० १०।९०।१५] इति, किं कारणम्? तस्मिन्नर्थे प्रत्यक्षत एवानित्यायाः क्रियाया अनन्तरं फलसम्बन्धादर्शनात् क्रियावैफल्यदोषप्रसङ्गा[3]च्च 'अग्निहोत्रम्' इति धर्मः क्रियाभिव्यङ्ग्य[4] उच्यते कार्ये कारणोपचारादग्निहोत्राभिव्यङ्ग्योऽग्निहोत्रमिति। ततः 'अग्निहोत्रं धर्मं जुहुयाद् भावयेत् स्वर्गकामः' इत्येष वाक्यार्थो निर्दोष इत्येतमर्थं[5] स्पष्टीकारयितुं विधिविधिनयः पृच्छति—**तथा सति अपूर्वाभिधाने[6] कोऽर्थः कृतः स्यात्?** अर्थशब्दस्य प्रयोजनाभिधेययोर्दृष्टत्वात् कोऽर्थः साधितः, किं प्रयोजनं[7] कृतं स्यात्? कोऽभिधेयः समर्थितः स्यात्? विधिनयो[8] ब्रवीति—**यः** ९९-२
स्वर्गकामः स हवनेने[9]तिकर्तव्यता[10]विशेषेण **स्वर्गं भावयेदित्ययमर्थः कृतः** साधितः समर्थितः[11] **स्या**दित्यर्थः। विधिविधिनय आह—विद्यापर्यायतत्त्वज्ञानोत्पादनार्थत्वा[12]दविद्यानिराकरणार्थत्वाच्च शब्दप्रयो[13]गस्य **किमूनीकृतमर्थाविद्याया** इति, न किञ्चिदूनीकृतमित्यभिप्रायः। तत् समर्थयति—**यावदेवे**त्यादि, **यदुक्तं भवति यः स्वर्गं कामयते स जुहुयादिति** तदुक्तं **भवति अपूर्वं जुहुयात् स्वर्ग[14]काम इति,** नापूर्वोऽर्थोऽधिकोऽग्निहोत्रशब्देन लभ्यते, हवनेनैव तस्याभिव्यङ्ग्यत्वात् 'जुहुयात् स्वर्गकामः' इत्येतावतैव गतार्थत्वात् 'जुहुयाद् धर्मं भावयेत् स्वर्गकामः' इत्येतस्यां वाक्यार्थव्यक्तौ कोऽग्निशब्देन होत्रशब्देन चार्थः? इत्यत आह—**ततो भावनस्य गतार्थत्वात्,** भवन्तं धर्मं भावयतो हेतुकर्तृसाधनसाध्यस्य धात्वर्थस्य भावनस्य जुहुयाच्छब्दप्रयोगादेव गतार्थत्वान्नार्थः कश्चिदग्निहोत्रमित्यनेन।

एवं तावदग्निहोत्रशब्दस्य प्रयोगो निरर्थकः। प्रसिद्धिविरुद्धा चेयं कल्पना, लोके वेदे वा तस्य तदर्थाभावात्। अभ्युपेत्यापि अपूर्वविशेषाभिधानमप्रत्यक्षत्वा[15]त् तन्निरूपणं हवनेन नोपपद्यत इति ब्रूमः, निरूपणवैधर्म्यात्। इह हि यद् घटादि वस्तु मृदानयनमर्दनादिक्रियया निरूपणार्थं प्रत्यक्षत उपलब्धचरं[16] [तद्] व्यपदिश्यते 'अनया क्रियया घटो निर्वर्तते, अस्यास्तत् कार्यम्, इदं कारणम्' इति, दृष्टकारणकार्यसम्बन्धत्वात्। न तु जात्वदृष्टपूर्वस्य[17] साधर्म्य[18]दृष्टान्ताभावेऽनुमानाभावात्। अत आह—**न च स प्रत्यक्षो-** १००-१
ऽपूर्वो यतस्तेन निरूपणमारभ्येत हवनस्य कार्यं स इदं चास्य[19] कारणमिति। निरूपणं व्याख्येत्यर्थः। सा कथं व्याख्येति चेत्, उच्यते—**येन हवनेन** दृष्टापूर्वनिर्वर्तनशक्तिना निर्वर्त्योऽग्निहोत्राख्योऽ**पूर्वो**

---

१ °**कैरेव** भा० ॥ २ °**न्यासंति** प्र० ॥ ३ °**प्रसंगत्व** भा०। °**प्रसंगत्व** य० ॥ ४ °**व्यंग्य इत्युच्यते** य० ॥ ५ **इत्येवमर्थ** प्र० ॥ ६ अत्र 'अपूर्वाभिधानेन' इत्यपि पाठः स्यात्। दृश्यतां पृ० १५२ पं० १४ ॥ ७ °**जनं कथं स्यात्** प्र० ॥ ८ **विधेः नयो** प्र० ॥ ९ **हवनेनं चेतिकर्त**° भा० ॥ १० °**विशेषणेन** प्र० ॥ ११ **साधितः साधितः स्यादित्यर्थः** य० ॥ १२ °**त्वादिविद्या**° प्र० ॥ १३ °**योगसाकिमनी**° भा०। °**योगेः स किमनी**° य० ॥ १४ °**कामयति** प्र० ॥ १५ °**त्वातन्निरू**° भा०। °**त्वान्निरू**° य० ॥ १६ °**लब्धिचरं** प्र० ॥ १७ निरूपणमिति शेषः ॥ १८ **साधर्म्या(र्म्ये?)दृष्टान्ता**° य०। **साधर्म्यादृष्टान्ता**° भा० ॥ १९ **वास्य** भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथोच्येत – अस्यास्तावत् प्राप्तेः प्रसिद्धिर्भविष्यति, तदनुबन्धाच्चेतिकर्तव्यतैव कर्तव्यता। न तर्हि पुनः 'जुहुयात्' इति वाच्यं स्यात्।

अपि चैवमुत्तरोत्तरविरोधपरिहारविचारप्राप्यार्थपरिग्रहात् पुरुषप्रमाणकस्तर्क

निर्वर्तते तत्[1] त्वया**नुष्ठातव्यं** हवनम्, यथा मृदानयनादिक्रिया घटनिर्वर्तनार्थमिति। तत्[2]तु न युज्यते, अत्यन्तमदृष्टकारणकार्यसम्बन्धत्वादनयोः।

सम्भावनयैतदपि कृत्वा कल्पनात्मिकयोक्तमपि न सम्भवतीति येऽभिहिता दोषास्तत्परिहारमनादृत्य परेण [3]प्रसिद्धमात्रप्रतिपादनार्थ**मथोच्येत – अस्यास्तावत् प्राप्तेः प्रसिद्धिर्भविष्यती**ति ततो दोषपरिहारो भविष्यतीति। **प्राप्ते**[4]रिति, **स्त्रियां क्तिन्**[5] [पा० ३। ३। ९४] इत्यत्र 'आप्तादीनां च' इति वक्तव्यं **गुरोश्च** हलः [पा० ३। ३। १०३] इति 'अ'प्रत्ययेनापवादेन मा भूद् बाधेति प्रापणात् प्राप्तेर्वाक्यान्तरप्रापिता प्रसिद्धिर्भविष्यति। अग्नये होत्रमग्निहोत्रमिति चतुर्थीसमासः, योगविभागाद[6]श्वघासादुपसङ्ख्यानाद्वा रूपसिद्धिस्तदर्थप्रसिद्धिश्च, ततः करणं तत्फलसम्बन्धश्च कर्तुरिति सर्वमुपपन्नम्। कतमस्माद्वाक्यात् प्रापिता प्रसिद्धिरिति चेत्, वक्ष्यमाणे वाक्यान्तरे **यदग्नये**[7] **च प्रजापतये च सायं जुहोति** [मै० [8]सं० १।८।७] इति, **घृतेन**[9] **पयसा दध्ना जुहुयात्** [ ] इति। **तदनुबन्धाच्च इतिकर्तव्यतैव कर्तव्यता,** तस्याः प्राप्तेर्वाक्यान्तरप्रापितायाः अनुबन्धात् सम्बन्धादनुपरताकाङ्क्षादुत्तराः सर्वा इतिकर्तव्यता एव कर्तव्यताः। तासां चेतिकर्तव्यतानां प्रसिद्धिरग्निहोत्रस्य प्रसिद्धिस्तदात्मकस्येति। अत्रोच्यते – **न तर्हि पुनः**
१००-२ **'जुहुयात्' इति वाच्यं स्यात्,** अग्निहोत्रशब्देनैव अग्निप्रजापत्यादिसम्प्रदानजुहोत्यादीतिकर्तव्यतेनोक्तार्थत्वात् पुनरपि प्रागभिहितो यो **न**[10] **हि कश्चिज्जुहोतिपुनर्वचनेन** इत्यादिग्रन्थार्थः स एव दोषप्रपञ्चोऽस्मिन्नपि व्याख्याध्वन्युपस्थितः।

अपि चैवमित्यादि। किञ्चान्यत्, अत्रापि पुरुषप्रमाणकवादापत्तिः। किं कारणम्? **उत्तरोत्तरविरोध-**

---

१ दृश्यतां पृ० १५२ पं० १५॥ २ **तत्र न** प्र०। अत्र 'तच्च न' इत्यपि पाठः स्यात्॥ ३ अत्र °**प्रसिद्धिमात्र**° इत्यपि पाठः स्यात्॥ ४ **प्रासिरिति** प्र०॥ ५ **क्तिरित्यत्र अपादीनां** प्र०। "स्त्रियां क्तिनित्यत्र आबादिभ्यश्चेति वक्तव्यम्" इति **पा**तञ्जलमहाभाष्ये ३।३।९४॥ ६ °**दस्वमाद्युप**° प्र०। "विकृतिः प्रकृत्येति चेत्, अश्वघासादीनामुपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्" इति **पा**तञ्जलमहाभाष्ये २।१।३६॥ ७ **यदग्नये र प्रजा**° प्र०। "शास्त्रान्तरेण प्राप्तत्वात्। किं तच्छास्त्रान्तरमिति चेत्, 'यदग्नये च प्रजापतये च सायं जुहोति' इति केचित्" इति **अर्थ**सङ्ग्रहे पञ्चमपरिच्छेदे॥ ८ "प्रेयमेधा वै सर्वे सह ब्रह्मविदुः, तेऽग्निहोत्रेण समराधयꣳस्तेषां त्रिरेकोऽजुहोद् द्विरेकः सकृदेकꣳस्तेषां यस्त्रिरजुहोत् तमपृच्छन् कस्मै त्वमहौषीरिति, सोऽब्रवीत् – त्रेधा वा इदम् अग्नये प्रजापतये सूर्यायेति। अथ यो द्विरजुहोत् तमपृच्छन् कस्मै त्वमहौषीरिति, सोऽब्रवीद् द्वेधा वा इदम् अग्नये च प्रजापतये च सायं सूर्याय च प्रजापतये च प्रातरिति। अथ यः सकृदजुहोत् तमपृच्छन् कस्मै त्वमहौषीरिति, सोऽब्रवीद् एकधा वा इदं प्रजापतय एवेति। तेषां यो द्विरजुहोत् स आर्ध्नोत् तस्येतरे साजात्यमुपायन् ऋध्नोति य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति उपास्य समानाः साजात्यꣳ यन्ति।" इति **कृष्णयजुर्वेद**स्य **मै**त्रायणीसंहितायां पाठः॥ ९ "आज्येन जुहुयात् तेजस्कामस्य, तेजो वा आज्यम्, तेजस्वी एव भवति। पयसा पशुकामस्य, एतद्वै पशूनां रूपम्, रूपेणैवास्मै पशूनवरुन्धे, पशुमानेव भवति। दध्नेन्द्रियकामस्य, इन्द्रियं वै दधि, इन्द्रियाव्येव भवति।" इति **तै**त्तिरीयब्राह्मणे २।२।५।३८॥ १० दृश्यतां पृ० १३२ पं० १॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आश्रितो भवति सामान्याद्यर्थैकान्तवदेव । स चानिष्ठः, पौनरुक्त्यादेरसत्कार्यवादाभ्युपगमात् पुनस्तत्त्यागात् ।

एकावस्थामात्रविच्छिन्नपूर्वापरतत्त्वाग्न्यादिभिन्नवस्तुत्वाभिनिवेशविधानाच्च कुर्यादिति कारणे कार्यस्यासत्त्वैकान्ताभ्युपगमात् सर्वगतसत्कार्यकारणवृत्तित्वे

परिहारविचारप्राप्यार्थपरिग्रहात्, अग्निहोत्रहवनयोः पौनरुक्त्यादिदोषाद्विरोध इत्युक्ते '[1]अनुवादविधित्वे न' इति परिहारः, [2]पुनरप्रसिद्धत्वाद्विरोध इत्युक्ते '[3]कुर्यादर्थो जुहुयाच्छब्दः' इत्येवमादिविचारैः प्राप्योऽर्थस्त्वया परिगृहीतः, अतः स्वबुद्धिप्रामाण्यावलम्बनात् **पुरुषप्रमाणकस्तर्क आश्रितो भवति,** तर्कलक्षणं च अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः [न्या० सू० १।१।४०] इति । किमिव ? **सामान्याद्यर्थैकान्तवदेव,** यथा 'सामान्यमेव, विशेषा एव, सामान्यं विशेषाश्च' इत्येकान्तार्थपरिग्रहे प्रागुक्तविधिना पूर्वोत्तरविरोधपरिहारप्राप्योऽर्थोऽशक्यप्राप्तिरफलः पुरुषप्रमाणत्वात् तथाऽयमपि तर्कः । **स [4]चानिष्ठ** इति, अपि च तर्कोऽप्रतिपूर्णो यदि न भवेदाश्रीयेत, [5]किन्तु न प्रतिपूर्णः । कस्मात् ? दोषत्रयात् । कतमस्माद्दोषत्रयात् ? **पौनरुक्त्यादेरसत्कार्यवादाभ्युपगमात् पुनस्तत्त्यागात् ।** जुहुयादुक्तेः पौनरुक्त्यादिदोषाः प्रागुक्तवत् ।

असत्कार्याभ्युपगमप्रदर्शनार्थमाह – **एकावस्थामात्रविच्छिन्ने**त्यादि यावत् **कुर्यादिति कारणे कार्यस्यासत्त्वैकान्ताभ्युपगमात् । एकावस्थामात्रविच्छिन्नपूर्वा[6]परतत्त्वाग्न्यादिभिन्नवस्तुत्वाभिनिवेशविधानाच्चे**ति, [7]चशब्दाज्जुहुयादुक्तेश्च, एकस्यैवावस्था एका च सावस्था च एकावस्था, तत्परिमाणमेकावस्थामात्रं [8]तिमितसरःसलिलवदविच्छिन्नम्, तस्यैव पुनस्तत्त्वं विच्छिन्नं पूर्वस्यापरस्य [9]चेन्धनादेरग्न्यादे- १०१-२
र्भस्मादेर्घटपटादेश्च परविषयसामान्यवादिमतवत्, सर्वैकयापन्नस्य सतोऽग्न्यादेर्भिन्नवस्तुत्वेनाभिनिवेशस्तदभ्यु[10]पगमोऽग्निरिति परमाणुद्व्यणुकादि[11]भूम्यबादिसंयोगसम्भूतवनस्पतीभूताग्निभस्म[12]त्रुटिपरमाण्वादिविच्छिन्नावस्थामात्रत्वे सति अग्निरिति भवति क्रमेण परिणामभेदाभ्युपगमात्, तस्य विधानात्, 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इति च हवनक्रियानुष्ठानं तत्फलाभिमतः स्वर्गस्तयोश्च सम्बन्ध इति परस्परं विघटितत्वान्नो[13]पपद्येत पूर्वापराभ्युपगमयोः । किं कारणं वि[14]घटितत्वमिति चेत्, उच्यते – **कारणे कार्यस्यासत्त्वैकान्ताभ्युपगमा**दिति विघटनप्रदर्शनम् । एवं हि कारणे घृतादौ कार्यस्याग्निहवनकर्मणस्तत्कार्यस्य च स्वर्गादेरसत्त्वे सति करणमुपपद्यते, तच्च सति नोपपद्यते सिद्धौदनपचनवत्, विशिष्टैकाग्न्याद्यवस्थाभ्युपगमे च पुरुषादिकारणात्मकसर्वैक्याभ्युपगमविरोधिनि सत्युपपद्यते नान्यथेत्यत आह – **सर्वगतसत्कार्यकारणवृत्तित्वे भेदविधिनिर्विषयत्वात्,** सुप्तसुप्त[15]जागरितुरीयावस्थाक्रमेणैकमेव युगपद्वा सर्वगतं पुरुषाख्यं कारणम्, तच्च सत्कार्यम्,

---

१ दृश्यतां पृ० १२४ पं० २ ॥ २ **पुनप्रसि**° वि० विना । **पुनः प्रसि**° वि० ॥ ३ दृश्यतां पृ० १२६ पं० २ ॥ ४ **चानिष्ठ** प्र० ॥ न विद्यते निष्ठा प्रतिपूर्णताऽस्येत्यनिष्ठोऽप्रतिपूर्ण इत्यर्थः ॥ ५ **किन्तु र प्रतिपूर्णः** प्र० ॥ ६ °**परत्वाङ्ग्यादि**° प्र० ॥ ७ **तशब्दा**° भा० । **तत्शब्दा**° पा० डे० लीं० ६० हीं० । **तच्छब्दा**° वि० ॥ ८ "तिम ष्टिम ष्टीम आर्द्रीभावे" **पा० धा०** ॥ ९ **वंधनादे**° य० ॥ १० °**गमे**° य० ॥ ११ °**भूम्यत्वादि**° प्र० ॥ १२ °**त्रुटितपर**° य० ॥ १३ °**पपद्येत** भा० ॥ १४ **विघटितमिति** प्र० । अत्र 'विघटनमिति' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १५ °**रितत्वदीयावस्थंक्रमेणै**° य० । °**रितत्वदीया वस्थाक्रमेणै**° भा० । दृश्यतां पृ० १३२-२ ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

भेदविधिनिर्विषयत्वात् सर्ववस्तुसन्निधिसद्भूतैव सा भेदसाधनसम्बन्धाभिनिर्वर्त्येति विधीयते, तदनु यथाभागकारकविन्यासात्मिकयेतिकर्तव्यतयानुष्ठीयते । अतोऽसौ प्राग् नासीत्, कार्यत्वेन परिगृहीतत्वात्, विशेषैकान्तिवस्तुवत् । स चाप्रतिपूर्णस्तर्कः, असिद्धहेतुकत्वात् प्रतितर्केण बाध्यत्वाच्च ।

न तु तत्त्वमेवं वस्तुनोऽसत्कार्यत्वम् व्यङ्ग्यत्वात्, पिण्डकालघटवत्, तत्त्व

सर्वगतं च तत् सत्कार्यकारणं च तदिति विग्रहात्, वक्ष्यमाणविधिविधिनयदर्शनेन तद्वृत्तित्वे[1] 'अग्निहोत्रं कुर्यात्' इति भेदविधिनिर्विषयत्वमन्याय्यभावात्[2] । यथोक्तम्—

> न[3] कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ।
> १०१-२ परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजते यद् यतयो विशन्ति ॥ [कैवल्योप० ३]

तथा —

> पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
> उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ [शुक्लयजुःसं० अ० ३१।२]

इत्यादि, एतद्दर्शनं प्रतिपादयिष्यते[4] । अतः **सर्ववस्तुसन्निधी**त्यादि, सर्ववस्तूनां सन्निधौ **सद्भूतैव सा** हवनक्रिया तथापि **भेदाः** साधनान्यस्याः, '**घृतेन[5] पयसा जुहुयात्**' इत्यादिभेदक्रिया एवाग्निहवनक्रियायाः साधनानि तान्यन्तरेण तदभावात् **साधनसम्बन्धाभिनिर्वर्त्येति विधीयते,** [5]*केन ? उपदेष्टा स्वर्गकामं पुरुषं प्रति वचनेन त्वया कर्तव्येति विधीयते* । **तदनु** अनुष्ठात्रापि तदुपदिष्टभेदसाधननिष्पाद्येत्यभ्युपगम्य यो यो भागो यथाभागं कारकाणां विन्यास आत्मा यस्या इतिकर्तव्यतायाः सा **यथाभागकारकविन्यासात्मिका,** तया **इतिकर्तव्यतया** गवालम्भना[6]ज्यप्रक्षेपादिप्रकाररूपया**नुष्ठीयते,** सामर्थ्याद**तोऽसौ प्राग् नासी**दित्याश्रिता । कस्मात् ? **कार्यत्वेन परिगृहीतत्वात्,** 'कुर्याज्जुहुयात्' इत्यादिवचनात् कार्यत्वेन निर्वर्त्यत्वेन परिगृहीतैव सा । दृष्टान्तो **विशेषैका[7]न्तिवस्तुव**दिति, यथा विशेषैकान्तवादिना 'कार्यमेव, न कारणम्' इति प्रतिक्षणोत्पत्तिविनाशात्मकत्वात् प्रतिपन्नं वस्तु तत् प्राग् नास्ति, तच्च त्वयाभ्युपगतं क्रियाभ्युपगमादिति त्वां प्रति साध्यसाधनधर्मान्वितो दृष्टान्तः, मयापि च त[8]दभ्युपगम्योक्तत्वादिति साध्यसाधनम् । एवमनेन तर्केणासत्कार्यवादोऽभ्युपगतस्त्वया भवति । **स चाप्रतिपूर्णस्तर्कः, असिद्धहेतुकत्वात् प्रतितर्केण बाध्यत्वाच्च ।**

न तु तत्त्वमेवं वस्तुनोऽसत्कार्यत्वम्, किं कारणम् ? **व्यङ्ग्यत्वात्,** व्यङ्ग्या[9] हि सा क्रिया न कार्या, अविवक्षितप्रत्येकसमुदितघृतादिद्रव्यधर्मत्वेनाभिव्यक्तेः । को दृष्टान्तः ? **पिण्डकालघटवत्,** यथा
१०२-१ मृत्पिण्डकाल एव घटो विद्यमानोऽपि साधनान्तरापेक्षाभिर्व्यक्तित्वान्नोपलभ्यते, शुक्रशोणितावस्थायामिव

---

१ **तद्वृत्तित्वेनाग्निहोत्रं** य० ॥ २ °**विधिर्निर्वि**° भा० वि० विना ॥ ३ **न कर्मणा प्रजायन धनेन त्यागेनैकेन अमृतत्वमानसः** प्र० ॥ ४ दृश्यतां पृ० १४२ टि० ९ ॥ ५ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य०प्रतिषु नास्ति ॥ ६ °**नाजप्रक्षे**° भा० पा० । °**नातप्रक्षे**° भा० पा० विना ॥ ७ °**कान्तव**° य० ॥ ८ **त्वदभ्यु**° प्र० ॥ ९ °**व्यक्तत्वा**° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवातथाभूतेर्घटस्वात्मवत्। अत एव च कारणमात्रमसौ सह फलेनापि, तदात्मत्वात् तन्निर्वृत्तत्वात्, घटमृत्त्ववत्।

वा देवदत्तस्तदवस्थाविशेषान्तरत्वे सति उत्तरकालमुपलभ्यत्वात्, कार्यत्वादेव वा प्रकाश्यघटवदभिव्यञ्जनस्यैव करणाख्यत्वात्। इतरथा वन्ध्यापुत्रोऽपि '[1]क्रियताम्, असत्कार्यत्वात्, घटवत्। एवं तर्हि सत्त्वरजस्तमसां साम्यवैषम्यवद् व्यक्ताव्यक्तता एककारणस्यास्य बाधिका स्यादिति चेत्, नेत्युच्यते, कुतः? **तत्त्व एवातथाभूतेः**, न ह्यव्यक्तावस्था नाम काचिदस्ति, किं तर्हि? तत्त्व एवान्यथाभावोऽस्ति, तस्य भावस्तत्त्वम्, तस्मिंस्तत्त्व एव तद्भावावस्थायामेवान्यथाभवनात्, तदेव हि वस्तु स्वरूपावस्थायामेवान्यथा भवति, यद्यन्यदन्यथा भवेद् मृत्पिण्डोऽपि पटो भवेत्, न तु भवति। साधर्म्यदृष्टान्तश्च **घटस्वात्मवत्।** यथा घटो घटस्वात्मन्येव स्थितो नवः पुराणतयोत्पद्यते तथा स एव मृत्पिण्डोऽन्यो घटो भवति, न तु साङ्ख्याभिमताऽव्यक्तता नाम काचिदस्ति, यदि स एव घटो नवः पुराणतयाऽन्यो न भवेद् न पुराणः स्यात्, नव एव स्यात्, ततोऽन्यो वा पटादिः पुराणघटः स्यात्, नैव वा कश्चिदपि भवेत्, तस्मात् तत्त्व ए[2]वातथाभूतेर्नाव्यक्तावस्था नाम काचिदस्ति। अत्राह–'घटस्वात्मवत्' इत्ययं दृष्टान्त उपपद्यते नवत्वावस्थानन्तरं पुराणत्वावस्थानु[3]भवात्, 'मृत्पिण्डकालघटवत्' इति न युज्यते तत्त्व एवान्[4]यथाभावाभावात्, पिण्डानन्तरं हि शिवको भवति न घटो न स्तूपकच्छत्रकस्थालककोश[5]ककुशूलका इति। अत्रोच्यते–तुल्यप्रत्यासत्तित्वाद् यथा घटो भवति कुशूलकात् तथा कुशूलकः कोशकात्, कोशकः स्थालकात्, स्थालकश्छत्रकात्, छत्रकः स्तूपकात्, स्तूपकः शिवकात्, शिवकः पिण्डात्, पिण्डो १०२-२
मृदः, इति मृद एव तथा तथा भूतेः। अथवा किमनया साङ्ख्यसृष्टिक्रमका[6]नुमत्या? तस्यामेव मृत्पिण्डावस्थायां घटो भवतीति प्रतिपद्यस्व स्तिमितसरःसलि[7]लवत्तरङ्गवत् तत्त्व एवान्यथाभवनान्नास्त्यत्रापि क्रम इत्यतस्त[8]दुपदर्शनार्थमाह–मृ[9]त्पिण्ड[काल]घटवदिति। अथवा **तत्त्व एव तथाभूतेरि**ति पाठः, तत्त्व एव तद्भाव एव [10]सति तेन तेन प्रकारेण भवनात्, पिण्ड एव मूर्तिस्वभावरूपाद्यात्मके शिवकाद्यात्मना नीलरक्ताद्यात्मना च भवनादिति।

अत एव च कारणमात्रमसौ, तत्त्व एवातथाभूतेस्तथाभूतेर्वा कारणप्रमाणमसौ हवनक्रिया घृतादिकारणेभ्यो न व्यतिरिक्ता, उक्तहेतोरसत्कार्याभावात् 'कारणमात्रमसौ क्रिया' इति प्रतिपत्तव्यमवश्यम्। न केवलं क्रियैव कारणमात्रम्, **सह फलेनापि** सा कारणमात्रम्, फलमप्यस्याः स्वर्गाख्यं सुखादि घृतादिकारणान्यथाभवनमात्रम्। अत्रोभयहेतू प्रतिपादितार्थावेव **तदात्मत्वात् तन्निर्वृत्तत्वा**दिति, तस्यात्मा स आत्मास्येति वा तदात्मा, तेन तस्मिंस्तस्य स एव वा निर्वृत्तः, तद्भावस्तन्निर्वृत्तत्वं तदात्मत्वं च, तस्मात् तदात्मत्वात् तन्निर्वृत्तत्वाद् **घटमृत्त्ववत्**, घटस्य मृत्त्वं घटमृत्त्वं 'मृदेव घटः, घट एव मृद्' यथा प्रतिपादितं

१ **क्रियतांमसत्का**° रं० हीं०। **क्रियतां सत्का**° पा० वि०। **क्रिय(ये?)तासत्का**° भा०। **क्रियसत्का**° डे० लीं०॥ २ **एवतथा**° य०॥ ३ °**भवनात्** भा०॥ ४ °**न्यथाभावात्** प्र०॥ ५ °**कोशकशूलका** भा०। °**कोशकुशूलका** य०॥ ६ °**कात्कनु**° य०। °**कात्कनु**° भा०॥ ७ °**लवत्त**° पा० डे० लीं०॥ ८ °**दुपप्रद**° य०॥ ९ दृश्यतां पृ० १४४ पं० ५॥ १० **सति तेन प्रकारेण** भा०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकान्तवादस्वाभाव्यादितिकर्तव्यताकर्तव्यताभ्युपगमात्तु पूर्वोत्तरावस्थानुबन्धात् सर्पस्फटाटोपमुकुलप्रसारणकुण्डलीकरणवद् यज्ञोपवीतसूत्रतन्तुत्वपटत्ववद्वा संस्थानमात्रभिन्नकारणकार्यत्वाभ्युपगम आपद्यत इति कार्यत्याग इति स्वशब्दार्थापत्तिविषयविपरीतार्थत्वाद् विवक्षाभेदव्याघातः ।

यदीतिकर्तव्यता जनयति ततः सा तज्जन्या न, जनकत्वात् कारणत्वात्

तत्त्व एवातथाभूतेस्तथाभूतेर्वेति तद्वत् । तस्मात् कारणमेव क्रिया क्रियाफलं च । एवं तावदप्रतिपूर्णस्तर्कः 'प्राग् नासीत् क्रिया कार्यत्वेन परिगृहीतत्वात्' इति, असिद्धहेतुत्वात् प्रतितर्केण बाध्यत्वाच्चेति सुष्ठूच्यते ।

१०३-१ किञ्चान्यत्, स्वयमेव त्वया परित्यक्तत्वाच्चाप्रतिपूर्ण एव, कस्मात्? **एकान्तवादस्वाभाव्यात्,** एवंस्वभावा ह्येकान्तवादाः सर्वोक्तमृषात्ववादवत्, यथोक्तं त्वया **'तदनुबन्धाच्चेतिकर्तव्यतैव कर्तव्यता'** इति ब्रुवता कारणे कार्यस्य सत्त्वमभ्युपगम्यासत्त्वं च त्यक्तं भवति, अतो ब्रूमः – **इतिकर्तव्यताकर्तव्यताभ्युपगमात्त्वित्यादि** । **इति**शब्दस्य प्रकारार्थवाचित्वादित्थमित्थं च कर्तव्यं 'घृतेन **जुहुयात् पयसा जुहुयात्'** इत्यादिप्रकारा कर्तव्यता इतिकर्तव्यता, सैव कर्तव्यता कारणभूतास्ता एव प्रोक्षणादिक्रियाः 'अग्निहोत्रम्' इत्यभ्युपगमात्, **पूर्वोत्तरावस्थानुबन्धाद्** विच्छिन्नपूर्वोत्तरावस्थस्य कस्यचिदभावात् कारणमेव कार्यं **सर्पस्फटाटोपमुकुलप्रसारणकुण्डलीकरणवद् यज्ञोपवीतसूत्रतन्तुत्वपटत्ववद्वा,** सूत्रमेव यथा यज्ञोपवीताख्यां लभते तथासमवस्थानात् तथा तन्तव एव पटस्तद्वत् **संस्थानमात्रभिन्नस्य कारण**स्यैव **कार्यत्वमित्ययमभ्युपगम आपद्यते इति,** इतिशब्दो हेत्वर्थे, एतस्मात् संस्थानमात्रभिन्नकारणकार्यत्वाभ्युपगमापत्तेर्हेतोः कार्यस्य त्यागः **कार्यत्यागः**, 'कुर्यात्' इत्ययं हि शब्दः कार्यार्थे सति अर्थवान् भवति, नान्यथा । **पुनरिति**शब्दो हेत्वर्थे, ततश्च कुर्यादर्थत्यागात् **स्वशब्दार्थापत्तिविषयविपरीतार्थत्वाद् विवक्षाभेदव्याघातः,** 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यनेन स्वशब्देनैवासत्कार्यवादोऽभ्युपगतः, **'तदनुबन्धाच्चेतिकर्तव्यतैव कर्तव्यता'** इत्यर्थापत्त्या कारणात्मककार्यवादोऽभ्युपगतः, तयोरन्योन्यविपरीतार्थत्वाद्विरुद्धत्वाद्
१०३-२ विवक्षाभेदो व्याघातश्च । विवक्षाभेदस्तावदसत्कार्यवाचिनः शब्दस्य कारणात्मककार्याभिधानाभ्युपगमात् कारणात्मककार्यवाचिनश्चासत्कार्याभिधानाभ्युपगमात् । अत एव च परस्परतो विरोधाद् व्याघातोऽनयोः । अथवार्थद्वयस्य स्वशब्दार्थापत्तिविषयस्याभ्युपगमाद् विवक्षाभेदोऽयं पुरुषबुद्धिवशाद् वेदवादप्रामाण्यमपौरुषेयं व्याहन्तीति विवक्षाभेदव्याघातः, स च त्वया तत्त्वानपेक्षणदोषान्नेक्ष्यते वस्तुतत्त्वविचारप्रद्वेषिणा यः कार्यकारणस्वरूपानपेक्षिणोऽपि बलादयं कारणकार्यतत्त्ववाद आपद्यतेऽनेकान्तरूपो वस्तुनस्तादात्म्यादनपेक्ष्यमाणोऽपि स्वमतव्याघातीति ।

एवं कारणात्मकत्वेऽभ्युपगतेऽपि **यदीतिकर्तव्यता जनयती**ति इष्यते ततो न सा कर्तव्यता घृतादि-

---

१ दृश्यतां पृ० १४४ पं० ३, ४ ॥ २ °**कर्तव्यतैव** प्रतिषु नास्ति । दृश्यतां पृ० १४२ पं० १ ॥ ३ °**भ्य सत्त्वं** प्र० ॥ ४ **च तत्यक्तं** भा० ॥ ५ °**कर्तव्यत्वाभ्युपगमास्त्वित्यादि** प्र० ॥ ६ दृश्यतां पृ० १४२ टि० ९ ॥ ७ **कार्यत्यागः** य० प्रतिषु नास्ति ॥ ८ °**षिणये कार्य**° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वत्वाद् विधायकत्वात्, मातृवद् वचनवत्। अथ जन्या सा, एवं तर्हि न जनिका, जन्यत्वादिभ्यः, पुत्रादिवत्।

प्रतीतिकर्तव्यतं च कर्तव्यतासमाप्तेरितिकर्तव्यतान्तरानारम्भः। प्रत्येकं त्वसमाप्तावकारणभावादतथाता च। समुदायस्यापि च तन्मात्रत्वात्, उक्तवत्।

कारणेतिकर्तव्यताव्यतिरिक्ता काचिदस्ति **ततः सा तज्जन्या न** भवति क्रिया, नात्मनैवात्मानं जनयती-
त्यर्थः। कस्मात्? **जनकत्वात् कारणत्वात् पूर्वत्वाद् विधायकत्वाद् मातृवत्,** यथा माता
नात्मानं जनयति, किं तर्हि? ततोऽन्यां दुहितरं जनयति, एवमियमितिकर्तव्यता जनिका सती। तथा
कारणत्वात् पूर्वत्वाद् विधायकत्वादिति व्याख्येयानि। **वचनव**दित्यत्र यथा वचनमपि नात्मानं जनयति
बुद्धिं तु ततोऽन्यां वाच्यविषयां जनयति तथा इतिकर्तव्यतेति। अथ मा भूदेष दोष इति जनकत्वमसिद्धं
तस्या जन्यत्वात्, जन्या हि सेत्यत्रोच्यते–**अथ जन्या सा एवं तर्हि न जनिका** न कारणम्,
जन्यत्वा[1]दिभ्यः, जन्यत्वात् कार्यत्वादपूर्वत्वाद् विधेयत्वात्, **पुत्रादिवत्।** आदिग्रहणाद् [2]वाच्यार्थ-
ज्ञानवत्। तस्मात् स्वविहितदोषत्वाज्जन्यत्वे जनकत्वे वा दोषानतिवृत्तेर[3]युक्तमुक्तम्–[4]**इतिकर्तव्यतैव कर्त-** १०४-१
व्यता तदनुबन्धादिति।

किञ्चान्यत्, कारणमात्रत्वे सति कर्तव्यता प्रतीति[5]कर्तव्यतं परिसमाप्ता वा स्यात्, अपरिसमाप्ता
वा? तत्र तावद् यदि प्रत्येकमितिकर्तव्यतासु कर्तव्यता परिसमाप्ता ततः **प्रतीतिकर्त[6]व्यतं च कर्तव्यता-**
समाप्तेरितिकर्तव्यतान्तरानारम्भः, एकया 'घृतेन[7] जुहुयात्' इत्यनयैव इतिकर्तव्यतया तन्मात्रपरि-
समाप्तायाः कर्तव्यतायाः कृतत्वात् 'पयसा दध्ना' इत्यादीनामितिकर्तव्यतान्तराणामारम्भो निरर्थकः प्राप्तः।
अनारम्भ एव वा तस्या अपि कारणमात्रत्वात् '[8]इतिकर्तव्यतैव कर्तव्यता' इति त्वयैवाभ्युपगतत्वात् न्यायतश्च
घृतादिकारणद्रव्यमात्रत्वस्य क्रियायाः प्रतिपादितत्वात् सिद्धौदनपचनवदनारम्भ एव प्राप्तः। एवं तावत्
प्रत्येकपरिसमाप्तौ दोषः। **प्रत्येकं त्वसमाप्तावकारण[9]भावादतथाता च,** यदि शिबिकावाहक[10]कारणत्ववत्
प्रत्येकमसमाप्तौ[11] च कर्तव्यता इतिकर्तव्यतासु तथाप्यकारणता, प्रत्येकमकारणत्वात्, सिकतातैलवत्।
'इति'शब्दस्य एवमर्थत्वात् 'एवं'शब्दस्य च प्रकारार्थत्वादेवं कर्तव्यमितिकर्तव्यम्, घृतादिप्रक्षेपस्वरूपकर्तव्यता
[12]तथाता, न तथाता [13]अतथाता, तत्तथात्वं न प्राप्नोति प्रत्येकमकारणत्वादि[14]त्यतथाता च। ननूक्तं शिबिका-
वाहकवहनशक्तिवत् समुदाये [15]सेतिकर्तव्यताशक्तिरिति, अत्रोच्यते–**समुदायस्यापि च तन्मात्रत्वाद**व-
यवमात्रत्वा**दुक्तव**दिति, उक्तं हि त[16]त्र एवातथाभूतेस्तथाभूतेर्वेति, अवयवा एव हि समुदायी[17]भवन्तो
दृश्यन्ते, नो चेत् सिकतातैलवदेव न स्यात् तिलसमुदायतैलमपि। १०४-२

---

१ °त्वादित्य जन्यत्वात् य० ॥ २ वाक्यार्थ° य० ॥ ३ °युक्तम् य० ॥ ४ दृश्यतां पृ० १४२ पं० १ ॥ ५ °कर्तव्यंता पा० । °कर्तव्यता वि० डे० लीं० रं० ही० ॥ ६ °व्यतासमाप्ते° य० ॥ ७ दृश्यतां पृ० १४२ टि० ९ ॥ ८ इतिकर्तव्यतेति त्वयैवा° य० ॥ ९ °णभावातथाता च यदि भा० । °णाभावातथाताव-द्यदि वि० । °णाभावात्तथाताव्यदि भा० वि० विना ॥ १० °काकारणत्ववत् प्र० ॥ ११ °ता कर्त° भा० ॥ १२ यथाता भा० ॥ १३ अतथात् प्र० ॥ १४ °त्यतथातावन्ननूक्तं प्र० ॥ १५ सति° य० ॥ १६ दृश्यतां पृ० १४५ पं० १, १९ ॥ १७ भवन्तो नो चेत् य० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अभिमतविध्यनुवादवैपरीत्यदोषप्रसङ्गश्च । तन्मात्रहवनार्थत्वाद् घृतादिवद् हवनस्य विधायकता, अनुवादता च घृतादेः कारणमात्रवृत्तित्वाद् हवनवत् । एवं चावाक्यत्वम्, अननुवादत्वादविधायकत्वात्, विच्छिन्नार्थपदवत् काकरुतवत् । ज्ञाताज्ञाताविशेषाच्चैवं घटज्ञानवज्ज्ञाताज्ञातालम्बनविध्यनुवादार्थयुगपद्वि-

---

किञ्चान्यत्, **अभिमतविध्यनुवादवैपरीत्यदोषप्रसङ्गश्च** । तत्र तावत् 'घृ[1]तेन जुहुयात् पयसा जुहुयात्' इत्यादिवाक्येषु घृतादेर्विधेयत्वे[2]नाभिमतस्य कारणमात्रस्य हवनकार्य[3]स्यान्यस्य **तन्मात्रे**तिकर्तव्यतामात्र**हवनार्थत्वात्** 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यत्र श्रुतहवनानुवादाभा[4]वोऽपि, हवनस्य घृतादिव्यतिरिक्तस्याभावात् । ततश्च **घृतादि**विधानवज्ज्ञातार्थाभिमतस्य **हवन**वाक्य**स्य विधायकतै**व स्यात्, नानुवादता । **अनुवादता च घृतादे**रज्ञातार्थविधायकाभिमतस्यापि, **कारणमात्रवृत्तित्वाद् हवनव**दिति, कारणमात्रे वृत्तिरस्य तत् कारणमात्रवृत्ति घृतादि हवनं च, उक्तविधिना कार्याभावस्य प्रतिपादितत्वात् । तस्मात् कारणमात्रवृत्तित्वाद् हवनवद् घृतादेरनुवा[6]दता घृतादिवद्धवनस्य विधायकतेति । **एवं चे**ति, विध्यनुवादयोरन्योन्यस्वभावसङ्कराव्यवस्थितात्मस्वभावत्वान्न विधिर्नानुवादोऽस्ति, अत एवमुक्तप्रकारेण**वाक्यत्वम्, अ[7]ननुवादत्वादविधायकत्वात्, विच्छिन्नार्थपदवत्** । यथा विच्छिन्नार्थमेकं पदमधिकृतपदार्थान्तरा[8]सम्बन्धं 'गाम्' इत्येतन्न वाक्यमत एव विध्यनुवादत्वाकाङ्क्षयार्थाभावात् तथा 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः, घृतेन पयसा जुहुयात्' इ[9]त्यादीनि । यस्यापि पदार्थो नास्त्येव तं प्रति **काकरुतव**दिति दृष्टान्तः । य[10]था काकरुतमर्थान्तराकाङ्क्षारहितमवाक्यमविध्यनुवादत्वात् तथेदमपि ।

ज्ञा[11]ताज्ञाताविशेषाच्चैवं घटज्ञानवत् । **एव**मिति कारणमात्रकार्यत्वाभ्युपगमे साधुतासाधुतयोः
१०५-१ साधुता तावत् 'गौः' इत्यादेः पदस्य 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यादेर्वाक्यस्य [12]विधित्वमनुवादत्वं च नोपपद्यते । शब्दो हि ज्ञातार्थोऽज्ञातार्थो वा प्रयुज्यते, ज्ञातार्थोऽनूद्याज्ञातार्थविधानार्थं प्रयुज्यते, स पुनर्ज्ञातार्थः स्वत एव प्रत्यक्षादिना प्रमाणेन ज्ञातेऽर्थे प्रयुज्येत वाक्यान्तरेण वा परे[13]ण ज्ञापितेऽर्थे, यथा 'अयं देवदत्तः' इति अयंशब्दस्य प्रत्यक्षदृष्टार्थवाचित्वादनूद्य देवदत्तत्वं विधीयते, वाक्यान्तरवेदितार्थानि वा पदान्यनूद्य अभ्याजनं विधीयते 'देवदत्त ! गामभ्याज शुक्लाम्' इति ज्ञाताज्ञातार्थता पदानां वाक्यानां च साधुत्वाभिमतानां प्रत्येकं सर्वेषां द्व्यर्थता दृष्टा । को दृष्टान्तः ? **घटज्ञानवत्** । यथा घ[14]टस्यारातीया भागाश्चक्षुरादुपलभ्या ज्ञाताः परान्तर्बुध्नादिभागा न ज्ञाताः । [15]सैषा लोकप्रसिद्धा साधुता पदवाक्यशब्दानां कारणात्मकार्यवादेऽस्मिन्न घटेत, सर्वस्यैकात्मकत्वे ज्ञाताज्ञातभेदानुप[16]पत्तेः, एकस्यैव वा तदुभयाभावाद्विध्यनुवादत्वाभाव[17]स्योक्तत्वात् काकरुतादिवदिति । नाप्यसाधुता वाक्यभेदानर्थक्यादिदोषसम्बद्धा घटते, यस्मात् कारणात्मककार्यवादेऽर्थान्तराभावा**ज्ज्ञाताज्ञातालम्बनविध्यनुवादार्थयुगपद्विवक्षावृत्तिवाक्यभेददोषपरिकल्पनापरि-**

---

१ दृश्यतां पृ० १४२ टि० ९ ॥ २ °**त्वादिमतस्य** प्र० ॥ ३ °**कार्यश्चान्यस्य तन्मा**° भा० । °**कार्यस्वातन्मा**° डे० लीं० ॥ ४ °**भावो हवनस्य** भा० ॥ ५ **हवनघृतादे** प्र० ॥ ६ °**वादकता** य० ॥ ७ **अनुवाद**° प्र० ॥ ८ °**रसंबंधं** प्र० ॥ ९ अत्र **इत्यादीति** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १० **तथा** प्र० ॥ ११ **ज्ञातावि**° भा० । **ज्ञाताज्ञातवि**° य० ॥ १२ **विधेत्व**° भा० । **विधेयत्व**° य० ॥ १३ °**ण पिते**° भा० पा० डे० लीं० । °**णापिते**° वि० रं० ही० ॥ १४ **घटज्ञानस्या**° य० ॥ १५ **शैषा** भा० ॥ १६ °**पत्तिः** य० ॥ १७ °**स्योक्तेः** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वक्षावृत्तिवाक्यभेददोषपरिकल्पनापरिश्लथता। श्रुतिभेदोऽपि वृथैवं साध्वसाधुत्वाभ्याम्, एकार्थत्वात्, घटकुटवत्। इदं चाज्ञातमपि सत् त्वया तत्त्वमेवैवं विवेक्तारं प्रति प्रदर्शितं घुणाक्षरवत्।

अथोच्येत–कारणमात्रकार्यदर्शनमिह निर्मूलापविद्धक्रियावाक्यप्रबन्धमिति

श्लथता, यथासङ्ख्येन ज्ञातालम्बनोऽनुवादः, अज्ञातालम्बनो विधिः, तयोरर्थयोर्युगपद्वक्तुमिच्छा युगपद्विवक्षा, एकस्मिन्नर्थे तस्या वृत्तिः, असौ द्व्यर्थता वाक्यभेदः, देवदत्ताख्यानवाक्यस्यैव गवानयनचोदनायां देवदत्तान्वाख्यानवदनुवादो गवानयनविधानवाक्यस्य वा देवदत्ताख्यानवाक्यवद् देवदत्त- १०५-२
विधानमिति [1]येयमेकस्य शब्दस्य युगपदर्थद्वयाभिधानशक्त्यभावाद्वाक्यभेददोषपरिकल्पना तस्याः परिश्लथता, अर्थभेदाभावात्। अतोऽसाधुतापि शब्दानां नास्ति, सर्वे साधवोऽसाधवो वा शब्दाः प्रसक्ता इति।

किञ्चान्यत्, न केवलं वाक्यभेददोषो भेदाभावदोषश्चापदार्थात्मकः, **श्रुतिभेदोऽपि वृथैवं साध्वसाधुत्वाभ्याम्।** एवमिति कारणात्मककार्यवादाभ्युपगमप्रकारेणोक्तमतिदिश्य सङ्क्षिप्य साधनमाह सोदाहरणम्–**एकार्थत्वाद् घटकुटव**दिति, यथा प्रतीतार्थयोर्घटकुटशब्दयोरेकार्थत्वादन्यतरप्रयोगो वृथा साधुत्वाभिमतयोः, असाधुत्वाभिमतस्य गोशब्दमात्रस्य [3]वाचा-दिशा-सास्नादिमदर्थेषु [4]युगपत् प्रयुक्तस्य चैकार्थत्वात् 'अर्थभेददोषपरिकल्पनापरिश्लथता' इति वर्तते। तस्मात् पदवाक्यशब्दयोः साधुत्वासाधुत्वाविशेषाच्छिष्टेतरलोकव्यव[5]हाराविशेषः। एवं ते जुहुयादुक्तेः पौनरुक्त्यस्ववचनविरोधौ स्वशब्दोक्तासत्कार्यवादत्यागः कारणात्मकसत्कार्यवादाभ्युपगमश्चेत्यप्रतिपूर्णतर्कता सदोषत्वादित्युक्तम्।

[6]यदप्येतत् त्वयाभ्युपगतं कारणात्मकसत्का[7]र्यत्वं तदप्यसमीक्ष्याबुद्धिपूर्वकमेवोक्तमित्यतस्तत्प्रदर्शनार्थमाह–**इदं चाज्ञातमपि सत् त्वया तत्त्वमेवैवं विवेक्तारं प्रति प्रदर्शितं घुणाक्षरवत्।** यथा घुणः काष्ठमुत्किरन्नक्षराकारामपि रेखामुत्किरति यदृच्छया तथा त्वयेदं तत्त्वमेवैवं कारणात्मकसत्कार्यत्वं प्रदर्शितम् 'इतिकर्तव्यतैव कर्तव्यता' इति ब्रुवता। तत् पुनर्विवेक्तारं प्रति प्रदर्शितम्, 'इत्थमसत्का[8]र्यं १०६-१
भवति, इत्थं सत्कार्यम्' इति यो वाच्यवाचकसाधनस्वरूप[9]विवेकज्ञस्तं प्रत्येव प्रदर्शितं नात्मतुल्यबुद्धीन् प्रति, दर्शयन्नपि स्वयं तद्विवेकं न[11] चेच्छति।

अथोच्येत–कारणमात्रकार्यदर्शनमिहेत्यादि यावद्**वचनच्छला**दिति। अथ त्वयैवमुच्येत–न मया कारणमात्रकार्यदर्शनैकान्तोऽभ्युपगम्यते यतस्त्वयैते दोषा मां प्रत्यापाद्यन्ते। किं तर्हि? मयाभ्युपगम्यते

---

१ **येतयमेकस्य** भा०। **यद्ययमेकस्य** पा० डे० लीं०। **यतयमेकस्य** वि०। **यज्ञयमेकस्य** रं० ही०॥ २ °**त्मकश्रुति**° पा० डे० लीं० वि० भा०॥ ३ **वाचादिसाम्रादिमदर्थे** पा० डे० लीं० वि०। **वाचादिसाम्रादियमदर्थे** भा०। **वाचादिम्रादितमदर्थे** रं० ही०॥ ४ **युगदप्रयुक्तस्य चैकार्थत्वात्** भा०। **युगपदप्रयुक्तचैकार्थत्वात्** पा० डे० लीं०। **युगपदप्रयुक्तावैकार्थत्वात्** रं० ही०। **युगपदं प्रयुक्तं चैकार्थत्वात्** वि०॥ ५ °**हारवि**° प्र०॥ ६ **यद्यप्ये**° य०॥ ७ °**त्कार्यात्व** रं० ही० पा० वि०॥ ८ °**त्मसत्का**° य०॥ ९ दृश्यतां पृ० १४२ पं० १॥ १० **विधिकज्ञ**° प्र०॥ ११ **न वे**° प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असत्कार्यं विवक्ष्यते, अलब्धवृत्तित्वात्, खपुष्पवत् । तद् द्विविधम् – अनितिकर्तव्यतात्मकमितिकर्तव्यतात्मकं च । तत्रानितिकर्तव्यतात्मकं घटादि यूपादि च । इतिकर्तव्यतात्मकं पुनः प्राप्तिसंवादि, यथा सेवादि । तच्च न कारणमात्रम्, कुर्यात्प्रतिपादितादसत्कार्यवादादादौ मध्येऽन्ते च कर्तव्यताभ्युपगमाद् यदुच्यते त्वया दोषजातं तद् वचनच्छलात् ।

न कारणमेव न कार्यमेव नोभयमेव नानुभयमेवेत्यविचार्य वस्तुतत्त्वैकान्तपरिग्रहमकृत्वा कारणं कार्यमुभयमनुभयं वाभ्युपगम्यते । अस्मिन् 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' इति वाक्ये यत् कारणमात्रकार्यप्रदर्शनमनुं[1]पात्तापरित्यक्तमिह विधिनये सदपि यत् तदत्र **निर्मूलापविद्धक्रियावाक्यप्रबन्धम्**, निर्मूलमपविद्धः क्रियाप्रबन्धो वाक्यप्रबन्धश्च यस्मिंस्तदिदं निर्मूलापविद्धक्रियावाक्यप्रबन्धम् । *[2] इतिशब्दो हेत्वर्थे, यस्मान्निर्मूलापविद्धक्रियावाक्यप्रबन्धं* तस्मात् कारणमात्रकार्यदर्शनस्य तद्दोषपरिहारार्थमि[3]ष्यते विवक्ष्यतेऽनवधारितैकान्तदर्शनत्वात् कारणमात्रत्वं त्यक्त्वा यत् कार्यासत्त्वं तदेव 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इति वाक्ये कारणमात्रकार्यदर्शनमेव सत् **'असत् कार्यम्'** इति **विवक्ष्यते**ऽभ्यु[4]पगम्यते च । किं कारणम् ? **अलब्धवृत्तित्वात्**, अलब्धा वृत्तिरनेनेत्यलब्धवृत्ति कार्यम्, तस्मादलब्धवृत्तित्वात् **खपुष्पवत्**, यथा खपुष्प- १०६-२ मलब्धवृत्तित्वादसत्तथा कार्यं स्वर्गापूर्वादि अलब्धवृत्तित्वादसत् । लब्धवृत्तित्वे 'कुर्याज्जुहुयात्' इति न चोद्येत, सिद्धौदनार्थं 'पचेत्' इत्यचोद[5]नावत् । अतोऽसत् कार्यमागृह्य स्वर्गादि तत्प्राप्त्यर्थं क्रियाश्रीयते – अग्निहोत्रं कुर्यादिति । **तद् द्विविधम्**, तच्च कार्यं द्विविधम् – **अनितिकर्तव्यतात्मकमितिकर्तव्यतात्मकं च । तत्रानितिकर्तव्यता[6]त्मकं** कार्यं **घटादि यूं[7]पादि च** लोके वेदे च दृष्टम्, मृदानयनमर्दनदण्डग्रहणचक्रभ्रमणादीतिकर्तव्यतात्मकं घटाख्यं कार्यं न भवति तदुपरमेऽपि पृथगुपलब्धेः, तथाष्टाश्रिकरणादीतिकर्तव्यतात्मको न भवति यूपः । **इतिकर्तव्यतात्मकं पुनः** कार्यं **प्राप्तिसंवादि**, प्राप्त्या संवदितुं शीलमस्य प्राप्तिसंवादि, **यथा सेवादि**, उपस्थानाञ्जलिकरणादिरूपैव सेवा [8]ताभ्यः पृथगनुपलब्धेः । **त[9]च्च** कार्यं **न कारणमात्रं** [10]नेतिकर्तव्यतात्मकं घटादियूपादिवत्, **कुर्यात्प्रतिपादितादसत्कार्यवादात्**, कुर्याच्छब्दप्रतिपादितात् 'अग्निहोत्रं कुर्यात्' इत्यत्र कुर्याच्छब्देन प्रतिपादितात् 'घटं कुर्यात्' इति प्रतिपादितघटासत्कार्यार्थवाक्यवदिदमपि वाक्यं स्फुट[11]तरासत्कार्यार्थम् । किं कारणम् ? **आदौ मध्येऽन्ते च कर्तव्यताभ्युपगमात्**, अतोऽसत्कार्यवादस्य उपक्रमप्रभृत्यपवर्गपर्यवसानेषु क्रियाविशेषेष्वभ्युपगतत्वाद् **यदुच्यते त्वया दोषजातं तत्** 'त्वद्वचनात् प्रा[12]प्तिप्रापितेतिकर्तव्यतैव कर्तव्यता' इति **वचनच्छलात्**, कारणमात्रकार्यत्वापत्तिस्ततो विध्यनुपपत्तिरित्यादि सर्वं दोषजातं नास्तीति ।

१०७-१ एतदपि नोपपद्यते, विधिविधिनयदर्शनोपपादयिष्यमाणकारणमात्रत्ववादात् । अभ्युपेत्यापि **अस-**

---

१ °**नुयात्त्वापरि**° य० ॥ २ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ३ °**सिध्यतो विवक्षते**° प्र० ॥ ४ °**भ्युपगमे च** प्र० ॥ ५ °**नवत्** भा० वि० डे० लीं० ॥ ६ °**त्मकं च कार्यं** य० ॥ ७ **यूपादिव लोके** प्र० ॥ ८ ताभ्य इतिकर्तव्यताभ्य इत्यर्थः ॥ ९ **तत्कार्यं** य० ॥ १० **नेवेतिकर्त**° डे० लीं० रं० ही० ॥ ११ °**तरं** वि० ॥ १२ दृश्यतां पृ० १४२ पं० १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असत्कार्यवादोक्तावपि नैवास्य वाक्यता, इतिकर्तव्यतावाक्यासिद्धौ तदसिद्धेस्तत्सिद्धौ तत्सिद्धेः। इतिकर्तव्यतावाक्यमवाक्यम्, अननुवादत्वात्, उन्मत्तप्रलापवत्। 'जुहुयात्' इत्यस्योक्तवदेव सर्वप्रयोगपरीक्षायामर्थाभावादितिकर्तव्यतावाक्यप्रत्ययापि न कर्तव्यतागतिः।

केदमभिहितं 'जुहुयात्' इति? हवनापूर्वकरणार्थतयोः प्रधानाग्निहोत्रश्रुति-

---

त्कार्यवादोक्तावपि नैवास्य वाक्यता प्राग्यनुबन्धप्रापितेतिकर्तव्यताकर्तव्यै[1]तार्थस्याग्निहोत्रहवनके[2]रणार्थस्य वाक्यस्य वाक्यता। कुतः? **इतिकर्तव्यतावाक्यासिद्धौ तदसिद्धेस्तत्सिद्धौ तत्सिद्धेः,** तत् पुनरितिकर्तव्यतावाक्यम्, तदवाक्यत्वे तद्बलप्रतिष्ठाप्यकर्तव्यतावाक्यमप्यवाक्यम्। तत्र तावत् 'घृतेन जुहुयात्' इत्येतदितिकर्तव्यतावाक्यमवाक्यम्, **अ[3]ननुवादत्वात्, उन्मत्तप्रलापवत्।** यथा कामोन्मत्तस्य 'पक्षी' इति द[4]र्शने भ्रान्तेः 'हा प्रिये! हा प्रिये!' इत्यादिर्विप्रलापो न वाक्यं प्रसिद्धार्थानुवादाभावादेवं 'घृतेन जुहुयात्' इत्यस्यापि तदभावात् तत्कर्तव्यतावाक्याभावः। अ[5]ननुवादत्वं चा[6]स्य घृतसम्प्रदानकहवनविधानाद् विधिवाक्यस्य, विध्यनुवादयोश्चान्योन्यनिराकाङ्क्षयोरन्यतराभावः। स्यान्मतम्—विधिमात्रस्य 'द्वा[7]रं द्वारम्' इति अनुवादमात्रस्य 'उद्घाट्यताम्' इति दृष्टत्वाद् ना[8]पेक्षेतेति चेत्, न, तत्रापि बहिरङ्गस्थितप्रकरणादिभ्यस्तत्सिद्धेरपेक्षैव। तस्मादिह '[9]इतिकर्तव्यतैव कर्तव्यता' इति वचनात् कर्तव्यतावाक्यस्यैवा[10]सिद्धेः 'घृतेन जुहुयात्' इत्यस्य [11]प्रसिद्धार्थस्यानुवादत्वाभावादवाक्यत्वम्, तदवाक्यत्वात् तद्बलप्रतिष्ठाप्याग्निहोत्रहवनकर्तव्यताविधिवाक्यासिद्धिः, अत आह—**'जुहुयात्' इत्यस्य उक्तवदेवे**त्यादि, 'जुहुयात्, अग्निहोत्रं कुर्यात्, हवनं कु[12]र्यात्, अग्निहोत्रं हवनं कुर्यात्, प्राग्यनुबन्धप्रापितघृतादीतिकर्तव्यतात्मककर्तव्यताग्निहोत्रं कुर्यात्, अग्निहोत्रमपूर्वं कुर्यात्' इत्युक्तविकल्पेषु प्रागभिहितदोषसम्बन्धादेतैः **सर्वैः** प्रकारैः **प्रयोगस्य** १०७-२ **परीक्षायां** निर्मूलार्थत्वमविषयत्वात्, अविषयत्वमपूर्वार्थत्वात्, अपूर्वार्थत्वमज्ञातार्थत्वात्, अज्ञातार्थत्वं [13]प्रमाणान्तरेण वाक्यान्तरेण वा प्रागविहितत्वादिति। तमुपसंहृत्याह—**इतिकर्तव्यतावाक्यप्रत्ययापि न कर्तव्यता[14]गतिः।**

केदमभिहितं 'जुहुयात्' इति? यदुच्यते त्वया 'यज्जुहुयात् तद् घृतादिना' इति हवनमनूद्य घृतादिना तद्विधानं क्रियेत यथा 'घटं कुर्यात्' इति प्रसिद्धं घटमनूद्य तत्करणविधानम्, तत्तु न प्रसिद्धम्। कथं न प्रसिद्धम्? 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यत्र हवनस्योक्तत्वादिहानुवदनं ननूपपन्नमिति चेत्, न, तस्यैव [15]**सर्वप्रयोगपरीक्षायामर्थाभावात्।** तत्र तावद् **हवनापूर्वकरणार्थतयोः प्रधानाग्निहोत्रश्रुतित्यागा-**

---

१ °**व्यत्वार्थ**° प्र०। दृश्यतां पृ० १४६ पं० ११॥ २ °**कारणा**° प्र०॥ ३ **अनुवादत्वात्** य०॥ ४ **दर्शनभ्रान्तेर्हाप्रिये इत्यादिप्रलापो** य०॥ ५ **अनुवादत्वं** य०॥ ६ **चाद्य**(चोद्य? चाग्नौ? चाज्य?)**घृत**° भा० पा० डे० लीं०। **चावाद्यघृत**° वि०। **चयद्यघृत**° रं० हीं०॥ ७ **द्वारमिति** भा०॥ ८ **नेपेक्षेतेति** य०। अत्र 'नापेक्षेति' इत्यपि पाठः स्यात्॥ ९ दृश्यतां पृ० १४२ पं० १॥ १० °**वासिद्धे** पा० डे० लीं० वि० भा०। °**वासिद्धो** रं० हीं०॥ ११ प्रसिद्धार्थानुवादत्वाभावादिति भावः॥ १२ **कुर्याच्च** य०। **कुर्या** भा०॥ १३ **प्रमाणान्तरेण वा प्रागवि**° य०॥ १४ °**तामतिः** भा०॥ १५ दृश्यतां पं० ३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यागाद्यापत्तेरग्निहोत्रोभयकरणार्थतयोरपि जुहोतित्यागाद्यापत्तेः ।

शैलीप्रसिद्धौ छिदिवदहवनात्मकाग्निहोत्रत्वादनग्निहोत्रत्वप्रसङ्गात् प्रधान-स्वर्गकामानभिसम्बद्धजुहोत्यर्थानुवादेन किं प्रयोजनम् ?

द्याप[1]त्तेः '[2]अर्थाभावात्' [3]इत्याद्यभिसम्बध्यते, क्रमोल्लङ्घनेन विकल्पद्वयोपन्यासस्तुल्योत्तरत्वात्, 'हवनं कुर्यात्, अग्निहोत्राख्यमपूर्वं कुर्यात्' इत्येतयोरर्थविकल्पयोः प्रधानस्याग्निहोत्रशब्दस्य तदर्थस्य च त्याग आपद्यते । 'घृतेन जुहुयात्' इत्यादिषु अनुवादसफलीक्रियार्थम् 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यत्र जुहुयाच्छब्दस्य स्वप्रकृत्यर्थस्य सार्थकत्वेऽग्निहोत्रशब्दः पौनरुक्त्यान्निरर्थक आपद्यते । अथ प्रधानत्वादग्निहोत्रस्य मा भूदग्निहोत्रशब्दो [4]*निरर्थक इति जुहुयाच्छब्दो* [5]निरर्थकं इष्यते ततो जुहुयाच्छ[6]ब्दनैरर्थक्यात् प्रयोगो नोपपद्यते विहितार्था-

१०८-१ भावेऽनुवाद[7]त्वाभावात् । प्रधानत्वं चाग्निहोत्रस्य साक्षात् स्वर्गादिकाम्यपुरुषार्थसाधनत्वेन विधानात्, जुहोति-प्राधान्ये च तदनुपपत्तिः । अत्र च '[8]न तु घटवदग्निहोत्रशब्दः काञ्चिदपि कर्तव्यतां ब्रवीति' [9]इत्यादिः सर्वो ग्रन्थः पूर्वोत्तरपक्षप्रसङ्गतो योज्यो यावत् '[10]नापि घटादिकर्तव्यतायामिव काचित् क्रिया प्रसिद्धा ययाग्निहोत्राख्यता हवनस्यातिदिश्येत हवनाख्यता वाग्निहोत्रस्य' इति 'हवनं कुर्यात्' इत्ययमुक्तो[11]त्तरोऽर्थ-विकल्पः । अपूर्वार्थपक्षेऽपि अग्निहोत्रशब्दस्य जुहुयाच्छब्द[12]स्य चैकार्थत्वात् प्रधानापूर्वा[13]ख्याग्निहोत्रशब्दस्य त्यागस्तथैव । विशेषस्तु अथ 'अग्निहोत्रम्' इत्यपूर्वविशेषाभिधानार्थतैव [14]कल्प्यते तथा सति अपूर्वाभिधानेन कोऽर्थ इत्यादि यावत् '[15]तदनुष्ठातव्यम्' इति ग्रन्थश्च योज्यः । आदिग्रहणात् पुरुषप्रमाणकता शब्द-[16]प्रामाण्यत्याग इत्यादिदोषः । ततः [17]प्रधानाग्निहोत्रश्रुतित्यागाद्यापत्तेरर्थाभावात् केदमभिहितमित्यादि ।

अग्निहोत्रोभयकरणार्थतयोरपि जुहोतित्यागाद्यापत्तेः, 'अग्निहोत्रं कुर्यात्, [18]अग्निहोत्रं हवनं कुर्यात्' इत्येतयोरपि विकल्पयोस्तुल्योत्तरत्वात्, उभयार्थविकल्पस्य 'अग्निहोत्रं कुर्यात्, हवनं कुर्यात्' इत्येतयोः पक्षयोरुक्तदोषदुष्टत्वात् समानोत्तरत्वा[19]दिति । अत्रापि '[20]अथ पुनरेवमनिर्वहति' इत्यादिग्रन्थो योज्यः सप्रपञ्चो यावत् त्वदभिप्रायव[21]स्तु हवनानुवादविशिष्टाग्निहोत्राभ्युपगमेऽपि चाग्निहोत्रस्यात्मादिवस्तु[22]तत्त्व-वदप्रसिद्धस्वरूपत्वात् [23]करणासिद्धिः ।

शैलीप्रसिद्धौ छिदिवदित्यादि, छिदाविव च्छिदिवत्, यथा छिदौ दृष्टलौकिकयूपमात्रफलत्वं नादृष्टालौकिकहवनात्मकं[24]ाग्निहोत्रत्वं तथा, 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यस्यापि तच्छैल्यैवाग्निहोत्रमहवनात्मकम्,

---

१ °पत्तिः य० ॥ २ दृश्यतां पृ० १५१ पं० ३ ॥ ३ इत्ययद्यभि° भा० । इत्ययद्यदभि° य० ॥ ४ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ५ °क उच्यते वि० । °कथ्यते पा० । °क ते डे० ली° रं०ही० ॥ ६ °च्छब्दे पा० रं० ही० वि० ॥ ७ °वादम्बाभावात् भा० । °वादेवाभावात् य० ॥ ८ दृश्यतां पृ० १२२ पं० ३ ॥ ९ इत्यादि य० ॥ १० दृश्यतां पृ० १२४ पं० ३ ॥ ११ °त्तरार्थो य० ॥ १२ °ब्दस्यैकार्थत्वात् य० ॥ १३ °वाच्याग्नि° प्र० ॥ १४ दृश्यतां पृ० १४० पं० ४ ॥ १५ दृश्यतां पृ० १४१ पं० ४ ॥ १६ °प्रामाणत्या° पा० डे० लीं० । °प्रामाणकत्या° रं० । °प्रमाणकत्या° ही० वि० ॥ १७ दृश्यतां पृ० १५१ पं० ३, ५ ॥ १८ अग्निहोत्र य० ॥ १९ °त्वात्दिति पा० डे० लीं० रं० ही० ॥ २० दृश्यतां पृ० १२६ पं० १ ॥ २१ दृश्यतां पृ० १२६ पं० ३ ॥ २२ °स्तुस्वतत्व° भा० ॥ २३ कार° प्र० ॥ २४ °ग्निहोत्रत्वं तथाग्निहोत्रत्वं तथा भा० वि० । °ग्निहोत्रत्वं प्रतथाग्निहोत्रत्वं तथा पा० डे० लीं० रं० ही० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्तिप्रतिपाद्यप्रसिद्धावग्निहोत्रे जुहोतिप्रयोगो दानादिप्रसिद्ध्युपरोधेन दाहन एव तावद्विधेय इति तथाऽप्रसिद्धेरविधायक एव, कुतस्तदनुवादः?

तथाभूतार्थाभ्युपगमे च प्राप्तेर्व्युदासो जुहोतिप्रयोगादप्रमत्तप्रयुक्तत्वात्, इषे त्वादिवदक्षरविद्यावत्।

अहवनात्मकाग्निहोत्रत्वा[१]च्चानग्निहोत्रत्वं प्रसक्तं छिदिनिर्वर्त्ययूपवत्। अत्र च '[२]एतदपि न वैषम्यात्' इत्यादिग्रन्थो योज्यो यावत् '[३]**शैलीप्रामाण्ये चास्य शैल्या यूपक्रियाऽयाथार्थ्यात्**' इति। ततश्चानग्नि**होत्रत्वप्रसङ्गाद्** यदग्नये होत्रं तदग्निहोत्रमिति तावन्मात्रार्थ[४]त्वात् प्रधानस्य स्वर्गसाधनताभिमतस्यानग्निहोत्रत्वाद् 'घृतेन जुहुयात्' इत्यनेनानुवादेन **प्रधानस्वर्गकामानभिसम्बद्धजुहोत्यर्थानुवादेन किं प्रयोजनम्?** [५]इतिकर्तव्यताकर्तव्यतया प्रधानेन स्वर्गकामेन विना किं तया? यथोक्तम्—

> **कातर[६]सतेण सूरं सूरसहस्सेण पंडितं भरसु।**
> **अलसं जेण व तेण व णवर कतग्घं परिहराहि॥ [ ]**

इति प्रधानार्थमप्रधानत्यागदर्शनात्।

प्राप्तिप्रतिपाद्यप्रसिद्धावग्निहोत्रे, प्राप्त्या प्रतिपाद्या प्रसिद्धिरस्य तदिदं प्राप्तिप्रतिपाद्यप्रसिद्धि, तस्मिन् प्राप्तिप्रतिपाद्यप्रसिद्धौ, क्व? अग्निहोत्रे, '[७]**यदग्नये च प्रजापतये च सायं जुहोति**' इत्यनया प्राप्त्या प्रतिपाद्यप्रसिद्धौ तु [८]तस्मिन् **जुहोतिप्रयोगो दानादिप्रसिद्ध्युपरोधेन दाहन एव तावद् विधेयः,** तावच्छब्दः क्रमार्थे, 'जुहोति' इत्ययं धातुर्लोकप्रसिद्ध[९]दानादनार्थो न भवति, किं तर्हि? 'दहनेनाग्निना दाहयेद् घृतादि द्रव्यम्' इत्युक्तं भवति 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्येतदिति परिभाव्य पश्चात् प्रसिद्धे [१०]दाहने 'घृतेन जुहुयात्, घृतं दाहये[११]दग्निम्, अग्निना घृतं दाहयेत्, अग्निर्घृतं दहेत्' इति १०९-१ ज्ञातार्थमनूद्य इतिकर्तव्यताविधिर्योक्ष्यते लोकप्रसिद्धिवैपरीत्येन व्युत्[१२]पादनात्, नान्यथा। अन्यथा तु लोके दाहनादिष्वदृष्टत्वात् कथं [१३]दाहनमनूद्य घृतादीतिकर्तव्यता विधीयते? **[इति] तथाऽप्रसिद्धेरविधायक एव, कुतस्तदनुवादः? इतिशब्दो** हेत्वर्थे, इत्येतस्मात् कारणात् तथा तेन प्रकारेण [१३]दाहनार्थत्वेनाप्रसिद्धेः 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यत्रैव तावज्जुहुयाच्छब्दो दाहनस्याविधायकः, [१४]दूरत एवानुवादः। अत्रैव '[१५]**ननु सेवादिवत् कर्तव्यताप्रतिपत्तिरितिकर्तव्यताभ्यः**' इत्युपक्रम्य ग्रन्थो योज्यो यावत् '[१६]**वेदवादासाधुता वा तद्वत्**' इति। एवं तावज्जुहुयाच्छब्दस्य दाहनार्थत्वाभावादयु[१७]क्तत्वं होत्रशब्दस्य वा।

तथाभूतार्थाभ्युपगमे [१८]**चेति,** अभ्युपेत्यापि दाहनात्मकमेव दानमिति दोषं ब्रूमः, कोऽसौ? **प्राप्तेर्व्युदासः,** येयं प्राप्तिः '**यदग्नये च प्रजापतये च सायं जुहोति**' इति यया प्रापितमग्नौ प्रक्षेपो दानमिति तस्याः प्राप्तेर्व्युदासः, कस्मात्? 'घृतेन जुहुयात्' इत्यत्र **जुहोतिप्रयोगात्,** अन्यथा प्राप्तौ

---

१ °**चाग्निहो**° य० ॥ २ दृश्यतां पृ० १३७ पं० १ ॥ ३ दृश्यतां पृ० १३८ पं० ८ ॥ ४ °**त्वाप्रधानस्य स्वर्गासाध**° प्र० ॥ ५ **इतिकर्तव्यतया** भा० ॥ ६ °**सतेन** य० ॥ ७ दृश्यतां पृ० १४२ टि० ८ ॥ ८ **तस्मिन्न** प्र० ॥ ९ "हु दानादनयोः" इति **पाणिनीयधातुपाठे** १०८३ ॥ १० **दहने** प्र० ॥ ११ °**दग्निं।** भा०। °**दाग्निं**(°दग्नौ?) य० ॥ १२ °**त्पादनान्यथा** य०। °**त्पादा**(°त्पादने?) **नान्यथा** भा० ॥ १३ **दह**° प्र० ॥ १४ **द्रुत एवा**° पा०। **हृत एवा**° डे० लीं०। **हृत एवा**° वि० रं० ही० ॥ १५ दृश्यतां पृ० १३९ पं० १ ॥ १६ दृश्यतां पृ० १४० पं० २ ॥ १७ °**युक्तक्तं** भा०। °**युक्तं** य० ॥ १८ **वेति** डे० लीं० रं० ही० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

एवं तर्हि प्राप्तिवाक्यवृत्तजुहोत्यनुवाद इति चेत्, न, तत्र विधिलिङ्विषयस्यावृत्तेरज्ञातत्वात् ।

व्यत्ययादस्य तद्विषयतेति चेत्, न, अज्ञातत्वादेवाननुवादत्वात् कोश-

---

श्रुतेन जुहोतिनोक्तत्वात् तदर्थस्य गतत्वादप्रयोगार्हत्वात् पौनरुक्त्यमस्य स्यात्, प्रयुक्तस्तु अयम्, अतो ज्ञायते प्राप्तिश्रुतजुहोतिरनर्थक इति । तस्मात् प्राप्तेर्व्युदासो जुहोतिप्रयोगात् । [1]यदा वायं 'घृतेन जुहुयात्' इति प्रयुज्यते तदा ह्ययमगतार्थ इति विज्ञायेत यद्यन्येन शब्देनास्यार्थोऽनभिहितः स्यात् । किं
१०९-२ कारणम् ? **अप्रमत्तप्रयुक्तत्वात्**, अप्रमत्तेन हि वेदेन प्रमत्तात् पुरुषाद्विलक्षणेन रागाविद्यादियोगरहितेन प्रयुक्तोऽयं त्वन्मतेन, लौकिकेनैव वा पुरुषेणाप्रमत्तेन विदुषा प्रयुक्तत्वादस्मन्मतेन, मा भूत् सर्वपुरुषाप्रामाण्ये शब्दानां च पुरुषाधीनोपलब्धित्वादप्रामाण्यमेवेति । अयं हि 'घृतेन जुहुयात्' इत्यत्र जुहोतिशब्दोऽप्रमत्तप्र[2]युक्तः, न येन केनचिद् बालगोपालादिप्रयुक्तकल्पेन तुल्यः काकरुतादि[3]कल्पेन वा तुल्यः । क इव ? **इषे त्वादिवत्**, यथा इषे त्वोर्जे त्वा [4]वायवः स्थोपायवः स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे [यजुर्वेद० १।१] इत्यादिशब्दा [5]अगतार्था इति विज्ञायन्ते तथायं 'घृतेन जुहुयात्' इति वाक्ये [6]जुहोतिरप्रमत्तप्रयुक्तत्वादगतार्थ इति विज्ञायेत, नान्यथा । अथवा **अक्षरविद्यावत्**, यथा द्वे विद्ये वेदितव्ये–परा चापरा च । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते यत् [7]तदद्रश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम् । नित्यं विभुं सर्वगतं पुरुषं पुराणं विश्वात्मानं तदव्ययं यद् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः [मुण्डको० १।१] इतीयमक्षरविद्या क्वचिदगतार्थेति विज्ञायतेऽप्रमत्तप्रयुक्तत्वात् तथाऽयमपि जुहोतिप्रयोगः, नान्यथा । तद्यदि प्राप्तिप्रापितदानार्थः 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यत्र होत्रशब्दो जुहोतिशब्दो वा ततोऽयं 'घृतेन जुहुयात्' इति पुनर्जुहोतिर्न प्रयुज्येत, प्रयुक्तस्तु, तस्मात् प्राप्तिर्व्युदस्तेति ।

११०-१ **एवं तर्हि प्राप्तिवाक्यवृत्तजुहोत्यनुवाद इति चेत्** । स्यान्मतम्–प्राप्तिवाक्ये 'अग्नये जुहोति' इति श्रुतस्याग्निसम्प्रदान[8]र्कस्य दानार्थस्य जुहोतेरनुवादोऽयं 'घृतेन जुहुयात्' इति जुहोतिरिति । एतच्च **न, तत्र विधिलिङ्विषयस्यावृत्तेरज्ञातत्वात्** । नैवमप्युपपद्यते, तत्र प्राप्तिवाक्ये 'जुहोति' [9]इत्यस्याव्यापार्यमाणकर्तृसाधनदानार्थजुहोतिधातुप्रयोगस्य विधिलिङो विषये [10]व्यापारणार्थे वृत्त्यभावात् अस्य च जुहुयाच्छब्दस्य विधिलिङ्विषयस्य नियोगार्थस्य नियोगरहिते जुहोतिशब्दार्थे तत्रावृत्तेरयं विधानार्थो न विदित एव, तस्मादज्ञातत्वात् प्राप्तिवाक्यवृत्तजुहोत्यर्थानुवादायोग्यता, [11]प्राप्तमनूद्यतेऽप्राप्तं विधीयते [ ] इति वचनात् । तस्मादनुवादायोग्यत्वादयुक्तमुक्तम्–प्राप्तिवाक्यवृत्तजुहोत्यनुवाद इति ।

[12]**व्यत्ययादस्य तद्विषयतेति चेत्** । स्यान्मतम्–लक्षणशास्त्रेऽभिहितं व्यत्ययो बहुलम् [पा० ३।१।८५] ।

---

१ **यदायं** भा० ॥ २ °**युक्तैन येन** भा० । °**युक्तेन येन** य० ॥ ३ °**कल्पेन तुल्यः** प्र० ॥ ४ **वायवस्थोपायवस्थ** प्र० ॥ ५ **अवगतार्था** प्र० ॥ ६ **जुहोतिप्रमत्त**° य० ॥ ७ "तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्" इति **मु**ण्डकोपनिषदि पाठः ॥ ८ °**कस्याद्दानार्थस्याजुहोतिरनु**° प्र० ॥ ९ **इत्यथ्याव्यापा**° प्र० ॥ १० **व्यापारेणार्थैं** भा० । **व्यापारेणार्थे** य० ॥ ११ दृश्यतां पृ० १२१ पं० २ ॥ १२ **विद्य**(विधिव्य?)**त्ययादस्य** भा० । **विध्यत्ययादस्य** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पानप्रत्याय्यार्थत्वाच्च, हवनाच्च भावनमेवमनवगमितमेवाभिप्रेतस्य स्यात् ।

प्राप्तिविहितस्वरूपसिद्धेरग्निहोत्रस्य स्वर्गकामकर्मत्वाभिधानादवगमितकामानुरूपकर्मोक्तेस्तद्विधक्रियाविशेषगतेः क्रियाप्राप्यत्वाच्च कामस्य अन्धलकावगमित-

---

सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च ।
व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां तदपि च सिध्यति बाहुलकेन ॥ [पा० म० भा० ३।१।८५]

इति । तस्माज्जुहोत्यर्थे जुहुयाच्छब्दप्रयोगात् प्राप्तमेवानूद्यते तद्विषयत्वादेवास्यापीति । एतदपि **न, अज्ञातत्वादेवाननुवादत्वात्**, सव्यापारणार्थशब्ददर्शनान्न निर्व्यापारणार्थप्रतिपत्तिर्युक्ता व्यवस्थालोपप्रसङ्गात् । तस्मादज्ञातार्थत्वादननुवादतैव, अननुवादत्वान्नैतदपि युक्तमिति । किञ्चान्यत्, **कोशपानप्रत्याय्यार्थत्वाच्च ।** इदं त्वया सन्निहितदेवताकोशपानेन प्रत्याय्यम्, विशेषलिङ्गाभावात् कुत एवं ज्ञायते जुहोत्यर्थे जुहुयाच्छब्दः प्रयुक्तो न स्वार्थ एव, जुहोतिर्वा जुहुयादर्थे प्रयुक्त इति ? तस्मादविदितार्थत्वाद् विधित्वम्, ११०-२ विधित्वाच्च नानुवादः, अननुवादत्वाच्चैवमपि न युक्तम् । अभ्युपेत्यापि जुहोत्यर्थे जुहुयाच्छब्दस्य वृत्तिं दोषं ब्रूमः – **हवनाच्च भावनमेवमनवगमितमेवाभिप्रेतस्य स्यात् ।** विध्यर्थाभावात् पुरुषो हवनकर्मणि अनियोजित एव, ततो भावनं स्वर्गाख्यस्य विशिष्टसुखलक्षणस्य देशविशेषस्य वा विशिष्टसुखसाधनभूतस्याभिप्रेतस्यार्थस्य नाववोधकं स्याद् यदर्थमभिवृत्तमिदं वाक्यम्, स्वर्गाख्यफलसाधनेऽग्निहोत्रकर्मणि पुरुषं नियोक्ष्यामीति तदर्थं हि वाक्यम् 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्येतत् प्रवृत्तम्, एतेनैव कर्मणा स्वर्गो भाव्यते, तस्मात् 'इदं कुरु' इति तदर्थज्ञापनाभावे किमनेन वाक्येन 'जुहोति जुहोति' इत्युक्तेन ?

अत्राह – प्रागभिहिताग्निहोत्रकरणवाक्यार्थविकल्पगतदोषपरिहारार्थमियमर्थव्याख्याश्रीयते **प्राप्तिविहितस्वरूपसिद्धेरग्निहोत्रस्ये**त्यादि । इदं तावद् व्यवस्थितं **यदग्नये च प्रजापतये च सायं जुहोति** इत्यनया प्राप्त्या विहितमग्निहोत्रस्य स्वरूपं सिद्धम्, अतः प्राप्तिविहितस्वरूपसिद्धेरग्निहोत्रस्य कर्मत्वेन च श्रवणात्, कस्य ? कर्तुः **स्वर्गकामस्य कर्मत्वाभिधानात् ।** ततः किमिति चेत्, स्वर्गशब्दाभिहितविशिष्टकर्मविषयकामाभिधायिशब्दश्रवणात् कर्मापि तदग्निहोत्राख्यं तदनुरूपं विशिष्टमेवेत्युक्तं भवति, अतः **स्वर्गकामकर्मत्वाभिधानादवगमितकामानुरूपकर्मोक्तेः** स्वर्गकामशब्दावबोधितकामानुरूपस्यैव कर्मण १११-१ उक्तत्वादेव **तद्विधक्रियाविशेषगतेः,** विशिष्टफलविषयकामः पुरुषः कर्ता, कर्मापि तदनुरूपत्वाद् विशिष्टमेव, तद्विधैव क्रियापि, अप्रसिद्धफलविषयकामसम्बन्धि कर्माप्रसिद्धं यथा तथा तदनुष्ठानव्यापारविशेषोऽपि विशिष्टोऽप्रसिद्ध एवेति गम्यते । किं कारणम् ? तत एव शब्दात् तस्य क्रियाविशेषस्य गतेर्वाक्यान्तराभावात् तद्विशेषगतिः, अतः क्रियाविशेषगतेः **क्रियाप्राप्यत्वाच्च कामस्य,** न ह्यन्यः कश्चि-

---

१ °**दर्शनान** प्र० । अत्र °**दर्शने न** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ २ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः °**र्थप्रतिपत्तिर्युक्ता** इत्यत आरभ्य °**प्रत्याय्या**° इत्यन्तः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ३ अत्र 'एवं ज्ञायते' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ४ **वा** प्रतिषु नास्ति ॥ ५ अत्र °**मीत्येतदर्थं हि** इति पाठः समीचीनो भाति ॥ ६ °**त्तमंतेनैव** पा० । °**त्तमतेनैव** डे० लीं० वि० २० ही० ॥ ७ दृश्यतां पृ० १४२ पं० १२ ॥ ८ °**कर्मोक्तः** प्र० ॥ ९ **तद्विध्य**° प्र० ॥ १० °**संबद्धि** प्र० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

कामरटनवत् 'जुहुयात्' इत्यर्थापन्नार्थानुवाद इतीयं व्याख्या न्याय्या आदिवाक्ये प्रधानश्रुत्यत्यागगुणकृदपीति चेत्, तन्न, अर्थापन्नस्वशब्दार्थपुनरुक्तत्वादनुवादा-

---

दुपायोऽस्ति कामप्राप्तौ क्रियातः क्रियया शब्देन वा तदर्थावगमनात्, यथा अन्धलकस्य वीथीमध्यपतितस्य हस्तं प्रसार्य कपर्दिकां कपर्दिकां देहि देहि भो इति वा[1] रारट्यमानस्य कामोऽवगमितः क्रियया शब्देन वा प्रकरणविशेषसम्बन्धात्, सा च क्रिया नोपदेशमन्तरेण सिध्यति, **अन्धलकावगमितकामरटनवत्** 'अग्निहोत्रं स्वर्गकामः' इत्युक्ते 'कुर्यात्' इत्यर्थादापन्नो विध्यर्थोऽवगमितकामत्वात्[2], यथा तस्या-न्धलकस्य याच्यार्थः । स च विशेषसम्बन्धो वाक्यन्यायेन भवति, यथा सब्रह्मचारिणा सहाधीत इति समानेन ब्रह्मचारिणा[3] सहाधीते, केन सामान्येन समानेन? प्रकृतविशेषणत्वात् प्रकृताध्ययनक्रियेणेति गम्यते एवमिदमपि वाक्यम्, अनेन वाक्यन्यायेन प्रकृतस्वर्गकामाग्निहोत्रकर्मानुरूपविध्यर्थक्रियोपदेशताऽ-स्येति गम्यते, अतो हेतुहेतुमद्भावप्रतिपादितं **प्राप्तिविहितस्वरूपसिद्धेरग्निहोत्रस्ये**त्यादि यावज्**जुहुया-**
१११-२ **दित्यर्थापन्नार्थानुवादः**[4] 'अग्निहोत्रं स्वर्गकामः' इत्येतावता कुर्याद्वाक्यशेषेण वाक्येन गतार्थत्वात् ।

तदेवं 'जुहुयात्' इत्यनुवादो न [5]विधि**रितीयं व्याख्या न्याय्या**, व्यक्तार्थोपपत्तित्वात् प्राग-भिहितव्याख्याविकल्पसमुत्थदोषाभावाच्च न्याय्येति मन्तव्या, यस्मा**दादिवाक्ये प्रधानश्रुत्यत्यागगुण-कृदपीति**, यदभिहितं प्राक् 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यस्य वाक्यस्य 'अग्निहोत्रं कुर्यात्' इत्यर्थव्याख्या-विकल्पे विध्यर्थवाचित्वाभिमतश्रुतप्रधान[6]जुहोत्यर्थत्यागस्ततः पुरुषप्रमाणकता, तदत्यागे [7]वाक्यभेदापत्तिः [8]पौनरुक्त्यादिदोषजातम्, **तद**प्यत्र नास्ति जुहुयाच्छब्दस्यानुवादत्वादेव, 'हवनं कुर्यात्' इत्यत्राप्यग्निहोत्र-[9]प्रधानत्याग इत्यादिदोषजातं तदपि नास्ति, तस्मादियं व्याख्या आदिवाक्ये प्रधानश्रुत्यत्यागगुणकृदपीति, तस्य जुहोतेरनुवादत्वेन पौनरुक्त्य-त्याग-भेदाद्यभावात् । **चे**दित्याशङ्कायाम्, एवं चेन्मन्यस इत्येवं परं [10]पृष्ट्वाचार्य उत्तरमाह—**तन्न, अर्थापन्ने**त्यादि । एषापि व्याख्या नोपपद्यते, किं कारणम्? **पुनरुक्तत्वात्** प्रयोगायोग्यत्वम्, ततश्चानुवादत्वासम्भवः, तस्मा**दनुवादासम्भवात्** तन्नेत्यभिसम्बन्धः । इदं च पुनरुक्त-मर्थापन्न[11]स्वशब्दार्थं पुनर्वचनलक्षणे पुनरुक्ते निग्रहस्थानविकल्पे । द्विविधं पुनरुक्तं निग्रहस्थानम्, तद्यथा—
११२-१ **शब्दार्थयोः पुनर्वचनं पुनरुक्तम्, अर्थादापन्नस्य स्वशब्देन पुनर्वचनं[12] च** [न्या० सू० ५। २।१४-१५] इति । तस्मादिदमर्थादापन्नस्य पुनर्वचनम्, विशेषविधानमन्तरेणार्थापन्नार्थस्य स्वशब्देनोच्चारणात् । 'घृतेन जुहुयात्' इत्यत्र न स्यात् पुनरुक्तम्, घृतविशिष्टहवनविधानात् । इह तु स्वर्गकामानुरूपकर्मानुरूपक्रियाविशेषविध्यर्थ-ताया उपदेशवृत्तेरेव गतार्थतयाभ्युपगतत्वाद् घृतविशिष्टहवनविधानजुहोत्यनुवादतायाश्च मूलवाक्यगतजुहोत्य-

---

१ **चा** प्र० ॥ २ °**त्वातस्यान्धलकस्य याचार्थः** पा० विना । °**त्वात्स्यान्धलकस्य याचार्थः** पा० ॥ ३ °**णा अहाधीते** भा० । °**णाऽधीते** य० ॥ ४ °**न्नार्थोनुवादो** प्र० ॥ ५ **विधे**° प्र० ॥ ६ दृश्यतां पृ० १३० पं० २ ॥ ७ दृश्यतां पृ० १३० पं० ३ ॥ ८ दृश्यतां पृ० १३१ पं० ५ ॥ ९ दृश्यतां पृ० १५१ पं० १ ॥ १० **दृष्ट्वा**° प्र० ॥ ११ °**न्नस्वशब्दार्थपुन**° वि० रं० ही० ॥ १२ °**चनं वेति** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्भवात् साक्षाच्छ्रुतविधिजुहुयात्त्यागेन चार्थापन्नार्थाश्रुतानूदितजुहुयात्कल्पनाद् विधीयमानवाक्यार्थविषयानुवदनाच्च वाक्यभेदपुनरुक्तदोषाङ्गीकरणादनुवादानुवादस्य च प्राप्तविशेषणपरार्थविषयार्थत्वाद्विधिविषयविप्रकृष्टीभूतार्थत्वात् । इति

र्थसिद्धेरननुवादतैव । किञ्चान्यत्, जघन्यतरा चेयं व्याख्या । कस्मात्? **साक्षाच्छ्रुत[1]विधिजुहुयात्त्यागेन चार्थापन्नार्थाश्रुतानूदितजुहुयात्[2]कल्पनात्** स एव पुरुषप्रमाणकत्वदोषः शब्दाप्रामाण्यदोषश्च । 'जुहुयात्' इत्यस्य क्रियाशब्दस्य विध्यर्थस्य साक्षाच्छ्रुतस्य प्रत्यक्षस्य त्यागं कृत्वा **अर्थापन्नार्थस्य** अर्थादापन्नोऽर्थोऽस्येत्यर्थापन्नार्थः, कोऽसौ? स एव जुहुयाच्छब्दोऽनुवादाभिमतः, तस्य **अश्रुत**स्यार्थापन्नार्थस्य**अनूदितविकल्पना**दनुवादकल्पनात् 'तत्र' इति वर्तते । किञ्चान्यत्, **विधीयमानवाक्यार्थविषयानुवदनाच्च,** विधीयमानो वाक्यार्थो विधीयमानवाक्यार्थः, स विषयोऽस्येति विधीयमानवाक्यार्थविषयः स एव जुहुयाच्छब्दः, तस्यैवानुवदनं स[3] एवानुवादः, तस्माद् विधीयमानवाक्यार्थविषयानुवदनाच्च किं संवृत्तम्? **वाक्यभेदस्य पुनरुक्तस्य चाङ्गीकरणम्**, न हीदं[4]मेव वाक्यं स्वर्गकामाभिसम्बद्धाग्निहोत्रविधानं तदनुवदनं च कर्तुं शक्नोति स्वर्गकामकर्तृकस्याग्निहोत्रकर्मणो वाक्यान्तरेणाप्रापितत्वात् । यथा 'अयं देवदत्तः' ११२-२ इत्यत्र न देवदत्त एवानूद्यते विधीयते च, प्रत्यक्षसिद्धस्तु इदमो विषयोऽनूद्यते, एवमिह प्रसिद्धार्थोऽपेक्ष्यः, स तु नास्ति। तस्मादुभयार्थकल्पनादेकस्य वा[5]क्यस्य तदसम्भवाच्च वाक्यभेददोषः। पौनरुक्त्यं तु विशेषविधानाभावात्, विशेषविध्यर्थो ह्यनुवादो युक्तः, यथा 'अयं देवदत्तः' इति अ[6]यंशब्दप्रत्यक्षप्रसिद्धार्थमनूद्य देवदत्तविधानम्, न तु तथात्र कश्चिद् विशेषो विधीयते, तस्मादविशेषाभिधानात् पौनरुक्त्यम् । तस्मात् 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यस्य वाक्यस्य प्रथमत्वादेकवाक्यगतत्वाच्चानयोर्विध्यनुवादयोरर्थापन्नाग्निहोत्रकर्मविधित्वे जुहोतेरनुवा[7]दत्वे [वा] **वाक्यभेदपुनरुक्तदोषाङ्गीकरणाद्** न इत्येवाभिसम्बध्यते । एवं तावत् 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यत्र जुहुयाच्छब्दो नानुवादो घटते, न च 'अग्निहोत्रं स्वर्गकामः' इति विधिः । किञ्चान्यत्, **अनुवादानुवादस्य च प्राप्तविशेषणपरार्थविषयार्थत्वात्** । अनुवादत्वं हि प्राप्तविषयार्थम्, यथा 'अयं देवदत्तः' इति 'अयं'शब्दार्थः [8]प्राप्तार्थोऽप्राप्तो देवदत्तार्थोऽधुना प्रापणीयः । एवं प्रसिद्ध्यप्रसिद्धिभ्यां विशेषणविशेष्यौ, तावेवोपकारकोपकार्यत्वाभ्यां परार्थस्वार्थौ । न तथा 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यत्र प्राप्तविशेषणपरार्थविषयत्वमग्नि[9]होत्रंजुहुयाच्छब्दयोः, अतोऽप्राप्ताविशेषणापरा[10]र्थत्वात् साम्यादनुवादत्वाभावः । अभ्युपगम्यापि प्राप्तादि दोष उच्यते – यत् पश्चादुच्यते कर्तव्यताप्रसिद्ध्यर्थमिति- ११३-१ कर्तव्यतावाक्यं 'घृतेन जुहुयात्' इति तस्य **विधिविषयविप्रकृष्टीभूतत्वं** जुहुयाच्छब्दस्यानुवादाभिमतस्य ।

---

१ °**विधे**° प्र० ॥ २ °**जुहुयाकल्पनात्** प्र० । अत्र °**जुहुयाद्विकल्पनात्** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ३ अत्र 'स एवानुवादः' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ४ **हीदमेव वा स्वर्ग**° प्र० ॥ ५ **वाक्यस्य** य० प्रतिषु नास्ति ॥ ६ **अयंशब्दः प्रत्यक्ष**° प्र० ॥ ७ °**वादकत्वे** डे० लीं० वि० रं० ही० ॥ ८ **प्राप्त्यर्थप्राप्तो** पा० डे० वि० । **प्राप्त्यर्थः प्राप्तो** लीं० । **प्राप्त्यर्थं प्राप्तो** रं० ही० । **प्रर्थप्राप्तो** भा० । अत्र 'अयंशब्दार्थः प्राप्तः, देवदत्तार्थोऽधुना प्रापणीयः' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ९ °**ग्निहोत्रजुहु**° भा० ॥ १० °**रार्थत्वासाम्या**° प्र० । अत्र °**रार्थत्वसाम्या**° इत्यपि पाठः स्यात् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घटितविघटितप्रतिसमाधेये तत्प्रतिसमाधानार्थमुद्यतेन त्वया चिकित्सयैव गण्डस्योपरि स्फोट आपादितः ।

लौकिकजुहोत्यर्थानुष्ठानप्रवृत्तोपदेशविषय एव त्वयं परमनुवादः स्यात्, स चानुपपन्ननियमार्थ उपदेशः प्राप्तिविहितेतिकर्तव्यतानतिरिक्तहवनक्रियानाम-

---

किं कारणम्? प्राप्तविशेषणपरार्थविषयत्वादनुवादस्य अप्राप्तविशेष्यस्वार्थविषयत्वाद्विधेरादिवाक्यगत एव तावज्जुहुयाच्छब्दोऽनु[1]वादो न घटते प्राप्तत्वाद्यभावात्, तस्यानुवादस्तु 'घृतेन जुहुयात्' इत्यत्र जुहुयाच्छब्द इष्टः स्यात् तत्प्रतिरूपकस्तस्य[2]ार्थः प्रतिशब्दकस्येवेत्यापन्नोऽप्राप्तविशेषणपरार्थत्वाद् विधिविषयविप्रकृष्टीभूतार्थश्चेति । ततश्च विधिविषयविप्रकृष्टीभूतार्थत्वान्न कर्तव्यताविषयत्वमितिकर्तव्यतायाः, यथा दशदाडिमादिश्लोकावयवानाम् । किञ्चान्यत्, **इति [घटित]विघटिते**त्यादि यावद् **गण्डस्योपरि स्फोट आपादितः ।** इतिशब्दो हेत्वर्थे, यस्मादित्थं 'कर्तव्यविषयविप्रकृष्टत्वमितिकर्तव्यतायाः' इत्यादि दोषजातं विध्यनुवादत्वाभावात् तस्माद् **घटितविघटितम्**, प्रागीषद् घटितमासीत् '**सेवा[3]दिवदितिकर्तव्यतेव कर्तव्यता**' इति, तदप्यनया '**प्रा[4]प्तिविहितस्वरूपसिद्धेः**' इत्यादिकया कल्पनया विघटितमुक्तविधिनैव । ततश्च **प्रतिसमाधेये** [5]विरुद्धतरदोषापादनं [6]'विधिविषयविप्रकृष्टीभूतार्थत्वा'दिति । ततश्च प्रतिसमाधेये तस्मिन्नेव ११३-२ वाक्येऽनुवादत्वाभावादवाक्यत्वादिदोषदुष्टे **तत्प्रतिसमाधानार्थमु[7]द्यतेन त्वया** अहो परमविदुषा चिकित्सकेनानपेक्षितपूर्वापरक्रियाविधिविपाकेन **चिकित्सयैव गण्डस्योपरि स्फोट आपादितः ।** तस्मादप्रसिद्धार्थत्वान्न मौलो जुहोतिर्नोत्तरो वानुवादो घटते ।

यदि भ[8]वतो घृतेन जुहुयादित्यस्यानुवादत्वमिष्टं ततोऽहमेव ते बुद्धिसंविभागं करोमि, श्रूयताम्— **लौकिकजुहोत्यर्थानुष्ठानप्रवृ[9]त्तोप[10]देशविषय एव त्वयं परमनुवादः स्यात्**, लौकिको हि दानादनार्थो जुहोतिः, तदर्थानुष्ठानप्रवृत्तोपदेशो यद्यस्य विषयः स्याद् 'दद्यात्, अद्यात्' इति तदर्थप्रसिद्धेस्तद्विषयोऽनुवादो युज्यते विधिर्वा । यस्मै कस्मैचिद्यदि किञ्चिद्द[11]द्यात् घृतं दद्यात् तेन जुहुयात्, यदि भुञ्जीत घृतेन जुहुयादित्येतस्मिन्नर्थेऽनुवादो घटते । **स चानुपपन्ननियमार्थ उपदेशः**, समीकृत्य व्याख्यातोऽर्थोऽस्य शब्दस्य ते मया तथापि तु पुनस्त्वदिष्टविरुद्धार्थमेतदापद्यते, लोकेऽनुपपन्ननियमोपदेशार्थत्वदर्शनाद् विचित्रयोर्दानभोजनयोः स्वपरप्रीतिहेतुत्वाद् यथोपपत्ति घृतेन पयसा दध्ना गुडेन च भुञ्जीत तान्येव च बुभुक्षवे दद्यादिति । न तु यथा अक्षिवैद्यके त्रिफलां घृतेनैव भक्षयेत्, न गुडेन, गुडस्य चाक्षुष्यत्वात् । यथोक्तम्—

> प्रभूतकृमिमज्जासृङ्मेदोमांसकरो गुडः । [चरकसं० १।२७।२३८]
> चक्षुस्तेजोमयं तस्य [12]विशेषाच्छ्लेष्मणो भयम् । [चरकसं० १।५।१६] इति ।

---

१ °वादो घटते य० ॥ २ °स्यार्थप्रति° प्र० ॥ ३ दृश्यतां पृ० १२९ पं० १ ॥ ४ दृश्यतां पृ० १५५ पं० २ ॥ ५ विरुतर° प्र० ॥ ६ दृश्यतां पृ० १५७ पं० ३ ॥ ७ °मुच्यतेन य० ॥ ८ भवते य० । भवति भा० ॥ ९ °प्रकृत्तो° भा० । °प्रकृतो° य० ॥ १० °पदेश एव य० ॥ ११ °द्द्यात्त भा० । °द्द्यान्न य० ॥ १२ "विशेषाच्छ्लेष्मतो" इति चरकसंहितायाम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मात्रार्थः । तन्मात्रत्वात्तु तस्याः प्रकरणानुबन्धनाद्धित्वा जुहोतिप्रयोगबाहुल्यं कृञ्प्रकृतिलिङ्कर्तृता प्रदर्शयितव्या – यदग्नये च प्रजापतये च सायं जुहोति तद् घृतादिना स्वर्गकामः कुर्यादिति ।

त्वद्वचनात्त्वप्रमाणनियमागमोऽनुपदेशकश्च विवेक्तुरपीति सम्भाव्येत, अप्रत्यवेक्षितार्थत्वात् पौर्वापर्ययोगाप्रतिसम्बद्धार्थत्वाद् घटितानुमतविध्वंसनादुन्मत्त-

---

किञ्चान्यत्, इदं चाग्निहोत्रं[1] जुहुयात् [काठकसं० ६।७][2] यदग्नये[3] च प्रजापतये च सायं जुहोति [मै० सं० १।८।७] घृतेन जुहुयात् [काठकसं०[4] ६।३।५] शूर्पेण[5] जुहोति तेन ह्यन्नं क्रियते [तै० ब्रा० १।६।५] इत्येवमादिविध्यनुवादार्थवादवाक्यगतो जुहोतिः श्रूयमाण उपस्थानादीतिकर्तव्यतानतिरिक्तसेवनक्रियानामधेयमात्रार्थत्ववत् **प्राप्तिविहितेतिकर्तव्यतानतिरिक्तहवनक्रियानाममात्रार्थः,** विप्रकीर्णावयवकलापा- ११४-१
कारा क्रियैवास्यार्थोऽसिद्धरूपः, न सिद्धरूपो यथा यूपघटादि । **तन्मात्रत्वात् तु तस्याः** क्रियायाः **प्रकरणानुबन्धनात्** प्रकरणेन अनुबन्धयन् वक्ता ब्रूते श्रोता च प्रतिपद्यते – क्रियामात्रमवश्यमनेन शब्देन कर्तव्यमित्येतावच्चोद्यत इति । तस्मात् क्रियामात्रत्वात् प्रकरणानुबन्धनाद् **हित्वा**[6] त्यक्त्वा **जुहोतिप्रयोगबाहुल्यं** सर्वजुहोतिप्रयोगान्, क्रियामात्रे प्रतिपाद्ये नान्तरीयकत्वात् **कृञ्प्रकृतिलिङ्कर्तृता[7] प्रदर्शयितव्येति** तत्प्रतिपादनार्थम्, अभिमतवाक्यार्थतास्य स्यादेवं कल्प्यमाने । तन्निदर्शयति – **यदग्नये च प्रजापतये च सायं जुहोति तद् घृतादिना स्वर्गकामः कुर्यादिति,** एतावता तदर्थस्य सुगमत्वाज्जुहोतिप्रयोगबाहुल्यमप्रत्ययरटितमेव पुनरन्यत्रान्यत्र[8] 'जुहुयात्, जुहोति' इत्यादि ।

किञ्चान्यत्, **त्वद्वचनात्तु अप्रमाणनियमागमोऽनुपदेशकश्च विवेक्तुरपीति सम्भाव्येत ।** योऽप्यज्ञप्रयुक्तशब्दार्थोन्नयनसमर्थो विवेक्ता पुरुषः पदवाक्यप्रमाणज्ञस्तं प्रत्यप्ययं वाक्यप्रयोगोऽप्रमाणनियमागमोऽनुपदेशकश्च । अप्रमाणनियमागमः प्रत्यक्षानुमानगम्यार्थासंवादात् । अनुपदेशकस्त्वगमकत्वात् । तत् पुनः सम्भावयामि 'भवेदेवम्', मा मंस्था निष्ठुरम् 'अप्रमाणनियमागमोऽनुपदेशकश्च' इत्यवधार्यैवोच्यत इति । कुतः ? **अप्रत्यवेक्षितार्थत्वात् पौर्वापर्ययोगाप्रतिसम्बद्धार्थत्वाद् घटितानुमतविध्वंसनात्[9] ।** अप्र- ११४-२
त्यवेक्षितार्थता[10] जुहोतिबाहुल्यप्रयोगनिर्विषयत्वादिभिः । पूर्वापरसम्बन्धरहितता पृथगर्थाभिमतानां विध्यादिशेषाभावात् । घटितविध्वंसनम् 'इतिकर्तव्यैतैव[11] कर्तव्यता' इति घटितस्य आदिवाक्यगतजुहोत्यनुवादाभ्युपगमाद् घटितानुमतविध्वंसनम् । इत्येतेभ्यो हेतुभ्योऽप्रमाणनियमागमोऽनुपदेशकश्च वाक्यप्रयोगः । दृष्टान्त **उन्मत्तप्रलापवत्,** यद्वाक्यमुन्मत्तादिप्रलपितं पुरुषोच्चारितशब्दसामान्यात् सद्वाक्यवदाभासमानमप्रमाणनियममगमकं च, यथा —

शङ्खः कदल्यां कदली च भेर्यां तस्यां च भेर्यां सुमहद् विमानम् ।
तच्छङ्खभेरीकदलीविमानमुन्मत्तगङ्गाप्रतिमं बभूव ॥ [ ]

---

१ चाग्नि° पा० ॥ २ द्रष्टव्यं पृ० १२३ टि० ३ ॥ ३ द्रष्टव्यं पृ० १४२ टि० ८ ॥ ४ द्रष्टव्यं पृ० १४२ टि० ९ ॥ ५ सूर्येण प्र० ॥ ६ त्यक्त्वा होति° प्र० ॥ ७ °कर्तृता च दर्श° य० ॥ ८ पुनरन्यत्र जुहु° भा० ॥ ९ °मतिवि° प्र० ॥ १० °त्यपेक्षिता जुहोति° प्र० ॥ ११ द्रष्टव्यं पृ० १४२ पं० १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रलापवत्, प्रत्यवेक्षाप्रामाण्ययोर्ज्ञानविषयत्वात्, त्वन्मतात्तु वेदो न ज्ञानं ततोऽप्रमाणनियमोऽनुपदेशकश्च, अचेतनत्वात्, आकाशवत् ।

यदपि च प्रसह्य कारणेषु फलस्य खपुष्पवदसत्त्वमुच्यते एवंविधेष्वेकान्तेन तदपि चान्याय्यमेव । यदेतदसत्त्वं नाम त्वया क्वचिन्मन्यते ततोऽन्यत् कार्यम्,

---

इति, तथेदमपि विवेक्तुरप्यर्थप्रतिपादनसमर्थं न भवतीति । एवं विचार्यमाणमिदं वाक्यं दोषेभ्यो न मुच्यते । अथवा नैवायं दोषो न च विचारयोग्योऽयमुद्ग्राहः **[1]प्रत्यवेक्षाप्रामाण्य[2]योर्ज्ञानविषयत्वात्,**
११५-१ ज्ञानं हि प्रमाणमप्रमाणं वेति विचार्यते प्रत्यवेक्ष्यते च तत्र प्रामाण्यस्य मुख्यत्वात्, न ह्यत्र [3]कुदुपादिप्रामाण्यवत् प्रामाण्यमङ्गीक्रियते । तस्मात् प्रत्यवेक्षायाः प्रामाण्यस्य च ज्ञानविषयत्वात् त्वन्मतादेव [4]वेदस्याज्ञानाभिमतत्वान्न विचारो न प्रमाणभावो वास्ति अज्ञानत्वाद्वेदस्य । त्वया हि [5]प्रागेवोक्ततोक्तम् – न हि किञ्चिज्ज्ञानं निश्चितं विशुद्धं चास्ति सर्वस्य संशयाद्यज्ञानानुविद्धत्वादिति । तद्दर्शयन्नाह – **[6]त्वन्मतात्तु वेदो न ज्ञानं** न ज्ञानत इति, न यथा ज्ञानकार्य[7]त्वाज्ज्ञानात्मप्रयुक्तशब्दचैतन्यमपि कार्ये कारणोपचारादन्नकार्य[8]प्राणान्नत्ववदिति वा । **ततः** किमिति चेत्, **अप्रमाणनियमोऽनुपदेशकश्च** वेदः, **अचेतनत्वात्, आकाशवत् ।** यथा आकाशमचेतनत्वादप्रमाणं कूटस्थनित्यत्वाच्च न ज्ञानवद्वचनमेवं वेदोऽपीति प्रामाण्योपदेशाभावः ।

यदपि च प्रसह्येत्यादि । प्रसह्य बलात्कारेण परं कञ्चित् पुरुष[9]मगणयता एकं[10]वीरंमन्येनाक्रम्य परिभूयास्मन्मतं यदपि च 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यत्र **कारणेषु** घृतादिष्वितिकर्तव्यतात्मसु स्वर्गादि**फलस्य खपुष्पवदसत्त्वमुच्यते एवंविधेष्विति** सर्वेतिकर्तव्यतानामादिमध्यावसानेषु, तत् पुनरसत्त्व**[11]मेकान्तेन** 'कथञ्चित् कार्यादिसत्त्वमपि' इत्येतत्पक्षनिरपेक्षं 'सर्वथा नास्त्येव' इति त्वयेष्टं **तदपि चान्याय्यमेव ।** यतो **यदेतदसत्त्वं नाम त्वया क्वचिन्मन्यते, नामे**ति मिथ्याकल्पितनाममात्रमेव तद् यत् त्वया क्वचित् सत्त्वनिरपेक्षमसदिति चिन्त्यते । कथं पुनरन्याय्यं तदसत्त्वमिति चेत्, उच्यते, न्यायेन बाध्यत्वात् । कतमो
११५-२ न्याय इति चेत्, एवं तर्हि ब्रूमः – **ततोऽन्यत् कार्यम्,** असतोऽन्यदित्यर्थः । कुतः ? **[12]तदसमर्थविकल्पत्वात्,** असङ्गतार्थोऽसमर्थोऽसम्बद्धो [13]विकल्पः, तेनासता सहासम्बद्धो विकल्पोऽस्येति तदसमर्थविकल्पं कार्यम्, तस्य कार्यस्यासमर्थविकल्पत्वात् ततोऽन्यत्वम् । किमिव ? **घटपटवत्,** यथा घटविकल्पाः पृथुबुध्नोर्ध्वग्रीवादयो मृदुचतुरस्रादिभिः पटविकल्पैरसङ्गताः पटविकल्पाश्च [14]तैरित्यन्यौ घटपटौ परस्परत एवमसद्विकल्पैरसङ्गतं कार्यं तस्मात् ततोऽन्यदिति ।

---

१ प्रत्यपे° प्र० ॥ २ °**योर्निर्विषयत्वात्** य० ॥ ३ **नुदुपादि**° य० । अत्र 'कुडपादिवत्' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ४ **वेदस्य ज्ञाना**° य० ॥ ५ दृश्यतां पृ० ११३ पं० ६ ॥ ६ **त्वन्मतात्तवेदो न ज्ञानञ्च ज्ञानव इति नऽव इति** भा० । **त्वन्मतात्तदो न ज्ञानञ्च ज्ञानव इति** य० ॥ ७ °**त्वाज्ञानात्मप्रयुक्त**° य० ॥ ८ °**प्राणेन्नत्व**° भा० ॥ ९ °**मवग**° य० ॥ १० °**वीरम**° प्र० । "आत्ममाने खश्च ।३।२।८३ ॥ स्वकर्मके वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात् । चाण्णिनिः । पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितंमन्यः ।" – **पा० सिद्धान्तकौ०** ॥ ११ °**कान्तेन न कथंचित्** य० ॥ १२ **तसमर्थ**° प्र० । दृश्यतां पृ० ४७८-२ ॥ १३ **विकल्पतः तेना**° य० ॥ १४ °**त्यनौ घट**° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदसमर्थविकल्पत्वात्, घटपटवत् । विकल्पासामर्थ्यं चासत्कार्ययोः सिद्धमेव । चतुर्षु विकल्पेषु कार्यखपुष्पयोरुभयोरसत्त्वं कार्यासत्त्वमेव वेत्येतद् विकल्पद्वयं स्यात्, उभयसत्त्वकार्यसत्त्वयोः प्रतिपक्षाभ्युपगम एवेति वादाभावात् ।

तद्यदि तावदुभयासत्त्वं ततोऽसत्त्वाविशेषादेवाविशेषे कार्याविर्भाववत् खपुष्पाविर्भावोऽप्यायत्यां स्यादसत्कार्यवत् ।

अथ न कार्यप्रादुर्भाववत् खपुष्पप्रादुर्भावोऽसच्च कार्यमिति निश्चितम्, तद्वैलक्षण्यान्न तर्ह्यसत् खपुष्पम्, सदसद्विलक्षणत्वाद् घटवत्, इतर उदुम्बरपुष्पवत् । ननु घटासत्त्वं पटासत्त्वविलक्षणम्, न, सतो वैलक्षण्यात् ।

स्यान्मतम्—असद्विकल्पासङ्गतत्वं कार्यस्यासिद्धम्, त[1]न्न, सिद्धमेव, यस्माद् **विकल्पासामर्थ्यं चासत्कार्ययोर**सतः कार्यस्य च **सिद्धमेवे**ति गृहाण, विकल्पचतुष्टये द्वयोरेव सम्भवात् । असत् खपुष्पम्, कार्यमङ्कुरादि, तयोर्विकल्पाश्चत्वारः—१ खपुष्पमसत् कार्यमप्यसत्, २ खपुष्पं सत् कार्यमसत्, ३ खपुष्पमसत् कार्यं सत्, ४ खपुष्पं सत् कार्यमपि सत्, इत्येषु **चतुर्षु विकल्पेषु कार्यखपुष्पयोरुभयोरसत्त्वं कार्यास[2]त्त्वमेव वेत्येतद्विकल्पद्वयं स्यात्** सम्भवेत् । किं कारणम्? **उभयसत्त्वकार्यसत्त्वयोः प्रतिपक्षाभ्युपगम एव,** सत्कार्यवादः प्रतिपक्षोऽसत्कार्यवादस्य, **इति**शब्दो हेत्वर्थे, इत्यस्माद्धेतोर्वादाभावः, तस्माद् **वादाभावा**दुभयाभावकार्याभावविक[3]ल्पावेव सम्भवेताम्, नेतरौ ।

ततश्च तयोरुभयासत्त्वकार्यासत्त्वविकल्पयोस्तद् **यदि तावदुभयासत्त्वं ततोऽसत्त्वाविशेषादेवा**विशेषः खपुष्पकार्ययोः, असत्त्वाविशेषादेवा**विशेषे कार्याविर्भाववत् खपुष्पाविर्भावोऽप्यायत्यां** १३६-१ **स्यात्**, एष्यति कालान्तरेऽस्माद् वर्तमानात् क्षणादन्यस्मिन् क्षणे भवेत् । दृष्टान्तः—**असत्कार्यवत्**, बीजादङ्कुरवत् । न चैतदृष्टमिष्टं वा 'खपुष्पप्रादुर्भावः' इति ।

अथैतस्मादनिष्टापत्तिदोषाद् दृष्टेष्ट[4]विरोधादपसर्पन् ब्रूयास्त्वम्—**न कार्यप्रादुर्भाववत् खपुष्पप्रादुर्भाव** इष्यते, **असच्च कार्यमिति निश्चितम्** । ततः को दोष इति चेत्, उच्यते—**तद्वैलक्षण्यान्न तर्ह्यसत् खपुष्पम्**, असत्कार्यवैलक्षण्यान्नेदानीमसत् खपुष्पम्, किन्तु **सदि**ति प्राप्तम् । असत्कार्यवैलक्षण्यं खपुष्पस्यायत्यामप्रादुर्भावः, तस्मादसत्कार्यवैलक्षण्यादायत्यामप्रादुर्भावान्न तर्ह्यसत् खपुष्पम्, किं तर्हि? सत्, को हेतुः? **असद्विलक्षणत्वात्**, असता कार्येण सह विलक्षणत्वात् । दृष्टान्तो **घटवत्**, यथा घटोऽसद्विलक्षणत्वात् सन्नेवं खरविषाणमप्यायत्यां प्रादुर्भवता कार्येण वैलक्षण्यात् सत् प्रसक्तम् । **इतर उदुम्बरपुष्पवत्**, इ[5]तर इति वैधर्म्यदृष्टान्तः, यदसत् तदसद्विलक्षणं न भवति यथोदुम्बरकुसुममिति परस्यानिष्टापादनार्थत्वादसद्वैधर्म्यं खपुष्पस्येति । **ननु घटासत्त्वं प[6]टासत्त्वविलक्षणम्** । स्यान्मतम्—घटस्या-

---

१ तत्र य० ॥ २ °सत्त्वमेवेत्येतद्वि° प्र० । दृश्यतां पृ० ३०५-२ ॥ ३ °कल्पाभावावेव संभवेतां नेतरो प्र० ॥ ४ °ष्टविरुद्धाद° भा० ॥ ५ इतरे प्र० ॥ ६ पक्षासत्व° भा० । पुष्पसत्व° य० ॥

अथैवमपि वैलक्षण्ये खपुष्पासत्त्वनिश्चयो न निवर्ततेऽप्रादुर्भावात्मकं च तत्, न तर्हि प्रादुर्भावात्मकत्वात् कार्यमसद् निर्वृत्तघटवत्। असत्त्व आयत्यां न प्रादुर्भवेत्, असत्त्वात्, खपुष्पवत्। शेषं पूर्ववदेव विपर्ययेण।

सत्त्वं पटात्मना, पटासत्त्वं घटात्मनेति तयोरितरेतराभावलक्षणासत्त्वं वैलक्षण्यं च परस्परतो दृष्टम्, तौ च घटपटौ सन्तौ, तस्मादसद्वैलक्षण्यस्य सत्यपि दर्शनादनैकान्तिकतेति चेत्, उच्यते—**न, सतो वैलक्षण्यात्।** ११६-२ नानैकान्तिकतास्य हेतोः, सतो वैलक्षण्यात्। सत एव वैलक्षण्यम्, तद्धीतरेतराभावात्मकं वैलक्षण्यं सत एव, नासतः। तस्मादसतो वैलक्षण्यं न भवति, किं तर्हि? सद्वैलक्षण्यमपि तत् सत एवेतरापेक्षया तद्रूपेणासत्त्वात्। अयं तु कार्यस्यायत्यां प्रादुर्भावोऽसता खपुष्पेणात्यन्तविलक्षणोऽप्रादुर्भावश्च खपुष्पस्य कार्येणासतेति नास्ति सतो वैलक्षण्यं सता तद्विशेषधर्मत्वाद् रूपादिविशेषधर्मवैलक्षण्यवत्। अथवा **सतोऽवैलक्षण्यात्**, सतः अवैलक्षण्यात्। सतस्तु घटादेः पटादिना सह वैलक्षण्यं नास्त्येव, सत्त्वान्वयाविशेषाद् देशकालाकारादिमात्रविशेषस्याविशेषत्वात्, अङ्गुल्यादिविशिष्टाकाशाविशेषवत्।

अथवा **न तर्ह्यसत् खपुष्पम्।** कस्माद्धेतोः? **सदसद्विलक्षणत्वात्**, सताऽसता च विलक्षणत्वात्। सच्च द्विविधम्—तुल्यजातीयं घटस्य घट एव, अतुल्यजातीयं पटादि। असच्च कार्यमायत्यां भावादङ्कुरादि। खपुष्पमत्यन्ताप्रादुर्भावात् कार्येणासता विलक्षणं सता च घटपटादिना त्वन्मतेन इतरेतराभाववैलक्षण्येन तुल्यजातीयेन [अतुल्यजातीयेन] च भावानां परस्परवैलक्षण्यवद्, दृष्टान्तो **घटवदिति**, यथा घटस्तुल्यजातीयेभ्यो घटान्तरेभ्योऽतुल्यजातीयेभ्यश्च पटादिभ्यः सद्भ्यो विलक्षणोऽसतश्च खपुष्पादेः संश्च ११७-१ दृष्टस्तथा खपुष्पं घटवत् सदसद्विलक्षणत्वान्नासत्, सदेवेत्यर्थः, द्विः प्रतिषेधः प्रकृतिं गमयतीति कृत्वा। **इतर उदुम्बरपुष्पवत्**, यदसत् तन्न सदसद्विलक्षणम्, यथोदुम्बरपुष्पम्। त्वन्मत्यैवात्रापि वैधर्म्यदृष्टान्तः, खपुष्पखरविषाणोदुम्बरपुष्पादीनामसत्त्वाविशेषादनिष्टापादनसाम्यात् साध्यान्तःपाती। तस्माद् वैधर्म्यदृष्टान्तेन नार्थः। अस्तु तदा सद्विलक्षणत्वमितरेतराभावापेक्षत्वात्, कथमसद्विलक्षणं खपुष्पमिति चेत्, आयत्यां प्रादुर्भवता कार्येणासता वैलक्षण्यस्य त्वयैवाभ्युपगतत्वात् त्वन्मतनिवारणार्थत्वादस्य प्रयासस्य नास्माकं दोष इति।

अथैवमपीत्यादि। अथ ते प्रादुर्भावाप्रादुर्भाव**वैलक्षण्ये** सत्यपि कार्यखपुष्पयोः 'असदेव खपुष्पम्' इत्ययं **निश्चयः** 'असद्वैलक्षण्याद् घटवत् सद् भवतु' इत्यस्मान्न्यायान्निवर्त्यमानोऽपि **न निवर्तते, 'अप्रादुर्भावात्मकं च तत्** खपुष्पम्' इत्येतच्च वैलक्षण्यमिष्यत एव, प्रादुः प्राकाश्ये जन्मनि च, तथाऽऽविः

---

१ °नादिकैकान्तिकतेति वि०। °नादेकैकान्तिकतेति वि० विना॥ २ नामैकान्ति° वि० विना॥ ३ तत्सत्त डे० लीं०। तत्सतं पा०। तदाक्षं रं० हीं०। तत्सत्वं वि०॥ ४ °त्यन्तं वि° वि० रं० हीं०॥ ५ कार्येण सतेति प्र०॥ ६ सतोवै° प्र०॥ ७ °ष्ठकोगाविशेषवत् वि० विना। °ष्ठकांताविशेषवत् वि०॥ ८ असच्चर कार्य° प्र०॥ ९ अतुल्यजातीयेन इति पाठो यद्यपि कुत्रापि प्रतिषु नास्ति तथाप्यावश्यक इति भाति॥ १० °ण्यवद् दृष्टांतो भा० वि०। °ण्यवच्च दृष्टांतो पा० डे० लीं० रं० हीं०॥ ११ °भ्यश्च सद्भ्यो य०॥ १२ °न्नसत्यदेवेत्यर्थः प्र०॥ १३ यदसत्तंत सद्विलक्षणम् प्र०॥ १४ °पाति प्र०। अत्र 'साध्यान्तःपातित्वात्' इत्यपि पाठः स्यात्॥ १५ °तविचारणार्थ° भा०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः कार्यं सत्, आविर्भावात्मकत्वात्, निर्वृत्तघटवत्; वैधर्म्येण आकाशघटवत् । असच्च खपुष्पम्, अनाविर्भावात्मकत्वात्, खघटवत्; वैधर्म्येण निर्वृत्तघटवत् ।

तुल्ये वाऽसत्त्वे विशेषो वक्तव्यः, अविशेषे वैलक्षण्यानुपपत्तेर्घटघटस्वात्म-

---

[ ], प्रादुर्भवति प्रकाशं[1] भवति गृह्यते ज्ञायते उत्पद्यते[2] जायत इति वा तथाविर्भवतीति[3], एवं चाप्रादुर्भावात्मकस्य[4] खपुष्पस्यासत्त्वेऽर्थादापन्नम्[5] – **न तर्हि प्रादुर्भावात्मकत्वात् कार्यमसत्**, सदेवेत्यर्थः । को दृष्टान्तः ? **निर्वृत्तघटवत्**, यथा निर्वृत्तो घटः प्रादुर्भावात्मकत्वात् प्रकाशात्मकत्वात् सन्नेव तथा कार्यमपि सत् । अस्याश्चार्थापत्तेरैकान्तिकत्वान्न जात्युत्तरता, यथा गेहे देवदत्तस्याभावे स्थितिमतो[6] बहिर्भावानुमानमर्थापन्नमैकान्तिकत्वान्न जातिवादः । अस्माकं त्वत्राभिप्रायः – सदेव कदाचिदुपलभ्यते जायते ११७-२
वा नात्यन्तासदिति, दर्शनादर्शने च सद्विषये नात्यन्तासद्विषये[7] इत्येतदुत्तरत्र दर्शयिष्यामो विचारस्यास्य तत्फलत्वात् । अथैवमपि त्वया कार्यस्य सत्त्वं नेष्यते ततोऽ**सत्त्वे** कार्यस्यायत्यां **न प्रादुर्भवेत्** कार्यम**सत्त्वात् खपुष्पवत्**, प्रादुर्भवति तु, तस्मात् सत्[8] । **शेषं पूर्ववदेव विपर्ययेणे**त्यतीतग्रन्थमतिदिशति । **विपर्ययेणे**त्यर्थतः शब्दतस्तद्द्वयोर्विपर्ययेण योज्यः । तद्यथा – अथ न खपुष्पाप्रादुर्भाववत् कार्याप्रादुर्भावोऽसच्च कार्यमिति निश्चितम्, न तर्ह्यसत् कार्यम्, सदेव तत्, असद्विलक्षणत्वाद् घटवत्, इतर उदुम्बरपुष्पवत् । ननु घटासत्त्वं पटासत्त्वविलक्षणम्, न, सतो वैलक्षण्यात् । अथैवमपि वैलक्षण्ये कार्यासत्त्वविनिश्चयो न निवर्तते प्रादुर्भावात्मकं च तत्, न तर्हि प्रादुर्भावात्मकत्वादसत् कार्यं निर्वृत्तघटवत्, असत्त्वे आयत्यां न प्रादुर्भवेदसत्त्वात् खपुष्पवदिति ।

तदुपसंहारार्थमाह – **अतः कार्यं सत्, आविर्भावात्मकत्वात्, निर्वृत्तघटवत्; वैधर्म्येण आकाशघटवत्**, आकाशमेवाकाशस्याकाशे वा घट आकाशघटः, स त्वनाविर्भावात्मकत्वान्नास्ति, न तथा कार्यमनाविर्भावात्मकम्, तस्मात् तत् सदिति । **असच्च खपुष्पम्, अनाविर्भावात्मकत्वात्**[10], **खघटवत्; वैधर्म्येण निर्वृत्तघटव**दिति तयोः सदसतोः कार्यखपुष्पयोर्वैलक्षण्यं दर्शयति ।

यदि भवन्मतेन[11] कार्यखपुष्पयोरसत्त्वमेव तुल्यं **तुल्ये वाऽसत्त्वे विशेषो वक्तव्यः** – अस्माद् विशेषहेतोः कार्यमसत्त्वे[12] सत्यपि प्रादुर्भवति न तु खपुष्पमिति । नोच्यते चेद् विशेषहेतुः, अविशेषोऽनयोः । ११८-१
अविशेषे च वैलक्षण्यानुपपत्तिः खपुष्पखरविषाणयोरिवासतोः, दृष्टं च वैलक्षण्यमायत्यां प्रादुर्भावाप्रादुर्भावा[13]भ्याम्, तत्तु अविशेषे तयोर्नोपपद्यते । तस्माद्धेतोर**विशेषे वैलक्षण्यानुपपत्तेर्घटघटस्वात्मवत्**, यथा घट एव घटस्वात्मेति तयोर्न वैलक्षण्यमविशिष्टत्वादेवमविशेषः स्यात्, न तु भवति दृष्टत्वादुक्तत्वाच्चाविर्भावाना[14]विर्भावयोः । तस्मात् तयोर्यथासङ्ख्यं सत्त्वमसत्त्वं चावश्यमेषितव्यम् । इतर आह – नैवास्त्यविशेषोऽसतोऽपि,

---

१ **प्रकाशां** भा० ॥ २ **उद्यते** य० ॥ ३ **तेथावि**° पा० रं० ही० । **तेष्वावि**° वि० डे० लीं० ॥ ४ °**कस्वपुष्प**° भा० ॥ ५ °**पनम्** प्र० ॥ ६ °**मतो हिभावानु**° य० ॥ ७ **नात्यन्तासद्विषये** य० प्रतिषु नास्ति ॥ ८ **सतत्** भा० ॥ ९ तुलना पृ० १३१ पं० ६ ॥ १० °**त्वात्खघटवत्** भा० । °**त्वात् घटवत्** य० ॥ ११ **भवन्मने** भा० । अत्र '**भवन्मते**' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १२ **कार्यमत्वे** प्र० ॥ १३ **प्रादुर्भावात्य तत्तु** भा० । **प्रादुर्भवत्यां तत्तु** य० ॥ १४ °**च्चाविर्भावयोः** प्र० ॥

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

वत्। विशेषोन्नयनेऽपि तु विशेषस्य सदाश्रयत्वात् सत्त्वं घटवदिति सामान्यमेव।

अथैतत् साम्यमुभयासत्त्वान्मा भूदित्यन्यतरासत्त्वं कार्यसत्त्वाभ्युपगमपरिहारेण कार्यमेवासदिति, अत्र कार्यसमीप एवकार इत्यन्यत्र प्रतियोगिन्यसत्त्वे नियमः—असत्त्वं कार्ये एव नान्यत्रापीति। ततश्च न खपुष्पमसत्। तथा च सतो-

---

यस्माच्चतुर्विधोऽसन्निष्यते[1] प्राक्प्रध्वंसेतरेतरात्यन्ताभावाख्यो[2] घटस्य मृत्पिण्डादिकपालादिपटादिखरविषाणादिवदिति। अत्रोच्यते—**विशेषोन्नयनेऽपि तु विशेषस्य सदाश्रयत्वात् सत्त्वं घटव**दिति। अपिशब्दोऽनभ्युपगमं दर्शयति, नैवाभावस्य खरविषाणवन्ध्यासुतादेः परस्परतो विशेषोऽस्त्यवस्तुत्वात्[3] त्वन्मतेनैव, अस्मन्मतेन तु वस्तुत्वमभावस्यापि कस्यचित् प्रमेयत्वसामान्यविशेषवत्त्वादिहेतुभ्यस्त्वदभ्युपगतेभ्यः प्रमाणवत्। अतस्त्वन्मतेनैवाभावस्य भावाद्[4] विशेषः परमार्थतो नास्ति। अभ्युपेत्यापि ब्रूमः—विशेषोन्नयनेऽपि तु येन केनचित् प्रकारेण सदाश्रयोऽसावभावस्त्वत्परिकल्पितश्चतुर्विधोऽपि[5] विशेषत्वाद् रूपादिवद् घटवत्। ततश्च विशेषस्य सदाश्रयत्वात् सत्त्वं घटवत्, यथा घटः सन् पृथिव्याद्यर्थमाश्रित्य वर्तमानः सन्नेव स्वमेव[6] वात्मानमाश्रित्य वृत्तेः सन्नेवं विशेषोऽपि सदाश्रयत्वात् सन्निति। **इति**शब्दो हेतुदृष्टान्तदार्ष्टान्तिकोपसंहारे, इत्थं
११८-२ भावाभावयोः **सामान्यमेव,** न विशेष इति। एवं तावत् कार्यखपुष्पयोरुभयोरसत्त्वमेव वेति साम्यमापादितम्।

द्वितीयविकल्पो विचार्यते—**अथैतत्[7] साम्य**मित्यादि। अथैतदापादितं सामान्यमनिच्छता[8] कार्यसत्त्वपरिहारेण उभयासत्त्वाभ्युपगमादायातमिदम**न्यतरासत्त्वं कार्यसत्त्वपरिहारेणा**भ्युपगम्यते प्रतिपक्षवादादन्यत् पूर्वोक्तद्वयान्यतरविशिष्टम्[10], किं तत्? **कार्यमेवासदिति,** अवश्यं द्वयोरन्यतराभ्युपगमेऽवधारणमापद्यते, तत्रावधारणं यत एवकारस्ततोऽन्यत्रावधारणम् [ ] इति परिभाषितत्वाच्छास्त्रेषु लोके च दृष्टत्वादवधारणफलत्वाच्च वाक्यस्यैतदुपपद्यते—**कार्यसमीप एवकार इति** 'कार्यमेवासत्' इति कार्यशब्दसमीप एवकारप्रयोगात्, **इति**शब्दस्य हेत्वर्थत्वात्, **अन्यत्र प्रतियोगिनि असत्त्वे नियमः,** असच्छब्दवाच्येऽर्थे खपुष्पादौ नियमस्तत्र एवकाराभावात्, न कार्यशब्दार्थे। यथा वृक्षश्चूत[11] इत्यत्र चूतो नियमाद्वृक्षः, वृक्षस्तु चूतोऽन्यो वा स्यादित्यनियमः, तथेहापि कार्यमेवासत्, न खपुष्पाद्यकार्यमसत्, किं तर्हि? [12]सत्, न तु 'असदेव कार्यम्' इति नियम्यते, यदि सदपि कार्यं स्यादस्तु, को दोषः? इति तद्दर्शयति—**असत्त्वं कार्ये एव, नान्यत्रापी**त्यकार्ये खपुष्पादाविति। **इति**शब्दो हेत्वर्थे, अस्मादवधारणाद्धेतोरित्यर्थः। एवं सति को दोष इति चेत्, उच्यते—**ततश्च न खपुष्पमस**दिति प्रसक्तं दृष्टेष्टविरुद्धं सत्त्वं खपुष्पस्येत्यर्थः।

---

१ दृश्यतां पृ० १६७ पं० २६॥ २ **प्राक्प्रध्वंसेतरात्यन्ता**° प्र०॥ ३ **विशेषोस्त्यवस्तुत्वात्** प्र०॥ ४ **भावाभावाद्** भा०॥ ५ °**अयाभावस्त्व**° य०॥ ६ **स्व(स्वा?)यमेव** प्र०॥ ७ **अथैव तत्साम्य**° प्र०। दृश्यतां पृ० १६७ पं०२६, ३०६-२॥ ८ °**च्छत** प्र०॥ ९ °**सत्त्वभ्युप**° भा०। अत्र 'अथ कार्यसत्त्वपरिहारेण उभयासत्त्वाभ्युपगमादायातमेतदापादितं सामान्यमनिच्छता' इत्यन्वयविवक्षायाम् 'उभयासत्त्वाभ्युपगमात्' इति य०प्रतिपाठः साधुरेव। 'कार्यसत्त्वपरिहारेण उभयासत्त्वाभ्युपगमादायातमिदमन्यतरासत्त्वं कार्यसत्त्वपरिहारेण' इत्यन्वयविवक्षायां तु **'उभयासत्त्वानभ्युपगमात्'** इत्येव पाठोऽत्र कल्पनीयः, स एव च शुद्ध इति ध्येयम्॥ १० °**तर(रा?)विशिष्टम्** भा०॥ ११ **वृक्षश्च इत्यत्र भूतो** य०॥ १२ **सत्त्वसदेव कार्यम्** प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऽसदिति असतश्च सदिति संज्ञा क्रियते, कार्यासत्त्वं खरविषाणविपरीतघटादीनामसत्त्वेन तुल्यम्, नाममात्रे विसंवादः। कार्यसत्त्वनिवृत्त्येकान्तत्यागाच्च स्ववचनादिविरोधापत्तिः। असदेवकारे त्वसदनवधृतेः पूर्वदोष एव।

अथोच्येत—असत्त्वादेव तयोः कारणकाले न कश्चिद् विशेषोऽस्ति, यदेव

११९-१

तथा [2]चेत्यादि यावद् **नाममात्रे विसंवादः**। एवं च कृत्वा कार्यमसत् खरविषाणं सदिति सङ्गीत्या[1] **सतोऽसदिति असतश्च सदिति संज्ञा क्रियते**। **कार्यासत्त्व**मिति ततः **खरविषाणविपरीता** ये निर्वृत्ता घटादयस्तेषां **घटादीनामसत्त्वेन तुल्यम्**, कार्यस्यासत्त्वं सतामेवासत्त्वेन तुल्यं विपरीतं नाममात्रमग्नेर्मङ्गलनामवत्, न चेत्र कश्चिदर्थस्य सत्त्वे विसंवादोऽसत् कार्यमिति। किञ्चान्यत्, **कार्यसत्त्वनिवृत्त्येकान्तत्यागाच्च स्ववचनादिविरोधापत्तिः**। कार्यसत्त्वनिवृत्तिः कार्यासत्त्वम्, तदवधारणमेकान्तः, कार्यमेवासदिति तस्य त्यागोऽनन्तरोक्तविधिना प्राप्तः, ततश्च कार्यसत्त्वनिवृत्त्येकान्तत्यागाच्च स्ववचनादिविरोधापत्तिः। स्ववचनविरोधस्तावत् तदेव कार्यमसदित्युक्त्वा तस्यैव[3]कारसामर्थ्यात् सत्त्वापादनात् तदेव सत् तदेवासदिति ब्रुवतः। अथवा **यदि कार्यं [4]कथमसत्? अथासत् कथं कार्यम्? क्रियते घटो घटतया व्यज्यते** [5]दीपेनेव क्रिययेति वक्ष्यति। तथाभ्युपगमादभ्युपगमविरोधः। तथा लोके प्रसिद्धत्वाल्लोकविरोधः। तत्त्व एव तथाभूतेरनुमानविरोधः। तथा मृत्पिण्डघटादिकारणकार्यदर्शनात् प्रत्यक्षविरोधः। एवं तावत् 'कार्यमे[6]वासत्, न खपुष्पादि' इत्यव[7]धारणदोषः।

'कार्यमेवासत्, न कारणम्' इत्यस्यावधारणस्य प्रतिपक्षवादापत्तेरथैवमवधार्यते 'कार्यमसदेव' इति। तत्रापि यत एवकारस्ततोऽन्यत्रावधारणमित्यसत्समीप एवकारात् कार्यमसत्त्वेनावधार्यते '[8]कार्यं ११९-२ नियमादसत्, असत्तु कार्यं वा स्यात् खपुष्पादि वा' इत्येव[9]म**सदेवकारे त्वसदनवधृतेः पूर्वो दोषो** योऽसत्त्वा[10]विशेषादित्यादिः स **एव**, कार्यखपुष्पयोरसत्त्वे आयत्यामाविर्भावानाविर्भावकृतो विशेषो न स्यादित्यविशेषापत्तिदोषः प्रागुक्तः स एवात्रापि।

अ[11]थोच्येतेत्यादि। अविशेषापत्तिदोषस्य च परिहारार्थ[12]मथोच्यते त्वयेति प[13]रमतमाशङ्कते, कथम्, **असत्त्वादेव तयोः** कार्यखपुष्पयोः **कारणकाले** विशेषासम्भवः, यथा खपुष्पमसत् तथा कारणकाले कार्यमप्यसदेवेति नानयोः **कश्चिद् विशेषोऽस्ति**, न ह्यसतो निरुपाख्यस्य खपुष्पस्य वृन्तफलकेसराद्यवयवसौरभादिविशेषाः खरविषाणकुण्ठतीक्ष्णत्वादिभ्यो भिन्नलक्षणाः सन्त्युभयेषामवस्तुत्वान्निरुपाख्यत्वाच्चेत्यस्मा-

---

१ **संगत्या** य०। दृश्यतां पृ० ५०९-१॥ २ **चाव** प्र०। ३ °**कारणसा**° भा०॥ ४ **प्रथमसत्** वि०। **प्रथमंसत्** वि० विना॥ ५ **दीत्यमेव क्रियेति** प्र०। दृश्यतां पृ० १२४-१॥ ६ °**वसत्** य०॥ ७ अवधारणकृतो दोष इत्यर्थः। तुलना पृ० १६६ पं० ९॥ ८ **कार्यंनयमासद्त्** भा०। **कार्यंनयमासत्** य०॥ ९ दृश्यतां पृ० १६८ पं० ५, ३०६-२, ५०९-२॥ १० दृश्यतां पृ० १६१ पं० ४॥ ११ दृश्यतां पृ० १६३ पं० ७॥ १२ **अत्रोच्येत्येत्यादि सविशेषा**° य०। **अत्रोच्येत्योदि सविशेषा**° भा०। दृश्यतां पृ० ३०६-२॥ १२ °**मथोच्यतेत**(तेऽत्र?) **त्वयेति** भा०। °**मर्थोच्यतेतत्वयेति** य०॥ १३ **परमार्थमाशङ्क्ते** य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्यासत्त्वं तदेव खपुष्पासत्त्वमपीति नावधारणकृतो दोषो नापि पूर्वस्तुल्यत्वापत्तिदोषः, अनेकविषयत्वात्तुल्यत्वस्य।

एवमप्येकत्वाद्विशेषाभावः। यथैव हि खपुष्पमनुपादानमबुद्धिसिद्धं निःसामान्यं निर्विशेषं च एवं कार्यस्योपादानं बुद्धिसिद्धत्वं सामान्यविशेषवत्त्वं च न स्यात्।

अथ सामान्यविशेषोपादानबुद्धिसिद्धत्वसद्भावासद्भावौ कार्यखपुष्पयोरिष्येते खपुष्पवदभवदपि तदसदेव, निर्वृत्तमपि तर्ह्यसत् सामान्यविशेषवत्त्वात् कारण-

---

दविशेषात् कारणकाले **यदेव कार्यासत्त्वं तदेव खपुष्पासत्त्वमपीति**। ततः किं परिहृतमिति चेत्, **नावधारणकृतो दोष** इत्यवधारणदोषः परिहृतो भवति। 'कार्यमेवासत्, असदेव कार्यम्' इत्यवधार्यमाणे खपुष्पसत्त्वं कार्यखपुष्पयोरविशेष इत्येतौ दोषौ तयोरविशेषाभ्युपगमान्न स्त इति। **नापि पूर्वस्तुल्यत्वा-**
१२०-१ **पत्तिदोषः** [1]कार्यस्यायत्यामनाविर्भावः [2]खपुष्पस्याविर्भाव इत्यविशेषः। अस्यापि तुल्यत्वापत्तिदोषस्याभावोऽसतो विशेषभावादनेक**विषयत्वात् [3]तुल्यत्वस्य**, 'अयमनेनाभ्यामेभिरिमाविमे वाऽर्थास्तुल्याः' इति हि तुल्यत्वमनेकविषयं दृष्टम्, न हि तदेव तेन तुल्यमिति।

अत्रोच्यते—**एवमप्येकत्वाद् विशेषाभाव** इति, त्वयैव कार्यखपुष्पयोरसत्त्वाविशेषोऽभ्युपगत एकरूपत्वादवस्तुन इति तदवस्थ एवाविशेषदोषः। तस्यैवेदानीमविशेषदोषस्यापादनार्थं विकल्प्यतेऽन्यदनिष्टापादनम्—**यथैव ही**त्यादि। यथैव खपुष्पस्योपादानं पूर्वदृष्टश्रुतानुभूतं बुद्धौ सिद्धं वाकारादिविशिष्टत्वं नास्तीत्य**नुपादानमबुद्धिसिद्धं च खपुष्पम्**, ततः किम्? अनुपादानाबुद्धिसिद्धत्वाभ्यां तद् **निःसामान्यं निर्विशेषं चे**ति सिद्धमेवं घटादेः **कार्यस्य** मृदाद्युप**ादानं बुद्धिसिद्धत्वं सामान्य[5]विशेषवत्त्वं च न स्यात्**, तच्च मृद एव [6]येनाकारेण भवनं देशकालनवपुराणकृष्णरक्तत्वादिघटभेदेऽपि तुल्यतया सामान्यं विशेषश्च पटादिभ्यः। त[7]च्च खपुष्पस्योपादानबुद्धिसिद्धत्वसामान्यविशेषवत्त्वं च स्यात्, उभयोर्निरुपाख्यत्वात्। न त्वेतदिष्टम्। तस्मादस्त्यनयोर्विशेष इति सत् कार्यम्।

अथ सामान्यविशेषोपादानबुद्धिसि[8]द्धत्वसद्भावासद्भावौ कार्यखपुष्पयोरिष्येते त्वया
१२०-२ विशेषौ, **खपुष्पवदभवदपि तदसदेव**। खपुष्पवदिति येन प्रकारेण खपुष्पं न भवति नोत्पद्यते तेन प्रकारेणाभवदपि अन्यथा भवदपि उत्पद्यमानं कदाचिद्दृश्यमानमपीत्यर्थः, उपादानबुद्धिसिद्धत्वसामान्यविशेषवत्त्वप्रकारेण भवदपि तत् कार्यमसदेवेष्यते, ततश्चैवं सति अयमपरो दोषः—**निर्वृत्तमपि तर्ह्यसत्** 'कार्यम्' इति वर्तते, सोपादानबुद्धिसिद्धत्वसद्भावेऽपि। कस्मात्? **सामान्यविशेषवत्त्वात् कारणकालकार्यवत्**, यथा कारणकाले कार्यमसत् त्वन्मतेन सामान्यविशेषवदपि सोपादानं बुद्धिसिद्धमपि तथोत्तर-

---

१ दृश्यतां पृ० १६२ पं० २॥ २ दृश्यतां पृ० १६१ पं० ५॥ ३ **तुल्यस्य** प्र०॥ ४ °**पादाबुद्धि**° य०॥ ५ °**विशेषत्वं च** प्र०॥ ६ अत्र **तेनाकारेण** इत्यपि पाठः स्यात्॥ ७ **वच्च** प्र०। अत्र 'तच्च खपुष्पस्योपादानं बुद्धिसिद्धत्वं सामान्यविशेषवत्त्वं च स्यात्' इत्यपि पाठः स्यात्। ८ °**द्धत्वसद्भावौ कार्य** प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालकार्यवत्। कार्यवच्चाभवदपि खपुष्पमसन्न स्याद् निःसामान्यनिर्विशेषत्वात् सामान्यविशेषवत्, कार्यासत्त्ववैलक्षण्याद्वा कारणवत्।

अथ न कार्योपादानादिमत्त्ववत् खपुष्पस्याप्युपादानादिमत्त्वमसच्च कार्यमिति निश्चितमित्यादि पूर्ववच्चक्रकद्वयप्रवर्तनम्। उपादानादिमत्त्वविशेषणकृतो विशेषः।

कालं निर्वृत्तमपि तदसदेव स्यात् कारणकालवदिति। **कार्यवच्चाभवदपि खपुष्पमसन्न स्यात्**, कार्य-प्रादुर्भावप्रकारेणाभवदपि तस्मिन्नभवनप्रकारविशेषे सत्यपि सत् प्राप्नोति खपुष्पं **निःसामान्यनिर्विशेषत्वात्**, तद्धि खपुष्पं निःसामान्यं निर्विशेषं चेति सिद्धम्, अतस्तस्य निःसामान्यनिर्विशेषत्वात् सत्त्वं स्यात्। को दृष्टान्तः? **सामान्यविशेषवत्**। कार्यवदिति सिद्धे वैशेषिकमतालम्बनेन सामान्यविशेषदृष्टान्तो निःसामान्यनिर्विशेषाणां सामान्यविशेषाणां वस्तुत्वं खपुष्पतुल्यमेवेति काका दर्शितं भवति। प्रकृतार्थोपनयस्तु यथा सामान्यविशेषो घटत्वादिर्निःसामान्यो निर्विशेषश्च संश्चेति सिद्धस्तथा खपुष्पमपि सत् स्यात्। किञ्चान्यत्, **कार्यासत्त्ववैलक्षण्याद्वा कारणवत्** 'असन्न स्यात् खपुष्पम्' इति वर्तते। कार्यस्य घटादेरसत्त्वेन खपुष्पस्याप्रादुर्भावानुपादानाबुद्धिसिद्धत्वनिःसामान्यविशेषत्ववैलक्षण्यात् खपुष्पमपि सत् १२१-१
स्यात् कारणवत्। एतैश्च प्रकारैः सिद्धमेव कार्यासत्त्ववैलक्षण्यमिति सिद्धो हेतुः। निर्वृत्तत्वादिप्रकारेण च कारणस्य तद्वैलक्षण्यं सिद्धमिति साधर्म्यं कारणखपुष्पयोः। कारणं वा खपुष्पवत् कार्यासत्त्ववैलक्षण्यादसत् स्यात् कार्यस्यासत्त्वं वा त्याज्यमित्यभिप्रायः।

अथ न कार्योपादानादिमत्त्ववदित्यादि। अथ भवता खपुष्पसत्त्वप्रसङ्गदोषभयाद् युक्तप्रतिपादनमपि कार्योपादानादिमत्त्ववत् **खपुष्पस्याप्युपादानादिमत्त्वं** नेष्यते, **आदि**ग्रहणाद् बुद्धिसिद्धसामान्यविशेषवत्त्वानि नेष्यन्ते, इदं कार्यस्यासाधर्म्यं खपुष्पेण सहेष्यते, **असच्च कार्यमिति निश्चितमित्यादि पूर्ववच्चक्रकद्वयप्रवर्तन**मिति ग्रन्थमतिदिशति तमेव। कथं पुनर्भाव्यते, **यदि कार्योपादानादिमत्त्ववत् खपुष्पस्योपादानादिमत्त्वं नेष्यते कार्यं चासदिति निश्चितम्, तद्वैलक्षण्यादनुपादानादिवैलक्षण्याद् न तर्ह्यसत् खपुष्पम्, सदसद्विलक्षणत्वाद् घटवत्, इतर उदुम्बरपुष्पवत्। ननु घटासत्त्वं पटासत्त्वविलक्षणम्, न, सतो वैलक्षण्यात्। अथैवमपि वैलक्षण्ये खपुष्पासत्त्वविनिश्चयो न निवर्ततेऽनुपादानादिमत्त्वात्, न तर्ह्युपादानादिमत्त्वात् कार्यमसत्, असत्त्वे नोपादानादिमत् स्यात् खपुष्पवत्, एतदविपर्ययचक्रकम्। शेषं पूर्ववदेव विपर्ययेण। अतः सत् कार्यमु-** १२१-२
पादानादिमत्त्वाद् निर्वृत्तघटवत्, वैधर्म्येणाकाशघटवदित्यादिरपि यावत् सदाश्रयत्वात् सत्त्वं घटवदिति, एतद्विपर्ययचक्रकमेवमुभयासत्त्वे। अन्यतरासत्त्वे तु **अथैतत् साम्यमुभयासत्त्वान्मा भूदित्यन्यतरासत्त्वं कार्यसत्त्वाभ्युपगमपरिहारेण कार्यमेवासदिति, अत्र कार्यसमीप** इत्यादि यावत् **स्ववचनादि-**

---

१ दृश्यतां पृ० १६८ पं० ५॥ २ °**लम्बनसामान्य**° प्र०॥ ३ °**षवैल**° प्र०॥ ४ **अन कार्यो**° प्र०॥ ५ °**युक्तप्रति**° भा०॥ ६ **तदसद्विल**° प्र०। दृश्यतां पृ० १६१ पं० ७॥ ७ °**मत्कार्यमसत्** भा०॥ ८ **एतदपिपर्यय**° प्र०॥ ९ इत्यादिरपि ग्रन्थ इत्याशयः॥ १० दृश्यतां पृ० १६४ पं० १॥ ११ दृश्यतां पृ० १६४ पं० २॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्मात् कार्यं सत् कारणवत्। ननु सत्त्वेऽपि कारणवत् प्रत्यक्षत्वं प्रसज्यते, न, अव्यक्तत्वाद् वितटीखातहस्तीव पूर्वं खननाद् भूगन्धवत्। अत एव च प्रकरणचिन्ता–किं घटादि कार्यं सत्? असत्? अप्रत्यक्षत्वस्य सत्यसति च दर्शनादनेकान्तात्।

विरोधापत्तिः। पुनरपि [१]असदेवकारे त्वसदनवधृतेः पूर्वदोषः। [२]अथोच्यत इत्यादि यावत् कार्या[३]सत्त्ववैलक्षण्याद्वा कारणवदिति स एव ग्रन्थः। **उपादानादिमत्त्वविशेषणकृतो विशेष** इति, अतः कार्यं सदु-
१२१-२ पादानादिमत्त्वात् कारणस्वात्मवत्, वैधर्म्येणाकाशघटवत्। असच्च खपुष्पमनुपादानत्वात् खघटवत्, इतरो निर्वृत्तघटवत्। तथा सत् कार्यं बुद्धिसिद्धत्वाद् निर्वृत्तघटवत्, इतरो नभोघटवत्। असच्च खपुष्पं बुद्ध्यसिद्धत्[४]वात् खघटवत्, इतरो निर्वृत्तघटवत्। एवं सामान्यविशेषाभ्यामपि योज्यम्। **तस्मात् कार्यं सत् कारणवत्**, न तु खपुष्पमित्यर्थः।

आह–**ननु सत्त्वेऽपि कारणवत् प्रत्यक्षत्वं प्रसज्यते**। त्वत्परिकल्पितं मृत्पिण्डावस्थायां कार्यं घटाख्यं प्रत्यक्षं स्यात्, सत्त्वात्, कारणवत् मृत्पिण्डवदित्यर्थ इति। अत्रोच्यते–**न, अव्यक्तत्वात्**। नैष दोषः, कस्मात्? अव्यक्तत्वात्, तस्यां हि मृत्पिण्डावस्थायां घटोऽनभिव्यक्तत्वादिन्द्रियैर्नोपलभ्यते **वितटीखातहस्तीव पूर्वं खनना[५]त्,** त एव हि मृदवयवा भित्तिगताः खननात् प्रागपि विद्यमानाः [६]खननोत्तरकालं हस्त्याकारव्यपदेशं लभन्ते, न च ते प्रागभिव्यक्तेरनुपलब्धत्वान्न सन्ति। अथवा कार्ये सत्यपि
१२२-१ ह्यव्यक्ते **भूगन्धवद**प्रत्यक्षत्वं कार्यस्य, यथा भुवो गन्धो विद्यमानोऽपि न घ्राणेन्द्रियगोचरमागच्छत्यव्यक्तत्वात्, सलिलसिक्तस्तूत्तरकालमभिव्यक्त उपलभ्यते, तथा मृदवस्थायामप्रत्यक्षो घटः कुलालप्रयत्नदण्डचक्रसूत्रादिकारणाभिव्यञ्जितः पश्चादुपलभ्यते, अतस्तस्य प्रत्यक्षत्वं भवतीति को दोषः? **अत एव च प्रकरणचिन्ते**ति प्रकरणसमदोषोऽनेका[७]न्तात्, उक्तमनैकान्तिकत्वमस्य हेतोः। **यत एव प्रकरणचिन्ता स निर्णयार्थमपदिष्टः सन् प्रकरणसमः** [न्या०सू० १।२।७], इह हि घटादेः कार्यस्याप्रत्यक्षत्वादेव चिन्ता समुत्पन्ना–**किं घटादि का[८]र्यं सत्? असत्?** इति, **अप्रत्यक्षत्वस्य सति असति च दर्शनाद्** मूलोदकादौ खरविषाणादौ [९]चेत्यतो व्यभिचरत्[१०]यप्रत्यक्षत्वं तथा सत्त्वमपि प्रत्यक्षाप्रत्यक्षयोर्दर्शनात् सतोऽप्रत्यक्षस्य मेरूत्तरकुरुद्वीपग्रहगृहीतग्रहादेः खरविषाणादेश्चासत इत्य**नेकान्ता**दिति। एवं तर्हि दर्शनादर्शनयोः प्रादुर्भावाप्रादुर्भावयोश्च समानः प्रकरणसमदोष इति चेत्, न, जन्मप्रकाशविषयविशेषस्योक्तत्वात्। उपादानादिमत्त्वाविशेषाच्च त्वत्पक्षे न समानो दोष इति।

---

१ दृश्यतां पृ० १६५ पं० ३ ॥ २ **अथोच्यतेत्यादि** य०। अत्र 'अथोच्येतेत्यादि' इति पाठः स्यात्। दृश्यतां पृ० १६५ पं० ४ ॥ ३ दृश्यतां पृ० १६७ पं० २ ॥ ४ **°त्वात् घट°** प्र० ॥ ५ **°नात् एव हि** भा०। **°नात् एवं हि** य० ॥ ६ **खननेनोत्तरकालं** भा० ॥ ७ **°कान्तत्वात्** य०। अत्र 'अनैकान्तिकत्वात्' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ८ **ससोदसदिति अप्रत्य°** य०। **ससोदसति अप्रत्य°** भा०। ९ **वेत्यतो** पा० ही० रं० भा० ॥ १० **°त्यप्रत्यक्षणं तथा** पा० रं० ही० भा०। **°त्यप्रत्यक्षाणं तथा** डे० लीं० वि० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं तर्हि मयापि शक्यं वक्तुम्–यदेतत् सन्नाम ततोऽन्यत् कार्यं तद्विकल्पासामर्थ्याद् घटपटवत्। चतुर्षु विकल्पेषु द्वयोः प्रतिपक्षवादापत्तेस्त्यागादुभयसत्त्वमन्यतरसत्त्वं च स्यात्। तद्यदि तावदुभयसत्त्वं ततः सत्त्वाविशेषादेवाविशेषे सर्वत्वैकत्वभेदो न स्यात्, कार्यैकत्ववत् कारणैकत्वमपि स्यात्। अथ न कार्यैकत्ववत् कारणैकत्वं सच्च कार्यमिति निश्चितं तद्वैलक्षण्यान्न तर्हि सत् कारणम्, असत्, सद्विलक्षणत्वादुदुम्बरपुष्पवत्, इतरो निर्वृत्तघटवत्। ननु घटसत्त्वं पटसत्त्वविलक्षणम्, न असतो वैलक्षण्यादितरेतरासत्त्वात्। अथैवमपि वैलक्षण्ये कारणसत्त्वनिश्चयो न निवर्ततेऽनेकात्मकं च तत्, न तर्ह्येकात्मकत्वात् कार्यं सत्। सत्त्व एकात्मकं न भवेत्, सत्त्वात्, कारणवत्। शेषं पूर्ववद्विपर्ययेण। तथानुवृत्तिव्यावृत्त्या-

---

एवं तर्हीत्यादि यावत् **तथोपसंहारमेव**। इतर आह–त्वदुक्तसाधनप्रपञ्चस्य कार्यासत्त्वेऽपि तुल्यत्वाद् **मयापि शक्यं वक्तुम्**, कार्यसत्त्वस्य कारणे त्वन्मतस्य निवारणे कृते कार्यासत्त्वं भवितुमर्हति। तत्साधनं श्रूयताम्–**यदेतत् सन्नाम**[1] कारणं **ततोऽन्यत् कार्यम्, तद्विकल्पासामर्थ्यात्, घटपटवत्**। अत्रापि १ कारणं सत् कार्यं सत्, २ कारणं सत् कार्यमसत्, [३ कारणमसत् कार्यं सत्,] ४ कारणमसत् कार्यमसदिति **चतुर्षु विकल्पेषु द्वयोः** पूर्ववत् **प्रतिपक्षवादापत्तेस्त्यागादुभयसत्त्वमन्यतर-** १२२-२ **सत्त्वं च स्यात्**। तत्रोभयसत्त्वे तावत् **तद् यदि तावदुभयसत्त्वं ततः सत्त्वाविशेषादेवाविशेषे सर्वत्वैकत्वभेदो न स्यात्**। मृदेव सर्वं पिण्डशिवकादिघटपिठरकपालादि, कार्यं त्वेकमेव पिण्ड इति वा शिवक इति वाऽनन्यदेकम्। एवं तु **कार्यैकत्ववत् कारणैकत्वमपि स्यात्। अथ न कार्यैकत्ववत् कारणैकत्वं सच्च कार्यमिति निश्चितम्, तद्वैलक्षण्यान्न तर्हि सत् कारणम्, असत्**[2]**, सद्विलक्षणत्वादुदुम्बरपुष्पवत्, इतरो निर्वृत्तघटवत्। ननु घटसत्त्वं**[3] **पटसत्त्वविलक्षणम्, न, असतो वैलक्षण्यादितरेतरासत्त्वात्। अथैवमपि वैलक्षण्ये कारणसत्त्वनिश्चयो**[4] **न निवर्ततेऽनेकात्मकं च तत्** सर्वात्मकमित्यर्थः, **न तर्ह्येकात्मकत्वात् कार्यं सत्। सत्त्व एकात्मकं न भवेत् सत्त्वात् कारणवत्**, एतत् प्रथमचक्रकम्। **शेषं पूर्ववद्विपर्ययेणे**त्यादि यदुक्तं तदपि, अथ न कारणसर्वत्ववत् कार्यसर्वत्वं सच्च कारणमिति निश्चितम्, तद्वैलक्षण्यान्न तर्हि सत् कार्यम्[5], असत्, सद्विलक्षणत्वादुदुम्बरपुष्पवत्, इतरो घटवत्। ननु घटसत्त्वं[6] पटसत्त्वविलक्षणम्, न, असतो वैलक्षण्यादितरेतरासत्त्वात्[7]; एतद् द्वितीयं चक्रकम्। अतः सर्वात्मकत्वसतः कारणादन्यत् कार्यमेकात्मकत्वात् कुम्भादिव एककणः। एकात्मकत्वसतश्च कार्यादन्यत् कारणं सर्वात्मकत्वात् कणादिव कुम्भ इति।

तथानुवृत्तिव्यावृत्ती, अनुवृत्तिः 'मृद् मृद्' इति पिण्डशिवकादिषु, व्यावृत्तिः 'घटः पिठरः'

---

१ **समानकारणं** य०। द्रष्टव्यतां पृ० १६० पं० ४॥ २ **असससतद्विलक्ष°** पा० भा०। **असतद्विलक्ष** डे० लीं० दे० ही०। **असकृद्विलक्ष°** वि०॥ ३ **घटत्वं** प्र०॥ ४ **कारणकार्यसत्त्व°** प्र०॥ ५ **कार्यमसद्विलक्ष°** प्र०॥ ६ **घटसत्त्वविलक्षणं** प्र०॥ ७ **°तरात् सत्वात्** भा०। **°तरातसत्त्वात्** य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिविचारेण पूर्ववचक्रकद्वयप्रवर्तनं तथोपसंहारमेव ।

न, असिद्धत्वात् । यदि हि घटो मृत्पिण्डादन्यः, तद्वदेव पिण्डादेरप्यसर्वत्वं

१२३-१ इति । तद् यदि तावदुभयसत्त्वं सत्त्वाविशेषादेवाविशेषे कार्यव्यावृत्तिवत् कारणव्यावृत्तिरपि स्यात् सत्त्वाद् घटवत् । अथ न कार्यव्यावृत्तिवत्[1] कारणव्यावृत्तिः सच्च कार्यमिति निश्चितम्, तद्वैलक्षण्यान्न तर्हि सत् कारणम्, असत्, सद्विलक्षणत्वादुदुम्बरपुष्पवत्, इतरो निर्वृत्तघटवत्[2] । ननु घटसत्त्वं पटसत्त्वविलक्षणम्, न, असतो वैलक्षण्यात् । अथैवमपि वैलक्षण्ये कारणसत्त्वविनिश्चयो न निवर्ततेऽनुवृत्त्यात्मकं च तत्, न तर्हि व्यावृत्त्यात्मकत्वात् कार्यं सत्, सत्त्वे न व्यावर्तेत सत्त्वात् कारणवत्; द्वितीयं चक्रकमविपर्ययेण[3] । शेषं पूर्ववद् विपर्ययेणेत्यादि, अथ न कारणानुवृत्तिवत् कार्यानुवृत्तिः सच्च कारणमिति[4] निश्चितम्, तद्वैलक्षण्यान्न तर्हि सत् कार्यम्[5], असत्, सद्विलक्षणत्वादुदुम्बरपुष्पवत्, इतरो घटवत् । ननु घटसत्त्वं पटसत्त्वविलक्षणम्, न, असतो वैलक्षण्यात्; प्रथमं विपर्ययचक्रकम् । अथैवमपि वैलक्षण्ये तत्सत्त्वविनिश्चयो न विनिवर्ततेऽनुवृत्त्यात्मकं च तत्, न तर्हि व्यावृत्त्यात्मकत्वात् कार्यं सत्, सत्त्वे न व्यावर्तेत सत्त्वात् कारणवत्; एतद् द्वितीयं चक्रकं[6] विपर्ययेण । अतोऽनुवृत्तिसतः कारणादन्यत् कार्यम्, व्यावृत्तत्वात्, पङ्क्तेरिवैकः । व्यावृत्तिसतश्च कार्यादन्यत् कारणम्, अनुवृत्तत्वात्, एकस्मादिव पङ्क्तिः ।

आदिग्रहणादसदनुक्रान्providence

आदिग्रहणादसदनुक्रान्ताविर्भावानाविर्भावचक्रकद्वयमपि योज्यम्[7] । यदि तावदुभयसत्त्वं ततः सत्त्वाविशेषादेवाविशेषे प्राक् कार्यानाविर्भाववत् कारणानाविर्भावोऽपि स्यात् । अथ न प्राक् कार्यानाविर्भाव-
१२३-२ वत् कारणानाविर्भावः सच्च कार्यमिति निश्चितम्, तद्वैलक्षण्यान्न तर्हि सत् कारणम्[8], असत्, सद्विलक्षणत्वाद् *घटवत्, इतर*[9] उदुम्बरपुष्पवत् । ननु घटसत्त्वं पटसत्त्वविलक्षणम्, न, असतो वैलक्षण्यात् । अथैवमपि वैलक्षण्ये कारणसत्त्वविनिश्चयो न विनिवर्तते नित्याविर्भावात्मकं च तत्, न तर्हि संततानाविर्भावात्म[10]-कत्वात् कार्यं सत्, सत्त्वे प्रागप्याविर्भवेत् सत्त्वात् कारणवत्; प्रथमम्[11] । शेषं पूर्ववदेव विपर्ययेण — अथ न कारणसतताविर्भाववत् कार्यसतताविर्भावः सच्च कारणमिति[12] निश्चितम्, तद्वैलक्षण्यान्न तर्हि सत् कार्यम्, असत्, सद्विलक्षणत्वादुदुम्बरपुष्पवत्[13], इतरो घटवत् । ननु घटसत्त्वं पटसत्त्वविलक्षणम्, न, असतो वैलक्षण्यात्; द्वितीयं चक्रकम् । इत्येवमाविर्भावानाविर्भावविचारेण द्वे चक्रके मते इति ।

अत्रोच्यते — **न, असिद्धत्वात्** । नैतदुपपद्यतेऽस्मत्पक्षसाधनवत् त्वत्पक्षसाधनम्, किं कारणम् ? असर्वत्वादिहेतूनामसिद्धत्वात्, यस्मादस्माकं 'सर्वमेव अनुवृत्तिरेव कारणमेव उपादानमेव बुद्धिसिद्धमेव'

---

१ °वृत्तिस्तत् प्र० ॥ २ इतरो वृत्त° भा० । इतरो वृत्त° य० ॥ ३ चक्रमवि° प्र० ॥ ४ कारमिति प्र० ॥ ५ कार्यमसद्विल° प्र० ॥ ६ चक्रकं पर्ययेण प्र० ॥ ७ योज्यम प्र० ॥ ८ कारणमसद्विल° प्र० ॥ ९ * * एतच्चिह्नान्तर्गतो घटवत्, इतर इति पाठो यद्यपि सर्वास्वपि प्रतिषु दृश्यते तथापि नायं कथञ्चिदपि सङ्गतः प्रतीयते ततः परित्याज्य एव । वस्तुतस्तु सद्विलक्षणत्वादुदुम्बरपुष्पवत्, इतरो घटवत् इत्येवात्र वक्तुमुचितम्, दृश्यतां पृ० १६९ पं० १८,२३, पृ० १७० पं० ५,९,२१ ॥ १० सतताविर्भावात्मकत्वस्याभावादित्यर्थः ॥ ११ प्रथमं चक्रकमित्यर्थः ॥ १२ कारणसतताविर्भावः सच्च कारणमिति प्र० ॥ १३ °वत् इतरो घटसत्वविलक्षणं भा० । °वत् ननु घटसत्वं पटसत्वविलक्षणं य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वस्मादन्यत्वात् । तस्मात् सर्वस्याप्यसर्वत्वात् सर्वत्वैकत्वभङ्गचतुष्टयाभावः । तथानुवृत्त्याद्यभावश्च तत एव नास्ति ।

स्वोक्तविरोधादि च । यदि कार्यं कथमसत्? अथासत् कथं कार्यम्? मृदेव हि घटः क्रियते घटतया व्यज्यते दीपेनेव क्रियया । तथा च विशेषणविशेष्याप्रसिद्धिरपि ।

इतीष्टं तस्मादसर्वत्वादेरसिद्धत्वात् तद्विकल्पाभावात् तदसमर्थविकल्पत्वासिद्धिः । ततः कारणात् कार्यमन्यदित्येतन्न सिध्यतीति । तत्रासर्वत्वासिद्धौ प्रतिपादितायां व्यावृत्त्यादीनामप्यसिद्धिरापादितैव भविष्यतीत्यसर्वत्वाभावमेवापादयितुमाह—**यदि हि घटो**ऽसर्वकार्यत्वाभिमतो **मृत्पिण्डात्** [1]सत्त्वाभिमता**दन्य** इतीष्यते **तद्वदेव** घटवदेव कार्य[2]वदेव **पिण्डादेरप्यसर्वत्वं** विप्रकृष्टस्यापि, किमुत सन्निकृष्टस्य शिवकादेः? **सर्वस्मादन्यत्वाद्** घटवत् । **तस्मादे**कैकस्यासर्वत्ववत् **सर्वस्याप्यसर्वत्वात्** सर्वत्वाभाव इति **सर्वत्वैकत्वभङ्गचतुष्टयाभावः ।** तदसमर्थविकल्पत्वमप्यत एव नास्ति । **तथानुवृत्त्याद्यभावश्च तत एव नास्ति,** १२४-१ यथैकस्य घटस्य मृदनुवृत्त्यभावस्तथा सर्वघटेषु तथा शिवकादिष्वप्यभाव इत्यनुवृत्त्यभावादनुवृत्तिव्यावृत्तिकृतविकल्पाभावश्च । एवं कारणोपादानबुद्धिसिद्धसामान्यैः [3]सत्प्रतिपक्षैर्विकल्पचतुष्टयासिद्धिस्तदसमर्थविकल्पासिद्धिश्चापादनीया । ततः कारणादन्यत् कार्यमित्येतन्न सिध्यति ।

किञ्चान्यत्, **स्वोक्तविरोधादि च,** स्ववचनाभ्युपगमलोकव्यवहारप्रत्यक्षानुमानविरोधा **आदि**ग्रहणात् । [4]**प्रमाण**ग्रहणात् प्रत्यक्षानुमानग्रहणम् । विशेषस्वरूपविरोधौ च कण्ठोक्तौ वक्ष्यति । तत्र स्ववचनविरोधस्तावद् [5]**यदि कार्यं** घटवत् क्रियते तत् **कथमसत्** खपुष्पवत् कार्यं च? स्वेन वचनेन [6]स्वमेव वचनं विरुध्यते । **अथासत्** खपुष्पवत् **कथं कार्यं** घटवत्? इति सैव स्ववचनविरोधभावना विपर्ययेण तयोरेव शब्दयोर्विरोधदर्शनार्था । यस्माद् **मृदेव हि घटः क्रियते ।** हिशब्दो यस्मादर्थे, यस्मात् सर्पस्फटाटोपकु[7]ण्डलीभवनवद् मृद एव घटीभवनं तथा [8]प्रकाशनं व्यक्तिर्विमलता क्रियते । [9]करणं यथा 'पृष्ठं कुरु पादौ कुरु' इति । तद्दर्शयन्नाह—**घटः क्रियते घटतया व्यज्यते** विद्यमान एव व्यक्तीभवति । को दृष्टान्तः? स एव घटो **दीपेनेव क्रियया** व्यज्यते दण्डादिव्यापारणात्मिकया । **तथा च विशेषणविशेष्याप्रसिद्धिरपि,** 'कार्यमसत्' इति [10]व्याघातात् प्रोक्तस्ववचनविरोधभावनात एव खपुष्पनिर्वृत्तघटयोरिव न कार्यमसता विशेष्यं नाप्यसत् कार्येणेति न परस्परतो विशेषणं विशेष्यं [11]वेति विशेषणविशेष्याप्रसिद्धिरस्मादेव कारणात् । १२४-२

---

१ **सत्वाभि**° प्र० । अत्र **सर्वत्वाभि**° इति पाठः समीचीनतर इति भाति ॥ २ °**वदेव दण्डादेरप्य**° प्र० । अत्र सर्वप्रतिषु **दण्डादे**° इति पाठोपलम्भेऽपि **पिण्डादे**° इत्येव पाठः समीचीनो भाति ॥ ३ **सत्प्रति**° य० ॥ ४ दृश्यतां पृ० १७२ पं० २ ॥ ५ दृश्यतां पृ० १६५ पं० १२ ॥ ६ **स्वयमेव** भा० ॥ ७ °**कुण्डलकीभव**° भा० ॥ ८ °**शनां** रं० ही० । °**शतां** रं० ही० विना ॥ ९ "करोतिरभूतप्रादुर्भावे दृष्टो निर्मलीकरणे चापि वर्तते । पृष्ठं कुरु । पादौ कुरु । 'उन्मृदान' इति गम्यते ।" इति **पात**ञ्जलमहाभाष्ये १।३।१, ६।१।२, ६।१।४५ ॥ १० °**घाताप्रोक्त**° वि० विना । °**घातः प्रोक्त**° वि० ॥ ११ **चेति** वि० रं० ही० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अत एव यत्नेन महता प्रतिपादनार्थं न क्रियायां खेदः कर्तव्यो भवति।

अज्ञानप्रतिबद्धैकान्तेऽपि च स्ववचनविरोधः। प्रमाणविरोधस्तु प्रस्तुत एव। ज्ञापकत्वाद्विशेषविरोधः। अप्रयोगप्रसङ्गात् स्वरूपविरोधः।

अतः पूर्वोदितदोषासम्बन्धेनेदं प्रतिपत्तव्यम्—आत्मैव सामान्यं स्वावस्था-

---

अत एवेत्यादि [1]यावत् **खेदः कर्तव्यो भवति।** यत् त्वया व्याख्यानमनुष्ठितम् '[2]इतिकर्तव्यतैव कर्तव्यता' इति **यत्नेन महता** पूर्वोत्तरचोद्यपरिहारपक्षाव्यवच्छेदवता **प्रतिपादनार्थं न क्रियायां** क्रिया-व्याख्यानार्थः **खेदः कर्तव्यः**। किं कारणम्? सामान्यादिवस्तुविचारखेदस्याव्यवस्थितपरमार्थत्वात् सर्वस्य [3]क्रियाया एवोपदेशो न्याय्य इत्यस्याभ्युपगमस्योपरोधात्। एवं तावज्ज्ञानपूर्वकक्रियोपदेशपक्षे स्ववचनविरोध उक्तः। यस्मिन्नपि 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यादिक्रियोपदेशोपजीवनं नास्ति '[4]अज्ञानप्रतिबद्धमेव सर्वम्' इत्येकान्तस्तस्मिन्**नज्ञानप्रतिबद्धैकान्तेऽपि** [5]चाज्ञानप्रतिबद्धत्वे **स्ववचनस्य विरोधः**, 'असत् कार्यम्' इति ज्ञात्वोक्तं चेन्न तर्हि सर्वमज्ञानप्रतिबद्धमेवास्य ज्ञानप्रसिद्धत्वात्। अथाज्ञात्वा कथं प्रतिपादकं साधकं च? इति **स्ववचनविरोधः**। त्वयापि 'एतदेवम्' इति निश्चित्याभ्युपगम्योक्तत्वादज्ञानप्रतिबद्धाभ्युपगमस्य च तेन विरोधात् 'एवम्' इत्यवगमादभ्युपगमविरोधः कृतः। लोके ज्ञानव्यवहारात् तद्विरोधः, ज्ञानपूर्वको हि लोकव्यवहारः, ततस्तस्याज्ञानप्रतिबन्धाभ्युपगमाप्रतीतेर्लोकरूढिविरोधः। **प्रमाणविरोधस्तु प्रस्तुत एवे**ति, प्रत्यक्षविरोधस्तावत् तथा लोके दृष्टत्वात्, क्रिययाभिव्यज्यमानस्य घटादेः कार्यस्य दीपेनेव सत उपलब्धेरनुमानविरोधः। **ज्ञापकत्वाद् विशेषविरोध** इति, अस्य 'असत् कार्यम्' इति ज्ञापकवाक्यस्य
१२५-१ ज्ञापकत्वविशेषेष्टेः प्रत्यक्षस्ववचनादिविरोधेषु धर्मविशेषविपर्ययसिद्धेर्विशेषविरोधः। तेष्वेवा**प्रयोगप्रसङ्गाद्** धर्मस्वरूपस्य प्रतिपिपादयिषितस्य निराकरणाद् **धर्मस्वरूपविरोधः**। एवं धर्मिस्वरूपविरोध[6]स्तदुभय-स्वरूपविरोधश्च[7] यथायोगमार्याद्य[8] इत्यलमतिप्रसङ्गिन्या कथया। तस्मादयुक्तोऽसत्कार्यवादः 'अग्निहोत्रं जुहुयात्, [9]इतिकर्तव्यतैव कर्तव्यता, [10]कुर्यात्' इति चाभ्युपगतः परेणेति।

अत इत्यादि। अत एतेभ्यो दोषेभ्यो निःसृत्य किं प्रतिपत्तव्यम्? उच्यते—**अतः पूर्वोदितदोषा-सम्बन्धेन,** ये पूर्वमुदिता विधिवादिना सामान्यैकान्तवादे विशेषैकान्तवादे सामान्यविशेषनानात्ववादे दोषा मयापि च ये दोषा उक्ताः सामान्यादिविचारप्रत्याख्यायिनः क्रियोपदेशवादिनोऽज्ञानवादिनश्च तेषा-मुभयेषामपि दोषाणामसम्बन्धेन **इदं प्रतिपत्तव्यम्—आत्मैव सामान्य**मिति। ननु पूर्वत्र दूषितमेवैतद् मतम् '[11]**आत्मैव सामान्यम्**' इति '[12]**सुखं सुखं च सुखादिसमुदयश्च**' इत्यादिपूर्वोत्तरपक्षप्रपञ्चेनेति, अत्रो-च्यते—न, आत्मशब्दस्य पुरुषपर्यायत्वादवयवानभ्युपगमात् समुदायवादपरिहारेणास्य पुरुषसामान्यस्या-वस्थावतोऽवस्थाभ्योऽनन्यस्य तत्स्वरूपावस्थानात् [13]तद्वैधर्म्यात्। 'आत्मा' इति न वस्तुस्वरूपपर्यायवाचिनोऽत्र

---

१ **यावखेदः** वि० विना॥ २ दृश्यतां पृ० १४२ पं० १॥ ३ दृश्यतां पृ० ४५ पं० २॥ ४ दृश्यतां पृ० ११२ पं० १॥ ५ **च ज्ञान**° प्र०॥ ६ दृश्यतां पृ० ४७८-२॥ ७ °**धास्तदुभयस्वरूपविरोधाश्च** प्र०॥ ८ °**पाद्या** भा०॥ ९ दृश्यतां पृ० १४२ पं० १॥ १० दृश्यतां पृ० १२६ पं० २॥ ११ दृश्यतां पृ० १२ पं० ३॥ १२ दृश्यतां पृ० १३ पं० १॥ १३ पूर्वविवक्षितात्मतो वैधर्म्यादित्यर्थः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम्, घटग्रीवादिरूपादिनवादिभेदाभेदसमवस्थावत्। एवं च कल्प्यमानं सर्वसर्वात्मकत्वसत्कार्यत्वमूलरहस्यानतिक्रमेण कल्पितम्। अविचारोऽपि च तत्त्वेनैक्यमाश्रित्य न्याय्यः, नाज्ञानप्रतिबन्धात्।

अयं तस्य प्रवृत्तिपर्यायस्य विधेर्विधिः, एवं प्रवृत्तिरित्यर्थः। विधिना भवतीति

ग्रहणम्, किं तर्हि? अतति सततं गच्छति तांस्तानवस्थानविशेषान् स्वरूपापरित्यागेनेति आत्मा, स एव सामान्यं चैतन्यलक्षणम्। एवं तर्हि विशेषाभावे कस्य सामान्यम्? इति सामान्याभावप्रसङ्गः, स मा १२५-२
भूदिति विशेषा वक्तव्याः। उच्यते—सामान्यं पुरि शयनात् पुरुषः, विशेषास्तु तस्यैवावस्थावतोऽवस्था जाग्रत्सुप्तसुषुप्ततुरीयाख्याः। तासां **स्वावस्थानां** पुरुषः सामान्यमिति। किं निदर्शनमिति चेत्, **घटग्रीवादिरूपादिनवादिभेदाभेदसमवस्थावत्**, यथा घटस्य स्थूला ग्रीवाबुध्नमध्यावस्थाः सूक्ष्माश्च रूपादयो देशभेदभिन्नाः कालभेदभिन्नाश्च नवपुराणावस्थाः, तेषामेवावस्थाभेदानामभेदेन समवस्था घट इति तद्वदात्मैव स्वावस्थानां सामान्यम्। **एवं च कल्प्यमानं सर्वसर्वात्मकत्वसत्कार्यत्वमूलरहस्यानतिक्रमेण कल्पित**मिति गुणश्चात्र विद्यते, एवं हि 'सर्वं सर्वात्मकं सच्च कार्यम्' इति मूलरहस्यमेतन्नातिक्रान्तं भवति पुरुषात्मकत्वात् सर्वस्य तद्विकारमात्रत्वाच्च भेदानां तत्रैवान्तर्लयाविर्भावात् सर्वकार्याणां कृकलासवर्णविशेषाणामिव कृकलासे।

अविचारोऽपि चेत्यादि। यदपि च '[1]अनर्थको विवेकयत्नः शास्त्रेषु' इत्यविचारं इष्यते सोऽप्यनेनैव युक्तिमार्गेण **तत्त्वेनैक्यमाश्रित्य न्याय्यः**, तस्य भावस्तत्त्वम्, आत्मनो भावेनैक्यमाश्रित्य न्यायादनपेतो न्याय्यः, **नाज्ञानप्रतिबन्धात्**। यद्यज्ञानप्रतिबन्धादविचारस्ततः [2]स्वयमविज्ञाते प्रमाणप्रमेयभावाभावादयुक्तमित्युक्तम्। इह तु ज्ञानात्मकपुरुषस्वरूपैक्यापत्तिसंनिश्चये[3] निश्चितमेवैतत्, किं विचारेण गतार्थत्वात्, न तु ज्ञातुमशक्यत्वादिति। १२६-१

अयं तस्य प्रवृत्तिपर्यायस्य[4] विधेर्विधिः। [5]विधिः स्थितिराचारः प्रवृत्तिर्मर्यादा इत्यस्य विधिनयस्यायमेव विधिराचारः स्थितिरित्यादि। **एवं प्रवृत्तिरित्यर्थः**, या चैतन्यात्मस्वरूपा प्रवृत्तिः सा [6]विधेर्विधिरित्येतमर्थं व्याचष्टे। यः पुनर्विधिः प्राक्तनः स न युज्यते, यस्माद् **विधिने**त्यादि। **भवतीति[7] भावो** भूप्रकृतिः कर्त्रर्थः[8], **प्रकृतिप्रत्ययौ प्रत्ययार्थं सह ब्रूतः** [पा० म० भा० ३।१।६७] इति वचनात्। भावे घञो विहितत्वाद् भूयत इति भावः, न 'भवति' इति कर्त्रर्थ इति चेत्, तत्रापि येन भूयते समानेन समानो भवतीति भावो णप्रकरणे[9] भुवश्चोपसङ्ख्यानमिति वा कर्ता सामान्यमित्येवं व्यवस्थितेऽर्थे सर्वतन्त्र-

---

१ दृश्यतां पृ० ११ पं० ४॥ २ °**रयिष्यते** य०। °**रद्वयि**(रस्त्वये?)**ष्यते** भा० ॥ ३ °**सन्निश्चये** भा० ॥ ४ °**स्य विधिर्विधिविधिः स्थितिः** य०। °**स्य विधिः स्थितिः** भा० ॥ ५ दृश्यतां पृ० १० पं० १॥ ६ **विधेर्विधिरि**° वि० विना ॥ ७ **भवती भावः** भा० पा०। **भवति भावः** भा० पा० विना ॥ ८ **भूप्रकृतिकर्त्रर्थः** भा० ॥ ९ "विभाषा ग्रहः [पा० ३।१।१४३] व्यवस्थितविभाषा चेयम्। एतज्जलचर इत्यादिना स्पष्टीकरोति। भवतेश्चेति वक्तव्यम्। भवतेश्च विभाषा णो भवतीत्येतदर्थरूपं व्याख्येयम्। व्याख्यानं तु विभाषेति योगविभागात् कर्तव्यम्।" इति पाणिनीयव्याकरणस्य **जिनेन्द्रबुद्धिविरचितायां काशिकावृत्तौ** ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावो भेदाभेदनानातासु न भावो भवितुरभाव इति विविच्यते, न च विविच्यते च। तथा न भवत्येव विधित्वं विधेः, लोकवदिति विधानाद्विधिरुत्सर्ग एवं न भवति। यथा तत् तथान्यथा च भवति तथा वक्तव्यमिति विधिर्विहितो भवत्युत्सृष्टः।

सिद्धान्तेन व्याकरणेन तत्र विशेषमात्रवादे देशकालभेदे परस्परविविक्तद्रव्यदेशकालभावभिन्ने भवनेऽभेदे च द्रव्यादितया भवनमात्रे सामान्यवादे नानाभावे च सामान्यविशेषयो**र्भेदाभेदनानातासु** यथासङ्ख्यं बौद्धसाङ्ख्यवैशेषिकमतासु दोषान्न **भावः**, भवितुरभावात् तत्प्रकृत्यर्थकर्तुरभावात्, **इति**शब्दस्य हेत्वर्थत्वात् पञ्चमीमप्रयुज्य **भवितुरभाव** इत्युक्तं प्रागुक्तन्यायेन भवितुरभावात्। भवतीति भावो घटादिरिति व्याकरणदृष्टेन निरुक्त्यर्थेन समर्थितो विधिना [1]'**विविच्यते च** सादृश्यासादृश्याभ्याम्। सादृश्यात् समानो भवतीति पृथक् प्रतिज्ञायते, तेषु विकल्पेषु दोषाणामभिहितत्वाद् निर्दोषभवनोक्तेश्च विविच्यते विधिना। किमेवं विविच्यत एव ? नेत्युच्यते, **[न च विविच्यते] चे**ति, प्रतिज्ञा सा पुनरविविक्तैव कृता
१२६-२ '**को ह वैतद्वेद, किं वानेन श्रौतेन**' इति वचनात्। स एष विधेर्विधिर्न भवति विविच्यमानार्थविधानात् स्ववचनविरोधदोषैर्दंशेन[3] विवेकादविवेकाच्च। यत्राप्यंशेन विवेकस्तत्र विविच्यमानांशेऽपि च यथा भवता विधिनयवादिनाभिहितं तद्वद् विविच्यते न च विविच्यते[4] चापि परमतदूषणात् स्वमतसाधनाच्च घटादिर्भावो विविच्यते न च विविच्यते **तथा न भवत्येव विधित्वं विधेः**, न विधिर्विहित एवमित्यभिप्रायः। कथं पुनर्विधीयते इति चेत्, लोकवत्, [5]लोक इव लोकवत्, **लोकवदिति विधानाद्** यदि लोकवदेव विधीयते **विधिरुत्सर्ग एवं**[6] **न भवति**। कथं न भवति ? [7]**किं न एतेन यदि कारणम् ?** यदि न च विविच्यते प्रतिज्ञापि तदंशद्वारिका[8] न कार्या इत्याद्यविचार्य विधानान्न भवति। किं तर्हि ? यदुक्तसूक्ततया सर्वात्मकत्वेन [9]विधिरुत्सर्गः सिध्यति, तद्यथा **यथा तत् तथान्यथे**त्यादि। अथवा यथा लोके दृष्टं तथा [10]विधेर्विधिर्भवति। कथं पुनर्लोके [11]विधेर्विधिः ? उच्यते—**इति विधिरि**त्यादि। **इति** इत्थमनन्तरं वक्ष्यमाणो [12]विधिर्विधिर्भवति लोके, **यथा तत् तथान्यथे**त्यादि, मृत्पिण्डशिवकादिप्रकारेण तथान्यथा **च भवति** यथा तथा वक्तव्यम्, तच्चातच्च ययोपपत्त्या भवति **तथा वक्तव्यम्**, एष [13]विधेर्विधिः। एवं सोऽविवक्षितव्यावृत्तिरनङ्गीकृतभेदस्तिरस्कृतविशेषो निर्व्यावृत्तिरेव **विधिर्विहितो भवत्युत्सृष्ट**[14] इति पर्यायशब्देनोत्सर्गो विधिरिति सर्वत्रास्य[15] विधिलक्षणस्य दर्शयति।

---

१ **विविच्यते च सादृश्याभ्यां सादृश्या समानो भवतीति** प्र०। अत्र 'विविच्यते च सादृश्यासादृश्याभ्याम्। समानो भवतीति' इत्यपि पाठः स्यात्॥ २ दृश्यतां पृ० ३५ पं० ४॥ ३ °**दंशेनविवेकात्** २ **च यत्राप्यंशेन विवेकस्तत्र** पा० डे० लीं० वि०। °**दंशेन विवेकात् च यत्राप्यंशेन विवेकस्तत्र** रं० ही०। °**दंशेनाविवेकस्तत्र** भा०। अत्र '°दंशेन विवेकाच्च। यत्राप्यंशेन विवेकस्तत्र' इत्यपि पाठः स्यात्॥ ४ °**च्यते वपि** प्र०॥ ५ **लोके** भा०॥ ६ **एव** य०॥ ७ दृश्यतां पृ० ३४ पं० ४॥ ८ **तदर्शद्वारिका** प्र०॥ ९ **विधेरु**° य०॥ १० **विधिर्विधि**° प्र०॥ ११ **विधिर्विधिः** भा०। **विधिः** य०॥ १२ **विधि(धे ?)र्विधि**° भा० वि०। **विधिविधि**° पा० डे० लीं०। **विधि**° रं० ही०॥ १३ **विधिर्विधिः** भा०। **विधिविधिः** य०॥ १४ °**त्युत्सृ इति** प्र०॥ १५ **°त्रास्या** प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तद्यथा—पुरुषो हि ज्ञाता ज्ञानमयत्वात्। तन्मयं चेदं सर्वं तदेकत्वात् सर्वैकत्वाच्च भवतीति भावः। को भवति? यः कर्ता। कः कर्ता? यः स्वतन्त्रः। कः स्वतन्त्रः? यो ज्ञः।

ननु क्षीररसादि दध्यादेः कर्तृ, न च तज्ज्ञम्, न, तत्प्रवृत्तिशेषत्वाद् गोप्रवृत्तिशेषक्षीरदधित्ववत्, ज्ञशेषत्वाद्वा चक्रभ्रान्तिवत्।

ननु चक्रभ्रान्तावपि को भविता? इति प्रत्यपेक्षायां घटभवनव्यवहारवद् मृद्

कोऽसौ? निदर्श्यतामिति चेत्, उच्यते—**तद्यथा पुरुषो ही**त्यादि। उक्तनिरुक्तः पुरुषशब्दः, १२७-१
हिशब्दो यस्मादर्थे[1], यस्मादसौ **ज्ञाता** ज्ञानशीलो ज्ञानधर्मा साधुज्ञायी वा पुरुष एव। ज्ञातृत्वं च **ज्ञानमयत्वात्,** ज्ञानावयवो ज्ञानविकारो वा ज्ञानमयः स उपयोगलक्षणत्वात्। ततः किमिति चेत्, **तन्मयं चेदं सर्वं** देवमनुजतिर्यङ्नरकपृथिव्यादिघटादिभेदभिन्नं जगत्, **तदेकत्वात्** तस्य पुरुषस्यैकत्वात् वस्तुत्वात् तदेकत्ववत् सर्वैकत्वम्, **सर्वैकत्वाच्चै**कं स च जगच्च सर्वं **भवतीति भावः,** न तु घटपटादिभेदेन भवति ज्ञानमयपुरुषात्मकत्वात्। येन भूयते स एव भवतीति भावः। स आत्मैव सामान्यं समानो भवतीति। तन्निर्णयार्थं प्रश्नोत्तरक्रमेण ग्रन्थः—**को भवती**त्या[2]दिर्गतार्थो यावत् **कः स्वतन्त्रः? यो ज्ञ** इति, अज्ञस्यास्वातन्त्र्यादेव कर्तृत्वाभावात्[3], काष्ठादिविप्रकीर्णपचननिर्वर्तनवत्, यथा काष्ठैः स्थाल्यामोदनं देवदत्तः पचतीत्यत्र देवदत्त एव पचनस्य निर्वर्तको ज्ञातृत्वात् न काष्ठादीनि[4] तथा पुरुष एव भवतीति भावः।

इतर आह—**ननु क्षीररसादि दध्यादेः कर्तृ**। क्षीराद्दधि भवत्यज्ञात् कर्तृणः[5], रसाद् गुडः, **न च तत्** क्षीरं रसो वा **ज्ञ**मिति ज्ञकर्तृत्वमनैकान्तिकमिति। एतच्च **न, तत्प्रवृत्तिशेषत्वात्,** तस्यैव ज्ञस्य प्रवर्तमानस्य प्रवृत्तेरपरिसमाप्तायाः शेषत्वात्। कालक्रमभेदकृतस्तु विशेषो न निवार्यते। यथोक्तम्—

शर्करासमवीर्यस्तु दन्तनिष्पीडितो रसः।
दन्तनिष्पीडितः श्रेष्ठो यान्त्रिकस्तु विदाहकृत्॥ [[6]] इति।

गोप्रवृत्तिशेषक्षीरदधित्ववत्, यथा गोर्धेनोः प्रवृत्तेरपरिसमाप्तायाः क्षीरदधिनवनीतघृतनिष्पन्दनादि १२७-२
शेषस्तथा पुरुषप्रवृत्तिशेष एव जगदिति। **ज्ञशेषत्वाद्वा चक्रभ्रान्तिवत्**। का वा सा प्रवृत्तिः प्रवर्तमानपुरुषव्यतिरिक्ता, सर्वस्य ज्ञशेषत्वात्? दृष्टान्तश्चक्रभ्रान्तिः, यथा कुलालप्रयत्नभ्रमितस्य चक्रस्य भ्रान्तौ कुलालप्रवृत्तिशेषत्वं ज्ञशेषत्वमेवं दध्यादेरपि ज्ञशेषत्वम्, गोर्ज्ञस्य शेषत्वं दध्नः, गोभुक्ततृणाद्याहारस्य रसरुधिरादिपरिणतस्य ज्ञमन्तरेण क्षीरदध्यादिभावो नास्ति।

नन्वित्यनुज्ञापने, **चक्रभ्रान्तावपि को भविता? इति प्रत्यपेक्षायां** जिज्ञासायां मूलभविता-

---

१ **यस्मादर्थे** प्रतिषु नास्ति॥ २ °**त्यादिग**° प्र०॥ ३ **कर्तृभावात्** प्र०॥ ४ **काष्ठादीति** वि० विना॥
५ °**ज्ञादकर्तृणः** भा०। °**ज्ञाचकर्तृणः** वि० डे० लीं०। °**ज्ञानकर्तृणः** रं० ही०॥ ६ "वक्त्रप्रह्लादनो हृष्यो दन्तनिष्पीडितो रसः। गुरुर्विदाही विष्टम्भी यान्त्रिकस्तु प्रकीर्तितः॥ १।४५।१५७॥" इति मुद्रितायां **सुश्रुतसंहितायां** पाठः। जेज्जटविरचितायां तद्वृत्तौ तु "शर्करासमवीर्यस्तु दन्तनिष्पीडितो रसः।" इति पाठः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

येन भूयते तदेव । इतरथासौ नैव स्याद् भवितुरभावात् । ज्ञस्यैव सुप्तावस्थत्वाद् न च चक्रदण्डादि करणनिरीहत्वात्, दधीव पयसः, ज्ञशेषसुप्तावस्थत्वात् ।

यथैव हि रूपादयोऽमूर्तत्वेन सूक्ष्मां वृत्तिमत्यजन्त एव स्वप्रवृत्तिप्रभावावबद्धमूर्तत्वप्रक्रमान् परमाणूनध्यास्य नानाप्रभेदपृथिव्यादिभेदस्थूलरूपा जायन्ते

वस्थापेक्षयो **घटभवनव्यवहारवद् मृत्**, यथा पिण्डशिबकाद्यवस्थाक्रमेण घटभवनव्यवहारे मृदेवाद्या भवित्री तथेहापि चक्रभ्रान्तौ भवनव्यवहारत्वाद् मूलभवितृ द्रव्यमपेक्ष्यं परतः परतोऽपि **येन भूयते** यद् भवति **तदेव**, मौलं कारणं तदेवेत्यर्थः । तस्माद् घटभवने मृद्वद् भ्रान्तिभवने कुलालोऽपेक्ष्यः, कुलालशेषभ्रान्तिवच्च ज्ञशेषं सर्वम्, **इतरथासौ नैव स्याद् भवितुरभावाद्** वन्ध्यापुत्रवदमूलत्वादित्यर्थः ।

स्यान्मतम्—अचेतनानामपि अभ्रादीनां चेष्टादर्शनाज्ज्ञप्रयोगमन्तरेण प्रवृत्तिर्दण्डादीनामिति । एतच्चायुक्तम्, **ज्ञस्यैव सुप्तावस्थत्वात्**[1] **न च चक्रदण्डादि करणनिरीहत्वात्**, न च चक्रदण्डादि स्वत एव भवति करणनिरीहत्वात्, करणत्वान्निरीहाणि, निरीहत्वान्न स्वत एव ज्ञातुर्यत्नमन्तरेण तद्यत्नशेषं वान्तरेण तस्यैव सुप्तावस्था दण्डचक्रादि निष्पन्दभूता निश्चेतनीभूता भवितुमर्हति । तस्मात् सापि सुप्तावस्था[2] ज्ञस्य
१२८-१ चेतनस्यैव वृत्तिर्भवितुमर्हति, **दधीव पयसः**, यथा दधि पयसोऽवस्था तथा दण्डचक्रादि ज्ञस्यैव कुलालस्य । एतेन दध्याद्यपि ज्ञभवनमाख्यातमेव, **ज्ञशेषसुप्तावस्थत्वात्**[3] तस्यापि दध्यादेः कुलालयत्नशेषचक्रदण्डादिवज्ज्ञयत्नं ज्ञयत्नशेषं वान्तरेण प्रवृत्त्यभावाज्ज्ञप्रवृत्तिमात्रत्वमेवेत्यर्थः[4] ।

एतस्यार्थस्य भावनार्थं दृष्टान्तमाह—**यथैव हीत्यादि** । यथैव रूपरसगन्धस्पर्शशब्दा **अमूर्तत्वेन सूक्ष्मां वृत्तिमत्यजन्त एवेत्यादि**, सूक्ष्मपूर्वकत्वात् स्थूलस्य सूक्ष्मतां निरूप्य स्थूलत्वं निरूपयति, न हि ते रूपादयः प्रतिनियतचक्षुरादिविज्ञानप्रभावितस्वरूपा मूर्ताः स्थूला इति वा केनचिदिष्टास्तस्मादमूर्ताः, तद्भावोऽमूर्तत्वम्, तेन अमूर्तत्वेन वृत्तिः, सैव च सूक्ष्मा, तामत्यजन्तोऽजहत एव **स्वप्रवृत्तिप्रभावावबद्धमूर्तत्वप्रक्रमान्** स्वया प्रवृत्त्या प्रभावेन चावबद्धो मूर्तत्वेन प्रक्रमो येषां ते स्वप्रवृत्तिप्रभावावबद्धमूर्तत्वप्रक्रमाः परमाणवः, रूपादीनामात्मीयया प्रवृत्त्यावबद्धो मूर्तत्वेन प्रक्रमः परमाणूनां सभेदानाम्, तान् **परमाणूनध्यास्ये**ति सृष्टेः क्रमं दर्शयति दृष्टान्तरूपेण । तत उत्तरकालं **नानाप्रभेदपृथिव्यादिभेदस्थूलरूपा जायन्ते** रूपादय एव । पृथिव्या अश्म-लोष्ट-सिकता-वज्रादयः प्रभेदाः, हिमकरकादयोऽपाम्, ज्वालाङ्गारमुर्मुरादयस्तेजसः, उत्कलिका-मण्डल-गुञ्जा-झञ्झादयो वायोः, वृक्षगुल्मवल्लीलतावितानवीरुधो वनस्पतेः, कृमि-पिपीलिका-भ्रमरादि-मनुष्य-देव-नारका जङ्गमानाम् । एतत् प्रवृत्तेर्निदर्शनम् ।
१२८-२ प्रभावो ह्यचिन्त्यः, प्रभावस्याचिन्त्यत्वादमूर्तेर्मूर्तसम्भवः[5] । रस-वीर्य-विपाक-प्रभावाश्च वस्तुनः प्रवर्तमानस्य विपरिणामाः, तत्र निदर्शनम्—

[6]चित्रकः कटुकः पाके वीर्योष्णः कटुको रसे ।
तद्वद् दन्ती, प्रभावात्तु विरेचयति सा नरम् ॥ [चरकसं० १।२६।६८] इति ।

यथैते पृथिव्यादयः सूक्ष्मा मूर्तरूपादिपूर्वकाः स्थूलत्वात् तन्तुपूर्वपटवदेवं **ततोऽपि** परतोऽपि **परं**

---

१ °**वस्थात्** भा० ॥ २ °**वस्थान्यस्य चेतन**° य० । °**वस्थान्यचेतन** भा० ॥ ३ °**वस्थात्वात्** भा० ॥ ४ °**ज्ञवृत्ति**° य० ॥ ५ °**मूर्तेमूर्त**° प्र० ॥ ६ "कटुकः कटुकः पाके वीर्योष्णश्चित्रको मतः ।" इति चरकसंहितायां पाठः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं ततोऽपि परं कारणं रूपादिभावमापद्यत इति रूपादिप्रविभक्तमप्रविभक्तस्वतत्त्वं यत् तद् भवति तदेव तत्त्वम्।

तत् किम्? ननु ज्ञानस्वतत्त्व आत्मेति रूपादिभिरेव निरूपितं तत्, तद्धि रूपणं रूपं ज्ञानमेव विभक्ताविभक्तं ग्रहणमेव, न तु रूप्यते तत् तेन तस्मिन् वेत्यादि रूपम्, रसादेर्गुणगणाद् द्रव्याद्वा विभक्तस्यानवस्थानाद्रूपस्य पुरुषभिन्नपुत्रत्वादिवत्।

द्विधापि रूपस्याविभक्ततत्त्वात्मकतायामपि रूपादन्येषां रसादीनां प्रत्यक्षतो

रूपादिभ्यः परतोऽप्यपरमन्यत् परं वरिष्ठं प्रधानं **कारणं रूपादिभावमापद्यते** इति प्रतिपत्तव्यम्। तच्च परं य[1]त् कारणमात्मानममूर्तसूक्ष्मरूपादित्वेन स्थूलमूर्तपरमाणुद्विप्रदेशादिस्कन्धपृथिव्यादित्वेन च प्रविभजमानं प्रवर्तते। किञ्च, **इति रूपादिप्रविभक्तमप्रविभक्तस्वतत्त्वं** परमाणुद्विप्रदेशादिपृथिव्यादिष्वप्रविभक्तस्वरूपादितत्त्ववत्। किं पुनस्तस्य स्[2]वतत्त्वम्? तस्य भावस्तत्त्वम्, स्वार्थिको भावप्रत्ययः, तद्दर्शयति—**यत् तद् भवति तदेव तत्त्वम्।** स्वं च स्वप्रभेदापेक्षया, तत्त्वता अनुसृतत्वात्, परतत्त्वाभावेन विशेष्यते स्वतत्त्वमिति परमतापेक्षया [3]चेति।

इतर आह—**तत्** किमिति निरूप्यम्। आचार्य आह—**ननु ज्ञानस्वतत्त्व आत्मेति रूपादिभिरेव निरूपितं तत्** परं कारणम्। आत्मा ज्ञानस्वतत्त्वः, स[4] पुना रूपादिभिरेव निरूपितः, रूप रूपक्रियायाम् [पा० धा० १९३४], रूपितं [5]निर्णीतं तु ज्ञातम्, निर्णयो रूपणमित्येकोऽर्थः। **तद्धि रूपणं रूपमिति** यस्मात् कारणाद् रूपणं रूपमित्येकोऽर्थः। **आदि**ग्रहणाद् रसनमास्वादनं रसः, एवं शेषाणामपि रूपणकृतात्मलाभनिरुक्तत्वाद् रूपणता, **ज्ञानमेव** रूपणपर्यायत्वाज्ज्ञानस्य, **विभक्ताविभक्तं ग्रहणमेव,** १२९-१
विभक्तग्रहणं रूपं रसो गन्धः शब्दः स्पर्श इति ज्ञानम्, रूपमित्यविभक्तं सर्वेषु, तद् द्विविधमपि ग्रहणमेव रूपं भावसाधनत्वाद् रूपशब्दस्य। **न तु रूप्यते तत् तेन तस्मिन् वेत्यादि रूपम्,** न तु कर्मकर्तृकरणाधिकरणसाधनत्वम्, **आदि**ग्रहणात् [न[6]] तस्मै तस्माद् रूपमिति सम्प्रदानापादानकारकभेदेभ्यो रूपमिति भवितुमर्हति। किं कारणम्? रस्यते स्पृश्यत इत्यादेरपि तत्रैव दर्शनाद् [7]रूपणोपलक्षितस्य ज्ञानात्मनो वस्तुनो **रसादेर्गु[8]णगणाद् द्रव्याद्वा** गुणगणव्यतिरिक्ताद्**विभक्तस्यानवस्थानाद् रूपस्य पुरुषभिन्नपुत्रत्वादिवत्,** अनेकसम्ब[9]न्धिनः पुरुषात् पितृपुत्रभ्रातृभागिनेयमातुलत्वादिधर्माः पृथग् नावतिष्ठन्ते तथा रूपणात्मकं रूपं रसादिगुणव्यतिरेकेण तद्व्यतिरिक्तपरमाण्वादिद्रव्यव्यतिरेकेण वा नावतिष्ठते परमार्थतः। तस्मादविभक्त[10]रूपणतत्त्वात्मका रसादिपरमाण्वादिपृथिव्यादिभेदाः।

एवं तर्हि रूपणाविभक्ततत्त्वात्मकानां रूपवदविभक्तग्रहणं चक्षुषैव स्यात्, रसनादिभिश्च ग्रहणदर्शनात् प्रत्यक्षविरुद्धेयं कल्पनेति चेत्, न, तस्य तत्त्वस्यानेका[11]त्मकत्वाभ्युपगमाद् **द्विधापि** रसाद्यभेदेन द्रव्याभेदेन वा **रूपस्याविभक्ततत्त्वात्मकतायामपी**त्यादि या[12]वद्द्रव्या(द्रसा?)दीति **शक्यं वक्तुम्,**

---

१ **यच्च** य० ॥ २ **स्वतंत्रं** प्र० ॥ ३ अत्र **वेति** इत्यपि स्यात् ॥ ४ **स्वपुनरूपा**° प्र० ॥ ५ **निर्णीतं** य० प्रतिषु नास्ति ॥ ६ अथवा 'न तु कर्मकर्तृकरणाधिकरणसाधनत्वमादिग्रहणात्तस्मै तस्माद्रूपमिति' इति यथाश्रुतपाठोऽपि 'न तु' इत्यस्य अनुवृत्तिं विवक्ष्य सङ्गमनीयः ॥ ७ **रूपेणो**° प्र० ॥ ८ °**गुणगण्य द्र**° प्र० ॥ ९ °**म्बन्धेन** प्र० ॥ १० °**रूपेण**° य० ॥ ११ °**त्मत्वाभ्यु**° य० ॥ १२ यद्यपि सर्वास्वपि प्रतिषु **यावद्द्रव्यादीति** इति पाठ उपलभ्यते तथापि **यावद्रसादीति** इति पाठश्चेत् स्यात् तर्हि समीचीनमिति भाति। दृश्यतां पृ० १७८ पं० ११। अथवा कश्चित् पाठोऽत्र त्रुटित इति भाति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनाद् 'रूपमेव न रसादि' इति शक्यं वक्तुम्, न रूपादिभ्यो भिन्नमिदमेकं द्रव्यमेवेति, रूपादिव्यतिरिक्तादर्शनात्। आत्मतत्त्वाविभक्तग्रहे तु प्रत्यक्षाविरोधः। चैतन्यमेकमेव रूपादिविभक्तमप्यविभक्तम्, तथा तदनुभवदर्शनात्। स एव तु व्यतिरेकस्यानुपपत्तेर्ज्ञानस्वतत्त्वात्मैव ग्राह्यो ग्राहकश्चैषितव्यः, अभिमतात्मप्रतिपत्तिवत्। बुद्ध्यादिरूपादीनां सूक्ष्मस्थूलत्वादि क्षीराद्यत्यन्तापरिदृष्टतत्त्वप्रविभागव्यवस्थावत् तत्त्व एव।

रूपं रस इति प्रत्यक्षं भेदेन दर्शनात् तस्यानेकात्मकस्य स्वप्रवृत्तिप्रभावावबद्धस्य प्रभेदानामुक्तत्वात्। एवं
१२९-२ तावद् रसादिगुणगणसमुदायो नास्त्यन्यः[1] परस्परतस्ते चान्ये रूपादयः, किन्तु रूपणस्वरूपभेदा एवेत्युक्तम्। स्यान्मतम्—रूपादिभ्यो भिन्नमेकं द्रव्यं पृथग्ग्रहणापदेशादिति, एतच्च **न रूपादिभ्यो भिन्नमिदमेकं द्रव्यमेवेति,**[2] शक्यं वक्तुमिति वर्तते। कस्मात्? **रूपादिव्यतिरिक्तादर्शनात्।** पूर्वत्र रूपादन्येषां रसादीनां प्रत्यक्षतो दर्शनाद् रूपमेव न रसादय इति शक्यं वक्तुम्, इह तु रूपादिभ्यो भिन्नं द्रव्यमिति प्रत्यक्षेणादर्शनादशक्यमिति।

कस्यां पुनः कल्पनायां प्रत्यक्षविरोधो नास्ति? उच्यते—**आत्मतत्त्वाविभक्तग्रहे तु प्रत्यक्षाविरोधः।**[3] तत् कथम्? भाव्यते—**चैतन्यमेकमेव रूपादिविभक्तमप्यविभक्तं** चैतन्याव्यवच्छेदान्वयाद् रूपणसामान्येनाविभक्तमेवैकत्वात्, रूपादिरूपेण ग्रहणविभागाद् विभक्तमपि सत् तदेकमेव। अनेकात्मकत्वाद् विभक्तमविभक्तं चेति प्रत्यक्षदर्शनं रसादिभेदरूपं रूपणाभेदरूपं च न विरुध्यते रूपादिरूपत्वाच्चैतन्यस्य। यस्माच्च[4] यथा परैः परिकल्पितं भिन्नमिति तत्र च रूपादि चैतन्येभ्यो भिन्नमत्र दर्शनविरोधकारि सम्भवति बाह्यं रूपरसादिगुणसमुदायात्मकं तदाश्रयद्रव्यात्मकं वा। किन्तु तदेव रूपादि चैतन्यात्मतत्त्वाविभक्तग्रहे तु दर्शनाविरोधकारि,[5] चैतन्यस्यैव विभक्ताविभक्तात्मकत्वात् **तथा तदनुभवदर्शनात्** स्वपरिच्छेदे[6] ततोऽन्यस्य प्रमाणस्यासम्भवात्।[7] किं तर्हि? **स एव तु व्यतिरेकस्यानुपपत्तेर्ज्ञा**नात् पृथग्भूतार्थस्यानुपपत्ते**र्ज्ञानस्वतत्त्वात्मैव ग्राह्यो ग्राहकश्चैषितव्योऽभिमतात्मप्रतिपत्तिवत्**, यथा त्वदभिमतः[8] प्रतिशरीरं शरीरादि-
१३०-१ व्यतिरिक्तमात्मैव आत्मानं शरीरादींश्च बाह्यानर्थान् प्रतिपद्यमानोऽपि स्वात्माधिगमे प्रमाणान्तराभावाद् ग्राह्यो ग्राहकश्च [तथा] रूपादिभेदेन ज्ञानसुखादिभेदेन च स्वयमेव विपरिवर्तमान इति।

निदर्शनमप्याह—**बुद्ध्यादी**त्यादि, बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषादिकालाकाशदिगात्माद्यमूर्तं सूक्ष्ममुच्यते, रूपादयस्तु स्थूला एव प्रत्यक्षत्वात्। **सूक्ष्मस्थूलत्वादि** च तेषां यथासङ्ख्यं बुद्ध्यादीनां[9] रूपादीनां च तत्त्व एवेत्यभिसम्भन्त्स्यते। **क्षीराद्यत्यन्तापरिदृष्टतत्त्वे**त्यादि, युगपद्भाविनः क्षीरावस्थायामत्यन्तापरिदृष्टा धर्मा-

---

१ **नास्त्यन्यो** प्र० ॥ २ **द्रव्यमेवेति** डे० लीं० ॥ ३ **प्रत्यक्षविरोधः** प्र० ॥ ४ **यस्माच्च** भा० प्रतौ नास्ति ॥ ५ **दर्शनाविरो**° प्र० ॥ ६ **स्व[?]पपरिच्छेदे** वि० विना ॥ ७ °**स्यसम्भ**° प्र० ॥ ८ **त्वभि**° य० ॥ ९ **बुद्ध्यादीनां** रूपादीनां रसतत्व **एवे**° भा०। **बुद्ध्यादीनां** रतत्व **एवे**° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं च सार्वज्ञ्यमयत्नेन लब्धं पुरुषात्मकत्वात् सर्वस्य। ज्ञत्वमेवोत्कर्षपर्यन्तवृत्तं तारतम्यात् पर्वतोन्नतिवत् क्षेत्रप्रमाणवत् प्रत्यवगमकात्मकत्वात् खद्योतादितारतम्यवृत्तोद्योतवत्।

ननु वक्तृत्वादीनामसार्वज्ञ्याव्यभिचारादसर्वज्ञतैव, न, वक्तृत्वस्यापि तार-

---

स्तत्त्व एव दृश्यन्ते, तद्यथा—आ द्रवो रसः, आ कठिनं दधि, मूलमद्रुः कठिनः, मस्तु द्रवमेव। **आदि**ग्रहणात् क्षीरमपि धेनावत्यन्तापरिदृष्टम्, धेन्वभ्यवहृततृणगोरक्तादावत्यन्तापरिदृष्टा धेनुगतरसरुधिरादिपरिणतिविशेषक्रमागतप्रश्रयादय**स्तत्त्व एव प्रविभागेन** व्यवस्थिताः, तेषां **व्यवस्थावत्** सर्वस्य चेतनाचेतनस्य जगतश्चेतनात्मनि पुरुषेऽत्यन्तापरिदृष्टस्य व्यवस्था युगपदेव। यथा च तस्यैव क्रमभुवोऽन्ये धर्मा माधुर्याम्लादयस्तथा पर्यायास्तत्त्व एव ज्ञानात्मके तस्यैव चावस्थाः। नैताः स्वमनीषिका उच्यन्ते, किं तर्हि? जिनवचनार्णवविप्रुष एवैताः, तद्यथा—से किं भावपरमाणू? भावपरमाणू वण्णवंते गंधवंते रसवंते फासवंते [भगवतीसू० २०।५।६७०] इति वर्णादीनां तत्त्व एवानेकात्मके तदात्मनां भावात्।

एवं चेत्यादि। अस्मिन् ज्ञानात्मकैककारणविवर्तमात्रभेदवादे युक्त्यन्तरप्रतिपाद्यं **सार्वज्ञ्यमयत्नेन लब्धं पुरुषात्मकत्वात् सर्वस्य,** न हि पुरुषः कश्चिदात्मानं न वेत्ति, यथा तृणादिष्वत्यन्तापरिदृष्टं दधित्वं तत्कारणत्वात् तदात्मकं तथा सर्वज्ञताप्यस्य। का सा सर्वज्ञता? **ज्ञत्वमेवोत्कर्षपर्यन्तवृत्तम्,** तदेव १३०-२
ज्ञत्वमुत्कर्षपर्यन्तं निरतिशयं क्वचित् प्राप्नोति, **तारतम्यात्,** तरतमभावस्तारतम्यं ज्ञतरो ज्ञतम इति परस्परत उत्कर्षभेदः, तेन तारतम्येन युक्तत्वात् तत्पर्यन्तेन निरतिशयेन विना न भवितुमर्हति। **पर्वतोन्नतिवत्,** यथा पर्वतानामुन्नतिस्तारतम्ययुक्तत्वाद् **विन्ध्यसह्योज्जयन्तपारियात्रेन्द्र**पद**मलयमहेन्द्रहिमवत्कैलाशादीनाम**न्यतमस्य उत्कर्षपर्यन्तं प्राप्तया निरतिशययोन्नत्या विना न भवत्येवं ज्ञत्वमपि। योऽपि कैलाशं मन्दरं वा नाभ्युपगच्छति तस्यापि शुषिरस्यावकाशदानसमर्थस्य पृथिव्याद्याश्रयस्य क्षेत्रस्य सद्भावात् तस्य च समन्ततोऽनन्तत्वाद् महद् महत्तरं महत्तममिति प्रमाणोत्कर्षस्य तत्र निरतिशयस्य दर्शनात् **क्षेत्रप्रमाणव**दिति दृष्टान्तः। अस्यामेव प्रतिज्ञायां हेत्वन्तरम्—**प्रत्यवगमकात्मकत्वात्,** प्रत्यवगमयतीति प्रत्यवगमकं तदेव ज्ञत्वम्, ततश्च निरतिशयोत्कर्षपर्यन्तं तत्। दृष्टान्तः **खद्योतादितारतम्यवृत्तोद्द्योतव**दिति, यथा खद्योतमण्यग्निप्रदीपतारकादिषु तारतम्येन वृत्तत्वादुद्द्योतो भास्करे निरतिशयोत्कर्षपर्यन्तो दृष्टस्तथा ज्ञानमपि क्वचिदिति।

इतर आह—**ननु वक्तृत्वादीना**मित्यादि। ननु वक्तृत्वशरीरित्वनामवत्त्वजातिमत्त्वादीनां धर्माणा**मसार्वज्ञ्याव्यभिचारादसर्वज्ञतैव।** किञ्चान्यत्, अत्रैवेन्द्रियप्रत्यक्षानुमानयोर्विषये प्रकर्षनिकर्षदर्शनाच्चा-

---

१ °स्तत्त्व भा० ॥ २ **मूलमद्रुः** भा० वि० विना ॥ ४ **प्रतिभा**° य० ॥ ५ **तावस्थाः** प्र० ॥ ६ **रसवंते** प्रतिषु नास्ति। "भावपरमाणू णं भंते! कइविहे पण्णत्ते? गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा वण्णमंते गंधमंते रसमंते फासमंते" इति भगवतीसूत्रे पाठः ॥ ७ **तदात्मना** भा० ॥ ८ °**स्पर उत्क**° प्र० ॥ ९ **पर्वतानुन्नति**° प्र० ॥ १० °**मण्यग्नि**° य० ॥ ११ **दृष्टः यथा** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरम्यादुत्कर्षवृत्तेः सातिशयपरिमाणकं वस्तु सप्रतिपक्षं भावविशेषत्वाद् घटवत्। असर्वातथ्याभिधायिताभ्यां विपर्ययेण भवितव्यम्, असर्वज्ञताया वक्तृत्वासर्वज्ञताया वा अवस्थात्वाद् वस्तुत्वाद् विशेषत्वात्, ज्ञत्वाज्ञत्वावस्थावद् नीलोत्पलरक्तोत्पलत्ववत्।

धूमवत्त्वाग्निमत्त्वावस्थाविपर्ययेणापि तर्हि भवितव्यं तत्त्वतः। को विचारः? निश्चितमेवैतत्, तेनापि तत्त्वतो भवितव्यम्। तेन तु ज्ञानात्मकत्वादात्मनस्तद्विजृम्भितविकल्पत्वाच्च शब्दस्य पुरुषस्वरूपस्यैव तस्य वचनं युज्यते उक्तत्वाद्

सर्वज्ञतैवेति। एतच्च **न, वक्तृत्वस्यापि तारतम्यादुत्कर्षवृत्ते**र्विपर्ययेण भवितव्यमित्यभिसम्बध्यते।
१३१-१ वक्तृत्वादेव सार्वज्ञ्यं तावद् ब्रूमः, वक्ता वक्तृतरो वक्तृतम इत्युत्कर्षपरम्पराया निरतिशयनिष्ठत्वात् सर्वस्य वक्ता तथ्यस्य चेत्यवश्यमेषितव्यम्। तच्च सर्वस्य तथ्यस्य च वक्तृत्वात् तज्ज्ञ इति वक्तृत्वादेव सार्वज्ञ्योत्कर्षसिद्धेरयुक्तः सार्वज्ञ्यप्रतिषेधः। यदपि चेन्द्रियविषये तत्पूर्वकानुमानविषये चोत्कर्षतारतम्यमुक्तं तदपि नित्यानुमेयमहापरिमाणाकाशदृष्टान्तसाधर्म्याददोषाय। स्यान्मतम्—आकाशासिद्धेरदृ[1]ष्टान्तमिति, एतच्चायुक्तमनुमानसद्भावात्, **सातिशयपरिमाणकं वस्तु स[2]प्रतिपक्षं भावविशेषत्वाद् घटव**दिति विभक्तपदार्थवादिमतापेक्षयैतदनुमानम्। अविभक्तैककारणविवर्तनाद्भेदवादे वक्ष्यत्युत्कर्षनिरतिश[3]यत्वम्। तारतम्ययुक्तत्वात् साधितं साधयिष्यमाणार्थानुसारेण प्रतिजानानो भावितार्थोपनयनार्थमाह—**असर्वातथ्याभिधायिताभ्यां विपर्ययेण भवितव्यमसर्वज्ञताया वक्तृत्वासर्वज्ञताया वा अवस्थात्वात्,** वक्तृत्वाव्यभिचारिण्या असर्वज्ञताया वाक्यरूपेणानुमाना[4]त्मकतया स्थिताया इतरस्याः पदार्थतयेष्टाया वा अवस्थात्वात्, सा द्विविधाप्यसर्वज्ञता अवस्थैव, तथा **व[5]स्तुत्वाद् विशेषत्वा**दित्यादि हेतुसौलभ्यं दर्शयति। निदर्शनं **ज्ञत्वाज्ञत्वावस्थावत्,** ज्ञं चेतनं स्थावरज[6]ङ्गमम्, अज्ञमरण्यकाष्ठादि, तद्वत्, विधिविधिनयदर्शनेन जाग्रत्सुषुप्तावस्थे ते च, एतत् पदार्थविषयं निदर्शनम्, वाक्यविषयं **नीलोत्पलरक्तोत्पलत्ववत्।** यथा ज्ञमज्ञेन
१३१-२ अज्ञं च ज्ञेन विना न भवति नीलोत्पलमनीलेनानुत्पलेन रक्तोत्पलेन वा विना न भवति तद्विपर्ययेण वाक्यार्थेन त[7]था सार्वज्ञ्यमसार्वज्ञ्येन विना न भवति असार्वज्ञ्यं वा सार्वज्ञ्येनेति।

इतर आह—**धूमवत्त्वाग्निमत्त्वावस्थाविपर्ययेणापि तर्हि भवितव्यं तत्त्वतः,** धूमस्यावस्थात्मकार्यस्याग्न्यव्यभिचारिणः क्वचित् कदाचिदप्यनग्नावदर्शनादवस्थात्वं संशयहेतुरित्यभिप्रायः। आचार्य आह—**को विचारः? निश्चितमेवैतत्,** अनग्निरपि भवत्येवेत्यर्थः। **तेनापि** विपर्ययेणापि **तत्त्वतो भवितव्यम्,** नन्विदमेव वर्तते ज्ञानात्मकैककारणस्याग्न्यनग्न्यादिस्वावस्थात्मकत्वप्रतिपादनस्य प्रस्तुतत्वात्, एवमग्निं व्यभिचारयिष्यामः, परमते तावत् प्रतिज्ञा[8]र्थं भावयामः—**तेन** त्वित्यादि, **ज्ञानात्मकत्वादात्मनस्तद्विजृम्भितविकल्पत्वाच्च शब्दस्य** यदुच्यते यच्छन्द आह तदस्माकं प्रमाणम् [पा० म० भा० २।१।१] इति

---

१ दृष्टान्तरहितमित्यर्थः ॥ २ **सतिपक्षं** य० ॥ ३ °**यत्वं भावतारतम्य**° य०। दृश्यतां पृ० १७९ पं० २ ॥
४ °**त्मतया** य० ॥ ५ **वस्तुतत्वाद्** य० ॥ ६ °**जङ्गमं** [अज्ञमचेतनम्?] **अरण्यकाष्ठादि तद्विधिविधि**° प्र० ॥
७ **तथा सार्वज्ञ्येनासार्वज्ञ्यं विना** य०। **तथा सार्वज्ञेनासर्वज्ञं विना** भा०। अत्र 'तथाऽसार्वज्ञ्येन सार्वज्ञ्यं विना न भवति' इत्यपि पाठः कथञ्चित् सङ्गच्छेत ॥ ८ दृश्यतां पृ० १३० टि० ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याकरणवत् पौरुषेयं सर्वस्य तदात्मकत्वात् तदवस्थामात्रत्वाद् वस्तुत्वादपि । इतरथा स नैव स्यात् ।

ननु तस्यैवैकस्य वस्तुनोऽग्नित्वमनग्नित्वं च प्रत्यक्षादिविरुद्धम् । ननु प्रत्यक्षत एव व्रीह्यादि एकं वस्तु एकस्मिन्नेव काले भूम्यबादि, सर्वात्मकत्वाद् व्रीहेः ।

तत्काले तथाऽग्रहणादप्रत्यक्षतेति चेत्, सर्वाप्रत्यक्षता तर्हि सदापि । न हि यद् यथा भवति तथेन्द्रियैर्गृह्यते, तुषकणादिरूपादिमात्रग्रहणवृत्तत्वाद् व्रीह्यादि-चक्षुरादिप्रत्यक्षस्य यावद्रूपग्रहणवृत्तत्वाद्रूपादिप्रत्यक्षस्य ।

सोऽपि शब्दो न पुरुषप्रवृत्तिमन्तरेण भवितुं वक्तुं वार्हतीति **पुरुषस्वरूपस्यैव तस्य वचनं युज्यते** नान्यथेत्यस्मिन्नर्थे कारणमाह – **उक्तत्वाद्** वचनत्वाद् **व्याकरणवत् पौरुषेय**मिति *सर्वस्य पुरुषात्मकत्वं दर्शयति । हेतुसैलेभ्यं च यावद् **वस्तुत्वादपी**त्यनेन दर्शयति* । **सर्वस्य तदात्मकत्वात् तदवस्था-मात्रत्वा**दित्यादि सर्वो हेतुरस्मिन्नर्थे भवति । **इतरथा स नैव** वचनं **स्या**च्छब्दोऽपौरुषेयत्वात् खरविषाणवत् । किं वा वचनं न वचनमित्यनेन ? नैव वा स्यादपुरुषात्मकत्वाद् वन्ध्यापुत्रवत् ।

आह – **नन्वि**त्यादि । यदुच्यते त्वया एकस्मिन्नेव काले **तस्यैवैकस्य वस्तुनोऽग्नित्वमनग्नित्वं चे**ति [तत्] **प्रत्यक्षादिविरुद्धं** सामस्त्येनाभावात् । **आदि**ग्रहणादनुमानागमलोकव्यवहारविरुद्धमिति । आचार्य आह – **ननु प्रत्यक्षत** इत्यादि, सर्वप्रमाणज्येष्ठमूलप्रत्यक्षत **एव व्रीह्यादि**, 'आदि'ग्रहणादाम्रजम्बूफलादि **एकं वस्त्वेकस्मिन्नेव** व्रीह्यवस्थान**काले भूम्यबादि, सर्वात्मकत्वाद् व्रीहेः** । कतमोऽसौ व्रीहिः १३१-१ क्षित्युदकबीजादिगतवर्णगन्धरसस्पर्शादिधर्मपरिणतिमन्तरेण ? इति भूम्यादेः परस्परधर्मापत्तेः सर्वात्मकत्वम् । सर्वात्मकत्वात् तन्मयस्य व्रीहेरप्यबादिवत् सर्वात्मकत्वम् । तस्मादबादिरेव व्रीहिस्तेन विनाऽभावात् तस्य तथा भवनात् व्रीहिस्वात्मवत् । तस्मान्नास्ति प्रत्यक्षादिविरोधः ।

तत्काले तथाऽग्रहणादप्रत्यक्षतेति चेत् । स्यान्मतम् – व्रीहिकाले भूम्यबाद्यात्मकस्य वस्तुनस्तथा भूम्यबादिप्रकारेणाग्रहणान्न तर्हि तद्वस्तुप्रत्यक्षं स्यात्, न हि तद्वस्तु व्रीहिमात्रमेवेति । उच्यते – **सर्वाप्रत्यक्षता तर्हि सदापी**त्यादि, सर्वस्य वस्तुनः सदापि सर्वेणात्मस्वरूपेण ग्रहणाभावाद् न कस्यचित् प्रत्यक्षत्वं स्यात् । तद्दर्शयति – **न हि यद् यथा भवती**त्यादि । व्रीहेरपि प्रत्यक्षत्वं नास्ति यथा विद्यते **तथेन्द्रियै**र्ग्रहणा-भावात्, इन्द्रियेण तु तुषमात्रदर्शनात् तन्मात्रस्याव्रीहित्वात् कणाद्यदर्शनात्, कणमात्रस्याप्यव्रीहित्वात् कुण्डकाद्यदर्शनादित्यादि, रूपरसगन्धस्पर्शानामन्यतमस्यैवेन्द्रियविषयत्वात्, अत आह – **तुषकणादि-रूपादिमात्रग्रहणवृत्तत्वाद् व्रीह्यादिचक्षुरादिप्रत्यक्षस्य** । स्यान्मतम् – रूपस्य रूपमात्रत्वात् तर्हि प्रत्यक्षत्वमिति, एतच्चायुक्तम्, **यावद्रूपग्रहणवृत्तत्वाद् रूपादिप्रत्यक्षस्य**, रूपरसगन्धशब्दस्पर्शा

---

१ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो भा० प्रतौ नास्ति ॥ २ °**लभ्यं च यावप्रस्तुत्वा**° डे० लीं० रं० ही० । °**लभ्यं वयोवद्वस्तुत्वा**° पा० । °**लभ्यं यथावद्वस्तुत्वा**° वि० ॥ ३ **किंचा** पा० डे० लीं० वि० ॥ ४ °**पादि** प्र० ॥ ५ °**दकगतवर्ण**° भा० ॥ ६ **भूम्याबाद्या**° य० । **भूम्यावाद्या**° भा० ॥ ७ **भूम्यांवा**(म्यम्ब्वा ?)**दि**° प्र० ॥ ८ **तथेन्द्रिय**° य० ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

तस्य च चतस्रोऽवस्था जाग्रत्सुप्तसुषुप्ततुरीयान्वर्थाख्याः । ताश्च बहुधा व्यवतिष्ठन्ते । सुखदुःखमोहशुद्धयः सत्त्वरजस्तमोविमुक्त्याख्या ऊर्ध्वतिर्यगधोलोकाविभागाः संज्ञ्यसंज्ञ्यचेतनभावा वा । नियता एवैता विमुक्तिक्रमात्, सर्वज्ञता वा तुरीयं निरावरणमोहविघ्नं निद्रावियोग अत्यन्तिको निद्रासम्बन्धिजाग्रदाद्यवस्थाविलक्षणमात्मस्वतत्त्वम् । स एव परमात्मा ।

१३२-२ रूपादयः, ते हि परस्पराविनिर्भागवृत्तयः, तेषु रूपमात्रग्रहणं कथं यथार्थं प्रत्यक्षं स्यात्? इति नास्ति प्रत्यक्षम् । तस्मात् स्थितमेतत्—सर्वं सर्वात्मकं ज्ञानस्वतत्त्वैककारणविजृम्भितमात्रं चेति ।

तस्यैवेदानीं स्वरूपोपदर्शनार्थमुच्यते—**तस्य**[1] **च चतस्रोऽवस्थाः** । तस्य अनन्तरप्रतिपादितचैतन्यतत्त्वस्य इमाश्चतस्रोऽवस्था **जाग्रत्सुप्तसुषुप्ततुरीयान्वर्थाख्याः**, जाग्रदवस्था सुप्तावस्था सुषुप्तावस्था तुरीयावस्था, एताश्चान्वर्थाः । **ताश्च बहुधा व्यवतिष्ठन्ते,** चतुर्थीमवस्थां मुक्त्वा तिसृणामेकैकस्याः प्रतिप्रक्रियं संज्ञादिभेदाल्लोकव्यवहारभेदाच्चानेकभेदत्वात् । चतुर्थी पुनरेकै[2]स्वरूपैव विशुद्धत्वात्, अ[3]थवा सापि स्वरूपसामर्थ्यात् सर्वात्मनैवानेकधा विपरिवर्तते, तद्यथा—

> जं जं जे जे भावे परिणमति प[4]योगवीससा दव्वं ।
> तं तह जाणाति जिणो अपज्जवे जाणणा णत्थि ॥ [आव० नि० ७९४]

कास्ताः? उच्यन्ते—**सुख-दुःख-मोह-शुद्धयः सत्त्व-रजस्-तमो-विमुक्त्याख्याः** । कार्याणि[5] चासां यथासङ्ख्यं तिसृणां तद्यथा—प्रसादलाघवप्रसवाभिष्वङ्गोद्धर्षप्रीतयो दुःखशोषतापभेदापस्तम्भोद्वेगापद्वेषावरणसदनापध्वंसनबीभत्सदैन्यगौरवाणि । चतुर्थ्यास्तु शुद्धं चैतन्यं सकलस्वपरिवर्तप्रपञ्चसर्वभावावभासनम् । अथवा **ऊर्ध्वतिर्यगधोलो[6]काविभागा** वा, यथासङ्ख्यमेव, ऊर्ध्वलोको जाग्रदवस्था, तिर्यग्लोकः सुप्तावस्था, सुषुप्तावस्था अधोलोकः, अविभागावस्था तुरीयावस्था । [7]**संज्ञ्यसंज्ञ्यचेतनभावा वा,** संज्ञिनः समनस्का देवमनुष्यनारकपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो जाग्रति, सुप्ता असंज्ञिनः पृथिव्यबग्निवायुवनस्पतिद्वित्रि-
१३३-१ चतुरिन्द्रियामनस्कपञ्चेन्द्रियाः, काष्ठकुड्यादयः सुषुप्ताः, भवनमात्रं भावः सर्वत्राविभागा तुरीयावस्थेति ।

अ[8]त्राह—अविभागात्मनस्तस्यैवात्मनश्चतुरवस्थत्वात् कालभेदाभावाच्च चतस्रोऽपि प्रथमद्वितीयतृतीयतुरीयाख्याः स्युरिति, एतदयुक्तम्, यस्मा**न्नियता एवैता विमुक्तिक्रमात्, सर्वज्ञता वा तुरीय**मिति, सुषुप्तावस्थायाः स्थिरीभूतचैतन्यायाः सु[9]प्तावस्था विमुक्तमलत्वा[10]द् द्वितीया मिथ्यादृष्ट्यादिका, तृतीया सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मिका मुक्तिप्रत्यासत्तेः, [11]सर्वज्ञता चतुर्थी । तत् पुनस्तुरीयं **निरावरणमोहविघ्नम्,** निर्गता ज्ञानदर्शनावरणमोहविघ्ना अस्मिन्निति निरावरणमोहविघ्नम्, मोहस्यैव महास्वापत्वात्, एकेन्द्रियादिषु

---

१ **तस्य चतस्रो** य० ॥ २ °**रेकरूपैव** भा० ॥ ३ **अथवापि स्वरूप**° प्र० ॥ ४ **पओग**° य० ॥ ५ दृश्यतां पृ० १२ पं० १९ ॥ ६ °**लोकाअविभागा** प्र० ॥ ७ **संज्ञिअसंज्ञिअचेतनभावा** प्र० ॥ ८ **अत्राह विभागा**° य० ॥ ९ **सुषुप्तावस्था** प्र० ॥ १० °**त्वाद्द्वितीया २** य० । °**त्वाद्द्वितीयाद्द्वितीया** भा० । अत्र 'विमुक्तमलत्वाद् द्वितीया, द्वितीया मिथ्यादृष्ट्यादिका' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ११ **सर्वेता** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महामोहनिद्राक्षयोपशमशक्त्या निर्वृत्त्युपकरणेन्द्रियप्रत्ययं चैतन्यं प्रत्यक्षादिप्रत्यवेक्षणात्मकत्वाज्जाग्रदवस्था करणात्मा चेतनात्मा द्रव्यपुरुषवत्, अर्थस्य च तथा तथा तत्त्वाज्ज्ञानमेव । तथा सुप्तावस्थापि ज्ञानमेव संशयादि ईषत्सुप्तता वस्तुनस्तथा तथा तत्त्वात् । तथा विपर्ययोऽपि ज्ञानमेव तथा तथा तत्त्वात्,

---

स्त्यानर्द्ध्युदयसद्भावाद्विशेषेण स्वापः, अविशेषेण तु सर्वप्राणिनां समोहानां मिथ्यादृष्ट्यचारित्राणां स्वापात्, यथोक्तम्—**सुत्ता अमुणी संया, मुणिणो संया जागरंति** [आचाराङ्गसू० १।३।१] इति । तच्च तुरीयं कैवल्यं विगतावरणमोहविघ्नं रागद्वेषमोहप्रतीघातिभ्यो विविक्तता दर्शनं विशुद्धं प्रतिपूर्णमेकत्वमिति तत्पर्यायाः । किंरूपं तदिति चेत्, **निद्रावियोग आत्यन्तिकः** । तद्व्याख्यानम्—**निद्रासम्बन्धिजाग्रदाद्यवस्थाविलक्षणमात्मस्वतत्त्वम्**, निद्रासम्बन्धिन्यस्तिस्रोऽवस्था जाग्रत्सुप्तसुषुप्ताख्याः, तत्तद्विलक्षणमात्मनः स्वं तत्त्वं शुद्धं चैतन्यम् । **स** एवानेन व्याख्याविकल्पेन **परमात्मा** विमुक्तः सर्वज्ञ एव व्याख्यातो वेदितव्यः ।

करणात्मानं कार्यात्मानं च व्याख्यास्यामः, तत्र तावन्**महामोहे**त्यादि यावत् **करणात्मा** । दर्शन- १३३-२
चारित्रमोहोदये यस्मात् सुप्ता मिथ्यादृष्टयोऽचारित्राश्च प्राणिनस्तस्माद् महामोह एव निद्रा, तदुदये स्वापः, तत्क्षये विबोधः । यथोक्तम्—

> **यदा तु मनसि क्लान्ते बुद्ध्यात्मानः श्रमान्विताः ।**
> **विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः ॥** [चरकसं० १।२१।३५] इति ।

तस्या **निद्रायाः क्षयोपशमो**ऽनन्तानां पुरुषपरिणत्यापन्नेऽष्टादशविधतद्घातिकर्मणामुदितानां क्षयाद्नुदितानामुपशमाल्लब्धि**शक्ति**रुत्पद्यते तस्मिन्नेव पुरुषे ज्ञानदर्शनवीर्यविकल्पा, तया घातिकर्म**क्षयोपशमशक्त्या** निर्वर्तितानि कृष्णसारशबलपक्ष्मपुटाकारेण चक्षुः शेषेन्द्रियाणि च यथास्वमाकारैः, तान्येव चोपकृतानि उपकरणत्वेन मसूरकक्षुरप्रातिमुक्तचन्द्रकयवनालिकानेकसंस्थानैः, ततस्**तत्प्रत्ययं** लब्धिजनितनिर्वृत्त्युपकरणेन्द्रियप्रत्ययं **चैतन्यमु**पयोगो जायते, **लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्** [तत्त्वार्थ० २।१८] इति वचनात् । तच्च **प्रत्यक्षादिप्रत्यवेक्षणात्मकत्वात्**, 'आदि'ग्रहणादनुमानागमात्मकत्वा**ज्जाग्रदवस्था,** सैव **करणात्मा** । सुप्तजाग्रदवस्थयोश्चान्तरावस्था सुप्तजागरिका, तत्र स्वप्नदर्शनं भवति । यथोक्तम्—**णो सुत्ते सुमिणं पासति, सुत्तजागरियाए वट्टमाणे सुमिणं पासति** [भगवतीसू० १६।६।५७७] । सा चापि जाग्रद्-

---

१ **सदा** भा० ॥ २ °**कस्वमिति** य० ॥ ३ **एवान्येन** प्र० ॥ ४ "कर्मात्मानः क्रमान्विताः" इति चरकसंहितायां पाठः ॥ ५ °**न्नाष्टाविध**° भा० । °**न्नाष्टविध**° य० । "य उक्तः क्षायोपशमिको भावोऽष्टादशविकल्पस्तद्भेदनिरूपणार्थमाह—ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥२।५॥···चत्वारि ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि त्रीणि दर्शनानि पञ्च लब्धय इति । सर्वघातिस्पर्धकानामुदयक्षयात् तेषामेव सदुपशमाद् देशघातिस्पर्धकानामुदये क्षायोपशमिको भवति" इति तत्त्वार्थाधिगमसूत्रस्य पूज्यपादाचार्यदेवनन्दिविरचितायां सर्वार्थसिद्धिवृत्तौ २।५ ॥ ६ **वीर्याविकल्प** प्र० ॥ ७ °**त्यपेक्ष**° प्र० ॥ ८ **पासइ सुत्तजागरिआए** य० ॥ ९ "सुत्ते णं भंते ! सुविणं पासति, जागरे सुविणं पासति, सुत्तजागरे सुविणं पासति ? गोयमा ! नो सुत्ते सुविणं पासइ, नो जागरे सुविणं पासइ, सुत्तजागरे सुविणं पासइ" इति भगवतीसूत्रे पाठः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेतनात्मा सुप्तत्वाद् द्रव्यपुरुषवत् । तथानध्यवसायोऽपि विशिष्टस्वापो ज्ञानमेव चेतनात्मकत्वाज्जागरितवत्, चेतनाचेतनात् संशयादिवत् सुप्तवत् ।

वस्था करणात्माख्या **चेतनात्मा** [1]चेतना एवात्मा, तस्यैवार्थस्य जागरणात्मत्वात् । **द्रव्यपुरुषवत्,** द्रव्यपुरुषो भूतो भावी वा [2]यथायं राजासीद् भविष्यति वेति 'राजैव' इत्युच्यते करचरणगतचक्रध्वजाद्याकृतिरेखादिलक्षणदर्शनात्, तदेव हि हि शरीरमनुभूतराज्यं भविष्यद्राज्यं वा राजा तथा करणात्[3]मानः
१३४-१ स्वपन्तो जाग्रतो वा [4]चेतनात्मैव । अनुपयुक्तो वा द्रव्यपुरुषः, तस्मिन् ज्ञेयेऽनुपयुक्तत्वात्, यथानुपयुक्त[5] ओदनेऽनात्मत्वेन परिणमित आत्मस्वरूपज्ञानत्वेनापरिणमितो द्रव्यपुरुषो द्रव्यात्मैव तथा करणात्मा ज्ञानोपयोगरहितोऽपि चेतनात्मैवेति । एवं तर्हि परमात्मनः शुद्धचेतनात्मत्वात् सर्वात्मकत्वाच्च तस्य करणात्मावस्थानुपपत्तिरिति चेत्, नेत्युच्यते, चैतन्यस्य सर्वात्मकतायामपि सनिद्रग्रहणात् सुप्तोत्थितस्य सावशेषनिद्र[6]स्येव यज्ज्ञानं सा जागरावस्था करणात्मा, व्यपगतनिद्र[7]स्येव सर्वज्ञावस्था, इत्यनयोः करणात्मपरमात्मावस्थयोर्विशेषः । स्यान्मतम्—अर्थस्वरूपाग्रहणात् करणात्मावस्थायाः परमा[8]त्मात्यन्तवैरूप्यमिति, एतच्चायुक्तम्, कस्मात्? **अर्थस्य च तथा तथा तत्त्वाज्ज्ञानमेव,** स ह्यर्थः पुरुषसूत्रेरनेकरूपतायाः प्रतिपादितत्वादेकात्मविपरिवर्तो[9]ऽप्यनेकरूप एव तेन तेन प्रकारेण तस्य भवनात् तथा तथा तत्त्वात्, तदपि करणज्ञानं ज्ञानमेव करणमपि ज्ञानमेव वा ज्ञानविपरिवर्तत्वात् । एवं तावज्जाग्रदवस्था करणात्मा ज्ञानमेव ।

यथा चेदं ज्ञानं **तथा** जाग्रदवस्थाशेषः सुप्तावस्थाप्रारम्भमात्रं **सुप्तावस्था,** साऽपि **ज्ञानमेव संशयादि ईषत्सुप्तता,** अयमपि करणात्मा संशयादि ज्ञानम्, **आदि**ग्रहणाद् विपर्ययानध्यवसायौ । सा च सुप्तावस्थापि सतीषत्सुप्तता ज्ञानमेव, पूर्ववदेव सर्वात्मकतायां **वस्तुनस्तथा तथा तत्त्वात् ।** स्थाणुः
१३४-२ स्यात् पुरुषः स्यात्? इत्यूर्ध्वतासामान्यस्य वस्तुत्वात्, यदि स्थाणुर्वयोनिलयनादिविशेषात् यदि उत्थायोपविष्टत्वकरचरणचं[10]लनादिविशेषात् पुरुष इत्युभयथापि तस्य वस्तुनस्तथा तथा तत्त्वात् स्थाणुत्वपुरुषत्वाभ्याम् । **तथा विपर्ययोऽपि ज्ञानमेव तथा तथा तत्त्वादर्थस्य** स्थाणुपुरुषत्वाभ्यां विपर्ययेण चेति सैव व्याख्यात्रापि, साधनम्—**चेतनात्मा सुप्तत्वाद् द्रव्यपुरुषवत्,** पूर्ववदेव व्याख्या सुप्तत्वं जाग्रत्त्वं वा चेतनस्यैव भवति नाचेतनस्य कस्यचित् । यथा चैतज्ज्ञानं **तथानध्यवसायोऽपि,** न अध्यवसायोऽनध्यवसायोऽनभिव्यक्तबोधः, सोऽपि संशयविपर्ययाभ्यां **विशिष्यमाणः स्वापः** सुप्तत्वा**ज्ज्ञानमेव, चेतनात्मकत्वाज्जागरितवत्,** यथा जागरितावस्था ज्ञानमेव चेतनात्मकत्वात् तथानध्यवसायोऽपि । **चेतनाचेतनात्,** यस्मात् तदेव चेतनमचेतनं च तस्यैव [11]बह्वचेतनत्वादल्पचेतनत्वाच्चेतनं च तदचेतनं चेति विग्रहाच्चेतनाया एवाचेतनाद्वा, **संशयादिवत्,** 'आदि'ग्रहणा[12]द्विपर्ययनिर्णयौ गृह्येते तद्वच्चेतनाचेतनाज्ज्ञान-

---

१ **चेतनाः एवात्मा चेतनैवात्मा** भा० ॥ २ **यथा राजा** य० ॥ ३ °**त्मनः** य० ॥ ४ **चेनात्मैव** य० ॥ ५ °**युक्त उंदनो**(उन्दनेऽ ?)**नात्मत्वेन** भा० । °**युक्त पुदनोनात्मत्वेन** य० ॥ ६ °**स्यैव** रं० ही० ॥ ७ °**द्रस्यैव** प्र० ॥ ८ °**मात्मंतवै**° य० ॥ ९ **सोपि** प्र० । अस्मिंस्तु पाठे स्वारस्ये 'सोऽपि करणात्मा' इत्यर्थो ज्ञेयः ॥ १० °**वलनादि**° भा० डे० लीं० रं० ही० ॥ ११ **बहूचेतन**° भा० । **बहुचेतन**° य० ॥ १२ °**णात् पर्यय**° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा चैतत् तथानध्यवसायमपि द्रव्येन्द्रियपृथिव्यादि कार्यात्मा ज्ञानमेव, सुषुप्तावस्थात्मकत्वात्, हालाहलानुविद्धमदिरापानापादितनिद्रा[1]प्रसुप्तवदनध्यवसायवत् । योऽसौ पुरुषस्तदेव तत्, तेनात्मत्वेन परिणमितत्वात् तद्द्रव्यत्वाद् भूम्यबादिव्रीहित्ववत्, तत्कार्यत्वात् पटतन्तुवत्, तेन विनाऽभूतत्वात् तद्व्यतिरेकेणा-

---

मेवानध्यवसायः । अथवा **सुप्तवत्**, यथा हि सुप्त उच्छ्वासनिःश्वासादिक्रियासु अव्यक्तं चेतयमानोऽपि ज्ञातैवमनध्यव[2]सायोऽपि करणात्मैव व्यक्ततरः स्वापः विशिष्टस्वाप इत्यर्थः । एवं करणात्मा व्याख्यातः ।

इदानीं कार्यात्मा व्याख्यायते—**यथा चैत**दित्यादि । यथा चैतदनन्तरव्याख्यातमनध्यवसायविपर्ययसंशयावितथप्रत्यक्षादि ज्ञानं चैतन्यं **तथानध्यवसाय**मपगताध्यवसायमनध्यव[3]सायमचेतनाभिमतं **द्रव्येन्द्रियपृथिव्यादि कार्यात्मा** आत्मा, आत्मनैवात्मत्वेन परिणमितत्वादित्यादयो हेतवो [4]वक्ष्यन्ते । सा १३५-१ च सुप्तावस्था द्रव्येन्द्रियम्, निर्वृत्त्युपकरणद्रव्येन्द्रिये व्याख्याते प्राक्, ते च पुरुषेणात्मत्वेन परिणमिते । भावेन्द्रियं त्वात्मैव लब्धियुक्त उपयुक्तो वा । पृथिव्यादि च विपरिवर्तमानात्मत्वपरिणामापन्नमेव, पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वीन्द्रियादि तत् कार्यात्मा सुषुप्तावस्था, तदपि **ज्ञानात्मकमेव सुषुप्तावस्थात्मकत्वात्, हालाहलानुविद्धमदिरापानापादितनिद्रा[1]प्रसुप्तवत्**, यथा हालाहल[5]विषेण सद्योमारकेणानुविद्धां मदिरां पीत्वा तदापादिताया निद्राया वशमुपगम्य सुषुप्तश्चेतन एव सन्न किञ्चित् चेतयते पुरुषस्तथा द्रव्येन्द्रियपृथिव्यादि कार्यात्मा । अथवा **अनध्यवसायवत्**, यथा जागरादिपूर्वव्याख्यातावस्थाभ्यो विशिष्टा सुप्तावस्थानध्यवसायाख्या ज्ञानमेव तद्वत् कार्यात्मावस्था द्रव्येन्द्रियपृथिव्यादि ज्ञानमेव । [6]यथा निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानर्द्धिवेदनीयानामुत्तरोत्तरोत्कर्षभेदा[7]दावृतज्ञानशक्तेराचैतन्यविशेषै[8]स्तदावरणापगमविशेषापादितचैतन्यविशु त्कर्षपर्यन्तप्राप्तसार्व[9]ज्ञ्यवद्वा चैतन्यावरणप्रकर्षपर्यन्तप्राप्तं पृथिव्यादि ज्ञानमेव । कर्मणश्चाष्टविधस्य सप्रभेदस्य पुरुषपरिणामैक्यापत्तेर्ज्ञानात्मत्वमिति चैतन्यमेव पृथिव्यादेः ।

अत आह—**योऽसौ पुरुषस्तदेव तद्** द्रव्येन्द्रियपृथिव्यादि, **तेनात्मत्वेन परिणमितत्वात्** । को वात्र भेदः परिणामकपरिणम्ययोः ? इत्याह—**तद्द्रव्यत्वात्**, स एव द्रव्यं तद्द्रव्यं सप्रभेदं कर्म, तस्मात् तद्द्रव्यत्वात् । **[10]भूम्यबादिव्रीहित्ववत्**, यथा भूम्यम्ब्वा[11]द्येव व्रीहिर्व्रीहित्वेन परिणतत्वात् तद्द्रव्यत्वाद् व्रीहिर्भूम्यादिरेव भूम्यादिभिरेवात्मत्वेन परिणमितत्वाद् व्रीहिर्भूम्यादिरेव तथा पृथिव्यादि पुरुष एव चेतनात्मकः । इतश्च योऽसौ पुरुषस्तदेव तत् **तत्कार्यत्वात्**, यद् [12]यस्य कार्यं तदेव तत् **पटतन्तुवत्**, यथा तन्तूनां कार्यत्वात् पटस्तन्तुरेव तथा पुरुष एव पृथिव्यादि, पुरुषपूर्वकत्वप्रतिपादनस्य कृतत्वात् । इतश्च **तेन विनाऽभूतत्वात्**, तदेव तत् तेन विनाऽभूतत्वात्, यद् येन विना न भवति तदेव तत्,

---

१ अत्र °**निद्रासुषुप्तवत्** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ २ °**सायेपि** प्र० ॥ ३ °**सायचेतना**° प्र० ॥ ४ दृश्यतां पृ० १८५ पं० ३ ॥ ५ °**विशेषण** वि० विना । °**विशेषेण** वि० ॥ ६ **यथा निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानर्द्धि**° प्र० ॥ ७ °**भेदावृत**° य० ॥ ८ अत्र °**षस्तथावरणा**° इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ९ °**सार्वज्ञवद्वा** प्र० ॥ १० **भूम्यपादि**° प्र० ॥ ११ °**द्येव बहुव्रीहित्वेन परि**° प्र० ॥ १२ **यस्य न कार्यं नदेव** प्र० ॥

भावात् तद्देशत्वाच्च घटस्वतत्त्वप्रत्यग्रादित्ववत् ।

चैतन्यादात्मा पृथिव्यादिसुषुप्तावस्थाया विपर्ययेण वृत्तो रागाद्युपयुक्त उपयोगस्वातन्त्र्येण बद्ध्वात्मनात्मानमस्वतन्त्रीकरोति, कर्मबन्धेन रूपादिमत्त्वमनाद्यनन्तश आपद्यते । अनाद्यनन्तशः सूक्ष्मस्थूलशरीरादिरूपादिमत्त्वं प्रतिपद्यते

यथा रूपादय एव पृथिव्यादयः पृथिव्यादय एव रूपादयः, तेऽन्योन्यैर्विना न भूतत्वादन्योन्यात्मकास्तथा पुरुष एव काष्ठाद्यपि । किञ्चान्यत्, **तद्व्यतिरेकेणाभावात्**, यद्धि यद्व्यतिरेकेण न भवति तदेव तत्, यथा घटस्वतत्त्वप्रत्यग्रादित्वम् । **तद्देशत्वाच्च**, तस्य देशस्तद्देशः, तत्पुरुषस्यैव देशोऽवयवः स्वात्मा रथ्यापुरुषपाण्यादिवत्, तद्देशत्वं सृष्टेस्तत्पूर्वकत्वादिति हेतुः । यो यद्देशः स तत्स्वतत्त्व एव, किमिव? **घटस्वतत्त्वप्रत्यग्रादित्ववत्**, यथा घटस्य प्रत्यग्रयुवमध्यमपुराणता च घटस्वतत्त्वमेव तथा पृथिव्याद्यचेतनमपि चेतनपुरुषस्वतत्त्वमेव । यदुक्तमचिन्त्यप्रभावामूर्तसूक्ष्माज्ञकारणरूपादिमूर्तस्थूलविपरिवर्तवत् पुरुषविपरिवर्तमात्रं पृथिव्यादीति युक्त्योपपादितम् ।

तत्रैव पुनः संसारसिद्ध्यै युक्त्योपपादनार्थं प्रस्तूयते—**चैतन्यादात्मे**त्यादि यावद् **विपरिवर्ता-**
१३६-१ **नन्त्यवत्** । चेतनभावश्चैतन्यम्, तस्माच्चैतन्यादात्मा **पृथिव्यादिसुषुप्तावस्थाया विपर्ययेण वृत्त**स्तत ईषद्विशुद्धावस्थ इत्यर्थः, चैतन्यस्य रागादिविपरिणामाद् **रागादे**र्बन्धकारणत्वात् **तदुपयुक्त उपयोगस्वातन्त्र्येण**, उपयोगो हि चेतना, तस्य स्वातन्त्र्यं कर्तृत्वात्, मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः [तत्त्वार्थ० ८।१] इति वचनाद् रागाद्यात्मककषायविकल्पात्मकत्वान्मिथ्यादर्शनादीनां तेन स्वातन्त्र्येण **बद्ध्वात्मनात्मानमस्वतन्त्रीकरोति,** तेनैव च स्वयं कृतेन बन्धेन अस्वतन्त्रीक्रियते मद्येनेव स्वयं पीतेन मद्यपः, स्वयं पूरितवेगया डोलयेव वा पुरुषो भ्रम्यते कर्मडोलया, **कर्मबन्धेन रूपादिमत्त्वमनाद्यनन्तश आपद्यते** । एवमेतदुभयं सन्तत्याऽनाद्यनन्तं च द्रव्यार्थतया, यथोक्तम्—**पुव्विं भंते! कुक्कुडी पच्छा अंडए? पुव्विं अंडए पच्छा कुक्कुडी? रोहा! जा सा कुक्कुडी सा कतो? अंडगातो। जे से अंडए से कतो? कुक्कुडीतो। एवं रोहा! पुव्विं पि एते पच्छा वि एते, दो वि एते सासता भावा, अणाणुपुव्वी एसा रोहत्ति'** [भगवतीसू० १।६।५३]। तथा **सव्वजीवा णं भंते! एक्कमेक्कस्स मातत्ताए पितित्ताए भातित्ताए भज्जत्ताए पुत्तत्ताए धीतित्ताए? गोतमा! असति अदुवा अणंतखुत्तो** [भगवतीसू० १२।७।४५८] इत्यादि । तच्च द्विविधं रूपादि—सूक्ष्मं स्थूलं च । कर्मादि सूक्ष्मम्, **आदि**ग्रहणादुच्छ्वासनिःश्वासभाषामनस्त्वादिकार्मणतैजसाहारकशरीरादि च तदात्मत्वगत्या । स्थूलं पृथिव्यादि औदारिकवैक्रिय-

---

१ **घटवस्वतत्वप्रत्ययादि°** प्र० ॥ २ **मध्यपुरा°** य० ॥ ३ **°पुरुषत्वमेव** प्र० ॥ ४ दृश्यतां पृ० १७६ पं० ३ ॥ ५ **°सूक्ष्मज्ञ°** प्र० ॥ ६ **कुतो** प्र० । "पुव्विं भंते! अंडए पच्छा कुक्कुडी? पुव्विं कुक्कुडी पच्छा अंडए? रोहा! से णं अंडए कओ? भयवं! कुक्कुडीओ । सा णं कुक्कुडी कओ? भंते! अंडयाओ । एवामेव रोहा! से य अंडए सा य कुक्कुडी पुव्विं पेते, पच्छा पेते, दुवेते सासया भावा, अणाणुपुव्वी एसा रोहा" इति भगवतीसूत्रे पाठः ॥ ७ **कुतो कुक्कुडीओ** य० ॥ ८ **सासया** य० ॥ ९ दृश्यतां पृ० ४ टि० २ ॥ १० **पितत्ताए** भा० ॥ ११ **असई** भा० ॥ १२ "अयं णं भंते! जीवे सव्वजीवाणं माइत्ताए पितित्ताए भाइत्ताए भगिणित्ताए भज्जात्ताए पुत्तत्ताए धूयत्ताए सुण्हत्ताए उववण्णपुव्वे? हंता गोयमा! जाव अणंतखुत्तो" इति भगवतीसूत्रे पाठः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चैतन्यं कार्यात्मत्वात् मृद्घटकपालशकलशर्कराधूलिपांशुत्रुटिपरमाणुरूपादिपरमाण्वादिद्रव्यादित्वविपरिवर्तानन्त्यवत् ।

नन्वेवमनाद्यनन्तत्वे सति अविवेके चैतन्यरूपादिमत्त्वयोस्तुल्ये किमर्थं ज्ञानात्मकमित्युच्यते, किं रूपादिमदात्मकमिति नोच्यते सर्वम्? नैवं परिग्रहेऽपि कश्चिद्दोषः, अस्यैवार्थस्य सिसाधयिषितत्वात्। तथाहि – ज्ञस्यैव भवनस्योपपत्तेस्तदन्वयाच्च देशकालाभ्यां भवनं सिध्यति। तद्भिन्नपदार्थपरिग्रहे तु घटभवनं न सिध्यति।

शरीरा[1]त्मकत्वगत्या तदात्म[2]त्वात्। एतत् प्रक्रिययैव प्रतिपादितमपि सुखग्रहणार्थं प्रतिज्ञायते – **अनाद्यनन्तशः** १३६-२
सूक्ष्मस्थूलशरीरादिरूपादिमत्त्वं प्रतिपद्यते चैतन्यमिति। कुतः? **कार्यात्मत्वात्**, कार्यात्मत्वं च तस्य सिद्धं रूपादिपृथिव्यादिभेदरूपेण विपरिवृत्तेः साधितत्वात्, इह त्वनाद्यनन्तशः सेति साध्यते, यो यः कार्यात्मा स सोऽनाद्यनन्तशो विपरिवर्तमानो दृश्यते, तद्यथा **मृद्घटे**त्यादि, द्रव्यं मृद् भवति, मृद् घटो भवति, घटः **कपालानि**, ततः क्रमेण **शकल-शर्करा-धूलि-पांशु-त्रु[3]टि-परमाणवः**, ततो **रूपादयः**, रूपादिभ्यः पुनरुत्क्रमेण **परमाण्वादयो** यावद्**द्रव्यादित्वविपरिवर्तानन्त्यम्**। 'आदि'ग्रहणाद् गुणकर्मसत्तादित्वेन विपरिवर्तवत्। एवंप्रकारस्य भवनस्य स्वजात्यपरित्यागरूपस्य देशकालभेदैकान्ताभ्युपगमेऽनन्तरं व[4]क्ष्यमाणदोषत्वान्नान्यथैतदिति प्रतिपत्तव्यम्।

अत्राह – **नन्वेव**मित्यादि। नै[5]न्वेवमनादित्वात् कुक्कुट्यण्डकयोरिवानन्तत्वाच्च कुत्सिता कुटिः कुकुटिरित्यर्थे कुकुटिशब्दस्य शरीरार्थव्याख्यानाच्च मुक्तस्यापि रूपाद्यर्थज्ञानपरिणामाद**विवेके चैतन्यरूपादिमत्त्वयोस्तुल्ये किमर्थं ज्ञानात्मकमित्युच्यते, किं** वा कारणं **रूपादिमदात्मकमिति नोच्यते सर्वम्?** विशेषहेतुर्वा वाच्य इति तद्दर्शयन्नाह परः – **नन्वेवमनाद्यनन्तत्वे सती**ति गतार्थम्। आचार्य आह – **नैवं परिग्रहेऽपि कश्चिद्दोषः**, किं कारणम्? **अस्यैवार्थस्य सिसाधयिषितत्वा**च्चतुरवस्थात्मकत्वात् तस्य, तत एव रूपादिद्रव्येन्द्रियपृथिव्यादिरूपः स एवोच्यते, तथा च सृष्टेः पूर्वमुक्तत्वात्।

आह – चेतनाचेतनयोरैक्यापादनप्रस्तुतेः 'ज्ञः पुरुषः, तन्मयं चेदम्, स एव स्वतन्त्रो भवति' इति १३७-१
च विशेष्य ज्ञग्रहणं स्वतन्त्रग्रहणं च किमर्थमिति। आचार्य आह – **तथाही**त्यादि, भा[6]वयिष्यते। भवतीति भाव इत्युक्तम्, भावस्वरूपप्रदर्शनार्थं तु यो भवति स वाच्य इति ज्ञग्रहणम्, तदपि **तथाही**त्यादिना च एवं च कृत्वा यत् प्रा[7]गुक्तं 'देशकाल[8]भेदे भवनाभावदोषो वक्ष्यमाणः' इति तत्परिहारेण **ज्ञस्यैव भवनस्योपपत्तेस्तदन्वयाच्च** सर्वदेशकाला[9]त्मसान्निध्याद् **देशकालाभ्यां भवनं सिध्यति**, तथा हि वस्तु भवतीति शक्यं वक्तुम्। **तद्भिन्ने**त्यादि, देशकालभिन्नपृथिव्यादिभेदभूत**पदार्थपरिग्रहे तु** अन्यथा तु **घटभवनं** यदेतत् प्रत्यक्षसम्प्रसिद्धं तदपि **न सिध्यति**।

---

१ °**रात्मगत्या** भा० ॥ २ °**त्मत्वा** प्र० ॥ ३ °**तुटि**° भा० ॥ ४ दृश्यतां पृ० १८८ पं० १ ॥ ५ **नन्विद**(त्थ?)**मनादित्वात्** प्र० ॥ ६ (भाव इष्यते,)? ॥ ७ दृश्यतां पं० १४ ॥ ८ °**भेदभवनाभावदोषे** य० ॥ ९ °**त्मसान्निव्याद्** भा०। °**त्मसान्निधाद्** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशभेदप्रत्ययेन तावद् ग्रीवादिभेदभावे घटभवनं न। श्वेतिकाद्येकदेशभावे न मृत्। अश्मादिभेदान्न पृथिवी। पृथिव्यादिभेदान्न द्रव्यं गुणकर्मभेदाद्वा। द्रव्यादिभेदान्नैकं सत्त्वम्। कालभेदप्रत्ययेनापि प्रतिक्षणमव्यपदेश्यभवनात् कतरद् घटभवनम्, मृद्भूतव्रीह्याद्यम्ब्वादिकालभिन्नभावभेदे मृदभावात् परतोऽपि कपालादिपांशुव्रीह्यादिभूतेः। घटादिसर्वात्मकस्यैकस्य सत्त्वस्याभावात् प्रत्येकत्वस्य चेतरेतरासत्त्वात्मकत्वात् कुतो भवनं भवितुर्घटादेः?

यथा तु रूपादिभेदेन सर्वभेदपर्यन्तं भेदं विधाय विज्ञानमात्रमेव व्यवस्थाप्यते

तत् कथम्? **देशभेदप्रत्ययेन तावदि**त्यादि, ग्रीवापृष्ठकुक्षिबुध्नौष्ठादीनां देशभिन्नानां कपालशकलादीनां च यावत् परमाणुशो रूपादिशो निरुपाख्यत्वशश्च **भेदभावे घटभवनं न,** सिध्यतीति वर्तते। एवं **न श्वेतिका**पीतिका**द्येकदेशभावे मृत्। अश्मादिभेदान्न पृथिवी। पृथिव्य**प्तेजोवाय्वा**दिभेदान्न द्रव्यं गुणकर्मभेदाद्वे**ति, तदेव हि द्रव्यं रूपगमनादिगुणकर्मभेदाद् यावन्निरुपाख्यत्वभेदात् समुदायाभावार्था[1]सम्बन्धान्न द्रव्यम्। **द्रव्यादिभेदाद्** द्रव्यगुणकर्मनानात्वाद् **नैकं सत्त्वम्।** एवं तावद् देशभेदे घटभवनं न स्यात्, द्रव्यादीनामनुपपत्तेः।

कालभेदप्रत्ययेनापि प्रतिक्षणमव्यपदेश्यभवनात् कतरद् घटभवनं क्षणे क्षणेऽत्यन्तमसम्बद्धायःशलाकाकल्परूपाद्यात्मकत्वानुपपत्तेः? किं कारणम्? **मृद्भूतव्रीह्याद्यम्ब्वादिकालभिन्नभावभेदे मृद-**
१३७-२ **भावात्**, अस्मन्मतेन मृद्भूतो व्रीह्यादिरम्ब्वादिश्चैक एव कालान्तरावस्थाने सति तत्परिणामोपपत्तेः, त्वन्मतेन तु कालभिन्नभावभेदे क्षणे [क्षणे] नवनवार्थासम्बन्धाद् भावभेदे व्रीहिरेव विनष्टो मृन्न भवति, न [2]चोदकादि विनष्टं मृद् भवतीति निर्बीजत्वान्मृदभावः। मृदभावाच्च को घटः? भवनं वा किं स्यात्? अस्माकं तु सामान्यान्वयाद् व्रीह्यादय उदकादय एव वा मृद् भवति घटो भवतीत्यादि युज्यते, **परतोऽपि कपालादिपांशुव्रीह्यादिभूतेः**, घटभवनात् परतोऽपि घट एव कपालादि भवति, कपालादेरपि परतो यावच्छर्कराभवनात्, [3]पांश्वादेरपि परतो व्रीह्यादि[4]र्भवनात्। तस्माद् घटादि सर्वात्मकमेव भवति। न चेदेतदिष्यत एवम्प्रकारकं भवनं तत एवं **घटादिसर्वात्मकस्यैकस्य** देशकालव्यापिनः **सत्त्वस्याभावात्** त्वन्मतेनैव **प्रत्येकत्वस्य** [5]चेष्टस्य त्वया **इतरेतरासत्त्वात्मकत्वात् कुतो भवनं भवितुर्घटादेः?** घटः पटात्मना नास्ति पटोऽपि घटात्मनेति देशतः कालतश्च प्राक् पश्चाद्वा [न] स एवेति न पटोऽस्ति न घट इति प्रत्येकं भिन्नत्वे भावानामभावात् को घटः? किं वा भवनम्?

यथा तु रूपादीत्यादि यावद**स्मदुपवर्णनवदेवाभिहितं भवति।** यैश्च वर्ण्यते विज्ञानमात्रत्वं देशभेदाद् घटो भिद्यमानो **रूपादिभेदेन** भिद्यते यावद् निरुपाख्यशः कालभेदेन च भिद्यमानः परमनिरुद्धक्षणोत्पत्तिविनाशनिरुपाख्यशो भिद्यत इति तैः **सर्वभेदपर्यन्तं भेदं विधाया**पि **विज्ञानमात्रमेव**

---

१ °**वसंबंधाद्रव्यम्** प्र० ॥ २ **चोदकादि** भा० ॥ ३ **पांस्वा**° भा० ॥ ४ **व्रीह्यादिर्भ(भ?)वनात्** भा० ॥ ५ **चेष्टस्य** य० प्रतिषु नास्ति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथास्मदुपवर्णनवदेवाभिहितं भवति। ज्ञानस्यापि त्वभावाभ्युपगमे रूपाद्यपलापबीजनिरूपणादिनिर्मूलत्वात् प्रत्यक्षादिविरोधाः।

अत एवोक्तवत् सर्वत्र सन्निपत्याराद्दूरादुपकारिस्त्वेभ्य आत्मबुद्धीन्द्रियप्रकाशरूपघटौषधाहारादिषु ज्ञानवृत्तिर्भवति। अन्वाह च—

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ [शुक्लयजु० सं० ३१।२]

नान्यत्किञ्चिदिति **व्यवस्थाप्यते**। यथा तु तद् व्यवस्थाप्यते **तथास्मदु**क्तवदुपवर्णितमभिन्नमेकं विज्ञानमित्युक्तं भवति, ततश्च रूपरसादिघटपटादिविश्वभेदात्मकत्वात् तस्य, रूपादिपरस्परविविक्तत्वे तु तद्विज्ञानान्वयाभावाद् रूपरसादिभेदपरिकल्पनाभावस्तदंशकल्पनाभावो निरुपाख्यत्वकल्पनाभाव इति विज्ञानमात्रता न भवति। १३८-१

अथ कश्चिद् ब्रूयात्—तदपि 'विज्ञानमसत्[1] सर्वभावशून्यत्वादिति, एतच्चायुक्तम्, **ज्ञानस्यापि त्वभावाभ्युपगमे रूपाद्यपलापबीजनिरूपणादिनिर्मूलत्वात् प्रत्यक्षादिविरोधाः,** रूपादयो न सन्तीति यदपलापबीजं निरूपणं तदपि नास्तीति रूपादिप्रतिषेधो न सिध्यति, प्रत्यक्षतश्च स्वानुभवेन रूपस्य निरूपणमुपलभ्यते प्रतिस्वम्, **आदि**ग्रहणादास्वादनघ्राणस्पर्शनश्रवणानुभवा उपलभ्यन्ते, अतः प्रत्यक्षविरोधः। तदनुस्मरणदर्शनादनुमानविरोध **आदि**ग्रहणात्, अनुसरणं हि स्वयमनुभूतस्यार्थस्य नाननुभूतस्य। तस्मादवश्यमात्मा ज्ञानस्वभाव एकः सर्वभावव्यापी विपरिवर्तमानोऽवस्थितः कारणमिति सिद्धम्।

अत एवोक्तवदित्यादि। एतस्मादेव आत्मव्याप्तिविपरिवृत्तिव्यवस्थितत्वाद्धेतोरुक्तेन[2] तुल्यमुक्तवद् रूपादीनां तत्त्वाद् रूपणात्मकत्वाज्ज्ञानस्वभावात्मावस्थाविशेषमात्रत्वात् **सर्वत्र** सर्वभावेषु एष विशेषस्तस्यैव कारणपदार्थस्योपकारविशेषेभ्योऽपरो द्रष्टव्यः—सन्निपत्योपकारिणी बुद्धिरात्मनः साक्षादव्यवहिता भावानां १८२-२
स्वपरिवर्तविशेषाणामुपभोगे, भोक्ता तु स्वयमेव स्वपरयोः। आरादिन्द्रियाणि करणत्वात् दूरात् प्रकाशादयोऽनुग्राहका इन्द्रियाणां दवीयांसो रूपादयो दविष्ठा घटादय औषधव्यञ्जनादीनि[3] इन्द्रियाणां पाटवजननादुपकार्युपकारित्वेन तदुपोद्बलकराश्चाहाराः सर्वभावगतासु ज्ञानवृत्तिष्वित्यत आह—**सर्वत्र सन्निपत्याराद्दूरादुपकारित्वेभ्यो** हेतुभ्य **आत्मबुद्धीन्द्रियप्रकाशरूपघटौषधाहारादिषु ज्ञानवृत्तिर्भवती**ति।

अन्वाह चे[4]ति ज्ञापकम्, एतस्मिन्नर्थे पूर्वोक्तमेव जैनैर्वक्ष्यमाणज्ञापकार्थम् 'एकोऽप्यहमनेकोऽप्यहम्' [भगवतीसू०[5] १८।१०।६४७] इत्यादिकम्, अतोऽपि लौकिकस्तदनुसारेणाह न स्वमहिम्नेति। **पुरुष एवेद**मित्यादि, **एवे**त्यवधारणे, भवितुरन्यस्याभावादुक्तवत् तस्यैव च भवनात्। **इद**मिति दृश्यस्पृश्यादि इन्द्रिय-

---

१ **विज्ञानसत्** य०॥ २ °**स्थितत्वा(त्व?)हेतो**° प्र०॥ ३ **औषधाव्य(न्य?)ञ्जनादीनि** प्र०॥ ४ **अत्राह** य०॥ ५ "एगे भवं दुवे भवं अक्खए भवं अव्वए भवं अवट्ठिए भवं अणेगभूयभावभविए भवं? सोमिला! एगे वि अहं जाव अणेगभूयभावभविए वि अहं" इति भगवतीसूत्रे पाठः १८।१०।६४७। "एगे भवं दुवे भवं अणेगे भवं अक्खए भवं अव्वए भवं अवट्ठिए भवं अणेगभूयभावभविए वि भवं? सुया! एगे वि अहं दुवेवि अहं जाव अणेगभूयभावभविए वि अहं" इति ज्ञाताधर्मकथासूत्रे पञ्चमाध्ययने पाठः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत एव तस्य सर्वत्वसम्प्रसिद्ध्या आत्माद्याख्यता, मृदनुत्तीर्णघटपिठरादिवद् भ्वस्त्यर्थादिभ्यः सर्वस्यानुत्तरात् सर्वस्यासावात्मा स्वरूपं तत्त्वमित्यर्थः ।

गोचरं लिङ्गगम्यं वा निर्दिशति । **सर्वमित्य**शेषं तस्यैव सामान्यविशेषभेदप्रभेदानन्त्येऽपि सङ्गृहीतं बुद्ध्या । इदं च देशतः प्रदर्शनम्–**इदं सर्व**मिति । कालतस्तु **भूतं भाव्य**मिति अतीतानागतवर्तमानानां प्रदर्शनम्, भूतशब्दस्य वर्तमानातीतवाचित्वात् । **उत** पश्य प्रेक्षस्वेत्यर्थः । **अमृतत्वस्य** अक्षयत्वस्य **ईशानः** प्रभविता, स ह्यक्षयोऽजरोऽमरः पुरुषो ज्ञानस्याविनाशित्वात् सोऽक्षयत्वमनुभवतीत्यर्थः । यथोक्तम्– **अक्खरस्स अणंतभागो णिच्चुग्घाडितओ सव्वजीवाणं** [नन्दिसू० ४२] ति[1] । तद्व्याख्याननिदर्शनं च

तं पि जदि आवरिज्जिज्ज तेण जीवो अजीवयं पावे ।
सुट्ठु वि मेहसमुदये होइ पभा चंदसूराणं ॥ [नन्दिसू० ४२] ति[1] ।

यदिति यस्मात् कारणा**दन्नेनातिरोहति,** अद्यते भुज्यतेऽश्यत इत्यन्नं पुद्गलद्रव्यं तेनैवात्मनानाद्यनन्तां[3]-
१३९-१ शोऽपि विपरिवर्तितत्वात्, तेनान्नेनासावतिरोहति वर्धत उपचीयते तत्स्वारूप्याद् बालक इव नवनीताहारेण तेन ज्ञानक्रियै[4]योरुपष्टम्भोपलम्भात् करणकायविवृद्धेश्च । यथोक्तम्–**अन्नं[5] वै प्राणाः, अन्नमयो ह्ययं पुरुषः, पुरि शयनात् पुरुषः** [ ], ना[6]न्यस्यैतत् सर्वं घटतेऽतिरोहति भृशं रोहतीति ।

किञ्चान्यत्, **अत एवे**त्यादि । एतस्मादेव कारणात् सर्वत्वसिद्धि**स्तस्य** तत्त्वज्ञानस्वरूपस्य, तया च पुनः **सर्वत्वसम्प्रसिद्ध्या आत्माद्याख्यता**[7] । सततमतति गच्छति जानीते परिणमतीति[8] चात्मा । सतो भावः सत्त्वम्, स एव सन् भवति चेत्यर्थः । भूतस्तथा सदा भवतीति वा । पुरि शयनात् पुरुषः शरीरे जगति वा स्वविजृम्भितविकल्पात्मके । पूरणाद् गलनाच्च पुद्गलः पुमांसं गिलतीति वा पुद्गलः, जीवशरीरतया विभज्य भोक्तृ[9]भोग्यभावाद् वृद्धिहानिभ्यामुत्पत्तिविनाशाभ्यां पूरणगलनाभ्यामित्यर्थः । जायते तैस्तैर्भावैरिति जन्तुः । पञ्चेन्द्रियमनोवाक्कायबलायुरुच्छ्वासनिःश्वासाख्यदशप्राणधारणात् प्राणी जीव इति चोच्यते इत्येवमाद्यभिख्याः सर्वत्वे सति घटन्ते तेन तेन धर्मेण व्यपदेशाविरोधात् । **मृदनुत्तीर्णघटपिठरादिवत्,** यथा मृदोऽनुत्तीर्णा घटपिठरादयो भवन्ति सन्ति वर्तन्त इत्यादिभ्यो भ्वस्त्याद्यर्थेभ्यो नोत्तरन्ति भवनानुत्तरात् सर्वधातूनां च भ्वाद्यर्थत्वादेवं ज्ञानस्वरूपः कर्ता भवति अस्ति वर्तते ज्ञानस्वरूपभवनानुत्तरात्[10] ।
१३९-२ अत आह–**भ्वस्त्यर्थादिभ्यः सर्वस्यानुत्तरात्[10],** अस्ति[11]भवतिविद्यतिपद्यतिवर्ततयः सन्निपातषष्ठाः सत्तार्थाः, भ्वादयश्च सर्वधातवस्तदर्थं नातिवर्तन्त इति यावदेव किञ्चिदुत्पद्यते विनश्यति व्यवस्थितं वा तस्य **सर्वस्यासावात्मा स्वरूपं तत्त्वमित्यर्थ** इति पर्यायैः स्वरूपो[12]नयः ।

स्यान्मतम्–स्वात्मनि वृत्तिविरोधात् कथमात्मनात्मानं सृजत्युपसंहरति च बध्यते मुच्यते च ? न। [13]ह्यङ्गुल्यग्रमङ्गुल्यग्रं स्पृशति नासिरात्मानं छिनत्तीति, एतच्चायुक्तम्, शक्तिभेदात् कारकभेदोपपत्तेः, **तत्र-**

---

१ दृश्यतां पृ० ४ टि० २ ॥ २ °वअं भा० ॥ ३ °शोविपरिवर्त्तत्वात् भा० ॥ ४ °योपष्ट° य० ॥ ५ "अन्नं वै चन्द्रमाः, अन्नं प्राणाः, उभयमेवोपैत्यजामित्वाय" इति तैत्तिरीयब्राह्मणे ३।२।३।१९॥ ६ नान्यस्यै° भा० ॥ ७ °द्याख्याता प्र० ॥ ८ °मति चात्मा य० ॥ ९ °भोज्यभावाद् रं० ही० विना ॥ १० °त्तारात् प्र० ॥ ११ दृश्यतां पृ० ३४ पं० २० ॥ १२ °पनय भा० । °पनयं य० । १३ ह्यंगुल्यग्रं स्पृशति पा० भा० रं० ही० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तन्त्रवायककोशकारककीटवच्च तदात्मका एवैते संहारविसर्गबन्धमोक्षाः। यथा च सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गा भवन्ति.........।

स एव कलनात् कालः। प्रकरणात् प्रकृतिः। रूपणादिनियमनान्नियतिः। स्वेन रूपेण भवनात् स्वभावः। येन यत्र यथा यस्माद् यदा यदर्थं च प्रवर्तितव्यं

वा[1]यककोशकारककीटवच्च तदात्मका एवैते संहारविसर्गबन्धमोक्षाः, यथा तन्त्रवायकीटः स्वशरीरजयैव लालया तन्त्रं प्रसारयत्युपसंहरति च न चान्यतः कुतश्चित् तथात्मन एव संहारविसर्गौ। उक्तं हि–यथोर्ण[2]नाभिः सृजते गृह्णीते च यथा पृथिव्यामौषधयः सम्भवन्ति। यथा सतः पुरुषात् केशलोमानीति वा, यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गा भवन्ति तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् [मुण्डकोप०] इति। बन्धमोक्षावपि यथा कोशकारकीटक आत्मानं वेष्टयति स्वशरीरविनिर्गतेन कोशेन पुनश्च तत्रैव प्रलीयते कश्चिच्च कोशकं छिद्रीकृत्य निर्गच्छत्येवमात्मनो बन्धमोक्षौ नान्यत इति। किञ्चान्यत्, **य[5]था च सुदीप्ता**दित्यादि, अयमपि दृष्टान्तोऽग्निस्वतत्त्वानि[6]वृत्त्याग्निरूपसम्भवात् पुरुषस्य तत्साधर्म्यप्रदर्शना[7]र्थम्, य[8]थाऽन्वाह–**यथा सुदीप्तात् पावका**दित्यादि। एवं तावत् पुरुष एव सर्वमित्युक्तम्।

स एवोच्यते कालोऽपि, **स एव** ज्ञ[9]त्वात् **कलनात् कालः,** कल सङ्ख्याने [पा० धा० ४९७, १८६६], कलनं ज्ञानं सङ्ख्यानमित्यर्थः। य[10]था चाहुरेके–कालः पचति भूतानि [   ] इति श्लोकः। **प्रकरणात् प्रकृतिः** स एवेति वर्तते। सत्त्वरजस्तमःस्वतत्त्वान् प्र[12]काशप्रवृत्तिनियमार्थान् गुणानात्मस्वतत्त्वविकल्पानेव भोक्ता प्रकुरुते इति प्रकृतिः, यथाहुरेके– १४०-१

अजामेकां लोहित[13]शुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स[14]रूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥ [श्वेताश्व० ४।१।५५]

इति। **रूप[15]णादिनियमनान्नियतिः,** रूपणाच्चक्षुषो विषयो रूपमेव न रसादयः, रसनाद् रसो रसनविषयो न रूपादय इत्यादि नियमनान्नियतिः। स्वो भाव आत्मनैव **स्वेन रूपेण भवनात् स्वभावः**। यथाहुरेके–

[16]*कः कण्टकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं विचित्रभावं मृगपक्षिणां च।
स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं न कामचारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः॥ [   ] इति*।

---

१ °**वायकाश**° भा०॥ २ °**नाभः** य०॥ ३ **अथा** प्र०॥ ४ "यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति। यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥ १।१।७॥'''तदेतत् सत्यम्–यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः। तथाक्षराद् विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति॥२।१।१॥" इति **मुण्डकोपनिषदि** पाठः॥ ५ अत्र 'यथा च सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गा भवन्ति तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्।' इति मूले सम्भाव्यते॥ ६ °**नविवृत्त्याविरूप**° प्र०॥ ७ °**नार्थं** भा०॥ ८ **यथात्वाह** प्र०॥ ९ **ज्ञात्वा कल**° प्र०॥ १० **यथा बहुरेके** प्र०॥ ११ "कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः। कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः॥" इति संपूर्णः श्लोकः॥ १२ **प्रकाशवृत्ति**° प्र०॥ १३ °**तकृष्णशुक्लां** प्र०॥ १४ **विरूपाः** प्र०॥ १५ °**दिग्निय**° प्र०॥ १६ * * एतच्चिह्नान्तर्गतस्य पाठस्य स्थाने **कः कण्टकानामित्यादि** इत्येव य० प्रतिषु पाठः॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तेन तत्र तथा तस्मात्तदा तदर्थं च प्रवृत्तिः । तदन्तरेव तस्य, न ततो व्यतिरिक्तम्, स[1] एव हीदं वृत्तमविवृत्तं च बहुधानकं चेतनाचेतनादिप्रभेदरूपम् । अन्वाह च—

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तदुपान्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ [शुक्लयजु० वा० सं० ४०।५]

अर्हणबोधनेत्यादेर्विशुद्धिप्रकर्षविशेषाद् देवता अपि स एव, यावदर्हन्नपि भवतीति सम्भाव्यते ।

सत्यम् । भवनं कर्तुः, भवनस्य क्रियात्वात्, पचिवत् । यत्तु स ज्ञ इति

येन हेतुना **यत्र** क्षेत्रे **यथा** येन प्रकारेण **यस्मादा**श्रयाद् वस्तुनो **यदा** यस्मिन् काले **यदर्थं च** यत् प्रयोजनमुद्दिश्य **प्रवर्तितव्यं तेन तत्र तथा तस्मात्तदा तदर्थं च प्रवृत्तिः**[2], तद्यथा—राज्ञाज्ञप्तः सूपकारः स्थाल्यामोदनं कुशूलात् तण्डुलानाहृत्य[3] मृदुविशदमोदनं 'पेयात्यैपूर्वकं[4] क्षुत्प्रशमनार्थं च पचतीति । तत् पुनः प्रवर्तनं **तदन्तरेव[5] तस्य** पुरुषस्य[6], **न ततो व्यतिरिक्तं** बहिर्भूतम् । **स एव हीदम्,** स एव पुरुषो यस्मादिदं सकलं जगद् **वृत्तं** ततः प्रसृतं नानाभेदेन विवर्तमानम्, **अविवृत्तं च** तत्स्वरूपापरित्यागात् । **बहुधानकं** बहूनामाश्रयः[7] । चेतनाचेतनादिप्रभेदा रूपमस्येति **चेतनाचेतनादिप्रभेदरूपम्,** यच्च[8] चेतनं नरतिर्यगमरनारकादि तत्प्रभेदाश्च रूपमस्य काष्ठकुड्यघटपटाद्यचेतनं च सप्रभेदमस्य रूपम् ।

अन्वाह चेति जैनमतानुसारेणैवेत्यर्थः । **तदेजति** चलति स्पन्दते, **नैजति** न चलति न स्पन्दते । १४०-२ **तद् दूरे** तिर्यग्लोकेऽधोलोकेऽलोके च । **तदुपान्तिके[9]** तदेवास्मिन्[10] प्रदेशे दृश्यस्पृश्यादि । **तदन्तरस्य** घटपटादेः **सर्वस्य** वस्तुनः साकारानाकारोपयोगलक्षणस्यात्मनस्तत्परिणतेरप्रतिघातात् । **तदु सर्वस्यास्य[11] बाह्यतः,** तस्यैवालोकेऽपि सद्भावात्, 'सर्वस्यास्य' इति लोकगतभावनिर्देशात् तस्य बाह्यमलोक इति ।

अर्हणबोधनेत्यादेर्विशुद्धिप्रकर्षविशेषाद् देवता अपि स एव, अर्हति सर्वलोकातिशयपूजा इत्यर्हन्, बुध्यत इति बुद्धः, वर्धनाद् बृहत्त्वाद् ब्रह्मा वर्धमानो वा, व्याप्नोतीति विष्णुर्ज्ञानात्मनैव सर्वानर्थान्, ईशनादीश्वरः, एतेभ्यश्च ज्ञानविशुद्ध्युत्कर्षभेदेभ्यस्तत्पर्यन्तप्राप्ते**र्यावदर्हन्नपि भवतीति सम्भाव्यते,** दुष्प्रापत्वादार्हन्त्यस्य सम्भावनयोच्यते, शेषपदप्राप्तिस्तु सुलभैवेति, तामपि च दुरापां सर्वज्ञावस्थां परमविशुद्धां परमर्ष्याख्यां स एव प्राप्तुमर्हतीति । एवं विधिविधिनयविकल्पः पुरुषवादः ।

अधुना नियतिवादो विधिविधिनयदर्शनाश्रयोऽभिधीयते—**सत्यम्, भवनं कर्तु**रित्यादि । सत्यं युक्तमेतदुच्यते त्वया—तन्न भवतः स्वातन्त्र्यमुपलभ्यमानं पचाविव शक्यमपह्नोतुम् । किं कारणम् ?

---

१ "अथापरे विवृत्ताविवृत्तं बहुधानकं चैतन्यमित्याहुः ।" इति भर्तृहरिविरचितायां वाक्यपदीयवृत्तौ १।८ ॥ २ **प्रवृत्तिस्तथा** प्र० । अत्र 'प्रवृत्तिः, यथा राज्ञाज्ञप्तः' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ३ **तंदुलाकृत्य मृदुविशद**° य० । **तंदुविशद**° भा० ॥ ४ अत्र 'पेयापूर्वकम्' इति पाठः सम्भाव्यते ॥ ५ °**रेचेतस्य** प्र० ॥ ६ **पुरुषस्य** य० प्रतिषु नास्ति ॥ ७ **बहूधानामां श्रयः** भा० । **बहुधानाश्रयः** य० ॥ ८ **यच्चेतनं** य० ॥ ९ अत्र **तद्वन्तिके** इति यजुर्वेदे पाठः, एवं चात्र नयचक्रवृत्तौ **तदु चान्तिके** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १० **तदेकस्मिन्** प्र० ॥ ११ **सर्वस्य बा**° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्प्रधार्यमेतत्। स यदि ज्ञः स्वतन्त्रश्च, नात्मनोऽनर्थमनिष्टमापादयेद् विद्वद्राजवत्।

न, निद्रावदवस्थावृत्तेः पुरुषताया एवास्वातन्त्र्यात्, आहितवेगवितटपातवत्। ननु तज्ज्ञत्वाद्ययुक्तैवैषा समर्थ्यते, युक्तत्वाभिमतत्वेऽपि चायमेव नियमः कर्त्रन्तरत्वापादनाय। भवति कर्ता .... अचेतनोऽपि भवति । तन्नियमकारिणा

भवनस्य क्रियात्वात्, या क्रिया सा भवितुरेव घटादेः परमाण्वादेर्वा, यथा पचिक्रिया पक्तुरेव भवति स्वतन्त्रस्य। भवनमपि च क्रिया, क्रियात्वाद् भवित्रा विना न भवति, **पचिवत्**। भविता च कर्ता, कर्ता च स्वतन्त्रः, कर्तृत्वादेव न केनचिदसौ भाव्यते कार्यते[1] वा स्वातन्त्र्यात् कर्तृत्वात्। **यत्तु स ज्ञ इति सम्प्रधार्यमेतत्**, यत् पुनरुच्यते 'स्वातन्त्र्यात् कर्ता ज्ञ एव' इत्यवधार्य तत्र त्वया सहैतत् सम्प्रधार्यं विचार्य- १४१-१ मस्ति, 'सर्वज्ञमेव' इत्ययुक्तमित्यभिप्रायः। किं कारणमयुक्तम्? सर्वज्ञस्यैव भवनाभ्युपगमे दोषदर्शनात्, कर्तृत्वात् स्वातन्त्र्यमस्तु[2], को वारयति? **स यदि ज्ञः स्वतन्त्रश्चे**त्युभयगुणसम्पन्न इष्यते यदि ज्ञः सन् स्वतन्त्रोऽपि स्याद् **नात्मनोऽनर्थमनिष्टमापादयेत्** ज्ञत्वे सति स्वतन्त्रत्वात्। को दृष्टान्तः? **विद्वद्राजवत्**, यथा हि दैवपौरुषगतिज्ञो देशकालसहायसाधनसम्पन्नः पराक्रमवान् राजा नात्मनोऽनर्थमनिष्टमरण-पराजयादिमापादयत्येवमसावपि[3] नात्मनोऽनर्थमनिष्टमापादयेत्, दृष्टस्त्वयमनर्थोऽनिष्टो जन्मजरामरणरोग-शीतोष्णादिः शारीरो मानसश्च शोकभयविषादेर्ष्यासूयादिः, तस्मादयुक्तमस्य ज्ञत्वमिति।

एतच्च **न, निद्रावदवस्थावृत्ते**रित्यादि। नैतदुपपद्यते 'अनर्थानिष्टापादनानुपपत्तिर्ज्ञस्यात्मनः' इति, कस्मात्? **निद्रावदवस्थावृत्तेः**, निद्रावत्यवस्था निद्रावदवस्था, तया वृत्तिर्निद्रावदवस्थावृत्तिः[4], तस्या वृत्तेः **पुरुषताया एवास्वातन्त्र्यात्**, ज्ञस्यापि स्वकृतनिद्रावदवस्थावृत्तिवशादस्वातन्त्र्यात्। **आहितवेगवितटपातवत्**, यथा कश्चित् पुरुषः स्वयमेव पूरितवेगस्तं वेगं निवर्तयितुमशक्तो वितटे[5] पतति तथा स्वतन्त्रमपि ज्ञमपि तत् परं कारणमात्मनोऽनिष्टमनर्थमापादयेत्, को दोषः? इति अत्र दोषकुतूहलं चेद् ब्रूमः—**ननु तज्ज्ञत्वे**त्यादि, नन्वेवं त्वया 'निद्रावदवस्थावृत्तिवशादाहितवेगवितटपातवदवस्थाऽस्वातन्त्र्यादनर्थानिष्टानयनम्'[6] इति ब्रुवता **तज्ज्ञत्वाद्ययुक्तैवैषा समर्थ्यते**, तेन 'अनया पूरितवेगया शीघ्रगमनक्रियया वितटपातो भविष्यति' इत्यज्ञातत्वात्, ज्ञातत्वे वितटपातः स्वतन्त्रस्य नोपपद्यत इति स एव दोषः। तस्मात् तदवस्थमयुक्तत्वम्।

युक्तत्वाभिमतत्वेऽपि चेत्यादि। यद्यपि स्वातन्त्र्यज्ञत्वाविनाभाविभवनबलोपबृंहितमात्ममयत्वमेवास्य १४१-२ सर्वस्य मन्यसे तथापि तु **अयमेव नियमः कर्त्रन्तरत्वापादनाय** भवतीति वाक्यशेषः। कथं कृत्वा तद् भाव्यत इति चेत्, उच्यते—**भवति कर्ते**ति प्रागभिहिताक्षरार्थन्यायं[7] तदीयमेवोच्चारयति यावद**चेतनोऽपि भवती**ति त्वयैव कारणान्तरास्तित्वमेवं ब्रुवता समर्थितं भवति किञ्चिदासामवस्थानाम्, पचाविव ज्ञाज्ञ-स्वतन्त्रास्वतन्त्रस्वविषयनियतकर्तृकरणाधिकरणकर्मादिनियतशक्तिदर्शनाद् देवदत्तकाष्ठस्थालीतन्दुलोदकादीनां[8]

---

१ **कार्यते क्रियाभे**(क्रियते?) **वा** भा० ॥ २ °**मस्त** प्र० ॥ ३ °**वप्य** य०। °**वप्या** भा० ॥ ४ °**द्रावस्थावृत्ति**° प्र० ॥ ५ **विपतटे** प्र० ॥ ६ **विटपात**° प्र० ॥ ७ दृश्यतां पृ० १७५ पं० २ ॥ ८ अत्र °**तन्दुलौदनादीनां** इति पाठः स्यात् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारणेनावश्यं भवितव्यं तेषां तथाभावान्यथाभावाभावादिति नियतिरेवैका कर्त्री। न हि तस्यां कदाचित् कथञ्चित् तदर्थान्यरूप्यमेकत्वव्याघाति। अन्वाह च –

प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा।
भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने नाभाव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः॥ [ ]

न च मूर्तामूर्तादितथातथाप्रविभक्ताप्रविभक्तसर्वार्थयाथातथ्यस्थापनैकरूपत्वान्निय-

---

तन्नियमकारिणा कारणेनावश्यं भवितव्यम्। किं कारणम्? **तेषां तथाभावान्यथाभावाभावात्,** दे[1]वदत्तोऽधिश्रयणोदकसेचनतन्दुलावपनैधोऽपकर्षणादिव्यापारस्वातन्त्र्य एव नियतो न ज्वलनसम्भवनधारणविक्लित्त्यादिव्यापारस्वातन्त्र्ये, एवं शेषाणामपि काष्ठादीनां करणादिस्वव्यापारविषयस्वातन्त्र्यनियमस्तथाभावः। तेषामेव कारकाणां स्वव्यापारविपरीतशक्तिः परस्परतोऽन्यथाभावः। तयोस्तथाभावान्यथाभावयोरभावादभावप्रसङ्गादिति यावत्। दृष्टौ चेमौ तथाभावान्यथाभावौ। तस्मा[2]न्नियतत्वान्नियमकारिकारणापेक्षनियमा एव भावाः, तच्च कारणं नान्यदतो भवितुमर्हति नियतेरित्यत आह – **इति नियतिरेवैका कर्त्री,** 'इति'शब्दो हेत्वर्थे, अस्माद्धेतोर्नियमकारिकारणाविनाभावाद् भावनियमस्य 'नियतिरेवैका कर्त्री'
१४२-१ इत्यस्तु निर्दोषा कल्पना। कथम्? यस्माद् **न हि तस्यां कदाचित् कथञ्चित् तदर्थान्यरूप्यमेकत्वव्याघाति।** ज्ञानात्मकैककारणवादे पृथिव्याद्यचेतनमकारणानुरूपमित्यस्ति व्याघातोऽवस्थासु चतसृष्वपि कल्पितासु, कारणपूर्वत्वाभ्युपगमात् कार्याणाम्। न हि नियतेर्नियममात्रस्य कर्त्र्या भावानां सारूप्यवैरूप्यभेदेऽपि व्याघातोऽस्ति। **कदा[3]चिदि**त्यवस्थान्तरेऽपि, **कथञ्चि**दिति प्रकारान्तरेऽपि। तस्मात् कारणैकत्वेऽपि वैरूप्यदोषपरिहारसमर्थत्वान्नियतिकारणकल्पना श्रेयसीति। **अन्वाह चे**ति जिनवचनो[4]ज्जीवनमेतदपि ज्ञापकं पूर्ववत्। **प्राप्तव्यो नियतिबले**त्यादि, कृतेऽपि यत्ने कार्यविपत्तिदर्शनादकृतेऽपि निध्यादिदर्शनसम्पत्तिदर्शनात् कार्यस्य कारणानुरू[5]पगुणस्तद्वैरूप्यविरोधपरिहारसमर्थोऽस्ति।

किमयमेव गुणः? अन्योऽप्यस्ति? असीत्युच्यते। कतमोऽसौ? अयत्नप्रतिपाद्यतागुणः, स च मू[6]र्तामूर्ताद्ययुक्तविरुद्धधर्मापत्तिपरिहारेणेति तद्दर्शयति – **न च मूर्तामूर्ते**त्यादि यावद् **यत्नप्रतिपाद्य[त्व]मस्ती**ति। तत्रोपपत्तिः – उभयथा **त[7]थातथाप्रविभक्ते**त्यादि यावद् **नियतेः**। तेन तेन प्रकारेण तथा तथा मूर्तत्वेन अमूर्तत्वेन चेतनत्वेन अचेतनत्वेन सौक्ष्म्येण स्थौल्येन च ऐश्वर्येण दारिद्र्येण चेत्यादिना प्रविभक्तानामर्थानां 'सर्वं वस्तु ज्ञेयं सदर्थः' इत्यादिना चाप्रविभक्तानां सर्वेषामर्थानां यथातथाभावो याथा-

---

१ "कोऽसौ प्रतिकारकं क्रियाभेदः पचादीनाम्? अधिश्रयणोदकासेचनतण्डुलावपनैधोऽपकर्षणक्रियाः प्रधानस्य कर्तुः पाकः। अधिश्रयणोदकासेचनतण्डुलावपनैधोऽपकर्षणादिक्रियाः कुर्वन्नेव देवदत्तः पचतीत्युच्यते। तत्र तदा पचिर्वर्तते। एष प्रधानस्य कर्तुः पाकः। एतत् प्रधानकर्तुः कर्तृत्वम्। द्रोणं पचत्याढकं पचतीति सम्भवनक्रिया धारणक्रिया चाधिकरणस्य पाकः। द्रोणं पचत्याढकं पचतीति सम्भवनक्रियां [=ग्रहणक्रियां] धारणक्रियां च कुर्वती स्थाली 'पचति' इत्युच्यते। तत्र तदा पचिर्वर्तते। एषोऽधिकरणस्य पाकः। एतदधिश्रयणस्य कर्तृत्वम्। एधाः पक्ष्यन्ति आ विक्लित्तेर्ज्वलिष्यन्तीति ज्वलनक्रिया करणस्य पाकः। एधाः पक्ष्यन्ति आ विक्लित्तेर्ज्वलिष्यन्तीति ज्वलनक्रियां कुर्वन्ति काष्ठानि 'पचन्ति' इत्युच्यन्ते। तत्र तदा पचिर्वर्तते। एतत् करणस्य कर्तृत्वम्।" इति पातञ्जलमहाभाष्ये ३।४।२३॥ २ °**न्नियतत्वा**° भा० प्रतौ नास्ति॥ ३ °**च्चिदिति व्यवस्था**° य०॥ ४ °**जीवनमे**° प्र०॥ ५ अत्र °**रूप्यगुण**° इति पाठः स्यात्॥ ६ **मूर्ताद्ययुक्त**° प्र०॥ ७ **तथाप्रवि**° प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेर्यत्नप्रतिपाद्यत्वमस्ति । प्रयत्नसाध्येष्वर्थेषु कृतकेष्वपि च तद्विषयक्रियाफलस्य तथानियतेर्व्यर्पिता नियतिकारणत्वस्य ।

परमार्थतोऽभेदासौ कारणं जगतः, भेदवद्बुद्ध्युत्पत्तावपि परमार्थतोऽभेदात्, बालादिभेदपुरुषत्ववत् । कथम्? अभेदबुद्ध्याभासभावेऽप्यभेदाभ्यनुज्ञानाद् भेदबुद्ध्याभासभावेऽप्यभेदाभ्यनुज्ञानादेव व्यवच्छिन्नस्थाणुपुरुषत्ववत् ।

तथ्यम्, तेन याथातथ्येन तस्य तस्यार्थस्य सर्वस्य नियमेन तिष्ठतः प्रयोजकत्वं [1]हेतुकर्तृत्वं स्थापनम्, तच्चैकरूपमेव सर्वत्र तस्या नियतेः, तस्माद्धेतोस्**तथातथा[2]प्रविभक्ताप्रविभक्तसर्वार्थयाथातथ्यस्थापनैकरूपत्वान्नियतेर्नेदानीं** नियमनमात्रैकव्यापाराया नियतेर्हेतुत्वप्रतिपादनाय यत्नः कश्चिदास्थेयः । १४२-२

प्रयत्नसाध्येष्वर्थेषु कृतकेष्वपि च तद्विषयक्रियाफलस्य तथानियतेर्व्यर्पिता नियतिकारणत्वस्य । स्यान्मतम्—नियतिनिबद्धत्वात् सर्वभावानां क्रियाक्रियाफलयोरनियम इति, तन्न भवति, तद्विषयस्य घटादिविषयस्य मृत्पिण्डदण्डचक्रादिसाधनस्य प्रयत्नसाध्यस्य घटात्मनिर्वृत्तिरूपस्य क्रियाफलस्य तेन प्रकारेण नियतेर्नियतिरेवात्र कारणमिति ।

इदानीं तस्या नियतेः स्वरूपं चिन्त्यते—किं तावत् तेषामेव भावानां [3]स्वं स्वं रूपं प्रतिभावं भिन्नं नियतिरुच्यते, उत अभेदा सा? इति । अत्र **परमार्थतोऽभेदासौ कारणं जगतः,** नास्या भेद इत्यभेदा । कस्मात्? **भेदवद्बुद्ध्युत्पत्तावपि परमार्थतोऽभेदात् ।** अथवा कोऽसौ भेदो नाम नियतेरपि? [4]क्रियासाध्यासाध्यार्थरूपत्वाद् भावानां नियम इति चेतनाचेतनत्वादिबुद्ध्युत्पत्तौ[5]वपि सत्यां परमार्थतो नियतिरित्येवाभिन्नत्वादभेदा, भेदबुद्धिस्तु तद्विकल्पमात्रभावापेक्षा । किमिव? **बालादिभेदपुरुषत्ववत्,** यथा बाल्यकौमारयौवनमध्यमावस्थाभेदबुद्ध्युत्पत्तावपि पुरुषत्वमभिन्नमेवं नियतिरपि [6]क्रियाक्रियानियतफलभेदबुद्ध्यादिभेदेष्वभिन्नेति ।

आह—कथं परमार्थतो नास्ति भेदो भेदबुद्ध्याभासभावेऽस्याः? दृश्यमाने हि भेदबुद्ध्याभासभावे किञ्चित् क्रियया साध्यं किञ्चिन्नेति किञ्चित् स्वत एव किञ्चित् परत इति । अथवा परमार्थतस्तु भेद एवास्तु सत्यप्यभेदबुद्ध्या[7]भासभावे सतीति आचार्यो द्विधापि चोदिते परिहारमाह—**कथमित्यादि** । यदि भेदोऽभिमतस्तत्र कथं परमार्थतो भेदः? **अभेदबुद्ध्याभासभावेऽप्यभेदाभ्यनुज्ञानात्** त्वयैव, १०३-१ अभेदवदाभासते भेद एवेति । अथाभेद इष्टः कथमभेदः? **भेदबुद्ध्याभासभावेऽप्यभेदाभ्यनुज्ञानादेव ।** यद्येकान्तबुद्धिस्त्वन्म[8]तेन परमार्थविषयत्वे तदा तदाभासाद् द्विधापि चाभेदस्याभ्यनुज्ञानादेवा-

---

१ "तत्प्रयोजको हेतुश्च । १ । ४ । ५५ ॥ कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात् ।" इति **पा**णिनीयव्याकरण**सिद्धान्तकौमुद्याम्** ॥ २ °**प्रविभक्तसर्वार्थ**° प्र० ॥ ३ **स्वं स्वरूपं** पा० डे० लीं० । **स्वस्वरूपं** वि० । **स्वरूपं** रं० ही० ॥ ४ **क्रियासाध्यसाध्यार्थ**° भा० पा० । **क्रियाक्रियासाध्यसाध्यार्थ**° भा० पा० विना ॥ ५ °**त्तावसत्यां** प्र० ॥ ६ वि० रं० ही० विनान्यत्र **कियाक्रियाक्रियानियत**° पा० डे० लीं० । **क्रियानियत**° भा० ॥ ७ °**द्ध्यावभास**° प्र० ॥ ८ °**न्मते परमार्थविषयत्वे तदा तदाभासा द्विधापि** य० । °**न्मतेन परमार्थविषये तदातदातदाभासा द्विधापि** भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सा च तदतदासन्नानासन्ना, तस्या एव तदतदासन्नानासन्ननानावस्थद्रव्यदेशादिप्रतिबद्धभेदात्, मेघगर्भवत्। नाभाविभावो न भाविनाशः।

न कालादयं विचित्रो नियमः, वर्षारात्रादिष्वपि क्वचिदयथर्तुप्रवृत्तेः। न च स्वभावात्, बाल्यकौमारयौवनस्थविरावस्थाः सर्वस्वभावत्वाद् युगपत् स्युः, भेदक्रमनियतावस्थोत्पत्त्यादिदर्शनान्न स्वभावः कारणम्। तथा तु तत् तथानियति वस्तु।

भेदा सेति गृह्यताम्। किमिव? **व्यवच्छिन्नस्थाणुपुरुषत्ववत्,** परमार्थतः स्थाणुरेव वा पुरुष ऐव[1] वेति व्यवच्छिन्ने वस्तुनि यथोर्ध्वतासामान्यस्याभेदस्य दर्शनादभेद एवं सर्वनियतिषु क्रिया-क्रियाफलरूपास्विति।

सा पुनर्नियतिर्भेदाभेदरूपा[2], कस्मात्? इति सकारणं स्वरूपनिरूपणमस्या उच्यते — **सा चे**त्यादि। सा च नियति**स्तदे**व, सर्वनियतिषु तस्या एवाविशेषात्। **अतश्च,** [3]क्रियाऽक्रियानियत्यादिवैलक्षण्यात्। **आसन्ना,** प्रत्यक्षोपलभ्येष्वर्थेषु प्रत्यासत्त्या नियतत्वात्। **अनासन्ना,** कार्यानुमानागमगम्येषु दूरत्वात्। इह च स्वर्गादिषु च तथानियतेरासन्नानासन्ना च। किं कारणम्? **तस्या एव तदतदासन्नानासन्ननानावस्थद्रव्यदेशादिप्रतिबद्ध[4]भेदात्,** सा च [5]असा च आसन्नानासन्ना च नानावस्था येषां ते तदतदासन्नानासन्ननानावस्था द्रव्यदेशादयः, तैः प्रतिबद्धाया[6]स्तस्या एव नियतेर्भेदाद्द्रव्यादित्वेन। **आदिग्र**हणात् कालभावाभ्यां च। सैव नियतिर्द्रव्यतो घटरूपेण सा भवति, पटरूपेणासा। घटान्तरस्यासन्ना आकारप्रत्यासत्त्या, पटाकारेणाप्रत्यासन्ना। क्षेत्रतो यस्मिंश्चक्रमूर्धनि क्रियते तस्मिन्नेव यत्र वा भूप्रदेशे तिष्ठति ग्रीवादिदेशे वा तत्रैव नान्यत्रेति, कालतो या[7]वत्कालेन निर्वर्तते यावन्तं वा कालं तिष्ठति सा कालनियतिः, भावतो यैर्वर्णा-
१४३-२ कृत्यादिभिर्यथा भवति त[8]थैवेति नियतिः, एवं द्रव्यदेशादिप्रतिबद्धभेदाद् वस्तुविरचना नियत्येकत्वेऽपि। किमिव? **मेघगर्भवत्,** यथा मेघा गर्भं गृह्णन्तो यादृग् यावच्च जलं गृह्णन्ति यथा च तादृक् तावत् तथैव च विसृजन्ति द्रव्यतः, क्षेत्रतो यत्र गृह्णन्ति देशे तत्रैव निसृजन्ति, कालतो मार्गशिरमासे गृहीतं वैशाखे निसृजन्तीत्यादि, भावतो यथा गृहीतं क्षारमधुरादि तथैव विसृजन्ति सत्त्वौषधिवनस्पतिशोषपोषकरादीति। तदुपसंहरति — **नाभाविभावो न भाविनाश** इति प्राक्तनेन [9]वृत्तेन गतार्थम्।

स्यान्मतम् — अयं नियमः कालात्, कालस्य क्रमाख्य[10]त्वात् पूर्वोत्तरादिकालक्रमनियतपरिणामत्वाच्च भावानामिति। एतच्च **न कालादयं विचित्रो नियमः।** कस्मात्? **वर्षारात्रादिष्वपि क्वचिदय[11]थर्तुप्रवृत्तेः।** दृश्यते ह्यङ्कुरकिशलयपत्रपुष्पफलगर्भप्रसवादिव्यभिचारो वनस्पत्यादीनां सत्त्वानां च स्वतः प्रयोगतश्च वर्षाशरद्धेमन्तशिशिरवसन्तनिदाघेषु स्वपरिणामकालेष्वप्रवृत्तिदर्शनादस्वकालेषु च कचित् प्रवृत्तिदर्शनात्।

यद्यपि मन्येत स्वभावादिति, तन्न **च स्वाभावा**दित्यादि याव**दभ्युपगमविरोधः।** वनस्पतिसत्त्वादे**र्बाल्यकौमारयौवनस्थविरावस्थाः** [12]सर्वोऽसावस्य स्वो भावः स्वभाव इत्यतो बालादिकाल एव

---

१ **एवेति** प्र० ॥ २ °**तिर्भेदादभेदरूपा** वि० विना ॥ ३ **क्रियाक्रियानि**° प्र० ॥ ४ °**बंध**° भा० वि०। °बध्र° भा० वि० विना ॥ ५ **असा च** प्रतिषु नास्ति ॥ ६ °**द्धाया एव** य० ॥ ७ **यावकालेन** भा० पा० रं० डे० ॥ ८ **तत्रैवेति** प्र० ॥ ९ दृश्यतां पृ० १९४ पं० ३ ॥ १० °**त्वाच्च पूर्वो**° प्र० ॥ ११ °**यथतुप्रवृत्तेः** प्र० ॥ १२ दृश्यतां पृ० २०६ पं० १४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदनभ्युपगमे सर्वाविवेकेऽवस्थास्वभावाद्यभावादभ्युपगमविरोधः।

यथा लोक इत्येकत्व एव पर्वताद्याकारावग्रहो यथा ज्ञानमेकत्वेऽप्यनेकबोध्याकारं भवति अन्यथा ज्ञानात्मलाभाभावात् तथा नियमात्मकत्वात् सा व्रीहिरित्येकस्मिन् वस्तुन्येका अनेका चाङ्कुरादि भवति।

उत्पातादिष्वनियमदर्शनादनियतिकारणत्वम्, दृष्टं हि प्रसवादिवैकृतमिति चेत्, न, अत्रापि तथानियतिवशेन.........प्रसवादिधर्मव्यतिक्रम उपलभ्यते।

युवताद्यवस्था **युगपत् स्युः**, न च भवन्ति। तस्माद् बालकाल एव युवादियुगपदभावे **भेदक्रमेण नियता** यास्तासामव**स्थानामुत्पत्तेः** स्थितेश्च्युतेश्च **दर्शनान्न स्वभावः कारणम्**। किं तर्हि? नियतिरेव कारणमभ्युपगन्तव्यम्, **तथा तु** तेन हेतुना तेन प्रकारेण दृष्टोत्पत्त्याद्यवस्थाभेदक्रमनियमेन **तत् तथानियति वस्तु। तदनभ्युपगमे सर्वाविवेके** सर्वावस्थानामविवेकेऽभ्युपगम्यमाने **स्वभावाद्यभ्युपगमे** सति ता अवस्था न स्युः[1], ते चावस्थारूपाः स्वभावा न स्युर्देवदत्तादेर्बाल्याद्याः[2] सुप्ताद्या वा, ततो**ऽवस्थास्वभावाद्यभावाद**भ्युपगत एव स्वभावो न स्यात्। ततो**ऽभ्युपगमविरोध**स्ते जायते स्वभाववादिनः। **आदिग्रह**णात् तत्तदवस्थासहवर्तिनः पाण्याद्यवयवस्वभावस्य रूपादिबाह्यगुणस्वभावस्य पटुजडताद्यान्तरगुणस्वभावस्य वा[3]ऽभावादभ्युपगमविरोधः। अथवा **आदिग्र**हणात् कालस्यापि पूर्वोक्तन्यायेन युगपदभावेन वा[4]ऽभावादभ्युपगमविरोधः कालकारणिनोऽपि। तस्मादिदं प्राप्तमभ्युपगन्तुं तद्विनियमो नियतेरन्यैतो[5] नावतिष्ठत इति। १४४-१

तस्या एव नियतेरेकत्वानेकत्वविरोधपरिहारार्थं दृष्टान्तमाह — **यथा[6] लोक इत्येकत्व एव पर्वताद्याकारावग्रहः**। एक एव लोकः सरित्समुद्रमहीमहीध्रग्रामारामादिभिराकारैरवगृह्यमाणो [7]भिद्यते [तथा] भेदाभेदरूपेण नियतिः, एतद् बाह्यं निदर्शनम्। आन्तरं तु **यथा ज्ञानमेकत्वेऽप्यनेकबोध्याकारं भवति**। किं कारणम्? **अन्यथा** घटपटाद्याकारमन्तरेण **ज्ञानात्मलाभाभावात्**। एतस्योदाहृतस्यार्थस्य भेदाभेदस्वरूपभावनेयमुच्यते — **तथा** [8]**नियमात्मकत्वा**दित्यादि यावद**ङ्कुरादि भवती**ति। **सा** नियतिर्व्रीहिरित्येकस्मिन् वस्तुन्येका मूलादिभेदे वाङ्कुर इत्येवाभिन्ना। अङ्कुरकिशलयपत्रकाण्डादित्वाद्यवस्थाभेदाद् भिन्ना रूपरसादिभेदाद्वा भिन्ना। अनेकस्मिंश्च पृथिव्यम्बुवाय्वादिस्वरूपे[9]ऽर्थे पृथिव्यादीनामेव तद्भावापत्तेर्व्रीहिरित्येकत्वादभेदा। एकापि सती भिन्ना, अनेकापि सती[10] न भिन्ना तथातथानियतार्थवशात्। १४४-२

द्रव्यदेशकालभावाना**मुत्पातादिष्वनियमदर्शना**[11]**दनियतिकारणत्वम्, दृष्टं हि प्रसवादिवैकृतम्**, 'आदि'ग्रहणात् प्रसवनिलयाहारक्रियाप्रकृतिवैकृतानि, नरतिरश्चां विपर्ययेण सङ्ख्याकृतिवर्णावयवा-

---

१ **स्युः न चाव**° वि० विना। **स्युः न वाव**° वि०॥ २ °**ल्यादौ** य०। °ल्यादोः भा०॥ ३ **चाभावा**° भा० वि०॥ ४ **चाभावा**° भा० डे० लीं०॥ ५ °**न्यतोवतिष्ठत** भा० °**न्यतावतिष्ठत** वि० ६० ही०। °**न्यततवतिष्ठत** पा० डे० लीं०॥ ६ "एकत्वस्याविरोधेन शब्दतत्त्वे ब्रह्मणि समुच्चिता विरोधिन्य आत्मभूताः शक्तयः। तद्यथा — भिन्नार्थप्रत्यवभासमात्रायामेकस्यामुपलब्धावर्थाकारकप्रत्यवभासमात्राः पृथिवीलोका इति। न हि ज्ञेयगतो वृक्षाद्याकारावग्रहो ज्ञानस्यैकत्वेन विरुध्यते, नास्याकारात् तदाकारस्यात्मभेदोऽस्ति तेषामेकज्ञानतत्त्वानतिक्रमात्।" इति भर्तृहरिविरचितायां **वाक्यपदीयवृत्तौ** ११२॥ ७ अत्र 'भिद्यते, भेदाभेदरूपेण नियतेरेतद् बाह्यं निदर्शनम्।' इत्यपि पाठः स्यात्॥ ८ **नियतात्मक**° भा०॥ ९ °**रूपर्थे** भा०। °**रूपमर्थे** य०॥ १० **सती** भिन्ना य०॥ ११ °**नियतकार**° भा०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुस्वभावव्यतिक्रमश्च नियतिवशादेव। किञ्चित् सदसाध्यम्, किञ्चिदसदसाध्यम्, किञ्चिदसत् साध्यम्, किञ्चिच्च सत् साध्यम्। सदपि चाकाशं भूगन्धवदनभिभवं सन्तमसस्थघटवत् प्रदीपादिनेव अव्यङ्ग्यम्। इदं तु तद्व्यवस्थाविपरीतनियति वन्ध्यापुत्राद्यसाध्यमेव, क्रिया हि साधनेषु वर्तमाना सन्तमर्थं साध्यमाविशति प्रत्यर्थनियतत्वात् साधनानुषङ्गस्य, साध्यस्याभावाद्वन्ध्यासुतादेः स्त्रीपुंससम्प्रयोगक्रिया किमाविशतु? इदं पुनरसत् साध्यं घटादि प्राक् तथाऽवृत्तम्। इदम-

---

दिजन्मानि अभक्ष्यभक्षित्वं[1] ग्राम्यारण्यकजलस्थलजन्मनां तच्चारिणां च वसत्यादिविपर्ययः। रोषक्षमादिशीलविपर्ययः। पलितस्यैवोत्पत्तिरित्याद्यवस्थाविपर्ययः। [2]*वर्णगन्धादिस्वभावविपर्ययः*। इत्येवमादिवैकृतदर्शनान्न नियतिरेव कारणमिति **चेत्**, नेत्युच्यते, **अत्रापि तथानियतिवशेने**त्यादि याव**द्व्यतिक्रम उपलभ्यत** इति सापि तादृशी नियतिरेव कारणमिति।

किञ्चान्यत्, न केवलं प्रसवादिधर्मव्यतिक्रम एव, किं तर्हि? **वस्तुस्वभावव्यतिक्रमश्च नियतिवशादेव। किञ्चित् सदसाध्य**मित्यादि चतुर्भङ्गी स्फुटार्थत्वान्न विव्रियते, सा चोद्दिष्टा निर्देक्ष्यमाणा च[3]।
१४५-१ तथा च पुरुषो नियतेरेव तथा वृत्तत्वात् तत्साध्यासाध्यत्वे प्रतिपद्यते। तत्र सदसाध्यत्वे निदर्शनम्—**सदपि चाकाशं भूगन्धवदनभिभवम्**, नास्याभिभवोऽस्तीत्यनभिभवं सलिलसेकेनेव[3] न साध्यमित्यर्थः। **सन्तमसस्थघटवत् प्रदीपादिनेवाव्यङ्गम्**, किं तत्? आकाशादि, सत्त्वात् साध्यं भूगन्धवदिति[4] प्राप्तेऽप्यसाध्यमेव। **इदं तु** स्त्रीपुंसयोगात् साध्यमवन्ध्यापुत्रवदिति प्राप्ते **तद्व्यवस्थाविपरीतनियति वन्ध्यापुत्राद्यसाध्यमेव** नियतिवशादेवासत्त्वात्। तत्र नियत्या[5] सत् नियत्यैवासत् साध्यतामर्हति। किं कारणम्? साधनाविष्टक्रियासाध्यत्वात् साध्यानां साधनाविष्टायाः[6] क्रियायास्तत्रावेशाभावः, तत्साधनानां साधनशक्तिशून्यत्वात्। तस्माद् वन्ध्यापुत्रादीनामसाध्यत्वं स्त्रीपुंसयोगक्रियया[7]प्यसाध्यत्वेन नियतत्वात्, साध्यार्थाभावे च साधनानां साधनत्वाभाव इति तद्दर्शयति—**क्रिया ही**त्यादि, **हि**शब्दो यस्मादर्थे, यस्मात् क्रिया **साधनेषु** काष्ठादिषु **वर्तमाना सन्तमर्थं साध्यं** विक्लेद्यतन्दुलविपरिणामात्मकमोदनादिकमर्थ[8]मा**विशति प्रत्यर्थनियतत्वा**ज्ज्वलनाद्युपनिधानार्थेषु[9] प्रत्येकं नियतत्वात् काष्ठादि**साधनानुषङ्गस्य**[10], **साध्यस्याभावाद्वन्ध्यासुतादेः** सा **स्त्रीपुंससम्प्रयोगक्रिया किमाविशतु?** तस्मात् तद्व्यवस्था[11]विपरीतनियति असाध्यं वन्ध्यापुत्रादि।

इदं पुनरित्यादि, **असत् साध्यं घटादि**। इतर आह—यद्यसत् कथं साध्यं खपुष्पवदुक्तासद-

---

१ अत्र '**अभक्ष्यभक्ष्यत्वम्**' इति पाठः समीचीनो भाति "अभक्ष्यो ग्रामशूकरः, पञ्च पञ्चनखा भक्ष्याः" इत्यादिप्रसिद्धेः, अथवा 'नरा अभक्ष्याः, तिर्यञ्चो भक्ष्याः' इत्यर्थो ज्ञेयः॥ २ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति॥ ३ **च** भा० प्रतौ नास्ति॥ ३ °**सेनेव** प्र०॥ ४ °**न्धदिति** प्र०॥ नास्य व्यङ्गो व्यक्तिरस्तीत्यव्यङ्गम्। ५ (नियत्याऽसत्)?॥ ६ °**ष्टायास्तत्रा**° य०॥ ७ °**क्रियाया**° प्र०॥ ८ °**दिमर्थं**° भा०॥ ९ अत्र °**निधानाद्यर्थेषु** इत्यपि पाठः स्यात्॥ १० °**स्यासाध्यस्याभावा**° भा०। °**स्यासाध्यत्वाभावा**° पा० वि० रं० ही०। °**स्य साध्यत्वाभावा**° डे० लीं०॥ ११ **तद्विपरीत**° य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्यत् सततोपलब्धिनियतं यष्टिसाधनवदृजुत्वेन मृद्द्रव्यमूर्ध्वादित्वक्रमापाद्यघटत्वेन भेदेनैव वा सत् साध्यं पुरुषादि स्थाण्वादिपरिग्रहापनयनेन ।

एतच्च साध्यमानमनयैव क्रियया साध्यते, एतस्याश्च एतान्येव कारकाणि, एवं नियतिस्थितेः कारकान्तरसमवस्थितितुल्यतायामपि पुरुषस्तथा प्रतिपद्य प्रत्यर्थं

साध्यविकल्पानतिवृत्तेश्चेति । अत्रोच्यते – नैष दोषः, 'सतोऽन्यदसत्' इत्यतोऽन्यत्रविधानप्रतिषेधपक्षाश्रयणाद् द्रव्यार्थविकल्पत्वान्नियतेरसत्त्वाभावादित्यत आह – **प्राक् तथा अवृत्तं** तेन घटत्वप्रकारेणावृत्तम्, सच्छब्दस्य वृत्त्यर्थत्वात्, [1]अस्तिभवतिविद्यतिपद्यतिवर्ततयः सन्निपातषष्ठाः सत्तार्थाः [   ] इति वच- १४५-२ नादसदित्यवृत्तमित्यर्थः, मृत्पिण्डाद्यवस्थानकाले तत्का[2]लेऽव्यक्त्या नियतं साध्यम् । **आदि**ग्रहणात् पटकटादीति, एतत् कालभेदेन उपलब्ध्यनुपलब्धिभ्यां नियतम् ।

इदमन्यत् सततोपलब्धिनिय[3]तमित्यादि, तद्वदिदं च सदाव्यक्तिनियति सत् साध्यमित्यभिसम्बन्धः । [4]किंवत् ? **यष्टिसाधनवदृजुत्वेन,** यष्टिर्हि विद्यमानैरेवावयवैः सदा व्यक्ता संस्थानविशेषेण साध्यते सती साध्यते ऋजूक्रियते । इदमन्यत् सततोपलभ्यमेव सत् साध्यं **मृद्द्रव्यमूर्ध्वादित्वक्रमापाद्यघटत्वेन,** पूर्वस्मिन्नुदाहरणे मनागाकृत्यन्तरभेदेन इह त्वत्यन्तभिन्नाकारभेदेनेति विशेषः, तद्दर्शयन्ना[5]ह– **मृदूर्ध्वादित्वेन भेदेनैव वा सत् साध्य**मिति । अथवा **भेदेनैव वा सत् साध्यम्,** इदं चान्यदिति वर्तते । यद् बुद्ध्यैव साध्यते न क्रियया परिस्पन्दात्मिकया विद्यमानं **पुरुषादि स्था[ण्वादि]परिग्रहापनयनेन** तद्विषयसंशयविपर्ययपरिग्रहापनयनेन, नात्र [6]किञ्चिन्निर्वर्तते पुरुषादि, किन्तु विद्यमानमेवानुपलब्धमुपलब्ध्या साध्यते, ए[7]षा तु नियतिज्ञानरूपैवेति पूर्वविलक्षणा ।

एतासां क्रियाणां तत्साध्यानां च नियतिकृतत्वप्रतिपादनार्थमाह – **एतच्च साध्यमान**मित्यादि । ओदनविषयेयं पचिक्रिया घटादिविषयक्रियाविलक्षणा, एतच्चोदनादि साध्यमानमप्यन्यविषयगमनादिक्रियाविलक्षणयाऽ**नयैव** पचि**क्रियया साध्यते** नान्ययेति क्रियानियत्या साध्यते । **एतस्याश्च** पचिक्रियाया **एतान्येव** काष्ठादीनि **कारकाणि** न मृत्पिण्डदण्डादीनीति साध्यसाधनार्थनियतिः । **एव**मित्यादि । एवं च १४६-१ कृत्वा यथा अर्थगतप्रतिविशिष्टसाध्यसाधननियमाभिव्यञ्ज्याया **नियतेः स्थिति**र्व्यवस्था तथा तस्याः **स्थिते**र्हेतोः कारणगुणपूर्वकतामनुमानप्रसिद्धां कार्यस्य प्रतिपद्य बुद्ध्या **कारकान्तरसमवस्थितितुल्यतायामपि** दण्डादिकारकान्तराणां साध्यनिर्वर्तनसमवस्थितेस्तुल्यतायामपि सत्यां पचिक्रियासमवस्थित्या सह नियतिप्रसिद्धेरेव बलात् **पुरुषस्तथा प्रतिपद्य प्रत्यर्थं कारकाणि प्रयुङ्क्ते,** यथास्वसा[8]ध्यार्थमित्यर्थः । तानि च कारकाणि **नियतानि** तस्या एव नियतायाः क्रियायाः । **यथाप्रयोगनियमम्,** [9]यो यः प्रयोगनियम इति

---

१ दृश्यतां पृ० ३४ पं० २० ॥ २ °**ले अव्यक्त्या** भा० ॥ ३ °**नियमित्यादि** प्र० ॥ ४ **किंतत्** प्र० ॥ ५ °**न्नाह मूहर्ध्वादित्वन भेदेनैव** भा० । °**न्नाह मूर्धादित्वं घत्वेन भेदेनैव** पा० डे० लीं० रं० ही० । °**न्नाह मूर्धादित्वं घटत्वेन भेदेनैव** वि० । अत्र 'मृदूर्ध्वादित्वघटत्वेन भेदेनैव' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ६ **किंचिन्निवर्तते** प्र० ॥ ७ **एषा मु नियति**° भा० । **एषामनियति**° य० ॥ ८ °**साध्यार्थैः तानि** भा० । °**साध्यार्थोय-मित्यर्थः तानि** य० । अत्र 'यथास्वसाध्यार्थोपायमित्यर्थः' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ९ **पौर्वैः प्रयोग**° प्र० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

कारकाणि प्रयुङ्क्ते नियतानि यथाप्रयोगनियममेकविमर्दप्रवृत्तानि परस्परनियतानुग्रहोद्भावनवृत्तानि । न तु तदुपायसिद्धेरन्यथा तत्सिद्धिरस्ति । सिद्धिर्हि नियमेनानुद्भूतानां सम्मूर्छितानां स्वनियतेरेवाभिव्यक्तिः । तच्च स च तानि च नियतेरेव प्रवर्तन्ते न वा । तथा च दृश्यन्ते क्रियाणां विपत्तयोऽप्रवृत्तयश्च । अतस्तत् कृतमपि पूर्वनियतिस्थत्वादकृतं विनष्टमप्यविनष्टं तथानियतिस्थत्वात्, एवं तु विनश्येद् यदि

---

[1]स्वे स्वे विषये देशकालविशिष्टे प्रयुक्तानीत्यर्थः । **एकविमर्दप्रवृत्तानि** [2]ऐकप्रयोजनेनान्योन्यापेक्षेण व्यापारेण प्रवृत्तानि परस्परापेक्षं नियतं परस्परानुग्रहमुद्भावयन्ति प्रवर्तन्ते, अत उच्यते – **परस्परनियतानुग्रहोद्भा[3]वनवृत्तानी**ति स्वविषयक्रियाप्रसाध्यमर्थमभिनिर्वर्तयन्ति । तेषां वृत्तिर्विषयस्तानि तत्फलं च सर्वं नियतमेव, ततो नियतिरेव सर्वस्य कारणम् । **न तु तदुपायसिद्धेरन्यथा तत्सिद्धिरस्ति,** काष्ठज्वलनादिसाधनप[4]चिक्रियानिर्वर्त्यस्यौदनस्य न दण्डचक्रभ्रमणादिसाधनात् तत्सिद्धिर्न वा घटाद्यर्थस्य काष्ठज्वलनादिसाध्यतास्तीति ।

का सिद्धिस्तर्हीति चेत्, उच्यते – **सिद्धिर्ही**त्यादि । **नियमेनो**क्तलक्षणेन **अ[5]नुद्भूताना**मनभिव्यक्तव्यापाराणां बीजावस्थायामङ्कुरादित्वेन रूपादीनां **सम्मूर्छितानां** साङ्कल्येन समुदेत्य स्थितानां **स्वनियतेरे-**
१४६-२ **वाभिव्यक्ति**र्वर्णाकृत्यादिनियत्या जनिर्या पूर्वमनभिव्यक्तानामभिव्यक्तिः सा सिद्धिरित्युच्यते । त[6]त्रायं मिथ्याभिमानः 'इदं मया कृतम्' इति पुरुषस्य । आह – किं कारणं मिथ्याभिमानो ननु मया कृतो घट इति ? तत्क्रियाविनाभावासिद्धजन्मत्वाद् घटस्य युक्तोऽभिमान इति । अत्रोच्यते – **तच्च स चे**त्यादि, तत्प्रवृत्त्यप्रवृत्त्योः सिद्ध्यसिद्ध्योश्च व्यभिचारदर्शनात् **तच्च** कार्यं घटादि **स च** कर्ता कुलालः **तानि च** कारकाणि दण्डादीनि **नियतेरेव प्रवर्तन्ते न वा,** तस्य चिकीर्षा कदाचिद् भवति कदाचिन्न, चिकीर्षुरप्यालस्यादिभिः प्रवर्तते न वा, प्रवृत्तोऽप्यकृत्वैव घटं विनिवर्ततेऽन्यद्वा करोति विघ्नो वास्य भवति । तथान्यकारकाण्यपि वाच्यानि, तच्च कार्यं कदाचित् सिध्यति कदाचिन्न, अन्यार्थप्रवृत्तावन्यत् सिध्येन्न वा सिध्येत् । **तथा च दृश्यन्ते क्रियाणां विपत्तयोऽप्रवृत्तयश्चे**ति लोकप्रसिद्धं व्यभिचारं दर्शयति ।

अतस्तत् कृतमपि लोकप्रतीत्या **पूर्वनियतिस्थत्वादकृतं** पूर्वमेव नियत्या तथा स्थितत्वात् । **विनष्टमप्यविनष्टं तथा नियत्यो**त्तरकालं कपालादित्वेना**वस्थितत्वात्** कपालादित्वेनैव घटस्य विनाशात् त[7]न्त्वादित्वेनाविनाशात् । **एवं तु विनश्ये**दित्यादि, **यदि प्रविशीर्णो** विशीर्य विशीर्यमाणो विशीर्णो वा **तां नियतिं** कपालादिक्रमापत्तिरूपघटविनाशां **नापद्यते** खरविषाणवदत्यन्ताभावीभवेन्न वा विनश्येद् घटत्वेनैव तिष्ठेत् । ततो विनश्येत्, न त्वेवमस्ति । तस्मान्न विनाशः । लक्षणतो ह्यन्यथाता विनाशः, स च नियतेरलङ्घ्यत्वात् कपालाद्यवस्थानरूपायाः । एवमुत्पत्तिरपि ।

---

१ **स्वेस्वविषये** य० । **स्वविषये** भा० ॥ २ **एकप्रव्यहेनान्योन्यापेक्षेण** भा० । **एकप्रव्याहनान्योन्यापेक्षेण** य० ॥ ३ **°द्भावमवृत्तानीति** य० । **°द्भावनवृत्तीनीति** भा० ॥ ४ **°पचिनिर्व°** भा० ॥ ५ **अनुद्भ-(द्र?) ताना°** प्र० ॥ ६ **तत्र यस्मिन् मिथ्या°** य० ॥ ७ **तंत्वादित्वेविनाशात्** भा० । य० प्रतिषु तु अयं पाठो नास्त्येव ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रविशीर्णस्तां नियतिं नापद्यते। तथा चाम्रबीजाङ्कुरादीनां व्यवस्थावकाशक्रमेण व्यवस्थितपूर्वरूपा एव प्रवृत्तयस्तेषां तेषां मायाकारपताकिकावत्, यावदन्ते नियतिप्रवृत्तफलावस्थामनुभूय पुनर्बीजमेव, तस्मादपि बीजात् पुनरपि तथैव। अन्यथा च तथा तथा प्रादुर्भाववृत्तयो यवतिलभस्मादीनाम् । ताश्च पुरुषकारेणाप्यलङ्घ्याः। पाककालस्यापि नियतिदर्शनात् षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते…।

एवं च व्यवस्थित एवार्थेऽव्यक्तस्यैवार्थस्य व्यक्तेः सर्वं नियतमेव। तस्य स्वव्यक्तेः सर्वकालं व्यवस्थितादर्थादन्यो मया कृत इति मिथ्याभिमान एषः। न तु नियतौ किञ्चिन्नास्ति।

तथा चाम्रबीजेत्यादि, दृश्यन्त इति वर्तते। स्वया नियत्या लीनानां मूलाङ्कुरपत्रनालकाण्डशाखा- १४७-१ प्रशाखास्कन्धपुष्पादीनां व्यवस्थावकाश[1]क्रमेण व्यवस्थितपूर्वरूपैव प्रवृत्तिः, रक्तश्यामादिवर्णानामाम्रफलस्य तुवराम्लषाडवादीनां च रसानां **तेषां तेषा**मिति अवस्थायामवस्थायां ये ये भवन्त्यन्येऽन्ये तेषां तेषां विद्यमानानामेव नियतानाम्। किमिव ? **मायाकारपताकिकावत्**, यथा मायाकारः पताकिका गुलिकादिरूपीकृत्य पूर्वग्रस्ताः क्रमेण स्ववदनान्निष्काशयति नानावर्णनानाकारास्तथेहाप्याम्रबीजे, **यावदन्ते नियति[3]प्रवृत्तफलावस्थामनुभूय पुनर्बीजमेव, तस्मादपि बीजात् पुनरपि तथैवे**त्यङ्कुरादिप्रवृत्तिं प्रागभिहितां दर्शयति। सेयं व्यवस्थिता नियतिसन्ततिरनाद्यनन्ता।

स्यान्मतम्—ननु दग्धे बीजेऽङ्कुराद्यत्यन्ताप्रादुर्भावान्नियतिकृतप्रादुर्भावतिरोभावव्यभिचार इति। अत्रोच्यते—दाहनियत्युदयेऽपि सा प्रतिनियतैव, [4]**अन्यथा च** तथा **दृश्यन्त** इति वर्तते, कास्ताः ? **तथा तथा प्रादुर्भाववृत्तयः**, केषाम् ? **यवतिलभस्मादीनाम्**, अन्यादृग् यवभस्म अन्यादृक् तिलभस्मेत्यत्रापि प्रादुर्भावतिरोभाववृत्तयो नियता एव। **ताश्च पुरुषकारेणाप्य[6]लङ्घ्याः**, तत्त्वान्तरे[7]ण सिद्धाः पुरुषकारं चान्तरेण सिद्धाः। किं कारणम् ? **पाककालस्यापि नियतिदर्शनात् षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्त** इत्युदाहरणानि गतार्थानि देशकालकर्तृकरणादिनियत्यैव पाकादिदर्शनात्।

एवं चेत्युपनयति, अनेनोक्तविधिना **व्यवस्थित एवार्थेऽव्यक्तस्यैवार्थस्य** तत्र **व्यक्तेः सर्वं नियतमेव** तत् तत्। **तस्य स्वव्य**क्ते[8]र्व्यतिरेकमतेः पुरुषस्य **सर्वका[9]लं व्यवस्थिता**न्नियता**दर्थादन्यो** मृद्द्रव्याद् घटो **मया कृत इति मिथ्याभिमान एष** षष्टिकादयो वा केदारादिसंस्कारविधिना पाचिता १४७-२ इति, यस्मान्न **तु नियतौ किञ्चिन्नास्ति,** सर्वं विद्यमानमेव तिरोभूतं [10]क्रियया विना वा क्रियाभिव्यज्यते कालादिनियत्यनुगृहीतम्।

---

१ अवलोक्यतां पृ० २०० पं० ४॥ २ °**शाक्रमेण** प्र०॥ ३ **प्रवृत्ते**(त्तेः ?) भा०॥ ४ **अन्यथान्यथा च दृश्यन्त** भा०॥ ५ अवलोक्यतां पृ० २०० पं० ४॥ ६ °**प्युलंघ्याः** य०॥ ७ °**णासिद्धाः** पा० डे० लीं०। भा० प्रतौ तु **तत्त्वान्तरेण सिद्धाः** इति पाठो नास्त्येव॥ ८ °**क्तेर्व्यतिरेकमतिः** भा० वि० रं० ही०। °**क्तेर्व्यतिरिकमतिः** पा० डे० लीं०॥ ९ °**काले** पा०॥ १० **क्रियया विना वा** य०प्रतिषु नास्ति॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

कथमस्ति यदा भूम्यम्ब्वादेर्विना न भवति केवलाया एव बीजनियतेराम्रफलपाकादि? कालातपवातादिभ्यः पाकः, भूमिखननादिभ्यः फलादीनामप्राप्तेऽपि काले पाकदर्शनात्, काले चापि न भवति पाको द्रव्यान्तरसंयोगस्तम्भनादिभ्यः। अन्यच्च, तथा तथा ज्ञातुरिच्छानुविधानेन वस्तुनियतिमतीत्य पुष्पादीनां वर्णसंस्थानादिवैपरीत्यम्। योनिप्राभृतादिभ्यश्चान्यथैव सर्वयोन्युत्पत्तय इति नियमाभावः। नियमाभावात् कृतकत्वानित्यत्वाभ्यां नियत्यभाव इति।

न, तथानियतित्वात्। बीजादिनियतिरेव हि उदकादिषु वर्तते, तन्नियमानु-

---

अत्राह—**कथमस्तीत्यादि यावन्नियत्यभाव इति।** यदुक्तं त्वया 'नियतौ सर्वमस्ति' इति तत् कथमस्ति **यदा भूम्यम्ब्वादेर्विना न भवति केवलाया एव बीजनियतेराम्रफलपाकादि?** रूपरसगन्धस्पर्शसङ्ख्यासंस्थानानि **आदिग्रहणात्**। भूमिरम्बु वायुरातपः काल इत्येतानि भूँम्यम्ब्वादीनि[1], तद् व्याचष्टे—**कालातपवातादिभ्यः पाकः**, तस्माद् भूम्यम्बुकालवातातपाद्यपेक्षत्वान्न बीजनियतावस्त्यङ्कुरादि तत्फलपाकादि चेँति[2]। तथा अकालेऽपि कालनियतेर्व्यभिचारो दृश्यते **भूमिखननादिभ्यः फलादीनामप्राप्तेऽपि काले पाकदर्शनात्, आदिग्रहणात्** कोद्रवपलालवेष्टनव्रणकरणादिभिः। **काले चापी**ति प्राप्तेऽपि पाककाले **न भवति पाको द्रव्यान्तरसंयोगेन स्तम्भितानाम्**, यथा शाँखायां[3] बद्धायां **वृक्षायुर्वेदविधानेन** द्रव्यान्तरसंयोगेनैव द्रावणाद्वा सहकारतैलग्रहणार्थं कोमलस्य प्राप्तगन्धावस्थस्य द्रवीभावात् तैलत्वेन, **आदिग्रहणात्** पक्षिखञ्जरीटादिसत्कभक्षणात्। **अन्यच्चे**त्यादि, न केवलमात्मस्वरूपापरित्यागेनैव पाकाभावः, किं तर्हि? **अन्यच्च तथा तथा,** यथा यथा पुरुषो ज्ञाता स्वयमिच्छति तथा तथा तस्य **ज्ञातुरिच्छानुविधानेन वस्तुनियतिमतीत्य पुष्पादीनां वर्णसंस्थानादिवैपरीत्यम्,** यँथोत्पलस्य[4] पार्श्वे रक्तता पार्श्वे नीलता, मातुलिङ्गफलस्य रक्तादिवर्णता तद्वासितबीजस्य, तथा कूष्माण्डफलस्य घटवर्धितस्य घटाकारता। **योनिप्राभृतादिभ्यश्चान्यथैव सर्वयोन्युत्पत्तयः,** द्विविधा योनि-१४८-१ र्योनिप्राभृतेऽभिहिता—सचित्ता अचित्ता च। तत्र सचित्तयोनिद्रव्याणि संयोज्य भूमौ निखाते दन्तरहितमनुष्यसर्पादिजात्युत्पत्तिः। अचित्तयोनिद्रव्ययोगे च यथाविधि सुवर्णरजतमुक्ताप्रवालाद्युत्पत्तिरिति। **इति नियमाभावः,** इत्थं काले चापाकादकाले च पाकादर्थान्तरापेक्षत्वात् पुरुषेच्छायत्नानुविधानाच्च नैँयमाभावः[5], **नियमाभावात् कृतकत्वं** पाकादेः, कृतकत्वा**च्चानित्यत्वम्**, अभूत्वा भावो भूत्वा चाभाव इत्यर्थः। ताभ्यां च **नियत्यभावः। इति** परिसमाप्त्यर्थः। एष पूर्वपक्षः।

अत्रोच्यते—**न तथाँनियतित्वात्**[6] यथोक्तं त्वया साँपेक्षनियतित्वात्[7] कालाप्रवृत्तिनियतित्वादकालप्रवृत्तिनियतित्वाच्च नियँत्यभावः[8], तद्दर्शयति—**बीजादिनियतिरेव हीत्यादि,** हिशब्दो यस्मादर्थे, यस्मात्

---

१ **भूम्यंत्वादीनि** भा० ॥ २ **चेत्** प्र० ॥ ३ **शाखायां चाद्धायां** भा०। **शाखायां चाद्धयां** पा० डे० लीं० वि०। **शाखायां बाम्रयां** रं० ही० ॥ ४ **यथोलस्य** प्र० ॥ ५ **नियमाभावः** भा० प्रतौ नास्ति ॥ ६ **°नियतत्वात्** भा० ॥ ७ **सापेक्षं** प्र० ॥ ८ **नियत्याः भावः** भा०। **नियत्या भावः** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोधेन हि तेषां सर्वेषां नियता प्रवृत्तिः। तथा ह्याह–सभावकं निर्भावकं वोदकं पतितमिति। यदा हि बीजनियतिरभि तदा तस्या देश उदकस्थ एव अङ्कुरोद्भावने प्रवर्तमानः सभावक इत्युच्यते, तद्भावांशापेक्षयोदकमपि सभावकमित्युच्यते, अन्यदा तु विपर्ययः। एवं भूमिवायुकालप्रभृतिष्वपि सभावकाभावकत्वे।

पुरुषो व्यग्रोऽव्यग्र इत्यादि नियतेरेव। करणादीनां क्षमत्वाक्षमत्वसान्निध्या-

---

सैव हि बीजादिनियतिरेकैव **उदकादिषु वर्तते,** काले वायावातपे पुरुषे तदिच्छाप्रयत्नयोश्च वर्तते, **आदि-**ग्रहणादुदकादिनियतिश्च बीजादिषु वर्ततेऽन्योन्यव्यतिहारेण, **तन्नियमानुरोधेन हि** परस्परनियमानुरोधेन, हिशब्दो यस्मादर्थे, यस्मादेवंरूपा तेषां सर्वेषां नियतिस्तस्मात् **तेषां सर्वेषा**मितरेतरनियत्या **'नियता प्रवृत्ति**रन्योन्याविनाभावात् तथैव प्रवर्तन्त इत्यर्थः।

तथा ह्याहेति लोकसिद्धं ज्ञापकं दर्शयति। सह भावेन वर्तत इति **सभावकम्**, निर्गतो भावोऽस्मादिति **निर्भावकम्**, किं तत्? **उदकं पतितमिति**। तद्भावना–**यदा हि बीजनियतिरभि** अङ्कुराभिव्यक्तेर्यदाभिमुखीभूता बीजनियतिर्भवति **तदा तस्या** नियतेर्**देशो**ऽंशो भागोऽवयवः स **उदकस्थ एव** सन्न**ङ्कुरोद्भावने प्रवर्तमानः सभावक इत्युच्यते, तद्भावांशापेक्षया उदकमपि सभावकमित्युच्यते** १४८-२ भेदविवक्षायां बहुव्रीहिसमासाश्रयणात् मतुब्लोपाद्वा अभेदोपचाराच्च भाव एवोदकमिति। स च भावोऽङ्कुरादिर्वनस्पत्यौषध्यादेः, मतुप्प्रत्ययनिर्देशोऽपि भेदेनोपपद्यते, तद्यथा–अस्ति अस्मिन्नस्य वा भावोङ्कुरस्तस्मिन्नुदके तस्मात् तत् सभावकमिति। **अन्यदा तु विपर्ययः,** क्षाराम्लाद्युदकेऽङ्कुरादयो न सन्तीति नियतत्वाद् विपर्ययः, तस्मादभावकमुच्यते तज्जलमिति।

एवं भूमिवायुकालप्रभृतिष्वपि सभावकाभावकत्वे। उषरभूमावभावः सस्यादेः, पादसौकुमार्यादेर्भावः, सुक्षेत्रे केदारादौ वा सर्वबीजानामङ्कुरादिभावः। पूर्ववायावभावोऽङ्कुरादेः, भावस्तु महिषीकर्पासप्रसूत्यादेः; अन्यस्य पुष्पादेरन्यस्य फलादेर्मनुष्याणां च पूर्ववायावभावः, तद्यथोक्तम्–

दिवास्वप्नमवश्यायं प्राग्वातं चात्र वर्जयेत्। [ ]

सस्यानामुत्तरे वायौ न भावः, प्रावृष्युष्मानां भावः, वैशाखादिष्वभावः। **प्रभृति**ग्रहणेन आतपेऽतिमृदावतितीक्ष्णे चाभावः, समे भावः, आतपाभावेऽप्यभाव एवेति। एवं तावदबुद्धिप्रवृत्तेषु कालाङ्कुरादिष्वचेतनेषु नियतिरुक्ता।

बुद्धिमत्स्वपि नियतिरेव। यदुक्तं प्राक् त्वया 'पुरुषस्य ज्ञातुरिच्छानुविधानेन वस्तुनियतिवैपरीत्यम्' इति तन्नोपपद्यते, तत्रापि नियतेरेव कारणत्वात्। कुतः? **पुरुषो व्यग्रोऽव्यग्र इति नियतेरेव** यतो भवति, साप्यपेक्षिकी तादृशी नियतिरेव। **आदि**ग्रहणात् कुशलोऽकुशलः पुरुष इत्याद्यपि नियतेरेवेति। एवमप्रयुक्तेषु स्वातन्त्र्यादेव परनियोगानपेक्षप्रवृत्तिषु नियतिः। प्रयुक्तेष्वपि नियतिरेव, **करणादीनां**

---

१ **नियत्याप्रवृत्ति**° प्र० ॥ २ °**रति** प्र० ॥ ३ °**दाभितुररीभूता** प्र० ॥ ४ °**द्भावेन** प्र० ॥ ५ **भेदनोप**° प्र० ॥ ६ **वात्र** प्र०। "क्षारं दधि दिवास्वप्नं प्राग्वातं चात्र वर्जयेत्।" इति चरकसंहितायाम् १।७।४५ ॥ ७ दृश्यतां पृ० २०२ पं० ४ ॥

सान्निध्यादेरङ्कुराद्युत्पत्त्यनुत्पत्त्योर्नियतिरेव कारणम्। एतेन पाकादिदोषाः प्रत्युक्ताः।

सर्वज्ञोऽपि च तामेवाखिलामनादिमध्यान्तां स्वरूपेणाविपरिणामां वस्तुनियतिमेकामनेकरूपां बन्धमोक्षप्रक्रियानियतिसूक्ष्मां पश्यन् नियतेरेव भवतीति।

१४९-१ करणाधिकरणकर्तृकर्मसम्प्रदानापादानानां **क्षमत्वं** तत्क्रियासाधनसमर्थत्वम**क्षमत्वम**समर्थत्वम्, यथोक्तम्—**एतत् परशोः सामर्थ्यं यन्न तृणेन** [[1]पा॰ वा॰ १।४।२३] इत्यादि। तेषामेव **सान्निध्यं** कर्त्रा प्राप्तिः, **असान्निध्य**मप्राप्तिः । **आदि**ग्रहणात् प्राप्तानामपि करणादीनामन्तरे विघ्ना इत्येवमादेः कारणा**दङ्कुराद्युत्पत्त्यनुत्पत्त्योर्नियतिरेव कारणं** तथानियतत्वादिति । **एतेन पाकादिदोषाः प्रत्युक्ताः** प्रतिषिद्धाः, यदुक्तं[2] त्वया काले न पाकोऽकाले पाक इत्यादयो दोषा इति तदपि '**तथानियतित्वात्**'[3] इत्येतेनैव न दोषाय कालाकालयोरपाकेन पाकेन च तेषां तेषां भावानां नियतत्वात् सैव नियतिस्तथा[4] तथा नियतं भवतीति ।

किञ्चान्यत्, **सर्वज्ञोऽपि चे**त्यादि। यदपि च 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपोभिर्ज्ञानावरणाद्यशेषकर्मक्षयात् केवलज्ञानप्राप्तिः सार्वज्ञ्यं पौरुषेण' इति मन्यसे तदपि मा मंस्था नियतिमन्तरेणेति। कथं तर्हि मन्तव्यम्? सार्वज्ञ्यं नियतेरेव भवतीति, **तामेवा**सौ नियति**मखिलां पश्यन्** सर्वज्ञो भवतीति तथैव च नियत्या नान्यथेति। स हि भव्याभव्यसिद्धादिभेदेषु[5] पुरुषेषु गतिस्थित्यवगाह[6]वर्तनारूपरसादिशरीरवाङ्मनः[7]प्राणादिपरिणतिरूपामसङ्कीर्णा**मनादिमध्यान्तां** कालत्रयेऽपि अनुत्पत्तिमविनाशां स्वेन रूपेणा**विपरिणामां** लोकस्थित्यनतिक्रमेणाप्रच्युतस्वरूपां **वस्तुनियतिं** बीजादिनियताङ्कुरादिवस्त्वात्मिका**मेकां** सर्वभेदेष्वभिन्नाम-

१४९-२ **नेकरूपां** तेषु तेषु भेदेषु तद्रूपनियतित्वादनेकां **बन्धमोक्षप्रक्रियानियतिसूक्ष्मां** जीवकर्मणोरनादेन सम्बन्धेन सम्बद्धयोः कार्यकारणभूतैर्मिथ्यादर्शनादिभिर्नियतिवशात् सन्तत्यानाद्यो बन्धो भव्येषु बन्धोद्वर्तनसमर्थसम्यग्दर्शनादिभावनियतिविवर्ताद् मोक्षहेतोरमूर्तस्वभावस्य ज्ञानदर्शनवीर्यसुखादिस्वात्मनः स्वात्मनि अवस्थानं मोक्ष इत्येतां बन्ध-बन्धक-बन्धनीय-बन्धविधानाद्यनेकभेदप्रभेदां बन्धप्रक्रियां व्रत[8]समितिगुप्तिधर्मो-

---

१ "उद्यमननिपातनानि कर्तुश्छिदिक्रिया [पा॰ वा॰]। उद्यमननिपातनानि कुर्वन्नेव देवदत्तश्छिनत्तीत्युच्यते । तत्र तदा छिदिर्वर्तते । एष प्रधानकर्तुश्छेदः । एतत् प्रधानकर्तुः कर्तृत्वम् । **यन्न तृणेन तत् परशोश्छेदनम्** [पा॰ वा॰]। यत् तत् समाने उद्यमने निपातने च परशुना छिद्यते, न तृणेन, तत् परशोश्छेदनम् । अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम् । 'इतरथा ह्यसितृणयोश्छेदनेऽविशेषः स्यात्' [पा॰ वा॰]। यो हि मन्यते उद्यमननिपातनादेवैतद् भवति च्छिनत्तीति, असितृणयोश्छेदने न तस्य विशेषः स्यात्, यदसिना छिद्यते तृणेनापि तच्छिद्येत ।" इति **पाणिनीयव्याकरणे कात्यायनविरचितवार्तिकोपरि पातञ्जलमहाभाष्ये** १।४।२३ ॥ २ दृश्यतां पृ॰ २०२ पं॰ २ ॥ ३ दृश्यतां पृ॰ २०२ पं॰ ७ ॥ ४ °**स्तथा नियतं** भा॰ ॥ ५ °**दिविभागेषु** भा॰ ॥ ६ °**गाहे** प्र॰ ॥ ७ °**मनसःप्रा**° प्र॰। "गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः ।१७। आकाशस्यावगाहः ।१८। शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ।१९। सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ।२०। परस्परोपग्रहो जीवानाम् ।२१। वर्तना परिणामः क्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य ।२२। स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ।२३। इति **तत्त्वार्थाधिगमसूत्रे** पञ्चमाध्याये ॥ ८ "हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ।७।१। आस्रवनिरोधः संवरः ।९।१। स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ।९।२। तपसा निर्जरा च ।९।३। क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसङ्ख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ।१०।७। कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः ।१०।३।" इति **तत्त्वार्थाधिगमसूत्रे** ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं तर्हि त्वदुक्तभावनयैव युगपदयुगपन्नियतार्थवृत्तेः काल एव भवतीति भावितं भवति। इह युगपदवस्थायिनो घटरूपादयो न केचिदपि वस्तुप्रविभक्तितो युगपद्वृत्तिप्रख्यानात्मकं कालमन्तरेण। एवं घटो ग्रीवादयस्तथावृत्तेस्तथाभवनात्, मृल्लोष्टादयः, पृथिवी मृदादयः, द्रव्यं पृथिव्यादयः, द्रव्यादयो भावः। अयुगपद्वा-

---

नुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रसंवरां द्वादशविधतपोऽनुष्ठाननिर्जरां क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थप्रत्येकबुद्धबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसङ्ख्याल्पबहुत्वानुपायव्याख्येयां कृत्स्नकर्मक्षयाव्याबाधात्यन्तैकान्तसुखात्मिकां च मोक्षप्रक्रियां परमसूक्ष्मां पश्यन्ननन्तकालमव्याबाधसुखं तिष्ठति। एषा च बन्धमोक्षप्रक्रिया दिङ्मात्रमुपदर्शिता अतिसूक्ष्मत्वाद् बहुवक्तव्यत्वाच्च नात्र परीक्षाकाले शक्या वक्तुम्। यथोक्तम्—

> **लोगम्मि जीवचिंता सव्वागमक[1]ा(को ?)सिया दुरोगाहा।**
> **तत्तो वि कोसियतरी चिंता बंधे य [2]मोक्खे य॥**　[　　　　]

इति परिसमाप्त्यर्थः, इत्थं नियतिवादः परिसमाप्तः।

अपरो द्रव्यार्थो विधिविधिनयविकल्प आह—नायमपि नियतिवादः परितोषकरः, **एवं तर्हीत्यादि**। १५०-१

येयमुक्ता 'ज्ञाज्ञं स्वतन्त्रास्वतन्त्रं वा न ज्ञमेव भवितुमर्हति, किं तर्हि? नियत्यैव युगपदयुगपच्चानेकधा क्रियादिकार्यकारणभावनियतमेतत्' इति भावनाऽनयैव त्वयोक्तया **युगपदयुगपन्नियत**रूपादिबीजाङ्कुराद्यर्थैर्न नियतिरेव भवति, किं तर्हि? **काल एव भवतीति भावितं भवति,** अपरस्मिन् परं युगपदयुगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि [वै०सू० २।२।६] इति वचनाद् युगपदयुगपन्नियतार्थानां [3]वृत्तेर्भवनार्थत्वाद् वर्तनस्य काल[4]लक्षणत्वादिति। तद्भावनार्थमाह—**इह युगपदवस्थायिनो घटरूपादयः**, ते किं पर[5]स्परप्रविभक्तितः स्वेनैव भवन्ति उत कालसामर्थ्यात्? इति। वस्तुरूपेण तावच्चिन्त्यते—तत्र तावन्न **केचिदपि वस्तुप्रविभक्तितो** भवन्तीति वाक्यशेषः, रूपरसगन्धस्पर्शशब्देभ्यः प्रविभक्त्या प्रविभागेन तद्रूपेण प्रविभक्तितो वा कारणान्न भवति तैः सहोपलभ्यमानमपि तद्व्यतिरेकेणाभावात्। भिन्नेन्द्रियग्राह्यत्वादेव [6]च ते[षाम्] ऐक्याभावाद् यौगपद्यं नानात्वं च सिद्धम्, न ह्यभिन्नस्य यौगपद्यम्, युगस्य स्कन्धयोः पतनं युगपदेवमन्यत्रापि अनेकाश्रयं यौगपद्यम्, अतो रूपादयो युगपद् वर्तन्त इत्येषा वृत्तिप्रख्यातिर्दृष्टा अर्थतः। शब्दतोऽपि च वर्तनं कलनं सङ्ख्यानं प्रथनं बुद्ध्या शब्देन वा निरूपणमिति वृत्तिरेव। तस्मात् कलनं काल इत्यक्षरार्थानुसारेण वर्तनं [7]कालः, तं **कालात्मानं युगपद्वृत्तिप्रख्यानात्मकमन्तरेण** न ते केचिद्रूपादयो युगपद् भवितुमर्हन्ति, तस्माद् रूपादयो युगपदित्येतत् कालसामर्थ्यात्। एवं सूक्ष्मा रूपादय उक्ताः। स्थूला अप्**येवं घटो ग्रीवादयः, तथावृत्ते**र्युगपद्वृत्तेः, कस्य? कालात्मन एव। वृत्तिश्च भवनमित्यत आह—**तथाभवना**दिति। **मृल्लोष्टादयः**, मृदिति लोष्टादय [8]एव युगपद्वृत्तेः। **पृथिवी मृदादय**

---

१ °कासिया प्र०॥ २ मुक्खे य०॥ ३ वृत्तिर्भ° य०॥ ४ °लक्षत्वा° प्र०॥ ५ °स्परं प्रवि° य०॥ ६ च ते पेक्या° य०। च ने पेक्या° भा०॥ ७ दृश्यतां पृ० १५८-१॥ ८ एवं भा० रं० ही०॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

विनोऽपि भवितुकामस्य वर्तनादतिरिक्तस्य कस्यचिदप्यनुपपत्त्यापत्तेः कालात्मकता। नियतेस्तु सर्वात्मकत्वात् सर्वाकारता स्यात् सदा सर्वस्य, कालाभावेऽतीतानागतवर्तमानाविशेषात्। अपि च तथापि नैव कालातिक्रमः। इति स्वीक्षितमपि

१५०-२ एव तथावृत्तेः, एवं मृल्लोष्टवज्राश्मसिकतादयः। एवं **द्रव्यं पृथिव्यादयः,** पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशादयो युगपद्वृत्तयो द्रव्यम्। **द्रव्यादयो भावः,** द्रव्यगुणकर्मणां सप्रभेदानां भाव इत्याख्या युगपद् भवनात्। एवं तावद् युगपद्वृत्तिः काल एव भवतीति भावितम्।

क्रमवृत्तिनियतिरपि काल एव भवतीति भाव्यते, तत आह—**अयुगपद्भाविनोऽपी**त्यादि यावदा**पत्तेः**। अयुगपद् भवितुं शीलमस्येत्ययुगपद्भावि, तस्यायुगपद्भाविनो[1] **भवितुकामस्य** भवनाभिमुखस्य **बीजाङ्कुरादे**र्वस्तुनो यदि वृत्त्यात्मककालभावो नाभ्युपगम्यते ततो **वर्तनादतिरिक्तस्य कस्यचिदप्यनुपपत्तिरापद्यते** वर्तनाभावाद् वन्ध्यासुतवत्। ततश्चा**नुपपत्त्यापत्तेः** सति[2] च वर्तनात्मके काले तदुपपत्तेः **कालात्मकता**। एवं तावन्नियतार्थाभ्युपगमः कालमन्तरेण न भवतीति युगपदयुगपद्वृत्त्यात्मकः[3] काल एव भवतीत्युक्तम्।

इदानीं नियतिवादिनो दोषोऽभिधीयते—**नियतेस्त्वि**त्यादि यावत् **सदा सर्वस्य**। य[4] उक्तस्त्वया स्वभाववादिनं प्रति 'बाल्यकौमारयौवनमध्यमाद्यवस्था युगपत् स्युः सर्वाकारस्वभावत्वाद्देवदत्तादेः, अङ्कुरपत्रकाण्डाद्यवस्थाश्च युगपत् स्युर्व्रीह्यादेः' इत्युपालम्भः स एव 'नियतेः सर्वात्मकत्वात् कस्मात् सर्वाकारनियतैव न भवति' इति स्वभावोपालम्भवन्नियत्युपालम्भोऽपि त्वामपि प्रति नियतिवादिनं समानः, **सदा** सर्वकालं **सर्वस्य** वस्तुनस्तस्य तस्येति, **कालाभावेऽतीतानागतवर्तमानाविशेषात्,** दृष्टा चातीतानागतानाकारता[6] वर्तमानाकारता च, वृत्त्यात्मककालाभावाद् नियतेश्चाविशेषादतीतानागतानाकारतावद् वर्तमानानाकारता स्यात् वर्तमानाकारतावदतीतानागताकारतापि स्यात्, न च दृष्टा अतीतानागताकारता वर्तमानानाकारता वा।

१५१-१ स्यान्मतम्—अतीतानागताकारता वर्तमानाकारतावद् नियतौ विद्यमानैव तिरोभूतत्वान्नोपलभ्यते, वर्तमानाकारता त्वाविर्भूतत्वादुपलभ्यत इत्युक्तत्वादनुत्तरमिति[7]। अत्रोच्यते—**अपि च तथापि नैव कालातिक्रम** इति। एवमपि त्र्याकारताया युगपद्वृत्तायाः क्रमेणाविर्भावतिरोभावावतीतमनागतमिति [8]चैतत् सर्वं कालवाचिशब्दार्थसामर्थ्यप्रतिपादितं कलनं वर्तनं भवनमन्तरेण न स्यात्, अतः कालस्यानतिक्रमणीयता।

इति स्वीक्षितमपीत्यादि। एतेन प्रकारेण सुष्ठु परीक्षितमपि कालादृते नान्यत् कारणमवस्थानां[9] बाल्यादीनामङ्कुरादीनां च क्रमेणावस्थापकं रूपादीनां वा युगपदवस्थापकमालक्ष्यते। तस्मात्त्वया **नियतान-**

---

१ °**द्भाविनो भाविनो भवितु**° भा० वि० पा० ॥ २ **सति वर्त**° य० ॥ ३ °**पद्यावृत्त्या**° भा०। अत्र °**पद्वा वृत्त्या**° इत्यपि पाठः स्यात्॥ ४ **यत उक्त**° प्र० ॥ ५ दृश्यतां पृ० १९६ पं० ४॥ ६ °**गताकारता** प्र० ॥ ७ (°दनन्तरमिति)?॥ ८ **चेत्तत्** डे० लीं० ॥ ९ °**णवस्थानां** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियतानन्तरव्यक्त्यैवाभ्युपगतमपि कालं नियतिमात्रग्राहदोषेणानिच्छता त्वया आत्मा गुणवत्कालपक्षपातकृतगुणेभ्योऽपनीयते ।

यदि नियतिकृतैवार्थानां प्रवृत्तिः, इदं पूर्वमिदं पश्चादिदमिदानीमिदं युगपदिति न युज्यते सर्वेषां बीजादौ नियतेः सन्निहितत्वात् ।

नियतेरेवेति चेत्, न, आनर्थक्यात् । किमिह पूर्वादिभिः ? एवमादिविकल्प-

---

न्तरव्यक्त्यैवाभ्युपगतः कालः, 'सप्ताहं कललं भवति, ततः सप्ताहमर्बुदम्, एवं पेशी घनम्' इत्येवमादिक्रमेण गर्भादिषु पूर्वोक्तावस्थानां पूर्वस्या अनन्तरावस्था अभिव्यज्यत इत्यनयैव नियताभिव्यक्त्या कालमभ्युपगतमपि **नियतिमात्रग्राहदोषेण** स्वपक्षरागा[2]दनिच्छता **त्वया आत्मा** तेभ्यो **गुणवत्कालपक्षपातकृतगुणेभ्योऽपनीयते** । मा भूद् [3]ग्राह इत्युक्तेऽतिनिष्ठुरत्वाच्चित्तपीडेति ग्राहवद् ग्राह इति प्रख्याख्यातगौणशब्देनोच्यते । अथवा ग्राहोऽभिप्रायः, ग्राहयतीति ग्राहः, तस्याभिप्रायस्य दोषेण स्ववचनाभ्युपगतमपि कालमपश्यन् कालतत्त्ववादित्वावाप्ययशोधर्मादिगुणगणादात्मानमपनयसि ।

यदि नियतिकृतेत्यादि यावद् **न युज्यते** । नैवमभ्युपगन्तुं शक्यं **नियतिकृतैवार्थानां प्रवृत्ति**रिति, अनन्तराभिहितदोषसम्बन्धात् [4]कालकृतत्वस्योक्तत्वाच्च । अभ्युपेत्यापि नियतिकृतत्वं दोषं ब्रूमः—**इदं** १५१-२
पूर्वमिदं पश्चादिदमिदानीमिदं युगपदिति न युज्यते, पूर्वादयः कालत्रयवाचिनः, 'युगपत्' इत्यभिन्नकालवाची शब्दः, तत्तु कालमन्तरेण लोकप्रसिद्धं व्यवहारजातं न युज्यते । कारणान्तरमप्याह—**सर्वेषां** [5]तेषां तेषां **बीजादौ नियतेः सन्निहितत्वात्**, बीजे मूलाङ्कुरपत्रनालादीनां नियतेः सन्निहितत्वात् शुक्रशोणितावस्थायामेव कललार्बुद[6]गर्भार्भकादीनां नियतेः सन्निहितत्वात् पूर्वादिक्रमवृत्तिता युगपद्वृत्तिता वेति न युज्यते ।

नियतेरेवेति चेत्, न, आनर्थक्यात् । स्यान्मतम्—एतदपि नियतेरेव युगपद्वर्तनं पूर्वादिक्रमवर्तनं चेत्यादि, **एव**कारात् कालादिनिराक[7]*रणम् । **नेति**, एतच्चायुक्तम्, **नैरर्थक्यात्**, नियतेः पूर्वादीनां वा नैरर्थक्यात् । यदि नियतिरेव *कारणं पूर्वं पश्चादिदानीं युग[8]पदिति कालवाचिशब्दोपादानं तदर्थाश्रयणं चानर्थकम्, तदर्थाभावे सति नियत्यैव कृतप्रयोजनत्वात् । तदुपादाने वा नियत्यानर्थक्यम् । इह तु नियत्यानर्थक्यमेवेति मन्यस्व, [9]कालं प्रत्येकार्थव्यापारार्थानां पूर्वादीनामवश्याभ्युपगम्यत्वात् [10]तैरेव च कृतप्रयोजनत्वात् किं नियत्या प्रयोजनम् ? **किमिह पूर्वादिभिः ?** इत्याद्यक्षरैर्भावितार्थत्वाद् यदर्थं नियतिरुपादीयेत तन्नास्तीत्यभिप्रायः, तत्तु पूर्वादिभिः कृतमेव, 'यत् पूर्वं तद् बीजादि यत् पश्चात् तदङ्कुरादि' इत्येतयोः [11]पूर्वापरशब्दयोः क्रमात्मकालवाचित्वादिति । तन्निदर्शयति—**एवमादिविकल्पव्यवहारेषु काल एव**

---

१ °स्याऽनन्तरा° प्र० ॥ २ °द्वनिच्छता प्र० ॥ ३ ग्रह प्र० ॥ ४ कालत्वस्योक्तत्वावच य० । कालत्वास्योक्तत्वावच्च भा० ॥ ५ तेषां बीजादौ य० ॥ ६ °गर्भाभेकादीनां प्र० ॥ ७ °रणं रेति य० । भा० प्रतौ तु * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो नास्ति । अत्र 'कालादिनिराकरणं चेति, एतच्चायुक्तम्' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ८ °दित्या[दि ?]काल° भा० । दित्यकाल° ₹० ही० । °दित्यत्काल° पा० वि० डे० लीं० ॥ ९ कालप्रत्ये-(कालवृत्त्ये ?)कार्थ° प्र० ॥ १० तैरेव कृत° य० ॥ ११ पूर्वपर° प्र० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

व्यवहारेषु काल एव भवतीति भावितं सर्वसङ्ग्रहेणैव वा। क्रमव्यवहारसिद्ध्यर्थं पूर्वादय आश्रयणीया एव, नियतेरेवासिद्धेर्व्यवहारासिद्धिरन्यथा, पूर्वादिषु तु समाश्रितेषु नियत्या किं क्रियते?

त्वन्न्यायेन तु विदुषां हिताहितप्राप्तिपरिहारार्थावाचारोपदेशावनर्थकौ स्यातां चक्षूरूपग्रहणनियतिवत्, अयत्नत एव तथासिद्धेः। यत्नोऽपि नियतित एवेति चेत्, ततः सर्वलोकशास्त्रारम्भप्रयोजनाभिधानानर्थक्याल्लोकागमविरोधौ

भवतीति भावितम्। किञ्चान्यत्, **सर्वसङ्ग्रहेणैव वा,** यत् [कारण तत्] पूर्वम्, यत् कार्यं तत्
१५२-१ पश्चात्, क्रमवर्तिनां भावानां कारणकार्यत्वेन सङ्ग्रहात् पूर्वापरयोः कारणकार्यत्वात् कालत्वाच्च[1] काल एव भवतीति। एतस्य **क्रमव्यवहारस्य सिद्ध्यर्थं** त्वयानुक्रमार्थं पुरुषं स्वभावमन्यद्वा कारणं तत्कार्यं चाश्रित्यावश्यं **पूर्वादय आश्रयणीया एव,** नियत्यादिमात्रेण पूर्वाद्यनपेक्षेण व्यवहारासिद्धेः[2]। **नियतेरेवासिद्धेर्व्यवहारासिद्धिरन्यथेति,** पूर्वादिभिर्विना बीजादीनामनियतत्वात् स्वभाववद् नियत्यभावः[3], नियत्यभावाद् व्यवहारासिद्धिरिति। मम पुनः कालवादिनः **पूर्वादिषु तु समाश्रितेषु नियत्या किं क्रियते?** सिध्यत्येव नियत्या विनापि क्रमव्यवहारः पूर्वादिभिरेव कृतत्वादित्यर्थः।

किञ्चान्यत्, नियतिवादे **त्वन्न्यायेन तु** त्वदीयेनैव न्यायेन **विदुषां हिताहितेत्यादि,** हितप्राप्त्यर्थ आचारो लौकिकः कृषिवाणिज्य[4]सेवादिरोदनपचनभोजनादिश्च दृष्टार्थः, तदुपदेशश्च 'एतत् कुरु, इदं ते श्रेयः' इति। लोकोत्तरश्चादृष्टार्थो यमनियमादिः। अहितप्रतिषेधार्थश्च लौकिकः क्षारविषकण्टकाग्निशस्त्रादिपरिहारार्थः, तदुपदेशश्च बालादीनां 'मा कार्षीः' इति। लोकोत्तरश्चादृष्टार्थो हिंसानृतस्तेयाब्रह्मादिभ्यो विरतिः श्रेयसीति। तावेता**वाचारोपदेशावनर्थकौ स्याताम्,** नियत्यैव यद्यवश्यम्भावी अर्थोऽनर्थो वा किमाचारोपदेशाभ्याम्? किमिव? **चक्षूरूपग्रहणनियतिवत्,** यथा चक्षुषा रूपं पश्यन्तं पुरुषं नियत्या स्वभावतोऽन्येन वा केनचित् कारणेन त्वदभिमतेन सिद्धत्वात् पुरुषकारादृते यो ब्रुयात् 'चक्षुषा रूपं पश्य मा द्रौक्षीर्जिह्वया'[5] इति किं तेन कृतं स्यात्? तथा नियत्या सिध्यत्सु असिध्यत्सु वा किं यत्नोपदेशाभ्याम्?
१५२-२ किं कारणम्? **अयत्नत एव तथा** [6]सिद्धेरोदनकवलाद्यास्यप्रवेशोऽपि प्रक्षेपयत्नादृते त्वन्मतेन सिध्येत्, अप्रक्षिप्ते कवले क्षुत्प्रतीकारः स्यादित्यादि योज्यम्।

यत्नोऽपि नियतित एवेति चेत्। स्यान्मतम्—योऽप्यसौ यत्नो नियतित एवैषोऽपि आचारोपदेशरूपस्तृप्तिप्रयोजनौदनपचनास्यप्रक्षेपादिरूपश्च तथा तथा नियतित्वादित्येवं चेन्मन्यसे, **ततः सर्वलोकशास्त्रारम्भप्रयोजनाभिधानानर्थक्याल्लोकागमविरोधौ,** यथासङ्ख्यं लोकविरोध आगमविरोधश्च, सर्वलोकस्य सर्वशास्त्राणां चारम्भप्रयोजनयोस्तदभिधानस्य चानर्थक्यम्, बुभुक्षाप्र[7]तीकारप्रयोजन ओदनपाकारम्भः

---

१ °**त्वाच्च काल एव** य०॥ २ °रासिद्धिः भा०॥ ३ °त्याभावः भा०॥ ४ °ज्यां(ज्या?)**सेवा**° भा०। °**ज्यं सेवा** य०॥ ५ **द्राक्षीजिह्वया** प्र०॥ ६ **सिद्धेवोदन**° प्र०॥ ७ **प्रतिका**° य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावस्यान्यथाभावाभावात्, क्रियाया एवौदनतृप्त्यादिफलप्रसूतेः प्रत्यक्षविरोधः।

एवंनियतेरेवैवमिति चेत्, न, कालानर्थान्तरक्रियाया एवैवं क्रियानियतिरिति संज्ञामात्रे विसंवादात्, कालानर्थान्तरत्वात् क्रियायाः।

नियतिप्रतिपादनपरिक्लेशाभ्युपगमाच्च तेऽवश्यम्भाव्यव्यभिचारदर्शनविपर्ये-

---

सह प्रयोजनेन तृप्त्यादिना तदुपदेशवचनारम्भप्रयोजनानि चानर्थकानि लोके, शास्त्रेषु च धर्मार्थकाममोक्षास्त-दर्थाश्च शास्त्रारम्भास्तदुपदेशाश्चानर्थकाः प्राप्नुवन्ति। किं कारणम्? **भावस्यान्यथाभावाभावात्**, यस्मात् तेनैव भाविनो नाभावः, अभाविनश्च न भावः, तस्माद् भावस्यान्यथाभावाभावात् सर्वलोकशास्त्रारम्भप्रयोजना-भिधानानर्थक्यम्, तस्माच्च लोकागमविरोधौ लोके सर्वागमेषु चारम्भप्रयोजनाभिधानानां प्रसिद्धत्वात्। किञ्चान्यत्, **क्रियाया एवौदनतृप्त्यादिफलप्रसूतेः प्रत्यक्षविरोधः**। क्रियात एवौदनसिद्धिः, नौदासीन्येन आसितुः कदाचिन्नियतेरेव केवलायाः। सिद्धस्य चौदनस्य फलं तृप्तिः सापि मुखे कवलप्रक्षेपग्रसनादि-क्रियात एव भवन्ती दृष्टा, ओदनजन्यतृप्तिबलवर्णारोग्यादि फलं चान्तर्गतात्मरसरुधिरादिविभागपरिणमन-क्रियातः। तस्याश्च क्रियाप्रसाध्यतृप्त्यादिहेत्वोदनसिद्धौदनजन्यतृप्तिबलवर्णारोग्यादिफलप्रसूतेः प्रत्यक्षत्वाद् 'नियतित एव' इति वादे प्रत्यक्षविरोधः।

एवंनियतेरेवैवमिति चेत्। एवंविधैवैषा नियतिः क्रियानियतिरित्युच्यते, अस्याः क्रियानियतेरो- १५३-१
दनतृप्त्यादिफलप्रसूतिनियतिरिति। एतच्चायुक्तम्, **कालानर्थान्तरक्रियाया एवैवं क्रियानियतिरिति संज्ञामात्रे विसंवादात्**, अभ्युपगतं तावत् त्वया 'एवंनियतेरेवैवम्' इति ब्रुवता काष्ठादिसाधन-सन्दर्भया लौकिक्या पचिक्रिययैव ओदनसिद्धितृप्त्यादिफलप्रसूतिनियतिरिति, 'एवं'शब्दस्य तदर्थत्वात्। सा च क्रियानियतिः कालक्रियापर्यायत्वात् कालनियतिः, नियतिक्रिययोश्चैकार्थत्वात्। तस्मादावयोः संज्ञामात्रे विप्रतिपत्तिर्नार्थे। अत्राह—एवमपि क्रियासिद्धौ कालासिद्धिरिति, अत्रोच्यते, तन्न, **कालानर्थान्तरत्वात् क्रियायाः**, क्रिया काल इत्यनर्थान्तरम्, कालेनैव क्रियाख्येन एवंनियतिरिति ब्रुवता स एव काल इत्युक्तं भवति, कालक्रिययोरनर्थान्तरत्वात् कालनियतिः क्रियानियतिरिति संज्ञामात्रे विसंवादात् पूर्ववदिति।

किञ्चान्यत्, **नियतिप्रतिपादनपरिक्लेशाभ्युपगमाच्च तेऽवश्यम्भाव्यव्यभिचारदर्शनविपर्ययार्थप्रवृत्तेरभ्युपगमविरोधः**। पुरुषकालस्वभावादिदर्शनानां नियत्यैवाव्यभिचारिण्या तदविनाभाविनाम-व्यभिचारादेव त्वयाभ्युपगतानां परवादिभिश्च स स एवेत्यभ्युपगतानां त्वया पुनस्तद्विपर्ययः 'नियतिरेव कारणं न कालादयः' इति प्रतिपादनार्थं प्रवृत्तिरङ्गीकृता। यदि तानि दर्शनान्यनया त्वदीयया प्रवृत्त्याप-नीयन्ते नावश्यम्भावीनि तानि, अथावश्यम्भावीन्येव नापनीयन्तेऽनयापि प्रवृत्त्या ततो नियत्यर्थं परदर्शन-विपर्ययमापादयामि इत्ययमभ्युपगमो निवर्तते इत्युभयथाभ्युपगमविरोधः। १५३-२

---

१ यस्मान्न तेनैव रं० ही० विना। यस्मान्न तेवैव रं० ही०॥ २ क्रिया एवौ° भा० पा०॥ ३ एवा-भवन्ती य०। एवं भवन्ती भा०॥ ४ °णामन° प्र०॥ ५ °सिद्धो(°सिद्ध्यो?)दन° य०॥ ६ °यायाश्चै° प्र०॥ ७ °च्यतेतेन(च्यते, न,?)काला° प्र०॥ ८ °श्यानेवश्यंभावाव्यभि° प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यार्थप्रवृत्तेरभ्युपगमविरोधः । स्ववचनपक्षधर्मत्वादीनां च प्रवृत्त्यैव निराकरणम् । एवं दृष्टान्तोऽपि ।

अतो धर्मार्थकाममोक्षाः कालकृता उक्तभावनावत् । तथा ब्राह्मणस्य वसन्तेऽग्न्याधानम्, वणिजां मद्यस्य, ईश्वराणां क्रीडादीनाम्, निष्क्रमणं कृत्वा यावद्विमोक्षं विमोक्षणस्य कालो यतीनाम् ।

स्ववचनपक्षधर्मत्वादीनां[1] च प्रवृत्त्यैव निराकरणम् । येयं पक्षहेतुदृष्टान्ताद्यवयवोच्चारणे[2] प्रवृत्तिस्तया स्ववचनं[3] परमतनिराकरणसमर्थमिति मतं प्रवृत्त्युपलभ्यं स्वत एव नावश्यं भवतीति[4] निराक्रियते । अथावश्यं स्वत एव भवति, प्रवृत्तिरनर्थिका प्रतिपादनासमर्थवचनिका प्रवृत्तिवचनयोरनियतार्थत्वात् । हेतुः पक्षधर्मो हेत्वर्थप्रतिपत्तिनियतोऽवश्यम्भावी[5] प्रवृत्तिमन्तरेण चेत् प्रवृत्तिरनर्थिका, नावश्यम्भावी चेत् नियत्य-[6] भावः । **एवं दृष्टान्तोऽपी**ति व्याख्येयम् । अतः प्रवृत्त्यैवाभ्युपगतया वचनहेतुदृष्टान्तानां निराकरणं प्रमाणान्तरमन्तरेणापीति ।

कथं पुनराचारोपदेशानर्थक्यदोषाभावो लोकागमादिविरोधाभावश्च ? इत्येतत्प्रतिपादनार्थमाह – **अत** इत्यादि । अतः प्रागभिहितकालकार्यत्वाद्धेतोः[7] सर्वलोकशास्त्रारम्भप्रयोजनाभिधानानां सर्वशास्त्रार्थत्वायेयं[8] पुनर्भावनोच्यते – **धर्मार्थकाममोक्षाः कालकृताः**, एवं चतुर्वर्गसाध्यसाधनसम्बन्धार्थाः[9] सर्वशास्त्रारम्भाः कालसामर्थ्यादेव सफला नान्यथेति प्रतिपद्यस्व । कथम् ? **उक्तभावनावत्**, उक्ता भावना रूपादिघटादियुगपद्वृत्त्यात्मककालरूपं बीजाङ्कुरादिपूर्वोत्तरक्रमवृत्त्यात्मककालरूपं च जगदनियतपरिणति चेति । तस्मादुक्तभावनावदनियतेर्धर्माद्यर्थानामाचाराणां पूर्वापरीभूतक्रियात्वात् क्रियार्थत्वाच्चोपदेशानां कालस्य च पूर्वापरीभूतस्य क्रियात्वात् सार्थकाः शास्त्रारम्भाः ।

१५४-१ **तथा ब्राह्मणे**त्यादि । एवं च कृत्वा कालकृतत्वात् क्रिया-क्रियाफलानां धर्मार्थकाममोक्षार्थैः शास्त्रैरेवं[10] विहिताः क्रियाः, तद्यथा यथाक्रमं धर्मादिषु, **ब्राह्मणस्य वसन्तेऽग्न्याधानम्**, वसन्ते[11] ब्राह्मणो यजेत, ग्रीष्मे राजन्यः, शरदि वाजपेयेन वैश्यः [ ] इत्यादिवचनात् । तथा **वणिजां मद्यस्य**, आधानमिति वर्तते । **ईश्वराणां क्रीडादीनाम्**, उद्यानगमनं वासन्तिकवस्त्रालङ्कारमाल्यगन्धभोजनादिसेवनं रमणमित्यादीनाम्, **आदि**ग्रहणात् सन्धिविग्रहासनयानादिगुणानुष्ठानमित्यादि । **निष्क्रमण**मित्यादि यावद् **यतीनाम्**, निष्क्रमणकालादारभ्य **यावद् विमोक्षं विमोक्षणस्य** आत्मकर्मवियोगफलस्य मोक्षस्य **कालो**

---

१ °**दीनां वृत्त्यैव** य० ॥ २ °**चारणं** प्र० ॥ ३ **स्ववंधनं** प्र० ॥ ४ °**तीति क्रियते** य० ॥ ५ दृश्यतां पृ० १३८ टि० ९ ॥ ६ **नित्यभावः** प्र० ॥ ७ °त्वा(त्व ?)**हेतोः** प्र० ॥ ८ अत्र **सर्वशास्त्रार्थत्वायेयं** इत्यस्य स्थाने **सार्थकत्वायेयं** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ९ °**कृताः एवं चतुर्थवर्ग** प्र० । अत्र° कृता एव, चतुर्वर्ग° इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १० **रेवं** भा० वि० विना ॥ ११ दृश्यतां पृ० १२१ पं० २० ॥ १२ दृश्यतां पृ०८३ टि० ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनियतचेतनाचेतनत्वपृथिव्यादित्वेन अनाद्यनन्तवर्तनात्मस्वतत्त्वानां वृत्तेः

यतीनां निष्क्रमणादेः काल इति, यथोक्तम्—अप्पणो **निक्खमणकालं आभोएत्ता[1] चइत्ता रज्जं** [कल्पसू० ११२] इत्यादि । तथा दण्डकपाटरुचकमन्थलोकपूरणक्रिया[2]भिस्तत्काले कर्मत्रिकस्यायुषा समीकरणमित्यादि ।

अनियतचेतनाचेतनत्वेत्यादि यावत् **कलनं का[3]लः**, स्वरूपतदात्मकत्वभावनैव वर्तते । अनियतं चैतन्यमुपयोगै[4]रूपादित्वेन रूपे चेतनाया उपयुक्तत्वात् । अचेतनत्वे[5]मप्यनियतं चैतन्योपयोगापत्त्योपयुक्तत्वात् । अथवा तृणादेर्गवाद्यभ्यवहृतस्य सुखदुःखादिचैतन्यापत्तेर्द्रव्यस्य प्राणाद्यापत्तेर्द्रव्यप्राणातिपातादिभावः [6]कालक्रमागतपरिणतिवशात् उपशमक्षयक्षयोपशमोदयपरिणामभावैश्च जीवपुद्गलयोरनाद्यनन्तशो वर्तनात् ।

---

१ **आभोए २ त्ता** वि० । अत्र 'आभोएइ आभोएत्ता' इत्यपि पाठः स्यात् । "तए णं समणे भगवं महावीरे अप्पणो निक्खमणकालं आभोएइ, आभोइत्ता चिच्चा हिरण्णं चिच्चा सुवण्णं चिच्चा धणं चिच्चा रज्जं चिच्चा रट्ठं एवं बलं वाहणं कोसं कोट्ठागारं चिच्चा पुरं अंतेउरं चिच्चा जणवयं चिच्चा विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरयणमाइअं संतसारसावइज्जं विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाणं दायारेहिं परिभाइत्ता दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता" इति **कल्पसूत्रे** पाठः । "तते णं समणे भगवं महावीरे तेणं अणुत्तरेणं आहोधिएणं नाणदंसणेणं अप्पणो निक्खमणकालं आभोएति । अप्पणो २ त्ता चेच्चा हिरण्णं चेच्चा सुवण्णं चेच्चा धणं चेच्चा धण्णं चेच्चा रट्ठं एवं बलं वाहणं कोसं कोट्ठागारं चेच्चा पुरं चेच्चा जणवयं चेच्चा विउलधणकणगरतणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमातीयं संतसारसावतेज्जं विच्छड्डइत्ता विग्गोवइत्ता दाणं दाइयाणं परिभाएत्ता" इति **दशाश्रुतस्कन्धसूत्रे** पाठः ॥ २ "केवलिनः समुद्घातः केवलिसमुद्घातः । तत्करणसमये च भगवान् केवली अन्तर्मुहूर्तमुदीरणावलिकायां कर्मप्रक्षेपव्यापाररूपमावर्जीकरणं करोति, ततः समुद्घातं गच्छति, तस्य चायं क्रमः, तद्यथा—प्रथमसमये तावत् स्वदेहविष्कम्भबाहल्योपेतम् आयामतस्तु ऊर्ध्वाधोलोकान्तगामिनं जीवप्रदेशसंघातरूपं दण्डं केवलज्ञानाभोगतः करोति, द्वितीयसमये तु तमेव दण्डं पूर्वापरदिग्द्वयप्रसारणात् तिर्यग्लोकान्तगामिनं कपाटमिव कपाटं विदधाति, तृतीयसमये तमेव कपाटं दक्षिणोत्तरदिग्द्वयप्रसारणात् तिर्यग्लोकान्तगामिनमेव मन्थानमिव मन्थानं करोति, एवं च लोकस्य प्रायो [पृ० १८८] बहु पूरितं भवति, मध्यन्तराणि च अपूरितानि प्राप्यन्ते जीवप्रदेशानामनुश्रेणिगमनादिति । चतुर्थसमये तान्यपि सह लोकनिष्कुटैः पूरयति, तथा च समस्तोऽपि लोकः पूरितो भवति । ननु लोकमध्ये स्थितो यदा केवली समुद्घातं करोति तदा तृतीयेऽपि समये लोकः पूर्यत एव, किं चतुर्थसमयेऽन्तरपूरणेनेति ? नैतदेवम्, लोकस्य मध्यं हि मेरुमध्य एव सम्भवति, तत्र च प्रायः समुद्घातकर्तुः केवलिनोऽसम्भव एव, अन्यत्र च समुद्घातं कुर्वतस्तस्य तृतीयसमयेऽन्तराणि उद्धरन्त्येवेति परिभावनीयम् । तदनन्तरं च पञ्चमसमये यथोक्तक्रमात् प्रतिलोमं मध्यन्तराणि संहरति, प्रसृतान् जीवप्रदेशान् सङ्कोचयतीत्यर्थः । षष्ठे समये मन्थानमुपसंहरति । सप्तमे तु समये कपाटं सङ्कोचयति । अष्टमे तु समये दण्डमपि संहृत्य शरीरस्थ एव भवति । तदेवमष्टसामयिकः केवलिसमुद्घातः । [पृ० १८९]······**दंड कवाडे रुयए लोए** चउरो य पडिनियत्तंते । केवलिय अट्ठसमए भिन्नमुहुत्तं भवे सेसा ॥ १९४ ॥ पूर्वोक्तन्यायेन प्रथमे समये दण्डः, द्वितीये कपाटः, तृतीये **रुचको मन्थः** इत्यर्थः, चतुर्थे तु लोकः सर्वोऽप्यापूर्यत इत्येवं चत्वारः समयाः । प्रतिनिवर्तमानेऽपि समुद्घाते पूर्वोक्तयुक्त्यैव चत्वार एव समया भवन्तीत्येवं केवलिसमुद्घातोऽष्टसामयिकः । शेषास्तु समुद्घाताः सर्वेऽप्यन्तर्मौहूर्तिका इत्येतत् सर्वं प्रागेव भावितार्थमिति गाथार्थः ।" [पृ० १९०] इति मलधारगच्छीयश्रीहेमचन्द्रसूरिविरचितायां **जीव**समासप्रकरणवृत्तौ । "केवलिसमुद्घातस्वरूपमभिधीयते—तत्र सम्यगपुनर्भाविन उत्प्राबल्येन कर्मणो हननं घातः प्रलयो यस्मिन् प्रयत्नविशेषे स समुद्घातः । अयं च केवलिसमुद्घातोऽष्टसामयिकः ।······अयं कृतकृत्योऽपि केवली किमर्थं समुद्घातं करोतीति चेत्, उच्यते—वेदनीयनामगोत्राणामायुषा सह समीकरणार्थम्···उक्तं च—'आयुषि समाप्यमाने शेषाणां कर्मणां यदि समाप्तिः । न स्यात् स्थितिवैषम्याद् गच्छति स ततः समुद्घातम् ॥ १ ॥ स्थित्या च बन्धनेन च समीक्रियार्थं हि कर्मणां तेषाम् । अन्तर्मुहूर्तशेषे तदायुषि समुज्जिघांसति सः ॥ २ ॥" इति **देवेन्द्र**सूरिविरचितायां चतुर्थकर्मग्रन्थवृत्तौ ४।२९ ॥ ३ **कालस्वरूपातदात्मकत्वा**° प्र० ॥ ४ °**गादिरूपा**° वि० डे० लीं० रं० ही० । °**गारूपा**° पा० ॥ ५ °**त्वेनाप्य**° य० ॥ ६ **कालाक्रमा**° प्र० ॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

कलनात्मकं रूपं भूयो भूयो विपरिवर्तते ध्रुवादिसर्वनित्यलक्षणम्। तस्माद्विश्वविकल्पविवर्तवर्तनायाः कलनमस्मदाद्यसर्वज्ञं प्रति अनुमानमात्रगम्यमविविक्तममितपूर्णकोष्ठागारधान्यवत् सर्वज्ञं च प्रति विविक्ताया वर्तनायाः कलनं कालः।

स तथाभूतेन कलनार्थेन वर्तनामेव सामान्यमत्यजन् भूतो भवति भविष्यं-

---

न केवलं चेतनाचेतनयोः परस्पररूपापत्तिकृतैव[1] वृत्तिः, किं तर्हि? अचेतनस्यापि **पृथिव्यादित्वेनापि** तथा, तद्यथा – एकजातित्वात् पुद्गलानां पृथिव्युदकज्वलनपवनवनस्पत्यादित्वेन विपरिवर्तमानपरिणतीनाम-

१५४-२ नाद्यनन्तश एव वृत्तिर्वर्तनम्, तस्यात्मा स्वं तत्त्वं येषां परमाणूनां ते परमाणवः, तेषा**मनाद्यनन्तवर्तनात्मस्वतत्त्वानां वृत्तेः कलनात्मकं**[2] **रूपं भूयो भूयो विपरिवर्तते**ऽभ्यावर्तते, रूपरसादिभेदपरिवर्तनवद्गुण[3]भेदेनाप्येकद्वित्रिसङ्ख्येयासङ्ख्येयानन्तगुणभागहीनवृद्धकृष्णशुक्लत्वादिना वाभ्यावृत्तिः, एकांशस्यापि परमसूक्ष्मरूपादिभावपरमाणोरपि अनाद्यनन्तशोऽभ्यावृत्तिः। अतस्तदतीतानागतवर्तमानात्मकमेकं कूटस्थमविचालि अनपायोपजनविकारि अवृद्धि[4]व्ययायोगीत्यादि **आदि**ग्रहणात्, **ध्रुवादिसर्वनित्यलक्षण**मेतदेव कलनात्मकं[5]कारणमुपपद्यते, नाणुपुरुषनियत्यादिनित्यत्वम्, पूर्वापरीभावात्मकविपरिवर्तकलनस्य आदिमध्यावसानादर्शनादेवंलक्षणस्य नित्यत्वस्य। **तस्माद् विश्वविकल्प**[6]**विवर्तवर्तनायाः कलनं** काल इत्यभिसम्भन्त्स्यते। तच्च कलनं द्विविधम्, **अस्मदाद्यसर्वज्ञं प्रति अनुमानमात्रगम्यमविविक्तं** सर्ववस्तुसामान्यमात्रग्रहणम्, **अमितपूर्णकोष्ठागारधान्यकलनवत्**, यथा धान्यममित्वा कोष्ठागारे पूरितं 'कुम्भशतसहस्राद्यन्यतमपरिमाणम्' इत्युद्देशतो गृह्यते तथोद्देशमात्रतोऽतीतानागतवर्तमानवर्तनाकलनमस्मदादिभिः। **सर्वज्ञं**[7] **च प्रति** परमनिरुद्धे काले समये समये वृत्तायाः **विविक्ताया वर्तनायाः** सङ्ख्यानं **कलनं** तत् **कालः**, कल सङ्ख्याने [पा० धा० ४९७, १८६६] इति प्रतीतेः। यथोक्तम् –

जं जं जे जे भावे परिणमति पयोगवीससादव्वं।
तं तह जाणाति जिणो अपज्जवे जाणणा णत्थि[8]॥ [आव० नि० ७९४] इति।

एतद् वर्तनस्वतत्त्वकालनिरूपणम्।

स तथेत्यादि। स एव काल**स्तथाभूतेन** वर्तनारूपेण[9] **कलनार्थेन** समाधिकरणेन[10] तां **वर्तनामेव**

१५५-१ **सामान्य**मभिन्ना**मत्यजन् 'भूतो भवति भविष्यंश्च' इति विशेषव्यपदेशं लभते**, नान्यः कश्चिदकलनात्मकः[11] पदार्थो नियत्यादिरसत्त्वात्। **स एव तु** कलनलक्षणो भाव**स्त्रिधा भिद्यते** तत्समाधिकरणत्वात् सत्त्वात्मकत्वाद् घटवत्, न व्यधिकरणो भूतो भवति भविष्यंश्चाकाल एव व्यधिकरणोऽतद्रूप एव।

---

१ °त्तिनृतैव वृत्तेः भा०। °त्तिः वृतैव वृत्तेः पा० डे० लीं० वि०। °त्तिः मृतैव वृत्तेः रं० ही०॥ २ °त्मकरूपं य०॥ ३ °नतद्गुण° प्र०॥ ४ अवृद्धिव्ययोगी° भा०। अत्र 'अवृद्ध्यव्यययोगीत्यादि' इति पाठः समीचीन इति भाति, दृश्यतां पृ० २१ पं० २२। "अथवा नेदमेव नित्यलक्षणं ध्रुवं कूटस्थमविचाल्यनपायोपजनविकार्यनुत्पत्त्यवृद्ध्यव्यययोगि यत् तन्नित्यमिति। तदपि नित्यं यस्मिंस्तत्त्वं न विहन्यते। किं पुनस्तत्त्वम्? तद्भावस्तत्त्वम्।" इति पातञ्जलमहाभाष्ये पस्पशाह्निके॥ ५ °कषङ्कारण° भा०। °कः षङ्कारण° पा० डे० लीं० रं० ही०। कषङ्कारक° वि०॥ ६ °विकल्प° य० प्रतिषु नास्ति॥ ७ सर्वं च प्रति भा०। सर्वं प्रति य०॥ ८ नत्थि य०॥ ९ वर्तमाना° प्र०॥ १० °रण्येन प्र०॥ ११ °त्मकप° य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्चेति विशेषव्यपदेशं लभते । स एव तु त्रिधा भिद्यते, अन्यथान्यस्याभावात् । स एव तथा कलयन् वर्तनेन कलयति, स एव कल्यते, तेन तस्मै चेत्यादि ।

एवमेव च स वर्तमानातीतयोः कारणावस्थयोरेव कार्याख्याभिमुख्येन गृह्यते एकत्र मेघादिरेकत्र पटादिः । ग्रहणवच्च स एव क्रियते तथा वृत्तेः क्रियया कल्यते ।

किं कारणम् ? **अन्यथान्यस्याभावात्**, इह ह्यन्यदन्यथा न भवति, यथा कुसुमं खपुष्पं न भवति खपुष्पं वा कुसुमं न भवति, घटो वा पटतया न भवति [1]घटतया पटो वा न भवति । किं तर्हि ? तदेव तद् भवति, कुसुममेव कुसुमम्, तदेव चान्यथापि भवति यथा कुसुममेव मुकुलितार्धविकसितसमस्त-विकसितजरत्ताम्लानादित्वादिना । एवं तावत् काल एव भाव इत्यभेदेन भवनं व्याख्यातम् । [2]कारणभेदेनापि **स एव तथा कलयन् वर्तनेन कलयती**ति कलनस्य कर्तृत्वमनुभवतीति [3]कलनं भवतीत्यर्थः । **स एव कल्यते** क्रियते कर्म भवतीत्यर्थः [4]पूर्वापरतया कार्यकारणभावात् । **तेन च [5]तस्मै चेत्यादि** तस्यैव कलनस्य शक्तिभेदात्, तेन क्रियत इति [6]करणता, तस्मै क्रियत इति सम्प्रदानता । [**आदि**]ग्रहणात् तस्मात् तस्मिन्निति अपादानाधिकरण[7]भावावपि ।

तस्यैवेदानीं कालस्य त्रिधा भिन्नस्याप्यभेदोपदर्शनार्थं ज्ञानेन क्रियया चैक्यमुच्यते—**एवमेव चे**त्यादि ज्ञानेन तावदेकत्वं दृश्यते यावदे**कत्र मेघादि**रिति । एवमेवेति यथैव कर्तृकर्मकरणादिशक्ति-भेदेऽप्यभिन्नः कालस्तथा **स वर्तमानातीतयोः कारणाव[8]स्थयोरेव** सप्तम्यन्तोऽयं निर्देशः **कार्याख्याभि-मुख्येन गृह्यते** कार्याङ्गीकरणेन तत्प्राधान्येन [9]तादात्म्येनेति यावत्, वर्तमानावस्थायां कार्याख्याभिमुख्येन अतीतावस्थायां चोत्तरावस्थाभिमुख्येन स एव कालो गृह्यते, किमुक्तं भवति ? कल्यते ज्ञायते । यथासङ्ख्य- १५५-२
मेकत्र पटादिरेकत्र मेघादिः, वर्तमाने पटादिरतीते मेघादिः । तद्यथा—पुरुषो हि पूर्वाह्णे पटं पश्यन्न-पराह्णेऽपि पट एवायं श्वोऽप्यपरेद्युरुत्तरेद्युरपि पट एवेति वर्तमानकालेऽपि पटमेष्यत्कालेऽपि पटमेव मन्यते । मेघे चोन्नतमात्रे वर्षति अयं 'ततः प्रलहीबीजमुत्पद्यते, मूलाङ्कुरादि भवति, ततः प्रलहीपोण्डम्, ततः कर्पासः, ततः सूत्रम्, ततः पटः' इत्यतीतकाल एव एष्यत्कालं पटं मन्यते इत्यतः कार्याख्याभिमुख्येन स एव कालोऽतीतो वर्तमानश्चाभेदेन गृह्यमाणो दृष्टस्तस्मादभिन्नः । एवं ज्ञानेनैक्यमापाद्य क्रिययाप्यैक्यमापा-दयति अतिदेशेन—**ग्रहणवच्च स एव क्रियते** । किं कारणम् ? **तथा वृत्तेः**, एवं हि वर्तनम्, सैव हि क्रिया यथा गृह्यते तथा क्रियतेऽप्यसावेवाभेदेनेति तत्कारकार्थं दर्शयति—**क्रियया कल्यत** इति । एवं तावदतीतवर्तमानयोः कारणयोः कार्याख्याभिमुख्येन ग्रहणकरणाभ्यामैक्यम्, **आख्या**शब्दः शब्दमात्रेणैव भेदात् । **तयोरप्यनागते,** तयोः कारणयोरप्यनागते कार्येऽतीतवर्तमानयोः **कारणाख्याभिमुख्येन**

---

१ **पटतया घटे समभवति** पा० डे० लीं० । **पटतया घटतया न भवति** वि० । **पटतया घव्योम भवति** रं० ही० । भा० प्रतौ तु इदं वाक्यमेव नास्ति ॥ २ कारकभेदेनापीत्यर्थः ॥ ३ **कलन** य० ॥ ४ **पूर्वपर°** प्र० ॥ ५ **तस्य चे°** प्र० ॥ ६ **करणकार**[क?]**ता** य० ॥ ७ **°णभावपि** प्र० ॥ ८ **°योरेवं** पा० रं० ही० भा० ॥ ९ **तद्रात्मनेनिति** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तयोरप्यनागते कारणाख्याभिमुख्येन कल्यमानता दृश्यते संयोगतन्त्वाद्युदकगर्भसर्जनपाचनादिवर्तनपटत्ववत् ।

अत एव च कलनमेव ह्येकं कार्यकारणवृत्तित्वेन विपरिवर्तितुं क्षममपुरुषकारमस्वभावमनियति संसारि अनादि । कालवृत्तेरेव पुरुषवाद्युक्तमुक्तिक्रमार्थतुरीयवचनादेव कालसामर्थ्यात् क्रमात्मलाभो घटते । मिथ्यादर्शनादिभिस्तत्प्रदोषनिह्नवादिभिश्च कर्मबन्धप्रक्रियोपपत्तेः संसारानादिता सन्तानाव्यवच्छेदाद्युज्यते । पुरुषवादिनः पुनः परमात्मनः शुद्धान्न युज्यते संसारो बन्धाभावात् । बन्धाभावः

कार्याख्याभिमुख्यकारणैक्यवद् [1]ग्रहणकरणयोः समाना **कल्यमानता दृश्यते**, ततोऽप्यैक्यमेव । तद्यथा—**संयोगतन्त्वाद्युदकगर्भसर्जनपाचनादिवर्तनप[2]टत्ववत्**, यथा तन्तूनां संयोगं दृष्ट्वा रुतकर्पासप्रलहीपोण्ड-
१५६-१ प्रलहीमूलाङ्कुरादिजलसर्जनपाचनधारणमेघकलनानि वृत्तानि तथा च [3]क्रियन्त इति तान्येव वर्तनानि पट इत्येष्यत्पट एव तथा तन्तुवायस्य ग्रहणकरणाभ्यां प्रवृत्तत्वाद् वर्तमानातीतपटता दृष्टा इत्यैक्यमेव ।

अत एव चेत्यादि । एतस्मादेव कारणाद् वर्तनस्याप्रतीघाताद् व्यापित्वाच्च कारणान्तरापेक्षा नास्ति, **कलनमेव ह्येक**मनन्यसाधनं स्वयमेव **कार्यकारणवृत्तित्वेन विपरिवर्तितुं क्षमम्**, **अपुरुषकारं** चेतनाचेतनेषु वृत्तेरभेदात्, **अस्वभावं** जीवाजीवात्म[5]कैपरिणतिक्रमविवृत्त्यजस्रत्वात्, **अनियति** तथान्यथाभाववि[6]परिवर्तवर्तनात्मकत्वादेव, **संसारि** रूपद्व्यणुकत्र्यणुकादिभूम्यम्बुव्रीह्याद्याहाररसरुधिरादिविपरि[7]वर्तनस्वभावान्तरसङ्क्रमणलक्षणत्वात् संसारस्य, अत **एवानादि**, अनादित्वेन दूरमपक्षिप्ता नियत्यादिकारणान्तरापेक्षा अनेन कलनेन । तस्मादनादित्वात् कालवृत्तिः, अस्या एव **कालवृत्तेरेव** केवलायाः कारणान्तरनिरपेक्षाया हेतोः यदप्युच्यते [8]पुरुषवादिना 'पुरुषक्रियात एव सर्वम्' इति तदस्मादेव कालाद् भवति न पुरुषकारात्, अनादीनां यौगप[9]द्यादादिमतां पौर्वापर्ययुक्तवृत्तित्वात् तयोश्च कालत्वात् किल तेनैव पुरुषवादिना कालस्य समर्थितत्वादित्यत आह—**पुरुषवाद्युक्तमुक्तिक्रमार्थतुरीयवचनादेव**, सुषुप्तावस्था विशुध्यन्ती सुप्तावस्था भवति, सुप्तावस्था च जाग्रदवस्था भवति, जाग्रदवस्था विशुद्धा सती तुरीया मुक्त्यवस्था भवतीति **कालसामर्थ्यात् क्रमात्मलाभो घटते**, तस्मात् सुषुप्तादेरवस्थाविशेषव्यवस्थानस्य अनादिकालप्रवृत्त्यात्मकत्वं
१५६-२ परमात्मनो वर्तनतत्त्वस्य अस्मन्मत एवमेव घटते, न पुरुषवादे, क्रमाक्रमविकल्पाभावात् । अन्यथा अवस्थाचतुष्टयस्य एकसर्वगतनित्याक्रमकारणात्मकस्य कतमावस्था प्रथमा द्वितीया तृतीया तुरीया चेति ? किञ्चान्यत्, वृत्तिक्रमापादितकार्यकारणावस्थयोः कार्यकारणभावोपपत्तेर्**मि[10]थ्यादर्शनादिभिः** सामान्यहेतुभिः **[11]तत्प्रदोषनिह्नवादिभिश्च** विशेषहेतुभिः **कर्मबन्धप्रक्रियोपपत्तेः संसारानादिता सन्तानाव्यवच्छे-**

---

१ ग्रहकरणयोः प्र० ॥ २ °पटवत् य० ॥ ३ कार्यंते य० ॥ ४ सप्तम्यन्तोऽयं निर्देशः ॥ ५ कंपरणति° य० ॥ ६ °रिवर्तनात्म° भा० ॥ ७ °वर्तनस्य भावा° प्र० ॥ ८ पुरुष एवादिना प्र० ॥ ९ °पद्यादिमतां प्र० ॥ १० "मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ।८।१।" इति तत्त्वार्थाधिगमसूत्रे ॥ ११ "कायवाङ्मनःकर्म योगः ।१। स आस्रवः ।२। शुभः पुण्यस्य ।३। अशुभः पापस्य ।४। तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ।११। दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनानि आत्मपरोभयस्थानि असद्वेद्यस्य ।१२। भूतव्रत्यनुकम्पा दानं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारणाभावादशरीरत्वादकरणत्वाच्च । प्रदोषाभावात् कर्माभावः .... संसारानादिता ।

नापि तस्य नियतेः संसारानादिता, अतत्त्वात् । यद् यदतत् तत् तन्न तन्नियति दृष्टम्, घटपटवत् । एवमेव तस्य स्वभावात् ।

तस्मात्त्वनादिवर्तनात्मकत्वात् कालस्य पृथिव्यादिव्रीह्यादिवृत्तिविवृत्तिप्रबन्ध-

---

दाद् युज्यते । पुरुषवादिनः पुनः परमात्मनः शुद्धात् कूटस्थादिनित्यात् कार्यकारणे द्वे अपि व्यतीतान्न **युज्यते संसारो बन्धाभावात्, बन्धाभावः [1]कारणाभावादशरीरत्वादकरणत्वाच्च,** 'च'शब्दात् सर्वगतत्वादेकत्वान्नित्यत्वाच्चेत्यादयोऽपि हेतवः, प्रदोषादिकारणाभा[2]वे **प्रदोषाभावात् कर्माभाव** इत्यादि गतार्थं यावत् **संसारानादिता ।**

अत्राह नियतिवादी – तस्य संसारस्यैव तथानियतेः संसारो भवति पुरुषपुद्गलयोरिति । अत्र ब्रूमः – **नापि तस्य नियतेः संसारानादिता,** कस्माद्धेतोः? **अतत्त्वात्,** तद्भावस्तत्त्वम्, न तत्त्वमतत्त्वम्, तस्मादतत्त्वात् तन्नियते[3]र्न भवति संसारः, अतत्त्वं [4]चास्य संसारस्य क्वचिदुपरमाभ्युपगमात्, स्वहेतोः साध्याविनाभावित्वोपप्रदर्शनार्थमाह – **यद् यदतत् तत् तन्न तन्नियति दृष्टम्,** यथा घटः पटनियतिर्न भवति पटोऽपि घटनियतिर्न भवति, तस्माद् **घटपटव**दतत्त्वान्नापि तस्य नियतेरिति साधूक्तम् । किञ्चान्यत्, **एवमेव तस्य स्वभावात् ।** यदि ब्रूयात् – तस्य स्वभावात् संसारानादितेति, एतच्च नापि तस्य स्वभावात्, अतत्त्वात् । अतत्त्वमस्य पूर्ववद् मुक्त्यवस्थाभ्युपगमात् सिद्धम् । यद्यदतत् तत् तन्न १५७-१
तत्स्वभावं घटपटवदिति । एवं तावदनादिसंसारिता नोपपद्यते नियत्यादिवादे कालमन्तरेणेत्युक्तम् ।

इदानीं कालवादे तदुपपत्तिरुपवर्ण्यते – **तस्मात् त्वनादिवर्तनात्मकत्वा**दित्यादि यावन्न **न युज्यत** इति । **तस्मा**दिति प्रस्तुतात् कालात् **संसारानादिता न न युज्यत** इति सम्भन्त्स्यते । **तु**शब्दो विशेषणे, कालवाद एवैतदुपपद्यतेऽनादिसंसारित्वम्, यौगपद्यपर्यायत्वादनादित्वस्य यौगपद्यस्य च कालप्र[5]भावाविनाभावित्वात् क[6]लनवृत्तिपर्यायत्वाच्च कालस्येति तत्प्रदर्शनार्थं हेतुमाह – **अनादिवर्तनात्मकत्वात् कालस्य,** कालो हि युगपदनादिवृत्त्यात्मकः । नन्विदं प्रागुक्तेन विरुद्धं पूर्वपरादिवृत्तेरयौगपद्यादिति चेत्, न, वर्तनस्य यौगपद्यात्, तद्यथा – **पृथिव्यादिव्रीह्यादिवृत्ती[7]**र्त्यादिर्द[8]ष्टान्तदण्डकः । यथा पृथिव्य-

---

सरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ।१३। केवलिश्रुतसङ्घधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ।१४। कषायोदयात् तीव्रात्मपरिणामश्चारित्रमोहस्य ।१५। बह्वारम्भपरिग्रहत्वं च नारकस्यायुषः ।१६। माया तैर्यग्योनस्य ।१७। अल्पारम्भपरिग्रहत्वं स्वभावमार्दवार्जवं च मानुषस्य ।१८। निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ।१९। सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ।२०। योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ।२१। विपरीतं शुभस्य ।२२। दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णं ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी सङ्घसाधुसमाधिर्वैयावृत्त्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकृत्त्वस्य ।२३। परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणाच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ।२४। तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ।२५। विघ्नकरणमन्तरायस्य ।२६।" इति तत्त्वार्थाधिगमसूत्रे षष्ठाध्याये ॥

१ करणा° भा० ॥ २ भावा य० ॥ ३ °यतिर्न प्र० ॥ ४ चास्य न भवति संसारस्य प्र० ॥ ५ °प्रभाविनाभावित्वात् य० । °प्रभावित्वात् भा० ॥ ६ कलनाव्° य० ॥ ७ °दिविवृत्ते° भा० ॥ ८ °दिदृष्टा° भा० वि० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वात्मविषयक्रियाबन्धसंसरणवज्जीवपुद्गलयोरभिन्नवर्तनस्वतत्त्वयोः स्वत एव बन्धक्रिया संसारक्रिया च वर्तनाभेदेन रूपभेदेन च कालस्यात्मस्वात्मन्येव क्रिया अनात्मस्वात्मनि वा युगपदेव बन्धसंसरणविहिता बन्धसंसारानादिता न न युज्यते ।

इत्यनादिवर्तनाप्रभेदपूर्वापरादिक्रमाद् भावान्तराणि क्रमेण प्राप्तानि भूम्यम्ब्वादियोगो बीजोद्भेदो मूलमङ्कुरः.........कुण्डकतन्दुलौदनः । जीवपुद्गलवृत्तिपरिवृत्तिभेदेन वर्तनैव आरम्भप्रवृत्तिनिष्ठाः । तदेव हि वर्तनं परिवृत्त्यपरिवृत्तिषु ।

म्बुवाय्वाकाशपुरुषादयो युगपत् समेता लोकाख्यां लभमाना अनादयः, त एव च व्रीहियवगोधूमचूतपनसादित्वेन स्त्रीपुरुषमहिषाजगवयगवादित्वेन च वर्तन्ते सहैव, भूम्यादिव्रीह्यादित्वेन तादृश्योर्वृत्तिविवृत्त्योरव्यवच्छेदेन **स्व**[१] एवात्मा **विषयो**ऽस्याः **क्रियायाः** सा तेषां व्रीह्यादिभूम्यादीनां **वृत्तिविवृत्तिप्रबन्धेन** आत्मस्वरूपविषया **क्रिया,** सैव च **बन्धः** स्निग्धरूक्षवृत्त्या[२] तेषां संश्लेषात्, अन्यान्यरूपापत्तिः[३] **संसरणम्**, तच्च अनादि युगपदुभयं बन्धनं संसरणं दृष्टम्, तथा **जीवपुद्गलयोरभिन्नवर्तनस्वतत्त्वयोः** स्वसाध्येभ्य एव साधनात्मभ्यः हेतुकार्यभूतेभ्यः कारणेभ्यः परस्परसंश्लेषवर्तनेभ्य[४] इव भूम्यादिव्रीह्यादीनां

१५७-२ हेतुभ्यः **स्वत एव बन्धक्रिया संसारक्रिया च वर्तनाभेदेन रूपभेदेन च**ेति दृष्टान्तप्रसिद्धार्थव्याख्यानम् । दार्ष्टान्तिकव्याख्यानं तु **कालस्यात्मस्वात्मन्येव क्रिया अनात्मस्वात्मनि वे**ति, कालस्य अभिन्नवर्तनस्वतत्त्वस्य भूम्यादिव्रीह्यादिबन्धसंसरणवदेव[५] आत्मस्वात्मनि जीवस्वरूपे क्रिया अनात्मस्वात्मनि पुद्गलस्वरूपे वा **युगपदेव बन्धसंसरणविहिता** कालकृतबन्धसंसारविहिता तत्कृता विधातुरन्यस्याभावात्, सैषा संसारिता युगपदभिन्नानादिवृत्त्यात्मिका जीवपुद्गलयोः परस्परं स्वात्मपरात्मवृत्तिकृत**बन्धसंसारानादिता न न युज्यते** विरोधाभावादित्यभिप्रायः । एवं तावद् यौगपद्यलिङ्गकालकृतसंसारानादिता ।

पूर्वपरादिलिङ्गकालकृतसंसारानादिताप्यस्मिन् दर्शने न विरुध्यत एवेत्यत आह – **इत्यनादिवर्तनाप्रभेदे**[६]त्यादि । **इति**शब्दार्थं इत्थमर्थे, इत्थमुपपादितानादितायाः[७] एव वर्तनायाः प्रभेदास्ते **पूर्वापरादिक्रमात्**[८], त एव **भावान्तराणि**[९] **क्रमेण प्राप्तानि** । कानि तानीति चेत्, **भूम्यम्ब्वादियोगो बीजोद्भेदो मूलमङ्कुर** इत्यादि गतार्थं यावत् **कुण्डकतन्दुलौदन**[१०] इति । ओदनादप्यभ्यवहृताद् रसादि यावत् कडेवरम्, कडेवराद् मृत्, मृदो मृत्पिण्डः, मृत्पिण्डाच्छिवकः, पुनर्यावद् भूम्यादित्वेन परमाणुद्व्यणुकादिसङ्घाताः, **जीवपुद्गलवृत्तिपरिवृत्तिभेदेन**[११] **वर्तनैव** आरभते प्रवर्तते नितिष्ठतीत्या**रम्भप्रवृत्तिनिष्ठाः** पुनर्विपरिणामोऽन्यरूपेणाविर्भावः स आरम्भः, प्रवर्तनं स्थितिः, निष्ठा तिरोधानम्, इत्येतदनुपरतं धर्मत्रयचक्रकमयुगपद्वृत्तावपि युगपद्वृत्तावपि, पूर्वाभिहितबन्धसंसरणवदुत्पत्तिस्थितिभङ्गा अपि वर्तनस्वात्मैव, **तदेव**

१५८-१ **हि वर्तनं परिवृत्त्यपरिवृत्तिषु**ित्यविरोधं कालकारणवादस्य दर्शयति । तत्प्रसिद्धिप्रदर्शनार्थमाह – **ननु**

---

१ **स्वत एवात्म** य० ॥ २ "स्निग्धरूक्षत्वाद् बन्धः" **तत्त्वार्थसू०** ५।३२ ॥ ३ **अन्योन्ये रूपा**° य० । **अन्येरूपा**° भा० ॥ ४ °**स्परं** भा० ॥ ५ °**दिवत्वसं**° प्र० ॥ ६ **इत्यादिनावर्तना**° य० ॥ ७ **इत्थमुपपादिताया एव** भा० । **इत्थमुपपादिता अनादिताया एव** य० ॥ ८ °**क्रमास् त एव** पा० डे० लीं० । (°क्रमास्त एव) ?॥ ९ **भवा**° प्र० ॥ १० अत्र 'कुण्डकतन्दुलौदनाः' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ११ °**परिवर्त्ति**° रं० ही० विना । °**परिवर्त्ति**° रं० ही० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ननु कृषीवलादिभिरपि पर्युपास्यते तथा तथा आविर्भूतश्चूताङ्कुरकालो न तावदाविर्भूत इति ।

तस्मादेव चावगमितद्रव्यक्षेत्रभावात्मनः सुषमादिभेदात्मकाद् भावभेदाः सम्भवन्ति कालस्य प्रभुविभुत्वाभ्याम् । एकसमायामपि संवत्सरवर्तनात् सुभिक्षदुर्भिक्षादिभावभेदाः......... एकमुहूर्तेऽपि लग्नवर्तनाद् भावभेदाः । तस्मादेव

कृषीवलादिभिरपि पर्युपास्यत इति, किं पुनर्विद्वद्भिरित्यर्थः, **तथा तथा** यथा यथासौ कालो व्यवतिष्ठते तथा तथा पुरुषः पर्युपास्ते, **आविर्भूतश्चूताङ्कुरकालो न तावदाविर्भूत** इत्याविर्भूतानाविर्भूतात्मा ।

तस्मादेव चेत्यादि । तस्मादेव च वर्तनालक्षणात् कालादवगमितद्रव्यक्षेत्रभावा आत्मानोऽस्य तस्मा**दवगमितद्रव्यक्षेत्रभावात्मन** अवगमितद्रव्यक्षेत्रभावात्मकादित्यर्थः । [1]प्राग् निमित्तं द्रव्यं भूम्यादिव्रीह्यादि, द्रव्यात्मा काल इति, घटो ग्रीवादय इति क्षेत्रम्, भावो रूपादयः, [2]न केचिद् युगपदात्मिकां वृत्तिप्रख्यातिं कालमन्तरेण इति कालत्वावगमनं वर्तत एव । [3]तस्माद्रव्याद्यात्मकात् [4]कालात् सुषमसुषमादिभ्य उत्सर्पिण्यवसर्पिण्याख्यकालभेदेभ्यः परमनिरुद्धसमयत्वेनाभिन्नादपि **[5]सुषमादिभेदात्मकाद् भावभेदाः सम्भवन्ति,** तद्यथा – सुषमसुषमायां सुषमायां सुषमदुष्षमायां चात्रैव भारते क्षेत्रे देवलोकवद् भवन्ति प्रतनुक्रोधमानमायालोभास्त्रिद्व्येकगव्यूतोच्छ्रितदेहास्त्रिद्व्येकपल्योपमजीविन्यो मिथुनधर्मिकाः प्रजा मण्यङ्गादिकल्पतरुकल्पितोपभोगविधयः, स्वादुसुरभिजला [6]चतुरङ्गुलहरिततृणा निम्नोन्नतवर्जिता सुरभिस्वादुरसा सुखस्पर्शादिगुणा भूमिरित्यादि । स एष पुनरनुभावः **कालस्य प्रभुविभुत्वाभ्याम्,** काल एव हि प्रभवति विभवति च सर्वभावभेदानामुत्पत्तिस्थितिप्रलयेष्वात्मप्रभेदमात्राणाम् । तथा [7]दुष्षमसुषमायां १५८-२
[8]सुखदुःखसमत्वाद् [9]भूयिष्ठसुखत्वाद् धर्माचार[10]भूयिष्ठत्वाच्च मनुष्यलोकवद् भावभेदाः । दुःषमायामाहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञाप्राचुर्यादधर्मकर्मोन्मार्गप्रस्थानभूयिष्ठत्वाच्च तिर्यग्लोकवत् । दुःषमदुःषमायां नरकलोकवद् दुःखैकरसत्वात् । तथा कृत-त्रेता-द्वापर-कलियुगसंज्ञाविभागेषु व्याख्याविकल्पमात्रभेदेषु युगेषु । किञ्चान्यत् – **एकसमायामपि** भावभेदास्तत्प्रभुविभुत्वाभ्यामेव, **संवत्सरवर्तनाद् सुभिक्षदुर्भिक्षादिभावभेदाः,** एवमुक्तानार्था भावभेदा नेया याव**देकमुहूर्तेऽपि लग्नवर्तनात्** नालिका-लवादिभेदेन च **भावभेदा** नेया यावत् परमनि[11]रुद्धे समयवर्तनेऽन्यस्मिन्न[12]न्यस्मिन्निति । एकस्मिन्नपि काल उत्पातादिवर्तनाद् भावभेद-

---

१ 'प्रागभिहितं द्रव्यं भूम्यादिव्रीह्यादि' इत्यपि पाठोऽत्र स्यादिति भाति ॥ २ दृश्यतां पृ० २०५ पं० २ ॥ ३ **एतस्माद्** भा० ॥ ४ **कालायुषमसुषमसुषमादिभ्य** पा० डे० लीं० ॥ ५ अत्र **सुषमसुषमादि**° इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ६ "विप्फुरिदपंचवण्णा सहावमउया य मधुररसजुत्ता । चउरंगुलपरिमाणा तणत्ति जाएदि सुरहिगंधड्ढा ॥३२२॥" इति **तिलोयपण्णत्ति**ग्रन्थे चतुर्थे महाधिकारे ॥ ७ **दुःषम**° य० ॥ ८ **सुखसमत्वाद्** भा० । **सुखमदुःखसमत्वाद्** य० ॥ ९ **भूयिष्ठसु**° पा० डे० लीं० रं० ही० । **भूयिष्ठासु**° वि० । **भूयिष्ट्यासु**° भा० ॥ १० °**भूयिष्यत्वाच्च** य० ॥ ११ °**रुद्धं** प्र० ॥ १२ °**न्यथास्मिन्निति** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुहूर्तजातानामपि पुरुषाणां तन्मात्रभेदप्रभेदस्वामिभृत्यादि । तस्यैव च व्यापित्वात् तथा तथा युगपदेव पश्यतामर्हतां प्रवचने कालज्ञानमवितथं दृश्यतेऽद्यतनेष्वपि केषुचित् पुरुषेषु । अतिसौक्ष्म्याच्चास्य तज्ज्ञानाभिमुखानां क्वचिद् वचनविसंवदनमपि । अत एव च साशङ्कमन्वाहुरन्ये—

कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥ [ ]

व्यभिचार इति चेत्, न, कालदोषाभावात्, उत्पातोपघातस्यापि कालकृतत्वात् कस्यचिद् भावस्य [1]व्याध्युपघातात् कालेऽपि शुनो मैथुनाभाववत् तस्य व्याधिकालमरणकालादीनां तथाभावात् ।

तस्मादेवेत्यादि । तस्मादेव आवलिकादिस्वरूपवर्तनभेदादेव **मुहूर्तजातानामपि पुरुषाणां तन्मात्र**[2]**भेदप्रभेदस्वामिभृत्यादि,** कश्चित् स्वामी कश्चिद् भृत्यो भवतीति जन्मकालभेदाद् भावभेदा अनुमातव्या धूमादग्निवत् । **आदि**ग्रहणात् सुरूप[3]दूरूपसुभगदुर्भगआज्ञाप्राज्ञादिभावभेदाः । **तस्यैव च व्यापित्वात्,** चशब्दात् प्रभविष्णुत्वाच्च, एवं हि कालकारणस्य प्रभुता व्यापिता च, यत एतद्वर्तनावर्त-
१५९-१ विपरिवर्तभेदप्रभेदास्**तथा तथा युगपदेव पश्यतां** विश्वदृश्वनाम**र्हतां प्रवचने कालज्ञानमवितथं** प्रमाणीभूतं तद्विषयं **दृश्यतेऽद्यतनेष्वपि केषुचित् पुरुषेषु** कलिबलमलीमसप्रज्ञेष्वपि । स्यान्मतम्—क्वचिद् विसंवदनदर्शनात् कालज्ञानाप्रामाण्यमिति, एतच्चायुक्तम्, **अतिसौक्ष्म्या**[4]**च्चास्य तज्ज्ञानाभिमुखानां क्वचिद् वचनविसंवदनमपि** प्रणिहितधियामपि पुंसां कचिज्ज्ञानविसंवादात्, कालसौक्ष्म्यं दुरुपलक्ष्यत्वात् कारणम्, छद्मस्थानां ज्ञेयानन्त्यादज्ञानबहुत्वाज्ज्ञानपरिमितत्वाच्च सर्वस्य सरागस्य ज्ञानादज्ञानं बहुलमिति । तथा च—

[5]केई णिमित्ता तहिया भवंति केसिं चं[6] तं विप्पडियति णाणं । [सूत्रकृताङ्ग. १२।१०]

अत एव[7] **च साशङ्कमन्वाहुरन्ये,** न विनिश्चितं प्रसह्य, यथा **कालः पचती**त्यादि, भूतानां वर्तनात्मकात् कालादन्यत्वाभ्युपगमादनन्यत्वेन कालवर्तनात्मकत्वेनैव न विनिश्चितम् । तथा प्रजानामन्यत्वे संहरणं सुप्तानां[8] जाग्रतां वा तदन्यत्वेन निर्देशादविनिश्चितत्वात् साशङ्कमेव भेददर्शनानुपातेनोक्तत्वात् ।

---

१ **व्यध्युपघा**° य० । **व्यत्युपघा**° भा० ॥ २ °**भेदप्रभवात्स्वामि**° भा० ॥ ३ °**दुरूप**° प्र० ॥ ४ °**क्ष्म्यात्स्य** य० ॥ ५ **केयं णिमित्ता तयिया** प्र० । "केई निमित्ता तहिया भवंति केसिंचि तं विप्पडिएति णाणं । ते विज्जभावं अणहिज्जमाणा आहंसु विज्जापरिमोक्खमेव ॥ १२।१० ॥ ननु व्यभिचार्यपि श्रुतमुपलभ्यते, तथा हि–चतुर्दशपूर्वविदामपि षट्स्थानपतितत्वमागम उद्घुष्यते, किं पुनरष्टाङ्गनिमित्तशास्त्रविदाम्? अत्र चाङ्गवर्जितानां निमित्तशास्त्राणामानुष्टुभेन छन्दसा अर्धत्रयोदश शतानि सूत्रम्, तावन्त्येव सहस्राणि वृत्तिः, तावत्प्रमाणलक्षा परिभाषेति । अङ्गस्य त्वर्धत्रयोदश सहस्राणि सूत्रम्, तत्परिमाणलक्षा वृत्तिः, अपरिमितं वार्तिकमिति । तदेवमष्टाङ्गनिमित्तवेदिनामपि परस्परतः षट्स्थानपतितत्वेन व्यभिचारित्वमत इदमाह—**केई**त्यादि, छान्दसत्वात् प्राकृतशैल्या वा लिङ्गव्यत्ययः, कानिचि**न्निमितानि तथ्यानि** सत्यानि **भवन्ति । केषाञ्चित्तु** निमित्तानां निमित्तवेदिनां वा बुद्धिवैकल्यात् तथाविधक्षयोपशमाभावेन **तद्** निमित्त**ज्ञानं** विपर्यासं **व्यत्ययमेति** ।" इति **शी**लाङ्काचार्यविरचितायां सूत्रकृताङ्गवृत्तौ ॥ ६ **च णं वि**° य० ॥ ७ **एव साश**° य० ॥ ८ **सुप्तानां जाता वा** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये पुनर्विनिश्चितधियस्त एवं वदन्ति—

काल एव हि भूतानि कालः संहारसम्भवौ ।
स्वपन्नपि स जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥

ननु तैः सर्वैः 'स्वभाव एव भवति' इति भाव्यते । यत् पुरुषादयो भवन्ति स तेषां भावः, तैर्भूयते यथास्वम् । तथा च स्वभावे सर्वस्वभवनात्मनि भवति

ये पुनर्विनिश्चितधियस्ते प्रसह्यैवं **वदन्ति,** तद्यथा—**काल एव हि भूतानि** भूतत्वेन कालस्यैव वर्तनात् । **कालः संहारसम्भवौ,** यथोक्तं प्राक् 'रूपादयो न केचित् कालमन्तरेण' इति भूम्यादिव्रीह्यादिवदात्मन्येव सम्भवसंहारक्रिये इति च बन्धसंसारौ इति वचनाच्च । **स्वपन्नपि जागर्ति,** स एव स्वपिति जागर्ति च, न तु स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यो वा व्यतिरिक्तः कश्चित् ते वा ततः, स्वप्रभेदक्रमसहवृत्तिमात्रत्वाज्जाग्रत्स्वपदवस्थयोः, सुप्तवृत्त्यानाविर्भूतात्मनस्तस्यैव कालस्य जाग्रद्वृत्त्याभिव्यक्तविक्रमत्वात् क्वचित् क्रमेण भेदवृत्तिविजृम्भितत्वात् सामान्यवर्तनस्य सुप्तविबुद्धादिस्वप्रभेदेषु अव्याघातादिति कालकारणवादो विधिविधिविकल्प एव समाप्तः ।

१५९-२

तद्विकल्प एव स्वभावभावोऽधुना—**ननु तैः सर्वै**रित्यादि । ज्ञः स्वतन्त्रश्च पुरुष एव भवतीति स्वातन्त्र्ये सत्यपि ज्ञाज्ञरूपारूपक्रियाऽक्रियादिनियमान्नियतिरेवेति सर्वत्र वर्तनतत्त्वः प्रभुविभुत्वाभ्यां काल एव भवतीति च एतैर्वादैर्ननु **स्वभाव एव भवतीति भाव्यते,** भवन् भाव्यते तैरेव प्रतिपाद्यते । किं कारणम् ? द्रव्यार्थप्रसवाद् **यत् पुरुषादयो भवन्ति स तेषां भावः,** यथा सर्वेभावाः स्वेन भावेन भवन्ति स तेषां भावः [पा० वा० ५।१।११९] इति वचनाद् येन भावेन यो भवति स तस्य भावस्तत्त्वमात्मीयो भावः स्वभाव इत्यनर्थान्तरम्, ततश्च तत्र ते भवन्तीति तदात्मानोऽभिसम्बध्यन्ते पुरुषादीनामात्मानो भवन्ति, **तैर्भूयते यथास्व**मिति भावेन तेषामभिसम्बन्धः । ते भवनस्य कर्तृत्वमनुभवन्ति ज्ञानस्वातन्त्र्य-नियम-वर्तनात्मकं तत् तदिति वदद्भिः स स स्वभाव एव परिगृहीतो भवति ।

एवं च स्वभावपरिग्रहे सति कारणान्तरपरिकल्पना व्यर्थेत्यत आह—**तथा च स्वभावे सर्वे**त्यादि यावत् **के ते? सर्व**भावानां पुरुषादीनां स्वं स्वं भवनमात्मा यस्य सोऽयं **सर्वस्वभवनात्मा,** तस्मिन् स्वभावे **भवति** भवनस्यानुभवितरि कर्तरि स्वतन्त्रे भवति भवतेर्वा कर्तरि सति **सिद्धे** स्वभावे

---

१ दृश्यतां पृ० २०५ पं० २ ॥ २ दृश्यतां पृ० २१६ पं० २ ॥ ३ °**स्थाया**: प्र० ॥ ४ **भाव्यते रेव प्र**° य०। **भाव्यते रैव प्र**° भा० ॥ ५ अत्र **यद्वा** इति पाठः समीचीनो भाति **पा**तञ्जलमहाभाष्यानुसारेण । "यद्वा सर्वे भावाः स्वेन भावेन भवन्ति स तेषां भावस्तदभिधाने [पा० वा०] । किमेभिस्त्रिभिर्भावग्रहणैः क्रियते ? एकेन शब्दः प्रतिनिर्दिश्यते, द्वाभ्यामर्थः । यद्वा सर्वे शब्दाः स्वेनार्थेन भवन्ति स तेषामर्थ इति तदभिधाने त्वतलौ भवत इति वक्तव्यम् ।" इति **पाणिनीयशब्दानुशासनस्य कात्यायनविरचितवार्तिकोपरि पातञ्जलमहाभाष्ये** पाठः ॥ ६ **येन येन** य० ॥ ७ **तदात्मनो**° प्र० ॥ ८ °**षादात्मानो** य० ॥ ९ **कर्तृमनु**° प्र० ॥ १० अत्र **सर्वभावस्व**° इत्यपि पाठः स्यात् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धेऽर्थान्तरनिरपेक्षे के ते? तेषामपि हि स्वत्वं स्वभावापादितमेव, अन्यथा ते त एव न स्युरनात्मत्वाद् घटपटवत्। एवमेव तत्र तत्र पुरुषादिस्वभावानतिक्रमात् सर्वैकत्वमभिन्नं तद्भाववत्त्वादेव वर्ण्यते इति स्वभावः प्रकृतिरशेषस्य।

पुरुषादीनां च स्वत्वे सत्त्वानपोहात् तुल्ये काल एव भवनात्मा न पुरुषादय इति न स्वभावादृते सिध्यति।

सिद्धस्यासाध्यत्वात् सिद्धौदनवद**र्थान्तरनिरपेक्षे** तैरेव वादैः प्रतिपादिते **के ते** पुरुषादयः? न ते भवन्तीत्यर्थः, किं तैर्विना स्वभावस्य न प्रतिप्राप्तं कार्यम्?। स्यान्मतम्—तेषां स्वो भाव आत्मीयः स्वभाव इति तानपेक्षत इति, एतच्चायुक्तम्, यस्मात् **तेषामपि स्वत्वं स्वभावापादितमेव,** ते ह्यात्मानः स्वे, तद्भावः स्वत्वम्, तद्धि तेषां स्वत्वं पुरुषादीनां केनापादितम्? स्वात्मभिरेव। यद्येवं स्वः स्वो भावः स्वभावः
१६०-१ [1]परस्परविविक्तः स्वभाव एवेत्यापादितं स्वात्मभिरेव तत्। **अन्यथा** यदि तदात्मत्वं तेषामात्मभि[2]र्वापादितमेव न स्यात् ततस्ते **त एव न स्युरनात्मत्वाद् घटपटवत्,** यथा घटः पटानात्मत्वात् पटो न भवति पटोऽपि घटानात्मत्वाद् घटो न भवति एवं पुरुषादयोऽप्यात्मानात्मत्वादात्मानो न स्युः, न स्युरेव वा अनात्मत्वात् खपुष्पवत्। [3]तस्य स्वभावकारणत्वस्य व्याप्तिप्रदर्शनार्थमाह—**एवमेवे**त्यादि, इत्थमेवैतत्, अवश्यमे[4]त्रेव **तत्र तत्र** यथात्र स्वभाववा[5]दे स्वभावानतिक्रमात् स्वभाव एवेत्यभिन्नं स्वभावव्यतिरिक्तार्थाभावात् तस्य चाभिन्नत्वात् तथा तत्र तत्र पुरुषनियतिकालादिवादेषूक्तविधिना **पुरुषादिस्वभावानतिक्रमात् सर्वैकत्वमभिन्नं तद्भाववत्त्वादेव वर्ण्यते,** ज्ञात्मभवनस्य नियमात्मभवनस्य वर्तनात्मभवनस्यान्यस्य [6]वा तस्य तस्य स्वभावादेव वर्णनात्। **इति**शब्दो हेत्वर्थे, अस्मादुक्तहेतोः **स्वभावः प्रकृतिरशेषस्य** योनिर्बीजं प्रभवः कारणमित्यर्थः।

किञ्चान्यत्, **पुरुषादीनां च स्वत्व** इत्यादि, द्रव्यार्थस्य कञ्चिदपरित्यज्य वृत्तेर्नयानां पूर्वविरोधित्वादुत्तरानुवृत्तेश्च कालस्य पुरुषाद्यपरित्यागेन वृत्तिं तावद् दर्शयति, कालवादे पुरुषादीनां स्वत्वं स[7]त्त्वानपोहात्, कथं सत्त्वमनपोढम्? संसार्यनादित्वाभ्युपगमात् [8]पुरुषत्वम्। तस्मिन्नेव काले नियतेरप्यात्मत्वं सत्त्वानपोहात्, सत्त्वानपोहश्च युगपदयुगपन्नियतार्थाभ्युपगमात्। एवं कालवादे नियतिपुरुषयोः सत्त्वाभ्युपगमः। तथा पुरुषवादे नियतेः कालस्य चात्मत्वं सत्त्वानपोहात्, कथं सत्त्वानपोहः? मुक्तिक्रमाभ्यु-
१६०-२ पगमात् कालसत्त्वान[9]पोहः, अवस्थानियमाभ्युपगमान्नियतिसत्त्वानपोह इत्यादि। एवं नियतिवादे कालपुरुषयोः स्वत्वमात्मत्वं सत्त्वानपोहात्, कालसत्त्वानपोहः '[10]अनादिमध्यान्तां नियतिम्' इति कालसत्त्वाभ्युपगमात् तां संप्रपश्यन् सर्वज्ञ इति पुरुषसत्त्वाभ्युपगमात्। एष द्रव्यार्थस्य सर्वत्र सर्वसत्त्वात् स्वभाव इत्युद्ग्राहः कृतो भवति, तत्र **सत्त्वानपोहात्** [11]स**त्त्वे तुल्ये काल एव भवनात्मा न पुरुषादय इति न**

---

१ परवि° भा० ॥ २ °भावादि° प्र० ॥ ३ **षस्य** पा० डे० लीं० वि० । **षस्य** भा० । **परस्य** रं० ही० ॥ ४ °**मत्रैव** प्र० ॥ ५ °**वादे व स्व**° य० ॥ ६ **च तस्य** य० ॥ ७ **सतत्वान** प्र० ॥ ८ 'पुरुषस्वत्वम्' इत्यपि पाठोऽत्र स्यात् ॥ ९ °**नपोहात्** य० ॥ १० दृश्यतां पृ० २०४ पं० २ ॥ ११ अत्र **स्वत्वे** इत्यपि पाठः स्यात् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न, अतुल्यत्वात् सत्त्वस्य, कालस्यैवैकस्य व्रीहिवत् तथा तथा भवनात् पुरुषादेश्च पृथक् पृथग्भिन्नभावात्मकभवनात् । नन्वेवमपि 'कालस्यैव नान्यस्य' इति स्वभाव एव परिगृहीतो भवति, तथा च पुरुषादीनां कारणकार्यनियमात् ।

कालस्यैव तत्त्वात् कारणकार्यविभागाभावात् सामान्यविशेषव्यवहाराभाव एवेति चेत्, एवमपि स एव स्वभावः। पूर्वादिव्यवहारलब्धकालाभावश्चैवम्, अपूर्वा-

---

स्वभावादृते सिध्यति तत्स्वतत्त्वस्य सत्त्वाविनाभावात्, कालोदाहरणं तु कालवादिदूषितपुरुषादिवादानामपि तद्दूषणेन दूष्यत्वात् तत्प्रतिपादनवत् प्रतिपाद्यत्वाच्च । यथोक्तम्—

समनन्तरानुलोमाः पूर्वविरुद्धा [1]निवृत्तनिरनुशयाः । [ ] इति ।

कालवाद्याह—**न, अतुल्यत्वात् सत्त्वस्य,** कालसत्त्वपुरुषसत्त्वयोरन्योन्येनातुल्यत्वात् । कथमतुल्यता ? **कालस्यैवैकस्य व्रीहिवत्तथा तथा भवनात् पुरुषादेश्च पृथक् पृथग्भिन्नभावात्मकभवनात्,** यथा व्रीहिरेवैको मूलाङ्कुरादिभावेन भवति तथा काल एव तथा तथा वर्तनात्मा भवति व्रीहिवद् मूलाङ्कुरादि[2]त्वेन, न तथा पुरुषादयो भिन्नात्मभवनादिति । अत्रोच्यते—**नन्वेवमपि कालस्यैव नान्यस्येति** 'कालस्यैव भवनं न पुरुषादेः' इति वचनात् सुतरां कालस्यासौ भवनात्मेति **स्वभाव एव परिगृहीतो भवति ।** यथा च त्वयोच्यते सत्त्वातुल्यता कालस्यैव व्रीह्यादिवदङ्कुरादिवच्च पुरुषादीनां भवनमिति **तथा च पुरुषादीनां कारणकार्यनियमा**दपि चैवंस्वभावः कालः कारणं व्रीह्यादिवत्, कार्यं पुरुषादयोऽङ्कुरादिवत्, नियमात्[3] स स तस्य स्वभाव इति स एव स्वभावः परिगृह्यते परैः । पूर्वत्र सत्त्वस्य हेतुत्वेन १६१-१ विवक्षितस्य स[4]त्त्वाविनाभावित्वेन भावना, इह सिद्धस्यैव स्वभेदेष्वभेदेन व्यवस्थितस्य सामान्यविशेषव्यवहारप्रसिद्धिभावनेति विशेषः ।

कालस्यैव तत्त्वादित्यादि यावद्**भाव एवेति चेत् ।** स्यान्मतं भवतः—त्रैकाल्यैककूटस्थत्वात् कालस्यैव तत्त्वात् कालवादे 'कारणं कार्यम्' इति विभागाभावादसौ **सामान्यविशेषव्यवहाराभाव एव,** मिथ्यात्वाच्चास्य व्यवहारस्यासद्विषयत्वादिति चेत्, **एवमपि स एव स्वभावः** भवतीति वाक्यशेषः, कालस्यैव हि स स्वभावो यदसौ भवतीति स्वभावपरिग्रहः । किञ्चान्यत्, व्यवहारप्रत्याख्याने प्रागभिहितकालास्तित्वानुमानप्रत्याख्यानदोषः, तद्यथा—**पूर्वादिव्यवहारलब्धकालाभावश्चैवमपूर्वादित्वान्नियतिवत् ।** यथा पूर्वपरादिकारणकार्यव्यवहाराभावाद् नियतिर्नास्तीत्युच्यते तथा कालोऽपि तदभावान्नास्तीति प्राप्तम् । यदपि च कालानुमानं युगपदयुगपद्वृत्त्या घटरूपादीनां व्रीह्यङ्कुरादीनां चोच्यते तदपि स्वभावानुमानमेव सम्पद्यते, यस्माद् **युगपदयुगपदि**त्यादि, 'युगपद्वर्तनात् क्रमवर्तनाच्चातिरिक्तस्य कस्यचिदभावात् काल एव' इत्युद्दिश्य निर्देशार्थं घटरूपादि व्रीह्यङ्कुरादि चोदाहृतं तस्योद्देश्यस्य निर्देश्यस्य च भावस्य तेन तेनात्मना भवतो भवनादेव तु[5] विशेषेणैव स्वभावोऽभ्युपग[6]त इति दर्शनार्थम् ।

---

१ निवृत्तिनिर° य० ॥ २ °दित्वेन तथा य० ॥ ३ °मात्म(मात् ?) स तस्य प्र० ॥ ४ स(स्व ?)त्त्वावि° प्र० ॥ ५ तुर्विशेषणैव भा० । अत्र 'तुर्विशेषणे, विशेषेणैव' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ६ °गम प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दित्वात्, नियतिवत्। युगपदयुगपद् घटरूपादीनां व्रीह्यङ्कुरादीनां च तथा तथा भवनादेव तु स्वभावोऽभ्युपगतः।

तथा च दृश्यते तेष्वेव तुल्येषु भूम्यम्ब्वादिषु भिन्नात्मभावं प्रत्यक्षत एव कण्टकादि। तदेव तीक्ष्णादिभूतम्, न पुष्पादि तादृग्गुणम्। तच्च वृक्षादीनामेव। तथा मयूराण्डक.........मयूरादिबर्हाण्येव विचित्राणि। अन्वाह च—

कः कण्टकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं विचित्रभावं मृगपक्षिणां च।
स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं न कामचारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः॥
केनाञ्जितानि नयनानि मृगाङ्गनानां को वा करोति रुचिराङ्गरुहान् मयूरान्।
कश्चोत्पलेषु दलसन्निचयं करोति को वा करोति विनयं कुलजेषु पुंसु॥ [ ]

यदि स्वभाव एव कारणं किं न स्वभावमात्रादेव भूम्यादिद्रव्यविनिर्वृत्तिनिरपेक्षा कण्टकाद्युत्पत्तिर्भवेत्? किमन्यथापि न स्यात्? कण्टकः किमर्थं विध्यति?

अथवा नैतद् युक्तिगम्यं स्वभावकारण्यम्, **तथा च दृश्यते तेष्वेव तुल्येषु भूम्यम्ब्वादिषु** हेतुषु **भिन्नात्मभावं प्रत्यक्षत एव कण्टकादि,** कण्टकस्य मूलतः क्रमहीनतनुरायता, **आदि**ग्रहणात्
१६१-२ पत्राङ्कुरादि संस्थानवर्णादि भिन्नात्मभावम्। पुनस्त**देव** कण्टकादि **तीक्ष्णादिभूतम्** तीक्ष्णं तीक्ष्णतरं कुण्ठं कुण्ठतरं सविषं निर्विषमित्यादि, **न पुष्पादि तादृग्गुणं** सुकुमारादिस्वभावं सुरभिदुर्गन्धादिस्वभावं च। **तच्च वृक्षादीनामेव,** तच्च कण्टकादि वृक्ष-वल्ली-क्षुपादीनामेव, तत्रापि बर्बलादीनामेव न न्यग्रोधादीनाम्[3]। न चैषा मयूरचन्द्रकादिता वृक्षादीनाम्, न च बर्हिणपारापतादीनां कण्टकादि। **तथा मयूराण्डके**त्यादि यावद् **विचित्राणि,** बर्हादीनामेव पञ्चवर्णता नोदकादीनाम्, तान्यपि च **मयूरादिबर्हाण्येव विचित्राणि** न शुकादिबर्हाणीति। **अन्वाह चे**ति पूर्ववज्जिनवचनानुसारेणैव। **कः कण्टकाना**मित्यादि **केनाञ्जितानी**त्यादि च गतार्थे वृत्ते।

इतर आह—**यदि स्वभाव एव कारण**मित्यादि यावत् **किञ्चिच्च ने**ति। अर्थान्तरव्यपेक्षोत्पत्तिदर्शनान्न स्वभाव एव कारणम्, आस्ये कवलप्रक्षेपवत्। दृष्टा च कण्टकादेरुत्पत्तिर्भूम्यादिद्रव्यविनिर्वृत्तिव्यपेक्षैवानपह्नवनीया। सा च न स्याद् भूम्यादिद्रव्यनिर्वृत्तिव्यपेक्षोत्पत्तिः स्वभावादेव, स्वभावस्यार्थान्तरनिरपेक्षकारणत्वात्। यदि च स्वभाव एव कारणं **किं** कारणं **न स्वभावमात्रादेव भूम्यादिद्रव्यविनिर्वृत्तिनिरपेक्षा कण्टकाद्युत्पत्तिर्भवेत्?** किं च कारणम**न्यथापि न स्यात्?** भूम्याद्यन्तरेण निर्वृत्तिः कण्टकस्य किं न स्यात्? किं वा कण्टकस्य सौकुमार्यं कुसुमस्य वा तैक्ष्ण्यं न स्यात्? सोऽपि **कण्टकः किमर्थं**

---

१ दृश्यतां पृ० १९१ पं० २२॥ २ "वृक्षो महीरुहः शाखी......।४।५।......ह्रस्वशाखाशिफः क्षुपः।४।८।...... वल्ली तु व्रततिर्लता......।४।९।" इति अमरकोशे॥ ३ **एतच्चिह्नान्तर्गतो °**नाम्** इत्यत आरभ्य **बर्हादी**° इत्यन्तः पाठो भा० प्रतौ नास्ति॥ ४ °**कादीना वृ**° वि० विना। °**कादीनां वृ**° वि०॥ ५ **मयूरांगके**° प्र०। 'तथा मयूराण्डकरसादुत्पन्नत्वे समानेऽपि बर्हादीनामेव पञ्चवर्णता, मयूरादिबर्हाण्येव च विचित्राणि' इत्यर्थकं मूलमत्र सम्भाव्यते॥ ६ **वैचित्र्याणि** वि० रे० ही०॥ ७ **नान्यदपि च** प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किमर्थं च कदाचिद् विध्यति? किमर्थं किञ्चिदेव विध्यति किञ्चिच न? ननूत्पातादिस्वभावनियमवशादनपेक्षितद्रव्यकालादिरपि दृष्टैव कण्टकाद्युत्पत्तिः। अपि च भूम्यादिद्रव्यविनिर्वृत्त्यपेक्षैव कण्टकनिर्वृत्तिरिति ब्रुवता स्वभावसिद्धिस्त्वयैव वर्ण्यते, भूम्यादिभ्य एव कण्टको भवतीति तत्स्वभाववर्णनात्।

यथा पृथिव्यादिस्वभावो विश्वथा कण्टकादिरेवं निमित्तानामपि निमित्तता

विध्यति? कुसुमं किं न विध्यति? **किमर्थं च कदाचिद् विध्यती**ति, तीक्ष्णोऽपि [1]वेधस्वभावोऽपि सर्वकालं किं न विध्यति कण्टकः? **किमर्थं किञ्चिदेव विध्यति**, न सर्वम्? [2]तदपि किं[3] कचिदेव प्रदेशे विध्यति न सर्वत्र? इत्यत्र विशेषहेतुर्वाच्यः। दृष्टश्चायं नियमोऽर्थान्तरापेक्षः, स तु स्वभावस्यार्थान्तरनिर- १६२-१ पेक्षत्वान्नोपपद्यते इति।

अत्रोच्यते—**ननूत्पातादिस्वभावे**त्यादि यावद् **दृष्टैव**। यदुच्यते 'भूम्यादिद्रव्यविनिर्वृत्त्यपेक्षैवो-[4]त्पत्तिर्दृष्टा' इत्येतत्तदुपेक्षोत्पत्तिदर्शनात् [5]स्वभावाव्यभिचाराच्च स्वभाव एवेति मन्तव्यम्। तद्यथा—उत्पातादिषु अकण्टकानां वृक्षादीनां कण्टकाः कण्टकिनां चाकण्टका निध्यादिलिङ्गत्वेन दृष्टाः। यथोक्तम्—

अकण्टकाः कण्टकिनः कण्टकाश्चाप्यकण्टकाः।
विपर्ययेण दृश्यन्ते वदन्ति निधिलक्षणम्॥ [ ] इति।

इत्थं सत्यामपि भूम्यादिद्रव्यनिर्वृत्तौ कण्टकाभावादसत्यामपि एतद्द्रव्यकालादिनिर्वृत्तौ कण्टकदर्शनाच्च नापेक्षास्ति स्वभावस्य। किन्तु **उत्पातादिस्वभावनियमवशादनपेक्षितद्रव्यकालादिरपि दृष्टैव कण्टकाद्युत्पत्तिः**, न पुनस्तं तं स्वभावमन्तरेण सा उत्पत्तिरस्तीति स्वभाव एवाव्यभिचाराद् व्यापित्वाच्च कारणमेषितव्यम्। किञ्चान्यत्, **अपि चे**त्यादि। अपि च त्वया **भूम्यादिद्रव्यविनिर्वृत्त्यपेक्षैव** भूम्यादीन्येव [6]वृक्षत्वेन कण्टकद्रव्यत्वेन तैक्ष्ण्यादित्वेन च निर्वर्तन्ते, तत्समायोगनिर्वृत्त्यपेक्षा **कण्टकनिर्वृत्तिरिति ब्रुवता** ननु सैव **स्वभावसिद्धिस्त्वयैव वर्ण्यते**। किं कारणम्? **भूम्यादिभ्य एव** भूम्यम्बुक्षेत्रबीजाङ्कुरादिद्रव्यनिर्वृत्तिभ्य एव **कण्टको भवतीति तत्स्वभाववर्णनात्**, अन्यथा स्वभावात् किमन्यदत्र शक्यं वक्तुं कारणम्? भूम्यम्बुक्षेत्रबीजाङ्कुरादिभ्य एव कण्टको भवति न मृत्पिण्डादिभ्य इत्येव तेषां स्वभाव इति स्वभावस्यैव समर्थनं तदपि तेषां तत्तत्स्वाभाव्यात्।

किञ्चान्यत्, **यथा पृथिव्यादी**त्यादि याव**न्निमित्तानामपि निमित्तता स्वाभाविकी**ति। यथैवायं १६२-२ **विश्वथा** सर्वथानेकप्रकारं बीजाङ्कुरादिक्रमनिर्वृत्तेः[7] कण्टकादिः पृथिव्यादिस्वभावः[8] पुरुषप्रयत्ननिरपेक्षोऽप्रयत्नत[9] एव भवति, अथवा पृथिव्यादीनामेव प्रागभिहितन्यायेन वृक्षवटादिस्वभावाभ्युपगमाद् यथा स्वभाव एव **एवं निमित्तानामपि** घटपटाद्युत्पत्तौ पुरुषकारसाध्याभिमतायां मृत्पिण्डदण्डचक्रसूत्रोदककुलालादिनिमित्तानां **निमित्तता** सापि **स्वाभाविकी**, ततो न स्वभावव्यतिरिक्तं किञ्चित्। एवं च सर्वस्य स्वाभा-

---

१ **व्यवस्व°** य० । **व्यवहृस्व°** भा० ॥ २ **तमपि** प्र० ॥ ३ **किंचित्कचिदेव** य० ॥ ४ **°पेक्षोवोत्प°** भा० वि० विना। **°पेक्षोचोत्प°** भा० ॥ ५ **स्वभावव्य°** प्र० ॥ ६ **वृक्षत्वे कण्ट°** प्र० ॥ ७ **°त्तिः कंटकादि** य० ॥ ८ भा० विनान्यत्र **°दिश्वभावः** पा० । **°दिश्वभावः** डे० लीं० वि० रं० ही० ॥ ९ **°त्नक एव** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वाभाविकी, तत्र कुत उत्पत्तिरपि? प्रतिवस्तु स्वभाव एवायं वयःक्षीरादिवत्। यदि चासौ न स्यात् तत उत्तरत्रापि न भवेदेव अभूतत्वाद् वन्ध्यापुत्रवत्। एवं मृदादिषु वि[1]द्यमानानां घटादीनां निमित्तापेक्षस्वभावैवोत्पत्तिः, नाकाशादिषु।

दृष्टा घटादीनां क्रियाया उत्पत्तिरिति चेत्, न, प्रागनभिव्यक्तेः। सा सति अग्रहणनिमित्ताभावे किमिति चेत्, स्वभावादेव अतिसन्निकृष्टमतिविप्रकृष्टं वा

विक[2]ल्वेन **तत्र कुत उत्पत्तिरपि?** या प्रागुक्ता त्वया भूम्यादिद्रव्यविनिर्वृत्त्यपेक्षैवोत्पत्तिरिति सा कुतः? नास्त्येव कारणम्, त[3]स्मान्नास्ति सा, प्रागेवाभिव्यक्तये विरचितलीनावस्थत्वात्। तस्मात् सोत्पत्तिः **प्रतिवस्तु स्वभाव एवायम्,** वस्तु वस्तु प्रतिवस्तु स्वो हि भावः स्वभाव इति निरुक्त्या प्रतिवस्तु आत्मीयं भावमाचष्टे। **वयःक्षीरादिव**दिति दृष्टान्तः, यथा बाल्यकौमारादिवयोऽवस्थाः पूर्वविरचिता एव आविर्भवन्ति यथा क्षीरदध्युदश्विन्नवनीतघृताद्यवस्थास्तथा घटादयो निमित्तस्वभावा[4]पेक्षाभिव्यङ्ग्यविरचितस्वभावा आविर्भवन्ति। **यदि चा[5]सा**वित्यादि यावद् **वन्ध्यापुत्रवत्। यदि चा**सावुत्पत्तिस्वभावोऽस्मदभिहितो **न स्या**दित्थं पूर्वावस्थायामेव **तत उत्तरत्रापि न भवेदेव अभूतत्वाद् वन्ध्यासुतवत्।** अस्यैवार्थस्य भावनार्थमाह — **एवं मृदादिष्वि**त्यादि गतार्थं याव**न्नाकाशादिषु।**

दृष्टा घटादीनां क्रियाया उत्पत्तिरिति चेत्। स्यान्मतम् — दृष्टविरुद्धमुक्तं त्वया विद्यमानानां **घटादीनां निमित्तापेक्षस्वभावैवोत्पत्तिरिति, क्रियाया एव** कुलालस्य घटादेरर्थस्योत्पत्तेर्दर्शनादिति। एतच्च
१६३-१ **न, प्रागनभिव्यक्तेः,** क्रियायाः प्राक् सोत्पत्तिरनभिव्यक्ता अपवरकघटवत् प्रदीपेनेव क्रिययाभिव्यज्यते नोत्पाद्यत इत्यदोषः। **सा सति अग्रहणनिमित्ताभावे किमिति चेत्,** सा सति अर्थेऽनभिव्यक्तिरग्रहणनिमित्ताना[6]मत्यासन्नविप्रकृष्टव्यवहितसमानाभिहाराभिभवसौक्ष्म्येन्द्रियदौर्बल्यमनोवैयग्र्यपित्तोपघातादीनामभावे सति किमर्थं भवतीति चेन्मन्यसे, वयमत्र ब्रूमः — **स्वभावादेवे**त्यादि याव**च्चक्षुरादिना न गृह्यते।**

---

१ दृश्यतां पं० १४॥ २ °**कल्वे तत्र** भा०॥ ३ **तस्यास्तस्मान्नास्ति** भा०। अत्र 'नास्त्येव कारणं तस्याः, तस्मान्नास्ति' इत्यपि पाठः स्यात्॥ ४ °**पेक्ष्यभिव्यंग**° भा०। °**पेक्ष्याभिव्यंग्य**° पा० डे० लीं० रं० ही०॥ ५ **वासा**° प्र०॥
६ "अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघाताद् मनोऽनवस्थानात्। सौक्ष्म्याद्व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च॥ ७॥ इह सतोऽर्थस्यातिदूरादनुपलब्धिर्दृष्टा यथा विप्रकृष्टेऽध्वनि वर्तमानः शकुनिर्नोपलभ्यते। न च यस्मान्नोपलभ्यते किमसौ नास्तीति? अतिदूरान्नोपलभ्यते। अत्राह—यन्नातिदूरे तत् कस्मान्नोपलभ्यते? अत्रोच्यते—सामीप्यात्, यदा देवदत्त आत्मचक्षुःस्थमञ्जनं नोपलभते किं तन्नास्ति? अत्राह—यन्नातिदूरे नातिसामीप्ये तत् कथं नोपलभ्यते? अत्रोच्यते—इन्द्रियघातात्, यथा बधिरः शब्दं न शृणोति अन्धो रूपं न पश्यति, किं ते शब्दरूपे न स्तः? अत्राह—यस्य अनुपहतमिन्द्रियं स कस्मान्नोपलभत इति? अत्राह—मनोऽनवस्थानात्, अनवस्थितमना हस्तिनं परिक्रामन्तं न पश्यति, अस्ति चासौ, वक्तारो भवन्ति – व्यग्रमनसा नावधारितमिति। यस्याव्यग्रं मनः'''स कस्मान्नोपलभते? अत्रोच्यते — सौक्ष्म्यात्, धूमोष्णनीहारा आकाशगता नोपलभ्यन्ते, किं ते न सन्तीति? अत्राह—ये नातिसूक्ष्मास्ते कस्मान्नोपलभ्यन्ते? अत्रोच्यते — व्यवधानात्, कुड्येन घटादयो व्यवहिताः। ये चाव्यवहिताः ते कस्मान्नोपलभ्यन्ते? अभिभवात्, यथा आदित्यप्रकाशेन ग्रहनक्षत्रचन्द्रताराणां प्रकाशा अभिभूतत्वाद् नोपलभ्यन्ते, किं ते न सन्तीति? अत्राह—ये नाभिभूतास्ते कस्मान्नोपलभ्यन्त इति? अत्राह—समानाभिहाराच्च, समानाः सदृशा इत्यर्थः, तेषां समभिहारो राशिः, तस्मात्''''''एवं सतामर्थानां अष्टविधानुपलब्धिः।" **जे० साङ्ख्यका०** A। "**अत्राह**—ये नाभिभूतास्ते कस्मान्नोपलभ्यन्ते? अत्रोच्यते—समानाभिहाराच्च, समानाः सदृशा इत्यर्थः, यथा माषराशौ माषाः प्रक्षिप्ता मुद्गराशौ मुद्गा कपोतगणमध्यगो वा कपोतः। किं ते माषादयो न सन्ति? समानाभिहारान्नोपलभ्यते। तदेवं सतामप्यर्थानामष्टविधा ह्यनुपलब्धिः।" **जे० साङ्ख्यका०** B ७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अञ्जनमन्दरादि चक्षुरादिना न गृह्यते, यथा स स्वभावस्तथायमपि । तथा किञ्चिदत्यन्तानुपलब्धिस्वभावमेव भवति आत्मादि । तन्न पुरुषकामचारप्रयत्नादिभ्यः किञ्चिदपि निर्वर्तते । तत्र कुतः कस्यचिदर्थिनोऽप्येवं वा विपर्यय एव वारम्भक्रियानिर्वृत्तयः ? तथा चाहुः —

[5]कटुकः कटुकः पाके वीर्योष्णश्चित्रको मतः ।
तद्वद् दन्ती, प्रभावात्तु विरेचयति सा नरम् ॥ [चरकसं० १।२६।६८]

---

[1]न त्वस्माभिरेव तद् वक्तव्यम् — **स्वभावादेव**, अग्रहणहेतुषु असत्स्वपि सतोऽर्थस्यानभिव्यक्तौ स्वभाव एव कारणमिति । कस्मात् ? त्वयैवाभ्युपगतत्वात्, 'अतिसन्निकृष्टमतिविप्रकृष्टं व्यवहितं वा चक्षुरिन्द्रियं रूपमञ्जनमन्दरादि न गृह्णात्यत्यन्तम्' इत्यत्र केन त्वया एतत् कारणेन प्रतिपन्नम् ? इति पृष्टेनावश्यं स्वभावादिति वक्तव्यम्, अयं हि चक्षुषः स्वभावो यदतिसन्निकृष्टमञ्जनादि न पश्यति अतिविप्रकृष्टं वा मेर्वादीति शेषेन्द्रियाणामपि स्वभावादेवातिविप्रकृष्टाद्यग्रहणं स्वविषयनियमश्चेति । किञ्चान्यत्, **यथा स स्वभावस्तथायमपि**, यथा चक्षुरादीन्द्रियाणामा[2]त्मनोऽत्यन्तमतिसन्निकृष्टाद्यग्रहणं स्वभावस्तथानभिव्यक्ताग्रहणं स्वभाव इति किं न गृह्यते ?

१६३-२

किञ्चान्यत्, यथैतत् **तथा किञ्चिदत्यन्तानुपलब्धिस्वभावमेव भवति आत्मादि**, आत्माकाशकालदिगादयः कार्यत एव नित्यमनुमेयाः पदार्थाः सौक्ष्म्याद् बाह्येन्द्रियाविषयास्तत्स्वभावाः । तत्र नास्त्यात्मा नास्ति कालः धर्माधर्माकाशदिगादयो वार्था न सन्तीति वृथैव विवदन्ते शाक्यादयः स्वभावभेदमविद्वांसः । तस्माद् यदुच्यते त्वया क्रियातो घटादि निर्वर्तत इति **तन्न पुरुष-काम-चार-प्रयत्नादिभ्यः किञ्चिदपि निर्वर्तते**, पुरुषात् तदिच्छातस्तत्प्रवृत्तेस्तत्प्रयत्नाद् वीर्यादित्यर्थः । **आदिग्रह[3]णान्न** तद्बुद्धेः न स्वामिनियोगादिभ्यः सर्वत्र व्यभिचारदर्शनात् । किं तर्हि ? [4]भूम्यम्ब्वादिव्रीह्यङ्कुरादिमृद्घटाद्यभिव्यक्त्यनभिव्यक्तिस्वभावो घटोऽपि पृथिव्यादिस्वभाव एव वस्तुत्वात् तदात्मत्वात्, यथा — आपो द्रवाः, स्थिरा पृथिवी, चलोऽनिलः, मूर्तिहीनमाकाशम्, उष्णोऽग्निरित्यादिषु स्वभाव एव, **तत्र कुतः कस्यचिदर्थिनोऽप्येवं वा विपर्यय एव वारम्भ-क्रिया-निर्वृत्तयः**, 'आपो द्रवा भवन्तु, स्थिरा पृथिवी, चलोऽनिलः, अग्निरुष्णः, वियदमूर्तं भवतु' इत्येवमर्थिनोऽपि पुरुषस्य नारम्भो न चेष्टा न च निर्वृत्तिर्वा तथा विपर्ययेऽपि 'मा भूद् द्रवं जलम्, स्थिरा भूः, चलोऽनिलः, अग्निरुष्णः, अमूर्तमाकाशम्' इत्यारम्भः क्रिया निर्वृत्तिर्वा स्वभावस्यान्यथाकर्तुमशक्यत्वात् । एवं घटादिष्वपि योज्यं स्वाभाविकत्वम् ।

तथा चाहुरिति स्वाभाविकत्वे ज्ञापकमाह । कटुकरसः [5]कटुविपाक उष्णवीर्यश्चित्रकः, तद्वद् दन्ती कटुकरसा कटुविपाका उष्णवीर्या, विशेषस्त्वस्याश्चित्रकात् प्रभावेन विरेचयति, प्रभाव इति स्वभावपर्यायत्वाद् रसादेरपि स्वभावत्वात् स एव सामान्यविशेषाभ्यां तथा तथा वर्ण्यत इति, तस्माद् यत् त्वयोक्तं '[6]क्रियातो घटाद्युत्पत्तिः' इति तत्र पृथिवीमृत्पिण्डशिवकादिक्रमापत्तव्यघटात्मनः स्थैर्यात्मवन्न स्त उत्पत्ति- १६४-१

---

१ भा० विना **न चस्मा°** पा० ऱे० ही० । **न चास्मा°** वि० डे० लीं० ॥ २ **°त्मषोत्यन्त°** प्र० ॥ ३ **°णात्तद्बुद्धेः** प्र० ॥ ४ **भूम्यांत्वादि°** भा० ॥ ५ दृश्यतां पृ० २५६-१, पृ० १७६ टि० ६ ॥ ६ दृश्यतां पृ० २२४ पं० ४ ॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

इति कथं घटोत्पत्त्यादि सम्भाव्यते? प्रवृत्तिमृदां स स्वभाव एव। फलस्वभावानुरूपाः प्रवृत्तयोऽत एव व्यवस्थिता इति प्रयासोऽनर्थकः। स्वभावादेव प्रवर्तितव्यमित्येव प्रवर्तन्तेऽप्रतर्कतो वस्तूनि, अक्षिनिमेषधातुकण्टकादिवत्।

विनाशा[1]वुक्तहेतुत्वात्। इतिशब्दो हेत्वर्थे, अस्माद्धेतोः **कथं घटोत्पत्त्यादि सम्भाव्यते?** आदिग्रहणाद् वक्ष्यमाणौ विनाशविपरिणामावपि कथं सम्भाव्येते? नैव सम्भावनीयं तत्त्रयमित्यर्थः।

स्यान्मतम् – कुलालप्रयत्नप्रवृत्तिदण्डचक्रसूत्रोदकमृदादीनां पुरुषाभिसं[2]न्ध्यनुरूपघटाद्युत्पत्तिविनाशविपरिणामफलैः सम्बन्धदर्शनान्न स्वभाव एवेति। एतच्चायुक्तम्, यस्मात् **प्रवृत्तिमृदां स स्वभाव एव**, यथोक्तं प्रा[3]क् 'निमित्तानां निमित्तता स्वाभाविकी' इति, तस्मात् स्वभाव एव। किञ्चान्यत्, **फलस्वभावानुरूपाः प्रवृत्तयोऽत एव व्यवस्थिताः**, स्वभावबलादेव मृत्पिण्डदण्डादिभिरेव घटो भवतीति ज्ञात्वा चक्रमूर्ध्नि मृत्पिण्डं संस्थाप्य दण्डग्रहणचक्रभ्रमणादिव्यापारा घटफलयोग्याः क्रियास्तदनुरूपा व्यवस्थिताः। तथा तुरीवेमशलाकादिसाधनाः सूत्रोपादान-तन्तुसं[4]न्तान-पायन-वयनक्रियाः पटफलस्वभावानुरूपा व्यवस्थिताः। एवं कृषिसेवावणिज्यापरिव्रज्यादिप्रवृत्तयः स्वभावमेव हेतुं समर्थयन्त्यो दृश्यन्ते लोके व्यवस्थिताः, आसां नाप्युत्कर्षो नाप्यपकर्षः कश्चित्। फलानुरूपाः प्रवृत्तयः प्रवृत्त्यनुरूपं फलं तत्र तत्रेति व्यवस्थितफलप्रवृत्तिता स्वभावादेवेति।

स्यान्मतम् – व्यवस्थितप्रवृत्तिफलस्वभावे भावे पुरुषप्रयासस्तर्ह्यनर्थक इति चेत्, सत्यमेतत्, **इति**
१६४-२ **प्रयासोऽनर्थकः**, यथा त्वं ब्रूषे तथैव स्वभावसामर्थ्यादेव प्रवृत्तेर्नि[5]वृत्तेश्च फलसिद्ध्यसिद्ध्योरनर्थक एव प्रयास इति त्वया सदोषाभिमतोऽप्ययं पक्षो मया तत्त्ववादभ्रंशभयान्न त्यज्यते। इत्थमनर्थकोऽप्यसौ प्रयासः पुरुषस्यास्त्येव, सन्नेव स्वभावादेव। यथोक्तम् –

> **स्वभावतः प्रवृत्तानां निवृत्तानां स्वभावतः।**
> **नाहं कर्तेति भावानां यः पश्यति स पश्यति॥ [ ]**

इति प्रवृत्तिनिवृत्त्योर्भावानां स्वभावस्वातन्त्र्यमेव, स हि स्वो भाव आत्मा व[6]स्तूनां निर्वृत्तानामित्युक्तत्वात्। प्रवृत्तिनिवृत्त्योरानर्थक्ये किङ्कृता किम्फला वा प्रवृत्तिः? अतः स्वभावानुरूपप्रवृत्तिप्रतिज्ञाव्याघात इति चेत्, न व्याघातः, तत्स्वाभाव्यादेव यस्मात् **प्रवर्तितव्यमित्येव प्र[7]वर्तन्तेऽप्रतर्कतो वस्तूनि**, प्रकृष्टस्तर्कः प्रतर्कः, 'अनेनोपायेनार्थस्य सिद्धिः' इति य ऊहः स तर्कः, न प्रतर्कोऽप्रतर्कः, अप्रत[8]र्कत एव वस्तूनि प्रवर्तितव्यमित्येव प्रवर्तन्ते स्वभाव[9]देव, तद्यथा – **अक्षिनिमेषधातुकण्टकादिवत्**, यथा अक्षिनिमेषोन्मेषा-

---

१ उत्पत्तिविनाशाभावे हेतुः पूर्वमुक्तः, दृश्यतां पृ० २२४ पं० १॥ २ °**संबध्य**° भा०। °**संबंध्य**° य०॥ ३ पृ० २२३ पं० ५॥ ४ **सन्ता(न्त?)ननपा**° स०। "इह यत् तन्तुवायैरुभयपार्श्वयोः कीलकयुगलं निखाय तानकरूपतया तन्तवस्तन्यन्ते तत् तननम्, यत् पुनरधस्तनोपरितनयोस्तानकतन्तुसन्तानयोरन्तराले नलकप्रयोगेण तन्तव उभयतो वितन्यन्ते व्यूयन्ते तद् विततनम्,......यद् वस्त्रं कूर्चिकेण खलिकां पाय्यते तत् पायनम्।" इति बृहत्कल्पसूत्रस्य भाभा० प्रतौ, गा० ६२५॥ ५ °**वृत्तेश्च** भा० वि०॥ ६ **वस्तुनां निवृत्तानामित्युक्त**° य०। **वस्तूनामित्युक्त**° भा०। अत्र 'वस्तूनां प्रवृत्तनिवृत्तानामित्युक्तत्वात्' इत्यपि पाठः स्यात्॥ ७ **प्रवर्तन्ते स्वभावप्रतर्कतो** पा० वि० रं० ही०। 'प्रवर्तन्ते स्वभावादेवाप्रतर्कतः' इत्यपि पाठोऽत्र स्यात्॥ ८ °**ऽप्रतर्कत एव** भा० डे० लीं०। °**ऽप्रतर्क एत एव** पा० वि० रं० ही०॥ ९ °**दे तद्यथा** प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं च यदि हेतुतो यद्यहेतुतो घटकण्टकादि उभयथापि स्वभावानतिवृत्तिः । आत्मभवनमनादिप्रवृत्तं कारणं जगतः ।

एवं च तत्रानादिप्रवृत्तस्वभावविपर्ययेण यद्युत्पत्तिर्विनाशो विपरिणामो वा ततोऽनादिप्रवृत्तकारणस्वभावव्यत्यासे हिताहितप्राप्तिपरिहारार्थशास्त्रव्यर्थता पुरुषस्य क्रियायाः फलस्य च तथाऽस्वभावत्वात् । अन्यथोत्पादविनाशविपरिणामेभ्यो घटार्थं प्रवृत्तेषु तत्पट उत्पद्यते तद्विनाशार्थं प्रवृत्तेष्वविनाशो विपरिणामार्थं प्रवृत्तेष्वविपरिणामश्च । अतः शास्त्रार्थवत्त्वाय वरमिदमेव कारणं स्व एव भावः

वनर्थकायबुद्धिपूर्वौ च पुरुषस्याहृताहाररसरुधिरमांसमेदोस्थिमज्जशुक्रादित्वेन विभजनं कण्टकतीक्ष्णभवनं चेत्येवमादिप्रवृत्तयस्तथा घटादिफलस्वभावानुरूपाः प्रवृत्तयोऽप्रतर्कित एवेति ।

एवं चेत्यादि । एवं च कृत्वा लोकप्रसिद्धिवशाद् **यदि हेतुतो यद्यहेतुतो** यथासङ्ख्यं **घटकण्टकादि** बुद्ध्यबुद्धिपूर्वनिर्वृत्ताभिमतं यदस्तु तदस्तु **उभयथापि स्वभावानतिवृत्तिः** । एवमेतदात्मभवन**मनादिप्रवृत्तं कारणं जगतः**, पृथिव्यब्बीजाङ्कुरादिषु स्थिरद्रवादिस्वभावाविर्भावतिरोभावादिरूपेण एकं नित्यं १६५-१ च नोत्पद्यते न विनश्यति न चान्यथा भवतीति प्रतिपत्तव्यम्, उत्पादविनाशविपरिणामानामनादिप्रवृत्तस्वभावकारणविरोधित्वात् ।

एवं च तत्रानादिप्रवृत्तस्वभावेत्यादि यावद् **विपरिणामो वे**ति पूर्वपक्ष उत्तानार्थः । उत्तरपक्षस्तु **ततोऽनादिप्रवृत्तकारणस्वभावव्यत्यासे** इति प्रत्युच्चारणम्, आत्मभवनविपर्यये दोषः, **हिताहितप्राप्तिपरिहारार्थशास्त्रव्यर्थता,** धर्मार्थकाममोक्षफलप्राप्त्युपायविधानार्थानि तदपायपरिहारार्थानि च[1] शास्त्राणि व्यर्थानि स्युः । किं कारणम्? **पुरुषस्य क्रियायाः फलस्य च तथाऽस्वभावत्वात्,** कर्तृकरणकर्मादिसाधनानां तदङ्गसम्पन्नायाः क्रियाया धर्मार्थकाममोक्षाणामन्यतमस्य तत्फलस्य चान्योन्यानुरूपेण अनात्मत्वादित्यर्थः । परस्परानुरूपानभ्युपगमेऽन्यथोत्पादोऽन्यथा विनाशोऽन्यथा विपरिणामश्चाननुरूपेणेति यावत् । ततोऽ**न्यथोत्पादविनाशविपरिणामेभ्य** इति पुरुषादिसाधनक्रियाफलानां तथाऽनात्मत्वं समर्थयति, **घटार्थं प्रवृत्तेषु** घटोत्पत्त्यर्थं प्रवृत्तेषु **त[2]त्पट उत्पद्यते तद्विनाशार्थं प्रवृत्तेष्वविनाशो विपरिणामार्थं प्रवृत्तेष्वविपरिणामश्चे**ति, स्वभावानियमान्नोत्पादविनाशविपरिणामाः सन्ति, यदि स्युरयथा[3]भिप्रेताः स्युः स्वभावानियमादिति स्वभावापरिग्रहे शास्त्राणामर्थवत्ता न युज्यते । **अतस्तस्मात्** सिद्धशास्त्राणामनतिशङ्क्यत्वादनिष्टत्वाच्चानर्थक्यस्य शास्त्रार्थवत्त्वसिद्ध्यर्थं च घटादेः कारणमन्वेषणीयम्, तच्च कारणमन्विष्यमाणं **शास्त्रार्थवत्त्वाय वरमिदमेव कारणं** स्वभावः, नातोऽन्यद् विमर्दरमणीयतरमस्ति । कुतोऽन्यन्नास्ति? यस्तत्कारणं **स्व एव** आत्मीय एव आत्मैव वा **भावः,** कतमोऽसौ? सङ्ग्रहेण १६५-२

---

१ **च** प्रतिषु नास्ति ॥ २ **वत्पट** वि० । अत्र 'च पट उत्पद्येत' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ३ °**भिप्रेतास्युः** भा० वि० विना ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विधा प्रतिवस्तु जीवाजीववदवस्थितः, योऽस्ति स भावः य आत्मा स भावः स्वभावः।

स चैकोऽपि कारकभेदं स्वशक्तिभेदादेव लभते, स एवानुभवति सोऽनुभूयते। स्वद्रव्यसंयोगविभागस्वाभाव्येन स एव भवतीति संसारमोक्षौ स्वभावतः।

द्विधा प्रतिवस्तु जीवाजीववदवस्थितः, योऽस्ति स भावः य आत्मा स भावः स्वभाव इति च परभावनिराकरणार्थमुच्यते । यथोक्तम्–किमिदं भंते! अत्थित्ति वुच्चति? गोयमा! जीवा चेव अजीवा चेव [स्थानाङ्गसू०][1], तथा किमिदं भंते! समयत्ति वुच्चति? गोतमा! जीवा चेव अजीवा चेव [स्थानाङ्गसू०][2], एवमावलिकोच्छ्वासनिःश्वासप्राणस्तोकलवमुहूर्ताहोरात्रकालविभागा रत्नप्रभादिभूमयो द्वीपाः समुद्राः पर्वताद्याश्च नेयाः ।

स चैकः स्वभावः पूर्ववदशेषनित्यत्वलक्षणयुक्तो**ऽपि** कर्तृकर्मकरणादि**कारकभेदं स्वशक्तिभेदादेव लभते,** तद्यथा – स्वसाधनविशेषस्वभावादेव विशेषो भवति, **स एवानुभवति सोऽनुभूयते,**[3] एतद्व्याख्यार्थोदाहरणत्वेन कारकद्वयं कर्तृकर्मकारकभेदा एव शेषकारकाणीति दर्शनार्थम् । **सोऽनुभवति** कृत्वा फलमनुभवति[4] कर्मफलं भुङ्क्ते। **सोऽनुभूयते** स्वभावभेदेनात्मनैव भुज्यतेऽपि । स एव कथमनुभवति अनुभूयते च? इति तदर्थप्रदर्शनार्थमाह – **स्वद्रव्ये**त्यादि । स्वयमेव द्रव्याणि आत्मैव[5] कर्मकर्मित्वस्वभावानि द्रव्याणि संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते च, तेषामेव स्वभावभेदानां द्रव्याणां **संयोगविभागौ** बन्धमोक्षौ देशसर्वविकल्पौ, तद्विकल्पविचित्रसुखदुःखजन्ममरणवैषम्ये, तयोः **स्वाभाव्येन स एव भवतीति संसारमोक्षौ स्वभावतः,** यथा व्रीहिरेव अङ्कुरत्वाद्यनुभवनात्मानुभवति अनुभूयते च । अन्योन्यसंयोगवियोगविपरिवर्तेन कर्मकर्मिस्वाभा-

१६६-१ व्येन विपरिवर्तमानोऽपि स्वभावात्मा व्याधेः[6] साध्यासाध्यद्वैतरूपवत् स्वजात्यपरित्यागाद्द्वैतत्वाद् व्यवस्थित एव सर्वत्र भव्याभव्यजीवराश्योः । को दृष्टान्तः? यथा कनकाश्मनि सुवर्णं द्विधाविर्भवत् क्रिया-ऽक्रियाभ्यां तत्स्वभावः, कश्चिन्नास्त्येव कनकमिति सोऽपि स्वभावः, तथा केषाञ्चित् स्वयमेवापगमादात्मविशुद्ध्याविर्भावः[7]

---

१ "जदत्थि णं लोगे तं सव्वं दुपओआरं, तं जहा–जीव चेव अजीव चेव, तसे चेव थावरे चेव, सजोणिय चेव अजोणिय चेव, साउय चेव अणाउय चेव, सइंदिय चेव अणिंदिए चेव, सवेयगा चेव अवेयगा चेव, सरूवि चेव अरूवि चेव, सपोग्गला चेव अपोग्गला चेव, संसारसमावन्नगा चेव असंसारसमावन्नगा चेव, सासया चेव असासया चेव, आगासे चेव नो आगासे चेव, धम्मे चेव अधम्मे चेव, बंधे चेव मोक्खे चेव, पुण्णे चेव पावे चेव, आसवे चेव संवरे चेव, वेयणा चेव णिजरा चेव।" इति **स्थाना**ङ्गसूत्रे २।१।५७–५९ ॥ २ "समयाति वा आवलियाति वा जीवाति या अजीवाति या पवुच्चइ, आणापाणूति वा थोवाति वा जीवाति या अजीवाति या पवुच्चइ, खणाति वा लवाति वा जीवाति या अजीवाति या पवुच्चइ, एवं मुहुत्ताति वा अहोरत्ताति वा पक्खाति वा मासाति वा उउति वा अयणाति वा संवच्छराति वा······उसप्पिणीति वा ओसप्पिणीति वा जीवाति या अजीवाति या पवुच्चइ।···गामाति वा णगराति वा···पुढवीति वा उदहीति वा···दीवाति वा समुद्दाति वा···वासाति वा वासहरपव्वयाति वा कूडाति वा कूडागाराति वा विजयाति वा रायहाणीति वा जीवाति या अजीवाति या पवुच्चइ।" इति **स्था**नाङ्गसूत्रे २।४।९५। "किमियं भंते! पाईणत्ति पवुच्चइ? गोयमा! जीवा चेव अजीवा चेव।" **भगवतीसू०** १०।१।३९४ ३ **एवानुभूयते एत**° य० ॥ ४ **कृत्वा फलमनुभवति** य० प्रतिषु नास्ति ॥ ५ **आत्मेव** य० । **आत्मव** भा० ॥ ६ **व्याधः साध्यद्वैत**° भा० । **व्याधः साध्यासाध्याद्वैत**° य० ॥ ७ °**गमात्म(**°**गमात्?) विशु**° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तरेणापि धातुवादं कनकाविर्भावस्तथा कर्मविवेकस्वाभाव्यादेव भव्यजीवानामात्माविर्भावः, सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्विकया तु क्रियया प्राचुर्येण कैवल्यप्राप्तिर्धातुवादक्रिययेव कनकोत्पत्तिः, केषाञ्चिदनाविर्भाव एव कर्माविवेकस्वाभाव्यात् ।

एवं च तदुभयस्वभाववर्णनादभव्य[1]जीवकर्मणोः............... । भव्यस्य तु विशुद्धि......... । यदि हेतुरन्यो मृग्येत तेनानन्त्यमस्यापि स्यात्, अनादित्वात्, आकाशवत् । तदन्तवत्त्वे वाकाशमपि सान्तं स्यात्, अनादित्वात्, भव्यकर्मवत् । अथाप्यस्यानादित्वेऽहेतुरन्तो भवति तथा आदिः सिद्धकर्मसन्तानस्य कस्मान्न भवति ? इति स्वभाव एव शरणं तदुपायस्वभावो मोक्ष इति । एवं सर्वचोद्येषु ।

कैवल्यं यथा भरतमरुदेव्यादीनामित्यत आह तद्दृष्टान्तत्वेन — **अन्तरेणापि धातुवादं कनकाविर्भावस्तथा** कर्मविवेकस्वाभाव्यादेव भव्यजीवानामात्माविर्भावः, सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्विकया तु क्रियया प्राचुर्येण कैवल्यप्राप्तिर्धातुवादक्रिययेव कनकोत्पत्तिरिति स्वभाववैचित्र्यादेव, तथा केषाञ्चिदनाविर्भाव एव कर्माविवेकस्वाभाव्यात् ।

एवं च तदित्यादि । एवं च कृत्वा स्वभावनयबलेन आम्नाता जीवा द्विविधाः — भवसिद्धिकाश्च अभवसिद्धिकाश्चेति **तदुभयस्वभाववर्णनात् अभव्यजीवकर्मणो**रित्यादि **भव्यस्य तु विशुद्धी**त्यादि च गतार्थं वाक्यद्वयम् । अनादेर्जीवकर्मसन्तानस्य व्यवच्छेदाव्यवच्छेदौ स्वभावादेवेति नात्र कश्चिद् भव्यकर्मसन्तानसान्ततायामभव्यकर्मसं[2]न्तानानन्ततायां वा हेतुः शक्यो वक्तुमन्यः स्वभावात् । **यदि हेतुरन्यो मृग्येत तेन आनन्त्यमस्यापि स्यात्,** कस्य ? भव्यकर्मसन्तानस्याप्यनन्तत्वं स्यात् । कस्मात् ? **अनादित्वादाकाशवत्,** स्वभावमनिच्छद्भिरनादित्वहेतुरभ्युपगन्तव्यो जायते सोऽनिष्टानन्तत्वसाधनाय भवति । अ[3]धुनाऽनादित्वहेतुसद्भावेऽपि तत्सान्ततेष्टावाकाशसान्ततेत्यत आह — **तदन्तवत्त्वे वाकाशमपि सान्तं स्यादनादित्वाद् भव्यकर्मव**दिति स्वभाव एवान्तवत्त्वे कारणम्, न हेतुरन्योऽस्ति हेतुवादेन विमृग्यमाणः । **अथाप्यस्य** भव्यसंसारस्या**नादित्वे** सति **अहेतुरन्तो भवति** निर्हेतुक[4]हेतुकोऽन्त इष्यते १६६-२
ततो यथा चास्यानादित्वे संसारस्याहेतुरन्तो भवति तथा कस्मात् तस्य विरोधी पुनर्निर्हेतुकहेतुकान्तवत्त्ववद् भव्यकर्मसन्तानस्य [5]निर्हेतुकहेतुकादिः **सिद्धकर्मसन्तानस्य कस्मान्न भवति ?** इति वाच्यमत्र विशेषकार[6]णमस्वभावहेतुवादिना, म[7]म तु पुनः स्वभाववादिनः स्वभाव एव सर्वत्र कारणं व्यापित्वात् । **इति**शब्दो हेत्वर्थे, इत्यतः कारणादित्थं **स्वभाव एव शरणं** कारणवादिनाम् । कथं कृत्वा ? **तदुपायस्वभावो मोक्ष इति** सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रयोपायसम्पन्नभव्यकर्मसन्तानात्यन्तोच्छेदस्वभावो मोक्ष इति । एवं तावद् भव्यसंसारोच्छित्तावभव्यसंसारानुच्छित्तौ च हेतुवादे चोदिते स्वभावाश्रयेण परिहार उक्तः । **एवं**

---

१ 'अभव्यजीवकर्मणोरनादिसन्तानस्याव्यवच्छेदः स्वभावादेव । भव्यस्य तु विशुद्धिस्वभावादेव अनादिकर्मसन्तानस्य व्यवच्छेदः' इत्याशयकमत्र किमपि मूलं स्यादिति सम्भाव्यते ॥ २ **संततानन्ततायां** प्र० ॥ ३ **अधुनादित्व°** प्र० । अत्र 'भवति । अनादित्वहेतुसद्भावेऽपि' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ४ **°कथहे°** प्र० ॥ ५ **निर्हेतुकादिः** भा० ॥ ६ **°णस्व°** य० ॥ ७ **मेम** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वभावानभ्युपगमे तु न साधनं न दूषणं च स्वभावापेतावयवार्थवादित्वादिति वादहानं ते ।

अयं सर्वोऽपि यत्नः सोऽन्यभिन्नस्वरूपोपादानेनैव स्वाभिमतिनिराकरणाय भवति । पुरुषवादे तावज्ज्ञानमयो न रूपादिमयः, रूपादीनां तन्मयत्वात् । कार्या-

---

सर्वचोद्येष्वित्यतिदेशः, यथा 'भव्याभव्यसंसारोच्छित्त्यनुच्छित्त्योर्वि[1]शेषहेतुर्वाच्यः' इति चोदिते स्वभावादेवेति व्यवस्थोक्ता तथा 'जीवाजीवरूप्यरूपिसक्रिया[2]क्रियत्वादिविशेषाः कुतः' इति चोदिते स्वभावादेव व्यवस्था[3]वश्यमाश्रयणीया ।

स्वभावानभ्युपगमे त्वित्यादि यावद् **वादहानं ते** इति । यदि स्वभावो नाभ्युपगम्यते ततः साधनदूषणाभावस्ततो वादत्यागः, तद्यथा – पक्षहेतुदृष्टान्तादयः स्वेन भावेन सम्पन्नाः साधनम् , पक्षः साध्यत्वेनेप्सितो यदि विरुद्धार्थानिराकृतः, हेतुः पक्षधर्मः सपक्षे सन् विपक्षाद् व्यावृत्तः, दृष्टान्तः साध्यानुगतहेतु[4]प्रदर्शनमसति साध्ये हेत्वसत्त्वप्रदर्शनं च । तद्विपर्यये तदाभासा[5] इति साभासं साधनं स्वेन भावेन
१६७-१ भवति । तत्साधनदोषोद्भावनं दूषणं तदन्यथोक्तिर्दूषणाभास इति च स्वेन भावेन व्यवस्थितमभ्युपगम्य साधनं दूषणं च साभासं विवदिषुरसि संवृत्तः, अन्यथा न साधनं न दूषणं च स्वभावापेतावयवार्थवादित्वादिति वादत्यागस्ते प्राप्तः । तस्मात् स्वभाव एव प्रभुविभुत्वाभ्यां कारणं जगत इति । एवं तावत् स्वभाववादः ।

❀✱✱❀

अनया च दिशा शब्दब्रह्मतत्त्वभेदसंसर्गरूपविवर्तमात्रमिदं जगदिति । यथोक्तम् –

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥ [वाक्यप० १।१]

इत्यादिकारणवादा भिद्यन्ते संज्ञादिभेदात् । ते पुनः सर्वेऽपि परमार्थद्रव्यार्थस्य विधिविधिनयस्य स्वरूपमस्पृशन्त एव प्रवर्तन्ते, यस्मात् सङ्क्षेपेणायं **सर्वोऽपि यत्नः सोऽन्यभिन्नस्वरूपोपादानेनैव स्वाभिमतिनिराकरणाय भवति,** तद्यथा – पुरुषवादिनः पुरुषादन्यदवस्तु अपुरुषत्वाद् वन्ध्यापुत्रवत् तथा नियतेरन्यदनियतित्वाद् वर्तनादन्यदवर्तनत्वात्[6] स्वभावादन्यदस्वभावत्वाद् वन्ध्यासुतवदवस्तु इति ब्रुवतां पुरुषनियतिकालस्वभाववादिनामात्मात्मवस्तुनो द्रव्यार्थवृत्तस्य तत्परमार्थस्य तत्त्वज्ञानां सर्वैकत्वनित्यत्वकारणमात्रत्वसर्वगतत्वानां धर्माणां प्रतिपादनार्थमुद्यतानां वादिनाम् 'अन्यदवस्तु' इति स्वतो भिन्नान्यार्थाभ्युपगमेनैव[7] तत्प्रतिपादनं नान्यथेति तत्प्रतिपादनार्थो यत्नः सोऽयमन्यभिन्नरूपोपादानमन्तरेण नास्तीति स यत्नः स्वाभिमतपुरुषाद्यर्थनिराकरणायैव भवत्यन्यभिन्नार्थाभ्युपगमात् ।

१६७-२ कथम् ? इति तद्दर्शयति – **पुरुषवादे तावज्ज्ञानमयो न रूपादिमय** इति, **रूपादीनां** तत्सुषुप्तावस्थामात्रत्वाभिमतानां **तन्मयत्वात्** ज्ञानात्मकपुरुषमयत्वात् । तानि च रूपादीनि कार्यात्मानः, **कार्या-**

---

१ °रोच्छित्त्योर्वि° प्र० ॥ २ °सक्रियाक्रियत्वाद्विशेषः भा० । °सक्रियत्वाद्विशेषाः य० ॥ ३ °वश्यमा° डे० लीं० ॥ ४ °तुदर्शन° प्र० ॥ ५ °भासा प्र० ॥ ६ °वर्तनात्वात् भा० पा० ॥ ७ °मेनैवं प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्मनां तन्मयत्वे कार्यत्वानेकत्वानित्यत्वासर्वत्वानि पुरुषस्यैव प्राप्तानि । अवस्थावच्च पूर्वादिनियत्यादिष्वपि ।

स्वभाववादे तु अतिशयश्चायम्, आदावेव भेदोपादानात् सम्भववद्व्यभिचारवृत्त्यनुमत्या भावविशेषणस्वशब्दोपादानात् तथैव चार्थस्य निरूपणात् । यदयं भवति भूयतेऽनेनेति वा भावः । स्वशब्दोऽस्वव्यावर्तनार्थ इतरेतराभावमात्रविष-

---

त्मनां तन्मयत्वे चेतनैककारणात्मत्वे कार्यत्वानेकत्वानित्यत्वासर्वत्वानि पुरुषस्यैव प्राप्तानि तन्मयत्वात् प्रत्येकपरिसमाप्तत्वाच्च तेषां प्रत्यक्षत उपलभ्यत्वाच्च । तस्मात् पुरुषस्यैकनित्यकारणसर्वत्वानि निराक्रियन्तेऽवस्थानां कार्यकारणात्मनां पुरुषमयत्वादित्युक्तः पुरुषात्मकत्वप्रतिपादनयत्नस्य द्रव्यार्थवृत्तसर्वैकत्वाद्यभिमतिनिराकरणदोषोऽवस्थाश्रयणात् । अवस्थावच्च पूर्वादिनियत्यादिष्वपीत्यतिदेशेन नियतिकालस्वभावेष्वपि स्वाभिमतिनिराकरणं तेषामपि दर्शयति । अवस्थावच्चेति यथा सुप्तसुषुप्तजाग्रद्विमुक्त्यवस्थाभेदेन भिन्नान्यरूपोपादानेनैव स्वाभिमतिनिराकृतिः पुरुषवादेऽभिहिता तथा बाल्यादिपूर्वोत्तरावस्थासु तथानियतिवर्तनास्वभावादिभेदाभ्युपगमादेव स्वाभिमतनियत्यादिनिराकरणम् ।

स्वभाववादे तु, 'तु'शब्दो विशेषणे, [2]विशेषोऽस्य स्वमतनिराकरणदोषादतिशयश्चायम् । किं कारणम्? आदावेव भेदोपादानात्, इतरे सृष्टिप्रदर्शनद्वारेण दूरं गत्वा पश्चाद् भेदमुपाददते, स्वभाववादी पुनरुत्थान एव भेदमुपादत्त इत्ययमतिशयः । कुतो भेदोपादानमिति चेत्, सम्भववद्व्यभिचारवृत्त्यनुमत्या भावविशेषणस्वशब्दोपादानात् । सति सम्भवे व्यभिचारे च विशेषणम्, यथा नीलमुत्पलमिति नीलत्वं चेदुत्पले सम्भवति व्यभिचरति च कदाचित्, रक्तमपि तद् दृष्टमुत्पलं भ्रमरादिषु च १६८-१ नीलत्वम्, अतो विशेषणं [3]भवति नीलं च तदुत्पलं च तदिति एवं भेदवृत्त्यनुमत्या विना विशेषणोपादानाभावात्, तथेहापि भावशब्दवाच्यस्यार्थस्य स्वशब्दाभिधेयविशेषणार्थं स्वशब्दोपादानं भेदाधार[4]सम्भववद्व्यभिचारवृत्त्यनुमत्यैव सहितम्, यथा सम्भवानुमत्या विना न विशेषणं तथा नान्तरेण व्यभिचारमपि विशेषणं भवति । तत्र व्यभिचारो विरुध्यते द्रव्यार्थवादस्यैक्यादित्यभिप्रायार्थः । तथैव चार्थस्य निरूपणादिति, न केवलं स्वशब्दोपादानमात्रादेव भेदोऽङ्गीकृतः, किं तर्हि? अर्थोऽपि भूम्यादिकण्टकादित्वेन तथा निरूप्यते उत्तरेण ग्रन्थेन भेदप्राधान्येनैव[5] भावीकृतेनार्थोऽपि[6] भिन्नो विशेषण[7]त्वेनोपादातुं योग्यः, तद्यथा—यदयं भवतीत्यादि, तत्र स्वशब्दभावशब्दयोरर्थव्युत्प[8]त्त्योर्भावशब्दार्थव्युत्पत्तिस्तावद् भाववादिनः स्वभाववादिनश्चावयोः शब्दार्थव्युत्पत्तिर्भावशब्दस्य भवतीति भावो भूयतेऽनेनेति वा भाव इति तुल्या, तस्यां च तुल्यतायां न कश्चिद् विसंवादः । स्व[9]शब्दोऽर्थो वा विशेषणत्वेन प्रवर्तमानश्चिन्त्यः, [10]सोऽस्वव्यावर्त-

---

१ °र्नियत्या भा० ॥ २ विशेषास्य प्र० ॥ ३ भवतीति य० ॥ ४ °सम्भवद्व्यभि° प्र० ॥ ५ भेदेन प्रा° य० ॥ ६ °वाभावीकृतेना° य० । वाभावीकृतेनां° भा० ॥ ७ °णत्वेन नोपा° य० ॥ ८ °त्पत्त्योभा° भा० । °पत्तोभा° य० ॥ ९ स्वशब्दार्थों य० ॥ १० अत्र 'स्वोऽस्वव्यावर्तनार्थः' इत्यपि पाठः स्यात् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योऽर्थाभावार्थत्वादस्वाभवने वर्तेत, स तत्रोपक्षीणशक्तित्वात् स्वभवनस्य न प्रयोजकः । एतदपि चास्वभवनव्यावर्तनं स्वशब्दस्य नैवास्ति, अस्वस्याभूतत्वात् । न चाभूतो व्यावर्तनाय । अथ स तथाभूत एव ततः स भाव एव, किं व्यावृत्त्या अनर्थिकया? तद्भावत्वप्रसङ्गात्, अब्राह्मणवचने ब्राह्मणत्ववत् । यदपि व्यावर्त्यते तदपि च भवेदेव, असतोऽप्रसक्तत्वादप्रसक्तस्य चाव्यावर्त्यत्वात् खपुष्पवत्,

---

नार्थः, स्वो भावोऽस्वो भावो न भवतीत्यस्वव्यावर्तनं तस्यार्थः, स्वशब्दश्च भावस्यैवात्मपर्यायस्य वाचकः, तस्माद् विशेषणत्वादस्वव्यावर्तनार्थः सम्पद्यते । तदर्थत्वाच्च **इतरेतराभावमात्रविषयः,** स्वः परो न भवति परोऽपि स्वो न भवतीति स्वपराभावादितरेतराभावोऽर्थाभावो[1] भावाभाव इति यावत् । ततश्चार्था-
१६८-२ **भावार्थत्वादस्वाभवने वर्तेत** 'अस्वो न भवति' इत्येषोऽस्य मुख्योऽर्थो जायते न तु भावस्वरूपप्रतिपादनमिति भावार्थासंस्पर्शान्न किञ्चिदनेन ।

स्यान्मतम्—भावमपि ब्रूत इति, एतच्चायुक्तम्, यस्मात् **स तत्रोपक्षीणशक्तित्वात् स्वभवनस्य न प्रयोजकः,** अतिभार एष हि शब्दस्य यदेकः स्वशब्दः परभवनव्यावृत्तिं स्वभवनप्रतिपादनं च युगपत् सकृदुच्चरितः कुर्यात्, अतो न प्रयोजको न वाचक इत्यर्थः । अर्थो वास्य[2] स्वशब्दस्य स्वशब्दं न प्रयोजयति शब्दवृत्तिविरोधात्[3] । तस्मादस्वभवनव्यावर्तनमेवार्थः । **एतदपि चास्वभवनव्यावर्तनं स्वशब्दस्य नैवास्ति** । किन्त्वर्थोद्गतेरभ्युपेत्य एतद् विचारितम् । किमर्थं नास्तीति चेत्, उच्यते—**अस्वस्याभूतत्वात्** स्वस्यैव भूतत्वाद् भावस्यैव[4] भूतत्वादित्यर्थः । स्वशब्दार्थाभावान्न स्वशब्दं प्रयोजयति वन्ध्यापुत्रवत् । तदभावाद् भावशब्दव्यतिरिक्तार्थविषयाभिमतः स्वशब्दोऽपि नास्तीत्यत आह—**न चाभूतो व्यावर्तनाय** प्रभवतीति वाक्यशेषः, अभूतत्वाद् वन्ध्यासुतवत् ।

अथ सोऽर्थोऽस्वस्तथाभूत[5] एव ततः स भाव एव, भावादेव तस्य स्वशब्दवाच्यार्थस्य भावशब्दवाच्यार्थवत् **किं व्यावृत्त्यानर्थिकया?** इति स्वशब्दस्य व्यावर्त्याभावाद् व्यावृत्तिरनर्थिका, व्यावर्त्यार्थाभावश्च तस्य भावत्वाद् भाववदित्युक्तः[6] । स्यान्मतम्—तस्य व्यावर्त्यस्याभावाद् व्यावर्त्यता विशेषणार्थवत्ता चेति, एतच्चायुक्तम्, **तद्भावत्वप्रसङ्गात्,** न ह्यसतः प्रसङ्गोऽस्ति, अप्रसक्तस्य च व्यावर्त्यता नास्ति **अब्राह्मणवचने ब्राह्मणत्ववत्,** न ह्यब्राह्मणवचने ब्राह्मणोऽप्रसक्तो व्यावर्त्यते, यथोक्तं नञिवयुक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथा ह्यर्थ[गतिः] [पा० वा० ३।१।१२][7] इति । भावशब्दार्थव्युत्पत्त्यर्थं कर्त्रर्थोपादानाद् 'यदयं भवति' इति भावशब्दस्य अयंशब्दविशिष्टस्य स्वरूपोक्तः स्वशब्दोऽप्यनर्थकः । तस्माद् **यदपि**

---

१ °**भावार्थाभावो** प्र० ॥ २ **वाभ्य** य० । **वाच्य** भा० ॥ ३ °**वृत्तवि**° प्र० ॥ ४ **भूतत्वाद् भावस्यैव** य० प्रतिषु नास्ति ॥ ५ **सोऽस्वस्तथा**° य० ॥ ६ **भाववादित्युक्त** प्र० ॥ ७ "नञिवयुक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथा ह्यर्थगतिः [पा० वा०]। नञ्युक्तमिवयुक्तं वा यत् किञ्चिदिह दृश्यते तत्रान्यस्मिंस्तत्सदृशे कार्यं विज्ञायते, तथा ह्यर्थो गम्यते, 'अब्राह्मणमानय' इत्युक्ते ब्राह्मणसदृश एवानीयते, नासौ लोष्टमानीय कृती भवति ।" इति **पा**तञ्जलमहाभाष्ये पाठः ३।१।१२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किञ्चित्त्वाद् वस्तुत्वादर्थत्वादिभ्यः खवत्।

अयं च स्वभावः किं व्यापी प्रतिवस्तु परिसमाप्तो वा? व्यापित्वे त्यक्तस्वपरविशेषणः स्यात्। प्रतिवस्तुत्वे किं तेन कल्पितेनाभिन्नफलेन लोकवादात्। प्रत्येकमात्रवृत्ति च वस्तु घटाद्येव घटादीतीतरेतराभावात् परस्परमस्वभवनपरिग्रहात् कुतः क चासौ स्वभावः स्यात्? भावविषयैकार्थे स्वत्वे न किञ्चिदन्यत् स्वं नामेति किमत्र भेदेन क्रियते घटादिना पटादिभावविशिष्टेन? सोऽपि यदि भाव एव कोऽयं

व्यावर्त्यते[1] तदपि च भवेदेव व्यावर्त्यत्वाद[2]ब्राह्मणवत्, वैधर्म्येण नासत् तत्, कुतः? **असतोऽप्रसक्तत्वादप्रसक्तस्य चाव्यावर्त्यत्वात् खपुष्पवत्।** व्यावर्त्यस्य सत्त्वेऽनुमानान्तरमप्याह — **किञ्चित्त्वाद् वस्तुत्वादर्थत्वात्,** आदिग्रहणात् प्रमेय-ज्ञेय-सत्त्वादिभ्योऽपि। दृष्टान्तः **स्ववदि**ति, यथा स्वं व्यावर्त्याद् विभक्तत्वात् किञ्चिद् वस्तु अर्थः प्रमेयं ज्ञेयं सच्च तथा व्यावर्त्यमपि सज्ज्ञेयं प्रमेयमर्थो वस्तु किञ्चिद्वा प्रसक्तत्वादेव, तस्माद् भवेदेव। १६९-१

किञ्चान्यत्, **अयं च स्वभाव** इत्यादि। अयं च त्वदिष्टः स्वशब्दविशिष्टो भावः स्वभावः **किं व्यापी प्रतिवस्तु परिसमाप्तो वा?** यदि व्यापी सर्वगत एक एव तस्मिन् **व्यापित्वे त्यक्तस्वपरविशेषणः स्यात्,** एकरूपत्वात् तस्य पररूपाभावात् स्वशब्दोपादानं परशब्दोपादानं च निरर्थकमेव। अथ वस्तुनि वस्तुनि परिसमाप्तः प्रतिवस्तु ततः **प्रतिवस्तुत्वे किं तेन कल्पितेनाभिन्नफलेन लोकवादात्?** लोकवादो हि 'घटस्य घटत्वमेव स्वभावो नान्यः, पटस्य पट एव' इति श्रूयते, घटादिपृथग्भूतो न कश्चिदेक इति। स यदि तथा प्रतिवस्तु कल्प्यते न[3] कश्चित् तेन लोकवादाभिन्नफलेनार्थः कल्पितेन। तस्मान्नैकः कश्चित् स्वभावो यथा पूर्वं[4] स्वभाववाद्युपवर्णितः सिध्यति। किं तर्हि? लौकिक एव सिध्यति। किञ्चान्यत्, स्वभावाभाव एव प्रसक्तः, तद्यथा — **प्रत्येकमात्रवृत्ति च वस्तु[5] घटाद्येव घटादीति[6],** घट एव घटः पट एव पटः पटे घटो नास्ति न घटे पट **इतीतरेतराभावात्** परस्परमस्वभवनपरिग्रहः कुतो भवति, ततः **परस्परमस्वभवनपरिग्रहात् कुतः क चासौ स्वभावः स्यात्?** यद्युपपत्तिद्वारेणार्थः तत इदमुपपत्तिमुखमस्य, **भावविषयैकार्थे स्वत्वे** स्वत्वादनन्यो भावः, य एव भावः स एव स्व इत्यनयोरनर्थान्तरत्वमेवेति सत्यं **न किञ्चिदन्यत् स्वं नामेति,** 'इति'शब्दो हेत्वर्थे, ततः **किमत्र भेदेन क्रियते घटादिना पटादिभावविशिष्टेन?** द्रव्यार्थस्वरूपस्याभिन्नत्वात्। भेदेन यदुच्यते घट इति पटादिना भावव्यावर्तनार्थं भेदेन 'घटस्य भावो न पटस्य' इति 'स्वो भावो न परभावः' इति च पुरुषादिवादवद् भेदाधारं[7] तेन किं कल्पितेन द्रव्यार्थस्वरूपविरोधिना भेदाधारेणेति। **सोऽपि यदी**ति सोऽपि च घटादिर्भेदो[8] भावो[9] वा यदि **भावः** भवतीति भाव **एव** भावस्वरूपादभिन्न १६९-२

---

१ **व्यावर्त्यंत तदपि** य०। **व्यावर्त्यंत तदपि** भा० ॥ २ अत्र 'व्यावर्त्यत्वाद् ब्राह्मणवत्' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ३ **न किंचित्तेन** प्र० ॥ ४ **पूर्वस्वभाव°** प्र० ॥ ५ **वस्तु** य० प्रतिषु नास्ति ॥ ६ °**दीनि** प्र० ॥ ७ **भेदावारं तेर किं कल्पतेन** प्र० ॥ ८ °**दिभेदो** य० ॥ ९ **भावो वाप्यदे भावो वा यदि** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेदो नाम घटादिर्भावव्यतिरिक्तः? अथ न भवति तदस्तित्वमेव न। ननु घटस्य भाव इति पटादिव्यतिरेकेण घट एव, न, भावस्यैव तथा तथा भवनात्। न हि हस्तादौ भवति कुर्वति वा देवदत्तो न भवति न करोति वा। अतो भावत्वेऽभावत्वे वा नास्त्येव भेदो घटादिः। यं तं भुवोऽर्थमभिदधति सर्वधातवः।

तच्च प्रत्यवस्तमितनिरवशेषविशेषणं भवनं सर्ववस्तुगर्भः सर्वबिम्बसामान्यमभिन्नं बीजम्। तदेव हि भवनं व्रीह्यादि मृदादि च साध्यं साधनमेकमहेयमप्रच्युतं

एव अतः **कोऽयं भेदो नाम घटादिर्भावव्यतिरिक्त** इति स्वयमेवोक्तो भेदाभावः। **अथ न भवति** भेदः भावो न भवति नानुभवति भवनं न वा भाव एवाभ्युपगम्यते **तदस्तित्वमेव नाभ्युपेमः**, अभवनात् खरविषाणात्मवत् तत्[1]।

इतर आह—**ननु 'घटस्य भावः'** इत्यव्यतिरेकषष्ठ्या व्यपदिश्यमानत्वात् **पटादिव्यतिरेकेण घट एवे**ति स्वतोऽपृथग्भूतेन भवनेन, ततः पटादिभेदेन भवनस्य कर्ता घट एवेति। अत्रोच्यते—**न, भावस्यैव तथा तथा भवनात्**, न ब्रूमो घटस्य भवनं न पटस्येति भेदव्यपदेशो नास्तीति[2], स पुनरुपचरितो घटादिभिरभिन्नस्यैकस्य भावस्यैव तथा तथा तेन [तेन] प्रकारेण घटपटादिना[3] भवनात्, अन्यथा पटादयो न भवन्त्येव भवनव्यतिरिक्तत्वादित्युक्तम्। स एव हि भावो घटपटादिर्भवति हस्तादिभवनकरणयोः पुरुषभवनकरणवत् घटादीनां भावाव्यतिरेकात् पुरुषाव्यतिरिक्तहस्तादिभवनवदिति। तद्दर्शयति—**न हि**

१७०-१ **हस्तादौ भवति कुर्वति वा देवदत्तो न भवति न करोति वा**, हस्तादौ भवनकरणयोः कर्तृत्वं प्रतिपद्यमाने तत्समुदायस्यावश्यं तत्प्रतिपत्तेः समुदयसमुदयिनोश्चानन्यत्वात्। तदुपसंहरति—**अतो भावत्वेऽभावत्वे वा नास्त्येव भेदो घटादि**रिति। भवने प्रस्तुते 'करोति'ग्रहणं किमर्थम्? सर्वधातूनां भवनार्थत्वप्रदर्शनार्थम्, तत आह—**यं तं भुवोऽर्थमभिदधति सर्वधातव** इति। एतस्माद् भावान्न घटादिर्भिन्न इति।

तच्च प्रत्यस्तमितनिरवशेषविशेषणं भवनम्, निमग्नानि निलीनानि प्रत्यस्तमितानि तत्रैव भावे निरवशेषाणि विशेषणानि स्व इति पर इति वा घटः पट इत्यादि वा। तच्च[4] **सर्ववस्तुगर्भः**, तदेव भवनं सर्ववस्तूनां मूलदलिकम्[5]। **सर्वबिम्बसामान्यम्**, मुद्राप्रतिमुद्रान्यायेन भिद्यमानानामात्मरूपाणां स्फटिकवदनेकधा[6] दृश्यमानानां बिम्बभूतानां प्रतिबिम्बभूतानां च सामान्यम्, **अभिन्नं बीज**मित्यादितत्स्वरूपवर्णनानि एवम्प्रकाराणि निर्विशेषणस्यांश्यंशपरिकल्पनयेति[7]। तत् कथं भाव्यते इति चेत्, उच्यते—**तदेव हि भवनं व्रीह्यादी**त्यादि यावत् **साधनमेकम्[8]**। भवनमेव व्रीहिबीजम्, आदिग्रहणादम्बुक्षेत्रकालादि अङ्कुरादि[9] वा। तदेव च **मृदादि** मृल्लोष्टवज्राश्मसिकतादि च 'भवनमेव' इति वर्तते, **साध्यं साधनं** च भवति, पुरुषवादिव्याख्यानन्यायेन स्वयमेव विश्वमादि वर्तते, यथा तदभिन्नकर्तृकरणादि साधनं साध्यं च

---

१ **तत्** य० प्रतिषु नास्ति ॥ २ **इति व्यति**° पा० डे० लीं० वि० ॥ ३ **घटपट** प्र० ॥ ४ **तत्र सर्ववस्तुदाभा तदेव** प्र० ॥ ५ **मूलकंदली सर्व**° य० ॥ ६ °**कवाधा**(°कथा वा ?) **दृश्य**° य०। °**कवा दृश्य**° भा० ॥ ७ °**स्यांदंश**° प्र० ॥ ८ °**मेव भवन**° य० ॥ ९ °**दि च** पा० डे० लीं० वि० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदा, हस्त्यादिप्रपञ्चेन पुरुषस्यैव हस्त्यादिमृदादिभवनवत्। घटादेरभवनस्य भेदस्यासत्त्वमेव, भावाद् भिन्नत्वात् खरविषाणवत्, अघटत्वादात्मनाऽभावात् पटवत्।

विकल्पो हि भेदसंसर्गपरिणामैर्भवेत्। न चास्य भेदो न संसर्गो न विपरिणामः, एकतत्त्वात्मकत्वात्, प्रतिस्वत्ववत्। विकल्पेन च भाव एव, नाभावः

तथा भवनमेव आत्माव्यतिरिक्तं साधनं साध्यं चैकमेव तथा तथा, **अहेय**मपरित्याज्यं भवनमेव व्रीह्यादि[१]विकल्पानन्त्येऽपि तदवस्थमेव, **अप्रच्युत**मात्मस्वरूपाद् भवनात् **सदा** सर्वकालम्। को दृष्टान्तः? **हस्त्यादि**[२] यावद् **भवनवत्**, यथा नटादिरभिनयपुरुषो[३] हस्त्यश्वपर्वतसरित्समुद्रादिप्रपञ्चानभिनयति स्वतः सृजत्युप- १७० २ संहरति च तथा तथा भवनात्, [४]ते च न हस्त्यादयोऽन्ये ततः केचिद् भेदेन भवन्ति, [५]हस्त्यादिप्रपञ्चेन तु पुरुष एव **हस्त्यादिर्मृदादिश्च भवति**[६], 'आदि'ग्रहणाच्चित्रलेप्यकाष्ठपुस्तादिर्भवति[७], तथा भवनमेव पृथिव्यम्बुमृदादि[८] भवति, न भेदः कश्चिद् भवनाद् घटादेः, किं कारणम्? एकत्रैवोपयुक्तार्थत्वात्। **घटादेरभवनस्य**[९] **भेदस्यासत्त्वमेव भावाद् भिन्नत्वात् खरविषाणवत्**। भावाद् भिन्नोऽपि घटो भवत्येव चेत्, तस्य भवने वन्ध्यापुत्रोऽपि भवेत्। एतस्य दिङ्मात्रत्वाद**घटत्वादात्मनाऽभावात् पटवत्**, घटभवनं हि घटः, तदभावो भावाभावश्चाघटः, तस्माद**घटत्वाद्** घटात्मनाऽभावात्। [१०]एतमेवार्थं व्याचष्टे – **आत्मनाऽभावा**दिति, साधनान्तरमेव वा अन्यात्मना भावादिति यावत्। **पटवत्**, यथा पटो घटात्मनाऽभवन् घटो न भवत्येवं घटोऽपि घटात्मना अभवनाद् घटो मा भूत्, घटात्मना अभवनं च भावाद् भिन्नत्वाभ्युपगमात् सिद्धम्। न चेदेवम्, वन्ध्यापुत्रोऽपि [११]भवेद् घटात्मनाऽभवनात् पटवत्। घटवदेव वा तद्भावाद् [१२]भेदाभावः, घटादिभेदाभावाच्च भाव एवाविकल्पोऽत्र सत्यः।

इदानीं भेदकारणदिशमुद्ग्राह्य दूषयिष्यन्नाह – **विकल्पो ही**त्यादि। विकल्पो [१३]न सत्यः, स तु भवन्नेभिस्त्रिभिः कारणैर्भवेद् **भेद-संसर्ग-परिणामैः**। तत्र भेदेन घटाद् भिद्यमानात् कपालानि परस्परतो भिन्नानीति गृह्यन्ते। संसर्गेण तन्तूनां सङ्घातेन पटस्तन्तुभ्योऽन्य उत्पन्न इति। परिणामेन क्षीरं दधित्वेन परिणतम्, दधि क्षीरादन्यत्, एतेषां चान्यता उक्तिप्रयोजनादिनानात्वाल्लोके प्रसिद्धेति, एता भेदवाद्युपपत्तयो भवन्त्यो भवेयुः। तत्र **न चास्य भेदो न संसर्गो न विपरिणाम** इत्येतास्तिस्रः प्रतिज्ञा एक- १७१-१ हेतुसाध्याः। कोऽसौ हेतुः? उच्यते – **एकतत्त्वात्मकत्वात्**, तस्य भावस्तत्त्वम्, एकं तत्त्वमनन्यत्, स एवात्[१४]मास्य भाव इत्येकतत्त्वात्मा, तद्भावादेकतत्त्वात्मकत्वात्, **प्रतिस्वत्ववत्**, यथा स्वं स्वं प्रति प्रतिस्वं त्वन्मतेन भिन्नानामसाधारणः स्वात्मा यः स तु भाव [१५]इत्येवैकतत्त्वात्मकत्वान्न भेदसंसर्गपरिणामात्मक-

---

१ **तथा अहेय**° रं० ही० ॥ २ **हस्तादि यावद्** भा०। **हस्ता यावद्** य० ॥ ३ **नग्रटादि**° भा०। **घटादि**° य० ॥ ४ **चेतन हस्त्या**° प्र० ॥ ५ **हस्त्याप्रप**° प्र० ॥ ६ °**दिमृदा**° प्र० ॥ ७ °**दिर्भवति** भा० ॥ ८ °**ना घटादेः** प्र० ॥ ९ **घटादिरभवनस्य मेवनस्य भेदस्या**° भा०। **घटादिरभवनस्तस्याभवनस्य भेदस्या**° य० ॥ १० **एवमेवार्थं** प्र० ॥ ११ **भवति** भा० ॥ १२ **भेदभाव घटादिभेदभावाच्च** य०। **भेदभावाच्च** भा० ॥ १३ **नरात्य** य०। **नारात्य** भा० ॥ १४ °**त्मा भाव** य० ॥ १५ **इत्येचैक**° भा० पा० डे० लीं०। **इत्येत्वैक**° रं० ही०। **इत्येष्वैक**° वि०। अत्र **इत्येकैक**° इत्यपि पाठः स्यात् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खपुष्पादिरसत्त्वात् । इति तत्त्वादेव कुतोऽत्र विकल्पः ?

ननु भेदः प्रत्यक्षत एव गृह्यते पूर्वोत्तरादिदिक्कालोत्पत्तिविनाशवस्तुप्रविभक्तत्वात्, अभेदश्च न गृह्यते ।

अस्ति किञ्चिदिति भावव्यतिरेकेण पूर्वोत्तरादिदिक्कालोत्पत्तिविनाशवस्तुप्रविभागाभावात् स एव ह्युत्पाताद्युदकाग्नित्ववदन्यथा वर्तमानोऽन्यथापि वर्तत एव, न

स्तथा भावोऽपीति नास्ति विकल्पो भावस्य । अथापि स्याद्विकल्पः सोऽस्मन्मतेनैव न भेदाभ्युपगमेनेत्यत आह—**विकल्पेन च[1] भाव एव, नाभावः खपुष्पादिरसत्त्वा**दिति भाववदेवासौ भाव एकनित्यसर्वगतत्वादिधर्मा, तस्यैव घटपटादिना भवनम्, नास्य भेदः कश्चित्, भेदश्चाभावो भावानात्मकत्वादित्युक्तम् । तस्मादसत्त्वादसौ न विकल्प्येत भेदः खपुष्पवत् । अतः सम्भाव्यमानश्च स्वभाव[2] एव विकल्पितः त्वन्मतेऽपि तस्यापि भावस्य **इति तत्त्वादेव** प्रागुक्तहेतुप्रकारेण तत्त्वादेकत्वादेव **कुतोऽत्र** भावे **विकल्पः** ।

इतर आह—**ननु भेदः प्रत्यक्षत** इत्यादि याव**दभेदश्च न गृह्यते** । पूर्वोऽयमुत्तरो घट इति दिग्भेदेन, **आदि**ग्रहणादूर्ध्वाधोदक्षिणापरभेदेन च गृह्यते घटादिः, तथा उत्पन्नो विनष्ट इत्युत्पत्तिविनाशाभ्याम्, वस्तुतोऽपि घटपटादिरूपरसादिस्वरूपभेदेन कृष्णो रक्तः खण्डः शकल इत्यादि, एभिः कारणैः प्रविभक्तत्वादर्थानां भेदेन गृह्यमाणानां कथं भेदाभावः ? **पूर्वोत्तर**शब्दाभ्यां देशकालपरिणामक्रमा अपि गृहीताः । एवं प्रत्यक्षतो ग्रहणं भेदानाम्, **अभेदश्च न गृह्यते** 'प्रत्यक्षत एव' इति वर्तते ।

१७१-२ अत्रोच्यते—**अस्ति किञ्चिदित्यादि** । पूर्वोत्तरादिभेदाभावं प्रतिपाद्य प्रत्यक्षत्वाभावं च प्रतिपादयिष्यन् भेदाभावप्रतिपादनार्थं तावदाह—**अस्ति किञ्चिदिति भावव्यतिरेकेण** पूर्वमुत्तरं वा नास्त्येव प्रागुक्तकारणत्वात्, ततः किं तदपूर्वं यदुत्पद्यते पूर्वं वा विनश्यति ? इति पूर्वोत्तरयोरभावादेवोत्पत्तिविनाशौ न स्तः, तत एव वस्तु[3]प्रविभागोऽपि नास्ति । तस्मात् **पूर्वोत्तरादिदिक्कालोत्पत्तिविनाशवस्तुप्रविभागाभावात्** किं तत् प्रविभक्तं प्रविभज्यते प्रविभक्ष्यते वा ? यत् तदेवंधर्म तदेव नास्तीति नापूर्वं भावादन्यत् पूर्वोत्तराद्यस्ति, अतो नाभावो भेदो भवति । कथं तर्हि भेदप्रत्यक्षतेति चेत्, उच्यते—**स एव ह्युत्पाताद्युदकाग्नित्वव**दित्यादि याव**दन्यथापि वर्तत एव** । यथोत्पाते ज्वलनमुदकस्य शीतद्रवादिगुणस्य, स तोये तद्विरोध्यग्नित्वधर्मापत्त्या दृष्टो भेदोऽन्यथा वर्तमानस्यान्यथा वर्तनम् । **आदि**ग्रहणाद् निष्युपलिङ्गत्वेन भूम्यबादिवर्तनं भेदेन । तद्यथोक्तम्—महाकालगत ऊष्मा सहस्रसङ्ख्ये धूमो लक्षे ज्वलनं कोटौ [ ] इति । तथा चित्रकर्मादिहसनरोदनस्थानसङ्क्रान्त्यादिभेदरूपेण स एव भावो भवतीति तस्मान्नास्ति भेदः । भिद्यमानं हि वस्तु एवं भिद्यते स्वरूपाद् विपर्ययगत्या य[6]द्यभावो भवेद् भावः, स तु न

---

१ **च नाभाव एव नाभावः** भा० ॥ २ **स्वस्वभाव** भा० । 'सम्भाव्यमानश्च स भाव एव' इत्यपि पाठोऽत्र स्यात् ॥ ३ **°प्रतिभागोऽपि नापि तस्मात्** य० । **°प्रतिभागोऽपि तस्मात्** भा० ॥ ४ **°पादि°** प्र० ॥ ५ **महाकालगतो ऊष्मा** वि० रं० ही० । **महाकालमतो ऊष्मा** भा० पा० डे० लीं० ॥ ६ **यद्यभावो भावो भवेद्भावः** य० । **यद्यभावो भवो भावो भवेद्भावः** भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिद्यते कथञ्चिदुपचितापचितभवनो वेति न काचिदवस्था दधिघटादिरादिनिधनविभागवती। यदि स्यात्, खपुष्पावस्थापि तत्रयधर्मा स्यात् सर्वतो व्यावृत्तत्वाद् दधिघटवत्। घटो वा आदिनिधनविभागरहितः स्यात्, अत एव, खपुष्पवत्। महापृथिवीवियदवस्थे सादिनिधनविभागे स्याताम्, इतरेतरासत्त्वात्, घटवत्। घटोऽपि वा अनाद्यादिः, अत एव, आकाशमहापृथिवीवत्।

ग्रहणमपि नैव भेदस्य, भेदस्याभावादेव, खपुष्पग्रहणवत् कल्पनात्मकत्वात्। देशकालभेदग्रहणमसदध्यारोपात्मकं देशकालभेदाभावात् खपुष्पवत्।

---

[1]भिद्येऽहमिति कथञ्चिदभावोऽपि भवति, भावादभावो हि भिन्न उपचितापचितभवनो वेति स एव भावो **न भिद्यत** इति **कथञ्चिदुपचितापचितभवनो वेति** सम्बन्धः, यावद् भवितव्यं तावदेव न न्यूनो नाधिको वा भवति स भावः। **इति**शब्दो हेत्वर्थे, उपचितापचितभवनाभावे दधिघटाद्यवस्थानामादिनिधनविभागाभावदर्शनादिति हेतुः, तं दर्शयितुमाह—**इति न काचिदवस्था दधिघटादिरादिनिधनविभागवती,** आदिः प्राग[2]विद्यमानस्योत्पत्तिः, निधनं विद्यमानस्य विनाशः, विभागोऽन्यत्वम्, एते चादिनिधन- १७२-१
विभागा दधिघटाद्यवस्थानां न सन्ति पूर्वोत्तरोत्पत्तिविनाशवस्तुप्रविभागाभावस्य प्रतिपादितत्वात्। ततस्तदभावान्नोपचीयते नापचीयते चासौ भावः क्षीरदध्याद्यवस्था[3]स्वेकरूपत्वाद् भवनस्य मृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु चेति। एतस्य हेतोरसिद्धिं परिहरन् परपक्षेऽनिष्टापादनेन साधयति—**यदि स्यादि**त्यादि, आदिनिधनविभागवती यदि स्यात् सा दधिघटाद्यवस्था **खपुष्पावस्थापि** तत्र[4] **तत्रयधर्मा स्यात् सर्वतो व्यावृत्तत्वाद् दधिघटवत्,** सर्वतो व्यावृत्तत्वं च सिद्धं घटस्य दधिघटाद्यवस्थानां च भेदाभ्युपगमात्, तथानिच्छतस्तद्विपर्ययेण खपुष्पधर्मापादनं घटस्य गतार्थं साधनद्वयम्। **महापृथिवीवियदवस्थे सादिनिधनविभागे स्याताम्, इतरेतरासत्त्वाद् घटवत्। घटोऽपि वाऽनाद्यादिः** अनादिरनिधनो निर्विभागश्च स्यादत **एव** इतरेतरासत्त्वादेव **आकाशमहापृथिवीव**दिति घटभेदाभ्युपगमेनैवैतत् साधनमनिष्टापादनमिति। एवं तावदुपचितापचितभेदाभावः।

यदप्युक्तं[5] प्रत्यक्षत एव भेदो गृह्यत इति तद् **ग्रहणमपि नैव भेदस्य, भेदस्याभावादेव, खपुष्पग्रहणवत्।** अभावः **कल्पनात्मकत्वात्** तस्य, भावैक्यस्य साधितत्वाद् भेदः कल्पनात्मकः, कल्पनात्मकं चासद् वस्तुनोऽन्यथात्वात्। सा च कल्पना देशतः कालतो वा स्वरूपत एव वा भिन्नेष्वर्थेष्वभेदकल्पनाद्वा स्यात्, देशकालाद्यभेदे वा भेदकल्[6]पनात् स्यात्, उभयथाप्यसद्रूपत्वात् कल्पनायाः, इह तु त्वन्मतेन १७२-२
देशकालाभ्यामभेदो नास्ति, भेद एव, घटादेः कपालादित्वेन भिद्यमानस्य वस्तुनो यावत् परमाणुशो रूपादिशोऽनभिलाप्यत्वशश्च भेदादभेदाभावः कालतश्च क्षणे क्षणेऽन्यत्वात्। तस्मादनभिलाप्यपरमार्थस्य च वस्तुनो घट इति रू[7]पादि इति वा **ग्रहणमसदध्यारोपात्मकं देशकालभेदाभावात् खपुष्पवत्,**

---

१ **भिद्यहमिति** य० ॥ २ **प्रागभिद्य**° प्र० ॥ ३ °**स्थाद्येकरू**° प्र० ॥ ४ **तत्र तत् त्रय**° पा० डे० लीं०। **तत्र वत् त्रय**° भा० वि० रं० ही०। अत्र 'खपुष्पावस्थापि तत्रयधर्मा स्यात्' इत्यपि पाठः स्यात ॥ ५ दृश्यतां पृ० २३६ पं० २ ॥ ६ °**ल्पना स्यात्** प्र० ॥ ७ **रूपादिरिति** भा० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अभेद एव तु गृह्यते प्रत्यक्षतः, भावस्याभिन्नत्वाद् गृह्यमाणस्य च भावत्वात्।

अथ समस्त एव कस्माद् भावो न गृह्यते? अथ भेदपक्षे किं समस्त एव घटो न गृह्यते? समानदोषत्वादचोद्यमेतत्। स्वपक्षे विशेषं पश्यत एतद्युज्येत वक्तुम्, न तु सर्वत्रैवादर्शनभाक्पक्षस्य।

तत्तु अदर्शनमत्रैव निवर्तते, नान्यत्र। इहाभेदे भावे य एकदेशस्तस्य ग्रहणे तस्यैव ग्रहणम्, ततोऽभिन्नत्वात् तद्भावत्वात्, देशस्वात्मवत्। तस्य ह्येकोऽपि प्रथनं

खपुष्प इव खपुष्पवत् तत् प्रत्यक्षाभासमेवेत्यर्थः । यदप्युच्यते 'अभेदश्च न गृह्यते प्रत्यक्षतः' इति तदपि न, यस्मादभेद **एव तु गृह्यते प्रत्यक्षतः** । किं कारणम्? **भावस्याभिन्नत्वाद् गृह्यमाणस्य च भावत्वात्**, नाभावो गृह्यते यतः खपुष्पादिः ।

ब्रूयास्त्वम्—**अथ समस्त एव कस्माद् भावो न गृह्यत** इति। अत्र तु समस्तग्रहणं वक्ष्यामः सकारणम्, त्वद्ग्राहविनिवृत्त्यर्थं तावत् त्वां किञ्चित् पृच्छामो नाऽनाहतमुखो[2] मूर्खस्तिष्ठतीति—**अथ भेदपक्षे** पश्यता त्वया घटं **किं समस्त एव घटो न गृह्यत** इति, [3]परान्तादिभागाः किं न प्रत्यक्षाः? आराद्भागा एव किं प्रत्यक्षाः? इत्यत्र विशेषकारणं [4]कथयेति । किञ्चान्यत्, **समानदोषत्वादचोद्यमेतत्**, उभयोः समानो दोषो नासावेकतश्चोद्यते—भावस्य सर्वगतस्याप्रत्यक्षत्वदोषो मम नास्तीति । **स्वपक्षे** भेदस्य प्रत्यक्षत्वा[5]दि**विशेषं पश्यत एतद् युज्येत वक्तुम्** 'इत्थं भवति तथा न भवति' इति । एतदपि सम्भावनयो-
१७२-१ च्यते, **न तु सर्वत्रैव** अदर्शनभाक् पक्षो यस्य तव तस्य न तु युज्यत एवेत्यर्थः, सर्वत्रैव न घटे न रूपादौ वा न क्वचित् प्रत्यक्षता युज्यत इत्यर्थः । अथवा स्वपरपक्षयोः सर्वत्रैव । एतदुक्तं भवति—एवं हि स्वपक्षरागाविष्टो भवान् परमत्सरेण स्वदोषं नैव पश्यति स्वचरणलग्नपाशादर्शी प्रयोजनावस्थितामिषदर्शी इव शकुनिः, त्वत्पक्षेऽत्यन्तदर्शनासम्भवादेव घटादेः प्रत्यक्षत्वाभावः ।

इदानीमभेदपक्ष एव दर्शनं सम्भवति नान्यत्र इति वक्ष्याम इति यदुक्तं तद्दर्शयिष्यन्नाह—**तत्तु अदर्शन**मिति । तत् पुनरदर्शनम्, **तु** विशेषे, विशेषेणा**त्रैव** अभेदपक्ष एव **निवर्तते, नान्यत्रे**ति न भेदपक्षे यावन्निरभिलाप्यत्वशो भेदादित्युक्तम् । [6]दर्शनं तर्हि कथम्? इति तत् समर्थयति—**इहाभेदे भावे** यदेतत् सर्वं तद् भाव एवाभिन्नत्वात्, **तस्या**भिन्नस्य भावस्य [7]**यः एकदेशो घटस्तस्य ग्रहणे** घटस्य ग्रहणे **तस्यैव ग्रहणम्** भावस्यैव ग्रहणं समस्तस्य । किं कारणम्? **ततोऽभिन्नत्वात्**, ततो भावाद् घटस्याभिन्नत्वात् घटाद्वा भावस्याभिन्नत्वात्। तद् व्याचष्टे—**तद्भावत्वात्**, तस्यापि भावत्वात् तद्भावत्वात् पर्यायान्तरेण हेत्वन्तरं वा, घटोऽपि भाव एव चाभिन्नत्वात्, यो यो भावः स स तद्ग्रहणे गृह्यते । दृष्टान्तो **देश-**

---

१ दृश्यतां पृ० २३६ पं० ३ ॥ २ °**मुखोर्मूस्तिष्ठत इति** य० । °**मुखोर्मू**(मुखो मूक?)**स्तिष्ठति** भा० ॥ ३ दृश्यतां पृ० ९० पं० १८ ॥ ४ **कथयति** प्र० ॥ ५ °**त्वादि विशेषं** डे० लीं० । °**त्वादिति विशेषं** भा० पा० वि० रं० ही० ॥ ६ **तद्**(तद्?)**र्शनं** भा० ॥ ७ **स एकदेशो** प्र० । दृश्यतां पृ० २४० पं० ६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रति देशः सर्वाविभक्तभवनवृत्त्यात्मकत्वात् सार्वरूप्यमनतिक्रान्तः, न चास्योर्ध्वाधस्तिर्यग्दिक्षु मूर्तिविवर्तप्रत्यङ्गानामेकत्वाभिमतभेदवत् क्वचिदवच्छेदो विद्यते। इति स ध्रुवः कूटस्थोऽविचाल्यनपायोपजनोऽविकार्यनुत्पत्तिरवृद्धिरव्यय उक्तवत्।

स्वात्मवत्, [1]देशस्य स्वात्मा देशस्य भावः स्वं तत्त्वं भावादभिन्नत्वात् तद्भावाद् गृह्यते भाववत् तथा देशग्रहणे समस्तो भावस्तद्भावत्वाद् गृह्यते ।

एतद्भावनार्थमाह – **तस्य ह्येकोऽपि प्रथनं प्रति देशः**, हिशब्दो यस्माद[2]र्थे, यस्मात् तस्यैकोऽपि देशः प्रख्यान् **सर्वाविभक्तभवनवृत्त्यात्मकत्वात्** सर्वेण समस्तेन भावेनाविभक्तः 'भवनम्' इत्येवैकां वृत्तिमनुभवत्यात्मरूपामिति सोऽपि देशः सर्वभावात्मा प्रागुक्तप्राण्याद्यवयवपुरुषात्मत्ववत्, अत आह – **तस्य ह्येकोऽपि प्रथनं प्रति देशः सर्वाविभक्तभवनवृत्त्यात्मकत्वात् [3]सार्वरूप्यमनतिक्रान्तः** । [4]ततोऽनेन १७३-२ न्यायेन देशग्रहणे समस्तग्रहणमित्यभेदपक्ष एव दर्शनं नान्यत्रेति । नन्वेकदेशश्च स एव चेति विप्रतिषिद्धमिति [5]चेत्, तन्न, ज्ञायमानत्वापेक्षयोक्तत्वात्, त्वन्मत्या सावयव इव निरवयवोऽपि प्रख्यातीति मया तथोक्तम्, परमार्थतस्तु निर्विभाग एवासावुक्तो वक्ष्यते च । अथवा प्रथनं विस्तारः, विस्तीर्णत्वात् तस्य भावस्य प्रथनं देशं प्रति इत्यदोषः । तस्मा[6]च्चाविभक्त इत्युक्तम् । अत आह – **[7]न चास्योर्ध्वाधस्तिर्यग्दिक्षु मूर्तिविवर्तप्रत्यङ्गानामेकत्वाभिमतभेदवत् क्वचिदवच्छेदो विद्यते** दक्षिणो[8]त्तरमथुरयोरपि, किमु घटपटयोर्भवनैकमूर्तिविवर्तानवच्छेदादिति । **यथै**कत्वाभिमतस्य भेदस्य घटादेर्मूर्तेः शरीरस्य विवर्तानां विभागानामूर्ध्वाधस्तिर्यग्दिक्कयाङ्गावयवतया नापरः किन्तु प्रत्यङ्गतया च पुरुषपाण्यादिवत् कपालादित्वेन आभासमाना[9]नामेकोऽन्याभेदश्चक्षुरादिग्राह्याभिमत एकत्वाद् निर्विभागस्तथा भावविवर्तप्रत्यङ्गानां तदेकत्वाद् निर्विभागः । तस्माद् भावस्य न क्वचित् [10]त्वदभिमतभेदवदेकत्वादवच्छेदो विद्यत इति यदि घटादित्वेन यदि रूपादित्वेन त्वदिष्टभेदवदेव । **इति**शब्दो हेत्वर्थे, यस्माद् विभागावच्छेदाभावाद्धेतोः स भावो [11]**ध्रुव**स्त्रिष्वपि कालेषु, **कूटस्थो** माषराशिस्थमाषवत् सर्वेणैकीभूत एव, **अविचाली** न स्थानात् स्थानान्तरं सङ्क्रामति, **अनपायोपजनः** कोष्ठागार[12]धान्यवद् निर्गमप्रवेशावपायोपजनौ भावस्य न स्तः, **अविकार्य**पि स्वस्थानस्थस्यापि नर्तकीभ्रूक्षेपादिवद् विकाराभावात्, **अनुत्पत्तिः** प्रागभूत्वा घटादिवदुत्पत्त्यभावात्, **अवृद्धि**रङ्कुरपत्रवदुपचया- १७४-१ भावात्, **अव्ययो** वृक्षादिपत्राद्यवयवखण्डादिवद् व्ययाभावात् । एतानि हि नित्यविशेषणानि भावस्यैव घटन्ते न पुरुषादीनाम्, अत्र भावे ध्रुवादिनित्यलक्षणयोगः परपरिकल्पितभेदासम्भविधर्मत्वेन [13]व्याख्यातः स्वरूपतो निदर्शनाभावात् । **उक्तव**दिति च पूर्वोत्तरोत्पत्तिविनाशवस्तुप्रविभागाभावाद् युक्तो नित्यैकसर्वात्मकत्वातिदेशः ।

---

१ **तस्य देशस्य** पा० डे० लीं० रं० ही० ॥ २ °**दर्थो** भा० ॥ ३ "अपि खलु ब्रह्मविद आहुः–'प्रदेशोऽपि ब्रह्मणः सार्वरूप्यमनतिक्रान्तश्चाविकल्पश्च' इति ।" इति **भर्तृ**हरिविरचितायां **वाक्यपदीय**वृत्तौ १।९ ॥ ४ **ततोन्येन** प्र० ॥ ५ **चेत्तत्र ज्ञा**° भा० । **चेनत्र ज्ञा**° य० ॥ ६ °**च्चापि वि**° भा० ॥ ७ "न चास्योर्ध्वमधस्तिर्यग्वा मूर्तिपरिवर्तप्रत्यङ्गानां क्वचिदवच्छेदोऽभ्युपगम्यते ।" इति **भर्तृ**हरिविरचितायां **वाक्यपदीय**वृत्तौ १।१ ॥ ८ °**त्तरयोरपि** य० ॥ ९ °**मेकोत्या**- (मेकोऽन्यो ?) **भेद**° भा० । °**मेकोत्याभेद**° पा० डे० लीं० रं० ही० । °**मेकोत्यभेद**° वि० ॥ १० **तदभि**° प्र० ॥ ११ दृश्यतां पृ० २१ पं० २२, पृ० २१२ टि० ४ ॥ १२ °**रधावद्** प्र० ॥ १३ **व्याख्यातो स्व**° प्र० ॥

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

अस्य प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धिरिहैव, अन्यत्रानुमानतैव सम्बन्धैकदेशप्रत्यक्षत्वप्रत्ययशेषसिद्ध्यात्मकत्वात् । कुतोऽनुमानतापि? सम्बद्धयोः कदाचिदग्रहणात् प्रत्यक्षपूर्वकत्वे तत्सम्भवात् तदभावे तदसिद्धेः। कुतोऽज्ञानमपि? प्रत्यक्षपूर्वका-

---

किञ्चान्यत्, **अस्य प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धिरिहैव,** अभिन्नभावपक्षे प्रत्यक्षत्वाद् भावस्य प्रत्यक्षं प्रमाणं सिध्यति, 'उक्तवत्' इति वर्तते[1] । यथोक्तं तस्य[2] श्लोकोऽपि प्रथनं प्रतिदेशः सर्वाविभक्तभवनवृत्त्यात्मकत्वात् सार्वरूप्यमनतिक्रान्तः, ततस्तद्भावत्वात् ततोऽभिन्नत्वात् तस्य य एकदेशस्तस्य ग्रहणे तस्यैव ग्रहणं देशस्वात्मवदित्युक्तं भावप्रत्यक्षत्वम् । ततः सर्वप्रमाण[3]ज्येष्ठप्रत्यक्षप्रमाणसिद्धिरिहैव यथार्थ[4]वस्तुविषयत्वात् । **अन्यत्रानुमानतैव,** भावैकवस्तुपक्षादन्यत्र भेदपक्षेऽनुमानतैव प्रत्यक्षाभिमतस्यापि । किं कारणम् ? **सम्बन्धैकदेशप्रत्यक्षत्वप्रत्ययशेषसिद्ध्यात्मकत्वात्,** द्वयोः सम्बद्धयोः सम्बन्धे तदेकदेशप्रत्यक्षत्वे तत्प्रत्ययाच्छेषसिद्धिरात्मा अनुमानस्येति तदात्मकं तत्, **सम्बद्धैकदेश** इति वा पाठः, यथोक्तम्—

सम्बद्धादेकस्मात् प्रत्यक्षाच्छेषसिद्धिरनुमानम् । [ ]

सम्बद्धानां भावानां स्वस्वामिभावेन[5] वेत्यादिना सप्तविधेन कश्चिदर्थः कस्यचिदिन्द्रियस्य प्रत्यक्षो भवति । तस्मादिदानीमिन्द्रियप्रत्यक्षाच्छेषस्य अप्रत्यक्षस्यार्थस्य या सिद्धिरनुमानं तत्, यथा धूमदर्शनात्
१७४-२ 'अग्निः' इति ज्ञानम् । तथा आत्मेन्द्रिय[6]मनोऽर्थसन्निकर्षजपूर्वकं त्रिविधं पूर्ववदित्यादिलक्षणमेव तत्र सम्भवति । देशग्रहणस्य आराद्भागविषयस्याशेषतद्वस्त्वसंस्पर्शादेकदेशग्रहणेन शेषग्रहणमनुमानमेव । तस्यानुमानत्वेऽपि मा स्थिरां बुद्धिं कार्षीरित्यत आह—**कुतोऽनुमानताऽपि** प्रोक्तन्यायेन प्रत्यक्षत्वासिद्धेः । कथमिति चेत्, **सम्बद्धयोः कदाचिदप्यग्रहणात्,** प्रत्यक्षकाले हि सम्बद्धयोर्युगपद् ग्रहणादुत्तरकालमेकदेशग्रहणाद् विषाणादिव[7] गवि अनुमानं स्यात्, तदेव तु प्रत्यक्षदर्शनं नास्तीत्युक्तम् । **प्रत्यक्षपूर्वकत्वे तत्सम्भवात्** प्रत्यक्षसिद्धौ तद्बलेन अनुमानसिद्धिः सम्भाव्येत[8], **तदभावे तदसिद्धेः**[9] प्रत्यक्षत्वासिद्धेरनन्तरोक्तत्वादेव कुतोऽनुमानतापि ? ।

इतरो निराशीभूत आह—तत् किमज्ञानमेवापद्यते ? आचार्य आह—**कुतोऽज्ञानमपी**ति, अज्ञानमपि तन्न भवति त्वदभिमतं प्रत्यक्षम् । कुतः ? **प्रत्यक्षपूर्वकाज्ञानत्रयेऽन्तर्भावाभावात्,** संशयविपर्ययानध्यवसाया अज्ञानविकल्पाः, ते च प्रत्यक्षज्ञानपूर्वकाः, संशयस्तावत् सामान्यप्रत्यक्षाद् विशेषाप्रत्यक्षाद्

---

१ **वर्तते** य० प्रतिषु नास्ति ॥ २ दृश्यतां पृ० २३८ पं० ६ ॥ ३ °**प्रमाज्येष्ठ**° प्र० ॥ ४ **यथावस्तु**° य० ॥ ५ "स्वस्वामिभावेन वा प्रकृतिविकारभावेन वा कार्यकारणभावेन वा निमित्तनैमित्तिकभावेन वा मात्रामात्रिकभावेन वा वध्यघातकभावेन वा कश्चिदर्थः कस्यचिदिन्द्रियस्य प्रत्यक्षो भवति" इति वक्ष्यतेऽत्र **नयचक्रवृत्तौ** पृ० ४४५–२ । "एतेनैव 'मात्रानिमित्तसंयोगिविरोधिसहचारिभिः । स्वस्वामिवध्यघाताद्यैः साङ्ख्यानां सप्तधानुमा ॥ १ ॥' इत्यपि परास्तं वेदितव्यम् ।" इति **न्याय**वार्तिकतात्पर्यटीकायाम् १।१।५ ॥ ६ "इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् । अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत् सामान्यतो दृष्टं च ।" **न्यायसू०** १।१।४,५ ॥ ७ °**णादिव** वि० विना । °**णादेव** वि० ॥ ८ **सम्भाव्यते** य० ॥ ९ **तदसिद्धेरनन्तरो**° भा० । **तदसिद्धेः प्रत्यक्षत्वात्सिद्धेरनन्तरो**° वि० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानत्रयेऽन्तर्भावाभावात् संशयनीयविपर्येतव्यविषयप्रत्यक्षात्यन्ताभावादाधिक्याव्यवसायासम्भवाच्चानध्यवसायासम्भवात् ।

अन्वाह च—

[1]यथा विशुद्धमाकाशं तिमिरोपप्लुतो जनः ।
सङ्कीर्णमिव मात्राभिश्चित्राभिरभिमन्यते ॥
तथेदममृतं ब्रह्म निर्विकारमविद्यया ।
कलुषत्वमिवापन्नं भेदरूपं प्रकाशते ॥
तस्यैकमपि चैतन्यं बहुधा प्रविभज्यते ।
अङ्गारकितमुत्पाते वारिराशेरिवोदकम् ॥
प्रकृतित्वमनापन्नान् विकारानाकरोति सः ।
ऋतुधामेव ग्रीष्मान्ते महतो मेघसम्प्लवान् ॥ [ ]

विशेषस्मृतेश्च संशयः [वै० सू० २।२।१७], तथा **समानानेकधर्मोपपत्तेर्विप्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्थातश्च विशेषापेक्षो विमर्शः संशयः** [न्यायसू० १।१।२३] इति सामान्यविशेषयोः प्रत्यक्षपूर्वकत्वे समानानेकधर्मत्वादीनि विशेषणानि स्युर्नान्यथा स्थाणुपुरुषादिष्विति संशयनीयार्थाभावान्न संशयः । तत एव [2]विपर्येतव्याभावान्न विपर्ययस्त्वन्मतेनैवेत्यत आह—**संशयनीयविपर्येतव्यविषयप्रत्यक्षात्यन्ताभावात् ।** अनध्यवसायोऽध्यवसायपूर्वः, स चाधिकोऽवसायोऽध्यवसायः प्रत्यक्षज्ञानम्, एतदभावस्योक्तत्वाद् नाध्यवसायोऽनध्यवसाय इत्या**धिक्यावसायासम्भवाच्च** तद्व्यावृत्तिविषया**नध्यवसायासम्भवाद्** कुतोऽनध्यव- १७५-१
सायः ? तस्माद् यदुक्तं **[3]पुढविकायिकादी जीवा अन्धा मूढतमपविट्ठा** [[4]भगवतीसू० ७।७।२९२] इत्यादि तत् सत्यम् ।

अन्वाह चेति तस्मिन् जिनप्रवचनप्रसिद्धाभेदभावनिर्विकल्पविधिविधिनयदर्शने भेदाभासप्रत्यक्षानुमानसंशयविपर्ययानध्यवसायासम्भवमनुवर्त[5]मानोऽन्योऽप्याह । **यथा विशुद्धमाकाश**मिति दृष्टान्तसमर्थनम्, तिमिरोपप्लुतद्दष्टेर्विशुद्धे नभसि केशोन्दुकमशकमक्षिकामयूरचन्द्रिकादि**मात्राभि**रवयवैर्विततमिति निरवयवेऽप्यसङ्कीर्णे **सङ्कीर्ण**दर्शनं भवति । **तथेद**मिति दार्ष्टान्तिको भावैकपरमार्थः, अमरणाद**मृतम**विनाशाद् बृहत्त्वाद्

---

१ "तथा ह्युक्तम्—यः सर्वपरिकल्पानामाभासेऽप्यनवस्थितः । तर्कागमानुमानेन बहुधा परिकल्पितः ॥ १ ॥ व्यतीतौ भेदसंसर्गौ भावाभावौ क्रमाक्रमौ । सत्यानृते च विश्वात्मा प्रविवेकात् प्रकाशते ॥ २ ॥······प्रकृतित्वमपि प्राप्तान् विकारानाकरोति सः । ऋतुधामेव ग्रीष्मान्ते महतो मेघसम्प्लवान् ॥ ४ ॥ तस्यैकमपि चैतन्यं बहुधा प्रविभज्यते । अङ्गारकितमुत्पाते वारिराशेरिवोदकम् ॥ ५ ॥······यथा विशुद्धमाकाशं तिमिरोपप्लुतो जनः । सङ्कीर्णमिव मात्राभिश्चित्राभिरभिमन्यते ॥ १० ॥ तथेदममृतं ब्रह्म निर्विकारमविद्यया । कलुषत्वमिवापन्नं भेदरूपं विवर्तते ॥ ११ ॥" इत्युद्धृतमिदं कारिकाचतुष्टयं भर्तृहरिणा वाक्यपदीयवृत्तौ १।१ ॥ २ **विपर्ययेण**(विपर्ययि ?)**तव्याभावान्न विपर्ययस्त्वन्मतेनैवेत्यत आह संशयनीयविपर्यये**(यि ?)**तव्य**° प्र० । विपरिपूर्वकोऽयधातुश्चेदत्राभिप्रेतस्तर्हि **विपर्ययितव्य**° इति पाठः सङ्गच्छेत ॥ ३ **पुढवी**° य० ॥ ४ "इमे भंते असण्णिणो पाणा तं जहा–पुढविकाइया जाव वणस्सइकाइया छट्ठा य एगइया तसा, एए णं अंधा मूढा तमंपविट्ठा तमपडलमोहजालपडिच्छण्णा अकामनिकरणं वेयणं वेदेंतीति वत्तव्वं सिया ? हंता गोयमा ! जे इमे असण्णिणो पाणा पुढविकाइया जाव वणस्सइकायिया छट्ठा य जाव वेयणं वेदेंतीति वत्तव्वं सिया ।" इति भगवतीसूत्रे पाठः ७।७।२९२ ॥ ५ °**मानोनोप्याह** डे० लीं० विना । °**मानोऽप्याह** डे० लीं० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एषु विधिविधिषु अविकल्पः शब्दार्थः, न त्वज्ञातः सर्वस्यैकत्वाद् यस्य कस्यचिज्ज्ञाने सर्वस्य ज्ञातत्वात् । अन्वाह—

शास्त्रेषु प्रक्रियाभेदैरविद्यैवोपवर्ण्यते ॥
अनागमविकल्पा तु स्वयं विद्योपवर्तते ॥ [वाक्यप० २।२३५]

ब्रह्म निर्विकारं [1]स्तिमितं [2]व्योमवदेव स्थितम्, नपुंसक[3]निर्देशः सर्वभेदाभिमतासद्विकारसाधारणत्वाद्[4]व्यक्ते गुणसन्देहे नपुंसकलिङ्गप्रयोगवचनात्, भवनापेक्षया वा नपुंसकम् । अकलुषमपि सदविद्यया ज्ञानाभासेन **कलुषत्वमिवापन्न**मनापन्नमपि अभेदरूपं सद् भेदरूपमाभाति । एवं तावदमलं मलरूपेणाभातीत्युक्तम् । इदानीमेकं सदनेकधा प्रविभज्यत इति ब्रूमः—**तस्यैकमपी**त्यादि । यथा उदन्वतां तोयमुत्पातेऽङ्गारराशिवत् प्रज्वलदुपलक्ष्यते तथास्यानेकरूपता मिथ्यैव । **प्रकृतित्व**मिति, प्रकर्षेण कृतिः **प्रकृति**र्घटपटा[5]दिप्रकारो भेदः, तद्भावमनापन्नानेव विकारांस्तानेव घटपटादीनात्मभावादप्रच्युतानेव [6]नर्तकहस्तभ्रूक्षेपादिकल्पाना-
करोति स स्वतः स्वात्मानं भाव एवाकाररूपेण सृजति उपसंहरति च, को दृष्टान्तः? **ऋतुधामेव,** ऋतूनां
१७५-२ धाम इन्द्रः, इन्द्र इव । निर्मलमाकाशं दृष्ट्वा वक्तारो भवन्ति—महावर्षस्य गर्भ इति, कुतो निर्मले नभसि
वर्षसम्भवः? तथापि तन्नैर्मल्याविनाशनेनैव शक्रः शक्रकार्मुक-[7]शतह्रदा-महाघन-स्तनित-वर्षित-करका-धारा-
वर्षादीन् सृजत्युपसंहरति चेत्युच्यते क्षणेनैव पुनस्तादृग्वैमल्यदर्शनान्नभसः । यथेयं ऋतुधाम्नः सृष्टिः शुद्ध-
गगनापृथग्भूतजलप्रकृतित्वाभिमतमेघादिरूपा तथा सर्वघटादिगवादिरूपा [8]सृष्टिर्भावादेवोपसंहारश्चेति भाव-
विधिविधिनयः समाप्तः ॥

एवं तावद् वस्त्वर्थतो विधिविधिनयविकल्पाः पुरुष-नियति-काल-स्वभाव-भावा व्याख्याताः । अनयादिशा शब्दब्रह्म[9]विधिविधिनयब्रह्माद्येककारणवादा उन्नयनीयाः । इदानीं तेषु शब्दार्थो वक्तव्यः, स च सामान्येनोच्यते सर्वेषां तुल्यत्वात् । स च द्विविधः—पदार्थो वाक्यार्थश्च । तत्र पदार्थस्तावत्—**एषु विधिविधिष्वविकल्पः शब्दार्थः,** उक्तेषु पुरुषा[10]दिवादेष्ववस्थाद्युपचरितप्रक्रियाभेदकल्पितविकल्पासत्त्वात् तद्वस्तुनिर्विकल्पत्वात् । **न त्वि**त्यादि, नाज्ञातः, सर्वस्यैकत्वाद् यस्य कस्यचिज्ज्ञाने सर्वस्य ज्ञातत्वात् । एतेन [11]वक्तृत्वाद्यसमन्वयो व्याख्यातो दृष्टान्ताभावात् सर्वस्य सर्वज्ञत्वा[12]द् भेदाभावात् । एतमर्थमन्योऽप्यन्वाह—**शास्त्रेषु प्रक्रिया** । साङ्ख्ययोगवैशेषिकवेदशिरःप्रभृति[13]षु नृप्रकृतिपुरुषद्रव्यगुणादिनित्यानित्याद्वैतद्वैतत्रैतादि-
पदार्थप्रक्रियाभेदैर्विकल्पात्मकपदार्थप्रणथने यथाप्रक्रियमविद्यैवोपवर्ण्यते विकल्पस्यावस्तुत्वात् । विद्या तु
१७६-१ तत्त्वज्ञानं सा आगमविकल्परूपा न भवितुमर्हति, वाग्गोचरातिक्रान्तत्वात् तत्त्वज्ञानविषयानन्तात्मकैकपर-

---

१ स्तिसिरं प्र० ॥ २ व्योमदेव भा० । व्योमादवि य० ॥ ३ °निर्देश सर्व भेदा° य० । °निर्देशा सर्व भेदा° भा० ॥ ४ "एवं हि दृश्यते लोके—अनिर्ज्ञातेऽर्थे गुणसन्देहे च नपुंसकलिङ्गं प्रयुज्यते । 'किं जातम्' इत्युच्यते, द्वयं चैव हि जायते—स्त्री वा पुमान् वा । तथा विदूरेऽव्यक्तं रूपं दृष्ट्वा वक्तारो भवन्ति—'महिषीरूपमिव' 'ब्राह्मणीरूपमिव' ।" इति पातञ्जलमहाभाष्ये १।२।६९ ॥ ५ °द्विप्रो भेदः भा० । °द्विपरो भेदः य० ॥ ६ र्तनकहस्त° प्र० ॥ ७ विद्युत् ॥ ८ सृष्टिर्भावा° प्र० ॥ ९ °ह्मविधिन° प्र० ॥ १० °दिवाष्वेवस्थाभ्युप° भा० । °दिष्वेवस्थाभ्युप° य० । अत्र °दिवादेष्वेवावस्थाद्युप° इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ११ दृश्यतां पृ० १७९ पं० ४ ॥ १२ °त्वात् भेदा° भा० । °त्वात् सदा° य० ॥ १३ °पुत्प्रकृति° रं० ही० विना । रं० ही० प्रत्योस्तु °षु प्रकृति° इति पाठः, स च समीचीन एवेति भाति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये त्वेते घटादिशब्दा मेघस्तनितवदेते शब्दा एव केवला नार्थस्वरूपस्य वाचका मयूरविरुतवत् सङ्केताद् व्यवहारानुपातिनस्तस्यैव चैकस्य ब्रह्मणो लक्षणार्थाः तदेकदेशत्वात् प्रागभिहितप्रत्यक्षसिद्धिवत् । एवं च कृत्वाहुः — सर्वधातवो भुवोऽर्थमभिदधति [ ] इति ।

मार्थस्य । यथोक्तम् — पैण्णवणिज्जा भावा [आव० नि० ४८८] इत्यादि । आगमाभ्यासात्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तपोविशेषैर्विशेषिताविद्यस्य सर्वभावविषया विद्या स्वयमेव स्वात्मनैव उपवर्तते, नाविद्यमाना कुतश्चिदानीयते, सा चानागमविकल्पेत्यत आह — **अनागमविकल्पा तु स्वयं विद्योपवर्तते ।** तथा चान्यः —

विकल्पयोनयः शब्दा विकल्पाः शब्दयोनयः ।
तेषामत्यन्तसम्बन्धो नार्थाञ्शब्दाः स्पृशन्त्यपि ॥

शब्दा इति शब्दगेंडुमात्रप्रतिपत्तिहेतव इत्यत आह — **ये त्वेते घटादिशब्दा मेघस्तनितवदेते शब्दा एव केवलाः, नार्थस्वरूपस्य वाचकाः,** घटादिप्रतिपादनसमर्थाभिमता न प्रतिपादका इत्यर्थः । नन्विदं प्रसिद्धप्रस्तुतव्यवहारविरुद्धं त्वयोक्तम् — अर्थस्याप्रतिपादका घटादिशब्दा मेघस्तनितवच्छ्रोत्रग्राह्यत्वादिति, घटादिशब्दा इति च त्वद्वचनादेव तेषां घटाद्यर्थप्रतिपादनदर्शनादिति । अत्रोच्यते — न ब्रूमः 'अप्रतिपादकाः' इति । किं तर्हि ? अवाचका इति ब्रूमः, प्रतिपत्तृसङ्केतवशात् तदुपलक्षणत्वेन प्रतिपादकत्वं विकल्पात्मार्थविषयं न विरुध्यते, यस्माद् **मयूरविरुतवत् सङ्केताद् व्यवहारानुपातिनः,** यथा मयूरविरुतं त्रासमर्दहर्षस्थानगमनाद्यन्यतमावस्थाविशेषसहचरं श्रुतचरं तथोत्तरकाले कृतसङ्गीतेः पुरुषस्य तादृग् विज्ञानमादधाति एवं पुरुषोऽपि घटपटादिशब्दोच्चारणेन पूर्वसङ्केतवशात् पुरुषान्तराय स्वाभिप्रायमर्पयतीति न प्रसिद्धिव्यवहारविरोधौ, तथैव अचेतनशब्देष्वपि कालाकालमेघस्तनितादिषु सङ्केतादेव शुभाशुभादिपरिज्ञानं १७६-२ दृश्यते । अथवा किमनेन प्रसिद्धिव्यवहारविरोधपरिहारपरिक्लेशेन ? नन्वयमेव सुश्लिष्टः परिहारो व्यापी च, तद्यथा — ते सर्व एव शब्दा**स्तस्यैव चैकस्य ब्रह्मणः** पुरुषाद्यन्यतमविधिविधिनयविकल्पस्य यथोपपादितं त्वया रुचितस्यान्यतमस्य **लक्षणार्थाः तदेकदेशत्वात् प्रागभिहितप्रत्यक्षसिद्धिवत् ।** यथा 'गौर्विषाणी ककुद्मान् प्रान्तेवालधिः सास्नावान्' इति यथैते विषाण्यादिशब्दा गोरेकदेशवाचित्वात् तदुपलक्षणार्थाः प्रसिद्धसङ्केतवशाद् गोरेव वाचकास्तदवयवानां तस्मादभिन्नत्वादेवं सर्वशब्दास्तदवयवानां ततोऽपृथक्त्वात् तस्यैव ब्रह्मणो वाचका इति वाचकत्वेऽप्युपपन्नः प्रसिद्धिव्यवहाराविरोधः । अभिन्नैकभवनब्रह्मोपलक्षणार्थत्वे सर्वशब्दानां शब्दलक्षणविन्मतिसंवादि ज्ञापकमाह — **एवं च कृत्वाहुः** शब्दलक्षणविद इति वाक्यशेषः । **सर्वधातवो भुवोऽर्थमभिदधती**ति तेषामप्यस्मिन्नेव दर्शने करोत्यादिधातूनां सत्तार्थोनति-

---

१ दृश्यतां पृ० ६ पं० ११ ॥ २ **विशेषिताविद्यस्य** विनाशिताविद्यस्य विशोषिताविद्यस्य विश्लेषिताविद्यस्येत्याशयः ॥ ३ **नार्थाशब्दाः** प्र० । दृश्यतां पृ० ४९८-१ ॥ ४ °**गतुमात्र**° प्र० ॥ ५ **किं तर्हि अवाचका इति** य० प्रतिषु नास्ति ॥ ६ °**दर्षस्था**° य० । °**दषस्था**° भा० ॥ ७ °**कालं** भा० ॥ ८ °**रिक्लेशेनत्वयमेव** प्र० ॥ ९ °**वादे** भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स एकोऽनवयवः शब्दो वाक्यार्थः, न तु सर्वाणि । सङ्ग्रहदेशत्वाचास्य द्रव्यार्थता । भवति भवनं भावो द्रवतीति द्रव्यम्, न विकारावयवौ ।

क्रमे [1]भ्वर्थवचनमुपपद्यते, 'भुवं [2]वदन्ति' इति [3]भूवादयः, वादिशब्दस्य [4]औणादिकेञन्तत्वात् तथा भूवादिशब्दव्याख्यानात्, नान्यथा । इत्युक्तः पदार्थः ।

इदानीं वाक्यार्थ उच्यते—**स एकोऽनवयवः शब्दो वाक्यार्थः,** वाक्यं च वाक्यार्थश्च वाक्यार्थः, वाक्येन युक्तोऽर्थो वाक्यार्थः, वाक्य[5]सम्बधी वाक्याद् [6]वाक्यस्यैवार्थः । यथाहुः—

आख्यातशब्दः सङ्घातो जातिः सङ्घातवर्तिनी ।
एकोऽनवयवः शब्दः क्रमो बुद्ध्यनुसंहृतिः ॥
१७७-१ **पदमाद्यं पृथक् सर्वं पदं साकाङ्क्षमित्यपि ।**
वाक्यं प्रति मतिर्भिन्ना बहुधा न्यायदर्शिनाम् ॥ [वाक्यप० २।१,२] इति ।

तत्र यैः 'एकोऽनवयवः शब्दः' इत्युक्तं तैर्विनिश्चित्योक्तं भवनस्यानवयवत्वात् तथैव पदवाक्यश[7]ब्दतदर्थात्मत्वादिति । **[8]न तु सर्वाणि** एकस्यैव सर्वत्वादिति [9]चरितार्थ एष द्रव्यार्थो विधिविधिनयः, हेतोर्वास्मात् **सङ्ग्रहदेशत्वाचास्य द्रव्यार्थतेति,** सङ्ग्रहो द्रव्यार्थः, स पुनर्द्विविधः—[10]सर्वसङ्ग्रहो देशसङ्ग्रहश्च, इत्येवमादिशतप्रस्तारोऽसावार्षे शतभेदश्रुतेर्नयानाम् । यथोक्तम्—**एक्किक्को य स[11]तविधो सत्त णयसता [12]हवंत्येवं** [आव० नि० ७५९] इति । सङ्ग्रहस्यापि द्रव्यार्थता

तित्थकरवयणसंगहविसेसपत्थारमूलवाकरणी ।
दव्वट्ठिओ य पज्जवणयो य सेसा विकप्पा सिं ॥ [सन्मति० १।३] [13]तिवचनात् ।

द्रव्यार्थसमासश्च [14]आदिनये व्याख्यातः । तस्मात् सङ्ग्रहदेशत्वात् तदवयवत्वादस्य द्रव्यार्थतेति ।

द्रव्यशब्दस्य कोऽर्थः? द्रवतीति द्रव्यम्, **गुणसन्द्रावो द्रव्यम्** [पा० म० भा० ५।१।११९], द्रव्यं भव्यं योग्यं भू प्राप्तौ [पा० धा० १८४५] इति प्राप्तियोग्यमिष्टार्थप्राप्तियोग्यं दारु, [15]क्रियावदादिलक्षणं द्रव्यम्, इत्येवमादि यथासम्भवं लक्षणं वाच्यम् । इह तु **भवति भवनं भावः । 'भवति'** प्राच्यचतुष्टये पुरुषादिस्वभावान्ते, **भवनं भावो**ऽन्ये पूर्वोक्तवत्, पूर्वविरुद्धत्यान्नयानां द्रवति [16]भवति गच्छति सततमिति **द्रव्यं** गत्यात्मकत्वात् द्रव्यं च भव्ये [पा० ५।३।१०४] इति वचनात्, **न विकारावय[17]वाविति** विधिनयायुक्तत्वाद् गतार्थम् ।

---

१ **स्वर्थ**° य० । **स्वार्थ**° भा० ॥ २ °**पद्य भुवं** प्र० ॥ ३ "भूवादयो धातव इति । कथम्? नेदमादिग्रहणम् । वदेरयमौणादिक इञ् कर्तृसाधनः—भुवं वदन्तीति भूवादय इति ।" इति **पा**तञ्जलमहाभाष्ये ॥ ४ "वसिवपियजिराजिव्रजिसदिहनिवाशिवादिवारिभ्य इञ् ।५७४ ॥" इति **पा**णिनीयव्याकरणे **उ**णादिषु चतुर्थपादे ॥ ५ °**संबंधा** प्र० ॥ ६ 'वाक्याद् वाक्यस्यैव वार्थः' इत्यपि पाठोऽत्र स्यात् ॥ ७ °**ब्दः तद**° य० ॥ ८ न तु सर्वाणि पदानि वाक्यार्थ इत्याशयः ॥ ९ **चरितार्थं** भा० ॥ १० **सर्व**° प्रतिषु नास्ति ॥ ११ °**विहो सत्त नय**° य० ॥ १२ **हवंत्येवमिति** प्र० ॥ १३ दृश्यतां पृ० ४ टि० २ ॥ १४ दृश्यतां पृ० ७ पं० ८ ॥ १५ "क्रियावद् गुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ।" **वै० सू०** १।१।१५ ॥ १६ **भवति** भा० प्रतौ नास्ति ॥ १७ °**वाविधिविधिनया**° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निबन्धनमस्य–किं भवं एंके भवं, दुवे भवं, अक्खुए भवं, अव्वए भवं, अवट्ठिए भवं अणेकभूतभव्वभविए भवं? सोमिला! एके वि अहं दुवे वि अहं अक्खुए वि अहं अव्वए वि अहं अवट्ठिते वि अहं अणेकभूतभव्वभविए वि अहं [[1]भगवतीसू० १८ । १० । ६४७]।

किमेतत् सामर्थ्यवादिना स्वमनीषिकयोच्यते त्वया, आहोस्विदार्षेऽपि निबन्धनमस्य दर्शनस्यास्ति यत एतद् निर्गतमिति? अत्र 'अस्ति' इत्युच्यते, **निबन्धनमस्य सो**मिलब्राह्मणप्रश्ने **किं भवं एंके[2] भव**मित्यादिके व्याकरणे **सोमिला! एके वि अहं, दुवे वि अहं, अक्खुए वि अहं, अव्वए वि अहं, अवट्ठिते वि अहं, अणेकभूतभव्वभविएँ[3] वि अह**मित्यादि निबन्धनमिति।

एवं द्वितीयो विधिविध्यरः सविकल्पो नयचक्रस्य समाप्तः ॥

---

१ दृश्यतां पृ० १८९ टि० ५ ॥ २ एको प्र० ॥ ३ °ए पि अहं° प्र० ॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

अथ तृतीयो विध्युभयारः ।

अथ किं भवता पुरुषादिवादेषु प्रतिस्वं तथा तथा या एता अवस्था उक्ताः पुरुषादि तत्त्वं तल्लक्षणम्, उत पुरुषादिलक्षणास्ताः ?

यद्यवस्थास्वात्मैव पुरुषादि, न पुरुषाद्यात्मा अवस्थाः, ततः पुरुषो नाम न कश्चिच्चतुरवस्थाव्यतिरिक्तः, समुदयिमात्रसमुदायाभ्युपगमाद् रूपादिसमुदायवत्

कमलदलविपुलनयना कमलमुखी कमलगर्भसमगौरी ।
कमले स्थिता भगवती ददातु श्रुतदेवता सिद्धिम् ॥

इदानीं विध्युभयारावसरः । यद्ययं विधिविधिनयारोक्तो भावो निर्दोषः स्यादरान्तरारम्भोऽनर्थकः स्यात्, स तु सदोष एवेति प्राप्तावसरं तद्दोषमुक्त्वोत्तरत्र विध्युभयारं निर्दिदिक्षुः प्राच्यदोषाभिधानार्थमेव तावदाह–**अथ किं भवता**[1] इत्यादि । **अथे**त्यधिकारोपन्यासे, अनन्तरोक्तपुरुषादिवाददूषणाधिकारोपन्यासार्थो[2]ऽथशब्दः । **किं**शब्दः प्रश्ने, सामान्येन पुरुष-नियति-काल-स्वभाव-भावेषु अनन्तरोक्तेषु **प्रतिस्व**मात्मनो ग्राहे **तथा तथा** तेन तेन प्रकारेण पुरुषः सुप्तादिचतुरवस्थः, नियतिरेव पूर्वपरादिक्रियाऽक्रियादिनियतावस्थारूपा, काल एव क्रमयौगपद्यभूतभवद्भावि[3]व्यवस्थातत्त्वः, स्वभाव एवात्मप्रविभागमात्रप्रतिविविक्त[4]भवनभेदतत्त्वः, भाव एव स्वत्वास्वत्वाद्यविद्याविकल्पविनिर्मुक्तसत्तामात्रव्याप्यनञ्जनशब्दार्थज्ञानाद्यवस्थाविशेषजगत्तत्त्व इति **या एताः** प्रतिस्वम[5]शेषा व्रीह्यङ्कुरादिघटपटादिवस्तुव्याप्तिवृत्तयो**ऽवस्था**स्तस्य तस्य पुरुषादिदर्शनस्य व्यापित्वप्रदर्शनार्थ**मुक्ता**स्तासु **किं पुरुषादि तत्त्व**मवस्थालक्षणं [6]*तल्लक्षणम्? तानि च लक्षणं* तस्याः, न सोऽस्ति तद्व्यतिरिक्तः, यथा रूपादय एव घट इति । **उत पुरुषादिलक्षणास्ताः?** पुरुषाद्येव सत्यम्, न ताः काश्चिदवस्थाः, यथा घट एव रूपादयः न रूपादयो नाम केचिद् घटव्यतिरेकेण, इति द्वयोर्विकल्पयोरन्यतरोऽवधार्यः ।

१७८.१

[7]किञ्चातः? **यद्यवस्थास्वात्मे**त्यादि यावत् **समुदयमात्रवाद एवायमन्यः** । यदि पुरुषादि न किञ्चिदस्ति, अवस्थास्वात्मैव तल्लक्षणम्, ता एव सत्याः, **न पुरुषाद्यात्मावस्थाः** पुरुषादिस्वरूपास्ता अवस्था न भवन्ति इत्येवमभ्युपगतं भवति **ततः पुरुषो नाम न कश्चिच्चतुरवस्थाव्यतिरिक्त** इत्येतदा-

---

१ **भवत** रं० ही० ॥ २ °**न्यासोर्थं**° भा० । °**न्यासोर्थौ**° य० ॥ ३ °**द्भाविविवस्थात्तत**ः य० । °**द्भाविवृवस्थात्तत**ः भा० ॥ ४ °**प्रतिविवक्त**° य० ॥ ५ °**स्वनशेष**ः प्र० ॥ ६ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ७ **किं वातः** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समुदायमात्रवाद एवायमन्यः, तुरीयत्वप्रतिपादनार्थाभ्युपगतमुक्तिक्रमवत्तु अयुगपदवस्थावृत्तेः क्षणिकवादः वासोवत्, चतुर्ज्ञानमात्रत्वात् कल्पनाज्ञानमात्रसत्यं न किञ्चित् तदाभासज्ञानबहिर्भूतं स्वप्नवदिति विज्ञानव्यतिरिक्तार्थशून्यवादः ।

अचिन्त्यमेवेदं चिन्त्यते । ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् क्वचित् तत्त्वैक एव व्यवस्थितः पुरुषः, अनतिरिक्तपरापराणीयोज्यायोरूपात्मकत्वात्, वृक्षवत् ।

पन्नम् । **पुरुषादि** इति सामान्येनोपक्रम्य **पुरुषो नाम** इति पुरुषस्यैवाभाववचनं विधिविधिनयविकल्पानां पुरुषस्य प्रथमत्वात् तद्दूषणेनातिदेक्ष्यमाणत्वात् । पुरुषवादे प्रस्तुते कथं पुरुष एवासन्नित्यापाद्यत इति चेत्, उच्यते – यस्मात् **समुदयिमात्रसमुदायाभ्युपगमाद् रूपादिसमुदायवत्**[1] **समुदायमात्रवाद ऐवायमन्यः,**[2] स एवायं बौद्धपरिकल्पितरूप-वेदना-विज्ञान-संस्कार-संज्ञास्कन्धसमुदायः[3] पुरुषोऽङ्गुलिमुष्टिवत् बलाकापङ्क्तिवत् अक्षोद्धिचक्रपञ्जरणीषाक्षपरयुगसमिलादिरथवदिति[4] समुदयवाद ईषन्मषीम्रक्षितकुक्कुटवत् पुरुषप्रत्याख्यानफलोऽन्यवदाभाति सुप्तसुषुप्तजाग्रत्तुरीयावस्थासंज्ञाभेदात् । युगपद्धाविरूपादिगुणसमुदायवादतुल्यो युगपदवस्थचतुरवस्थासमुदयवाद[5] इति एष देशभिन्नरूपादिसमुदयवादतुल्यः । नायं देशभिन्नरूपादि- १७८-२
समुदयवादतुल्य एव, किं तर्हि ? कालभेदभिन्नायुगपद्भाविसततसंवृत्तजननिधननामरूपवादतुल्यः[6] क्षणिकवादोऽपि, यस्मात् **तुरीयत्वप्रतिपादनार्थाभ्युपगतमुक्तिक्रमवत्त्वयुगपदवस्थावृत्तेः क्षणिकवाद** इति, सुषुप्तसुप्तजाग्रत्परमविनिद्रावस्थाविशुद्धिक्रमान्यथावृत्त्यभ्युपगमादवस्थाक्षयोऽन्यथात्वम्, अन्ते[7] च क्षयदर्शनादादौ क्षयोऽनुमेयोऽवस्थानामिति[8] क्षणिकवादः । को दृष्टान्तः ? **वासोवत्**, यथा वस्त्रं क्षणे क्षणे जीर्यज्जीर्यदन्ते विशीर्यते तथावस्था अपि । न केवलं समुदयक्षणिकवादावेव, किं तर्हि ? शून्यवादोऽपि, तद्यथा – **चतुर्णा(ज्ञा?)नेत्यादि**, यथा पुरुषवादिना चतस्रोऽवस्थाः पृथक् परिगृह्य तास्वपि ज्ञानमेव सुप्तत्वात् सुप्तपुरुषवत् सुषुप्तत्वाद् मदिरामत्तवदित्यादिना प्रतिपादितम्, तथा[9] तथा रूपाद्यमूर्तमूर्त्योपत्त्या त्वयैव 'रूपणाद् रूपम्' इति च ज्ञानात्मना चैतन्यस्वरूपादनपेता रूपरसादिघटादिसृष्टिश्चानेकधोपपादिता, सा च कल्पनाज्ञानम्, तन्मात्रमेव सत्यम्, न रूपादि किञ्चित् तदाभासज्ञानबहिर्भूतं **स्वप्नवत्,** यथा स्वप्ने सिंहाद्याभासज्ञानमात्रम् न सिंहादिः किञ्चित्[10] तद्बहिर्भूतस्तथा जाग्रद्विज्ञानमपि ज्ञानमात्रमेव ग्रामारामस्त्रीपुरुषादिरूपाद्याकारज्ञानमात्रं तद्व्यतिरिक्तार्थशून्यस्वप्नविज्ञानवद्वेत्येतदापन्नम्[11] । अतः कल्पनाज्ञानमात्रसत्यमिति विज्ञानव्यतिरिक्तार्थशून्यवादः, विज्ञानमात्रवादस्यापि[12] ग्राह्यग्राहकविकल्पातीतनिर्विकल्पत्वाश्रयस्य शून्यत्वापत्तेः ।

पुरुषवाद्याह – **अचिन्त्यमेवेदं चिन्त्यत** इत्यादि । मद्वचनापरिज्ञानादसम्बद्धं दूषणम्, मया हि 'पुरुष एवेदम्' इत्यवधार्योक्तम्, नोक्तम् 'इदमेव पुरुषः' इति प्रत्यक्षाः सुप्ताद्यवस्था उद्दिश्येति । अत्र १७९-१

---

१ °**समुदायवत्** य० प्रतिषु नास्ति ॥ २ **एव एवायमन्यः** प्र० ॥ ३ °**दाय पु**° प्र० ॥ ४ °**णीयाक्ष**° भा० । °**णीयोक्ष**° य० । दृश्यतां पृ० ७६ टि० ९ ॥ ५ °**वस्यादि**(वस्थायि?)**चतु**° भा० ॥ ६ °**तुल्य क्ष**° प्र० ॥ ७ **अन्ते क्षय**° य० ॥ ८ **क्षयोनुमयावस्था**° प्र० ॥ ९ **तथा तथा तथा** भा० ॥ १० **कश्चित्कद्बहि**° भा० । **कश्चिद्बहि**° य० ॥ ११ (°शून्यं ?) ॥ १२ °**वास्यापि** प्र० ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

नन्वयमेकावस्थामात्रस्वतत्त्व एव व्यवस्थापितः, चैतन्यानतिवृत्तिवर्णनात् । तच्च विनिद्रावस्थातोऽनन्यदिति 'विनिद्रावस्थालक्षण एव पुरुष आत्यन्तिकनिद्राविगमरूपनिरूप्यत्वाद् विनिद्रावस्थास्वात्मवत् । न ह्यसावितरात्मिका, स्ववृत्तित्यागापत्तेः । तन्मात्रत्वे तु पुरुषस्यापि तद्वज्जाग्रदाद्यवस्थानात्मकत्वादसर्वगतत्वम् ।

प्रयोगः — **ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् क्वचित् [1]तत्त्वैक एव व्यवस्थितः पुरुष** इति प्रतिज्ञा, **अनतिरिक्तपरापराणीयोज्यायोरूपात्मकत्वाद् वृक्षवदिति,** यथोक्तम् —

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित् ।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥ [श्वेताश्व० ३।९] इति ।

यस्मादन्यत् परं [2]नास्त्यनन्यदद्वैतमेवेत्यर्थः । अथवा **यस्मात् परं** प्रधानं प्रकृष्टम् अपरमप्रकृष्टमन्यद्वा **नास्ति** ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्[3]परापरविभागाभावादविभागात्मना तस्यैव व्यवस्थानात् । **नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चि**दिति सूक्ष्मस्थूलविभागाभावात् [4]ताद्रूप्येणाविभक्तस्यापि तस्यैवावस्थानादिति । शेषं गतार्थम् ।

अत्रोच्यते — **नन्वय**मित्यादि । ननु त्वयायं पुरुषोऽवस्थात्मकत्वमनतिक्रामन्न**ेकावस्थामात्रस्वतत्त्व एव व्यवस्थापित**श्चतुरवस्थास्वरूपोपवर्णनद्वारेणैव तन्निरूपणादवस्थास्वात्मक एवासाविति, तत्रापि च विशेषेण **एकावस्थामात्रस्वतत्त्व**स्तुरीयावस्थातत्त्व इत्यर्थः । तत् कुत इति चेत्, **चैतन्यानतिवृत्ति**[5]**वर्णनात्**, 'सर्वत्र ज्ञानमयोऽसौ पुरुषः, इति प्रतिज्ञाय तद्व्याप्तिप्रदर्शनार्थं 'चैतन्यमेव [6]वृक्षतृणकुड्यपुरुषादि, सुप्तत्वात् सुषुप्तत्वाज्जागरितत्वात्, सुप्तादिपुरुषवत्' [7]इति [8]वर्णितं चैतन्यमेव । **तच्च विनिद्रावस्थातोऽनन्यत्**, तच्च चैतन्यं विनिद्रावस्थैव, यथोक्तम् —

पुरुषस्य न केवलोदयः परावश्चाप्यनिवृत्तकेवलाः ।
१७९-२ **न च सत्यपि केवले प्रभुस्तव चिन्त्येयमचिन्त्यवद् गतिः ॥** [सिद्ध० द्वा० ४।२२] इति ।

इतिशब्दो हेत्वर्थे, अस्माद्धेतो**र्विनिद्रावस्थालक्षण एव पुरुषः**, एतदेवास्य लक्षणम्, उपयोगो लक्षणम् [तत्त्वार्थ० २।८] इति वचनात् । एतत् प्रतिज्ञामात्रम् । अत्र हेतुरुच्यते — **आत्यन्तिकनिद्राविगमरूपनिरूप्यत्वात्**, सर्वत्र सर्वदा चान्तमतीतोऽत्यन्तः, तत्र भव आत्यन्तिको निद्राविगमः, स एव रूपं तत्त्वम्, तेन तत्त्वेन निरूप्यत्वात्, यथा निरूपितं पुरुषवादिनैव सर्वं सर्वत्र सदा सर्वथा चेतनात्मकमेवेति सिद्धो हेतुः । को दृष्टान्तः ? **विनिद्रावस्थास्वात्मवत्**, यथा विनिद्रावस्थां [9]चतुर्थीं शुद्धचैतन्यात्मानं नातिवर्तते प्रोक्तरूपेण निरूप्यत्वात् पुरुषस्तथा शेषावस्थास्वपि [10]तद्धर्मतानतिवृत्त्यैवेति एवमेषा विनिद्रावस्थैव सर्वत्रापादिता । **न ह्यसावितरात्मिका,** यथा सुप्ताद्यवस्थास्तुरीयावस्थैव न तथा सा तदात्मिका । कस्मात् ? **स्ववृत्तित्यागापत्तेः**, यदि सा विनिद्रावस्था सुप्ताद्यवस्थापि स्यात् ततस्तया [11]विशुद्धावस्था स्ववृत्तिस्त्यक्ता स्यात्, न त्वस्ति स्ववृत्तित्यागोऽवस्थासङ्करस्वरूपनिर्णयाभावादिदोषात् । अतः सा तन्मात्रैव, तस्याश्च **तन्मात्रत्वे तु पुरुषस्यापि** तदवस्थामात्रत्वमतो विनिद्रावस्थामात्रत्वम्, **तद्वज्जा**ग्रदाद्यवस्थानात्मक-

---

१ तत्त्वैक एव भा० । तत्त्वैक एक एव य० ॥ २ नास्त्यनन्यद्वैत° भा० । °नास्त्यन्यत् वैत° य० ॥ ३ °परविभागाभावादिग्विभागात्मना य० । °परविभागात्मना भा० ॥ ४ ताद्रूपेणा° भा० ॥ ५ °वर्तनात् प्र० ॥ ६ वृक्षानृराकुट्य° प्र० ॥ ७ दृश्यतां पृ० १८३,१८४ ॥ ८ दृश्यतां पृ० २०१-१ ॥ ९ चतुर्थं प्र० ॥ १० तद्धर्मतामनिवृत्त्यैवेति य० । तद्धर्मत्यैवेति भा० ॥ ११ विशुद्धा स्ववृत्ति° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]अथ विनिद्रावस्थालक्षणोऽपि पुरुषः सर्वत्वान्न विनिद्रावस्थामात्र एव, विनिद्रावस्थापि विनिद्रावस्थात्मिका सती सर्वत्वान्न विनिद्रावस्थामात्रैव स्याद् विनिद्रावस्थालक्षणत्वात् पुरुषस्वात्मवत् । ततश्च प्रत्यवस्थं तस्या एव सर्वात्मकत्वात् तृणाद्यपि सर्वगतमिति किं पुरुषैकत्वप्रकल्पनया ? अतल्लक्षणत्वाद्वा विनिद्रावस्थाया अभावः, ततश्च तत्तत्त्वचतुरवस्थसर्वात्मकपुरुषाभावः ।

[2]अथ विनिद्रालक्षणविपरीतोऽपि पुरुषः पुरुष एवावधारणभेदात्, विनिद्रावस्था-

---

त्वम्, तस्माज्जाग्रदाद्यवस्थानात्मकत्वाद् विनिद्रावस्थामात्रत्वात् सुप्तादिदृ[3]ष्टशेषावस्थासु अवृत्तेरसर्वगतत्वमिति चाव्यापित्वदोषः पुरुषकारणवादस्य ।

अथ विनिद्रेत्यादि । मा भूत् पुरुषासर्वगतत्वदोष इति विनिद्रावस्थालक्षणोऽपि सन् पुरुषः[4] सर्वत्वान्न विनिद्रावस्थामात्र एव, किं तर्हि ? सुप्तादिवृत्तिर[5]पीतीष्यते, ततो विनिद्रावस्थापि विनिद्रावस्थात्मिका सती सर्वत्वादेव न विनिद्रावस्थामात्रैव स्यात्, सुप्ताद्यवस्थापि स्यादित्यर्थः । हेतुः १८०-१
विनिद्रावस्थालक्षणत्वात् पुरुषस्वात्मवत्, यथा पुरुषो विनिद्रावस्थालक्षणत्वात् सर्वगत इष्यते तथा विनिद्रावस्थाऽऽत्मस्यैव स्यात् सर्वगता स्यात्, विनिद्रावस्थालक्षणा हि सापीति । ततश्चेत्यादि, एवं च सत्यन्योऽपि दोषः, अवस्थामवस्थां प्रति प्रत्यवस्थं विनिद्रावस्थावृत्तेः सुप्तसुषुप्तजाग्रदवस्थास्वपि तस्या एव विनिद्रावस्थाया एवाविशेषेण सर्वगतत्वात् सुषुप्तावस्थापि तृणादि सर्वगतं स्यात् सर्वात्मकत्वाद् विनिद्रावस्थावत्, सर्वात्मकत्वं विनिद्रावस्थालक्षणत्वात् पुरुषवदित्युक्तम् । तस्मात् तृणाद्यपि सर्वगतमिति किं पुरुषैकत्वप्रकल्पनया ? कः पुरुषवादविशेषाभिमानः ? 'तृणमेवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्, यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित्' इत्यादि 'तेनेदं पूर्णं तृणेन सर्वम्' इति च कस्मान्न पठ्यते ? इति ।

किञ्चान्यत्, अतल्लक्षणत्वाद्वेत्यादि । लक्षणं विशेष्य अर्थान्तरादवच्छिद्य स्वरूपेऽवस्थापकं नीलोत्पलवत्, तत् पुनः स्वात्मन्य[6]स्थितत्वान्नास्ति लक्षणं प्रत्यवस्थं सर्वात्मसु वृत्तत्वात् । ततोऽतल्लक्षणत्वाद्वा विनिद्रावस्थाया अभावः स्यात् स्वा[7]त्मन्यस्थितत्वात् खपुष्पवत् । ततश्च तत्तत्त्वे, तासां तत्त्वं चतसृणामवस्थानां सैव, तत्तत्त्वे चतुरवस्थाऽभावः, ता एव च सर्वम्, तदभावात् सर्वाभावः, सर्वाभावात् तदात्मकस्य सर्वात्मकस्य पुरुषस्याप्यभाव इत्यत आह – ततश्च तत्तत्त्वचतुरव[8]स्थसर्वात्मकपुरुषाभावः, चैतन्यमेव हि पुरुषस्यावस्थानां च लक्षणम्, तदभावे पुरुषस्यावस्थानां चाभावे किमवशिष्यते ? १८०-२

अथ विनिद्रालक्षणेत्यादि । अथ मतं भवतः – विनिद्रावस्थापुरुषाभावदोषयोः परिहारे सर्वदोषपरिहारः, स चावधारणवैपरीत्येनेति, तद्यथा – पुरुषस्तु पुरुष एव [9]*विनिद्रावस्थालक्षणविपरीतोऽपि, किं कारणम् ? [10]अवधारणे भेदात् । कथमवधारणभेदः ? उच्यते – विनिद्रावस्थास्वात्मनि [11]अवधार्यमाणे*

---

१ द्रश्यतां पृ० २०१-१ ॥ २ द्रश्यतां पृ० २०१-१ ॥ ३ °दृष्टमेषावस्थास्ववृत्तेरसर्वगतत्वमिति प्र० ॥ ४ °षः श्चासर्वं° वि० विना । °षश्चासर्वे° वि० ॥ ५ °रपीष्यते भा० ॥ ६ °न्यवस्थि° प्र० । अत्र स्वात्मन्येवास्थितत्वा° इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ७ स्वात्मन्यवस्थितत्वात् भा० । द्रश्यतां टि० ६ ॥ ८ °स्थासर्वा° भा० ॥ ९ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ १० (अवधारणभेदात् ?) ॥ ११ अवधार्यमाण भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वात्मनि विनिद्रावस्थैव लक्षणम्, पुरुषे तु लक्षणमेव अन्यासामप्यत्यागात्, स ह्यनेकरूपो मेचकवत्। न, उक्तवदवधारणभेदस्यान्याय्यत्वात् प्रतिज्ञातव्याघाताद् घटरूपादित्ववत्, पुरुषत्वं प्रागुक्तमवस्थानाम्, अधुना तु पृथक्स्वात्मानस्ता उच्यन्त इति तत्त्वं पुरुषस्य रूपादिघटत्ववत्। यदा च तासामेव तत्त्वं ततस्तासां

विनिद्रावस्थैव लक्षणं नान्या काचिदवस्थेति स्वात्मनो लक्षणत्वमवस्थाया नियतम्, सा त्वन्यावस्थात्मनोऽपि लक्षणत्वान्न नियतेति न विनिद्रावस्थायास्तावदभावोऽस्ति । पुरुषस्याप्यभावो नास्ति, **पुरुषे तु लक्षणमेवे**त्यवधारणाद् विनिद्रावस्था लक्षणमेव पुरुषस्य नालक्षणमिति पुरुषो लक्ष्यत्वेनानियतोऽन्याभिरप्यवस्थाभिर्लक्ष्यत्वा**दन्यासामप्यत्यागा**ल्लक्षणत्वेन पुरुषस्येति भेदेनावधारणम् । यस्मात् **स ह्यनेकरूपो मेचकवत्** पुरुषः, वर्णसङ्करो हि मेचकः, स नीलोऽपि पीतोऽपि शेषवर्णोऽपि तथा पुरुषो विनिद्रावस्थालक्षणोऽपि सुप्ताद्यन्यतमावस्थालक्षणोऽपीति ।

अत्रोच्यते—**न, उक्तवदि**त्यादि । नैतदुपपन्नम्, **उक्तवदवधारणभेदस्यान्याय्यत्वात्**, उक्तेन तुल्यमुक्तवत् तेनैव प्रागुक्तप्रकारेण तेनैव न्यायेनावधारणभेदस्यावसर एव नास्ति, न्यायादनपेतं न्याय्यम्, न न्याय्यमन्याय्यम् । कुतः? **प्रतिज्ञातव्याघातात्**, यद्यवधारणं भिन्नार्थविषयमाश्रीयते 'चैतन्यात्मकैक-
१८१-१ पुरुषमयमिदं सर्वम्' इति प्रतिज्ञा हीयते, अथैकपुरुषमयत्वप्रतिज्ञा परिपाल्यते भिन्नार्थविषयाधारावधारणोपपत्तिर्विशीर्यते[1], कथम्? **घटरूपादित्ववत्**, यथा 'घट एव रूपादयः' इत्येतस्मिन् पक्षे न रूपादयो नाम केचित् सन्ति घटादर्थान्तरभूताः, तत्र 'रूपस्वात्मनो रूपावस्थैव लक्षणं न रसाद्यवस्थापि, घटात्मनस्तु रूपावस्था लक्षणमेव इतरासामत्यागात्' इति कोऽर्थः स्याद् रूपाद्यभावात्? तथेहापि विनिद्रैकावस्थालक्षणपुरुषव्यतिरिक्तार्थाभावादितरासां सुप्ताद्यवस्थानामभावादेव कोऽवधारणार्थावकाशः? इत्यवधारणाभावः प्रतिज्ञाव्याघातो[2] वेत्येतदुभयं प्रदर्शयति—**पुरुषत्वं प्रागुक्तमवस्थानाम् अधुना तु पृथक्स्वात्मानस्ता उच्यन्ते**ऽवस्था इति प्रागुक्तवदवधारणभेदस्यान्याय्यत्वं प्रतिज्ञाव्याघातश्चेति । **इति तत्त्वमि**ति अस्माद्धेतोः प्रतिज्ञाव्याघातादवधारणभेदान्याय्यत्वाच्चोभयथापीष्टविपरीतं **तत्त्वम**वस्थात्वं **पुरुषस्य** 'अवस्था एव पुरुषः, न पुरुष एवावस्थाः' इत्येतत् प्राप्तं **रूपादिघटत्ववत्**, यथा 'रूपादय एव घटः' इत्येतस्मिन् पक्षे 'न घटो नाम कश्चित्' इत्ययमर्थः, तत्र 'रूपमेव, न रसः' इत्याद्यवधारणमुपपद्यते भिन्नार्थविषयत्वात् तथा यद्यवस्था एव पुरुष इत्युच्येत युज्येतावधारणं पुरुषाभावेऽवस्थानामेव भिन्नानामितरावस्थानिवृत्त्यर्थमेकावस्थावधारणम्, तत् तु न युज्यते चैतन्यात्मकैकपुरुषमयत्वप्रतिज्ञाव्याघातादिति[3] ।

किञ्चान्यत्, **यदा च तासामेव तत्त्वमि**त्यादि याव**ल्लोकवदेव तत्त्वापत्तिरि**ति । यदा च तासां
१८१-२ भावस्तत्त्वम्, [4]भाव एव ताः, ताभिरेव भूयते, भेदेना[5]वधार्यमाणत्वाद् विनिद्रावस्थैव विनिद्रावस्थास्वा[6]त्मनि लक्षणम्, पुरुषे तु सा लक्षणमेव, न तु सैव लक्षणं पुरुषस्यान्यासामप्यवस्थानां तल्लक्षणत्वात्यागात् । तथा

---

१ °त्तिर्विशीर्यं कथम् प्र० ॥ २ प्रतिव्याघातो प्र० ॥ ३ °घातादि प्र० ॥ ४ ताव एव प्र० ॥ ५ °नवधा° प्र० ॥ ६ °स्वात्मेति प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा तथेतरेतरात्मसु अभावादवधारणभेदाद् भिन्नभिन्नार्थत्वान्ननु तदेव सर्वासर्वगतत्वमिति लोकवदेव तत्त्वापत्तिः।

अ[1]थाविकल्पशब्दार्थत्वादलक्षण एव न त्वज्ञाततत्त्वत्वात्, कथं तर्हि चतुरवस्थावर्णनमनेकात्मकसर्वगतत्वभावनं च? यद्यस्यैकैका प्रत्येकमवस्था न भवति ततोऽसत्त्वात् कुतोऽस्य तदेकत्वापत्त्यात्मिका अविकल्परूपता? न हि पृथग्वृत्ते

तथा तासामितरेतरात्मसु अभावः, अवधारणभेदात्। **'तथा तथा'** इति वचनादुत्तरोत्तरभेदानामपीतरेतरात्मसु नास्ति भावः, तद्यथा—रूपावस्थास्वात्मनि रूपावस्थैव लक्षणम् घटस्वात्मनि तु रूपावस्था लक्षणमेव रसाद्यवस्थानामपि तल्लक्षणत्वात्यागात्, तथा पृथिवीलोष्टादीनामितरेतरात्मसु अभावाल्लोष्टावस्थास्वात्मावधारणे लोष्टावस्थैव लोष्टावस्थास्वात्मा, पृथ्वीस्वात्मावधारणे तु सा लक्षणमेव, न तु सैव [2]चक्षुरादीनामप्यत्यागादिति सर्वत्रा[3]स्त्यवधारणभेदः। ततोऽवधारणभेदात् त्वदुक्तादेव **तथा तथेतरेतरात्मसु अभावादवधारणभेदा**दत्यन्तं भिन्नार्थत्वम्, अतो **भिन्नभिन्नार्थत्वात्** सामान्याभावः, सामान्याभावाद् विविक्तानेकभेदावस्थामात्रत्वात् **सर्वमसर्वगतम्** 'घटो घट एव, रूपं रूपमेव, रसो रस एव, पटः पट एव' इत्यादि प्राप्तम्। ततो **ननु तदेव** दर्शनमेतदप्यापन्नं यदुक्तं '[4]यथालोकग्राहमेव वस्तु, शास्त्रेष्वनर्थको विवेकयत्नः' इत्यादि स्वपरविषयसामान्यविशेषनिराकरणेन लौकिकमेव यथाद्रव्यक्षेत्रकालभावभवनमेव च वस्त्विति तदेव तत्त्वम् **इति लोकवदेव तत्त्वापत्तिरि**ति।

अथाविकल्पशब्दार्थत्वा[द]लक्षण एव, न[5] त्वज्ञाततत्त्वत्वात्। तस्य निर्विकल्पस्याविभागस्य संसर्गभेदपरिणामशून्यस्य मेघस्तनितादिकल्पशब्दगोचरातीतस्य मयूरविरुतवत् सङ्केताद् व्यवहारानुपातिभिर्वा शब्दैरनुपलक्ष्यस्य [6]गोर्विषाणादिवत् स्वांशकल्पनामात्रभिन्नशब्दार्थाभिमानविकल्पस्य—न तु लौकिकवदज्ञात- १८२-१
सामान्यविशेषव्यवस्थाविचाररूपस्य—तत्त्वस्य कुतो वा लक्षणम्? कुतोऽवस्था? इति। एतच्चायुक्तं चतुरवस्थावर्णनात्, यदि ताश्चतस्रोऽप्यवस्था असत्या एव **तद्वर्णनं** खपुष्पसौरभवर्णनवत् **कथमुपपद्यते**? इति। किञ्चान्यत्, सर्वगतत्वभावनाऽभावप्रसङ्गात्, तद्दर्शयन्नाह—**अनेकात्मकसर्वगतत्वभा[7]वनं च** 'कथम्' इति वर्तते। सर्वं गतं सर्वगतम्, सृ गतौ [पा० धा० ९३५, १०९५], 'सर्वम्' इत्ययमेव सर्वशब्दो गमनार्थदेशान्तरप्राप्तिलक्षणां क्रियां भिन्नविकल्पार्थविषयामाह '[8]यदन्यच्च अन्यच्च तदशेषं सर्वम्' इति, ततश्च तत् तदशेषं गतं सर्वगतम्, तद्भावः सर्वगतत्वमर्थानेकात्मकत्वाविनाभावि, अनेकात्मकं हि सर्वम्, भिन्नानेकविकल्पकृत्स्नार्थगतं सर्वगतमित्येषा भावना निर्विकल्पैकात्मकत्वे न युज्यत इति।

किञ्चान्यत्, निर्विकल[9]त्वाभावप्रसङ्गात्, **यद्यस्यैकैके**त्यादि यावद् **मेचकात्मके भवतः**। यदि अस्य पुरुषस्य एकैका पृथक् पृथगेकामेकां प्रति **प्रत्येकं** समाप्ता सुप्ताद्यवस्था **न भवति ततश्च** एकैकस्या अभावात् ता न सन्त्येवेति कृत्वा तासाम**सत्त्वात् कुतोऽस्य** पुरुषतत्त्वस्य **तासामेव** भिन्नानाम**एकत्वाप-**

---

१ दृश्यतां पृ० २०१–२ ॥ २ **च ज्ञानादी°** य० ॥ ३ **°त्रास्त्वावधारण°** प्र० ॥ ४ दृश्यतां पृ० ११ पं० ३ ॥ ५ **त त्वज्ञाततत्व°** भा० । **तत्वज्ञानतत्व°** य० ॥ ६ दृश्यतां पृ० २४३ पं० ११–२४ ॥ ७ **°भावक** य० । **भावकं** भा० ॥ ८ **यद्यन्यच्च** प्र० ॥ ९ **°लपकत्वा°** य० ॥

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

रूपे मेचकात्मके भवतः । असन्नेव त्वसावेवम्, अनवस्थात्वेऽचतुरात्मकत्वात्, खपुष्पवत् । त्वदुक्तेरेव च न स लक्ष्यो नार्थो न वस्तु, अलक्षणत्वात्, खपुष्पवत् ।

अथात इतश्चान्यतरोपादानपरित्यागायुक्तत्वादस्यावाच्यतैव । तथा स नैव

त्यात्मिका 'तत् पुरुषतत्त्वमेकमविकल्पम्' इत्यविकल्पता स्यात्? भिन्नविकल्पैकापत्त्यात्मकत्वादविकल्परूपतायाः सा वाऽविकल्परूपता कुतः? नास्त्येवेत्यर्थः । को दृष्टान्तः? पृथक् पृथगवृत्तसितासितादिवर्णै-
१८२-२ कत्यापत्त्यात्मकमेचकवर्णाभाववत्, पृथक्सिद्धवर्णाभावे मेचकवर्णाभावात् । तद्दर्शयति – **न हि पृथगवृत्ते रूपे** द्वे अपि सितासिते स्वेन रूपेण **मेचके भवतः,** भेदात्मलाभाविनाभाव्यैकापत्त्यभावात् । एवमवस्था अपि पृथक् स्वरूपेणासिद्धा निर्विकल्पैकरूपा न भवितुमर्हन्तीति । एवं तावदवस्थानामभावे चतुरवस्थावर्णनानेकात्मकसर्वगतत्वभावननिर्विकल्परूपत्वाभावदोषाः ।

किं वा पार्श्वशरक्षेपेण भयजननानुवृत्त्या? तमेव पुरुषं निराकुर्महे, तद्यथा – **असन्नेव त्वसौ एवम**वस्थानामसत्त्वे, कुतः? अनवस्थात्वादवस्थातोऽन्यत्वादनवस्थात्मकत्वादवस्थात्वाभावात् पुरुषो वन्ध्यापुत्रवत् । स्यान्मतम् – रूपाद्यवस्थाऽनात्मकस्य घटस्य अवस्थावतोऽस्तित्ववत् सुप्ताद्यवस्थाऽनात्मकस्य सुप्तादिचतुरवस्थावतः पुरुषस्यास्तित्वमिति, एतच्चायुक्तम्, अनवस्थात्वे सति अचतुरात्मकत्वात् । अवस्थाचतुष्टयाभावादेवानवस्थात्मनस्तच्चातुरात्म्याभावः सिद्धः । तस्मादनैकान्तिकाशङ्कानिवृत्त्यर्थमाह – **अनवस्थात्वेऽचतुरात्मकत्वादिति । खपुष्पवदिति** दृष्टान्तो गतार्थः । अथवा किमनेन प्रयासेन उपपत्त्यन्तरैस्तदसत्त्वप्रतिपादनेन? ननु **त्वदुक्तेरेव च न स लक्ष्य**स्त्वत्परिकल्पितः पुरुषो नासौ लक्ष्यः, अलक्षणत्वात् । अलक्ष्यत्वमिष्टत्वादसाध्यमिति चेत्, लक्ष्यत्वनिराकृतेरर्थनिराकरणार्थत्वाद् **नार्थ** इति ब्रूमः, अर्थोऽपि अर्यते इत्यलक्षणत्वाच्छब्दाभिधेयो ज्ञानज्ञेयो वा नेति विनिद्रावस्थाऽविनिद्रावस्था वा स्याद् न स पुरुष-
१८३-१ स्तल्लक्षणस्तदुभयाभावात् । निर्विकल्पत्वादेवार्थोऽपि नैवेति चेत्, 'निर्विकल्पज्ञानवद् वस्तुत्वमपि न भवति' इत्येतत्प्रतिपादनार्थत्वादिदमेव गृहाण – **अवस्त्वेव** तत् त्वदिष्टं तत्त्व**मलक्षणत्वात् खपुष्पवत् ।**

अथात इत्यादि याव**दस्यावाच्यतैवे**ति । अथाचक्षीथाः – **अत** इति पुरुषत **इतश्चे**त्यवस्थातः **अन्यतरस्य** पुरुषस्यावस्थानां वा परित्यागैकान्तो न युक्तः, अवस्थात्यागे लक्षणाभावात् पुरुषाभावप्रसङ्गात्, अवस्थावतः पुरुषस्य वा त्यागेऽवस्थानामभावप्रसङ्गात् । न चैकतरस्योपादानं युक्तम्, उपादीयमानस्येतराभावेऽभावप्रसङ्गादेव अवस्थावस्थावद्वर्णननिर्विकल्पत्वसर्वगतत्वाभावप्रसङ्गात् प्रतिज्ञाव्याघाताच्च । तस्मा**दन्यतरोपादानपरित्यागायुक्तत्वादस्य** पुरुषस्यावस्थालक्षणत्वमवस्थाऽसत्त्वं वा न शक्यं वक्तुम् । किं तर्हि? तल्लक्षणत्वातल्लक्षणत्वाभ्यामवाच्यः स पुरुष इति । एतच्चायुक्तम्, यस्मात् **तथा स नैव स्यात्,** एत-

---

१ दृश्यतां पृ० २०१-२ ॥ २ °त्मिकत्वा° प्र० ॥ ३ °भाव्यैका(क्या?)पत्त्य° प्र० ॥ ४ °मर्हतीति प्र० ॥ ५ °स्तत्परि° प्र० ॥ ६ अर्थत इत्वरलक्षण° य० । अर्थत इतारलक्षण° भा० ॥ ७ वा निति विनिद्रा° य० । वा विनिद्रा° भा० ॥ ८ °मक्षण° प्र० ॥ ९ पुरुष इतश्चे° प्र० ॥ १० °वस्थात्यः भा० ॥ ११ अवस्थावद्वर्ण° य० ॥ १२ °स्थासत्वं भा० ॥ १३ तल्लक्षणत्वाभ्याम्° प्र० ॥ १४ तत्वा प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्यात्, विनिद्रावस्थया सहैकत्वान्यत्वे प्रत्यवचनीयत्वात्, खपुष्पवत् । न तदेकं नान्यद्वा वाच्यं निरुपाख्यत्वात् । यत्तु सत् तद् विनिद्रावस्थया सहैकत्वान्यत्वे प्रति वचनीयम्, यथा विनिद्रावस्थास्वात्मा जाग्रदाद्यवस्थास्वात्मानो वा । अत एव अन्यतरत्यागोपादानायुक्तत्वादपि च ननूभययुक्तत्ववाच्यत्वाभ्युपगम एव पितृपुत्रवत् ।

[1]यद्यपि च पुरुषस्वात्मैव अवस्था न तर्हि ना, अनवस्थत्वात्; खपुष्पवत् । अभ्यु-

---

स्यामपि कल्पनायां स पुरुषोऽसन्नेव, कस्मात्? **विनिद्रावस्थया सहैकत्वान्यत्वे प्रत्यवचनीयत्वात् खपुष्पवत्**, 'विनिद्रालक्षणः पुरुषो न विनिद्रालक्षणो वा' इत्येते द्वे अन्यत्वानन्यत्वे प्रति अवचनीयत्वाद-सन् पुरुषः । **न तदेकं नान्यद् वा वाच्यं** खपुष्पं विनिद्रावस्थया सह, किं कारणम्? 'एकम्' इति तावदवाच्यमसत्त्वात्, 'अन्यत्' इत्यप्यवाच्यमविनिद्रावस्थात्वे सत्यप्यसत्त्वे **निरुपाख्यत्वाद्** वाग्बुद्धि-गोचरातिक्रान्तत्वादिति खपुष्पे दृष्टान्ते हेतोः साध्येनाविनाभावित्वप्रदर्शनम् । **यत्तु सत् तद् विनिद्रावस्थये**त्यादि वैधर्म्यदृष्टान्तः साध्याभावे हेत्वभावोपप्रदर्शनम्, मा मंस्थाः 'अस्मदिष्टसमुदय्यवस्थास्वात्मनि १८३-२ सति अवचनीयताया दर्शनादनैकान्तिकता' इति **विनिद्रावस्थास्वात्मानं जाग्रदाद्यवस्थास्वात्मनश्च** निदर्शयति अन्यानन्यत्वे प्रति वचनीयत्वात्—यथा विनिद्रावस्था स्वात्मनो विनिद्रावस्थातोऽनन्या जाग्रदवस्था-दिस्वात्मभ्योऽन्या, तथा ता अपि तस्या अन्याः स्वात्मभ्योऽनन्याः सत्यश्च, न तथा पुरुषः, तस्मादसन्निति ।

किञ्चान्यत्, **अत एव** त्वदभिहितात् कारणा**दन्यतरत्यागोपादानायुक्तत्वादपि च ननूभय-युक्तत्ववाच्यत्वाभ्युपगम एव [2]पितृपुत्रवत्**, यथैकः पिता पुत्रश्चा[3]वश्यं नासौ स्वपितुः पुत्रत्वमन्तरेण स्वं[4]पुत्रं प्रति पितृत्वमनुभवतीति न पुत्रत्वं त्यजति नापि पुत्रत्वमेवोपादत्ते नापि पितृत्वमेव, ततोऽसौ पिता च पुत्रश्चेति वक्तव्यस्तद्द्वयधर्मयुक्तश्च दृष्टस्तथा स पुरुषो विनिद्रालक्षणालक्षणान्यतरत्यागोपादानायुक्तत्वादेव तल्लक्षणातल्लक्षणधर्मद्वययुक्तस्तद्धर्मद्वयवाच्यश्चावश्यं भवितुमर्हति तदन्यतरत्यागोपादानायुक्तत्वस्य तदविना-भावात् । एवं तावत् 'पुरुष एव अवस्थाः' इत्येतदयुक्तम्, अवस्थानामभावेऽनेकदोषप्रसङ्गात् ।

अभ्युपेत्यापि पुरुषस्वात्मत्वमवस्थानां चतसृणां पुरुषासत्त्वदोषं ब्रूमः—**यद्यपि** चेत्यादि । यद्यपि च **पुरुषस्वात्मैव** चतस्रोऽप्य**वस्था**स्तथापि **न तर्हि ना**, नेदानीं पुरुषोऽस्ति, **अनवस्थत्वात्**, नास्या-वस्थाः सन्तीत्यनवस्थः, तद्भावोऽनवस्थत्वम्, तस्मादनवस्थत्वादवस्थास्वरूपव्यतिरिक्तत्वात् तच्छून्यत्वात् खपुष्पवत् । अथवा नावस्थाऽनवस्था, पुरुषोऽवस्था न भवति, योऽवस्था न भवति स नास्ति यथा खपुष्पम्, अवस्थाश्च त्वयाभ्युपगताश्चतुरवस्थावर्णनानेकात्मकसर्वगतत्वभावनै[5]कैकावस्थाभेदाभेदापत्त्यात्मका- १८४-१ विकल्परूपाभ्युपगमात् ततोऽन्यस्य खपुष्पस्थानीयत्वात् । प्रागवस्थानामेव सत्त्वमभ्युपगम्य '[6]अनवस्थात्वे-ऽचतुरात्मकत्वात्' इत्युक्तम्, अधुना तु पुरुषमेवाभ्युपगम्यानवस्थात्मकं परपरिकल्पितमेष दोष उक्त

---

१ दृश्यतां पृ० २०१-२ ॥ २ पितृत्रपुत्र भा० । पितृप्रपुत्र° पा० वि० ४० ही० ॥ ३ °वश्यमासौ प्र० ॥ ४ स्वं भा० ॥ ५ एकैकावस्थाभेदानामभेदापत्त्यात्मकस्य अविकल्परूपस्याभ्युपगमादित्यर्थः ॥ ६ दृश्यतां पृ० २५२ पं० १ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पगमेऽपि नुः अवस्थानां चतसृणामप्यैक्यं स्यात् पुरुषस्वात्मत्वात् पुरुषवदिति। सर्वत्वसम्भाव्याभावात् सर्वाव्यापिता पुरुषस्य। विनिद्रावस्थैव हि जाग्रदवस्था विनिद्रावस्थास्वात्मत्वाद् विनिद्रावस्थावत्, एवमितरे अपि। जाग्रदवस्थैव विनिद्रावस्था जाग्रदवस्थास्वात्मत्वाज्जाग्रदवस्थावत्, एवमितरे अपि। सुप्तावस्थैव विनिद्रावस्था सुप्तावस्थास्वात्मत्वात् सुप्तावस्थावत्, एवमितरे अपि। सुषुप्तावस्थैव विनिद्रावस्था सुषुप्तावस्थास्वात्मत्वात् सुषुप्तावस्थावत्, एवमितरे अपि। येवान्यावस्था सैवान्यापि

इति व्याख्ययोर्भेद इत्यसन् पुरुषो[1]ऽनवस्थत्वात् खपुष्पवत्। अनवस्थस्य तस्य **अभ्युपगमेऽपि नुः**[2] पुरुषस्य **अवस्थानां चतसृणामप्यैक्यं स्यात्**। कुतः? **पुरुषस्वात्मत्वात्**, त्वया ह्युक्तं 'पुरुषस्वात्मैवावस्था नान्याः' इत्यतस्तासामैक्यं तत्स्वात्मत्वात् **पुरुषवत्**, यथा हि पुरुषस्वात्मत्वात् पुरुष एक एव तथा ता अप्यवस्थास्तत्स्वात्मत्वादेकमिति च[3]तुष्ट्वाभावात् 'चतस्रोऽवस्थाः' इति बहुवचनानुपपत्तिः। ततश्चैकत्वात् **सर्वत्वेन** स[4]र्वथा **सम्भाव्यो न भवति** पुरुषः, सृ गतौ [पा० धा० ९३५, १०९५] इति सर्वत्वस्यानेकाश्रयत्वात् 'पुरुष एव सर्वम्' इति यदाश्रयादुच्यते तत् सर्वं किमाश्रयं यदुक्त्वा सर्वं पुरुषस्य सर्वव्यापिता वर्ण्यते? तत आह—**स[5]र्वत्वसम्भाव्याभावात् सर्वाव्यापिता पुरुषस्य** प्राप्ता व्याचिख्यासितसर्वव्यापित्वविरोधिनी।

तत् पुनरेकत्वं विनिद्रावस्थास्वात्मत्वात् तासाम्, पुरुषस्वात्मत्वात् परस्परात्मकत्वं च सिद्धम्। तदिदानीं भाव्यते—**विनिद्रावस्थैव हि जाग्रदवस्था, विनिद्रावस्थास्वात्मत्वात्, विनिद्रावस्थावत्।** यथा विनिद्रावस्था विनिद्रावस्थास्वात्मत्वाद् विनिद्रावस्थैव तथा जाग्रदवस्थापि विनिद्रावस्था-
१८४-१ स्वात्मत्वाद् विनिद्रावस्थैवेतीत्थं विनिद्रावस्थया सहैक्यं जाग्रदवस्थायाः। विनिद्रावस्थास्वात्मत्वं च सर्वावस्थानां पुरुषस्वात्मत्वात् त्वयैवाभ्युपगतम्। **एवमितरे अपी**ति, विनिद्रावस्थैव सुप्तावस्था विनिद्रावस्थास्वात्मत्वाद् विनिद्रावस्थावत्, विनिद्रावस्थैव सुषुप्तावस्था विनिद्रावस्थास्वात्मत्वाद् विनिद्रावस्थावत्। तथा **जाग्रदवस्थैव विनिद्रावस्था जाग्रदवस्थास्वात्मत्वाज्जाग्रदवस्थावत्**, अस्यापि पूर्ववद् व्याख्या। एवं जाग्रदवस्थया सहैक्यं विनिद्रावस्थाया व्याख्येयम्। **एवमितरे अपी**त्यतिदेशः, जाग्रदवस्थैव सुप्तावस्था जाग्रदवस्थास्वात्मत्वाज्जाग्रदवस्थावत्, जाग्रदवस्थैव सुषुप्तावस्था जाग्रदवस्थास्वात्मत्वाज्जाग्रदवस्थावत्। तथा **सुप्तावस्थैव विनिद्रावस्था, सुप्तावस्थास्वात्मत्वात्, सुप्तावस्थावत्। एवमितरे अपी**त्यतिदेशः, [6]*सुप्तावस्थैव जाग्रत्सुषुप्तावस्थे सुप्तावस्थास्वात्मत्वात् सुप्तावस्थावत्। तथा **सुषुप्तावस्थैव विनिद्रावस्था, सुषुप्तावस्थास्वात्मत्वात्, सुषुप्तावस्थावत्। एवमितरे अपी**त्यतिदे*शः, सुषुप्तावस्थैव जाग्रत्सुप्तावस्थे सुषुप्तावस्थास्वात्मत्वात् सुषुप्तावस्थावत्। ऐ[7]वमवस्थानां प्रत्येकं विशेष्य परस्परत ऐक्यं भावितम्, सामान्येनापि सर्वोपसंहारेणोच्यते—[8]**येवान्यावस्था सैवान्यापि एकस्वात्मत्वात् सेवेति।**

---

१ **पुरुषोवस्थात्वात्** प्र० ॥ २ **तुः** प्र० ॥ ३ **चतुष्काभा**° य० ॥ ४ **सर्वेवा** प्र० ॥ ५ **सर्वत्रस**° य० ॥ ६ * *एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ७ **एवमेवमव**° य० ॥ ८ **ये चान्या** भा० र० ही० विना ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकस्वात्मत्वात् सा इवेति 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इत्यतिदेशाभावो भेदाभावात्।

[1]उपवर्णनभिन्नरूपव्यतिकरसङ्कराभ्यां त्वेवमतथात्वमासामस्य च तत्तत्स्वात्मत्वादिति पुरुषावस्थाव्यवस्थाऽभावः। उक्तवद्वा व्यवस्थानुमतौ पुरुषातिदेश-

---

अथवावस्थानामपि प्रत्येकं भेदेषु परस्परात्मत्वापादनेन मनुष्यतिर्यगमरादिषु घटपटतृणादिषु चैक्यमुन्नेयम् 'इतरात्मकमितरत्, इतरात्मत्वात्, तत्स्वात्मवत्' इति। **इति पुरुष एवे**त्यादि यावद् **भेदाभावा**दिति। इत्यस्मात् कारणादेकत्वाद् यत् प्रोक्तं[2] सर्वेत्वसम्भाव्याभावात् सर्वाव्यापिता पुरुषस्येति तदुपनयति— **'पुरुष एवेदं सर्वम्' इत्यतिदेशाभावो भेदाभावा**दिति। अतिदेशोऽतिसर्जनं पुरुषात्मकत्वव्याख्या तद्भावनेत्यर्थः। पुरुषेण वास्याप्रत्यक्षेण इदंशब्दवाच्यस्य प्रत्यक्षस्यातिदेशः, अनेन वा तस्याप्रत्यक्षस्यातिदेशः **'सर्वमेव तन्मयम्'** इति। १८५-१

किञ्चान्यत्, **उपवर्णने**त्यादि यावद् **व्यवस्थाभाव एवे**ति। उप सामीप्ये, सामीप्येन वर्णनमुपवर्णनं विशेषधर्मेण न सामान्यधर्मेण, सामान्यधर्मस्य दूरत्वात्। यथा—पुरुषोऽयम्, समुत्थायोपविष्टत्वात् पाण्यादिसञ्चलनाच्छिरःकण्डूयनादिति नोर्ध्वत्वादिति। उपवर्णनेन भिन्नानि रूपाण्यासां विनिद्राजाग्रत्सुप्तसुषुप्तत्वादिविशेषवर्णनेन, तैश्च रूपैर्भिन्नैर्व्यतिकरः सङ्करश्च तासां [3]प्राप्तावितथमुक्तैकत्वात्। व्यतिकरो विनिद्रावस्थास्वात्मत्वं जाग्रदवस्थास्वात्मनः, जाग्रदवस्थास्वात्मत्वं विनिद्रावस्थास्वात्मनः, एवमितरयोरवस्थयोरपीतरेतरस्वात्मत्वप्राप्तिरेतयोश्च [4]तत्स्वात्मत्वप्राप्तिस्तयोरेतत्स्वात्मत्वप्राप्तिः। ततश्च दानशीलतपोविशेषैर्नरकावाप्तिः, हिंसादिभिः स्वर्गावाप्तिः, स्वर्गे दुःखानुभवनम्, नरके सुखानुभवनम्, पुरुषतत्त्वाज्ञानाद् मुक्तिरिति। सङ्करस्तु क्षीरोदकसंयोगवदविवेचनीयविनिद्रावस्थास्वात्मत्वम्। इत्येतौ व्यतिकरसङ्करौ प्राप्तौ, ताभ्यां च **व्यतिकरसङ्कराभ्यां** हेतुभ्या**मतथात्वं** विनिद्रावस्थाया अविनिद्रावस्थात्वम्, एवं शेषाणामप्ययथास्वस्वरूपत्व**मासा**मवस्थानाम्, **तत्स्वात्मत्वात्** पुरुषस्वात्मत्वात् पुरुषस्वात्माभिन्नविनिद्राद्यवस्थास्वात्मत्वादिति यावत्, तदेवैकत्वं कारणमाह—**तत्तत्स्वात्मत्वा**दिति, तासामतथात्वमित्थमुक्तम्। **अस्य चे**ति १८५-२
पुरुषस्याप्यतथात्वमेव अपुरुषत्वमेव तत्स्वात्मत्वात् [5]तत्स्वात्मैवदिति।

एतमर्थमुपसंहरति—**इति [6]पुरुषावस्थाव्यवस्था[ऽभावः]**, इत्थं पुरुषस्यावस्थानां च **व्यवस्था** विशेष्य असाधारणेन लक्षणेनावधृत्य व्याख्या व्यवस्था, तस्या **अभावः** स्वरूपसिद्धेरभावात्। मा भूदेष दोषः 'पुरुषस्यावस्थानां च व्यवस्थाया अभावः' इति यदि पूर्वोक्तवद् व्यवस्थां पृथक् पृथग् मन्यसे पुरुषस्यापि सर्वावस्थाव्यापिनोऽवस्थानां च चैतन्यसमवस्थानाविर्भावतिरोभावोत्कर्षापकर्षभेदभिन्नानां प्राग्व्याख्यातसृष्टिवत् ततश्च **उक्तवद् वा व्यवस्थानुमतौ** सत्यां **पुरुषातिदेशस्त्याज्यः**, '[7]पुरुष एवेदं सर्वम्' इत्येकपुरुषमयत्वातिसर्गस्त्यक्तव्यो जायते पृथक् पृथक् पुरुषस्यावस्थानां च स्वरूपव्यवस्थाभ्युपगमे पुरुषैककारण-

---

१ दृश्यतां पृ० २०२-१॥ २ दृश्यतां पृ० २५४ पं० २॥ ३ **प्राप्तमित्थ**° प्र०॥ ४ **तत्स्वात्मप्राप्तिस्तयोरेतत्स्वात्मप्राप्तिः** प्र०॥ ५ °**त्मत्ववदिति** भा०॥ ६ **'पुरुषावस्थाऽव्यवस्था, इत्थं'** इत्यपि पाठोऽत्र स्यात्॥ ७ दृश्यतां पृ० १८९ पं० ५॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

स्त्याज्यः । तदत्यागे यदर्थमयमतिदेशोऽद्वैतैकान्तार्थस्तस्यैवासिद्धिः । योऽसावेक एव पुरुषः सम्भाव्यते तस्याप्यनेकतैवमापद्यते, यत्स्वरूपाव्यतिरिक्तलक्षणा अवस्था विना भेदेनोच्यन्ते स पुरुषोऽपि पुरुषेणाभिव्याप्तत्वादनवस्थितैकत्वतत्त्वप्रतिष्ठः 'पुरुषः' इत्यतिदेश्यः स्यात् पुरुषस्वात्मत्वादवस्थावत् । प्रत्यक्षार्थेदंविषयतायां वा

मयत्वविरोधादिति । एष दोषो मा भूदिति **तदत्यागे यदर्थमयमतिदेशो**[1]ऽतिसर्गः प्राग् व्याख्यातः 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इति, किमर्थमसावतिदेश इति चेत्, **अद्वैतैकान्तार्थः** 'अद्वैतमेकपुरुषमयम्' इत्येतत्प्रतिपादनार्थः, **तस्यैवासिद्धि**रद्वैतैकान्तस्य । किं कारणम्? यस्मादेकपुरुषाभ्युपगमोऽयमेकपुरुषासिद्धिमेव ते करोति ।

तत् कथमिति चेत्, **योऽसावेक एव** त्वया **पुरुषः सम्भाव्यते तस्याप्यनेकतैवमापद्यते** । **एव**मिति त्वदभिहितेनैव पुरुषस्वात्मातिदेशाद्वैतेन, का पुनर्भावना? उच्यते — **यत्स्वरूपे**त्यादि याव**दवस्थाव**दिति । यस्य स्वरूपं यत्स्वरूपम्, कस्य[2] स्वरूपम्? पुरुषस्य, किं स्वरूपम्? नित्यसर्वगतसर्वात्मकत्व- १८६-१ कारणत्वादि[3], तदव्यतिरिक्तं लक्षणमासां ता **अवस्था**स्तदव्यतिरिक्तलक्षणास्तत्स्वरूपपुरुषाव्यतिरिक्तलक्षणास्त्वया **विना भेदेनोच्यन्ते** तस्मात् पुरुषादभिन्ना एवोच्यन्ते इत्यर्थः, तद्यथा — 'पुरुष एवावस्थाः, नावस्था एव पुरुषः' इत्यवधारणभेदादेव भेदोपदर्शनेन च भेदोऽभ्युपगम्यते, तत एव तस्य ताभ्यो नानात्वं तासां च त्वद्वचनादेव सिध्यति, यथा 'ऊर्ध्वग्रीवादिलक्षणो घटः, घट एव ऊर्ध्वग्रीवादयः, न पटो न पटचातुरश्र्यादयः' इति तस्य तासु तासां च तस्मिन्नवधारणानवधारणाभ्यां भेद एव सिध्यति । न त्वभेदेऽवधारणभेदोऽस्ति, यथा 'घटस्वात्मैव घटः, न घट एव घटस्वात्मा' इति । तस्मादवस्थानां विनिद्रादीनामवस्थावतश्च पुरुषस्य भेदस्त्वद्वचनादेवेति । किञ्च, **स पुरुषोऽपी**त्यादि, एवं च सति एकपुरुषमयत्वातिदेशात्यागे सोऽपि पुरुषः पुरुषान्तरेणाभिव्याप्तः पुरुषस्वात्मत्वादवस्थावदिति प्राप्तः । यथा विनिद्राद्यवस्थाः पुरुषस्वात्मैव नावस्थान्तरात्मिका इति कृत्वा पुरुषेणाभिव्याप्तास्तथा पुरुषोऽपि पुरुषस्वात्मत्वात् तदविनाभावात् पुरुषान्तरेणाभिव्याप्तः स्यात्, तथा तदपि पुरुषान्तरं पुरुषस्वात्मत्वात् तद्वदेवेति पुरुषानेकत्वं स्यात्, तस्यापि तथैवेत्यनवस्था च, ततश्च **पुरुषेणाभिव्याप्तत्वादनवस्थितैकत्वप्रतिष्ठः पुरुष** इति प्राप्तम्, अनवस्थिता एकत्वेन एकत्वे वा प्रतिष्ठाऽस्य सोऽयमनवस्थितैकत्वप्रतिष्ठः पुरुषः स्यात् **पुरुषस्वा-** १८६-२ **त्मत्वादवस्थावत्**, यथावस्थाः पुरुषस्वात्मत्वादनवस्थितैकत्वप्रतिष्ठास्तथा पुरुषोऽपि स्यादिति । तथा **अनवस्थिततत्त्वप्रतिष्ठः**, तस्य भावस्तत्त्वमात्मस्वरूपम्, अनवस्थिता तत्त्वेन तत्त्वे वा प्रतिष्ठाऽस्य सोऽयमनवस्थिततत्त्वप्रतिष्ठः, न स्वरूपे प्रतिष्ठितः स्यात् पुरुषः, पुरुषस्वात्मत्वादवस्थावत् । यथावस्थाः पुरुषस्वात्मनो[4]ऽनवस्थितात्मस्वरूपव्यवस्थाप्रतिष्ठाः पुरुषस्वरूपव्यवस्था एवेष्यन्ते, तत्रैव तासां प्रतिष्ठा, न स्वात्मसु, तथा पुरुषोऽपि स्यात् । पुरुषान्तरातिदेश्यश्च पुरुषः स्यात्, पुरुषस्वात्मत्वात्, अवस्थावत् । यथेमाः सुप्ताद्यवस्थाः पुरुषस्वात्मत्वात् 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इत्यतिदिश्यन्ते तथा पुरुषः पुरुषस्वात्मत्वात् 'पुरुषान्तरमेवायम्' इत्यतिदेश्यः स्यात् ।

---

१ **यमर्थं** प्र० ॥ २ **यस्य** प्र० ॥ ३ **°दिति तद°** प्र० ॥ ४ **°त्मनो°** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचेतनव्यक्तमूर्तानित्यादिरूपार्थपुरुषपरमार्थता ।

[1]अवस्थास्त्वन्यत्वानेकत्व एव पुरुषः । अवश्यमन्यास्तास्तस्मात्, तद्रूपापत्त्यनिष्टत्वात्, अवस्थान्तरवत्, यतोऽवस्थास्वात्मत्वमस्य नेष्यते । पुरुषातिदेशात्तु पुनः स्वपरविषयकृतभेदद्वारान्यत्वासम्भवात् कस्यचित् कथञ्चिदप्यन्यस्यानुपपत्तौ ता अपि अन्यत्वापत्तिवत् पृथक् पृथक् पुरुषः ।

स्यान्मतम् — एतद्दोषभयादिदंशब्दवाच्यप्रत्यक्षार्थादन्यं पुरुषमभ्युपगम्य 'एता एवावस्थाः पुरुषः' इति प्रत्यक्षार्थेदंविषयतया 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इति [2]दृश्यस्पृश्यादि अतिदिश्यात्, यथा 'अयं देवदत्त एव' इति अयंशब्दवाच्यो हि देवदत्तः प्रत्यक्षाप्रत्यक्षत्वयोः स एव तथा 'पुरुष एवेदम्' इति । एतच्चायुक्तम्, यस्मादस्यां **प्रत्यक्षार्थेदंविषयतायां** सत्याम**चेतनव्यक्तमूर्तानित्यादिरूपार्थपुरुषपरमार्थता** प्राप्नोति, **आदि**ग्रहणादसर्वात्मककार्यानेकत्वादिरूपार्थपुरुषपरमार्थतापि, न चेतनाव्यक्तामूर्तनित्यसर्वात्मकसर्वगतकारणैकरूपार्थपुरुषपरमार्थतापि स्यादिति प्रसङ्गतोऽयं दोष आपादितः । एवं तावदन्यानेकत्वः पुरुष इति पुरुषस्वात्मापरित्यागेन अवस्थाभेदं तद्द्वारेणोक्त्वा उक्तः ।

इदानीमवस्थान्यत्वद्वारेणैव पुरुषनेकत्वं त्वदुक्तवद् ब्रूमः — **अवस्थास्तु अन्यत्वानेकत्व एव** १८७-१
पुरुष इत्येतत् [3]प्रैत्या(त्य?)भेदोपन्यासवाक्यम्, तद्वचनस्मारणेन विचारार्थोपन्यास इत्यर्थः । अवस्थास्तु पुरुषोऽन्यत्वानेकत्वे सति एव, यतोऽवस्थास्वात्मत्वं पुरुषस्येष्यते ततस्तासामन्यत्वेनानेकः अन्योऽनेकश्चेति वा । तत् कथमिति चेत्, त्वदुक्तेरेवा**वश्यम[4]न्यास्ताः** पुरुषादन्या विनिद्राद्यवस्थाः ताभ्यश्च सोऽन्य इति परस्परावधिकमन्यत्वं साध्यते । **तद्रूपापत्त्यनिष्टत्वा**दिति हेतुः, तयोश्चावस्थावस्थावतोस्तद्रूपापत्त्यनिष्टत्वं सिद्धम्, अन्यथावस्थानां विशेषितानामन्यत्वे साध्ये पुरुषपृथक्त्वेन तदसिद्धेराश्रयासिद्धिस्तद्रूपापत्त्यनिष्टत्वं वाऽसिद्धमा[5]शङ्क्येत । अथवा पुरुषोऽवस्था इति चाविशेष्य पराभिमतं वस्तूभयमपि परस्परतोऽन्यदिति सामान्येन साध्यते इतरस्येतररूपापत्त्या अनिष्टत्वादित्यर्थः, अवधारणभेदाच्चेतररूपापत्त्यनिष्टत्वमापादितम् । किमिव? **अवस्थान्तरवत्**, यथा विनिद्रावस्था सुप्तावस्थारूपापत्त्या नेष्टा तथा स्वतोऽन्याश्चेति । 'तद्रूपापत्त्यनिष्टत्वासिद्धिः' इति मा मंस्था इत्यत आह — **यतोऽवस्थास्वात्मत्वमस्य नेष्यते** पुरुषस्य, एतदवस्थारूपापत्त्या पुरुषानिष्टत्वादवस्थाद्वारेण पुरुषस्य अवस्थानां चान्यत्वानेकत्वं त्वदुक्तौ चैवमुपपादितम् ।

पुरुषातिदेशात् तु पुनरित्यादि । 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इति पुरुषत्वेनावस्थानामतिदेशेऽन्यत्वं न सम्भवत्येव, कथम्? **स्वपरविषयकृतभेदद्वारान्यत्वासम्भवात्**, स्वविषयकृतो घटस्य रूपादीनां प्रधानस्य सत्त्वादीनां चैकवस्तुगता[6]नामेव धर्माणां भेदः, परविषयकृतस्तु तयोरेव वस्त्वन्तरात् पटादेः पुरुषाच्च भेदः, तदुभयभेदद्वारमन्यत्वं सम्भाव्येत । तत्तु अनभ्यु[7]पगतमन्यत्वद्वारद्वयं भेदद्वयासम्भवात् । ततोऽन्यत्वानुपपत्तिः १८७-२
कस्यचिदिति वस्तुनः **कथञ्चि**दिति रूपादिसत्त्वादिप्रकारेण तद्द्वारानभ्युपगमादेव । ततः **पुरुषादन्यस्यानु-**

---

१ दृश्यतां पृ० २०१-२ ॥ २ दृश्यतां पृ० १८९ पं० २६ ॥ ३ (प्रकृत्या भेदो° ? तदुक्त्या भेदो° ?) ॥
४ °मन्यस्ताः प्र० ॥ ५ °शंकेत भा० । °शंकत य० ॥ ६ °नामेक ध° य० ॥ ७ °पगमान्यत्व° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ पुरुषलक्षणापि विनिद्रावस्था न पुरुषः, पुरुषोऽपि न तर्हि पुरुषः पुरुषलक्षणत्वाद् विनिद्रावस्थावत्। एवं शेषा अपि। इति पुरुषाभाव एव, कुतोऽस्य सर्वगतता? तदभाव एव त्वदभिप्राय एव एवं प्रतिपाद्यते, तदात्मत्वाभिमतनिरसनात्, उष्णत्वनिरसनेन अग्न्यभावप्रतिपादनवत्।

यत्तु यत्नेन अलक्षणत्वमुक्तमतो ननूक्तवत् त्वयैव स्फुटीकृतमसत्त्वं सर्व-

---

पपत्तौ सत्यां **ता अपि** चतस्रोऽवस्था **अन्यत्वापत्तिवत्**[2] **पृथक् पृथक् पुरुषः**, चत्वारः प्रभेदाः[3] स्युः पुरुषाः। इदमपि त्वदुक्तिवदेव, तत् कथम्? इति तदुच्यते[4] – यथा केनचिदुपपत्तिप्रकारेणासम्भाव्यमप्यन्यत्वमुच्यते तथा ता अप्यवस्थाः सम्भावनापादितान्यत्वाः पृथक् पृथक् स्युः। ततश्च ताः पुरुषस्वात्मत्वात् परस्परतोऽन्यत्वाच्च पुरुषाः पृथक् पृथक्, विनिद्रावस्था प्रत्येकं पुरुषः, एवं शेषा अपि प्रत्येकं पुरुषाः। केन पुनरुपपत्तिप्रकारेणान्यत्वम्? अवधारणभेदादेव। एवं पुरुषातिदेशात् पुरुषबहुत्वं विनिद्राद्यवस्थानां पुरुषस्वात्मत्वादिति।

अथेत्यादि। **अथ पुरुषलक्षणापि विनिद्रावस्था न पुरुषः** यदि प्रत्येकं पुरुषत्वं तद्बहुत्वं च दोषौ दृष्ट्वा पुरुषलक्षणापि विनिद्रावस्था पुरुषो नेष्यते ततः **पुरुषोऽपि न तर्हि पुरुषो**ऽस्तु **पुरुषलक्षणत्वाद् विनिद्रावस्थावत्। एवं शेषा अपी**ति, यथा विनिद्रावस्था पृथक् पुरुष इत्यापाद्य तत्परिहारार्थं पुरुषलक्षणत्वे सति अपुरुषत्वमाशङ्क्य 'पुरुषस्यापुरुषत्वं तद्वत्' इत्यापादितं तथा प्रत्येकं सुप्ताद्यवस्था अपि पुरुष इत्यापाद्य तत्परिहारार्थं पुरुषलक्षणत्वे सति अपुरुषत्वमाशङ्क्य सुप्ताद्यवस्थानां तद्वत् पुरुषस्यापि पुरुषात्मनोऽपुरुषत्वमित्यापादनीयम्। **इति पुरुषाभाव एव,** इत्थं पुरुषस्याभाव एव प्रसक्तः। **कुतोऽस्य सर्वगतता?** विद्यमानस्य हि सर्वत्वमसर्वत्वं सर्वगतत्वमसर्वगतत्वं वेति विचार्यं स्यात्। अथवा त्वदभिप्रतमेवैतत् तदभावप्रतिपादनम्, नास्मदभिप्रायः, **एवमि**त्येतेन विधिना। कुतः? **तदात्मत्वाभिमतनिर-**
१८८-१ **सनात्**, यो यदात्मत्वेनाभिमतोऽर्थस्तं निरस्यन् वादी तमेवार्थं निरस्यन् दृष्टः, यथा 'उष्णो न भवत्यग्निः' इति ब्रुवन्नौष्ण्येनाविनाभाविनमौष्ण्यात्मानमग्निमेव निरस्यति तथेहापि[5] विनिद्राद्यवस्थालक्षणं पुरुषमुक्त्वा 'पुरुषस्वात्मैताः[6] पुरुषान्न भिन्नाः सन्ति' इति ता निराकुर्वंस्तदात्मानं पुरुषमेव त्वं निराकरोषीति **त्वदभिप्राय एवायं** पुरुषाभावः। एवं तावत् प्रवृत्त्योपलक्षितस्त्वदीयोऽभिप्रायो व्याख्यातः।

नाभिप्रायमात्रादेवाभावः, किं तर्हि? स्फुटमेव त्वयोक्तं 'नास्ति पुरुषः' इति, तद्यथा – **यत्तु यत्नेने**त्यादि। सामान्येनायं न्यायोऽवतार्यते, भावना त्वस्य विशेष्य वक्तव्या – यथा अवस्थालक्षणः पुरुषः पुरुषलक्षणा अवस्था इति वातिदिश्यमानानां परस्परमेकत्वमन्यत्वमवक्तव्यत्वमसत्त्वं चेति विकल्पाः स्युः सविकल्पत्वे, न पुनरेते सन्ति कल्पनाऽविषयत्वाद् विकल्पातीतनिर्विकल्पपरमार्थत्वाच्चा**लक्षणत्वं** त्वयोक्तं[7] प्राक्, **अतो ननूक्तवत् त्वयैव स्फुटीकृतमसत्त्वं** प्रतिपादयितुमिष्टं वचनेनैव **सर्वस्यापि**, न केवलं पुरुषस्यैव,

---

१ दृश्यतां पृ० २०२-१ ॥ २ °**न्यथापत्ति**° प्र० ॥ ३ **सप्रभेदाः** भा० ॥ ४ '**चेदुच्यते**' इत्यपि पाठोऽत्र स्यात् ॥ ५ °**स्य तथेहापि** प्र० ॥ ६ (°स्वात्मैव ताः ?) ॥ ७ °**नावि**° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्यापि, वयमपि च ब्रूमः—कुतोऽस्यापत्तिभवनम्, भेदत्वेनाभूतत्वात् परिणामित्वेनाभूतत्वाद् वन्ध्यापुत्रवत्। अव्यभिचरितानेकत्वैकगतिर्हि भेदभावः

अवस्थानामवस्थावतः पुरुषस्य चेति। **वयमपि च ब्रूमः**, न केवलं त्वद्वचनादेवासत्त्वं पुरुषस्य, त्वद्वचन[1]-समर्थनाय वयमप्यसदेव सर्वं त्वदिष्टमिति ब्रूमः। कुतः? त्वन्मते सर्वस्याभावात्, भवनं हि द्विविधं मया वक्ष्यमाणम्—इतरेतरापेक्षद्वैतवृत्ति सन्निधिभवनमापत्तिभवनं च। सन्निधिभवनमापत्तिभवनाभावे न भवितुमर्हति। तिष्ठतु सन्निधिभवनम्, इदमपि **कुतोऽस्यापत्तिभवनं पुरुषस्य**? कथं नास्ति? **भेदत्वेनाभूतत्वात् परिणामित्वेनाभूतत्वाद् वन्ध्यापुत्रवत्**, यथा वन्ध्यापुत्रो भेदत्वेन परिणामित्वेन वा अभूतत्वान्नास्ति तथा त्वदिष्टं सर्वमापत्तिं नानुभवतीत्यसत्। किमर्थमित्थं विशेष्यते '[2]भेदेन परिणामित्वेन वाभूतत्वात्' इति, न पुनः 'अभेदत्वादपरिणामित्वात्' इत्युच्यते? उच्यते—भेदो न भ[3]वतीत्यभेदो भेदादन्यो वा १८८-२ स्यादेवमपरिणामीत्यभेदत्वादपरिणामित्वादिति, नास्य भेदोऽस्तीत्यभेदः नास्य परिणामित्वमित्यपरिणामित्वादभेदत्वादिति बहुव्रीहिसमासो वा स्यात्। बहुव्रीहिस्तावन्न घटते एव अन्यपदार्थत्वादन्यस्यार्थस्याभावात्, अतः समन्वयाभावः, समन्वयाभावात् तदभावः। तत्पुरुषोऽपि प्रसज्यप्रतिषेधपक्षे न घटते नञः क्रियापदसम्बन्धिनोऽसमर्थत्वात्, तस्माद् भेदादन्य इति पर्युदासः स्यात्, स च बहुव्रीहितुल्य एवार्थत इति 'भेदत्वेनाभूतत्वात् परिणामित्वेनाभूतत्वात्' इति सुखग्रहणार्थं शङ्कापोहार्थं चेत्युक्तम्। भिन्नानां हि भावानामव्यभिचरितैकत्वापत्तीनां सर्वत्वं भवति, न त्वदिष्टस्यैकस्याभिन्नस्येति, तद् व्याचष्टे—**अव्यभिचरिते**त्यादि यावद् **भेदभावः सर्वत्वम्**। अव्यभिचरितमनेकत्वं यस्य तदिदमव्यभिचरितानेकत्वमेकम्, तस्य **ग[4]तिः** परिणामस्तदापत्तिः[5], सैकत्वापत्तिरनेकेन विना न भवतीति, यथा शुक्रशोणितादेरनेकस्यैकत्वापन्नस्याध्यात्मिकस्य। यथोक्तम्—

[6]मातुओयं पितुसुक्कं तं तदुभयसंसिट्ठं कलुसं किव्विसं तप्पढमं आहारमाहारेत्ता जीवो गब्भत्ताए वक्कमति।
सत्ताहं कललं होति सत्ताहं होति अब्बुदं।
अब्बुदा जायते पेसी पेसीतो जायते घणं॥ [तन्दुलवै० १७] इत्यादि।

भिन्नानां वैषम्येण परिणतानां शुक्रशोणितसंसृष्टाहारादीनामैक्यापत्त्या हि सर्वत्वं शरीरेन्द्रियादेः। तथा १८९-१ बा[7]ह्यमपि स[8]र्वत्वं, भूम्यम्ब्वादिव्रीहितोयदेशकालादिभिन्नार्थानां वैषम्येण विपरिणाममापन्नानामैक्यापत्त्या सर्वत्वं दृश्यते, नान्यथेति। **हिशब्दो** यस्मादर्थे, यस्मादित्थं भिन्नार्थाव्यभिचरितैकगतिः सर्वत्वम्, स हि भेदभावः सर्वत्वम्, तस्मान्नाभिन्नस्यैकस्य सर्वत्वं कस्यचित्। तस्मात् सर्वत्वाभावादयुक्तमुच्यते 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इति।

---

१ **त्वद्वचनमनर्थनयना वयम°** प्र० ॥ २ **भेदत्वेन** इत्यपि पाठोऽत्र स्यात् ॥ ३ **भवत्यभे°** प्र० ॥ ४ **गतिपरि°** प्र० ॥ ५ **°स्तत्तदापत्तिः** भा० ॥ ६ **मातुं तेयं पितुं** प्र०। "इमो खलु जीवो अम्मापिउसंयोगे माऊओयं पिउसुक्कं तं तदुभयसंसट्ठं कलुसं किव्विसं तप्पढमयाए आहारं आहारित्ता गब्भत्ताए वक्कमइ। सत्ताहं कललं होइ सत्ताहं होइ अब्बुयं। अब्बुया जायए पेसी पेसीओ वि घणं भवे॥ १७॥" इति **तन्दुलवैचारिकप्रकीर्णके** पाठः। "जीवे णं भंते गब्भं वक्कममाणे तप्पढमयाए किमाहारमाहारेइ? गोयमा! माउओयं पिउसुक्कं तं तदुभयसंसिट्ठं कलुसं किव्विसं तप्पढमयाए आहारमाहारेइ।" इति **भगवतीसूत्रे** पाठः १।८।६१॥ ७ **वाक्यमपि** प्र० ॥ ८ (सर्वत्वं भूम्यम्ब्वादेः, व्रीहि° ?)॥

सर्वत्वम् । त्वदुक्तैकसर्वतायां तु प्रत्यक्षानुमानस्ववचनाभ्युपगमलोकविरोधाः, अविकल्पशब्दार्थादभ्युपगतधर्मधर्मिस्वरूपविशेषोभयविरोधाः, असिद्धादिहेतुता च, साध्यसाधनोभयधर्मधर्म्यसिद्ध्यादयो दृष्टान्तदोषाः ।

यथा च पुरुषे तथेतरद्रव्यार्थेष्वपि प्रतिस्वं योज्यं विनिद्रावस्थास्थानेऽभेदैकत्वं सामान्यलक्षणं क्रमयौगपद्यादयो निद्रादिवद् विशेषलक्षणमिति व्याख्याय ।

किञ्चान्यत्, **त्वदुक्तैकसर्वतायां त्वि**त्यादि । 'एक एव सर्वम्' इत्येतस्यामेकसर्वतायाम्, '**सर्वैकता**-
यामिति वा पाठात् सर्वैकपुरुषमयतायां प्रत्यक्षत एव भिन्नानेकैकसर्वताया दर्शनात् **प्रत्यक्षविरोधः** ।
ग्रहणभेदा**दनुमानविरोधः,** ग्रहणभेदे हि न्याय्यो ग्राह्यभेद इति, भेदत्वपरिणामित्वादिभावाभावे सर्वत्वा-
पत्तिभवनाभावाद्वानुमानविरोधः । त्वदुक्तास्मदुक्तैकार्थ्याभावे भेदाभ्युपगमात् **स्ववचनाभ्युपगमविरोधः,**
लोके घटपटादिभेदप्रतीते**र्लोकविरोधः** । **अविकल्पशब्दार्था**दित्यादि, 'अविकल्पः शब्दार्थः' इत्यभ्युपगम्य
विकल्पव्यवहाराङ्गीकरणाच्चाभ्युपगमविरोधः, 'सर्वमेकम्' इति विकल्पधर्मत्वेन धर्मित्वेन च तदुभयविशेष-
त्वाभ्यां चेष्टस्य तेनैवाभ्युपगमेन निराकरणादविकल्पशब्दार्थस्याभ्युपगत**धर्मधर्मिस्वरूपविशेषोभय-**
१८९-२ **विरोधाः** । **असिद्धादिहेतुता च,** हेतोः 'अनतिरिक्तपरापराणीयोज्याियोरूपात्मकत्वात्' इत्यादेः
प्रतिज्ञातैकपुरुषभेदात् त्वया अस्माभिश्चोक्तेन न्यायेन पुरुषाभावाद् धर्म्यसिद्धेराश्रयासिद्धिः, त्वन्मतेना-
र्थान्तराभावेऽसाधारणता, अस्मन्मतेन विपक्ष एव भावाद् विरुद्धता साधारणानैकान्तिकता वा, सपक्षमभ्यु-
पगच्छतो वा ते घटाद्यवस्थाभेदाद् वृक्षादिदृष्टान्तं 'वृक्षः' इति पुरुषव्यतिरिक्तवृक्षाद्यवस्थाभेदाभावे साध्य-
साधनोभयधर्मधर्म्यसिद्ध्यो दृष्टान्तदोषाः, **आदिग्रहणाद्** यथासम्भवं कल्पनां कृत्वा वैधर्म्य-
दृष्टान्तदोषा योज्याः ।

एवं तावत् पुरुषमयत्वं सर्वस्यायुक्तमित्युक्तम् । अधुनातिदेशेन नियत्यादिवादेष्वपि दोषांस्तानेवाह —
यथा च पुरुषे तथेतरद्रव्यार्थेष्वपीति नियति-काल-स्वभाव-भावेष्वपि स्वं स्वं प्रति **प्रतिस्वं** प्रत्येकं
योज्यम् । तमतिदेशोपायमाचष्टे, तद्यथा — **विनिद्रावस्थास्थानेऽभेदैकम्,** विनिद्रावस्था सामान्यलक्षणं
पुरुषस्य पुरुषवादे सुप्ताद्यवस्थाव्यापित्वात्, सुप्ताद्यवस्था अपि विशेषास्तस्य तदात्मत्वादिति यथा व्याख्यातं
तथा नियत्यादावभेदैकत्वं नियत्यादेः सामान्यलक्षणमतीतानागतवर्तमानबाल्यकौमारयौवनक्रमयौगपद्यादयो
निद्रादिवद् विशेषलक्षणमिति व्याख्याय विकल्पद्वयप्रतिषेधस्तथैव कर्तव्यः — अथ किं या एता अवस्थास्ता एव
नियत्यादिः ? उत नियत्यादिरेवावस्थाः ? यदि ता एव नियत्यादिः, समुदयवादः क्षणिकवादो विज्ञानमात्रता-
१९०-१ वादः शून्यतावाद[11] इत्यादि । अथ नियत्यादय एवावस्थाः, तथाऽभेदैकत्वावस्थालक्षणत्वादिः स एव प्रपञ्चो

---

१ सत्वैक° प्र० ॥ २ °**विरोधा लोके** प्र० ॥ ३ दृश्यतां पृ० २४७ पं० ५ ॥ ४ °**कान्तिका वा** प्र० ॥ ५ **वा न घटा**° य० ॥ ६ (वटाद्यव° ?) ॥ ७ "दृष्टान्ताभासो द्विविधः — साधर्म्येण वैधर्म्येण च । तत्र साधर्म्येण तावद् दृष्टान्ताभासः पञ्चप्रकारः । तद्यथा—साधनधर्मासिद्धः १, साध्यधर्मासिद्धः २, उभयधर्मासिद्धः ३, अनन्वयः ४, विपरीतान्वयश्चेति ५ ।······वैधर्म्येणापि दृष्टान्ताभासः पञ्चप्रकारः, तद्यथा—साध्याव्यावृत्तः १, साधनाव्यावृत्तः २, उभयाव्यावृत्तः ३, अव्यतिरेकः ४, विपरीतव्यतिरेकश्चेति ।" इति **न्यायप्रवेशे** ॥ ८ °**त्यादिदेष्वपि** प्र० ॥ ९ अत्र °**ऽभेदैकत्वम्** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १० तुलना पृ० २४६ पं० ३–पृ० २४७ पं० ४ ॥ ११ **शून्यवाद** य० ॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

इत्यतस्तत्त्वं तावत् संवदति यदयं भवति सोऽस्य भाव इति, सर्वगतत्वनित्यत्वदेशकालाभेदात्।

यस्तु भवति स कर्तैवेति सम्प्रधार्यम्, भवतेः सन्निध्यापत्तिभवनद्व्यार्थत्वा[1]दस्तिभवतिविद्यतिपद्यतिवर्ततीनां सन्निपातषष्ठानां सत्तार्थत्वात्। अस्त्यादिभवनं सन्निधिमात्रवृत्त्येव आपत्तिभवनपृथग्भूतम्, यदुपादानमेतदभिधीयते – अस्तिर्भवन्तीपरः प्रथमपुरुषेऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्तीति गम्यते, वृक्ष इत्यस्तीति गम्यते [पा[2]० म० भा० २।३।१]।

योज्यः। **इत्यतो**ऽस्मात् **त[3]त्त्वं तावत् संवदति,** शेषं न संवदति सर्वं त्वदुक्तम्। कतमत् संवदतीति चेत्, **यदयं भवति सोऽस्य भाव** इत्येतत् संवदति, तस्य भावस्तत्त्वं येन भूयते यो भवति स एव भावः, कर्तृलक्षणां षष्ठीं कृत्वा तस्य भावः स भावः, इतीदमस्मद्दर्शनेन सह संवदति। किं कारणम्? **सर्वगतत्वनित्यत्वदेशकालाभेदात्,** सर्वगतत्वेन नित्यत्वेन च यथासङ्ख्यं देशकालाभ्यामभेदात्, तद्धि भवनं देशे क[4]ंचिन्न न भवतीति सर्वगतत्वादभिन्नम्, कालतः सततं भवति न कदाचिन्न भवतीति नित्यत्वादभिन्नम्। तस्मादभेदादिष्यत एतत्।

इदं पुनर्न तावदिच्छामः सम्प्रधार्यत्वात्, **यस्तु भवति स कर्तैवेति सम्प्रधार्यम्,** न हि कर्तरिविहिततिप्प्रत्ययान्तभवतिशब्दश्रवणादेव कर्तृत्वम्, अकर्तुराकाशादेरपि भवनादभवनव्यावृत्तिमात्रसत्तार्थत्वाद् भवनस्य, कारणपर्यायत्वात् करोतेरकारणकार्यमपि भवत्येव **भवतेः सन्निध्यापत्तिभवनद्व्यार्थत्वादस्तिभवति-विद्यति-पद्यति-वर्ततीनां सन्निपातषष्ठानां सत्तार्थत्वा**दित्येतदस्वतन्त्रस्या[5]व्यापृतस्यापि भवने कारणमाह। भ[6]वतेः सन्निध्यापत्तिभवनार्थत्वम्, अस्ति-विद्यति-सन्निपातानां सन्निधिमात्रभवनार्थत्वम्, पद्यति-वर्तत्योरापत्तिभवनार्थत्वमिति [7]भागः सव्यापारत्वाद् निर्व्यापारत्वाच्च त्रयाणां भवतेः सामान्यभवनवाचित्वादिति अपरिणामित्वा[8]त् परिणामित्वा[9]दकर्तृत्वात् कर्तृत्वाच्च विशेषः। असतो भवनाभावा**दस्त्यादिभवनं सन्निधिमात्रवृत्त्येव,** सन्निधिमात्रा वृत्तिरस्येति सन्निधिमात्रवृत्ति तदस्तिभवन**मापत्तिभवनपृथग्भूतं** ततोऽन्यदीषद्भिन्न[10]मव्यापृतमित्यर्थः। स्यान्मतम्–सर्वतन्त्रसिद्धान्तेन व्याकरणेन विरुद्धमस्वतन्त्रभवनम्, भवतेः कर्तृविहिततिप्प्रत्ययान्तत्वादिति। एतच्चायुक्तम्, तत्रैवानुज्ञातत्वात्, **यदुपादानमेतदभिधीयत** इत्यादि, १९०८- इदं तु सन्निधिमात्रवृत्तिभवनमेवोपादायाभिहितं यत्राप्यन्यत् क्रियापदं न श्रूयते तत्राप्य**स्तिर्भवन्तीपरः प्रथमपुरुषेऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्तीति गम्यते।** 'भवन्ती' वर्तमाना विभक्तिः पूर्वाचार्यसंज्ञयोक्ता लडित्यर्थः, तत्परोऽस्तिः असिः, अ[11]स् भुवि [पा० धा० १०६५] इति धातुः, **इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे** [पा० वा० ३।३।१०८], **प्रथमपुरुषे** न मध्यमोत्तमयोः, अप्रयुज्यमानोऽपि गम्यतेऽर्थसद्भावादविनाभावादर्थेन। तदुदाहरति–**वृक्ष इत्यस्तीति गम्यते,** किमुक्तं भवति? अस्ति भवति सन्निहितमित्यर्थः। निर्दिष्टं सन्निधिभवनमुभयोः समानलक्षणत्वादादौ।

---

१ दृश्यतां पृ० २४ पं० २० ॥ २ "अस्तिर्भवन्तीपरः प्रथमपुरुषोऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्तीति गम्यते। 'वृक्षः' 'प्लक्षः' अस्तीति गम्यते।" इति पातञ्जलमहाभाष्ये पाठः ॥ ३ **तत्वे** प्र० ॥ ४ **कंचिन्न भवतीति** प्र० ॥ ५ °**स्याव्यावृत्तस्यापि** प्र० ॥ ६ दृश्यतां पृ० २३३–१ ॥ ७ 'विभागः द्वयोः सव्यापारत्वाद्' इत्यपि पाठोऽत्र सम्भाव्यते ॥ ८ °**त्वादकर्तृ** प्र० ॥ ९ °**दकर्तृत्वाच्च विशेषः** भा० रं० ही० ॥ १० °**मव्यावृत**° प्र० ॥ ११ **अस** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपत्तिभवनं तु अस्तिभवनं सन्निहिततथावृत्ति कारणे कार्यस्य सत्त्वात्, यथा घटो भवति निर्वर्तते आपद्यते ।

सा च भोक्तृभोग्यद्वैतभूततायां सन्निधिसिद्धिः, न ततो न्यूनतायामधिकतायां वा व्यतिरेकाभावात् । न ज्ञेयमन्तरेण ज्ञातृत्वम्, ज्ञेयासत्त्वात्, खपुष्पज्ञत्ववत्, वैधर्म्येण इतरकुसुमज्ञत्ववत् । एवं हि ज्ञातुर्ज्ञातृत्वम् । न ज्ञातारमुप-

---

आपत्तिभवनं तु अस्तिभवनमित्यादि याव**दापद्यत** इति । इदमपि चेषद्भिन्नं सन्निधिभवनमेव तथावृत्ति, सन्निहितस्य तथा [1]वृत्तेरापत्तिभवनम् । अथवा तथा वृत्तिरस्य तथावृत्ति, सन्निहितं च तथावृत्ति च तदिति **सन्निहिततथावृत्ति,** किं तत्? आपत्तिभवनम्, कुतः सन्निहितमेव तथा वर्तत इत्युच्यते? उच्यते—**कारणे कार्यस्य सत्त्वात्**, कार्यं ह्यङ्कुरादि बीजादौ सन्निहितमेव तथा तथा देशकालाकारनिमित्तवशाद् व्यक्त्यव्यक्तिरूपेण वर्तते इति । तन्निदर्शयति—**यथा घटो भवती**ति, पूर्वमघटत्वेन मृत्त्वेन दृष्टं सन्निहितमेव मृदि घटभवनं व्यक्तमित्यर्थः । तत्पर्यायकथनम्—**निर्वर्तत आपद्यत** इत्यर्थः, सन्निधिभवनमेवापत्तीभवति । उक्तमापत्तिभवनमपि ।

१९१-१ [2]अनयोरन्यूनाधिकरूपतया सिद्धिरुच्यते—**सा चे**त्यादि । सामान्यत्वात् सन्निधिभवनसिद्धिस्तावत् **सा च [3]भोक्तृभोग्यद्वैतभूततायां सन्निधिसिद्धिः** सन्निधिभवनसिद्धिः, तद्धि सन्निधिभवनं द्वैतभूततायां सिध्यति नाद्वैततायां दर्शितैकभोक्तृभोग्यत्वायुक्त[4]त्वादिदोषाद् **न ततो न्यूनतायां** सिद्धि**रधिकतायां वा** द्वैतात्, तृतीयस्याभावात् । न्यूनाधिकानुपपत्तौ कारणमाह—**व्यतिरेकाभावा**दिति, व्यतिरेकः [5]पृथक्त्वेन एकस्यैव वृत्तिः, विनापि भावः । तदभावाद् न्यूनतायामसिद्धिः, यथा स्वामिना विना भृत्यस्य भृत्येन विना वा स्वामिनः । [6]आधिक्येऽपि व्यतिरेकः, यथा भावव्यतिरिक्तं नास्तीति तथेह भोक्तृभोग्यव्यतिरेकाभावात् । अतो न्यूनाधिकाभावा[7]त्तद्द्वैते सन्निधिभवनं सिध्यति, नाद्वैतत्रैतादितायामिति ।

तत्प्रतिपादनार्थमुपपत्तिरुच्यते—**न[8] ज्ञेयमन्तरेण ज्ञातृत्वम्**, भोग्यस्य ज्ञेयत्वाच्छब्दादिगुणपुरुषोपलब्धिद्वयपुरुषोपभोगार्थत्वा[9]त्तज्ज्ञेयमापत्तिभवनम्, तदन्तरेण न ज्ञातुर्ज्ञातृत्वम् । कुतः? **ज्ञेयासत्त्वात् ।** ज्ञेयस्यासत्त्वादिति वैयधिकरण्यात् ज्ञस्याधर्मत्वादसिद्धो हेतुरिति चेत्, न, ज्ञातृज्ञेययोः [10]सम्बन्धित्वेन साध्ययोस्तदसत्त्वस्य धर्मत्वात् । अथवानुपपन्नं ज्ञातृत्वमसज्ज्ञेयत्वा[11]दिति प्रयोगकालेऽर्थव्याख्या, तच्च ज्ञेयस्यासत्त्वादगृहीतज्ञेयत्वादिति । दृष्टान्तः **खपुष्पज्ञत्ववत्**, यथा खपुष्पविषयं ज्ञातृत्वमसज्ज्ञेयत्वादनुपपन्नमेवमसज्ज्ञेयं ज्ञातृत्वम् । **वैधर्म्येण इतरकुसुमज्ञत्ववत्**, यथा चूतादिखपुष्पेतरकुसुमज्ञत्वं सज्ज्ञेयत्वादु-
१९१-२ पपद्यते तथा [12]त्वदभिमताद्वैतज्ञत्वं द्वैते सत्युप[13]पद्येत, [14]तत्त्वैतस्य ज्ञातृज्ञेयव्यतिरेकाभावात् तदन्तःपातित्वाद्-

---

१ **वृत्तिरा°** इत्यपि पाठोऽत्र स्यात् ॥ २ **अनयोरेव(वा ?)न्यूना°** य० ॥ ३ **भोक्त°** प्रतिषु नास्ति ॥ ४ **°क्तित्वा°** प्र० ॥ ५ **पृथक्त्वनैकस्यैव** पा० डे० लीं० रं० ही० ॥ ६ **अधिके°** य० ॥ ७ **°वात्त द्वैते** प्र० । अत्र **°वात् द्वैते** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ८ **तज्ज्ञेय°** भा० । **तद् ज्ञेय°** य० ॥ ९ **°त्वात्त(°त्वात् ?) ज्ञेय°** भा० । **°त्वात्तद् ज्ञेय°** य० ॥ १० **संभिन्नत्वेन** य० ॥ ११ **°त्वादिप्रयोग°** प्र० ॥ १२ **तदभिम°** प्र० ॥ १३ **°पद्यते** रं० ही० ॥ १४ **तन्नैतस्य** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रष्टारमन्तरेण ज्ञेयत्वम्, ज्ञातुरसत्त्वात्, वन्ध्यासुतज्ञेयघटत्ववत्, वैधर्म्येण इतरसुतज्ञेयघटत्ववत्। एवमेव हि ज्ञेयस्य ज्ञेयता। न भोग्यमन्तरेण भोक्तृत्वम्, भोक्तुरसत्त्वात्, खपुष्पमकरन्दभ्रमरवत्, वैधर्म्येण इतरकुसुममकरन्दभ्रमरवत्। एवमेव हि भोक्तुर्भोक्तृत्वम्। न भोक्तारमन्तरेण भोग्यम्, भोक्तुरसत्त्वात्, वन्ध्यासुतायौवनवर्धितकवत्, वैधर्म्येण इतरसुतायौवनवर्धितकवत्। एवमेव हि भोग्यस्य भोग्यत्वम्, तत्सम्बन्धित्वात्।

यदपि च तथा तथा वर्तनं भवनं रूपादौ तदपि नैकैकस्मादपरिणामिनो वा

सत्त्वमिति। अथवा पृथक् साधनम्—ज्ञातृत्वमुपपद्यते सज्ज्ञेयत्वादितरकुसुमज्ञत्ववत्। वैधर्म्येणानुपपन्नमसज्ज्ञेयत्वात् खपुष्प[1]ज्ञत्ववदिति। **एवं हि ज्ञातुर्ज्ञातृत्वम्**[2], यो हि सज्ज्ञेयं जानीते स तु मुख्यो ज्ञाता, यथा सलिलं 'सलिलम्' इति विद्वान्। यः पुनरसज्ज्ञेयं विजानीते स तु न ज्ञाता, यथा मृगतृष्णिकां 'सलिलम्' इति विद्वान्। एवं तावत् 'ज्ञातैव, न ज्ञेयम्' इत्येतद् दर्शनं निरस्तमद्वैतम्, अधुना 'ज्ञेयमेव, न ज्ञाता' इत्येतन्निरस्यते—**न ज्ञातार**मित्यादि, ज्ञातार**मन्तरेण,** तत्पर्यायं दर्शयति—**उपद्रष्टार**मिति, ज्ञात्रा विना न **ज्ञेयत्वं ज्ञातुरसत्त्वात्,** अत्रापि पूर्ववत् 'असज्ज्ञातृत्वात्' इति वा हेतुः। साधर्म्यदृष्टान्तो **वन्ध्यासुतज्ञेयघटत्वम्, वैधर्म्येण इतरसुतज्ञेयघटत्वम्।** विपर्ययेण वा पूर्ववत् साधनद्वयम्, परस्परापेक्षज्ञातृज्ञेयत्वसाध्यतया वा वैयधिकरण्यपरिहारेण हेतुर्वाच्यः। **एवमेव हि ज्ञेयस्य ज्ञेयता** भवितुमर्हति यदि केनचिदनुपहतेन्द्रियज्ञानेन ज्ञायते, यथा अनुपहतेन्द्रियबुद्धिपुरुषज्ञेयघटवत् मध्यस्थेन तर्कागमकुशलेन विपश्चिता प्रमात्रा वा ज्ञेयं साधनं यथेति। तथा **न भोग्यमन्तरेण भोक्तृत्वम्,** असद्भोग्यत्वात् खपुष्पमकरन्दभ्रमरवत्, वैधर्म्येण इतरकुसुममकरन्दभ्रमरवत् सद्भोग्यत्वाद् भोक्तृत्वमिति तत्साधर्म्येण वा, वैधर्म्येण खपुष्पभ्रमरवत्, परस्परावधिकं वा पूर्ववद् भोक्तृभोग्यत्वसाधनम्। अत्रापि च **एवमेव हि भोक्तुर्भोक्तृत्व**मिति ग्रन्थो द्रष्टव्यः। तथा **न भोक्तारमन्तरेण भोग्य**मसद्भोक्तृत्वाद्
वन्ध्या[3]सुतायौवनवर्धितकवत्, सद्भोक्तृकं भोग्यत्वादितरसुतायौवनवर्धितकवत्, पूर्ववदेवात्रापि व्याख्या १९२-१
यावदे**वमेव हि भोग्यस्य भोग्यत्व**मिति। युगपद्वा परस्परसम्बद्धसत्ताकौ भोक्तृभोग्यौ, **तत्सम्बन्धित्वात्** तयोः सम्बन्धित्वादिति अयमर्थप्रदर्शनहेतुः, प्रयोगहेतुस्तु 'सम्बन्धित्वात्' इत्येव। यथा सम्बन्धी भ्राता सम्बन्धिना इतरेण भ्रात्रा विना न भवति कनीयान् ज्यायसा ज्यायान् वा कनीयसा तथा भोक्तृभोग्यौ, यथा [स]दलङ्कारौ दम्पतीत्येवमादिदृष्टान्तैर्भोक्तृभोग्यसम्बन्धित्वसिद्धिरन्योन्याविनाभाविनीति प्रागुक्तं सन्निधिभवनं द्वैते सति सिध्यतीति।

अधुनेत[4]रत्—**यदपि च तथा तथा वर्तनं भवनं रूपादौ** तेन तेन प्रकारेण अन्यथान्यथा चोपत्तिभवनं रूपे रसे गन्धे स्पर्शे पृथिव्यादौ गवादौ घटादौ च सकलजगद्वर्तविवर्तरूपं **तदपि नैकैकस्मात्,** एकमेव एकमेकैकं पुरुषादि, तस्मादेकस्मादेकस्मान्न भवति। किं तर्हि? यदनेकमेकं तस्मादनेकस्मादेकस्माद्

---

१ °ष्पज्ञवदिति भा०। °ष्पवदिति य०॥ २ ज्ञातुज्ञत्वम् भा०॥ ३ °सुत° य०॥ ४ °तरद्यपि च भा०। °तरद्यदि च य०॥ ५ व्यापत्ति° प्र०॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सन्निधिमात्रभवनात्, आपत्तित्वात्, व्रीहिवत्। नाप्यद्वैते, अनर्थकापत्त्यभावात्। किन्तु सङ्घातात्मकत्वात् गृहघटपृथिव्यादिवत् परार्थत्वम्। तथा चक्षुरादयोऽप्याध्यात्मिका इति आ चक्षुरादेः परार्था यावच्च रूपादिद्व्यणुकादयः।

भेदात्मकेन चानेन भवितव्यं कारणत्वात् तन्त्वादिवत्, परार्थार्थेन च शब्दाद्युपलब्ध्यर्थत्वात्। किं हि कारणं रूपादि दृष्टमेकं स्वार्थं च?

भवति। **अपरिणामिनो वा सन्निधिमात्रभवनात्** 'न' इति वर्तते। किं तर्हि? परिणामिन एवापत्ति-
भवनयोग्याद् भवति। कुतः? **आपत्तित्वात्** आपत्तिभवनत्वाद् **व्रीहिवत्**, यथा व्रीहेरनेकैकस्य रूप-
रसादिपरमाणुद्व्यणुकादिसङ्घाताद्यङ्कुराद्यापत्तिरङ्कुरादेर्वा भूम्यम्ब्वादिदेशकालादिसङ्घातत्वाद्[1] व्रीह्यापत्तिस्तथै-
तदनेकात्मकैकमापत्तिभवनम्। **नाप्यद्वैते**, इत्थं तावत् स्वविषयद्वैते सति आपत्तिभवनम्, परविषयद्वैते
१९२-२ सत्येवापत्तिभवनमिदमुच्यते – **नाप्यद्वैते** परविषयद्वैताभावे भवत्यापत्तिभवनम्, **अनर्थकापत्त्यभावादे-**
वैकस्याद्वितीयस्य कस्मैचिदर्थमकुर्वतः। **किन्तु सङ्घातात्मकत्वात् परार्थत्व**मिति सम्बन्धः, सङ्घातात्मक-
भवनात् पारार्थ्यम्, संहत्यकारिणां हि पारार्थ्यं नानर्थक्यं न स्वार्थत्वं नान्योन्यार्थत्वं च केवलम्। दृष्टान्तो
गृहघटपृथिव्यादिवत्, यथा गृहघटपृथिव्यादयः सङ्घातात्मकाः स्वतः पृथग्भूतपुरुषार्थाः नानर्थका
न स्वार्था नान्योन्यार्थाः पुरुषार्थमेव चान्योन्यार्थाः स्त्रीशोभनार्थालङ्कारवत्। **तथा चक्षुरादयोऽप्याध्या-
त्मिका** इति दृष्टान्तबाहुल्यात् परार्थव्यापितां दर्शयति, **इत्या चक्षुरादे**रिति[2] चक्षुरादयोऽपि सूक्ष्माध्या-[3]
त्मिका विवेच्या यावत् **परार्था यावच्च रूपादिद्व्यणुकादयः**, किमङ्ग पुनर्गृहघटपृथिव्यादयः स्थूला
ग्रामारामादयश्चेति?

यत् पुनरिष्यत 'एकं कारणं पुरुषादि' इति तन्न वयमभ्युपेमः। त्वन्मतेनाप्येकं चेत् किञ्चित्
पारार्थ्यकारणमिष्यते तदभ्युपगम्य **भेदात्मकेन चानेन भवितव्य**मिति प्रतिजानीमहे, **कारणत्वात्
तन्त्वादिवत्**, तन्तुकपालादयो हि कारणत्वात् पटघटादीनां कार्याणां रूपादितुट्यंशादिसङ्घातरूपा[4] अनेका-
त्मका एव कारणभावं बिभ्रतो दृष्टा नान्यथा तथा[5] तेनापि त्वदिष्टेन कारणेन भवितव्यमनेकात्मकेन।
परार्थार्थेन च 'भवितव्यम्' इति वर्तते, परस्मै परार्थः, परार्थोऽर्थः कार्यं यस्य[6] कारणस्य तेन कारणेन
परार्थकार्येण भवितव्यं कारणत्वात् तन्त्वादिवदेव, यथा देवदत्तशीतत्राणाद्यर्थे पटकार्यास्तन्तवस्तथा तेन
१९३-१ कारणेन त्वदिष्टेन भवितव्यम्। स कतमोऽर्थ इति चेत्, उच्यते – **शब्दाद्युपलब्ध्यर्थत्वात्**, आदि-
ग्रहणाच्छब्दा[7]द्युपलब्धिरादिर्गुणपुरुषान्तरोपलब्धिरन्त इत्याद्यन्तोपभोगद्वयं पुरुषस्यार्थः, सोऽस्यापत्तिभवनस्य
परार्थार्थः। तस्माच्छब्दाद्युपलब्ध्यर्थत्वात् परार्थार्थेन तेन कारणेन भवितव्यम्। **किं हि कारणं रूपादि
दृष्टमेकं स्वार्थं च?** इति कारणस्यानेकैकत्वाविनाभावं पारार्थ्याविनाभावं च स्वार्थैक्याभावं च दर्शयति,
विपक्ष एव नास्तीत्यभिप्रायः। **रूपादि**ग्रहणं तु पक्षत्वाद् रूपादीनां सङ्घातपारार्थ्यपरिणामित्वैः सन्निधि-
भवनवैलक्षण्यं दर्शयति।

---

१ °**सङ्घाताद्** भा० ॥ २ **चक्षुरादेरिति** भा० प्रतौ नास्ति ॥ ३ **सूक्ष्मा ऽ**(आ ?)**ध्यात्मिका** भा० ॥
४ "उणादौ नाम्युपान्तेति [उ० ६०९] किदि तुटिः।" इति हैमधातुपारायणे ६।१२४ ॥ ५ (तथानेनापि ?) ॥
६ **तस्य** प्र० ॥ ७ दृश्यतां पृ० १४ टि० ८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदित्थं द्वैते त्वनेकात्मिकायाः प्रकृतेरात्मभिः सुखदुःखमोहैः[1] परिणामानुक्रमेणारब्धाः शब्दादयोऽपि तदात्मका एव, तदात्मकत्वाभिव्यक्तकार्यत्वात्, मृत्पिण्डकार्यशिवकादिमृत्त्ववत् । सुखात्मकानां च शब्दादीनां प्रसादलाघवाभिष्वङ्गोद्धर्षप्रीतयः कार्यम्, दुःखात्मकानां शोषतापभेदोपष्टम्भोद्वेगापद्वेषाः, मोहात्मकानां वरणसदनापध्वंसनबैभत्स्यदैन्यगौरवाणि, तस्मात् सुखादीनामात्मत्वेनाभिव्यक्तं कार्यमेषां शब्दादीनाम् । यानि तैरारब्धानि शरीरादीन्याध्यात्मिकानि

तदित्थं द्वैते त्वित्यादि । द्विविधपुरुषोपभोगार्थ**मनेकात्मिकायाः प्रकृते**रित्यादिना ग्रन्थेन तदापत्तिभवनस्वरूपवर्णनम् । प्रक्रियन्ते विकारास्तत्र इति प्रकृतिः, प्रधीयन्तेऽस्मिन् महदादय इति प्रधानम्, बहूनां धानं बहुधानकम्, अमरणादविनाशादमृतम्, इत्याद्यन्वर्थनामिकायाः प्रकृतेरनेकात्मिकाया **आत्मभिः सुखदुःखमोहैः** प्रकाशप्रवृत्तिनियमात्मकैः [2]प्रागभिहिताचार्यपवनपाषाणवत् स्वपरेषां नर्तिकापर्णनावामात्मनश्च प्रतिपत्तिचलन[3]धारणकरणैरिवेति । ते हि [4]वैकारिकतैजसभूतादिविकाररूपाः सुखदुःखमोहाः प्रकाश[प्र]वृत्तिनियमात्मकाः सत्त्वरजस्तमोलक्षणा गुणाः साम्यावस्थायां 'प्रकृतिः' इत्युच्यन्ते, वैषम्येण तु परिणामानुक्रममापन्नाः परस्पराविनिर्भागवृत्तयोऽङ्गाङ्गिभावेन परिणामाद् विकारीभवन्तः शब्दादीनारभन्ते, तै**र्महदादिना परिणामानुक्रमेणारब्धाः शब्दादयोऽपि तदात्मका एव,** [5]*शब्दादिपरिणामानुक्रमं [6]साधनानुषङ्गेण स्वयमेव वक्ष्यति, तदात्मकत्वं तावत् साध्यते, तदात्मका एव* सुखाद्यात्मका एव शब्दादयः, **तदात्मकत्वाभिव्यक्तकार्यत्वात्,** ते सुखादय आत्मा तदात्मा, तद्भावस्तदात्मकत्वं सुखाद्यात्मकत्वम्, तदात्म[7]कत्वेनाभिव्यक्तं कार्यं येषां [ते] तदात्मत्वाभिव्यक्तकार्याः शब्दादयः, तद्भावात् तदात्मत्वाभिव्यक्तकार्यत्वात्, **मृत्पिण्डकार्यशिवकादिमृत्त्ववत्,** यद् यदात्म[8]त्वेनाभिव्यक्तकार्यं वस्तु तत् तदात्मकमेव दृष्टम्, यथा मृदः कार्यं पिण्डः, तस्य कार्यं शिवकः, एवं क्रमेण स्तू[9]पककुशूलकादि यावद् घटः कपालानि वा मृदात्मकान्येव कार्याणि, मौलस्य कारणस्यात्मना विना उत्तरोत्तरेषां कार्याणामभावादादौ मध्येऽवसाने च मृदात्मकत्वं दृष्टमेवं शब्दादयः सु[10]खादीनां कार्यम्, शब्दादिकार्यं त्वाकाशादि, तत्कार्यं च गवादि घटादि, स[11]र्वं सुखाद्यात्मकत्वेनाभिव्यक्तं तदात्मकमिति ग्राह्यम् । कथं सुखाद्यात्मकत्वेन शब्दादि कार्यमभिव्यक्तमिति चेत्, सुखाद्युपलब्धेः । **सुखात्मकानां चे**त्यादिना तद्दर्शयति याव**दात्मत्वेनाभिव्यक्तं कार्यमेषां शब्दादीना**मिति गतार्थम् । एवं तावद् भूतादिनाहङ्कारेणारब्धाः शब्दादयः ।

यानि तैरारब्धानीत्यादि यावत् **सुखादिमया एव,** परिणामानुक्रमेण भूतानामाकाशादीनां शब्दादिभिः सुखादिमयैरारम्भं दर्शयति । तत्र **शरीरादीन्याध्यात्मिकानी**ति शरीरीभूतानि शब्दाद्यारब्धानि

१९३-२

---

१ दृश्यतां पृ० १२ पं० १९ ॥ २ दृश्यतां पृ० १३ पं० २० ॥ ३ अत्र °**धारणकारणै**° इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ४ "सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात् । भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम् ॥ २५ ॥ - **साङ्ख्यका०** ॥ ५ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ६ **साधुना**° भा० ॥ ७ °**त्मत्वेना**° य० ॥ ८ °**त्मनेनाभि**° प्र० ॥ ९ **स्तूपकुश**° य० ॥ १० **सुखानां** प्र० ॥ ११ **सर्वं च सुखा**° भा० ॥

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

भूतादीनि वैकारिकारब्धानि चेन्द्रियाणि त्रयाणां सुखदुःखमोहानां सन्निवेशविशेषाः सुखादिमया एव, तथा पृथिव्यादयस्तन्मयकारणारब्धत्वात् । यद् यन्मयैः कारणैरारब्धं तन्मयं तत्, कार्पासिकपटवत् । भूतैरारब्धानि पुनः शरीरादीनि पटकुटिवत् परम्परारब्धत्वात् । अनेकात्मकैकपूर्वकं शरीरमन्वितविकारत्वाच्चन्दनशकलवत्, नैकैकपूर्वकं नापूर्वकमन्वितत्वात् । अन्वाह च—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ [श्वेताश्व० ४।५]

भूतादीनि [1]भूतादिमयानि त्रिगुणानि **वैकारिकारब्धानि च** श्रोत्रादीन्येकादशे**न्द्रियाणि** सर्वाण्येव **त्रयाणां सुखदुःखमोहानां सन्निवेशविशेषाः**, ततस्तन्मयता । बाह्यानि घटादीनि रूपादिसमूहत्वात् तेषां च सुखाद्यात्मकत्वात् तन्मयानि तदात्मकान्येव । **तथा पृथिव्यादयस्तन्मयकारणारब्धत्वा**दिति
१९४-१ महदादेः सकलस्य विकारस्य [2]ब्रह्मादिस्तम्बान्तस्य च जगतः सुखादिमयकारणारब्धत्वात् । **यद् यन्मयै**रित्युपनयः, **तन्मयं त**दिति निगमनम् । दृष्टान्तः **कार्पासिकपटव**दिति, कार्पासविकारैस्तन्तुभिरारब्धः पटोऽपि कार्पासिक इति यथोच्यते तथा भूतानि सुखाद्यारब्धशब्दाद्यारब्धानि सुखाद्यात्मकानि । **भूतैरारब्धानि पुनः शरीरादीनि**, घटादीनि आदिग्रहणात्, **पटकुटिवत् परम्परारब्धत्वात्**, यथा कार्पासिकतन्त्वारब्धपटमयी कुटिरपि 'कार्पासिकी' इत्युच्यते तथा सुखाद्यारब्धशब्दाद्यारब्धभूताद्यारब्धपृथिव्यादिगवादिघटादिसरित्समुद्रमन्दरादीन्यपि तदात्मकानि ।

अनेकात्मकैकपूर्वकं शरीरमिति प्रतिज्ञा । किं पुनः कारणमेवं प्रतिज्ञायते ? प्रोक्तपुरुषाद्येककारणपूर्वकत्वनिराकरणार्थं वक्ष्यमाणेश्वरादिकारणपूर्वकत्वनिराकरणार्थं च । को हेतुः ? **अन्वितविकारत्वात्**, अन्विता विकारा यस्य तदन्वितविकारम्, [3]हस्ताकुञ्चनप्रसारणाङ्गुल्युत्क्षेपणापक्षेपणपादप्रक्षेपाङ्ग[4]विवर्तनादिविकाराः शरीरावयवाश्च सुखादिभिः शब्दादिभिश्चान्विता विकारैः, तस्मादन्वितविकारत्वा**च्चन्दनशकलवत्**, यथा मृदुसुरभिशीतहरितरक्तश्वेतादिभेदस्पर्शरसरूपगन्धादिविकाराणि चन्दनशकलानि सुखाद्यन्वितानि परमाणुद्व्यणुकाद्यनेकात्मकैकचन्दनतरुपूर्वकाणि तथेदं शरीरमपि सुखाद्यनेकात्मकैककारणपूर्वकमिति **नैकैकपूर्वकम्** यथा [5]पुरुष एव इत्यादि, **नापूर्वकम्** न निर्हेतुकं नासत्पूर्वकं वैनाशिकाद्यभिमतवदित्येतस्य साधनस्य व्यावर्त्यार्थोद्देशार्थम्, **अन्वितत्वा**दिति सामान्येनास्यैवोक्तस्य निगमनार्थम्, अथवा
१९४-२ एकैकपूर्वकत्वादिनिराकरणसाधनं वा पृथगेव ।

अन्वाह चेति पूर्ववत् । **अजा**मिति न जायत इत्यजा नित्या, अथवा पुनः अज गतिक्षेपणयोः [पा० धा० २३०] इति क्षिप्रगमनादजा, [6]इयं प्रकृतिः क्षिप्रपरिणतिगतिसाधर्म्याद् बहुप्रसवसाधर्म्याद्वा अजेवाजा । **एका**मद्वितीयां सर्वगताम् । मा भूदेकैकेति [7]अनेकात्मैकैकां **लोहितशुक्लकृष्णां** दुःखसुखमोहात्मकरजःसत्त्वतमोमयीम् । **बह्वीः प्रजा** अनन्ताः, प्रजायन्त इति प्रजाः, महदहङ्कारतन्मात्रादि-

---

१ दृश्यतां पृ० २५७ टि० ४ ॥ २ ब्रह्मास्त॰ प्र० ॥ ३ ॰श्वप्रसा॰ प्र० ॥ ४ ॰निवर्तना॰ वि० रं० ही० ॥ ५ दृश्यतां पृ० १८९ पं० ५ ॥ ६ ईर्यप्रकृतिः य० । ऽर्यप्रकृतिः भा० ॥ ७ ॰त्मकैकी प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सु[6]खं च दुःखं चानुशयं च वारेणायं सेवते तत्र तत्र ।
विशन्ति योनिं व्यतिरेकिणस्त्रयः अजस्तु जायामतिमत्यशुद्धः ॥ [　　　]
उ[1]भा सखायौ सयुजा सपर्णौ समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरेकः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥ [मुण्डको० ३।१।१]

क्रमेण ब्रह्मादिस्तम्बान्ताः **सृजमानामुत्पादयन्तीं सरूपाः** सुखाद्यात्मिका आत्मरूपा आत्मसरूपाः, [2]यतो ह्यजा बहुवर्णिकात्मस्वरूपप्रजासर्जिनी प्र[3]धानीति गण्यते । **तामजो ह्येको जुषमाणः** सेवमानः प्रीयमाणः, स हि न जायत इत्यजो नित्यत्वात्, एकः सन्निधिभवनस्याभिन्नस्यैकरूपत्वात् सर्वगतत्वाच्च, तामेव **जुषमाणोऽनुशेते** अनुशयमनुबन्धं च तस्या न मुञ्चति अनुधावतीत्यर्थः, यथा वत्सोऽजामनुधावति तथा तां प्रकृतिं पुरुषः । **जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः**, असावेव पुरुषोऽन्य एव तस्या उपरतः संवृत्तो भुक्तभोगां [4]दृष्टदृश्यां विदितात्मानात्मविशेषः प्रकृतिपुरु[5]षान्तरज्ञो नर्तक्या इव विकारान् बाह्यान् भ्रूक्षेपक्रमकरवलनादीननुशयहेतूनन्तःकरणशरीरादिसमुद्भूताननात्मभूतानुपलभ्य भिक्षुरिव स्वभावावचिन्तनाद् विरक्तोऽहमनया वृथा क्लेशितो बहिरन्तरशुद्ध्येति विरमति, सापि दर्शितविकारा 'दृष्टाहमनेन' १९५-१ इति व्रीडितेव विनिवर्तत इति । तथैतदर्थसम्बन्धिनी व्याख्यातैव द्वितीया गाथा—

सु[6]खं च दुःखं चानुशयं च वारेणायं सेवते तत्र तत्र ।
विशन्ति [7]योनिं व्यतिरेकिणस्त्रयः अजस्तु जायामतिर्म[8]त्यशु[9]द्धः ॥ इति ।

उभा उभौ, सु[10]पां डादेशादुभा । **सखायौ** अन्योन्यसहितावेव विभुत्वनित्यत्वाभ्याम् । **सयुजा** पूर्ववद् डादेशात् समानयुजौ समानस्य सकारादेशात् । सह पर्णाभ्यां **सपर्णौ** सपक्षौ शुद्ध्यशुद्धिपक्षौ । **सुयुजौ सुपर्णा**विति वा पाठः, सुष्ठु अतीव युक्तौ सर्वगतत्वादविभागेन सदा युक्तौ शोभनपर्णौ च परस्परबन्धैक्यापत्तिजनितविचित्रवर्णसुखासुखपक्षौ । **एकं वृक्षं** लोकाख्याश्वत्थम्, [11]स्थैर्यत्वादचलत्वाद् वृक्षोऽश्वत्थसाधर्म्यात्, **परिषस्वजाते** परिष्वक्तवन्तौ । **तयोरेकः** तयोः शकुन्योरेकवृक्षपरिष्वङ्गिणोरेक एव शकुनिर्भोगसमर्थस्तस्य पिप्पलस्य **पिप्पलं** फलं **स्वादु** भोग्यविकारविशेषं विचित्ररस**मत्ति** खादति भुङ्क्ते पुरुष एव भोक्तृत्वाज्ज्ञत्वात् । **अनश्नन्नन्यः** प्रकृतिसंज्ञः शकुनिरभुञ्जानः **अभिचाकशीति** आभिमुख्येन तस्यास्त्यर्थं काशते, शकुनिप्रस्तुतेः [12]पुँल्लिङ्गम् ।

---

१ "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" इति मुण्डकोपनिषदि पाठः ॥ २ **प्रत्या** य० । **पत्या** भा० । अत्र **प्रकृत्या** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ३ **प्रधानेति** भा० ॥ ४ **दृष्ट्रदृश्या** य० । **दृश्या** भा० ॥ ५ °**षांरज्ञो** भा० । °**षांराज्ञो** य० ॥ ६ "सुखलेशस्य तद्व्याप्तत्वाद् यावदिदं लिङ्गं न निवर्तते तावदवश्यं दुःखेन भवितव्यम्, पर्यायेण संस्कारस्य सामर्थ्याल्लोकान्तरोपपत्तेः । तथा चाह—**सुखं च दुःखं च हि संशयं च वारेणायं सेवते तत्र तत्र ।**" इत्येवमस्या गाथायाः पूर्वार्धमात्रमुद्धृतं युक्तिदीपिकाख्यायां **साङ्ख्यकारिकावृत्तौ** ५५ ॥ ७ **योनिव्यति**° भा० वि० रं० ही० ॥ ८ °**सत्य**° पा० डे० लीं० ॥ ९ °**ऽशुद्धः** डे० लीं० रं० ही० ॥ १० **सुपी डा**° प्र० । "सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः ।७।१।३९।" इति **पाणिनीयव्याकरणे** ॥ ११ **स्तत्वाद**° भा० । **स्तत्त्वत्वाद**° य० ॥ १२ **पुलिंगम्** प्र० ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अथ कथमेककारणत्वप्रतिषेधानन्तरं शब्दैकगुणप्रवृत्ति वियदभ्युपगम्यते? न प्रवर्तेतैवम्, असन्द्रुतेः, पुरुषवद् वन्ध्यापुत्रवद्वा।

शब्दे त्रैगुण्यमस्त्येवेति चेत्, अत्रिगुणं सुखादि एकस्वात्मत्वाव्यतिरिक्ततत्त्वं

एतदधुना परीक्ष्यते – **अथ कथ**मित्यादि यावद् **वियदभ्युपगम्यत** इति। यद्यनेकात्मकैककारणत्वमिष्यते एव**मेककारणत्वप्रतिषेधानन्तरं** पुरुषाद्येककारणत्वप्रतिषेधाहितसंस्कारतिरोधानकालमप्य-
१९५-२ प्रतीक्ष्य त्वया कथं **शब्दैकगुणप्रवृत्ति** वियदभ्युपगम्यते? अभ्युपगम्यतां तावद् रूपादिसृष्टौ व्यवहारानुपातिनामेषां लोके दृष्टानां 'द्वित्र्याद्यनेकस्पर्शरसगन्धगुणानामनेकैकत्वात् तदात्मकवाय्वादिसृष्टिरस्तु नाम, त्वन्मतेन सह घटमानमिदं तु न युज्यते शब्देनैकगुणा प्रवृत्तिरित्थम्भूतेनास्य तच्छब्दैकगुणप्रवृत्ति वियत् '**ग[3]ण गुण सङ्ख्याने**' [ ] शब्दैकसङ्ख्यानप्रवृत्ति एकस्मात् कारणाद् भवतु त्वन्मतविरोधात्, न[4]ानेकात्मकैकस्माच्छब्दस्पर्शादिद्वित्रिचतुःपञ्चगुणाद् भवद् वाय्वादिवत् त्वन्[5]मताविरोधात्। प्रयोगश्चात्र – **न प्रवर्तेतैवम्**, शब्दैकगु[6]णाकाशं तत्र भवेदित्यर्थः, **असन्द्रुतेः**, **गुणसन्द्रावो द्रव्यम्** [पा० म० भा० ५।१।११९] इति लक्षणाभावात्, बहूनां हि गुणानामेकीभवनमैक्यगमनं सन्द्रुतिः, तदभावोऽसन्द्रुतिः, ततोऽसन्द्रुतेर्न प्रवर्तेत, **पुरुषवद् वन्ध्यापुत्रवद्वे**त्येतदनिष्टापादनमिति।

अत्राह – **शब्दे त्रैगुण्यमस्त्येवेति चेत्।** सर्वस्योक्तसुखदुःखमोहमयत्वाच्छब्दोऽपि तदात्मा त्रिगुण

---

१ "**तेभ्यो भूतानि पञ्च पञ्चभ्यः** ।...तत्र शब्दतन्मात्रादाकाशम्, स्पर्शतन्मात्राद् वायुः, रूपतन्मात्रात् तेजः, रसतन्मात्रादापः, गन्धतन्मात्रात् पृथिवी। 'तेभ्यो भूतानि' इति वक्तव्ये 'पञ्च पञ्चभ्यः' इति ग्रहणं समसङ्ख्याकतस्तदुत्पत्तिज्ञापनार्थम्, तेन एकैकस्मात् तन्मात्रादेकैकस्य विशेषस्योत्पत्तिः सिद्धा। ततश्च यदन्येषामाचार्याणामभिप्रेतम् – एकलक्षणेभ्यस्तन्मात्रेभ्यः परस्परानुप्रवेशादेकोत्तरा विशेषाः सृज्यन्ते इति, तत् प्रतिषिद्धं भवति। किं तर्हि? अन्तरेणापि तन्मात्रानुप्रवेशमेकोत्तरेभ्यो भूतेभ्य एकोत्तराणां भूतविशेषाणामुत्पत्तिः। तत्र शब्दगुणाच्छब्दतन्मात्रादाकाशमेकगुणम्। शब्दस्पर्शगुणात् स्पर्शतन्मात्राद् द्विगुणो वायुः। शब्दस्पर्शरूपगुणाद् रूपतन्मात्रात् त्रिगुणं तेजः। शब्दस्पर्शरूपरसगुणाद् रसतन्मात्राच्चतुर्गुणा आपः। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धगुणाद् गन्धतन्मात्रात् पञ्चगुणा पृथिवी।"–**साङ्ख्यका० युक्तिदीपिका**, का० ३८। "शब्दतन्मात्रादाकाशम्, स्पर्शतन्मात्राद्वायुः, रूपतन्मात्रात् तेजः, रसतन्मात्रादापः, गन्धतन्मात्रात् पृथिवी। एवं पञ्चभ्यः तन्मात्रेभ्यः पञ्च भूतान्युत्पद्यन्ते।" **जे० साङ्ख्यका० वृ०** A, का० २२। एवं **गौडपादभाष्ये**ऽपि, का० २२। "**पञ्चभ्यः पञ्च** महा**भूतानि** शब्दतन्मात्रादाकाशम्, तदेकलक्षणम्। स्पर्शतन्मात्राद्वायुः, स द्विगुणलक्षणः। रूपतन्मात्रात् तेजः, तत् त्रिगुणलक्षणम्। रसतन्मात्रादापः, ताश्चतुर्गुणाः। गन्धतन्मात्रात् पृथिवी, सा पञ्चगुणा। एवं पञ्चभ्यः पञ्च महाभूतान्युत्पद्यन्ते।" **जे० साङ्ख्यका० वृ०** B, का० २२। "शब्दतन्मात्रादाकाशम्, स्पर्शतन्मात्राद्वायुः, रूपतन्मात्रात् तेजः, रसतन्मात्रादापः, गन्धतन्मात्रात् पृथिवी, इत्यादिक्रमेण पूर्वपूर्वानुप्रवेशेन एकद्वित्रिचतुष्पञ्चगुणानि आकाशादिपृथ्वीपर्यन्तानि महाभूतानीति सृष्टिक्रमः।" **साङ्ख्यका० माठरवृ०**, का० २२। "शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दगुणम्, शब्दतन्मात्रसहितात् स्पर्शतन्मात्राद्वायुः शब्दस्पर्शगुणः, शब्दस्पर्शसहिताद्रूपतन्मात्रात् तेजः शब्दस्पर्शरूपगुणम्, शब्दस्पर्शरूपतन्मात्रसहिताद्रसतन्मात्रादापः शब्दस्पर्शरूपरसगुणाः, शब्दस्पर्शरूपरसतन्मात्रसहिताद् गन्धतन्मात्राच्छब्दस्पर्शरूपरसगन्धगुणा पृथिवी जायते।" **साङ्ख्यतत्त्वकौ०**, का० २२॥ २ "इत्थंभूतलक्षणे" [पा० २।३।२१] इति सूत्रेण तृतीया॥ ३ "१८५४ गण संख्याने,......१८९३ ग्राम १८९४ कुण १८९५ गुण चामन्त्रणे।" इति **पाणिनीयधातुपाठे**। "गणण् संख्याने, कुण गुण केतण् चामन्त्रणे" इति **हैमधातुपाठे** १०।३०६–३०९॥ ४ **नानेका**° य०। **नानेकैका**° भा०॥ ५ (त्वन्मतविरोधात्?)॥ ६ °**गुण**[मा?]**काशं** प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशाद्यात्मना मा प्रवर्तिष्ट निर्गुणत्वादेकत्वाद् वैषम्यानुपपत्तेरपरिणामित्वादनापत्त्यात्मकत्वात् पुरुषवत्। शब्दादि वाप्येकात्मकाद्येव, आपद्यमानत्वात्, सुखादिवत्। अनेकात्मकं वा सुखादि, तत एव, शब्दादिवत्।

नैव प्रवर्तते सुखादि, अप्रवृत्तिलक्षणत्वात्, पुरुषवत्। त्रयमपि न न प्रवर्तते, अविभक्तस्वतत्त्वस्य तथा प्रविभक्तत्वेन व्यवस्थानात्, मयूराण्डकरसगतग्रीवादिभाववत्, यत इह भाव एव यतः।

एवेति चेदित्याशङ्कायाम्, एवं चेन्मन्यसे, साधूक्तम्, एतदेव त्वा वाचयितुमेवोचम्—शब्दैकगुणवियदप्रवृत्तिप्रसङ्ग इति। ततश्च यत् पुनरत्रिगुणं **सुखादि** सुखमेव पृथक् प्रधानावस्थायां सत्त्वं तदत्रिगुणम्, एकसुखस्वात्मत्वादव्यतिरिक्तं तस्य भावस्तत्त्वं यस्य तत् सुख**मेकस्वात्मत्वा**[3]**व्यतिरिक्ततत्त्वम्**, प्रकाशादिश्च तस्य तत्त्वस्यात्मा सर्वत्राभेदभावात्, तेन **प्रकाशाद्यात्मना मा प्रवर्तिष्ट** मा आपत्तिभवनमनुभूत्, **निर्गुणत्वात्** गुणसन्द्रावानात्मकत्वात्, **एकत्वात्** अननेकात्मकैकत्वात्, **वैषम्यानुपपत्तेरपरिणामित्वात्**, १९६-१ वैषम्यापत्तितो हि परिणामित्वं स्यात्, साम्यावस्थायां तु गुणानां तदभावाद् वैषम्यानुपपत्तिः, अतोऽपरिणामित्वम्। **अनापत्त्यात्मकत्वात्** रूपान्तरप्राप्त्यनात्मकत्वात्, तस्यां ह्यवस्थायामेवंस्वरूपं सत्त्वम्। दृष्टान्तः **पुरुषवत्**, यथा पुरुषोऽपि निर्गुणत्वादिधर्मत्वान्न प्रवर्तते तथा सुखाद्यपि मा प्रवर्तिष्ट। निर्गुणत्वादिधर्मत्वे सत्यपि सुखादि प्रवर्तत एव चेत् तथा तद्धर्मत्वात् पुरुषोऽपि प्रवर्ततामेभ्य एव सुखादिवत्, गुणस्यान्यतमस्यैव वा श्वयथुरकस्मात् कुत उत्पन्नः?। किञ्चान्यत्, **शब्दादि वाप्येकात्मकाद्येव** निर्गुणमेकं समम परिणामि चैवमादि, **आपद्यमानत्वात्** प्रधानावस्थायां प्रवर्तमानत्वात्, **सुखादिवत्। अनेकात्मकमित्यादि** विपर्ययधर्मापादनं गतार्थं तत एवेति।

आह—**नैवेत्यादि**। सिद्धसाधनमिदं 'मा प्रवर्तिष्ट' इति, न प्रवर्तत एव सुखादि, **अप्रवृत्तिलक्षणत्वात्**, न हि सुखं मोहो वा प्रवृत्तिलक्षणम्, किं तर्हि? रज एव प्रवृत्तिलक्षणम्, प्रत्येकं हि सत्त्वादयः प्रकाशप्रवृत्तिनियमलक्षणास्त्रयोऽपि, ततोऽप्रवृत्तिलक्षणत्वान्न प्रवर्तते सुखं पुरुषवत्। वैषम्यावस्थायां तु रजः प्रवर्तते प्रवर्तयति च सुखं मोहं च अप्रवृत्तिलक्षणत्वात् तयोरिति। अत्रोच्यते—**त्रयमपि न न प्रवर्तते**, प्रवर्तत एव, **अविभक्तस्वतत्त्वस्य तथा प्रविभक्तत्वेन व्यवस्थानात्**, यदविभक्तस्वतत्त्वं तेन तेन प्रकारेण प्रविभक्तत्वेन व्यवतिष्ठते तत् प्रवर्तत एव, **यथा मयूराण्डकरसगतग्रीवादिभावाः**, मयूराण्डकरसावस्थायां ग्रीवाबर्हादयोऽविभक्तस्वतत्त्वा ग्रीवादित्वेन प्रविभक्तरूपा व्यवतिष्ठमानाः १९६-२ प्रवर्तमाना एव, नाप्रवर्तमानाः। यन्न प्रवर्तते तदविभक्तस्वतत्त्वं सत् कदाचित् प्रविभक्तत्वेन न व्यवतिष्ठते यथा पुरुषो यथा वा मयूराण्डकरसे हंसादिग्रीवादय इति। किं कारणम्? द्रव्यार्थनयविकल्पानां सत्कारण-

---

१ त्वाम्॥ २ °**मवोच शब्दै**° भा०। °**मवोचत शब्दै**° य०॥ ३ °**त्वात् व्यति**° प्र०। अत्र °**त्वादव्यति**° इत्यपि पाठः स्यात्॥ ४ °**त्वं दृष्टान्तः** भा०॥ ५ °**काद्येव** भा०॥ ६ **समनपरिणामि चैवमाद्यपद्यमानत्वात्प्रधानावस्थानां** प्र०॥ ७ **त एवेति** प्र०॥ ८ °**चित्तत्प्रवि**° भा०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्वविभक्तरसग्रीवाद्यापत्तिवत् प्रधानस्यैव च सापत्तिः। कस्य वा न मनोरथः······कल्पना। अविभक्तानेकार्थकारणमेवेदं विभक्तवृत्ति पृथिव्यादि मयूरग्रीवादि दध्यादि व्रीह्यादि, उक्तवक्ष्यमाणवत्।

[2]भिन्नात्मकतायां तु सत्त्वं न प्रकाशेत, अप्रवृत्तत्वात्, पुरुषवत् पूर्ववदनग्निप्रकाशवद्वा।

वादिनामसदा[3]र्थत्तिप्रवृत्ते**र्यतो** यस्मादिह एतेषु वादेषु **भाव एव यतः** नियतः 'नि'शब्दलोपात्। तस्मादप्रवृत्तिलक्षणं चेत्, न स्यात् सुखा[4]दि इति।

आह – **न[5]न्वविभक्तरसग्रीवाद्यापत्तिवत् प्रधानस्यैव च सापत्तिः।** त्वदुक्तमयूराण्डकरसगताविभक्तग्रीवादिप्रविभागापत्तिभावदृष्टान्तसामर्थ्यादेव त्रिगुणसाम्यावस्थैकप्रधानापत्तिरेव सा [सि]ध्यति, न सुखाद्यापत्तिरिति। अत्रोच्यते—**कस्य वा न मनोरथः** कथं भवान् 'एकमेव कारणमनेककार्यतया विपरिवर्तमानम्' इत्येतद् दर्शनं प्रतिपाद्येतेति। तस्य च कारणस्य 'प्रधानं पुरुषो नियतिः शब्दब्रह्म' इत्यादिसंज्ञा त्वयेष्टा यास्तु सास्तु, किं नो विवादेन? तदर्थ एव मे प्रयास एककारणमयत्वं त्वं प्रतिपादयितव्य इति, एष प्रति[6]पादितोऽसि, त्वमेव तु न वेत्थेति गतार्थं यावत् **कल्पने**ति।

तदुपपाद्यसे—**अविभक्तानेकार्थकारणमेवेदं पृथिव्यादि,** अविभक्तोऽनेकार्थो यस्मिंस्तदविभक्तानेकार्थम्, किं तत्? कारणमस्य पृथिव्यादेः तदविभक्तानेकार्थकारणं पृथिव्यादि, न विभक्तसुखाद्यनेकार्थात्मकैककारणपूर्वकम्। विभक्ता वृत्तिरस्य[7] पृथिव्यादेस्तद् **विभक्तवृत्ति** पृथिव्यादि, सा वृत्तिः पृथिव्युदकघटादित्वापत्तिः। **मयूरग्रीवादी**ति, ग्रीवाबर्हशिखण्डादिवृत्तिर्विभक्ता तदात्मानेकार्थाविभक्ताण्डकरसगतकारणैव। १९७-१

दध्यादिवृत्तिः क्षीरपूर्वा, आदिग्रहणात् पु[9]नः शुक्ररसरुधिराङ्गोपाङ्गादि। **व्रीह्यादि** पूर्वोक्तम्, **आदि**ग्रहणादाम्रपनसमातुलुङ्गादिपत्रपुष्पफलादिवृत्तिस्तदात्माविभक्तपूर्वा। दृष्टान्तबाहुल्यं व्यापित्वप्रदर्शनार्थम्। **उक्तवक्ष्यमाणवत्,** वत्करणं प्रत्येकमभिसम्बध्यते उक्तवद् वक्ष्यमाण[10]वत्। पुरुषनियत्याद्यभिन्नैककारणवदित्युक्तवत्, 'घट एव सर्वम्' इति विधिनियम ए[11]वं वक्ष्यमाणवत्। एवं तावत् कारणमयवादो यथास्माभिरिष्टस्तथा घटते, न यथा त्वयेष्ट इत्युक्तम्।

इदानीं त्वत्पक्षे दोषा वक्ष्यन्ते – प्रकाशप्रवृत्तिनियमानां तु **भिन्नात्मक[12]तायां सत्त्वं न प्रकाशेत** इति प्रतिज्ञा दिङ्मात्रत्वेन, **अप्रवृत्तत्वात्, पुरुषवत्।** त्वयैव हि प्रधानावस्थायामप्रवृत्ता[13]ः समा इतीष्यन्ते गुणाः सत्त्वादयः, तस्मात् सिद्धमप्रवृत्तत्वम्। **पूर्ववद्वे**ति प्रधानावस्थायामिवेत्यर्थः, यथा प्रधानावस्थायामप्रवृत्तत्वान्न प्रकाशते सत्त्वमेवमुत्तरकालमपि। तथा रजस्तमसोः प्रवृत्तिनियमनिषेधः कार्यः। **अनग्निप्रकाशवद्वा,** यथाग्निरप्रवृत्तोऽप्रवृत्तिलब्धात्मा अनग्निः, अनग्निश्[14] न प्रकाशते, तथा सत्त्वमलब्धप्रवृत्ति

---

१ 'कस्य वा न मनोरथः कथं भवानेकमेव कारणमनेककार्यतया विपरिवर्तमानमित्येतत् प्रतिपाद्येतेति? तस्य च यथेष्टमस्तु संज्ञाकल्पना' इत्याशयको मूलपाठोऽत्र सम्भाव्यते॥ २ दृश्यतां पृ० २७८ पं० ८, पृ० २०५-२, २२३-१, २॥ ३ °**पत्तिप्र**(तेः, प्र?)**वृत्ते**° भा० पा० विना। अत्र °**पत्तिप्रसक्ते**° इत्यपि पाठः स्यात्॥ ४ °**दिरिति** प्र०॥ ५ **ननु विभ**° प्र०॥ ६ °**पादिपासि त्वामेव न तु वे**° भा०॥ ७ °**स्य देस्तद्** प्र०॥ ८ °**ण्डकादि**° भा०॥ ९ **पुरा** प्र०॥ १० °**णत्वात्** प्र०॥ ११ **एव** य०॥ १२ °**कतया** प्र०॥ १३ °**त्तः** प्र०॥ १४ °**श्च प्रकाशते तथा** य०। °**श्च प्रकाशते। त। तथा** भा०। अत्र °श्च 'प्रकाशते न, तथा' इत्यपि पाठः स्यात्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ननु प्रकाशात्मकत्वादेव सत्त्वस्य रजसा प्रवर्त्यत्वम्, अग्नेरिव सन्धुक्षणेन। यद्यप्रवृत्तोऽसावसंस्तर्हि अप्रवृत्तस्वात्मत्वाद् वान्ध्येयवत्। एवं हि कार्यं कारणे सद् यदि तद् वर्तते प्रवर्तते, अनारम्भात्, वर्ततेरस्त्यर्थत्वात्।

न, प्रकर्षेणावृत्तत्वात्। रजोनुग्रहात् तद्रूपव्यक्तिः प्रकर्षेण वृत्तिः। न, रजसोऽपि सत्त्ववदपरिसमाप्तरूपत्वात्। रजसोऽपि हि तथा काशनं व्यक्तिरिति प्रकाशात्मकसत्त्वानुग्रहाद् भवति, अप्रवृत्तं च कथमन्यप्रवर्तने प्रवर्तेत?

अप्रवृत्तत्वान्न प्रकाशेत। आह–**ननु प्रकाशात्मकत्वादे**वेत्यादि, अप्रवृत्तत्वमसिद्धं **सत्त्वस्य रजसा प्रवर्त्यत्वात् अग्नेरिव सन्धुक्षणेन,** यथाग्निर्भस्मच्छन्नः सन्नपि न प्रकाशते, तुषचीवरेन्धनादिभिस्तु सन्धुक्षितः प्रकाशते, न चाप्रकाशमानो[3]ऽग्निर्न भवतीति। अत्रोच्यते–**यद्यप्रवृत्तो**ऽग्निस्तस्यामवस्थायाम- १९७-२
सन्नेवासौ, अतोऽस्मदिष्टमप्रकाशत्वमेव गमयति, अग्नेर्हि एषा काचित् प्रकाशनस्य मात्रा सैवात्मा, प्रकाशनात्मप्रवृत्त्यभावात् तदासौ तर्ह्यसन् वन्ध्यापुत्रवत्, तथा सुखमप्यप्रवृत्तत्वादिति। **एवं ही**त्यादि, कारणे कार्यस्य सत्त्वमेवं हि स्याद् यदि तत् सत्त्वं प्रकाशात्मना प्रवर्तते, अनारम्भात्। [4]इतरथा अर्थान्तरसम्बन्धारम्भवादसत्कार्यवाद एवायमपि स्यात्, यथाहुरसत्कार्यवादिनः "[5]क्रियागुणव्यपदेशाभावादसत्, समवाय्यसमवायिकारणसम्बन्धे सति द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते, येषां चाधिकृतमारम्भसामर्थ्यं तैरारब्धे कार्यद्रव्ये तत्समवेता नियमत एव गुणाश्च गुणान्तरमारभन्ते' इत्यारम्भवादः प्रसज्यते, स चानिष्टः। तस्मादनारम्भाद् वर्तते सत्त्वं प्रकाशनात्मना, यस्मा**देवं हि कार्यं कारणे सद् यदि** '[6]सत्त्वं **वर्तते प्रवर्तते**। किं कारणम्? **अनारम्भात्** आरम्भवादपरित्यागात्। कुतो वर्तते प्रवर्तत इति पर्यायकथनमिति चेत्, उच्यते–**वर्ततेरस्त्यर्थत्वात्,** वर्ततेऽस्ति भवति प्रवर्तत इति पर्यायाः। इतर आह–**न, प्रकर्षेणावृत्तत्वात्।** न हि वर्ततिः [7]प्रवर्ततिपर्यायः प्रकर्षार्थेन 'प्र'शब्देन विशिष्टाया [8]वृत्तेरन्यार्थत्वात् [9]वर्तनमात्रस्याविवक्षितत्वात् प्रकृष्टवृत्तिविवक्षितत्वात्। सा च **रजोऽनुग्रहात् तद्रूपव्यक्तिः प्रकर्षेण वृत्तिः,** रजसानुगृहीतस्य सत्त्वस्य [10]बीजस्येवाबाद्यनुगृहीतस्योच्छूनाङ्कुरत्वादिवृत्तिः सृष्ट्यभिमुखी सृष्टिरेव वा सात्र विवक्षितेति। अत्रोच्यते–**न, रजसोऽपि सत्त्ववदपरिसमाप्तरूपत्वात्।** तस्यां ह्यवस्थायां रजःप्रवृत्तिलभ्यप्रकाशात्मरूपव्यक्तिसत्त्ववद् **रजसोऽपि हि** स्वरूपव्यक्तिरसमाप्तरूपैव सत्त्वात् प्रतिलभ्यत्वात्। लब्धात्मवृत्ति हि १९८-१
स्वयं सद् रजः सत्त्वे प्रकाशनप्रवर्तनाय समर्थं स्यात्, अप्रकाशितस्य सत्त्वेन तस्य स्वरूपव्यक्तिरेव नास्ति, कुतः सत्त्वप्रकाशात्मप्रवर्तना रजसः? **तथा काशनं** प्रवर्तकत्वेनाभि**व्यक्तिः,** काशनमेव हि स्वरूपव्यक्ति**रिति प्रकाशात्मके**त्यादि यावत् **प्रवर्तेते**ति गतार्थम्, अप्रतिलब्धात्मनाननुग्रहात्।

---

१ दृश्यतां पृ० २७५ पं० १९ पृ० २०६-२ ॥ २ दृश्यतां पृ० २०६-१ ॥ ३ °ग्निर्भव° य० ॥ ४ इतरथांतर° प्र० ॥ ५ "क्रियागुणव्यपदेशाभावादसत्कार्यम् ।९।१।१। द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते गुणाश्च गुणान्तरमारभन्ते ।१।१।१०।" इति वैशेषिकसूत्रे ॥ ६ तत्वं य० । तत्व (तम?) भा० ॥ ७ प्रवर्ततिः प्रवर्ततिपर्यायः भा० । प्रवर्तति प्रवर्ततिपर्यायः य० ॥ ८ प्रवृ° य० ॥ ९ वर्तमानमात्र° प्र० ॥ १० °स्यैवाद्यनुगृ° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं तु नानयोरितरेतरानुग्राहिता उत्थाप्यसाहायकशक्तित्वाद् वाताहतनौद्वयवद् ग्लानशिबिकावाहकवत् । असम्पूर्णशक्तिता वाऽप्रकर्ष इति कारणतैव न स्यात् तस्य असम्पूर्णशक्तित्वादुपहतबीजवत् । असदकरणादितश्चान्यतो न तत्स्वरूपव्यक्तिः । यदा च सुदूरमपि गत्वा प्रागवृत्तेरसत्कार्यत्वं मा भूदिति प्रकर्षः परिणामादेव तदा युवत्ववदात्ममात्रवृत्तित्वमेव परिणामस्यान्यत्र वृत्तस्यान्यत्रापरिणामकत्वात्, नान्यत्र वृत्तोऽन्यदन्यथा करोति ।

एवं त्वित्यादि । **नानयोः** सत्त्वरजसो**रितरेतरानुग्राहिता उत्थाप्यसाहायकशक्तित्वात्**, सहायभावः साहायकम्, तस्मिंस्तेन तदेव वा शक्तिः, सा उत्थाप्या ययोस्तदानीमेव ते वस्तुनी उत्थाप्यसाहायकशक्तिनी, तद्भावादुत्थाप्यसाहायकशक्तित्वाद् **वाताहतनौद्वयवत्**, यथा जलेऽन्योन्यैाबद्धे[1] द्वे नावौ नेतरेतरत्राणाय तथा सत्त्वरजसी । शिबिकावाहकवदितरेतरानुग्राहिता किं न भवेदिति चेत्, न, 'उत्थाप्य'विशेषणात्, अयमेव हि दृष्टान्तो **ग्लानशिबिकावाहकवत्**, यथा ग्लानोऽनुत्थापितो न शक्नोति वोढुमुत्थाप्यसाहायकशक्तित्वात् तथानुत्थापिते सत्त्वरजसी न शक्नुतः परस्परं प्रवर्तयितुं स्वयमलब्धात्मके इति प्रकर्षवृत्तेरभावः, प्रकर्षवृत्त्यभावादसम्पूर्णशक्तितेत्यत आह – **असम्पूर्णशक्तिता वाऽप्रकर्ष इति** इत्थं **कारणतैव न स्यात् तस्य** सत्त्वस्य **असम्पूर्णशक्तित्वादुपहतबीजवत्**, यथोपहतं बीजमसम्पूर्णाङ्कुरोत्पादनशक्तित्वान्न कारणमेवं सत्त्वमपि स्यात् । अभ्युपेत्यापि[3] कारणत्वं साम्यावस्थायां सत्त्वस्य **असदकरणादितश्चान्यतो न तत्स्वरूपव्यक्तिः**, तस्य सत्त्वस्य प्रकाशनस्वरूपप्रकर्षोऽन्यतो रजस्तमसोः पुरुषतोऽन्यतोऽन्यतो वा कुतश्चिन्न भवति असदकरणादिभ्यो हेतुभ्यः, तद्यथा – **असदकरणाद्**[4] यथा मृदि सदेव कार्यं
१९८-२ घटादि क्रियते न खपुष्पादि, स च मृदः स्वात्मनियतो घटात्मस्वरूपव्यक्तिप्रकर्षो नान्यतः पुरुषादेस्तन्त्वादेर्वापत्तिकारणाद् भवति, किं तर्हि ? स्वत एव भवति, तथा सत्त्वस्वरूप[5]व्यक्तिप्रकर्षो नान्यतो भवति, किं तर्हि ? स्वत एव । एवम् उपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात् । शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्यम् [साङ्ख्यका० ९] इत्येतेभ्यो हेतुभ्यः सत्त्वगुणोऽन्यनिरपेक्षस्वरूपव्यक्तिप्रकर्ष इति ग्राह्यम् । एवं सत्त्वस्य प्रकाशनं तमसा सह योज्यं रजसश्च प्रवर्तनमिति ।

[6]किञ्चान्यत्, **यदा च सुदूरमपी**[7]त्यादि यावत् **परिणामकत्वात्** । सुदूरमपि विचाराध्वना[8] **गत्वा** न प्रागवृत्तेरसत्कार्यपरिहारेण प्रकर्षः परिणामवादादृते[9], अतः परिणामः प्रकर्षेण वृत्तेः कारणमेषितव्यम् । यदा चैवं **तदा** परिणामाभ्युपगमेन पुनरप्येतदेवापन्नम् – परिणामादात्मन्येव वर्तते **युवत्ववत्**, **अन्यत्र वृत्तस्य परिणामस्यान्यत्रापरिणामकत्वात्**, जिनदत्ते वृत्तः परिणामो न साधुदत्ते कौमारयौवनादि प्रवर्तयति कौमारं वा यौवनं वा, किं तर्हि ? जिनदत्त एव करोति, **ना[न्यत्र वृत्तोऽ]न्यदन्यथा करोति**[10] यथा, तथा न सत्त्वे प्रवृत्तिं कश्चिदन्यः कुर्यात्, स्वत एव प्रवर्ततेति ।

---

१ दृश्यतां पृ० २०७-१ ॥ २ अन्योन्यमाबद्धे इत्यर्थः । दृश्यतां पृ० ३४ टि० ५ ॥ ३ °त्यादि कारणत्वं सावस्थायां प्र० ॥ ४ "असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात् । शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्यम् ॥ ९॥"—साङ्ख्यका० ॥ ५ स्वरूप° प्र० ॥ ६ चान्यत् किं य० ॥ ७ °मपीति य० ॥ ८ °रात्वना प्र० ॥ ९ °दादृतेनः परि° भा० । °दादतेन परि° य० ॥ १० दृश्यतां पृ० २०७-१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्ववदुदाहरणादेवाप्रवृत्त्यात्मकत्वं सुखस्य, को हि विशेषो रजःप्रवर्तनादृते क्षीरदधिपरिणामकालवत् पश्चात् प्रवृत्तं पूर्वं च न प्रवृत्तमिति ? न, परिणामस्य तत्रैवोक्तत्वात् प्रकाशात्मैव वृत्तिः, इतरथा स प्रकाशो न स तथाऽप्रवृत्तत्वात् तथाऽभूतत्वाद् घटपटवत् । यैव च प्रवृत्तिः स एव प्रकाशः, तथावृत्तत्वात्, घटघटस्वात्मवत् ।

[2]प्रवर्त्यप्रवर्तकत्वात् पल्लवपवनवन्नेति चेत्, न, तदात्मन एव प्रवृत्तत्वात् सन्निधिमात्रात् पूर्ववदप्रवर्तनात् । य एवासौ सत्त्वस्यात्मा प्रकाशः स प्रवर्तकस्तथा-

---

एवं तावदप्रवृत्तप्रवृत्तिप्रतिषेधार्दन[3]ग्निप्रकाशदृष्टान्तप्रसङ्गागतवादम[4]वतार्य पूर्ववदुदाहरणे प्रसङ्ग-
मुत्थापयिष्यन्नाह – **[5]पूर्ववदुदाहरणादेवे**त्यादि यावन्न **प्रवृत्त**मिति । नन्वेतत् त्वयाभ्युपगतं पूर्वावस्थो-
दाहरणादेव 'पाश्चात्त्यावस्था विशिष्टा' इति । अन्यथा **हि को विशेषः** पूर्वपरावस्थयो **रजःप्रवर्तनादृते ?** १९९-१
तस्मात् स विशेषो रजःप्रवर्तनादेव । को दृष्टान्तः ? **क्षीरदधिपरिणामकालवत्**, यथा क्षीरावस्थातो
दधित्वपरिणामावस्था विशिष्टा [6]पूर्वं क्षीरकाले न दध्यासीत् पश्चाद् भूतमिति दृष्टम्, प्रकर्षवृत्त्या च विना
न भवत्ययं विशेषस्तथा सोऽपीति । एतन्न, **परिणामस्य तत्रैवोक्तत्वात्**, नायं विशेषः परतः सिध्यति,
कुतः ? परिणामस्य तत्रैव सुखेऽभ्युपगम्यास्माभिरुक्तत्वात् । यस्मात् **प्रकाशात्मैव वृत्तिः**, प्रकाशस्य यः
स्वात्मा स एव वृत्तिः, प्रकाशस्यैव च वृत्तिः कालः, स च ततोऽनन्यः, क्षीरदधिपरिणामावस्थयोः काला-
ख्यत्वात् क्षीरदधित्वापत्तिः कालभेदात्, स च परिणामः सुखस्वात्मेति नान्यत् कारणं मृग्यं स्वात्मन एव
परिणामात् । **इतरथा स प्रकाशो न सः**, स प्रकाश एव यदि प्रवृत्तिविशेषो न स्यादन्यात्मा स्यात्
स एव प्रकाशात्मा न स्यात्, **तथाऽप्रवृत्तत्वात्** तेन प्रकाशात्मप्रकारेणाप्रवृत्तत्वात्, पर्यायेण तमर्थं स्फुटी-
कुर्वन्नाह – **तथाऽभूतत्वा**दित्यर्थः । दृष्टान्तो **घटपटवत्**, यथा घटः पटो न भवति तेन प्रकारेणाभूतत्वात्
पटोऽपि घटो न भवति तथा स प्रकाशोऽप्रकाश एव स्यादिति । विपर्ययेण तत्स्वरूपसाधनमुच्यते – **यैव
च प्रवृत्तिः स एव प्रकाशो** नान्यः कश्चिदर्थ इति प्रतिज्ञा, **तथावृत्तत्वात्** तथाप्रवृत्तत्वादित्यर्थः
[7]घटघटस्वात्मवत्, यथा घटप्रकारेण घटात्मनैव वृत्तत्वाद् घट एव घटस्वात्मा नान्यत् किञ्चित् तथा
प्रवृत्तिरेव प्रकाश इति ।

प्रवर्त्यप्रवर्तकत्वात् पल्लवपवनवन्नेति चेत् । स्यान्मतम्–'यैव प्रवृत्तिः स एव प्रकाशः' इत्य- १९९-२
युक्तं प्रवर्त्यप्रवर्तकयोर्भेदात्, प्रवर्त्यं हि सत्त्वं प्रवर्तकं रजः, तस्मात् प्रवर्त्यप्रवर्तकत्वात् तयोर्भेदः पल्लव-
पवनवत्, यथा पल्लवपवनौ प्रवर्त्यप्रवर्तकौ परस्परतो भिन्नौ तथा सत्त्वरजसी इति । एतच्च **न, तदात्मन एव
प्रवृत्तत्वात्**, तस्यात्मा तदात्मा, तदात्मनः प्रकाशात्मन एव प्रवृत्तत्वात्, सत्त्वरजसोर्भेदासिद्धेः पल्लव-
पवनवद् भेदसाधर्म्याभावादयुक्तोऽयं दृष्टान्त इति [8]वक्ष्यति । तद्व्याख्यानार्थमाह – **सन्निधिमात्रात् पूर्ववद-**

---

१ दृश्यतां पृ० २०७-१ ॥ २ दृश्यतां पृ० २०७-२ ॥ ३ °दग्निप्र° प्र० । दृश्यतां पृ० २७० पं० ५ ॥ ४ °मव(प ?)सार्य प्र० ॥ ५ दृश्यतां पृ० २७० पं० ४ ॥ ६ पूर्वक्षी° प्र० ॥ ७ घटपट° प्र० ॥ ८ दृश्यतां पृ० २७४ पं० ४ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

प्रवर्त्यव्यक्तिस्वरूपः, तथाव्यापारणाद् रजःप्रवृत्त्यात्मरूपापादनादितरतथात्मरूपापादनाद् रजोवत्। रजोऽपि हि इतरतथास्वरूपापादनादृते किमन्यत् करोति?

एवं च पल्लववद् रज एवापद्यते तथा प्रकाशस्य प्रवर्त्यत्वात्। तथाप्रकाशानतिरिक्ततत्त्वरूपत्वाद्वा प्रवृत्तेः कुतोऽपल्लवपवनभेदसाधर्म्यम्? युज्यते हि पल्लव·

प्रवर्तनात्, इह रजः सन्निहितमपि प्राक् सन्निधिमात्रादेवाप्रवर्तकं स्वयमप्रवृत्तं सत्त्वाधीनप्रवृत्तित्वात्, किन्तु प्रवर्त्यमप्रवर्तनात्। कस्तर्हि **प्रवर्तकः?** उच्यते – **य एवासौ सत्त्वस्यात्मा प्रकाशः।** कथमिति चेत्, उच्यते – **तथाप्रवर्त्यव्यक्तिस्वरूपः,** तेन तेन प्रकारेण शब्दादिनिर्वर्त्यप्रकारेण प्रवर्त्यव्यक्तिस्वरूपः प्रकाशो नर्तकाचार्य इव भ्रूक्षेपणादिप्रवर्तनाभिव्यञ्जनात्मना नर्तक्योः प्रवर्तमानः प्रवर्तकः। किं कारणम्? **तथाव्यापारणात्**, तेन व्यक्तिरूपेण प्रवर्तमानस्य रजसो व्यापारणात्, सत्त्वेनैव हि प्रकाशनरूपेण प्रवर्तमानेन रजः प्रवर्त्यते, तस्मात् स[3]त्त्वस्यात्मा प्रकाशस्तथाव्यापारणाद् रजसः प्रवर्तक इति त्वदभिमतप्रवर्तकत्वविपर्ययापत्तिरेव रजसः प्रवर्त्यत्[4]वात् सत्त्वेन सत्त्वाधीनप्रवृत्तित्वात् सत्त्वस्यैव प्रवर्तकत्वात् पक्षधर्मविपरीतता चेति। तच्च सत्त्वस्य प्रवर्तकत्वं **रजःप्रवृत्त्यात्मरूपापादनात्**, रजसो हि प्रवृत्तिरात्मा, तदेव रूपं रजःप्रवृत्त्यात्मरूपम्, तदापाद्यते सत्त्वेन सत्त्वाप्रकाशिते प्रवृत्त्यभावात्, सत्त्वापादितं प्रवृत्त्यात्मकरूपं रजः,
२००-१ तस्माद् रजःप्रवृत्त्यात्मरूपापादनात् स[5]त्त्वं प्रवर्तकम् **इ[6]तरतथात्मरूपापादनाद् रजोवत्। रजोऽपि हि** इत्यादि, रजसोऽपि हि प्रवर्तक[7]त्वमित्थमेव युज्यते, **रजोऽपि हि** यस्मात् त्वन्मतेन प्रवर्तमान**मितर**योः सत्त्वतमसो**स्तथास्वरूपापादनादृते किमन्यत् करोति?** प्रवृत्तिरूपमेवापादयत् प्रवर्तकमितीष्यते, नान्यथा। यथा तत् पूर्वं प्रकाशनियमात्मभ्यामप्रवृत्तयोस्तयोः प्रवर्तनादेव प्रवर्तकमेवं सत्त्वमितरैतथास्वरूपापादनात् प्रवर्तकमस्तु, को दोषः?

एवं च पल्लववद् रज एवापद्यते, एवं च कृत्वोक्तविधिना पल्लवस्थानीयं प्रवर्त्यं[8] रज एव न प्रवर्तकम्, सत्त्वमेव च प्रवर्तकं पवनस्थानीयं न प्रवर्त्यमित्यापन्नम्। किं कारणम्? **तथा प्र[9]काशस्य प्रवर्त्यत्वात्**, यस्मात् तेन प्रकारेण प्रवर्त्यत्वं रजसः प्रकाशेन तस्माद् रजसः प्रकाशेन प्रवर्त्यत्वादित्यर्थः, उक्तं हि – **रजसः प्रवृत्तिरात्मरूपम्, तदापादयति प्रकाशः प्रकाशाप्रका[10]शिते रजसोऽप्रवृत्तेः** [ ] इति। तस्मात् प्रकाशेन तथा प्रवर्त्यत्वाद् रजसः साधूक्तम् – **त[11]दात्मन एव प्रवृत्तत्वादिति।** एवं तावत् सत्त्वरजसोर्भेदमुपगम्य हेतोरसिद्धिर्विपर्ययत उक्ता, नैव वा सत्त्वव्यतिरिक्तं र[12]जोऽभ्युपेम इत्यत आह – **तथाप्रकाशानतिरिक्ततत्त्वरूपत्वाद् वा प्रवृत्तेः**, व्याख्यातप्रकारस्य प्रकाशस्य तत्त्वमतिरिच्य नास्ति प्रवृत्तेः स्वरूपम्, तत एव हेतोः **कुतोऽपल्लवपवनभेदसाधर्म्यं** सत्त्वरजसोरभिन्नत्वात् पल्लवपवनयोर्भिन्नत्वात्?

---

१ दृश्यतां पृ० २०८-२॥ २ °**क्याः प्रवर्तमानप्रवर्तकः** डे० लीं० रं० ही०। °**क्याः प्रवर्तकः** भा०॥ ३ **सतस्यात्मा** प्र०॥ ४ °**त्वात्मत्वेन** भा०॥ ५ **सर्वं** प्र०॥ ६ **इतरथात्म**° प्र०॥ ७ °**कमि**° य०॥ ८ °**रथा**° य०॥ ९ "कृत्यानां कर्तरि वा" [पा० २।३।७१] इति सूत्रेण उभयोरपि षष्ठीतृतीयाविभक्त्योन्यीय्यत्वाद् वृत्तिकृता अस्य पदस्य 'प्रकाशेन' इति व्याख्यानेऽपि न दोषः। दृश्यतां पृ० २०८-२॥ १० °**शितरजसो**° रं० ही०॥ ११ दृश्यतां पृ० २७३ पं० ६॥ १२ **रजोऽभ्युपेम** प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यतिरिक्ततत्त्वरूपः पवनः प्रवर्तयति पल्लवं न तु तथाप्रकाशातिरिक्ततत्त्वरूपा प्रवृत्तिरस्ति।

न[1] तद्रूपत्वमतद्वृत्तित्वादिति चेत्, न, रजःस्वप्रवृत्तिवत् तदात्मन एव प्रवृत्तत्वात्, अन्यथा हि न प्रकाशेतेत्युक्तत्वादन्यथा तु प्रवृत्त्यभावात्।

स्यान्मतम्—प्रकर्षेण काशनं प्रकाशनं ………………… प्रवृत्तिवत्। न, सत्त्वस्यापि रजोवदपरिसमाप्तरूपत्वात् …… प्रवर्तकाभावस्य चापर्याप्तत्वेनोक्तत्वात्।

एवं चैकैव विनिद्रावस्थापुरुषत्ववत् प्रवृत्तिः प्रधानमिति तन्मात्रमेव तत् प्रवृत्त्यापत्तिरूपनिरूप्यत्वात् प्रवृत्तिस्वात्मवदित्यादि भङ्गचक्रावर्तनम्,

---

इति दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैषम्यं दर्शयति — यथेहापल्लवलक्षणः पवनो लोके भिन्न इति दृष्टः अपवनलक्षणश्च २०० २ पल्लवः, **युज्यते हि पल्लवव्यतिरिक्ततत्त्वरूपः[3] पवनः** पल्लवमाघ्नन् **प्रवर्तयति पल्लवं** पल्लवश्च तेनाहतः प्रवर्त्यते तद्व्यतिरिक्ततत्त्व इति **न तु तथाप्रकाशातिरिक्ततत्त्वरूपा प्रवृतिरस्ति** उभयोः शब्दाद्याविर्भावमात्रफलत्वात्, अतो वैषम्यमिति।

न तद्रूपत्वमतद्वृत्तित्वादिति चेत्। स्यान्मतम्—प्रकाशनमात्रं सत्त्वस्य प्रवृत्तिर्निर्वर्तनं[4] तु रजसः, तस्मात् सत्त्वस्याप्रवर्तकत्वादतद्वृत्तित्वान्न प्रवृत्तिरूपत्वमिति। एतच्च **न, रजःस्वप्रवृत्तिवत् तदात्मन एव प्रवृत्तत्वात्,** यथा रजसः स्वा प्रवृत्तिः प्रागवृत्तापि पश्चात् स्वत एव रजःस्वात्मनः प्रवर्तमाना रजसाऽविनाभूतत्वात् तदत्यागेन वृत्तेस्तदधीनत्वात् तद्रूपैव तदात्मन एव प्रवृत्तत्वात्, तथा सत्त्वप्रकाशप्रवृत्त्यनतिरिक्ततत्त्वरूपा रजःप्रवृत्तिर्नान्या प्रकाशाधीनत्वात् तदविनाभावात् तदपरित्यागेन वृत्तेस्तदात्मन एव प्रवृत्तत्वादिति। किञ्चान्यत्, **अन्यथा हि न प्रकाशेतेत्युक्तत्वात्,** उक्तं प्राक् सत्त्वं न प्रकाशेत अप्रवृत्तत्वात् पूर्ववत् पुरुषवदनग्निप्रकाशवत्[6] अप्रवृत्तस्वात्मत्वाद् वान्ध्येयवत्, इति तथैव, **अन्यथा तु प्रवृत्त्यभावात्** प्रकाशाप्रकाशिते रजसोऽप्रवृत्तेः, तस्माद् रजसोऽप्यन्यथा वृत्त्यभावात् प्रकाश एव प्रवृत्तिरिति। **स्यान्मतम् प्रकर्षेण काशनं प्रकाशन**मित्यादि तदेव यावत् **प्रवृत्तिव**दिति प्रासङ्गिकम्। तत्रापि च **सत्त्वस्यापि रजोवदपरिसमाप्त[रूप]त्वा**दित्यादि अक्षरपरिवर्तेन यथायोगं यावदुत्थाप्यसाहायकशक्तित्वाद् वाताहतनौद्व्यवद् ग्लानशिबिकावाहकवद् यावच्च उपहतबीजवदिति वाच्यम्। तस्मादिदं व्याख्यातार्थं **प्रवर्तकाभावस्य चापर्याप्तत्वेनोक्तत्वा**दिति।

एवं[9] चैकैव विनिद्रावस्थापुरुषत्ववत् प्रवृत्तिः प्रधानमिति तन्मात्रमेव तत्। एवं च कृत्वा विनिद्रावस्थायाः पुरुषत्ववत् प्रवृत्तेरेव प्रधानत्वमिति तन्मात्रमेव तत् प्रधानं प्रवृत्तिमात्रमेव। किं कारणम्? **प्रवृत्त्यापत्तिरूपनिरूप्यत्वात् प्रवृत्तिस्वात्मवदित्यादि भङ्गचक्रावर्तन**मिति विनिद्रावस्थापुरुषत्वापादनग्रन्थमर्थसादृश्यादतिदिशति। तद्यथा—यथा विनिद्रावस्थैकलक्षण[10] एव पुरुष आत्यन्तिकनिद्राविगमन-

---

१ दृश्यतां पृ० २०९-१॥ २ दृश्यतां पृ० २०९-२॥ ३ °**रूपः पवनः पल्लवः पल्लवमा**° भा० डे० लीं०। °**रूपः पल्लवः पवनः पल्लवमा**° पा० वि० रं० ही०॥ ४ °**त्तिनिर्वर्तनं**° भा०। °**त्तिनिवर्तनं**° य०॥ ५ °**त्तादि** प्र०॥ ६ °**वदग्नि**° प्र०। दृश्यतां पृ० २७० पं० ५॥ ७ दृश्यतां पृ० २७१ पं० २॥ ८ दृश्यतां पृ० २७१ पं० ५, पृ० २०९-१॥ ९ °**चैकैकवि**° य०। दृश्यतां पृ० २०९-२॥ १० दृश्यतां पृ० २४८ पं० २॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवृत्तिस्वात्मैव वा त्रीणीति पुरुषावस्थावत्।

रूपनिरूप्यत्वाद् विनिद्रावस्थास्वात्मवदिति तथा प्रवृत्त्येकलक्षणमेव प्रधानं प्रवृत्त्यापत्तिरूपनिरूप्यत्वात् प्रवृत्तिस्वात्मवत्, [1]*न ह्यसावितरात्मिका स्ववृत्तित्यागापत्तेः। तन्मात्रत्वे तु प्रधानस्यापि तद्वत् प्रकाशाद्यनात्मकत्वादसर्वगतत्वम्।

अथ[2] प्रवृत्तिलक्षणमपि न प्रवृत्तिमात्रमेव प्रधानं सर्वत्वात्, न[3] तु सर्वाणि एकस्यैव सर्वत्वात्, प्रवृत्तिरपि सर्वत्वात् प्रवृत्त्यात्मिका सती न प्रवृत्तिमात्रैव प्रवृत्तिलक्षणत्वात् प्रधानस्वात्मवत्*। ततश्च प्रतिगुणं तस्याः सर्वात्मकत्वात् तृणाद्यपि सर्वगतमिति किं 'प्रधानैकत्वम्' इति कल्पनया? अतल्लक्षणत्वाँ[4][द्वा] प्रवृत्तिगुणाभावः, ततश्च तत्तत्त्वत्रिगुणसर्वात्मकप्रधानाभावः।

अथ[5] प्रवृत्तिलक्षणविपरीतमपि प्रधानं प्रधानमेव अवधारणभेदात्, गुणस्वात्मनि 'गुण एव लक्षणम्' इत्यवधारणम्, प्रधाने तु 'प्रवृत्तिर्लक्षणमेव' इतरयोरप्यत्यागात्, तद्ध्यनेकरूपं मेचकवत्। न,
२०१-२ उक्तवदवधारणस्यान्याय्यत्वात् प्रतिज्ञातव्याघाताद् घटरूपादित्ववत्, प्रधानत्वं प्रागुक्तं गुणानाम् 'अजामेकां[6] लोहितशुक्लकृष्णाम्' इत्यादि, इदानीं पृथक्स्वात्मानस्त उच्यन्ते इति तत्त्वं प्रधानस्य, न प्रधानत्वं तेषाम्, रूपादिघटत्वपक्षवत्। यदा च तेषामेव तत्त्वं ततस्तेषां [तथा] तथेतरेतरात्मसु अभावादवधारणभिन्नभिन्नार्थत्वाद् ननु तदेव सर्वासर्वगतत्वमिति लोकवदेव तत्त्वापत्तिः।

अथ सर्वसर्वात्मकत्वादविकल्पशब्दार्थत्वाँ[7][द]लक्षणमेव कथं तर्हि त्रिगुणवर्णनमनेकात्मकसर्वगतत्वभावनं[8] च? यदि अस्यैकैकः प्रत्येकं गुणो न भवति ततोऽस्य कुतोऽसत्त्वात् तदेकत्वापत्त्यात्मिका अविकल्परूपता? न हि पृथगवृत्ते रूपे मेचकात्मके भवतः। असदेव तु तदेवम्, अगुणत्वेऽन्यात्मकत्वात्, खपुष्पवत्। त्वदुक्तेरेव च [न] तल्लक्ष्यं नार्थो न वस्तु, अलक्षणत्वात्, खपुष्पवत्।

अथात इतश्चान्यतरोपादानपरित्यागायुक्तत्वात् तल्लक्षणाभावादस्यावाच्यतैव[9], तथा तन्नैव स्यात् प्रवृत्त्या सहैकत्वान्यत्वे प्रत्यवचनीयत्वात्, न तदेकं नान्यद् वाच्यम्, निरुपाख्यत्वात्। यत्तु सत् तत् प्रवृत्त्या सहैकत्वान्यत्वे प्रति वचनीयम्, यथा प्रवृत्तिस्वात्मा प्रकाशनियमात्मानो वा अन्यतरोपग्राहपरित्यागायुक्तत्वादपि च ननूभय[10]युक्तत्ववाच्यत्वाभ्युपगम एव पितृपुत्र[11]वत्।

प्रवृत्तिस्वात्मैव वा त्रीणीति पुरुषावस्थावदिति। यथैव हि यदि पुरुषस्वात्मा अवस्थाः न
तर्हि[12] ना अनवस्थ[13]त्वात् खपुष्पवदिति तथैव यदि प्रधानस्वात्मा गुणा न तर्हि प्रधानम्, अ[14]गुणत्वात्,
२०२-१ खपुष्पवत्। अभ्युपगमेऽपि तु प्रधानस्य गुणानां त्रयाणामप्यैक्यं प्रधानस्वात्मत्वात् प्रधानवदिति सर्व[15]त्वसम्भाव्याभावादेव सर्वाव्यापिता। प्रवृत्तिगुण एव हि प्रकाशगुणः प्रवृत्तिस्वात्मत्वात् प्रवृत्तिवत्, एवमितरोऽपि। प्रकाश एव प्रवृत्तिः प्रकाशस्वात्मत्वात् प्रकाशवत्, एवमितरोऽपि। नियम एव च प्रवृत्तिः नियमस्वात्मत्वाद् नियमवत्, एवमितरोऽपि। य एव चान्यो गुणः स एवेतरोऽपि एकस्वात्मत्वात् स इव [इति] 'प्रकृतिरेवेदं सर्वम्' इत्यतिदेशाभावो भेदाभावात्।

उपवर्णनभिन्नरूपव्यतिकरसङ्कराभ्यां त्वेवमतथात्वमेषामस्य च तत्त[16]स्वात्मत्वादिति प्रधानगुण-

---

१ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ २ दृश्यतां पृ० २४९ पं० १ ॥ ३ वाक्यमिदं पृ० २४४ पं० १२ इत्यत्रापि दृश्यते ॥ ४ °त्वाप्र(त्वात्प्र?)वृत्ति° प्र० ॥ ५ दृश्यतां पृ० २४९ पं० ६ ॥ ६ दृश्यतां पृ० २६६ पं० ६। ७ °त्वालक्ष° भा०। °त्वाल्लक्ष° य०। दृश्यतां पृ० २५१ पं० ३,१६ ॥ ८ °भावगं च प्र० ॥ ९ °स्यादतैव भा०। °स्यदतैव य०। दृश्यतां पृ० २५२ पं० ३ ॥ १० ननुरूपयु° य० ॥ ११ °पुत्रत्ववत् य० ॥ १२ तर्हि ता ना अन° प्र०। दृश्यतां पृ० २५३ पं० ६ ॥ १३ °स्थात्वात् भा० ॥ १४ अ° प्रतिषु नास्ति ॥ १५ सर्वत्रस° प्र० ॥ १६ ततस्वात्म° प्र०। दृश्यतां पृ० २५५ पं० २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं चैकैकपूर्वकवादापत्तेरेव किमनेकात्मकैककल्पनया? सङ्घातपारार्थ्यादिभिस्तस्य चेतनादन्यत्वे स्थिताचेतनत्वैकत्वपरिणामित्ववृत्ति उक्तवत् स्थापितात्म-

---

व्यवस्थाऽभाव एव। उक्तवद्वा व्यवस्थानुमतौ प्रधानातिदेशस्त्याज्यः। तदत्यागे यदर्थमयमतिदेशोऽद्वैतैकान्तार्थस्तस्यैवासिद्धिः, यत् तदेकमेव सम्भाव्यते प्रधानं तस्याप्यनेक[2]तैवैवमापद्यते, यत्स्वरूपाव्यतिरिक्तलक्षणा गुणा विना भेदेनोच्यन्ते तत् प्रधानमपि प्रधानेनाभिव्याप्तत्वादनवस्थितैकत्वतत्त्वप्रतिष्ठं 'प्रधानम्' इत्यतिदेश्यं स्यात् प्रधानस्वात्मत्वाद् गुणवत्। प्रत्यक्षार्थैदंविषयतायां वा व्यक्तमूर्तानित्यादिरूपार्थप्रधानपरमार्थता।

[3]गुणास्त्वन्यत्वानेकत्व एव प्रधान[4]म्। अवश्यमन्ये ते तस्मात्, तद्रूपापत्त्यनिष्टत्वात्, गुणान्तरवत्। यतो गुणस्वात्मत्वमस्य नेष्यते। प्रधानातिदेशात् तु पुनः स्व[5]परविषयकृतभेदद्वारानभ्युपगमे कस्यचित् कथञ्चिदप्यन्यस्यानुपपत्तौ तेऽप्यनन्यत्वापत्तिवत् पृथक् पृथक् प्रधानम्। अथ प्रधानलक्षणापि प्रवृत्तिर्न प्रधानं प्रधानमपि तर्हि न प्रधानं प्रधानलक्षणत्वात् प्रवृत्तिवत्। एवं शेषावपीति प्रधानाभाव एव, कुतोऽस्य सर्वगतता? तदभा[6]व एव त्वयाभिप्राय एवं प्रतिपाद्यते तदात्मत्वाभिमतनिरसनाद्गुणत्वनिरसनेनाश्रयभावप्रतिपादनवत्। २०२-२

कृतं भङ्गचक्रावर्तनम्, आपादितं चैकैकपूर्वकमिदं 'नानेकैकपूर्वकम्' इत्येतदापन्नमित्याह—**एवं चैकैकपूर्वकवादाप[7]त्तेरेवे**ति अवधारणार्थत्वादेवकारस्य, ततश्च त्रिगुणप्रधानकारणकल्पनानर्थक्यमित्यत आह—**किमनेकात्मकैककल्पनया?** यदि प्रवृत्तिलक्षणं प्रधानमेवैकं प्रकाशनियमप्रवृत्तिरूपेण प्रवर्तते प्रवृत्तिरेव वैका त्रिगुणरूपा ततश्चोभयथाप्येकैककारणवाद एवेति पृथगात्मकत्रिगुणकारणकल्पनाव्याख्या आयासमात्रम्। तस्मादेकात्मकैकमेव व्यक्त्यन्तरसहस्रक[8]रणायानेकाकारं भवति, यथा प्राग्वर्णितपुरुषादिकारणपूर्वकानन्तप्रभेदजगत्सृष्टिसमर्थं यत् तदेवास्तु अनेकाकारम्, किं 'त्रिगुणम्' इत्येतावता? इति।

किञ्चान्यत्, यद्यपि त्वदुक्तैर्हेतुभिः **सङ्घातपारार्थ्यादिभिः** प्रकृतेरन्यः पुरुषः सिध्यति

> **सङ्घातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।**
> **पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्या[10]र्थप्रवृत्तेश्च॥** [साङ्ख्यका० १७] इति,

तथापि च **तस्य** कारणस्य **चेतनादन्यत्वे** सत्येवैतानि स्वरूपाणि स्थितानि, चेतनस्य परस्यार्थे प्रवृत्ते[11]श्चेतनस्य भोक्तृत्वाद् रूपादिपरिणामिनोऽचेतनत्वा[12]च्च तेनैवाचेतनत्वेनैकत्वं स्थितम्, न ह्याचैतन्यस्य भेदोऽस्ति, परिणामित्वं चास्य तत एव स्थितम्, आपत्तिभवनस्य रूपादिरूपस्य परिणामाख्यत्वात् तस्य च सन्निधिभवनाद्भिन्नत्वात्, यथोक्तं[13] **तेच्चेव ते पोग्गला सुब्भिगंधत्ताए परिणमंति ते चेव ते पोग्गला दुब्भिगंध-**

---

१ दृश्यतां पृ० २०९-२॥ २ °**कतैवेवमा**° प्र०॥ ३ **गुणस्त्व**° प्र०। दृश्यतां पृ० २५७ पं० २॥ ४ °**नवश्य**° प्र०॥ ५ **स्वविषयकृत**° प्र०॥ ६ °**भाव एव त्वया**(त्वदभि?)**प्राय एवं** य०। °**भाव एवं** भा०। दृश्यतां पृ० २५८ पं० ३॥ ७ °**पत्ति**° भा०॥ ८ °**ख्यायाममात्रं** प्र०॥ ९ °**कार**° प्र०॥ १० "°ल्यार्थप्र°" **जै० साङ्ख्यका०** A, B। "°ल्यार्थं प्र°" **मुद्रितसाङ्ख्यका०**॥ ११ चेतनो ह्यचेतनस्य भोक्तेति चेतनेऽचेतनस्य भोक्तृत्वं निर्बाधमेव॥ १२ °**त्वाच्चं तेनै**° य०। °**त्वा तेनै**° भा०॥ १३ °**क्तं तच्चैव ते पोग्गल परिणमंति ते** भा०। °**क्तं तच्चेव ते प्पोग्गल परिणमंति ते** य०। दृश्यतां पृ० २५७-१, २५८-२॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

स्वतत्त्वप्रवृत्तित्वात् किमिति न गम्यते मया वा किमिति नोच्यते सुखादनन्यदेव दुःखम्, अनात्मत्वेऽवरणाद्यात्मकत्वात्, अवधारणेन च वक्ष्यमाणसाधनान्तरापक्षिप्तान्यत्वो विपक्षाभावः सूच्यते, सुखस्वात्मवत्, अन्यस्याभावात्।

मोहेऽन्यत्वमिति चेत्, तन्निवर्तयिष्यते। अवरणाद्यात्मकत्वात् कुतोऽन्यत्व-

---

२०३-१ त्ताए परिणमंति [ज्ञाताधर्म०] [1]त्ति। ततस्तस्य **सङ्घातपारार्थ्यादिभिश्चेतना[3]दन्यत्वे** स्थिताचैतन्यैकत्वपरिणामित्वानि वृत्तयोऽस्य तदिदं कारणं **स्थिताचेत[4]नत्वैकत्वपरिणामित्ववृत्ति,** तच्च सुखमिति वा दुःखमिति वा मोह इति वा परमाणव इति वा कारणमित्येव वा। **उक्तवत्,** उक्तेन तुल्यमुक्तवत्, यथोक्तं भिन्नात्मकतायां तु सत्त्वं न प्रकाशेत अप्रवृत्तेत्वादित्यतः प्रभृति यावदेषोऽवधिः, तद्वदुक्तवदेव **स्थापितात्मस्वतत्त्वप्रवृत्तित्वात्,** आत्मस्वतत्त्वेन स्थापिताऽस्य प्रवृत्तिरित्यतः **किमिति न गम्यते** त्वया वक्ष्यमाणसाधनवत् 'अनन्ये सुखदुःखे' इति, किं स्वपक्षरागाद् मोहाद्वा? मया वा **किमिति नोच्यते?** तत्त्वकथायां प्रस्तुतायां किमनुवृत्त्या[6] आयतिलोपायशोभयादितो वा? इति। किं पुनस्तत् साधनमिति चेत्, **सुखादनन्यदेव दुःखम्, अनात्मत्वेऽवरणाद्यात्मकत्वात्,** वरण-सदना-ऽपध्वंसन-बैभत्स्य-दैन्य-गौरवाणि वरणादीनि, वरणादीन्यस्यात्मा कार्यं तद् वरणाद्यात्मकं तमः, न वरणाद्यात्मकमवरणाद्यात्मकम्, किं तत्? दुःखम्, तस्यानात्मत्वे सति अवरणाद्यात्मकत्वात् सुखादनन्यत्वमेव। किमर्थं पुनः 'अनन्यदेव' इत्यवधार्यते? उच्यते— **अवधारणेन च** 'सुखादनन्यदेव' इत्यनेन **वक्ष्यमाणसाधनान्तरापक्षिप्तान्यत्वो विपक्षाभावः सूच्यते,** वक्ष्यमाणं साधनं **सु[7]खादनन्य एव मोह** इति, तेनापक्षिप्तमन्यत्वं तमसो-
२०३-२ ऽपीति विपक्षाभावः सोऽनेनावधारणेन सूच्यते। पुरुषस्तु स्यात् सुखादन्यत्वाद् विपक्षः, ततो व्यावर्तनार्थम् 'अनात्मत्वे सति' इति विशेषणम्। **सुखस्वात्मवदिति** दृष्टान्तः। यथाऽवरणाद्यात्मकत्वात् सुखस्वात्मा सुखादनन्य एवं दुःखमप्यवरणाद्यात्मकत्वात् सुखादनन्यदिति। **[8]अन्यस्याभावादिति** हेतोरव्यभिचारव्याख्यानम्, सुखादनन्यत्वेन दुःखे साध्येऽनात्मत्वविशेषणेन आत्मनि निरस्ते साधनान्तरनिरस्ते तमसोऽन्यत्वे न किञ्चित् सुखादन्यदस्ति, तस्मादन्यस्य कथं[9]चिदभावाद् विपक्ष एव नास्ति। विपक्षाभावादेवावृत्तिरसपक्षेऽस्य हेतोरित्यव्यभिचारी हेतुः।

मोहेऽन्यत्वमिति चेत्, तन्निवर्तयिष्यते, व्याख्यातार्थस्फुटीक्रि[10]यायै चोद्योत्तरपक्षौ गतार्थौ न विव्रियेते। **अवरणाद्यात्मकत्वात् कुतोऽन्यत्वनिवृत्तिरिति चेत्,** स्यान्मतम्— वरणाद्यात्मकमोह-

---

१ "एवं खलु सामी! सुब्भिसद्दा वि पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, दुब्भिसद्दा वि पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति। सुरूवा वि पोग्गला दुरूवत्ताए परिणमंति, दुरूवा वि पोग्गला सुरूवत्ताए परिणमंति। सुब्भिगंधा वि पोग्गला दुब्भिगंधत्ताए परिणमंति, दुब्भिगंधा वि पोग्गला सुब्भिगंधत्ताए परिणमंति। सुरसा वि पोग्गला दुरसत्ताए परिणमंति, दुरसा वि पोग्गला सुरसत्ताए परिणमंति। सुहफासा वि पोग्गला दुहफासत्ताए परिणमंति, दुहफासा वि पोग्गला सुहफासत्ताए परिणमंति। पओगविससा वि य णं परिणया वि य णं सामी पोग्गला पण्णत्ता।" इति ज्ञाताधर्मकथासूत्रे पाठः १२।६ ॥ २ दृश्यतां पृ० ४ टि० २ ॥ ३ °ना इत्यत्वे य०। °नारू इत्यत्वे भा० ॥ ४ °तनैकत्वप° य० ॥ ५ °त्तित्वा° प्र०। दृश्यतां पृ० २७० पं० ४ ॥ ६ °त्त्यायति° प्र० ॥ ७ दृश्यतां पृ० २०९-२ ॥ ८ अन्यस्यादिति प्र० ॥ ९ °चिद् वि° य० ॥ १० °यादौ प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवृत्तिरिति चेत्, न, अवरणाद्यात्मकशब्दस्य विधिप्रधानपर्युदासात्मकत्वात् अनपुंसकवचनादप्रतिषेधेऽनपुंसकसुटि सर्वनामस्थानत्ववत् तटस्तटंतटीस्त्रीपुंनपुंसकास्त्रीपुंनपुंसकत्ववदेतत् स्यादेकस्मिन्नेव लिङ्गत्रयदर्शनात्, अवरणाद्यात्मकत्वेऽप्यन-

---

प्रतिषेधादेव अवरणाद्यात्मकाभ्यां सत्त्वरजोभ्यां मोहस्य प्रतिषेध्यस्यान्यत्वं सिद्धम्, तस्मान्न तदन्यत्वनिवृत्तिरिति। एतच्च **न,** 'अवरणाद्यात्मकत्वात्' इति **अवरणाद्यात्मकशब्दस्य विधिप्रधानपर्युदासात्मकत्वात्।** नञो हि द्वयी गतिः – प्रसज्यप्रतिषेधः पर्युदासश्च, यथा ब्राह्मणो न भवत्यब्राह्मण इति ब्राह्मणस्य निवृत्तिप्रधानः प्रसज्यप्रतिषेधः, ब्राह्मणादन्योऽब्राह्मणः क्षत्रियादिरिति क्षत्रियादिविधानप्रधानः पर्युदासः, तथेहापि 'अवरणाद्यात्मकत्वात्' इति वरणाद्यात्मकाद् मोहादन्यदवरणाद्यात्मकं[1] शोषादिप्रसादाद्यात्मकं विधीयते, वरणाद्यात्मकत्वस्य तु[2] न विधिर्न प्रतिषेधः पर्युदासात्मकत्वात्, न तु प्रसज्यप्रतिषेध इति। तदर्थसमर्थनार्थं दृष्टान्तमाह – **अनपुंसक[3]वचनादप्रतिषेधेऽनपुंसक[4]सुटि सर्वनामस्थानत्ववत्,** यथा नपुंसकादन्यत्र सुट् सर्वनामस्थानसंज्ञं भवतीति स्त्रीपुंसयोः सुटः सर्वनामस्थानसंज्ञा विधीयते, नपुंसके तु 'शिः **सर्वनामस्थानम्** [पा० १।१।४१] इति विध्यन्तरविहिता सुटः सर्वनामस्थानता न विहिता न निषिद्धा, तथेहापि वरणाद्यात्मकत्वस्य न विधिर्न प्रतिषेधः शोषप्रसादाद्यात्मकत्वविधानादिति। २०४-१

स्यान्मतम् – वैषम्यादृदृष्टान्तोऽयम्, सम्ब[5]न्धिनः सुटः सर्वनामस्थानविधाने नपुंसकानपुंसकविषयत्वाविरोधाद् युज्येत सर्वनामस्थानसंज्ञा, विषयस्य तु नपुंसकानपुंसकत्वविरोधवद् वरणावरणाद्यात्मकत्वानुपपत्तिरिति। एतदपि च न वैषम्याय, अत्रापि त[6]त्तुल्यत्वात्, **तटस्तटंतटी[7]स्त्रीपुंनपुंसकास्त्रीपुंनपुंसकत्ववदेतत् स्यात् एकस्मिन्नेव लिङ्गत्रयदर्शनात्,** दृष्टं हि तटे लिङ्गत्रयं 'तटं तटस्तटी' इत्येकस्मिन्नेव, यदा च नपुंसकलिङ्गं तदा न स्त्रैणं न पौंस्नम्, पुंस्त्वे न स्त्रीता न नपुंसकता, स्त्रीत्वे नेतरद्वयता, इत्यस्त्रीपुंनपुंसकत्वं च तथा [8]वरणावरणाद्यात्मकत्वमस्तु, को दोषः? सरूपैकशेषाकरणमनुकरणत्वाद् लिङ्गत्रयव्यक्त्यर्थमित्यदोषः।

एवं तर्हि सुखदुःखयोरपि वरणाद्यात्मकत्वादवरणाद्यात्मकत्वासिद्धिरे[9]वं अवरणाद्यात्मकत्वसिद्धौ वाऽनन्यत्वासिद्धिरिति चेत्, नेत्युच्यते, **अवरणाद्यात्मकत्वेऽप्यनन्यत्वाद् वरणाद्यात्मकत्वस्य,** अवरणाद्यात्[10]मके अपि सुखदुःखे वरणाद्यात्मकत्वतोऽनन्ये, तस्मादभिन्ने वरणाद्यात्मके एव प्रसादशोषादिकार्यभेदेऽपि कारणत्वानात्मत्वपरिणामित्वादिभ्यः। किमिव? **अवरणसदनादिमोहात्मकत्ववत्,** यथा

---

१ °**णात्मकं** भा०। °**णात्मक** य० ॥ २ **तु वि**° प्र० ॥ ३ °**वचनाप्रति**° वि० विना य०। भा० प्रतौ तु * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो नास्त्येव ॥ ४ "शि सर्वनामस्थानम् ।१।१।४१। सुडनपुंसकस्य ।१।१।४२।'''शि सर्वनामस्थानं सुडनपुंसकस्येति चेज्जसि शेः प्रतिषेधः प्राप्नोति, कुण्डानि तिष्ठन्ति वनानि तिष्ठन्ति ।''''''यत्तावदुच्यते 'शि सर्वनामस्थानं सुडनपुंसकस्येति चेज्जसि शिप्रतिषेधः' इति न अप्रतिषेधात्। नायं प्रसज्यप्रतिषेधो नपुंसकस्य नेति, किं तर्हि? पर्युदासोऽयं यदन्यन्नपुंसकादिति, नपुंसके न व्यापारः, यदि केनचित् प्राप्नोति तेन भविष्यति, पूर्वेण च प्राप्नोति।" इति पातञ्जलमहाभाष्ये। "जश्शसोः शिः।" **पा०** ७।१।२० ॥ ५ °**न्धिना** भा० ॥ ६ **त तुल्य**° भा० रे० ही०। **न तुल्य**° पा० डे० लीं० वि० ॥ ७ °**स्त्रीनपुंसकास्त्रीनपुंसकत्व**° य० ॥ ८ **वरणाद्यात्मकत्व**° प्र० ॥ ९ °**रेव वरणाद्या**° य०। °**रेणाद्या**° भा० ॥ १० °**त्मकत्वे अपि सुखदुःखयो व**° पा० डे० लीं० रे० ही०। °**त्मकत्वे अपि सुखदुःखयोः व**° वि० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

न्यत्वाद् वरणाद्यात्मकत्वस्य अवरणसदनादिमोहात्मकत्ववत्, वक्ष्यमाणवच्च वरणाद्यात्मकत्वेऽप्यनन्यत्वादवरणाद्यात्मकत्वस्य प्रापितत्वात् ।

असाधनमिदं सर्वतुल्यत्वात् प्रसिद्धिविरुद्धसिद्ध्यतिप्रसंगात् । शक्यते हि वक्तुं घटः कटादनन्यः, तन्त्वनात्मकत्वात्, कटस्वात्मवत्, वैधर्म्येण पटवत् ।

मोहात्मकानि वरणादन्यानि सदनादीनि वरणात्मकमोहात्मकान्यपि अवरणात्मकानि, यथा वा मोहो वरण-
२०४-२ विलक्षणसदनापध्वंसनबैभत्स्यदैन्यगौरवधर्मोपि वरणात्मक एव कार्यकारणयोरभेदाद् भेदाच्च, अन्यथा पौनरुक्त्यानर्थक्ये ग्रन्थदोषौ व्यपदेश्यव्यपदेशाभावदोषौ[१]श्च स्युः, नेष्यन्ते च तथा । तस्माद् वरणावरणाद्यात्मकत्वं मोहस्य सदनादीनां चैषितव्यम् । यथा चैतत् तथा सुखदुःखे प्रसादशोषादयश्च वरणावरणाद्यात्मकाः[२] स्युः । तस्मात् सुखदुःखयोरनन्यत्वहेतुव्यभिचारप्रदर्शनाय नासपक्षोऽस्तीति । किञ्चान्यत्, **वक्ष्यमाणवच्च वरणाद्यात्मकत्वेऽप्यनन्यत्वादवरणाद्यात्मकत्वस्य प्रापितत्वात्**, वक्ष्यति[३] हि सुखादनन्यत् तमः प्रकाशादनन्यो नियम इति च, तत्र तमसो वरणाद्यात्मकत्वे प्रसादशोषादिकार्यादिकस्मादेव सुखादनन्यत्वं साधयिष्यते, तमसोऽप्यतस्तस्मादनन्यत्वाद् वरणाद्यात्मकमप्यवरणाद्यात्मकं तमः सत्त्वरजोवत् । किञ्चा[४]न्यत्, अवरणाद्यात्मकत्वस्य वरणात्मके सत्येवानन्तरं प्रापितत्वात् तथा वक्ष्यमाणत्वादिति ।

इतर आह — **असाधनमिदं सर्वतुल्यत्वात् प्रसिद्धिविरुद्धसिद्ध्यतिप्रसङ्गात्**, प्रसिद्धिविरुद्धानामप्यर्थानां सिद्धिरेवं सति प्रसज्यते, अर्थान्तरधर्मनिवृत्त्या तदात्मत्वापादनात्, तद्यथा—**शक्यते हि वक्तुं घटः कटादनन्यः, तन्त्वनात्मकत्वात्**, यस्तन्त्वनात्मकः स कटादनन्यः, यथा **कटस्वात्मा[५]**,
२०५-१ यः कटादन्यः स तन्त्वनात्मको न भवति यथा पट इति **वैधर्म्येण पटव**दित्युक्तम् । आचार्य आह — **अथ सर्वतुल्यता कथं दोषः, स्वमतेन परमतेन ?** इति प्रश्नः 'उभयथाप्यदोषः' इति मन्यमानस्य । यदि ते स्वस्मिन्नेव मते दोषस्ततस्तव प्रसिद्धिविरोध**दोषासक्तिर्ममाभिमतैव स्वत्प्रतिवादिनो** मम तु सर्वानन्यत्वापादनमभिमतमेव **भावपक्षवत्**, यथा भावविधिविधिनियमतेऽनन्तरातीते सर्वानन्यत्वमिष्टम्, एतस्योदाहरणमात्रत्वादुत्क्रमेण स्वभावकालनियतिपुरुषपक्षवच्च वक्ष्यमाणविधिनियमवच्च यथास्वमभिमता[६] एव । एवं तावत् परवाद्यभिप्रायवशात् स्वन्मते दोषासक्तिरिष्टा । न केवलं पराभिमतेरेव, किं तर्हि ? अपि च **स्वमतेऽपि** सर्वानन्यत्वम्, **सुखाद्यन्वयमात्रत्वात् सर्वस्य ननु घटः कटादनन्यः**, सुखदुःखमोहान्वितमेतद् बाह्याध्यात्मिकभेदरूपं जगदिच्छतस्ते त्रैगुण्यजात्यनुच्छेदेन सर्वं[७] सर्वात्मकमेव त्रैगुण्यान्वयानतिरेकात् **को हि सत्त्वाद्यतिरिक्तः ?** यदि सत्त्वरजस्तमोतिरिक्तं किञ्चित् स्यात् सर्वसर्वात्मकवादे दोषः स्यात्, न त्वस्ति, तस्मात् तवैवादोषः ।

---

१ °षाश्च य० ॥ २ वरणाद्यात्मकाः प्र० ॥ ३ दृश्यतां पृ० २०५-२ ॥ ४ किंवान्यत् भा० ॥ ५ घटःस्वात्मा प्र० ॥ ६ °ता व लीं० विना ॥ ७ सर्वसर्वा° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ सर्वतुल्यता कथं दोषः, स्वमतेन परमतेन? तव दोषासक्तिरभिमतैव त्वत्प्रतिवादिनः, भावपक्षवत्। स्वमतेऽपि सुखाद्यन्वयमात्रत्वात् सर्वस्य ननु घटः कटादनन्यः, को हि सत्त्वाद्यतिरिक्तः? सत्कार्यवादत्यागो वा तत्राभावात् समुदयक्षणिकशून्यवादापत्तेः। रूपादीनां चाप्यनेन न्यायेन अनन्यत्वात् प्रत्युदाहरणाभाव एव ते।

तथा नियमोऽप्यभिन्नः प्रकाशात्। प्रकाशस्वात्मत्वप्रतिलम्भ एव हि तन्नियमः प्रकाशानन्यता। [1]भिन्नात्मकतायां सत्त्वं सत्त्वमेव न स्यात् प्रकाशो वा प्रकाश एव, तथाऽनियतत्वात् अन्यथा प्रकाशनाभावात्, रजोवत् प्रवृत्तिवत्। मूलत एव

स्यान्मतम् – घटः कटे त्रिगुणोऽपि नास्तीति। ततश्च **सत्कार्यवादत्यागो वा तत्राभावात्**, यदि सत्त्वादिगुणे मृदादौ कटादिर्न स्यात् त्रिगुणोऽपि तथा घटोऽपि मा भूत्, अतोऽसन् घटः पश्चादुत्पन्नस्तत्र प्रागभूत इति असत्कार्यवादः सत्कार्यवादत्यागश्च प्राप्तः। किञ्चान्यत्, प्रकाशादिविविक्तस्वरूपगुणसमुदयाभ्युपगमाद् रूपादिस्कन्धसमुदयवाद एवायमपि देशभिन्नयुगपद्भाव्यनिर्देश्यगुणसमुदयमात्रत्वात्। क्षणिकवादश्च, अयुगपद्भाविपिण्डशिवकाद्यनिर्देश्यनिर्विकल्पार्थमात्रत्वात्। अत एव च शून्यवादापत्तिः, अनिर्देश्यस्वभावत्वात्, खपुष्पवत्।

रूपरसगन्धस्पर्शसङ्ख्यासंस्थानादीनां घटादिषु दृष्टानामन्यत्वाद् विपक्षोऽस्ति इत्याशङ्केथाः, तत्रापि **रूपादीनां चाप्यनेने**त्यादि यावत् **प्रत्युदाहरणाभाव एव ते**। रूपं रसादनन्यत् अगन्धाद्यात्मकत्वाद् २०५-२ रूपस्वरूपवदित्यादि प्रसिद्धिविरुद्धसिद्ध्यतिप्रसङ्गोऽपि, **ते**[2] **त्वत्प्रतिवादिनो दोषासक्तिरभिमतैवे**ति तदेव यावद् **भावपक्षव**दिति, पुनश्च **स्वमतेऽपि सुखाद्यन्वयमात्रत्वा**दित्यादि यावत् **समुदायक्षणिकशून्यवादापत्ते**रिति समानश्चर्चः।

एवं सुखादनन्यद् दुःखमित्येतद् भावितम्, 'तमोऽनन्यत्' इति भाव्यम्, तदपि यथा च प्रकाशादभिन्ना प्रवृत्ति**स्तथा नियमोऽप्यभिन्नः प्रकाशात्**। प्रकाशानतिरिक्तताप्रदर्शनार्थं नियमलक्षणमाह— **प्रकाशस्वात्मत्वप्रतिलम्भ एव हि तन्नियमः**[3], प्रकाशस्य स्वात्मा प्रकाशनमेव, तद्भावः प्रकाशस्वात्मत्वम्, तत्प्रतिलम्भ एव हि तदात्मलाभ एव हि तन्नियमः, रूपस्य रसस्य वा [4]प्रकाश्यस्वरूपव्यक्तिर्नियमः, न हि छिन्नाभ्रनभसीव निराश्रयः कश्चिन्नियमोऽस्ति? तत्पर्यायकथनं[5] **नियमः प्रकाशानन्यता** प्रकाशस्वरूपमात्रम्, एतन्नियमलक्षणं [6]निरुच्यते, नान्यः प्रकाशाद् भिन्नो नियम इति, तत्र दोषदर्शनात्। को दोष इति चेत्, उच्यते – **भिन्नात्मकतायां** प्रकाशाद् नियमस्य सत्त्वात् तमसश्च **सत्त्वं सत्त्वमेव न स्यात् प्रकाशो वा प्रकाश एव** न स्यादिति वर्तते, **तथाऽनियतत्वात्**, गुणान्तररूपापत्तिरहितस्य सत्त्वस्य प्रकाशस्य चागुणान्तरात्मनोऽगुणान्तरात्मापत्तिरहितत्वादित्यर्थः। शब्दो हि शब्दतया प्रकाशमानो रूपाद्यात्मव्यावृत्तस्वरूपेण नियत एव प्रकाशते, **अन्यथा प्रकाशनाभावाद्** व्यक्त्यभावादित्यर्थः। दृष्टान्तौ यथासङ्ख्यं **रजोवत्**

---

१ दृश्यतां पृ० २७० पं० ४। पृ० २८६ पं० १०॥ २ दृश्यतां पृ० २८० पं० ३, पृ० २८१ पं० १,२,३,४॥ ३ °त्मप्र° प्र०॥ ४ **प्रकाम्यस्वरू**° भा०। **प्रकाम्यस्यस्वरू**° य०॥ ५ **कथं नियमः** प्र०॥ ६ **निरुह्यते** भा०। **निरुह्य**(च्य?)**ते** य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तद्वा प्रकाश इति न स्यात्, अनियतत्वात्, [1]वन्ध्यापुत्रवत् [2]पुरुषवत् ।

ननु प्रकाशात्मकत्वादेव सत्त्वस्य अग्नेरिव कुड्यादिना तमसा नियम्यत्वमनन्यथावृत्तता । यद्यनियतोऽसावसंस्तर्हि अनियतत्वाद् वान्ध्येयवत् । एवं हि कार्यं कारणे सद् यदि तत् तत्र नियतमनन्यथावृत्ति, तत्र सन्निधिवर्ततेः सत्तार्थत्वात् ।

न, आधिक्येन अयतत्वात् । अधिको यमस्तमोनुग्रहादनन्यथाव्यक्तिरूपता ।

२०६-१ **प्रवृत्तिवत्**, यथा प्रकाशात्मना अनियतत्वाद् रजः सत्त्वं न भवति प्रवृत्तिश्च प्रकाशो न भवति तथा सत्त्वं सत्त्वं न स्यात् प्रकाशः प्रकाशो न स्यादिति । न केवलं गुणान्तररूपापत्तिरहितस्य स्वात्माप्रतिलम्भ एव, किं तर्हि ? **मूलत एव** सत्त्वमेव **तद्वा प्रकाश इति न स्या**दित्यस्तित्वमेव निराक्रियते, **अनियतत्वात्**, यदि तत् स्वत एवानियतं ततो नास्ति तत् सत्त्वं **वन्ध्यापुत्रवत्** न च तत् प्रकाशात्मकं **पुरुषव**दिति पूर्ववद् यथासङ्ख्यं दृष्टान्तौ ।

इतर आह – **नन्वित्यादि** याव**दनन्यथावृत्तता । नन्वि**त्यनुज्ञापने, प्रकाशात्मकत्वादेव प्रदीपवत् सत्त्वस्य सर्वतोदिग्गता[3]नियतप्रकाशस्य महदहङ्कारादिस्पर्शरूपादिपिण्डशिवका[4]दिपूर्वोत्तरव्यक्त्यभिमुखतायां सत्यां प्रकाशनस्य सति नियामके कु[5]ड्यादौ अग्नेरिव कुड्यादिना आवरणेन नियम्यत्वम्, नाव इव वा सर्वदिग्गमनरोधिना लम्बनपाषाणेन गुरु[6]णेव द्विधापि प्रदेशान्तरप्राप्तिरोधिना तमसा प्रकाशस्य दृ[7]ष्टनियम्यत्ववद् नियम्यत्वम्, तच्च अनन्यथाप्रवृत्तता, ए[8]वमेव ते प्रवर्तितव्यं नातोऽन्यथेति । दृष्टत्वाच्चानपह्नवनीयो भेदो नियम्यनियामकयोः । तस्मादन्यो नियमः प्रकाशादिति ।

अत्रोच्यते – **यद्यनियतोऽसावसंस्तर्हि** यदि स्वयमेवानियतः प्रकाशोऽसंस्तर्ह्यसौ **अनियतत्वाद् वान्ध्येयवत् । एवं ही**त्यादि एतस्यैव व्याख्यानमनिष्टापादनद्वारेण । **'कार्यं कारणेऽस्ति'** इत्येतद् दर्शनमेवमेव घटते **यदि तत् तत्र नियत**मिति, किमुक्तं भवति ? **अनन्यथावृत्ती**त्युक्तं भवति, यथा वर्तितव्यं तथैव वर्तते नान्यथा, स्वात्मनैव च वर्तते नान्येन केनचिद् वर्त्यते । तच्च अनन्यथा वृत्तिरस्य
२०६-२ तदिदमनन्यथावृत्ति कार्यं कारणे सदिति शक्यमभ्युपगन्तुम् । किं कारणम् ? **तत्र सन्निधिवर्ततेः सत्तार्थत्वात्**, तत्र कारणे सन्निध्यर्थो वर्ततिः सत्तार्थः 'स[9]न्निहितो वर्तते' इति, अ[10]स्ति-भवति-पद्यति-विद्यति-वर्ततयः सन्निपातषष्ठाः सत्तार्थाः [ ] इत्यत्र वर्ततेः सन्निधिभवनार्थवाचित्वाद् वर्तते नियतः सन्निहितोऽस्तीत्यर्थः ।

इतर आह – **न, आधिक्येन अयतत्वात्** । 'नि'शब्दस्याधिकार्थत्वादधिको यमो नियमः सोऽत्र विवक्षितः, न सन्निधिमात्रवृत्तिः । कोऽसाव**धिको यमः ? तमोऽनुग्रहाद्** यः, स चा[11]**नन्यथाव्यक्तिरूपता,** तमसानुगृहीतस्य सत्त्वस्य शब्दादिरूपेण रूपान्तरनिवृत्त्यानन्यथावृत्तिरूपता 'शब्दोऽयं न रसो न

---

१ दृश्यतां पृ० २७१ पं० १,२ ॥ २ दृश्यतां पृ० २७० पं० ४ ॥ ३ °**दियतानि**° प्र० ॥ ४ °**कापू**° प्र० ॥ ५ **कुट्या**° प्र० ॥ ६ °**णेच** भा० ॥ ७ **दष्टि**° य० ॥ ८ °**मेते** य० । (°मेव तेन ?) ॥ ९ **सन्नियतो** प्र० ॥ १० दृश्यतां पृ० ३४ पं० २० ॥ ११ **चनन्यथाव्यक्तिरूपता** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न[1], तमसोऽपि सत्त्ववत् पृथगपरिसमाप्तरूपत्वात्, तमसोऽपि हि तथा प्रकाशनं व्यक्तिरिति प्रकाशात्मकसत्त्वानुग्रहाद् भवति, अनियतं च कथमन्यनियमने प्रवर्तेत? इत्यादिः पूर्ववद् ग्रन्थो यावद् 'न, परिणामस्य तत्रैवोक्तत्वात्'।

प्रकाशात्मैव तु नियमः। इतरथा स प्रकाशो न सः, तथाऽनियतत्वात् तथाऽभूतत्वात्, घटपुरुषवद् घटपटवद्वा। य एव नियमः स एव प्रकाशः, तथानियतत्वात् तथाप्रवृत्तत्वात्, घटघटस्वात्मवत्।

रूपं नो[2]ऽनाकाशादिर्वा' इति। तस्मात् सत्त्वं तमोनुगृहीतं तथा प्रकाशते न स्वत एव तस्मादन्यः प्रकाशान्नियम इति। एतच्चासत्, **तमसोऽपि सत्त्ववत् पृथगपरिसमाप्तरूपत्वात्**, सत्त्वप्रकाशननियमने स्वयं सत्त्वप्रकाशनाकाङ्क्षित्वात् तमस्त्वन्मतेनापरिसमाप्तमेव तमोनियमनापेक्षप्रकाशात्मकसत्त्ववत्। तद्व्याख्यानं **तमसोऽपि ही**त्यादि, त[3]मः सत्त्वप्रकाशरूपव्यक्तिं सत्त्वप्रकाशनप्रतिलब्धतथानियतिं कुर्याद् नाप्रकाशिततथानियतिव्यक्ति। किं कारणम्? तस्य तथा व्यक्तेः सत्त्वप्रकाशनप्रतिलभ्यत्वात्। यस्मात् **तथा प्रकाशनं व्यक्तिरिति** 'इति'शब्दस्य हेत्वर्थत्वाद् नियमनयोग्यतया हि तमसः प्रकाशनं सत्त्वस्य व्यक्तिः, सा च **प्रकाशात्मकसत्त्वानुग्रहाद् भव[4]ति** नान्यथेति सत्त्वाप्रकाशिततमोनियमनापरिसमाप्तरूपत्वम्, प्रकाशा- २०७-१
ननुग्रहे सत्यनियतत्वात्। न च स्वयमनियतं नियमयितुमन्यं समर्थं वन्ध्यापुत्रवदित्यत आह– **अनियतं च कथमन्यनियमने प्र[5]वर्तेत? इत्यादि**रत उत्तरः प्रागतीतग्रन्थातिदेशः **एवं तु नानयो**रित्यादिपूर्वोत्तरपक्षप्रपञ्चात्मको **यावन्न परिणामस्य तत्रैवोक्तत्वा**दिति। तद्यथा– ए[6]वं तु नानयोरितरेतरानुग्राहिता, उत्थाप्यसाहायकशक्तित्वात्, वाताहतनौद्वयवद् ग्लानशिबिकावाहकवत्। असम्पूर्णशक्तिता वाऽप्रकर्षः अनियम इत्यर्थः, इति कारणतैव न स्यादसम्पूर्णशक्तित्वादुपहतबीजवत्। असदकरणादिभ्यश्चान्यतो न तत्स्वरूपप्रकर्षः। यदा च सुदूरमपि गत्वा प्रागवृत्तेरसत्कार्यत्वं मा भूदिति प्रकर्षः परिणामादेव तदा परिणामस्यान्यत्र वृत्तस्या[न्यत्रा]परिणामकत्वाद् युवत्वव[दात्म]मात्रवृत्तित्वमेव, नान्यत्र वृत्तोऽन्यदन्यथा करोति परिणामित्वात्। एवं तर्हि पूर्ववदुदाहरणादेवाप्रवृत्त्यात्मकत्वं सुखस्य[7] नियतरूपे[8]णाप्रवृत्त्यात्मकत्वमित्यर्थः, को हि विशेषस्तमःप्रवर्तनादृते क्षीरदधिपरिणामकालवत् पूर्वं न प्रवृत्तं पश्चाच्च प्रवृत्तमिति? न, परिणामस्य तत्रैवोक्तत्वादित्येष ग्रन्थः समानोऽत्रापि।

अत उत्तरस्तु ग्रन्थोऽर्थतः समानगमनिकोऽपि विशेष्य लिख्यते भावनार्थं विशेषणातुल्यत्वात्, तद्यथा– **प्रकाशात्मैव तु नियमः इतरथा स प्रकाशो न सः, तथाऽनियतत्वात्, तथाऽभूतत्वा**दित्यस्यैवार्थकथनं प्राक्तनव्याख्यानवत्। रूपादिस्वरूपनियतार्थप्रकाशनात् प्रकाशः [प्रकाशः] स्याद् नान्यथेति, त्वन्मतेन **घटपुरुषवत्**, यत् तथा अनियतं तन्न प्रकाशः, यथा घटः पुरुषे न नियतो घटे च पुरुषः, २०७-२
यो यः प्रकाशः स तथानियत एव यथा रूपरसादि। लोकप्रतीतोदाहरणमेव **घटपटवद्वे**ति। एवं तावत्, प्रका-

---

१ दृश्यतां पृ० २७१ पं० १–पृ० २७३ पं० ५॥ २ **नाकाशा°** भा०। शब्दस्य आकाशगुणत्वात् 'नाऽनाकाशादिर्वा' इति य० प्रतिपाठः समीचीनोऽत्र भाति॥ ३ **तमासत्व°** भा०। **तमसोसत्व°** य०॥ ४ **°ति सत्वा°** य०॥ ५ **प्रवर्तेतेत्यादि°** प्र०॥ ६ दृश्यतां पृ० २७२ पं० १॥ ७ **°स्यानिय°** प्र०॥ ८ **°णात्मप्र°** य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नि[1]यम्यनियामकत्वाद् नौलम्बनपाषाणवन्नेति चेत्, न, तदात्मन एव तथानियतत्वात् सन्निधिमात्रात् पूर्ववदनियमनात्। य एवासौ सत्त्वस्यात्मा प्रकाशः स नियामकः, तथानियमविधेः, इतरकर्तृवत्, तमोनियमात्मरूपापादनादितरतथा-

---

शस्य रूपान्तरनिवृत्तिरूपं नियममन्तरेण प्रकाशनाभावप्रदर्शनाद् नियमात्मकत्वमुक्तम्, इदानीं **य एव नियमः स एव प्रकाश** इति तयोरनन्यत्वापादनम्, **तथानियतत्वात्** तेन प्रकारेण नियतत्वात् [2]रूपप्रकाशनरूपेण रसाद्यात्मनिवृत्त्या प्रकाशस्य नियतत्वात्, **तथाप्रवृत्तत्वा**दित्यस्यैवार्थकथनं वृत्तिनियतिव्यक्तीनामैकार्थ्यात्, **घटघटस्वात्मवत्**, यत् तथानियतं यत् तथावृत्तं यत् तथाव्यक्तं तदेव तत्, यथा घट एव घटस्वात्मा। यत् पुनस्तदेव न भवति न तत् तथानियतं तथावृत्तं तथाव्यक्तं वा, यथा पुरुषः।

नियम्यनियामकत्वाद् [3]*नौलम्बनपाषाणवन्नेति चेत्। स्यान्मतम्—नियम्यं प्रकाशतत्त्वं सत्त्वम्, तमो नियामकम्। तस्माद् नियम्यनियामकत्वभेदाद् नैकत्वं सत्त्वतमसोः* नौलम्बनपाषाणवत्, यथा नौः प्रवर्तमाना नियम्यते लम्बनपाषाणेन नियामकेन, तयोश्चान्यत्वमेवं सत्त्वतमसोरिति। एतच्च **न, तदात्मन एव तथानियतत्वात्**, तस्यैवात्मा स एव वात्मा तदात्मा, तस्यैव प्रकाशात्मनो नियतत्वात्, तस्मादेव तेनैव वात्मना प्रकाशात्मन एव नियतत्वा[4]त्, सत्त्वतमसोर्भेदाभावाद् नौलम्बनपाषाणवद् भेदसाधर्म्याभावादयुक्तो दृष्टान्त इति वक्ष्यते। तद्व्याख्यानार्थमाह—**सन्निधिमात्रात् पूर्ववदनियमनात्**,
२०८-१ इह तमः सन्निहितमपि प्राक् सन्निधिमात्रादेवानियामकं स्वयमनियतत्वात् सत्त्वाधीननियतित्वात्, किन्तु नियम्यमनियमात्, कस्तर्हि नियामकः? उच्यते—**य एवासौ सत्त्वस्यात्मा प्रकाशः स नियामकः।** कथमिति चेत्, उच्यते—यस्मात् **तथानियम्यव्यक्तिस्वरूपः**, तेन प्रकारेण शब्दादिनि[5]यतिनियम्यव्यञ्जनस्वरूपः स एव प्रकाश एव। कुतः? **तथानियमविधेः**, तेन हि प्रकारेण नियमस्य विधिः शब्दस्वरूपेण प्रकाशमानस्य शब्दस्य रूपाद्यनात्[6]मना नियता प्रकाशमानता नियमविधिः, तस्माद्धेतोः प्रकाश एव नियमः। दृष्टान्त **इतरकर्तृवत्** कुम्भकारादिवत्, यथा मृद्द्रव्यं पिण्डशिवकादिभावेनाभिव्यज्यमानं तथा तथा प्रकाशयता कर्त्रा कुम्भकारेण नियमकारिणा निर्वर्त्यते नियम्यते नियते रूपेऽवस्थाप्यते नाप्रकाशमानमप्रवर्तमानं च सत्कार्यवादाभ्युपगमादसदकरणादिहेतुसामर्थ्याच्च, तस्मात् स कर्ता प्रकाशस्थानीयो नियामकः पिण्डशिवकादेर्नि[7]यम्यस्य तथा प्रकाशस्तमसः। कुतः? **तमोनियमात्मरूपापादनात्**, सत्त्वेनैव हि तथा तथा प्रकाशमानेन तमसो नियमरूपमापाद्यते मृद इव तथा प्रकाशयता कर्त्रा कुम्भकारेण तदात्मलाभहेतुत्वात्। ततस्त्वदभिमतनियामकत्वविपर्ययापत्तिः, तमसो नियम्यत्वात् सत्त्वाधीननियतित्वात् सत्त्वस्यैव नियामकत्वात् पक्षधर्मविपरीतता सत्त्वापाद्यनियमात्मरूपता प्रसक्ता, सत्त्वाप्रकाशिते नियमाभावात्। सत्त्वापादितं हि तमसो नियमात्मरूपम्, तस्मात् तमोनियमात्मरूपापादनात् सत्त्वं नियामकम्, **इतरतथारूपापादनात् तमोवत्।**

---

१ द्रष्टव्यतां पृ० २७३ पं० ६–पृ० २७४ पं० १॥ २ **रूपरसप्र**° य०॥ ३ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य०प्रतिषु नास्ति॥ ४ °**त्वात्मकत्वतमसो**° प्र०॥ ५ °**नियतितंनियम्य**° य०। °**नियतियम्य**° भा०॥ ६ °**त्माना** प्र०। (°त्मनो?)॥ ७ °**यमस्य** प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपापादनात्[१] तमोवत् । तमोऽपि हि इतर[तथा]स्वरूपापादनादृते किमन्यत् करोति ?

एवं च नौवत् तम एवापद्यते तथा प्रकाशस्य नियम्यत्वात् तथाप्रकाशानतिरिक्ततत्त्वरूपत्वाद्वा नियमस्य कुतोऽनौलम्बनपाषाणभेदसाधर्म्यम्? भेदे लम्बनपाषाणो नावं निरुणद्धीति युज्यते, न तु तथाप्रकाशातिरिक्ततत्त्वरूपो मोहो नियामकोऽस्ति ।

न तद्रूपत्वमतद्वृत्तित्वादिति चेत्, न, तमःस्वनियमवत् तदात्मन एव नियतत्वात्। अन्यथा सत्त्वं सत्त्वमेव न स्यादित्युक्तत्वादन्यथा तु नियत्यभावात् ।

तमोऽपि हि इत्यादि, तमसोऽपि हि नियामकत्वमेवमेव युज्यते त्वन्मते यदीतरयोः सत्त्वरजसोरात्मरूपापादनं कुर्यात्, अन्यथा **इतर[तथा]स्वरूपापादनादृते** तमः **किमन्यत् करोति ?** तयोर्हि सत्त्वरजसो- २०८-२
रात्मरूपापादनमेवं[२], आत्मरूपमापाद्य[३]न्नियामकमित्युच्यते । यथा तमः पूर्वं[४] प्रकाशप्रवृत्त्यात्मभ्यामनियतयोः सत्त्वरजसोस्तथानियमनाद् नियामकमेवं सत्त्वमपीतरतथानियमात्मरूपापादनाद् नियामकमस्तु, को दोषः ?

एवं च नौवत् तम एवापद्यते । एवं च सत्त्वस्यैवोक्तविधिना नियामकत्वाद् नौस्थानीयं नियम्यं तम एव स्यात्, न नियामकम् । लम्बनपाषाणस्थानीयं सत्त्वमेव नियामकम्, न नियम्यं स्यात् । किं कारणम् ? **तथा[५] प्रकाशस्य नियम्यत्वात्,** यस्मात् तेनोक्तप्रकारेण प्रकाशेन नियम्यत्वं मोहस्य तस्मात् तमसः सत्त्वेन नियम्यत्वादित्यर्थः । तस्मात् प्रकाशाप्रकाशिते तमसो नियत्यभावात् तमसः प्रकाशेन तथा नियम्यत्वात् तदात्मन एव तथानियतत्वादिति साधूक्तम्। एवं तावत् सत्त्वतमसोर्भेदमभ्युपेत्य विपर्ययापत्त्या नियम्यनियामकत्वादित्यस्य हेतोरसिद्धिरुक्ता । नैव वा सत्त्वव्यतिरिक्तं तमोऽभ्युपेम इत्यत आह – **तथाप्रकाशानतिरिक्ततत्त्वरूपत्वाद् वा नियमस्य** शब्दप्रकारेणाऽरूपादिप्रकारेण च यः प्रकाशस्तदनतिरिक्ततत्त्वरूपत्वान्नियमस्याभिव्यक्तेः **कुतोऽनौलम्बनपाषाणभेदसाधर्म्यम् ?** न नौरनौः, कः ? लम्बनपाषाणः, तस्य नावो भेदः, तत्साधर्म्यमनौलम्बनपाषाणभेदसाधर्म्यम्, तत्तु कुतः सत्त्वतमसोर्भेदसाधर्म्यम् ? भेदाभावादित्यर्थः । ततो दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोः साधर्म्याभावादयुक्तमिति वैषम्यं दर्शयति – **भेदे** सति **लम्बनपाषाणो** नौविलक्षणो **नावं** प्रवर्तमानां **निरुणद्धीति युज्यते । न तु तथाप्रकाशातिरिक्ततत्त्वरूपो** २०९-१
मोहो नियामकोऽस्ति एतयोः शब्दाद्याविर्भावमात्रफलत्वात्, अतो न युज्यते ।

न तद्रूपत्वमतद्वृत्तित्वादिति चेत् । स्यान्मतम् – प्रकाशनमात्रं सत्त्वस्य वृत्तिर्नियमनं तु तमसः, तस्मात् सत्त्वस्यानियमनादतद्वृत्तित्वाद् वृत्तिभेदाच्च न नियमनं सत्त्वस्य तमसश्च न प्रकाशनमित्यस्ति भेद इति । एतच्च **न, तमःस्वनियमवत् तदात्मन एव नियतत्वात्,** यथा तमसः स्वो नियमः प्रागवृत्तः पश्चात् स्वत एव तमःस्वात्मनः प्रवर्तमानस्तमसा विना अभूतत्वात् तदत्यागेन वृत्तेस्तदधीनत्वात् तद्रूप एवं तदात्मन एव प्रवृत्तत्वात् तथा सत्त्वप्रकाश[६]प्रवृत्त्यनतिरिक्ततत्त्वरूपस्तमोनियमः सत्त्वाव्यतिरिक्तः प्रकाशा-

---

१ दृश्यतां पृ० २७४ पं० १ – पृ० २७५ पं० ४ ॥ २ 'करोति' इति वाक्यशेषः ॥ ३ °**दन्निया**° प्र० ॥
४ दृश्यतां पृ० २७४ टि० ९ ॥ ५ दृश्यतां पृ० २८४ पं० १ ॥ ६ °**शवृत्त्य**° भा० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

[1]स्यान्मतम्—प्रकर्षेण काशनं प्रकाशनं.........प्रवृत्तिवत्। न, सत्त्वस्यापि तमोवदपरिसमाप्तरूपत्वात्...... नियामकाभावस्य चाप[2]र्याप्तत्वेनोक्तत्वात्।

एवं चैक एव विनिद्रावस्थापुरुषत्ववद् नियमः प्रधानमिति तन्मात्रमेव तत्, नियमापत्तिरूपनिरूप्यत्वात्, नियमस्वात्मवदित्यादि भङ्गचक्रावर्तनं [3]नियमस्वात्मैव वा त्रीण्यपीति पुरुषावस्थावद् यावत् [4]सुखादनन्यद् दुःखमिति। अत्र तु सुखादनन्य एव मोहः, अनात्मत्वेऽशोषाद्यात्मकत्वात्, सुखस्वात्मवदित्यादि साक्षेपपरिहारं पूर्ववत् प्रवृत्तिस्थाने नियमं कृत्वा।

न चापीदमेकत एव तत्त्वम्। सामान्यविशेषभावात् स्यादेकत एव तत्त्वम्।

धीनत्वात् तदविनाभावात् तदपरित्यागेन प्रवृत्तेस्तदात्मन एव प्रवृत्तत्वादिति। किञ्चान्यत्, **अन्यथा सत्त्वमित्यादि**, यदि स्वत एव नियमो न स्यात् ततोऽन्यथा स[5]र्वं सत्त्वमेव प्रकाशो वा प्रकाश एव न स्यात् तथाऽनियतत्वाद् रजोवत् प्रवृत्तिवत्। मूलत एव तद्वा प्रकाश इति न स्यादनियतत्वाद् वन्ध्यापुत्रवत् पुरुषवदित्युक्तत्वादिति तथा। **अन्यथा तु नियत्यभावात्**, प्रकाशाप्रकाशिते तमसो नियत्यभावादनियतस्य चाभावात् प्रकाश एव नियम इति।

स्यान्मतम्—प्रकर्षेण काशनं प्रकाशनमित्यादि यावत् **प्रवृत्तिव**दिति प्रासङ्गिकं तदेव चोद्यम्, तत्रोत्तरमपि **सत्त्वस्यापि तमोवदपरिसमाप्तरूपत्वा**दित्यादि अक्षरविपर्यासेन यथायोगाक्षरोपन्यासं यावत्
२०९-२ उत्थाप्यसाहायकशक्तित्वाद् वाताहतनौद्वयवद् ग्लानशिबिकावाहकवद् यावच्च उपहतबीजवदिति वाच्यम्, तस्मादिदं व्याख्यातार्थम्—**नियामकाभावस्य चापर्याप्तत्वेनोक्तत्वात्।**

एवं चैक एव विनिद्रावस्थापुरुषत्ववदित्यादि यावद् **भङ्गचक्रावर्तन**मिति प्रागुक्तं भङ्गच[6]क्रमावर्त्य व्याख्येयमिति तदेवातिदिशति समानत्वात्। तत्र तु प्र[7]वृत्तिरेव प्रधानं प्रवृत्त्यापत्तिरूपनिरूप्यत्वात् प्रवृत्तिस्वात्मवदिति प्रवृत्तिमात्रत्वे प्रधानभङ्गचक्रमावर्तितम्, इह तु प्रवृत्तिस्थाने नियमं कृत्वा प्रधानस्थाने प्रधानमेव च कृत्वा भङ्गचक्रावर्तनं तद्वदेव कार्यम्। पुनश्च **नि[8]यमस्वात्मैव वा त्रीण्यपीति पुरुषावस्थावद्** भङ्गचक्रावर्तनं द्वितीयं लिखितं यथा तथात्र प्रवृत्तित्रैगुण्यवद् नियमत्रैगुण्यं लिखितं द्रष्टव्यमिति। भङ्गग्रन्थपरिवृत्तिपरिमाणमप्याह—**यावत् सुखादनन्यद् दुःख**मितीयद्दूरम्। अत्र तु विशेषः **सुखादनन्यो मोह** इति प्रतिज्ञा, हेतुः—**अनात्मत्वेऽशोषाद्यात्मकत्वा**दिति, दृष्टान्तः **सुखस्वात्म**वदिति। **इत्यादि साक्षेपपरिहारं पूर्ववदि**ति [9]अवधारणेन चोक्तसाधनान्तरापक्षितान्यत्वो विपक्षाभावः सूच्यत इत्यादिसर्वातीतव्याख्यानप्रपञ्चातिदेशः। तद्व्याख्यानोपायदिङ्मात्रप्रदर्शनं चैतत्—**प्रवृत्तिस्थाने नियमं कृत्वे**ति।

न चा[10]पीदमेकत एव तत्त्वमित्यादीत्युत्तरस्य विकल्पोत्थापनग्रन्थस्य सम्बन्धः। सुखतो दुःखमोहयो[11]रनन्यत्वं तत्त्वमुक्तम्, तत्त्वनेकतः। **सामान्यविशेषभावात्** सामान्यविशेषभेदभावात्, यथा वृक्ष इति सामान्यं कदम्ब इति विशेषः, यथात्र कदम्बो नियमाद् वृक्षः, वृक्षस्तु स्यात् कदम्बोऽन्यो [12]वेत्येकतस्तत्त्वं

---

१ दृश्यतां पृ० २७५ पं० ५–२७६ पं० १ ॥ २ दृश्यतां पृ० २७८ पं० १ ॥ ३ दृश्यतां पृ० २७८ पं० १६ ॥ ४ पृ० २८१ पं० ७ ॥ ५ वा° प्र० ॥ ६ °चंद्रक्रमा° य० ॥ ७ दृश्यतां पृ० २७१ पं० ७ ॥ ८ दृश्यतां पृ० २७६ पं० १ ॥ ९ दृश्यतां पृ० २७८ पं० २ ॥ १० वापी° प्र० ॥ ११ °रन्यत्वं प्र० ॥ १२ वेत्यनेकत° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तूभयतोऽनन्यत्वादभिन्नत्वादेकत्वात् .... सन्निहितापत्तिभवनसत्तार्थत्वमयथार्थं स्यात् ...... ।

एवं त्वनभ्युपगमे इदं निरूप्यम्—'अस्ति प्रधानं भेदानां कार्यकारणभावात् । एतत् कथं निरूप्यते? इति अनेकात्मकत्वकारणकल्पना असद्वाद एव, सम्भाव्यविकल्पानुपपन्नार्थत्वात्, तदुक्तसत्यत्वानुपपन्नार्थसर्वोक्तानृतत्वपक्षवत् ।

तथा यदि सामान्यविशेषभावः स्यात् **स्यादेकत एव तत्त्वम्**, न तु तथेह सुखदुःखमोहानां सामान्य- २१०-१
विशेषभावोऽस्तीति । **किन्तूभयतोऽनन्यत्वादभिन्नत्वादेकत्वा**दित्यादिना सत्त्वरजस्तमसामेकत्वापादनार्थः[1] पूर्ववत् सर्व एव प्रक्रमभेदैः स एव तथैव ग्रन्थः प्रवृत्त्या प्रकाशविशेषितया मोहविशेषितया [च] नेयः, तथा च **भाष्य** एव सुलिखितत्वान्न विव्रियते । **सन्निहितापत्तिभवनसत्तार्थत्वमयथार्थं स्या**दित्यत्र तु विशेषः, आपत्तिभवनं सन्निधिभवनाविनाभावे युज्यते, नान्यथा, यदि तद्रूपादि बीजे न सन्निहितं ततोऽङ्कुरस्यासत्त्वाद्यापत्तिः स्यात्, सत् कार्यं[2] कारणे चेति द्वैविध्यं च भवनस्यैवमेव युज्येत आपत्त्यनापत्तिभेदादिति, शेषं पूर्ववत् । सत्त्वेन तमसा च सह भावनायां कृतायां पुनश्च तथैव तमसोऽपि सत्त्वेन रजसा तद्वदेव भावनाग्रन्थो निरवशेषो लिखित **आचार्ये**णैवेति न विवृण्महे, स एवानुसर्तव्यः । सर्वत्र च भेदचोद्येषु **[3]प्रवर्त्यप्रवर्तकत्वात् पल्लवपवनवन्नेति चेत्, न, तदात्मन एवे**त्यादि तदेव सत्त्वरजःसंयोगेऽपि, **प्रकाशार्थिप्रकाशभेदाद् नर्तकीनर्तकाचार्यवन्नेति चेत्, न, तदात्मन एवे**त्यादि सत्त्वरजः संयोगे [4]*सत्त्वतमःसंयोगे च, **[[5]नियम्यनियामकत्वाद्] नौलम्बनपाषाणवन्नेति चेत्, न, तदात्मन एवे**त्यादि सत्त्वतमःसंयोगे* रजस्तमःसंयोगे च तत्र प्रकाशनप्रवर्तननियमनवचनानि च यथोपपत्ति योज्यानि । **कुतोऽपल्लवपवनभेदसाधर्म्यम्, कुतोऽनर्तकीनर्तकाचार्यभेदसाधर्म्यम्, कुतोऽनौलम्बनपाषाणभेदसाधर्म्यम्?** २१०-२
इति चोद्यनयेषु द्वयं द्वयं द्वयोर्द्वयोर्गुणयोः सम्भवित्वाच्चोदयित्वा परिहार्यमिति । एवं तावत् सुखदुःखमोहानां प्रकाशप्रवृत्तिनियमात्मकानामनन्यत्वात् '[6]एकात्मकैककारणपूर्वकत्वम्' इति साध्वभ्यधामेति ।

[7]एवं त्वनभ्युपगम इदं निरूप्यमित्यादि । [8]एवमेकात्मकैककारणानभ्युपगमे साङ्ख्यैरिदं निरूप्यम्, कतमत्? यत् तद् भिन्नात्मकत्वं परिगृह्य प्रयुक्ते कार्यकारणवीतेऽभिहितम्—**अस्ति प्रधानं भेदानां कार्यकारणभावात्**, आध्यात्मिकानां बाह्यानां च भेदानां कार्यकारणभावो दृष्टः, आध्यात्मिकानां कार्यात्मकानां [9]वक्ष्यामः सत्त्वरजस्तमांसि त्रीणि शब्दाद्यात्मभिर्व्यवतिष्ठमानानि परस्परार्थं कुर्वन्तीत्येवमादि, **एतत् कथं निरूप्यते?** वक्ष्यमाणेषु विचारविकल्पेषु यथा यथोच्यते तथा तथानुपपत्तिरेवेति 'इति'-शब्दहेत्वर्थत्वाद् निरूपणाभाव एवेत्यभिप्रायः । तद्विचारोद्देशार्थं साधनमाह—**अनेकात्मकत्वकारणकल्पना असद्वाद एव सम्भाव्यविकल्पानुपपन्नार्थत्वात्**, अनुपपन्नसम्भाव्यविकल्पार्थत्वादित्यर्थः, येऽत्र सम्भाव्यन्ते विकल्पास्तेऽनुपपन्नार्था इति वक्ष्यति, तस्मादयमसद्वाद एव । दृष्टान्तः—**तदुक्तसत्यत्वानुपपन्नार्थसर्वोक्तानृतत्वपक्षवत्**, तेनैवोक्तस्तदुक्तः 'सर्वमनृतम्' इति पक्षः, स एवोक्तस्तदुक्तो वा । असौ सत्यश्चेद्

---

१ °**नार्थं पूर्ववत् सर्वमेव** प्र० ॥ २ **कारणं** वि० ॥ ३ दृश्यतां पृ० २७३ पं० ६ ॥ ४ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ५ दृश्यतां पृ० २८४ पं० १ ॥ ६ दृश्यतां पृ० २७७ पं० १ ॥ ७ **एवं त्वऽन**- य० । **एवं चन**° भा० ॥ ८ °**मेकैकात्म**° य० ॥ ९ दृश्यतां पृ० २८८ पं० १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदुच्यते सत्त्वरजस्तमांसि त्रीणि शब्दाद्यात्मभिर्व्यवतिष्ठमानानि परस्परार्थं कुर्वन्ति, सत्त्वं शब्दकार्यं प्रख्याय शब्दात्मना व्यवतिष्ठमानं रजस्तमसोः शब्दात्मभावाय प्रवृत्तिं ख्यापयति । अत्र प्रकाशात्मकेन सत्त्वेन प्रकाशात्मकयोरेव रजस्तमसोः शब्दात्मना व्यवतिष्ठमानेन शब्दात्मभावाय प्रवृत्तिर्व्यक्तिः प्रख्याप्यते, उताप्रकाशात्मकयोः? यद्यप्रकाशात्मके रजस्तमसी शब्दात्मभावाय प्रख्याप्येते ततः सत्त्वं पुरुषस्यापि तर्हि शब्दात्मभावाय प्रवृत्तिं प्रख्यापयिष्यति शब्दत्वायैनं प्रवर्तयिष्यति, अप्रकाशात्मकेन तेनापि शब्दभावाय प्रवर्तितव्यं प्रकाशकारकोपपत्तेः रजस्तमोभ्यामिव ।

न तर्हि सर्वमुक्तमनृतम्, अस्य सत्यत्वात् सर्वोक्तान्तःपातित्वाच्च,[3] अथासत्यमिदं न तर्हि सर्वस्योक्तस्यानृतत्वमनेनानृतेन प्रतिपाद्यतेऽस्यानृतस्याप्रमाणत्वादित्युभयथाप्यसद्वादस्तृतीयविकल्पाभावाच्च तथेयमपि 'त्रिगुण-
२११-१ मेकं कारणम्' इत्यनेकात्मकैककारणकल्पना असद्वाद इति ।

तत् पुनः कतमद् वचनम्? इति तत् प्रदर्शयन्नाह—**यदुच्यते सत्त्वरजस्तमांसी**त्युद्देशवाक्यं यावत् **परस्परार्थं कुर्वन्ती**ति, निर्देशवाक्यं च **सत्त्वं शब्दकार्य**मित्यादि यावत् **प्रवृत्तिं प्रख्यापयती**ति एतदसद्वादधर्मेण पक्षीकृतं वाक्यम् । अत्र च द्वयं सम्भाव्यते तृतीयाभावात्, तद्दर्शयति—**प्रकाशात्मकेने**त्यादि यावत् **प्रख्याप्यत** इत्ययमेको विकल्पः । सत्त्वं प्रकाशात्मकं सत् तदात्म**कयोरेव रजस्तमसोः** शब्दात्मना व्यवस्थाऽनेनेति स्वयं शब्दात्मना व्यवतिष्ठमानं तेनात्मनोपकुर्वत् तयोः **शब्दात्मभावाय** [प्रवृत्तिं प्रख्यापयति,] **प्रवृत्तिः प्रख्याप्यते** । का सा प्रवृत्तिः? **व्यक्ति**रित्यर्थकथनम् । 'प्रवृत्तिं प्रख्यापयति' इत्येतदेव स्फुटीकर्तुकामः **प्रवृत्तिः प्रख्याप्यते** इति विभक्तिविपर्यासेन विवृणोति आख्यातेनाभिहितकर्मकत्वात् प्रथमया । एष प्रथमः प्रश्नविकल्पः । द्वितीयस्तु **उताप्रकाशात्मकयो**रिति रजस्तमसोरप्रकाशात्मकयोर्वा तत् सत्त्वं शब्दकार्यं प्रख्याय शब्दात्मना व्यवतिष्ठमानं शब्दात्मभावाय प्रवृत्तिं ख्यापयति? इति प्रश्नः । प्रकाशात्मकयोरित्येष विकल्पो न घटत एव, सत्त्वरजस्तमसां जात्यन्तरत्वाभ्युपगमात् प्रकाशप्रवृत्तिनियमकार्यत्वभेदात् सुखदुःखमोहात्मकभेदाच्च[4] रजस्तमसी न प्रकाशात्मके इति ।

२११-२ अत्रोच्यते—**यद्यप्रकाशे**त्यादि यावद् **रजस्तमसी इ**वेति । **यद्यप्रकाशात्मके रजस्तमसी शब्दात्मभावाय प्रख्याप्येते** ततस्तद्वत् **सत्त्वं पुरुषस्यापि तर्हि शब्दात्मभावाय प्रवृत्तिं प्रख्यापयिष्यति,** तदर्थविवरणम्—**शब्दत्वायैनं प्रवर्तयिष्यति,** शब्दत्वपरिणामेनैनं परिणमयिष्यतीत्यर्थः । सत्त्वेन शब्दकार्यप्रख्यातिना शब्दात्मना व्यवतिष्ठमानेन पुरुषः शब्दात्मभावाय प्रवर्त्यतेऽभिव्यज्यते व्यवस्थाप्यते च, अप्रकाशात्मकत्वात्, यद् यदप्रकाशात्मकं तत् तत् सत्त्वेन शब्दकार्यप्रख्यातिना शब्दात्मना व्यवतिष्ठमानेन शब्दात्मभावाय प्रवर्त्यं व्यङ्ग्यं[5] व्यवस्थाप्यं च दृष्टं यथा रजस्तमश्च, विपक्षाभावाद् व्यावृत्तिर्वाच्या[6] । तत्साधनव्याख्यानद्वारेण साधनान्तरोपन्यासद्वारेण वा ग्रन्थः **अप्रकाशात्मकेने**त्यादिः[7] यावद्

---

१ दृश्यतां पृ० २८७ पं० २४ ॥ २ दृश्यतां पं० २०, पृ० २९० पं० २१, पृ० २९१ पं० ६ ॥ ३ **पूर्वोक्ता°** प्र० ॥ ४ **°त्मकत्वभेदाच्च** इत्यपि पाठोऽत्र स्यात् ॥ ५ **व्यंज्यं** य० । ज्यं भा० ॥ ६ **°वाच्यौ** प्र० ॥ ७ **°त्यादि** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथोच्येत – अप्रकाशत्वान्नैकान्तः शक्यते कर्तुम् । पुरुषः सत्त्वान्न प्रकाशते, अप्रकाशकत्वे सन्निहितप्रकाशकारकत्वात्, प्रदीपेनेव वियत् । रजस्तमसी च प्रकाश्येते, अप्रकाशकत्वात्, प्रदीपेनेव पृथिवी । पुरुषोऽप्रकाशः, रजस्तमसी च प्रकाशे ।

एवं तावद् विकल्पसमजातित्वादनुत्तरमेव । अपि च नैव वियतोऽप्रकाशकत्वम्, यस्माद् रूपादिपृथग्भूतपृथग्विपरिणतिषु पृथिव्यादिषु नाप्रकाशनं घटते बोध्य-

---

रजस्तमोभ्यामिवेति । अपिशब्दाद् रजस्तमोभ्यामपि **तेनापि च** पुरुषेणाप्रकाशात्मकेन **शब्दभावाय प्रवर्तितव्यं** प्रकाशितव्यं व्यवस्थातव्यमित्येते प्रवृत्तिप्रकाशनियमाः पुरुषकार्याः स्युः, स प्रवर्तते प्रकाशते व्यवतिष्ठते परिणमतीत्यर्थः । कुतः ? **प्रकाशकारकोपपत्तेः,** तस्याप्रकाशकत्वे सति उपपन्नप्रकाशकारकत्वादित्यर्थः । यद् यदप्रकाशकत्वे सत्युपपन्नप्रकाशकारकं तेन तेन शब्दभावाय प्रकाशितव्यं प्रवर्तितव्यं व्यवस्थातव्यं यथा रजसा तमसा च । अथवा रजस्तमश्च यथा प्रवर्तत इत्यादि यथाभिव्यक्तार्थानुरूपं व्याख्यातव्यमिति ।

एतस्य साधनस्यानैकान्तिकत्वोद्भावनार्थं साधनद्वारेण परमतमाशङ्क्याह, **अथोच्येत[1] – अप्रकाशत्वाद् नैकान्त** इत्यादि सोपसंहारहेतुकप्रकाशनाप्रकाशनसाधने यावत् **प्रकाशे** इति । **अप्रकाशत्वाद्[2]** २१२.१
नैकान्तः शक्यते कर्तुमिति, अयं हेतुर्न शक्य[3] ऐकान्तिकः कर्तुम्, यस्माच्छक्यते वक्तुमित्थमपि – **पुरुषः सत्त्वाद् न प्रकाशते** न व्यज्यत इति । कस्मात् ? **अप्रकाशकत्वे सन्निहितप्रकाशकारकत्वात्,** यदप्रकाशकत्वे सन्निहितप्रकाशकारकं तदप्रकाशमानं दृष्टम्, यथा **प्रदीपेनेव वियत् । रजस्तमसी च प्रकाश्येते[4] अप्रकाशकत्वात् प्रदीपेनेव पृथिवी**त्येतत् पूर्वेण साधनेन व्याख्यातार्थं सत् सन्निहितप्रकाशकारकत्वादिति न विशेष्यते । यथा च वियत्पृथिव्योरप्रकाशत्वसामान्ये सत्येव कारकसान्निध्येऽपि प्रकाशाप्रकाशौ दृष्टावेवं पुरुषस्याप्रकाशात्मकत्वेऽप्यप्रकाशतैव रजस्तमसोः सत्त्वस्य प्रकाशतैवेति विशेषोऽस्त्विति ।

अत्रोच्यते – **एवं तावद् [5]विकल्पसमजातित्वादनुत्तरमेव,** 'प्रयत्नानन्तरीयकत्वे सत्येव मूर्तामूर्तत्वादिविशेषवद् घटशब्दयोरनित्यो नित्यश्चेति विशेषः स्यात्' इति वचनवत् । किञ्चान्यत्, एत**दपि च नैव वियतोऽप्रकाशकत्वं** त्वन्मतेनैव शब्दात्मना प्रकाशमानत्वादस्ति । यदपि च रूपविषयाप्रकाशनं पृथिव्यादिष्वेतदपि च नैवाप्रकाशनं घटते **यस्माद् रूपादी**त्यादि याव**न्नाप्रकाशत्वे प्रकाशन**मिति । **यस्मा**दिति हेतुर्वक्ष्यमाणार्थः, **नाप्रकाशनं घटत** इति साध्यम्, रूपादिरिति रूपरसगन्धास्तेजोम्भोभूमिषु, तेभ्यः पृथग्भूतावाकाशानिलौ शब्दस्पर्शात्मकौ, रूपादिपृथग्भूताभ्यां ख-वाताभ्यां पृथग्भूता विपरिणतिर्येषां तेषु **रूपादिपृथग्भूत-पृथग्विपरिणतिषु पृथिव्यादिषु** पृथिव्यबादिषु तेजोरहितेषु विद्यमानः प्रकाशकत्वप्रकाशः स्वगतो[6] विपरि- २१२.२
णतस्तिरोभूतः, किन्तु प्रकाश्यप्रकाशोऽस्त्याविर्भूतत्वात्, अतस्तेषां प्रकाश्यतैव । कश्चिदत्यन्तमतिरोभूतत्वाद्

---

१ °च्येत । प्रका° भा० । °च्यते[ऽ?]प्रका° य० ॥ २ °शकत्वाद् भा० वि० ॥ ३ शक्यमैका प्र० ॥ ४ °श्यतेऽप्रका° प्र० ॥ ५ "साधनधर्मयुक्ते दृष्टान्ते धर्मान्तरविकल्पात् साध्यधर्मविकल्पं प्रसजतो विकल्पसमः । क्रियागुणहेतुकं किञ्चिद् यथा लोष्टः, किञ्चिच्च लघु यथा वायुः । एवं क्रियाहेतुगुणयुक्तं किञ्चित् क्रियावत् स्यात्, यथा लोष्टः, किञ्चिदक्रियम्, यथा आत्मा, विशेषो वा वाच्यः ।" इति न्यायभाष्ये ५।१।४ ॥ ६ स्वगतोतो वि° प्र० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

बोधकमनुष्यप्रकाश्यप्रकाशकत्ववत्। हेतुहेतुमत्त्वेऽपि तयोर्नाप्रकाशत्वे प्रकाशनम्।

वियत्पृथिवीविशेषोपपत्तिवच्च ते एव प्रवर्तेते न पुरुष इत्यस्तु नाम, प्रकाशात्मके तर्हि रजस्तमसी शब्दभावाय प्रवृत्तेः सत्त्ववत्, वैधर्म्येण पुरुषवत्।

असत्कार्यवादिता चातिस्फुटैव, सत्त्वे प्रवृत्तिनियमयोरभूतयोः शब्दात्मव्यवस्थानवचनादभ्युपगमात्, रजस्तमसोः प्रागसतो जात्यन्तरकार्यभूतस्य प्रकाशनस्या-

---

वज्रादिषु [1]*प्रकाशता च दृश्यत एव, तस्मात् खरपृथिव्यादिषु प्रकाशता स्वगतप्रकाशविपरिणामाद् विद्यमानप्रकाशकतैव **बोध्यबोधकमनुष्य*प्रकाश्यप्रकाशकत्ववत्**, ज्ञानस्वभाव एव हि मनुष्यः प्रकाशात्मा प्रकाश्यो बोध्यो बोधकश्च दृष्टः, न कुड्यादिरचेतनः, तथा पृथिव्यादयः। **मनुष्य**ग्रहणमस्यैव रथ्यापुरुषस्योदाहार्यत्वात्। स्यान्मतम् – बोधकबोध्ययोर्हेतुहेतुमद्भावान्नोभयोरुभयधर्मतेति दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकवैषम्यमिति। एतच्चायुक्तम्, यस्मा[2]द्धेतुहेतुमत्त्वेऽपि तयोः सूरिशिष्ययोर्द्वयोरपि प्रत्येकं **नाप्रकाशत्वे प्रकाशनमिति**। [3]तस्माद् वियत्पृथिव्योरपि प्रकाशकत्वसाम्याद् दृष्टान्ताभावे पुरुषस्य रजस्तमसोश्च विशेषापादनासिद्धिः। अथापि त्वदनुवृत्त्या वियत्पृथिवीविशेषोपपत्तिमभ्युपेमः पुरुषस्याप्रकाशकत्वे सति अप्रवर्तनादि रजस्तमसोश्च प्रवर्तनादि तथापि ते **वियत्पृथिवीविशेषोपपत्तिर्[4]वच्च ते एव प्रवर्तेते** रजस्तमसी **न पुरुष इत्यस्तु नाम,** नैवास्तीत्यभिप्रायः। किन्त्वयमन्यस्ते दोषोऽनिष्ट आपद्यते – **प्रकाशात्मके तर्हि रजस्तमसी,** सत्त्वविलक्षणे न भवत इत्यर्थः, कुतः? **शब्द[5]भावाय प्रवृत्तेः, सत्त्ववत्,** यच्छब्दभावाय प्रवर्तते तत् प्रकाशात्मकं
२१३-१ **दृष्टम्,** यथा सत्त्वम्, **वैधर्म्येण पुरुषव**दिति, यत् प्रकाशात्मकं न भवति न तच्छब्दात्मभावाय प्रवर्तते यथा तव पुरुष इति।

किञ्चान्यत्, – **असत्कार्यवा[6]दिता**ऽत्यन्तानिष्टा प्रसक्ता 'एवमनभ्युपगमे' इति वर्तते, सा चासत्कार्यवादिता**ऽतिस्फुटैव,** कथम्? **सत्त्वे प्रवृत्तिनियमयोरभूतयोः शब्दात्मव्यवस्थानवचनादभ्युपगमात्**, सत्त्वस्य कार्यं प्रकाश एवेष्टो न प्रवृत्तिनियमौ जात्यन्तरभूतरजस्तमस्कार्यत्वात्, तौ तत्रासन्तौ पुनस्तस्य कार्यावभ्युपगतौ, कुतः? **व्यवस्थानवचनात्** सत्त्वं शब्दकार्यं प्रख्याय शब्दात्मना व्यवतिष्ठमानमिति ब्रुवता**भ्युपगमा[9]**दितीति। तदा यदि तत् सत्त्वमप्रवृत्तमनियतं वा [8]पूर्ववदप्रवृत्तत्वादनियतत्वाच्च तयोस्तथारूपां शब्दात्मिकां प्रवृत्तिं न प्रख्यापयेद् नैव वा स्याद् वन्ध्यापुत्रवदित्युक्तत्वात् व्यवस्थानस्य च प्रकाशप्रवृत्तिनियमात्मकस्य प्रागसतः सत्त्वविषयस्यारम्भावस्थायां साम्यावस्थाविलक्षणायामभ्युपगतत्वादसतोः प्रवृत्तिनियमयोः सत्त्वाभ्युपगमादतिस्[11]फुटा। किञ्चान्यत्, **रजस्तमसो**रित्यादि यावत् **प्रकाशनस्याभ्युपगमा**दिति, असत्कार्यवादिताऽतिस्फुटैवेति वर्तते। तस्मिन्नेव सत्त्वप्रकाशात्मव्यवस्थानोपकार-

---

१ **प्रकाशकाशता** भा०। ** एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ २ °**द्धेतुमत्त्वेऽपि** प्र० ॥ ३ **तस्माच्च विय**° प्र० ॥ ४ °**वच्च त एव प्रवर्तेते** य०। °**वच्च एव प्रवर्तेते** भा० ॥ ५ °**ब्दाभा**° य० ॥ ६ °**दिनोत्यन्ता**° प्र० ॥ ७ **प्रवर्तते** प्र०। दृश्यतां पृ० २८७ पं० ३ ॥ ८ दृश्यतां पृ० २८८ पं० २, २० ॥ ९ अत्र °**दिति** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १० दृश्यतां पृ० २७० पं० ४, पृ० २८१ पं० ८ ॥ ११ °**स्फुटः** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भ्युपगमात्, पृथग्भूततत्त्वकारणाश्रयाभिव्यक्तेः वैशेषिकाभिमततन्त्वाश्रयपटवत्। तैर्यथास्वमकारणसद्भिः प्रकाशादिभिरारब्धं कार्यमपि भ्रान्तिमात्रम्, त्वदुक्तहेतुसामर्थ्यादेव तन्मयारब्धत्वादसदात्मकं हि तत् कार्पासिकतन्त्वारब्धपटकार्पासिकत्ववत्। तन्मयतन्मयं च असदात्मकं तन्मयतन्मयारब्धत्वात् कार्पासिकपटकुटेरपि कार्पासिकत्ववद् रूपादिसुखादिमयत्ववत्।

वाक्ये [1]रजस्तमसोः शब्दभावाय प्रवृत्तिं प्रख्यापयतीति वचनात् तयो रजसि तमसि च प्रागसतः प्रकाशस्य जात्यन्तरकार्यभूतस्य तदानीं प्रख्यापनादसतोऽभिव्यक्तिरुत्पत्तिर्वाभ्युपगता, यदि ते रजस्तमसी तथा प्रतिपद्येते व्यव[2]तिष्ठेते [3]प्रवर्तेते वा ततः सत्त्वेन प्रकाशितं [4]स्यात् आचार्येणेव नर्तक्याः प्रागप्रतिपन्नाया[5] अप्रवृत्ताया अव्यवतिष्ठमानायाः। तस्मात् प्रकाशोऽपि तयोः प्रागसन् पश्चाज्जात इत्यसत्कार्यवादिता। सेदानीं वैशेषिका- २१३-२ सत्कार्यवादितया तुल्येति भाव्यते—**पृथग्भूततत्त्वे**त्यादि, पृथग्भूतं तत्त्वमात्मा कार्यं तद्भावो यस्य स पृथग्भूततत्त्वो गुणः, स एवाश्रयः कारणं च, तस्मिंस्तस्मिन् गुणे सत्त्वे रजसि तमसि च वैशेषिककल्पितपटादिकार्यस्य च तन्त्वादिषु परस्परसंयोगापेक्षेष्वसतो भवनवत् प्रकाशप्रवृत्तिनियमानां कार्याणां सत्त्वे प्रवृत्तिनियमयोरसतोः प्रकाशनियमयोश्च [6]रजसि प्रवृत्तिप्रकाशयोश्च तमस्यसतां परस्परापेक्षप्रवृत्तिषु सत्त्वादिषूत्पत्तिर्भवनमुक्तं भवति। प्रागसन्तः प्रकाशप्रवृत्तिनियमाः शब्दाद्यारम्भकाल उत्पन्ना इति प्रति[7]पद्यस्व **पृथग्भूततत्त्व[8]कारणाश्रयाभि[9]व्यक्तेः वैशेषिकाभिततन्त्वाश्रयपटवत्।**

किञ्चान्यत्, **तैर्यथास्व**मित्यादि। वैशेषिकाभिमतकार्यादप्येतत् पापीयो भ्रान्तिमात्रत्वात्। उक्तन्यायेन ते सत्त्वादिषु प्रकाशादयः कारणेष्वसन्तः, **यथास्वम्** यो यः स्वो यथास्वम्, प्रकाशः सत्त्वे नास्ति इतरापेक्ष उत्पन्नः, एवमितरावपीति **तैरकारणसद्भिः प्रकाशादिभिरारब्धं** परस्पराश्रयणेन व्यक्तं प्रवृत्तं नियतं च यत् **कार्यं** त्रिगुणं शब्दादि तदप्यलातचक्रवद् **भ्रान्तिमात्रं** न परमार्थतोऽस्तीत्यापन्नम्, **त्वदुक्तहेतुसामर्थ्यादेव तन्मयारब्धत्वादसदात्मकं हि तत्,** त्वयैवोक्तं हि [10]यच्च यन्मयैरारब्धं तदात्मकं तदिति शब्दादीनां सुखाद्यात्मकत्वं शब्दाद्यारब्धानां भूतानां भूतारब्धानां च शरीरादिघटादीनाम्, तस्माद् वयमपि तथैव ब्रूमः—शब्दादि असदात्मकं तन्मयैरारब्धत्वात् **कार्पासिकतन्त्वारब्धपटकार्पासिकत्ववत्,** यथा कार्पासिकैस्तन्तुभिरारब्धः पटः कार्पासिक इत्युच्यते तथा शब्दाद्यसन्मयं २१४-१ तन्मयप्रकाशाद्यारब्धत्वादिति। **तन्मयतन्मयं चे**ति यदपि च भू[11]तादि शरीरादि घटादि सर्व**मसदात्मकं तन्मयतन्मयारब्धत्वात् कार्पासिकपटकुटेरपि कार्पासिकत्वव**दिति। तच्छास्त्रप्रसिद्धमेव वोदाहरणं **रूपादिसुखादिमयत्वव**दिति। शब्दस्यासन्मयत्वे साध्ये रूपादिसुखादिमयत्वमुदाहरणम्, रूपादीनामपि तथैवासन्मयत्वं शब्दादिसुखादिमयत्वदृष्टान्तेनापाद्यमिति।

---

१ दृश्यतां पृ० २८८ पं० २ ॥ २ °**तिष्ठते** प्र० ॥ ३ **प्रवर्तिते** भा०। **प्रवर्तते** य० ॥ ४ **तस्यात्** प्र०। अत्र **तत् स्यात्** इत्यपि पाठो भवेत्, **'तत्'** इति शब्देन च रजस्तमो वा ग्राह्यम् ॥ ५ °**याःऽप्र**° डे० लीं०। °**याऽप्र**° दं० ही०। °**याः प्र**° भा० पा० वि० ॥ ६ **रजसि प्रकाशयोश्च** प्र० ॥ ७ °**पद्यस्या** प्र० ॥ ८ °**करणा**° प्र० ॥ ९ °**व्यक्तैः** भा० ॥ १० दृश्यतां पृ० २६६ पं० २ ॥ ११ °**दि च** य० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अथोच्येत – एवमेव तत्कारणत्वं तत्र च शब्दादिकार्यसत्त्वम्, शुक्लरक्तकृष्णतन्त्वात्मिकाया रज्जोः कार्यायास्तन्तुकारणत्ववत् । नन्वेवं यथास्मदुक्तवद्वैकत्वं रजस्तमसी अपि सत्त्वमेव, प्रकाशकारणत्वात्, सत्त्वस्वात्मवत् । अथ त्वन्मतेन, सर्वव्यक्तव्यापि चासत्कार्यत्वं प्रतिगुणं प्रकाशाद्योर्द्वयोः कार्यात्मनोः प्रागभूतत्वात् । बौद्धवद्वा असत्कार्यत्वम्, तथाभूतवस्तुनिर्मूलोत्पत्तित्वात्, द्वितीयक्षणघटवत् ।

अथोच्येत – एवमेव तत्कारणत्वम्, तेषां सत्त्वादीनां कारणत्वमेवमेव युज्यते । **तत्र च** तेषु सत्त्वादिषु कारणेषु **शब्दादिकार्यसत्त्व**मेवमेव युज्यते प्रतिस्वं प्रकाशादिकार्याणां **शुक्लरक्तकृष्णतन्त्वात्मिकाया रज्जोः कार्यायास्तन्तुकारणत्ववत्**, यथा प्रत्येकं शुक्लादिगुणास्तन्तवस्त्रयोऽपि त्रिगुणामेकां रज्जुमारभमाणाः कारणत्वं नातिवर्तन्ते ततस्तेषु सत एव त्रैगुण्यस्याविर्भावाद् रज्जोः सत्कार्यत्वं तथा सत्त्वादिकारणत्वं शब्दादिसत्कार्यता चेति ।

अत्रोच्यते – **नन्वेव**मित्यादि यावत् **सत्त्वस्वात्मव**दिति । 'एवमेव' इति यदेतद् वचनं तस्य द्वयी गतिः, यथास्मदुक्तवदेकात्मकं कारणमनेकाकारविपरिवृत्ति पुरुषवदित्यभ्युपगमादिति तद्दर्शयति सकारणम् – **यथास्मदुक्तवद्वैकत्वं रजस्तमसी अपि सत्त्वमेव, प्रकाशकारणत्वं** च तयोर्यथाप्राग्व्याख्यातं सिद्धम्, अत एव तस्यां गतौ दोषः स एव पुरुषाद्यन्यतमैककारणवादाभ्युपगम इति । **अथ त्वन्मतेन** जात्यन्तरसुखादित्रयकारणतदात्मककार्याभ्युपगमेन 'एवमेव' इत्येषा गतिरिति । इतर आह – एषा गतिरस्तु, को
२१४-२ दोषः ? इति, अत्र दोषकुतूहलं चेद् ब्रूमः – **सर्वव्यक्तव्यापि** चेत्यादि, तदेव ह्यसत्कार्यत्वमित्थं भावनान्तरेणोपाद्यते, सर्वव्यक्तं शब्दादि तन्तुपटादि च व्यापितुं शीलमस्य तदसत्कार्यत्वं सर्वव्यक्तव्यापि, कस्माद्धेतोः ? **प्रतिगुणं प्रकाशाद्योर्द्वयोः कार्यात्मनोः प्रागभूतत्वात्**, गुणं गुणं प्रति प्रतिगुणं सत्त्वे द्वयोः [प्रवृत्तिनियमयोः] प्रागभूतत्वादेव कार्यात्मनोः तथा रजसि प्रकाशनियमयोः तमसि प्रकाशप्रवृत्त्योः कार्यात्मनोरभूतत्वात् अन्यगुणकारणकार्यात्मनामन्यत्र व्यक्तिप्रवृत्तिनियतिकार्याणामसतामुत्पत्तेर्व्यवस्थानवचनात् प्रख्यापनवचनाच्च अभ्युपगतत्वात् । तस्माद् वैशेषिककार्यवदसत्कार्यत्वम् ।

न केवलं वैशेषिकवदेव, किं तर्हि ? **बौद्धवद्वा असत्कार्यत्वम्**, वरं हि वैशेषिकासत्कार्यतुल्यत्वं तदसत्कार्यत्वस्य कारणैः सह कञ्चित् कालं तिष्ठत इति तैरिष्टत्वात् । इदं बौद्धासत्कार्यतुल्यमेव ते प्राप्तम्, कुतः ? **तथाभूतवस्तुनिर्मूलोत्पत्तित्वात्**, तेन प्रकारेण भूतं वस्तु 'शब्दो रूपम्' इत्यादिना, तथाभूतवस्तुनो निर्मूला उत्पत्तिः, तद्भावात् तथाभूतवस्तुनिर्मूलोत्पत्तित्वात् । किमर्थं पुन**र्निर्मूलोत्पत्तित्वा**दिति सिद्धे **तथाभूतवस्तु**ग्रहणम् ? दृष्टान्तद्वयेनार्थद्वयप्रदर्शनार्थम्, तद्यथा – **द्वितीयक्षणघटवत्**, यथा क्षणः क्षणान्तरेऽनुत्पन्न एवोत्तरस्मिन् पूर्वो निरुध्यते उत्तरश्च तदनन्तरमुत्पद्यते निर्मूलः नामोन्नामौ तुलान्तयोरिव

---

१ °त्वमेव युज्यते प्र० ॥ २ °र्तन्ते [ऽ ?]तस्तेषु भा० ॥ ३ यद्वास्म° प्र० ॥ ४ वेत्यादि य० ॥ ५ °णपाद्यंते प्र० ॥ ६ °न्यत्रा प्र० ॥ ७ (तदसत्कार्यस्य ?) ॥ ८ °स्तुना प्र० ॥ ९ सप्तम्यन्तोऽयं निर्देशः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असत्कार्याः शब्दादयः, कारणत्वात्, अन्यगुणात्मकसुखप्रवृत्त्यादिवत् इतरानुपकृताविद्यमानप्रकाशादित्रयसुखादिकारणवत् । प्रत्येकमितरानुपकृतविद्यमानप्रकाशादित्रयस्वकार्या वा सुखादयः, कारणत्वात्, शब्दादिवत् तन्त्वादिवद्वा।

अर्थ प्रकाशात्मकयोरेव रजस्तमसोः शब्दभावाय व्यवतिष्ठते सत्त्वं तत एकात्मकैककारणत्वम्, तच्च नेष्यते।

ततो यथैव कारणे कार्यस्य सत्त्वाद् घटेनैव घटः क्रियते तदात्मव्यक्तिप्रति- २१५-१

[ ] इत्युक्तत्वात्[1]। तत्सहचरितं च घटादि वस्तु पूर्वस्मिन् निरुद्धे पाश्चात्यस्य पाश्चात्यस्योत्पादाभ्युपगमाद् निर्मूलोत्पत्त्येवेति[2] उभयं दृष्टान्तः साध्यं चोभयम्, तत्साधर्म्यादिदमपि सत्त्वादिप्रकाशादिकार्यं शब्दादि **साङ्ख्यमतमिति** योज्यम्। तस्माद् निर्मूलोत्पत्तिसाधर्म्याद् **बौद्धासत्कार्यवादतुल्यतेति**।

एवं प्रकाशाद्यसत्कार्यत्वे सिद्धे सर्वव्यक्तासत्कार्यत्वसाधनम्– **असत्कार्याः शब्दादयः कारणत्वात्**, यद् यत् कारणं तत् तदसत्कार्यं दृष्टम्, **अन्यगुणात्मकसुखप्रवृत्त्यादिवत्**, अन्यो गुणः सत्त्वाद् रजः, तस्यात्मा सुखम्, तच्च स्वयं साम्यावस्थायामेकप्रकाशात्मैकार्यमपि[3] सद् जात्यन्तररजस्कार्यप्रवृत्त्यात्मकमारम्भावस्थायामिष्टं त्र्यात्मकशब्दाद्यात्मव्यवस्थानवचनात्, तथा नियमात्मकमपि **आदिग्रहणात्**। अतः सुखं सत्त्वगुणं प्रागसत्प्रवृत्तिनियमकार्यं पश्चात् तत्कार्यं दृष्टं कारणं च तद्वच्छब्दादयोऽसत्कार्याः कारणतां च बिभ्रतीति, एवमन्यगुणदुःखप्रकाशनियमवत् अन्यगुणमोहप्रकाशप्रवृत्तिवदित्येकैकमेव दृष्टान्तं कृत्वा योज्यम्। एतस्यार्थस्य स्फुटीकरणार्थमाह– **इतरानुपकृताविद्यमानप्रकाशादित्रयसुखादिकारणवदिति**, इतरेण रजसा तमसा चानुपकृतौ प्रागसन्तौ [4]*प्रवृत्तिनियमौ पश्चात् तदुपकारजनितौ सुखे कारणे दृष्टौ, **आदिग्रह**णादेवं दुःखे प्रकाशनियमावितरानुपकृतौ प्रागसन्तौ* पश्चात् तदुपकारजौ तथा मोहेऽपीति । यद्येवं नेष्यते ततः **प्रत्येकमितरानुपकृतविद्यमानप्रकाशादित्रयस्वकार्या वा सुखादयः, कारणत्वात्, शब्दादि-** २१५-२ **वत् तन्त्वादिवद्वेति**, 'स्व'शब्दादेकस्यैव सत्त्वगुणस्य त्रयोऽपि प्रकाशादय आत्मीया एव कार्यास्तथेतरयोश्चेति पुरुषादिवाद एवैष संज्ञामात्रविप्रतिपत्तेरिति । एवं तावदप्रकाशात्मकयो रजस्तमसोः शब्दात्मना व्यवतिष्ठमानेन तत्प्रख्यातिना सत्त्वेन तदात्मप्रख्यापने दोषा उक्ताः ।

यदि [5]चैवं सत्कार्यवादस्योत्खातमूलत्वप्रसङ्गभयादसत्कार्यवादस्य प्रतिष्ठितमूलत्वप्रसङ्गभयाच्च नेष्यतेऽयं विकल्पः 'अप्रकाशात्मैकयोः'[6] इति ततः 'प्रकाशात्मकयोः' इत्यस्तु, तत्रापि च दोषं वक्तुकाम इदमाह– **अथ प्रकाशात्मकयोरित्यादि** यावन्नेष्यत इति गतार्थम्।

ततो यथैवेत्यादि दृष्टान्तमेव तावत् प्रक्रियाप्रसिद्धमुपवर्णयति । **कारणे कार्यस्य सत्त्वाद् घटेनैव घटः क्रियते** इति, मृत्पिण्डघटेनोर्द्ध्वग्रीवकुण्डलौष्ठपृथुकुक्षिबुध्नादिघटः[7] क्रियते प्रकाश्यते, करोतेः प्रकाशार्थत्वात्, यथा पृष्ठं कुरु पादौ कुरु, तच्च करणं [8]विमलीकरणं प्रकाशनमित्यर्थः, कारणे कार्यस्य सत एव प्रकाशनात् सर्पस्फटाटोपमुकुलत्ववद् दीर्घकुण्डलकीभावव[9]च्च, तत्र यथा सर्पेणैव सर्पः क्रियते तथेहापि

१ दृश्यतां पृ० २८८ पं० ३, पृ० २९५ पं० ९ ॥ २ °त्त्येवेत् पुरुषदृष्टान्तः य० ॥ ३ °त्मका(त्मकका?)-र्यमपि भा० ॥ ४ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ५ चेवं प्र० ॥ ६ °त्मयोः प्र० । दृश्यतां पृ० २९५ टि० ३ ॥ ७ °थिकुक्षि° भा० ॥ ८ दृश्यतां पृ० १७१ टि० ९ ॥ ९ °भावच भा० । °भावत्व य० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

नियतस्वसाधनक्रमसमावेशात् कारणघटेन कार्यघटोऽभिव्यज्यते तथाभूतव्यक्तिशक्तिस्थूलतापत्त्या मृद एव घटत्वात् तथैव सत्त्वेन सत्त्वमेव प्रकाश्यते शब्दादिप्रकाशेन अपृथग्भूतप्रकाशादितत्त्वमाकाशादि प्रकाश्यते शब्दादिप्रवृत्त्या शब्दादिनियमेन प्रवर्त्यते नियम्यते च। अपृथग्भूततत्त्वेनैव सत्त्वेन प्रकाशेन प्रवृत्तिसत्त्वेन अनपेक्षया

घटेनैव मृदा घटः पृथुकुक्ष्याद्याकाराः क्रियन्तेऽत्यन्तभिन्नेनान्येनान्यस्याकरणात् । किञ्चान्यत्, **तदात्मव्यक्तिप्रतिनियतस्वसाधनक्रमसमावेशात्**, घटात्मतत्त्वस्य व्यक्तिः प्रागनुपलभ्यस्य पश्चादुपलब्धिः, सा प्रतिनियतानामात्मीयानां कुलालदण्डादीनां तत्क्रमस्य च कालत्र्यसाधनत्वात् पिण्डशिवकादिभावेषु यथास्वं व्याप्रियमाणानां क्रमेण व्यापारादित्यर्थः । तद्दर्शयति — **कारणघटेन कार्यघटोऽभिव्यज्यत** इति । कथं व्यज्यते इति चेत्, उच्यते — **तथाभूतव्यक्तिशक्तिस्थूलतापत्त्या,** पृथुकुक्ष्यादिप्रकारेण व्यक्तिशक्तिरस्यां मृदि शक्तिमत्यां सूक्ष्मावस्थानादुत्तरकालं देशकालाद्यवबन्धापगमात् स्थूलतापत्त्या इन्द्रियग्राह्यतया निर्मार्ज्यदर्पणस्वरूपोपलब्धिवत् कर्मैव सद् वस्तु कर्तृ भवति, **मृद एव घटत्वात्,** मृदेव हि घटो भवति, घटमात्मानमात्मना अवस्थान्तरमात्रविशिष्टमवस्थान्तरमात्रविशिष्टेन करोति, कर्तुरेव कर्मत्वाभ्युपगमात् । कुलाल-
२१६-१ दण्डादीनां तर्हि साधनत्वाभावः स्वयमेव मृदः कर्तृकर्मत्वाभ्युपगमाद् घटस्यैवेति चेत्, न, अत एव तत्साधनत्वाद् वीरणादितोऽकरणादसदकरणादिहेतुभ्यो मृद्येव सन्तं घटं कुलालचक्रदण्डादयोऽभिव्यञ्जयन्तः कर्तृकरणसम्प्रदानापादानाधिकरणादिभावं प्रतिलभन्ते तद्विषयमेव न वीरणादिविषयं न तन्त्वादिविषयम्, तदात्मगतव्यक्तिशक्तिप्रतिनियतस्वसाधनक्रमसमावेशादेव तानि च कारणानि परस्परोपजनितकार्यसाधनशक्तीनि एकप्रबन्धेन प्रवर्तमानानि 'कारकाणि' इत्युच्यन्ते, नान्यविषयाणि । तस्मात् कुलालादीनामपि तथैव कर्तृत्वादिभावोपपत्तेः 'घटेनैव घटः क्रियते' इति साधूक्तम् ।

एवं दृष्टान्तमात्मनैवात्मानं प्रकाशयति करोतीति प्रतिपाद्य दार्ष्टान्तिकं प्रतिपादयति — **तथैव सत्त्वेने**त्यादि । यथा कारणे कार्यस्य सत्त्वाद् घटेनैव घटः क्रियत इत्युक्तं तथा कारणे कार्यस्य सत्त्वात् सत्त्वेन सुखप्रकाशादिकारणात्मना तदात्मकं **सत्त्वमेव प्रकाश्यते** मृद्घटावस्थावत्, तद्दर्शयति — **शब्दादिप्रकाशेनापृथग्भूतप्रकाशादितत्त्वम्,** किं तत्? **आकाशादि,** रूपाद्यपृथग्भूततत्त्वाया मृदो घटे तदपृथग्भूततत्त्वघटादिप्रकाशवत् प्रकाशापृथग्भूतेन प्रकाशापृथग्भूततत्त्वं **प्रकाश्यत** इत्यर्थः, प्रकाशापृथग्भूतावेव प्रवृत्तिनियमावपीति तद्दर्शयति — **शब्दादिप्रवृत्त्या शब्दादिनियमेन,** तदप्याकाशादि यथा प्रकाशापृथग्भावात् प्रकाश्यते तथा **प्रवर्त्यते नियम्यते** चेति । तद् विस्तरेण पर्यायशब्दान्वाख्यानेन भावयति — **अपृथग्भूततत्त्वेने**त्यादि, अपृथग्भूततत्त्वत्वादेव तेन **सत्त्वेन प्रकाशेन प्रवृत्तिसत्त्वेने**ति प्रकाशप्रवृत्त्यो-
२१६-२ रैक्यं दर्शयति, **एव**कारेणावधारणार्थेन ततः पृथग्भूतार्थाभावं च दर्शयति । अत एव चाह — **अनपेक्षया**

---

१ **मृदशक्ति**° प्र० ॥ २ **निर्म्यज्य**° य० । **निर्मज्य**° भा० ॥ ३ °**त्मानावस्था**° भा० । °**त्मनामवस्था**° य० ॥ ४ **कर्तृत्वाभ्यु**° प्र ॥ ५ °**बद्धेन**° प्र० ॥ ६ **कारणानि** य० ॥ ७ दृश्यतां पृ० २९३ पं० ६ ॥ ८ °**ग्भूतत्वघटा**° प्र० ॥ ९ °**प्रेक्ष्यया**° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वशक्त्या व्यक्तिराविर्भावः। आविर्भावेन प्रवृत्त्या प्रवृत्तिसत्त्वेन प्रवृत्तिसत्त्वमेवानपेक्षा स्वव्यक्तिराविर्भावः प्रवृत्तिः । तथा नियमसत्त्वेनानपेक्षेण स्वशक्त्या आविर्भावेन स्वनियत्या नियमसत्त्वमेवानपेक्षा स्वव्यक्तिः। प्रकाश एव प्रवृत्तिर्नियमश्च, प्रवृत्तिरेवेतरद्वयम्, नियम एवेतरद्वयम्। अत एषामेकपुरुषवृत्तश्यामायताक्षप्रलम्बबाहुत्ववदेकवस्तुस्वतत्त्वभूतानामव्यतिरेकैकवृत्तिता।

सत्त्वसत्त्वेनैव सत्त्वसत्त्वं प्रकाश्यते व्यक्तिपरिणामेन व्यक्तीभवतीत्युक्तं

स्वशक्त्या, यदुक्तं भवति 'प्रकाशेनापृथग्भूततत्त्वेन सत्त्वेन' इत्यादिपर्यायैस्तदुक्तं भवति प्रवृत्तिसत्त्वेन प्रवृत्त्या स्वशक्त्या **व्यक्तिराविर्भावः, जनी प्रादुर्भावे** [पा० धा० ११४९], प्रादुः प्राकाश्ये, प्रकाशो जन्म अभिव्यक्तिरित्यनर्थान्तरम् 'प्रकाशात्मकयोरेव रजस्तमसोः' इति वचनादपृथग्भूतं तत्त्वं प्रकाशादीनामर्थान्तरनिरपेक्षमिति । यथा प्रकाश एव प्रवृत्तिरिति दर्शितं तथा प्रवृत्तिरेव प्रकाश इति दर्शयति – **आविर्भावेन प्रवृत्त्या प्रवृत्तिसत्त्वेन प्रवृत्तिसत्त्वमेवानपेक्षा स्वव्यक्तिः,** स्वतःपृथग्भूतप्रकाशनियमानपेक्षा स्वात्माभिव्यक्तिरित्यर्थः । तत्पर्यायकथनम् – **आविर्भावः प्रवृत्तिरिति । तथा नियमसत्त्वेन अनपेक्षेणे**त्यादिना ग्रन्थेन प्रकाशप्रवृत्त्यनर्थान्तरभूतो नियम एव सत्त्वं रजश्चेत्यत आह – **स्वशक्त्याविर्भावेन स्वनियत्या,** का च सा ? **नियमसत्त्वमेवानपेक्षा स्वव्यक्तिः** पूर्ववत् स्वप्रवृत्तिः स्वनियम इत्येकोऽर्थ इति प्रागुपपादितत्वात् **प्रकाश एव प्रवृत्तिर्नियमश्च,** यस्मात् प्रकाशमानः प्रवर्तते नियतश्चार्थ इति । एवं **प्रवृत्तिरेवेतरद्वयम्,** यस्मात् प्रवर्तमानं प्रकाशते नियतं च, **नियम एवेतरद्वयम्,** नियतो ह्यर्थः प्रकाशते प्रवर्तते [च], तस्मादिहापि तदेव भावितमैक्यमिति ।

कथं तर्ह्येकमेव प्रकाशप्रवृत्तिनियमभेदप्रत्ययव्यपदेशभाग् भवति ? इत्यत्रोच्यते – **अत एषामेकपुरुषवृत्तश्यामायताक्षप्रलम्बबाहुत्ववत्,** यथैकस्मिन् पुरुषे प्रवृत्तानि तदव्यतिरिक्तानि श्यामत्वमायताक्षत्वं प्रलम्बबाहुत्वमित्येतानि भिन्नानीव तद्भेदप्रत्ययव्यपदेशभाञ्जि भवन्ति तथैकवस्त्वित्यादिनोपसंहरति, **एकस्य** ७-१
वस्तुनः स्वतत्त्वभूतानां तदभिधानप्रयोजनानां सत्त्वरजस्तमसां तत्कार्याणां च प्रकाशनप्रवृत्तिनियमाना- २१
मव्यतिरेकैकवृत्तिता । इति परिसमाप्त्यर्थः, एवं तावदेतया भावनयापादितैक्यानां सत्त्वादीनां सत्त्वस्वात्मत्वेनैव कर्तृकर्मत्ववृत्तिरुक्ता परस्परस्वरूपापादनेन भेदमभ्युपगम्य ।

इदानीं फलाभेदान्नैव भेद इति प्रतिपादयिष्यन्नाह–**सत्त्वसत्त्वेनैव सत्त्वसत्त्वं प्रकाश्यते,** त्रयाणामपि सत्त्वरूपत्वस्यापादितत्वात् सत्त्वसत्त्वं रजःसत्त्वं तमःसत्त्वमिति भिद्यते, तस्याभेदः फलाभेदादापाद्यतेऽधुना । यत् तत् सत्त्वं सत्त्वमेव भवति नान्यद् भवति रजस्तमो वा तत् सत्त्वसत्त्वं तेन सत्त्वसत्त्वेनैव प्रकाश्यते व्यज्यते तदेव सत्त्वसत्त्वस्यैव भवनं व्यज्यते स्फुटीक्रियते, पूर्ववत् कर्तृकर्मभावोऽवस्थावशात् । तद्दर्शयति – **व्यक्तिपरिणामेन,** मृत्सत्त्वे यद् विद्यमानं सत्त्वसत्त्वं घटप्रकाशसत्त्वं तेनैव तद् व्यज्यते

---

१ °**ग्भूतत्वेनासत्त्वेने**° प्र० ॥ २ **पर्यायास्त**° प्र० ॥ ३ °**त्मयोरेव** प्र० । दृश्यतां पृ० २८८ पं० ३, पृ० २९३ पं० ४ ॥ ४ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ५ °**रतिति एकस्य** भा० । °**रति त एकस्य** य० ॥ ६ **परस्वरूपा**° भा० ॥ ७ **सत्त्वस्य सत्वस्यैव** य० । **सत्वस्यैव** भा० ॥ ८ **व्यक्ति**° य०प्रतिषु नास्ति ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

भवति, सतो हि भावः सत्त्वम् । रजःसत्त्वेन सत्त्वसत्त्वम्, व्यक्तिर्व्यक्तिप्रवृत्तिपरिणत्या व्यक्त्यैवेत्युक्तं भवति । तमःसत्त्वेन सत्त्वसत्त्वम्, व्यक्तिर्व्यक्तिनियमपरिणामेन व्यक्त्यैवेत्युक्तं भवति । एवमेव च रजःसत्त्वं तमःसत्त्वं च । एवमेव च सत्त्वप्रकाशेन सत्त्वप्रकाशः प्रकाश्यते रजःप्रकाशस्तमःप्रकाशश्च रजःप्रकाशेन

स्वपरिणामेन, सदेव हि सत्त्वेन परिणमति नासत्, यथोक्तम्—अत्थित्तं अत्थित्ते **परिणमति** [[1]भगवतीसू० १।३।३२] इति । यदुक्तं भवति '**व्यक्तीभवति**' इति तदुक्तं भवति 'सत्त्वसत्त्वेन [2]सत्त्वसत्त्वं प्रकाश्यते' इति । 'सत्त्वसत्त्वम्' इति च विशेषणं रजःसत्त्वतमःसत्त्वाभ्याम्, तयोरपि त्वन्मतप्रसिद्ध्या सत्यपि भेदेऽस्मदुक्तवदभेद [3]एवेत्यभिन्नफलत्वादैक्यमापाद्यम् । किं कारणम्? यस्मात् **सतो हि भावः सत्त्वम्**, [4]यस्मात् सदेव
२१७-२ सद् भवति तस्मात् तदे[5]व सत्त्वसत्त्वं तत्त्वं तद्भावः परिणाम इत्यनर्थान्तरम्, तद्भावः परिणामः [तत्त्वार्थ० ५।४१] इति वचनात् । तद्धि प्रवर्तमानं न किञ्चिदपेक्षत इति **प्रवृत्तिनियमानपेक्षेण सत्त्वसत्त्वेनेति** । **एवं रजःसत्त्वेन सत्त्वसत्त्वं** प्रकाश्यते[6] इति वर्तते । पूर्ववद् **व्यक्तिरिति** प्रकाशैकार्थ्यम्, किमुक्तं भवति? **व्यक्तिप्रवृत्तिपरिणत्या** प्रकाशनप्रवर्तनपरिणामेन[7] तयैव प्रवृत्त्यात्मिकया **व्यक्त्यैवेत्युक्तं भवती**त्यैक्यं दर्शयति । **एवं तमःसत्त्वेने**त्यादि '**व्यक्तिर्नि[8]यमपरिणामेन**' इत्यक्षरविपर्यासमात्रेण भेदादथैक्यापादनं गतार्थं यावद् **व्यक्त्यैवेत्युक्तं भवती**ति, सत्त्वेनैव व्यक्त्यात्मना प्रवृत्तेन [9]नियतेनावश्यं भवितव्यम्, अन्यथा तत्स्वरू[10]पाभावादित्युक्तत्वात् । एवमेव च रजःसत्त्वेन सत्त्वसत्त्वं प्रकाश्यते, व्यक्तिर्व्यक्तिप्रवृत्तिपरिणत्या प्रवृत्त्यैवेत्युक्तं भवति, सतो हि भावः सत्त्वम् । तथा रजःसत्त्वेन रजःसत्त्वं प्रकाश्यते, व्यक्तिप्रवृत्तिपरिणतिर्व्यक्तिप्रवृत्तिपरिणत्या प्रवृत्त्यैवेत्युक्तं भवतीति तथैव गमनीयम् । तथा रजःसत्त्वेन तमःसत्त्वं प्रकाश्यते, व्यक्तिनियतिपरिणतिर्व्यक्तिप्रवृत्तिपरिणत्या प्रवृत्त्यैवेत्युक्तं भवतीति । तथा तमःसत्त्वेन [11]सत्त्वसत्त्वं प्रकाश्यते व्यक्तिनियतिपरिणत्या नियमेनैवेति, नियतो हि भावो व्यज्यते प्रवर्तते । तथा तमःसत्त्वेन रजःसत्त्वं प्रकाश्यते, व्यक्तिप्रवृत्तिनियतिर्नियतिप्रवृत्तिपरिणत्या नियत्यैवेत्युक्तं भवति । तथा [तमःसत्त्वेन] तमःसत्त्वं प्रकाश्यते व्यक्तिनियतिपरिणत्या नियत्यैवेत्युक्तं भवतीति तदेव भावितम् । **एवमेव**
२१८-१ **चे**त्यादि, यथा सत्त्वरजस्तमसां नवधा विकल्पा उक्तास्तथा सत्त्वप्रकाशेन सत्त्वप्रकाशः प्रकाश्यत इति सत्त्वप्रकाशेन रजःप्रकाशस्तमःप्रकाशश्चेति त्रयः रजःप्रकाशेन सत्त्वप्रकाशो रजःप्रकाशस्तमःप्रकाशश्चेति त्रयः तमःप्रकाशेन सत्त्वप्रकाशो रजःप्रकाशस्तमःप्रकाश इति त्रयो विकल्पाः, 'प्रकाश्यते प्रवर्त्यते नियम्यते' इत्यनेनैव

---

१ "से नूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ? हंता गोयमा ! जाव परिणमइ । जं णं भंते अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ तं किं पयोगसा वीससा ? गोयमा पयोगसा वि तं वीससा वि तं । जहा ते भंते ? अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ तहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ? जहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ तहा ते अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ ? हंता गोयमा ! जहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ तहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, जहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ तहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ ।" इति **भगवतीसूत्रे** पाठः ॥ २ **सत्त्वं सत्त्वं** य० । **सत्त्वं** भा० ॥ ३ **एवेत्यभि°** य० । **एवेत्यभि°** भा० ॥ ४ **यस्मात्तदेव** य० ॥ ५ °व **सत्त्वंसत्त्वं** पा० वि० । °व **सत्त्वं** भा० रै० ही० ॥ ६ °त **एव इति** य० ॥ ७ °**मेनातयैव** भा० ॥ ८ °**नियपरि°** भा० ॥ ९ **नियते चावश्यं** य० । अत्र 'नियतेन चावश्यं' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १० °**पादि(य?)भावा°** प्र० ॥ ११ **सत्त्वं सत्त्वं** भा० । **सत्त्वं** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्त्वप्रकाशो रजःप्रकाशस्तमःप्रकाशश्च तमःप्रकाशेन सत्त्वप्रकाशो रजःप्रकाशस्तमःप्रकाशश्च प्रकाश्यते प्रवर्त्यते नियम्यते इति त्रयोऽप्यर्था ऐक्यमापादनीयाः। सर्वाप्येषा मृद्घटव्यक्तिस्थूलतेव सत्त्वप्रकाशादिप्रपञ्चा व्यक्तिरेकैव एकार्थविषयेति।

[1]तथा यदुच्यते – रजः शब्दकार्यम्............प्रकाशस्थाने प्रवृत्तिं कृत्वा......वायुम्। तथा तमः शब्दकार्यम्............लम्बनपाषाणम्।

अतस्त्रीण्यप्येकम्, अपृथग्भूतसमवस्थानस्वरूपभेदात्मकत्वात्, वरणादितमस्त्ववत्।

ग्रन्थेन त्रयोऽप्यर्था **ऐक्यमापादनीयाः**, प्रत्येकं नवस्वपि योज्या इत्यर्थः। एष दार्ष्टान्तिकोऽप्यर्थो[2] व्याख्यातः, स इदानीं दृष्टान्तेन साधर्म्येणोपसंह्रियते – **सर्वाप्येषा मृद्घटव्यक्तिशक्तिस्थूलतेव**[3] यथा प्रागुपवर्णिता कारणे कार्यस्य सत्त्वाद् मृद्घनभिव्यक्तोया घटव्यक्तिशक्तेः स्थूलता ऊर्ध्वग्रीवादिव्यक्तेन्द्रियग्राह्यता सा एकैव तथा **सत्त्वप्रकाशादिप्रपञ्चा व्यक्तिरेकैव**, एकार्थविषया सत्त्वमिति[4] वा रज इति वा तम इति वा प्रधानमिति[5] वा यथेच्छसि तथास्तु सर्वथाप्येकस्य कारणाख्यस्य वस्तुनः सूक्ष्मस्य[7] स्थूलतैव व्यक्तिरिति तद्विषया व्यावर्ण्यते। इति विचारपरिसमाप्त्यर्थः, यत् प्रतिज्ञातं [8]सर्वं प्रकाशात्मकयोश्चेद् रजस्तमसोः शब्दभावाय व्यवतिष्ठते तत एकात्मकैक[9]कारणत्वमिति तत् साधयिष्यामेति।

[10]तथा यदुच्यते रजः शब्दकार्य**मित्यादिग्रन्थस्यापि समानदौष्ट्यापादनार्थोऽतिदेशः **भाष्ये** एव सुलिखितातिदेशोपायत्वाद् न विव्रियते। विशेषणविन्यासोपायश्च सुलिखित एव **प्रकाशस्थाने प्रवृत्तिं कृत्वे**त्यादि सर्वमनुगन्तव्यं यावद् **वायु**मिति। **तथा तमः शब्दकार्य**मित्यादि तथैवानुगन्तव्यं यावद् **लम्बनपाषाण**मिति। [11]एवं समापितप्रसङ्ग इदानीं साधनमाह – **अतस्त्रीण्यप्येक**मित्यादि [यावद् **वरणादि**]**तमस्त्वव**दिति। सत्त्वरजस्तमांसि त्रीण्यपि प्रकाशप्रवृत्तिनियमात्मकानि जात्यन्तराभिमतान्येकं [12]वस्तुतः त्रित्वस्यातन्त्रत्वाद् भिन्नमप्यभिन्नमिति पक्षार्थः। परमतापेक्षया त्रयाणामैक्यासिद्धेः साध्यम्। २१८-२
त्रीण्यपि च [13]परस्य सिद्धानि धर्मित्वेन अस्माकं च वस्तुशक्तित्वभेदेनेतीत्थं साध्यते, अन्यथा 'त्रीणि चैकं च' इति विरुद्धं स्यात्। **अपृथग्भूतसमवस्थानस्वरूपभेदात्मकत्वात्**, भूतं भवनं भावो [14]भूतिरिति भावे निष्ठाविधानादपृथग्भवनमस्य सङ्गत्या एकीभावेनावस्थानस्य तदिदमपृथग्भूतसमवस्थानम्, तदेव स्वरूपं भेदाश्चात्मा येषां तानि सत्त्वादीनि अपृथग्भूतसमवस्थानस्वरूपभेदात्मकानि, तद्भावात्। क्षीरोदकवद्

---

१ 'तथा यदुच्यते—रजः शब्दकार्यं प्रवर्त्य शब्दात्मना व्यवतिष्ठमानं तद्भावाय इतरयोः प्रवृत्तिं करोति प्रवर्तयति। अत्रापि तथैव अनुगन्तव्यं प्रकाशस्थाने प्रवृत्तिं कृत्वा सत्त्वस्थाने रजः प्रख्यापनस्थाने प्रवर्तनं नर्तकाचार्यस्थाने च वायुम्। तथा तमः शब्दकार्यं नियम्य शब्दात्मना व्यवतिष्ठमानं तद्भावायेतरयोः प्रवृत्तिं व्यवस्थापयति नियमयति। अत्रापि तथैव दोषापादनमनुगन्तव्यं प्रकाशस्थाने नियमं कृत्वा सत्त्वस्थाने तमः प्रख्यापनस्थाने नियमनं नर्तकाचार्यस्थाने च लम्बनपाषाणम्।' इत्याशयकोऽत्र मूलपाठः स्यादिति सम्भाव्यते॥ २ °प्याख्यातः भा०॥ ३ **स्थूलतैव** प्र०॥ ४ °**क्या** प्र०॥ ५ °**ति च रज** प्र०॥ ६ °**न इति** प्र०॥ ७ °**स्य तः स्थूल**° प्र०। अत्र °**स्य सतः स्थूल**° इत्यपि पाठः स्यात्॥ ८ दृश्यतां पृ० २९३ पं० ४॥ ९ °**कारत्वमिति** प्र०॥ १० **त्वया यदु**° य०॥ ११ **एवमसापितप्रसङ्गः** प्र०॥ १२ (वस्तुनः?)॥ १३ **परस्परसिद्धानि** प्र०॥ १४ **भूतिनिति** प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशकालाभेदेन सहभवनेऽपि सङ्गत्यैक्यावस्थानस्वरूपत्वविशेषणात् क्वचित् कदाचित् पृथग्भवनाभावादित्युक्तं भवति । तत्स्वरूपभेदात्मकत्वं च वादिप्रतिवादिप्रसिद्धम् । दृष्टान्तः – **वरणादितमस्त्ववत्**, यथा वरणसदनापध्वंसनबैभत्स्यदैन्यगौरवाणां परस्परतो भिन्नानां छादनस्तम्भनविशरणारोचनविषादाधोगमनधर्माणां भेदात्मकत्वे सत्यपि मोहात्मकतमःस्वारूप्यानतिक्रमेणैक्यमपृथग्भवनसमवस्थानस्वरूपभेदात्मकत्वात् तथास्मादेव हेतोः सत्त्वादीन्येकमिति ।

अत्राह – **अपृथग्भवनसमवस्थाने**त्यादि जात्यन्तरत्वसाधनानि यावद् **गुरुरित्युभाभ्यामन्य** इति, ननूक्तमन्त्रयवीत एव, अत्राह – कथं पुनरेतदुपलभ्यते सुखःदुखमोहा जात्यन्तराणि इति, अत्रोच्यते – सुखं लघ्वप्रवृत्तिशीलं प्रकाशकं दृष्टम्, सुखाश्च करणप्रकाशाः, तस्मात् प्रवृत्तिनियमाभ्यामन्ये । तथा दुःखं चलमप्रकाशकं प्रवृत्तिशीलं दृष्टम्, दुःखाश्च करणप्रवृत्तयः, तस्मात् प्रकाशनियमाभ्यामन्याः । तथा मोहो
२१९-१ गुरुरप्रकाशको दृष्टः, मूढाश्च करणनियमाः, तस्मात् प्रकाशप्रवृत्तिभ्यामन्य इति । **एतेनाध्यात्मिकानां कार्यकारणात्मकाना**मित्यादिनोत्तरेण ग्रन्थेन तैर्यग्योनादिसंसारगताध्यात्मिककार्यकारणात्मकभेदानां सुख-

---

१ °**स्यादिगौर**° प्र० ॥ २ "सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः । गुरु वरणकमेव तमः······ ॥ १३ ॥" **साङ्ख्य**का० ॥ ३ अत्र **नय**चक्रवृत्तौ **साङ्ख्य**कारिकावृत्तियुक्तिदीपिकादिप्राचीनग्रन्थेषु च **साङ्ख्य**मतनिरूपणप्रसङ्गे '**कार्यकारणात्मक**'शब्दप्रयोगो बहुषु स्थानेषु दृश्यते । किन्तु पूर्वापरसम्बन्धविचारणया तद्व्याख्यावलोकनेन च तत्र '**कार्यकरणात्मक**' इति पाठः समीचीन इति भाति, दृश्यतां पृ० १२ पं० १७, पृ० **२२८-२** । **साङ्ख्य**मते हि प्रकृतेर्विकारभूताः पदार्थाः कार्यकरणभेदेन द्विधा विभक्ताः । तथा च तद्ग्रन्थः—"आह – करणं प्रत्याचार्यविप्रतिपत्तेः, एकादशविधमिति **वार्षगणाः**, दशविधमिति तान्त्रिकाः **पञ्चा**धिकरणप्रभृतयः, द्वादशविधमिति **पत**ञ्जलिः, तस्माद् भवतः कतिविधं करणमभिप्रेतमिति वक्तव्यमेतत् । उच्यते – **करणं त्रयोदशविधं तदाहरणधारणप्रकाशकरम्** । पञ्च कर्मेन्द्रियाणि पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि मनोऽहङ्कारो बुद्धिश्चेत्येतत् सर्वं पुरुषार्थोपयोगि करणम्······। आह – करणमिति क्रियाकारकसम्बन्धगर्भोऽयं निर्देशः । कथम् ? येन [क्रियते] तत् करणमिति । तत्र वक्तव्यम् का क्रिया किं च तत् क्रियते यदपेक्ष्य बुद्ध्यादीनां करणत्वमिति? उच्यते, यदुक्तं 'का क्रिया' इत्यत्र ब्रूमः – न तन्निर्वर्त्यमिहाभिप्रेतम् दण्डादिवत् । किं तर्हि? तदाहरणधारणप्रकाशकरम् । तत्राहरणं कर्मेन्द्रियाणि कुर्वन्ति, विषयार्जनसमर्थत्वात् । धारणं बुद्धीन्द्रियाणि कुर्वन्ति, विषयसन्निधाने सति श्रोत्रादिवृत्तेस्तद्रूपापत्तेः । प्रकाशमन्तःकरणं करोति निश्चयसामर्थ्यात् । अपर आह–आहरणं कर्मेन्द्रियाणि कुर्वन्ति, धारणं मनोऽहङ्कारश्च, प्रकाशनं बुद्धीन्द्रियाणि बुद्धिश्चेति । एतदभिसन्धाय बुद्ध्यादीनां करणत्वमुच्यते इति । यत्तूक्तं किं कार्यमिति, उच्यते – **कार्यं च तस्य दशधा,** दशेति पञ्च विशेषाः पञ्च अविशेषाः । तदप्यत एव कार्यशब्दं लभते – **आहार्यं धार्यं प्रकाश्यं च,** तद्धि आहर्तव्यं धारणीयं प्रकाशयितव्यं च अतः कार्यमित्युच्यते, न निर्वर्त्यत्वात् । [का० ३२, पृ० १३२–१३३] ।······व्याख्यातं करणपर्व, कार्यपर्व इदानीं वक्तव्यम्, तस्य च पुरस्तादुद्देशः कृतः – कार्यं च तस्य दशधा पञ्च विशेषाः पञ्च अविशेषा इति । साम्प्रतं तु निर्देशं करिष्यामः । आह–यद्येवं तस्मादिदमेव तावदुच्यतां के विशेषाः केऽविशेषा इति । उच्यते — **तन्मात्राण्यविशेषाः** । यानि तन्मात्राणि पञ्च अहङ्कारादुत्पद्यन्ते इति प्रागपदिष्टं ते खलु अविशेषाः ।······आह – अथ के पुनर्विशेषा इति । उच्यते – यानि खलु **तेभ्यो भूतानि पञ्च पञ्चभ्यः** उत्पद्यन्ते **एते स्मृता विशेषाः** [का० ३८, पृ० १४०] ।" इति **साङ्ख्य**कारिकाया **युक्तिदीपिका**यां वृत्तौ । **माठरा**दिपरम्परासु तु "करणं त्रयोदशविधं तदाहरणधारणप्रकाशकरम् । कार्यं च तस्य दशधाऽऽहार्यं धार्यं प्रकाश्यं च ॥ ३२ ॥" इति **साङ्ख्य**कारिका अन्यथा व्याख्याता दृश्यते, तद्यथा–"त्रयोदशविधं करणं किं करोतीत्यत्रोच्यते–आहारकं धारकं प्रकाशकं च । अत्राहारकमिन्द्रियलक्षणम्, धारकमभिमानलक्षणम्, प्रकाशकं बुद्धिलक्षणम् । अत्राह– किं तदस्ति यस्याहरणं धारणं प्रकाशनं च क्रियते ? अत्रोच्यते – कार्यं च तस्य दशधाऽऽहार्यं धार्यं प्रकाश्यं च । शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः पञ्च वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दास्तु पञ्च, एते दश विषयाः कार्यमित्युच्यते । तं दशविधं विषयं बुद्धीन्द्रियैः प्रकाशितमर्थं कर्मेन्द्रियाणि आहरन्ति धारयन्ति च । तद्यथा-तमःस्थितं घटं दीपेन प्रकाशितं हस्त आदत्ते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]अपृथग्भवनसमवस्थान······एतेनाध्यात्मिकानां कार्यकारणात्मकानां भेदानाम्······मोहो गुरुरित्युभाभ्यामन्यः । ननु लक्षणभेदाहेतुत्वम्, अपृथग्भूतसमवस्थानस्वरूपलक्षणभेदात्मकत्वात्, वरणादिभिन्नलक्षणतमस्त्ववत् ।

दुःखमोहमयत्वातिदेशः कार्यकारणात्मकत्वात् तेषामपीति । अस्य ग्रन्थस्यार्थव्याख्यानं साधनैरेव क्रियते—सत्त्वरजस्तमांसि जात्यन्तराणि, लक्षणभेदात्, चेतनशरीरवत् । लक्षणभेदः **सत्त्वं लघ्वप्रवृत्तिशीलं दृष्ट**मित्यादि तत्साधनैर्भाष्ये सुलिखितमिति न विवृण्महे । तथा रजस्तमसोरन्यत्वापादनसाधनान्यनुगन्तव्यानि यावद् **गुरुरित्युभाभ्यामन्य** इति ।

आचार्य उत्तरमाह—**ननु लक्षणभेदाहेतुत्व**मित्यादि यावत् **तमस्त्ववत्** । लक्षणभेदहेतूनां लघुत्वादीनामप्यहेतुत्वम्, एतेनैव प्रत्युक्तत्वात् । कथम् ? लघुत्वप्रकाशाप्रवृत्तिशीलत्वान्यप्येकम्, **अपृथग्भूतसमवस्थानस्वरूपलक्षणभेदात्मकत्वाद् वरणादिभिन्नलक्षणतमस्त्ववत्**, तथैव व्याख्येयं **लक्षण**शब्दाधिक्येन, विग्रहस्तु तत्स्वरूपमेव लक्षणम्, स एव भेदो यस्येति । तस्मात् तादृक्स्वरूपलक्षणभेदात्मकत्वमप्यहेतुः । अतो नान्यत्वं सत्त्वादीनामिति ।

धारयति । तदेवं यथा घटं तथा शेषाण्यपि ।"—**जे० साङ्ख्यका० वृ०** B, **माठरवृत्ता**वपि एतदर्थक एव पाठः । "त्रयोदशविधं करणं किं करोतीत्यत्रोच्यते—(?) धारणं कर्मेन्द्रियाणि कुर्वन्ति, प्रकाशं बुद्धीन्द्रियाणि कुर्वन्ति । तदाहरणधारणप्रकाशकरं किं तदस्ति यस्याहरणं धारणं प्रकाशं करणं करोतीत्यत्रोच्यते—कार्यं च तस्य दशधाऽऽहार्यं धार्यं प्रकाश्यं च । कार्यमिति शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः पञ्च वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दास्तु पञ्च, एते दश विषयाः कार्यमित्युच्यते । तं दशविधं विषयं बुद्धीन्द्रियैः प्रकाशितं कर्मेन्द्रियाणि आहरन्ति धारयन्ति चेति ।" **जे० साङ्ख्यका० वृ०** A । "तत्राहरणं धारणं च कर्मेन्द्रियाणि कुर्वन्ति प्रकाशं बुद्धीन्द्रियाणि । कतिविधं कार्यं तस्येति तदुच्यते—कार्यं च तस्य दशधा । तस्य करणस्य कार्यं कर्तव्यमिति दशधा दशप्रकारं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाख्यं वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाख्यमेतद् दशविधं कार्यम् । बुद्धीन्द्रियैः प्रकाशितं कर्मेन्द्रियाणि आहरन्ति धारयन्ति चेति ।" इति **गौ**डपादभाष्ये । "शब्दादयः पञ्च विषयाः वचनादयः पञ्च वृत्तयः एतानि दश तत्कार्याणि । [किञ्च] तत्कार्यं त्रिविधम्–आहार्यं प्रकाश्यं धार्यमिति । तत्र त्रिभिराहृतं पञ्चभिर्बुद्धीन्द्रियैः प्रकाशितं पञ्च कर्मेन्द्रियाणि धारयन्ति ।" इति **सुवर्ण**सप्ततिशास्त्रव्याख्याभिधानायां **साङ्ख्य**कारिकावृत्तौ [चीनभाषानुवादानुसारेण] । "तत्र कर्मेन्द्रियाणि वागादीनि आहरन्ति यथास्वमुपाददते स्वव्यापारेण व्याप्नुवन्तीति यावत् । बुद्ध्यहङ्कारमनांसि तु स्ववृत्त्या प्राणादिलक्षणया धारयन्ति । बुद्धीन्द्रियाणि च प्रकाशयन्ति ।···कार्यं च तस्य त्रयोदशविधस्य करणस्य दशधा—आहार्यं धार्यं प्रकाश्यं च । आहार्यं व्याप्यम् । कर्मेन्द्रियाणां वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दा यथायथं व्याप्याः, ते च यथायथं दिव्यादिव्यतया दशेति आहार्यं दशधा । एवं धार्यमप्यन्तःकरणत्रयस्य प्राणादिलक्षणया वृत्त्या शरीरम्, तच्च पार्थिवादिपाञ्चभौतिकम्, शब्दादीनां पञ्चानां समूहः पृथिवी, ते च पञ्च दिव्यादिव्यतया दशेति धार्यमपि दशधा । एवं बुद्धीन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा यथायथं व्याप्याः, ते च यथायथं दिव्यादिव्यतया दशेति प्रकाश्यमपि दशधेति ।" इति **साङ्ख्य**कारिकायाः **वा**चस्पतिमिश्ररचितायां **साङ्ख्य**तत्त्वकौमुद्यां वृत्तौ । "कलविकरणाय नमः [पाशुपतसू० २४] । अत्र कला नाम कार्यकरणाख्याः कलाः । तत्र कार्याख्याः पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशः । आकाशः शब्दगुणः । 'शब्दस्पर्शगुणो वायुस्तौ च रूपं च तेजसि । ते रसश्च जले ज्ञेयास्ते च गन्धः क्षितावपि ॥' शब्दस्पर्शरसरूपगन्धाः । तथा करणाख्याः श्रोत्रं त्वक् चक्षुः जिह्वा घ्राणं पादः पायुः उपस्थः हस्तः वाक् मनः अहङ्कारः बुद्धिरिति ।" इति **पाशुपतसूत्रस्य पञ्चार्थ**भाष्ये Trivandrum Sanskrit Series, No 143. ॥

१ 'अपृथग्भवनसमवस्थानस्वरूपभेदात्मकत्वेऽपि सुखदुःखमोहा जात्यन्तराणि लक्षणभेदात् । एतेन आध्यात्मिकानां कार्यकारणात्मकानां भेदानां सुखदुःखमोहमयत्वं बोध्यं समन्वयदर्शनात् । सुखं लघु अप्रवृत्तिशीलं दृष्टमित्युभाभ्यामन्यत् । दुःखं चलमित्युभाभ्यामन्यत् । मोहो गुरुरित्युभाभ्यामन्यः ।' इत्याशयको मूलपाठोऽत्र स्यादिति सम्भाव्यते ॥ २ **लक्षणभेदहेतुत्व**° प्र० । अत्र **लक्षणभेदहेतूनामप्यहेतुत्व**° इत्यपि पाठः स्यात् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नापृथग्भूतता । [1]सुखं मोहाद् गुरोरन्यत्, लघुत्वात्, लोहपिण्डादिव अर्कतूलः ·········। पुनश्च सुखत्वदुःखत्वमोहत्वादयोऽप्यन्यत्वहेतवः स्युः । शरीरेन्द्रियगत आत्मैकदेशस्तदेकदेशभूताभ्यां रजस्तमोभ्यामन्यः, सुखत्वात्, लोष्टवत् । एवं दुःखमोहौ ।

सर्वेऽप्येते हेतवोऽप्रसिद्धसाध्यधर्मसमन्वयव्यावृत्तयः स्वत एवानुमाननिरा-

---

इतर आह—**नापृथग्भूत[2]तेत्यादि** हेत्वसिद्धिप्रतिपादनसाधनानि लोकप्रसिद्धदृष्टान्तानि यावत् **प्रदी-**
२१९-२ **पादिव घट** इति । **लोष्टदृष्टान्तो** वक्ष्यते सुखदुःखमोहैः पुरुषभोग्यैरन्योन्यतोऽन्यैरुपेत इत्यतिदेशसाधनोक्तिकाल उत्तरत्र । अपृथग्भूतसमवस्थानस्वरूपमसिद्धम्, तत् कथमिति चेत्, साधनैरेवोच्यते—**सुखं मोहाद् गुरोरन्य**दित्यादि सुबोधत्वान्न व्याख्येयं परस्परान्यत्वसाधनकदम्बकं यथाभाष्यलिखितमनुगन्तव्यम् । **पुन[3]श्चे**त्यादि, एतस्मा[4]दन्ये साधनप्रपञ्चात् सुखत्वात् दुःखत्वाद् मोहत्वादित्यादयो**ऽप्यन्यत्वहेतवः स्युः**, आदिग्रहणात् प्रसादादयोऽपीति । तत्प्रयोगदि[5]गुपप्रदर्शनार्थमाह—**शरीरेन्द्रियगत आत्मैकदेशस्तदेकदेशभूताभ्यां रजस्तमोभ्यामन्यः**, कार्यभूतस्य शरीरस्य कारणभूतानां चेन्द्रियाणामाध्यात्मिकानामेकदेशस्तदात्मभूतस्तं गतस्तदात्मभूताभ्यां रजस्तमोभ्यामन्यः, **सुखत्वात्, लोष्टवत्**, यथा लोष्टो भोग्यो हि पुरुषस्य भोक्तुरुपयोगार्थप्रवृत्तेः [6]कपोतोन्नयनार्थक्षेपणादानादिषु सुखं दृष्टं चलनपीडनादिषु दुःखं 'लोष्टो नु कपोतो नु' इत्यादिसंशयविपर्ययादिषु मोहः । तस्मात् सुखं दुःखमोहाभ्यामन्यद् [7]लोष्टवत्, लोष्ट इव लोष्टवत् । **एवं दुःखमोहा**वित्यतिदेशः, दुःखं शरीरेन्द्रियगतं तदात्मैकदेशभूताभ्यां सत्त्वतमोभ्यामन्यद् दुःखत्वाल्लोष्टवत्, मोहः सत्त्वरजोभ्यामन्यो मोहत्वाल्लोष्टवदिति ।

अत्र ब्रूमः—**सर्वेऽप्येत** इत्यादि । **सर्व**ग्रहणाद् लघुत्वादयो मोहत्वपर्यन्तास्त्वयोक्ता अन्यत्वहे**तवोऽप्रसिद्धसाध्यधर्मसमन्वयव्यावृत्तयः** । 'एते हेतवोऽसिद्धा एवावधारणे' इति [8]वक्ष्यति, सिद्धत्वेऽपि अप्रसिद्धसाध्यधर्मसमन्वयाः पृथग्भूतसुखाद्यात्मकसत्त्वादिलघ्वादि[9]तूललोष्टादिवस्त्वभावात्, सर्वस्य त्रैगुण्याव्यतिरेकाच्च । न चैषां विपक्षाद् व्यावृत्तिरस्ति, तूललोष्टादेरेव विपक्षत्वेन व्यवस्थानात् । विविक्तैकसुखात्म-
२२०-१ काद्धि वस्तुनोऽन्यद् विविक्तदुःखाद्यात्मकं स्याद् [10]विपक्षः, तत्तु नास्ति सर्वस्य त्रिगुणैकात्मकत्वात्, न पुरुषोऽसत्त्वात् तस्यापि सुखादन्यत्वादिति । ततश्च तूललोष्टादेरपि विपक्षत्वात् ततश्च लघुत्वादिहेतूना[11]मव्यावृत्तेरप्रसिद्धसाध्यधर्मव्यावृत्तयस्ते हेतव इति विरुद्धत्वं हेतुदोषः । साध्यसाधनोभयानन्वयो धर्म्यसिद्धिश्च साधर्म्यदृष्टान्तः, साध्या[12]व्यावृत्तादिदोषश्च वैधर्म्यदृष्टान्त इति दर्शयति ।

---

१ 'सुखं मोहाद् गुरोरन्यत्, लघुत्वात्, लोहपिण्डादिवार्कतूलः, दुःखादन्यत् प्रवृत्तिशीलात्, अप्रवृत्तिशीलत्वात्, आकाशादिव वायुः । दुःखं मोहादन्यदचलात्, चलत्वात्, पर्वतादिव घटः । मोहः सुखदुःखाभ्यामगुरुभ्यामन्यः, गुरुत्वात्, पृथिव्या इव अग्निः । दुःखमोहौ सुखात् प्रकाशकादन्यौ, अप्रकाशकत्वात्, प्रदीपादिव घटः ।' इत्याशयको मूलपाठोऽत्र स्यादिति सम्भाव्यते ॥ २ °ग्भूतेत्यादि° य० ॥ ३ पुनरश्चे° य० । पुनरश्वे° भा० ॥ ४ °दन्य सा° प्र० ॥ ५ °गुपद° भा० ॥ ६ कपोतोनयना° प्र० ॥ ७ लोष्ट इव लोष्टवत् य० प्रतिषु नास्ति ॥ ८ दृश्यतां पृ० ३०१ पं० २ ॥ ९ °कुल° प्र० ॥ १० विपक्षतस्तु नास्ति सर्वस्य त्रिगुणैकत्वात्मक° य० ॥ ११ °मप्यावृत्ते° प्र० ॥ १२ °वृत्यादि° य० । दृश्यतां पृ० २६० टि० ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतस्वपक्षप्रत्यक्षीकरणार्थाश्च । अनवधृतलघ्वादिधर्मतायामितरात्मकमपीति अतथातैव । असजातीयलक्षणव्यावृत्तार्थविषयतायामसिद्धं पक्षधर्मत्वमस्मान् प्रति भवन्तं च । तद्यथा—

[1]णिच्छयतो सव्वलहुं सव्वगुरुं वा ण विज्जए दव्वं ।
ववहारतो तु जुज्जति बायरखंधेसु ण इतरेसु ॥ [बृहत्कल्प० ६५]

किञ्चान्यत्, **स्वत एवानुमाननिराकृते[2]स्वपक्षप्रत्यक्षीकरणार्थाश्च** 'एते हेतवः' इति वर्तते, 'अस्ति प्रधानं भेदानामन्वयदर्शनात्' इति प्रक्रम्य सुखदुःखमोहान्विता आध्यात्मिका बाह्याश्च शब्दादयः कार्यात्मकास्त्रयाणामेककार्यभावात्, तदारब्धाश्चाकाशवाय्वनलाम्भोभूमयो भूताख्यास्तैर्यग्योनमानुषदैवानि शरीराणीन्द्रियाणि च [3]तदात्मकानि त्रयाणामेककार्यभावात् सुखाद्यन्वितान्येव चन्दनशकलादिवत् [   ] इत्येवमाद्यनुमानसिद्धं त्रैगुण्यम् 'अन्यत् सुखं दुःखमोहाभ्यां लघ्वेव च' इत्येवमादिपक्षं निराकरोति तस्य स्वपक्षस्यानुमाननिराकृतस्यान्याविदितस्य सर्वलोकाप्रत्यक्षस्य सतः प्रत्यक्षीकरणार्था एते हेतवः संवृत्ता इतीत्थमनुमानविरुद्धप्रतिज्ञादोषोद्[4]भावनवक्रोक्तिरेषा ।

किञ्चान्यात्, **अनवधृते**त्यादि याव**दतथातैव** । 'लघुत्वात्' इत्यादयो हेतवः किमवधारितार्था [5]उतानवधारितार्थाः ? इति सम्प्रधार्यमेतत्, लघ्वेव सुखं न गुरु न चलं वा, तथान्येषामपि चलत्वादीनां चलमेव गुर्वेव प्रवृत्तिशीलमेवेति । [6]त**त्रानवधारितलघ्वादिधर्मतायां** सत्या**मितरात्मकमपी**ति लघुचलगुर्वादित्र्यात्म[7]कतयैव पक्षधर्मता स्यादेषां तथा सति **इत्यतथातैव** अनन्यतैवेत्यर्थः, **इति**शब्दहेत्वर्थत्वात् २२०-२
त्र्यात्मकैकत्वादित्यर्थः । **असजातीये**त्यादि याव**दस्मान् प्रति** [8]**भवन्तं चे**ति । अथावधारितार्था एते लघ्[9]वादिहेतवो गुर्वाद्यसजातीयलक्षणव्यावृत्तार्थविषयास्ततस्तेषा**मसजातीयलक्षणव्यावृत्तार्थविषयतां**[10]**यां** विशेषतोऽपक्षधर्मतैव, मूलतस्तत्रा**स्मान् प्रति तावदपक्षधर्मत्वम् । तद्यथा—णिच्छयतो सव्वलहुं**ति गाथा,

---

१ "पुनरपि शिष्यः प्राह—कथमेतदवसीयते 'एकैक आकाशप्रदेशोऽनन्तैरगुरुलघुपर्यायैरुपेतः ? उच्यते—इह द्विविधं वस्तु, रूपिद्रव्यमरूपिद्रव्यं च। तत्र रूपिद्रव्यं चतुर्धा, तद्यथा—गुरु, लघु, गुरुलघु, अगुरुलघु च। एतदप्युच्यते व्यवहारतः, निश्चयतः पुनर्द्विविधमेव गुरुलघु अगुरुलघु च। तथा चाह—**णिच्छयतो सव्वगुरुं सव्वलहुं वा ण विज्जए दव्वं । ववहारतो तु जुज्जति बादरखंधेसु णऽण्णेसु** ॥ ६५ ॥ 'निश्चयतः' निश्चयनयमतेन न किञ्चिद् द्रव्यं 'सर्वगुरु' एकान्तगुरु, यदि स्यादेकान्तगुरु तत एकान्तेनैव पतनधर्मि स्यात्, न च पतति तस्मान्न विद्यते सर्वगुरु, नापि 'सर्वलघु' एकान्तलघु, यदि स्यादेकान्तलघु ततो न कदाचित् पतति, अथ कदाचित् पतति तस्मान्न सर्वलघ्वपि । 'व्यवहारतः' व्यवहारनयमतेन पुनर्युज्यते सर्वगुरु सर्वलघु च । केषु ? इत्याह—'बादरस्कन्धेषु' बादरत्वपरिणामपरिणतेषु अनन्तप्रादेशिकेषु स्कन्धेषु, 'नान्येषु' सूक्ष्मपरिणामपरिणतेषु । तत्र गुरु द्रव्यं यथा—अयस्पिण्डः, लघु यथा—अर्कतूलम्, गुरुलघु यथा—वायुः, अगुरुलघु परमाण्वादि । निश्चयतः पुनरेवं द्विविधद्रव्यभावना—परमाण्वादेरारभ्य सङ्ख्यातप्रदेशात्मकोऽसङ्ख्यातप्रदेशात्मको यश्चानन्तप्रदेशात्मकः सूक्ष्मस्कन्धः कार्मणप्रभृतिक एते अगुरुलघवः, बादराः स्कन्धा औदारिकवैक्रियाहारकतैजसरूपा गुरुलघवः ।" इति श्री**मलयगिरि**सूरिविरचितायां बृहत्कल्पसूत्रनिर्युक्तिवृत्तौ । "ओरालियवेउव्वियआहारगतेय गुरुलहू दव्वा । कम्मगमणभासाई एयाइं अगुरुलहुयाइं ॥ ६५८ ॥ गुरुयं लहुयं उभयं नोभयमिति वावहारियनयस्स । दव्वं, लेट्ठु दीवो वाऊ वोमं जहासंखं ॥ ६५९ ॥ निच्छयओ सव्वगुरुं सव्वलहुं वा न विज्जए दव्वं । बायरमिह गुरुलहुयं अगुरुलहुं सेसयं सव्वं ॥ ६६० ॥" इति श्री**जिन**भद्रगणिक्षमाश्रमणविरचिते **विशेषावश्यकभाष्ये** ॥
२ °**तश्चप्रत्यक्षी**° प्र० ॥ ३ **तदाथानि** य० । **तदानि** भा० ॥ ४ °**द्भवन**° प्र० ॥ ५ **उतानधारि**° प्र० ॥ ६ **तत्वानव**° प्र० ॥ ७ °**कत्रयैव** प्र० ॥ ८ **भवन्तंमि अथा**° भा० । **भवन्तमि अथा**° य० । दृश्यतां पृ० ३०२ पं० १२,१३ ॥ ९ °**दहेतवो** प्र० ॥ १० °**ताया विशेषतोः पक्ष**° भा० । °**ताया विशेषहेतोः पक्ष**° य० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अत्यन्तगुरुतायामेतदेव पतेत्, संयोगभावेऽपि पतनप्रतिबन्ध्यविषह्यगुरुत्वात्, तन्तुप्रतिबन्धानिवार्यपातोपलवत्। योगिनोऽपि च सुतरां पतनमेव स्यात्, शिलाबद्धशिलावत्। अत्यन्तलघुतायां न कदाचिदपि पतनं स्यात्। कन्यानुदरवत्तु व्यवहारोऽयमपेक्षाकृतो बादरस्कन्धविषयः। एवमेवापेक्षिकलोहपिण्डकार्कतूलगुरुत्वलघुत्वेऽनवस्थितैकत्वे।

निष्कृष्य अवधार्य चयतः ज्ञानतः परमार्थनयतो वा सर्वथा लघु सर्वं वा लघु **न विद्यते** तथा **सर्वगुरु द्रव्यम्**, परमाणुद्विप्रदेशाद्यसङ्ख्येयान्तानां केषाञ्चिदनन्तप्रदेशानां च स्कन्धानां शेष[1]द्रव्याणां चागुरुलघुत्वात्, ततः परमनन्तानन्तप्रदेशानां बादराणामापेक्षिकलघुगुरुपरिणामित्वात्, **व्यवहारनयेन तु युज्यते** लघुत्वं गुरुत्वं वा अन्योन्यस्मात् लघु[2]र्गुरुर्वेति। वा[3]तं रातीति बातरा बदरप्रमा[4]णा बादरा वा स्कन्धाः स्थूला इत्यर्थः। **ण इतरेसु,** [5]नेतरेसु, प्रागुक्तपरमाण्वादिषु सूक्ष्मेष्वगुरुलघुत्वमेवेत्यर्थः।

अत्यन्तगुरुतायामित्यादि निरपेक्षैकान्तगुरुताया[6]**मेतदेव पतेत्** पतनक्रियमेव स्यात् न तिष्ठेद् नोर्द्ध्वं गच्छेद् गुरुत्वात्, दृष्टान्तो वक्ष्यमाणः। स्यान्मतम्—पतेदेव गुरु यदि प्रतिबन्धी न स्यात्, अस्ति तु संयोगः प्रतिबन्धी पतनस्य फलस्येव वृन्तमिति, अतो विशेषयामः—**संयोगभावेऽपि पतनप्रतिबन्ध्यविषह्यगुरुत्वा**दिति, प्रतिबन्धिना यद् विषह्यं न भवति गुरु तत् पतेदेव, स चास्य नास्ति प्रतिबन्धी त्वयैकान्तगुरुत्वाभ्युपगमात्। **तन्तुप्रतिबन्धानिवार्यपातोपलवत्,** एकेन तन्तुना प्रतिबन्धिना सत्यपि
२२१-१ संयोगभावे तदविषह्यगुरुत्वात् पतत्येव यथोपलस्तथैतत् पतेदेव सुखं लघुत्वशून्यगुरुत्वादिति। **योगिनोऽपि चे**त्यादि, योऽपि चास्य योगी प्रतिबन्धकस्तस्यापि च योगिनः प्रतिबन्धिनो गुरुत्वात् तत्पतनोपचयहेतुत्वात् **सुतरां पतनमेव स्यात्** पतेदेव तेनापि हि सह [7]**शिलाबद्धशिलाव**दिति पातहेतुत्वं द्रढयति। एवं तावदत्यन्तगुरुत्वे पतनमेव प्रसक्तम्। [8]अथवा मा भूदेष दोष [9]इत्यत्यन्तलघुत्वमिष्यते ततोऽ**त्यन्तलघुतायां न कदाचिदपि पतनं स्यात्,** पाताख्यो भाव एव न स्यात् तस्योत्पत्तिकारणाभावात्, तच्च कारणं गुरुत्वं पतनस्य, तदभावात् खपुष्पवत् न स्यात्। स्यान्मतम्—दृष्टविरुद्धमुच्यते गुरुलघुत्वदर्शनात् 'अर्कतूलो लघुर्गुरुर्लोहपिण्डः' इति दृष्टत्वादिति। एष न दोषः, यस्मात् [10]**ववहारतो तु** [11]**जुज्जति** इत्युक्तत्वादित्यत आह—**कन्यानुदरवत्तु व्यवहारोऽयमपेक्षाकृतो बादरस्कन्धविषय** इति, यथा 'अनुदरा कन्या' इत्यन्यासामुदरवतीनामुदरेण सदृशमुदरमस्या नास्तीत्युदरवत्येव 'अनुदरा' इत्युच्यते व्यवहारतस्तथा बादरस्कन्धेषु लघुगुरुत्वे। यदपि च लोहपिण्डार्कतूलोदाहरणं तदपि तत्तुल्यापेक्षिकलघुगुरुत्वे एव साधयतीत्यत आह—**एवमेवापेक्षिके**त्यादि यावद**नवस्थितैकत्वे।** [12]अल्पवाचिनि कनि **लोहपिण्डकः** पलमात्रप्रमाणोऽर्कतूल-

---

१ शेषद्रव्याणां धर्मास्तिकायादीनामित्यर्थः॥ २ **लघुगुरु**° प्र०। अयमपि **लघुगुरु**° इति पाठः कथञ्चित् सङ्गच्छत एव, दृश्यतां पृ० ३०१ टि० १॥ ३ **वातं वातं रातीति** भा०॥ ४ °**माण** प्र०॥ ५ **नतरेसु** प्र०॥ ६ °**मेतेदेव पतेत्** भा०। अत्र °**मेतत् पतेदेव** इत्यपि पाठः स्यात्॥ ७ **शिलाबद्धशिलाबद्ध**° य०॥ ८ अत्र **अथ मा** इत्यपि पाठः स्यात्॥ ९ **इत्यन्तल**° प्र०॥ १० **व्यव**° य०॥ ११ **युज्यतीत्युक्त**° प्र०। दृश्यतां पृ० ३०१ पं० ५॥ १२ **अल्पबाधिनि कनि** प्र०। 'लोहपिण्डकः' इत्ययं शब्दः '**कन्**'प्रत्ययान्तः, स च 'कन्'प्रत्ययः '**अल्प**'वाची "अल्पे" [पा० ५।३।८५] इति सूत्रेण विधीयमानत्वादित्याशयः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ ममात्र किम्? द्रव्यं चैतदेवं लघुगुरुत्वापेक्षया तदेव दृष्टम्, न गुणाः। सत्त्वादयो गुणास्त्विमे लघुत्वादिलक्षणा मयोच्यन्ते, द्रव्यता तेषां सन्द्रावे एकत्वापत्तौ भवति।

आ अद्यापि यदि गुणसन्द्रावो द्रव्यमिष्यते ततस्तवाप्येतद्द्रव्यमेव, कुतोऽस्यासन्द्रावः? सत्त्वादयो गुणा लघुत्वादिलक्षणास्तत्सन्द्रुतिलक्षणं द्रव्यमेव, शब्दादिभावेन व्यवस्थानात्, शब्दादिस्वात्मवत्।

अनापन्नतद्रूपस्य असन्द्रुतस्य शब्दादिभावापत्तिकालो व्यवस्थानशब्देनोच्यत

भाराल्लघीयान् 'पलशतिका तुला, विंशतिस्तुला भारः' [ ] इति परिभाषितत्वात्। अयस्पिण्डो गुरुरपि लघुरर्कतूलो लघुरपि गुरुर्दृष्ट इत्यनवस्थितैकगुरुत्वलघुत्वतत्त्वे गुरुलघुत्वे, आपेक्षिकत्वादस्मान् प्रति न गुरुत्वलघुत्वे परस्परतोऽन्ये, ततो नायस्पिण्डार्कतूलदृष्टान्तोऽस्ति। २२१-२

इतर आह—**अथ ममात्र** किमित्यादि याव**देकत्वापत्तौ भवती**ति। यदि युष्मत्सिद्धान्तेनानवस्थिततत्त्वे लघुगुरुत्वे युज्येते ततो युक्तमुक्तम्—अस्मान् प्रत्यसिद्धं 'लघुरेव' इति। ततो ममात्र किम्? यत् पुनरेतदुक्तं 'भवन्तं च प्रत्यसिद्धम्' इति तदयुक्तमुक्तम्। यदपि च भवत्सिद्धान्तेनोक्तं तदपि नोपपद्यते, यस्माद् **द्रव्यं चैतदेवं लघुगुरुत्वापेक्षया तदेव दृष्ट**मिति **न** गुरुलघ्वादयो **गुणाः** सत्त्वरजस्तमांसि च, लघ्वादिप्रकाशाद्यात्मका गुणास्त्विमे तल्लक्षणा मयोच्यन्ते, तेषां गुणानां **सन्द्रावे** सङ्गमे, तदर्थव्यक्तिः **एकत्वापत्ता**विति, तत्रैतस्मिन् गुणैकगमने द्रव्यता **भवति** गुणसन्द्रावो द्रव्यम् [पा० म० भा० ५।१।११९] इति लक्षणात्, ते च गुणाः परस्परतोऽन्ये, तस्मान्नासिद्धमित्यभिप्रायः।

आचार्य आह—**आ अद्यापी**त्यादि याव**च्छब्दादिस्वात्मव**दिति। नन्वेतत्प्रतिपादनमेव वर्तते 'अनन्यत्वं गुणानाम्, तस्मादेकैककारणम्'। यदि भवता गुणसन्द्रावो द्रव्यमिष्यते ततस्तवाऽप्येतद् **द्रव्यमेव,** न गुणाः पृथक्, सन्द्रुतानामेवावस्थानात् **कुतोऽस्यासन्द्रावः?** न प्रधानावस्थायां नापि व्यक्तावस्थायामसन्द्रावः, यतोऽस्यासन्द्रावादद्रव्यत्वं स्यात्। तस्माद् द्रव्यमेव, न पृथग् लघ्वादयो गुणा इति। तत्रापि च प्रतिज्ञायते—**सत्त्वादयो गुणा लघुत्वादिलक्षणाः तत्सन्द्रुतिलक्षणं द्रव्यमेव, शब्दादिभावेन व्यवस्थानात्,** यो यः शब्दादिभावेन व्यवतिष्ठते स सोऽर्थो लघ्वादिलक्षणगुणसन्द्रुति द्रव्यमेव, **शब्दादिस्वात्मवत्,** यथा शब्दादिस्वात्मानः सत्त्वादिगुणसन्द्रुतिलक्षणं द्रव्यमेव शब्दादिभावेन व्यवस्थानात् तथा लघुगुरुत्वादिलक्षणाः सत्त्वादय इति। २२२-१

अनापन्नतद्रूपेत्यादि याव**दुच्यत इति चे**दिति। शब्दादिरूपमनापन्नस्य **सत्त्वस्यासन्द्रुतस्य** गुणान्तरासङ्गतस्य तदनात्मकस्य **स्वेनैव रूपेण स्थितस्य** प्रागारम्भादारभमाणस्य च यः **शब्दादिभावापत्तिकालो** यावदनिष्पन्नशब्दादित्वकाल इत्यर्थः सा ह्यवस्था 'सत्त्वं शब्दकार्यं प्रख्याय शब्दात्मना व्यव-

---

१ "तुला स्त्रियां पलशतम्, भारः स्याद् विंशतिस्तुलाः।" इति अमरकोशे २।९।८७। "पंचपलसइया तुला, दस तुलाओ अद्धभारो, वीसं तुलाओ भारो।" इति अनुयोगद्वारसूत्रे, सू० १३३॥ २ °**वस्थिकगु**° य०। °**वस्थैकगु**° भा०॥ ३ °**रतोनन्ये** प्र०॥ ४ दृश्यतां पृ० ३०१ पं० २॥ ५ **प्रसिद्धम्** प्र०॥ ६ **संभूताना**° प्र०॥ ७ **कुतास्या**° भा०। **कुतस्या**° य०॥ ८ **सत्त्वस्यासत्वस्या**° प्र०॥ ९ दृश्यतां पृ० २८८ पं० २॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति चेत्, न, पूर्वतुल्यत्वात् नान्तरेण प्रवृत्त्याद्येकत्वगतिं व्यवस्थापत्तेः ।

अतो यथाहेत्वैकान्तिकत्वत्प्रयुक्तलक्षणवैलक्षण्यविशेषणपक्षविरचनया त एवान्यत्वहेतवो विपर्यसनीयाः – सुखं मोहाद् गुरोरनन्यत्, लघुत्वात्, लोहपिण्डवदर्कतूलवत् शब्दभावव्यवतिष्ठमानसुखादिवद्वा । तथा दुःखात् प्रवृत्तिशीलादनन्यत्, प्रवृत्तिशीलत्वात्, वायुवदाकाशवदित्यादि । मुक्त्वापि वा लक्षणभेदवैल-

---

तिष्ठमानम्' इति **व्यवस्थानशब्देनोच्यते,** अन्यथा व्यवस्थितमेव शब्दादिभावेन स्यात् सत्त्वमिति । एतच्च **न, पूर्वतुल्यत्वात्,** यथा प्रा[1]गुक्तं लघ्वादिलक्षणसत्त्वाद्यैक्यापत्तिर्द्रव्यम्, तच्च कदाचित् सत्त्वादि-[2]*पृथगवस्थानाभावात् तत्सन्द्रुतिलक्षणमेवोक्त[3]म्, तथेहापि न स कश्चित् कालोऽस्ति यः प्रवृत्तिनियमविरहित-प्रकाशमात्रावस्थानोपलक्षितो यदि* प्रधानावस्थायां यदि व्यक्तावस्थायामिति, अत आह – **नान्तरेण प्रवृत्त्याद्येकत्वगतिं व्यवस्थापत्ते**रिति । आदिग्रहणान्नियमो गृह्यते, प्रवृत्तिनियमावन्तरेण न व्यवस्था-पत्तिरस्ति, अतो हेतो**र्नान्तरेण प्रवृत्त्याद्येकत्वगतिं व्यवस्थापत्तेः** पूर्वेण तुल्यत्वम्, इति नास्ति सत्त्वादिपृथक्त्वं तवापीति ।

अतो यथाहेत्वैकान्तिकेत्यादि यावद् **विपर्यसनीयाः ।** एतस्मादेव सत्त्वाद्येकत्वाद् यो यो हेतुर्यथाहेतु 'सुखं मोहाद् गुरोरन्यद् लघुत्वात्' इत्यादि त्वत्प्रयुक्तः स स हेतुर्विशेषेणासत्पक्षं साधयन्नैकान्तिको भवति । तं प्रति यथैकान्तिको भवति तथोच्यते – **सुखं[5] मोहाद् गुरोरनन्यलघुत्वात्,** यद् यल्लघु तत् तद् गुरो[6]रनन्यत्, **लोहपिण्डवदर्कतूलवत्,** यथा प्रा[7]ग्वर्णितमापेक्षिकमर्कतूलगुरुत्वं लोहपिण्डलघुत्वं चेति त[8]द् द्वयं सहितं दृष्टान्तः । **शब्दभावव्यवतिष्ठमानसुखादिवद्वे**ति लौकिकार्था-
२२२-२ तिक्रमेऽपि त्वन्मतेनैव दृष्टान्तान्तरमिति । **तथा दुःखात् प्रवृत्तिशीलादनन्यत्,** सुखमिति वर्तते । कुतः ? **अप्रवृत्तिशीलत्वाद् वायुवदाकाशवदि**ति पृथक्त्वाभावाद् दर्शयति, यथा वायुराकाशं च सुखात्मकं दुःखात् प्रवृत्तिशीलादनन्यत् तथेहा[9]पी**त्यादि**ग्रहणाद् दुःखं सुखादनन्यद[10]*प्रवृत्तिशीला[11]त्, प्रवृत्तिशीलत्वात्, यद्यत् प्रवृत्तिशीलं तत् तद*प्रवृत्तिशीलादनन्यद् वाय्वाकाशवत् । तथा सुखं दुःखमोहा-भ्यामप्रकाशकाभ्यामनन्यत्, प्रकाशकत्वात्, घटप्रदीपादिसुखवत् । तथा दुःखं मोहादनन्यदचलात्, चलत्वात्, [घट]पर्वतादिदुःखवत्; तथा सुखात् प्रकाशकादनन्यत्, अप्रकाशकत्वात्, प्रदीपघटादि-दुःखवत् । तथा मोहः सुखदुःखाभ्यामगुरुभ्यामनन्यः, गुरुत्वात्, पृथिव्यग्न्यादिगुरुत्ववत् । एवं च सुखत्वाद् दुःखत्वाद् मोहत्वात् प्रसादादिकार्यत्वादित्यादयोऽप्यनन्यत्वहेतव एव । प्रत्येकमितरगुणस्वरूपानन्यत्वं प्रतिज्ञाय त[12]त्तद्रूपविनिवृत्तिहेतुतो यत् किञ्चिद् वस्तूदाहृत्य साध्यम्, सर्वस्य लोष्टादेर्लघुप्रकाशेतरादिपरस्परापृथग्भूतगुणात्मकत्वात् । तद्यथा – शरीरेन्द्रियगत आत्मैकदेशस्तदेकदेशभूताभ्यां रजस्तमोभ्यामनन्यः सुखत्वा-

---

१ दृश्यतां पृ० ३०३ पं० २ ॥ २ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ३ दृश्यतां पृ० ३०३ पं० ५ ॥ ४ दृश्यतां पृ० ३०० पं० १ ॥ ५ **सुखं नोद्गुरो**° प्र० ॥ ६ °**रन्यत्** प्र० ॥ ७ **प्रागुवर्णि**° भा० ॥ ८ **तद्वयं** प्र० ॥ ९ °**पीति आदि**° प्र० ॥ १० * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो भा० प्रतौ नास्ति ॥ ११ °**लाद्-प्रवृत्तिशीलत्वात् यद्यप्रवृत्ति**° य० ॥ १२ **ततद्रूप**° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षण्यविशेषणपक्षविरचनां भेदलक्षणाभिमतेभ्य एव हेतुभ्योऽभेदसिद्धिः शक्या आपादयितुं स्फुटेनैव न्यायाध्वना—सुखं मोहादनन्यत्, अपुरुषत्वेऽचलत्वात्, मोहस्वात्मवत् । दुःखादनन्यत्, अनियमशीलत्वात्, दुःखस्वात्मवत् । दुःखं सुखात्[1]······दुःखस्वात्मवत् ।

नन्वेवं विरुद्धाव्यभिचारिवदुभयानिश्चयः, न, उक्तत्वात्, भावितत्वाच्च सदा

लोष्टवत्, सत्त्वरजोभ्यामनन्यो मोहत्वाल्लोष्टवत् । तथा शरीरेन्द्रियगत आत्मैकदेशस्तदेकदेशभूताभ्यां[2] रजस्तमोभ्यामनन्यः प्रसादकार्यत्वाल्लोष्टवत्, एवं लाघवप्रसवादिभ्यः । तथा सत्त्वतमोभ्यामनन्यः शोषत्वाल्लोष्टवत् । एवं तापादिभ्यः । तथा सत्त्वरजोभ्यामनन्यो[3] वरणत्वात्, एवं सदनादिभ्य इति । एवं तावद् यथाहेत्वैकान्तिकत्वं प्रति त एवान्यत्वहेतवः 'अनन्यत्वहेतवः' इत्युक्तास्त्वत्प्रयुक्तलक्षणवैलक्षण्यविशेषणपक्ष- २२२ १
विरचनया[4] लघ्वादय एव ।

अथवा **मुक्त्वापि**[5] **वा ।** लक्षणभेदहेतूनां 'सुखं मोहाद् गुरोरन्यल्लघुत्वाद् महालोहपिण्डार्कतूलवत्' इत्यादिविशेषणमन्तरेण भेदो न शक्यः साधयितुमिति तद्रचनाकुसृतिर्यथा त्वया क्रियते तथैव मया कृता, किन्तु तां **मुक्त्वापि लक्षणभेदवैलक्षण्यविशेषणपक्षविरचनां** सत्त्वादिभेदलक्षणाभिमतेभ्य[6] एव त्वदुक्तेभ्यो लघ्वादिहेतुभ्योऽभेदसिद्धिः शक्या आपादयितुं **स्फुटेनैव न्यायाध्वना** भ्रान्तिजननेन विनेत्यर्थः । तद्यथा—**सुखं मोहादनन्यत्, अपुरुषत्वेऽचलत्वात्, मोहस्वात्मवत्,** [7]↑ अपुरुषत्वविशेषितः 'अचलत्वात्' इति हेतुः पुरुषादचलाद् व्यावर्त्यते मा भूदनैकान्तिक इति । **दुःखादनन्यत्** सुखमिति वर्तते, **अनियमशीलत्वात्,** अत्रापि ↑ अपुरुषत्वविशेषणं द्रष्टव्यमधिकारात्, **दुःखस्वात्मवदिति ।** तथा **दुःखं सुखादित्यादि**[8] साधनचतुष्टयं[9] सुखादनन्यत्वसाधनद्वयवदपुरुष[त्व]विशिष्टं दुःखमोहयोः संयोगनिष्पन्नमिति साधनषट्कं गतार्थं यावद् **दुःखस्वात्मवदिति*** ।

इतर आह—**नन्वेवं विरुद्धाव्यभिचारिवदुभयानिश्चयः ।** यथोक्तम्—[11]यथोक्तलक्षणयोर्द्वयोर्विरुद्धयोर्नित्यानित्यसाधकयोरेकत्र सन्निपतितयोर्हेत्वोरेकस्मिन् धर्मिणि शब्दे परस्परनिवारितव्याप्त्योः श्रावणकृतकत्वयोः शब्दत्वघटादिदृष्टान्तयोरुभयत्र संशयो भवति [ ] इति, तथेह आवाभ्यामुक्तैरन्यत्वानन्यत्वहेतुभिरुभयानिश्चयोऽस्तु, मा भूत् त्वत्प्रोक्तानामेवैकान्तिकत्वमिति ।

अत्रोच्यते—**न, उक्तत्वात्,** नैष उभयानिश्चयो युज्यते, अस्माभिः[12] [13]**भिन्नात्मकतायां तु** इत्यादि २२३-२
प्रक्रम्य [14]सुखं दुःखादनन्यत् अनात्मत्वे सत्यवरणाद्यात्मकत्वात् दुःखस्वात्मवदित्यादिभिरैकान्तिकैर्हेतुभिरनन्यत्वस्य लिखितत्वात् । अथवा **नोक्तत्वादिति** त्वत्प्रयुक्तानामन्यत्वहेतूनां लघुत्वादीनामुक्तदोषत्वात् [15]सर्वेऽ-

---

१ 'दुःखं सुखादनन्यदनियमशीलत्वात् सुखस्वात्मवत्, मोहादनन्यदप्रकाशात्मकत्वात् मोहस्वात्मवत् । मोहः सुखादनन्यः अचलत्वात् सुखस्वात्मवत्, दुःखादनन्यः अप्रकाशकत्वात् दुःखस्वात्मवत् ।' इति मूलं सम्भाव्यते ॥ २ °**कदेशभूताभ्यां** प्र० ॥ ३ **सत्वतमोभ्या**° प्र० ॥ ४ °**चना ल**° य० ॥ ५ °**पि चापलक्षण**° य० ॥ ६ **सदादिभेद**° प्र० ॥ ७ ↑ ↑ एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ८ **दुःखादीत्यादि** य० ॥ ९ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः °**साधन**° इत्यत आरभ्य °**वदिति** इत्यन्तः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ १० (सुखानन्यत्व)? ॥ ११ "एकस्मिंश्च द्वयोर्हेत्वोर्यथोक्तलक्षणयोर्विरुद्धयोः सन्निपाते सति संशयदर्शनादयमन्यः सन्दिग्ध इति केचित् ।" इति प्रशस्तपादभाष्ये बुद्धिनिरूपणे ॥ १२ **तस्माभिः** प्र० ॥ १३ दृश्यतां पृ० २६० पं० ४ ॥ १४ दृश्यतां पृ० २७८ पं० १ ॥ १५ दृश्यतां पृ० ३०० पं० ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणेषु सन्द्रावस्य । विरुद्धाव्यभिचारिणि चोक्तम्–प्रत्यक्षागमबलीयस्त्वात् तत एव निश्चयोऽन्विष्यते [प्रं० समु० वृ०] **इति । बलीयस्त्वं चास्मद्धेतूनामाद्यहेतुभावनात् ।**

प्येतेऽप्रसिद्धसाध्यधर्मसमन्वयव्यावृत्तयः, अनुमाननिराकृतपक्षाः, अनवधारणे विपर्ययहेतवः, अवधारणे चापक्षधर्मा एवेति । तस्मादनैकान्तिकाः । तेषां चैकान्तिका अस्मदुक्ता निवर्तका एवेति न तुल्यमावयोः ।

इतश्चातुल्यमावयोः – **भावितत्वाच्च गुणेषु सदा सन्द्रावस्य,** बहुधा भावितं हि सदा सत्त्वादयो गुणाः सन्द्रुता एव प्रधानमहदहङ्कारादिसर्वावस्थासु न जातु पृथग्भूतसमवस्थाश्चेति । किञ्चान्यत्, **विरुद्धाव्यभिचारिणि चोक्तम्**, विरुद्धाव्यभिचारिण्यपि न परस्परनिवारितव्याप्तित्वमात्रात् संशय एव, किं तर्हि ? **प्रत्यक्षागमबलीयस्त्वात् तत एव निश्चयोऽन्विष्यते इति** ह्युक्तम्[3], तयोर्विरुद्धाव्यभिचारिणोः पक्षधर्मयोर्यः प्रत्यक्षीकृतार्थेनागमेन बलीयान् प्रत्यक्षसंवादिना प्रत्यक्षेणागमेन च जनितबलाद्वा प्रत्यक्षेणैवागमेनैव वा यथाप्रसिद्धि यो बलीयांस्तत एव निश्चयोऽन्विष्यत इत्यादिव्याख्याविकल्पेषु प्रत्यक्षागमेन घटादिषु प्रसिद्धसाध्यानित्यत्वान्वयस्य कृतकत्वहेतोर्बलीयस्त्वात् ततोऽनित्य इति निश्चयः स्यात्, न तु श्रावणत्वस्य शब्दत्वे प्रत्यक्षीकर्तुं शक्योऽन्वयः शब्दत्वस्याप्रसिद्धत्वादिति, तद्वत् किमिह साधर्म्यमिति चेत्, उच्यते – **बलीयस्त्वं**

---

१ बौद्धाचार्यदिङ्नागविरचितायाः प्रमाणसमुच्चयवृत्तेर्भोटभाषानुवादे परार्थानुमानपरिच्छेदेऽधोनिर्दिष्टः पाठ उपलभ्यते—"गङ् गि-छे स्ग्र-जिद् तॅग्-पर् खस्-लेन् पर् ब्येद्-प देऽि-छे ऽदि ग्नन्-छ्गिस् जिद् दु ऽग्युर् रो शेन् । गल्-ते ऽदि ल यङ् म-तॅग् प-जिद् किय ग्तन्-छ्गिस ब्यस् प-जिद् ल सोग्स् प ऽगऽ-शिग् स्तोन्-पर् मि ब्येद् न नि ऽग्युर् न । ग्ञिग् द्मिग्स्-प न ऽगल् ब दङ् दोन् ग्चिग् ल मि स्रिद्-पऽि पियर् थे-छोम् गिय ग्यु यिन् नो । ऽदि ल यङ् मूङोन्-सुम् दङ् लुङ् स्तोब्स् दङ् ल्दन्-पऽि फिर् दे-खोन् लस् ङेस्-प ब्चल्-पर् ब्यऽो ।" [Tanjur, Mdo, Narthang Edition, No. 95. p. 134 B] अस्य चायमर्थः—"यदा शब्दत्वं नित्यमभ्युपगम्यते तदा अयं [=शब्दो नित्यः श्रावणत्वात् शब्दत्ववत्] हेतुरेव स्यादिति चेत्, स्याद् यदि अत्रापि अनित्यत्वस्य हेतुः कृतकत्वादिः कश्चिन्न प्रदर्श्येत । उभयोरुपलब्धौ विरुद्धयोरेकस्मिन्नर्थेऽसम्भवात् संशयहेतुः । अत्र च **प्रत्यक्षागमबलीयस्त्वात् तत एव निश्चयोऽन्विष्यते ।**" दिङ्नागविरचिते **न्यायमुखे**ऽपि एतदर्थक एव पाठ उपलभ्यते । यद्यपि **न्यायमुख**ग्रन्थः संस्कृतभाषायां नोपलभ्यते सम्प्रति तथापि Yuen-Chwang इत्यनेन १३०० वर्षेभ्यः पूर्वं विहितं **चीन**भाषानुवादमवलम्ब्य Giuseppe Tucci इत्यनेन विहिते English भाषानुवादे निम्नलिखितः पाठ उपलभ्यते –Some object: "the reason: because it is audible" is not असाधारण, as you assume, but it must be a valid reason when we discuss against a [वैशेषिक who] thinks that soundness is eternal". [My reply is] that this argument can be valid until the opponent has not indicated that the reason of non-eternity is the fact of being product etc. But if validity can be reached in either way, since contradiction regarding one and the same object is inadmissible, this kind of reason proves to be a doubtful reason. Moreover in this world the force of direct perception and of authority of the scripture [Agama] is stronger than any argument and therfore we must search after truth on the basis of these [two means of knowledge], p. 34, 35. ॥ २ **न्वेष्यते** प्र० । **द्युक्तम्** भा० । **घ्युक्तम्** डे० लीं० । **त्युक्तम्** वि० । **युक्तम्** पा० रं० ही० ॥ ४ °**मैथर्येत्पत्यक्षी**° भा० । °**मैयोर्यत्यक्षी**° य० ॥ ५ **तद्वत्किमिद** य० । **तद्वत्किमित्याह** भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मा मंस्थास्त्वदीया हेतवो बलीयांसः, अस्मत्पक्षसाधनत्वायेतो विपरिवर्तयितुं शक्यत्वात् । तद्यथा – सुखादन्यद् दुःखम्, प्रसादाद्यनात्मकत्वात्, पुरुषवत् । मोहश्च दुःखादन्यः, तत एव, तद्वत् । मोहादन्ये सुखदुःखे, वरणाद्यनात्मकत्वात्, पुरुषवत् ।

किं त्वान्मात्रादेव विपरिवर्तनम्? त्रैलक्षण्यात्? त्रैलक्षण्याचेत्, आदिलक्षण-

---

चास्मद्धेतूनामाद्यहेतुभावनात्, [1]भिन्नात्मकतायां तु इत्यादि प्रक्रम्य [2]अनात्मत्वे सति अवरणाद्यात्मकत्वादित्यादिभिराद्यहेतुभिः प्रत्यक्षागमबलीयस्त्वमापादितम् । तस्मान्न समं नौ[3]विति ।

इतर आह – **मा मंस्थास्त्वदीया हेतवो बलीयांसः** 'अवरणाद्यात्मकत्वादयः' इति । तदबलत्वं च **अस्मत्पक्षसाधनत्वायेतो विपरिवर्तयितुं शक्यत्वात्** । तद्यथा – पूर्वहेतवस्तावदबलाः, यतः शक्यन्ते त इतोऽपि सुतरां पुरुषनिवृत्त्यर्थमनात्मत्वविशेषणादृतेऽपि विपरिवर्तयितुम् । **तद्यथा – सुखादन्यद् दुःखं प्रसादाद्यनात्मकत्वात् पुरुषवत्,** [4]असमर्थसमासेनागमकेनाप्यर्थं गृहीत्वा नै[5]मित्रोक्त्यनुसारेणोक्तम् । **मोहश्च दुःखादन्यः, तत एव, तद्व**दिति । चशब्दाद् दुःखादन्यौ सुखमोहौ [6]शोषाद्यनात्मकत्वात् पुरुषवत्, तथैव व्याख्या, द्वे साधने समस्योक्ते **मोहादन्ये सुखदुःखे वरणाद्यनात्मकत्वात् पुरुषव**दिति तथैवेति । अत्रोच्यते – **किं त्वान्मात्रादेव विपरिवर्तनम्? त्रैलक्षण्यात्?** इति प्रश्नः । प्रतारणार्थभाववाचिप्रत्ययसहितपञ्चम्यन्तशब्दप्रयोगमात्रात् पक्षधर्मसादृश्यात् त्रैलक्षण्यशून्यान्न परिवर्तनमित्यभिप्रायः । स्यान्मतम् – न त्वान्मात्रात्, किं तर्हि? **त्रैलक्षण्या[7]च्चेदेवं** चेन्मन्यसे, तदयुक्तम्; यस्मा**दादिलक्षणमेव नास्ति,** इह पक्षधर्मत्वमेव तावन्नास्ति यदा[8]धारेण शेषद्वयम् । कथं पक्षधर्मो नास्तीति चेत्, यस्माद् **न** २२४-१

---

१ °**तायास्तु** प्र० । दृश्यतां पृ० २७० पं ४ ॥ २ दृश्यतां पृ० २७८ पं० २ ॥ ३ **नौ** आवयोरित्यर्थः ॥ ४ "वृत्तिस्तर्हि कस्मान्न भवति? अगमकत्वात् । इह समानार्थेन वाक्येन भवितव्यं समासेन च । यश्चेहार्थो वाक्येन गम्यते 'महत्कष्टं श्रितः' इति नासौ जातुचित् समासेन गम्यते 'महत्कष्टश्रितः' इति । एतस्माद्धेतोर्ब्रूमः—अगमकत्वादिति । न ब्रूमः 'अपशब्दः स्यात्' इति । यत्र च गमको भवति, भवति तत्र वृत्तिः, तद्यथा—'देवदत्तस्य गुरुकुलम्, देवदत्तस्य गुरुपुत्रः, देवदत्तस्य दासभार्या' इति । यद्यगमकत्वं हेतुः, नार्थः समर्थग्रहणेन, इहापि 'भार्या राज्ञः, पुरुषो देवदत्तस्य' इति योऽर्थो वाक्येन गम्यते नासौ जातुचित् समासेन गम्यते 'भार्या राजपुरुषो देवदत्तस्य' इति, तस्मान्नार्थः समर्थग्रहणेन । इदं तर्हि प्रयोजनम् – अयमस्त्यसमर्थसमासो नञ्समासो गमकः, तस्य साधुत्वं मा भूत् 'अकिञ्चित्कुर्वाणम्, अमाषं हरमाणम्, अगाधादुत्सृष्टम्' इति । एतदपि नास्ति प्रयोजनम्, अवश्यं कस्यचिद् नञ्समासस्यासमर्थसमासस्य गमकस्य साधुत्वं वक्तव्यम्—'असूर्यंपश्यानि मुखानि, अपुनर्गेयाः श्लोकाः, अश्राद्धभोजी ब्राह्मणः, अलवणभोजी ब्राह्मणः' इति । सुडनपुंसकस्येत्येतन्नियमार्थं भविष्यति – एतस्य वा असमर्थसमासस्य नञ्समासस्य गमकस्य साधुत्वं भवति नान्यस्येति ।" इति **पातञ्जलमहाभाष्ये** २।१।१। "अश्राद्धभोजी । किं योऽश्राद्धं भुङ्क्ते सोऽश्राद्धभोजी? किं चातः? यदासावश्राद्धं न भुङ्क्ते तदास्य व्रतलोपः स्यात्, तद्यथा—स्थायी यदा न तिष्ठति तदास्य व्रतलोपो भवति । एवं तर्हि णिन्यन्तेन समासो भविष्यति, न श्राद्धभोजी अश्राद्धभोजीति । नैवं शक्यम्, स्वरे हि दोषः स्यात् 'अश्राद्धभोजी' [६।२।२] इत्येवं स्वरः प्रसज्येत 'अश्राद्धभोजी' [६।२।१३९] इति चेष्यते । एवं तर्हि नञ एवायं भुजिप्रतिषेधवाचिनः श्राद्धशब्देनासमर्थसमासः न भोजी श्राद्धस्येति । स तर्हि असमर्थसमासो वक्तव्यः । यद्यपि वक्तव्यः अथवैतर्हि बहूनि प्रयोजनानि । कानि? असूर्यंपश्यानि मुखानि, अपुनर्गेयाः श्लोकाः, अश्राद्धभोजी ब्राह्मणः, सुडनपुंसकस्य [१।१।४३] इति ।" इति **पातञ्जलमहाभाष्ये** ३।२।८० ॥ ५ **तहीकोक्त्य**° भा० । **तहीकोक्त्य**° य० । दृश्यतां पृ० २३२ टि० ७ ॥ ६ **सुखाद्यात्म**° य० ॥ ७ °**ण्याच्चेदेवं** भा० । °**ण्यचेदेवं** य० ॥ ८ °**धारणशिष**° प्र० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

मेव नास्ति, न ह्यनात्मनां नाम धर्मः कश्चिदस्ति, न दुःखं न सुखं नान्यत्।

नन्वन्यपदार्थविषयत्वाद् बहुव्रीहेः नास्ति प्रसादाद्यात्मा वरणाद्यात्मा वा स कोऽप्यन्यः स्यात् सद्धर्मवान्। एवमपि यथा 'स्थूलशिरा राहुः' इत्यत्र असत आख्या राहोः शिरोव्यतिरिक्तस्य। असदाख्यया व्यपदेशिवद्भावं कृत्वा व्यवहारो दृष्टस्तथेदमपि स्यात्। तदनभ्युपगमे धर्मधर्मिस्वरूपविरोधौ। धर्मिस्वरूपविरोधस्तावत्–आत्मनोऽनन्यदेव दुःखम्, प्रसादाद्यनात्मकत्वात्, आत्मस्वतत्त्ववत्, अन्यथा सुखान्यत्वप्रसादाद्यनात्मकत्वानुपपत्तेः। धर्मस्वरूपविरोधोऽपि चैवमेव। ततश्च प्रकृति-

---

ह्यनात्मनां[1] **नाम धर्मः कश्चिदस्ति,** यदि प्रसादाद्यात्मा न भवतीत्यनात्मकं दुःखमुच्यते, अथ आत्मैव नास्तीत्यनात्मकमित्युच्यते, द्विधाप्यसिद्धं दुःखस्यानात्मकत्वं धर्म्यसिद्ध्यापत्तेः[2]। कथमिति चेत्, उच्यते–**न दुःखं न सुखं नान्यद्** मोहः पुरुषो वा, त्वत्परिकल्पितं दुःखं प्रसादाद्यनात्मकत्वात् खपुष्पवत् स्यादिति धर्म्यभावादपक्षधर्मत्वम्।

२२४-२ इतर आह–**नन्वन्यपदार्थे**त्यादि यावत् **सद्धर्मवान्।** ननु बहुव्रीहेरन्यपदार्थविषयत्वात् तत्सू-[3]चनसमासान्तकप्प्रत्ययान्तत्वादनात्मकश्रुतेः[4] नास्ति[5] प्रसादाद्यात्मा [वरणाद्यात्मा] वा चित्रगुदेवदत्तवत् स कोऽपि वरणादिभ्यः प्रसादादिभ्यश्चान्यः[6] सन्नेव, नासद्धर्मवान् धर्मी पक्षो भवितुमर्हतीति।

अत्रोच्यते–नैतदुपपद्यते, बहुव्रीहेरप्यन्यपदार्थविषयत्वानैकान्त्यात्[7], **एवमपी**त्यादि यावद्**धर्मधर्मिस्वरूपविरोधा**[8]**विति।** स्थूलं शिरोऽस्य स्थूलशिरा राहुः, कथोऽतत्रत्वाद् बहुव्रीहेरेव तत्रत्वात्, तस्य चान्यपदार्थत्वव्यभिचारं दर्शयति तद्गुणसंविज्ञानपक्षाश्रयणेन, **भवति बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि** [पा०[9] म० भा० २।१।६६, २।२।२४] इति वचनात्, न हि स्थूलशिरोलक्षितस्तद्व्यतिरिक्तो राहुरस्ति चित्रगवविशिष्टदेवदत्तवत्, तदेव हि स्थूलं शिरो राहुः, तद्वद्[10]**सत आख्या राहोः शिरोव्यतिरिक्तस्य।** आख्या व्यपदेशः स्थूलेन शिरसा व्यपदेशेन [11]चित्राभिरिव व्यपदेशिनो देवदत्तस्य व्यतिरिक्तस्य, तद्वदव्यतिरिक्तस्यापि राहोस्तयाख्यया व्यपदेशिवद्भावं कृत्वा व्यवहारो दृष्टोऽसतोऽपि तथेदमपि स्यात्। तस्य व्यपदेशिवद्भावव्यवहारस्यानभ्युपगमे उक्तोपपत्त्या दृष्टमिमसदाख्यया व्यपदेशिवद्भावव्यवहारमनभ्युपगच्छतस्ते धर्मधर्मिस्वरूपविरोधौ दोषौ भवतः। **धर्मिस्वरूपविरोधस्तावदात्मनोऽनन्यदेव दुःखं** पुरुषादित्यर्थः। **प्रसादाद्यनात्मकत्वात्,** बहुव्रीहिसामर्थ्यात् प्रसादाद्यात्मनोऽन्यत्वादित्यर्थः। **आत्मस्वतत्त्ववत्,** पुरुषस्वात्मवदित्यर्थः। पुरुषत्वापत्तिश्च[12] दुःखस्य धर्मिस्वरूपवैपरीत्यम्, अतो धर्मिस्वरूपविरोधः। किं कारणम्? **अन्यथा**
२२५-१ **सुखान्यत्वप्रसादाद्यनात्मकत्वानुपपत्तेः,** पुरुषत्वापत्तिमन्तरेण सुखस्य[13] दुःखादन्यत्वं वरणाद्यनात्मकत्वं

---

१ °त्मनं प्र० ॥ २ °द्धापत्तेः प्र० ॥ ३ (तत्सूचक° ?) ॥ ४ °श्रुते प्र० ॥ ५ 'नास्य [वरणाद्यात्मा] प्रसादाद्यात्मा वा' इत्यपि पाठोऽत्र स्यात् ॥ ६ °न्यः सद्धर्मवान् भा० । '°न्यः सन्नेव, नासन्, धर्मवान्' इत्यपि पाठोऽत्र स्यात् ॥ ७ °प्यन्यर्थविष° य० । °प्यनर्थविष° भा० ॥ ८ °धादिति य० ॥ ९ "भवति बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि । तद्यथा–'शुक्लवाससमानय' 'लोहितोष्णीषाः प्रचरन्ति' इति तद्गुण आनीयते तद्गुणाश्च प्रचरन्ति ।" पा० म० भा० २।१।६६, २।२।२४। "भवति हि बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि । तद्यथा–'चित्रवाससमानय' 'लोहितोष्णीषा ऋत्विजः प्रचरन्ति' इति तद्गुण आनीयते तद्गुणाश्च प्रचरन्ति ।" पा० म० भा० १।१।२६ ॥ १० °द्सत आख्या प्र० । ११ अत्र चित्राभिर्गोभिरिव इत्यपि पाठः स्यात् ॥ १२ °श्च सुखस्य धर्मि° प्र० ॥ १३ सुखदुःखाद° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरुषयोरप्येकतैव । एवं दुःखमोहयोरपि ।

अथ मा भूदेष दोष इत्यनात्मविशेषणत्वात् तद्वत्, तथा सति यथा किम्? दृष्टान्तः 'इदं तत्' इति निदर्शयितुं न शक्यते। न हि सुखादन्यदस्ति किञ्चिदुक्तवदपुरुषम् । यच्च सुखादनन्यत् तदनात्मत्वे न प्रसादाद्यनात्मकं न लघ्वाद्यनात्मकं चेति निदर्शयितुं न शक्यते ।

दुःखस्य वा सुखादन्यत्वं प्रसादाद्यनात्मकत्वं मोहस्य तौ[1]भ्यामन्यत्वं प्रसादादिशोषाद्यनात्मकत्वं च नोपपद्यते भावितन्यायत्वात् सुखदुःखमोहानामैक्यवृत्तित्वस्य । तस्मात् पुरुषस्वरूपापत्तेः प्रसादादिशोषादि[वरणादि]कार्याणां सुखदुःखमोहानां धर्मिस्वरूपविपरीततेति । किञ्चान्यत्, योऽपि ध[2]र्मस्वरूपविरोधः सोऽपीत्थमुच्यते, तद्यथा – **धर्मस्वरूपविरोधोऽपि चैवमेव,** यथा पुरुषत्वापत्तौ सुखादीनां सुखाद्यात्मपरित्यागेन धर्मिस्वरूपविरोधः तथा पौंस्त्वापत्तौ त्रयाणामैक्यापत्तौ चान्यधर्मस्वरूपविरोधश्च । **ततश्च प्रकृतिपुरुषयोरप्येकतैव,** तस्माद्धेतोः पुरुषत्वापत्तेरनन्यत्वापत्तेश्च प्रकृतिः पुरुषादन्या पुमान् वा प्रकृतेरन्य इति नोपपद्यते। ततोऽस्मदभीष्टम् 'एकमेव कारणम्' इत्येतद् दर्शनं साधीयः । **एवं दुःखमोहयोरपि,** यथा 'सुखं दुःखादन्यत्' इत्येतत् 'किं त्वान्मात्रात्? त्रैलक्षण्यात्?' इत्यतः प्रभृति यावत् प्रकृतिपुरुषयोरप्येकतैव इत्युक्तं तथा 'दुःखं सुखमोहाभ्यामन्यत्, मोहः सुखदुःखाभ्यामन्यः' इत्येतेष्वपि चतुर्षु 'सुखं मोहादन्यत्' इति च साधने स ऐ[4]व ग्रन्थो योज्य इति ।

अथ मा भूदेष दोष इत्यनात्मविशेषणत्वात् त्वद्वत् । एतद्दोषपरिहारार्थं यथा त्वया 'अ[5]नात्मत्वे सति अवरणाद्यात्मकत्वात् सुखं दुःखादनन्यद् मोहवत्' इत्याद्यभिहितं तथाहमपि 'अनात्मत्वे सति लघुत्वात् सुखं दुःखादन्यद् मोहवत्' इ[6]त्याब्रवीमीति, अतो धर्मधर्मिस्वरूपविरोधौ प्रकृतिपुरुषदोषश्च नेति । अत्रोच्यते – **तथा सति यथा किम्?** इति । एवं सति 'यथा' किं सुखादन्यत् २२५-२
आत्मानं मुक्त्वेति । **दृष्टान्तः 'इदं तत्' इति निदर्शयितुं न शक्यते** इदं तत् सुखात् पुरुषाच्चान्यद् वस्त्विति समन्वयस्याभावः, य[7]*दनात्मत्वे सति लघुत्वादिधर्म तत् सुखात् पुरुषाच्चान्यदिति वस्त्वन्तराभावात्। तद्दर्शयन्नाह – **न हि सुखादन्यदस्ति किञ्चिदुक्तवदपुरुषम्?** पुरुषव्यतिरिक्तं हि सर्वं परस्पराविविक्तसु[8]र्खादिस्वतत्त्वमेवेत्युक्तम् । तस्मादन्यत् सुखमेव सर्वमिति समन्वयाभावः* । अत एव चान्यत्वेन पक्षीकृते सु[9]खादौ पुरुषव्यतिरिक्तसपक्षाभावात् सुखादेरपि सुखादन्यस्य विपक्षत्वाद् विपक्षाद्धेतोर्व्यावृत्त्यर्थं यदुच्यते **यच्च सुखादनन्यत् तदनात्मत्वे न प्रसादाद्यनात्[10]मकं न लघ्वाद्यनात्[11]मकं चेति निदर्शयितुं न शक्यते,** न च मोहादि सुखादन्यन्न भवतीत्यशक्यं दर्शयितुमिति विपक्षाव्यावृत्तिरपि । अतो विपक्ष एव सत्त्वाद् विरुद्धाश्च ते हेतव इत्यभिप्रायः ।

---

१ **त्वाभ्या**° य० । (वाभ्या° ?) ॥ २ **धर्मिस्व**° प्र० ॥ ३ दृश्यतां पृ० ३०७ पं० ५ ॥ ४ **एवं** प्र० ॥ ५ **अनात्मकत्वे सवरणा**° प्र० । दृश्यतां पृ० २७८ पं० २ ॥ ६ (इत्यादि ब्रवीमि?) ॥ ७ **यथानात्मत्वे** भा० । (यथानात्मत्वे?) । * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ८ °**दिभ्यतत्व**° भा० ॥ ९ **सुखादिपुरुष**° य० ॥ १० °**त्मकत्वं** भा० ॥ ११ °**त्मकत्वं** प्र० ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अथ तु यद् विभक्तस्वतत्त्वं दुःखमोहाभ्यां सुखादन्यन्न भवति तत् प्रसादाद्यनात्मकमपि न भवति यथा सुखम् । तथा सति तथानियमवत् तथाप्रवर्तनात् तथाऽव्यक्तेश्च नियमप्रवृत्तिप्रकाशात्मकं सुखमेवेति ऐक्यं मोहादीनामभ्युपगतं त्वयैवेति को वादार्थ उभयोरपि? तत्रैव त्ववरणाद्यात्मकत्त्वादिवद् विदोषा लघ्वादिहेतवोऽपि सुखादावपि च विपरिहारपक्षीकृतेऽपि च ।

परधर्मेणापि सुखं दुःखादनन्यत्, चलाप्रकाशकत्वात्, अविभक्ताशेषगुणात्मकलोष्टवत् । एवं च स्थिते सुखं दुःखादनन्यत्, लघुत्वादप्रवृत्तिशीलत्वात् प्रका-

---

अथ त्वित्यादि यावत् **सुख**मिति । अथ मतं तत्र यद् विभक्तस्वतत्त्वं दुःखमोहाभ्यां तत् सुखं सुखादन्यन्न भवति तत् प्रसादाद्यनात्मकमपि न भवतीति विविक्तस्वरूपस्य सुखस्य दुःखादन्यत्वात् प्रसादाद्यात्मकत्वाच्च तदेव शक्यते वैधर्म्येण निदर्शयितुम् । अत एव च तमः सुखादन्यद् विविक्तस्वरूपमप्रसादा-त्मकमपुरुषं[1] चेति साधर्म्यदृष्टान्तश्च स्यादिति । एवमितरसाधनेष्वपि उभयदोषपरिहार इति । अत्रोच्यते— **तथा सती**त्यादि यावत् **को वादार्थ उभयोरपि?** इति । एवं सति तेन प्रकारेण नियमोऽयं यत् सुखादन्यन्न भवति तत् प्रसादाद्यनात्मकमपि न भवत्येवेति एतेन प्रकारेण नियमवत् सुखमेवानन्यत् प्रसादाद्या-
२२६-१ त्मकं भवति चेति **तथा** तस्य वस्तुनः **प्रवर्तनात् तथाऽव्यक्तेश्च नियमप्रवृत्तिप्रकाशात्मकं सुखमेवेति** तदभ्युपगमेनैवैक्यं मोहादीनामापन्नमस्मिन् साधने, एतदभ्युपगमवच्च शेषसाधनेष्वपि 'दुःखादन्यत् सुखं मोहश्च' इत्येवमादिषु 'यद् यदनात्मत्वे[2] दुःखादन्यन्न भवति तच्छोषादिवरणाद्यनात्मकमपि न भवति' इत्येवं नियमाद् व्यक्तेः प्रवृत्तेश्चैक्यं मोहादीनामभ्युपगतं त्वयैवेतीतरेतरैकत्वाभ्युपगमः । इतिशब्दो हेत्वर्थे, इत्यतः **को वादार्थः** वादप्रयोजन**मुभयो**रावयोः? त्वयैवैक्याभ्युपगमात्र वादार्थस्तव ममापि प्रतिपन्नार्थप्रतिपादनवैफल्यादिति । एवं तावदवरणाद्यात्मकत्वादिहेतवः प्रथमोक्तानन्यत्वपक्षस्यैव साधका अनात्मत्वविशेषणा अपि नान्यत्वपक्षस्येति प्रतिपादिताः ।

तत्रैवानन्यत्वपक्ष एव **त्ववरणाद्यात्मकत्वादिवद् विदोषा लघ्वादिहेतवोऽपि,** नान्यत्वपक्षे, तत्र सदोषा एवेत्यभिप्रायः । ननु लघ्वादयोऽनन्यत्वहेतव उक्ता एव, किं पुनरनुशयेन? इति, अत्रोच्यते— **सुखादावपि च** न सत्त्वादिष्वेव, तत्रापि च **विपरिहारपक्षीकृतेऽपि च,** न यथा त्वया 'सुखं मोहाद् गुरोरन्यत्' इति परिहारपक्षीकृते[4] चैव ।

परधर्मेणापि 'दुखं सुखादनन्यत् लघुत्वात्' इत्येतेनापि, न केवलम् अनात्मत्वे चलत्वादेवेतीत्थं विशिष्टेन प्रतिपादनविधिना अनन्यत्वहेतव इति । **अपि**शब्दात् स्वधर्मेण 'सुखं दुःखादनन्य-लघुत्वात्' इत्यादिभिः सुकरप्रतिपादनमेवेत्यर्थः । परधर्मेण तावत् **सुखं दुःखादनन्यत् चला-प्रकाशकत्वात्,**[5] चलमप्रकाशकं प्रवृत्तिशीलं दुःखम् [ ][3] इति वचनाद् दुःखधर्मेण सुखं
२२६-२ ततोऽनन्यदिति साध्यते । **अविभक्ताशेषगुणात्मकलोष्टव**दिति दृष्टान्तः प्रागुपवर्णितः, अविभक्ताः[6] सुख-दुःखमोहात्मकसत्त्वरजस्तमोगुणात्मको लोष्ट इति त्रित्वैक्यानतिक्रमाच्च त एवाशेषगुणाः, तदात्मको लोष्टः

---

१ °त्मकपुरुषं प्र० ॥ २ °त्मकत्वे य० ॥ ३ दृश्यतां पृ० ३०४ पं० ३ ॥ ४ °कृताचेव भा० । °कृतात्वेव य० । अत्र 'कृतेष्वेव' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ५ °शत्वात् प्र० ॥ ६ °क्तः सुख° भा० । °क्ता सुख° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शकत्वात् । तत्संयोगाच्च, एवं मोहादपि । परधर्मेण चलत्वादप्रकाशकत्वात् प्रवृत्तिशीलत्वात् तत्संयोगाच्च, एवं मोहादपि । एवं गुरुत्वादप्रकाशकत्वात् तत्संयोगाच्च, एवं मोहादपि । द्वाभ्यामप्यनन्यत् सहिताभ्याम् । एत एव सर्वे इत्यनया दिशा अभ्यूह्याः स्वपरधर्माः प्रसादादयश्च । इतरेतरसंयोगेन च भङ्गविकल्पाः सङ्कलनीयाः । एवमेव चैत एव दुःखमोहयोरपि । अन्येऽप्यचेतनत्व······शरीराद्यापत्तित्वादिप्रकृतिधर्मैः । इत्यतः कुतः सङ्कलना प्रत्येकद्वित्रिचतुरादिसंयोगधर्मानन्त्यात् ।

चलाप्रकाशात्मकत्वाद् दुःखादनन्यँ[1] इति स एव लोष्टो दृष्टान्तो भावितसुखाद्येकात्मकत्वात् । एवं तावत् परधर्मेण । **एवं च स्थिते**[2]ऽस्वधर्मेणापि लोष्टाद्यर्थानां सुखाद्येकात्मकत्वे स्थितेऽनन्यत्वे लघुत्वादिहेतवोऽपि साधका इति तद्दर्शयति – **सुखं दुःखादनन्यल्लघुत्वात्** [3]लोष्टवदिति वर्तते । एवम**प्रवृत्तिशीलत्वात् प्रकाशकत्वात्** । एतानि च चत्वारि साधनानि, प्रत्येकं त्रीणि तान्येव समुदितान्येकमिति । अत्र द्विकसंयोगेनापि त्रीणि – लघ्वप्रवृत्तिशीलत्वात्, लघुप्रकाशात्मकत्वात्, अप्रवृत्तिप्रकाशात्मकत्वादिति । **एवं मोहादपी**ति, 'मोहात् सुखमनन्यत्' इत्यत्रापि त एव हेतवस्तावन्तः । परधर्मेण सुखस्य दुःखधर्माभ्यां प्रत्येकं द्वे समुदायेनैकमिति त्रीणि – चलत्वादप्रकाशकत्वाच्चलाप्रकाशकत्वादिति । **प्रवृत्तिशीलत्वादि**त्यपि, तत्संयोगेनेतराभ्यामपि सप्त साधनानि । **एवं मोहादपी**ति मोहादनन्यच्चलत्वादित्यादिभ्यस्तेभ्य [एव] । एवं सुखं दुःखादनन्यद् **गुरुत्वादप्रकाशकत्वात् तत्संयोगाच्चे**ति मोहधर्मेभ्यस्त्रिभ्यः । **एवं मोहादपी**ति तेभ्य एव मोहधर्मेभ्यस्त्रिभ्यो मोहादप्यनन्यत् सुखमिति । **द्वाभ्यामप्यनन्यत् सहिताभ्या**मिति दुःखमोहाभ्यामनन्यत् सुखं लघुत्वादित्यादिभ्यस्तेभ्य एव हेतुभ्यो द्वित्रिचतुरादिसंयोगेन तँत्[4] प्रत्येकं चानुगन्तव्यमित्यत आह – **एत एव सर्वे इत्यनया दिशाभ्यूह्याः**, न केवलमेत एव लघुत्वादयश्चलत्वादयो गुरुत्वादयो २२७-१ वा स्वपरधर्मा हेतवः, किं तर्हि ? **स्वपरधर्माः प्रसादादयश्च**, प्रसादलाघवादयः शोषतापभेदादयो वरणसदनापध्वंसनादयश्च । **इतरेतरे**त्यादि, द्वित्रिचतुरादिसंयोगेन च[*5] भङ्गविकल्पाः सङ्कलनीयाः । **एवमेव चैत एव दुःखमोहयोरपी**ति सुखात् परस्परतश्चानन्यत्वं योज्यं प्रतिज्ञानां च प्रत्येकं द्वित्रिसंयोगेन[*] चेति सुखस्य दुःखाद् मोहाद् द्वाभ्यां चानन्यतया तिस्रः, एवं दुःखस्य तिस्रः, मोहस्य तिस्रः, त्रयाणां परस्परतोऽनन्यतयैकैवेति दश प्रतिज्ञाः । एतासु सुखधर्मा लघ्वादयः, दुःखधर्माश्चलादयः, मोहधर्मौ गुर्वप्रकाशौ, प्रत्येकं द्विकादिसंयोगेन सप्तत्यधिकं शतं साँधनानाम्[6] । लाघवगौरवे त्वपनीय प्रसादादिशोषादिवरणादीनां च हेत्वग्रं पञ्चषैँष्टिसहस्राणि[7] पञ्च शतानि च षट्त्रिंशानि । किञ्चान्यत्, न केवलमेत एव हेतवः, **अन्येऽप्यचेतनत्वे**त्यादि समासदण्डकमध्ये यावच्छ**रीराद्यापत्तित्वादिप्रकृतिधर्मैः** सामान्यभूतै-

---

१ **°न्यदिति** प्र० ॥ २ **स्थिते स्वध°** य० ॥ ३ **लोष्टादिवदिति** य० ॥ ४ **तत्** य० प्रतिषु नास्ति ॥ ५ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ६ 'लघुत्वात्, अप्रवृत्तिशीलत्वात्, प्रकाशकत्वात्, लघ्वप्रवृत्तिशीलत्वात्, लघ्वप्रकाशकत्वात्, अप्रवृत्तिप्रकाशात्मकत्वात्, लघ्वप्रवृत्तिप्रकाशात्मकत्वात्' इति सप्तानां सुखधर्माणां 'चलत्वात्, अप्रकाशकत्वात्, प्रवृत्तिशीलत्वात्, चलाप्रकाशकत्वात्, चलप्रवृत्तिशीलत्वात्, अप्रकाशकप्रवृत्तिशीलत्वात्, चलाप्रकाशकप्रवृत्तिशीलत्वात्' इति सप्तानां दुःखधर्माणां 'गुरुत्वात्, अप्रकाशकत्वात्, गुर्वप्रकाशकत्वात्' इति मोहधर्माणां च त्रयाणां सङ्कलनया सप्तदशानां हेतूनां 'सुखं दुःखादनन्यत्' इत्यादिभिर्दशभिः प्रतिज्ञाभिर्गुणने सप्तत्यधिकं शतं साधनानां लभ्यते ॥ ७ "सुखानां शब्दस्पर्शरसरूपगन्धानां प्रसादलाघवप्रसवाभिष्वङ्गोद्धर्षप्रीतयः कार्यम्, दुःखानां शोषतापभेदोपष्टम्भोद्वेगापद्वेषाः, मूढानां वरणसदनापध्वंसनबैभत्स्यदैन्यगौरवाणि ।" इति पूर्वं [पृ० १२ पं० १८–२०] व्यावर्णितेभ्योऽष्टादशभ्यो धर्मेभ्यो लाघवगौरवयोरपनयने कृतेऽवशिष्टानां षोडशानां धर्माणां प्रत्येकं द्विकादिसंयोगेन च इयं हेत्वग्रसङ्ख्या बोध्या ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्वेवं स्ववचनविरोधादि, न, तवात्मन एवोपालम्भात्, प्रधान·········अभ्युपगमात्। हेतुविरुद्धतोक्तावप्येवमेव। इति स्फुटमेव सुखं सदा व्यक्तशब्दस्पर्शरूपरसगन्धमेवेत्यभ्युपगम्यतां तेभ्य एव लघ्वादिहेतुभ्यो वियदादिवत्। स्वमतेन तु व्यक्तशब्दस्पर्शरूपरसगन्धवत्प्रतिज्ञायां वियद्वर्जान्युदाहरणानि।

रविशेषितैश्च अपुरुषत्वे सति सत्त्वात् प्रमेयत्वात् सर्वगतत्वादकृतकत्वादित्यादि वा यावत् किञ्चिदिहास्ति
२२७-२ सर्वं तदनन्यत्वे त्रिलक्षणतां प्रतिपद्यते धर्मजातमित्यतः **कुतः सङ्कलना? न शक्यमेव सङ्कलयितुं प्रत्येकद्वित्रिचतुरादिसंयोगधर्मानन्त्यादिति** स्वपक्षसाधनहेतुसौलभ्यं दर्शयति भावितत्रैगुण्यैकात्मकलोष्टादिवस्तुन्यायव्यापित्वादिति।

इतर आह—**नन्वेवं स्ववचनविरोधादी**ति, 'सुखं दुःखादनन्यत्' इति प्रत्यक्षं सुखदुःखयोः प्रतिपुरुषं स्वानुभवेन पृथक्त्वसिद्धेः शरीरविकारादिभिरनुमेयत्वाच्च लोकप्रसिद्धेरभ्युपगतत्वाच्च त्वयापि स्ववचनेन च 'सुखं दुःखम्' इति पृथगुच्चारणात् स्ववचनाभ्युपगमलोकप्रसिद्धिप्रत्यक्षानुमानविरोधदोषा अनन्यत्वप्रतिज्ञाया इति। एतच्चायुक्तम्, **तवात्मन[1] एवोपालम्भात्[2]**, यस्मादेव पुनः स्वसिद्धान्त एव स्ववचनादिविरोध[3] उन्नीयते त्वया आत्मन एव, न[4] मम, मामुद्दिश्यात्मनोऽपरिहारेण[5] वचनवक्तृतयोच्यते। कुत इति चेत्, उच्यते—**प्रधानेत्यादि यावदभ्युपगमात्।** प्रधानमेकं सुखदुःखमोहात्मकत्वादभिन्नगुणात्मकं[6] साम्येन चावस्थितमिति कस्यायं स्ववचनविरोधः? तथा परस्परमुपकुर्वन्ति सत्त्वादयः शब्दादिभावेन च व्यवतिष्ठन्ते प्रत्येकं सुखाद्यात्मनेति सुखादित्र्यात्मकत्वं न घटादावेकस्मिन्नेव चेति त्वयैवाभ्युपगतत्वादैक्यं नान्यत्वोक्तेश्चेति कस्य स्ववचनादिविरोधदोषाः? इति स्वस्थेन चेतसा चिन्त्यताम्, मम तु त्वद्दोषोद्भावनपरप्रयासत्वाददोषः, एवमस्मद्दोषोत्कीर्तनद्वारेण स्वदोषोत्कीर्तनमेवैतद् भवत इति।

२२८-१ किञ्चान्यत्, **हेतुविरुद्धतोक्तावप्येवमेव,** यथोक्तमेते हेतवः सप्रपञ्चाः सविशेषणनिर्विशेषणाः प्रतिज्ञादोषोद्भावनद्वारेण विरुद्धाव्यभिचार्युद्भावनद्वारेण चैतेऽस्मत्पक्षस्यानन्यत्वस्य साधका इति तथा हेतुविरुद्धताप्यन्यत्वपक्षे प्राग्व्याख्यातसमन्वयव्यावृत्त्यभावविधिना[7] अनन्यत्वपक्ष एव दर्शनादिति।

तदुपसंहारार्थमाह—**इति स्फुटमेवे**त्यादि यावद् **वियदादिवदिति, इति**शब्दोपसंहारार्थत्वात्। यदभिलष्यते त्वया प्रधानं नाम गुणसाम्यावस्थानं किञ्चिदस्तीति तन्नाभिलषणीयम्। **सुखं सदा व्यक्तशब्दस्पर्शरूपरसगन्धमेवेत्यभ्युपगम्यतां**[8] स्फुटमेव, किमन्यापदेशेन[9] परदोषाभिधानेन वा? तत्त्ववादिनैव भवितव्यमृजुना। **तेभ्य एव लघ्वादिभ्यो हेतुभ्यो वियदादिवत्,** यथा आकाशवाय्वग्न्यम्भुवः पञ्च महाभूतानि व्यक्तशब्दादिभावानि तथा सुखमिति लघ्वादिभ्य एव हेतुभ्यः पृथिव्यामिव शब्दादयः पञ्चापि शेषेष्वपि चतुर्षु भूतेषु व्यक्ता इत्यभ्युपगम्यताम्। परिणतिविशेषात्तु हिङ्गुगन्धवत् सूपे लवणरसवच्चाप्सु कस्यचिदेव प्रत्यक्षता शब्दादेर्न शेषस्याभिभवादिभिरिति। परमतेनैवैतदुक्तम्। **स्वमतेन तु व्यक्तशब्दस्पर्शरूपरसगन्धवत्प्रतिज्ञायां वियद्वर्जान्युदाहरणानीति,** स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः

---

१ तदात्मन भा० वि० ॥ २ °पल° प्र० ॥ ३ °दितिविरोध प्र० ॥ ४ न मन मोमुद्दिश्य प्र० ॥ ५ °त्मनोपरि° पा० रं० ही० । °त्मने परि° वि० । °त्मनपरि° डे० लीं० । °त्मपरि° भा० ॥ ६ °त्वादिभिन्न° भा० ॥ ७ यद्यभि° प्र० ॥ ८ °गन्धं वे भा० । °गन्धवे° य० ॥ ९ °न्यापादनेन य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रयविषयसमन्वय·········वीतानां व्यवहारसम्प्रसिद्ध·········हेतुत्वावधारणार्थानां चावीतानामतथार्थत्वात् समस्ततन्त्रार्थविघटनमेव ।

[तत्त्वार्थ० ५।२३] इति सामान्येन अणवः स्कन्धाश्च [तत्त्वार्थ० ५।२५] मूर्तत्वात् पृथिवीवद् वाय्वादयोऽपि ।[1] शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यादयै[2]स्तु स्कन्धेष्वेव पुद्गलेष्विति । आकाशस्यावगाहोप[3]कारस्य नैते धर्माः सन्तीति वादपरमेश्वरमतम्, अतो **वियद्वर्जान्युदाहरणानि** इत्युक्तम् ।

इत्थं सुखदुःखमोहानां जात्यन्तरत्वासिद्धिरापादिता । तस्मा[4]देव च वीतावीतानां सुखादित्रैगुण्यकारणपूर्वकत्वानुमानस्यानुमानाभासतेत्यत आह — **त्रयविषयसमन्वये**त्यादि यावद् **वीतानाम्**, **व्यवहारसम्प्रसिद्धे**त्यादि यावच्च **हेतुत्वावधारणार्थानां चावीतानामतथार्थत्वा**दिति । तेषां वीतावीतानां लक्षणं तद्यथा — [6]प्रागनुमानं सप्रभेदं व्याख्याय तेषां यदेतत् सामान्यतो दृष्टं शेषवदेष हेतुरतीन्द्रियाणां भावानां समधिगमे, त[7]स्य प्रयोगोपचारविशेषाद् द्वैविध्यम्, वीत इति सामान्येन, विशेषेण तु स्वरूपाद् वीतसिद्धिः, यदा हेतुः

---

१ **शब्दसम्बद्ध°** प्र० । "रूपरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः । ५।२३ । शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च । ५।२४ । अणवः स्कन्धाश्च । ५।२५ ।" इति **तत्त्वार्थसूत्रे** ॥ २ **°यवस्तु** प्र० ॥ ३ "गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः ।५।१७। आकाशस्यावगाहः ।५।१८।" इति **तत्त्वार्थसूत्रे** ॥ ४ **°देव च वीता°** प्र० ॥ ५ दृश्यतां पृ० २३२-१ ॥ ६ "प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टं त्रिविधमनुमानमाख्यातम् । तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकमाप्त श्रुतिराप्तवचनं तु ॥ ५ ॥ सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां प्रसिद्धिरनुमानात्······॥ ६ ॥" **साङ्ख्यका०** ॥ ७ "तस्मात् सिद्धं सामान्यतो दृष्टादतीन्द्रियाणामर्थानां समधिगमः । तस्य प्रयोगमात्रभेदाद् द्वैविध्यम् – वीतः अवीत इति । तयोर्लक्षणमामनन्ति— 'यदा हेतुः स्वरूपेण साध्यसिद्धौ प्रयुज्यते । स वीतोऽर्थान्तरक्षेपादितरः परिशेषितः ॥ १ ॥' स्वरूपं हि साधनस्य द्विविधम्—साधारणमसाधारणं च । तत्र साधारणं साध्यसद्भावि···। असाधारणं पुनः परिमाणमन्वयः सङ्घातपरार्थत्वमित्यादि । तत्र यदा हेतुः परपक्षम[न]पेक्ष्य यथार्थेन स्वरूपेण साध्यसिद्धावपदिश्यते तदा वीताख्यो भवति । यदा तु स्वसाध्यादर्थान्तरभूतानां प्रासङ्गिकाणां क्षेपमपोहं कृत्वा परिशेषतः साध्यसिद्धावपदिश्यते तदाऽवीताख्यो भवति । तद्यथा—न चेत् परमाणुपुरुषेश्वरकर्मदैवकालस्वभावयदृच्छाभ्यो जगदुत्पत्तिः सम्भवति परिशेषतः प्रधानादिति तदा पुनरवीताख्यो भवति । तत्र यदा वीतो हेतुः······वाक्यभावमुपनीयते···तदा अवयविवाक्यं परिकल्प्यते । तस्य पुनरवयवाः— ······साध्यावधारणं प्रतिज्ञा । साधनसमासवचनं हेतुः । साध्यतेऽनेनेति साधनं लिङ्गम्, समासः संक्षेपः, साधनस्य समासवचनं साधनसमासवचनम् । साधनग्रहणं तदाभासप्रतिषेधार्थम्, न हि तानि साधनं संशयविपर्ययहेतुत्वात् । समासग्रहणमवयवान्तरावकाशप्रदानार्थम् । लिङ्गनिर्देशमात्रं हेतुः । यस्तु तस्य साध्यसहभावित्वलक्षणः प्रपञ्चः सोऽवयवान्तराणीत्युक्तं भवति । उदाहरणं **स्वत्र नि**(तश्नि ?)**दर्शनं** दृष्टान्तः, तस्य साधनस्य साध्येन सहभावित्वनिदर्शनं दृष्टान्तः, तद्यथा— संहत्यकारिणां परार्थत्वं दृष्टं यथा शयनासनरथचरणानाम् ।···साध्यदृष्टान्तयोरेकक्रिया उपसंहारः उपनयः, साध्यस्य चक्षुरादिपारार्थ्यलक्षणस्य दृष्टान्तस्य च शयनादेरेकक्रिया उपसंहारः । तत्रार्थान्तरभूतत्वात् साध्यदृष्टान्तयोरञ्जसा नैकक्रिया उपपद्यते, तेनैव तस्यानिदर्शनादित्यतो धर्मसामान्याद् यथेदं तथेदमित्येकक्रिया उपचर्यते । यथा शयनादयः संहतत्वात् परार्था एवं चक्षुरादिभिरपि परार्थैर्भवितव्यम् । योऽसौ परः स पुरुषः । तद्वशात् प्रतिज्ञाभ्यासो निगमनम् । हेतुदृष्टान्तोपसंहारापेक्षया पुनरभ्यासस्तन्निगमनम्, तद्यथा—तस्मादस्ति पुरुषः । इत्येषामवयवानां विशिष्टार्थसमुदायो वाक्यमित्यतिदिश्यते ।······ वीतः, तस्य पुरस्तात् प्रयोगं न्याय्यमाचार्या मन्यन्ते । किं कारणम् ? अवीतलक्षणाविरोधात्, अवीतस्य हि लक्षणं परिशेषतः साध्यानुग्रहः । तत्रान्वयादिना स्वरूपेणानधिगते प्रधानलक्षणे धर्मिणि परपक्षप्रतिषेधमात्रेण उपसंहारे क्रियमाणे परिशेषलक्षणं बाध्यते । कस्मात् ? इह प्रतिषेधमात्रमादावुच्यते, तेन यथा हेतुविरोधात् परमाण्वादिभ्यो न व्यक्तमुत्पद्यते तथा हेत्वभावात् प्रधानादपि नोत्पद्यते इति शक्यं कल्पयितुम्, अतस्तद्व्यवच्छेदोऽपि चावीताद् गम्यते, तथा सति कः परिशेषः स्यात् ? स्वरूपेण तु परिच्छिन्ने धर्मिणि उपसंहारो यथावदवकल्पते — न चेत् परमाण्वादिभ्य उत्पद्यते परिशेषतः प्रधानादेव व्यक्तमुत्पद्यते । परिशेष इति यथोक्तेभ्योऽन्वयादिभ्य इत्युक्तं भवति । तस्मात् प्राग् वीतप्रयोगः । इति सिद्धं सामान्यतो दृष्टादनुमानादतीन्द्रियाणामर्थानां समधिगम इति ।" इति **साङ्ख्यकारिकाया युक्तिदीपिकावृत्तौ**, का० ६ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

२२८-२ परपक्षमनपेक्ष्य[1] स्वेनैव रूपेण कार्यसिद्धावपदिश्यते तदा वीताख्यो भवति । परिशेषादावीतसिद्धिः,[2] यदा नेदमतोऽन्यथा सम्भवति अस्ति चेदम् तस्मात् परिशेषतो 'हेतुरेवायम्' इत्यवधार्य कार्यसिद्धावपदिश्यते तदा आवीताख्यो भवतीति प्रयोगलक्षणम्, स्वलक्षणं त्वस्य परपक्षप्रतिषेधेन स्वपक्षपरिग्रहक्रिया आवीत इति । वीतस्य [आवीतस्य] वा भावः पञ्चप्रदेशः – प्रतिज्ञा हेतुः दृष्टान्त उपसंहारो निगमनमिति । तत्र साध्यावधारणं प्रतिज्ञा, साधनसमासवचनं हेतुः, तन्निदर्शनं दृष्टान्तः, साध्यदृष्टान्तयोरेकक्रियोपसंहारः, प्रतिज्ञाभ्यासो निगमनमिति । पुरस्ताद् वीतस्य प्रयोगं न्याय्यं मन्यन्ते पश्चादावीतस्येति ।

प्रयोगश्च – अस्ति प्रधानं भेदानामन्वयदर्शनात्, आध्यात्मिकानां[3] भेदानां कार्यकारणात्मकानामेकजातिसमन्वयो दृष्ट इति चन्दनशकलादिदृष्टान्तं वक्ष्यति । सामान्यपूर्वकाणां च **भेदाना**मित्यादि एकजातिसमन्वयप्रदर्शनार्थसुखादित्रिगुणैकजातिसमन्वयं कार्यात्मकानां[4] तत्सन्निवेशविशेषत्वं पक्षीकृत्य **'एककार्यत्वात्'** इति हेतुमाह तथोत्तरत्रोपसंहारात् । **पञ्चानां पञ्चाना**मित्यादिवीप्सया व्याप्तिं दर्शयति । तथा करणात्मकानां नेयम् । प्रसादादिशोषादिवरणादिकार्यात्मकं दृष्टं गुणत्रयैकजातिसमन्वितम् । तैरारब्धान्याकाशादीनि भूतानि एकोत्तरगुणवृद्ध्या तत्कार्यत्वात् तत्समन्वयाच्च तत्पूर्वकाणि । तथा बाह्यानामपि तैर्यग्योनमानुषदैवानां तत्पूर्वकतेति । तस्मात् त्रैगुण्यसमन्वितत्वाद् भेदास्त्रिगुणपूर्वकाश्चन्दनशकलादिवत् । **शकल-**
२२९-१ **कपालामत्रभूषणप्रभृतीना**मिति व्याप्तिदर्शनार्थं साधनस्य दृष्टान्तबाहुल्यम् ।

इतश्च अस्ति प्रधानं भेदानां परिमाणात्[5] । आध्यात्मिकानां कार्यकारणात्मकानां परिमाणं दृष्टम् । सामान्यतस्त्रयः सुखदुःखमोहाः, कार्यकरणविशेषतः[6] षोडश भावाः पञ्च भूतानि एकादशेन्द्रियाणि चेत्यादि

---

१ °व्यपेक्षश्चेनैव रूपेण प्र० ॥ २ यद्यपि प्रायः सर्वत्र **साङ्ख्या**दिदर्शनग्रन्थेषु **अवीत**शब्दस्यैव प्रयोगो दृश्यते **न**यचक्रवृत्तौ तु सर्वत्रापि **आवीत**शब्दप्रयोग एवोपलभ्यते तथापि **आवीत**शब्दप्रयोगः शुद्ध एव प्रतीयते **कु**मारिलभट्टविरचिते **मीमांसाश्लोकवार्तिकेऽपि **आवीत**शब्दस्यैव प्रयोगात्, तद्यथा—"ततोऽप्यावीतहेतुभिरनैकान्तिक इति अक्षरचतुष्टयाधिकेनार्धश्लोकेनाह – **पक्षीकुर्याद् यदा सर्वांस्तदाप्यावीतहेतुभिः । अनैकान्तः** इति । ये हि विपक्षव्यतिरेकेणैवार्थं प्रतिपादयन्ति तेऽत्रावीतहेतवोऽभिधीयन्ते, यथा प्राणादयो निरात्मकेभ्यो घटादिभ्यो निवृत्ता जीवच्छरीरे दृश्यमानास्तद्व्यवच्छेदेनैव सात्मकत्वमवगमयन्तीत्यर्थः ।" इति **मी**मांसाश्लोकवार्तिकस्य **ज**यमिश्रभट्टविरचितायां **शर्करिका**वृत्तौ अपोहवादे, का० १६६ ॥ ३ "आध्यात्मिकानां भेदानां कार्यकारणात्मकानां चैकजातिसमन्वयो दृष्ट इत्येवमादिः साधनप्रपञ्चः ।" इति **साङ्ख्य**कारिकाया **युक्तिदीपिका**वृत्तौ, का० ६, पृ० ४५ पं० ११ ॥ ४ दृश्यतां पृ० १२ पं० १७ ॥ ५ "भेदानां परिमाणात् समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च । कारणकार्यविभागादविभागाद् वैश्वरूप्यस्य ॥ १५ ॥ ··· किञ्चान्यत्, समन्वयात् । इह येन भेदानां समनुगतिस्तस्य सत्त्वं दृष्टम् । तद्यथा–मृदा घटादीनाम् । अस्ति चेयं सुखदुःखमोहैः शब्दादीनां समनुगतिः । तस्मात् तेऽपि सन्ति । ये च सुखादयोऽस्तमितविशेषास्तदव्यक्तम् । तस्मादस्त्यव्यक्तम् । ··· इह शब्दस्पर्शरूपरसगन्धानां सन्निधाने स्वसंस्कारविशेषयोगात् सुखदुःखमोहाकाराः प्राणिनां बुद्धय उत्पद्यन्ते । यच्च यादृशीं बुद्धिमुत्पादयति तत् तेनान्वितम् । तद्यथा–चन्दनादिभिः शकलादयः ।" **साङ्ख्य**का० **युक्तिदीपिका** । "इतश्चास्ति समन्वयदर्शनात् । कस्य समन्वयात् ? भेदानामेव समन्वयात् । अस्मादेव कारणात् पूर्वकारणात् शकलकपालामत्रसुवर्णसमन्वयः । भूषणादीन् दृष्ट्वा तत्त्वेन दर्शयति । सामान्यप्रकरणाल्लोके भेदानामेकजातिसमन्वयो दृष्टः । तेषां धर्मा(र्मोऽ ?)न्वयः, तस्मात् समन्वयदर्शनात् पश्यामोऽस्ति प्रधानम् ।" **जे० साङ्ख्य**का० वृ० B, का० १५, **माठर**वृत्तावपि किञ्चित्पाठभेदेन एवमेव ॥ ६ °**कारणं विशेषतः** प्र० । दृश्यतां पृ० २९८ टि० ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपपरिमाणम् । प्रवृत्तिपरिमाणं द्विधा हिताहितप्राप्तिपरिहारार्थत्वात्, धर्मादिप्रयोजनत्वाच्चतुर्धा, धृति-सदाचार-कामसुख-कुतूहल-विनिवृत्तिप्रयोजनं पञ्चधा प्राणादिलक्षणाञ्चेति प्रवृत्तिपरिमाणम् । फलपरिमाणं द्विविधम्—दृष्टमदृष्टं च । अदृष्टं कार्यैकरणसामर्थ्यं प्रभुशक्तिः साधनसान्निध्यं विभुशक्तिश्चेति द्विधा । एवमशक्तिस्तद्विपरीता द्विधैव । शक्तिर्देव-गन्धर्व-यक्ष-रक्षः-पितृ-पिशाचाः, अशक्तिर्मानुष-पशु-मृग-पक्षि-सरीसृप-स्थावराणि । शक्तेः अकृतिः शरीरनिमित्तम्, अशक्तेर्जराय्वण्डोद्भित्संशोकाः । मातापितृभ्यां जराय्वण्डं च, तत् षैट्कोशिकम्, पृथिव्या उद्भिजम्, पृथिव्युदकसंशोकात् संशोकजमित्यदृष्टफलपरिमाणम् । दृष्टफल-परिमाणं करणानि प्रवर्तमानानि क्रियान्ते सामान्यतश्चतुर्गां शक्त्यादीनामन्यतमं प्रत्ययं कुर्वन्ति । शक्ति-

---

१ "तत्र रूप-प्रवृत्ति-फललक्षणं व्यक्तम् । रूपं पुनर्महानहङ्कारः पञ्च तन्मात्राणि एकादशेन्द्रियाणि पञ्च महाभूतानि । सामान्यतः प्रवृत्तिर्द्विविधा – हितकामप्रयोजना च अहितप्रतिषेधप्रयोजना च । विशेषतः पञ्च कर्मयोनयो धृत्याद्याः प्राणाद्याश्च पञ्च वायवः । फलं द्विविधं दृष्टमदृष्टं च । तत्र दृष्टं सिद्धितुष्ट्यशक्तिविपर्ययलक्षणम् । अदृष्टं ब्रह्मादौ स्तम्बपर्यन्ते संसारे कर्मप्रतिलम्भ इत्येतद् व्यक्तम् ।" इति **साङ्ख्य**कारिकाया वृत्तौ **युक्ति**दीपिकायाम्, का० २ ॥ **२ साङ्ख्य**ग्रन्थेषु प्राणादिवृत्तेर्हेतोर्निरूपणप्रसङ्गे धृत्यादीनां किञ्चिन्नामभेदेन इत्थं निरूपणमुपलभ्यते — "प्राणाद्या वायवः पञ्च ।··· प्राणाद्याः प्राणापानसमानोदानव्यानाः पञ्च ।···कुतः पुनरियं प्राणादिवृत्तिः प्रवर्तत इति? उच्यते – सा कर्मयोनिभ्यः । महतः प्रच्युतं हि रजो विकृतमण्डस्थानीयाः पञ्च कर्मयोनयो भवन्ति – धृतिः श्रद्धा सुखा विविदिषा अविविदिषेति ।······ तासां लक्षणविषयसतत्त्वगुणसमन्वया भवन्ति । तत्र लक्षणं तावत्–व्यवसायादप्रच्यवनं धृतिः । फलमनभिसन्धाय शास्त्रोक्तेषु कार्येषु अवश्यकर्तव्यताबीजभावः श्रद्धा । दृष्टानुश्रविकफलाभिलाषद्वारको हि बुद्धेराभोगः सुखा । वेत्तुमिच्छा विविदिषा । तन्निवृत्तिरविविदिषा ।···एतत् तावल्लक्षणसतत्त्वम् । आह च—'वाचि कर्मणि सङ्कल्पे प्रतिज्ञां यो न(नु?) रक्षति । तन्निष्ठस्तत्प्रतिज्ञश्च धृतेरेतद्धि लक्षणम् ॥ १ ॥ अनसूया ब्रह्मचर्यं यजनं याजनं तपः । दानं प्रतिग्रहः शौचं श्रद्धाया लक्षणं स्मृतम् ॥ २ ॥ सुखार्थी यस्तु सेवेत विद्यां कर्म तपांसि वा । प्रायश्चित्तपरो नित्यं सुखायां स तु वर्तते ॥ ३ ॥ द्वित्वैकत्वपृथक्त्वं नित्यं चेतनमचेतनं सूक्ष्मम् । सत्कार्यमसत्कार्यं विविदिषन्त(षित)व्यं विविदिषायाः ॥ ४ ॥ विपरीतस्तुतमत्तवदविविदिषा ध्यानिनां सदा योनिः । कार्यकरणक्षयकरी प्राकृतिका गतिः समाख्याता ॥ ५ ॥' विषयसतत्त्वं पुनः सर्वविषयिणी धृतिः, आश्रमविषयिणी श्रद्धा, दृष्टानुश्रविकविषयिणी सुखा, व्यक्तविषयिणी विविदिषा, अव्यक्तविषयिणी अविविदिषा । गुणसमन्वयस्तु रजस्तमोबहुला धृतिः, सत्त्वरजोबहुला श्रद्धा, सत्त्वतमोबहुला सुखा, रजोबहुला विविदिषा, तमोबहुला अविविदिषेति ।" इति **साङ्ख्य**कारिकाया वृत्तौ **युक्ति**दीपिकायाम्, का० २९ ॥ **३ °णाचेति** प्र० ॥ **४ °कारण°** प्र० ॥ ५ "अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योनश्च पञ्चधा भवति । मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः ॥ ५३ ॥ ······अष्टविकल्पोऽष्टप्रकारोऽष्टभेद इत्यर्थः । तद्यथा–ब्रह्म-प्रजापती-न्द्र-पितृ-गन्धर्व-नाग-रक्षः-पिशाचाः । तैर्यग्योनश्च पञ्चधा भवति पशु-मृग-पक्षि-सरीसृप-स्थावराः । मानुष्यश्चैकविधः जात्यन्तरानुपपत्तेः ।" इति **साङ्ख्य**कारिकाया **युक्ति**दीपिकावृत्तौ ॥ ६ "सूक्ष्मा मातापितृजाः सह प्रभूतैस्त्रिधा विशेषाः स्युः ।··· ॥ ३९ ॥ तत्र सूक्ष्मा नाम चेष्टाश्रितं प्राणाष्टकं संसरति । मातापितृजास्तु द्विविधाः–जरायुजा अण्डजाश्च । तेषां कोशोपहृताः कोशाः लोम-रुधिर-मांसा-ऽस्थि-स्नायु-शुक्रलक्षणाः । तत्र लोम-रुधिर-मांसानां मातृतः सम्भवः । अस्थि-स्नायु-शुक्राणां पितृतः । तत्रैव अशितपीताभ्यां सह अष्टौ कोशानपरे व्याचक्षते । कथं पुनरेषां कोशत्वम्? आवेष्टनसामर्थ्यात् । यथा कोशकारः कोशेनावेष्टितोऽस्वतन्त्रः एवं सूक्ष्मशरीरं सप्राणमेतैरावेष्टितमस्वतन्त्रं तत् तत् कर्मोपचिनोति । प्रभूतास्तु उद्भिज्जाः स्वेदजाश्च ।······मनुष्याणां तु जरायुजम् ।······तिर्यग्योनीनामपि चतुर्विधम्–'जरायुजं गवादीनामण्डजं चैव पक्षिणाम् । तृणादेश्चोद्भिज्जं क्षुद्रजन्तूनां स्वेदजं स्मृतम् ॥ १ ॥' एवं त्रिविधा विशेषा व्याख्याताः ।"—**साङ्ख्यका० युक्ति**दीपिका ॥ ७ "अपि च शिष्टा वदन्ति – बहिःशरीरं षट्कोशिकमिति ।" **जे० साङ्ख्यका० वृ०** B, का० ३९ । ग्रन्थान्तरेषु तु 'षाट्कौशिक'पाठ उपलभ्यते ॥ ८ **उद्भिदं** प्र० ॥ ९ "एतच्च व्यक्तस्य रूपं प्रवृत्तिश्च परिकल्प्यते । फलमिदानीं वक्ष्यामः । आह — किं पुनस्तत् फलमिति । उच्यते—यः खलु **एष प्रत्ययसर्गो विपर्ययाशक्तितुष्टिसिद्ध्याख्यः** । तत् फलमिति वाक्यशेषः । एष इति वक्ष्यमाणस्य संमुखीकरणार्थमुच्यते । प्रत्ययसर्ग इति, प्रत्ययः पदार्थो लक्षणमिति पर्यायाः । प्रत्ययानां सर्गः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुक्ता । [1]सिद्धिरूहेन साधनं तारकम्, शब्देन सुतारम्, अध्ययनेन तारयन्तम्, वातादीन्याध्यात्मिकान्यभ्यतीत्य क्रियया तारक-सुतार-तारयन्तानामन्यतमेन प्रमोदम्, मानुषाद्याधिभौतिकात्ययेन तत्रयान्यतमेनैव
२२९-२ प्रमुदितम्, शीताद्यो[2]धिदैविकात्ययेन तत्रयान्यतमेनैव मोदमानम्, य[3]दा कुशलसंसृष्टव्यपाश्रयात् सन्देहातिक्रमात् तदन्यतमेन रम्यकम्, दौर्भाग्यातिक्रमेण सदाप्रमुदितमित्यष्टौ सिद्धयः । सं[4]न्निहितविषयसन्तोषाच्चिकीर्षितादर्थादूनस्य निवृत्तिरेकैव तुष्टिरुपायनवत्त्वाद् नवविधा तुष्टिः । प्रकृत्युपादानकालभाग्यकारणपूर्वक-

---

प्रत्ययसर्गः पदार्थसर्गो लक्षणसर्ग इत्यर्थः । अथवा प्रत्ययो बुद्धिः निश्चयोऽध्यवसाय इति पर्यायाः, तस्य सर्गोऽयमतः प्रत्ययसर्गः प्रत्ययकार्यं प्रत्ययव्यापार इत्यर्थः । अथवा प्रत्ययपूर्वकः सर्गः प्रत्ययसर्गः बुद्धिपूर्वक इत्युक्तः । ...... । स विपर्ययाख्यः, अशक्त्याख्यः, तुष्ट्याख्यः, सिद्ध्याख्यश्चेति । तत्राश्रेयसः श्रेयस्त्वेनाभिधानं विपर्ययः । वैकल्याद्सामर्थ्यमशक्तिः । चिकीर्षितादूनेन निवृत्तिस्तुष्टिः । यथेष्टस्य साधनं सिद्धिः ।"—**साङ्ख्य**का० **युक्तिदीपिका**, का० ४६ ॥

१ "आह—प्रागपदिष्टमष्टधा सिद्धिरिति, तदिदानीमभिधीयतामिति । उच्यते—**ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः दानं च सिद्धयोऽष्टौ** । तत्रोहो नाम यदा प्रत्यक्षानुमानागमव्यतिरेकेणाभिप्रेतमर्थं विचारणाबलेनैव प्रतिपद्यते, सा आद्या सिद्धिः तारकमित्यपदिश्यते—तारयति संसारार्णवादिति तारकम् । यदा तु स्वयं प्रतिपत्तौ प्रतिहन्यमानो गुरूपदेशात् प्रतिपद्यते सा द्वितीया सिद्धिः सुतारमित्यपदिश्यते । कथम्? सुखमनेनाद्यत्वेऽपि भवसङ्कटात् तरन्तीति । यदा त्वन्योपदेशादध्यसमर्थः प्रतिपत्तुमध्ययनेन साधयति सा तृतीया सिद्धिः तारयन्तमित्यपदिश्यते । तदेतत् तारणक्रियाया आश्रयत्वेऽपि अव्यावृत्तत्वाद् महाविषयत्वात् तारयन्तमित्यपदिश्यते । त एते त्रयः साधनोपायैराब्रह्मणः प्राणिनोऽभिप्रेतमर्थं प्राप्नुवन्ति । ...... । एषां तु साधनोपायानां प्रत्यनीकप्रतिषेधाय दुःखविघातत्रयम् । दुःखानि त्रीणि आध्यात्मिकादीनि । तत्र चाध्यात्मिकानां वातादीनां सिद्धिप्रत्यनीकानामायुर्वेदक्रियानुष्ठानेन विघातं कृत्वा पूर्वेषां त्रयाणामन्यतमेन साधयति सा चतुर्थी सिद्धिः प्रमोदमित्यभिधीयते । कथम्? निवृत्तरोगा हि प्राणिनः प्रमोदन्त इति कृत्वा । यदा त्वाधिभौतिकानां मानुषादिनिमित्तानां सिद्धिप्रत्यनीकानां सामादिना यतिधर्मानुगुणेन वोपायेन पूर्वेषां त्रयाणामन्यतमेन साधयति सा पञ्चमी सिद्धिः प्रमुदितमित्यभिधीयते । कथम्? अनुद्विग्नो हि प्रमुदित इति कृत्वा । यदा तु शीतादीनि आधिदैविकानि द्वन्द्वानि सिद्धिप्रत्यनीकानि स्वधर्मानुरोधेन प्रतिहत्य पूर्वेषां त्रयाणामन्यतमेन साधयति सा षष्ठी सिद्धिर्मोदमानमित्यभिधीयते । कथम्? द्वन्द्वानुपहता हि प्राणिनो मोदन्त इति कृत्वा । सुहृत्प्राप्तिः, यदा तु कुशलं संसृष्टं सन्मित्रमाश्रित्य सन्देहनिवृत्तिं लभते सा रम्यकमिति सप्तमी सिद्धिरपदिश्यते । रम्यो हि लोके सन्मित्रसम्पर्कः, तस्य संज्ञायां रम्यमेव रम्यकम् । दानम्—यदा तु दौर्भाग्यं दानेन अतीत्य पूर्वेषां त्रयाणामन्यतमेन साधयति सा अष्टमी सिद्धिः सदाप्रमुदितमित्यभिधीयते । सुभगो हि सदा प्रमुदितो भवति, तस्माद् दौर्भाग्यनिवृत्तिः सदाप्रमुदितम् । इत्येवमेताः सिद्धयोऽष्टौ व्याख्याताः । एतासां संश्रयेणाभिप्रेतमर्थं यतः संसाधयन्तीत्यतः पूर्वाचार्यगतं मार्गमारुरुक्षुस्तत्प्रवणः स्यादिति ।" **साङ्ख्य**का० **युक्तिदीपिका**, का० ५१ ॥ २ °**द्याधिभौतिकात्ययेन** प्र० । "दुःखम्..., आध्यात्मिकं द्विविधं शारीरं मानसञ्च । शारीरं तावद् वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यनिमित्तम् । तथा मानसं कामक्रोधलोभमोहविषादभयेर्ष्याऽरत्यविशेषदर्शननिमित्तम् । आधिभौतिकञ्च मनुष्यपशुमृगपक्षिसरीसृपस्थावरनिमित्तम् । आधिदैविकं शीतोष्णवातवर्षाशन्यवश्यायावेशनिमित्तम् ।" **साङ्ख्य**का० **युक्तिदीपिका**, का० १ ॥ ३ **यादाकुश**° प्र० ॥ ४ "तुष्टिस्तु सन्निहितविषयसन्तोषाच्चिकीर्षितादर्थादूनेन निवृत्तिः सामान्यत एकैव, प्रत्यर्थमनन्ता—शतेन तुष्टः सहस्रेणेति । शास्त्रे तु बाह्याध्यात्मिकानां सुखदुःखमोहानां प्राप्तिष्वपगमेषु वा व्यवस्थालक्षणा उपायनवत्वात् नव तुष्टयो भवन्ति । तासाम्—**आध्यात्मिकाश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः** । आध्यात्मिका इति शरीरशरीरिणोर्विशेषमुपलिप्समानेन योगिना यदानात्मनि आत्मबुद्धिरवस्थाप्यते सा खलु आध्यात्मिका सिद्धिः तुष्टिः सन्तोषः क्षेम इत्यर्थः ।" **साङ्ख्य**का० **युक्तिदीपिका**, का० ५० । "आध्यात्मिकाश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः । बाह्य(ह्या?) विषयोपरमाश्च(च?) पञ्च नव तुष्टयोऽभिमताः ॥ ५० ॥ अध्यात्मानं ज्ञापयन्ति इत्याध्यात्मिकाः, प्रकृत्याख्या उपादानाख्या कालाख्या भाग्याख्या चेति चतस्रस्तुष्टय आध्यात्मिकाः । यथा कश्चित् प्रकृतिमात्रं वेत्ति, न जानीते नित्या वा अनित्या वा चेतना वा अचेतना वा सगुणा वा अगुणा वा सर्वगता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरुषान्यत्वापरिज्ञानाद् माध्यस्थ्यलाभोऽम्भः[1]सलिलौघवृष्ट्याख्याः शरीरशरीरिविशेषणोपायाश्चतस्र आध्यात्मिकास्तुष्टयः । बाह्याश्च[2] विषयनिर्वेदजाः पञ्च विषयेष्वर्जनरक्षणक्षय[3]सङ्गहिंसादोषदर्शनात् सुतारसुपार[4]सुनेत्र[सु]मारीचोत्तमाभयाख्या इति नव तुष्टयः । एकादशेन्द्रियवधाः[5] बधिरान्धाघ्रमूकजडोन्मादकुणिकुष्ठिक्लीबोदावर्तपङ्गुताः । पूर्वोक्तेभ्यः सिद्ध्युपायेभ्यो विपरीतनामानोऽष्टावसिद्धयः । तथा तुष्टिविपरीतनामानोऽ-

---

वा असर्वगता वेति । एतान् धर्मान्न वेत्ति, केवलमस्तित्वमात्रेण तुष्टः प्रव्रजितः, तस्य नास्ति मोक्ष एषा प्रकृत्याख्या तुष्टिः । उपादानाख्या यथा कश्चित् त्रिदण्डकुण्डकमण्डलुकृष्णाजिनाक्षसूत्रादीनामुपादानं कृत्वा प्रब्रवीति मम मोक्षो भविष्यतीति, एवं तुष्टो ज्ञानागमं न करोति तस्य नास्ति मोक्ष इत्येषा उपादानाख्या द्वितीया तुष्टिः । कालाख्या यथा—कश्चिदनभिगततत्त्वज्ञो ब्रवीति कालेन मोक्षो भविष्यतीति ज्ञानागमं न करोति, किं ज्ञानेन ? इति, एवं सन्तुष्टस्य नास्ति मोक्ष इत्येषा कालाख्या तृतीया तुष्टिः । भाग्याख्या यथा—कश्चिदनभिगततत्त्वज्ञो ब्रवीति भाग्येन मोक्षो भविष्यतीति ज्ञानागमं न करोति, किं ज्ञानेन ? इति सन्तुष्टस्य मोक्षो नास्तीति एषा भाग्याख्या चतुर्थी तुष्टिः । एवमेता आध्यात्मिकाश्चतस्रस्तुष्टयो भवन्ति ।"—**जे० साङ्ख्यका० वृ०** B । **साङ्ख्यका० युक्तिदीपिकायां** तु आध्यात्मिकतुष्टयोऽन्यथा व्याख्याताः ॥

१ "आद्या तुष्टिरम्भ इत्यभिधीयते । कस्मात् ? अमितं हि प्रधानतत्त्वं भाति जगद्बीजभूतत्वात् ।……द्वितीया तुष्टिः सलिलमित्यभिधीयते । कथं पुनरेतत् सलिलम् ? सति उपादाने विकारो लीयत इति ।……तृतीया तुष्टिः 'ओघः' इत्यभिधीयते । कथं पुनरयं काल ओघ इत्युच्यते ? सलिलौघवत् सर्वाभ्यावहनात् ।……चतुर्थी तुष्टिर्वृष्टिरित्यभिधीयते । कथं पुनर्वृष्टिरित्युच्यते ? सर्वसत्त्वाप्यायनात् । यथा हि शीर्णानामपि तृणलतादीनां वृष्टिं प्राप्य पुनराप्यायनं भवति एवमेव सर्वेषां प्राणिनां भाग्यविपरिणामात् पुनराप्यायनं भवति । तस्माद् वृष्टिसाम्याद् भाग्याख्या तुष्टिर्वृष्टिरित्यभिधीयते ।"—**साङ्ख्यका० युक्तिदीपिका**, का० ५० ॥ २ "बाह्या[स्तु पञ्च] तुष्टयो भवन्ति । ताश्च व्याख्यास्यन्ते । बाह्यविषयोपरमाश्च पञ्च । ताश्चेमाः—अर्जनरक्षणक्षयातृप्तिहिंसादोषाः । तत्रार्जनं नाम शब्दस्पर्शरूपरसगन्धान् विषयान् निमित्तं कृत्वा कृषिपशुपालनवाणिज्यादिषु प्रवर्तते, तत्र विषयोपार्जने क्लेशप्रयासादि दुःखं मत्वा विषयेभ्य उपरमति, उपरतश्च तुष्टिं लभते, एषा पञ्चमी तुष्टिः । रक्षणदुःखं यथा अर्जितानां धनधान्यानां राजचौरादिभ्यो यद् रक्षणं तदपि दुःखं कर्तुमित्युपरतश्च तुष्टिं लभते, एषा षष्ठी तुष्टिः । क्षयदुःखं यथा अर्जितानां रक्षणे कृतेऽप्युपभुज्यमानाः क्षीयन्त इति मत्वा उपरतश्च तुष्टिं लभत इत्येषा सप्तमी तुष्टिः । यथार्जितरक्षणक्षयादीनां प्रतीकारेऽपि कृते इन्द्रियाणां वैतृष्ण्यं नास्तीति सञ्चिन्त्य विषयेभ्यो विरमति उपरतश्च तुष्टिं लभते, एषा अष्टमी तुष्टिः । अर्जनरक्षणक्षयातृप्तीनां प्रतीकारेऽपि कृते अर्जनादिवृत्तेन हिंसामन्तरेण भूतोपरोधं विना न शक्यन्ते विषया उपार्जयितुमतो विषयेभ्य उपरतश्च तुष्टिं लभते, एषा नवमी तुष्टिः । एवमेताभिस्तुष्टिभिरज्ञानाद् मोक्षो नास्तीति केवलेन वैराग्येण तुष्टिः । एवमेता आध्यात्मिकाश्चतस्रो बाह्याः पञ्च नव तुष्टयो व्याख्याताः । आसां तुष्टीनां नवानामिह संज्ञा भवन्ति—अम्भः सलिलम् ओघो वृष्टिः सुतारं सुपारं सुनेत्रं मरीचिकम् उत्तमाम्भसिकमिति ।" **जे० साङ्ख्यका० वृ०** B, का० ५० ॥ ३ °**क्षयासङ्ग**° प्र० । "शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेभ्य उपरतोऽर्जनरक्षणक्षयसङ्गहिंसादर्शनात् ।…विषयोपभोगसङ्गे कृते नास्तीन्द्रियाणामुपशम इति सङ्गदोषः ।" इति **साङ्ख्यका०** गौडपादभाष्ये, का० ५० ॥ ४ **सुतारं सुपार सुनेत्र मारीचोत्तमाख्याख्या** प्र० । "सुखार्थं च प्रवृत्तस्य भूयिष्ठं दुःखमेवेत्येतस्माद् दर्शनाद् माध्यस्थ्यं लभते सा पञ्चमी तुष्टिः सुतारमित्यभिधीयते । कथं पुनः सुतारमित्युच्यते ? सुखमनेन उपायेन तरन्ति विषयसङ्कटमिति सुतारम् ।…षष्ठी तुष्टिः सुपारमित्यभिधीयते । कथं पुनः सुपारमित्युच्यते ? सुखमनेन पारं विषयार्णवस्य प्रयान्तीति ।…सप्तमी तुष्टिः सुनेत्रमित्युच्यते । कथं पुनः सुनेत्रमित्युच्यते ? सुखमनेन आत्मानं कैवल्यावस्थां नयन्तीति सुनेत्रम् ।…अष्टमी तुष्टिः सुमारीचमित्युच्यते । कथं सुमारीचमित्युच्यते ? अर्चतेः पूजार्थस्य शोभनमर्चितं विषयसङ्गनिवृत्तस्य योगिनोऽवस्थानं भवति ।…नवमी तुष्टिरुत्तमाभयमित्यपदिश्यते । कथम् ? उत्तमं हि प्राणिनां सर्वेभ्यो भयेभ्यो हिंसाभयमिति तदपगमात् उत्तमाभयमिति ।" **साङ्ख्यका० युक्तिदीपिका**, का० ५० ॥ ५ "एकादशेन्द्रियवधा सह बुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा । सप्तदश वधा बुद्धेर्विपर्ययात् तुष्टिशक्तीनाम् ॥ ४९ ॥…इन्द्रियाणां स्वविषयग्रहणासामर्थ्यं वध इव वधः ।" **साङ्ख्यका० माठरवृ०** । "इह लोके कश्चिद् देवदत्तो वैराग्येण गृहीतो यज्ञदत्तमाहूय प्रब्रवीति भो यज्ञदत्त दुःखितोऽस्मि, किं करवाणि ? इति । स तेनोक्तः—**साङ्ख्यज्ञानस्याधिगमं** कुरु, त्वं दुःखान्तं यास्यसीति । एवं यज्ञदत्तेनोक्तो देवदत्तोऽब्रवीत्—नाहं शक्नोमि साङ्ख्यज्ञानस्याधिगमं कर्तुं यस्माद् बधि-

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

नाम्भसिक्यादयो नव अतुष्ट्य इत्य[1]शक्तिरष्टाविंशतिविधा । [2]अश्रेयःप्रवृत्त्यहङ्कारममकारक्रोधमरणविषादास्तमोमोहमहामोह[3]तामिस्रान्धतामिस्राः पञ्च विपर्यया इत्येतद् दृष्टफलपरिमाणम् । इत्थं रूप-प्रवृत्तिफलपरिमाणमाध्यात्मिकानां कार्यकारणात्मकानां भेदानां निर्दिष्टम्, अनेन तैर्यग्योनमानुषदैवेष्वपि सप्रपञ्चेषु ज्ञेयम् । तस्मात् परिमितत्वात् [4]संसर्गपूर्वका भेदाः, व्रीहाविव संसृष्टा मूलाङ्कुरपर्णनालकाण्डप्रसवतुषशूकपुष्पक्षीरतण्डुलकणभावाः यथा वा [5]शुक्रशोणितसंसृष्टाः कललार्बुदमांस[6]पेशिशरीरव्यूहबाल्यकौमारयौवनस्थाविरा भावा इति ।

इतश्च अस्ति प्रधानं भेदानां कार्यकारणभावात् । शब्दाद्यात्मना व्यवतिष्ठमानानि सत्त्वरजस्तमांसि
२३०.१ प्रकाशप्रवृत्तिनियमैः परस्परार्थं कुर्वन्ति । [7]सत्त्वं शब्दाद्यात्मना व्यवतिष्ठमानं तद्भावायेतरयोः प्रवृत्तिं ख्यापयति, एवं रजः प्रवर्तयति, तमो नियमयति । शब्दाद्यारब्धानि पृथिव्यादीनि [8]आरम्भोत्क्रमेण

रोऽस्मि गुरोर्वचनं न शृणोमि, शुश्रूषायामसमर्थः कुतो ज्ञानस्याधिगमं करिष्यामीति ? एवमेवान्ध्यमूकत्वोन्मादादयः इन्द्रियोपघाता विषया(य ?)ग्रहणे असमर्था बोध्याः । एवमेते एकादशेन्द्रियवधा अशक्तिरित्युच्यते । सह बुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा । बुद्धेर्वधा बुद्धिवधाः, तैर्बुद्धिवधैः सहाशक्तिरुद्दिष्टा । अत्राह—के ते बुद्धिवधाः कियन्तश्चेति ? सप्तदश वधा बुद्धेविपर्ययात् तुष्टिसिद्धीनाम् । ते च सप्तदश वधाः तुष्टिसिद्धिषु व्याख्यायमानासु व्याख्यास्यन्ते ।" **जे० साङ्ख्य**का० वृ० B, का० ४९ । "बाधिर्यमान्ध्यमघ्रत्वं मूकता जडता च या । उन्मादकौष्ठ्यकौण्यानि क्लैब्योदावर्तपङ्गुताः ॥ १ ॥ तत्र बाधिर्यं श्रोत्रस्य, आन्ध्यं चक्षुषः, अघ्रत्वं नासिकायाः, मूकता वाचः, जडता रसनस्य, उन्मादो मनसः, कौष्ठ्यं त्वचः, कौण्यं पाणेः, क्लैब्यमुपस्थस्य, उदावर्तः पायोः, पङ्गुता पादयोः, इत्येवमिन्द्रियवधा एकादश ।" **साङ्ख्य**का० **युक्तिदीपिका**, का० ४९ ॥

१ "अशक्तिश्च करणवैकल्यादष्टाविंशतिभेदा 'भवति' इत्यनुवर्तते । तत्र बाह्यकरणवैकल्यं सह मनसा एकादशप्रकारम्, सप्तदशविधं बुद्धिवैकल्यम्, एतेऽशक्तिभेदाः ।" **साङ्ख्य**का० **युक्तिदीपिका**, का० ४७ ॥ २ "पञ्च विपर्ययभेदा भवन्ति तमोमोहमहामोहतामिस्रान्धतामिस्रा इति । तत्र अश्रेयसि प्रवृत्तस्य प्रत्ययावरे श्रेयोभिमान आद्यो विपर्ययस्तम इत्यभिधीयते भौतिकेषु आकारेषु शिरःपाण्यादिषु आत्मग्रहो योऽयं व्यूढोरस्कः सितदशनस्ताम्राक्षः प्रलम्बबाहुः सोऽहमिति । तथा श्रवणस्पर्शनरसनघ्राणवचनादानविहरणोत्सर्गानन्दसङ्कल्पाभिमानाध्यवसायलक्षणासु करणवृत्तिषु अहं श्रोता द्रष्टा चेत्येवमादिराद्यकालप्रवृत्तो ग्रहः पूर्वस्मादवरो मोह इत्युच्यते ।···बाह्ये तु विषये ममेदमित्यभिनिवेशः पूर्वस्मादवरः [महामोहः] इत्युच्यते ।···क्रोधश्चतुर्थो विपर्ययः पूर्वस्मादवरः तामिस्र इत्यभिधीयते ।···मरणविषादः पञ्चमो विपर्यय पूर्वस्मादवरः अन्धतामिस्र इत्यभिधीयते ।" **साङ्ख्य**का० **युक्तिदीपिका**, का० ४७ ॥ ३ °**तामिश्रान्धतामिश्राः** प्र० ॥ ४ "संसर्गपूर्वकत्वे हि संसर्गस्य एकस्मिन्नद्वयेऽसम्भवात् नानात्वैकार्थसमवेतस्य नानाकारणानि कल्पनीयानि । तानि च सत्त्वरजस्तमांस्येवेति भावः ।"—ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य**भामती** २।२।१। "तथा परिमितानां भेदानां मूलाङ्कुरादीनां संसर्गपूर्वकत्वं दृष्ट्वा बाह्याध्यात्मिकानां भेदानां परिमितत्वात् संसर्गपूर्वकत्वमनुमिमानस्य सत्त्वरजस्तमसामपि संसर्गपूर्वकत्वप्रसङ्गः, अनुमितत्वाविशेषात् ।"—इति **ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्ये** २।२।१ ॥ ५ "भेदानां परिमाणात् । यत् परिमितं तस्य सत उत्पत्तिर्दृष्टा तद्यथा—मूलाङ्कुरपर्णनालदण्डबुषतुषशूकपुष्पक्षीरतण्डुलकणानाम् । परिमिता महदहङ्कारेन्द्रियतन्मात्रमहाभूतलक्षणभेदाः, तस्मात् कारणपूर्वकाः । यदेषां कारणं तदव्यक्तम् ।" **साङ्ख्य**का० **युक्तिदीपिका**, का० १५ ॥ ६ "किञ्चान्यत्, कार्याश्रयिणश्च कललाद्याः । यदा सूक्ष्मशरीरमुत्पत्तिकाले मातुरुदरं प्रविशति मातुः रुधिरं पितुः शुक्रं तस्य सूक्ष्मशरीरस्य उपचयं कुरुते, मातुः कललार्बुदघनमांसपेशीगर्भकौमारयौवनस्थाविरादयोऽन्नपानरसनिमित्ता निष्पाद्यन्ते, तेन उच्यते—कार्याश्रयिणश्च कललाद्या इति ।" **जे० साङ्ख्य**का० **वृ०** B, का० ४३ ॥ ७ °**पेसि**° प्र० ॥ ८ **सत्त्वं सत्वाना व्यव**° प्र० ॥ ९ **आरंत्क्रमेण** य० । पृ० २६० टि० १ मध्ये वर्णितं सृष्ट्यारम्भक्रमं परित्यज्य अत्र तु **पृथिव्या** आदौ उपादानात् **आरम्भोत्क्रमेण** इति पाठः सङ्गतः प्रतीयते । अत्र अस्वारस्ये तु 'आरम्भात् क्रमेण' इति पाठः कल्पनीयः, 'क्रमेण धृतिसङ्ग्रहपक्तिव्यूहावकाशदानैः' इति च योज्यम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]धृतिसङ्ग्रहपक्तिव्यूहावकाशदानैः [2]परस्परार्थं कुर्वन्ति । इन्द्रियाण्यप्यन्योन्यविषयग्रहणसाहायकेनोपकुर्वन्ति । यच्च यस्य विषयं प्रख्यापयति अर्जयति पाति संस्करोति उपधत्ते वा तत् कारणमितरत् कार्यम् । स्थानसाधनात्मप्रख्यात्युपभोगैः [3]करणार्थं करोति कार्यम्, करणं [4]वृद्धिक्षतभग्नसंरोहणसंशोकपरिपालनैः कार्यार्थं करोति । एवं बाह्याध्यात्मिकानां [5]दैवमानुषतैर्यग्योनानां सप्रपञ्चानामन्योन्योपका[6]रः रक्षा-सङ्ग्रह-सेव[7]न-पूजन-पोषण-स्थिति-शुश्रू[8]षादिविकल्पा वर्णा[9]श्रमादीनां योज्याः । एककर्तृका भेदाः, परस्परोपकारकोपकार्यत्वात्, शयनादिवत् । तस्मादस्ति प्रधानमिति ।

इतश्च अस्ति शक्तिमदवस्थामात्रत्वाच्छक्तीनाम् । कार्यकारणानामधिष्ठितानामनधिष्ठितानां [10]च स्वकार्यसमर्थास्त्रिषु कालेषु शक्तयोऽवतिष्ठन्ते । [11]तद्यथा – प्राक् प्रवृत्तेः शक्त्यवस्थानमनुमीयते प्रवृत्त्युपलब्धेः, प्रवृत्तिकालेऽवस्थानमपवर्गदर्शनात्, प्रवृत्त्युत्तरकालावस्थानं प्रवृत्तिव्यतिरेकेणावस्थानदर्शनात् । एवमाद्यन्तवद् व्यक्तमुपलभ्य व्यक्तशक्त्यवस्थास्ति, अनवस्थितशक्तेराद्यवसानाभावात् खपुष्पवत्, अवस्थितशक्तेरेव तद्भावाद् मृदः पिण्डादिभाववत् । तस्माद् व्यक्तशक्तिप्रवृत्त्युपलब्धेरस्ति प्रधानमिति ।

---

१ **वृत्तिस°** प्र० । "सहभावे तु तेषामुपकारो न प्रतिषिध्यते, तद्यथा पृथिव्यादीनां धृतिसङ्ग्रहपक्तिव्यूहावकाशदानैः ।"–**साङ्ख्यका० युक्तिदीपिका**, का० १५, पृ० ८० पं० २६ । "पृथिव्येव पृथिवीधातुः धृत्यादिधर्मधारणात् ।"–**नयचक्रवृ०**, पृ० २६७–१ । "पञ्च महाभूतानि कृतानि – आकाशमवकाशने, भूमिर्विहरणे, आपः पिण्डीकरणे शुद्धौ च, अग्निराहारपचने, वायुर्व्यूहने ।" **जे० साङ्ख्यका० वृ०** B, का० ३९ ॥ २ "आह—कः पुनर्व्यक्तस्य परस्परकार्यकारणभाव इति । उच्यते—गुणानां तावत् सत्त्वरजस्तमसां प्रकाशप्रवृत्तिनियमलक्षणैर्धर्मैरितरेतरोपकारेण यथा प्रवृत्तिर्भवति तथा 'प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः' [साङ्ख्यका० १२] इत्येतस्मिन् सूत्रे व्याख्यातम् । तथा शब्दादीनां पृथिव्यादिषु परस्परार्थमेकाधारत्वम् । श्रोत्रादीनामितरेतरार्जनरक्षणसंस्काराः । करणस्य कार्यात् स्थानसाधनप्रख्यापनादिकार्यस्य करणाद् वृद्धिक्षतभग्नसंरोहणसंशोषणपरिपालनानि पृथिव्यादीनां धृतिसङ्ग्रहपक्तिव्यूहावकाशदानैर्गवादिभावो देवमानुषतिरश्चां यथर्तुविधानेज्यापोषणाभ्यवहारं संव्यवहारेतरेतराध्ययनं वर्णानां स्वधर्मप्रवृत्तिविषयभावः । अन्यच्च लोकाद् यथासम्भवं द्रष्टव्यम् ।" **साङ्ख्यका० युक्तिदीपिका**, का० १५ ॥ ३ **कार°** य० । दृश्यतां पृ० २९८ टि० ३ ॥ ४ "देहस्य वृद्धिक्षतभग्नसंरोहणादिनिमित्तत्वात् [प्रशस्त० भा०] देहस्येति । वृद्धिरवयवोपचयः भग्नक्षतयोर्विघटितविश्लिष्टयोरस्थिचर्ममांसभागयोः संरोहणं पुनः सङ्घटनम् ।" इति **प्रशस्तपादभाष्यकिरणावल्याम्** आत्मनिरूपणे । दृश्यतां टि० २ ॥ ५ "तैर्यग्योनमानुषदैवतानि च परस्परार्थत्वात् । [व्यासभा०] । परस्परार्थत्वादिति । मनुष्यशरीरं हि पशुपक्षिमृगसरीसृपस्थावरोपयोगेन ध्रियते, एवं व्याघ्रादिशरीरमपि मनुष्यपशुमृगादिशरीरोपयोगेन, एवं पशुपक्षिमृगादिशरीरमपि स्थावराद्युपयोगेन, एवं दैवशरीरमपि मनुष्योपहृतच्छागमृगकपिञ्जलमांसाज्यपुरोडाशसहकारशाखाप्रस्तरादिभिरिज्यमानं तदुपयोगेन, एवं देवतापि वरदानवृष्ट्यादिभिर्मनुष्यादीनि धारयतीत्यस्ति परस्परार्थत्वमित्यर्थः ।" इति **पातञ्जलयोगदर्शनव्यासभाष्यस्य** वाचस्पतिमिश्रप्रणीतायां **तत्त्ववैशारद्यां** वृत्तौ २।२८ ॥ ६ (काराः ?) ॥ ७ **°सेचनपूजनपौषण°** भा० ॥ ८ **°षादेर्विकल्पा** य० ॥ ९ **°श्रया(श्रम्या ?)दीनां** प्र० । ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां वर्णानां ब्रह्मचारि-गृहस्थ-वानप्रस्थ-यतीनामाश्रमिणां च कार्याणि वर्णितानि **वैशेषिकदर्शनप्रशस्तपादभाष्ये** द्रष्टव्यानि धर्मनिरूपणे । स्मृत्यादिष्वपि धर्मशास्त्रेषु तद्वर्णनमस्ति ॥ १० **चा** भा० । अत्र **वा** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ११ "किञ्चान्यत्, शक्तितः प्रवृत्तेश्च । इह यावती काचिल्लोके प्रवृत्तिरुपलभ्यते सा सर्वा शक्तितः । तद्यथा—कुम्भकारस्य दण्डादिसाधनविन्यासलक्षणायाश्च शक्तेः सन्निधानाद् घटकरणे प्रवृत्तिः, अस्ति व्यक्तस्य चेयं कार्यत्वात् तद्भावेन प्रवृत्तिरिति । अतस्तस्यापि शक्त्या भवितव्यम् । यासौ शक्तिस्तदव्यक्तमिति । आह—प्राक् प्रवृत्तेः शक्त्यभावः प्रवृत्त्यनुपलब्धेः ।·········अत्र ब्रूमः—न, अप्रसिद्धत्वात् ।···तस्मात् प्राक् प्रवृत्तेः शक्तिः । यत् पुनरेतदुक्तं तावदेव प्रध्वंस इति, अत्र ब्रूमः—न, कार्यनिष्ठादर्शनात् । यदि प्रवृत्तिसमकालमेव प्रध्वंसः स्यात् कार्यनिष्ठैव न स्यात्, तन्निमित्तत्वात् कार्यस्य ।······तस्मान्नास्ति शक्तीनां प्रवृत्तिकाले विनाशः । प्रवृत्त्युत्तरकालमपि नास्ति । कस्मात्? पुनः प्रवृत्तिदर्शनात् ।······ तस्मात् त्रिषु कालेषु शक्तयोऽवतिष्ठन्ते ।"—**साङ्ख्यका० युक्तिदीपिका**, का० १५ ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

२३०-२ इतश्च[1] अस्ति प्रधानम्, वैश्वरूप्यस्याविभागप्राप्तेर्देशकालप्रमाणबलरूपप्रत्यासत्तेरवश्यम्भाव्युच्छेदा[2]नुच्छेदाभ्यां च निवृत्तेः । जैलभूम्योः[3] पारिणामिकं रसादिवैश्वरूप्यं स्थावरेषु दृष्टम्, तथा स्थावराणां जङ्गमेषु, जङ्गमानां स्थावरेषु, स्थावराणां स्थावरेषु, जङ्गमानां जङ्गमेषु । जात्यनुच्छेदेन सर्वं सर्वात्मकम्, देशकालाकारनिमित्तावबन्धात् तु न समानकालमात्माभिव्यक्तिः, ते[4] मन्यामहे जलभूम्योरप्येतत् पारिणामिकं रसादिवैश्वरूप्यम्, अन्येषां च भूतानामन्यपरिणाम इति, एवं तदप्यन्यस्येत्यवश्यंभावी अविभागः । यत्र चाविभागस्तत् प्रधानम्, वैश्वरूप्यस्याविभागकारणपूर्वकत्वात्, मयूरबर्हवैचित्र्यस्येव तदण्डकरसपूर्वकत्वम् । तस्मादस्ति प्रधानमिति एभिः पञ्चभिर्वीतैः[5] समन्वयपरिमाणोपकारशक्तिप्रवृत्तिवैश्वरूप्यगत्याख्यैः सामान्यसंसर्गैककर्तृशक्तिमच्छक्त्यविभागसंज्ञं प्रधानं सिद्धम् । अत एवैकत्वमर्थवत्त्वम्[6], परार्थत्वं संहत्य-

---

१ "किञ्चान्यत्, अविभागाद् वैश्वरूप्यस्य । इह यद् विश्वरूपं तस्याविभागो दृष्टः, तद्यथा—सलिलादीनां जलभूमी, विश्वरूपाश्च महदादयः, तस्मादेषामप्यविभागेन भवितव्यम् । योऽसावविभागस्तदव्यक्तम् । तस्मादस्त्यव्यक्तम् । आह – किं पुनस्तद् वैश्वरूप्यं को वा विश्वरूप इति ? उच्यते–वैश्वरूप्यमिति विशिष्टमवस्थानमाचक्ष्महे अस्तमितविशेषत्वमविभाग इति । विशेषस्य सामान्यपूर्वकत्वादिति योऽर्थस्तदुक्तं भवति अविभागाद् वैश्वरूप्यस्येति ।" **साङ्ख्य**का० **युक्तिदीपिका**, का० १५ ॥ २. °**व्युच्छेदाभ्यां** प्र० ॥ ३ दृश्यतां पृ० ११ पं० २७ । "यथा जलभूम्योरप्येतद् रसादिवैश्वरूप्यं स्थावराणां जङ्गमेषु जङ्गमानां स्थावरेष्विति । एवं जात्यनुच्छेदेन सर्वं सर्वात्मकमिति । तेन मन्यामहे – अस्ति प्रधानं यत्र महदादि लिङ्गमविभागं गच्छति, इत्येवमवश्यम्भावी अविभागः । यत्राविभागस्तत् प्रधानम् । तस्मादस्ति प्रधानम् ।" इति **जे० साङ्ख्यका० वृत्तौ** B, किञ्चिच्छब्दभेदेन **माठरवृत्तौ** च, का० १५ ॥ "सर्वं सर्वात्मकमिति । यत्रो(**थो**?)क्तम्—'जलभूम्योः पारिणामिकं रसादिवैश्वरूप्यं स्थावरेषु दृष्टम्, तथा स्थावराणां जङ्गमेषु जङ्गमानां स्थावरेषु इति । एवं जात्यनुच्छेदेन सर्वं सर्वात्मकमिति । देशकालाकारनिमित्तापबन्धाच्च खलु समानकालमात्मनामभिव्यक्तिः' इति [व्यासभा०] । सर्वं सर्वात्मकमिति । यत्रोक्तमिति तदेवोपपादयति । जलभूम्योरिति । जलस्य हि रसरूपस्पर्शशब्दवतः भूमेश्च गन्धरसरूपस्पर्शशब्दवत्याः पारिणामिकं वनस्पतिलतागुल्मादिषु मूलफलप्रसवपल्लवादिगतरसादिवैश्वरूप्यं दृष्टम् । सोऽयमनेवमात्मिकाया भूमेरनीदृशस्य वा जलस्य न परिणामो भवितुमर्हति, उपपादितं हि नासदुत्पद्यते इति । तथा स्थावराणां जङ्गमेषु मनुष्यपशुमृगादिषु रसादिवैचित्र्यं दृष्टम् । उपभुञ्जाना हि ते फलादीनि रूपादिभेदसम्पदमासादयन्ति । एवं जङ्गमानां पारिणामिकं स्थावरेषु दृष्टम्, रुधिरावसेकात् किल दाडिमीफलानि तालफलमात्राणि भवन्ति । उपसंहरति – एवमिति । एवं सर्वं जलभूम्यादिकं सर्वरसाद्यात्मकम् । तत्र हेतुमाह— जात्यनुच्छेदेनेति । जलत्वभूमित्वादिजातेः सर्वत्र प्रत्यभिज्ञायमानत्वेन अनुच्छेदात् । ननु सर्वं चेत् सर्वात्मकं हन्त भोः सर्वस्य सर्वदा सर्वत्र सर्वथा सन्निधानात् समानकालीना भावानां व्यक्तिः प्रसज्येत, न खलु सन्निहिताविकलकारणं कार्यं विलम्बितुमर्हतीत्यत आह—देशकालेति । यद्यपि कारणं सर्वं सर्वात्मकं तथापि यो यस्य कार्यस्य देशः यथा कुङ्कुमस्य कश्मीरः तेषां सत्त्वेऽपि पञ्चालादिषु न समुदाचार इति न कुङ्कुमस्य पञ्चालादिषु अभिव्यक्तिः, एवं निदाघे न प्रावृषः समुदाचार इति न तदा शालीनाम्, एवं न मृगी मनुष्यं प्रसूते, न तस्यां मनुष्याकारसमुदाचारः इति । एवं नापुण्यवान् सुखरूपं भुङ्क्ते, न तस्मिन् पुण्यनिमित्तस्य समुदाचार इति । तस्माद् देशकालाकारनिमित्तानामपबन्धादपगमाच्च समानकालमात्मनां भावानामभिव्यक्तिरिति ।" इति **पातञ्जलयोगदर्शनस्य व्यास**प्रणीतभाष्योपरि **वाचस्पतिमिश्र**विरचितायां **तत्त्ववैशारद्यां** वृत्तौ ३।१४ ॥ **४ ते** इत्यव्ययं **ततः** इत्यर्थे वर्तेत इति भाति, दृश्यतां पृ० ११ पं० २७ । **ते** इत्यव्ययस्य **ततः** इत्यर्थे दृश्यते बहुशः प्रयोगः **पातञ्जलमहाभाष्ये**ऽपि, तद्यथा—"अब्रह्मदत्तं ब्रह्मदत्त इत्याह । ते मन्यामहे ब्रह्मदत्तवदयं भवतीति ।" **पा० म० भा०** १।१।२२, १।२।१, ७।१।९० ॥ ५ यथाक्रमं समन्वयात् सामान्यं परिमाणात् संसर्गः उपकारात् एककर्ता शक्तिप्रवृत्तेः शक्तिमच्छक्तिः वैश्वरूप्यगत्या च अविभागः सिध्यति ॥ ६ "[दश मूलिकार्थाः, तथाहि—] अस्तित्वमेकत्वमथार्थवत्त्वं पारार्थ्यमन्यत्वमथो निवृत्तिः । योगो वियोगो बहवः पुमांसः स्थितिः शरीरस्य च शेषवृत्तिः ॥ १ ॥ तत्र 'भेदानां परिमाणात्' [का० १५] इत्येभिः पञ्चभिर्वीतैर्हेतुभिः प्रधानस्यास्तित्वमेकत्वमथार्थवत्त्वं च सिद्धम् । 'सङ्घातपरार्थत्वात्' [का० १७] इति परार्थता सिद्धा । 'तद्विपरीतस्तथा च पुमान्' [का० ११] इति प्रधानपुरुषयोरन्यत्वं सिद्धम् । 'रङ्गस्य दर्शयित्वा' [का० ५९] इति निवृत्तिः सिद्धा । 'पुरुषस्य दर्शनार्थम्' [का० २१] इति संयोगः सिद्धः । 'प्राप्ते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारिणां पारार्थ्याच्छयनादिवत् । अतः पुरुषास्तित्वमन्यत्वं तद्बहुत्वं च पुरुषाणाम् । प्रधानस्य [1]आद्यन्त-पुरुषार्थोपलब्ध्यनन्तरं निवृत्तिः व्रीह्युदकगत्या [2]रङ्गनर्तकीवद्वेति प्रधानपुरुषसंयोगविभागावित्थम् । इयत्[3]परिज्ञानफलं च शास्त्रम् ।

तथा **संव्यवहारप्रसिद्धे**रित्यादि याव**दावीताना**मिति व्याख्यातं द्रष्टव्यम् । एतेषामेव पञ्चानां वीतानां परिशुद्ध्यर्थाः पञ्चैव आवीताः । एवमेभिः पञ्चभिर्वीतैः प्रधानस्य परिग्रहं कृत्वा पुनरावीतैः करिष्यामः । 'परपक्षप्रतिषेधेन स्वपक्षपरिग्रहक्रिया [4]आवीतः' इत्यपदिष्टं [5]पुरस्तात् । तस्यास्य [6]प्रतिपक्षाः सर्वैकान्तिनः पुरुषेश्वराणुप्रवादाः विकारपुरुषा वैनाशिकाश्च । तेषां 'वैनाशिकप्रतिषेधमग्रे वक्ष्यामः, कस्मात् ? २३१-१
किञ्चिद् 'वैनाशिका [7]हीतर इत्यतः प्रभृत्युपक्रम्य **अनुपलब्धेर्[8]नास्ती**ति द्वितीयस्य शिरसो[ऽन]भ्युपगतस्यासत उत्पत्त्यभावाद् व्यभिचारप्रसङ्गे गते याव**दनागतेऽपि काले न भविष्यती**ति ।

किञ्चान्यत्, यदि व्यक्तस्यासत उत्पत्तिर्भवति अर्थार्थिभिस्तृणपांशुवालुकाः मुक्तामणिरजतसुवर्णानि क्रियेरन्, कस्मात् ? अभावक्रिया गुरुकार्या भावक्रिया लघ्वीति । न त्वेवं क्रियते, **तस्मादयुक्त**मित्यादि याव**दुक्तोत्तरत्वादसम्यग्विधिः** । किञ्चान्यत्, यदि व्यक्तस्यासत उत्पत्तिर्योन्यभावादेकत्वप्रसङ्गः, प्रधानाभावात् सामान्यमात्रमिदं व्यक्तं निर्विशेषमित्येतत् प्रसज्येत । कस्मात् ? **सामान्यपूर्वकत्वाद् विशेषाणाम्**, सामान्यपूर्वका हि लोके विशेषा दृष्टाः, तद्यथा – [9]क्षीरपूर्वका दधिमस्तुद्रप्सनवनीतघृतारिष्टकिलाटकूर्चिकाभावाः । न त्वसति भावः कश्चिदस्ति यत्पूर्वका व्यक्तविशेषाः स्युः । तस्मात् सामान्यमात्रमिदं व्यक्तं निर्विशेषमित्ये[10]तत्, न त्विदं तादृक् । तस्माद् नेदं व्यक्तमसत उत्पद्यते । न चेदं सत उत्पद्यते । पारिशेष्यात् प्रधानादेवेदं व्यक्तमु[11]त्पद्यत इत्येतद् [12]युक्तम् । तस्मादस्ति प्रधानमिति । एषोऽन्वयवीतस्यावीतः ।

शरीरभेदे' [का० ६८] इति वियोगः सिद्धः । 'जन्ममरणकरणानाम्' [का० १८] इति पुरुषबहुत्वं सिद्धम् । 'चक्रभ्रमवत्' [का० ६७] इति शेषवृत्तिः सिद्धा ।" **जे० साङ्ख्यका० वृ० B**, तथा **माठरवृत्तौ** का० ७२ । "प्रधानास्तित्वमेकत्वमर्थवत्त्वमथान्यता । पारार्थ्यं च तथाऽनैक्यं वियोगो योग एव च ॥ शेषवृत्तिरकर्तृत्वं मूलिकार्थाः स्मृता दश । [पृ० २] । ....तत्रास्तित्वमेकत्वं पञ्चभिर्वीतैः सिद्धम् । अर्थवत्त्वं कार्यकारणभावः । पारार्थ्यं संहत्यकारित्वा परार्थत्वात् । अत एवान्यत्वं चेतनाशक्तेर्गुणत्रयात् । 'जन्ममरणकरणानाम्' [का० १८] इत्येवमादिभिः पुरुषबहुत्वम् । 'पुरुषस्य दर्शनार्थम्' [का० २१] इति संयोगः । 'प्राप्ते शरीरभेदे' [का० ६८] इति वियोगः । 'सम्यग्ज्ञानाधिगमात्' [का० ६७] इति शेषवृत्तिः । 'तस्माच्च विपर्यासात्' [का० १९] इति पुरुषस्याकर्तृत्वमित्येते दश मूलिकार्थाः ।" **साङ्ख्य**का० **युक्तिदीपिका** पृ० ५ । "एकत्वमर्थवत्त्वं पारार्थ्यं च प्रधानमधिकृत्योक्तम् । अन्यत्वमकर्तृत्वं बहुत्वं चेति पुरुषमधिकृत्य । अस्तित्वं वियोगो योगश्चेत्युभयमधिकृत्य । वृत्तिः स्थितिरिति स्थूलसूक्ष्ममधिकृत्य ।" इति **साङ्ख्य**तत्त्वकौमुद्याम्, का० ७२ ॥

१ °**पार्थयो पल**° य० । "प्रधानस्य पुरुषार्था प्रवृत्तिः, स चार्थो द्विविधः—शब्दाद्युपलब्धिरादिर्गुणपुरुषान्तरोपलब्धिरन्तः ।" **जे० साङ्ख्यका० वृ० A, B, माठर**वृ०, का० ६६ ॥ २ **रङ्गमनर्त**° य० । "रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात् । पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः ॥ ५९ ॥"—**साङ्ख्यका०** ॥ ३ °**त्परिमाणफलं** य० ॥ ४ दृश्यतां पृ० ३१४ पं० ३ ॥ ५ **पुरस्तावत** भा० ॥ ६ "प्रतिपक्षाः पुनस्तस्य पुरुषेशाणुवादिनः । वैनाशिकाः प्राकृतिका विकारपुरुषास्तथा ॥ तेषामिच्छाविघातार्थमाचार्यैः सूक्ष्मबुद्धिभिः । रचिताः स्वेषु तन्त्रेषु विषमास्तर्कगह्वराः ॥" इति **साङ्ख्य**का० **युक्तिदीपिका**वृत्तौ प्रारम्भश्लोकेषु ॥ ७ **हीतकर** पा० रं० ही० ॥ ८ **लब्धिति** प्र० ॥ ९ 'क्षीरं द्रप्स-दधि-मस्तु-नवनीत-घृता-ऽरिष्ट-किलाट-कूर्चिकाभावेन परिणमति ।" **जे० साङ्ख्यका० वृ० A, माठर**वृ०, का० १६ ॥ १० °**मित्येतत न त्विदं** य० । °**मित्येत(व ?) न त्विदं** भा० ॥ ११ °**त्पद्य इ**° प्र० ॥ १२ **व्यक्तं** य० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

किञ्चान्यदित्यादि तदेव **योन्यभावादनवस्थाप्रसङ्गः**, परिमाणस्य संसर्गपूर्वकत्वाविनाभावादित्यर्थः । प्रधानाभावाद् 'निष्परिमाण[1]मिदं व्यक्तमव्यवस्थितमित्येतत् प्रसज्येत । कस्मात्? सतां ह्यर्थानां लोके परिमाणं दृष्टं तुलामान-हस्त-[2]व्याम-रज्ज्वात्मोपचयैः, न त्वसति भावः कश्चिदस्ति यः प्रतिपद्यमानः परिमाणेऽवतिष्ठेत । तस्माद् 'निष्परिमाणमिदमव्यवस्थितमित्येतत् प्रसज्येत, न त्विदं तादृक्, तस्माद् नेदं व्यक्तमसत उत्पद्यते । न चेदं सत उत्पद्यते । परिशेषतः प्रधानादेवेदम् । तस्मादस्ति तत् ।

२३१-२ किञ्चान्यत्, **एकजातिसमन्वयाभाव[3]प्रसङ्गा**दिति तदेव । **स्थालीघटे**त्यादि दृष्टान्तविशेषः सामान्यविशेषोत्था[4]पनार्थमुच्यते । अत्र परो ब्रूयात्—विशेषमात्रस्य दर्शनादसत उत्पत्तिः, तद्यथा—**आ[5]कारो गौरवमित्यादिधर्मभेदा**दिति । तत्रोत्तरम्—**ताद्रूप्येणोपकाराददोष** इति धर्मभेदपरिणत्या लोकवृत्तान्तनयनादित्युपकारभेदप्रदर्शनात् कार्यकारणभाववीतस्यावीतत्वलेशं च स्पृशतीति तस्मादेव ग्रन्थादवगन्तव्यं यावत् पुरस्ताद् व्याख्यातम्, यथा—**तैर्यग्योनमानुषदैवानि परस्परार्थं न कुर्वीरन्नि**ति । तत्र यदुक्तं 'भूतानां तत्समूहानां च व्यावृत्तेर्विशेषमात्रमिदं व्यक्तम्, तस्मादसत उत्पद्यते' इति, **एतदयुक्तमिति**

---

१ **निःपरि**° प्र० ॥ २ "व्यामो बाह्वोः सकरयोस्ततयोस्तिर्यगन्तरम् ।" इति अमरकोशे २।६।८७ ॥ ३ °**वाप्र**° प्र० ॥ ४ भा० विनान्यत्र–°**स्थाप**° पा० । °**स्वाप**° डे० लीं० । °**त्वाप**° वि० रं० ही० ॥ ५ "आकारो गौरवं रौक्ष्यं वरणं स्थैर्यमेव च । स्थितिर्भेदः क्षमा कृष्णच्छाया सर्वोपभोग्यता ॥ १ ॥ इति ते पार्थिवा धर्मास्तद्विशिष्टास्तथाऽपरे । जलाग्निपवनाकाशव्यापकास्तान् निबोधत ॥ २ ॥ स्नेहः सौक्ष्म्यं प्रभा शौक्ल्यं मार्दवं गौरवं च यत् । शैत्यं रक्षा पवित्रत्वं सन्ता(न्धा)नं चौदका गुणाः ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वगं पावकं दग्धृ पाचकं लघु भास्वरम् । प्रध्वंस्योजस्वि च ज्योतिः पूर्वाभ्यां **स**(च?) विलक्षणम् ॥ ४ ॥ तिर्यग्गतिः पवित्रत्वमाक्षेपो नोदनं बलम् । रौक्ष्यमच्छायता शैत्यं वायोर्धर्माः पृथग्विधाः ॥ ५ ॥ सर्वतोगतिरव्यूहो विष्कम्भश्चेति ते त्रयः । आकाशधर्मा विज्ञेयाः पूर्वधर्मविरोधिनः ॥ ६ ॥ संहतानां तु यत् कार्यं सामान्यं ते गवादयः । इतरेतरधर्मेभ्यो विशेषान्नात्र संशयः ॥ ७ ॥ तत्राकारादिभिर्धर्मैः पृथिव्या लोकस्य चोपक्रियते भूतान्तराणां च । तत्र आकारात् तावद् गवादीनां घटादीनां चाकारनिर्वृत्तिः, गौरवादेषामवस्थानम् । रौक्ष्यादपां सङ्ग्रहो वैशद्यं च भूतानाम् । वरणादनभिप्रेतानां छादनम् । स्थैर्याद् **वृत्तिः**(धृतिः?) प्रजानां भूतान्तराणां च । स्थितेर्मात्रादिसन्निधानाद्यनुग्रहः, भेदाद् घटादिनिष्पत्तिः व्यूहश्चावयवानाम् । क्षान्तेरुपभोगयोग्यता । कृष्णच्छायत्वाद् रात्रिसम्पच्छायाकार्यप्रसिद्धिश्च । सर्वोपभोग्यत्वात् सर्वभूतानुग्रहः । एवं स्नेहादिभिर्लोकस्योपकारः क्रियते भूतान्तराणां च । स्नेहाद् रूपसम्पद् वायुप्रतीकारोऽग्निशमनं सङ्ग्रहश्च पृथिव्याः । सौक्ष्म्यादनुप्रवेशः । शौक्ल्याच्चन्द्रादिनिर्वृत्तिः । मार्दवात् स्नानावगाहनमेकक्रिया कठिनानां चावनमनम् । गौरवात् सन्तानाच्च भूतानुग्रहार्थं स्रोतस्त्वम् । शैत्यादुष्मप्रतीकारः । रक्षातः प्रजासु घोरशमनम् । पवित्रत्वाद् धर्मोपचयः, शौचविधिरलक्ष्येऽपि घातश्च । सन्ता(न्धा)नाद् द्रव्यसङ्घातः । तथा ऊर्ध्वगत्यादिभिर्धर्ममात्रेऽपि तेजसा लोकस्य चोपक्रियते भूतान्तराणां च । ऊर्ध्वगतेः पाकप्रकाशसिद्धिः, पावकत्वाद् द्रव्यशौचं च । दाहकत्वात् क्षारोत्पत्तिः शीतप्रतीकारो नभसश्चोष्मत्वं शब्दनिष्पत्त्यर्थम् । पाचकत्वात् स्वेद्यस्वेदनमन्नपक्तिः । पृथिव्यवयवानां क्रियायोग्यता तथा बाह्यान्तरपरिणामो रसलोहितमांसस्नाय्वस्थिमज्जाशुक्राणाम् । लाघवाद् दाह्यातिक्रमः । भास्वरत्वाद् द्रव्यान्तरप्रकाशनम् । प्रध्वंसित्वाद् दग्धपक्वानामुपभोगः । ओजसः प्रजापालनम् । तथा तिर्यक्पातादिभिर्धर्मैः वायुना लोकस्य चोपकारः क्रियते भूतान्तराणां च । तिर्यक्पाताद् दृष्टिविक्षेपो गन्धसंवहनं च । पवित्रत्वात् पूतिद्रव्यपावनम् । आक्षेपनोदनाभ्यामुत्कर्षः, प्रथनं घर्माम्भसः, व्यूहश्च शरीरे रसादीनां धातूनां च, अग्नेश्चोपध्मानमभिघातश्चाकाशस्य । बलात् समीरणं सर्वेषाम् । रौक्ष्याद् विशोषणम् । अच्छायत्वादहोरात्रप्रसिद्धिः । शैत्यादुष्मप्रतीकारः । तथा सर्वतोगत्यादिभिर्धर्मैः नभसा लोकस्योपकारः क्रियते भूतान्तराणां च । सर्वत्र गतेः समन्तात् तुल्यदेशश्रवणानामेकश्रुतित्वम् । अव्यूहविष्कम्भाभ्यां सर्वेषामवकाशदानमित्युक्ताः पृथिव्यादयः ।"—**साङ्ख्य**का० **युक्तिदीपिका**, का० ३८ । एत एव "आकारो गौरवं रौक्ष्यम्" इत्यादयः प्रथमतृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठश्लोकाः किञ्चित्पाठभेदेन **पा**तञ्जलयोगदर्शन**वै**यासिकभाष्योपरि **वा**चस्पतिमिश्रविरचितायां तत्त्ववैशारद्यां वृत्तौ विज्ञानभिक्षुविरचिते **यो**गवार्तिके च समुपलभ्यन्ते ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनरसत्समन्वयाशङ्कां निरस्य प्रपञ्चेन यावत् **तस्माद् युक्तमेतत्– योन्यभावाद् भेदप्रसङ्ग** इति । एषोऽन्वयवीतस्यावीतः प्रसङ्गो व्याख्यातः । आचार्येणापि **तथैव व्यवस्था-तुल्यजातिसमन्वयादी**त्युक्तं तेनैव क्रमेण **आदि**ग्रहणात् त्रयः शेषा अप्यावीताः सूचिताः ।

तत्र कार्यकारणवीतस्य आवीतस्तावत्–**किञ्चान्यत्**[1], **कार्यकारणयोश्च व्यक्तमिदं द्विधा कृत्वा** कार्यराशिं कारणराशिं च '[2]कृत्वा **न असत उत्पत्तिः** 'सम्भवति' इति वाक्यशेषः, **क्रमयौगपद्य-प्रवृत्त्यसम्भवात्** । परस्परार्थात्मलाभत्वात् कार्यकारणयोरन्योन्यानुरूपात्मलाभाभावः । अतः क्रमेण प्रवृत्त्यभावैश्चक्राक्षवत् असत्त्वादसद्वादिनः । तथा युगपदप्यभूतविनष्टयोरनपेक्षत्वात् खरविषाणवत् क्रियादिमध्यावसानेषु असत्त्वादेव प्रवृत्त्यसम्भवः । यदारभ्यते तत् क्रियते निष्ठां च गच्छतीति लोके दृष्टम्, तत् परस्परापेक्षामन्तरेण न सम्भवति चक्राक्षवदित्युक्तम् । तस्मात् **क्रमयौगपद्यप्रवृत्त्यसम्भवा-** २३२-१
दकार्यकारणत्वप्रसङ्गः । कार्यकारणभूतं चैतद् व्यक्तम् । तस्मान्नेदमसत उत्पद्यते । परिशेषतः प्रधाना-देवेदमिति कार्यकारणवीतस्यावीतः । किञ्चान्यत्, निर्बीजमकस्मादुत्पद्यमानं व्यक्तमनेकदेशत्वाद् भेदानाम-सम्बद्धमुत्पद्येत, सम्बद्धं चोत्पद्यते, तस्मान्नेदमसत इति शक्तिवीतस्य आवीतः । [3]शेषस्तु प्रसक्तानुप्रसक्त-विचारेण [4]**संस्थानमादिमद्धर्ममात्रं शब्दादीनां विनाश्यविनाशिनाम्, एवं लिङ्गमादिमद्धर्ममात्रं सत्त्वादीनां विनाश्यविनाशिनाम्, तस्मिन् विकारसंज्ञा** [ ], तत्र यदुक्तं **'विकारस्य विनाशित्वात् प्रधानस्य विनाशित्वम्'** इति **एतदयुक्तम्, गुणव्यतिरिक्तगुणप्रवृत्तिकारणाभावादाकस्मिक्याः प्रवृत्तेरभावाच्चे**[5]त्या[6]दिभिः प्रत्यभिज्ञानार्थक्रियाहेतुकार्यनियमादिभिश्च हेतुभिरत्यन्तासदुत्पत्तिविनाशप्रतिषेधार्थः सर्वो ग्रन्थो वैश्वरूप्याविभागगतिवीतस्यावीतो द्रष्टव्य इति । एवमेषां प्रधानास्तित्वैक्यादिसाधना[7]र्थं वीतानां तत्सद्भावस्य अन्यथा व्यक्तासम्भवस्य वा दर्शनेन त्र्यात्मकयोनिहेतुत्वमवश्यमित्येत**दवधारणार्थानां**[8] **चावी-**

---

१ **किंचाऽनसत** य० । **किंचानसत** भा० ॥ २ °**वाश्च**° प्र० ॥ ३ शेषस्तु सर्वो ग्रन्थो वैश्वरूप्याविभाग-गतिवीतस्यावीतो द्रष्टव्य इति वक्ष्यमाणेन अन्वयः ॥ ४ "यथा — संस्थानमादिमद्धर्ममात्रं शब्दादीनां विनाश्यविना-शिनाम्, एवं लिङ्गमादिमद्धर्ममात्रं सत्त्वादीनां गुणानां विनाश्यविनाशिनाम् । तस्मिन् विकारसंज्ञेति ।" इति **पा**तञ्जलयो-गदर्शनस्य **व्या**सप्रणीते भाष्ये ३।१३ । इदं च वाक्यं **व्या**सभाष्येऽपि कुतश्चिदन्यग्रन्थादुद्धृतमिव प्रतिभाति । अस्य **वा**चस्पतिमिश्रप्रणीता व्याख्या — "विमर्दवैचित्र्यमेव विकारवैचित्र्ये हेतुं प्रकृतौ विकृतौ च दर्शयति — यथेति । यथा संस्थानं पृथिव्यादिपरिणामलक्षणं आदिमद् धर्ममात्रं विनाशि तिरोभावि शब्दादीनां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्राणां स्वकार्यमपेक्ष्य अविनाशिनाम् अतिरोभाविनाम् । प्रकृतौ दर्शयति — एवं लिङ्गमिति । तस्मिन् विकारसञ्ज्ञा । न त्वेवं विकारवती चितिशक्तिरिति भावः ।"-**तत्त्ववै०** । **विज्ञानभिक्षुविरचितायां यो**गवार्तिकाख्यायां व्याख्यायां त्वित्थम् — "गुणिनित्यत्वेऽपि गुणानां विमर्दमुदाहरति — यथेति । यथेति न दृष्टान्ते, किन्तूदाहरणे, संस्थानमिति, अर्थविनाशेना-विनाशिनां शब्दादितन्मात्राणां पञ्चभूतरूपं संस्थानं धर्ममात्रमादिमत्, इत्यतो विनाशीत्यर्थः । एवमित्याद्यप्येवं व्याख्येयम् । लिङ्गं महत्तत्त्वम् । एवमहङ्कारादयो घटादयश्च स्वविनाशेनाविनाशिनां कारणानां धर्ममात्राणि विनाशिन इति बोध्यम् ।··· तस्मिन् धर्मे विकारसंज्ञा परिणामसंज्ञेत्यर्थः ।" इति **यो**गवार्तिके ॥ ५ "पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादि सूक्ष्मपर्यन्तम् । संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम् ॥ ४० ॥" इति **साङ्ख्य**कारिकाया **माठर**वृत्तौ **साङ्ख्य**तत्त्वकौमुद्यादिषु च 'पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि पञ्च तन्मात्राणि मनो बुद्धिरहङ्कारः' इत्येवमष्टादशविधं महदादि सूक्ष्मपर्यन्तं लिङ्गं वर्णितमस्ति, **युक्ति**-दीपिकादिव्याख्यासु तु इयं कारिका अन्यथा व्याख्यातास्ति ॥ ६ °**त्यादि प्रत्य**° प्र० ॥ ७ दृश्यतां पृ० ३२० **टि०** ६ ॥ ८ °**नार्थां** भा० । (°नार्थानां ?) ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्यः पुनराह – न सर्वसर्वात्मकत्वपरिग्रहो न्याय्यः, अन्यथा भवनद्वैतपरिग्रहाद् विध्युभयनयैकान्तोपपत्तेः। सन्निधिर्न हि सन्निधिमात्रवृत्तिरस्ति अनापन्नत्वादनाविर्भूतत्वादप्रवृत्तत्वादनियतत्वात् । अनापन्नत्वादिभ्यो नास्ति वन्ध्यापुत्रवत् सन्निधिः, पद्यतिवर्तत्यर्थप्रवृत्तत्वादेव सत्तायाः । न हि द्रव्यादिसद्भेदवत् पद्यतिवर्तत्योः सत्ताविशेषत्वेन उपादानम्, 'सत्तार्थाः' [ ] इत्यविशेषेण वचनात् ।

तानामतथार्थत्वमुक्तविधिना प्रतिपादितम्, एकत्वं पुरुषवदपरिणामित्वं [1]*चं सुखादीनाम् । तत एकत्वात् पुरुषवदपरिणामित्वादतथार्थत्वं चेति । तस्माद**तथार्थ**त्वादनुमानाभासत्वादेतेऽर्था नोपपन्नाः, तद्यथा – भिन्नगुणत्वं* वैषम्यात्मकत्वं विपरिणामः पुनः साम्यापत्तिश्चेति । तदनुपपत्तेर्जगत्सर्गसंहारकल्पना निर्मूला प्रधानाभावात् । तन्निर्मूलत्वात् [2]पुरुषार्थेन हेतुना प्रयुक्ता प्रवृत्तिरित्येतदपि वितथम्, तद्वितथत्वात् तद्विषयः
२३२-२ प्रत्ययोऽप्यज्ञानमेव, तदज्ञानत्वात् ज्ञानप्राप्यपुरुषार्थाभावोऽपीति **समस्ततन्त्रार्थविघटनमेवे**ति किमवशिष्यते वार्षगणे तन्त्रे ? सुभाषिताभिमतस्त्याज्योऽयमनुपपन्नपरोक्षार्थवादः । यद्युपपद्येत परोक्षार्थमपि तं गृह्णीयाम, न तूपपन्नः । तस्मात् सर्वसर्वात्मकत्वपरिग्रह एव न्याय्यः ।

अन्यः पुनरित्यादि । **न [3]सर्वसर्वात्मकत्वपरिग्रहो न्याय्यः, अन्यथा भवनद्वैतपरिग्रहाद् विध्युभयनयैकान्तोपपत्तेः** । तत्र 'भवति भावद्वैतम्, भवतो भावस्य [4]भव्यभवितृत्वाभ्यां भेदाभ्यां भावोपपत्तिः' इत्येतत् प्रतिपादयिष्यते । न [5]त्वेवं यथानन्तरदूषितं सन्निध्यापत्तिभवनद्वैतम् । तत्र तावद् यः **सन्निधिर्न हि** स **सन्निधिमात्रवृत्तिरस्ति,** कुतः ? **अनापन्नत्वात्**, आपत्तिरनाविर्भूतस्याविर्भावः, तत आह – **अनाविर्भूतत्वात्**, अनाविर्भवनमप्रवर्तनम्, अप्रवर्तनं चानियमः । अथवा आपत्तिर्विपरिणामो भावान्तरेणोपलब्धिः, आविर्भावो व्यक्तिः, प्रवृत्तिः सन्ततः परिणामप्रबन्धः, नियतस्वरूपत्वमविगतद्रव्यार्थभावस्थितिः, एभ्यो विपर्ययोऽनापन्नत्वादिः, तेभ्यो हेतुभ्यो**ऽनापन्नत्वादिस्वरूपेभ्यो नास्ति वन्ध्यापुत्रवत् सन्निधिः । आदि**ग्रहणादप्रवृत्तेरव्यक्तेरनियतेरित्यादिभ्यः । अतः सन्निधेरसत्पर्यायत्वात् सन्निधिभवनाभावः । ननूक्तम् – [6]**अस्तिभवत्यादिषु अस्ति-वर्तती सन्निधिवाचिनौ, भवति-विद्यती सामान्यभवनवाचिनौ, पद्यतिरापत्तिभवनवाची** [ ] इति, सत्यमुक्तम्, अयुक्तं तूक्तम्, अस्त्यादीनां सन्निपातषष्ठानां सत्तार्थवाचित्वात् सर्वेऽप्यमी सत्तार्थमेवाविशेषेण ब्रुवते । सा च सत्ता पद्यति-वर्तत्ये-[7]कार्थैवेत्यत आह – **पद्यति-वर्तत्यर्थप्रवृत्तत्वादेव सत्तायाः** । स्यान्मतम् – सद्विशेषद्रव्य-गुण-कर्मवद् वर्ततिपद्यत्योरुपादानं सत्ताविशेषत्वेनेति । एतच्चायुक्तम्, यस्माद् **न हि द्रव्यादिसद्भेदे**त्यादि यावदुपा**दान**मिति गतार्थम् । किं तर्ह्युपादानम् ? उच्यते – अस्त्यादितुल्यार्थत्वेन । कुतो ज्ञायते इति चेत्, **सत्तार्था इत्यविशेषेण वचनात्**, अस्ति-भवति-विद्यति-पद्यति-वर्ततयः सन्निपातषष्ठाः [8]सत्तार्थाः [ ] इत्यविशेषेणोक्तत्वात् सिद्धसेनसूरिणा ।

---

१ ** एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ २ "पुरुषार्थ एव हेतुर्न केनचित् कार्यते करणम् [साङ्ख्यका० ३१] ॥ पुरुषार्थः कर्तव्य इति गुणानां प्रवृत्तिः।"–**जे० साङ्ख्यका० वृ०** B ॥ ३ **सर्वासर्वात्म**° प्र० ॥ ४ **भव्यभवतृ**° भा० ॥ ५ **त्वैवं** प्र० ॥ ६ दृश्यतां पृ० २६१ पं० १८ । पूर्ववर्णनादत्र भेदो दृश्यते इत्यपि ध्येयम् ॥ ७ °**कार्थै चेत्यत** प्र० ॥ ८ दृश्यतां पृ० ३४ पं० २१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्यपि चापत्तिभवननिरूपणं 'प्रधानमेव भवति महदादिविकारापत्त्या, तेन किल भूयत इति' तदपि न, तस्यापि भाव्यमानत्वाद् भावयितारमन्तरेणानुपपत्तेः अनापन्नस्य च असत्त्वात्, अस्वतन्त्रत्वात्, शब्दादिवत्।

भवति कर्ता यः स्वतन्त्रः, प्रवर्तनवृत्तत्वात्, तथाभवनवृत्तत्वात् तन्तुपटवत्।

एवं तावत् सन्निधिभवनं नास्त्येव निरूपणानुपपत्तेः । आपत्तिभवनमपि नास्ति, कथमिति चेत्, **यदपि चापत्तिभवननिरूपणं** साङ्ख्यैः क्रियत इति वाक्यशेषः । **प्रधानमेव भवति** महदादिविकारापत्त्या, यस्मात् **तेन किल भूयत इति,** 'इति'शब्दहेत्वर्थत्वाद् महदादि[1]भावमापद्यत इत्यस्मात् कारणात् प्रधानमेव भवति, तेनैव भूयते सत्त्वादिमयत्वाद् विश्वस्येति । किलशब्दः क्षेपे, एवं किल तेषां मतमिति, स च क्षेपोऽनुपपद्यमानत्वात् । कथमिति चेत्, उच्यते—**तदपि न, तस्यापि भाव्यमानत्वाद् भावयितारमन्तरेण भाव्यत्वानुपपत्तेः,** स्वत ए[2]व न भवतीत्यर्थः । भाव्यमानत्वं च वक्ष्यमाणोपपत्तिकत्वात् सिद्धम्। तद्वेद् व्या[3]वृत्तं द्वितीयेन व्या[4]वृत्ततरेण विना न प्रवर्तितुमर्हति, अनापन्नत्वात्, **अनापन्नस्य च** सन्निधिमात्रस्यो[5]पादितासत्त्वात् । तस्मादनापन्नस्य च स्वत एवाप[6]त्त्यभावात्तदुक्तापत्तिभवनं नोपपद्यत इति । किं कारणमनुपपन्नमिति चेत्, **अस्वतन्त्रत्वात्,** अ[7]न्यतन्त्रं हि तत् प्रधानाख्यमचेतनत्वात्। को दृष्टान्तः? **शब्दादिवत्,** य[8]था शब्दादयः सत्त्वरजस्तमोमयत्वा[9]दस्वतन्त्रास्तदात्मकेन प्रधानेन भाव्यन्तेऽन्येन व्या[10]वृता अपि व्यापारयित्रा तथा प्रधानमपि ।

तस्मात् ततोऽन्यो **भवति** मुख्यः । कोऽसौ? यः **कर्ता**। कः कर्ता? अत आह—**यः स्वतन्त्रः**। २३३-२ कस्मात्? **प्र[11]वर्तनवृत्तत्वात्,** प्रवर्तयतः क्रिया प्रवर्तनम्, तेन प्रवर्तनेन वृत्तत्वात् प्रवर्तयितृत्वेन वृत्तत्वादित्यर्थः। प्रवर्तयद्धि कारणं तद्भावमापद्यते, शब्दादि यथा प्रवर्तयत् सत्त्वरजस्तमोलक्षणं कारणं शब्दादिभावमापद्यते त्वन्मतेन। **तथाभवनवृत्तत्वात्,** तेन प्रवर्त्यमानरूपेण भवनम्, तेन वृ[12]त्तत्वात् प्रवर्तयितारमन्तरेणाभवनादवृत्तत्वात्, **तन्तुपटवत्,** यथा तन्तवः पटं प्रवर्तयन्तः पटस्य कारणमित्युच्यन्ते पटश्च तन्तुकार्यं तैः प्रवर्त्यत्वात् । नन्वेते प्रधानशब्दादिपटादिदृष्टान्ता अद्वैतवादं समर्थयन्तीति, उच्यते—प्रवर्तयितृत्वमात्रसाधर्म्यात् तदभ्युपगम्य भेदेन निदर्श्यते, अन्यथा पुरुषादिवदद्वैताभ्युपगमे विध्युभयैकान्तोत्थानाभावात् । भाव्यभावकभेदप्रसिद्धेश्च अभावितस्यासत्त्वाद् वन्ध्यापुत्रवदणुधर्मादयोऽपि भाव्यमाना एव स्युरित्येतत्साधर्म्या[13]द् दृष्टान्ताः शब्दादयः ।

यद्येवं प्रस्तुतं धर्माधर्मावणवो वा कारणमस्त्येवेति सिद्धत्वात् किमनुमितेन कारणेन इति चेत्, नेत्यु-

---

१ °भावनापद्यत भा० । °भावना इत्यादि भावनापद्यत य० ॥ २ एव भव° प्र० ॥ ३ व्यावृत्तं प्र० ॥ ४ व्यावृत° भा० । व्यावृत्त° य० ॥ ५ °स्यपादि° प्र० ॥ ६ °वात्वदुक्ता° इत्यपि पाठोऽत्र स्यात् ॥ ७ अभ्य(अस्व ?)तन्त्रं प्र० ॥ ८ तथा प्र० ॥ ९ °त्वास्वत° प्र० ॥ १० व्यावृता प्र० ॥ ११ दृश्यतां पृ० २४३-१ ॥ १२ प्रवृत्तत्वात् य० ॥ १३ °र्म्यादृष्टान्ताः भा० । °र्म्यदृष्टान्ताः य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्माधर्माण्वादीनामपि च तन्त्वंश्वादिवत् पूर्वपूर्वशक्ततारतम्येन सन्निहिततद्विधशक्तिः प्रतिविशिष्टबुद्धिः स्वतन्त्रोऽभिप्रायप्रवृत्त्यापत्तेः प्रवर्तयितृत्वात् कारणम्, शक्तिमत्प्रवृत्तिनिवृत्तिविनियोगेषु स्वातन्त्र्यात्, अधिकृतपक्तृवत् । सम्भवनधारणज्वलनविक्लेदनव्यापारेषु स्थालीकाष्ठतण्डुलादीनां प्रवृत्तिनिवृत्तिविनियोगेषु स्वातन्त्र्यादुच्यते – 'देवदत्त एव पचति, तेन पच्यते, स पचति, तेन पचनं क्रियते', प्रयोजनमात्रार्थत्वात् क्रियायाः । साक्षाद्वा भवितृवत्, यथा च सम्भवनधारण-

---

च्यते – '**धर्माधर्माण्वादीनामपि च तन्त्वंश्वादिव**दित्यादि यावत् **प्रतिविशिष्टबुद्धिः** । यथा पटस्तन्तुपूर्वकः, तन्तवोंऽशुपूर्वकाः, अंशवस्तुटिपूर्वकाः, तुटीनामपि प्रवर्तने शक्तास्ततः पूर्वे पूर्वे यावच्छताणुकः, ततोऽपि पूर्वे पूर्वे यावद् द्व्यणुकः परमाणुरित्यनुमीयन्ते[3] शब्दादितो यावत् प्रधानम्, तथा अण्वादीनामप्यचेतनानां प्रवर्तकौ धर्माधर्मौ । **आदिग्रहणात्** काल-स्वभाव-नियत्यादिवाद्यन्तरपरिकल्पिताः । एवं पूर्वपूर्वशक्त[4]तारतम्येन ईश्वरः **सन्निहिततद्विधशक्तिः**[5] धर्माधर्माण्वादिप्रधानशब्दादेस्तथा तथा विनिवेशने सन्निहिता यस्य शक्तिः सोऽस्ति । कात्र[6] तद्विधविनिवेशनशक्तिर्मुख्या तस्येति चेत्, उच्यते · प्रतिविशिष्टा बुद्धिः, अतोऽसौ **प्रतिविशिष्टबुद्धि**र्विशिष्टबुद्धिभ्योऽपि स्थपतिकुलालादिभ्यः, प्रतिकर्तृ विनिवेशनप्रवृत्तिनिवृत्तिविनियोजनेषु ज्ञत्वात् स्वातन्त्र्याच्च तेषां भावानामीष्टे, न ते तस्येशते नाप्यात्मनः न च परस्परम्, अज्ञास्वतन्त्रत्वाभ्याम् । स तु प्रतिविशिष्टबुद्धित्वात् **स्वतन्त्रः**, तस्याभिप्रायेणैव प्रवृत्तिमापद्यन्ते धर्माधर्माण्वादयः । सोऽपि **चाभिप्रायप्रवृत्त्यापत्ते**र्न सन्निधिमात्रवृत्तिः, अतस्तेषां प्रवर्तयिता, **प्रवर्तयितृत्वात् कारणं**[7] शक्तिर्मत्[8] स एव, तेषां **शक्तिमता**मपि भाव्यत्वेनास्वातन्त्र्यात् तस्यैव तत्**प्रवृत्तिनिवृत्तिविनियोगेषु स्वातन्त्र्यात्** जगत्सर्गस्थित्यन्तरालप्रलयमहाप्रलयेषु, प्रवर्तनं प्रागौदासीन्येन स्थितानां धर्मादीनां सृष्टेः प्रवर्तनम्, प्रवृत्तानां पुनरुपसंहाराद् निवर्तनम्, विनियोगो देव-मानुष-तैर्यग्योने[9]-सरित्-समुद्रादि-तनु-करणाद्यवयवविभागविन्यासः, **विष्णुमन्वादीनामधिकृतपुरुषाणामपि** इहत्यपरमेश्वराभिप्रायानुरोधेन प्रवर्तमानाधिकृतराजस्थानीयादिपुरुषाणामिव तस्यैव प्रवर्तयितृत्वात् । अतस्तत्[10]साधर्म्यप्रदर्शनार्थमाह – **अधिकृतपक्तृवत्** । तद्व्याख्यानार्थम् – **सम्भवनधारणे**त्यादि यावत् **प्रयोजनमात्रार्थत्वात्[11] क्रियाया** इति । यथा हि राज्ञा नियुक्तः सूपकारः स्थालीकाष्ठतण्डुलादीनां सम्भवनधारणज्वलन[12]विक्लेदनव्यापारेषु प्रवृत्ति[13]निवृत्तिविनियोगेषु स्वातन्त्र्यात् तत्तदात्मा भवति तथेश्वर इति । अथवा कर्तृकर्मकरणाधिकरणसम्प्रदानापादानानि प्रतिकारकं पचादीनां
२३४-२ क्रियाभेदाद् यथास्वशक्ति स्वातन्त्र्यात् कर्तृणि, यथा अधिकरणं स्थाली निदर्शनमात्रं सम्भवनधारणे[14] कुर्वती 'पचति' इत्युच्यते, ज्वलनं कुर्वन्ति काष्ठानि 'पचन्ति' इत्युच्यते, अधिश्रयणोदकासेचनतण्डुलावपनैधोऽप-

---

१ दृश्यतां पृ० २४३-१ ॥ २ **धर्माण्वा**° प्र० ॥ ३ °**यन्ते**(यन्ते ?)भा० ॥ ४ **पूर्वपूर्वपूर्व**° भा० । दृश्यतां पृ० ३२९ टि० ५ ॥ ५ °**तद्विविध**° भा० । दृश्यतां पृ० २४३-१ ॥ ६ **कात्र तद्विध**° प्र० ॥ ७ **कारण** प्र० ॥ ८ °**मत् ।** भा० । अत्र 'कारणं शक्तिमतां स एव' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ९ °**नात्सरित्**° प्र० ॥ १० **इत**° प्र० । अत्र **इत्यत**° इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ११ °**मात्रत्वात्** प्र० । दृश्यतां पृ० ३२७ पं० ९ ॥ १२ °**ज्वा**° प्र० ॥ १३ **प्रवृत्तिविनियो**° प्र० ॥ १४ दृश्यतां पृ० १९४ टि० १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोहणादिसमर्थं तथा भवत् पृथिव्युदकादि व्रीहिर्जायते भवति च भवति । सत्त्वतमः-प्रकाशनियमप्रवृत्तिसत्त्वेऽपि प्रवर्तयितृत्वाद् रजोभवनवद्वा । दृष्टान्तबाहुल्यप्रदर्शनं प्रतिसिद्धान्तपरिदृष्टादृष्टादेः प्रवर्तयितृत्वख्यापनार्थम् ।

कर्षणादिक्रियाः कुर्वन् देवदत्तः पचति इत्युच्यते, इत्यादि प्रतिकारकं स्वातन्त्र्ये सत्यपि उपक्रमप्रभृत्यपवर्ग-पर्यवसानासु क्रियासु तस्यैव स्वातन्त्र्यात् सम्भवनादिप्रत्यक्षतायामपि पचनशक्तिमतामप्यधिकरणादीनां देव-दत्तस्य प्रवर्तयितृत्वादेवोच्यते 'देवदत्त एव पचति' इति, [1]नान्यानि अनीश्वरत्वात् । तां मुख्यां कर्तृशक्तिं दर्शयति – **तेन पच्यते** तृतीयया कर्तरि विहितया **स [2]पचती**ति वा प्रथमया तत्र विहिततिप्प्रत्ययसमाना-धिकरणतया । पुनरपि स्फुटीकरणार्थमाह– [3]* **तेन पचनं क्रियत** इति यावदुक्तं भवति [तावदुक्तं भवति] 'तेन पच्यते स पचति' इति । कुतः ? **प्रयोजनमात्रार्थत्वात् क्रियायाः**, प्रयोजनं परव्यापारणम्, विक्लेदव्यापारणार्थाः सम्भवनज्वलनादिक्रियाः, तासां च सर्वासां देवदत्तायत्तत्वात् स पचति तेन पच्यत इत्युक्तम् ।

दृष्टान्तान्तरमाह स्फुटीकरणार्थं* व्यापित्वप्रदर्शनार्थं च – **साक्षाद्वा भवितृवत्** । तद्वर्णनम् – **यथा च सम्भवने**त्यादि यावद् **भवति च भवति,** न केवलं पचत्यादिबाह्यक्रियाविषयमेव प्रयोज्यत्वम्, किं तर्हि ? व्रीह्यादिभवनाद्यन्तःक्रियाविषयमपि प्रयोजनम् । **तथा भवत् पृथिव्युदकादि** बाह्यं **व्रीहिर्जायते भवती**त्यन्तर्भवनम् । सम्भवनधारणसमर्था पृथिवी, रोहणसमर्थमुदकम्, आदिग्रहणाद् [6]वर्द्धनसमर्था वायुकालादयः, तैः कारितस्य व्रीहिभवनस्य प्रत्यक्षतायामपि सत्यां व्रीहिर्जायते भवति अन्तःसन्निविष्ट-स्वातन्त्र्यात् तस्यैवेश्वरस्य प्रयोजकत्वादुच्यते – **भवति च भवती**ति, भवनमपि भवदेव भवतीति स्वरूपमात्र- २३५-१
लाभोऽपि तद्वशादित्यर्थः ।

अथवा प्रस्तुतप्रधानकारणवादिसिद्धमेवेदं निदर्शनम् – **सत्त्वतमःप्रकाशे**त्यादि यावद् **रजोभवनं-वद्वा** । यथासङ्ख्यं सत्त्वस्य प्रकाशप्रवृत्तिस्तमसो नियमप्रवृत्तिश्चास्त्येवेत्युक्तं सत्त्वं शब्दात्मना प्रवर्तमानमित्यादिपरस्परोपकारवीते, प्रकाशादिलक्षणस्य सत्त्वस्य प्रवृत्तिर्गुरुवरणलक्षणस्य तमसश्च प्रवृत्तिर्यथासङ्ख्यम् 'इतरयोः ख्यापयति व्यवस्थापयति' इति वचनात् । रजस्तु प्रवृत्तिलक्षणमेव प्रवर्तकमिष्टं विशेषतः, सत्यपि प्रवृत्तिसामान्ये 'करोति प्रवर्तयति' इति वचनात् । तथा अदृष्टाण्वादिभूतकालादिप्रवर्त-मानसामान्येऽपीश्वर एव प्रवर्तयितृत्वात् कारणमिति । **दृष्टान्तबाहुल्यप्रदर्शनं प्रतिसिद्धान्तपरि-दृष्टादृष्टादेः प्रवर्तयितृत्वख्यापनार्थम्**, सिद्धान्तं सिद्धान्तं प्रति प्रतिसिद्धान्तं तेषु तेषु वैशेषिकादि-सिद्धान्तेषु कल्पितानां परितोऽनुमानैर्दृष्टानामप्यदृष्टाणुप्रधानविष्ण्वादीनां प्रवर्तयिता ईश्वर इति दार्ष्टान्तिको-पनयनात् ।

---

१ **नान्यनीश्वर**° भा० । **नान्यमीश्वर**° य० ॥ २ **पचतीवा** भा० । **पचतीव** य० ॥ ३ * * एतच्चिह्ना-न्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ४ °**त्वां** भा० । °**त्वात्** य० ॥ ५ °**वननाद्य**° डे० लीं० विना ॥ ६ **वर्तन**° य० ॥ ७ **नद्वा** भा० । °**नाद्वा** य० ॥ ८ °**श्चारवेत्युक्तं** य० । °**श्चरेवेत्युक्तं** भा० ॥ ९ दृश्यतां पृ० ३१८ पं० ८ ॥ १० °**ल्यमप्रद**° भा० । °**ल्यमथद**° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति स एव भवति, सर्वव्यक्तिप्रवृत्त्यात्मकत्वात् । एवमेव चास्याष्ट-मूर्तितोच्यते ।

इतरथा अदृष्टाणुप्रधानादेः प्रवृत्तिफलप्रकर्षापकर्षौ न स्याताम् । दृष्टौ च तौ । तयोरतो न विमर्दक्षमं कारणमस्तीश्वरकामचारेरणादृते ।

तनुकरणभुवनसाधनाय प्रवृत्तानि अदृष्टाणुप्रधानादीनि विशिष्टचेतनाधिष्ठिता-

---

इति स एव भवति, इत्थमीश्वर एव भवति परमार्थतः । **सर्वव्यक्तिप्रवृत्त्यात्मकत्वात्,** सर्वासां व्यक्तीनां प्रवृत्तय आत्माऽस्य सर्वव्यक्तिप्रवृत्त्यात्मकः तद्विशिष्टबुद्धिशक्त्यावासरूपत्वात्[1] तासाम्, **एवमेव चास्याष्टमूर्तितोच्यते**[2] क्षिति-जल-पवन-हुताशन-यजमाना-ऽऽकाश-सोम-सूर्याख्याष्टमूर्तितास्य स्वशक्त्यावासरूपत्वात्[3] तासु स एव भवति सा सा च ।

किञ्चान्यत्, प्रवृत्तिफलप्रकर्षापकर्षाभावप्रसङ्गादीश्वर एव कारणं नादृष्टादि न प्रधानादीत्यत आह— **इतरथेत्यादि** यावद् **दृष्टौ च तौ ।** यद्यदृष्टाण्वादेः प्रधानादेर्वा प्रवृत्तयः फलानि वा स्युः क्रियाणां पूर्वकृत-
२३५-२ कर्मफलप्रेरितानां तदनुरूपत्वात् फलानां च फलप्रेरितकर्मानुरूपत्वाद् मनुष्यनिर्वर्तनीया एव स्वभावमार्दवा-

---

१ कः पुनरीश्वरस्य कारणत्वे न्यायः ? अयं न्यायोऽभिधीयते—प्रधानपरमाणुकर्माणि प्राक् प्रवृत्तेर्बुद्धिमत्कारणाधिष्ठितानि प्रवर्तन्ते, अचेतनत्वात्, वास्यादिवदिति । यथा वास्यादि बुद्धिमता तक्ष्णा अधिष्ठितमचेतनत्वात् प्रवर्तते तथा प्रधानपरमाणुकर्माणि अचेतनानि प्रवर्तन्ते । तस्मात् तान्यपि बुद्धिमत्कारणाधिष्ठितानीति । तत्र प्रधानकारणिकास्तावत् पुरुषार्थमधिष्ठायकं प्रधानस्य वर्णयन्ति पुरुषार्थेन प्रयुक्तं प्रधानं प्रवर्तते, पुरुषार्थश्च द्वेधा भवति शब्दाद्युपलब्धिः गुणपुरुषान्तरदर्शनं चेति, तदुभयं प्रधानप्रवृत्तेर्विना न भवतीति । न, प्राक् प्रवृत्तेस्तदभावात् । यावत् प्रधानं महदादिभावेन न परिणमते तावन्न शब्दाद्युपलब्धिरस्ति न गुणपुरुषान्तरोपलब्धिरिति हेत्वभावात् प्रधानप्रवृत्तिरयुक्ता । अथास्ति, नासदात्मानं लभते न सन्निरुध्यत इति ? एवं च सति विद्यमानः पुरुषार्थः प्रधानं प्रवर्तयतीति न पुरुषार्थाय प्रधानस्य प्रवृत्तिः । न हि लोके यद् यस्य भवति स तदर्थं पुनर्यतत इति । सततं च प्रवृत्तिः प्राप्नोति कारणस्य सन्निहितत्वादिति, पुरुषार्थः प्रवृत्तेः कारणमिति पुरुषार्थस्य नित्यत्वात् सततं प्रवृत्त्या भवितव्यमिति । अथ विद्यमानोऽपि न प्रवर्तयति न तर्हि पुरुषार्थः कारणमिति । यस्याभावात् प्रधानं न प्रवर्तते यस्य च भावात् प्रवर्तते तत् कारणमिति ।……यदा भवन्तः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थां प्रकृतिं वर्णयन्ति सा कुतो निवर्तेत इति वक्तव्यम् । न चानिवृत्तायां साम्यावस्थायां वैषम्येण शक्यं भवितुम् । अथाङ्गाङ्गिभावस्यानियमाद् वैषम्यं भवति इति ? अत्रापि भवन्तं पर्यनुयुञ्ज्महे—कथं साम्येनावस्थितमधिकं हीनं च भवति, नापूर्वोपचयो विद्यते न पूर्वहानमस्तीति ।……सोऽयं प्रधानवादो यावद् यावद् विचार्यते तावत् तावत् प्रमाणवृत्तं बाधते इति । ये परमाणून् पुरुषकर्माधिष्ठितान् जगतः कारणत्वेन वर्णयन्ति तान् प्रतीदमुच्यते—परमाणवः प्रवर्तन्त इति सततं प्रवृत्त्या भवितव्यम् । अथ कालविशेषापेक्षाः प्रवर्तन्ते, परमाणुभिः कालो व्याख्यातः । यथा अचेतनत्वात् परमाणवो बुद्धिमन्तमधिष्ठातारमपेक्षन्ते तथा कालोऽपीति, न हि तत्राचेतनत्वं निवर्तेत इति । क्षीरादिवदचेतनस्यापि प्रवृत्तिरिति चेत्,…तन्न युक्तम्, साध्यसमत्वात् । यथैव परमाणवः स्वतन्त्राः प्रवर्तन्त इति साध्यं तथा क्षीराद्यचेतनं स्वतन्त्रं प्रवर्तेत इति । यदि क्षीरादि स्वतन्त्रं प्रवर्तेत मृतेष्वपि प्रवर्तेत, न तु प्रवर्तते, अतोऽवगम्यते बुद्धिमत्कारणाधिष्ठितं तदपि । न चायं हेतुस्तस्मात् निवर्तते । एवं यावद् यावदचेतनं प्रवर्तते सर्वं तत् चेतनाधिष्ठितमिति । अयमपरो हेतुः—बुद्धिमत्कारणाधिष्ठितं महाभूतादि व्यक्तं सुखदुःखादिनिमित्तं भवति रूपादिमत्त्वात् तुर्यादिवदिति ।" इति **उद्द्योतकरविरचिते न्यायवार्तिके** ४।१।२१ । "**उद्द्योतकरस्तु** प्रमाणयति—भुवनहेतवः प्रधानपरमाण्वदृष्टाः स्वकार्योत्पत्तावतिशयबुद्धिमन्तमधिष्ठातारमपेक्षन्ते स्थित्वा प्रवृत्तेस्तन्तुतुर्यादिवत् ।" इति बौद्धाचार्यकमलशीलविरचितायां **तत्त्वसङ्ग्रहपञ्जिकायाम्**, का० ५० ॥ २ **एव चास्या°** प्र० । दृश्यतां पृ० २४३-२ ॥ ३ **स्वशक्त्याव्यास°** प्र० । अत्र 'सर्वशक्त्यावासरूपत्वात्' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ४ दृश्यतां पृ० २१४ टि० ११ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्येव प्रवर्तन्ते, सम्भूयैकार्थकारित्वात्, तक्षाधिष्ठितरथदारुगणवत् । तथा अचेतनत्वात् स्थित्वा प्रवृत्तेः तुर्यादिवत् ।

चेतनानधिष्ठितक्षीरदधिमेघादिवदनेकान्त इति चेत्, न, अदृष्टकर्तृकविषयप्रतिज्ञार्थाव्यतिरेकात् शब्दानित्यत्वसाधने प्रतिज्ञान्तर्नीतजलधिध्वन्यनित्यत्ववत् ।

दिक्रियाः कृत्वा मनुष्य एव पुनरपि स्यात्, मा भूत् [1]सरागसंयमादिदेवगतिनिर्वर्तनीयक्रियासम्बन्धी तदनुरूपवैक्रियशरीरादिलब्ध्युत्कर्षभावः[2], तथा बह्वारम्भपरिग्रहादिनिरयायुःसंवर्तनीयकर्मभाक् तदनुरूपदुःखैकरसनारकत्वनिकृष्टफलानुभावी वा मा भूत्, परस्परानुरूपशालिबीजाङ्कुरादिहेतुकार्यभावप्रबन्धवद् विशिष्टविशिष्टबुद्धिस्वतन्त्रकारणप्रेरणाभावात् स्वानुरूपकार्यकारणानुबन्धसामर्थ्याभ्युपगमाच्च नादृष्टाद् न प्रधानादेर्वैषम्यं स्यात्, दृष्टं च वैषम्यमध्ययनविद्यागमानधिगमादि, उत्कर्षापकर्षयोरन्य**द[3]तो न विमर्दक्षमं कारणमस्तीश्वरकामचारेरणादृते,** तदभिप्रायस्याप्रतिघातस्य प्रवृत्तिः कामचारः, तेन प्रेरणं भावानां प्रवर्तनं स्वाचारागामप्यनिष्टफलसम्बन्धो दुराचाराणामिष्टफलसम्बन्धः, तस्मात् सर्वमीश्वरप्रवर्तितं प्रवर्तते, नान्यथा ।

प्रयोगश्च – **तनु-करण-भुवनसाधना**येत्यादि यावत् **तक्षाधिष्ठितरथदारुगणव**दिति । यथाप्रक्रियं शरीराणीन्द्रियाणि भुवनं च साधयितुमधितिष्ठद्भिरदृष्टैः प्रेरिताः परमाणवो वैशेषिकाणां प्रवृत्तानि सत्त्वादीनि प्रधानेन साङ्ख्यानामन्येषां वा भूतानि काल-स्वभाव-नियत्याद्यधिष्ठितानी[4]त्यभिमतानि प्रवर्त्यानि सप्रवर्तकानि **विशिष्टचेतनाधिष्ठितान्येव प्रवर्तन्त** इति प्रतिज्ञा । **सम्भूयैकार्थकारित्वा**दिति हेतुः, सम्भूयकारित्वं पूर्वपूर्व[5]शक्ततारतम्यकारणानुमानोक्तेः, परमाणुसत्त्वादयः सम्भूय तन्वादित्वेनावस्थिताः परस्परेण सम्भूय २३६-१ गमनाभ्यवहरणसुखदुःखानुभवरूपाद्युपलब्धिसत्त्वगुणाधारतादि कार्यं कुर्वन्तो दृश्यन्ते, तत् सिद्धमेषां सम्भूयैकार्थकारित्वम् । **तक्षाधिष्ठितरथदारुगणवत्**, रथार्थो दारुसङ्घातो रथदारुगणः, स तक्ष्णा विशिष्टचेतनेनाधिष्ठितस्तथैतानि । **तथाऽचेतनत्वात्, तथे**ति तस्यामेव प्रतिज्ञायां **अचेतनत्वात्** इत्युपचयहेतुः, स एव रथदारुगणो दृष्टान्तः, वक्ष्यमाणो वा **तुर्यादिव**दिति । तनु-करण-भुवनानामचेतनत्वं च सिद्धम् । अथवा **स्थित्वा प्रवृत्तेस्तुर्यादिवत्**, यथा तुरिवेमशलाकानलिकार[6]ज्ज्वञ्जनिकासूत्रादीनि प्रागप्रवृत्तानि किञ्चित्[7] कालं [8]स्थित्वा प्रवर्तमानानि विशिष्टकुविन्दबुद्ध्यधिष्ठितानि पटनिष्पत्त्यै प्रवर्तन्ते तनुकरणभुवनानि तथेति ।

चेतनानधिष्ठितक्षीरदधिमेघादिवदनेकान्त इति चेत् । स्यान्मतम् – प्रतिविशिष्टबुद्धिना केनचिदनधिष्ठितेषु क्षीरदधिमेघादिषु सम्भूयैकार्थकारित्वाचेतनत्वस्थित्वाप्रवृत्तिधर्माणां दर्शनादनैकान्तिकता संशयहेतुतेति । एतच्च **न, अदृष्टकर्तृकविषयप्रतिज्ञार्थाव्यतिरेकात्**, अदृष्टोऽस्याः कर्ता विषयः सेयमदृष्टकर्तृकविषया प्रतिज्ञा, तस्याः प्रतिज्ञायास्तनुकरणभुवनधर्मिकायाः प्रतिविशिष्टबुद्ध्यधिष्ठितत्वसाध्यधर्मणः क्षीरदधिमेघादिधर्मिणामपृथक्त्वात् प्रतिज्ञान्तःपातित्वाद् विपक्षाभावे हेतुव्यभिचाराभावाद्

---

१ दृश्यतां पृ० २१४ टि० ११ ॥ २ °माद्युत्कर्षा° प्र० ॥ ३ °दतो विमर्द° प्र० ॥ ४ °नीद्य° प्र० ॥ ५ पूर्वेपूर्वेपूर्वे° भा० । दृश्यतां पृ० ३२६ टि० ४ ॥ ६ रज्वंच(ज ?)निका° प्र० ॥ ७ किञ्चित् भा० ॥ ८ स्थित्वा वर्त° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थित्वाप्रवृत्तचेतनानधिष्ठितेश्वरवदनेकान्त इति चेत् ईश्वरस्य वा चेतनाधिष्ठितता तस्यापि चान्याधिष्ठिततेत्यनवस्था । न, चेतनाधिष्ठितप्रवृत्तित्वसाध्यधर्मत्वात् ।

देवदत्तादयस्तर्हि चेतनेश्वरानधिष्ठिताः प्रवर्तन्ते सोऽपि वेश्वरस्तद्वचेतनान्तराधिष्ठितः । उच्यते च त्वया चेतनानामपीश्वराधिष्ठानं पुरुषवादनिरसनाय—

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥ [महाभा० वन० ३०।२८]

नानेकान्तः, **शब्दानित्यत्वसाधने प्रतिज्ञान्तर्नीतजलधिध्वन्यनित्यत्ववत्**[1], यथा 'अनित्यः शब्दः' इति प्रतिज्ञाते कृतकत्वं देशकालाभ्यामनवरते जलधिध्वनौ पुरुषादिभेदेन चानवरते सामादिशब्दे च
२३६-२ दृष्टत्वादनेकान्त इति वचनं तदाभासचोदनम्, उदन्वत्सामादिशब्दानामप्युपादानभेदभिन्नानाम्[2] 'शब्दः' इति श्रोत्रग्राह्यत्वाभेदेन प्रतिज्ञातानां शब्दत्वानतिक्रमात् पक्षान्तर्नीतत्वात्, तदनित्यत्वं कृतकत्वाविनाभावि शब्दादन्यस्य नित्यस्य कृतकस्यादर्शनाच्च जायते, देशकालोपादानभेदभिन्नस्याभेदेऽपि सत्युपलभ्यधर्मणोऽनुपलभ्यत्वाच्छब्दव्यक्तिधर्मित्वाच्च जात्युत्तरं च, तस्मादनुत्तरमिति ।

स्थित्वाप्रवृत्त[3]चेतनानधिष्ठितेश्वरवदनेकान्त इति चेत् । स्यान्मतम्—यथेश्वरः स्वयं प्रागप्रवृत्तान् स्थित्वा प्रवर्तयन्नपि चेतनान्तरेणानधिष्ठितः प्रवृत्तश्च तथा तन्वादीनि स्थित्वा प्रवृत्तानि स्युरित्यनेकान्तः । **ईश्वरस्य वा चेतनाधिष्ठिततेत्यादि**[4], एवमनैकान्तिकत्वानिच्छायां वा चेतनाधिष्ठितोऽसावीश्वरः प्राप्तः स्थित्वा प्रवृत्तेरदृष्टाणुप्रधानादिवत्, अतोऽन्येश्वरता ग्रहाधिष्ठितस्त्रीपुरुषादिवत् । **तस्यापि चाधिष्ठातुरन्याधिष्ठिततेत्यनवस्था** स्यादिति । एतच्च **न, चेतनाधिष्ठितप्रवृत्तित्वसाध्यधर्मत्वात्**, नैष दोषः, चेतनाधिष्ठितप्रवृत्तित्वं हि साध्यते धर्मः, स चाचेतनानामेव[5] तद्धर्मिविषयत्वात्, चेतनानां सिद्धत्वात् प्रयोजनाभावाच्च । तनुकरणभुवनसाधनप्रवृत्ताादृष्टाणुप्रधानादीनि ह्यचेतनानि धर्मीणि चेतनाधिष्ठितत्वधर्मेण विशिष्टानि साध्यन्त इति प्रतिज्ञाविषयाज्ञानाददोष इति ।

देवदत्ता[6]दयस्तर्हि चेतनेश्वरा*नधिष्ठिताः प्रवर्तन्ते, सामर्थ्यादचेतनधर्मिविषयं चेतनाधिष्ठानं साध्यत इति प्रतिज्ञाविषयव्यवस्थायां चेतनानां देवदत्तादीनां चेतनेश्वरेण*धिष्ठानं न प्राप्नोति, ततो देवदत्तादिवच्चेतनानधिष्ठिता[8]नां *तन्वादिसाधनार्थादृष्टाणुप्रधानादीनामनेकान्तः । **सोऽपि [10]वेश्वरस्तद्वचेतनान्तराधिष्ठित** इति प्राप्तम् । **उच्यते च त्वया** इष्यत* एव त्वया चेतनानामपीश्वराधिष्ठानम्, यथा—

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥ [महाभा० वनप० ३०।२८]

२३७-१ **पुरुषवादनिरसनायेति** श्लोकवचनप्रयोजनमाह, मा भूत् पुरुषकारणवादप्रसङ्गः 'तदवस्थमात्रं तन्वदृष्टप्रधानाण्वादि' इति, अत उक्तं भवता **अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमिति** ।

---

१ °जलावि(°जलादि ?)ध्वन्य° प्र० ॥ २ °त्सादिश° प्र० ॥ ३ °वृत्ति° य० ॥ ४ °धिष्ठितेत्यादि प्र० ॥ ५ °तनमेव प्र० ॥ ६ °त्तायस्तर्हि प्र० ॥ ७ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ८ °तानि य० । °त भा० ॥ ९ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो भा० प्रतौ नास्ति ॥ १० चेश्व° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न, प्राग् विशिष्टबुद्धिचेतनप्रतिज्ञानात्, विशिष्टबुद्धित्वमपि चास्यार्थानामर्थक्रियायोग्यत्वेन सन्निवेशकत्वात्।

तन्वादीनि न विशिष्टबुद्धिना कृतानि पद्मनालकण्टकमयूरचन्द्रकादिवत्। न, दधिमेघादिवदुक्तोत्तरत्वात्। लघुप्रकाशगुरुवरणप्रवृत्तिनियमानां विशिष्टबुद्धिपूर्वकता, मिथःप्रत्यनीकसम्भूयैकार्थकारित्वात्, पाचकाधिष्ठितानलोदकौदनसाधनवत्। अन्योन्याभिभवनमिथुनवृत्तित्वविपरिणामादिति चेत्, न, परिणामस्यापि कार्यत्वात्। [2]धर्मान्तरैक्य............... ।

अत्रोच्यते—**न, प्राग् विशिष्टबुद्धिचेतनप्रतिज्ञानात्**, प्रागस्माभिर्विशेषितम्—'विशिष्टबुद्ध्यधिष्ठितानि तन्वादीनि'। विशिष्टबुद्धित्वं चापराधीनं स्वातन्त्र्यम्। तत् कुतः सिद्धमिति चेत्, उच्यते—**विशिष्टबुद्धित्वमपि चास्यार्थानामर्थक्रियायोग्यत्वेन सन्निवेशकत्वात्**, तन्वादीनि विशिष्टबुद्धिपूर्वकाणि अर्थक्रियायोग्यत्वेन सन्निविशिष्टावयवत्वात्, स्थानगमनशयनासनाहारादिप्रयोजनानि हि तन्वादिषु क्रियन्ते तत्क्रियायोग्यावयवसन्निवेशात् स्थपतिबुद्धिपूर्वकप्रासादवत्। तस्मादर्थक्रियायोग्यत्वेनार्थानां सन्निवेशकः स स्थपतिवत्। त[4]स्माच्च विशिष्टबुद्धिरिति।

अनैकान्तिकतोद्भावनार्थमाह—**तन्वादीनी**त्यादि या[5]वत् **पद्मनालकण्टकमयूरच[6]न्द्रकादिव**दिति। नहि प्रशस्तशुभवर्णगन्धरसस्पर्शस्य लक्ष्मीनिलयस्य जलाशयालङ्करणस्य कमलस्य ग्रहणधारणोपभोगादिसाधनभूते नाले केनचिदसूयया 'मा ग्रहीत् कश्चित्' इति कण्टकाः कृताः, नीलोत्पलनालादिष्वप्यतिप्रसङ्गात्। न च मयूरच[7]न्द्रकाणामिन्द्रचापवर्णप्रतिस्पर्धिविचित्रवर्णता कृता कुड्यादिषु चित्रकरेणेव केनचिद् विशिष्टबुद्धिना, चित्रकर[8]चेतनदानाद्यभावप्रसङ्गादिति। अत्रोच्यते—**न, दधिमेघादिवदुक्तोत्तरत्वात्**, क्षीरदधिमेघादिवत् पद्मनालकण्टकमयूरचन्द्रकादीनां तन्वादिवच्चादृष्टकर्तृकविषयप्रतिज्ञार्थाव्यतिरेकादनैकान्तिकत्वाभाव इत्युक्तोत्तरमेतत्। २३७-२

एवं तावत् सामान्येन विशिष्टबुद्धिपूर्वकतोक्ता, प्रस्तुतकापिलमतापेक्षया चैवं प्रतिज्ञायते—**लघुप्रकाशे**त्यादि यावत् **पाचकाधिष्ठितानलोदकौदनसाधनव**दिति। यथा परस्परप्रत्यनीकयोरग्न्युदक[9]योरप्रत्यनीकत्वविधायिना विशिष्टबुद्धिना पाचकेनाधिष्ठितयोः सत्यपि मिथः प्रत्यनीकत्वे तद्बुद्धिवशवर्तिनोः संहत्यकारित्वादोदनसाधनं दृष्टं तथा लघुगुरुणोः प्रकाशवरणयोः प्रवृत्तिनियमयोश्च मिथो विरुद्धयोरपि संहत्य महदादिभावेनैकार्थकारित्वाद् विशिष्टबुद्धिपूर्वकतेति। **अन्योन्याभिभवनमिथुनवृत्तित्वविपरिणामादिति चेत्**। स्यान्मतम्—सत्त्वरजस्तमसामेवाङ्गाङ्गिभावः पुरुषार्थमुद्दिश्य प्रवृत्तानां वैषम्यविपरिणामाद् महदादि-

---

१ दृश्यतां पृ० २५२-१ ॥ २ 'धर्मान्तरैक्यापत्तिर्हि परिणामः कार्यत्वाद् रथादिवद् विशिष्टबुद्धिमद्धिहितः' इत्याशयको मूलपाठः स्यादिति सम्भाव्यते ॥ ३ "सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्" इति श्वेताश्वतरोपनिषदि पाठः ॥ ४ **तस्याश्च** प्र० ॥ ५ **यावत्पनाल°** भा० । **यावत् नीलालत्पनाल°** य० ॥ ६ **°चन्द्रिका°** य० ॥ ७ **°चन्द्राकारणासि°** भा० ॥ ८ **°रचेतन°** य० । **°रैचेतन°** भा० ॥ ९ **°कयोप्रत्य°** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वाह च —

एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ [श्वेताश्व० ६।१२]

साधनम्, नान्यः[3] प्रयोक्तेति । एतच्च **न, परिणामस्यापि कार्यत्वात्** । तद्व्याचष्टे – [4]**धर्मान्तरैक्यादि,** परिणामो हि धर्मान्तरनिषेधो धर्मान्तराविर्भवनं च, तद्द्वयभूतं कार्यम्, स तु परिणामः कार्यत्वात् पूर्ववत् प्रतिज्ञार्थाव्यतिरेकाद् रथादिवत् सोऽपि विशिष्टबुद्धिमद्विहितः । तस्मादयुक्तम् – स्वत एव परिणमन्ते सत्त्वादय इति ।

अन्वाह चेति जिनमतानुसारेण । **एको**ऽद्वितीयः प्रधानो वा **वशी** ज्ञत्वस्वातन्त्र्याभ्याम् **निष्क्रियाणाम**ज्ञास्वतन्त्राणाम्, परतन्त्रा ज्ञा अपि हि निष्क्रिया एव । **बहूना**मनन्तानां प्रधानाण्वादीनां कर्मकरणसम्प्रदानापादानाधिकरणप्रधानशक्तीनामनन्तानामपि प्रवर्तयितृत्वात् स्ववशीकर्तुं शक्तत्वाद् वशीति ।
२३८-१ **एकं बीजं** प्रधानं महदादिविपरिणत्या **बहुधा** ब्रह्मादिस्तम्बान्तानन्तभेदभिन्नजगत्तया **यः करोति** सृजति अधितिष्ठति आत्माभिप्रायानुरूप्येण तथा तथा व्यवस्थापयति । **तमी**श्वरं स्वतो भिन्नस्य भाव्यभवनस्य प्रधानादिसंज्ञस्य भावयितार**मात्मस्थ**मात्मनि स्थितं क्षित्याद्यष्टमूर्तिसर्वगतं सर्वत्र तासां सद्भावाद् **येऽनुपश्यन्ति** तत्प्रसादादेव तज्ज्ञानानुसारेण योगाभ्यासप्रसादक्रमेण । केऽनुपश्यन्ति ? **धीरा** अविचलितयोगसमाधयः । को योगः ?

प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा ।
तर्कः समाधिरित्येष षडङ्गो योग उच्यते ॥ [अमृतनादोप० ६]

तत्रेन्द्रियाणां विषयेभ्यो मनसश्च प्रत्याहरणं प्रत्याहारः । प्राणायामस्त्रिविधः – रेचकः कुम्भकः पूरक इति । तत्र रेचक आन्तरं वायुं बहिर्निष्काशयति नासिकाद्वारेण । पूरकः बाह्यमन्तः प्रवेश्य पूरयति । कुम्भकः पूर्णकुम्भवदस्पन्दं वायुं सामीप्येनावस्थापयति । ध्यानमिष्टदेवताचिन्तनं वा । धारणा यथाभ्यासं हृदयादिषु प्रदेशेषु मनसोऽवस्थापनम्, यथा पूर्वं नाभौ ततो हृदये कण्ठे नासिकाग्रे भ्रुवोर्मध्ये ललाटे मूर्द्धनीति । तर्कः शून्यागारगिरिकन्दराद्येकान्ते शुचौ देशे शरीरमृजु आयस्य दन्ताग्राणि जिह्वाग्रेण सन्धाय पल्यङ्क-स्वस्तिक-वीरासनाद्यासनं समपादादिस्थानं वा आस्थाय ध्यायतो मे समाधिर्भवतीति तर्कयेत् 'अनेनेत्थं कृतेन क्रियाविशेषेण आहार-विहार-स्वाध्यायादिना ध्यानसमाधिर्भवति' इति तदुपायविचार ऊहस्तर्कः । ध्यानयोगाभिरतिः समाधिरित्येष षडङ्गो योगः । अनेन योगेन सर्वत्र क्षित्यादिमूर्तिमीश्वरं दृष्ट्वा पश्चाद् भावितात्मा तमात्मस्थमेव पश्यति – यदत्र मम शरीरे कठिनं सा पृथिवी परमेश्वरमूर्तिः, यद् द्रवं तज्जलम्, ऊष्मा तेजः, चलं वायुः, शुषिरमाकाशम्, यच्चैतन्यं स यजमानः, चक्षुः सूर्यः, जिह्वा सोमो

---

१ °त्वपरि° य० ॥ २ °**मादि चेत्** प्र० ॥ ३ **ताभ्यः** प्र० ॥ ४ अत्र **धर्मान्तरेत्यादि** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ५ °**निषेधान्न धर्मा**° प्र० । अत्र °**निरोधो धर्मा**° इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ६ °**त्वाशीति** प्र० ॥ ७ **तर्कश्चैव समाधिश्च** इति अमृतनादोपनिषदि अत्रिस्मृतौ च तृतीयचरणः । श्लोकोऽयम् अत्रिस्मृतावपि विद्यते ॥ ८ **कुंभकधारक इति** प्र० ॥ ९ अत्र **वा**शब्दस्य किं प्रयोजनमिति न ज्ञायते । तस्य सार्थकत्वे कश्चन पाठोऽत्र त्रुटित इति सम्भाव्यते । "अथ ध्यानम् । तद् द्विविधं सगुणं निर्गुणं चेति । सगुणं मूर्तिध्यानम्, निर्गुणमात्मयाथात्म्यम् ।" इति **शा**ण्डिल्योपनिषदि ॥ १० **ललाट** प्र० । "नाभिकन्दे च हृन्मध्ये कण्ठमूले च तालुके । भ्रुवोर्मध्ये ललाटे च तथा मूर्धनि धारयेत् ॥" इति जाबालदर्शनोपनिषदि ७।१२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अयं विधेरुभयभाक् । विधिर्व्याख्यातो लोकवदनपवादप्रवृत्तिः, तस्य उत्सर्गात् स विधीयते, सर्वसर्वात्मकत्वाद् निरपवादः प्रवर्तत एव । नियमः सन्निधिप्रयोज्यसतोरप्रवृत्तेः तयोरसत्सत्त्वात् ।

सादृश्यसामान्यं च शब्दार्थः, सर्वसर्वात्मकत्वेऽपि च सृष्ट्यर्थवत्त्वाद् नाविकल्पः । वाक्यमपि च पृथक् सर्वपदम्, तस्मात् सर्वसर्वात्मकत्वादेव । द्रव्यार्थभेदोऽर्थः ।

मनो वेत्यन्येष्वपि अवयवेषु यथासम्भवं येऽनुपश्यन्ति **ते** धीराः शाश्वतीं शान्तिमाप्नुवन्ति तेनैवेश्वरेण सायोज्यं निर्वाणं मोक्षमित्यर्थः । **नेतरे** प्रधान-पुरुष-नियत्यादिकारणिन इति ।

नयस्वरूपाख्यानार्थमाह — **अयं विधेरुभयभाक्,** उभयं विधिं नियमं च भजत इत्युभयभाक् । **विधिर्व्याख्यातो लोकव**दिति पूर्वमिति स्मारयति । पुनः सङ्क्षेपेण व्याचष्टे — **अनपवादप्रवृत्तिः,** न [1]कञ्चिदर्थमयमपहरति [2]'किं न एतेन यदि सामान्यं यदि विशेषः?' इत्यादि, **तस्य** विधे**रुत्सर्गाद्** विधा[3]नात् **स** विधि**र्विधीयते,** कस्मात्? **सर्वसर्वात्मकत्वाद् निरपवादः प्रवर्तत एव,** प्रवर्तते, न कचिद् व्याहन्यते, अयं हि नयः 'सर्वं सर्वात्मकम्' इतीच्छति [4]यत् प्राक् सूचितं सन्निध्यापत्तिव्याख्याने तदेवात्रापि वक्ष्यते, **नियमः सन्निधिप्रयोज्यसतोरप्रवृत्तेः,** [5]यावेतावनन्तरोक्तौ सन्निधिर्भवति आपत्तिभवनसहाय ईश्वरप्रवर्त्यो वा प्रयोज्यः प्रधानादृष्टाण्वादिर्भावः तयोर्द्वयोरप्यप्रवृत्तेरसत्त्वम् । किं कारणम्? **तयोरसत्सत्त्वात्,** तदुभयं ह्यसदेव सदित्युच्यते स्वतन्त्रस्य कर्तुर्ज्ञस्यैव भवनात् तद्विलक्षणस्याभवनापन्नस्याप्रवृत्तस्यासत्त्वात् खपुष्पवत् । तस्माद् नियमश्चेति विधिर्विधीयते नियम्यते चेति । ततोऽयं [6]'विधेरुभयभागिति ।

शब्दार्थोऽधुना — **सादृश्यसामान्यं च शब्दार्थः,** वाक्यार्थस्य वक्ष्यमाणत्वात् पदार्थ इति गम्यते । २३९-१
सदृशसन्निवेशमानैर्मीयत इति समानम्, समानं दृक्त्वं यत्र द्रष्टॄणां तत् सदृशम्, सदृशं समानम्, समानभावः सामान्यं जाति-लिङ्ग-प्रत्यया-ऽभि[7]धानेष्विति, ना[8]न्यापोहो न समानवस्त्वतिरिक्ततत्त्वादि वा तदनुपपत्तेः । एतत् सामान्यं शब्दार्थः । ननु सामान्यमविकल्पात्मकं पुरुषनियत्यादि सर्वसर्वात्मकत्वादिति पूर्ववादप्रसङ्ग इति चेत्, नेत्युच्यते, **सर्वसर्वात्मकत्वेऽपि च सृष्ट्यर्थवत्त्वात्,** जगत्सृष्टिलक्षणोत्सर्गव्यापित्वात् तदर्थवत्त्वादस्य नयस्य **'नाविकल्पः'** इति सम्भन्त्स्यते प्रकृतशब्दार्थः, अभिहितन्यायेन सत्त्वादिशब्दादिर्तन्वादिविकल्पप्रत्ययस्य सत्यार्थत्वादद्वैतप्रत्ययस्यासत्यार्थत्वादिति पदार्थ उक्तः । वाक्यार्थोऽधुना — **वाक्यमपि च पृथक् सर्वपद**मिति, वाक्येऽवधारिते तदर्थावधारणसौकर्यात् । आख्यातशब्दः सङ्घातो जातिः सङ्घातवर्तिनी [वाक्यप० २।१] [9]इत्यादिषु वाक्यलक्षणविकल्पेषु अस्य नयस्य मतेन पृथक् सर्वं पदं वाक्यम्, वाक्यार्थः पृथक् पृथक् सर्वपदार्थ इति, [10]यथा 'देवदत्त ! गामभ्याज शुक्लाम्' इत्यत्रैकैकं पदं

---

१ किञ्चि° प्र० ॥ २ दृश्यतां पृ० ३४ पं० ४ ॥ ३ °नात्म विधि° प्र० ॥ ४ यथाक सूचितं य० । यथाकः सूचितं भा० ॥ ५ °वत्यापत्तिभवनसहायमीश्वर° प्र० ॥ ६ विधिरु° प्र० । दृश्यतां पं० ९ ॥ ७ °धाष्विति य० ॥ ८ °तत्वादि° प्र० ॥ ९ दृश्यतां पृ० ११४ पं० १८ ॥ १० यस्मा भा० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सङ्ग्रहदेशत्वाद् द्रव्यार्थः। द्रव्यमपि गुणसन्द्रावः, गुणानामेकीभावेन द्रवणं तेनापि तद्वशित्वात्।

उपनिबन्धनमस्य [1]दुविहा पण्णवणा पण्णत्ता—जीवपण्णवणा अजीवपण्णवणा च [प्रज्ञापनासू० १।१]। किमिदं भंते! लोएत्ति पवुच्चति? गोयमा। जीवा चेव अजीवा चेव, एवं रयणप्पभा जाव ईसीपब्भारा समयावलियादि [ ]।

वाक्यम्, किं कारणम्? **तस्मात् सर्वसर्वात्मकत्वादेव,** यस्माद्देवदत्तोऽपि गवात्मकोऽभ्याजात्मकश्च तथा प्रवर्तनात् तत्तदापत्तेः, तान्यपि तथेति तस्मात् सर्वसर्वात्मकत्वात् पृथक् पृथक् सर्वं पदं वाक्यमिति। एतस्य विध्युभयनयस्य **द्रव्यार्थभेदोऽर्थः** पूर्वविरुद्धत्वान्नयानामविकल्पार्थाद् विधिविधिनयाद् विकल्पार्थ-द्रव्यार्थतया भिद्यते।

२३९-२ [2]आर्षोक्तानां नयानां कस्मिन्नन्तर्भावः? इत्यत आह—**सङ्ग्रहदेशत्वाद् द्रव्यार्थः,** सङ्ग्रहनयस्यापि शतधा भेदात् तद्देशस्तदेकदेशो द्रव्यशब्दार्थः। कतमस्मिन् विग्रहे इति चेत्, उच्यते—**द्रव्यमपि गुणसन्द्रावः।** तद्व्याख्या—सम् एकीभावे, द्रु गतौ [पा० धा० ९४५], तस्माद् **गुणानामेकीभावेन द्रवणम्,** कारणे कार्यस्य सत्त्वात् सतामेव सुखादीनां रूपादीनां पृथक् पृथक् सन्निहितानामैक्यगमना-जीवपुद्गलपरिणामः सङ्गमनम्। आह—विध्युभयनयत्वात् सन्निहिततद्विधशक्तीश्वरपृथक्त्वादण्वादीनां [3]तदेकैकसर्वात्मकत्वाच्च तेषां भवतु एकीभावः, मा भूदीश्वरस्येति। नेत्युच्यते, **तेनापि तद्वशित्वात्** सन्निहिततच्छक्तिनापि सहेश्वरेणैकीभावे तच्छक्तिर्[4]व्यक्तेर्नान्यथेति। अत [5]एव चास्य नयस्याद्वैतवादाद् भेदः।

आह—किं स्वमनीषिकयैतदुच्यते? आहोस्विदस्त्यस्य किञ्चिदुपनिबन्धनमार्षमपि? इति। 'अस्ति' इत्युच्यते, **उपनिबन्धनमस्य—[6]दुविहा पण्णवणा [7]पण्णत्ता जीवपण्णवणा अजीवपण्णवणा** चेति। अथवा [8]**किमिदं भंते! लोएत्ति पवुच्चति? गोयमा! जीवा चेव अजीवा चेव, एवं रयणप्पभा जाव [9]ईसीपब्भारा समयावलियादि।**

इति विध्युभयारस्तृतीयो नयचक्रस्य॥

---

१ "से किं तं पन्नवणा? पन्नवणा दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—जीवपन्नवणा य अजीवपन्नवणा य।" इति प्रज्ञापनासूत्रे पाठः॥ २ **अर्थोक्तानां** भा०। **अथोक्तानां** य०॥ ३ **तदे**° प्र०॥ ४ (°व्यक्ति°?)॥ ५ **एवास्य** भा०॥ ६ **दुविध** भा०॥ ७ भा० वि० विना **पन्नत्ता**॥ ८ **किमिदं लोएत्ति पवुच्चइ गोअमा** य०॥ ९ **ईसि**° भा०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

अथ चतुर्थो विधिनियमारः ।

नन्वेवं त्वदुक्ता एवोपपत्तयः सर्वप्राणीश्वरत्वं साधयन्ति, सुखाद्यात्मसंवेद्यलक्षणत्वात् कर्मणः सुखाद्यदृष्टाणूनामपि च कर्मत्वात् कर्मप्रवर्तनाभ्युपगमात्

नन्वेवमित्यादि । पूर्ववदस्मिन् दर्शने न परितुष्येत उत्थानमित्यभिसम्बन्धः । **ननु** इत्यनुज्ञापने, [2]**ननु त्वदुक्ता एवोपपत्तयः** प्रत्येकं **सर्वप्राणीश्वरत्वं साधयन्ति,** बाह्याध्यात्मिकसुखदुःखमोहमात्रत्वा- ज्जगतः सदसद्वेद्यमोहान्तरायभेदानां **सुखादि**त्रयविपाकफलत्वान्निवृत्तेस्त**दात्मसंवेद्यलक्षणत्वात् कर्मणः,** सुखादिसंवेदनेनैव हि तत्कारणभूतं कर्म स्वकार्येण फलेन लक्ष्यतेऽनुमीयते सामान्यतोदृष्टानुमानेन देशान्तर- २४०-१ प्राप्त्या इव आदित्यगतिः । अतः कारणे कार्यस्य सत्त्वात् कार्ये कारणोपचारात् सुखादयः कर्म, अन्नप्राणत्ववत् । अदृष्टं धर्माधर्माख्यं परैरिष्टमेव कर्मेति, आत्मापि कर्म, कथम्? तच्चादृष्टमात्मनो रागादिकर्मविपाकपरिणत्यवस्थस्य प्रयोगपरिणामात् कर्मतामापन्नम् । पुनरपि सुखाद् [3]रागादि, ततः पुनः कर्म, ततः सुखादि फलम् । तच्च जीवपरिणामात्मसात्कृतकार्मणयोग्यपरिमाणपरमाणुसमूह एवात्मस्थमेकीभूतं च[4]ात्मना, यथोक्तम्—

योगैः सकृत् स्वयोगाद् मूर्तः [5]सन् बाह्यमर्थमादत्ते ।
आत्तस्य चानुभवनं बन्धं प्रति स च ततोऽनन्यः ॥ [ ]

तच्च संवेद्यम्, कर्तुः संवेदनात् । ततः संवेद्यलक्षणत्वात् कर्मणः **सर्वेश्वरते**ति सम्भन्त्स्यते । कर्म हि प्रतिप्राणि नियतकर्तृकं स्वविपाकसुखादित्वेन संवेद्य[6]म्, तेनाणूनामेव कर्मत्वपरिणामापन्नानामात्मैकीभावेन वेदनं संवेदनम्, तेन च पुरुषेण तेषां तथा प्रयोजनात् कर्तृत्वम्, अतः **सुखाद्यदृष्टाणूनामपि च कर्मत्वा**दित्याह । प्राक् प्रतिपादितं हि द्व्यणुकत्र्यणुकादिसंयोगैः पृथिव्युदकव्रीह्यङ्कुरादिपरिवृत्तिरूपेणात्मनस्तेषां चैकत्वं सर्वसर्वात्मकत्वं च । तस्मात् कर्मकारणां जगत्प्रवृत्तिं साधयन्ति त्वदुक्ता एवोपपत्तयः । इतश्च कर्मपूर्वकं जगत्, **कर्मप्रवर्तनाभ्युपगमात् सर्वप्राणिनाम्,** कर्मवशादेव हि प्राणिनः शुभाशुभजातिकुलरूपाद्युत्कर्षापकर्षाः । यथोक्तम्—

---

१ °ध्यता प्र० ॥ २ नन्व त्व° प्र० ॥ ३ रागादि फलं फलादि ततः पुनः कर्म य० ॥ ४ वात्मना प्र० ॥ ५ सत्वाह्यमर्थ° भा० । सत्वाद्यमर्थ° य० ॥ ६ °द्यं तेनाणू° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वप्राणिनां कर्तृत्वात् कर्तुरेव भवितृत्वाभ्युपगमात् तस्यैव भवितुश्च प्रयोजनात् सर्वेश्वरता ।

ईश्वरात्तु कर्मणः प्रवर्तनं किं सतः, असतः? तद्यद्यभूतस्य ततोऽद्वैतं तस्यापि तदात्मकत्वात् । भूतस्य चेत् प्रागपि तदस्ति, तच्च ईश्वरात्मैव तथाभूतेस्तथाप्रवृत्तेस्तदापत्तेः, तथापि सुतरामद्वैतम् तदात्मकत्वादेव । अथ यस्मै प्रवर्त्यते यथा तस्मात् तर्हि तत् तथाभूतं तद्वशात् तथेश्वरप्रवृत्तेः, ततस्तस्य प्रवर्तने स एवेश्वरः ।

स्वकर्मयुक्त एवायं सर्वोऽप्युत्पद्यते नरः ।
स तथा क्रियते तेन न यथा स्वयमिच्छति ॥ [ ]
यथाहारः काले परिणतिविशेषक्रमवशात्
सुखं पथ्योऽपथ्योऽसुखमिह विधत्ते तनुभृताम् ।
२४०-२ तथा धर्माधर्माविति विगतशङ्कामपि कथां
कथं श्रोतुं [1]नेया विषयविषवेगक्षतधियः? ॥ [ ]

किञ्चान्यत्, **कर्तृत्वात्** 'प्राणिनाम्' इति वर्तते । मा भूवन्नकृताभ्यागमकृतप्रणाशकर्त्रन्तरफलसङ्क्रान्त्यादयो दोषा इति सदसदाचाराः प्राणिन एव कर्तारो भोक्तारश्चाभ्युपगन्तव्याः, अन्यथा हिताहितप्राप्तिपरिहारार्थानां शास्त्राणामानर्थक्यप्रसङ्गात् । ततः **कर्तुरेव भवितृत्वाभ्युपगमात्** । कः कर्ता? यः स्वतन्त्रः । [2]यः स्वतन्त्रो भविताऽपि स एव । स्यान्मतम्—नन्वीश्वरः प्रयोक्तृत्वात् कर्तेत्युक्तम्, नेत्युच्यते, **तस्यैव भवितुश्च प्रयोजनात्**, सर्वः प्राणी प्रत्येकं भविता प्रयोजयति आत्मना आत्मानं स्वकृतकर्मविपाकात्मकरागद्वेषभयगौरवादिधर्मचोदितः । यथोक्तम्—

प्रयत्न एवापरजन्मजोऽयं सूर्यादयः श्राद्धजनप्रवादाः ।
उत्पश्यतामेव हि दैवसिद्धिमुत्साहिनं श्रीर्भजते मनुष्यम् ॥ [ ] इति ।

तस्मात् तन्त्रादिप्रधानाण्वादिषु सत्स्वपि प्रवर्त्येषु तेषामेव कर्मसाद्भूतानां प्राणिनां भवितृत्वात् तत्तदापत्तेः **सर्वप्राणिनां** स्वातन्त्र्यात् कर्मवशप्रेरितकार्यकारणभावेन सततभवनात् तथाप्रवर्तकस्यैकैकस्य सर्वात्मकत्वात् **सर्वेश्वरता** इति साधूक्तम् ।

इदानीं त्वदिष्टेश्वरकारणत्वे तु दोषा उच्यन्ते—**ईश्वरात्** त्वित्यादि । इदं चिन्त्यम्—**ईश्वरात् कर्मणः प्रवर्तनं किं सतः, असतः?** किं चातः? **तद्यद्यभूतस्य** कर्मण ईश्वरः प्रवर्तकः **ततश्चाद्वैतं** पुरुषादिवादवत् प्राप्तं **तस्यापि तदात्मकत्वात्** कर्मणोऽपीश्वरात्मकत्वादीश्वरस्यैव [3]कर्मत्वेनोत्पत्तेः । **भूतस्य चेत्**, अथ भूतस्य कर्मण ईश्वरात् प्रवृत्तिस्तत एतत् प्राप्तम्—**प्रागपि तत् कर्मास्ति**, कारणे कार्यस्य सत्त्वात् । **तच्चेश्वरात्मैव**, तनुकरणादिभाव्यवत् **तथाभूतेस्तथाप्रवृत्तेस्तत्तदापत्ते**रित्यादिभि[4]र्युक्तिभिः,
२४१-१ **तथापि सुतरामद्वैतं** तदात्मकत्वादेव पुरुषावस्थावदीश्वरभाव्यतदात्मकाण्वादिभवनवद् वा । **अथ यस्मै प्रवर्त्यते यथा** । अथाचक्षीथाः—न तत् कर्मेश्वरात्मकम्, किं तर्हि? यस्मै प्राणिने शुभमशुभं वा नैर[5]नारकतिर्यगमरविचित्रभेदरूपेण येन येन प्रकारेण प्रवर्त्यते तेनेश्वरेण तत्तत्प्राण्यात्मकं तदिति । अत्रोच्यते—**तस्मात् तर्हि तत् तथाभूतम्**, प्रत्येकं प्राणिनः कारणात् तस्मात् तस्मात् तथा तथा भूतमित्यर्थः,

---

१ नेमा प्र० ॥ २ कः स्व° प्र० ॥ ३ कर्मत्वेनोपपत्तेः य० ॥ ४ °दियुक्तिभिः भा० ॥ ५ नरकतिर्य° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ तत्कृतमपि पुरुषकारराजप्रसादवदीश्वरापेक्षं प्रवर्तते, कृततां प्रति तावत् स्वातन्त्र्यं सिद्धं तस्यैव, तत्कृतं हि कर्मैव ईश्वरप्रसादमुत्पादयति। द्रव्यादिपञ्चका-पेक्षसेवादिक्रियाफलप्रत्यक्षवत्।

त्वदभिमतेश्वरस्तु यदि स्वतन्त्रः कर्मानपेक्षश्च प्रवर्तयति ततः प्रतिपुरुषनियामककर्माभावेऽनुपपन्नस्थानविग्रहेन्द्रियोपभोगाभ्युदयप्रत्यवायापवर्गादिविशेषमिदं जगत् स्यात्, तुल्यकारणत्वात्, पटतान्तवत्ववत्।

तद्वशात् तथेश्वरप्रवृत्तेः, ततस्तस्य प्रवर्तने स एवेश्वरः, [1]कृतं त्वदिष्टमीश्वराख्यमात्मवशेन तथा प्रवर्तयतस्तस्य तस्य प्राणिन ईश्वरत्वम्, नेश्वरस्य तथा प्रवर्त्यत्वात् कर्मकरवत्।

अथ तत्कृतमपि पुरुषकारराजप्रसा[2]दवदीश्वरापेक्षं प्रवर्तते। अथ मतम्—प्राणिभिः कृतमपि कर्म ईश्वरकृतमेव, ईश्वरवशात् प्रवर्तमानत्वात्। तद्यथा—द्वयोः पुरुषयोस्तुल्यपुरुषकारयोरपि राजा एकस्यैव प्रसीदति नेतरस्येति फलं राजवशेन दृष्टं न पुरुषकर्मवशेन तथेश्वरवशात् तत्कर्मप्रवृत्तिरिति। अत्रोच्यते—**कृततां प्रति तावत् स्वातन्त्र्यं सिद्धं तस्यैव** [3]प्राणितोषितेश्वरेण प्राण्यनुष्ठेयकर्मप्रत्ययप्रसादोत्पत्तेः, तत्र च राज्ञो निमित्तमात्रत्वात्। पुरुषकृतकर्मजन्यप्रसादराजवदेव ईश्वरस्याप्यन्यतरपुरुषकृतकर्मप्रत्ययप्रसादोत्पादनात् कर्मस्वातन्त्र्यम्, **तत्कृतं हि कर्मैवेश्वरप्रसादमुत्पादयति** अन्यतरेण कृतं नेतरेणेत्यर्थः, ॰४१२ अन्यतरपुरुषकृतकर्मप्रत्ययस्येश्वरप्रसादस्य तेनोत्पाद्यत्वात् तस्मात् पुरुषकर्मापेक्षत्वादीश्वरप्रवृत्तेः कर्मप्राधान्यं प्रवृत्तौ फले चेति। स्यान्मतम्—राजवदेव कर्मणः प्रवृत्तौ तत्फलदाने [4]चेश्वरोऽपेक्ष्यत्वात् प्रधानं कारणमिति। एतच्च न, यस्माद् **द्रव्यादिपञ्चके**त्यादि यावत् **प्रत्यक्षवत्**। द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं भवं चापेक्ष्य हि कर्मणां प्रवृत्तिः कृतानां च फलं प्रत्यक्षत उपलभ्यते। स एव पुरुषः कर्ता द्रव्यं दाता देयं वा द्रव्यं वस्त्रसुवर्णादि। क्षेत्रं ग्रामनगरारण्यरणभूम्यादि यत्र तत् प्राप्यते फलम्। कालः कस्मिंश्चित् काले दिवा रात्रौ पूर्वाह्णेऽपराह्णे सद्यश्चिराद्वेति। भावः 'प्रसन्नः कुपितः' इ[5]त्यादि। भवो हस्तिमहामात्रयोः शरीरानुरूपाहाराभरणादिदानमिति। अत्र प्रयोगः—परत्रापि प्राणिकृतफलं प्रतिनियतद्रव्याद्यपेक्षम्, सुखादिक्रियायाः फलत्वात्, द्रव्यादिपञ्चकापेक्षसेवादिफलवत्। तस्माद् द्रव्यादिपञ्चकापेक्षमपि कर्म फलदाने [6]स्वतन्त्रप्राणिनियतेः प्रधानम्। नेश्वरं च कर्मापेक्षते, परतन्त्रत्वात् तस्येति।

त्वदभिमतेश्वरस्त्वित्यादि। अस्तु तावदीश्वरस्य स्वातन्त्र्यं कर्मानपेक्षा च तस्य जगदुत्पादनार्थं प्रधानादि [7]प्रवर्तयतः, प्राणिनां [8]कर्माकारणत्वे तदनपेक्षायां च दोष उच्यते—तद्यथा **ततः प्रतिपुरुषे**त्यादि, पुरुषं पुरुषं प्रति द्रव्यादिपञ्चकत्वेन नियामकं नियतं यदि कर्म न स्यात् ईश्वर एवाविशिष्टो हेतुः स्यात् ईश्वराख्यस्य कारणस्याविशिष्टत्वादविशेषः स्यात्। कस्य? दैव-मानुष-तैर्यग्योनाख्यप्राणिगणस्य। कीदृग् विशेष इति चेत्, उच्यते—स्थानविग्रहेन्द्रियोपभोगलक्षणो विशेषो न स्यात्। कस्मात्? तद्विशेषहेतो-

---

१ क्षतं य०। त्कंतं भा०॥ २ °द्दीश्व° भा०। °दादीश्व° य०॥ ३ **प्राणिनोषितेश्वरेण** प्र०। अत्र 'प्राणिनो विनेश्वरेण' इत्यपि पाठः स्यात्॥ ४ **वेश्व°** प्र०॥ ५ (इत्यादिः?)॥ ६ **स्वतंत्र। प्राणि°** भा०। (स्वतन्त्रं प्राणि°?)॥ ७ **प्र°** प्रतिषु नास्ति॥ ८ **कर्मकारणत्वे** य०। **कारणत्वे** भा०॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अनपेक्षा च किं कर्मणः सतः, असतः? यद्यसत एव, किम्? क्रियाविलोपः। उक्तं च वः शास्त्रे – योगं साधयिष्यन्······निद्रातन्द्राप्रमादालस्यरहितश्च स्यात् [ ] **इत्यादि। कर्माभावे च प्राणिनां सदा मुक्तत्वात् तन्वादिसृष्टिरीश्वरस्यानर्थिका। ततश्च भाव्यभावकभेदाभावाद् द्वैतकल्पनानिर्मूलता। अथ तु विद्यमानावेव धर्माधर्मौ नापेक्षते स ततोऽकृताभ्यागमकृतप्रणाशौ दोषौ स्याताम्, आक्षीणोदितकर्माशयबन्धमोक्षाभ्याम्।**

रीश्वरस्य समानत्वात्। स तु विशेषो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-भवापेक्षनियतेः[१] प्रतिपुरुषं च नियामके कर्मणि
२४२.१ तत्पक्षकापेक्षविपाके सति विशिष्टे स्यात्। दृष्टश्च सोऽसदभीष्टप्रतिनियतद्रव्यादिविपाककर्मप्राणिगणेश्वरत्वे सति युज्यते – केषाञ्चिदभ्युदयः केषाञ्चित् प्रत्यवायः केषाञ्चिदपवर्ग इति। अत्र प्रयोगः – **अनुपपन्नस्थानविग्रहेन्द्रियोपभोगाभ्युदयप्रत्यवायापवर्गादिविशेषमिदं जगत् स्यात्, तुल्यकारणत्वात्, पटतान्तवत्ववत्,** यथा पटस्तन्तुकारणत्वाविशेषात् तान्तवः न मार्तिकः सौवर्णो वेति जात्याकृतिवर्णाद्य[२]विशिष्टस्तथेदं जगत् स्यात्, न तु भवति। तस्मादयुक्तम्। अथवा प्रतिनियतद्रव्याद्यपेक्षविपाकानेकेश्वर[३]कारणपूर्वकमेवेदं जगत्, प्रतिविशिष्टजात्याकृतिवर्णादिमत्त्वात्, घटपटरथादिवत्। तस्मात् कर्मापेक्षमीश्वरत्वं सर्वप्राणिनामिति।

अभ्युपेत्यापि कर्मानपेक्षां तत्र दोषं ब्रूमः – **अनपेक्षा चे**त्यादि। किमियमीश्वरस्य धर्माधर्मलक्षणस्य **कर्मणो**ऽनपेक्षा **सतः? असतः?** किञ्चातः? **यद्यसत एव** धर्माधर्मयोरसतोरेवानपेक्षा, किमिति प्रश्नः, ततः किमिति चेत्, उच्यते – **क्रियाविलोपः,** असतोर्हि तयोः खपुष्पखरविषाणयोरिव कापेक्षा? ततश्च हिताहितप्राप्तिपरिहारार्थाः सर्वाः क्रिया विलुप्येरन्, इष्यन्ते च ताः, यस्मा**दुक्तं च वः शास्त्रे–योगं साधयिष्यन्नि**त्यादि गतार्थं यावद् **निद्रातन्द्राप्रमादालस्यरहितश्च स्यादित्या**[४]दि इत्याचारविधायिग्रन्थस्मारणम्। किञ्चान्यत्, **कर्माभावे चे**त्यादि यावद् **निर्मूलता,** अकर्मत्वात् प्राणिनः सदा मुक्ताः स्युः। ततश्च तन्विन्द्रियविषयसम्बन्धिनो न भवन्ति। ततश्च तन्वादिसृष्टिरीश्वरस्यानर्थिका। ततश्च
२४२.२ भाव्यभावकभेदाभावः। तस्माद् **भाव्यभावकभेदाभावा**दीश्वरकर्मप्रधानाण्वादि**द्वैतकल्पनानिर्मूलता।** एवं तावदसतः कर्मणोऽनपेक्षा न युक्ता। **अथ तु विद्यमानावेव धर्माधर्मा**व[५]भ्युदयप्रत्यवायनिःश्रेयसक्रियायां **नापेक्षते स** ईश्वरः स्वतन्त्रत्वात् प्रयोजनाभावाच्च तयोः विद्वद्व्याख्यानादिक्रियासु बलीवर्दानपेक्षणवदिति मन्यसे **ततोऽकृताभ्यागमकृतप्रणाशौ दोषौ स्याताम्।** कथम्? यथासङ्ख्य**माक्षीणोदितकर्माशयबन्धमोक्षाभ्याम्।** यावत्क्षीणकर्मणोऽपि बन्धाभ्युदयप्रत्यवायसम्बन्धी अकृताभ्यागमः स्यात्, कुतः? धर्माधर्मनिरपेक्षत्वात् स्वभावपुरुषादिवादिमतवत्। उदितात्यन्ताशुभकर्माशयस्य नारकादेरपि मुक्त्यभ्युदयसम्बन्धी कृतप्रणाशः स्यात् धर्माधर्मनिरपेक्षत्वात् पुरुषस्वभावादिवादिमतवदेव, अनिष्टं चैतत्। एवं तावदीश्वरस्य कर्मानपेक्षा अनिष्टापत्तेरयुक्ता।

---

१ "उदयखयखओवसमोवसमा जं च कम्मुणो भणिया। दव्वं खित्तं कालं भवं च भावं च संपप्प ॥ ५७५ ॥" इति विशेषावश्यकभाष्ये ॥ २ जातिः पटत्वम्, आकृतिः संस्थानम्, वर्णो नीलादिः ॥ ३ °केनेके° य० ॥ ४ °दिरित्याचार° प्र० ॥ ५ "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।१।१।२।" – वै० सू०। "अधर्मोऽप्यात्मगुणः कर्तुरहितप्रत्यवायहेतुः।" – इति प्रशस्तपादभाष्ये ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ कर्मापेक्षः प्रवर्तते ततस्तान्येव कर्माणि ईश्वराणि, तेषां तस्यापि तथा भावयितृत्वात्। न स तानि तथा भावयति, तथा भाव्यमानत्वात्, अनापन्नस्यासत्त्वात् खरविषाणवत्, अस्वतन्त्रत्वाच्छब्दादिवत् । भवति कर्ता स्वतन्त्रः, तथा प्रवर्तनवृत्तत्वात्, तन्तुपटवत् ।

ईश्वरस्यापि च कर्मणि वृत्तेः सर्व एव पुरुषः सन्निहिततद्विधशक्तिः प्रतिविशिष्टबुद्धिप्रमाणीकृतक्रियः स्वतन्त्रः तथाप्रवृत्त्यापत्तेः आ ईश्वरात् प्रवर्तयितृत्वात्

अथैवंविधानिष्टापत्तिव्यावृत्त्यर्थं **कर्मापेक्षः प्रवर्तते** इति मन्यसे **ततस्तान्येव कर्माणि** कर्तृणि स्वतन्त्राणि भवितृणि **ईश्वराणि ।** कस्माद्धेतोः ? **तेषां तस्यापि तथा भावयितृत्वात्**, यस्मात् तमपीश्वरं तेन तेन प्रकारेण भवन्तं भावयन्ति तान्येव कर्माणि, **न स तानि** कर्माणि **तथा भावयति,** कुतः ? **तथा भाव्यमानत्वात्** प्रधानेन शब्दादिवदिति वक्ष्यमाणदृष्टान्तत्वात् । [1]यथा च पृथिव्युदकादीन् व्रीहिरेव तथा भावयति पृथिव्याद्यपेक्षोऽपि तथापत्तेः, न पृथिव्यादयस्तथानापत्तेः; एवं कर्माण्येवेश्वराणि तथा भावयितृत्वात्, न त्वदिष्टेश्वरस्तथा भाव्यमानत्वादिति । स्यान्मतम्—पृथिव्युदकादीन्यपि भावयन्त्येव [2][3]व्रीहिं व्रीहित्वेनानापन्नान्यपीति । एतच्चायुक्तम्, तेषामसत्त्वात्, असत्त्वं च **अनापन्नस्यासत्त्वात् खरविषाणवदिति** सन्निधिभवनदूषणे प्रक्रान्तमेव न्यायं दर्शयति । **अस्वतन्त्रत्वाच्छब्दादिवदिति** एष दृष्टान्तः २४३-१
सर्वत्र प्रधानकारणत्वसाधर्म्येणोपात्तः कापिलान् प्रति, यथा प्रधानस्वातन्त्र्यात् तत्कारणत्वं गमयति शब्दादि आरातीयकारणत्वाभावं चास्वातन्त्र्यात् तेषामिति [4]नाव्यक्तमिति व्यक्तमित्येव वा प्रधानता भवतीति यथा त्वयैवोक्तं तथैवेश्वरोऽस्वतन्त्रत्वात् कर्मापेक्षत्वादकारणं तान्येव कारणानीति गमयति ताभिरेव त्वदुक्ताभिरुपपत्तिभिः । अतो यदुक्तं [5]त्वदुक्ता **एवोपपत्तयः सर्वप्राणीश्वरतां साधयन्तीति** तत् साधु । तद्भावयन्नाह— **भवति कर्त्ते**त्यादि प्राग्व्याख्यातार्थान्येव भवै[6]त्येकार्थपदानि यावत् **तन्तुपटवदिति** । यथा तन्तव एव पटनिष्पादनेन भवन्त**स्तथाप्रवर्तनवृत्तत्वात्** पटकारणानि तथा पुरुषा एव कर्तार इति ।

ईश्वरस्यापि चेत्यादि तासामेवोपपत्तीनामितोमुखतां भावयति अनेनापि ग्रन्थेन । यथा त्वया प्रागुपपादितं ब्रुवता **पूर्वपूर्वशक्ततारतम्येन सन्निहितत[7]द्विधशक्तिर्विशिष्टबुद्धिरिति** तथेहापि ताभिरेवोपपत्तिभिस्तैरेव च तन्त्वंश्वादिभिर्दृष्टान्तैः **कर्मणि वृत्तेः** कर्मनिष्ठत्वात् सृष्ट्यतिशयप्रकर्षस्य कर्मणां पुरुषत्वात् **सर्व एव पुरुषः सन्निहितत[7]द्विधशक्तिः प्रतिविशिष्टबुद्धिप्रमाणीकृतक्रियः,** प्रतिविशिष्टबुद्धिना तेनैश्वरेणान्यैश्च शास्त्रकारैर्विश्वदृश्वभिरपि प्रमाणीकृतास्तत्क्रिर्यास्तत्क्रि[8]याफलपरिज्ञानार्थत्वाच्छास्त्रकारप्रभृतीनां सिद्धशास्त्राणामनतिशङ्क्यत्वाच्च । स च **स्वतन्त्रः, तथाप्रवृत्त्यापत्तेः** तेन प्रकारेण कर्मिप्राणिप्रवृत्तिवदीश्वरस्यापि प्रवृत्त्यापत्तेः, **एश्वरात् प्रवर्तयितृत्वादिति, आ ईश्वरात्** यावदीश्वरस्तावत् **प्रवर्तयितृत्वा-** २४३-२

---

१ दृश्यतां पृ० ३२५ पं० ३ ॥ २ **तथा चा** प्र० ॥ ३ **व्रीहिव्रीहित्वेनमनाप**° प्र० ॥ ४ **नाव्यक्तमित्यव्यक्तस्येव वा** भा० । **नाव्यक्तमिव व्यक्तस्येव वा** य० । अत्र 'न व्यक्तमित्यव्यक्तमित्येव वा' इत्यपि पाठः स्यात् । अथवा 'नाव्यक्तमित्येव व्यक्तमित्येव वा' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ५ दृश्यतां पृ० ३२५ पं० २ ॥ ६ °**त्येकद्येकार्थ**° भा० । °**त्येकद्यिकार्थ**° य० ॥ ७ °**तद्विविध**° भा० । दृश्यतां पृ० ३२६ पं० १, टि० ५ ॥ ८ °**याफल**° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारणम्, शक्तिमत्प्रवृत्त्यप्रवृत्तिदर्शनात्[1]``` पक्त्रादिवत्, यावदे[वमे]वास्य सर्वत्वात् सर्वमूर्तिता। अपि च उत्कर्षापकर्षदर्शनात् [2]प्रवृत्त्यनुभवफल`````` पुरुषादृतेऽप्रवृत्तेरेव उत्कर्षापकर्षौ न निर्बीजेश्वरकामचारेरणात्।

कर्मापेक्षत्वेऽपि नेश्वरवैयर्थ्यम्, तदभावे प्रवृत्त्यभावात्, दार्वाद्यपेक्षरथकारवदिति चेत्, न, इतरत्रापि तुल्यत्वात्। तद्यथा—ईश्वरापेक्षत्वेऽपि न कर्मवैयर्थ्यम्, तत एव, रथकारापेक्षरथदारुवत्। प्रवर्तयितृत्वाच्चेश्वरस्य तथा प्रवर्तकं कर्म, कर्मणः पुरुषः, इति पुरुष एवेश्वरः। एवं प्रतिघातप्रसङ्गोऽपीश्वरस्य, सापेक्षप्रवृत्तित्वात्, रथकारवत्। यथा रथकारे उपादानोपकरणासामर्थ्यवैकल्ययोः

दीश्वरस्य प्रवर्त्यत्वात् **कारणानि** सर्वपुरुषाः। **शक्तिमत्प्रवृत्ती**त्यादि, ईश्वरस्यापि तेषामेव शक्तिमतां पुरुषाणां शक्तिसाकल्यसं[3]न्निध्यसन्निध्योः **प्रवृत्त्यप्रवृत्तिदर्शना**दिति तदेवोपपत्तिजातं स्मारयति यावत् **पक्त्रादिवदिति, आदिग्रहणाद्** [4]रंजोवत् प्रवृत्तिवदित्यादि, पूर्ववदेव ग्रन्थं [5]चातिदिशति—**यावदेवमेवास्य सर्वत्वात् सर्वमूर्तिता, 'एवमेव चास्य क्षित्याद्यष्टमूर्तितोच्यते'** इत्येतस्मा[6]दवधेराराातीयो ग्रन्थः सर्वो द्रष्टव्यस्ताभिरेवोपपत्तिभिः सर्वप्राणीश्वरत्वे तद्वदेवेति। पुनरपि **चोत्कर्षापकर्षदर्शना**दित्यादिरीश्वरसर्गसाधनार्थो ग्रन्थः **प्रवृत्त्यनुभवफले**त्यादिस्तद्वदेव यावत् **पुरुषा[7]दृतेऽप्रवृत्तेरेव उत्कर्षापकर्षौ न निर्बीजेश्वरकामचारेरणा**दिति कर्मकारणत्वार्थो गतार्थः। तस्मात् कर्मापेक्षत्वात् सर्वसर्वात्मकत्वात् सर्वेश्वरतेति।

कर्मापेक्षत्वे इत्यादि यावद् **रथ[8]कारवदिति चेत्**। स्यान्मतम्—कर्मापेक्षत्वेऽपि न व्यर्थमीश्वरकारणत्वम्, **तदभावे प्रवृत्त्यभावात्**। यत्र यदभावे प्रवृत्त्यभावः प्रवर्तकस्य तत्रेश्वरस्याप्य[9]वैयर्थ्यं दृष्टम्, यथा रथकारप्रवृत्तौ र[10]थार्थं दार्वाद्यपेक्षणमिति चेन्मन्यसे, तन्न, **इतरत्रापि तुल्यत्वात्**। तत् कथमिति चेत्, प्रयोगत एव दर्श्यते विपर्ययसिद्धिः, **तद्यथा—ईश्वरापेक्षत्वेऽपि न कर्मवैयर्थ्यम्, तत एव** हेतोः, **रथकारापेक्षरथदारुव**दिति विरुद्धैकान्तिकः।

तदुपसंहृत्याह—**प्रवर्तयितृत्वाच्चेश्वरस्ये**त्यादि यावत् **पुरुष एवेश्वर** इति। प्रवर्तयिता हीश्वरः,
२४४-१ दासस्य स्वामिवत्। तच्च प्रवर्तयितृत्वं कर्मणः सिद्धमुक्तविधिना प्रवर्त्यत्वं चेश्वरस्य, **तथा प्रवर्तकं कर्म, कर्मणः पुरुषः** [11]प्रवर्तेत इति प्रकृतत्वाद् गम्यते, इतिशब्दो हेत्वर्थे, तस्मात् **पुरुष एवेश्वरः** सर्व इति। एवं कर्मेश्वरतापि तु यथैवं तथोत्तरत्र भावयिष्यते। पुरुषस्य तावत् सर्वस्येश्वरत्वमुक्तमिति। **एवं प्रतिघातप्रसङ्गोऽपी**त्यादि। किञ्चान्यत्, प्रतिहन्यते च त्वदभिमतेश्वरः **सापेक्षप्रवृत्तित्वाद् रथकारवत्**। अस्य साधनस्य व्याख्या—**यथा रथकार** इत्यादि, **उपादानं** दारु, **उपकरणानि** वास्यादीनि, तेषाम**सामर्थ्यं** वैगुण्यं सतामेव **वैकल्यं** त्वन्यतमाभाव एव, तत्र **प्रतिघातो 'दृष्टः'** इति वाक्यशेषः। **तथे**त्यादि दार्ष्टा-

---

१ दृश्यतां पृ० ३२८ पं० १॥ २ दृश्यतां पृ० ३२८ पं० ३॥ ३ °**सन्निध्योः प्र**° प्र०॥ ४ दृश्यतां पृ० ३२७ पं० २॥ ५ **चादिशति** प्र०॥ ६ °**स्मादवेरारा**° प्र०॥ ७ °**दृप्रवृ**° प्र०॥ ८ °**कारत्ववदिति** य०॥ ९ °**प्यवैषम्यं** प्र०॥ १० **रथार्थदार्वा** पा० र० ही०॥ ११ (प्रवर्तक इति ?)॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिघातस्तथा अपचितकुशलमनुजिघृक्षतः उपचितकुशलं चोपजिघांसतस्तस्य यद्यप्रतिघातः स्यात् स्यात् स्वातन्त्र्यम्, न तु भवति, पुरुषकृतकर्मप्रत्ययेन ईश्वरप्रवृत्तिप्रतिघातदर्शनात् ।

यत्तूच्यते–सर्गादौ अप्रतिहतस्वशक्तिवशादेव शरीरादीन्युत्पाद्य [1]प्रतिबुद्धानां प्राणिनां धर्माधर्ममर्यादामुपदिशति, मध्यकाले च तेषां स्वमर्यादानुष्ठानानुरूपेण फलेन इष्टेनानिष्टेन वा अनुग्रहं करोति, [2]अयमनुग्रह एव तेषां तद्दणमोक्षणवत्, मोक्षमार्गोपसेविनश्च सायोज्यं गमयति, अन्तकाले च शरीरेन्द्रियभूतवत् कुशलाकुशले संहृत्य प्रलयक्षपायां स्वापयति, यदपि चाकाङ्क्ष्यते तस्य सर्वज्ञत्वं सर्वकारि-

---

न्तिकम्, सापेक्षप्रवृत्तित्वसाधर्म्यानुगमेनोपनयनं रथकारे कार्यम्, वैधर्म्येण तु दर्शयति–**अपचितकुशलमनुजिघृक्षत** इत्यादिना । पुरुषमपचितशुभकर्माणमनुग्रहीतुमिच्छतस्तद्विपरीतं चोपहन्तुमिच्छत**स्तस्ये**श्वरस्य **यद्यप्रतिघातः स्यात् स्यात् स्वातन्त्र्यम्, न तु भवति,** अपेक्ष्यस्य कर्मणः स्वकृतकर्मवशस्य **प्रत्ययेन** तद्वशेन **ईश्वरस्य [3]प्रवृत्तिप्रतिघातदर्शनात् ।** न चेदेवमिष्यते, शुभकर्माणं दुःखेनेतरं च सुखेन योजयेत् । तथा च '[4]अकृताभ्यागमकृतप्रणाशौ स्याताम्' इत्युक्तम्, तच्च नेष्टम् । तस्मात् **पुरुषकर्मप्रत्ययेन** ईश्वरप्रवृत्तिप्रतिघातोऽस्ति, प्रवृत्तिप्रतिघाताच्च नैश्वर्यं तस्य प्रतिघात्यत्वात् पृथग्जनवदित्यनीश्वरः स इति ।

यत्तूच्यत इत्यादि यावत् **प्रलयक्षपायां [5]स्वापयतीति** । कालभेदेन सापेक्षनिरपेक्षप्रवृत्तिपक्षयोरभ्युपगमादुभयथापि सिद्धेः प्रवृत्तिप्रतिघातासम्भवाददोषः । तद्यथा–**सर्गादौ** धर्माधर्मविकलानां शरीरेन्द्रियविषयोत्पादने निरपेक्षोऽप्रति[6]हतस्वशक्तिवशादेव शरीरा[7]दीन्युत्पादयति, तांश्चोत्पाद्य बुद्धानां सुप्तोत्थि- २४४-२
तानां **धर्माधर्ममर्यादामुपदिशति** 'तपोदानयज्ञादि कुरुत, मा[8] कार्ष्ट हिंसानृतस्तेया[गम्या]गमनादीनि' इति, तयोश्च धर्माधर्मयोः सीमाच्छेदेन व्यवस्थां मर्यादामुपदेशेन व्यवस्थापयति । **मध्यकाले च तेषां** प्राणिनां यथास्वं धर्माधर्ममर्यादामनुतिष्ठतामनुष्ठानानुरूपेण **फलेनेष्टेन अनिष्टेन वा** विषयोपभोगलक्षणेना**नुग्रहं करोति** यदा तदा सापेक्षोऽप्रतिहतस्वशक्तिवशादेव । स्यान्मतम्–धर्मानुष्ठानफलोपभोगेन इष्टेनानुग्रहो युज्यते, कथमधर्मानुष्ठानफलोपभोगेनानिष्टेन युक्तः ? इत्यत्रोच्यते–**अयमनुग्रह एव तेषां तद्दणमोक्षणा**दिति । ये पुनस्तदुपदिष्टमोक्षमार्गप्रस्थितास्तांश्च **मोक्षमार्गोपसेविनः सायोज्यं गमयति ।** कोऽसौ मोक्षमार्गः ? माहेश्वरो योगविधिः । तानात्मना सह युङ्क्ते इति सयुक्, तद्भावः सायोज्यं तेषामीश्वरसाद्भावः, तं गमयति नयति । एतद् मध्ये सापेक्षमैश्वर्यम् । **पुनरप्यन्तकाले च शरीरेन्द्रियभूतवत्,** यथा शरीरेन्द्रियाणि भूताख्यांश्च विषयानुपसंहरति तथा **कुशलाकुशले** तेषां धर्माधर्मावपि **संहृत्य** तान् पुरुषान् सर्गाहनि संसृतवतस्तेन धर्माधर्मफलेनेष्टानिष्टोपभोगात्मकेन दिवसव्यायामपरिश्रमाभिभूतान् बालकान् पुत्रकानिव पिता सर्वपुरुषान् संसारहेतुभूतधर्मा[9]धर्मानुपसंहृत्य **प्रलयक्षपायां [10]स्वापयती**त्यन्तेऽपि निरपेक्षोऽप्रति-

---

१ दृश्यतां पृ० ३४५ पं० २४ ॥ २ दृश्यतां पृ० ३४३ पं० १७ ॥ ३ **प्रवृत्तिघात**° प्र० ॥ ४ दृश्यतां पृ० ३३८ पं० ५ ॥ ५ **सापपती**° भा० । **सायपती**° य० । दृश्यतां पृ० ३४४ पं० १४ ॥ ६ °हतः प्र० ॥ ७ (°दीनुत्पा° ?) ॥ ८ **हिंसां मा कार्ष्ट** य० ॥ ९ (°धर्माधर्मावुपसंहृत्य ?) ॥ १० **सापयती**° प्र० । दृश्यतां पृ० ३४४ पं० १४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वात् तदपि नैव, अस्यानर्थकार्थप्रवृत्तबालादिप्रवृत्तिवदज्ञक्रियासाधर्म्याद् धर्माधर्मोपदेशप्रवृत्तेरनर्थकार्थविषयत्वात् । यस्याभावे यस्याभावो यस्य च भावे यस्य ध्रुवो भावस्तत् कारणम्, इतरत् कार्यम् । न च धर्माद्यभावे शरीरादेरभावः, सर्गादौ शरीरादिनिर्वृत्त्यभ्युपगमात् । न च धर्मादिभावे ध्रुवः शरीरादेर्भावः, अदत्तफलकुशलाकुशलसंहारादन्तकाले ।

यथा चोपदेशेऽनभिज्ञत्वं तस्य तथा प्राणिनामप्यनुग्रहक्रियाया अपि यदा

हतस्वातन्त्र्यः स एवेष्टः । तस्मादुभयथापि अपेक्ष्यानपेक्ष्य च तदैश्वर्यसिद्धेरदोष एव दोषाभिमत्या त्वयोद्भावित इति परपक्षः ।

अत्र वयं ब्रूमः – तत्कारित्वात् तज्ज्ञत्वमिति यत् सर्वज्ञत्वमाकाङ्क्ष्यते तदपि नैव । कर्मणामेव तन्निरपेक्षप्रवृत्तौ तस्य प्रतिघातादनैश्वर्यं सृष्टप्राणिसंसारकाले सर्गाद्यन्तयोश्च अकृताभ्यागमकृतप्रणाशादिदोषास्तदवस्था एवेत्यपरिहृतदोषत्वाद् न किञ्चिदेतत् । अन्योऽपि च दोषः – **यदपि चाकाङ्क्ष्यते तस्य सर्वज्ञत्वं सर्वकारित्वात्** करणस्य ज्ञानाविनाभावात् सर्वं चेत् करोत्यवश्यं सर्वमसौ वेत्तीति सर्वकारित्वात् सर्वज्ञ इति, **तदपि नैवोपपद्यते, अस्यानर्थकार्थप्रवृत्तबालादिप्रवृत्तिवदज्ञक्रियासाधर्म्या**दज्ञोऽसौ बालवदसमीक्षितप्रवृत्तित्वादित्येतदनया कल्पनयास्माकं त्वया प्रत्यक्षीक्रियते, किं कारणम् ? **धर्माधर्मोपदेशप्रवृत्तेरनर्थकार्थविषयत्वात्**, अनर्थकौ धर्माधर्मावर्थौ ह्यस्य धर्माधर्ममर्यादोपदेशस्य । न च तयोर्धर्माधर्मयोः शरीरादिकारणत्वम्, विनापि धर्माधर्ममर्यादया सर्गादौ प्रभुसृष्टेः शरीरादिनिर्वृत्त्यभ्युपगमात्, धर्माधर्ममर्यादायां सत्यामेव च प्रलयकाले शरीराद्यभावाभ्युपगमाच्चेश्वरसामर्थ्यादेव । तस्मात् तयोर्नास्ति कारणता, कारणलक्षणायोगात् । किं तत् कारणलक्षणमिति चेत्, उच्यते – **यस्याभावे** इत्यादि गतार्थं याव**दितरत् कार्य**मिति । कथं तदयोग इति चेत्, उच्यते – **न च धर्माद्यभाव** इत्यादिना ग्रन्थेन तयोः कारणाभिमतयोरभावेऽपि शरीरादेः कार्यस्य भावं भावेऽपि चाभावमुपदेशसाफल्यानभिज्ञत्वं च दर्शयति याव**ददत्तफलकुशलाकुशलसंहारादन्तकाले** इति गतार्थत्वाद् न विव्रियन्तेऽक्षराणि ।

२४५·१

किञ्चान्यत्, **यथा चोपदेश** इत्यादि यावत् **क्रियाया अपि** अनभिज्ञत्वमिति वर्तते । न केवलमुपदेशानभिज्ञत्वमेव तस्य, किं तर्हि ? प्राणिनामनुग्रहक्रियानभिज्ञतापि इति तदतिदिशति । तत् कथं

---

१ "सर्वकर्तृत्वसिद्धौ च सर्वज्ञत्वमयत्नतः । सिद्धमस्य यतः कर्ता कार्यहेत्वादिवेदकः ॥ ५४ ॥ अथ सर्वज्ञत्वं कथं तस्य सिद्धं येनासौ निःश्रेयसाभ्युदयकामानां भक्तिविषयतां यायादित्याह — सर्वकर्तृत्वसिद्धौ चेत्यादि । तथा चाहुः प्रशस्तमतिप्रभृतयः — 'सकलभुवनहेतुत्वादेवास्य सर्वज्ञत्वं सिद्धम्, कर्तुः कार्योपादानोपकरणप्रयोजनसम्प्रदानपरिज्ञानात् । इह हि यो यस्य कर्ता भवति स तस्योपादानादीनि जानीते, यथा कुलालः कुम्भादीनां कर्ता तदुपादानं मृत्पिण्डमुपकरणानि च चक्रादीनि प्रयोजनमुदकाहरणादि कुटुम्बिनं च सम्प्रदानं जानीत इत्येतत् प्रसिद्धम्, तथेश्वरः सकलभुवनानां कर्ता स तदुपादानानि परमाण्वादिलक्षणानि तदुपकरणानि धर्माधर्मदिकालादीनि व्यवहारोपकरणानि सामान्यविशेषसमवायलक्षणानि सम्प्रदानसंज्ञकांश्च पुरुषान् जानीते' इति । अतः सिद्धमस्य सर्वज्ञत्वमिति ।" इति **कमलशीलरचितायां तत्त्वसङ्ग्रहपञ्जिकायाम्**, पृ० ४३–४४ ॥ २ दृश्यतां पृ० ३४५ पं० १९ ॥ ३ °षः तद° प्र० ॥ ४ **ज्ञानाभावात्** प्र० ॥ ५ °**त्येवश्यं** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदेदं व्यामूढ्यैव……किम्……उपभोगविभाजनानुग्रहक्रियया अतिगरीयस्या? इति अत्यन्तपरवशत्वमेवैश्वर्यमुच्यते। अनुग्रहोऽपि विपर्ययेणोच्यते, दुःखहेतुदुःखात्मकत्वाभ्याम्, विषकृतभोजनक्लेशनवत्। तत्सायोज्यगमनेऽप्येवम्।

एवं च तत् साध्वेव यत्त्वाशङ्क्यते त्वया 'आद्यन्तवद् मध्येऽपि ईश्वरप्राधान्यादीश्वरवशादेव प्रवृत्तौ फलसङ्करप्रसङ्गः, तत्प्रसक्तौ क्रियाविलोपः, ततश्च सर्वनिर्मोक्षः सर्वानिर्मोक्षो वा [ ] इति।

भाव्यते इति चेत्, उच्यते—**यदा तदेदं[1] व्यामूढ्यैवे**त्यादिर्भावनाग्रन्थः यावदु**पभोगविभाजनानुग्रहक्रियया[2]ऽतिगरीयस्या** किमिति वर्तते? तस्मिन् हि काले प्राणिनामन्धलकवत् प्रवृत्तेरीश्वरस्यैव 'तेषां शरीराद्युत्पादयामि, धर्माधर्ममर्यादां प्रणयामि, तत्र प्रवर्तयामि, तत्फलैरनुबध्नामि, तान् प्राणिनः फलानुरूपमिष्टमनिष्टं चोपभोगं विभज्यानुगृह्णामि' इत्येवमादिका यानुग्रहक्रि[2]या तयानुग्रहक्रियया क्लिश्यमानस्यानेकपुरुषस्त्रीनपुंसकजनसाधारणस्येव भृतकस्या[3]तिक्लेशः। **इति** हेत्वर्थे, तस्मादतिक्लेशत्वा**दत्यन्तपरवशत्वमेवैश्वर्यं** शीतलिकापर्यायशब्दाभिधेयै[4]र्लूतावदु**च्यते** इति। २४५-२

किञ्चान्यत्, **अनुग्रहोऽपि विपर्ययेणोच्यते** अननुग्रह एव सन् 'अनुग्रहः' इति। किं कारणम्? **दुःखहेतुदुःखात्मकत्वाभ्याम्**, दुःखहेतुत्वादिष्टोपभोगस्य हिंसाद्यात्मनोऽर्जन-रक्षण-क्षय-सङ्गदोषे दुःखात्मकत्वाच्च अनिष्टोपभोगस्य, दुःखात्मकत्वाच्चाननुग्रह एवासौ। दृष्टान्तः—**विषकृतभोजनक्लेशनवत्**, यथा कश्चित् क्रूरमूर्खनृपतिः स्ववशान् भृ[5]त्यान् विषमिश्रमाहारं भोजयन् 'अनुगृह्णामि वः' इति ब्रूयात् तथा त्वदभिमतेश्वरोऽपीति। यच्चोक्तं 'दुः[6]खमपि तद्दणमोक्षणवदनुग्रह एव' इति, एतदप्ययुक्तम्, संसारमोचकव्याधच[7]ण्डालादिमारितसत्त्वानुग्रहप्रसङ्गात् सत्त्वनिकायकलिकलुषकृतारम्भोपनिपातनेन अज्ञाबोधे[8] सत्त्वानुग्रहवदज्ञानप्रसङ्गाच्च। **तत्सायोज्यगमनेऽप्येवम्**, ईश्वरेण किल सायोज्यं मोक्षः, स्वात्मना सायोज्यं गमयन्नप्यसौ प्राणिगणमतिक्लेशभाजनमेव करोति सृ[9]ष्टसंसारक्लिष्टेश्वरत्वस्योक्तलक्षणस्या[10]मोक्षशब्दाभिधेयत्वादलमैश्वर्येण मोक्षेण च तादृशा सदा सर्वपुरुषव्यापारोद्वहनायासात्मना। तस्माद् वरमात्माधीनयथेष्टचेष्टं दौर्गत्यमपीति। २४६-१

एवं च तद् यत्त्वाशङ्क्यते त्वया आद्यन्तवदित्यादिना ग्रन्थेन 'विनेश्वरेण क्लिैते दोषाः' इतीष्टास्ते सहापीश्वरेण तथैवैव भवन्तीति तद्दर्शयन्नाह—**सा[11]ध्वेवे**त्यादि गतार्थं हेतुहेतुमद्भावप्रतिपादनक्रमेण यावत् **तत्प्रसक्तौ क्रि[12]याविलोपः**। कुतः? ईश्वरप्राधान्यादुक्तानन्तरदोषाच्चेति धर्माधर्मक्रियाः प्राणिनां न स्युः फलाभावादीश्वरवशादेव आद्यन्तमध्येषु फलसङ्करात्। **ततश्च सर्व**प्राणिनां **निर्मोक्षः** निःशेषमोक्षस्तद्वशादेव **सर्वानिर्मोक्षो वा** [13]प्रोक्त इति।

---

१ तदेवं व्यामु° य०। तवेदं व्यामू° भा०॥ २ °क्रिया यानुग्रह° भा०। °क्रिया याऽनुग्रह° य०॥ ३ °स्यापिक्लेशः प्र०॥ ४ °यलुता° प्र०। "लूता तु रोगे पिपीलिकोर्णनाभयोः।" इति हेमचन्द्रसूरयः॥ ५ भृत्याश्च प्र०॥ ६ दृश्यतां पृ० ३४१ पं० ६॥ ७ चाण्डाला° य०॥ ८ °तमेनाशाबाधे य०॥ ९ कृष्टसं प्र०। दृश्यतां पृ० ३४२ पं० ११। (क्लिष्टसं°?)॥ १० °स्य मोक्ष° इत्यपि पाठोऽत्र स्यात्॥ ११ साधेवे° य०॥ १२ दृश्यतां पृ० ३३८ पं० १॥ १३ अत्र प्रसक्त इत्यपि पाठः स्यात्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत्तु सर्वशास्त्रक्रियाविलोपपरिहारार्थं कर्माद्युपसर्जनतया ईश्वरप्राधान्यकारण्ये प्रोक्ते 'आदौ स एव स्वशक्तित एव साक्षाद् व्याप्रियते शरीराद्युत्पादने धर्माधर्ममर्यादां चोपदिशति, तदनु ध्यानात् पुण्यमुत्पाद्य धर्माधर्ममर्यादायाः परिपालकान् ब्रह्मादीनाधिकारिकान् विनियुङ्क्ते, अन्ते च धर्माधर्मौ संहृत्य शरीरादिवत् कुशलाकुशलाशयकलङ्कशुद्धं स्वापयति'। इदमन्यथैवोद्ग्राह्यते ईश्वरकर्मणोः प्रधानोपसर्जनभावाभ्युपगमाद् द्वैतम्, भाव्यते त्वन्यथा 'स एव स्वशक्तित एव' **इत्यवधारणादद्वैतार्थभावनात् साक्षादेवाप्रयोजनेन कस्यचित्। एवंनियमनायेयमपि भावना** – तदनुध्यानात् पुण्यमुत्पाद्य **इति। प्रत्युपसंह्रियते तु द्वैताद्वैते द्वे अपि त्यक्त्वा। अद्वैतस्य त्यागस्तावद् धर्माधर्ममर्यादास्थापनवचनेन। मर्यादा नाम अनतिक्रमस्थानम्, सुखदुःखप्रवृत्तिसीमा। ततश्च सर्गादौ स्थानाद्यात्मके सुखदुःखेऽपि न स्याताम्, अनियतविषयत्वात्, प्रलयवत्। अन्ते च स्याताम्, अनियत-**

यत्तु सर्वशास्त्रेत्यादि। एतद्दोषपरिहारार्थं **कर्माद्युपसर्जनतया ईश्वरप्राधान्यकारण्ये प्रोक्ते**[1] कथम्? इति तद् भावयत्युत्तरेण ग्रन्थेन – **आदौ स एव स्वशक्तित** एवेत्यादिना यावच्छ**रीरादिवत् कुशलाकुशलाशयकलङ्कशुद्धं स्वापयती**[2]ति गतार्थः पूर्वपक्षः। **धर्माधर्ममर्यादायाः परिपालकान् ब्रह्मादीनाधिकारिकान् विनियुङ्क्ते**[3] इति विशेषः। अत्रोत्तरमाहाचार्यः – **इदमन्यथैवोद्ग्राह्यते** इत्यादि। अन्यथा तावत् प्रतिज्ञायते ईश्वरकर्मणोः प्रधानोपसर्जनभावाभ्युपगमाद् **द्वैतम्, भाव्यते तु** साध्यहेतुव्याख्यानं क्रियते **अन्यथा**। कथमिति चेत्, **स एव स्वशक्तित एवा**न्यनिरपेक्ष **इत्यवधारणादद्वैतार्थभावनात्**, अदृष्टादीनां तच्छक्तीनां च स्वतो व्यतिरिक्तानां निरासेन **साक्षा**[4]**देवाप्रयोजनेन कस्यचित्** कै[5]ञ्चिदप्यन्यमप्रयोजयन् साक्षात् स्वशक्तित एव इत्यवधारयता चाद्वैतमेव भाव्यते भवता। पुनरप्याह – **एवंनियमनाये**ति, अद्वैतनियमनाये**यमपि भावना**। कतमा सा भावना इति चेत्, **तदनु ध्यानात् पुण्यमुत्पाद्य** इत्येषाप्यद्वैतभावनैवेति। एवं तावत् प्रतिज्ञातं द्वैतम्, अद्वैतं भावितमित्युक्तम्।

२४६-२ **प्रत्युपसंह्रियते तु द्वैताद्वैते द्वे अपि त्यक्त्वे**ति प्रतिज्ञातभाविते द्वैताद्वैते अपि त्यक्त्वा। तत्रा**द्वैतस्य त्यागस्तावद् धर्माधर्ममर्यादास्थापनवचनेन** कृत इति वाक्यशेषः। का मर्यादा? उच्यते – **मर्यादा नाम अनतिक्रमस्थान**मिति मर्यादालक्षणमाह। विषयतस्तु **सुखदुःखप्रवृत्तिसीमा**, इयति विषये सुखमियति दुःखमिति धर्माधर्मयोः सीमनि स्वके स्वके व्यवस्थापनम्, धर्मस्य सुखप्रवृत्तिच्छेदेन अधर्मस्य दुःखप्रवृत्तिच्छेदेन 'अयमस्मादन्यः, अयमितरस्मादन्यः' इति सीमाविभागः। ततः किमिति चेत्, **ततश्च सर्गादौ स्थानादी**त्यादीति, स्थानविग्रहेन्द्रियविषयाः स्थानादयः, तदात्मके **सुखदुःखेऽपि न स्याताम्**। कस्मात्? **अनियतविषयत्वात्**, अनियतौ हि विषयौ तदा सुखदुःखयोः अविद्यमानस्थानादित्वादविद्यमानधर्माधर्मत्वाच्च। दृष्टान्तः – **प्रलयवत्**, यथा प्रलये धर्मा[6]धर्माभावादेवानियतविषये सुखदुःखे, ततश्चासती, तद्वत् सर्गादावपि स्यातामिति। किञ्चान्यत्, **अन्ते च स्याताम्** 'सुखदुःखे' इति वर्तते। कुतः?

---

१ दृश्यतां पं० ८॥ २ स्थाप° प्र०॥ ३ इति शेषः य०॥ ४ °दिवा° प्र०॥ ५ किंचिद° प्र०॥ ६ धर्माभावा° प्र०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयत्वाद् नियतविषयत्वाद्वा, मध्यवत्। मध्ये वा न स्याताम्, अन्तवत्।

अथोच्येत–अत एव न सुखादिप्रवर्तनात्मिका धर्माधर्ममर्यादा, किं तर्हि? धर्मोऽयमधर्मोऽयमिति। एतदपि तुल्यं पूर्वेण, असत्त्वात्। धारणाद्धानाद्वा धर्म इत्यर्थस्याभावे कथमसौ धर्मः, तद्विपर्ययो वा कथमधर्मः?

अथ तु तस्य रुचेरेव सुखं दुःखं वा ततो धर्माधर्ममर्यादावचनमनर्थकम्, सदैव ईश्वरशक्तिमात्रवशादेव यथा तथा यस्य कस्यचित् सिद्धेः, आद्यन्तवत्।

अनियतविषयत्वात्, विषयानियमोऽपि च रूपादिपञ्चकत्वाद्यभावादुपसंहरणकाले, **मध्यकालवत्।** अथवा **नियतविषयवत्त्वात्**[1], व्यवस्थापितधर्माधर्ममर्यादत्वात् सुखदुःखे तदा नियतविषये, तस्मात् तदापि २४७-१ स्यातां मध्यमकालवत् सृष्ट्युत्तरकालवदित्यर्थः। तद्विपर्ययेण वा साधनम्—**मध्ये वा न स्यातां** सुखदुःखे नियतविषयत्वादिति वर्तते, **अन्तव**दिति।

अथोच्येतेत्यादि यावद्धर्मोऽय[मधर्मोऽय]मिति। स्यान्मतम्—**अत एवे**श्वरस्यैव कारणत्वाद् **न सुखादिप्रवर्तनात्मिका धर्माधर्ममर्यादा** तत्समर्थनासमर्थेत्यर्थः, ईश्वरस्यैव सुखदुःखयोः प्रवर्तकत्वात्। यदि सा न प्रवर्तयति सुखदुःखे धर्माधर्ममर्यादा किमर्थमसौ तां व्यवस्थापयतीति चेत्, उच्यते, स्वरूपसंज्ञाव्यवस्थापनमसौ तयोर्लोकव्यवहारार्थं करोतीत्यत आह—**किं तर्हि? अयं धर्मोऽयमधर्म** इत्येतावदुपदेशेनेति। अत्राचार्य उत्तरमाह—**एतदपि तुल्यं पूर्वेण, असत्त्वात्**, [2]सर्गादावन्तवन्न स्याताम-नियतविषयत्वात्, अन्ते च स्यातां नियतविषयत्वाद्वा मध्यवत्, मध्ये वा न स्यातामन्तवदितीदमेव दोषजालं प्राप्तम्। किं कारणम्? **धारणाद्धानाद्वा धर्म** इति निरुक्तेर्यदि मर्यादां धारयति प्राणिनां सुखे चैतान् धत्ते ततो धर्म इत्येतस्या**र्थस्याभावे कथमसौ धर्म** उच्यते? **तद्विपर्ययो वा कथमधर्म** इति तद्विपरीतार्थाभावे? तस्मात् सुखस्थानादिधारणाद्धर्मः, सुखकारणं ह्यव्यभिचारि तदिष्यते, यस्याभावे यस्याभावो यस्य च भावे यस्य ध्रुवो भावस्तत् कारणमितरत् कार्यमिति कारणस्य धर्मस्य कार्यस्य च सुखस्याव्यभिचारात्। एवमधर्मेऽपि व्याख्या विपरीतार्था कार्या। तस्मादयुक्तम्—संज्ञाकरणमात्रेण मर्यादेति।

अथ त्वित्यादि। स्यान्मतम्—[3]**तस्ये**श्वरस्य **रुचेरेवे**च्छातः **सुखं दुःखं वा** न धारणधान- २४७-२ प्रवृत्त्यात्मकत्वा[4]द्धर्मस्यान्यस्य वा कस्यचिदिति। अत्रोच्यते-**धर्माधर्ममर्यादावचनमनर्थकम्**, यदुक्तं [5]**प्रतिबुद्धानां** प्राणिनां धर्माधर्ममर्यादामुपदिश्योत्तरकालं स्वमर्यादा[6]नुष्ठाना[7]नुरूप्येण इत्यादि तत् सर्वमनर्थकं संवृत्तम्। तत्साधनार्थं हेतुमाह सदृष्टान्तम्—**सदैवे**त्यादि यावद् **यस्य कस्यचित् सिद्धेरा-द्यन्तव**दिति। सर्गस्यादौ मध्येऽवसाने च **सदैव** सर्वकाल**मीश्वरशक्तिमात्रवशादेवा**न्यस्य कारणस्याभावेऽपि **यथा तथा** येन वा तेन वा प्रकारेण सुखस्य दुःखस्य चेष्टानिष्टशरीरादेरनियमेन **यस्य कस्यचित्** मारक[8]स्याहिंसकस्य वा **सिद्धे**र्धर्माधर्माकारणत्वम्। तदकारणत्वा**दाद्यन्तवत्** प्रथमावसानकालयोरिव तन्मर्यादावचनमनर्थकमिति। एवं तावदद्वैतत्यागः।

---

१ °वत्वात् य०। अत्र '**नियतविषयत्वात्**' इत्यपि पाठः स्यात्, दृश्यतां पं० १६॥ २ दृश्यतां पृ० ३४४ पं० १०॥ ३ **तस्यैव** (वे?) **श्वरस्य** य०॥ ४ °**द्धर्मा**° य०॥ ५ °**स्यातस्य वाक्यस्यवदिति** प्र०॥ ६ दृश्यतां पृ० ३४१ पं० ४॥ ७ °**नानुप्येण** भा०। **नानुष्येण** य०। अत्र °**नानुरूपेण** इत्यपि पाठः स्यात्। दृश्यतां पृ० ३४१ पं० ५॥ ८ °**स्य हिंस**° य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा द्वैतमपि त्यक्तं साक्षाद्व्यापारवचनात्। साक्षाद्व्यापारो ह्यैश्वर्यम्, तस्मात् तदव्याहतवृत्तेः किं धर्मादिना, किमाधिकारिकैः? अथ तैर्विना शक्तिर्व्याहन्यते तस्य तर्हि व्याहतशक्तित्वात्त्वेवमनीश्वरता इतरवत्।

ननु प्रधानोपसर्जनद्वैतप्रतिज्ञानात् तत्संवादेन भावनार्थं सर्गादौ साक्षाद्व्यापार उच्यते उपसर्जनेन विनापि प्रधानस्य प्रवृत्तिसद्भावात् चित्राचार्यस्येव शिष्येण विनापि तथाऽदृष्टाद्यभावेऽपीश्वरस्य। न, आदिकरस्य कर्तृत्वात्। अव्यज्यमानप्रकारव्यक्तिरादिः, आदानात्, आदित्योदयादित्ववत्। प्रयोजनपरमार्थत्वाद् भवितृत्वस्य।

न केवलमद्वैतत्याग एव, किं तर्हि? **तथा द्वैतमपि त्यक्तम्।** कुतः? **साक्षाद्व्यापारवचनादि**त्यादि यावत् **किमाधिकारिकै**रिति। **साक्षाद्व्यापारो ह्यैश्वर्यम्,** तद् व्याचष्टे—**तस्मात् तदव्याहतवृत्तेः** तस्य सर्वैः प्रकारैः सर्वकालं सर्वदेशे वाऽव्याहता वृत्तिरस्य, अतस्तदव्याहतवृत्तित्वात् **किं धर्मादिना?** **आदि**ग्रहणादधर्मेण किम्? स्थानविग्रहेन्द्रियविषयैर्वा प्राणिनां सुखदुःखाश्रयैः प्राणिभिर्वा किं क्रियते? न किञ्चिदित्यभिप्रायः। **किमाधिकारिकैः** ब्रह्ममनुविष्णवादिभिर्धर्माधर्ममर्यादापालनार्थं विनियुज्यमानैर्वेति। **अथ** मन्यसे **तैर्विना शक्तिर्व्याहन्यते तस्ये**श्वरस्य ततस्तर्ह्यस्य **व्याहतशक्तित्वात् त्वेवमनीश्वरता** कार्यान्तराशक्तेः श्रमाद्वा **इतरव**दिति पृथग्जनवदित्यर्थः।

२४८-१ **ननु प्रधानोपसर्जने**त्यादि यावत् **तथाऽदृष्टाद्यभावेऽपीश्वरस्ये**ति। आह—द्वैतमेवोद्ग्राहितं भावितं प्रत्युपसंहृतं च, नान्यथोद्ग्राहभावनोपसंहाराः। कथम्? प्रधानमुपसर्जनं च द्वैतं प्रतिज्ञातम्, **त**स्यैवार्थस्य **संवादेने**श्वरः प्रधानं न कर्मेत्येतद्**भावनार्थं स**र्गस्यादौ स्वशक्तितः स एव साक्षाद् व्याप्रियते इत्युच्यते। कस्मात्? **उपसर्जनेन विनापि प्रधानस्य प्रवृत्तिसद्भावात् चित्राचार्यस्येव शिष्येण विनापी**ति। यथा शिष्यमप्रधानं ग्राहयित्वा चित्रकर्माग्राहयित्वा वा प्रायेण तेन विना सह वा चित्रकर्मणि चित्रकराचार्यः प्रवर्तत एव स्वप्राधान्यात् सन्निध्यसन्निध्योरपि शिष्यस्य प्रवर्तकत्वादेवमीश्वरोऽप्यदृष्टादिसन्निध्यसन्निध्योः प्रवर्तते प्रधानत्वादिति भाव्यत्वादुद्ग्राहितद्वैतानुरूपभावनोपसंहारात्मकत्वाद्न कश्चिद्दोष इति।

एतच्च **न, आदिकरस्य कर्तृत्वात्।** आदिं करोत्यादिकरः, स एव च कर्ता, तस्यैव कर्तृत्वात्। कोऽसावादिरिति चेत्, उच्यते—**अव्यज्यमानप्रकारव्यक्तिरादिः,** सत एवार्थस्याव्यक्तस्य केनचित् प्रकारेण व्यक्तिरादिः। **कुतः? आदाना**दिति 'आदानमादिः' इत्यक्षरार्थनिरुक्तिमाह हेतुं दृष्टान्तं च **आदित्योदयादित्वव**दिति, यथा आदित्यस्योदयमध्याह्नास्तमयत्वप्रकारेण दिवसविभागानां विद्यमानानां व्यक्तिरेवं तत्र। **प्रयोजनपरमार्थत्वाद् भवितृत्वस्य,** यः प्रयोजयति परमार्थतः स कर्ता भविता

---

१ तद्व्यावृत्तेः प्र० ॥ २ °णाधर्मेण प्र० ॥ ३ प्रत्युसंहृतं प्र० ॥ ४ °न उप° प्र० ॥ ५ दृश्यतां पृ० ३४४ पं० २ ॥ ६ °र्म ग्राहयित्वा वा प्राणेयं तेन प्र० ॥ ७ °दिति भाव्यत्वादिति भाव्यत्वा° प्र० ॥ ८ (करोतीत्या° ?) ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिकरत्वं च यथा व्रीहौ सम्भाव्यते, अव्रीहेर्मृदादेर्व्रीहित्वेन आदिकरत्वात् । तथा प्राक् पृथिव्यादीनामप्यादिकरत्वं पश्चादपि तथा, तदादित्वाद् व्रीहेः तथाभिव्यक्तेः तत्प्रयुक्तत्वात् । कस्मात् पृथिव्येव न भूतो व्रीहिः ? को वा ब्रवीति पृथिवी न भूत उदकादिश्च व्रीहिरिति व्रीह्यादि वा पृथिव्यादि न भूतमिति, तत्प्रयुक्तत्वात् ? इतश्चेतश्च तदात्मकत्वात् तदव्यतिरिक्तत्वात् तत् तदेव ।

भूकृञोः सर्वधात्वर्थत्वात्, न प्रयोज्यः, इत्यस्मात् कारणाद् य आदिकरः स कर्ता, यश्च कर्ता स भवति, भूकृञोः सर्वधात्वर्थव्यापित्वात् । एतदुक्तं भवति—यतः प्रकारान्तरेणाभिव्यञ्ज[1]यन् भावान्तरस्यादिकरत्वाद् २४८-२ भवति वस्तु तत एकैकस्य सर्वत्वम्, न सर्वस्यैकत्वं परस्परापेक्षाभिव्यञ्जनेनादिकरत्वादिति ।

अस्मिंश्चार्थे व्यापकं दृष्टान्तमाह स्फुटीकरणार्थम् — **आदिकरत्वं च यथा व्रीहौ सम्भाव्यत** इति । तद्व्याख्या — **अव्रीहेर्मृदादेर्व्रीहित्वेनादिकरत्वा**दिति, मृत्सलिलवाताकाशानामव्रीहीणां व्रीहिप्रकारेणाभिव्यक्तिं कुर्वन् व्रीहिरादिकरः, एतमर्थं हेतुत्वेन व्यापारयति सिद्धं कृत्वा पञ्चम्या **व्रीहित्वे[2]नादिकरत्वा**दिति । **तथा प्रा**गित्यादि, एवं च कृत्वा व्रीहित्वात् **प्रागपि पृथिव्य**ब्वाय्वाकाशाना**मप्यादिकरत्वं पश्चादपि** तेन प्रकारेण **तथा** व्रीहिवदेव, **तदादित्वाद् व्रीहेः**, ते आदिः पृथिव्यादयो व्रीहेः प्राक् पश्चाच्चेति तेषामादिकरत्वम् तेन प्रकारेणा**भिव्यक्तेः** । किञ्चान्यत्, **तत्प्रयुक्तत्वाद् व्रीहेः**, ते ह्यस्य प्रयोक्तारः, यो यस्य प्रयोक्ता स तस्य कर्ता यथा आदित्योदयादित्व[3]मित्यत आह — तत्प्रयुक्तो व्रीहिः ।

कस्मात् [4]पृथिव्येव न भूतो व्रीहिः, पृथिव्येव उदकमेव वायुरेव वा आकाश[5]मेव वा, तत्प्रयुक्तत्वात् आदिकरत्वादादित्योदयादित्ववत् ? इति । अत्रोच्यते — **को वा ब्रवीति — पृथिवी न भूत उदकादिश्च व्रीहिरिति** तत्प्रयुक्तत्वात् **व्रीह्यादि वा पृथिव्यादि न भूतमिति तत्प्रयुक्तत्वात् ?** व्रीहिरपि पृथिव्यब्वाय्वाकाशादि भवति, पृथिव्युदकवाय्वाकाशाद्यपि च व्रीहिमाषाम्रजम्ब्वादि भवति, तत्कृताहारोऽपि पृथिव्यादि व्रीह्यादि; पृथिव्याद्यपि तत्कृताहारः, तत्कृताहारशरीरेन्द्रियबुद्ध्यादि तत्कृतमनुष्यतिर्यङ्नारकदेवादि च, तत्कृताहारव्रीहिपृथिव्यादि च तत्कृताहारशरीरेन्द्रियबुद्धिमनुष्यादि सर्वं परस्परतः सर्वात्मकं भवति, २४९-१ [6]तत्प्रयुक्तत्वात् तथाभिव्यक्तेस्तदादिकर[7]त्वादित्यादिहेतुभिः । कियद्वोदाह्रियते ? न्यायस्यास्य व्यापित्वात् सर्वं तदुदाहरणमेव । दिङ्मात्रप्रदर्शनार्थं ↑ [8]तद्व्यापित्वप्रदर्शनार्थं ↑ चाह — **इतश्चेतश्चे**ति, यदि व्रीहितो व्रीहेरादिकरत्वम् अथ पृथिव्यादितः पृथिव्यादेरादिकरत्वमिति तान्येवोदाहरणानि । एवं तत्कृताहारशरीरेन्द्रियादिष्वपि द्रष्टव्यम्, सर्वस्यैकैकस्य सर्वात्मकत्वात् । तत आह — **तदात्मकत्वात् तदव्यतिरिक्तत्वात् तत् तदेवे**ति तस्य तस्य प्रकारस्य हेतुत्वं दृष्टान्तत्वं चेति ।

---

१ °अयन् भवान्त° भा० । °अयन्नवान्त° य० । २ °नादिति तथा प्र० ॥ ३ °मित्यक्तः आह प्र० ॥ ४ (पृथिव्याद्येव ?) ॥ ५ °मेवा तत्प्र° य० । °मेव तत्प्र° भा० ॥ ६ तत्तत्प्र° भा० ॥ ७ °रत्वादिहेतुभिः प्र० ॥ ८ ↑ ↑ एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

पुरुषकर्मस्वप्येवमेव । पुरुषः कर्मयोग्यानां पुद्गलानां कर्मत्वेन आदिकरः, तथाविधोपयोगगतेः प्रयोजनपरमार्थत्वाद् भवितृत्वस्य । तदपि च कर्म आदिकरम्, बाह्यमपि घटादि आदिकरम् ।

एवं दृष्टान्तभूतं प्रस्तुतन्यायप्रसाधितं सर्वसर्वात्मकवादं प्रथयित्वा दार्ष्टान्तिकं पुरुषकर्मवादमीश्वरकारणनिराकरणायाह — **पुरुषकर्मस्वप्येवमेवे**त्यादि । **पुरुषः** कर्ता **कर्मयोग्यानां पुद्गलानां कर्मत्वेन आदिकरः** । [1]के कर्मयोग्याः पुद्गलाः ? उच्यते — परमाणुवर्गणा अग्रहणवर्गणा, अग्रहणवर्गणा द्विप्रदेशवर्गणा, एवं दशप्रदेशादिसङ्ख्येयप्रदेशवर्गणाः । समानजातीयानामेकशो बुद्ध्यावस्थापितानां पिण्डो वर्गणा, [2]कुचिकर्णकाभीरसवर्णगोपिण्डवत् । अनन्तप्रदेशवर्गणा अपि काश्चिद् ग्रहणयोग्याः काश्चिदग्रहणयोग्याः । ग्रहणयोग्यायोग्यत्वं चातिस्थूलसूक्ष्मायोग्यत्वात् [3]स्वेदेनेव परमाणुशर्कराणां, योग्यत्वाच्च मध्यमपरिमाणानाम् । तत्र या ग्रहणयोग्याः पुद्गलतो वर्गणाः [4]तांश्च मानेन सिद्धानामनन्ततमभागः अभव्यसिद्धीनामनन्तगुणाः । एष तावदौदारिकयोग्यस्य जघन्यस्य विधिः । तदुपर्येकपरमाणौ प्रक्षिप्ते द्वितीयाप्यौदारिकयोग्या एवमेकैक-
२४९-२ वृद्ध्यान्यनन्तानन्तानि स्थानानि [5]औदारिककारणत्वेन ग्रहणयोग्यानि । जघन्यादुत्कर्षस्थानमसङ्ख्येयगुणम्, यस्मात् परम्परोपनिधया प्रथमस्थानादारभ्यानन्त[6]र्स्थानेषु तेषु तेषु द्विगुणता भवति तस्मादसङ्ख्येयगुणं सङ्ख्येयगुणं वा, अनन्तरोपनिधया तु रूपाधिकमेव । तस्मिन्नुत्कृष्टौदारिकयोग्यद्रव्ये रूपे प्रक्षिप्ते जघन्यं वैक्रियशरीरस्याग्रहणयोग्यम् । एवं रूपाधिकवृद्ध्या तान्यप्यनन्तानन्तानि स्थानानि पूर्ववत्, जघन्यादुत्कृष्टमसङ्ख्येयगुणम्, को गुणकारः ? श्रेण्यसङ्ख्यतमभागः । तेषामग्रहणानामुपरि वैक्रियस्य जघन्यं ग्रहणयोग्यम् । तान्यपि

---

१ **ाक कर्मयोग्याः पुद्गलाः उच्यते** भा० । **कर्मयोग्याः पुद्गला उच्यन्ते** य० ॥ २ "कुइयण्णगोविसेसोवलक्खणोवम्मओ विणेयाणं । दव्वाइवग्गणाहिं पोग्गलकायं पयंसेंति ॥ ६३२ ॥ आह – किमर्थं पुनरेता वर्गणाः प्ररूप्यन्ते ? उच्यते – कुचिकर्णस्य गोमण्डलाधिपतेर्गावस्तासां परस्परं विशेषस्य यदुपलक्षणं परिज्ञानं तदौपम्यात् तद्दृष्टान्ताद् विनेयानामसंमोहार्थं द्रव्यादिवर्गणाभिः, आदिशब्दात् क्षेत्रवर्गणाभिः कालवर्गणाभिः भाववर्गणाभिश्च समस्तमपि पुद्गलास्तिकायं विभज्य तीर्थकरगणधरादयः प्रदर्शयन्ति इति गाथाक्षरार्थः । अथ भावार्थ उच्यते – इह **भरत**क्षेत्रे **मगध**जनपदे प्रभूतगोमण्डलस्वामी **कुचिकर्णो** नाम गृहपतिरासीत् । स च तासां गवामतिबहुत्वात् सहस्रादिसङ्ख्यापरिमितानां पृथक् पृथगनुपालनार्थं प्रभूतान् गोपालांश्चक्रे । ते च तासु परस्परं मीलितासु गोषु आत्मीया आत्मीयाः सम्यगजानन्तः सन्तो नित्यं कलहमकार्षुः । तांश्च तथान्योन्यं विवदमानानुपलभ्यासौ तेषामव्यामोहार्थं कलहव्यवच्छित्तये शुक्लकृष्णरक्तकर्बुरादिभेदभिन्नानां गवां प्रतिगोपालं सजातीयगोसमुदायरूपा भिन्ना वर्गणा व्यवस्थापितवानिति एष दृष्टान्तः । अथोपनय उच्यते — इह गोमण्डलप्रभुकल्पस्तीर्थकरो गोपतुल्येभ्यः स्वशिष्येभ्यो गोसमूहसमानं पुद्गलास्तिकायं तदसंमोहार्थं परमाण्वादिवर्गणादिविभागेन निरूपितवानिति ।" इति श्रीमलधारिहेमचन्द्रसूरिविरचितायां **विशेषावश्यकभाष्यटीकायाम्**, पृ० ३२८ । "ग्राम**ः** सुघोषो नामाभून्मध्ये **मगध**नीवृतः । कुचिकर्णाभिधानश्च ग्रामणीस्तत्र विश्रुतः ॥ १ ॥ गवां शतसहस्राणि तस्य संजज्ञिरे क्रमात् । बिन्दुना बिन्दुना हन्त भ्रियते हि सरोवरम् ॥ २ ॥ गोपालानां पालनाय सोऽर्पयामास गास्ततः । भव्या मम न ते भव्या इत्ययुध्यन्त ते बहिः ॥ ३ ॥ कुचिकर्णो विभज्यैता आर्पयत् कस्यचित् सिताः । कृष्णाः कस्यापि कस्यापि रक्ताः पीताश्च कस्यचित् ॥ ४ ॥ पृथक् पृथगरण्येषु गोकुलानि न्यवेशयत् । भुञ्जानो दधिपयसी सोऽवसत् तेषु च क्रमात् ॥ ५ ॥ अन्वहं वर्धयामास गोष्ठे गोष्ठे स गोधनम् । अतृप्तो दधिपयसोः सुराया इव दुर्मदः ॥ ६ ॥ तस्याभवद्यथाजीर्णमधऊर्ध्वंसरद्रसम् । प्रदीपनान्तःपतितस्येव दाहो महानभूत् ॥ ७ ॥ हा धेनवो हा नवतर्णकाश्च हा शाक्कराः वः क्व कदा च लप्स्ये । स गोधनैरेवमतृप्त एव मृत्वाथ तिर्यग्गतिमाससाद ॥ ८ ॥" इति कलिकालसर्वज्ञहेमचन्द्रसूरिविरचितायां स्वोपज्ञयोगशास्त्रवृत्तौ २।११२ ॥ **३ स्वेदोरेव** प्र० ॥ **४ तश्च** प्र० ॥ ५ **औदारिककारत्वेन** प्र० । अत्र **औदारिकशरीरत्वेन** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ६ °**स्थानेषु तेषु द्वि**° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानानि पूर्ववदनन्तानन्तानि । पुनराहारकाग्रहणानि, तथा तदुपरि तद्ग्रहणयोग्यानि तथैव । औदारिकशरीरयोग्येभ्यो वैक्रियशरीरयोग्यान्यसङ्ख्येयगुणानि, ततोऽसङ्ख्येयगुणान्याहारकयोग्यानि, तावदसङ्ख्येयगुणानि ग्रहणाग्रहणानि पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् । तदुपर्याहारकोत्कृष्टे रूपे प्रक्षिप्ते जघन्यमग्रहणं तैजसस्य, जघन्यादुत्कृष्टमनन्तगुणम्, को गुणकारः ? अभव्येभ्योऽनन्तगुणः सिद्धानामनन्ततमभागः । तदुपरि रूपाधिके तैजसशरीरयोग्यं [जघन्यम्] । जघन्यादुत्कृष्टमनन्तगुणम्, को गुणकारः ? सिद्धानामनन्ततमभागोऽभव्येभ्योऽनन्तगुणः । अनेन विधिनोत्तरेषां भाषाप्राणापानमनःकर्मयोग्यानामग्रहणान्तरितानां ग्राह्याणामुत्तरोत्तरानन्तगुणमानेयाः । अन्तरं तु ग्राह्याणां जघन्यादुत्कृष्टो विशेषाधिकः सर्वत्र, को विशेषः ? तस्यैवानन्तभागः । अग्राह्याणां तु जघन्यादुत्कृष्टोऽनन्तगुणः, को गुणकारः ? सिद्धानामनन्ततमभागः अभव्येभ्योऽनन्तगुणः । एवं- २५०-१
विधैः पुद्गलैः सर्वत्र लोकेऽ[1]वगाढगाढनिचिते कर्मतया परिणमय्य तद्योग्यान् कायवाङ्मनःकर्मलक्षणानां त्रयाणां योगानां काययोगेन गृह्णाति तेनैव का[2]र्मणशरीरतया परिणमयति पुरुषः स्ववीर्येण योगाख्येन, वाङ्मनःप्राणापानतया परिणमय्य काययोगेनैव वा[3]ङ्मनःप्राणापानतयालम्ब्य विसृजति । यथोक्तम्—

"[4]जोगेहि तदणुरूवं परिणमयति गेण्हितूण पंचतणू ।
पाउग्गे वालंबति भासाणमणत्तणे खंधे[5]" ॥ [कर्मप्र० गा० १७]

तथा म[6]नसा वाचा कायेन वापि युक्तस्य वीर्यपरिणामः ।
जीवस्यात्मनि यः खलु स योगसंज्ञो जिनैर्दृष्टः ॥[7] [ ]
तेजोयोगाद् यद्वद् रक्तत्वादिर्घटस्य परिणामः ।
जीवकरणप्रयोगे वीर्यमपि तथात्मपरिणामः ॥ [ ] इति ।

किं कारणम् ? **तथाविधोपयोगगतेः**, बन्धनयोग्यपरिणामापन्नपुद्गलद्रव्यग्रहणपरिणतकृतप्रयोगपरिणामापत्तेः पुरुषस्येत्यर्थः । यथोक्तम्—

ऊष्मगुणः स[8]न् दीपः स्नेहं वर्त्या यथा समादत्ते ।
आदाय शरीरतया परिणमयति चा[9]पि तं स्नेहम् ॥ [ ]

---

१ **वगाढनिचिते** डे० लीं० रं० हीं० । °**वगाढं (ढे ?) गाढनिचिते** वि० ॥ २ **कर्मणाश**° पा० डे० लीं० ॥ ३ **वाङ्मनसप्राणा**° प्र० ॥ ४ **जोगेहिं** य० ॥ ५ तुलना–"जोगणुरूवं जीवा परिणामेंतीह गेण्हिऊं दलियं । भासाणुप्पाणमणोचियं च अवलंबए दव्वं ॥ [पञ्चसं० ६ । १३] । स्वकीययोगानुरूपं कर्मदलमिह अस्मिंल्लोके निरन्तरं व्यवस्थितं स्वप्रदेशैः गृहीत्वा जीवाः परिणमयन्ति स्वप्रदेशैरेकीकुर्वन्ति, यथा मृत्परमाणवः पयांसि तद्गताः पूपकपरमाणवो घृताद्यात्मनि स्थापयन्तीत्यर्थः । भाषानपानमनस उचितं च द्रव्यजातं वर्गणारूपमवलम्बयन्ति योगानुरूपमेव, किमुक्तं भवति ? भाषायोग्यं द्रव्यमवलम्ब्य जीवः प्रदेशैस्ततो भाषां विसृजति, यथा मन्दशक्तिः करेण यष्टिमवलम्ब्य भ्रमति, नद्यां वा अलाब्वादि गृहीत्वा तरति, कूपाद्वा रज्जमवलम्ब्य समुत्तरति । एवमानपानमपि, तत्पुद्गलावष्टम्भतो जीवः प्रदेशैः स्वयोगानुरूपं विसृजति, मनोयोग्यानि द्रव्याण्यवलम्ब्य स्वप्रदेशैस्ततः स्वशक्त्यनुरूपं चिन्तयतीति गाथार्थः ।" इति **चन्द्रमहर्षिविरचितायां स्वोपज्ञपञ्चसङ्ग्रहवृत्तौ** ॥ ६ "आह च—'मणसा वयसा काएण वा वि जुत्तस्स वीरियपरिणामो । जीवस्स अप्पणि जो स जोगसन्नो जिणक्खाओ ॥ १ ॥ तेओजोगेण जहा रत्तत्ताई घडस्स परिणामो । जीवकरणप्पओए वीरियमवि तहप्पपरिणामो ॥ २ ॥' इति । मनसा करणेन युक्तस्य जीवस्य योगो वीर्यपर्यायो दुर्बलस्य यष्टिकाद्रव्यवदुपष्टम्भकरो मनोयोगः,…एवं वाग्योगोऽपि, एवं काययोगोऽपि ।" इति अभयदेवसूरिविरचितायां **स्थानाङ्गसूत्रटीकायाम्** ३ । १ । १२४ ॥ ७ कारिकेयं समुद्धृता **सिद्धसेनसूरिविरचितायां तत्त्वार्थसूत्रटीकायाम्**, अ० ७, पृ० ७० ॥ ८ **संदीपः** प्र० ॥ ९ **वापि** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा चात्मनि अकर्मणां कर्मत्वेन आदिकरत्वं तथा कर्मणामपि आत्मन आदिकरत्वं तथाभिव्यक्तेः तत्प्रयुक्तत्वात्। कस्मात् आत्मैव न कर्मभूतः? को वा ब्रवीति न कर्मभूतोऽसौ कर्माणि चात्मभूतानि नेति तथाविधोपयोगगतेस्तत्प्रयुक्तत्वात्.........।

अन्योन्यकारितादिकरत्वात् कर्मकर्मिणोः सर्वसर्वात्मकता अचेतनज्ञानावरण.........पालनपूरणपुरुषत्वात्।

तद्वद् रागादिगुणः स्व[1]योगवर्त्याऽऽत्मदीप आदत्ते।
स्कन्धानादाय तथा परिणमयति तांश्च कर्मतया ॥ [ ]
[2]स्नेहाभ्यक्तस्याङ्गे लगदेव रजो मलीभवत्यपि वा।
रागद्वेषस्नेहाभ्यक्तस्य तथा भवति कर्म ॥ [ ]
रूक्षयति रुष्यतो ननु वक्त्रं स्निह्यति च रज्यतः पुंसः।
[3]औदारिकोऽपि ननु भाववशात् परिणमति देहोऽयम् ॥ [ ]

२५०-२ तस्मादात्मा कर्ता करणयुक्तः कर्मत्वेन आदिकरः, पूर्ववत् **प्रयोजनपरमार्थत्वाद् भवितृत्वस्य।** किमात्मैवादिकरः? नेत्युच्यते, **तदपि च कर्म आदिकरम्,** तदपि च ज्ञानावरणादिकर्म ग्रहणयोग्यमौदारिकादिशरीरभेदादिविपाकं पुद्गलः[5], किं भवति? नरनरकदेवतिर्यग्गतिसङ्गृहभवनवास्या[6]द्यनेकप्रभेदसर्वात्मशरीराणां तत्सम्बद्धात्मनां चादिकरं भवति। यथोक्तम्—

[7]जीवपरिणामहेतू कम्मतया पोग्गला परिणमंति।
पोग्गलकम्मणिमित्तं जीवो वि तहेव परिणमंति[8] ॥ [ ] इति।

न केवलमाध्यात्मिकमेवादिकरम्, किं तर्हि? **बाह्यमपि घटादि[9] [आदि]करं** सर्वादिकरम्।

विपर्ययेणापि भावयितुकाम आह—**यथा चात्मनि अकर्मणा**मित्यादि पूर्ववत् सचोद्यपरिहारं गतार्थं यावत् **को वा ब्रवीति न कर्मभूतोऽसौ कर्माणि चा[10]त्मभूतानि नेति तथाविधोप[11]योगगतेस्तत्प्रयुक्तत्वा**दित्यादिभिर्हेतुभिः। तस्मात् सर्वसर्वात्मकत्वात् कोऽन्य ईश्वरः? का वान्या प्रकृतिः? इति।

इतश्च **अन्योन्यकारिता[12]दिकरत्वात् कर्मकर्मिणोः सर्वसर्वात्मकते**ति। कारणमाह—**अचेतनज्ञानावरणे**त्यादि, अचेतनानि ज्ञानदर्शनावरणवेद्यमोहायुर्नामगोत्रान्तरायाख्यानि सप्रभेदानि कर्माणि पुद्गलात्मकान्यत्युदीर्णान्यध्यात्मनोऽक्षरानन्ततमभागमुपयोगस्वाभाव्याद् नावृण्वन्ति, शेषं केषाञ्चिदावृण्वन्ति एकेन्द्रियनिगोदसूक्ष्मापर्याप्तकादीनाम्, कर्मणां क्षयोपशमवैचित्र्यात्।

---

१ "स्वयोगवर्त्या" इति सिद्धसेनसूरिभिस्तत्त्वार्थसूत्रटीकायामुद्धृतायामस्यां कारिकायां पाठः, अ० ५, पृ० ३४३ ॥ २ "स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य रेणुना श्लिष्यते यथा गात्रम्। रागद्वेषक्लिन्नस्य कर्मबन्धो भवत्येवम् ॥ ५५ ॥" इति प्रशमरतौ ॥ ३ "औदारिकोऽपि देहो भाववशात् परिणमत्येवम्।" इति मलयगिरिसूरिभिरुद्धृतायामस्यां कारिकायां पाठः प्रज्ञापनासूत्रवृत्तौ, पृ० ४५५ ॥ ४ दृश्यतां पृ० ३४६ पं० ७ ॥ ५ पुद्गल प्र० ॥ ६ °स्यादिनैक° प्र० ॥ ७ "जीवपरिणामहेउं कम्मत्ता पोग्गला परिणमंति।" इति मलयगिरिसूरिभिः प्रज्ञापनासूत्रवृत्तावुद्धृतायामस्यां कारिकायां पाठः, पृ० ४५५ ॥ ८ °मंतीति य० । °मन्तीति भा० ॥ ९ 'घटादिकं सर्वादिकरम्' इत्यपि पाठोऽत्र स्यात् ॥ १० (चात्म°?) ॥ ११ °पभोग° प्र० ॥ १२ °तादिकरतादिकरत्वात् य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथैवं नेष्यते ततो नैवात्मा बध्येत कर्मणा तत्फलभूतैश्च तन्वादिभिर्न युज्येत विकर्मत्वाद् मुक्तवत् । प्रकृतीश्वरादिसृष्टिवशादेव न बध्येत न युज्येत च तन्वादिभिः, अमूर्तत्वात्, आकाशवत् ।

सव्वजीवाणं पि य णं[1] अक्खरस्स अणंततमो भागो णिच्चुग्घाडितओ । २५१-१
तं पि जदि आवरिज्जेज्ज[2,3] तेण जीवो अजीवत्तं पावे ।
सुट्ठु वि मेहसमुदए होइ पभा चंदसूराणं ॥ [नन्दीसू० ४२]
तथा स्वल्पं रजो हि कलुषं च नभः करोति राहुर्गृणोति शशिनं बलवांश्च सोमः ।
पङ्को विनाशयति वारिगुणप्रकर्षं[4] दोषा मुहूर्तरभसा बलवान् स्वभावः ॥ [ ]

तस्मात् कर्मकर्मिणोरन्योन्यादिकरत्वम् । केवलिनस्तु विगतसर्वावरणविघ्नमोहत्वाद् यद्यप्युपयोगावरणाभावात् तथाविधोपयोगगतिरसिद्धा तथापि वेद्यायुर्नामगोत्रकर्मचतुष्कतत्प्रयुक्तत्वादिहेतुसद्भावादन्योन्यादिकरत्वं सिद्धम् । [5]सिद्धानां तु कर्मनिर्मुक्ताव्याबाधपारिणामिकपरमसुखक्षायिकसम्यक्त्वज्ञानदर्शनवीर्यलब्ध्यादीनां चा[6]दिकरत्वम् । नन्वात्मपुद्गलैक्यापत्तिवचनादेव वा भेदप्रतीतेः स्ववचनविरोध इति । एतन्न, कस्मात्, **पालनपूरणपुरुषत्वात्**, पॄ पालनपूरणयोः [पा० धा० १०८६], पालयति सुखदुःखादिविपाकांस्तांस्तान् पुद्गलानात्मभावेनेति पाल्यते तैस्तथाविधोप[7]योगगत्येति वा पुरुषः, पूरयति तांस्तैः पूर्यत इति वा पुरुषः । पुमांसं गिलति पुंसा वा गिल्यत इति पुं[8]द्गलः, पूरणाद् गलनाद् वा पुं[9]द्गल इति निरुक्तिभेदेऽप्यर्थैक्या[10]त् पुरुषपुद्गलशब्दयोरिन्द्रशक्रवदेकार्थत्वाददोषः ।

अथैवं नेष्यते यथा मयोक्तं कर्मकर्मिणोरन्योन्यादिकरत्वं यदि न स्यात् ईश्वरवशात्, स्वभावादेः प्रकृत्यादेर्वा कुतश्चित् संसारवैचित्र्यं स्यादितीष्यते **ततो नैवात्मा बध्येत कर्मणा** संसारबीजभूतेन शुभाशुभेन, ततश्च **तत्फलभूतैः** शरीरेन्द्रियस्थानविषयैः **शुभाशुभैर्न युज्येत विकर्मत्वाद् मुक्तवत् ।**

---

१ "णाणं तु अक्खरं जेण खरति ण कयाइ तं तु जीवातो । तस्स उ अणंतभागो न वरिज्जति सव्वजीवाणं ॥ ७२ ॥ येन कारणेन न कदाचिदपि तद् ज्ञानं जीवात् क्षरति भ्रंशमुपयाति तेन कारणेन ज्ञानमक्षरमुच्यते । कथमेतदवसीयते 'न कदाचिदपि ज्ञानं जीवात् क्षरति' इति ? अत आह—तस्य अक्षरस्य अनन्तभागोऽतिप्रबलेनापि ज्ञानावरणोदयेन संसारस्थानां सर्वजीवानां नाव्रियते । उक्तञ्च—'सव्वजीवाणं पि य अक्खरस्स अणंतो भागो णिच्चुग्घाडिओ' [नन्दीसू० ४२] इति । नित्योद्घाटो नाम नित्यापावृतः ॥ ७२ ॥ केन पुनराच्छाद्यते येन ज्ञानस्यानन्तभागो नित्यापावृतः ? इत्याह—एक्केक्को जियदेसो नाणावरणस्स हुंतऽणंतेहिं । अविभागेहाऽऽवरितो सव्वजियाणं जिणे मोत्तुं ॥ ७३ ॥ जिनान् केवलज्ञानिनो मुक्त्वा शेषाणां सर्वजीवानामेकैको जीवप्रदेशो ज्ञानावरणीयस्य कर्मणोऽनन्तैः 'अविभागैः' अविभागपरिच्छेदैः, येषां ततोऽप्यधो विभागः कर्तुं न शक्यते तेऽविभागपरिच्छेदाः, तैरावृतः ॥ ७३ ॥ यद्येवं कथमनन्तभागो ज्ञानस्य नित्यापावृतः ? इत्याह—जति पुण सो वि वरिज्जेज तेण जीवो अजीवयं गच्छे । सुट्ठु वि मेहसमुदए होति पभा चंदसूराणं ॥ ७४ ॥ यथा सुष्ठु अतिशयेनापि मेघसमुदये जाते तथास्वभावत्वात् चन्द्रसूर्याणां प्रभा भवति तथा प्रत्यक्षत उपलब्धेः, एवमेकैकस्य जीवप्रदेशस्य अनन्तैर्ज्ञानावरणाविभागपरिच्छेदैरावरणेऽपि तथास्वभावत्वाद् ज्ञानस्यानन्तभागो नित्योद्घाटित एव । यदि पुनः सोऽप्यावियेत तत एकान्ततो निश्चेतनत्वाज्जीवः 'अजीवतां गच्छेत्' अजीवो भूयात्, घटवत् ॥ ७४ ॥" इति मलयगिरिसूरिविरचितायां बृहत्कल्पभाष्यवृत्तौ ॥
२ **जवि आव**° भा० । **जवि याव**° य० ॥ ३ °**रिज्जिज्ज** य० ॥ ४ वि० विना **वारिगुणावकर्षं** प्र० । **वारिगुणाप्रकर्षं** वि० । (वारि, गुणप्रकर्षं ?) ॥ ५ **सिद्धावातिकर्म**° य० ॥ ६ **वादि**° प्र० ॥ ७ °**पभोग**° प्र० ॥ ८ **पुद्गलाः** प्र० ॥ ९ **पुद्गला** प्र० ॥ १० °**क्यात् पुद्गलशब्दयो**° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि त्वदृष्टाभावेऽप्यसावीश्वरस्ततस्ते मुक्तानामपि तन्वादीनि असौ कुर्यात्, ईश्वरत्वात्, सर्गादिवत्।

अत एव च सम्भूयकारित्वाचेतनत्वस्थित्वाप्रवृत्तीनामपक्षधर्मता।

एवं च कृत्वा तदपि सर्वमसम्बद्धं यत् कर्मकारणैकान्तिन आहुः। त इत्थमाहुः–यदि प्रवर्तयितृत्वात् पुरुषकारः कारणं स्यात् ततः प्रधानमध्यमा-

---

२५१-२ मुक्तो वा बध्येत, तत एव, तद्वत्। स्यान्मतं [2]मुक्तामुक्तविकल्पसम्भव एव परमार्थतः सृष्टिवशव्यवस्थानादिति। तदपि नोपपद्यते, **प्रकृतीश्वरादिसृष्टिवशादेव न बध्येत** तनुकरणादिभिः, **न युज्येत** भुवनेन **च, अमूर्तत्वादाकाशवत्।** आकाशं वा बध्येत युज्येत च तन्वादिभिः, तत एव, त्वदभिमतपुरुष इव। अनिष्टं चैवमादि भवत इति।

किञ्चान्यत्, **यदि त्वदृष्टाभावेऽपी**त्यादि। मया तावदित्थमदृष्टाख्यकर्मत्वापन्नसर्वपुरुषेश्वरत्वमुक्तं तस्य तस्य तन्वाद्यादिकरत्वात्। [3]तत्र चेदित्थमादिकरत्वमिच्छसि ततोऽपि त्वदनुवृत्त्याभ्युपगतेऽप्यदृष्टाख्यकर्माभावेऽपि मया दोष उच्यते–**असावीश्वरस्ततस्ते मुक्तानामपि** अभूततथाविधहे[4]तूनामकर्मणां **तनुकरणानि भुवनानि चासौ कुर्यात्, ईश्वरत्वात्, सर्गादिवत्।** तथा प्रलयकालेऽपि सर्वेषां कुर्यात्, तत [5]एव, तद्वत्। मध्ये वा न कुर्यात्, ईश्वरत्वात्, प्रलयकालवत्। अनिष्टं चैतत्। अस्माच्चानिष्टात् कर्मात्मैक्यात् सर्वसर्वात्मकत्वात् सर्वेश्वरता।

अत एव चेत्यादि। कर्मात्मैक्यसर्वेश्वरत्वाभ्याम्, अणव एव कर्म, [6]ते एव सुखादयः। तस्माददृष्टात् सृष्टिः प्रधानात् सृष्टिः पृथगणुभ्योऽदृष्टचोदितेभ्यो वा सृष्टिः इति वादान्तरपरिकल्पं त्यक्त्वा अस्मदुक्तकर्मात्मैक्यसर्वसर्वात्मकसर्वेश्वरत्वाभ्युपगमोऽवश्यम्भावी। तस्मात् त्वयोक्त**सम्भूयकारित्वाचेतनत्वस्थित्वा-**
२५२-१ **प्रवृत्तीनामपक्षधर्मता।** एकत्वात् कस्य द्वितीयस्य केन सह सम्भूयैकार्थकारिता? किं तदचेतनं चेतनात् पृथग्भूतम्? सततसम्प्रवृत्तपूरण-पालन-गलन-पुंगरणादिधर्मत्वाच्च का स्थित्वा प्रवृत्तिः? इत्यसिद्धार्थत्वाद् विशिष्टचेतनाधिष्ठितत्वं तन्वादीनां न साधयितुमलमिति। यदपि विशेष्योक्तं [7]**मिथः प्रत्यनीकसम्भूयैकार्थ**कारित्वादिति तदसत्त्वं तु पूर्वोक्तमेव [8]णिच्छयतो सव्वलहुमित्यादिगाथया। तस्मान्नेश्वरपूर्विका सृष्टिः, किन्तु [9]अनेकेश्वरपूर्विकेति विज्ञेया।

एवं च कृत्वेत्यादि। अनेनैकान्तेश्वरपूर्वकवाददोषप्रकाशनेन कर्मैकान्तवाददोषप्रकाशनमपि कृतं वेदितव्यमसम्बद्धत्वात् तस्य कर्मैकान्तवादस्य। कथं पुनस्ते कर्मैकान्तवादिन आहुः? कथं वा तदसम्बन्धः? इत्यतस्तत्प्रदर्शनार्थं तावत् पुरुषकारं निराकुर्वन्तः कर्म समर्थयन्तः **त इत्थमाहु**रिति तदुपपत्तीर्दर्शयति, यथा–**यदि प्रवर्तयितृत्वात् पुरुष[कारः] कारणं स्या**दिति पुरुषकार एव कारणं न कर्मापीति चेन्मन्यस इत्येकान्तं सूचयति **तत** इदमनिष्टं पुरुषकारकारणैकान्तिनस्ते प्राप्तम्। कतमदनिष्टम्? उच्यते–**प्रधान-**

---

१ दृश्यतां पृ० २५६-२॥ २ **मुक्तमुक्तवि**° य०। **मुक्तवि**° भा०॥ ३ **तन्निवेदित्थ**° प्र०॥ ४ °**तूनां कर्मणां** प्र०। अत्र °**तुकर्मणां** इत्यपि पाठः स्यात्॥ ५ **एतद्वत्** प्र०॥ ६ दृश्यतां पृ० ३३५ पं० ८॥ ७ दृश्यतां पृ० ३३१ पं० ५॥ ८ दृश्यतां पृ० ३०१ पं० ४॥ ९ **अनेकैकेश्वर**° प्र०। दृश्यतां पृ० ३३८ पं० १२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मभिन्नाः सिद्धयोऽसिद्धयो वा नाना न स्युः, उत्कर्षार्थिकारणैकत्वात्। उत्कर्षार्थिपुरुषकारैकत्वात् प्रधानमध्यमाधमभेदभिन्नाः पुरुषकारा न सिध्यन्ति। सप्रभेदास्ताः सिद्धयोऽसिद्धयश्च नानाजातीया न स्युः, अव्यतिरिक्तकारणत्वात्, तुल्यतन्तुपटवत्।

कार्यातिरेकात्तु कारणातिरेक इति कर्मैव प्रवर्तयितृ। [1]द्विविधा च········· इतरस्य। तत्र त्वदिष्टपुरुषकारव्यापारस्यावतार एव नास्ति स्वशक्त्याधानासमर्थत्वात्। चेतनामात्रसारो हि पुरुषकारः शक्तिः, न च स पशुत्वे वर्तमानो मनु-

---

मध्यमा[2]धमभिन्नाः सिद्धयोऽसिद्धयो वा नाना न स्युः, ताश्च दृष्टाः, न हि दृष्टाद् गरिष्ठमन्यत् प्रमाणमस्ति। कस्मान्नाना न स्युरिति चेत्, उच्यते—**उत्कर्षार्थिकारणैकत्वात्,** आत्मोत्कर्षार्थी पुरुष ए[3]वं कारणं न कर्मापि कारणमिति पुरुषकारकारणैकान्तवादमाशङ्कते, पुरुषकारस्यैकत्वमुत्कर्षार्थिपुरुषकारैक**त्वम्**, उत्कर्षार्थिनः पुरुषस्य क्रिया कारः, तस्यैकत्वात् **प्रधानमध्यमाधमभेदभिन्नाः** स्वाचारदुराचारविकल्पद्वयप्रभेदकृता लोकप्रसिद्धाः **पुरुषकारा न सिध्यन्ति,** एक एवोत्कृष्टः प्राप्नोति। ततश्च तत्साध्यानामपि फलभूतानां प्रधानमध्यमाधमानां शुभाशुभानां भेदा न प्राप्नुवन्ति, एकैवोत्कृष्टा सिद्धिः प्राप्नोति, २५२-२
न मध्यमाधमे सभेदे सिद्धी स्याताम्। नापि च पुरुषकाराणामसिद्धयः स्युः, ताश्च दृष्टा इति तदुपसंहृत्य साधनमाह—**सप्रभेदास्ताः सिद्धयोऽसिद्धयश्च नानाजातीया न स्युरव्यतिरिक्तकारणत्वात् तुल्यतन्तुपटव**दिति पुरुषकारस्यैव कारणत्वात् तद्व्यतिरिक्तकारणाभावाद् भवतः पुरुषकारैकान्तवादिनः कर्मानपेक्षत्वादिति।

इत्थं परपक्षे दोषमुक्त्वा स्वपक्षसाधनमाह—**कार्यातिरेकात्तु कारणातिरेक इति कर्मैव प्रवर्तयितृ। इति**शब्दो हेत्वर्थे, कार्याणामनेकभेदानां सिद्धीनामसिद्धीनां च परस्प[4]रतोऽतिरिक्तत्वात् कारणातिरेकेणावश्यं भवितव्यम्, तच्च कारणं **कर्मैव** पुरुषस्य त्वदभिमतस्य **[5]प्रवर्तयितृ** प्रवर्तकमनेकभेदमिति ग्रहीतव्यम्। तस्य कार्यनानात्वानुमितस्य कारणसामान्यस्य 'कर्म' इति संज्ञा क्रियते, पुरुषकारस्य पुरुषादीनां च कारणानां निराकृतत्वात्। तस्य सिद्ध्यसिद्धिभेदकार्यलिङ्गादनुमानं देशान्तरप्राप्त्यनुमेयादित्यगतेरिव, **द्विविधा चे**त्यादिना तल्लिङ्गासिद्धिपरिहारार्थं याव**दितरस्ये**ति गतार्थम्, प्रसिद्धं लिङ्गमित्यर्थः। **तत्रे**त्यादि, तत्र एतस्मिन् कारणवैचित्र्यानुमानलिङ्गे कार्ये **त्वदिष्टपुरुषव्यापारस्यावतार एव नास्ती**त्यावयोर्लोकस्यैव प्रसिद्धे कार्यलिङ्गे त्वदभिमतकारणासम्भवोऽस्मन्मतकारणसम्भव एवेति च दर्शयति। कस्मात्? **स्वशक्त्याधानासमर्थत्वात्।** कस्य स्वशक्तिरिति चेत्, चेतनस्य पुरुषस्य। **चेतनामात्रसारो हि पुरुषकारः शक्तिः, हि**शब्दो यस्मादर्थे, यतोऽस्यैषा [6]↑शक्तिः [7]एतां चाधातुम↑ शक्तोऽसाविष्टे मनुष्यत्वे पशुत्वे वर्तमान इति २५३-१
स्वशक्त्याधानासामर्थ्यं दर्शयति—**न च स** इत्यादि, सत्यपि चैतन्ये तां स्वां चैतन्यशक्तिं कर्मबलाकृष्टनिकृष्ट-

---

१ 'द्विविधा च प्रवृत्तिः एकस्य पुरुषकारस्य साध्या असाध्या च इतरस्य।' इत्याशयको मूलपाठोऽत्र सम्भाव्यते। तुलना–पृ० ३६६ पं० १४॥ २ **धर्मभिन्नाः** य०। दृश्यतां पृ० ३६५ पं० १७॥ ३ **एककारणं** य०। अत्र 'एक एव कारणम्' इत्यपि पाठः स्यात्॥ ४ **°रतोरिक्त°** प्र०॥ ५ **प्रवर्तयितुः प्रवर्तमने°** भा०। **प्रवर्तयितुः प्रवर्त्यमने°** य०॥ ६ ↑ ↑ एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति॥ ७ **एवां** य०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ष्यत्वे स्वचैतन्यशक्तिमाधातुं समर्थः, मनुष्यः सन्न तज्ज्ञानं पशौ, तस्यापि कर्मलभ्यत्वात्। अपि तर्हि गङ्गायाः स्रोतस्य······ ।

या(यो)ऽपि च पुरुषः सोऽस्वतन्त्रः, कर्मपरवशत्वात्, वेतालाविष्टशवशरीरवत्, उपक्रमप्रभृति·········प्राणांश्च जह्यात्।

अतो यथाहारविशेषाभ्यवहरणखलरसादिविभजनाद्यसङ्ख्येतितक्रियासु अस्वतन्त्र एव ताः कर्मकृताः पुरुषो मत्कृता इत्यभिमन्यते, तत्कार्यतायां हि तासां कदाचिदकरणाभावादिहैव अमृतत्वप्रसङ्गः तथा कायेन्द्रियनिर्वर्तनेऽप्यनिष्टशरीरेन्द्रियादिर्न स्यात्, इष्टस्यैव करणं स्वातन्त्र्यात् स्यात्। तस्मात् सर्वमेव तत् कर्मण एव। तदतिरेकेण क आत्मनि प्रतिपद्येत ?

पश्वज्ञानकुशक्तौ वर्तमानो न विशिष्टेष्टमनुष्यचैतन्ये स्थापयितुं शक्त इति, विपर्ययेण **मनुष्यः सन्न तज्ज्ञानं पशौ** 'आधातुं समर्थः' इति वर्तते। तस्यात्मनो यत् 'स्वतत्त्वम्' इति त्वया प्रतर्कितं तन्न शक्नोति कर्मवशीकृतो योनिजात्यन्तरस्थो योनिजात्यन्तरेऽन्यत्राधातुम्, कुतः? **तस्यापि कर्मलभ्यत्वात्**, पशोर्मनुष्यस्य वा चैतन्यस्य कर्मवशादेव तथाभावात् मनुष्यः पशुर्वा स्वजातिनामकर्मोदयादेव भवतीत्यर्थः, तदुदयस्य कारणान्तरदुर्निवारत्वात्। तत्र दृष्टान्तमाह–**अपि तर्हि गङ्गाया** इत्यादि, सम्भावनयैतदुच्यते, अपि चैतत् सम्भाव्यम्–[1]देवविक्रियोत्पातादिना गङ्गास्रोतसोऽन्यथा प्रवृत्तस्य कर्मणोऽन्यथा प्रवर्तनमिति। एवं तावदभ्युपगम्य स्वतन्त्रं चेतनं पुरुषकारं च तस्योक्तम्।

नैव वाभ्युपगच्छाम एतत् सर्वं किञ्चित् कर्मव्यतिरिक्तम्, कुतः? तत्त्वचिन्तायां कर्मव्यतिरिक्तकारणानवस्थानादित्येतद् दर्शयति–**या(यो)ऽपि** **चे**त्यादि यावद् **वेतालाविष्टशवशरीरव**दिति। कर्मवेतालाविष्टो हि पुरुषोऽस्वतन्त्र इष्टानिष्टतुल्यप्रवृत्तिः परवशत्वात् पुरुषस्य, **उपक्रमप्रभृति** इत्यादि याव**ज्जह्या**दिति तत्स्वातन्त्र्याभावप्रतिपादनार्थो निमेषोपक्रमादारभ्य मरणापवर्गावसान इति गतार्थः।

२५३-२ पुनरपि–**अतो यथाहारविशेष**त्यादि याव**दिहैवामृतत्वप्रसङ्गः**। मातुरोजः पितुः शुक्रञ्च प्रथमाहारः, ततः [2]सत्ताहं कललं भवति [तन्दुलवै० १७] इत्यादिना क्रमेण शरीरेन्द्रियादिकारणाहारः प्राणनादियात्रासमर्थः, तस्य च खलरसादिभावेन विभजनम्, इत्याद्यसङ्ख्येतिताव्यक्तक्रियासु **अस्वतन्त्र एव** [3]गर्भादिषु सुप्तश्च। तास्तु क्रियाः **कर्मकृताः पुरुषो मत्कृता इत्यभिमन्यते**, तथा भासमानत्वात्। **तत्कार्यतायां हि** पुरुषकारकार्यतायां हि **तासां** क्रियाणां **कदाचिदकरणाभावात्** प्राणस्थितिहेत्वनुपरमणाद् मरणाभावः, तस्मादिहैवामृतत्वाय [4]कल्पेतेति दृष्टेष्टविरोधदोषप्रसङ्गः। **तथा** [5]**कायेन्द्रियनिर्वर्तनेऽप्यनिष्टशरीरेन्द्रि**[6]**यादिर्न स्यात्** काणकुण्टबधिरादिः, सम्पन्नेन्द्रियजातिसंस्थानसंहननादियुक्त एव स्यात्। पुरुषकारकार्यनिर्वर्तने च धर्माद्यनुष्ठानविषयोपभोगादौ **इष्टस्यैव करणं स्वातन्त्र्यात् स्यात्**।

---

१ **देवक्रियो**° य० ॥ २ दृश्यतां पृ० २५९ टि० ६ ॥ ३ **गर्त्तादिषु** य० । **गतार्थादिषु** भा० । दृश्यतां पृ० ११२ पं० १२ ॥ ४ **कल्पतेति** प्र० ॥ ५ **कायेन्द्रि**° प्र० ॥ ६ °**यादि न** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकारणमपि कर्म, सहायापेक्षत्वात्, भारोत्पाटवत् । एतदपि च न मन्तव्यम् 'अकारणमपि कर्म सहायापेक्षत्वात्, फलोपहाराय स्वामिनयोद्योगावपेक्ष्यौ अमात्यादिप्रकृतिश्च' इति, यतस्तान्यपि हि स्वामिधर्माधर्मरज्जुयतिनिबद्धानि, तदायत्तत्वात् तद्भोग्यत्वात्......तन्तुपटवत् । यदि तानि स्वामिधर्माधर्मरज्जुयतिनिबद्धानि न स्युस्ततः सर्वाविशेषप्रसङ्गः ।

योऽपि स्वामिपुरुषकारः सोऽप्यधर्मफलत्वात् कर्मैव, क्लेशत्वात्, ज्वरवत् ।

तस्मात्[1] **सर्वमेव तत् कर्मण एव** हेतोः, नात्मनः, **'कर्मणः'** इति पञ्चम्या हेत्वर्थे विहितत्वात् । **तदतिरेकेण क आत्मनि प्रतिपद्येत** ? तस्मादेवं विद्वान् क आत्मनि एतदनुपपद्यमानं कर्मव्यतिरेकेण अभ्युपगच्छेत् ? नाभ्युपगच्छे[2]त्येव विद्वानित्यभिप्रायः । तस्मादहेतुः पुरुषस्तत्कारश्च ।

स्यान्मतम्–**अकारणमपि कर्म, सहायापेक्षत्वात्** । पुरुषकारमकारणमपि कर्म सहायमपेक्षते कवलास्यप्रक्षेपादिवत् । यथोक्तम्–

> **आलस्याद् यो निरुत्साहः स किञ्चिन्नाश्नुते फलम् ।**
> **स्तनक्षीरादिपानं च पौरुषान्न विशिष्यते ॥ [ ]**

अतो **भा[3]रोत्पाटवत्**, यथा भारं समुद्वहन् पुरुषः सहायमुत्क्षेप्तारं निक्षेपकं चान्तरेण स्वयमेव न शक्नोति वोढुमिति का[4]रणमकारणं च दृष्टस्तथा कर्म पुरुषकारमन्तरेणेति कारणमकारणं चेति ।

एतदपि च न मन्तव्यमकारणमपीत्यादिना तमेव पूर्वपक्षं व्याचष्टे । भारोत्पाटापेक्षभारो- २५४-१ द्वाहवदत्र किं सहायं कर्मणोऽपेक्ष्यमिति चेत्, उच्यते–**फलोपहारा**येत्यादि, फलमुपहरिष्यतः कर्मणस्तत्स्वामिनः कर्तु**र्नयोद्योगावान्तरावपेक्ष्यौ**, बाह्या स्वा[6]मात्यादिप्रकृतिः । किं पुनः कारणम् 'एवं न मन्तव्यम्' ? उच्यते–**यतस्तान्यपि हि स्वामिधर्माधर्मर[7]ज्जुयतिनिबद्धानी**त्यादि यावत् **तन्तुपटवत्** स[8]हेतुदृष्टान्तकेन प[9]दवाक्येन अमात्यादीनां धर्माधर्मकार्यत्वमापाद्य कर्मकारणावधारणात् पुरुषकारं निराकरोति **तदायत्तत्वात् तद्भोग्यत्वा**दित्यादिना हेतुसौलभ्यं च दर्शयति । **तन्तुपटव**दिति तन्त्वायत्तपटवत् पटत्वेन तन्तूनामेव भोग्यत्ववत् । **यदि तानी**त्यादि एवमनभ्युपगमे **स[10]र्वाविशेषप्रसङ्ग** इत्यनिष्टापादनम् ।

योऽपीत्यादि । यदपि [11]चोक्तं **'स्वामिनयोद्योगावपेक्ष्यौ'** इति **स्वामिपुरुषकारः सोऽप्यधर्मफलत्वात् कर्मैव**, न पुरुषकारो नाम कर्मातिरिक्तोऽस्तीत्यवधारणा[12]र्थं प्राक्प्रतिज्ञातं समर्थयति, **क्लेशत्वात्**, क्लेशो हि चिन्ताव्यायामरूपः, मनःशरीरायासात्मकत्वात्, **ज्वरवत्** ।

---

१ **तस्मात्तत् सर्वमेव तत्कर्मण एव** य० ॥ २ (°त्येवं विद्वान् ?) ॥ ३ **भारोत्पाद**° प्र० । दृश्यतां पृ० ३६३ पं० २० ॥ ४ **कारणकारणं** प्र० ॥ ५ °**व्यकार**° प्र० ॥ ६ "स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषराष्ट्रदुर्गबलानि च । राज्याङ्गानि प्रकृतयः पौराणां श्रेणयोऽपि च ॥" इति अमरकोषे २ । ८ । १७ ॥ ७ (°रज्जुप्रतिनि° ?) ॥ ८ **सहेतुकदृष्टान्तेन** य० ॥ ९ **पटवाक्येन** प्र० ॥ १० **सर्वाशेष**° य० । **सर्दाशेष**° भा० ॥ ११ दृश्यतां पं० २ ॥ १२ °**णार्थः** भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथैतमधर्मफलं नेच्छसि न तर्हि दुःखमधर्मफलमिति प्राप्तम्, तत्कर्मणः प्राणातिपातादेर्धर्मफलप्राप्तिरिष्टप्राप्तिरिति प्राप्तम्, धर्माधर्मफलविपर्ययात् । पुरुषकारनैरर्थक्यं च ।

स च यद्यहेतुको मुक्तानामपि स्यात् । सहेतुश्चेत् कर्मण एवाचेतनात्, युक्तिक्षमहेत्वन्तराभावात् ।

यदा च पुरुषस्य प्रवृत्तौ नास्ति कर्तृत्वं तदा द्रवतीति द्रव्यं कर्तृसाधनं न भवति । कर्मपरिग्रहविशेषस्तु द्रव्यं द्रूयते गम्यते···इति । भोग्येन कर्मपुरुषेण

अथेत्यादि । **अथैतं** पुरुषकारसङ्क्ले[1]**शमधर्मफलं नेच्छसि** प्रज्ञोत्साहयुक्तस्य प्रशस्तत्वेनेष्टत्वाल्लोके ततो **न तर्हि दुःखमधर्मफलमिति प्राप्तं** शिरोरोगादि, क्लेशत्वात्, नयोद्योगपुरुषकारवत् । यथोक्तम्—

अनर्थपाण्डित्यमधीत्य यन्त्रितः सुतेषु दारेषु च नित्यशङ्कितः ।
२५४-२ निशासु जागर्ति हिनस्ति बान्धवान् नमोऽस्तु राज्याय वरं दरिद्रता ॥ [ ] इति ।

अथ प्रसिद्धिविरोधदोषभयाद् दुःखमधर्मफलमिति त्वयानुज्ञायते तत्साचि[2]त्र्यक्रियायाश्च हिंसादेर्दुःखसाधनै[3]तां गतत्वात् **तत्कर्मणो** हेतोः **प्राणातिपातादेर्धर्मफलप्राप्तिः,** कासौ ? इष्टशरीरेन्द्रियविषयसुखसम्यग्ज्ञानारोग्यादिप्राप्तिः इत्येतत् प्राप्तम्; शुभाशु[4]भयोरिष्टानिष्टविपर्ययफलाभ्युपगमात् 'धर्माद् नयोद्योगौ दुःखं वा' इत्युक्तत्वादत एव प्राप्तम्, अधर्मफलाद् दुःखात् सुखं धर्मफलमिति प्राप्तम् । किं तत् ? इति तद्दिङ्मात्रं प्रदर्शयति—**इष्टप्राप्तिरिति** इष्टशरीरेन्द्रियादिप्राप्तिरित्येतत् **प्राप्तम्** । किं कारणम् ? **धर्माधर्मफलविपर्ययात्** इत्यतः **पुरुषकारनैरर्थक्यं च** यादृच्छिकत्वाविशेषात् । अतो यदुक्तं 'कर्मैव कारणं पुरुषकारस्यापि कर्मफलत्वात्' इति श्रेयान् पक्षः । यथोक्तम्—

यथा यथा पूर्वकृतस्य कर्मणः फलं निधानस्थमिवोपतिष्ठते ।
तथा तथा पूर्वविधानुसारिणी प्रदीपहस्तेव मतिः प्रवर्तते ॥ [ ]

अभ्युपगम्यापि पुरुषकारं दोषं ब्रूमः—स निर्हेतुकः सहेतुको वा स्यात् ? किञ्चातः ? **स च** पुरुषकारो **यद्यहेतुको मुक्तानामपि स्याद्** नयोद्योगलक्षणः न चेष्टस्तेषाम् । अथ मा भूदेष दोष इति सहेतुरिति ब्रूयात् ततः **सहेतुश्चेत् कर्मण ए[5]वाचेतनात्,** शुभादपि पुरुषकारात् सेवादिकादनर्थावाप्तेरशुभादपि प्राणातिपातादेरर्थावाप्तेर्धर्माधर्मफलसङ्क[6]रोक्तेरनुमातुं शक्यत एतत् अबुद्धिपूर्वकादचेतनकर्मवशादेवैतच्छुभाशुभवैचित्र्यम् । किं कारणम् ? **युक्तिक्षमहेत्वन्तराभावात्,** विचारितनिषिद्धत्वात् पुरुष-नियति-काल-
२५५-१ स्वभावादिहेत्वन्तराणां नात्रान्यद् विमर्दक्षमं कारणमस्त्यन्यदतो दैवाख्यात् कर्मणः ।

यदा चेत्यादि । यस्मिन् काले एवं च कृत्वा **पुरुषस्य प्रवृत्तौ** साध्यायां **नास्ति कर्तृत्व**मिति [7]सिद्धे कर्मण एवेति च सिद्धे **तदा** तस्मिन् काले **द्रवतीति द्रव्यं कर्तृसाधनं न भवति** स्वतन्त्रस्य कर्तुरनुपपत्तेः । **कर्मपरिग्र[8]हविशेषस्तु,** तुशब्दो विशेषावधारणार्थः, कर्मसाधनमुपपन्नार्थं **द्रव्यं द्रूयत**

---

१ °शाधर्म प्र० ॥ २ ° व्यक्ति(व्याक्ति ?)यायाश्च भा० ॥ ३ °नतांगतत्वात्तत्वात्तत्कर्मणो य० । °नतांगतत्वात्तत्वात्तत्वात्तत्कर्मणो भा० ॥ ४ °भयोरिष्टविपर्यय° प्र० ॥ ५ एवचे° प्र० ॥ ६ संकारोक्ते° भा० । संस्कारोक्ते° य० ॥ ७ सिद्धेः प्र० ॥ ८ °हावि प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यं क्रियते, कर्मपुरुषेणैव कर्मपुरुषः क्रियते, यथा [1]व्रीहिणैव व्रीहिः क्रियते, कार्येणैव बीजव्रीहिणाङ्कुरव्रीहिः ।

[2]यच्चापि पुरुषकारकारणैकान्तिन आहुस्तदपि सर्वमसम्बद्धम् । न इत्थमाहुः– एवंवादिनस्ते पुनः कार्यलक्षणत्वात् कर्मणोऽक्षरार्थाच्च कर्मव्यतिरिक्तः कर्ता अस्ति, घटस्येव कुलालः ।

ननु कर्मणैव करिष्यते । ननु सुदूरमपि गत्वा [3]व्रीहेरप्यावर्तकत्वात् स्वरूपभेदादक्षरार्थाच्च निर्विवादकृतकत्वात् कर्मणः कर्तुरेव भावः तच्छक्तेः ।

इत्ययं विशेषोऽवधार्यते । तद्विग्रहं दर्शयति–**द्रूयते गम्यत** इत्यादि । तदिदानीं निरूप्यते–**भोग्येन कर्मपुरुषेण** तेन **द्रव्यं क्रियते** । किमुक्तं भवति ? **कर्मपुरुषेणैव कर्मपुरुषः क्रियत** इत्युक्तं भवति । तत्र दृष्टान्तः–**यथा**[3] **व्रीहिणैव व्रीहिः क्रियत** इति । **कार्येणैव बीजव्रीहिणाङ्कुरव्रीहि**रिति तद्व्याख्या, एवं तावदवधारणेन कर्त्रर्थो निराकृतः, कर्मैकान्तवाद उपपादितः, चेतनाचेतनैक्यात् [4]सर्वसर्वात्मकत्वाच्चायुक्त ईश्वरोऽन्यो हेतुरिति चेति ।

यच्चापीत्यादि । न केवलं कर्तृसाधन एव दोषः, किं तर्हि ? कर्मैकान्तवादोऽप्ययुक्तः । तत्प्रदर्शनार्थमाह–**एवंवादिनस्ते पुनः कार्यलक्षणत्वात् कर्मणः**, कार्यं कर्म, यत् क्रियते तत् कर्म, कर्तुरीप्सिततमं कर्म [पा० १।४।४९] इति लक्षणा**दक्षरार्थाच्चा**नुमेयः कर्ता । तस्मात् कर्मणोऽन्यं कर्तारं कर्मव्यतिरिक्तमन्तरेण कर्माभावाद् घटस्येव कुला[5]लोऽवश्यैष्यः कर्ता । प्रयोगश्च–स्वतोऽव्यतिरिक्तचेतनकर्तृकं त्वदिष्टं कर्म, कार्यत्वात् क्रियमाणत्वात्, घटवदिति ।

अत्रोत्तरं परः **ननु कर्मणैव करिष्यत** इति स्वत एव कर्मणा कर्म क्रियते न तद्व्यतिरिक्तेन कर्त्रेत्युक्तं प्राग् दृष्टान्ते [6]व्रीहिणैव व्रीहिः कार्येण बीजव्रीहिणा कार्योऽङ्कुरव्रीहिः क्रियत इत्युक्तं मयेति २५५-२
स्मारयति । इतर आह–**ननु सुदूरमपि गत्वे**त्यादि, विचार्य विचार्याप्यात्मव्यतिरिक्तपुरुषाविनाभावित्वात् कर्मणस्त्वयाप्येतदभ्युपगन्तव्यं कर्मवादिना–कर्मव्यतिरिक्तः कर्ता पुरुषोऽस्तीति । कस्मात् ? **व्रीहेरप्यावर्तकत्वात्**, अस्यापि व्रीहिदृष्टान्तस्य क्षित्युदकाकाशवाताङ्कुराद्यावृत्तिरूपत्वात् तेषां च **स्वरूपभेदात्** स्वतःपृथग्भूत[7]कर्त्रविनाभूतं कर्म सिध्यति अतो विपर्ययसाधनत्वमिति । किञ्चान्यत्, **अक्षरार्थाच्च**, 'क्रियत इति कर्म' कर्तुरीप्सिततमं कर्म [पा० १।४।४९] इति कर्मशब्दाक्षरार्थः । ततस्तस्य कृतकत्वं निर्विवादम्, तस्माच्च **निर्विवा[8]दकृतकत्वात् कर्मणः कर्तुरेव भावः** स्वतन्त्रस्य, पुरुष एव भवति, **कर्तुरेव भावः** सर्वस्येति पञ्चमीनिर्देशाद् वा पुरुषादेव सर्वं भवति कारणात् । एवं च त्वदुक्तहेतोरेव कर्मव्यतिरिक्तपुरुषसिद्धेः कर्मणश्च तद्व्यतिरिक्तस्य सिद्धेरावर्तकवैधर्म्येण कर्मणः कृतकत्वं [9]कर्त्रर्थान्तरभूतस्यावधारणं च युक्तम् । कुतः ? **तच्छक्तेः**, तस्मादेव हि कर्तुः पुरुषात् कर्मणः कृतकत्वशक्तिः, कर्तुर्वा पुरुषस्य करणशक्तिः, न व्रीहिणैव व्रीहि[10]र्वदावर्तकत्वेनेति ।

---

१ दृश्यतां पं० १९, पृ० ३६५ पं० १३ ॥   २ दृश्यतां पृ० ३५९ पं० १७ ॥   ३ दृश्यतां पृ० ३५८ पं० २४
४ **सर्वासर्वात्म**° भा० ॥   ५ °**लोवास्येष्यः** प्र० ॥   ६ दृश्यतां पं० १ ॥   ७ °**कर्तृवि**° य० ॥   ८ °**दकत्वात्** प्र० ॥   ९ **कर्त्रव्यर्थान्तर**° भा० । **कर्त्रव्यार्थान्तर**° य० । (कर्तुर्वार्थान्तर° ?) ॥   १० °**वदवर्त**° प्र० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

न हि स क्रियमाणः, [1]कर्मणोऽस्वतन्त्रत्वे सति अलब्धात्मवृत्तित्वादभवनमाभूतदेवदत्तवत् ।

[2]शास्त्रनिराकरणमेवं त्वदुपदेशादिक्रियानिराकरणं च, कर्मप्रवृत्तिमात्रत्वात् तत्प्रतिपत्त्यप्रतिपत्त्योः ।

कर्मप्रवृत्तिमात्रत्वात् तथा शास्त्रार्थस्य अस्मदुपदेशादिक्रियाणां च प्रति-

---

न हि स क्रियमाण इत्यादि यावदा**भूतदेवदत्तव**दिति तदेव भावयति । तस्याः कर्म[3]शक्तेरस्वतन्त्रत्वमलब्धात्मवृत्तित्वात् । अस्वातन्त्र्याच्च कुतो भवनम् ? दृष्टान्तः–आभूतदेवदत्तो गर्भोपक्रमावस्थायां कार्या-
२५६-१ यामलब्धात्म[4]वृत्तित्वादस्वतन्त्रः अस्वतन्त्रत्वादकर्ता, अक[5]र्तृत्वाच्च न भवति कार्यावस्थाव्यतिरेकेण यथा देवदत्तः तथा कार्यावस्थायां कर्मापि क्रियमाणं न भवेत्, अनिष्टं चैतत् त्वयापि । तस्मात् कर्माभवति, तच्च पृथग्भूतपुरुषभवनादृते न भवतीत्यस्ति पुरुषः ।

किञ्चान्यत्, पुरुषकारप्रत्याख्याने सर्वशास्त्रवैयर्थ्यप्रसङ्गः । कथम् ? यथाक्रमं हितप्राप्त्यहितपरिहारार्थौ सर्वशास्त्राणाम्, ताभ्यां च हिताहितप्राप्तिपरिहारार्थाभ्यां निरुक्तीकृतसत्यत्वानि प्रमाणान्तरसंवादेन चिकित्सितादीनि शास्त्राणि, यथा–

> [6]कटुकः कटुकः पाके वीर्योष्णश्चित्रको मतः ।
> तद्वद् दन्ती, प्रभावात् तु विरेचयति सा नरम् ॥ [चरकसं० १।२६।६८]
> नागरातिविषामुस्ताक्राथः स्यादामपाचनः ॥ [चरकसं० ६।१५।९८]

इत्यादीनि पुरुषतत्क्रिययोरभावे कर्मकारणैकान्ते निराकृतानि स्युरित्थम् । न चेष्यते तन्निराकरणं कस्यचित् प्रमाणान्तरसंवादिनः शास्त्रस्य प्रामाण्यदर्शनात् । **त्वदुपदेशादिक्रियाणां च** दृष्टार्थानां **निराकरणम्** एवमिति वर्तते, कर्मकारणैकान्ते पुनः पुरुषस्य स्वतन्त्रस्य तत्क्रियायाश्चाभावे परप्रतिपादनार्थं तच्छक्तियुक्तशब्दोच्चारणक्रिया न स्यात् कर्मत एव प्रवृत्तेः । **आदि**ग्रहणादोदनस्य मुखसंयोजनादिक्रियाश्च न स्युः, **कर्मप्रवृत्तिमात्रत्वात् त[7]त्प्रतिपत्त्यप्रतिपत्त्योः**, त्वदुपदे[8]शार्थप्रतिपत्तिः कर्मत एव परस्य, स प्रतिप[9]द्यते विनाप्युपदेशेन, न प्रतिपद्यते वा सत्यप्युपदेशे ।

कर्मप्रवृत्तिमात्रत्वादित्यादि यावत् **कर्मण एवेति चेत्** । स्यान्मतम्–यदुच्यते [10]शास्त्रनिराकरणमेवं त्वदुपदेशादिनिराकरणं च कर्मणोऽस्वतन्त्रत्वे सत्यलब्धात्मवृत्तित्वादाभूतदेवदत्तवदभवनम्, निर्विवादकृतकत्वात् कर्तुरेव भावस्तच्छक्तेः, व्रीहेरप्याव[11]र्तकत्वात् स्वरूपभेदात् पुरुष एव भवति, इत्यादि सर्वं नोपपद्यते, 'कर्मत एव भवति' इत्युपपद्यते **कर्मप्रवृत्तिमात्रत्वात् तथा शास्त्रार्थस्या-**
२५६-२ **स्मदुपदेशादिक्रियाणां च प्रतिपत्त्यप्रतिपत्त्योः कर्मप्रवृत्तिमात्रत्वात्** प्राज्ञपुरुषप्रतिपत्तिवद् बलीवर्दाद्यप्रतिपत्तिवच्च । तस्मात् **सर्वाण्येतानि कर्मण एव हे**तोर्भवन्ति पूर्वोक्तन्यायवच्चिन्ताव्यायामादिशारीर-

---

१ दृश्यतां पं० २४ ॥ २ दृश्यतां पं० २३ ॥ ३ °**शक्त्येस्व**° भा० । °**शक्तेः स्व**° य० ॥ ४ °**त्मकवृ**° प्र० ॥ ५° **र्तृकत्वाच्च** प्र० ॥ ६ दृश्यतां पृ० २२५ टि० ५ ॥ ७ **तत्प्रतिपत्त्योः** प्र० ॥ ८ °**श्यार्थ**° भा० ॥ ९ °**पद्य विना**° प्र० ॥ १० दृश्यतां पं० ३ ॥ ११ °**र्तकात्** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्त्यप्रतिपत्त्योः सर्वाण्येतानि कर्मण एवेति चेत्, अथ तदादिकर्म कुतः ? ब्रूयास्त्वम्– ओं पुरुषादेवेति। कर्मत एव न, व्रीहिवैधर्म्येणाकर्तृकत्वात्, आत्मादिवत्, नोत्क्षेपणवत्।

कथमसम्बद्धम् ? यस्मान्न शुभमशुभं वा रूपादि इष्टकारणमनिष्टकारणं वा एकान्तेन किञ्चिदस्ति। तदेव शुभमशुभमिष्टकारणमनिष्टकारणं च। एक एव

मानसक्लेशफलत्वात् तस्य, **इति चेदाशङ्कायाम्**, एवं चेन्मन्यसे। ततस्त्वमिदमसि तावत् प्रष्टव्यः–**अथ तदादिकर्म कुतः ?** इति। मम तावदभिप्रायः–कृतकत्वात् कर्मणः पुरुषादेव तदिति। तन्नेच्छता त्वया वक्तव्यम्–कुतस्तदादिकर्म यत एतत् सर्वं प्रतिपत्त्यप्रतिपत्तिक्लेशादि ? इति त्वदभिप्रायाकर्षणार्थः प्रश्नः, किं तदपि कर्मण एव उत पुरुषात् ? इति। **ब्रूयास्त्वम्–ओं पुरुषादेवेति,** एवं नामास्तु, को दोषः गत्यन्तराभावात्, **'कर्मत एव'** इत्यभिप्रायः स्यादित्यत्र ब्रूमः–**न, व्रीहिवैधर्म्येणाकर्तृकत्वात्,** व्रीहेर्[1]व्यावर्तकत्वात् कर्तृत्वमुपयाति, [2]नासावतो व्रीहिरकृतकः, **अकर्तृकत्वात्**, ततश्चाक्रियमाणत्वान्नोपपद्यते कर्मणः कर्मत्वं तस्यादिकर्मणः। किमिव ? **आत्मादिवत्**, यथा आत्माकाशकालदिगादीनि न केनचित् क्रियन्त इत्यकर्माणि तथा आदिकर्मापि स्यात्। **नोत्क्षेपणव**दिति वैधर्म्यदर्शनम्, यथा उत्क्षेपणं कर्म तद्व्यतिरिक्तेनोत्क्षेप्त्रा विना न भवति तथेदमिति।

एवं पुरुषकारवादिना कर्मवादी दूषितः, कर्मवादिना च प्राक् पुरुषकारवादी। तस्माद् यदुक्तम् **'[3]एवं च कृत्वा तदपि सर्वमसम्बद्धं यत् कर्मकारणैकान्तिन आहुः, [4]यच्च पुरुषकारकारणैकान्तिन आहुस्तदपि सर्वमसम्बद्धं [5]परस्परदूषितत्वात्'** इति तदुभयमिदानीं नैकत्व्येनाप्यसम्बद्धमिति प्रति[6]पादयितुकामः प्रश्नयति–**कथमसम्बद्धमिति** परवचनेन स्ववचनेन चैकत्वात् तयोः पृथक् कर्मपुरुषकाराभावादेवासम्बद्धमिति तत्प्रतिपादयिष्यन्नाह–**यस्माद् न शुभमशुभं वे**त्यादि यावत् **काय** इति। अयं तावद् दृश्यमानः कायः पुरुषो वास्तु यत्तेऽभिरुचितम्, न मे कश्चिदत्र पक्षपातः। तच्च यस्माद् न किञ्चिदत्र शुभमेवाशुभमेव वा बाह्यमपि कायाद् भिन्नमभिमतं रूपादि **इष्टस्य** सुखस्य **कारणं** चित्र-मयूर-स्रक्-चन्दन- २५७-१
भ्रमरै[7]रुतादि **अनिष्टस्य वा** दुःखस्यातिविवर्णहुण्डसंस्था[8]नाकारकण्टकशिवारुतादि। सर्वमप्येतदिष्टकारणमप्यनिष्टकारणमपि शुभमप्यशुभमपि इति गृहाण द्रव्यक्षेत्रकालभावपुरुषान्तरसंयोगविशेषाश्रयपरिणामविशेषापत्तेः सुरभि-मधुर-सुखस्पर्श-सुरूप-सुशब्देतरभावमुपलभ्यते अभक्षितभक्षितमोदकवत् पक्वापक्वाम्रफलवत् पद्मकेसरनालवत् जाताजातविपन्नाविपन्नसुरादिवत् स्वस्थास्वस्थस्त्रीपुरुषगीतरुतादिवत्। यथोक्तमार्षे–**तेच्चेव पोग्गला सुब्भिगंधत्ताए परिणमंति ते चेव ते पोग्गला दुब्भिगंधत्ताए परिणमंति** [ज्ञाताधर्म॰] इत्यादि। तस्माद् न शुभमशुभं वैकान्तेन किञ्चिदस्ति भिन्नजाति। किं तर्हि ? [**तदेव शुभम्**] तदेवा**शुभम्**, तत एव च **इष्टकारणमनिष्टकारणं च,** यथा त्रिदोषघ्नमोदकादि प्रमाणा-

---

१ **°रस्याव°** प्र०। दृश्यतां पृ० ३५७ पं० ६॥ २ **तमोवातो** प्र०॥ ३ दृश्यतां पृ० ३५२ पं० ४॥ ४ दृश्यतां पृ० ३५७ पं० ३॥ ५ **परस्य दूषि°** य०। **परदूषि°** भा० ६ **पादितु°** प्र०॥ ७ **°रततादि** प्र०॥ ८ **°नकार°** प्र०॥ ९ दृश्यतां पृ० २७८ टि० १॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

ह्ययं पुद्गलकायः । भोक्तृभोग्यात्मकविपरिणामवृत्तित्वात्, अत आहारवच्छुभाशुभादिधर्मतास्य भोक्तृत्वाद् भोग्यत्वात् ।

नन्वन्नोदकशुभाशुभते प्रतिविशिष्टापशदयोगकृते, न, एकैकस्य सर्वरूपद्रव्यभवनपरमार्थत्वात् तदेव तत्, तत्परमार्थत्वात्, तद्वत् । अन्यथात्वेऽपि तदनतिरेकात्मकत्वात्, तन्तुयज्ञोपवीतवत् ।

प्रमाणकाला[1]कालाहारितमिति स्वस्थसर्पदष्टाहारितविषवद्वा तथैक **एव ह्ययं पुद्गलकायः**, पुद्गल उक्तनिरुक्तिकः, कायः शरीरं चितत्वाद् रोगादिदुःखनिवासत्वाद्वा सर्वोऽपि बाह्याभ्यन्तरो मूर्तद्रव्यसङ्घातः कायः रूपादिसङ्घातत्वात् परमाणोरपि । पुद्गलस्य पुद्गलस्येव वा काय इति विग्रह-समासौ । अथवा पृथक् परिकल्पनयानया [2]किम् ? इन्द्रियप्रत्य[3]क्षाभिमतः शरीराख्यः पुद्गलकायः स्वसंवेद्यज्ञानात्मकः क्रियादिलिङ्गानुमित आत्मकायो वा सोऽयमेक एव, न ह्यत्र काचिद् भेदबुद्धिः कार्या बन्धपरिणामैक्यापत्तेरेतन्नयदर्शनात् ।
२५७-२ 'एक एव शुभाशु[4]भादिधर्मा' इति साध्यस्य कायस्य वक्ष्यमाणाहारदृष्टान्तसाम्यमापाद्य हेतुत्वेन तत्साधर्म्यमाह–**भोक्तृभोग्यात्मकविपरिणामवृत्तित्वा**दिति । यदि पुरुषकारवादिमतेन भोक्ता, अथापि कर्मवादिमतेन भोग्यः, तस्मात् कायो भोक्तृभोग्यात्मकः, तस्य विपरिणामो वृत्तिरस्येति कायः सम्बध्यते भोग्यस्य भोक्तुर्वा विपरिणाम इति, शुक्रशोणितं जनन्याहृतान्नरसादि चाद्युत्तरकारणमस्य शरीरस्य तदुभयं भोक्तृ भोग्यं च अन्योन्यभावापत्तेः, तथा चतुर्विधोऽप्याहारोऽशनादिराहर्त्राहार्यभावाद् भोक्तृ भोग्यं च, तच्च शुभाशुभेष्टानिष्टकारणमेवेति, कायचैतन्ययोरैक्यपरिणामापन्नस्यैव भोक्तृभोग्य[5]परिणामवृत्तित्वं सिद्धम्, **अत आहारवच्छुभाशुभादिधर्मतास्ये**ति, यथा आहारः शुभश्चाशुभश्च दृश्यते संस्कृतासंस्कृतः, संस्कृतोऽप्यशुभ एव संस्क्रियमाणान्नाद्यशुभत्वात्, संस्का[6]राभिमतकर्पूरादेरपि कालान्तरे दौर्गन्ध्यादिदर्शनात्, सर्वपुद्गलानां प्रागुक्तविधिना शुभाशुभत्ववत् पुद्गलत्वादाहारः शुभोऽशुभश्चेति तथा काय इति । अथवा चेतनाचेतनयोरात्मशरीरयोरैक्यपरिणामात् तदेव भोक्तृ भोग्यं चेत्यनेनैवाहारदृष्टान्तेन सम्बद्धं प्रत्येकमपि साधयत्येतद् धर्मद्वयमित्यत आह–**भोक्तृत्वाद् भोग्यत्वा**दिति । एवं कर्तृत्वात् कर्मत्वादाहारवच्छुभोऽशुभश्च काय
२५८-१ इति । अथवा सुखोऽपि दुःखोऽपि स एव कायः, सुखस्तावद् दुःखत्वादाहारवत्, दुःखः सुखत्वादाहारवत्, यत् परं प्रत्यसिद्धं तदितरेण सिद्धेन धर्मान्तरेण साध्यम् । एवमिष्टोऽप्यनिष्टत्वात्, अनिष्टोऽपीष्टत्वात् आहारवदेव ।

इतर आह–**नन्वन्नोदकशुभाशुभते प्रतिविशिष्टाप[7]शदयोगकृते** । प्रतिविशिष्टकर्पूराद्येकान्तशुभद्रव्ययोगे सति जलादि अशुभगन्धमपि सत् सुरभीक्रियते अधिकगुणाभिभवभावनया, एवमशुच्यपशदद्रव्ययोगे सति तदुत्कृष्टगन्धाभिभवात् तद्भावनया कर्पूराद्यपि तद्गन्धीभवदुपलभ्यते । अथवा तदेव विनष्टं शुभतडाकादिगतमल्पं शुष्यच्छुष्यत् कर्पूरगन्धं भवदुपलभ्यते, नालिकेरफलानि सुरभीणि सन्ति पूतीभवन्ति दृश्यन्ते । तस्मादुभयधर्मता सर्वद्रव्याणाम्, तथा कायोऽपीति । एतच्च **न, एकैकस्य सर्वरूपद्रव्यभवनपरमार्थत्वात्** । [8]वीप्सया व्याप्तिं सर्वरूपद्रव्यभवनस्य भावकस्य भाव्यस्य च दर्शयति

---

१ °कालहा° प्र० ॥ २ किं द्रिय° प्र० ॥ ३ °क्षमतः भा० । °क्षमभिमतः य० ॥ ४ °भातिधर्मा प्र० ॥ ५ (°विपरि° ?) ॥ ६ °रमाभि° प्र० । (°राभि° ?) ॥ ७ °पसद° य० ॥ ८ वीप्साया प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा चात्र परिणाम्यपरिणामकभावादेकत्वं तथात्मकर्मणोरपि । आत्मा परिणमयति तथाभवनसामर्थ्याद् गतिजात्यादिना पुद्गलान् पुद्गलाश्चात्मानं मिथ्यादर्शनादित्वेन, अन्योन्यपरिणामकत्वादनादित्वमेकत्वम् ।

एकैकस्येति । सर्वशुभाशुभेष्टानिष्टकारणत्वादिरूपो हि द्रव्यभवनपरमार्थः, एवं हि भवदेव भवद्द्रव्यं परमार्थतो भवति, नान्यथा । यथोक्तम् – **एगमेगस्स णं भंते जीवस्स एगमेगे जीवे मातित्ताए** इत्यादिप्रश्नः यावत् आजातपुव्वे । व्याकरणम् – **गोतम ! असई अदुवा अणंतखुत्तो, एवं सव्वजीवाण वि एगजीवो, एगजीवस्स वि सव्वजीवा, तथा सव्वपोग्गला एगजीवस्स सव्वजीवाणं च आहारत्ताए उसासत्ताए भासत्ताए सरीरत्ताए इंदियत्ताए मणत्ताए आणापाणत्ताए** [ ] इत्याद्यार्षे ऐक्यापत्तौ ज्ञापकं सर्वज्ञोक्तत्वात् ।

अत्रानुमानम् – **तदेव तदिति** प्रतिज्ञा मातृत्वादिभावेन यद् भवति शरीरादिभावेन वा तदेकैकं सर्वरूपमित्यर्थः, **तत्परमार्थत्वात् तद्वत्**, एतदुक्तं भवति – तत् तत्स्वरूपापन्नभवनपरमार्थत्वात् तत् २५८-२ तत्स्वरूपवत् । एवमितरमपि पक्षीकृत्य साध्यम् । यत्स्वरूपमिदं भवति कर्पूरं शरीरमन्नादि वा तत् तदेवेत्यर्थः, ↑यच्च यदेव न भवति [न तत्] तत्परमार्थं↑ यथा खपुष्पं खरविषाणं वा, भवन्मत्यान्यत् तत् तदन्यस्वरूपापत्तेः, स्यादहेयस्यान्तरङ्गस्य तत्त्वम् स्याद् बहिरङ्गस्य चान्यत्वमिति तदेव ह्यन्यत्वाभिमतमस्माभिस्तस्यैव तद्रूप[त्व]मिति साध्यते । तस्मान्नास्त्यन्यथात्वं न चासिद्धं तत्परमार्थत्वमिति । अभ्युपेत्यापि **अन्यथात्वेऽपि तदनतिरेकात्मकत्वात्** 'तदेव तत्' इति वर्तते । तस्मात् तस्य वानतिरेकः, स आत्मास्येति तदनतिरेकात्मकम्, यद् यदनतिरेकात्मकमन्यथात्वेऽपि तदेव तद् दृश्यते । किमिव ? **तन्तुयज्ञोपवीतवत्**, तन्त्वनतिरेकात्मकत्वाद् यज्ञोपवीतस्य वलितस्यान्यथात्वेऽपि तन्त्वात्मकत्वमेव तथा सुखादिषु भावनीयम्, तदनतिरेकात्मकत्वं च भावितार्थमेव **ते च्चेव ते पोग्गला सुब्भिगंधत्ताए** [ज्ञाताधर्म०] इत्यादिना ।

यथा चात्रेत्यादि । एवं च **तदेव तदि**ति सर्वं सर्वस्य बाह्यस्य परिणाम्यस्य परिणमयितुश्च तत्त्वम् । योऽधिक[11]गुणस्य ताद्गुण्यं प्रतिपद्यते स परिणामी "[12]योऽधिकगुणो न्यूनगुणत्वमापादयति स परिणामक इत्युच्यते व्यवहारतः । निश्च[13]यतस्तु परिणामिपरिणामकावाविर्भावतिरोभावमात्रभेदौ स्वत एव इत्यस्य नयस्य दर्शनम्, परिणामश्च द्रव्यमात्रम्, **द्रव्यं च भव्ये** [पा० ५।३।१०४], यद् यद् भवति स परमार्थोऽस्येति, त[14]दप्येवं भावितं क्षीरादेर्यावच्च घटादेस्तावद् बोद्धव्यम् । तथाधिकृतस्याध्यात्मिकस्य कर्मकर्मिसंज्ञस्य शरीरशरीरिसंज्ञस्य वा भावनार्थमुपनयति – **तथात्मकर्मणोरपी**ति । तद् व्याचष्टे – **आत्मा** २५९-१

---

१ **भवद्द्रव्यं** प्र० । (तव द्रव्यं ?) ॥ २ दृश्यतां पृ० १८६ टि० १२ ॥ ३ **जसास**° य० । **जस**° भा० । (रसत्ताए ?) ॥ ४ **चा तदे**° भा० । **च तदे**° य० ॥ ५ °**रूपापापात्तभ**° भा० । °**रूपात्तभ**° य० । (°रूपापत्तेर्भ° ?) ॥ ६ **तत्तत्तदेवे**° भा० ॥ ↑ ↑ एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो भा० प्रतौ नास्ति ॥ ७ °**मार्थतत्वमिति** प्र० ॥ ८ °**त्मकत्वाद्यनति**° य० ॥ ९ दृश्यतां पृ० २७८ टि० १ । पृ० ३५९ पं० २६ ॥ १० °**णभ्यस्य** भा० ॥ ११ °**धिगुणस्य** य० ॥ १२ **योधिगुणो** प्र० ॥ १३ °**तश्च** य० ॥ १४ **तथेदं भावितं** भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदपि च रूपादि तदप्यात्मन एव तत्त्वम्, उपयोगात्मकत्वात् तदव्यतिरेकलभ्यरूपत्वात्, मत्यादिवत् । रूपादीनां देशकालादिभेदेन अगृह्यमाणत्वाद-

---

परिणयमतीत्यादिना यावद**नादित्वमेकत्वमिति** परिणा[1]म्यपरिणा[2]मकयोरनियतदेशकालभावादिरूपतां दर्शयति **तथाभवनसामर्थ्याद् गतिजात्यादिना पुद्गला**निति, उपयोगलक्षण आत्मा गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गाद्यनुभवनोपयोगात्मतया तान् पुद्गलान् परिणमयतीति आत्मनः परिणामकत्वं तेषां परिणा[3]म्यत्वम् । **पुद्गलाश्चात्मानं मिथ्यादर्शनादित्वेने**ति मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगसुखदुःखोदयक्षयोपशमादिभावेन परिणमयन्ति, तद्भावेनात्मा परिणम्यते । स च मिथ्यादर्शनोदयादिभावो भवभ्रान्तिहेतुः, तद्वशस्य संसरणात् । एतस्य कर्मकर्मिद्वयस्या**न्योन्यपरिणामकत्वादनादित्वमेकत्वमे**व, एकत्वशब्देन पर्यायभूतेन तत्त्वं व्याचष्टे संसारस्य कर्मकर्मिसम्बन्धजत्वात् तस्य च सम्बन्धस्यानादित्वात् । यथोक्तम् – **पुर्व्वि भंते ! अंडए पच्छा कुक्कुडी ?** इत्यादि प्रश्नः । व्याकरणम् – **रोहा ! पुव्विं पि एते पच्छा वि एते, दो वि एते सासता भावा, अणाणुपुव्वी एसा रोहा !** [भगवतीसू० १।६।५३] इत्यादि । **मिथ्यादर्शन**ग्रहणं सर्वकर्मबन्धाधारभूतत्वाच्छेषस्यापि सर्वस्य सूचनम् ।

आह – यदुक्तं त्वया कर्पूरो[4]दकाद्यचेतनानां परिणाम्यपरिणामकभावादेकत्वं चेतनाचेतनयोश्च जीवकर्मणोरिति तद्युक्तम् । किन्तु 'रूपादि उपयोगीभवदात्मा[5] भवति आत्मापि रूपादीभवति तत्परिणामात्' इत्येतन्नोपपद्यते स्वभावाविनाशादिति । अत्रोच्यते – **यदपि चे**त्यादि यावद् **मत्यादिव**दिति । यदपि च
२५९-२ बहिर्भिन्नं विषयजातमुपयोगनिमित्तभूतं **रूपादि तदप्यात्मन एव तत्त्वम्** । रूपादितत्त्वमात्मा[6]नं च वक्ष्यामः । कुतो रूपाद्यपि आत्मन एव तत्त्वमिति चेत्, उच्यते – **उपयोगात्मकत्वात्**, मत्यादिचक्षुर्दर्शनादिभेदप्रभेद उपयोग आत्माऽस्य रूपादेर्विषयस्य[7] सोऽयं तदात्मकः । कथं रूपादेर्विषयस्योपयोगात्मकत्वमिति[8] चेत्, उच्यते – **तदव्यतिरेकलभ्यरूपत्वात्**, रूपं रसो गन्ध इत्यादिविषयस्वरूपाकारेणोपयोगेन अव्यतिरिक्त एकीभूत एवोपलभ्यते रूपादिर्विषयो[9] नान्यथा, अन्यथा[10] विषयस्वरूपानवधारणात् । तस्मात् तदनतिरेकलभ्यरूपत्वात् रूपादिर्विषय उपयोगात्मकः । यद् यदुपयोगात्मकं तत् तदात्मन एव तत्त्वम्, यथा मत्यादिचक्षुर्दर्शनादिभेद उपयोग इति ।

स्यान्मतम् – रूपादीनां देशभेदेन युगपदवस्थायिनां रूपं रसो गन्ध इत्यादयः परस्परतो देशभिन्ना इति गृह्यन्ते । [11]तस्य देशस्य परमाणुशो भेदे न रूपं रसो गन्धो[12] वोपलभ्यते, देशसम्बन्धेन तूपलभ्यमाना[13] भवन्ति । देशतोऽत्यन्तं[14] भेदग्रहे तेषामभवनम् । तथा क्षणभेदे प्रथमक्षणेऽन्यद् रूपं द्वितीयक्षणेऽन्यदिति गृह्यते चेद् न रूपं नाम किञ्चित् स्यात् तन्निष्ठस्य[15] कालस्य रूपग्रहणाश्रयसम्बन्धाभावादित्यभवनात्मका

---

१ °**णम्य**° प्र० ॥ २ °**णमक**° प्र० ॥ ३ **पुर्व्वि एते** य० । **पुपि एते** भा० । दृश्यतां पृ० १८६ पं० २१, टि० ६ ॥ ४ **कर्पूरादेकाद्य**° प्र० ॥ ५ (°त्मीभवति ?) ॥ ६ °**त्मनं च** भा० । (°त्मनश्च ?) ॥ ७ °**विकस्य** भा० । °**विकल्प** य० ॥ ८ °**त्मकेणवि चेत्** प्र० ॥ ९ °**दिवि**° य० ॥ १० **अन्यथा** भा० प्रतौ नास्ति ॥ ११ इतः पूर्वं कश्चन पाठोऽत्र त्रुटित इति भाति ॥ १२ **गन्धश्चो**° य० ॥ १३ **रूपल**° प्र० ॥ १४ °**त्यन्तभेद**° भा० ॥ १५ **तन्निष्ठस्य** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवनात्मकत्वाद् निर्वस्तुत्वापत्तेः द्रव्यमेव तथातथाभवनलक्षणं सत्यं चक्षुरादिप्रत्ययोपयोगापदेशेन भवति भागिनेयाद्यपदेशविशिष्टैकत्वसत्यपुरुषवत् ।

यच्चोपयोगस्वतत्त्वं मत्यादि तदपि पुद्गलात्मतत्त्वम्, रूपाद्यात्मकत्वात्, अण्वादिवत् । उपयोगलक्षण आत्मा रूपाद्यात्मकेषु पुद्गलेषु उपयुक्तः रूपाद्यात्मक एव, सर्वात्मना ग्राह्ये उपयोगमयान् मृत्पिण्डः शिवकादितायामिव सोऽचेतन एव स्यात् पटेऽनुपयुज्यमानघटादिवत् । आत्मा पुद्गलस्वतत्त्व एव आत्मस्वतत्त्वज्ञानावरणाद्युदयप्रवृत्त्यव्यतिरिक्तभावाव्यतिरिक्तरूपत्वाच्च ।

रूपादयः स्युः । आदिग्रहणाद् भावभेदेन एकगुणद्विगुणत्रिगुणकृष्णादिभेदेन अगृह्यमाणत्वाद् विशिष्टस्य सामान्यस्यैव ग्रहणात् । ततः किम् ? अभवनात्मकत्वाद् निर्वस्तुत्वापत्तिर्वन्ध्यापुत्रवत् । ततश्च **निर्वस्तुत्वापत्ते**रेतत् प्रतिपत्तव्यम् – **द्रव्यमेव तथातथाभवनलक्षणं सत्यं** न रूपादयो नाम केचिदिति । तथा तथेति रूपरसादिप्रकारेण भवति श्यामरक्तादितद्भेदप्रकारेण चेति [1]सत्यम्, द्रव्यं च भव्ये [पा० २६०-१
५।३।१०४], [2]द्रवति भवतीति । कथं पुनस्तद् द्रव्यमभिन्नं सद् रूपादिभेदेन भवतीति चेत्, **चक्षुरादिप्रत्ययोपयोगापदेशेन भवति ।** चक्षुरादिप्रत्यया इत्यधिपत्यालम्बनहेतुसमनन्तरप्रत्ययाः, ते निमित्तमस्योपयोगस्य ज्ञानदर्शनाख्यस्य स चक्षुरादिप्रत्ययोपयोगः, तदपदेशेन रूपादि भवति ज्ञानापदेशेन चक्षूरूपादिप्रत्ययेनेत्यर्थः । यथोक्तम् –

> रूपालोकमनस्कारचक्षुर्भ्यः सम्प्रवर्तते ।
> विज्ञानं मणिसूर्यांशुगोशकृद्भ्य इवानलः ॥   [   ] इति ।

दृष्टान्तः – **भागिनेयाद्यपदेशविशिष्टैकत्वसत्यपुरुषवत्**, यथैक एव पुरुषोऽनेकस[3]म्बन्धिस्त्रीपुरुषापेक्षापदेशविशिष्टो भागिनेयो मातुलो भ्राता पतिः पिता देवरः श्वशुरः पुत्रो भ्रात्रीय इत्यादिर्भवति देवदत्त एक इत्येव च सत्यस्तथा द्रव्यमेकमेव रूपादि भवति चक्षुराद्यपदेशादिति साधूक्तमेकमेव सर्वात्मकमिति ।

एवमुपयोगात्मकत्वं पुद्गलस्य रूपादिप्रभेदस्योक्तम् । इदानीमुपयोगस्यापि पौद्गलात्म्यमुच्यते – **यच्चोपयोगस्वतत्त्वं मत्यादि तदपि पुद्गलात्मतत्त्व**मिति पक्षः । कस्मात् ? **रूपाद्यात्मकत्वात्, [4]अण्वादिवत् ।** स ह्युपयोगलक्षण आत्मा परमाणुद्व्यणुकत्र्यणुकादिषु रूपाद्यात्मकेषु पुद्गलेषु उपयुज्यते कृत्स्नो व्याप्रियते सार्वात्म्येन व्याप्त [5]उपयुक्तः समाप्त इत्यर्थः,[6] रूपाद्यात्मक एव, अप्रदेशसङ्ख्येयासङ्ख्येयानन्तप्रदेशपुद्गलवत् तदुपयोगात् तत्परिणामात् [7]तदेव तदिति पूर्वोक्तन्यायाच्च । यद्येवं [8]↑रूपाद्यात्मकत्वमात्मनो नाभ्युपगम्यतेऽसङ्ख्यातप्रदेशस्यापि↑ रूपादि[9]भेदैकद्रव्योपयोगे तादा[10]त्म्यं ग्राह्ये यातीति ततोऽसङ्ख्यातप्रदेशोऽपि २६०-२

---

१ **सत्यम्** य० प्रतिषु नास्ति ॥ २ **द्रव्यति भवतीति** भा० । **भवति द्रव्यतीति** य० ॥ ३ **°म्बन्धेस्त्री°** प्र० ॥ ४ **अश्वादि°** भा० । **अंधादि°** य० ॥ ५ **उपा°** प्र० ॥ ६ अतः परं **रूपाद्यात्मकत्वमात्मनो नाभ्युपगम्यतेऽसङ्ख्यातप्रदेशस्यापि** इत्यधिकः पाठो य० प्रतिषु अत्र उपलभ्यते, किन्तु भा० प्रतौ अयं पाठः पं० २५ मध्ये **यद्येवं** इत्यतः परं दृश्यते, तत्रैव च स उचितः ॥ ७ दृश्यतां पृ० ३६० पं० ४ ॥ ८ ↑ ↑ एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु अत्र नास्ति । दृश्यतां टि० ६ ॥ ९ **°मनेक°** भा० ॥ १० **°त्म्यं ग्राह्यो** प्र० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

नन्वेवं पुद्गल एव आत्मा प्राप्तः, तस्योपयोगात्मनः पुद्गलत्वात्, कुतोऽस्य रूपाद्यात्मकता? न, उपयोगात्मकत्वादेव रूपादीनामप्युक्तवत्।

अनेन सर्वमपि कर्मकारणैकान्तवादिमतं पुरुषकारकारणैकान्तवादिमतं च असम्बद्धं बोद्धव्यम्, इतरेतरात्मकत्वात्।

सर्वात्मना सार्वात्म्येन सर्वैः प्रदेशैर्ग्राह्ये द्रव्ये **उपयोगमयान्** उपयोगमगच्छन् अनुपयुज्यमानोऽ**चेतन एव पटानुपयुज्यमानघटादिवत् स्या**दिति सम्भन्त्स्यते। कथं पुनरुपयोगं यान्[1] यायात्? **मृत्पिण्डः शिवकादितायामिव,** यथा मृत्पिण्डः कृत्स्नः शिवकादिभावे सार्वात्म्येन व्यापारं गच्छति तथा यदि न गच्छेदात्मा ग्राह्ये ततस्तादात्म्यमप्रतिपद्यमानः **सोऽचेतन एव स्यात् पटेऽनुपयुज्यमानघटादिव**दिति यथाक्रमं वैधर्म्येण साधर्म्येण च दृष्टान्तौ। चेतनो ह्युपयोगलक्षणस्तदभावादचेतनः स्यादिति एष दोषो रूपाद्यात्मकत्वाभावे स्यादात्मन उपयोगलक्षणस्य। तस्मात् सिद्धं रूपाद्यात्मकत्वमात्मन उपयोगात्मकत्वात्। अतः **पुद्गलस्वतत्त्वमेव मत्यादि** इति साधूक्तम्। इतश्च **आत्मा पुद्गलस्वतत्त्व एव, आत्मस्वतत्त्वे**त्यादि यावद् **भावाव्यतिरिक्तरूपत्वाच्च**। आत्मनः स्वतत्त्वमौदयिको भावः, उदये[2] भव औदयिकः, कस्य? कर्मणो ज्ञानावरणीयादेरष्टविधस्यापि, स च तदुदयप्रवृत्तितोऽपृथग्भूतोऽव्यतिरिक्तो भावः स्वं[3] तत्त्वमात्मनः, तदव्यतिरिक्तरूपश्चात्मा, तस्मा**दात्मस्वतत्त्वज्ञानावरणाद्युदयप्रवृत्त्यव्यतिरिक्त**[4]**रूपत्वाच्चा**त्मा पुद्गलात्मतत्त्व एव तादात्म्य[5]प्रतिपत्तेः रूपाद्यात्मकपरमाण्वादिवदित्यर्थः[6]।

अत्राह—**नन्वेव**मित्यादि यावत् **कुतोऽस्य रूपाद्यात्मकता?** इति। ननु भोः! त्वदुक्तेन
२६१-१ विधिना एतेनैव **पुद्गल[7] एवात्मा प्राप्तः तस्योपयोगात्मनः पुद्गलत्वात्,** योऽयं पुद्गलोपयोगः 'रूपं रसः' इत्यादिज्ञानात्मनः स चात्मोपयोग एव उपयोगव्यतिरिक्तस्य रूपादेरभावादुपयोगस्य रूपाद्यात्मकत्वादुपयोगरूपत्वाच्च रूपादीनाम्। तस्मात् **कुतोऽस्य** आत्मनो **रूपाद्यात्मकता?** इति प्रस्तुतस्योपयोगस्य मत्यादेः पुद्गलात्मत्वमुपरुणद्धि एष विचार इति। अत्रोच्यते—एतन्न, **उपयोगात्मकत्वादेव रूपादीनामप्युक्तवत्।** नैष दोषः, रूपाद्यात्मकता आत्मनः, रूपादीनां चोपयोगात्मकता। यस्मादुपयोगात्मकत्वं रूपादीनामप्यनन्तरमेवोक्तम्। तस्माद् रूपादीनामप्युपयोगात्मकत्वादुक्तवत् पुद्गलोऽप्यात्मा आत्मापि पुद्गल एवेति रूपाद्यात्मकत्वमात्मनो न दोषाय।

अनेन सर्वमपीत्यादि याव**दितरेतरात्मकत्वात्।** एवं च कृत्वा पुरुषस्य रूपादिमत्पुद्गलात्मकत्वात् पुद्गलस्यापि उपयोगात्मकपुरुषात्मकत्वात् तदुच्यते[8] 'कर्मैव कारणम्, पुरुषकार एव कारणम्' इत्यवधारितमुभयमप्येकान्तगतमसम्बद्धं बोद्धव्यमिति। उभयोरपि पक्षयोः सह दोषोक्तिरेषा।

---

१ **यान्यात् मृ°** प्र० ॥ २ **उदयेन** य० ॥ ३ **स्वतत्त्व** य० ॥ ४ (°क्तभावाव्यतिरिक्तरूप° ?) ॥ ५ **तावदात्म्य°** य०। **त्तावदात्म्य°** भा० ॥ ६ °**ण्वादित्यर्थः** प्र०। दृश्यतां पृ० ३६३ पं० २३। (°ण्वात्मकत्वादित्यर्थः ?) ॥ ७ **पुद्गला** प्र० ॥ ८ (यदुच्यते ?) ॥ ९ दृश्यतां पृ० ३५२ पं० ४। पृ० ३५७ पं० ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येकप्रत्युक्तिभावनादिक् तु प्रवर्तयितृत्वात् पुरुषश्च कारणमुत्कर्षार्थी, तस्यैवोक्तवत् सर्वत्वात् कर्मापि । तस्यैव कर्मतापि । पुरुषकाराणां च तत्साध्यानां च सिद्ध्योऽसिद्ध्यश्च नाना स्युरेव, पुरुषस्यैवाव्यतिरिक्तभिन्नकारणत्वात्, अहिभोगविस्तरणकुञ्चनवत् ।

तथानतिरेकातिरेकात् कर्मापि प्रवर्तयितृ । स एव हि पुरुषश्चेतनोऽचेतनश्च इष्टानिष्टविधिव्याप्रियमाणत्वात् । अथैवं नेष्यते ततोऽसौ भवेत् पशुवद् मनुष्यत्वेनापि ।

इदानीं **प्रत्येकप्रत्युक्तिभावनादिक् तु, [तु]**शब्दो विशेषणार्थः, युगपत्प्रत्युक्तिदिक्तः प्रत्येकप्रत्युक्तिदिग् विशिष्यते । कर्मैकान्तवादप्रत्युक्तिदिक् तावत् **प्रवर्तयितृत्वात् पुरुषश्च कारणमुत्कर्षार्थी, च**शब्दात् कर्म चेति, एकान्तप्रतिषेधस्य वक्ष्यमाणत्वात् । उत्कर्षमर्थयतीत्युत्कर्षार्थी, उत्कर्ष एवार्थः सोऽस्यास्तीति वा, अर्थाच्चासन्निहिते [पा० वा० ५।२।१३५] इति इनिः, स चोत्कर्षो बाह्यो धनधान्यमित्रभूम्यादिसम्पत्, आन्तरस्त्वारोग्यज्ञानादिसम्पत्, कृतार्थस्य तदर्थारम्भोपरमादसन्निहितार्थोऽर्थीति । कस्मात् पुरुषश्च कारणमिति चेत्, उच्यते–**तस्यैवोक्तवत् सर्वत्वात्** '[2]व्रीहिणैव व्रीहिः क्रियते' इत्यादिन्यायो- २६१-२
क्तवदसावेव पुरुषः प्राणादिमांश्चेतनः **कर्मापि, अपि**शब्दाद् नोकर्मापि प्राणापानभाषामनोद्रव्यादिपुद्गल आध्यात्मिको बाह्योऽपि रूपादिपुद्गलश्चेतनो यस्मात् तस्मात् स एव प्रवर्तयिता । तस्यैवास्मिन् पक्षे कर्मादिसर्वसर्वत्वात् किं तदन्यत् कर्म ? इति **तस्यैव कर्मतापि,** 'अपि'शब्दात् पुरुषतापि पुद्गलतापि ।

तस्मादेव यदुक्तं '[3]प्रधानमध्यमाधमाः पुरुषकारास्तेषां च सिद्ध्योऽसिद्ध्यश्च प्रधानमध्यमाधमा नाना न स्युः' [4]इति तदयुक्तमुक्तम् । **पुरुषकाराणां च तत्साध्यानां च सिद्ध्योऽसिद्ध्यश्च नाना स्युरेव,** न न स्युः । किं कारणम् ? उत्कर्षपरम्पराया बहुप्रभेदाया अपि आ मुक्तेः **पुरुषस्यैवाव्यतिरिक्तभिन्नकारणत्वात् ।** स एवाव्यतिरिक्तो भिन्नश्च कारणम्, तस्यैव सर्वप्रभेदात्मकत्वाद् भिन्नत्वम्, तेषां च [5]कर्मनोकर्मबाह्यरूपादिभेदपुद्गलानां पुरुषोपयोगात्मकत्वादव्यतिरिक्तत्वम् । तस्मात् पुरुषकारनानात्वं तत्साध्यसिद्ध्यसिद्धिनानात्वानि च स्युरेव, स चैक एव कारणं स्यादेव । को दृष्टान्तः ? **अहिभोगविस्तरणकुञ्चनवत्,** यथा अहिः स्फटाटोपकुण्डल[6]ीकरणाद्ययुगपदवस्थायिधर्मै रूपादिभिर्युगपदवस्थायिभिश्च भिन्नोऽप्यव्यतिरिक्तो[7]ऽभिन्नाहित्वसत्यस्तदव्यतिरिक्तभिन्नकारणत्वात् प्रवर्तयिता तथा पाण्यादिसङ्घातसहवर्ती पुरुष उपयोगात्मा गत्याद्युत्कर्षार्थी तेषु [8]युगपदयुगपद्भाविषु पुरुष [9]एव सत्य इति ।

तथानतिरेकातिरेकात् कर्मापि प्रवर्तयितृ, यथा पुरुषः पुद्गलात्मकर्मधर्मप्रभेदभिन्नोऽप्यव्यतिरि[10]क्तः प्रवर्तयिता तथा कर्मापि तदनतिरिक्तातिरिक्तकारणत्वात् प्रवर्तयितृ । किञ्च, चेतनाचेतन- २६२-१
परमार्थत्वाच्च पुरुषस्यैवेष्टानिष्टविधिं प्रति व्यापारः, **स एव हि पुरुषश्चेतनोऽचेतनश्च,** कुतः ? **इष्टा-**

---

१ दृश्यतां पृ० ३६८ पं० ७ ॥ २ दृश्यतां पृ० ३५८ पं० १ ॥ ३ दृश्यतां पृ० ३५२ पं० ५ ॥ ४ **इति च तद°** भा० ॥ ५ **कर्मनोबाह्य°** प्र० । दृश्यतां पं० १४ ॥ ६ **°लीकरणा°** य० ॥ ७ (°क्ताभिन्ना° ?) ॥ ८ **युगपद्भावेषु** य० । अत्र 'युगपदयुगपद्भाविभावेषु' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ९ **एव विसत्य** भा० ॥ १० **°क्तो प्रव°** प्र० ॥

एवं च अविभक्तद्वयात्मकतायां द्विविधः कर्माख्यपुरुषकारस्य प्रवृत्तिप्रबन्धः साध्योऽसाध्यश्च तीव्रमन्दादिहेतूपसेवनसञ्चितत्वात् साध्यासाध्यव्याधिवत्, चलनीयोऽविचाल्यश्च बद्धाबद्धमूलत्वाद् वृक्ष-हटवत्, निकाचितानिकाचितावयवत्वादयःशलाकाकलापवत् ।

निष्टविधिव्याप्रियमाणत्वात् । उत्कर्षापकर्षाविष्टानिष्टौ, तयोर्विधिः तत्प्राप्त्युपायः प्रमादाप्रमादौ, तौ च दृश्येते । तस्मादयं पुरुषश्चेतनोऽचेतनश्च प्रमादाप्रमादयोरिष्टानिष्टविध्योर्व्याप्रियमाणत्वात् । अतोऽचेतनकर्मानुभावोपलम्भाच्चेतनपुरुषानुभावोपलम्भाच्चासौ[1] तद्द्वयपरमार्थः । तस्माच्च कर्मापि प्रवर्तयितृ । **अथैवं नेष्यते** त्वया, यदि च पुरुषश्चेतनशक्तिरेवेष्यते[2] **ततोऽसौ भवेत् पशुवद् मनुष्यत्वेनापि** गम्यागम्यभक्ष्याभक्ष्याद्यविशेषज्ञो यथा पशुर्भवत्यल्पचेतनस्तथा मनुष्यत्वेऽपि भवेत् । व्यक्तवर्णपदवाक्यार्थप्रत्यायनसमर्थशब्दोच्चारणादिशक्तिश्च मनुष्यस्तद्वत् पशुरपि भवेत् । कृम्यादिवद् मनुष्योऽपि[3] जडः स्यात्, मनुष्यवत् कृमिरपि पण्डितः स्यादित्यादि । तस्मात् कर्मापि चेतनं पुरुषोऽप्यचेतनः, तच्चोभयमविभक्तमिति ग्राह्यम् ।

एवं च कृत्वा तस्यैव[4] तु उदितवद**विभक्तद्वयात्मक**तायां चेतनाचेतनैकात्मतायां[5] सत्यां **द्विविधः प्रवृत्तिप्रबन्धः** फलपरिणामप्रबन्धः प्राग्भवीय**कर्माख्यपुरुषकारस्य साध्योऽसाध्यश्च,** तत्सञ्चयहेतुभूतोपादानकालपरिणामद्वैविध्यात् । तद्दर्शयति – **तीव्रमन्दादिहेतूपसेवनसञ्चितत्वा**दिति, तीव्रेण योगपरिणामेन सञ्चितं कर्म तीव्रानुभावस्थितिप्रदेशं बद्धपुष्टनिकाचितं[6] सुखदुःखफलमुपक्रमितुमशक्यत्वादसाध्यमवश्यं विपच्यते । मन्देन तु सञ्चितं मन्दानुभावादि शक्यत्वादुपक्रम्यम् । **साध्यासाध्यव्याधिवत्,** यथा व्याधिर्ज्वरातिसारादिर्निदानमन्दतीव्रत्वाभ्यां[7] साध्योऽसाध्यश्च भवति तथा कर्माख्यपुरुषकारप्रवृत्तिप्रबन्धः । साध्यासाध्यस्वभावव्याख्यानं च – **चलनीयोऽविचाल्यश्च[8] बद्धाबद्धमूलत्वाद् वृक्षहटवत्[9] ।** यथासङ्ख्यं साध्यश्चलयितव्यः, इतरोऽविचाल्यो[10] न कम्पयितव्यः । प्रथमो बद्धमूलो वृक्षवत्, द्वितीयो हटवदबद्धमूलः[11], दुःखविश्लेष्यः सुखविश्लेष्यश्चेत्यर्थः, **निकाचितानिकाचितावयवत्वात्,**

२६२-२

---

१ °**च्चेति त**° य० ॥ २ °**शक्तिरेव प्रोच्यते** य० ॥ ३ **ष्योऽतिजडः** भा० डे० लीं० वि० । °**ष्योसिजडः** पा० रं० ही० ॥ ४ **तस्यैव वतूदित**° प्र० ॥ ५ °**त्मकायां** भा० ॥ ६ "अट्ठमे कम्मप्पवाए पुव्वे कम्मं पण्णविज्जति, जीवस्स य कम्मस्स य कहं बंधो ? तत्थ ते भणंति बद्धं पुट्ठं णिकाइयं । बद्धं जहा सुइकलावो, पुट्ठं जहा घणणिरंतरातो कयाओ, णिकाईयं जहा तावेऊण पिट्टिया, एवं कम्मं रागदोसेहिं जीवो पढमं बंधइ, पच्छा तं परिणामं अमुंचंतो पुट्ठं करेति, तेणेव संकिलिट्ठपरिणामेण तं अमुंचंतो किंचि णिकाएति । णिकाईयं णिरुवक्कमं, उदएण णवरि वेइज्जइ, अन्नहा तं ण वेइज्जति ।" इति **उत्तराध्ययनसूत्रस्य शान्तिसूरिविरचितायां** टीकायां तृतीयाध्ययने **गोष्ठामाहिलनिह्नववादे;** एतादृश एव पाठो **नेमिचन्द्रसूरिरचितायामुत्तराध्ययनसूत्रवृत्तावपि,** किन्तु तत्र "बद्धं जहा सुइकलावो तंतुबद्धो, पुट्ठं जहा किट्टेण घणनिरंतराओ कयाओ" इति विशिष्टः पाठः ॥ ७ °**रातीसा**° भा० ॥ ८ °**चल्यश्च** प्र० ॥ ९ **हट्ट**° पा० । "जइ तं काहिसि भावं जा जा दिच्छसि नारिओ । वायाविद्धुव्व **हडो** अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥ [उत्तराध्य० २२।४४] । यदि त्वं करिष्यसि भावं प्रक्रमाद् भोगाभिलाषरूपं या या द्रक्ष्यसि नारीस्तासु तासु इति गम्यते, ततः किम् ? इत्याह – वाताविद्धो **हठः** वनस्पतिविशेषः, स इव अस्थितात्मा भविष्यसि ।" इति **उत्तराध्ययनसूत्रस्य नेमिचन्द्राचार्यरचितायां** वृत्तौ ॥ १० °**चल्यो** य० ॥ ११ **हट्ट**° य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिणमनमपि च कर्मणः पुरुषकारस्य विषयो न च विषयः क्वचित्, अप्राप्तप्राप्तविपरिणामावस्थत्वात्, पुष्पतुगूद्दढफलवत्।

एवं च कृत्वा क्रियासहायश्च स फलं प्रयच्छति एकश्च, सापेक्षानपेक्षशक्तित्वात्, भारोत्पाटवत्। सोपक्रमस्य कर्मात्मात्मनः पुरुषात्मना······तृणदाहवद्वा।

निकाचिताः कर्मप्रदेशाः तीव्रक्रोधाद्यशुभपरिणामेन, अनिकाचिता मन्दपरिणामेन । किमिव? **अयःशलाकाकलापवत्**, यथा सूत्रमात्रोपनिबद्धा अयःशलाका एकशलाकापकर्षमात्रप्रयासेन सर्वाः प्रच्यवन्ते, प्रतप्तसम्पृक्तप्रहताः सङ्घर्षणादृते न शक्याः पृथक् कर्तुम्, तथा कर्मविधिः ।

परिणमनमपि चेत्यादि यावत् **पुष्पतु[1]ग्-द्द[2]ढफलवत्।** तस्यापि पूर्वकर्मणः तीव्रमन्दादिहेतूपसेवनसञ्चितस्य फलदानमिहत्य**पुरुषकारस्य** कृष्यध्ययनसेवावा[3]णिज्याद्यनुष्ठानस्य **विषयो न च विषयः क्वचिदिति, अप्राप्तप्राप्तविपरिणामावस्थत्वात्,** यथासङ्ख्यं स्वयमप्राप्तविपरिणामावस्थं पुरुषकारविपरि[4]णाम्यं पुरुषकारेण विपाच्यते विषयत्वमानीयते उदीरणाकरणेनोदीर्यते, प्राप्तविपरिणामावस्थं तु [5]वैयर्थ्यान्न विषयीक्रियते पुरुषकारेण न विपाच्यते नोदीर्यते स्वयमेव विपक्वत्वात् । किमिव? **पुष्पतुग्द्द[6]ढफलवत्,** पुष्पतोकं द्दढफलं च यथासङ्ख्यं दृष्टान्तौ । यथा द्दढफलं स्वयमेव [7]विपच्यमानं न पाच्यते पुरुषकारेण, पुष्पतोकं तु वृक्षायुर्वेदविधिना विपाच्यते । अथवा पुष्पतोकस्यैवोत्पन्नस्य द्दढं फलमस्य २६३-१ भावीति द्दढफलं तादृक्छक्त्यैवोत्पन्नमिति तस्यैव भवति तच्छक्तिविरहितस्य न भवतीति तदेवाप्राप्तपाककालं कदलकाम्रादिफलं कोद्रवपलालादिवेष्टितं निखातं वा पार्श्वधूमादिभिर्विपाच्यते, नेतरदवश्यं विनाशीति । अथवा अप्राप्तविपरिणामावस्थं पुष्पतोकमतिमृदुत्वादुपक्रमेणापि न [8]पाच्यते पाचनायोग्यत्वात् [9]कुथ्यति विलीयते वा, द्दढफलं तु पाचनयोग्यं प्राप्तकालत्वात् पाच्यते ।

एवं च कृत्वा क्रियासहायश्च स फलं प्रयच्छति एकश्च सहायीभूतायाः क्रियाया अपि तच्छक्तिमात्रत्वात्, क्रियासहा[10]यस्य पुरुषकारस्य फलप्रदानं **सापेक्षानपेक्षशक्तित्वात्, भारोत्पाटवत्,** यथा भारमुत्पाटयन् कश्चित् पुरुषः स्वयमेवोत्पाटयति, कश्चित् पुनः सहायापेक्षः, एवं पुरुषकारोऽपि फलप्रदाने सहायां क्रियामपेक्षते कश्चित् कश्चिन्नेति सोपक्रमस्य क्रियापेक्षा न निरुपक्रमस्य । तत्र **सोप-**

---

१ "तोकम् तुगिति च तौतेः के किकि च" इति **हैमधातुपारायणे** । "भीण्शलिवलिकल्यतिमर्त्यर्चिमृजिकुस्तुदाधाराआकापानिहानवृशुभ्यः कः ॥ २१ ॥ एभ्यः कप्रत्ययो भवति ।······तुंक् हिंसावृत्तिपूरणेषु, **तोकमपत्यम्** ॥······॥ २१ ॥ तोः किक् ॥ ८६९ ॥ तुंक् वृत्त्यादावित्यस्मात् किक् प्रत्ययो भवति, ककारः कित्कार्यार्थः, इकार उच्चारणार्थः, **तुक्** अपत्यम् ॥ ८६९ ॥" इति **सिद्धहेमशब्दानुशासनबृहद्वृत्तौ उणादिसूत्रेषु** । एवं च पुष्पतुगिति फलविशेषः पुष्पजन्यं वा फलमित्यर्थः ॥ २ °**द्दट्ठफ**° प्र० ॥ ३ °**वणि**° भा० ॥ ४° **णम्यं** प्र० ॥ ५ **वैपर्यान्न** प्र० । अत्र **विपर्ययान्न** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ६ °**द्दट्ठ**° य० । द्दढफलं नालिकेरादिकम् ॥ ७ **विपाच्य**° प्र० ॥ ८ **पच्यते** प्र० ॥ ९ **कुथ्यति व्यलीयते** य० । **कुथ्यवि लीयते** भा० ॥ १० °**यश्चस्य पु**° भा० । °**यश्च पु**° य० । (°क्रियासहायश्च पुरुषकारस्य फलप्रदाने ?) ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवमनयैव दिशा पुरुषकारैकान्तवादः प्रतिषेध्यः। यत्रैकस्य स्वातन्त्र्यं तत्र तत्प्रदर्शिततत्त्वस्य इतरस्यापीति भावनीयम्। तथावगाहादिलक्षणैरस्तिकायैः

क्रमस्य कर्मात्मात्मन इत्यादि यावत् **तृणदाहवद्भे**[1]ति तस्यैव सहैकीभूतस्य आत्मनश्चेतनाचेतनत्वेन **पुरुषात्मने**त्यादिना सापेक्षान् उदयोपशमक्षयोपशमक्षयान् अवस्थाविशेषान् दर्शयति सोदाहरणान्।

एवमनयेत्यादि या[2]**वद्भावनीय**मिति। एवं तावद् द्व्यात्मकतया आत्मकर्मैकान्तवादप्रत्युक्तिदिगियं प्रदर्शिता। **अनयैव दिशा** अनयैव पुरुषकार इत्याद्यद्योक्तन्यायेन तदेव वस्तु कर्मसंज्ञामात्रेण भावयित्वा **पुरुषकारैकान्तवादः प्रतिषेध्यः**। तद्यथा–क[3]र्म च कारणं प्रवर्तयितृत्वात् सुखदुःखोत्कर्षापकर्षविकल्पानुभवावश्यम्भावि, तस्य चैकस्य उक्तवत् स[4]र्वत्वादुपयोगत्वात् पुरुषतापि इत्यादि सर्वमशेषं योजनीयम्, यत् परेणानभ्युपगतमन्यतर[5]दितरत् तदितरस्मिन्नापाद्यमिति, तत आह–**यत्रैकस्य स्वातन्त्र्यं**
२६३-२ [6]**तत्र तत्प्रदर्शिततत्त्वस्य इतरस्यापीति भावनीय**मिति भावनोपायं प्रदर्शयति सामान्येन। तथा विशेष्य भावितमेवास्माभिरिति।

---

१ "अत्राह—चतुर्गतावपि संसारे किं व्यवस्थिता स्थितिरायुष उताकालमृत्युरप्यस्तीति। अत्रोच्यते—द्विविधानि आयूंषि अपवर्तनीयानि अनपवर्तनीयानि च। अनपवर्तनीयानि पुनर्द्विविधानि–सोपक्रमाणि निरुपक्रमाणि च, अपवर्तनीयानि तु नियतं सोपक्रमाणीति। तत्र 'औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषासङ्ख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः।' [तत्त्वार्थ० २।५२]। औपपातिकाश्चरमदेहा उत्तमपुरुषा असङ्ख्येयवर्षायुष इत्येतेऽनपवर्त्यायुषो भवन्ति।······शेषा मनुष्यास्तिर्यग्योनिजाः सोपक्रमा निरुपक्रमाश्चापवर्त्यायुषोऽनपवर्त्यायुषश्च भवन्ति। तत्र येऽपवर्त्यायुषस्तेषां विषशस्त्रकण्टकाग्न्युदकाद्यशिताजीर्णाशनिप्रपातोद्बन्धनश्वापदवज्रनिर्घातादिभिः क्षुत्पिपासाशीतोष्णादिभिश्च द्वन्द्वोपक्रमैरायुरपवर्त्यते, अपवर्तनं शीघ्रमन्तर्मुहूर्तात् कर्मफलोपभोगः, उपक्रमोऽपवर्तननिमित्तम्। अत्राह—यद्यपवर्तते कर्म, तस्मात् कृतनाशः प्रसज्यते यस्मान्न वेद्यते। अथास्त्यायुष्कं कर्म म्रियते च तस्मादकृताभ्यागमः प्रसज्यते, येन सति आयुष्के म्रियते ततश्चायुष्कस्य कर्मण आफल्यं प्रसज्यते, अनिष्टं चैतत्। एकभवस्थिति आयुष्कं कर्म, न जात्यन्तरानुबन्धि। तस्मान्नापवर्तनमायुषोऽस्तीति। अत्रोच्यते—कृतनाशाकृताभ्यागमाफल्यानि कर्मणो न विद्यन्ते, नाप्यायुष्कस्य जात्यन्तरानुबन्धः। किन्तु यथोक्तैरुपक्रमैरभिहतस्य सर्वसंदोहेन उदयप्राप्तमायुष्कं कर्म शीघ्रं पच्यते तदपवर्तनमित्युच्यते, संहतशुष्कतृणराशिदहनवत्। यथा हि संहतस्य शुष्कस्यापि तृणराशेरवयवशः क्रमेण दह्यमानस्य चिरेण दाहो भवति, तस्यैव शिथिलप्रकीर्णोपचितस्य सर्वतो युगपदादीपितस्य पवनोपक्रमाभिहतस्य आशु दाहो भवति, तद्वत्। यथा वा सङ्ख्यानाचार्यः करणलाघवार्थं गुणकारभागहाराभ्यां राशिं छेदादेवापवर्तयति न च सङ्ख्येयस्यार्थस्याभावो भवति, तद्वदुपक्रमाभिहतो मरणसमुद्घातदुःखार्तः कर्मप्रत्ययमनाभोगयोगपूर्वकं करणविशेषमुत्पाद्य फलोपभोगलाघवार्थं कर्मापवर्तयति, न चास्य फलाभाव इति। किञ्चान्यत्, यथा वा धौतपटो जलार्द्र एव संहतश्चिरेण शोषमुपयाति स एव च वितानितः सूर्यरश्मिवाय्वभिहतः क्षिप्रं शोषमुपयाति, न च संहते तस्मिन् प्रभूतस्नेहागमो नापि वितानितेऽकृत्स्नशोषः, तद्वद् यथोक्तनिमित्तापवर्तनैः कर्मणः क्षिप्रं फलोपभोगो भवति न च कृतप्रणाशाकृताभ्यागमाफल्यानि।" इति वाचकवरश्रीउमास्वातिप्रणीते **तत्त्वार्थाधिगमसूत्रभाष्ये** २।५२। "सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म, तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा' [३।२२]। आयुर्विपाकं कर्म द्विविधं सोपक्रमं निरुपक्रमं च। तत्र यथा आर्द्रवस्त्रं वितानितं लघीयसा कालेन शुष्येत् तथा सोपक्रमम्। यथा च तदेव सम्पिण्डितं चिरेण संशुष्येद् एवं निरुपक्रमम्। यथा चाग्निः शुष्के कक्षे मुक्तो वातेन समन्ततो युक्तः क्षेपीयसा कालेन दहेत् तथा सोपक्रमम्। यथा वा स एवाग्निस्तृणराशौ क्रमतोऽवयवेषु न्यस्तश्चिरेण दहेत् तथा निरुपक्रमम्। तदैकभविकमायुष्करं कर्म द्विविधं सोपक्रमं निरुपक्रमं च।" इति **पातञ्जलयोगदर्शनस्य व्यास**प्रणीते भाष्ये ३।२२॥
२ यावदानीय° य०। **यावद्वानीय°** भा०॥ ३ दृश्यतां पृ० ३६५ पं० १॥ **४ सर्वादुप°** प्र०। दृश्यतां पृ० ३६५ पं० २॥ ५ **°रदितरस्मिन्नापाद्यमिति** भा०॥ ६ **तत्तत्प्रदर्शि°** भा०। **तत्तत्प्रतिदर्शि°** य०। (यत्रैकस्य स्वातन्त्र्यं तत् तत्प्रदर्शिततत्त्वस्य ?)॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐक्यं प्रवर्तकप्रवर्त्यन्यायात्, तद्द्रव्यत्वात्, पृथिव्यादिवत्। अवगाहादिद्रव्यं यथा वियदादि एवमात्माद्यपि, तस्यैव तथाभूतेः, उदकादिव्रीहित्वशिवकादिघटत्ववत्।

अविभक्तावगाहावगाह्यावगाहकमेकमेवेदं भवनं मिथ्याग्राहोत्थापितद्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायप्रभेदं सर्वगतेतराभिमतद्रव्य[मात्र]मुत्क्षेपणादि तद-

---

न केवलं कर्मात्मनोरेवाभिन्नैक्यम्, किं तर्हि? यथा चात्र तत्त्वं कर्मात्मनोः सर्वप्रभेदेषु वृत्तं भावितमस्माभिस्तथा **अवगाहादिलक्षणैरस्तिकायैः** अवगाहगतिस्थितिलक्षणैराकाशधर्माधर्माख्यैः सह कर्मात्मविचारोक्तात् **प्रवर्तकप्रवर्त्यन्यायाद्** भावनीयमिति वर्तते। यथा प्रवर्तक एव प्रवर्त्य इत्युक्तं तथा अवगाहादि प्रवर्तकं प्रवर्त्यं चोभयमेकमेव कर्मात्मवदिति। पुनरपि तद्भावनार्थमाह —**तद्द्रव्यत्वात्,** यद् यद् यद्द्रव्यं तत् तत् तत्तत्त्वम्, यथा प्राग् भावितं पृथिव्यादि व्रीह्यादि। पृथिव्यादिवत् तद्द्रव्यत्वमसिद्धमिति चेत्, नेत्युच्यते, **अवगाहादिद्रव्यं यथा वियदादि एवमात्माद्यपि,** यथावगाहोपकारगुणमाकाशं गतिस्थित्युपकारगुणौ धर्माधर्मावेवमात्मपरमाण्वादिद्रव्यमपि। कुतो हेतोः? **तस्यैव तथाभूतेः,** तदेव ह्यात्मपुद्गलद्रव्यं तथा तथावगाहगतिस्थितिरूपेण भवति। किमिव? **उदकादिव्रीहित्वशिवकादिघटत्ववत्,** यथोदकपृथिव्याकाशवातबीजाङ्कुरादय एव व्रीहीभवन्ति युगपद्भाविनो भावाः यथा च क्रमभाविनः शिवक-स्थासक-कुशूलकादय एव घटीभवन्ति तथा आत्माद्यप्यवगाहादि, अवगाहादि वियदादि, वियदाद्यवगाहादि, अवगाहाद्यात्मादि च भवतीति तस्य तस्य तद्द्रव्यत्वम्, तद्द्रव्यत्वात् प्रवर्तकप्रवर्त्यैक्यन्यायोऽवस्थितः। तस्माच्चात्मपुद्गलाकाशधर्माधर्मास्तिकाया एकं तत्त्वं सर्वप्रभेदवृत्तमिति। २६४-१

किञ्चान्यत्, **अविभक्तेत्यादि यावदेकमेवेदं भवनम्।** अवगाहोऽवगाहमानादात्माण्वादेरविभक्तः अवगाह्यमप्याकाशमवगाहधर्मस्य स्वलिङ्गस्य पृथगसिद्धेरवगाहकादविभक्तं द्रव्यार्थविवक्षायां पर्यायस्याभावात्। तस्मादे**कमेवेदं भवन**मिति साधूक्तम्। तत् पुनरन्यत्र प्रतिवादिमते **मिथ्याग्राहोत्थापित**ेत्यादि यावत् **सर्वगतेतराभिमतद्रव्य**मिति। कार्यद्रव्यं पटादि कारणद्रव्यात् तन्त्वादेरन्यत् तन्त्वादि च कार्यादन्यत्, एवं गुणाः पटरक्तश्यामत्वादयः पटात् कारणकार्याख्याः परस्परतश्च, कर्माण्युत्क्षेपणादि क्रियावद्द्रव्यसमवेतं सर्वगतासर्वगतद्रव्याद् गुणेभ्यः परस्परतश्च, द्रव्य-गुण-कर्मभ्यः परस्परतश्चान्ये सामान्यविशेषसमवाया इतीत्थंप्रभेदं तदेवास्मदुक्तं भवनं मिथ्याग्राहोत्थापितं कैश्चित्। यैश्चेत्थं विकल्पितं तान् प्रति **सर्वगतेतराभिमतद्रव्यस्वरूपमुत्क्षेपणादि,** आदिग्रहणाद् रूपरसादिगुणगणः सामान्यविशेषसमवायाश्च, तच्च सर्वगतासर्वगतद्रव्यं परस्परतोऽन्योन्यान्यतरस्वरूपमात्रमिति प्रतिज्ञार्थः। **तदव्यतिरिक्तत्वा**दिति हेतुः, अनन्तरोक्तविधिना च तदव्यतिरिक्तत्वं सिद्धम्। 'तत्स्वरूपमात्रं तदव्यतिरिक्तम्' अनयोः शब्दयोः कोऽर्थभेद इति चेत्, न कश्चिदेतन्नयदर्शनेन, अपरस्तु शब्दबुद्ध्यादिभेदमिच्छतीति तन्मता-

---

१ "गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः ।५।१७। आकाशस्यावगाहः ।५।१८।"–तत्त्वार्थसू० ॥ २ **तत् तत्तत्त्वम्** य० ॥ ३ **°हादे द्रव्यं** भा० । **°हादेव द्रव्यं** य० ॥ ४ **°हादिरवगाहादि** य० । **°हादिरवगाहादिरवगाहादि** भा० ॥ ५ **°वर्त्यैकान्या°** प्र० ॥ ६ **प्रवादि°** भा० ॥ ७ **पउरक्तश्यामत्वादयः पत्रात्** प्र० ॥ ८ **कर्माद्युत्क्षे°** प्र० ॥ ९ **°वेत** प्र० ॥ १० दृश्यतां पृ० ३७० पं० ८, पृ० ३७६ पं० २२ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

व्यतिरिक्तत्वात् घटघटभवनवत्। एवं पचिक्रियापि पृथिव्यादिकाष्ठादिस्वतत्त्वप्रतिनियता क्वचिदप्यनतिक्रान्तद्रव्यस्वरूपा पृथिव्यादिकाष्ठादिद्रव्यमात्रं भवनमेव।

तच्च यदसौ भवति स तस्य भावः पुरुषादिनियमचेतनाचेतनविकल्पद्वैतविशेषणविनिर्मुक्तः। तदेव हि भवनं यत् सर्वात्मकमसङ्ख्यावृत्तार्थम्। अनेन हि प्रवर्तयितृत्वात् सर्वप्रभेदेन भूयते, न न भूयतेऽपि अभावेन प्रागभावादिना, तदात्मान-

---

पेक्ष्यैतदुक्तम्। दृष्टान्तः **घटघटभवनवत्**, यथा घट एव घटभवनं न ततोऽन्यत् ततस्तदव्यतिरिक्तम्। यद्यन्यत् स्याद् घटो न भवेद् भवनादन्यत्वाद् भवनव्यतिरिक्तत्वात् खपुष्पवत्, भवनं वा तस्य न स्यात् ततोऽन्यत्वात् पटभवनवदिति[1]। अतो घटमात्रं घटभवनं तदव्यतिरिक्तं च एवं सर्वगतेतरद्रव्यमात्रमुत्क्षेपणादीति।

एवं पचिक्रियापीत्यादि। काष्ठादिपृथिव्यादिस्वतत्त्वे[2] प्रतिनियता पचिक्रियाया[3] वृत्तिः पूर्वोक्तसर्व-
२६४-२ परिणत्या[4]वृत्तिरूपत्वादन्योन्यस्वरूपापत्तेश्च तेषामैक्यापत्तिश्चेति अनतिक्रान्तं द्रव्यस्य स्वरूपं देशे काले वा यया पचिक्रियया सा **क्वचिदप्यनतिक्रान्तद्रव्यस्वरूपा**। सा चोत्क्षेपणादिवदेव **पृथिव्यादिकाष्ठादिद्रव्यमात्रं भवनमेव।**

'भवनं भावोऽस्तिता' इति पर्यायशब्दाः। **तच्च** भवनं **यदसौ भवति स**[5] **तस्य भावः**, न ततोऽन्यः, स्वभावसम्बन्धार्थस्तु षष्ठ्यपदेशः क्रशयत्यचेतसः [ ] इति वचनात् स्वार्थाभिधायिन्येवाभेदे कर्तृलक्षणा षष्ठी—द्रव्यस्य भवनं द्रव्यमेव भवतीति। स च भावः **पुरुषादिनियमचेतनाचेतनविकल्पद्वैतविशेषणविनिर्मुक्तः**, 'पुरुष एवेदम्, नियतिरेव, काल एव' इत्यादि चेतनमचेतनं च भवतीत्यनेन विकल्पेन द्वैतमिदं मनुष्यादि घटादि चेति विशेष्यते[6] यत् पुरुषादिवादे जाग्रत्सुप्ताद्यवस्थाभेदेन क्रमयौगपद्यादिभेदेन वा तेन विशेषणेन विनिर्मुक्तः स भावो निर्विशेषण एव सर्वात्मकः, घटादि पटो भवति व्रीहिरुदकम् मनुष्यो नभो[7] धर्माधर्मादि, पटोऽपि घटो व्रीह्युदकादि, इत्यविशेषेण सर्वं भवत्येवैकैकमिति **तदेव हि भवनं यत् सर्वात्मकमसङ्ख्यावृत्तार्थम्**[8], न ह्यसन्नाम किञ्चिदस्ति। किं कारणम्? यस्मादनेन **प्रवर्तयितृत्वात् सर्वप्रभेदेन** व्रीह्युदकाकाशाङ्कुरादिना **भूयते, न न भूयतेऽपी**ति द्विः प्रतिषेधाद् भवनमेवाभावव्यावृत्त्या नियम्यते 'भवत्येव, न न भवति' इति। केन पुनर्न भवति? **अभावेन प्रागभावादिना,** अस्मिन् हि नये न केनचित् प्रकारेण किञ्चिन्न भवतीति प्राक्प्रध्वंसान्या-
२६५-१ त्यन्ताभावा न सन्त्येव। कुतः? **तदात्मानतिरिक्तत्वात्**, स स आत्मा तदात्मा तस्यात्मा [वा] तदात्मा, ततोऽनतिरिक्तत्वात्। यद् यद् यदात्मानतिरिक्तं तस्य तस्य प्रागभावाद्यभावः[9], तेनाप्यात्मना भवत्येवेत्यर्थः।

---

१ °**वत्। अतो** भा० ॥ २ °**तत्त्वो** य०। °**तत्त्वेतत्त्वो** भा० ॥ ३ '**पचिक्रियावृत्तिः** पूर्वोक्तसर्वपरिणत्यावृत्तिरूपत्वादन्योन्यस्वरूपापत्तेश्च तेषामैक्यापत्तिश्चेति अनतिक्रान्तं द्रव्यस्य स्वरूपं यया **पचिक्रियाया वृत्तिः** पूर्वोक्तसर्वपरिणत्यावृत्तिरूपत्वादन्योन्यस्वरूपापत्तेश्च तेषामैक्यापत्तिश्चेति अनतिक्रान्तं द्रव्यस्य स्वरूपं यया **पचिक्रियया**' इति द्विर्भूतो भा० प्रतौ पाठः ॥ ४ °**त्याव्यतिरू**° य० ॥ ५ **स चस्य भावः** भा०। **स च स्वभावः** य०। दृश्यतां पृ० १८ पं० २२। पृ० २१९ पं० १६, टि० ५ ॥ ६ **विशिष्यते** य० ॥ ७ **नसोध**° य०। **नसौध**° भा० ॥ ८ °**स्यर्थम्** प्र० ॥ ९ °**भावस्तेनाप्यात्मना** य० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्तत्वात् बालकुमारादिवत् । भूत्वा न भवति अभूत्वा च भवति, अन्यथाऽभावत्वापत्तेः ।

अचेतन इति च चेतनादन्य आत्मैवोक्तः पर्युदासवाचित्वान्नञः, नोच्यते चेतनो न भवत्यचेतन इति चेतना न भवत्यचेतना इति ज्ञानादि न भवत्यज्ञानादिर्वा इति ।

किमिव ? **बालकुमारादिवत्**, यथा 'बालः कुमारो युवा मध्यमः स्थविरो वा' इति देवदत्त एव तेन तेन प्रकारेण भवति [1]बालकाले कौमाराभावेन कौमारे[ऽ]बालभावेन यज्ञदत्ताद्यन्याभावेन खरविषाणाद्यत्यन्ताभावेन च [2]सर्वैः सर्वदा सर्वत्र सर्वथा च भवति स एव देवदत्तस्तत्तदात्मकस्तथा [3]सर्वद्रव्यभवनमिति । **भूत्वा न भवत्यभूत्वा च भवती**ति, मृत्पिण्डकाले न न भवति घट[स्तद्]व्यतिरिक्तात्मकत्वाद् देवदत्तबालकुमारादिवत्, कपालकाले न [न] भवति घटः तद्व्यतिरिक्तात्मकत्वाद् देवदत्तबालकुमारादिवत् । कस्मात् ? **अन्यथाऽभावत्वापत्ते**रसत्त्वापत्तेः । यद्येवं नेष्यते त्वया 'प्रागभावादिनापि भवत्येव' इति, ततस्तस्य देवदत्तादेर्वस्तुनो बालकुमारादिसर्वावस्थात्मपरित्यागे किं तद् देवदत्ताख्यं वस्तु ? कास्तास्तद्व्यतिरिक्ता बालाद्यवस्थाः ? इत्यभाव आपद्यते । न सन्त्यवस्थाः परस्परसम्बन्धाभावाद् वन्ध्यापुत्रवत् । [5]नास्त्यवस्थावत्, अवस्थाव्यतिरेकेणानवधारणात्, वन्ध्यापुत्रवत् ।

अत्राह — 'न चेतनोऽचेतनः' इति नञा प्रतिषेधवाचिना सम्बन्धादचेतनरूपेण चेतनस्य [6]भावाभाव इति । अत्र ब्रूमः — **अचेतन इति च चेतनादन्य आत्मैवोक्तः पर्युदासवाचित्वाद् नञः**, नात्यन्ताभाववाचित्वात् । स कोऽन्यश्चेतनादन्य आत्मैव इति चेत्, उच्यते — स्पर्शास्पर्शादि[7]धर्मणस्तस्यैवोपयोगाद्यस्पर्शरूपादन्येन रूपेण स एव स्पर्शादिमान् ज्ञानावरणादिकर्मरूप आत्मा, तेन चेतनादन्येनाचेतन इति चेतन एवोक्तः, न तु भवन्मतात्यन्तचेतनाभावरूपेण, प्रसज्यप्रतिषेधाख्यस्य विकल्पान्तरस्याभावाद् २६५ २
नोच्यते 'चेतनो न भवत्यचेतनः' इति । तथा **'चेतना न भवत्यचेतना' इति** नोच्यते[ऽ]ज्ञानादि ज्ञानदर्शनवीर्यादि न भवतीति, किं तर्हि ? चेतनाया अन्याऽचेतना, का सा ? स्पर्शादीति । तथा **ज्ञानादि न भवतीत्यज्ञानादि** नोच्यते, किं तर्हि ? ज्ञानादेरन्यदज्ञानादि स्पर्शाद्येव । अचेतना[ऽ]ज्ञानयोर्भूय उदाहरणं चेतनात्मनो द्रव्यस्य निर्देशेनापरितुष्टस्य परस्य तदभिप्रेतपर्यायनिर्देशेन प्रतिपादनार्थम्, **अज्ञानादि**[8]र्वेति, कियती वोदाहरणमाला क्रियते ? योऽप्यज्ञान-संशय-विपर्ययज्ञानादिर्ज्ञानाद् भिन्न इत्यभिमतो धर्मकलापः सोऽपि [9]ज्ञानाज्ञानात्मात्मरूपादेर्भिन्न एवेति तत्रापि न तु ज्ञानादिर्न भवत्यज्ञानादिरित्युच्यते, किं तर्हि ? ज्ञानादेरन्य एवाज्ञानादिरित्यात्मैव अज्ञानादिरूपेणोच्यते इति ।

---

१ अत्र 'बालकालेऽकौमारभावेन' इत्यपि पाठः स्यात् ॥ २ **सर्वैसर्वदा** प्र० ॥ ३ **सर्वं** वि० ॥ ४ °**रास**° प्र० ॥ ५ **नास्यव**° भा० । **नास्याव**° य० ॥ ६ **भावाभावाभाव** य० ॥ ७ °**धर्माण**° प्र० ॥ ८ °**द्येवाचेतनाज्ञानयो**° प्र० ॥ ९ **ज्ञानात्मात्मात्मरू**° भा० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

यद्येष न्यायो नेष्यते ततः तथा सर्वतो व्यावृत्तेरयुक्तः प्रसज्यप्रतिषेधः, स्वतोऽपि व्यावृत्तेः खपुष्पवदसत्त्वात्। अन्यत्वाच्च तत्त्व एव प्रागभावादिव्यावृत्तेर्बालकुमारादिवत् तत्त्व एव चेतना।

सा पुनर्ज्ञानदर्शनादिसंवेदना निर्वृत्त्युपकरणलब्धितत्त्व उपयोगात्मा। अतो रूपादिमदप्यात्मा, चेतनत्वात्, अभिमतात्मवत्, तस्यैव तथाभूतत्वादा मुक्तेः। एवं च कृत्वा ज्ञानं न ज्ञानं पुद्गलात्मकत्वाद् रूपादिवत्, अज्ञानमपि च ज्ञानं तत एव तद्वत्, चेतनोऽचेतनः, अचेतनश्चेतन इत्यादि।

यद्येष[1] न्यायो नेष्यतेऽन्यः स प्रसज्यप्रतिषेधे[2] इष्यते चेतनो न भवत्यचेतन इत्यादिरिष्यते त्वया **तत** एवं सति **तथा** तेन प्रकारेण **सर्वतो व्यावृत्तिः**, घटः पटो न भवतीति पटोऽपि घटो न भवतीति परस्परव्यावृत्तिवत् सर्वभावव्यावृत्तेश्चेतनाचेतनयोर्व्यावृत्तिः। ततश्च **सर्वतो व्यावृत्तेरयुक्तः प्रसज्यप्रतिषेधो** निर्विशेषव्यावृत्त्यर्थत्वाद् नञ इति। स्यान्मतम्—स्वतस्त्वव्यावृत्तिर्भविष्यति घटवदिति[3] चेत्, उच्यते—**स्वतोऽपि व्यावृत्तेः**, स्वतोऽपि तर्हि व्यावृत्तं तत् परपरिकल्पितं वस्तु प्राप्नोति सर्वतो व्यावृत्तत्वात् **खपुष्पवत्**। तस्माच्चावस्तुत्वं स्वपरतो व्यावृत्तत्वात् खपुष्पवदेवेति। तत आह—**असत्त्वा**दिति। तस्मात् स्थितमेतत्—असत्त्वप्रसङ्गात् प्रसज्यप्रतिषेधाभावाच्च प्रागभावादिव्यावृत्तेरन्यत्वमर्थः 'बालः
२६६-१ कुमारो न भवति' इत्यादिषु। तत उपसंह्रियते मौल एव **अन्यत्वाच्च तत्त्व एव प्रागभावादिव्यावृत्तेर्बालकुमारादिवत्[4] तत्त्वमेव चेतने**ति।

सा पुनरिदानीं चेतना किंस्वरूपा? इति वाच्या, उच्यते—**ज्ञानदर्शनादिसंवेदना**, साकारानाकारोपयोगौ सप्रभेदौ ज्ञानदर्शनग्रहणेन गृहीतौ, **आदि**ग्रहणेन सुखदुःखरागद्वेषभयादिसंवेदना गृहीता। सापि च **निर्वृत्त्युपकरणलब्धितत्त्व उपयोगात्मा**, इन्द्रियाणां चक्षुरादीनां निर्वृत्तिः पक्ष्मपुटकृष्णसारादित्वेन निष्पत्तिः, उपकरणं तु मसूरकातिमुक्तककदम्बक्षुरप्रानेकाकारतया[5] प्रदेशानां निष्पत्तिः, एतन्नयदर्शनेन वाञ्जनपादाभ्यङ्गप्रदीपाद्यप्युपकारकमुपलब्धेः सर्वमुपकरणम्। लब्धिः पुनर्निर्वृत्तेः प्राक् पश्चाच्चात्मना पूर्वोपात्तं तद्योग्यनामकर्मोदयजं द्रव्यं ज्ञानदर्शनावरणयोर्वीर्यान्तरायस्य च क्षयक्षयोपशमौ, तत्तत्त्व उपयोगो ज्ञानदर्शनस्वतत्त्वव्यक्तिः, स एव चात्मा। ततः किमिति चेत्, **अतो रूपादिमदप्यात्मा**, यदेतद् रूपरसादिधर्म मूर्तपौद्गलमाध्यात्मिकमिन्द्रियपाण्याद्यवयवात्मकं शरीरं तदपि आत्मैव। कुतः? **चेतनत्वात्**, [6]चेतनत्वं चास्यानन्तरं प्रतिपादितम्। किमिव? **[7]अभिमतात्मवत्**, यथा शुद्धोपयोगलक्षणः केवली आत्मा चेतनत्वात् तथेन्द्रियाद्यपि रूपादिमदिति। तत् समर्थयति—**तस्यैव तथाभूतत्वादा मुक्तेः**, स एव हि द्रव्यकेवली संसारावस्थ उपयोगात्मा [8]तथाभूतो निरावरणज्ञानदर्शनः[9] संवृत्तोऽभिमतात्मा, तस्मादा मुक्तेस्तस्यैव तथाभूतत्वादिहापि संसारे स एवेति रूपादिमतः पुरुषस्य मुक्तस्य चोपयोगात्मकत्वादविशेष
२६६-२ एव। **एवं च कृत्वा ज्ञानं न ज्ञानं पुद्गलात्मकत्वाद् रूपादिवत्**, पुद्गलात्मकत्वं च ज्ञानस्यानन्तरं

---

१ यद्येव कन्यायो प्र० ॥ २ °धाख्यंते चेतनो य० ॥ ३ °वच्चेत् य० ॥ ४ °कुमारादिरूपादिवत् य० ॥ ५ °प्रागनेका° प्र०। दृश्यतां पृ० १८३ पं० २० ॥ ६ चेतनस्यां चास्या° भा०। चेतनस्य चास्या° य० ॥ ७ अभिहिता° भा० ॥ ८ तथातथा° भा० ॥ ९ °दर्शनसंवृ° प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं चायं सङ्ग्रहेषु द्रव्यप्रकृतिनयः। स च सङ्ग्रहैकदेशत्वाद् द्रव्यार्थः।

द्रव्यशब्दोऽपि कर्तृसाधनः। द्रव्यमपि द्रवति याति न विच्छिद्यते भिन्नरूपव्याप्त्या। ननु कर्मणि कर्मसाधनत्वमुदितम्। ननु कर्मसाधनव्याख्यानेन तेनैव कर्तृसाधनत्वमेव व्यवस्थापितम्, 'द्रव्येणैव द्रव्यं क्रियते व्रीहिवत्' इति कर्तरि तृतीयया कर्तृसाधनत्वाभ्युपगमात्।

एतस्मिंश्च नये द्रव्यमेव शब्दार्थो नित्यः सर्वात्मकः। अन्वाह च — पृथिवीधातौ किं सत्यम्? विकल्पः। विकल्पे किं सत्यम्? ज्ञानम्। ज्ञाने किं सत्यम्? ओम्। तद् ब्रह्म। [ ]

प्रतिपादितम्। **अज्ञानमपि च ज्ञानं तत एव तद्वत्, चेतनोऽचेतनः, अचेतनश्चेतन** इत्यनेकधा सर्वसर्वात्मकतां भावयति। **इत्यादिग्रहणान्निदर्शनमात्रमेतद्** भावितम्, अनया दिशा सर्वत्र भावनीयमिति।

आह — आर्षोक्तेषु नयेषु कतमोऽयम्? इति, अत्रोच्यते — **एवं चायं सङ्ग्रहेषु।** सङ्ग्रहः शतविकल्पः, **एक्केको य सतविधो सत्त** [2]**णयसता** [3]**हवंति ते चेवं** [आवनि० ७५९] इति वचनात्। तेषु सङ्ग्रहेषु अयं विधिनियमनयो द्रष्टव्यो य एवं वर्णितः। तेऽपि च सङ्ग्रहाः सङ्ग्रहेण त्रिविधा भवन्ति द्रव्य-स्थित-नयप्रकृतयः। ↑[4]द्रव्यप्रकृतयः↑ कर्म-पुरुषकाराद्येकान्तवादाः, स्थितप्रकृतयः पुरुष-काल-नियत्यादिवादाः, नयप्रकृतयः प्रकृतीश्वरादिकारणवादाः। तेषु चायं [5]नयः स्थितप्रकृतीनां पुरुष-काल-नियति-स्वभावनयानां विरोधिनोरीश्वरनयस्य प्रधाननयस्य चाधिष्ठातृप्रधानाख्ययोर्विपक्षो **द्रव्यप्रकृतिनयो** विधिनियमभङ्गो द्रष्टव्यः। स च **सङ्ग्रहैकदेशत्वाद् द्रव्यार्थः,** नियमात्मकत्वात् [6]पर्यायांशस्पर्शित्वेऽपि सङ्ग्रहैकदेशत्वाद् द्रव्यार्थ एवायमिति।

द्रव्यशब्दोऽपि कर्तृसाधनः, द्रव्यम[7]**पि द्रवती**त्यादिपर्यायशब्दैस्तदर्थं व्याचष्टे, **द्रवति याति न** [8]**विच्छिद्यते भिन्नरूप**[9]**व्याप्त्या** भिन्नानि रूपाणि [10]चेतनाचेतनानि व्रीहिपृथिव्यादीनि देवमनुष्यादीनि च साकल्येन व्याप्नोत्येव न किञ्चिदपि त्यजतीति। चोदक आह — **ननु कर्मणि कर्मसाधनत्वमुदितम्,** कर्मकारणव्याख्यानेऽयं द्रव्यशब्दः कर्मसाधन एवोक्तः '[11]द्रूयत इति द्रव्यम्' इति, कर्मवादश्च विधिनियमभङ्ग इत्युक्तम्, तत् कथमधुनाऽवधार्य द्रवतीति द्रव्यं कर्तृसाधनमुच्यत इति। अत्र विधिनियमनयो ब्रूते पूर्वोक्तमेव स्मारयन् — **ननु कर्मसाधनव्याख्यानेन तेनैव कर्तृसाधनत्वमेव व्यवस्थापित**मिति। तत् २६७-१
कथमिति चेत्, उच्यते — [12]**द्रव्येणैव द्रव्यं क्रियते व्रीहिव**दिति कर्तरि तृतीया 'द्रव्येण' इति, तया कर्तृसाधनत्वाभ्युपगमात् प्रागस्माभिः पुरुषकर्मपृथिवीव्रीह्यादीनामात्मनैवात्मनः कर्तुः कर्मत्वस्य च विस्तरेण वर्णितवत् सत्यां कर्मतायामपि कर्तृत्वं [13]द्रव्यत्वादिति सामान्यार्थस्याविच्छेदात् स्वातन्त्र्यात्।

एतस्मिंश्च नये द्रव्यमेव शब्दार्थः, न पर्यायार्थः पदार्थ इत्यर्थः। स च **नित्यो** विच्छेदा-

---

१ °**णान निद**° भा०। °**णान्न निद**° य० ॥ २ °**नय**° य० ॥ ३ **हवंतेवमिति** य०। दृश्यतां पृ० २९५-१ ॥ ४ ↑ ↑ एतदन्तर्गतः पाठो य० प्रतिषु नास्ति ॥ ५ **नयस्थित**° प्र० ॥ ६ **पर्यायाणांशस्प**° भा०। **पर्यायायांसेस्प**° य० ॥ ७ °**सिति द्र**° य० ॥ ८ **विच्छेद्यते** प्र० ॥ ९ °**पमुपव्या**° य० ॥ १० **चेतनानि** प्र० ॥ ११ दृश्यतां पृ० ३५६ पं० ७ ॥ १२ दृश्यतां पृ० ३५७ पं० १ ॥ १३ (द्रव्यत्वादिसामान्या° ?) ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति । स एष परमार्थः । एतदुक्तं भवति — अतः परं शब्दार्थव्यवहारो निवर्तते निर्विकल्पत्वात्, व्यवहारातीतोऽयमर्थः । अत्रानुवृत्तिव्यावृत्ती अनन्तरोक्तपृथिव्यादिधातुविकल्पज्ञानसत्यत्वानुप्रबन्धसामर्थ्योपहितरूपे यथाभागं प्रसिद्धिं गच्छतः । अत्र उत्पादविनाशशब्दावपि तत्स्थितरूपावेव, ऊर्ध्वपदनम्[1]......... । अनित्यघटादिशब्दा अपि स्वतत्त्वबीजं द्रव्यमेवाविच्छिन्नमाहुः ।

भावादवस्थितत्वाद्वा **सर्वात्मक** एकैकस्य सर्वार्थरूपानुस्यूतत्वात् । **अन्वाह** **चे**ति ज्ञापकमाह, एतमेव नयमनुवर्तमानोऽन्योऽप्याह । **पृथिवीधाता**वित्यादि यावत् **तद् ब्रह्मे**ति । पृथिव्येव पृथिवीधातुः, धृत्यादिधर्म[2]धारणात् । तत्र **किं सत्यम् ? विकल्प** इति स्वयमेव पृष्ट्वा व्याचष्टे । न कदाचिदप्यत्र पृथिवी नामास्ति अश्मसिकतामृल्लोष्टवज्रादीन् विमुच्य, त एव हि विकल्पाः पृथिवी, न पृथिव्येव ते । **विकल्पे किं सत्यम् ? ज्ञानम्**, तेऽपि च विकल्पा ज्ञानादन्ये न सन्ति ज्ञानमेव आत्मकर्मलक्षणं चैतन्यं तथा तथा विजृम्भते, चैतन्यस्यैव व्यवहारमार्गपातित्वात् । **ज्ञाने किं सत्यम् ? ओम्**, अवति रक्षति पाति प्रीयते तृप्यति चेतनाचेतनभेदे स[3]त्यप्येवमादिधात्वर्थात्मना विपरिणममानं कर्मात्मतयैकं भवति येन यथा परिकल्प्यते तत् तथानुवर्तत इत्योम् । त[4]देतद् **ब्रह्म । स एष परमार्थः**, तदेतत् तत्त्वं परमं ब्रह्म बृहदिति । तस्यार्थं कथयति **एतदुक्तं भवति — अतः परं शब्दार्थव्यवहारो निवर्तते निर्विकल्पत्वा**दिति, इयं शब्दार्थव्यवहारगतिर्यावन्निर्विकल्पं ज्ञानमेवैतदिति, अतः परं 'ब्रह्म' इति यत् परं तत्त्वं त[5]त्र ज्ञानमपि
२६७-२ निर्विकल्पं सद् न क्रमते, तद्दर्शयति — **व्यवहारातीतोऽयमर्थः । अय**मिति व्याख्यातमधिगमोपायक्रममात्रं दर्शयति ।

कथम् 'ओम्' इत्येषोऽन्वयव्यतिरेकरहितः शब्दार्थो भवितुमर्हतीति चेत्, को ब्रूतेऽन्वयव्यतिरेकरहित इति ? यस्माद**त्रानुवृत्तिव्यावृत्ती अनन्तरोक्तपृथिव्यादिधातुविकल्पज्ञानसत्यत्वानुप्रबन्धसामर्थ्योपहितरूपे**, पृथिव्यादिधातूनामचेतनाभिमतानां विकल्पसत्यानां चेतनक[6]र्मात्मनोकर्माभिमतानां च ज्ञानसत्यस्वरूपपुरुषत्वेन वा[7]न्वितव्यतिरिक्तानाम् 'ओम्' इति कर्मात्मैक्यापत्त्या तत्सत्यत्वानुप्रबन्धेन शक्त्युपधानं नित्यमेवेत्यन्वयव्यतिरेकवानेवायं शब्दार्थ इति । ते चानुवृत्तिव्यावृत्ती यो यो भागो **यथाभागं प्रसिद्धि**मभिधानाभिधेयव्यवहारात्मिकां 'कर्म' इति 'पुरुषः' इति 'कर्मपुरुषकार इति एक एव' इति वा प्रसिद्धिं **गच्छत** इति ।

स च शब्दार्थोऽनाद्य[नु]प्रबन्धसामर्थ्योपहितानुप्रवृत्तित्वाद् नित्यः । **अत्रोत्पादविनाशशब्दावपि तत्स्थितरूपावेव** नासदुद्भवात्यन्तविनाशरूपाविति, तद्व्याचष्टे — **ऊ[8]र्ध्वपदन**मित्यादि गतार्थम्, यथासङ्ख्यमाविर्भावतिरोभावस्वरूपयोरपि भावाभिधायित्वादवस्थित एवार्थ उत्पद्यते विनश्यतीति चोच्यते तथा

---

१ 'ऊर्ध्वपदनमुत्पादः आविर्भाव इत्यर्थः, विनशनं विनाशस्तिरोभाव इत्यर्थः ।' इत्याशयको मूलपाठः सम्भाव्यतेऽत्र । "ऊर्द्धपत्तिरुत्पत्तिरात्मलाभः प्रत्यक्षोपलब्धिः, विविधमदर्शनं विनाशोऽनुपलब्धिरभावः ।" इति वक्ष्यते **नयचक्रवृत्तौ**, पृ० २९७-१ ॥ २ **°तुर्वेवृत्यादि°** प्र० ॥ ३ **सत्येवमादि°** य० ॥ ४ **तदतद्** य० । **तदथतद्** भा० ॥ ५ **तत्वज्ञान°** प्र० ॥ ६ **°कर्मात्मनेकर्मा** य० । **°कर्त्तात्मनेकर्मा°** भा० ॥ ७ (**चान्वित°** ?) ॥ ८ **ऊर्ध्ववदन°** प्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाक्यार्थोऽपि च पृथक् सर्वं पदम्, सर्वसर्वात्मकत्वात् ।

निबन्धनमप्यस्य आर्षम् — जे एकणामे से बहुणामे [आचाराङ्गसू० १।३।४] **इति** ।

तथा परिणममानः । **अनित्यघटादिशब्दा अपीति**, 'अनित्यः प्रध्वस्तः' इत्यादयो 'घटः पटः' इत्यादयश्च शब्दाः पृथिव्यादिलक्षणा अपि नात्यन्तमुत्पन्नमभूतं [1]वार्थं ब्रुवते, किं तर्हि ? **स्वतत्त्वबीजं द्रव्यमेवाविच्छिन्नमाहुः**, स्वतत्त्वं यदभूत्वा भवति भूत्वा च न भवति तदनित्यम्, [2]समानकर्तृकयोः पूर्वकाले क्त्वाप्रत्ययविधानात् । स एव तु [3]दृश्यादृश्यपरिणामाभ्यां भवति न भवतीति स्वतत्त्वस्य अनित्यत्वस्य बीजं २६८-१
द्रव्यमेवार्थः । घटादि [4]तावत्तदनित्यत्वम्, तस्य बीजमवस्थितं द्रव्यं सामान्यमेव अङ्कुरादेर्व्रीहिवत् । तदेवा[5]विच्छिन्नं महापृथिवीवदनुत्पादव्ययायोगि अवृद्धम् अविचालि कूटस्थं ध्रुवं नान्यदिति पदार्थः ।

वाक्यार्थोऽपि च पृथक् सर्वं पदम्, प्रत्येकं पदं वाक्यम् 'देवदत्त गामभ्याज शुक्लाम्' इत्यत्र देवदत्त एवेतरपदार्थपरिसमाप्तेः कर्मविभक्त्यन्ते गोशब्दे च तथापरिसमाप्तेरितरपदार्थानाम् । तच्च सर्वसर्वात्मकत्वादुक्तन्यायादुपपन्नम् ।

न चैताः स्वमनीषिका उच्यन्ते, किन्तु निबन्धनमप्यस्य दर्शनस्य आर्षमस्ति यतोऽस्य दर्शनस्य विनिर्गम इति तद्दर्शयति — **जे एकणामे से बहुणामे**, यदेकस्य [6]भावः तत् सर्वस्यापि यत् सर्वस्य तदेकस्यापि ।

इति चतुर्थोऽरो नयचक्रस्य समाप्तः प्रथमश्च मार्गो नेमिरित्यर्थः ।
[7]अर्धमेकपुस्तकं समाप्तम् ॥ छ ॥

---

१ **चार्थं** भा० वि० ॥ २ "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" इति **पाणिनीयव्याकरणे** ३।४।२१ ॥ ३ **दृश्यपरि°** प्र० ॥ ४ **तावतद°** भा० ॥ ५ **°वच्छिन्नं** प्र० ॥ ६ **भावा** प्र० । (भवेत् ?) । अत्र **यदेकस्य नाम तत् सर्वस्यापि** इत्यपि पाठः स्यात् ॥ ७ **अर्धमेकमेकपु°** पा० रं० ही० । **अर्धमेकमेकं पु°** वि० । **अर्धमेकं एकपु°** भा० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

॥ णमो त्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

॥ नमः श्रीअन्तरिक्षपार्श्वनाथाय ॥

न्यायागमानुसारिणीवृत्त्यलङ्कृतस्य

नयचक्रस्य

टिप्पणानि

सिद्धचक्रं नमस्कृत्य हृदये प्रणिधाय च ।
नयचक्रमहाशास्त्रे टिप्पणं क्रियते मया ॥

पृ० १ पं० १२. भगवन्तः **श्रीमल्लवादि**क्षमाश्रमणपूज्यपादाः **'विधिनियमभङ्गवृत्ती'**त्यादि [पृ० ९ पं० ६] वक्ष्यमाणैककारिकामात्रं **गाथासूत्रं** व्याचिख्यासवो यं ग्रन्थं विरचयामासुः स सर्वोऽपि मल्लवादिप्रणीतो ग्रन्थो 'विधिनियमभङ्गवृत्ती'त्यादिकारिकया सहितो **नयचक्र**नाम्ना प्रसिद्धः । 'अर'संज्ञकद्वादशप्रकरणविभक्तत्वात् प्राचीन**सप्तशतारनयचक्र**ग्रन्थव्यावृत्त्यर्थं चायं **मल्लवादि**प्रणीतो ग्रन्थो **'द्वादशारनयचक्र'**नाम्नापि क्वचिद् व्यपदिश्यते, तथापि प्रामुख्येन प्राचुर्येण च **नयचक्र**नाम्नैवास्य शास्त्रेषु प्रसिद्धिः । मल्लवादिनापि **'नयचक्राख्यम्'** [पृ० ९ पं० ४] इत्यभिहितत्वात् स्वयं ग्रन्थकृतोऽपि **'नयचक्रम्'** इत्येव नामाभिमतं प्रतीयते। नयचक्रवृत्तिकृतापि प्रायः सर्वत्र **'नयचक्रम्'** इत्येव नाम निर्दिष्टम् । अतोऽस्माभिरपि तदेव स्वीकृतम् ।

---

१ पूज्यपादाचार्यमहाराजश्रीमद्विजय**सिद्धि**सूरीश्वरपट्टशिष्याचार्यमहाराजश्रीमद्विजय**मेघ**सूरीश्वरशिष्यमुनिराजश्री**भुवनविजया**न्तेवासिना मुनिजम्बूविजयेन ।

इदं पुनर्ध्येयम्—न्यायागमानुसारिणीवृत्त्यलङ्कृते नयचक्रे वृत्तेरधस्तनभागेऽपि बहूनि टिप्पणानि बहुषु स्थलेषु तत्र तत्र योजितानि मया । इमानि तु टिप्पणानि सप्तमार[पृ० ५५२]पर्यन्तं नयचक्रस्य मुद्रणानन्तरं मया समारब्धानि पृथग् मुद्रयित्वा च नयचक्रग्रन्थेनैव सह संयोजितानि । अतो यत्र कस्यचिदपि ग्रन्थस्य नामनिर्देशं विना 'पृ० पं० टि०' इत्यभिहितं भवेत् तत्र नयचक्रग्रन्थस्यैव यथाक्रमं 'पृष्ठं' 'पंक्तिः' 'टिप्पणं' वा वेदितव्यम्, यत्र तु 'टिपृ० पं० टि०' इत्यभिहितं भवेत् तत्र पृथग् मुद्रयित्वा नयचक्रग्रन्थेन सह संयोजितानामेतेषां 'टिप्पणानां पृष्ठं' 'पंक्तिः' 'टिप्पणं' वा यथायोगं वेदितव्यम् । यत्र तु 'पृ०' इत्यस्य पुरस्तात् स्थूलाक्षरैः पृष्ठाङ्को निर्दिष्टः तत्र मुद्रितनयचक्रग्रन्थे पार्श्वभागे [In the margin] निर्दिष्टो हस्तलिखिताया 'भा०'प्रतेः पृष्ठाङ्को ज्ञेयः ।

२ "तथाहि पूर्वविद्भिः सकलनयसङ्ग्राहीणि सप्त नयशतानि विहितानि यत्प्रतिबद्धं **सप्तशतारं नयचक्राध्ययन**मासीत् । तत्संग्राहिणः पुनर्द्वादश विध्यादयो यत्प्रतिपादकमिदानीमपि **नयचक्र**मास्ते ।"—इति वादिवेतालशान्तिसूरिकृतायाम् उत्तराध्ययनसूत्रबृहद्वृत्तौ पृ० ६८ । "तथाहि—पूर्वविद्भिः सकलनयसंग्राहीणि सप्त नयशतान्युक्तानि यत्प्रतिपादकं **सप्तशतारं नयचक्रा**-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इदं त्ववधेयम्–मल्लवादिविरचितमिदं नयचक्रशास्त्रं बहुतरमस्माभिः प्रयतितेऽपि न कुत्रचिदप्युपलब्धम्। न केवलं सम्प्रत्येव, अपि तु अतीतेषु सप्तसु वर्षशतेष्वपि ग्रन्थोऽयं लुप्तप्राय आसीदिति प्रतीयते। तथा चाभिहितं प्रभाचन्द्राचार्यैः वैक्रमे १३३४ तमे[1] वर्षे विरचिते **प्रभावकचरिते** मल्लवादिप्रबन्धे—

"गुरुणा गच्छभरश्च योग्ये शिष्ये निवेशितः। **मल्लवादिप्रभौ** को हि स्वौचित्यं प्रविलङ्घयेत् ॥ ६८ ॥

नयचक्रमहाग्रन्थः शिष्याणां पुरतस्तदा। व्याख्यातः परवादीभकुम्भभेदनकेसरी ॥ ६९ ॥

श्रीपद्मचरितं नाम रामायणमुदाहरत्। चतुर्विंशतिरेतस्य सहस्रा ग्रन्थमानतः ॥ ७० ॥

तीर्थं प्रभाव्य वादीन्द्रान् शिष्यान् निष्पाद्य चामलान्। गुरुशिष्यौ गुरुप्रेमबन्धेनेवेयतुर्दिवम् ॥ ७१ ॥

बुद्धानन्द[2]स्तदा मृत्वा विपक्षव्यन्तरोऽजनि। जिनशासनविद्वेषिप्रान्तकालमतेरसौ ॥ ७२ ॥

तेन प्राग्वैरतस्तस्य ग्रन्थद्वयमधिष्ठितम्। विद्यते पुस्तकस्थं तद् वाचितुं स न यच्छति" ॥ ७३ ॥ प्रभावकच०।

एतदुल्लेखदर्शनात् प्रभाचन्द्राचार्यकालेऽपि अस्य **नयचक्र**ग्रन्थस्य लुप्तप्रायत्वमनुमीयते। तथापि **सिंहसूरिगणिवादि-क्षमाश्रमणै**र्विरचिता न्यायागमानुसारिणी **वृत्ति**रस्य उपलभ्यते। अस्यां च वृत्तौ मूल**नयचक्र**ग्रन्थस्य कानिचित् प्रतीकानि तत्र तत्र उपलभ्यन्ते, कियांश्चिदंशश्च [3]अतिदेशादिप्रसङ्गेषु निदर्शितोऽस्ति वृत्तौ। एतत् सर्वं यथायोगं सन्धाय किञ्चिच्च पूरयित्वा अन्यांश्च नानाविषयसम्बन्धिनो बहुतरान् ग्रन्थानवलोक्य इदं **मूलं** नयचक्रं स्वमत्यनुसारेण अस्माभिः संकलितमस्ति। अस्मत्कल्पनासहायकं प्रमाणमपि बहुषु स्थानेषु तत्र तत्रोपदर्शितमस्माभिरुपदर्शयिष्यते च।

अतो **'व्याप्येकस्थम्'** इत्याद्यस्मत्कल्पित**मूल**संवादार्थं पृ० ६ पं० १८-१९ इत्यत्र द्रष्टव्यम्।

पृ० १ पं० १६. **न्यायागमानुसारिणी नयचक्रवालवृत्तिः**। पूज्याः **श्रीसिंहसूरिगणिवादिक्षमाश्रमणा** वृत्तिमिमां विरचयामासुः। यद्यप्येभिः स्वविरचिताया अस्या वृत्तेः [[4]टीकायाः] विशेषतः किमपि नाम नाभिहितं तथापि नवमारपरिसमाप्तौ "इति नियमभङ्गो नवमोऽरः श्री**मल्लवादि**प्रणीत**नयचक्र**टीकायां न्यायागमानुसारिण्यां **सिंहसूरिगणिवादिक्षमा-श्रमण**दृब्धायां समाप्तः।" इत्युल्लेखदर्शनादस्माभिरत्र 'न्यायागमानुसारिणी' [5]इत्यभिहितमिति ध्येयम्। **'नयचक्रवालवृत्तिः'** इति शब्दस्तु **नयचक्र**टीकायां न क्वापि प्रयुक्तः **सिंहसूरिगणिवादिक्षमाश्रमणैः**, किन्तु अस्माभिः संशोधनार्थं संगृहीतासु **नयचक्रवृत्ते**र्हस्तलिखितासु सर्वासु प्रतिषु पत्राणां पार्श्वभागे [In the margin] [6]'नयचक्रवालवृत्तिः' इति लेखो दृश्यते। अत उभयमपीदमनुसन्धाय **'न्यायागमानुसारिणी नयचक्रवालवृत्तिः'** इत्यभिहितमत्रास्माभिरिति ध्येयम्।

ध्ययनमासीत्। उक्तं च–'एक्केक्को य सयविहो सत्त नयसया हवंति एमेव' [आव० नि० गा० ७५९]। सप्तानां च नयशतानां संग्राहकाः पुनरपि विध्यादयो द्वादश नयाः यत्प्ररूपकमिदानीमपि द्वादशारं नयचक्रमस्ति।" इति मलधारि**हेमचन्द्र**सूरिविरचितायाम् अनुयोगद्वारसूत्रवृत्तौ पृ० २६७। "अधुना तु शास्त्रप्रयोजनमुच्यते–सत्स्वपि पूर्वाचार्यविरचितेषु सन्मति-नयावतारादिषु नयशास्त्रेषु अर्हत्प्रणीतनैगमादिप्रत्येकशतसंख्यप्रभेदात्मक**सप्तशतारनयचक्रा**ध्ययनानुसारिषु तस्मिंश्च आर्षे **सप्तशतारनयचक्राध्ययने** च सत्यपि द्वादशारनयचक्रोद्धरणं विस्तरग्रन्थभीरून् संक्षेपाभिवाञ्छिनः शिक्षकजनाननुग्रहीतुं 'कथं नामाल्पीयसा कालेन **नयचक्र**मधीयेरन् इमे सम्यग्दृष्टयः' इत्यनयानुकम्पया संक्षिप्तग्रन्थं बह्वर्थमिदं नयचक्रशास्त्रं श्रीमच्छ्वेतपट**मल्लवादि**क्षमाश्रमणेन विहितं स्वनीतिपराक्रमविजिताशेषप्रतिवादिविजिगीषुचक्रविजयिना।" इति वक्ष्यते **नयचक्रवृत्तौ** ग्रन्थान्ते।

१ "वेदानलशिखिशशधरवर्षे चैत्रस्य धवलसप्तम्याम्। शुक्रे पुनर्वसुदिने सम्पूर्णं पूर्वऋषिचरितम् ॥ २२ ॥"–**प्रभावकच०** ॥ २ **बुद्धानन्दो** नाम बौद्धवादी, स च वादे पराजितो **मल्लवादिना**। "**श्रीवीर**वत्सरादथ शताष्टके चतुरशीतिसंयुक्ते। जिग्ये स **मल्लवादी** बौद्धांस्तद्व्यन्तरांश्चापि ॥ ८३॥" इति **प्रभावकचरिते** विजयसिंहसूरिप्रबन्धे। ३ दृश्यतां पृ० २७ पं० ७–१०, पृ० ३२ पं० ९–१६ इत्यादि। ४ वृत्तिः टीका चेत्येकोऽर्थ इति ध्येयम्। ५ बौद्धाचार्य**मैत्रेय**प्रणीतस्य **असङ्ग**व्याख्यातस्य **वसुबन्धु**-विरचितभाष्यसहितस्य **मध्यान्तविभागस्य स्थिरमति**विरचिता टीका 'आगमानुसारिणी' इति नाम्ना प्रसिद्धा इति ध्येयम्। ६ "३६०. **नयचक्रवालवृत्ति**र्मल्लवादीयद्वादशारनयचक्रतुम्बसूत्रव्याख्यारूपा ससूत्रा १८००० ।" इति **बृहट्टिपनिकायां** पृ० १०। इदं तु ध्येयम्–यदा **मल्लवादि**प्रणीतो नयचक्रग्रन्थो लुप्तप्रायः केवलं सिंहसूरिगणिविरचिता वृत्तिरेवोपलभ्यमाना आसीत तदा संजातैर्गुणरत्नसूरिप्रभृतिभिः **'नयचक्रवाल'**शब्दः प्रयुक्तोऽस्ति, तथाहि—"श्वेताम्बराणां **सम्मतिः नयचक्रवालः स्याद्वादरत्नाकरः रत्नाकरावतारिका तत्त्वार्थः प्रमाणवार्तिकम्**······इत्येवमादयः।" इति षड्दर्शनसमुच्चयस्य बृहद्वृत्तौ गुणरत्नसूरयः। "वन्दे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० २ पं० ५. **द्रव्यार्थादेशात्**। द्रव्यार्थी द्रव्यास्तिकनयः, दृश्यतां पृ० ७ पं० ८–११। द्रव्यार्थादेशाद् द्रव्यास्तिकनयव्यपदेशाद् द्रव्यास्तिकनयविवक्षयेति भावः। "इह ओघतः सप्त नया भवन्ति नैगमादयः। उक्तं च–'नैगमसङ्ग्रहव्यवहारऋजुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः' [तत्त्वार्थ० १।३४]। एते च द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकलक्षणे नयद्वयेऽन्तर्भाव्यन्ते। द्रव्यमेव परमार्थतोऽस्ति न पर्याया इत्यभ्युपगमपरो द्रव्यास्तिकः। पर्याया एव वस्तुतः सन्ति न द्रव्यमित्यभ्युपगमपरः पर्यायास्तिकः। तत्राद्यास्त्रयो द्रव्यास्तिकाः, शेषास्तु पर्यायास्तिकाः।" इति अनुयोगद्वारसूत्रस्य मलधारिहेमचन्द्रसूरिरचितायां वृत्तौ सू० ७२। विस्तरार्थिभिर्दृश्यतां तत्त्वार्थराजवा० १।३३।

पृ० २ पं० ५. **एकपरमाणुः**·········। "**स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः** ।५।२३। 'स्पर्शः रसः गन्धः वर्णः' इत्येवंलक्षणाः पुद्गला भवन्ति। तत्र स्पर्शोऽष्टविधः–कठिनो मृदुर्गुरुर्लघुः शीत उष्णः स्निग्धः रूक्ष इति। रसः पञ्चविधः—तिक्तः कटुः कषायः अम्लः मधुर इति। गन्धो द्विविधः–सुरभिरसुरभिश्च। वर्णः पञ्चविधः–कृष्णो नीलो लोहितः पीतः शुक्ल इति। ······सर्वे एवैते स्पर्शादयः पुद्गलेष्वेव भवन्तीति। अतः पुद्गलास्तद्वन्तः। ·········त एते पुद्गलाः समासतो द्विविधा भवन्ति, तद्यथा—**अणवः स्कन्धाश्च** ।५।२५।···तत्र अणवोऽबद्धाः, स्कन्धास्तु बद्धा एव।"–तत्त्वार्थभा०।

पृ० २ पं० ६. **स्वाभाविकैः**। "कथं पुनरेकस्य वस्तुनो युगपदनन्तधर्मात्मकत्वम्? अत्रोच्यते–सर्वमेव वस्तु तावत् सपर्यायम्। ते च पर्याया द्विविधा रूपरसादयो युगपद्भाविनः, नवपुराणादयस्तु क्रमभाविनः। पुनः शब्दार्थपर्यायभेदात् सर्वेऽपि द्विविधाः। तत्र 'इन्द्रो दुश्च्यवनो हरिः' इत्यादिशब्दैर्येऽभिलप्यन्ते ते सर्वेऽपि शब्दपर्यायाः। ये त्वभिलपितुं न शक्यन्ते श्रुतज्ञानविषयत्वातिक्रान्ताः केवलादिज्ञानविषयास्तेऽर्थपर्यायाः। पुनरेते द्विविधाः स्वपर्यायाः परपर्यायाश्च। पुनस्तेऽपि केचित् **स्वाभाविकाः**, केचित्तु पूर्वापरादिशब्दवत् **आपेक्षिकाः**। पुनरेतेऽपि अतीतानागतवर्तमानकालभेदात् त्रिविधा इत्यादिना प्रकारेण समयानुसारतः सुधिया वस्तुनो युगपदनन्तधर्मात्मकत्वं भावनीयम्।"–विशेषाव० भा० मलधारिवृ० पृ० ८९४–५, का० २१८०।

पृ० २ पं० ६. **पुरस्कृतैः पश्चात्कृतैश्च**। 'पुरस्कृतैः' अनागतकालभाविभिः 'पश्चात्कृतैः' अतीतैरित्यर्थः। तुलना–"एगमेगस्स णं भंते! नेरइयस्स केवइया वेदणासमुग्घाया अतीता? गोयमा! अणंता। केवइया **पुरेक्खडा**? गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सई नत्थि।" –प्रज्ञापनासू० ३६।३३२, अत्र "**पुरस्कृता** अनागतकालभाविन इति तात्पर्यार्थः" इति व्याख्यातं मलयगिरिसूरिभिः। "जता णं उत्तरद्धे वासाणं पढमे समए पडिवज्जति तता णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमपच्चत्थिमेणं अणंतर**पुरक्खड**कालसमयंसि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ···जया णं पच्चत्थिमेणं वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तता णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं अणंतर**पच्छाकड**कालसमयंसि वासाणं पढमे समए पडिवण्णे भवति।"–सूर्यप्रज्ञप्ति सू० २९।

पृ० २ पं० ६. **द्व्यणुकादिभिः सांयोगिकैः**······**वैस्रसिकैः**। अत्र सांयोगिकैः संयोगजन्यैः संघातजन्यैरित्यर्थः। "स्कन्धास्तावत् **संघातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते** ।५।२६। संघाताद् भेदात् संघातभेदादिति एभ्यस्त्रिभ्यः कारणेभ्यः स्कन्धा उत्पद्यन्ते द्विप्रदेशादयः। तद्यथा–द्वयोः परमाण्वोः संघाताद् द्विप्रदेशः, द्विप्रदेशस्याणोश्च संघातात् त्रिप्रदेशः, एवं संख्येयानामसंख्येयानामनन्तानामनन्तानन्तानां च प्रदेशानां संघातात् तावत्प्रदेशाः। एषामेव भेदाद् द्विप्रदेशपर्यन्ताः। एत एव संघातभेदाभ्यामेकसामयिकाभ्यां द्विप्रदेशादयः स्कन्धा उत्पद्यन्ते अन्यस्य संघातेन अन्यतो भेदेनेति।"–तत्त्वार्थभा०।

महास्कन्धपर्यन्तैर्वैस्रसिकैः। "खंधो वि वीससाए···॥ ३९४ ॥ स्कन्धः **अचित्तमहास्कन्धः**, सोऽपि 'विस्रसया' केवलेन विस्रसापरिणामेन भवति, न तु जीवप्रयोगेण।"–विशेषाव०भा०मलधारिवृ०। "**बन्धस्त्रिविधः** प्रयोग-

---

विशेषणवतीं सम्मति–नयचक्रवाल–तत्त्वार्थान्। ज्योतिष्करण्ड–सिद्धप्राभृत–वसुदेवहिण्डींश्च ॥ ४२ ॥" इति जिनागमस्तवे जिनप्रभसूरयः। एतेषां ग्रन्थकाराणां समये मल्लवादिप्रणीतनयचक्रस्य अनुपलभ्यमानत्वात् केवलं सिंहसूरिगणिक्षमाश्रमणविरचितनयचक्रवृत्तेरेव उपलभ्यमानत्वाच्च 'एतैर्ग्रन्थकृद्भिः नयचक्रं मनसिकृत्य नयचक्रवाल इत्यभिहितमाहोस्विद् नयचक्रवृत्तिं मनसि निधाय' इति तु सुधीभिः स्वयमेव विचारणीयम्। यदा तु मल्लवादिकृतं नयचक्रमुपलभ्यमानमासीत् तदानीन्तनेषु केषुचिदपि ग्रन्थेषु 'नयचक्रवाल'शब्दोल्लेखो नास्माभिः क्वचिदपि दृष्ट इत्यपि ध्येयम्।

१ "बन्धनं बन्धः परस्पराश्लेषलक्षणः। प्रयोगो जीवव्यापारः, तेन घटितो बन्धः प्रायोगिकः औदारिकादिशरीरजतुकाष्ठादिविषयः। विस्रसा स्वभावः। प्रयोगनिरपेक्षो विस्रसाबन्धः······विद्युदुल्काजलधराग्नीन्द्रधनुःप्रभृतिः विषमगुणविशेषपरिणतपरमाणुप्रभवः स्कन्धपरिणामः।"—तत्त्वार्थ० सिद्धसेनवृ० ५।२४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन्धो विस्रसाबन्धो मिश्र इति।···स्थौल्यमपि द्विविधम्–अन्त्यमापेक्षिकं च संघातपरिणामापेक्षमेव भवति। तत्रान्त्यं सर्वलोकव्यापिनि महास्कन्धे भवति। आपेक्षिकं बदरादिभ्य आमलकादिष्विति।”–तत्त्वार्थभा० ५।२४। “उप्पाओ दुवियप्पो पओगजणिओ अ वीससा चेव।···॥३।३२॥ द्विभेद उत्पादः पुरुषेतरकारकव्यापारजन्यतया।”–सन्मतिवृ० पृ० ६४१।

पृ० २ पं० ६-७. **प्रायोगिकैश्च कार्मणशरीरादिभिः**। “औदारिकवैक्रियाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि।२।३७। औदारिकं वैक्रियम् आहारकं तैजसं कार्मणमित्येतानि पञ्च शरीराणि संसारिणां जीवानां भवन्ति”–तत्त्वार्थभा० २।३७।

पृ० २ पं० ८. **एक्कदवियम्मि**······। “यत् तदन्यतो विभक्तेन स्वरूपेण एकमनेकं च वस्तूक्तं तदनन्तप्रमाणमित्याख्यातुमाह–**एगदवियम्मि जे अत्थपज्जया वयणपज्जया वा वि। तीयाणागयभूया तावइयं तं हवइ दव्वं** ॥१।३१॥ एकस्मिन् जीवादिद्रव्ये **अर्थपर्याया** अर्थग्राहकाः सङ्ग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्राख्याः तद्ग्राह्या वा अर्थभेदाः, **वचनपर्यायाः** शब्दनयाः शब्द-समभिरूढ-एवम्भूताः तत्परिच्छेद्या वस्त्वंशा वा, ते च अतीतानागतवर्तमानरूपतया सर्वदा विवर्तन्ते विवृत्ताः विवर्तिष्यन्त इति तेषामानन्त्याद् वस्त्वपि तावत्प्रमाणं भवति। तथाहि—अनन्तकालेन सर्वेण वस्तुना सर्वावस्थानां परस्परानुगमेन आसादितत्वात् अवस्थातुश्चावस्थानां कथञ्चिदनन्यत्वात् घटादिवस्तु पटपुरुषादिरूपेणापि कथञ्चिद् विवृत्तमिति सर्वं सर्वात्मकं कथञ्चिदिति स्थितम्। दृश्यते चैकं पुद्गलद्रव्यमतीतानागतवर्तमानद्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषपरिणामात्मकं युगपत् क्रमेणापि तत् तथाभूतमेव, एकान्तासत उत्पादायोगात् सतश्च निरन्वयविनाशासम्भवादिति प्रतिपादितत्वात्।”–सन्मतिवृ० पृ० ४३०।

पृ० २ पं० १०-११. **गतिस्थित्यवगाह**······**आपेक्षिकैः**······**शरीरादिभिः**। एतत्स्वरूपमित्थं ज्ञेयम्—“**जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्**।१।४। जीवा अजीवा आस्रवा बन्धः संवरो निर्जरा मोक्ष इत्येष सप्तविधोऽर्थस्तत्त्वम्। एते वा सप्त पदार्थास्तत्त्वानि।······**उपयोगो लक्षणम्**।२।८। उपयोगो लक्षणं जीवस्य भवति।······उक्ता जीवाः, अजीवान् वक्ष्यामः—**अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः**।५।१। धर्मास्तिकायोऽधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकायः पुद्गलास्तिकाय इत्यजीवकायाः। तान् लक्षणतः परस्ताद् वक्ष्यामः। ‘काय’ग्रहणं प्रदेशावयवबहुत्वार्थमद्धासमयप्रतिषेधार्थं च। **द्रव्याणि जीवाश्च**।५।२। एते धर्मादयश्चत्वारः प्राणिनश्च पञ्च द्रव्याणि च भवन्ति।······। अत्राह—उक्तं भवता ‘धर्मादीनस्तिकायान् परस्ताल्लक्षणतो वक्ष्यामः’ इति, तत् किमेषां लक्षणमिति। अत्रोच्यते—**गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः**।५।१७। गतिमतां गतेः स्थितिमतां च स्थितेरुपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारो यथासङ्ख्यम्। उपग्रहो निमित्तमपेक्षाकारणं हेतुरित्यनर्थान्तरम्। उपकारः प्रयोजनं गुणोऽर्थ इत्यनर्थान्तरम्। **आकाशस्यावगाहः**।५।१८। अवगाहिनां धर्माधर्मपुद्गलजीवानामवगाह आकाशस्योपकारः धर्माधर्मयोरन्तःप्रवेशसम्भवेन पुद्गलजीवानां संयोगविभागैश्चेति। **शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम्**।५।१९। पञ्चविधानि शरीराणि औदारिकादीनि वाग् मनः प्राणापानाविति पुद्गलानामुपकारः। तत्र शरीराणि यथोक्तानि [२।३७], प्राणापानौ च नामकर्मणि व्याख्यातौ [८।१२]।·········अत्राह—अथ कालस्योपकारः क इति।

---

१ “प्रयोगगतिः जीवपरिणामसम्प्रयुक्ता शरीराहारवर्णगन्धरसस्पर्शसंस्थानविषया”–तत्त्वार्थ०सिद्धसेनवृ० ५।२२। २ दृश्यतां टिपृ० ३ पं० १६। ३ अस्य व्याख्या—“जीवपुद्गलाः क्रियावन्तः, यत्र च गतिः तत्रावश्यतया स्थित्यापि भवितव्यम्। अथवा धर्मद्रव्यस्य सन्निहितत्वात् किमित्यव्याहता गतिरेव सततं न भवति? अविकलकारणकलापसन्निधाववश्यंभाविनी कार्योत्पत्तिः। एवं स्थितिरपि वाच्या। इत्याक्षिप्ते गतिमतामित्याह। स्वत एव गतिपरिणतिर्येषां द्रव्याणां स्थितिपरिणतिश्च तेषामुपग्राहकौ धर्माधर्मावपेक्षाकारणमाकाशकालादिवत्, न निर्वर्तकं कारणम्। निर्वर्तकं हि तदेव जीवद्रव्यं पुद्गलद्रव्यं वा गतिस्थितिक्रियाविष्टम्, धर्माधर्मौ पुनरुपग्राहकौ अनुपघातकौ अनुग्राहकावित्यर्थः। स्वभावत एव हि गतिस्थितिपरिणतानि द्रव्याणि तावुपगृह्णीतः। यथा च सरित्तडागह्रदसमुद्रेष्ववगाहित्वे सति मत्स्यस्य स्वयमेव सञ्जातजिगमिषस्योपग्राहकं जलं निमित्ततयोपकरोति दण्डादिवद् मृदः परिणामिन्याः, नभोवद् वा अपेक्षाकारणम्, हेतुरिति कारणसामान्यप्रतिपत्तिकारि·········न पुनस्तज्जलद्रव्यं गतेः कारणभावं बिभ्राणमगच्छन्तमपि झषं बलात् प्रेर्य गमयति। क्षितिर्वा स्वयमेव तिष्ठतो द्रव्यस्य स्थानभूयमापनीपद्यते, न पुनरतिष्ठद् द्रव्यं बलादवनिरवस्थापयति। व्योम वाऽवगाहमानस्य स्वत एव द्रव्यस्य हेतुतामुपैत्यवगाहं प्रति, न पुनरनवगाहमानमवगाहयति स्वावष्टम्भात्। स्वयमेव च कृषीवलानां कृष्यारम्भमनुतिष्ठतां वर्षमपेक्षाकारणं दृष्टम्, न च नूनकुर्वतस्तांस्तदर्थमारम्भयद् वर्षधारि प्रमितम्।······यदि तर्हि निमित्तकारणं धर्माधर्मौ दण्डादिवदेवं सत्यपेक्षाकारणतैव हीयते, यतो निर्व्यापारमपेक्षाकारणमुच्यते, नैतदेवम्, अपेतयुक्तित्वात्, न हि निर्व्यापारं कारणम्, किं तर्हि? कुर्वत् कारणम्। अपेक्षाकारणं चैतावतोच्यते धर्मादि द्रव्यगतक्रियापरिणाममपेक्षमाणं जीवादिगत्यादिक्रियापरिणतिं पुष्णाति। एवं तर्हि निमित्तापेक्षाकारणयोर्न कश्चिद् विशेषः, अस्ति विशेषः, दण्डादिषु प्रायोगिकी वैस्रसिकी च क्रिया, धर्मादिषु वैस्रसिक्येवेति।”–**तत्त्वार्थ०सिद्धसेनवृ०**।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्रोच्यते—**वर्तना परिणामः क्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य** ।५।२२। तद्यथा—सर्वभावानां वर्तना कालाश्रया वृत्तिः। वर्तना उत्पत्तिः स्थितिः प्रथमसमयाश्रया इत्यर्थः। परिणामो द्विविधः—अनादिरादिमांश्च। तं परस्ताद् वक्ष्यामः। क्रिया गतिः, सा त्रिविधा—प्रयोगगतिः विस्रसागतिः मिश्रिकेति। परत्वापरत्वे त्रिविधे—प्रशंसाकृते क्षेत्रकृते कालकृते इति। तत्र प्रशंसाकृते 'परो धर्मः, परं ज्ञानम्, अपरोऽधर्मः, अपरमज्ञानम्' इति। क्षेत्रकृते एकदिक्कालावस्थितयोर्विप्रकृष्टः परो भवति सन्निकृष्टोऽपरः। कालकृते द्विरष्टवर्षाद् वर्षशतिकः परो भवति, वर्षशतिकाद् द्विरष्टवर्षोऽपरो भवति। तदेवं प्रशंसाक्षेत्रकृते परत्वापरत्वे वर्जयित्वा वर्तनादीनि कालकृतानि कालस्योपकार इति।"—तत्त्वार्थभा०। विस्तरतस्त्वस्यार्थः सिद्धसेनगण्यादिविरचितवृत्तिभ्योऽवगन्तव्यः।

पृ० २ पं० ११. **द्रव्यार्थादिष्टस्य**। द्रव्यार्थिकनयापेक्षया विवक्षितस्येति भावः। दृश्यतां टिपृ० ३ पं० १।

पृ० २ पं० १२. **द्रव्यपर्यायाणां**। "प्रमाणस्य विषयो द्रव्यपर्यायात्मकं वस्तु।१।१।३०।......प्रमाणानां प्रत्यक्षादीनां विषयो गोचरो द्रव्यपर्यायात्मकं वस्तु। द्रवति तांस्तान् पर्यायान् गच्छति इति द्रव्यं ध्रौव्यलक्षणम्। पूर्वोत्तरविवर्तवर्त्यन्वयप्रत्यय-समधिगम्यमूर्ध्वतासामान्यमिति यावत्। परियन्ति उत्पादविनाशधर्माणो भवन्तीति पर्याया विवर्ताः। तच्च ते चात्मा स्वरूपं यस्य तद् द्रव्यपर्यायात्मकं वस्तु परमार्थसदित्यर्थः। यद् वाचकमुख्यः—'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्' [तत्त्वार्थ० ५।२९]। ....'द्रव्यपर्याय'ग्रहणेन द्रव्यैकान्त-पर्यायैकान्तवादिपरिकल्पितविषयव्युदासः। 'आत्म'ग्रहणेन चात्यन्तव्यतिरिक्तद्रव्य-पर्यायवादिकाणादयौगाभ्युपगतविषयनिरासः। यच्छ्रीसिद्धसेनः—'दोहि वि नएहि नीयं सत्थमुलूएण तहवि मिच्छत्तं। जं सविसयप्पहाणत्तणेण अन्नोन्ननिरविक्खा॥'[१] [सन्मति० ३।४९] इति।" इति हेमचन्द्रसूरिप्रणीतायां प्रमाणमीमांसायाम्। अत्र 'गुणपर्यायवद्द्रव्यम्' [पृ० १७ पं० २२] इत्यस्य वक्ष्यमाणं टिप्पणमपि द्रष्टव्यम्।

पृ० २ पं० १२. **सदविशेषात्**। "सर्वमेकं सदविशेषात्" इति तत्त्वार्थभाष्ये संग्रहनयाभिप्रायनिरूपणे १।३५। अस्य सिद्धसेनगणिकृता व्याख्या—"सकलं जगदनेकावयवात्मकमपि सत्तामात्रव्याप्तेरविशेषादेकमुच्यते।" इति।

पृ० ३ पं० १. **अभिधान**...। अभिधानस्य फलं व्यवहारः, प्रत्ययस्य फलं विनिश्चयः।

पृ० ३ पं० ३. **एकमेकमेव**। (एकमेव?)।

पृ० ३ पं० ४. **अर्पणात्**। अर्पणं व्यपदेश आदेशो विवक्षा अपेक्षा इत्येकार्थिकानि।

पृ० ३ पं० ६. **द्रव्य**...। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावापेक्षाभिरित्यर्थः। जैनदर्शनानुसारेण वस्तुनोऽनन्तधर्मात्मकत्वादनेका-भिरपेक्षाभिर्वस्तुतत्त्वं विचार्यत इति ध्येयम्। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावस्वरूपं पृ० १५–१७ इत्यत्रावलोकनीयम्।

पृ० ३ पं० ७–११. **एयं दुवालसंगं.........सपज्जवसितमेव**। "से किं तं साइअं सपज्जवसिअं अणाइअं अपज्जवसिअं च? इच्चेयं दुवालसंगं गणिपिडगं वुच्छित्तिनयट्ठयाए साइअं सपज्जवसिअं। अवुच्छित्तिनयट्ठयाए अणाइअं अपज्ज-वसिअं। तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ। तत्थ दव्वओ णं सम्मसुअं एगं पुरिसं पडुच्च साइअं सपज्जवसिअं, बहवे पुरिसे य पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं। खेत्तओ णं पंच भरहाइं पंचेरवयाइं पडुच्च साइअं सपज्जवसिअं, पंच महाविदेहाइं पडुच्च अणाइयं अपज्जवसिअं। कालओ णं उस्सप्पिणीं ओसप्पिणीं च पडुच्च साइअं सपज्जव-सिअं नोउस्सप्पिणीं नोओसप्पिणीं च पडुच्च अणाइयं अपज्जवसिअं। भावओ णं जे जया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति पण्ण-विज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति[२] ते तया पडुच्च साइअं सपज्जवसिअं खाओवसमियं पुण भावं पडुच्च अणाइअं अपज्जवसिअं। अहवा भवसिद्धियस्स सुयं साइयं सपज्जवसिअं च, अभवसिद्धियस्स सुयं अणाइयं अपज्जवसियं च।" [सू० ४२] इति नन्दिसूत्रे पाठः। अस्य मलयगिरिसूरिविरचिता व्याख्या—"अथ किं तत् सादि सपर्यवसितम्, अनादि अपर्यवसितं च? तत्र सह आदिना वर्तत इति सादि। तथा पर्यवसानं पर्यवसितम्, भावे क्तप्रत्ययः, सह पर्यवसितेन वर्तत

---

१ "द्वाभ्यामपि द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनयाभ्यां प्रणीतं शास्त्रम् उलूकेन वैशेषिकशास्त्रप्रणेत्रा द्रव्यगुणादेः पदार्थषट्कस्य नित्यानित्यैकान्तरूपस्य तत्र प्रतिपादनात् [पृ० ६५६]।......पदार्थषट्के द्रव्याणि गुणाश्च केचिन्नित्या एव, केचित्त्वनित्या एव, कर्मानित्यमेव, सामान्य-विशेष-समवायास्तु नित्या एवेति पदार्थव्यवस्था। ततश्चैतच्छास्त्रम्। तथापि मिथ्यात्वम्, तत्प्रदर्शितपदार्थषट्कस्य प्रमाणबाधितत्वात् [पृ० ६५७]।......'जं सविसय' इत्यादिगाथापश्चार्धेन हेतुमाह—यस्मात् स्वविषयप्रधानताव्यवस्थितान्योन्यनिरपेक्षोभयनयाश्रितं तत्, अन्योन्यनिरपेक्षनयाश्रितत्वस्य मिथ्यात्वाविनाभूतत्वात्।" [पृ० ७०४] इति अभयदेवसूरिविरचितायां सन्मतिवृत्तौ। २ "ते तदा पडुच्च"—नन्दीचूर्णि० पृ० ८१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति सपर्यवसितम्। आदिरहितमनादि, न पर्यवसितमपर्यवसितम्। आचार्य आह—इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं 'वोच्छित्तिनयट्ठयाए' इत्यादि, व्यवच्छित्तिप्रतिपादनपरो नयो व्यवच्छित्तिनयः पर्यायास्तिकनय इत्यर्थः, तस्यार्थो व्यवच्छित्तिनयार्थः पर्याय इत्यर्थः, तस्य भावो व्यवच्छित्तिनयार्थता, तया, पर्यायापेक्षयेत्यर्थः। किम्? इत्याह—सादिसपर्यवसितम्, नारकादिभवपरिणत्यपेक्षया जीव इव। अवुच्छित्तिनयट्ठयाएत्ति, अव्यवच्छित्तिप्रतिपादनपरो नयोऽव्यवच्छित्तिनयः, तस्यार्थोऽव्यवच्छित्तिनयार्थो द्रव्यमित्यर्थः, तद्भावस्तत्ता, तया, द्रव्यापेक्षयेत्यर्थः। किम्? इत्याह—अनादि अपर्यवसितम्, त्रिकालावस्थायित्वाजीववत्। अधिकृतमेवार्थं द्रव्यक्षेत्रादिचतुष्टयमधिकृत्य प्रतिपादयति—'तत्' श्रुतज्ञानं 'समासतः' संक्षेपेण चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च। तत्र द्रव्यतो, णमिति वाक्यालङ्कारे, सम्यक्श्रुतमेकं पुरुषं प्रतीत्य सादि सपर्यवसितम्। कथमिति चेत्, उच्यते—सम्यक्त्वावाप्तौ ततः प्रथमपाठतो वा सादि। पुनर्मिथ्यात्वावाप्तौ, सति वा सम्यक्त्वे प्रमादभावतो महाग्लानत्वभावतो वा सुरलोकगमनसम्भवतो वा विस्मृतिमुपागते, केवलज्ञानोत्पत्तिभावतो वा सर्वथा विप्रनष्टे सपर्यवसितम्। बहून् पुरुषान् कालत्रयवर्तिनः पुनः प्रतीत्य अनादि अपर्यवसितम्, सन्तानेन प्रवृत्तत्वात्, कालवत्। तथा क्षेत्रतो, णमिति वाक्यालङ्कारे, पञ्च [1]भरतानि पञ्चैरवतानि प्रतीत्य सादि सपर्यवसानम्। कथम्? उच्यते—तेषु क्षेत्रेषु अवसर्पिण्यां सुषमदुष्षमापर्यवसाने उत्सर्पिण्यां तु दुष्षमसुषमाप्रारम्भे तीर्थकरधर्मसङ्घानां प्रथमतयोत्पत्तेः सादि, एकान्तदुष्षमादौ च काले तदभावात् सपर्यवसितम्। तथा महाविदेहान् प्रतीत्य अनादि अपर्यवसितम्, तत्र प्रवाहापेक्षया तीर्थकरादीनामव्यवच्छेदात्। तथा कालतो, णमिति वाक्यालङ्कारे, अवसर्पिणीमुत्सर्पिणीं च प्रतीत्य सादि सपर्यवसितम्, तथाहि अवसर्पिण्यां तिसृष्वेव समासु सुषमदुष्षमा—दुष्षमसुषमा—दुष्षमारूपासु उत्सर्पिण्यां तु द्वयोः समयोः दुष्षमसुषमा—सुषमदुष्षमारूपयोर्भवति, न परतः, ततः सादिसपर्यवसितम्।..................'नोउस्सप्पिणी'त्यादि, [2]'नोउत्सर्पिणीमवसर्पिणीं प्रतीत्य अनाद्यपर्यवसितम्, महाविदेहेषु हि नोत्सर्पिण्यवसर्पिणीरूपः कालः, तत्र च सदैवावस्थितं सम्यक्श्रुतमित्यनाद्यपर्यवसितम्। तथा भावतो, णमिति वाक्यालङ्कारे, 'ये' इत्यनिर्दिष्टनिर्देशे, ये केचन यदा पूर्वाह्णादौ जिनैः प्रज्ञप्ता जिनप्रज्ञप्ता भावाः पदार्थाः 'आघविज्जंति'त्ति......आख्यायन्ते, सामान्यरूपतया विशेषरूपतया वा कथ्यन्ते इत्यर्थः। 'प्रज्ञाप्यन्ते' नामादिभेदप्रदर्शनेन आख्यायन्ते...। 'प्ररूप्यन्ते' नामादिभेदस्वरूपकथनेन प्रख्यायन्ते......। तथा 'दर्श्यन्ते' उपमानमात्रोपदर्शनेन प्रकटीक्रियन्ते, यथा गौरिव गवय इत्यादि। तथा 'निदर्श्यन्ते' हेतुदृष्टान्तोपदर्शनेन स्पष्टतरीक्रियन्ते। 'उपदर्श्यन्ते' उपनयनिगमनाभ्यां निःशङ्कं शिष्यबुद्धौ स्थाप्यन्ते; अथवा 'उपदर्श्यन्ते' सकलनयाभिप्रायावतारणतः पटुप्रज्ञशिष्यबुद्धिषु व्यवस्थाप्यन्ते। 'तान्' भावान् 'तदा' तस्मिन् काले तथा आख्यायमानान् प्रतीत्य सादिसपर्यवसितम्। एतदुक्तं भवति—तस्मिन् काले तं तं प्रज्ञापकोपयोगं स्वरविशेषं प्रयत्नविशेषमासनविशेषमङ्गविन्यासादिकं च प्रतीत्य सादिसपर्यवसितम् उपयोगादेः प्रतिकालमन्यथाऽन्यथाभवनात्।......क्षायोपशमिकं भावं पुनः प्रतीत्य अनाद्यपर्यवसितम्, प्रवाहरूपेण क्षायोपशमिकभावस्य अनाद्यपर्यवसितत्वात्।...अथवेत्यादि,......भवसिद्धिको भव्यः, तस्य [श्रुतं] सम्यक्श्रुतं सादिसपर्यवसितम्, सम्यक्त्वलाभे प्रथमतया भावात् भूयो मिथ्यात्वप्राप्तौ केवलोत्पत्तौ वा विनाशात्।......अभवेत्यादि, अभवसिद्धिकोऽभव्यः, तस्य श्रुतं मिथ्याश्रुतमनाद्यपर्यवसितम्, तस्य सदैव सम्यक्त्वादिगुणहीनत्वात्।" इति **मलयगिरिविरचितायां नन्दिसूत्रवृत्तौ** पृ०१९५-१९८। दृश्यतां नन्दि० हारिभद्री० पृ० ८४-८६।

पृ० ३ पं० १४-१६. **इमा णं...असासता**। दृश्यतां पृ० ४५१ टि० १।

पृ० ३ पं० १९. **आभिनिबोधिकभेदानाम्**। 'आभिनिबोधिकं' मतिज्ञानमित्यर्थः। मत्यादिज्ञानपञ्चकस्वरूपं चेत्थमवगन्तव्यम्—"**नाणं पंचविहं पन्नत्तं, तं जहा-आभिणिबोहियनाणं सुअनाणं ओहिनाणं मणपज्जवनाणं केवलनाणं** [नन्दिसू० १]। ज्ञातिर्ज्ञानम्, भावे 'अनट्'प्रत्ययः। अथवा ज्ञायते वस्तु परिच्छिद्यतेऽनेनेति ज्ञानम्, करणे 'अनट्'।...'पञ्च' इति सङ्ख्यावाचकम्, विधानं विधा,...पञ्च विधाः प्रकारा यस्य तत् पञ्चविधं पञ्चप्रकारं प्रज्ञप्तं प्ररूपितं तीर्थकरगणधरैः......। 'तद्यथा' इत्युदाहरणोपदर्शनार्थः, आभिनिबोधिकज्ञानं श्रुतज्ञानम् अवधिज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं केवलज्ञानम्। तत्र अर्थाभिमुखो नियतः प्रतिनियतस्वरूपो बोधो बोधविशेषोऽभिनिबोधः, [अभिनिबोधः] एवाभिनिबोधिकम्... स्वार्थे 'इकण्' प्रत्ययः,......आभिनिबोधिकं च तद् ज्ञानं च आभिनिबोधिकज्ञानम्, इन्द्रियमनोनिमित्तो योग्यदेशावस्थितवस्तुविषयः स्फुटप्रतिभासो बोधविशेष इत्यर्थः १। तथा श्रवणं श्रुतम्, वाच्यवाचकभावपुरस्सरीकारेण शब्दसंसृ(स)ष्टार्थग्रहणहेतुरुपलब्धिविशेषः, 'एवमाकारं वस्तु जलधारणाद्यर्थक्रियासमर्थं घटशब्दवाच्यम्' इत्यादिरूपतया प्रधानीकृतत्रिकालसाधारण-

---

१ भरतैरवतमहाविदेहादिक्षेत्रस्वरूपम् उत्सर्पिण्यवसर्पिणीसुषमसुषमादिकालस्वरूपं च बृहत्संग्रहणी-क्षेत्रसमास-तत्त्वार्थसूत्रप्रभृतिग्रन्थेभ्योऽवसेयम्। २ "नोउत्सर्पिणीं नोअवसर्पिणीं च प्रतीत्य अनाद्यपर्यवसितम्।"—नन्दि० हारिभद्री०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समानपरिणामः शब्दार्थपर्यालोचनानुसारी इन्द्रियमनोनिमित्तोऽवगमविशेष इत्यर्थः । श्रुतं च तद् ज्ञानं च श्रुतज्ञानम् २ । तथा अवशब्दोऽधःशब्दार्थः, अव अधोऽधो विस्तृतं वस्तु धीयते परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः, अथवा अवधिर्मर्यादा रूपिष्वेव द्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा, तदुपलक्षितं ज्ञानमप्यवधिः······ । अवधिश्चासौ ज्ञानं चावधिज्ञानम् ३ । तथा परिः सर्वतोभावे, अवनम् अवः,···अवनं गमनं वेदनमिति पर्यायाः, परि अवः पर्यवः, मनसि मनसो वा पर्यवः मनःपर्यवः, सर्वतो मनोद्रव्यपरिच्छेद इत्यर्थः । अथवा मनःपर्यय इति पाठः,······सर्वतः तत्परिच्छेद इत्यर्थः, स चासौ ज्ञानं च मनःपर्ययज्ञानम् । अथवा मनःपर्यायज्ञानमिति पाठः, ततः मनांसि मनोद्रव्याणि पर्येति सर्वात्मना परिच्छिनत्ति मनःपर्यायम्,······मनःपर्यायं च तद् ज्ञानं च मनःपर्यायज्ञानम् । यद्वा मनसः पर्याया मनःपर्यायाः, पर्याया भेदा धर्मा बाह्यवस्त्वालोचनप्रकारा इत्यर्थः, तेषु तेषां वा सम्बन्धि ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानम् ४ । तथा केवलमेकमसहायं मत्यादिज्ञाननिरपेक्षत्वात् ।·········अथवा शुद्धं केवलम्, तदावरणमलकलङ्कस्य निःशेषतोऽपगमात् । सकलं वा केवलम्, प्रथमत एवाशेषतदावरणापगमतः सम्पूर्णोत्पत्तेः । असाधारणं वा केवलम्, अनन्यसदृशत्वात् । अनन्तं वा केवलम्, ज्ञेयानन्तत्वात् । केवलं च तद् ज्ञानं च केवलज्ञानम् ५ ।" इति मलयगिरिविरचितायां नन्दिसूत्रवृत्तौ पृ० ६५–६६ । दृश्यताम् अनुयोगद्वारसू० १ ।

"ज्ञानं वक्ष्यामः – **मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलानि ज्ञानम्** ।१।९। मतिज्ञानं श्रुतज्ञानम् अवधिज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं केवलज्ञानमित्येतद् मूलविधानतः पञ्चविधं ज्ञानम् । प्रभेदास्त्वस्य पुरस्ताद् वक्ष्यन्ते ।······**मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्** ।१।१३। मतिज्ञानं स्मृतिज्ञानं संज्ञाज्ञानं चिन्ताज्ञानं तथा आभिनिबोधिकज्ञानमित्यनर्थान्तरम् । **तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्** ।१।१४। तदेतद् मतिज्ञानं द्विविधं भवति–इन्द्रियनिमित्तमनिन्द्रियनिमित्तं च । तत्रेन्द्रियनिमित्तं स्पर्शनादीनां पञ्चानां स्पर्शादिषु पञ्चस्वेव स्वविषयेषु । अनिन्द्रियनिमित्तं मनोवृत्तिरोघज्ञानं च ।"–तत्त्वार्थभा० ।

पृ० ४ पं० १. **तत्थाभिनिबोहिअनाणं ति** । "इतेः स्वरात् तश्च द्विः ।८।१।४२। पदात् परस्य इतेरादेर्लुग् भवति स्वरात् परश्च तकारो द्विर्भवति । किं ति । जं ति । दिट्ठं ति । न जुत्तं ति । स्वरात् तह त्ति । झ त्ति । पिओ त्ति । पुरिसो त्ति ।" इति आचार्यहेमचन्द्रकृतप्राकृतव्याकरणानुसारेण अत्र इतेरिकारस्य लुग् ज्ञातव्यः ।

पृ० ४. पं० १. **श्रुतज्ञान**··· । श्रुतज्ञानस्य विस्तरेण स्वरूपं 'पृ० ९ पं० ३ पूर्वमहोदधिसमुत्पतितनयप्राभृत' इत्यस्य टिप्पणादवगन्तव्यम् । तथा दृश्यतां टिपृ० ६ पं० ३१ ।

पृ० ४ पं० २. **घटादेः**··· । यदि हि एकान्तेन नित्यो घटस्तदा तस्य सर्वदावस्थितत्वात् कुम्भकारप्रयत्नजन्यत्वाभावात् कुम्भकाराय घटादेर्वेतनप्रदानं निरर्थकमिति भावः । "एवंविधवस्तूपनिबन्धनैव च वर्णाश्रमप्रतिनियतरूपा यमनियमगम्यागम्यभक्ष्याभक्ष्यादिव्यवस्था कुम्भकारादेश्च मृदानयनावमर्दनशिवकस्थासकादिकरणप्रवृत्तौ वेतनकादिदानस्य साफल्यम् ।"–तत्त्वार्थ० सिद्धसेनवृ० १।३४।

पृ० ४ पं० ३. **चिकीर्षा**··· । "एकान्तनाशिनि च कृतनाशाकृताभ्यागमौ स्याताम्, स्मृति-प्रत्यभिज्ञान-निहितप्रत्युन्मार्गणप्रभृतयश्च प्रतिप्राणिप्रतीता व्यवहारा विशीर्येरन् ।"–प्रमाणमी० १।१।४२। "पदार्थास्थैर्यपक्षे······'पूर्वदृष्टस्य स्मरणम्, स्मृतस्य कस्यचित् प्रत्यभिज्ञानम्, प्रत्यभिज्ञातस्य गृहादेरर्धकृतस्य समापनम्' इत्यादयश्च व्यवहारा विलुप्येरन् ।" इति **न्यायमञ्जर्यां** क्षणभङ्गनिराकरणे । "सर्वथा भेदे हि बद्ध-मुक्तपर्याययोः अन्यो बद्धः अन्यश्च मुच्यते इति बद्धस्यैव मोक्षार्थं प्रवृत्तिर्न स्यात् । सन्तानापेक्षया बद्धस्यैव मोक्ष इत्यपि अनल्पतमोविलसितम्, सन्तानस्यैवोक्तप्रकारेणासम्भवात् । तथा निहितमन्त्रिताधीतस्मृतिः दत्तग्रहादिश्च एकात्मापह्नवे दुर्घट इति ।"–न्यायकुमु० पृ० २० ।

पृ० ४ पं० ३–४. **स्वरूपानवधारणे······नावक्तव्यः** । "अवक्तव्यैकान्तोऽपि असद्वादः, स्ववचनविरोधात्, सदामौनव्रतिकवत् ।"–तत्त्वार्थराजवा० १।६।

पृ० ४ पं० ९,१५. **काल**··· । "ॐ ब्रह्मवादिनो वदन्ति—किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः । अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥ १ ॥ कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम् । संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥ २ ॥" इति श्वेताश्वतरोपनिषदि । "**कालो सहाव णियई पुव्वकयं पुरिस कारणेगंता** । मिच्छत्तं ते चेव समासओ होंति सम्मत्तं ॥"–सन्मति० ३।५३। अस्य व्याख्या – "काल-स्वभाव-नियति-पूर्वकृत-पुरुषकारणरूपा एकान्ताः सर्वेऽपि एकका मिथ्यात्वम् । त एव समुदिताः परस्पराजहद्वृत्तयः सम्यक्त्वरूपतां प्रतिपद्यन्ते इति तात्पर्यार्थः·········।" इत्यादिविस्तरेण अभयदेवसूरिरचितायां सन्मतिवृत्तौ अवलो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कनीया। कालादीनां स्वरूपं तृतीयचतुर्थारयोर्विस्तरेण वक्ष्यतेऽत्रैव। **सांख्यकारिकामाठरवृत्ति**[का० ६१]-**शास्त्रवार्तासमुच्चय**-[का० २।५२–८१]प्रभृतिग्रन्थेष्वपि कालादिस्वरूपं तदेकान्तनिराकरणं च प्रकारान्तरेण वर्णितमस्ति।

पृ० ४ पं० १०. **एकपुरुषपितृपुत्रत्वादिवत्**। "एकोऽपि सन् देवदत्तो लोके स्वरूपं सम्बन्धिरूपं चापेक्ष्य अनेकशब्दप्रत्ययभाग् भवति 'मनुष्यो ब्राह्मणः श्रोत्रियो वदान्यो बालो युवा स्थविरः पिता पुत्रः पौत्रो भ्राता जामाता' इति। एकापि सती रेखा स्थानान्यत्वेन निविशमाना एक-दश-शत-सहस्रादिशब्दप्रत्ययभेदमनुभवति।"–ब्रह्मसूत्रशांकरभा० २।२।१७। "अर्पणाभेदादविरोधः पितापुत्रादिसम्बन्धवत्।११। उक्तादर्पणाभेदाद् एकत्र अविरोधेन अवरोधो धर्माणां पितापुत्रादिसम्बन्धवत्। तद्यथा एकस्य देवदत्तस्य जातिकुलरूपसंज्ञाव्यपदेशविशिष्टस्य 'पिता पुत्रो भ्राता भागिनेयः' इत्येवंप्रकाराः सम्बन्धाः जन्यजनकत्वादिशक्त्यर्पणाभेदान्न विरुध्यन्ते। न ह्येकापेक्षया पितेति शेषापेक्षयापि पिता भवति, शेषापेक्षया वा पुत्रादिव्यपदेशार्हः इति उक्तापेक्षयापि पुत्रादिव्यपदेशभाक्। न च पितापुत्रादिकृतं संबन्धबहुत्वं देवदत्तस्यैकत्वेन विरुध्यते। तद्वदस्तित्वादयोऽपि न यान्ति विरोधमेकत्र।"–तत्त्वार्थराजवा० १।६।

पृ० ५ पं० १. **अननुविषयप्रश्नत्वात्**। अत्र '**अनन्तविषयप्रश्नत्वात्**' इति शुद्धः पाठः।

पृ० ५ पं० ६. **स्थूलमतये**···। तुलना–"सविसयमसद्दहंता नयाण तम्मत्तयं च गिण्हंता। मण्णंता य विरोहं अपरिणामातिपरिणामा ॥ २२९२ ॥ गच्छेज्ज हु मा मिच्छं परिणामा य सुहुमाइबहुभेए। होज्जाऽसत्ते घेत्तुं न कालिए तो नयविभागो ॥ २२९३ ॥"–विशेषाव० भा०।

पृ० ५ पं० ८. **बौद्धे**। बुद्धदर्शने इत्यर्थः। एवमग्रेऽपि।

पृ० ५ पं० ९. **स्मृत्य**······**सन्तानकल्पना**। "यत्र सन्ताने पटीयसा अनुभवेन उत्तरोत्तरविशिष्टतरतमक्षणोत्पादात् स्मृत्यादिबीजमाहितं तत्रैव स्मरणादयः समुत्पद्यन्ते, नान्यत्र, प्रतिनियतत्वात् कार्यकारणभावस्य।······स्मरणादिपूर्वकाश्च प्रत्यभिज्ञानादयः प्रसूयन्ते इत्यविरुद्धम् [पृ० १८४]·········सन्ततिशब्देन क्षणा एव वस्तुभूताः सन्तानिनो व्यवहारलाघवाय सामस्त्येन युगपत् प्रकाश्यन्ते 'वन'शब्देनेव धवादयः।"–तत्त्वसं०पं० पृ० ५२३–४। "सन्तानो नाम न कश्चिदेकः परमार्थसन् सम्भवति। किं तर्हि? कार्यकारणभावप्रवृत्तक्षणपरम्पराप्रवाहरूप एवायम्, ततो व्यतिरिक्तस्य अनुपलम्भात्। तस्मादेतेषामेव क्षणानामेकपदेन प्रतिपादनाय संकेतः कृतो बुद्धैः व्यवहारार्थं 'सन्तानः' इति।"–बोधिचर्याव० पृ० ३३४। टिपृ० ७ पं० २६।

पृ० ५ पं० १०. **क्रियावत्**···। पुण्यनामधेयमुनिराजश्री**पुण्यविजय**महोदयसत्के बहु पुरातने हस्तलिखिते सवृत्तिके वैशेषिकसूत्रग्रन्थे इदं सूत्रम् अत्रत्यदेव वर्तते, दृश्यतां पृ० ४४० टि० ५। अस्य ग्रन्थस्य श्री**पुण्यविजय**मुनिराजसत्कत्वाद् व्यवहारलाघवार्थमस्माभिः P इति संज्ञा कृतास्ति। इदं पुनरत्रावधेयम्–**वाराणसी-कलिकातादिनगरमुद्रितेषु शंकरमिश्रादि**-व्याख्यातेषु सम्प्रति प्रसिद्धेषु सर्वेष्वपि वैशेषिकसूत्रपाठेषु अस्मात् Pपुस्तकाद् भूयान् पाठभेदो वर्तते। प्राचीनग्रन्थेषु उद्धृतानि बहूनि वैशेषिकसूत्राणि वाराणस्यादिमुद्रिते सूत्रपाठे न सन्ति अतीव अन्यथारूपेण वा उपलभ्यन्ते, अस्मिंस्तु Pपुस्तके प्रायः सर्वाण्यपि सूत्राणि यथावत् सन्ति स्वल्पभेदेन वा पाठभेदेन उपलभ्यन्ते। इदं तु Pपुस्तकं पञ्चमारपर्यन्तमस्य ग्रन्थस्य मुद्रणानन्तरं मम दृष्टिपथमायातम्, अतो बहूनि बहूनि सूत्राणि सवृत्तिकानि Pपुस्तकादुद्धृत्य तत्र तत्र टिप्पणेषु मया उपन्यस्तानि। तद्दर्शनाद् वाराणस्यादिमुद्रितसूत्रपाठस्य तद्व्याख्यानां च बहुषु स्थानेषु भ्रष्टत्वमसम्बद्धत्वं च Pपुस्तकसूत्रपाठस्य तु अतीवोपयोगित्वं समीचीनतमत्वं च सम्यगेव विज्ञास्यते विद्वद्भिः।

पुस्तकस्वरूपं त्वित्थम्—अत्र ३४ पत्राणि सन्ति, प्रतिपत्रं पृष्ठद्वयम्, प्रतिपृष्ठं १२ पंक्तयः। तत्र आद्येषु सार्धेषु पञ्चसु पत्रेषु केवलं वैशेषिकसूत्रपाठः, ततः परं सार्द्धेषु अष्टाविंशतौ पत्रेषु 'सूत्रं तद्व्याख्या, सूत्रं तद्व्याख्या' इत्येवंक्रमेण सर्वेषामपि सूत्राणां **चन्द्रानन्द**विरचिता वैशेषिकसूत्रवृत्तिः। एवं च 'एकः केवलः सूत्रपाठः, अपरश्च वृत्त्यन्तर्गतः सूत्रपाठः' इति द्वौ सूत्रपाठावत्र। उभयत्रापि प्रायः साम्यमेव, तथापि क्वचित् किञ्चिद्वैषम्यमपि वर्तते, तदपि च यथायोगं तत्र तत्र प्रदर्शितं मया। '**सू०**'शब्देन T[6]शब्देन वा केवलः सूत्रपाठो ज्ञेयः, '**वृसू०**'शब्देन तु वृत्त्यन्तर्गतः सूत्रपाठो ज्ञेयः। वृत्तावपि बहुत्राशुद्धिर्वर्तते,

---

१ अर्पणानां विवक्षाणां भेदात्। २ संग्रहः। ३ एतच्च भ्रष्टत्वमसम्बद्धत्वं च विद्वद्भिरपि स्वीक्रियत एव, दृश्यतां **न्यायकन्दल्याः** प्रस्तावना [विज्ञापनम्] पृ० ११, तथा **चन्द्रकान्ततर्कालङ्कार**लिखिता **वैशेषिकदर्शनस्य** भूमिका पृ० ३। ४ प्रतिपत्रं मानं ९१/४"×२३/४" इञ्च[Inch]प्रमितं ज्ञेयम्। ५ प्रथमपत्रस्य उपरितनं पृष्ठं तु लेखरहितमिति ध्येयम्। ६ T=Text मूलमित्यर्थः।

सापि मया प्रमार्जिता, वृत्तिस्थः पाठश्च 'वृ०'शब्देन प्रदर्शितः। वृत्तिकारः चन्द्रानन्दः कदा जात इति निश्चितं वयं न जानीमः, किन्तु शङ्करमिश्रात् प्राचीन एवेति प्रत्ययोऽस्माकम्। Pपुस्तकमपि बहु प्राचीनमिति ध्येयम्।

पृ० ५ पं० ११. तदव्याप्ति···। आकाशादिषु क्रियावत्त्वाभावादव्याप्तिर्ज्ञातव्या।

पृ० ५ पं० १२-१३. अद्रव्यम···। अद्रव्यानेकद्रव्ययोः स्वरूपं पृ० २२ पं० ८ इत्यत्र द्रष्टव्यम्। द्रव्यपर्यायनयस्वरूपं टिपृ० ३ पं० २-५ इत्यत्र द्रष्टव्यम्। काणभुजे कणभुजा कणादेन प्रणीते वैशेषिकदर्शने इति भावः।

पृ० ६ पं० १. 'शेषशासनन्यग्भावेन वा जेष्यस्येव तद् यदेवंविधम्' इति मूलपाठोऽत्र शोभन एव य०प्रतिपाठानुसारी च। दृश्यतां टिपृ० १० पं० ३४।

पृ० ६ पं० ३. सदिति···। दृश्यतां टिपृ० ८ पं० २२—टिपृ० ९ पं० २। "एवं विशेषा व्याख्याताः। सत्ता तु सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु [वै० सू० १।२।७], भिन्नेषु द्रव्यादिषु त्रिषु यतो जायते 'सत् सत्' इति बुद्धिः सा सत्ता। आश्रयविनाशादस्या विनाश इति चेत्, न, यतः द्रव्यगुणकर्मभ्योऽर्थान्तरं सत्ता [वै० सू० १।२।८], यस्माद् द्रव्यादिभ्यो व्यतिरिक्ता सत्ता तस्मान्न द्रव्यादिविनाशे सत्ता विनश्यतीति। द्रव्यादिव्यतिरेके युक्तिः–[1]एकद्रव्यवत्त्वान्न द्रव्यम् [वै० सू० १।२।९], परमाण्वाकाशादि द्रव्यमद्रव्यं कारणद्रव्याभावात्, अनेकद्रव्यं वा घटादि समवायिकारणद्रव्ययुक्तत्वात्; सत्ता पुनः प्रत्येकं परिसमाप्त्या वर्तमाना एकद्रव्यवत्त्वान्न द्रव्यम्। गुणकर्मसु च भावान्न कर्म न गुणः [वै० सू० १।२।१०], गुणानां गुणेष्ववृत्तेः [2]कर्मसु कर्मणाम्, गुणेषु कर्मसु च सत्ताया वर्तमानत्वान्न गुणकर्मणी सत्ता। सामान्यविशेषाभावाच्च [वै० सू० १।२।११], यदि सत्ता द्रव्यादीनामन्यतमा स्यात् एवं द्रव्यादिष्विव सत्तायामपि [3]सत्तात्वादयः सामान्यविशेषा वर्तेरन्। न चैवम्। तस्मान्न सत्ता द्रव्यगुणकर्माणि। एकद्रव्यवत्त्वेन द्रव्यत्वमुक्तम् [वै० सू० १।२।१२], यथा प्रतिद्रव्यं साकल्येन वर्तमानत्वान्न द्रव्यं सत्ता तथैकद्रव्यत्वान्न द्रव्यं द्रव्यत्वम्। सामान्यविशेषाभावेन च [वै० सू० १।२।१३], [4]द्रव्यादिष्विव द्रव्यत्वादीनां मध्यात् कश्चित् सामान्यविशेषो द्रव्यत्वे वर्तेत यदि द्रव्यं गुणः कर्म वा स्यात्। तस्मान्न द्रव्यादीनि द्रव्यत्वम्। [5]गुणे भावाद् गुणत्वमुक्तम् [वै० सू० १।२।१४], गुणेषु गुणानामवृत्तेः, गुणत्वं च गुणेषु वर्तते, तस्मान्न गुणः। सामान्यविशेषाभावेन च [वै० सू० १।२।१५], यदि गुणत्वं द्रव्यं कर्म वा स्यात् तस्मिन् द्रव्यत्वं कर्मत्वं वा सामान्यविशेषौ स्याताम्। न चैवम्। तस्मान्न द्रव्यं कर्म वा गुणत्वम्। कर्मणि भावात् कर्मत्वमुक्तम् [वै० सू० १।२।१६], कर्मणि कर्मत्वस्य वृत्तेः कर्मणः कर्मणि चावृत्तेः [कर्म न] कर्मत्वम्। सामान्यविशेषाभावेन च [वै० सू० १।२।१७], द्रव्यत्वं गुणत्वं वा कर्मत्वे स्यातां यदि द्रव्यं गुणो वा स्यात्। तस्मान्न द्रव्यगुणौ कर्मत्वम्।" इति चन्द्रानन्दविरचितायां वैशेषिकसूत्रवृत्तौ P पृ० १०।

पृ० ६ पं० ९-१४. जं चोद्दस······पण्णवणिज्जा·······अक्खरलंभेण···। इदमत्रावधेयम्—'पण्णवणिज्जा···॥१४१॥ जं चोद्दस···॥१४२॥ अक्खरलंभेण···॥१४३॥' इत्येवंक्रमेण इदं गाथात्रयं जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणविरचिते विशेषावश्यकभाष्येऽवलोक्यते, किन्तु तदीयमेवेदं गाथात्रयमन्यतो वा कुतश्चिद् ग्रन्थात् तैः संगृह्य स्वग्रन्थे ग्रथितमिति विचारणीयम्। यतः अकलङ्कविरचिते तत्त्वार्थराजवार्तिके १।२६ सूत्रे 'पण्णवणिज्जा···अणंतभागो सुदणिबद्धो॥' इति गाथा 'उक्तं च' इत्युल्लिख्य उद्धृता दृश्यते। किञ्च, बृहत्कल्पभाष्येऽपि 'पन्नवणिज्जा भावा···॥९६४॥ जं चउदसपुव्वधरा···॥९६५॥' इत्येवंक्रमेण अत्रत्यं गाथाद्वयं दृश्यते, [6]व्याख्यातं च तद् बृहत्कल्पभाष्यवृत्तिकृद्भिः क्षेमकीर्तिसूरिभिः। [7]मलयगिरिसूरिवचनानुसारेण बृहत्कल्पसूत्रनिर्युक्तिः भाष्यं चैको ग्रन्थो जातः, अतोऽनयोर्गाथयोः निर्युक्तिकारश्रीभद्रबाहुस्वामिरचितत्वमाहोस्विद् भाष्यकारश्रीसंघदासगणिक्षमाश्रमणरचितत्वमिति न ज्ञातुं पार्यते। तथापि [8]संघदासगणिविरचितस्य बृहत्कल्पभाष्यस्य जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणरचितविशेषावश्यकभाष्यात् प्राचीनत्वात् 'जं चोद्दस······॥ पन्नवणिज्जा······॥' इति अत्रत्यं गाथाद्वयं न

---

१ न द्रव्यमेकद्रव्यवत्त्वात्–सू०। २ कर्मसु कर्मणामवृत्तेरिति सम्बन्धः। ३ सत्त्वत्वादयः–वृ०। ४ द्रव्यादि द्रव्यादिष्विव–वृ०। ५ गुणाभावाद्–सू० वृसू०। ६ दृश्यतां बृहत्कल्पवृ० पृ० ३०४। ७ दृश्यतां बृहत्कल्पवृ० पृ० २ पं० १२। ८ बृहत्कल्पभाष्यस्य "सामन्न विसेसेण य······॥ ४५॥" इत्यत आरभ्य "ओसन्नेण······। असन्नीण······॥ ५४॥" इत्येतत्पर्यन्तासु गाथासु वर्णितं मतं विशेषावश्यकभाष्यस्य "अण्णे सारिक्खाई पभासंति॥ ४६९॥" इत्यत आरभ्य "जीवत्तमिविंदियाणं॥ ४७५॥" इत्येतत्पर्यन्तासु गाथासु जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणैः निराकृतम्। अतो संघदासगणिविरचितस्य बृहत्कल्पभाष्यस्य विशेषावश्यकभाष्यात् प्राचीनत्वं प्रतीयते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणरचितमिति विज्ञायते। 'अक्खरलंभेण समा······॥' इत्यस्या गाथाया व्याख्यायां 'सुयनाणब्भंतरे जाण' इत्यस्य विवरणशैलीं दृष्ट्वा 'इयमपि गाथा जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणैः कुतश्चिदन्यग्रन्थात् संगृहीता स्यात्' इत्यपि सम्भाव्यते। अतो नयचक्रवृत्तिकृद्भिः सिंहसूरिगणिवादिक्षमाश्रमणैः कुतो ग्रन्थात् क्रमभेदेन गाथात्रयमिदमुद्धृतमिति निश्चितं वक्तुं न पार्यते।

आसां गाथानां जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणादिविरचिता व्याख्या—"**कत्तो एत्तियमेत्ता भावसुयमईण पज्जया जेसिं। भासइ अणंतभागं भण्णइ जम्हा सुएऽभिहियं** ॥१४०॥ कत्तो० गाहा। आह—कुत इयन्तो भावश्रुतस्य मत्याश्च पर्याया येषामनन्तभागमात्रं भाषत इति। उच्यते–यस्मादभिहितं **पण्णवणिज्जा भावा अणंतभागो उ अणभिलप्पाणं। पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुयनिबद्धो** ॥१४१॥ पण्णवणिज्जा० गाहा। अनभिलाप्यानामनन्तभागाः(गः) प्रज्ञापनीयाः, तदनन्तभागश्च श्रुतोपनिबद्धः। कथं पुनः? **जं चोद्दसपुव्वधरा छट्ठाणगया परोप्परं होंति। तेण उ अणंतभागो पण्णवणिज्जाण जं सुत्तं** ॥१४२॥ जं चोद्दसपुव्वधरा०[गाहा]। यस्माच्चतुर्दशपूर्वेवि(पूर्व्यपि) चतुर्दशपूर्वविदोऽनन्तभागहीनोऽनन्तगुणहीनोऽभ्यधिको वा, इत्यतः प्रज्ञापनीयानामनन्तभागः श्रुतोपनिबद्ध इति। आह—यदि चतुर्दशपूर्वविदः, कथमनन्तगुणभागहीनाधिक्यं च? इति, उच्यते—**अक्खरलंभेण समा ऊणहिया होंति मइविसेसेहिं। ते वि य मईविसेसे सुयनाणब्भंतरे जाण** ॥१४३॥ अक्खर० गाहा। अक्षरलाभसामान्यमात्रतश्चतुर्दशपूर्वविदः, तन्मतिविशेषान्न्यूनाधिकत्वं तेषाम्। मतिविशेषग्रहणात् 'मतिज्ञानविशेषा एव' इति मा भूवन्, अतो विशेष्यते—तेऽपि हि श्रुतज्ञानान्तर्भाविन एवेति। आह—यद्येवं श्रुतज्ञानमेवेति किं नोच्यते त(कु?)तोऽभ्यन्तर इति, न, विशेषाद[ङ्गा]भ्यन्तरादिव्यपदेशवत्। अथवा श्रुतज्ञानमिति चतुर्दशपूर्वाक्षरलाभमधिकुरुते, चतुर्दशपूर्वाक्षरलाभाभ्यन्तरान् जानीहीत्युक्तं भवति।"—विशेषाव०भा० स्वोपज्ञवृ०। "**कत्तो**० इत्यादि। कुत एतावन्तो भावश्रुतमत्योः पर्यायाः उपलब्धार्थविशेषाः येषां सर्वेणाप्यायुषाऽनन्तभागमात्रं भाषते? इति। भण्यति, यस्मात् श्रुते भणितमिति गाथार्थः ॥१४०॥ **पन्नवणिज्जा**० इत्यादि। प्रज्ञाप्यन्त इति प्रज्ञापनीयाः, वचनपर्यायत्वेन श्रुतज्ञानगोचरा इत्यर्थः। के? 'भावाः' ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्लोकनिविष्टभू-भवन-ग्रह-नक्षत्र-तारकार्केन्द्रादयः। किम्? अत आह—अनन्तभाग एव वर्त्तन्ते, न संख्येयभागे नाप्यसंख्येयभाग इति। केषाम्? इत्याह–अनभिलाप्यानाम्, अर्थपर्यायत्वेन मत्यवधिमनःपर्यायगोचराणामित्यर्थः, अनभिलाप्यवस्तुराशेरभिलाप्यवस्तुराशिरनन्तभागे वर्तत इति भावः। पुनश्च प्रज्ञापनीयानां द्रव्याणामप्यनन्तभागोऽनन्तभागमात्रं श्रुतनिबद्धः चतुर्दशसु पूर्वेषु साक्षाद् ग्रथितो भगवद्भिर्गणधरैरिति गाथार्थः ॥१४१॥ कुतः प्रत्ययः? इति, अत आह—जमित्यादि। 'यद्' यस्मात् चतुर्दशपूर्वधराः षट्स्थानपतिताः परस्परं भवन्ति, न्यूनाधिक्येनेति शेषः। तथाहि—सकलाभिलाप्यवस्तुवेदितयोत्कृष्टचतुर्दशपूर्वविदः प्रतियोगी उक्तः 'अणंतभागहीणे वा असंखेज्जभागहीणे वा संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा अणंतगुणहीणे वा, एवं अब्भहिए वि'। अतो येन कारणेनैवं तेन यत् सूत्रं चतुर्दशपूर्वलक्षणं तत् प्रज्ञापनीयानामनन्तभाग एवेति स्थितमिति गाथार्थः ॥१४२॥ आह—केवलिनामिवामीषामयं तारतम्यकृतो विशेषो न युक्तः, युक्तश्चेद् उच्यतां कारणमित्यत आह—अक्खरेत्यादि। 'अक्षरलाभेन' चतुर्दशपूर्वसूत्रलक्षणेन 'समाः' तुल्याः, चतुर्दशपूर्वधरत्वात्। कैस्तु न समाः? इत्याह—न्यूनाधिका भवन्ति उक्तवत् 'मतिविशेषैः' अक्षरलाभगतबुद्धिविकल्पैः, तैस्तैर्व्याख्यानकरणैरित्यर्थः, क्षयोपशमवैचित्र्यात्, केवलिनां त्वविशेषः क्षायिकत्वात्। इह च मतिविशेषग्रहणादाभिनिबोधिकविशेषास्ते मा भूवन् इत्यतो विशेष्यते—तानपि च मतिविशेषान् तन्न्यूनाधिक्यनिबन्धनान् गम्यान् श्रुतज्ञानान्तर्भाविन एव 'जानीहि' विद्धि। यद्येवं 'ते वि य मतीविसेसे सुयणाणं चेव' इत्येवमेव प्रगुणमस्तु, तन्न, अस्यापि न्यायस्य इष्टत्वाद्, अङ्गादिव्यपदेशवत्, यथा ह्यङ्गमेवाङ्गाभ्यन्तरम्, एवं श्रुतमेव श्रुताभ्यन्तरमेवेत्युक्तं भवतीति भावः। छन्दोभङ्गभयाद्वा अभ्यन्तरग्रहणमिति। अथवा 'सुतनाण' इत्यनेन चतुर्दशपूर्वाक्षरलाभमधिकुरुते। 'ते वि य मतीविसेसे सुतनाणब्भंतरे जाण'त्ति तानपि गम्यान् पर्यायानेतदधिकरणेनैव विद्धि, श्रुतग्रन्थानुसारित्वादिति गाथार्थः ॥१४३॥"–विशेषाव०भा० कोट्याचार्यवृ०।

पृ० ६ पं० १५. शेष···। अत्र 'शेषशासनन्यग्भावेन वा' इति य०प्रतिपाठः साधुरेव। दृश्यतां टिप्पृ० ९ पं० ६।

पृ० ६ पं० १८–१९. गम्यम्········स्पर्द। दृश्यतां पृ० १ पं० १२–१४।

पृ० ७ पं० १. अवबोध···। अत्र भा०प्रतिपाठानुसारि 'अवबोधसमुद्रावयविभूतम्' इति साधु। टिप्पृ० ११ पं० ११।

पृ० ७ पं० १२. द्वित्वं न, तदा···। अत्र 'द्वित्वम्, तदादयोऽनन्तान्ता विकल्पाः' इत्येवं पाठः साधुः प्रतीयते। 'अनन्तान्त'विषये दृश्यतां पृ० ५०५ टि० ६।

पृ० ७ पं० १४. जावइया। "अपरिशुद्धश्च नयवादः परसमयः, स कियद्भेदो भवतीत्याह—**जावइया वयणवहा तावइया चेव होंति णयवाया। जावइया णयवाया तावइया चेव परसमया** ॥३।४७॥ अनेकान्तात्मकस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुन एकदेशस्य यद् अन्यनिरपेक्षस्यावधारणम् अपरिशुद्धो नयः, तावन्मात्रार्थस्य वाचकानां शब्दानां यावन्तो मार्गाः हेतवो नयाः **तावन्त एव भवन्ति नयवादाः** तत्प्रतिपादकाः शब्दाः। यावन्तो नयवादास्तावन्त एव परसमया भवन्ति स्वेच्छा-प्रकल्पितविकल्पनिबन्धनत्वात् परसमयानां परिमितिर्न विद्यते। ननु यद्यपरिमिताः परसमयाः कथं तन्निबन्धनभूतानां नयानां संख्यानियमः 'नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता नयाः' [तत्त्वार्थ० १।३३] इति श्रूयते? न, स्थूलतस्तच्छ्रुतेः। अवान्तरभेदेन तु तेषामपरिमितत्वमेव स्वकल्पनाशिल्पिघटितविकल्पानामनियतत्वात् तदुत्थप्रवादानामपि तत्संख्यापरिमाणत्वात्।" –सन्मतिवृ० पृ० ६५६। "अथवा किमनेन स्तोकभेददर्शनेन। उत्कृष्टतोऽसंख्याता अपि नया भवन्ति। तेऽपि च 'अपि'–शब्दाद् द्रष्टव्या इति दर्शयन्नाह—जावन्तो वयणपहा तावन्तो वा नया विसद्दाओ। ते चेव य परसमया सम्मत्तं समुदिया सव्वे॥२२६५॥ 'वा' अथवा यावन्तो वचनपथा वचनमार्गा वचनप्रकाराः तेऽपि इह 'अपि'शब्दात् सङ्गृहीताः। य एव च नयास्त एव च सावधारणाः सर्वेऽपि परसमयाः तीर्थिकसिद्धान्ताः। समुदितास्तु निरवधारणाः स्याच्छब्दलाञ्छिताः सर्वेऽपि नयाः सम्यक्त्वं जिनशासनभावं प्रतिपद्यन्त इत्यर्थः।"—विशेषाव०भा०मलधारिवृ० पृ० ९२२।

पृ० ७ पं० १७. **अवयवीभूतो**···। अत्र 'अवयवी भूतो यस्मिंस्तदवबोधसमुद्रावयविभूतं' इति भा०प्रतिपाठः समीचीनतरो भाति। दृश्यतां टिपृ० १० पं० ३६।

पृ० ७ पं० १९ **सङ्ग्रहप्रस्तार**···। सङ्ग्रहप्रस्तारयोर्विशेषतः स्वरूपज्ञानार्थमत्र टिप्पणेषु वक्ष्यमाणं 'दव्वट्ठियणय-पगती' [पृ० ११५ पं० ७] इत्यस्य टिप्पणं द्रष्टव्यम्।

पृ० ७ पं० २०. **अनभिभवनीयम्**। "ग्रन्थार्थवचनपटुभिः प्रयत्नवद्भिरपि वादिभिर्निपुणैः। अनभिभवनीयमन्यैर्भास्कर इव सर्वतेजोभिः॥"–तत्त्वार्थभा० संबन्धका० २०।

पृ० ८ पं० १–२. **शेषशासनि**······। "अथवा एकान्तवादिनो सर्वे एव हेतुत्रयीं दोषजातिं नातिक्रामतीत्याह— असिद्धः सिद्धसेनस्य विरुद्धो मल्लवादिनः। द्वेधा समन्तभद्रस्य हेतुरेकान्तसाधने॥५३॥ असिद्धः सिद्धसेनस्येत्यादि। सिद्धसेनस्य सूत्रकर्तुः साकल्येनासिद्धत्वात् सकल एव हेतुः असिद्ध इति। तथाहि सामान्यं वा हेतुः स्यात् विशेषो वा? [पृ० १०७]······नैकान्तसामान्यरूपो हेतुः साकल्येन सिद्धः। नापि विशेषरूपः।······मल्लवादिनस्तु नयचक्रविधातुर्मतेन सकल एवैकान्तसाधनो हेतुर्विरुद्ध इति, अनेकान्तात्मकवस्तुविपर्ययसाधनादिति। अनैकान्तिकासिद्धावपि साध्यनिश्चयविपर्यय-साधनाद् विरुद्धाविति। तथाहि—निश्चयेन सह अप्रतिपत्तिसन्देहावपि विरुद्धावेव। तदविनाभूतौ चासिद्धानैकान्तिकाविति सकल एव हेतुर्विरुद्ध इति। द्वेधा समन्तभद्रस्येति, स हि प्रतिबन्धविकलानां सर्वेषामेव हेतूनां व्यभिचारित्वं मन्यते, न चैकान्तसामान्ययोर्विशेषयोर्वा प्रतिबन्ध उपपद्यते।" इति शान्तिसूरिविरचितायां न्यायावतारवार्तिकवृत्तौ पृ० १०७–१०८।

पृ० ८ पं० ५. **कपिल**······। कपिलः सांख्यशासनस्य प्रणेता। व्यासः ब्रह्मसूत्राणां रचयिता, अयं च बादरायण इत्यपि प्रसिद्धः। कणादः वैशेषिकदर्शनसूत्राणां प्रणेता। शौद्धोदनिः बौद्धदर्शनप्रवर्तकः सिद्धार्थो गौतमबुद्धः। मस्करी परिव्राजकसम्प्रदायाग्रणीः।

पृ० ८ पं० ६. **प्रत्यक्षानुमान**···। "द्विविधं सम्यग्ज्ञानं प्रत्यक्षमनुमानं च। तत्र प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तम्। अभिलापसंसर्गयोग्यप्रतिभासा प्रतीतिः कल्पना, तया रहितम्। तिमिरा-ऽऽशुभ्रमण-नौयान-संक्षोभाद्यनाहितविभ्रमं ज्ञानं प्रत्यक्षम्। तच्चतुर्विधम्—इन्द्रियज्ञानं १ स्वविषयानन्तरविषयसहकारिणा इन्द्रियज्ञानेन समनन्तरप्रत्ययेन जनितं तद् मनो-विज्ञानं २ सर्वचित्तचैत्तानामात्मसंवेदनं ३ भूतार्थभावनाप्रकर्षपर्यन्तजं योगिज्ञानं ४ चेति। तस्य विषयः स्वलक्षणम्[1]। यस्यार्थस्य सन्निधानासन्निधानाभ्यां ज्ञानप्रतिभासभेदः तत् स्वलक्षणम्। तदेव परमार्थसत्, अर्थक्रियासामर्थ्यलक्षणत्वाद् वस्तुनः। अन्यत् सामान्यलक्षणम्, सोऽनुमानस्य विषयः।······अनुमानं द्विधा स्वार्थं परार्थं च। तत्र स्वार्थं त्रिरूपाल्लिङ्गाद् यदनुमेये ज्ञानं तदनुमानम्।···त्रैरूप्यं पुनर्लिङ्गस्यानुमेये सत्त्वमेव, सपक्ष एव सत्त्वम्, असपक्षे चासत्त्वमेव निश्चितम्। अनुमेयोऽत्र जिज्ञासित-विशेषो धर्मी। साध्यधर्मसामान्येन समानोऽर्थः सपक्षः। न सपक्षोऽसपक्षः ततोऽन्यस्तद्विरुद्धस्तदभावश्चेति। त्रिरूपाणि च त्रीण्येव लिङ्गानि–अनुपलब्धिः १ स्वभावः २ कार्यं ३ चेति। तत्रानुपलब्धिर्यथा–न प्रदेशविशेषे क्वचिद् घटः, उपलब्धि-लक्षणप्राप्तस्यानुपलब्धेरिति। उपलब्धिलक्षणप्राप्तिः उपलम्भप्रत्ययान्तरसाकल्यं स्वभावविशेषश्च। यः स्वभावः सत्सु अन्येषूप-

[1] अस्य स्वलक्षणस्य तन्त्रान्तरेषु 'विशेषः' इति संज्ञा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लम्भप्रत्ययेषु सन् प्रत्यक्ष एव भवति स स्वभावः १। स्वभावः स्वसत्तामात्रभाविनि साध्यधर्मे हेतुः, यथा वृक्षोऽयं शिंशपात्वादिति २। कार्यं यथाग्निरत्र धूमादिति ३।" इति बौद्धाचार्यधर्मकीर्तिरचिते न्यायबिन्दौ।

पृ० ८ पं० ११-१२. **एतेन**·····**कार्यानुमानविनिश्चयेऽपि**। धूमस्य अग्निकार्यत्वात् धूमेन कार्येण कारणस्य अग्नेर्यदनुमानं तत् कार्यानुमानमुच्यते, कार्यलिङ्गजत्वात्। दृश्यतां टिपृ० १२ पं० २।

पृ० ८ पं० १२. **न विशेषा एव**···। "निर्विशेषं न सामान्यं भवेच्छशविषाणवत्। विशेषोऽपि च नैवास्ति सामान्येन विना कृतः॥" इति न्यायावतारवार्तिकवृत्तौ पृ० ९०। "निर्विशेषं न सामान्यं भवेच्छशविषाणवत्। सामान्यरहितत्वाच्च विशेषास्तद्वदेव हि॥१०॥" इति कुमारिलविरचिते श्लोकवार्तिके आकृतिवादे।

पृ० ८ पं० १४. 'रूपादय एव घटः' इति बौद्धमतं, 'घट एव रूपादयः' इति सांख्यादिमतं, 'रूपादयश्च घटश्च' इति वैशेषिकमतं रूपादिगुणवतोऽवयविनः स्वीकारात्, 'न रूपादयो न घटः' इति च शून्यवाद्यादिमतं भाति। अन्यतरोभयानुभयपक्षभेदेन उदाहरणचतुष्टयमत्र दर्शितमिति ध्येयम्।

पृ० ८ पं० १९. **परात्म**···। परमतविशेषप्रतिपत्तिनिराकरणं स्वमतविशेषतत्त्वप्रतिपादनं च कर्तव्यमित्याशयः।

पृ० ९ पं० १. **प्रमाणद्वय**···। दृश्यतां टिपृ० ११ पं० २८॥

पृ० ९ पं० ३. **पूर्वमहोदधिसमुत्पतितनयप्राभृततरङ्गागमप्रभ्रष्टश्लिष्टार्थकणिकामात्रम्**··· । "पूर्वर्षिभिस्तथा ज्ञानप्रवादाभिधपञ्चमात्। नयचक्रमहाग्रन्थः पूर्वीचक्रे तमोहरः॥१४॥"–प्रभावकच० मल्लवादिप्र०। द्वादशस्य दृष्टिवादाख्यस्य अङ्गस्य विभागविशेषः 'पूर्व'नाम्ना व्यपदिश्यते, नयप्राभृतं च नयस्वरूपनिरूपणपरो ग्रन्थविशेषः। तथाहि—

"**श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम्**। १।२०। श्रुतज्ञानं मतिज्ञानपूर्वकं भवति। श्रुतमाप्तवचनमागमः उपदेश ऐतिह्यमाम्नायः प्रवचनं जिनवचनमित्यनर्थान्तरम्। तद् द्विविधमङ्गबाह्यमङ्गप्रविष्टं च। तत् पुनरनेकविधं द्वादशविधं च यथासङ्ख्यम्। अङ्गबाह्यमनेकविधम्, तद्यथा–सामायिकं चतुर्विंशतिस्तवो वन्दनं प्रतिक्रमणं कायव्युत्सर्गः प्रत्याख्यानम् दशवैकालिकम् उत्तराध्यायाः दशाः कल्पव्यवहारौ निशीथम् ऋषिभाषितानि एवमादि। अङ्गप्रविष्टं द्वादशविधम्, तद्यथा–आचारः सूत्रकृतं स्थानं समवायः व्याख्याप्रज्ञप्तिः ज्ञातधर्मकथा उपासकाध्ययनदशाः अन्तकृद्दशाः अनुत्तरौपपातिकदशाः प्रश्नव्याकरणं विपाकसूत्रं दृष्टिपात इति। अत्राह–मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोः कः प्रतिविशेष इति। उच्यते–उत्पन्नाविनष्टार्थग्राहकं साम्प्रतकालविषयं मतिज्ञानम्, श्रुतज्ञानं तु त्रिकालविषयम् उत्पन्नविनष्टानुत्पन्नार्थग्राहकम्। अत्राह—गृह्णीमो मतिश्रुतयोर्नानात्वम्। अथ श्रुतज्ञानस्य द्विविधमनेकद्वादशविधमिति किंकृतः प्रतिविशेष इति? अत्रोच्यते—वक्तृविशेषाद् द्वैविध्यम्। यद् भगवद्भिः सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः परमर्षिभिरर्हद्भिः तत्स्वाभाव्यात् परमशुभस्य च प्रवचनप्रतिष्ठापनफलस्य तीर्थकरनामकर्मणोऽनुभावादुक्तं भगवच्छिष्यैरतिशयवद्भिरुत्तमातिशयवाग्बुद्धिसम्पन्नैर्गणधरैर्दृब्धं तदङ्गप्रविष्टम्। गणधरानन्तर्यादिभिस्त्वत्यन्तविशुद्धागमैः परमप्रकृष्टवाङ्मतिशक्तिभिराचार्यैः कालसंहननायुर्दोषादल्पशक्तीनां शिष्याणामनुग्रहाय यत् प्रोक्तं तदङ्गबाह्यमिति सर्वज्ञप्रणीतत्वादानन्त्याच्च ज्ञेयस्य श्रुतज्ञानं मतिज्ञानाद् महाविषयम्। तस्य च महाविषयत्वात् तांस्तानर्थानधिकृत्य प्रकरणसमाप्त्यपेक्षमङ्गोपाङ्गनानात्वम्। सुखग्रहणधारणविज्ञानापोहप्रयोगार्थं च। अन्यथा ह्यनिबद्धमङ्गोपाङ्गशः समुद्रप्रतरणवद् दुरध्यवसेयं स्यात्। एतेन **पूर्वाणि** वस्तूनि **प्राभृतानि** प्राभृतप्राभृतानि अध्ययनानि उद्देशाश्च व्याख्याताः।"–तत्त्वार्थभा०।

---

१ दृष्टिपातस्यैव 'दृष्टिवादः' इत्यपरमभिधानम्। अयं च दृष्टिवादः पञ्चविधः—परिकर्म १, सूत्रम् २, अनुयोगः ३, पूर्वगतम् ४, चूलिका ५ चेति। तत्र पूर्वगतं चतुर्दशप्रकारम्—उत्पादपूर्वम् १ अग्रायणीयपूर्वं २ वीर्यप्रवादपूर्वम् ३ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वं ४ ज्ञानप्रवादपूर्वं ५ सत्यप्रवादपूर्वम् ६ आत्मप्रवादपूर्वं ७ कर्मप्रवादपूर्वं ८ प्रत्याख्यानप्रवादपूर्वं ९ विद्यानुप्रवादपूर्वं १० कल्याणपूर्वं ११ प्राणावायपूर्वं १२ क्रियाविशालपूर्वं १३ लोकबिन्दुसारपूर्वं १४ चेति। एतेषां विस्तरेण स्वरूपं तु नन्दिसूत्र[सू० ५६]तत्त्वार्थराजवार्तिक[१।२०]प्रभृतिग्रन्थेभ्योऽवसेयम्। 'पूर्व'शब्दस्य 'आदिः' इत्यर्थः, तथा च आदौ तीर्थकृद्भिरर्थतोऽभिधानाद् गणधरैर्वा आदौ सूत्रतो विरचनादेतेषां पूर्वसंज्ञा, तदुक्तम्—"इह तीर्थकरस्तीर्थप्रवर्तनकाले गणधरान् सकलश्रुतार्थावगाहनसमर्थानधिकृत्य पूर्वं पूर्वगतं सूत्रार्थं भाषते ततस्तानि पूर्वाण्युच्यन्ते, गणधराः पुनः सूत्ररचनां विदधतः आचारादिक्रमेण विदधति स्थापयन्ति वा। अन्ये तु व्याचक्षते— पूर्वं पूर्वगतसूत्रार्थमर्हन् भाषते, गणधरा अपि पूर्वं पूर्वगतसूत्रं विरचयन्ति पश्चाद् आचारादिकम्।" इति नन्दिसूत्रस्य मलयगिरीयवृत्तौ सू० ५६। २ "एतेनेत्यादि। एतेनाङ्गोपाङ्गभेदप्रयोजनेन सुखग्रहणादिना। **पूर्वाणि** दृष्टिपातान्तःपातीनि, पूर्वं प्रणयनात्। **वस्तूनि** पूर्वस्यैवांशोऽल्पः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ९ पं० ५. **गाथासूत्रम्** । 'गाथा'छन्दसि निबद्धत्वादस्य सूत्रस्य 'गाथासूत्रम्' इत्युक्तम्।

पृ० ९ पं० ६. **विधिनियम**···। "तदेवं गुणत्रयवैकल्यादागमान्तराणां प्रामाण्यम्।··················तथा प्रमाणसंवाद्युत्पादव्ययध्रौव्यात्मकवस्त्वनभिधानादप्रामाण्यमित्याह मल्लवादी—विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत्। जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम् ॥५५॥ इति [पृ० ११२]। **वैधर्म्यमिति** वैधर्म्यप्रयोगः। तथाहि—उत्पादव्ययध्रौव्याभिधायकत्वेन सत्यत्वं व्याप्तम्। तद्व्यापकाभावाद् व्याप्याभावप्रतिपादनं वैधर्म्यप्रयोगः। **विधिश्च नियमश्च भङ्गश्च** ते तथोक्ताः। तेषु **वृत्तिस्तदभिधानम्। तद्व्यतिरिक्तत्वात्** तद्रहितत्वात्। **जैनादन्यच्छासन**मिति, शास्यन्ते जीवादयोऽनेनेति शासनमाम्नायो जिनप्रणीतः, तस्मादन्यद् वेदादि **अनृतम्** असत्यार्थं **भवति, अनर्थकवचोवत्**, अनर्थका उन्मत्तकाः, तद्वचनमिव। यद्वा अनर्थकं च तद्वचश्च दशदाडिमादिवाक्यवत्। विधिरुत्पादः, भङ्गो व्ययः, नियमो ध्रौव्यमिति, तदात्मकं सकलमेव वस्तु, तस्य साकल्येनाप्रतिपादनाद् आगमान्तराणां न प्रामाण्यमिति। [पृ० ११३]···········।

एवं सप्तनयाम्बुधेर्जिनमताद् बाह्यागमा येऽभवन्, स्थित्युत्पादविनाशवस्तुविरहात् तान् सत्यतायाः क्षिपन्।

यो बौद्धावधिवृद्धतीर्थिकमतप्रादुर्भवद्विक्रमः, मल्लो मल्लमिवान्यवादमजयच्छ्रीमल्लवादी विभुः॥" [पृ० १२२] इति **शान्तिसूरि**विरचितायां न्यायावतारवार्तिकवृत्तौ। "अत एव तदागमादपरागमानामनृतत्वम्। उक्तं च **मल्लवादिना**—'विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत्। जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम् ॥१॥' एतत्कारिकाविशेषभावार्थः स्वस्थानादवसेयः।" इति **चन्द्रसेनसूरि**विरचिताया **उत्पादादिसिद्धेः** स्वोपज्ञवृत्तौ पृ० २२२।

पृ० ९ पं० ९–१०. **परपक्ष**······**आवीतेनेति**। दृश्यतां पृ० ३१४ पं० ३ टि० २।

पृ० ९ पं० ११. **स्थितास्थित**···। दृश्यतां पृ० १० पं० २५।

पृ० ९ पं० १३. **मेरूत्तरकुरु**···। जैनमतानुसारि मेर्वादिस्वरूपं बृहत्सङ्ग्रहणी-क्षेत्रसमास-तत्त्वार्थसूत्र[अ० ३–४]-प्रभृतिग्रन्थेभ्योऽवसेयम्।

पृ० ९ पं० १५. **प्रत्यक्षग्राहे**···। दृश्यतां पृ० ५१ पं० ११।

पृ० ९ पं० २२. **'भवति'शुद्धपदोच्चारणवत्**। "जीवो त्ति सत्थयमिणं सुद्धत्तणओ घडाभिहाणं व। जेणत्थेण सदत्थं सो जीवो······॥ २०५४ ॥ जीवो इत्यादि। जीव इत्येतत् पदं सार्थकं सगर्भम्, शुद्धपदत्वात् असमासपदत्वात् घटाभिधानवत्। तत्रैतत् स्यात्—अनैकान्तिको हेतुः, शून्यमित्यस्य शुद्धपदत्वेऽप्यनर्थकत्वात्, तन्न, व्युत्पत्तिमत्त्वे सत्येवं हेतुविशेषणस्येच्छया व्याप्तत्वात्, 'अन्यथा वेत्ति को नैतत् न्यायमार्गविचक्षणः।' व्यतिरेकेण खरविषाणडित्थादिवचनवत्।"–विशेषाव० भा० कोट्याचार्यवृ० पृ० ४९१। "जीव इत्येतदभिधानमर्थवद्, व्युत्पत्तिमत्त्वे सति शुद्धपदत्वात्। इह यद् व्युत्पत्तिमत् शुद्धपदं च तदर्थवद् दृष्टम्। यदनर्थकं न तद् व्युत्पत्तिमत् शुद्धपदं च, यथा डित्थः खरविषाणं च। येनार्थेनार्थवदिदं जीवाभिधानं स जीवः, तस्मादस्तीति।"—विशेषाव० भा० स्वोपज्ञवृ०।

पृ० १० पं० १. **विधिराचारः**······। "विधेरेकार्थिकान्याह—अणुपुव्वी परिवाडी कमो य नायो ठिई य मज्जाया। होइ विहाणं च तहा विहीए एगट्ठिया हुंति ॥ २०८ ॥ आनुपूर्वी परिपाटी क्रमो न्यायः स्थितिः मर्यादा विधानमित्येतानि विधेरेकार्थिकानि भवन्ति।"—बृहत्कल्प० मलयगिरिवृ० पृ० ६७।

पृ० १० पं० ५. **स्वविषय**···। दृश्यतां पृ० ११७ पं० ५–७।

वस्तुनः **प्राभृत**मल्पतरम्। प्राभृतात् प्राभृतप्राभृतमल्पतरम्। ततोऽध्ययनं ग्रन्थतोऽल्पतरम्। तत उद्देशकोऽल्पतर इति। व्याख्यातानीति, सुखग्रहणादि यदेवाङ्गोपाङ्गादिकरणे फलं तदेवात्रापीति।"–तत्त्वार्थ० सिद्धसेनवृ० १।२०।

१ 'आर्या'छन्दस एव 'गाथा' इति नामान्तरम्। **चगौ षष्ठो जो न्लौ वा पूर्वेऽर्धे परे षष्ठो ल आर्या गाथा**। नौजे ज इति वर्तते। चगौ चगणसप्तकं गुरुश्चार्धे यस्याः सा आर्या। अत्रापवादः–पूर्वेऽर्धे षष्ठो जगणो न्लौ वा। परेऽर्धे षष्ठो गणो लघुः कार्यः। अर्धग्रहणादार्यादिषु पादव्यवस्था नास्ति।······। आर्यैव संस्कृतेतरभाषासु गाथासंज्ञेति गाथाग्रहणम्। अत्र पूर्वार्धे प्रथमे चे विकल्पाश्चत्वारः, यथा ऽऽ, ॥ऽ, ऽ॥, ॥॥, द्वितीये पञ्च ऽऽ, ॥ऽ, ।ऽ।, ऽ॥, ॥॥, तृतीये चत्वारः ऽऽ, ॥ऽ, ऽ॥, ॥॥, चतुर्थे पञ्च ऽऽ, ॥ऽ, ।ऽ।, ऽ॥, ॥॥, पञ्चमे चत्वारः ऽऽ, ॥ऽ, ऽ॥, ॥॥, षष्ठे द्वौ ।ऽ।, ॥॥, सप्तमे चत्वारः ऽऽ, ॥ऽ, ऽ॥, ॥॥, अष्टमे गुरुरेक एव।···एवमपरार्धेऽपि। नवरं षष्ठे लघुन्येकस्मिन्नेक एव विकल्पः।"—**छन्दोनुशासनवृ० पृ० २६**। "यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तुरीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या॥" इत्यपरमपि **आर्यालक्षणम्**।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १० पं० २४. द्रव्यस्या···। "नय इति किमुच्यते कतिभेदश्चायमित्याह—एगेण वत्थुणोऽणेगधम्मुणो जमव धारणेणेव । नयणं धम्मेण तओ होइ नओ सत्तहा सो य ॥ २१८० ॥ अनेकधर्मणोऽनन्तधर्मात्मकस्य वस्तुनो यदेकेन धर्मेण नित्यत्वादिना अनित्यत्वादिना वा धर्मेणावधारणेनैव सावधारणं नयनं प्ररूपणं तकोऽसौ नयो भवति।······स च नयः सप्तविधः सप्तप्रकारः ।"—विशेषाव० भा० मलधारिवृ० । "स्वार्थैकदेशनिर्णीतिलक्षणो हि नयः स्मृतः। [पृ० ११८]··· नीयते गम्यते येन श्रुतार्थांशो नयो हि सः।"—तत्त्वार्थश्लोकवा० पृ० २६८। दृश्यतां तत्त्वार्थसू० सिद्धसेनवृ० हारिभद्रीवृ० १।६।

पृ० १० पं० २६. पूर्ववत् स्थिता······। दृश्यतां पृ० ९ पं० ११।

पृ० ११ पं० ३. यथालोक···। "व्यवहारस्त्वेवमाह—यथालोकग्राह्यमेव वस्तु अस्तु, किमनया अदृष्टाव्यवह्रियमाण-वस्तुपरिकल्पनाकष्टपिष्टिकया ? यदेव च लोकव्यवहारपथमवतरति तस्यैवानुग्राहकं प्रमाणमुपलभ्यते, नेतरस्य। न हि सामान्यमनादिनिधनमेकं संग्रहाभिमतं प्रमाणभूमिः, तथानुभवाभावात् सर्वस्य सर्वदर्शित्वप्रसंगाच्च । नापि विशेषाः परमाणु-लक्षणाः क्षणक्षयिणः प्रमाणगोचराः, तथाप्रवृत्तेरभावात्। तस्मादिदमेव निखिललोकाबाधितं प्रमाणप्रसिद्धं कियत्कालभावि स्थूलतामाबिभ्राणमुदकाद्याहरणाद्यर्थक्रियानिर्वर्तनक्षमं वस्तुरूपं पारमार्थिकम्।"—स्याद्वादमं० का० २८।

पृ० ११ पं० ४, १७. विवेकयत्नः शास्त्रेषु। दृश्यतां पृ० ११७ पं० १३, पृ० ११८ पं० ७।

पृ० ११ पं० ५, २१. सामान्यविशेषौ हि···। दृश्यतां पृ० ११८ पं० १५।

पृ० ११ पं० ६. यदि स्वविषयम् इत्यत आरभ्य एवं शेषावपि [पृ० १३ पं० २] इत्येतत्पर्यन्तस्य मूलस्य संवादः 'पृ० १९ पं० २३-२४, पृ० २३ पं० ११, पृ० ३२ पं० ९' इत्यादिषु अवलोकनीयः।

पृ० ११ पं० ९. तत्त्वान्वाख्यानवत् । 'अन्वाख्यान'शब्दप्रयोगः पातञ्जलमहाभाष्य[१।२।३२, २।१।१, ४।१।१६]वाक्यपदीय[२।२३३]प्रभृतिषु बहुषु ग्रन्थेषु दृश्यत इति ध्येयम्।

पृ० ११ पं० २६-३०. सर्वं सर्वात्मकम्···। दृश्यतां पृ० ३२० टि० ३-४।

पृ० १२ पं० १५. व्यपदेशिवद्भावात् । "ननु चोक्तं 'सूत्रे व्याकरणे षष्ठ्यर्थोऽनुपपन्नः' इति । नैष दोषः, व्यपदेशिवद्भावेन भविष्यति । [पा० म० भा० १।१।१ पस्पशा०]। व्यपदेशिवद्भावेनेति, यथा राहोः शिर इत्येकस्मिन्नपि वस्तुनि शब्दार्थभेदव्यवहार एवमिहापि······भेदव्यवहार उपपद्यते।" इति पातञ्जलमहाभाष्यप्रदीपे कैयटविरचिते। "तत्र व्यपदेशिवद्भावो वक्तव्यः। व्यपदेशिवदेकस्मिन् कार्यं भवतीति वक्तव्यम् [पा० म० भा०] ।······निमित्तसद्भावादमुख्यो व्यपदेशो यस्यास्ति स व्यपदेशी। यस्तु व्यपदेशहेत्वभावादविद्यमानव्यपदेशः स तेन तुल्यं वर्तते कार्यं प्रतीति 'व्यप-देशिवद् भवति' इत्युच्यते।" इति पातञ्जलमहाभाष्यप्रदीपे १।१।२०। "व्यपदेशिवद्भावेनेति। विशिष्टोऽपदेशो व्यपदेशो मुख्यव्यवहारः, सोऽस्यास्तीति व्यपदेशी, तेन तुल्यं व्यपदेशिवत्; धातावेव धातुत्वप्रत्ययव्यवहारो गौणः 'राहोः शिरः' इत्या-दिवदिति भावः।"—पा० बालमनोरमा ८।२।३३।

पृ० १२ पं० १७. आध्यात्मिकाः कार्यात्मका···। दृश्यतां पृ० २९८ टि० ३, पृ० ३१४ पं० ७।

पृ० १२ पं० १९. प्रसादलाघवाभिष्वङ्गो···। अत्र प्रसादलाघवप्रसवाभिष्वङ्गो···इत्येवं पठनीयम्। प्रतिष्वपि तथैव पाठः।

पृ० १२ पं० १९. 'भेदोपष्टम्भो'···। अत्र 'भेदावष्टम्भो' इति यथाश्रुतः पाठः समीचीन एव भाति।

पृ० १२ पं० २२. कार्ये समन्वयदर्शनात्। अत्र कार्यसमन्वयदर्शनात् इति य० प्रतिपाठः शोभनो भाति। दृश्यतां पृ० ३१४ पं० ९। पृ० १२ टि० ५ इत्यत्र च य० प्रतिपाठानुसारी अन्वयोऽवलोकनीयः।

पृ० १३ पं० १४. प्रकृतेर्महद···। "एवं कारणान्तरप्रतिषेधात् प्रकृतेः पुरुषार्थोऽयं व्यक्तभावेन विपरिणाम इति स्थितम् । तत्रेदानीं विप्रतिपत्तिराचार्याणाम् । केचिदाहुः—प्रधानादनिर्देश्यस्वरूपं तत्त्वान्तरमुत्पद्यते ततो महानिति। पतञ्जलि-पञ्चाधिकरण-वार्षगणानां 'प्रधानात् महानुत्पद्यते' इति। तदन्येषां पुराणेतिहासप्रणेतॄणां 'महतोऽहङ्कारो [न?] विद्यते' इति पक्षः, महतोऽस्मिप्रत्ययकर्तृत्वाभ्युपगमात्। 'अहङ्कारात् पञ्च तन्मात्राणि' इति सर्वे। 'महतः षडविशेषाः सृज्यन्ते—पञ्च तन्मात्राणि अहङ्कारश्च' इति विन्ध्यवासिमतम्। तथा 'अहङ्कारादिन्द्रियाणि' इति सर्वे। 'भौतिकानीन्द्रियाणि' इति पञ्चाधि-करणमतम्। 'एकरूपाणि तन्मात्राणि' इत्यन्ये। 'एकोत्तराणि' इति वार्षगण्यः। 'इन्द्रियाणि संस्कारविशेषयोगात् परिगृहीत-रूपाणि' इति केचित्, 'परिच्छिन्नपरिमाणानि' इत्यपरे, 'विभूनि' इति विन्ध्यवासिमतम्। अधिकरणमपि केचित् त्रयोदश-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विधमाहुः। एकादशकमिति विन्ध्यवासी। तथान्येषां महति सर्वार्थोपलब्धिः, मनसि विन्ध्यवासिनः। संकल्पाभिमानाध्यवसायनानात्वमन्येषाम्, एकत्वं विन्ध्यवासिनः। तथा करणं निर्लिखितस्वरूपं शून्यग्रामनदीकल्पम्, प्राकृतवैकृतिकानि तु ज्ञानानि प्रेरकाङ्गसंगृहीतानि प्रधानादागच्छन्ति चेति पञ्चाधिकरणः, न तु तथेत्यन्ये। करणानां महती स्वभावातिवृत्तिः प्रधानात् स्वल्पा च स्वत इति वार्षगण्यः, सर्वा स्वतः इति पतञ्जलिः, सर्वा परत इति पञ्चाधिकरणः, बुद्धिः क्षणिकेति च, कालान्तरावस्थायिनी इत्यपरे। एवमनेकनिश्चयेषु आचार्येषु ये तावत् प्रधानमहतोरन्तराले तत्त्वान्तरमिच्छन्ति तत्प्रतिक्षेपायाचार्यः स्वमतमुपन्यस्यति—प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः। तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि ॥२२॥ 'प्रकृतेर्महान्'। प्रकृतेर्महानुत्पद्यते। महान् बुद्धिर्धृतिर्ब्रह्मा पूर्तिः ख्यातिरीश्वरो विखर इति पर्यायाः। स तु देशमहत्त्वात् कालमहत्त्वाच्च महान्। सर्वोत्पाद्येभ्यो महापरिणामयुक्तत्वाद् महान्। अन्यस्य तु पक्षे नैवाहङ्कारो विद्यत इति तत्प्रतिषेधविवक्षयेदमाह—'ततोऽहंकारः'। तस्माद् महतोऽहंकार उत्पद्यते। यः पुनराह—महतः षडविशेषाः सृज्यन्ते 'पञ्च तन्मात्राणि अहंकारश्च' इति, तन्निरासार्थमाह—तस्माद् गणश्च षोडशकः। तस्मादहंकारात् षोडशको गण उत्पद्यते—पञ्च तन्मात्राणि एकादशेन्द्रियाणि चेति। अनेनैव च भौतिकेन्द्रियवादी प्रतिक्षिप्तो बोद्धव्यः। 'तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि'। तस्मादपि षोडशकाद् गणाद् यः पञ्चको गणः ततः पञ्च महाभूतान्युत्पद्यन्ते। पूर्वपदलोपेनात्र महाभूतानीति वक्तव्ये भूतानीत्युच्यते। भूतसंज्ञा हि तन्मात्राणाम्, न पृथिव्यादीनाम्, अत्र तु सांख्याचार्याणामविप्रतिपत्तिः। भूतकौटस्थ्यवादिनस्तु मीमांसका आर्हताश्च, तत्प्रतिक्षेपेणेदमुच्यते इति।" इति सांख्यकारिकाया वृत्तौ युक्तिदीपिकायाम्।

पृ० १३ पं० १९-२२. **आचार्यपवनपाषाणवत्……तमांसि**। दृश्यतां पृ० २७३–५, २८४।

पृ० १४ पं० ४–५. **सामान्य……नियमपक्षापत्तिरपि**। दृश्यतां पृ० २० पं० ५।

पृ० १४ पं० ६–७. **पर……अनवधृतैकतरकारणत्वाद्**। दृश्यतां पृ० १९ पं० १५, पृ० २७ पं० ६–७।

पृ० १४ पं० ११. **शब्दतन्मात्रादिषु……**। "तन्मात्राण्यविशेषाः। यानि तन्मात्राणि पञ्च अहंकारादुत्पद्यन्ते इति प्रागपदिष्टं ते खल्वविशेषाः। कानि पुनस्तन्मात्राणीति उच्यते—शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रमिति। कथं पुनस्तन्मात्राणीत्युच्यते—तुल्यजातीयविशेषानुपपत्तेः। अन्ये शब्दजात्यभेदेऽपि सति विशेषा उदात्तानुदात्तस्वरितानुनासिकादयः तत्र न सन्ति, तस्माच्छब्दतन्मात्रम्। एवं स्पर्शतन्मात्रे मृदुकठिनतादयः। एवं रूपतन्मात्रे शुक्लकृष्णादयः। एवं रसतन्मात्रे मधुराम्लादयः। एवं गन्धतन्मात्रे सुरभ्यादयः। तस्मात् तस्य तस्य गुणस्य सामान्यमेवात्र, न विशेषः।" –सांख्यका० युक्तिदीपिका [का० १८]। **भूतेषु एकगुणादिवृद्धेषु**। दृश्यतां पृ० २६८ टि० १।

पृ० १४ पं० १२. **श्रोत्रादिष्वेकादशस्विन्द्रियेषु**। दृश्यतां पृ० १२ पं० २०। "बुद्धीन्द्रियाणि कर्ण-त्वक्-चक्षु-रसन-नासिकाख्यानि।……एतानि बुद्धीन्द्रियाणि प्रत्यवगन्तव्यानि। बुद्धेरिन्द्रियाणि बुद्धीन्द्रियाणि। किं पुनरेतानि बुद्धेरिति? उच्यते—शब्दादिविषयप्रतिपत्तौ द्वारम्। कस्मात्? अबहिर्वृत्तित्वादन्तःकरणस्य नास्ति बहिर्वृत्तिरित्यतो नालमेतत् साक्षाद् शब्दादीनर्थान् प्रतिपत्तुम्। तस्मात् श्रोत्रादिलक्षणं साक्षाद् बाह्यविषयप्रकाशनसमर्थं कारणान्तरमपेक्षते। तत्प्रणालिकया तस्य विषयग्रहणम्। तस्माद् युक्तमुक्तं बुद्धेर्बाह्यविषयद्वारभूतत्वाद् बुद्धीन्द्रियाणीति। आह कर्मेन्द्रियाणि पुनः कानीति? वाक्पाणिपादपायूपस्थाः कर्मेन्द्रियाण्याहुः ॥ २६ ॥ वाक् च पाणी च पादौ च पायुश्चोपस्थश्च वाक्पाणिपादपायूपस्थाः। एतानि कर्मेन्द्रियाण्याहुराचक्षते। …… अधिष्ठानादिन्द्रियपृथक्त्वं शक्तिविशेषोपलम्भात्।……आह—एकादशेन्द्रियाणि अहंकारादुत्पद्यन्त इति प्रागपदिष्टम्। इदानीं बुद्धीन्द्रियकर्मेन्द्रियाणि दशापदिश्यन्ते, तदिदं पदार्थन्यूनमिति। उच्यते—स्यादेतदेवं यद्येतावदिन्द्रियपर्व स्यात्। किं तर्हि? संकल्पकमत्र मनः, अत्र इन्द्रियपर्वणि मनो भवद्भिः प्रत्यवगन्तव्यम्, तत्र संकल्पकमिति लक्षणमाचक्ष्महे। संकल्पोऽभिलाष इच्छा…इत्याद्यनर्थान्तरम्। संकल्पयतीति संकल्पकम्, एतद् मनसो लक्षणम्।…… तच्चेन्द्रियमुभयथा समाख्यातम्।…… तद्धि इन्द्रियमुभयथेत्यर्थः। मनो न केवलं बुद्धीन्द्रियम्, अपि तु कर्मेन्द्रियमपि।"–सांख्यका० युक्तिदीपिका का० २६–२७।

पृ० १४ पं० १६. **शब्दाद्युपलब्धि…**। "शब्दाद्युपलब्धिरादिः गुणपुरुषान्तरोपलब्धिरन्तः। यावदस्याविभक्तः प्रत्ययः श्रोत्रादीन्द्रियवृत्तिषु श्रवणादिषु 'अहं श्रोता' इत्येवमादिः पाञ्चभौतिके च शिरःपाण्यादिसमूहे शरीरे 'अहं पुरुषः' इति प्रत्ययो भवति तावदप्रतिबुद्धत्वात् संसारः। गुणपुरुषान्तरोपलब्धिरन्तः, यदा पुरुषवर्जं सर्वं प्रकृतिकृतं त्रिगुणमचेतनं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोग्यमिति जानाति भोक्तारमकर्तारं चेतनं च पुरुषमन्यं प्रधानाद्वेत्ति अचेतनांश्च गुणान् तदा तस्य गुणपुरुषान्तरोपलब्धिरन्तः संसारस्य इति ज्ञानाद् मोक्षः, विपर्ययाद्बन्धः।"—तत्त्वार्थराजवा० १।१।

पृ० १४ पं० १८. **प्रधान-पुरुष-संयोगत्रित्व**···। "तस्मात् तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्। गुणकर्तृत्वे च तथा कर्तेव भवत्युदासीनः॥ २०॥ पुरुषस्य दर्शनार्थः कैवल्यार्थस्तथा प्रधानस्य। पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः॥ २१॥—सांख्यका०। अनयोः कारिकयोर्विस्तरेण स्वर्थौ युक्तिदीपिका-माठरवृत्तिप्रभृतिव्याख्याभ्योऽवसेयः।

पृ० १५ पं० ८. **अन्यकिंयत्तदो निर्धारणे**······। इदमत्रावधेयम्—अस्मिन् ग्रन्थे नयचक्रवृत्तिकृता सर्वत्र पाणिनीयव्याकरणसूत्राण्येवोल्लिखितानि, सम्प्रति तु 'किंयत्तदो निर्धारणे' इति 'अन्य'शब्दरहितमेव पाणिनीयसूत्रमुपलभ्यते। अतो नयचक्रवृत्तिकृतां सिंहसूरिगणिवादिक्षमाश्रमणानां समये 'अन्यकिंयत्तदो निर्धारणे' इत्यपि अस्य सूत्रस्य पाठान्तरमासीदित्यनुमीयते। चान्द्रव्याकरणे "यत्तदेकाद् द्वाभ्यां निर्धारणे डतरच् ।४।३।७५। जातौ डतमज्बहुभ्यः ।४।३।७६। तौ किमः ।४।३।७७" इति सूत्राणि। शाकटायने "यत्तत्किमन्याद् द्वयोर्निर्धार्ये डतरः ।३।४।१०५। वैकात् ।३।४।१०६। बहूनां प्रश्ने डतमश्च ।३।४।१०७" इति सूत्राणि। सिद्धहेमशब्दानुशासने "वैकाद् द्वयोर्निर्धार्ये डतरः। ७।३।५२। यत्तत्किमन्यात् ।७।३।५३। बहूनां प्रश्ने डतमश्च वा ।७।३।५४।" इति सूत्राणि। भोजविरचिते सरस्वतीकण्ठाभरणे "किंयत्तदेकान्येभ्यो द्वयोरेकस्य निर्धारणे डतरच्। वा बहूनां जातौ डतमच्। किमो डतरच्। ५।३।१२५-१२७" इति सूत्राणि। कातन्त्रे "आख्यातात्र तमादयः। २।६।४०।" इति सूत्रम्। "द्वयोर्बहूनां चैकस्य निर्धारणे किमादिभ्योडतरडतमौ वक्तव्यौ। किमादिभ्य इति किम्? यत्तद्भ्यो डितौ अतर-अतमौ प्रत्ययौ भवतः। 'च'कारात् 'एक'शब्दात् 'अन्य'शब्दादपि डतरडतमौ वक्तव्यौ। एकतरः। एकतमः। अन्यतरः। अन्यतमः।"इति सारस्वतव्याकरणे। अत्र 'सर्वादीनि सर्वनामानि' [पा० ७।१।५२] इति सूत्रस्य सिद्धान्तकौमुदी व्याख्या विलोकनीया। 'सर्वादेः स्मै स्मातौ' [सिद्धहेम० १।४।७] इति सूत्रस्य बृहद्वृत्तिरपि अवलोकनीया।

पृ० १५ पं० १०-११. **आतिशयिकः**······। अत्र **आतिशायिकः** इति भा० प्रतिपाठ एव शुद्धः। अत्र च 'अतिशायने तमबिष्ठनौ ।५।३।५५। द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ।५।३।५७' इति पाणिनीयसूत्रद्वयस्य पातञ्जलमहाभाष्यमपि विलोकनीयम्।

पृ० १४ पं० १६. **द्रव्यमपि**। "तच्च द्रव्यं भवनलक्षणम्···भवनमात्रमेवेदं कृत्स्नम्।"—तत्त्वार्थ० सिद्धसेनवृ० ५।२९।

पृ० १५ पं० १७. **सर्वतन्त्रसिद्धान्ते**। "सर्वतन्त्राविरुद्धस्तन्त्रेऽधिकृतोऽर्थः सर्वतन्त्रसिद्धान्तः ।१।१।२८। यथा घ्राणादीनीन्द्रियाणि, गन्धादय इन्द्रियार्थाः, पृथिव्यादीनि भूतानि, प्रमाणैरर्थस्य ग्रहणमिति।"—न्यायभा०।

पृ० १५ पं० १७. **द्रव्यं च भव्ये**। "द्रोर्भव्ये ।७।१।११५। द्रुशब्दात् तस्य तुल्ये भव्येऽभिधेये यः प्रत्ययो भवति। विशिष्टेष्टपरिणामेन भवति इति भव्यम्, अभिप्रेतानामर्थानां पात्रम्। द्रुतुल्यः द्रव्यमयं माणवकः। द्रव्यं कार्षापणम्। यथा द्रु अग्रन्थि अजिह्मं दारु उपकल्प्यमानं विशिष्टेष्टरूपं भवति तथा माणवकोऽपि विनीयमानो विद्या-लक्ष्म्यादिभाजनं भवतीति द्रव्यमुच्यते। कार्षापणमपि विनियुज्यमानं विशिष्टेष्टमाल्याद्युपभोगफलं भवतीति द्रव्यमुच्यते। द्रुरिव द्रव्यं राजपुत्रः। यथा द्रुमः पुष्पफलादिभिरर्थिनः कृतार्थयति एवमन्योऽपि यः सोऽपि द्रव्यमुच्यते। भव्य इति किम्? द्रुतुल्योऽयं न चेतयते।"—सिद्धहेम० बृहद्वृ०।

पृ० १५ पं० १८-२०. **द्रवति**······। "दवए दुयए दोरवयवो विगारो गुणसंदावो। दव्वं भव्वं भावस्स भूअभावं च जं जोग्गं॥ २८॥ 'द्रु द्रु गतौ' [पा० धा० ९४४-९४५], द्रवतीति द्रव्यम्, स्वपर्यायान् प्राप्नोति क्षरति चेत्यर्थः। तथा द्रूयते गम्यते तैरिति द्रव्यम्। तथा द्रुः सत्ता, तस्या विकारोऽवयवो वेति द्रव्यम्। तथा गुणानां सन्द्रावो द्रव्यम्। गुणा रूपादयः, सन्द्रवणं सन्द्रावः, समुदाय इत्यर्थः। तथा 'द्रव्यं च भव्ये' [पा० ५।३।१०४] इति द्रव्यं भव्यं भावस्य योग्यमित्यर्थः। यद् भाविभूतभावं चेति।"—विशेषाव० भा० स्वोपज्ञवृ०।

पृ० १५ पं० २०. **गुणसन्द्रावो द्रव्यम्**। एतच्च सांख्यादीनां मतमिति ज्ञेयम्, दृश्यतां पृ० ३०३ पं० २। "सिद्धं तु यस्य गुणस्य भावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशस्तदभिधाने त्वतलौ। सिद्धमेतत्। कथम्? यस्य गुणस्य भावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशस्तदभिधाने तस्मिन् गुणे वक्तव्ये प्रत्ययेण भवितव्यम्, न चाभिप्रायादीनां भावाद् द्रव्ये देवदत्तशब्दो वर्तते। किं पुनर्द्रव्यं के पुनर्गुणाः? शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा गुणाः, ततोऽन्यद् द्रव्यम्। किं पुनरन्यच्छब्दादिभ्यो द्रव्यमाहोस्विदनन्यत्? गुणस्यायं भावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशं कुर्वन् ख्यापयति अन्यच्छब्दादिभ्यो द्रव्यमिति। अनन्यच्छब्दादिभ्यो द्रव्यम्, न ह्यन्यदुपलभ्यते। पशोः खल्वपि विशसितस्य पर्णशते न्यस्तस्य नान्यच्छब्दादिभ्य उपलभ्यते। अन्यच्छब्दादिभ्यो द्रव्यम्, तत्त्वमनुमानगम्यम्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तद्यथा-ओषधिवनस्पतीनां वृद्धिह्रासौ, ज्योतिषां गतिरिति। कोऽसौ अनुमानः? इह समाने वर्ष्मणि परिणाहे चान्यत् तुलाग्रं भवति लोहस्य, अन्यत् कार्पासानाम्, यत्कृतो विशेषस्तद् द्रव्यम्। तथा कश्चित् स्पृशन्नेव छिनत्ति कश्चिल्लम्बमानोऽपि न छिनत्ति, यत्कृतो विशेषस्तद् द्रव्यम्। तथा कश्चिदेकेनैव प्रहारेण व्यपवर्गं करोति कश्चिद् द्वाभ्यामपि न करोति यत्कृतो विशेषस्तद् द्रव्यम्। अथवा यस्य गुणान्तरेषु प्रादुर्भवत्स्वपि तत्त्वं न विहन्यते तद् द्रव्यम्। किं पुनस्तत्त्वम्? तद्भावस्तत्त्वम्। तद्यथा—आमलकादीनां फलानां रक्तादयः पीतादयश्च गुणाः प्रादुर्भवन्ति आमलकं बदरमित्येव भवति। अन्वर्थं खल्वपि निर्वचनम्—**गुणसन्द्रावो द्रव्यमिति**।" इति पातञ्जलमहाभाष्ये ५।१।११९। पातञ्जलमहाभाष्यस्य सांख्यमतानुसारित्वं 'स्त्रियाम्' [पा० ४।१।३।] इति सूत्रे पातञ्जलमहाभाष्यस्य उद्द्योतात् प्रदीपाच्चावगन्तव्यम्।

पृ० १५ पं० २०. **क्रियावद्**···। दृश्यतां पृ० ४४० टि० ५। दृश्यतां टिपृ० ८ पं० २२।

पृ० १५ पं० २२. **भवितुं शीला**···। "आ क्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु"—पा० ३।२।१३४।

पृ० १६ पं० ८. **क्षेत्रमपि**···। "खेत्तं मयमागासं सव्वदव्वावगाहणालिंगं। तं दव्वं चेव निवासमेत्तपज्जायओ खेत्तं ॥ २०८८ ॥······इह दव्वं चेव निवासमेत्तपज्जायभावओ खेत्तं।······॥ ३३४३ ॥"—विशेषाव० भा०। अर्थस्त्वासां गाथानां कोट्टार्यादिविरचितवृत्तिभ्योऽवसेयः।

पृ० १६ पं० १३. **रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी**। वैशेषिकदर्शनसूत्रमिदम्। दृश्यतां टिपृ० ८ पं० २२।

---

१ "एवं द्रव्यादीनां नानात्वे सिद्धे पृथिव्यादीनां द्रव्यलक्षणाविशेषादेकत्वे प्राप्ते लक्षणभेदेन वैधर्म्यमाह—**रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी** [वै० सू० २।१।१], एतेऽस्या रूपरसगन्धस्पर्शा विशेषगुणाः, अन्ये तु सङ्ख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-परत्वा-ऽपरत्व-गुरुत्व-नैमित्तिकद्रवत्व-संस्काराः। रूपं शुक्लादि, रसो मधुरादिः, गन्धः सुरभिरसुरभिश्च, स्पर्शोऽस्या अनुष्णाशीतत्वे सति पाकजः, कार्यं बाह्यमाध्यात्मिकं च। **रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाश्च** [वै० सू० २।१।२], शुक्ल-मधुर-शीता एव रूप-रस-स्पर्शाः। द्रवा इति सांसिद्धिकं द्रवत्वम्। स्निग्धा इति आसामेव स्नेहः। सङ्ख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-परत्वा-ऽपरत्व-गुरुत्व-संस्काराश्च। कार्यं पूर्ववत्। **तेजो रूपस्पर्शवत्** [वै० सू० २।१।३], रूपं भास्वरं शुक्लं च, स्पर्श उष्ण एव। सङ्ख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-परत्वा-ऽपरत्व-नैमित्तिकद्रवत्व-संस्काराश्च। कार्यं पूर्ववत्। **वायुः स्पर्शवान्** [वै० सू० २।१।४], अनुष्णाशीतोऽपाकजः स्पर्शः। सङ्ख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-परत्वा-ऽपरत्व-संस्काराश्च। कार्यं पूर्ववत्। भौमादिदेहा भूम्यादिलोकेषु। **त आकाशे न विद्यन्ते** [वै० सू० २।१।५], ते रूपरसगन्धस्पर्शा न सन्त्याकाशे। तस्य गुणाः शब्द-सङ्ख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभागाः। **सर्पिर्जतुमधूच्छिष्टानां पार्थिवानामग्निसंयोगाद् द्रवताऽद्भिः [P. पृ० ११ A] सामान्यम्** [वै० सू० २।१।६], [मधूच्छिष्टं] सिक्थकम्[1]। सर्पिषो जतुनो मधूच्छिष्टस्य चाग्निसंयोगाद् द्रवता या सञ्जायते तदद्भिः समानत्वं पृथिव्याः। **त्रपुसीसलोहरजतसुवर्णानां तैजसानामग्निसंयोगाद् द्रवताऽद्भिः सामान्यम्** [वै० सू० २।१।७], एषां च तैजसानां यदग्निसंयोगाद् द्रवत्वमुपजायते तदद्भिः सामान्यं तेजसः। **विषाणी ककुद्मान् प्रान्तेवालधिः सास्नावानिति गोत्वे दृष्टं लिङ्गम्** [वै० सू० २।१।८], दृष्टान्तार्थं सूत्रम्। गोत्वे इति [2]गोत्वावच्छिन्ना व्यक्तिः, विषाणं ककुदं सास्ना च अस्यास्तीति विषाणी ककुद्मान् सास्नावान्। प्रान्तशब्देन कटिभागः, वाला अस्मिन् धीयन्त इति वालधिशब्देन पुच्छः, प्रान्ते वालधिरस्येति प्रान्तेवालधिः। विषाण्यादिभिः शब्दैस्तद्वत्प्रतिपादकैरपि अर्थव्यापाराद् धर्मा एव व्यपदिश्यन्ते। यथा अप्रत्यक्षायां गोव्यक्तौ कथञ्चिद् गृह्यमाणा विषाणादयो लिङ्गं दृष्टमनुमापकास्तथा **स्पर्शश्च** [वै० सू० २।१।९], स्पर्श उपलभ्यमानो निराश्रयस्यानुपपत्तेर्वायुमनुमापयति। **न च दृष्टानां स्पर्श इत्यदृष्टलिङ्गो वायुः** [वै० सू० २।१।१०], यदि खल्वयं क्षित्यादिस्पर्शोऽभविष्यद् गन्धरसरूपैः सहोपलभेमहि, न चैवम्, तस्मात् पृथिव्यादिव्यतिरिक्तस्य वायोर्लिङ्गम्। **अद्रव्यवत्त्वाद् द्रव्यम्** [वै० सू० २।१।११], यः परमाणुस्वभावो वायुः स खलु अद्रव्यवत्त्वात् समवायिकारणरहितत्वाद् द्रव्यम्। द्रव्यं ह्यद्रव्यमनेकद्रव्यं च। **क्रियावत्त्वाद् गुणवत्त्वाच्च** [वै० सू० २।१।१२], 'क्रियावद् गुणवत्' [१।१।१४] इति द्रव्यलक्षणाद् यत्र क्रिया गुणाश्च समवेताः सोऽपि महान् वायुर्द्रव्यम्। **अद्रव्यवत्त्वेन नित्यत्वमुक्तम्** [वै० सू० २।१।१३], परमाणुलक्षणस्य वायोरद्रव्यवत्त्वेन समवायिकारणरहितत्वेन नित्यत्वमुक्तम्। **वायोर्वायुसम्मूर्च्छनं नानात्वे लिङ्गम्** [वै० सू० २।१।१४], तिर्यग्गामिनो वायोर्वायु-

---

1 सिक्थकं-पू०। "मधूच्छिष्टशब्देन सिक्थकाभिधानम्"—न्यायकन्दली पृ० २९। 2 गोत्वाविच्छिन्ना-पू०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मूर्च्छनेन वाय्वन्तरसंश्लेषेण ऊर्ध्वगमनं प्रवर्तते, तत [P. पृ० ११ B] ऊर्ध्वगमनात् संश्लेषः, संश्लेषाद् वायोरनेकत्वमनुमीयते। ननु च **वायुरिति** [1]***सन्निकर्षे प्रत्यक्षाभावाद् दृष्टं लिङ्गं न विद्यते*** [वै० सू० २।१।१५], [चक्षुषा गोः] सन्निकर्षे सति प्रत्यक्षेण विषाणादीनि तद्योगितया दृष्टानि कदाचिल्लिङ्गम्, नैवं त्वचा वायोः सन्निकर्षे सति अयं वायुरिति प्रत्यक्षेण तद्गुणतया स्पर्श उपलब्धो येनानुपलभ्यमानं कदाचिद् वायुमनुमापयेत्। क्षित्यादिस्पर्शविधर्मत्वादस्य स्पर्शस्य निराश्रयस्य चाभावाद् वायुराश्रय [2]इति चेत्, **सामान्यतो दृष्टाच्चाविशेषः** [वै० सू० २।१।१६], आकाशादीनामपि परोक्षत्वात् प्रतिषेधेन वायोरेवायं स्पर्श इत्ययं विशेष एतस्मात् सामान्यतो दृष्टान्नावगम्यते। विभूनां स्पर्शवत्त्वे भावप्रतिघात इति चेत्, एवं तर्हि वायोरेवायं भवत्प्रसिद्धस्य स्पर्शो न दशमस्य द्रव्यस्येति कथं ज्ञायते? **तस्मादागमिकम्** [वै० सू० २।१।१७], तस्माद् वायुरस्तीति वाक्यमागमिकं प्रवादमात्रमित्यर्थः। नैतत्, **संज्ञाकर्म त्वस्मद्विशिष्टानां लिङ्गम्** [वै० सू० २।१।१८], अस्मदादीनां सकाशाद् यो भगवान् विज्ञानादिभिर्विशिष्टो महेश्वरस्तदीयं संज्ञाप्रणयनं नवानामेव द्रव्याणां भावे लिङ्गम्, दशमस्य संज्ञानभिधानात्। तस्मान्नवैव द्रव्याणि। अतो वायोरेव स्पर्शः। 'अस्मद्विशिष्टानाम्' इति पूजायां बहुवचनम्। स कथं ज्ञायत इत्युच्यते – **प्रत्यक्षपूर्वकत्वात् संज्ञाकर्मणः** [वै० सू० २।१।१९], प्रत्यक्षेण हि पदार्थमालोचयन्तः संज्ञाः प्रणयन्ति, दृष्टं च दारकस्य नामकरणे, प्रणीताश्चेमाः खलु संज्ञाः, तस्मान्मन्यामहे – अस्ति भगवानस्मद्विशिष्टो योऽस्मदादिपरोक्षाणामपि भावानां प्रत्यक्षदर्शी येनेदं संज्ञादि प्रणीतमिति। **निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम्** [वै० सू० २।१।२०], यदेतद् निष्क्रमणं प्रवेशनं च पुरुषस्य द्वारादिना भवति न भित्त्यादौ तदाकाशकृतम्, [P. पृ० १२ A] अतो निष्क्रमणप्रवेशने आकाशस्य लिङ्गमिति। मूर्ताभावो ह्याकाशम्। तत्र **तदलिङ्गमेकद्रव्यवत्त्वात् कर्मणः** [वै० सू० २।१।२१], निष्क्रमणादि कर्म पुरुषे वर्तमानम् 'एकद्रव्यं कर्म' इत्युक्तत्वान्निष्क्रियत्वाच्चाकाशस्य आकाशावृत्ति कथं तद् गमयेदसम्बन्धात्। यथा लोष्टवृत्ति पतनं गुरुत्वस्य लिङ्गमेवं पुरुषवृत्ति निष्क्रमणमाकाशस्य लिङ्गमिति चेत्, न, **कारणान्तरानुक्लृप्तिवैधर्म्याच्च** [वै० सू० २।१।२२], गुरुत्वं कर्मणोऽसमवायिकारणमुक्तम्, तदनुमीयताम्, न त्वाकाशस्यासमवायिकारणत्वं युज्यते नित्यत्वद्रव्यत्वानाश्रितत्वैराकाशस्य गुरुत्वादिना असमवायिकारणेन वैधर्म्यात्। यदुक्तं 'निष्क्रमणं चाकाशकृतं[3] द्वारादिना' इति, एतन्न, **संयोगादभावः कर्मणः** [वै० सू० २।१।२३], भित्त्यादिना स्पर्शवद्द्रव्येण शरीरादेः कर्माधारस्य संयोगाद् निष्क्रमणं निवर्तते, न त्वाकाशाभावात्, तस्य सर्वगतत्वात् तत्रापि भावः, तस्माच्छब्दलिङ्गमेवाकाशम्। भेर्यादीनामेव निमित्तानां शब्दो गुण इति चेत्, न, [4]**कारणगुणपूर्वः कार्यगुणो दृष्टः, कार्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः** [वै० सू० २।१।२४], इह ये स्पर्शवतां विशेषगुणा एकैकेन्द्रियग्राह्यास्ते कारणगुणैः कार्ये निष्पाद्यन्ते। न च भेर्यवयवेषु रूपादय इव कश्चिच्छब्दभागः समवेत उपलभ्यते। तस्मादकारण[गुण]पूर्वत्वान्न भेर्यादेः स्पर्शवतो विशेषगुणः शब्दः। यश्च स्पर्शवतो विशेषगुणः स कार्ये यावत्कार्यमुपलभ्यमानो दृष्टः। न चैवं शब्दः, ततो न स्पर्शवद्विशेषगुणः। किञ्च, स्पर्शवद्विशेषगुण आरब्धे कार्ये कारणगुणैरारभ्यते, न च यदा शब्देन शब्द आरभ्यते तदा किञ्चित् कार्यमुत्पन्नं पश्यामः। तस्मात् कार्यान्तराप्रादुर्भावाच्च [P. पृ० १२ B] न शब्दः स्पर्शवतो विशेषगुण इति। [5]**परत्र समवायात् प्रत्यक्षत्वाच्च नात्मगुणो न मनोगुणः** [वै० सू० २।१।२५], परत्र बहिरित्यर्थः। ये खल्वात्मगुणास्ते सुखादय इवान्तःशरीरमुपलभ्यन्ते। न चैवं शब्दः, बहिर्बहुभिरुपलभ्यमानत्वात्। न चात्मगुणो बाह्येन्द्रियग्राह्यः, अयं तु श्रोत्रप्रत्यक्षः, तस्मान्नात्मगुणः। अत एव बहिरुपलभ्यमानत्वाद् बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वाच्च न मनोगुणः। श्रोत्रप्रत्यक्षत्वाच्च न दिक्कालयोः। तस्माद् गुणः सन् **लिङ्गमाकाशस्य** [वै० सू० २।१।२६], तस्मादुपलभ्यमानः शब्द आकाशं गमयति। **द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते** [वै० सू० २।१।२७], यथा अद्रव्यवत्त्वात् परमाणुभूतो वायुर्द्रव्यं नित्यश्च एवमाकाशं कारणद्रव्याभावाद् द्रव्यं नित्यं च। [6]**तत्त्वं भावेन** [वै० सू० २।१।२८], यथा सल्लिङ्गाविशेषाद् विशेषलिङ्गाभावाच्चैको भावः एवं शब्दलिङ्गाविशेषाद् विशेषलिङ्गाभावाच्चैकमाकाशमिति द्वितीयस्याद्यमाह्निकम्।

यदुक्तं 'स्पर्शवद्विशेषगुणा आरब्धे कार्यद्रव्ये गुणानारभन्ते, शब्दस्त्वनारब्धे द्रव्ये शब्दमारभते' इति, तदयुक्तम्, अनारब्धकृतेऽपि पुष्पवस्त्राभ्यां द्रव्यान्तरे पुष्पगन्धस्य वस्त्रे गन्धारम्भात् तथा अप्सु उष्णतायाः। उच्यते – **पुष्पवस्त्रयोः सति सन्निकर्षे गन्धान्तराप्रादुर्भावो वस्त्रे गन्धाभावलिङ्गम्** [वै० सू० २।२।१], [7]पुष्पेण खलु संयुक्ते वस्त्रे न पुष्पगन्धेन गन्ध आरभ्यते, वस्त्रगन्धस्यापि सम्भवात् पुष्पवस्त्रगन्धाभ्यां द्वाभ्यां विलक्षणं गन्धान्तरमुपजनितमुपलभेमहि, न चैवम्, अपि तु

---

1 * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो नास्ति वृसू०। 2 इति च सामान्यतो–वृ०। 3 °कृतत्वाद्द्वारादिना–वृ०। 4 कारणे गुणपूर्वः कार्ये गुणो–वृसू०। 5 परत्र प्रत्यक्षत्वाच्च नात्मगुणो न मनोगुणः–वृसू०। 6 तत्त्वं भावेन। द्वितीयस्य प्रथममाह्निकम्।–सू०। 7 अत्र 'पुष्पेण खलु संयुक्ते वस्त्रे चेत् पुष्पगन्धेन गन्ध आरभ्यते, वस्त्रगन्धस्यापि सम्भवात्'…… …इति पाठः 'पुष्पेण खलु संयुक्ते वस्त्रे न पुष्पगन्धेन गन्ध आरभ्यते; यदि पुष्पगन्धेन गन्ध आरभ्येत वस्त्रगन्धस्यापि सम्भवात्…… …' इत्येतादृशो वा पाठोऽपि संभवेत्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुष्पगन्धमेवोपलभामहे। तस्मात् 'अनारब्धे कार्ये पुष्पगन्धेन गन्ध आरभ्यते' इत्ययुक्तम्, गन्धान्तरप्रसङ्गात्। **एतेनाप्सूष्णता व्याख्याता** [वै० सू० २।२।२], अपां तेजसा संयोगे सति विलक्षणस्पर्शानुत्पत्तिरौष्ण्याभावस्य लिङ्गम्, [P. पृ० १३ A] अयावद्द्रव्यभावित्वं च सलिले औष्ण्यस्य। सूक्ष्माणां पुष्पावयवानां वस्त्रे तेजोवयवानां चाप्सु सङ्क्रान्तेः संयुक्तसमवायाद् गन्धस्पर्शोपलब्धिः। न[1] यावद्र[illegible]ाविनो रूपादयः, वस्त्रोदकयोः पुष्पगन्धोष्णस्पर्शोपलम्भकाले स्वगन्धशीतस्पर्शानुपलब्धेः, **व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः** [वै० सू० २।२।३], पार्थिवे वाससि व्यवस्थितोऽपि स्वगन्धः पुष्पगन्धाभिभवान्नोपलभ्यते। किञ्च, **तेजस्युष्णता** [वै० सू० २।२।४], तेजस्येवोष्णता व्यवस्थिता, नाप्सु संक्रामति। तथा औष्ण्योपलब्धिकाले **अप्सु शीतता** [वै० सू० २।२।५], तेजोवयवानुप्रवेशात् संयुक्तसमवायात् उष्णोपलब्धावपि अनुपलभ्यमानापि सलिलशीतता व्यवस्थितैव अभिभवान्नोपलभ्यते। काल इदानीं कथ्यते–[2]**अपरस्मिन् परं युगपदयुगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि** [वै० सू० २।२।६], ... । किञ्च, **द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते** [वै० सू० २।२।७], अद्रव्यवत्त्वात् परमाणुवायोरिव द्रव्यत्वनित्यत्वे कालस्य। **तत्त्वं भावेन** [वै० सू० २।२।८], यथा सल्लिङ्गाविशेषाद् विशेषलिङ्गाभावाच्चैको भावस्तथा [P. पृ० १३ B] काललिङ्गाविशेषाद् विशेषलिङ्गाभावाच्चैकः कालः। कालस्यैकत्वे कथमारम्भकालादिव्यपदेश इत्यत्राह–**कार्यविशेषेण नानात्वम्** [वै० सू० २।२।९], कार्यं क्रिया, क्रियाविशेषेण आविष्टस्य वस्तुन आरम्भ-स्थिति-विनाशक्रिया दृष्ट्वा एकस्यापि कालस्य नानात्वोपचारादारम्भकालादिव्यपदेशः। ननु क्रियामात्रं कालः, कुतः? काललिङ्गानां **नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्** [वै० सू० २।२।१०], यदि क्रियाव्यतिरिक्तः स्यान्नित्यः कालः एवं नित्येष्वपि आकाशादिषु काललिङ्गानि प्रतिभासेरन्। अनित्येष्वेव तु भवन्ति। तस्मादभिनिर्वर्त्यमानेष्वेवावधिः कालः। तस्मात् क्रियैव काल इति। नैतत्, [3]वस्तुनिर्वृत्त्युत्तरकालभावित्वात् काललिङ्गानि अनित्येषु भवन्ति, न तु क्रियायाः कालत्वात्। तेषां तु **कारणे कालाख्या** [वै० सू० २।२।११], एषां काललिङ्गानां निर्निमित्तानामसम्भवात्। क्रियानिमित्तत्वे 'कृतम्' इति स्यात्, न 'युगपत्' इति। तस्मादेषां यत् कारणं तस्मिन् कालाख्या। **इत इदमिति यतस्तद्दिशो लिङ्गम्** [वै० सू० २।२।१२], मूर्तद्रव्यमवधिं कृत्वा यत एतद् भवति 'इदमस्मात् पूर्वेण[4]' इत्यादिप्रत्ययस्तद् दिशो लिङ्गम्। गुणाः संख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभागाः। किञ्च, **द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते** [वै० सू० २।२।१३], अद्रव्यवत्त्वाद् वायुवद् द्रव्यत्वनित्यत्वे दिशः। **तत्त्वं भावेन** [वै० सू० २।२।१४], दिग्लिङ्गाविशेषाद् विशेषलिङ्गाभावाच्चैका दिगित्यर्थः। सत्येकत्वे **कार्यविशेषेण नानात्वम्** [वै० सू० २।२।१५], पूर्वेण देवयजनं दक्षिणेन पितृयजनमित्यादिना क्रियाविशेषेण नानात्वस्य दिशः पूर्वदक्षिणादेरुपचारः। इतरेतराश्रयमिति चेत्, एवं तर्हि **आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वाद् भविष्यतो भूताच्च प्राची** [वै० सू० २।२।१६], सवितुरहरादौ येन कल्पितदिक्प्रदेशेन संयोगोऽभूद् भवति भविष्यति वा [P. पृ० १४ A] तस्मादादित्यसंयोगात् 'प्राची' इति व्यपदेशः, प्राञ्चत्यत आदित्यमिति। **तथा दक्षिणा प्रतीची उदीची च** [वै० सू० २।२।१७], अस्मादेवादित्यसम्प्रयोगाद् दक्षिणादिव्यपदेशः। **एतेन दिगन्तराणि व्याख्यातानि** [वै० सू० २।२।१८], अनेनैव प्रकारेण ऊर्ध्वादीनि दिगन्तराणि व्याख्यातानि। तत्रेदानीमात्मा करणैरधिगन्तव्यः, करणानि शब्दादिभ्यो गुणेभ्यः। ननु [गुण]त्वमसिद्धं शब्दादीनां सिद्धं कृत्वोच्यते। ननु गुणत्वे कुतः संशयः? आह–किं संशयोऽपि हेतुमान्? एवमेतत्। को हेतुः? तदाह–**सामान्यप्रत्यक्षाद् विशेषाप्रत्यक्षाद् विशेषस्मृतेश्च संशयः** [वै० सू० २।२।१९], स्थाणुपुरुषयोरूर्ध्वतां सामान्यं पश्यन् विशेषहेतून् पाण्यादिकोटरादीनपश्यन् स्मरति च विशेषान्, अतः संशयः 'किमयं स्थाणुः पुरुषो[5] नु वा' इति। स द्विविधः—बाह्योऽभ्यन्तरश्च। बाह्योऽपि द्विविधः—प्रत्यक्षोऽप्रत्यक्षश्च। अप्रत्यक्षे तावत् **दृष्टमदृष्टम्** [वै० सू० २।२।२०], प्राप्तो मनुष्य इत्युक्ते किमिमं दृष्टं पश्येयमदृष्टमिति श्रवणमात्रादेव संशयः। प्रत्यक्षे तु **दृष्टं च दृष्टवत्** [वै० सू० २।२।२१], सम्प्रति दृष्ट्वा पुरुषं तमेव दृष्टमालोचयतः किमयं मया दृष्टपूर्वः कदाचिदुतादृष्ट इति संशयः। **दृष्टं यथादृष्टमयथादृष्टमुभयथा दृष्टत्वात्** [वै० सू० २।२।२२], आदौ कुन्तली देवदत्तो दृष्टो मध्ये मुण्डः तृतीयस्यामवस्थायां कुन्तली चतुर्थ्यांमालापादिभिरवगतः[6], आलापमात्रेण च सन्ध्यादौ 'किमयं कुन्तली स्याद् मुण्डो वा' इति संशयः। पूर्वसूत्रेऽनेकार्थानुस्मृतेः संशयः, अनेन त्वेकार्थे विशेषानुस्मरणात्। अभ्यन्तरस्तु **विद्याविद्यातश्च संशयः** [वै० सू० २।२।२३], विद्या सम्यग्ज्ञानम्, अविद्या मिथ्याज्ञानम्। दैवज्ञेन शुभमादिष्टं सत्यमभूत्, द्वितीयमसत्यम्, तृतीयस्यामवस्थायां संशयः—[P. पृ० १४ B] किमाद्यावस्थावत् सत्यमुत द्वितीयावस्थावदसत्यमिति। एवं कथितः संशयः। तत्र शब्द एव तावत् कथ्यताम्–**श्रोत्रग्रहणो**

1 (ननु न यावद्द्रव्यभाविनो ?)। 2 अस्य सूत्रस्य चन्द्रानन्दविरचिता वृत्तिः पृ० ४५३ टि० २ इत्यत्र अवलोकनीया। 3 पूर्वेत्यादि°–वृ०। 4 पूर्वादीनि–वृ०। (दक्षिणपूर्वादीनि ?)। 5 पुरुषो न वा–वृ०। 6 °वगतो आलपमात्रेण च–वृ०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १६ पं० १४-१५. **शब्दस्पर्श**···। सांख्यमतमिदम्। **कक्खटलक्षणा** वेति बौद्धमते। **एवं घटोऽपी**त्यादि मतत्रयं यथाक्रमं वैशेषिक-सांख्य-बौद्धानामिति ज्ञेयम्।

पृ० १७ पं० १. **अनेकप्रभेदो**···। दृश्यतां पृ० २७ पं० १४।

पृ० १७ पं० ५-६. **परिणामवती**···। "कलणं पज्जायाणं कलिज्जए तेण वा जओ वत्थु। कलयंति तयं तम्मि व समयाइकलासमूहो वा ॥ २०२८ ॥······सूरकिरियाविसिट्ठो गोदोहादिकिरियासु निरवेक्खो। अद्धाकालो भण्णइ समयखित्तम्मि समयाइ ॥ २०३५ ॥ सो वत्तणाइरूवो कालो दव्वस्स चेव पज्जाओ। किंचिम्मेत्तविसेसेण दव्वकालाइववएसो ॥ २०३६ ॥"—विशेषाव० भा०। व्याख्यानं त्वस्य **कोट्टार्या**दिविरचितटीकाभ्योऽवगन्तव्यम्। दृश्यतां तत्त्वार्थराजवा० ४।१४, ५।२२। **दृश्यतां टिपृ० १९ पं० १३।**

योऽर्थः स शब्दः [वै० सू० २।२।२४], श्रोत्रेण यो गृह्यतेऽर्थः स शब्दः। श्रोत्रेण यो गृह्यते सामान्यादीनामर्थशब्दस्यासङ्केतितत्वाच्छब्दत्वं शब्दो मा भूदित्यर्थग्रहणम्। **तस्मिन् द्रव्यं कर्म गुण इति संशयः** [वै० सू० २।२।२५], साधारणरूपत्वाद् द्रव्यादित्वेन शब्दे संशयः। तदाह—**तुल्यजातीयेष्वर्थान्तरभूतेषु विशेषस्योभयथादृष्टत्वात्** [वै० सू० २।२।२६], पृथिवीत्वं सजातीयात् सलिलादेः पृथिव्या विशेषो दृष्टः असजातीयाभ्यां [च गुणकर्मभ्याम्], ततः शब्देऽपि किमयं श्रोत्रग्राह्यत्वं विशेषो गुणैस्तुल्यस्यार्थान्तरभूतस्य वेति संशयः, नैतत्, **एकद्रव्यवत्त्वान्न द्रव्यम्** [वै० सू० २।२।२६], एकस्मिन् द्रव्ये आकाशे वर्तमानत्वान्न द्रव्यमयं शब्दः, द्रव्यं ह्यद्रव्यं परमाण्वादि अनेकद्रव्यं वा घटादि। [1]**अचाक्षुषत्वाच्च न कर्म** [वै० सू० २।२।२७], द्रव्यं कर्म वा यदिन्द्रियान्तरप्रत्यक्षं तच्चाक्षुषमपि दृष्टम्, अयं तु शब्दः श्रोत्रप्रत्यक्षोऽपि सन्न चाक्षुषः। एवं स्थितो गुणः। किन्तु **गुणस्य सतोऽपवर्गः कर्मभिः साधर्म्यम्** [वै० सू० २।२।२८], कर्मभिरस्य पुनर्गुणभूतस्यापि साधर्म्यमपवर्गो विनाशः, उत्पत्त्यनन्तरमग्रहणाद् विनाशोऽनुमीयते। सतोऽपि निमित्तादग्रहणमिति चेत्, न, **सतो लिङ्गाभावात्** [वै० सू० २।२।२९], यत् सदपि निमित्तान्न गृह्यते तस्य लिङ्गं सद्भावग्राहकं भवति, शब्दस्य तूच्चारणादूर्ध्वं संयोग्यादेर्लिङ्गस्याभावादसत्त्वैव। किञ्च, **नित्यवैधर्म्यात्** [वै० सू० २।२।३०], उच्चरितप्रध्वंसो नित्यैर्वैधर्म्यम्, तस्मादनित्यः। किञ्च, **कार्यत्वात्** [वै० सू० २।२।३१], कार्यश्च शब्दः संयोगादिभ्य उत्पत्तेः। तस्मादनित्यः। किञ्च, **अभावात्** [वै० सू० २।२।३२], प्रागभावादित्यर्थः। प्रागभाववतो विनाशात्। प्रागभावश्चास्य कारणेभ्य उत्पत्तेः। न च [P. पृ० १५ A] तानि व्यञ्जकानि, कुतः? **कारणतो विकारात्** [वै० सू० २।२।३३], यस्माद् भेर्यादिकारणेभ्यः शब्दस्य विकारोऽवगम्यते, महति भेर्यादौ महान् अल्पेऽल्पः। अभिव्यक्तौ तु **दोषात्** [वै० सू० २।२।३४], नित्यत्वेनाभिव्यक्तौ शब्दोऽन्येन यज्ञे प्रयुक्तो नान्येन प्रयुज्येत दर्भादिवद् यातयामत्वादिदोषात्। तस्मादनित्यः। कुतः कार्यत्वम्? इत्याह—**संयोगाद् विभागा**[2]**च्छब्दाच्च शब्दनिष्पत्तेः** [वै० सू० २।२।३५], भेरीदण्डसंयोगाद् वंशदलविभागाच्छब्दाच्च शब्दस्य वीचिसन्तानवन्निष्पत्तेर्मन्यामहे – कार्यः शब्द इति। **लिङ्गाच्चानित्यः** [वै० सू० २।२।३६], 'तेभ्यस्त्रयं(यो?) वेदा अजायन्त' इति वचनाद् वैदिकाल्लिङ्गादनित्यः। ननु नित्यः शब्दः, **द्वयोस्तु प्रवृत्त्योरभावात्** [वै० सू० २।२।३७], कार्याणां हि भावानां द्वे प्रवृत्ती – [3]एका निर्वृत्तिः, अन्या कार्यविनियोगरूपा। शब्दस्य पुनरर्थप्रतिपत्त्यर्थैव प्रवृत्तिरुच्चारणाख्या, नात्मार्था, तस्मान्नित्यः। **संख्याभावात्** [वै० सू० २।२।३८], उच्चरितप्रध्वंसित्वे शब्दस्य 'द्विरयमाम्नातः' इति विनष्टत्वात् [4]संख्याभ्यावृत्तिर्न भवेत्, अस्ति च, तस्मान्नित्यः। **प्रथमाशब्दात्** [वै० सू० २।२।३९], प्रथमाशब्दादिति 'त्रिः प्रथमामन्वाह' इति वाक्यम्, उच्चरितविनाशित्वे शब्द[स्य] प्रथमाया ऋचोऽभ्या[5]वृत्तिगणनं न स्यात्, अस्ति च, तस्मान्नित्यः। [6]**सम्प्रतिपत्तिभावाच्च** [वै० सू० २।२।४०], विनाशित्वे शब्दस्य '[स] एवायं गोशब्दः' इति सम्प्रतिपत्तिः प्रत्यभिज्ञा न स्यात्, तस्मान्नित्यः। नैतत् सारम्, [7]**सन्दिग्धाः सति बहुत्वे** [वै० सू० २।२।४१], प्रदीपादावद्विप्रवृत्तत्वं दृष्टम्, द्विर्विद्युन्निःसृतेति संख्याभावः, सम्प्रतिपत्तिर्ज्वालादौ। तस्मादनित्येष्वपि भावाद् बहवोऽप्यमी हेतवः संशयिताः। तस्मादनित्यः। [8]**संख्याभावः सामान्यतः** [वै० सू० २।२।४२], प्रथमाशब्दः सम्प्रतिपत्तिभावश्चेति सादृश्यादेते द्रष्टव्याः। इति द्वितीयोऽध्यायः।"—**वै० सू० चन्द्रा०** P. पृ० १०–१५। दृश्यतां टिपृ० ८ पं० २२।

---

1 अत्र **सू०** पाठानुसारेण **'अचाक्षुषत्वान्न ।२।२।२७। प्रत्यक्षस्य गुणस्य सतोऽपवर्गः कर्मभिः साधर्म्यम् २।२।२८।'** इति सूत्रद्वयमभिमतम्। **वृसू०**पाठानुसारेण तु **अचाक्षुषत्वाच्च न कर्म २।२।२७। गुणस्य सतोऽपवर्गः कर्मभिः साधर्म्यम् ।२।२।२८।'** इति पाठोऽभिप्रेतः। **नयचक्रवृत्तौ** तु [पृ० ८७ पं० १४. पृ० ५५ पं० ११. इत्यत्र] **'अचाक्षुषप्रत्यक्षस्य गुणस्य सतोऽपवर्गः कर्मभिः साधर्म्यम्'** इति पाठ इष्ट इति ध्येयम्। 2 °च्छब्दाच्च निष्पत्तेः—**वृसू०**। 3 एका निवृत्तिः—**वृ०**। (एका आत्मनि वृत्तिः?)। 4 संख्याभ्यावृत्तिर्न-**वृ०**। 5 (°वृत्तिर्गणनं?)। 6 सम्प्रतिपत्तिभावाच्च। द्वितीयोऽध्यायः।—**सू०**। 7 सूत्रमिदं नास्ति **सू०**।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १७ पं० ८. **पृथिवीव्रीहिकणौदना**···। अत्र सर्वासु हस्तलिखितप्रतिषु 'पृथिवीव्रीहिनरौदनादिवद्' इति पाठ उपलभ्यते। (व्रीहिनालौदना° ? °व्रीहितुषौदना° ? °व्रीह्यङ्कुरौदना° ? °व्रीहितण्डुलौदना° ?) इत्यादयः सम्भवन्तः पाठा अपि अत्र चिन्त्याः।

पृ० १७ पं० ९. **धर्माधर्मा**···। दृश्यतां टिपृ० ४ पं० १७।

पृ० १७ पं० १२. **आदानीयास्त्रयो**······। "गर्भाधानादि[1] ये मासास्ते च मासा अवधारिणः। विपाचनत्रयश्चापि त्रयः कालाभिवर्षणाः ॥ १२।७ ॥"—भद्रबाहुसं०।

पृ० १७ पं० १४. **इदान्याः पूर्व उत्तरः**······। अत्र 'आदानीयाः पूर्व उत्तरः' इति पाठश्चेत् सम्भवेत् तदा समीचीनम्। "आदानाचैव पातांश्च[2] पत(च)नाश्च विसर्जनात्। मारुतः सर्वगर्भाणां बलवान्नायकः स्मृतः ॥ ९।३ ॥······पूर्वो वातः स्मृतः श्रेष्ठः तथा चाप्युत्तरो भवेत्। उत्तमस्तु तथैशानो मध्यमस्त्वपरोत्तरः ॥ ९।२८ ॥······पूर्वामुदीचीमैशानीं ये गर्भा दिशमाश्रिताः। ते सस्यवन्तस्तोयाढ्यास्ते गर्भास्तु सुपूजिताः ॥ १२।१९ ॥······मारुतप्रभवा गर्भा धूयन्ते[3] मारुतेन च। वातो वर्षं तु गर्भांश्च करोत्यपकरोति च ॥ १२।२२ ॥"—भद्रबाहुसं०।

पृ० १७ पं० १५. **धूमज्योतिः**······। तुलना—"धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः······॥ ५ ॥" इति मेघदूते।

पृ० १७ पं० १६. **देववैक्रियादेरपि**। (देवविक्रियादेरपि ?)।

पृ० १७ पं० २२. **गुण**···। "गुणपर्यायवद् द्रव्यम् ।५।३७। गुणान् लक्षणतो वक्ष्यामः। भावान्तरं संज्ञान्तरं च पर्यायः। तदुभयं यत्र विद्यते तद् द्रव्यम्। गुणपर्याया[4] अस्य सन्ति अस्मिन् वा सन्तीति गुणपर्यायवत्।"—तत्त्वार्थभा० ५।३७।

पृ० १७ पं० २३. **क्षेत्रकालौ**···। दृश्यतां टिपृ० २० पं० ४।

पृ० १८ पं० ३. **अत एतानि**···। दृश्यतां पृ० २७ पं० ८–१०।

पृ० १८ पं० ८. **आवीतेनाह**। दृश्यतां पृ० ३१४ पं० १ टि० २, पृ० ३१३ टि० ७।

पृ० १८ पं० १६. **साङ्ख्यादिषु सादृश्या**···। अत्र **साङ्ख्यादीष्टसादृश्या**° इति भा० प्रत्यनुसारी शोभनः पाठः। सादृश्यं सांख्यानाम्, अन्यापोहो बौद्धानाम्, तत्त्वं वैशेषिकाणां मते इति ध्येयम्।

पृ० १८ पं० २२. **यद् भवन्ति**। "सिद्धं तु, यस्य गुणस्य भावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशस्तदभिधाने त्वतलौ। यद्वा सर्वे भावाः स्वेन भावेन भवन्ति स तेषां भावः, तदभिधाने।" इति **पाणिनीयव्याकरणवार्तिके** ५। १। ११९।

पृ० १९ पं० ७, ९, ११. **विशिष्यते**। अत्र सर्वत्र 'विशेष्यते' इति शुद्धः पाठः।

पृ० २१ पं० २२. **सामयिकः**······। वैशेषिकसूत्रे सप्तमाध्याये द्वितीयाह्निके २४ तमं[5] सूत्रमिदम्। दृश्यतां टिपृ० ८ पं० २२। तुलना—"**शब्दार्थव्यवस्थानादप्रतिषेधः** ।२।१।५४। शब्दादर्थे सम्प्रत्ययस्य व्यवस्थादर्शनादनुमीयते शब्दार्थ-

---

१ मुद्रितभद्रबाहुसंहिताया अतीवाशुद्धत्वाद् 'गर्भाधानात्त्रयो मासास्त्रयो मासाश्च धारिणः। विपाचनात्त्रयश्चापि त्रयः कालाभिवर्षणाः ॥' इत्यपि पाठः स्यादिति संभाव्यते। २ (धानाच ?)। ३ 'ध्रियते' इति पाठान्तरम्। (ध्रियन्ते ?)। ४ "व्यवहारनयसमाश्रयणेन तु 'गुणाः' 'पर्यायाः' इति वा भेदेन व्यवहारः प्रवचने, युगपदवस्थायिनो गुणा रूपादयः, अयुगपदवस्थायिनः पर्यायाः। वस्तुतः पर्याया गुणा इत्यैकात्म्यम्।"—**तत्त्वार्थभाष्यसिद्धसेनवृ०** ५।३७। दृश्यतां **तत्त्वार्थराजवा०** ५।३७। **सन्मति०** ३।८–१५। ५ "परिमाणमिदानीं वक्ष्यामः–**अणोर्महतश्चोपलब्ध्यनुपलब्धी नित्ये व्याख्याते** [वै० सू० ७।१।१५[1]], 'नित्ये' इत्यध्यायनाम, 'यदुपलभ्यते तत्रावश्यं महत्त्वम्, अणुत्वे तु परमाणुद्व्यणुकमनसा[म]नुपलब्धिः' एवं नित्याख्येऽध्याये उपलब्ध्यनुपलब्ध्योः कारणे महत्त्वाणुत्वे कथिते भवतः, उपलब्धौ महत्त्वस्य नियमात्। त्र्यणुकस्य महत्त्वेऽप्यनुपलब्धिः, **कारणबहुत्वात् कारणमहत्त्वात् प्रचयविशेषाच्च महत्** [वै० सू० ७।१।१६], त्र्यणुके[2] तत्कारणद्व्यणुकगता बहुत्वसंख्या महत्त्वं जनयति कारणानाममहत्त्वात्। द्व्यङ्गुले कारणाङ्गुलिमहत्त्वं महत्त्वं करोति। प्रशिथिलः संयोगः प्रचयः। द्वितूलके तूलपिण्डयोर्वर्तमानः प्रचयः स्वाधारावयवप्रशिथिलसंयोगापेक्षो महत्त्वमारभते। **तद्विपरीतमणु** [वै० सू० ७।१।१७],

---

1 इतः पूर्वं चन्द्रानन्दीयवृत्तिसहितानि चतुर्दश सूत्राणि पृ० ४५२ टि० ८ इत्यत्र विलोकनीयानि। 2 त्र्यणुकेन तत्कारण°—वृ०।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

सम्बन्धो व्यवस्थाकारणम् । असम्बन्धे हि शब्दमात्रादर्थमात्रे प्रत्ययप्रसङ्गः । तस्मादप्रतिषेधः सम्बन्धस्येति । अत्र समाधिः—**न, सामयिकत्वाच्छब्दादर्थे प्रत्ययस्य** ।२।१।५५। न सम्बन्धकारितं शब्दार्थव्यवस्थानम् । किं तर्हि ? समयकारितम् । यत् तदवोचाम 'अस्येदम्' इति षष्ठीविशिष्टस्य वाक्यस्यार्थविशेषोऽनुज्ञातः शब्दार्थसम्बन्ध इति समयं तमवोचाम इति । कः पुनरयं समयः ? अस्य शब्दस्येदमर्थजातमभिधेयमिति अभिधानाभिधेयनियमनियोगः । तस्मिन्नुपयुक्ते शब्दादर्थे प्रत्ययो भवतीति । विपर्यये हि शब्दश्रवणेऽपि प्रत्ययाभावः । सम्बन्धवादिनोऽपि चायमवर्जनीय इति – न्यायभा० ।

एतस्मात् त्रिकारणाद् महतो यद् विपरीतं द्व्यणुकपरिमाणं तदणु प्रत्येतव्यम् । **अणु महदिति तस्मिन् [1]विशेषभावाद् विशेषाभावाच्च** [वै० सू० ७।१।१८], तस्मिन् महति वस्तुनि कुवलादावामलकापेक्षया अणुव्यवहारः, आमलके तु बिल्वापेक्षया। एवं प्रकर्षस्य भावाभावाभ्यां[2]मेकस्मिन्नेव अणुमहद्व्यवहारो भाक्तः । कुतः ? **एककालत्वात्** [वै० सू० ७।१।१९], यत एकस्मिन्नेव वस्तुनि अन्यापेक्षया द्वौ पुरुषावणुमहद्व्यवहारं विरुद्धं कुर्वाते अतो जानीमहे 'भाक्तोऽयम्' इति । तत्रापेक्षिकाणुवस्तुनि **दृष्टान्ताच्च** [वै० सू० ७।१।२०], यथा शुक्लतन्तुजनिते कार्ये शुक्लतैव, न कृष्णता, एवमतो दृष्टान्ताद् महद्भिरारब्धे महत्त्वमेव, नाणुत्वम् । [P पृ० २६B] **अणुत्वमहत्त्वयोरणुत्वमहत्त्वाभावः कर्मगुणैर्व्याख्यातः** [वै० सू० ७।१।२१], यथा गुणकर्माणि निर्गुणानि कार्यस्य रूपादेरवयवगुणैरेकार्थसमवायाभावात् एवं कारणबहुत्वादिभिरेकार्थसमवायाभावादणुत्वमहत्त्वयोस्तदभावः । **अणुत्वमहत्त्वाभ्यां कर्मगुणा अगुणाः** [वै० सू० ७।१।२२], कारणबहुत्वादिभिरेकार्थसमवायाभावादणुत्वमहत्त्वे यथा अणुत्वमहत्त्वशून्ये एवं कर्मगुणा अणुत्वमहत्त्वशून्याः । **एतेन दीर्घत्वह्रस्वत्वे व्याख्याते** [वै० सू० ७।१।२३], उपलब्ध्यनुपलब्धी महत्त्वाणुत्ववत्, कारणमहत्त्वादिभ्यश्च जायते दीर्घत्वम्, विपरीतं ह्रस्वत्वम् । [3]तस्मिन् विशेषभावादित्वौ(त्यौ ?)पचारिकत्वम् । तथैव तयोर्दीर्घत्वह्रस्वत्वाभाव इत्या[त्य?]तिदेशः । **कर्मभिः कर्माणि गुणैर्गुणाः** [वै० सू० ७।१।२४], यथा कारणबहुत्वाद्येकार्थसमवायाभावादणुत्वमहत्त्वशून्या एवं दीर्घत्वह्रस्वत्वशून्या एते कर्मगुणाः । [ए?]-**[4]तदनित्येऽनित्यम्** [वै० सू० ७।१।२५] एतच्चतुर्विधं परि[5]माणमनित्ये वर्तमानत्वादनित्यम् ।[6]…… **तदभावादणु मनः** [वै० सू० ७।१।३०], विभवस्याभावाद् मनसोऽणुत्वं ज्ञानायौगपद्याच्च । **[7]गुणैर्दिग् व्याख्याता** [वै० सू० ७।१।३१], यत्र यत्रावधिं करोति तत्र तत्र 'इदमस्मात् पूर्वेण' इत्यादिव्यवहारो मूर्तेषु प्रवर्तते, अतो मूर्तसंयोगाख्यैर्गुणैर्दिग् व्याख्याता महत्त्ववती । तथा [P पृ० २७A] **कारणे[8]न कालः** [वै० सू० ७।१।३२] इति, ये[9]न कारणेन परापरव्यतिकरादिना कालोऽनुमीयते तस्य सर्वत्र भावात् तेनैव कारणेन कालो विभुर्व्याख्यातः । सप्तमस्याद्यमाह्निकम् ।

[10]रूपरसगन्धस्पर्शव्यतिरेकादर्थान्तरमेकत्वम् । तयोर्नित्यत्वानित्यत्वे तेजसो रूपस्पर्शाभ्यां व्याख्याते । [11]निष्पत्तिश्च । [12]एकत्वपृथक्त्वयोरेकत्वपृथक्त्वाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यातः [वै० सू० ७।२।१–४], एकत्वैकपृथक्त्वयोरवयवगुणैकार्थसमवायाभावाद् नैकत्वपृथक्त्वे स्त इत्यर्थः । **कर्मभिः कर्माणि गुणैर्गुणाः** [वै० सू० ७।२।५], तथैवावयवगुणैकार्थसमवायाभावात् कर्मगुणा नैकत्वपृथक्त्ववन्तः । ननु सर्वेषामेव पदार्थानामेकत्वं सदविशेषात्, **निःसंख्यत्वात् कर्मगुणानां सर्वैकत्वं न विद्यते** [वै० सू० ७।२।६], कर्मणां गुणानां च [P पृ० २७B] संख्यारहितत्वात् सर्वैकत्वं नास्ति । भाक्तमेकत्वं गुणादिष्विति चेत्, **[13]एकत्वस्याभावाद् भाक्तं न विद्यते** [वै० सू० ७।२।७], मुख्यस्य एकत्वस्याभावाद् गुणादिषु भाक्तमित्यत एतीप्रसंगात् (भाक्तमिति न, अतिप्रसङ्गात् ?) । ननु कार्यकारणयोरेकत्वं प्राप्तं [14]द्रव्ये संख्यानिर्विशेषात् एकत्वभावादेव पृथग्भावः स्यात्, नैतत्, **कार्यकार[15]णैकत्वपृथक्त्वाभावादेकत्वपृथक्त्वे न विद्येते** [वै० सू० ७।२।८], द्वित्वात् कार्यकारणयोर्नैकत्वं कार्यस्य कारणव्यतिरिक्ताश्रयाभावाद् नापि पृथक्त्वम् । **[16]एतदनित्ययोर्व्याख्यातम्** [वै० सू० ७।२।९], एतत् पूर्वसूत्रमनित्यविषयमपि [17]नित्येष्वप्याकाशादिषु यथासंभवं व्याख्यातं बोद्धव्यम् । तथाहि—शब्दाकाशयोः कार्यकारणयोरेकत्वं [न], नापि पृथक्त्वम् । **[18]अन्यतरकर्मज उभयकर्मजः संयोगजश्च संयोगः । एतेन विभागो व्याख्यातः । संयोगविभागयोः संयोगविभागाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां**

---

1 विशेषाभावाच्च–**सू०** । विशेषाभावाद् विशेषाभावाच्च–**सू०** । 2 °भ्यामेतस्मिन्नेव–**वृ०** । 3 **वै० सू०** ७।१।१८। 4 तदनित्ये ऽनित्यम्- **सू०** । अनित्ये–**वृसू०** । 5 परिमाणं नित्ये निवर्तमानत्वादनित्यम्–**वृ०** । 6 इतः परं चन्द्रानन्दीयवृत्तिसहितानि चत्वारि सूत्राणि पृ० ४४६ टि० १ इत्यत्र द्रष्टव्यानि । 7 गुणैर्व्याख्याताः–**सू०** । 8 कारणेन कालः ॥ सप्तमस्य प्रथममाह्निकम्–**सू०** । 9 येन कालेन परापर°–**वृ०** । 10 एतत्सूत्रत्रयस्य चन्द्रानन्दविरचिता वृत्तिः पृ० ४५३ टि० ४ इत्यत्रावलोकनीया । 11 निवृत्तिश्च–**वृ०** । 12 सूत्रमिदं नास्ति **वृसू०** । (एकत्वैकपृथक्त्वयो° ?) । 13 एकस्याभावाद्–**सू०** । 14 द्रव्ये–**वृ०** । 15 °कत्वापृथ°–**वृसू०** । 16 तदनि° –**वृसू०** । 17 नित्येष्वप्याकाशादिषु–**वृ०** । 18 एतत्सूत्रपञ्चकस्य चन्द्रानन्दकृता वृत्तिः पृ० ५१६ टि० ४ इत्यत्र द्रष्टव्या ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० २१ पं० १३. **वृद्धव्यवहारं** । अयं वृद्धव्यवहारो न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका[२।१।५५]प्रभृतिभ्योऽवसेयः।

पृ० २१ पं० १६. **संज्ञाकर्म**···। दृश्यतां टिपृ० ८ पं० २२। दृश्यतां टिपृ० १८ पं० ८।

पृ० २१ पं०२२–२४. **न हि तदेव नित्यं**···।"किं पुनराकृतिः पदार्थ आहोस्विद् द्रव्यम्? उभयमित्याह।········· किं पुनर्नित्यः शब्द आहोस्वित् कार्यः? **संग्रहे** एतत् प्राधान्येन परीक्षितं नित्यो वा स्यात् कार्यो वेति। तत्रोक्ता दोषाः प्रयोजनान्यपि उक्तानि। तत्र त्वेष निर्णयो यद्येव नित्योऽथापि कार्य उभयथापि लक्षणं प्रवर्त्यमिति। कथं पुनरिह भगवतः पाणिनेराचार्यस्य लक्षणं प्रवृत्तम्? सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे। सिद्धे शब्देऽर्थे सम्बन्धे चेति। अथ सिद्धशब्दस्य कः पदार्थः? नित्यपर्यायवाची सिद्धशब्दः।······माङ्गलिक आचार्यो महतः शास्त्रौघस्य मङ्गलार्थं सिद्धशब्दमादितः प्रयुङ्क्ते। मङ्गलादीनि हि शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषकाणि च भवन्ति आयुष्मत्पुरुषकाणि चाध्येतारश्च सिद्धार्था यथा स्युरिति।······अथ कं पुनः पदार्थं मत्वैष विग्रहः क्रियते सिद्धे शब्देऽर्थे सम्बन्धे चेति? आकृतिमित्याह। कुत एतत्? आकृतिर्हि नित्या द्रव्यमनित्यम्।··· ननु चोक्तमाकृतिरनित्येति। नैतदस्ति। नित्या आकृतिः। कथम्? न क्वचिदुपरतेति कृत्वा सर्वत्रोपरता भवति द्रव्यान्तरस्था तूपलभ्यते। अथवा नेदमेव नित्यलक्षणम्–ध्रुवं कूटस्थमविचाल्यनपायोपजनविकार्यनुत्पत्त्यवृद्ध्यव्यययोगि यत् तद् नित्यमिति। तदपि नित्यं यस्मिंस्तत्त्वं न विहन्यते। किं पुनस्तत्त्वम्? तद्भावस्तत्त्वम्। आकृतावपि तत्त्वं न विहन्यते।" इति पातञ्जलमहाभाष्ये पाठः।

पृ० २१ पं० २४. **प्रतिपादनप्रत्याख्याना°** । दृश्यतां पृ० २४३ पं० ११।

पृ० २२ पं० ६. **तथा विशेषोऽपि**·········**दनात्मत्वं** [पृ० २३ पं० ५]। दृश्यतां पृ० ३२ पं० १२–१६।

व्याख्यातः। कर्मभिः कर्माणि गुणैर्गुणाः। युतसिद्ध्यभावात् कार्यकारणयोः संयोगविभागौ न विद्येते [वै० सू० ७।२।१०–१४]। [P पृ० २८ A] शब्दस्यार्थेन सम्बन्ध इति चेत्, न, **गुणत्वात्** [वै० सू० ७।२।१५], आकाशस्य गुणत्वाच्छब्दो नार्थेन सम्बध्यते। **गुणे च भाष्यते** [वै० सू० ७।२।१६], गुणे च रूपं रस इत्यादिषु प्रयुज्यते क्रियायां च, न च गुणकर्मणां गुणैः सम्बन्धः। **निष्क्रियत्वात्** [वै० सू० ७।२।१७], अर्थसंयोगे सति शब्दोऽर्थं प्राप्नुयात्, निष्क्रियत्वाच्च गुणस्य गमनाभावः। **असति नास्तीति च प्रयोगात्**[1] [वै० सू० ७।२।१८], अर्थसंयोगे सति शब्दः **असति** अभावे 'नास्ति' इति न प्रयुज्येत। न ह्यसता संयोगः। तस्मात् संयोगस्याभावात् **शब्दार्थावसम्बद्धौ** [वै० सू० ७।२।१९]। ननु च **संयोगिनो दण्डात् समवायिनो विषाणाच्च** [वै० सू० ७।२।२०], संयोगिसमवायिभ्यां दण्डविषाणाभ्यां दण्डिविषाणिनोः प्रत्ययो दृष्टः। अस्ति च शब्दा[द]र्थप्रत्ययः, तस्मादस्यापि सम्बन्धोऽस्तीति। नैतत्, **दृष्टत्वादहेतुः प्रत्ययः** [वै० सू० ७।२।२१], दण्डिविषाणिनोर्दृष्टत्वाददोषः, इह तु शब्दार्थयोः सम्बन्धस्योक्तेन न्यायेनादृष्टत्वादहेतुरर्थप्रत्ययः सम्बन्धे, **तथा प्रत्ययाभावः** [वै० सू० ७।२।२२], यदि शब्दोऽर्थेन सम्बद्धः स्यात् अगृहीतसङ्केतोऽपि ततोऽर्थं प्रतिपद्येत। तस्मादसम्बद्धौ। **सम्बन्धसम्बन्धादिति चेत् सन्देहः** [वै० सू० ७।२।२३], ननु शब्देनाकाशं सम्बद्धम्, आकाशेन चार्थाः, एवं सम्बन्धसम्बन्धादर्थेन सम्बन्ध इति। नैतत्, सर्वार्थानामाकाशेन सम्बन्धात् कस्मिन्नर्थे शब्दः प्रयुक्त इति सन्देहादप्रतिपत्तिः स्यात्। अतो न सम्बन्धः। तस्मात् [P पृ० २८ B] **सामयिकः शब्दादर्थप्रत्ययः** [वै० सू० ७।२।२४], तस्मात् सङ्केतनिमित्त[:] शब्दा[द]र्थे प्रत्ययो न सम्बन्धात्। **एकदिक्कालाभ्यां**[2] **सन्निकृष्टविप्रकृष्टाभ्यां परमपरम्। कारणपरत्वात् कारणापरत्वाच्च** [वै० सू० ७।२।२५–२६]। **परत्वापरत्वयोः परत्वापरत्वाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यातः** [वै० सू० ७।२।२७], परापरदिक्कालप्रदेशसंयोगाः परत्वापरत्वयोः कारणम्। अनयोश्च युतसिद्ध्यभावेन संयोगाभावात् परत्वापरत्वाभावः। **कर्मभिः कर्माणि गुणैर्गुणाः** [वै० सू० ७।२।२८], यथा कर्मगुणा अणुत्वमहत्त्वशून्या एवं कर्मगुणा युतसिद्ध्यभावेन दिक्कालप्रदेशसंयोगाभावात् परत्वापरत्वशून्याः। **इहेति**[3] **यतः कार्यकारणयोः स समवायः** [वै० सू० ७।२।२९]। **द्रव्यत्वगुणत्वप्रतिषेधो**[4] **भावेन व्याख्यातः। तत्त्वं**[5] **च** [वै० सू० ७।२।३०–३१]" इति **चन्द्रानन्द**विरचितायां **वैशेषिकसूत्रवृत्तौ** P. पृ० २५–२९।

---

1 असति नास्तीति प्रयोगः—**वृसू०**। 2 एकदिक्काभ्यां सन्नि°—**वृसू०**। अस्य सूत्रद्वयस्य चन्द्रानन्दविरचिता वृत्तिः पृ० ५५२ टि० १ इत्यत्र द्रष्टव्या। 3 अस्य सूत्रस्य चन्द्रानन्दीया वृत्तिः पृ० ४४५ टि० १४ इत्यत्र द्रष्टव्या। 4 एतत्सूत्रद्वयस्य चन्द्रानन्दीया वृत्तिः पृ० ५२६ टि० १ इत्यत्र द्रष्टव्या। 5 तत्त्वं च। सप्तमोऽध्यायः—**सू०**।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० २२ पं० १४. **सद्भावासद्भाव**……। सद्भावासद्भावस्थापनास्वरूपज्ञानार्थं दृश्यताम् अनुयोगद्वारसू० १०। "सब्भावसंसब्भावे ठवणा पुण इंदकेउमाईया। इत्तरमणित्तरा वा ठवणा नामं तु आवकहं ॥ १३ ॥"–बृहत्कल्पभा०। "जं पुण तयत्थसुन्नं तयभिप्पाएण तारिसागारं। कीरइ व निरागारं इत्तरमियरं व सा ठवणा ॥ २६ ॥"–विशेषाव० भा०। "तत्थ आगारवंतए वत्थुम्मि सब्भावट्ठवणा, तव्विवरीया असब्भावट्ठवणा"–धवलाटी० पृ० २०। "वस्तुनः कृतसंज्ञस्य प्रतिष्ठा स्थापना मता। सद्भावेतरभेदेन द्विधा तत्त्वाधिरोपतः ॥ स्थाप्यत इति स्थापना प्रतिकृतिः। सा चाहितनामकस्य इन्द्रादेर्वास्तवस्य तत्त्वाध्यारोपात् प्रतिष्ठा 'सोऽयम्' इत्यभिसम्बन्धेनान्यस्य व्यवस्थापना स्थापनामात्रं स्थापनेति वचनात्। तत्राध्यारोप्यमाणेन भावेन्द्रादिना समाना प्रतिमा सद्भावस्थापना, मुख्यदर्शिनः स्वयं तस्यास्तद्बुद्धिसम्भवात् कथञ्चित् सादृश्यसद्भावात्। मुख्याकारशून्या वस्तुमात्रा पुनरसद्भावस्थापना परोपदेशादेव तत्र सोऽयमिति सम्प्रत्ययात्।"–तत्त्वार्थश्लोकवा० पृ० १११। दृश्यतां न्यायकुमु० पृ० ७९९, ८०५।

पृ० २२ पं० १६ °**मात्रोक्ति**°। अत्र °मात्रे उक्ति° इति शोभनः पाठः।

पृ० २३ पं० ५. अत्र मूले '**रूपादिरूपेण**' इति परिहर्तुं शक्यम्।

पृ० २३ पं० ७. **आत्मा न, अन्यत्वाद्**। अत्र **आत्मनोऽन्यत्वाद्** इति य० प्रत्यनुसारिपाठस्वीकारे तु 'आत्मनः' इति पञ्चम्यन्तं पदं बोध्यम्। 'आत्मनोऽन्यत्वाद् विशेषस्य……कस्तदात्मा?' इत्यन्वयो ज्ञेयः।

पृ० २३ पं० १२. **सविशेषः**। अत्र 'स विशेषः' इति पृथगपि भवेत्। तथा तु 'स आत्मा विशेषः' इत्यर्थो ज्ञेयः।

पृ० २४ पं० १, ७. **परा**…। दृश्यतां पृ० २६ पं० २१।

पृ० २४ पं० २, १६. **अथ वा**……। अत्र '**अथ पार्थिवत्वादपेक्षा**' इति साधु प्रतीयते।

पृ० २४ पं० २५. **अपेक्षाभावात्**। अपेक्षाया अभावादित्यर्थः।

पृ० २४ पं० २६. **क्रियागुण**…। दृश्यतां पृ० ४८९ टि० ६।

पृ० २५ पं० १६, १९. **द्रव्यत्वं**…। **अन्यत्रा**……। दृश्यतां पृ० ४४६ टि० २। दृश्यतां टिपृ० ८ पं० २२।

पृ० २५ पं० १८. **एकाकाशदेशातीतप्रान्तेषु**। "तुल्लागइगुणकिरिएगदेसतीयागएऽणुदव्वम्मि। अन्नत्तबुद्धिकारणमंतविसेसोत्ति से बुद्धी ॥ २१९२ ॥"–विशेषाव० भा०। अस्या व्याख्यानं कोट्याचार्यादिरचितवृत्तिभ्योऽवसेयम्।

पृ० २५ पं० २०. **सदिति यतो**…। दृश्यतां टिपृ० ९ पं० ८–१०।

पृ० २६ पं० १०–११. **क्षेत्रतो**…। 'क्षेत्रतोऽप्यूर्ध्वभागस्थितमेकमपरमधोभागस्थितम्' इति भा०प्रत्यनुसारी पाठः समञ्जसः।

पृ० २६ पं० १७. **त्याज्या**। अन्त्यविशेषखण्डनं तत्त्वसंग्रह-सन्मतिवृत्ति-प्रमेयकमलमार्तण्ड-न्यायकुमुदचन्द्र-स्याद्वादरत्नाकरादिषु विस्तरेणावलोकनीयम्।

पृ० २८ पं० १. **उपात्तत्यागो**…। दृश्यतां पृ० २९ पं० १२।

पृ० २९ पं० ५-६. **द्रव्यगुण**…। दृश्यतां पृ० ३१ पं० १२।

पृ० २९ पं० १४. **प्रागुक्त**…। दृश्यतां पृ० २७ पं० २।

पृ० ३० पं० १०. **सदनित्यं**…। दृश्यतां पृ० ४५८ टि० ८, टिपृ० ८ पं० २२।

पृ० ३० पं० १२. **द्रव्याणि**……। **कर्म**……। वैशेषिकसूत्रे प्रथमाध्याये प्रथमाह्निके यथाक्रमं नवमं दशमं चेदं सूत्रद्वयम्। दृश्यतां टिपृ० ८ पं० २२।

---

१ अस्य चन्द्रानन्दकृता वृत्तिः पृ० ४३७ टि० ५ इत्यत्र द्रष्टव्या। २ "**कर्म कर्मसाध्यं न विद्यते** [वै० सू० १।१।१०], न कर्मणा कर्म जन्यते कर्मणामुपरमदर्शनात्, कर्मारम्भे हि कर्मणां निष्कर्मणो द्रव्यस्यानुपलम्भात्। एवं कानिचिद् द्रव्याण्यारम्भकानि, कानिचिन्नैव। गुणाः केचित् कारणम्, केचिन्नैव। कर्माणि नैव कर्मकारणमित्येतद् वैधर्म्यम्।" इति **चन्द्रानन्द**विरचितायां **वैशेषिकसूत्रवृत्तौ** P पृ० ७ B।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ३० पं० १३–१५. **क्रियावद्**······। दृश्यतां पृ० ४४० टि० ५, टिपृ० ८ पं० २२।

पृ० ३० पं० १६. **कार्याविरोधि द्रव्यं कारणाविरोधि च···कर्म**। इमानि त्रीण्यपि वैशेषिकदर्शनसूत्राणि, दृश्यतां पृ० ४४० टि० ६, टिपृ० ८ पं० २२।

पृ० ३० पं० २०. **सदिति**······। दृश्यतां टिपृ० ९ पं० ८–१०।

पृ० ३१ पं० १,५. **अण्वोरेव**। दृश्यतां० पृ० ३१ पं० १३।

पृ० ३१ पं० ८–९. **पार्थिव**······। 'पार्थिव'शब्देन तुल्यजातित्वं द्योतयति 'शुक्ल'शब्देन तुल्यगुणत्वं **गतिसमवायिनोरि**त्यनेन तुल्यक्रियात्वं चेति ध्येयम्।

पृ० ३१ पं० १७. **अर्थ इति**······। दृश्यतां पृ० ४८० टि० १, टिपृ० ८ पं० २२।

पृ० ३१ पं० १८. **क्रियावत्**। दृश्यतां पृ० ४४० टि० ५, टिपृ० ८ पं० २२।

पृ० ३१ पं० १८–२०. **रूपरस**······। दृश्यतां टिपृ० १७ पं० १३।

पृ० ३१ पं० २१. **द्रव्याश्रय्यादि**······। दृश्यतां पृ० ४४० टि० ५, टिपृ० ८ पं० २२। **श्रोत्रग्रहणो**······। दृश्यतां टिपृ० १९ पं० ३८।

पृ० ३२ पं० २, २२. **अन्तरङ्गं**······। दृश्यतां पृ० ३४ पं० ४, पृ० ३५ पं० ६–७।

पृ० ३२ पं० २. **न हि तस्य···इतरेतराश्रयदोषापादनात्** [पृ० ३४ पं० १]। दृश्यतां पृ० ३४ पं० १२–१४।

पृ० ३२ पं० ४. **गुणसमुदायद्रव्यवादिभिश्च**। सांख्यैरित्यर्थः। दृश्यतां टिपृ० १६ पं० ३५।

पृ० ३२ पं० ६. **प्रकल्पते**। अत्र प्रकल्पेते इति पठितव्यम्।

पृ० ३३ पं० १३. **तदेव वस्तु**। दृश्यतां पृ० ३४ पं० ४।

पृ० ३४ पं० २. **पूर्वम्**······। 'पूर्वम्' इत्यादि प्रथमान्तम् 'अन्तरङ्गम्' [पृ० ३२ पं० २] इत्यादिना सम्बन्धनीयम्।

पृ० ३४ पं० ४. **यदि कार्यम्**। अत्र 'यदि कार्यम् यदि सामान्यम् यदि विशेषः।' इति पाठोऽवगन्तव्यः, दृश्यतां पृ० ३३३ पं० ११।

पृ० ३४ पं० ६. **व्यावृत्तेश्च पटादेः**। अत्र 'पटादेः' इति पञ्चम्यन्तं पदं ज्ञातव्यम्।

पृ० ३४ पं० ९,२८. **न प्रकल्पन्ते**। "न प्रकल्पन्ते न सिध्यन्तीत्यर्थः। कर्णधाररहितं नौकाद्वयं मिथः संबद्धं परस्परं परतीरप्रापणे समर्थं न भवतीत्यर्थः।"–पा० म० भा० राजलक्ष्मी पृ० १७४।

पृ० ३४ पं० २०. **अस्तिभवति**······। वचनमिदम् आचार्यसिद्धसेनस्य, दृश्यतां पृ० ३२४ पं० २८।

पृ० ३५ पं० २,२३. **णिययवयणिज्जसच्चा**············। "उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्वे वस्तुनः स्थिते तद् वस्तु तत्तदपेक्षया कार्यमकार्यं च, कारणमकारणं च, कारणे कार्यं सच्चासच्च, कारणं कार्यकाले विनाशवदविनाशवच्च, तथैव प्रतीतेरन्यथा चाप्रतीतेः। अत एकान्तरूपस्य वस्तुनोऽभावात् सर्वेऽपि नयाः स्वविषयपरिच्छेदसमर्था अपि इतरनयविषयव्यवच्छेदेन स्वविषये वर्तमाना मिथ्यात्वं प्रतिपद्यन्त इत्युपसंहरन्नाह–णिययवयणिज्जसच्चा सव्वनया परवियालणे मोहा। ते उण ण दिट्ठसमओ विभजइ सच्चे व अलिए वा॥ १। २८॥ निजकवचनीये स्वांशे परिच्छेद्ये सत्याः सम्यग्ज्ञानरूपाः सर्वे एव नयाः सङ्ग्रहादयः परविचालने परविषयोत्खनने **मोहा** मुह्यन्तीति मोहा मिथ्याप्रत्ययाः परविषयस्यापि सत्यत्वेनोन्मूलयितुमशक्यत्वात् तदभावे स्वविषयस्याप्यव्यवस्थितेः। ततश्च परविषयस्याभावे स्वविषयस्याप्यसत्यत्वात् तत्प्रत्ययस्य मिथ्यात्वमेव तद्व्यतिरिक्तग्राहकप्रमाणस्य चाभावात्। तस्मात् तानेव नयान् 'पुनः'शब्दस्यावधारणार्थत्वात्, न इति प्रतिषेधो विभजनक्रियायाः, दृष्टः समयः सिद्धान्तवाच्यमनेकान्तात्मकं वस्तुतत्त्वं येन पुंसा स तथा स न विभजते सत्येतरतया। स्वेतरविषयमवधारयमाणोऽपि तथा तान् न विभजते, अपि त्वितरनयसव्यपेक्षमेव स्वनयाभिप्रेतं विषयं सत्यमेवावधारयतीति यावत्। ग्राह्यसत्यासत्याभ्यां ग्राहकसत्यासत्ये इत्येवमभिधानम्। तत्र दृष्टानेकान्ततत्त्वस्य विभजनं 'स्यादस्त्येव द्रव्यार्थतः' इत्येवंरूपम्।"–सन्मतिटी०।

पृ० ३५ पं० ११. **सङ्घातभेदाभ्याम्**। दृश्यतां टिपृ० ३ पं० २७–३०।

पृ० ३५ पं० १४. **असिद्धेरसिद्ध्यादिशून्यतानुभवनात्**। अत्र नयचक्रे द्वादशेऽरे विस्तरेण वक्ष्यमाणः शून्यवादोऽवलोकनीयः। दृश्यतां पृ० ४८८ टि० ९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ३५ पं० १७. **असदकरणा**······। अस्याः सांख्यकारिकाया व्याख्या—"इह लोके सदेव सद् भवति, असतः करणं नास्ति। यदि स्यात् तदा सिकताभ्यस्तैलं कूर्मरोमभ्यः पटप्रावरणं वन्ध्यादुहितृभ्रूविलासः शशविषाणं खपुष्पं च स्यात्। न चास्ति। तस्मादनुमीयते प्रधाने प्रागुत्पत्तेर्महदादिकमस्त्येव। उपादानग्रहणात्, इह लोके यो येनार्थी स तदुपादानग्रहणं करोति तन्निमित्तमुपादत्ते, तद्यथा दध्यर्थी क्षीरस्योपादानं कुरुते, यदि चासत् कार्यं स्यात् तदा दध्यर्थी उदकस्याप्युपादानं कुर्यात्, न च कुरुते, तस्मात् प्रधाने महदादि कार्यमस्तीति। किञ्च, सर्वसम्भवाभावात्। इह लोके यद् यस्मिन् विद्यते तस्मादेव तदुत्पद्यते, यथा तिलेभ्यस्तैलं दध्नो घृतम्। यदि चासत् कार्यं कुर्यात् तदा सर्वं सर्वतः सम्भवेत्, ततश्च तृणपांसुवालुकादिभ्यो रजतसुवर्णमणिमुक्ताप्रवालादयो जायेरन्। न च जायन्ते। तस्मात् पश्यामः सर्वसम्भवाभावादपि महदादि कार्यं प्रधाने सदेव सद्भ(म्भ)वतीति। अतश्चास्ति, शक्तस्य शक्यकरणात्। इह लोके शक्तः शिल्पी करणादिकारणोपादानकालोपायसम्पन्नः शक्यादेव शक्यं कर्म आरभते, नाशक्यमशक्यात्। तद्यथा–शक्तः कुम्भकारः शक्यादेव मृत्पिण्डात् शक्यदण्डचक्रसूत्रोदकविदलतलादिभिः सम्पन्नो घटशरावोदञ्चनादीनि आरभमाणो दृष्टः, न मणिकादि, अशक्यत्वात् तावता पिण्डेन तस्य। यदि पुनः करणनियमो न स्यात् अशक्यादप्यशक्यमारभ्येत। तस्मात् सत् कार्यं स्यात्, नासत्। किञ्च, [1]कारणभावाच्च कार्यं सदेव स्यात्। इह लोके यल्लक्षणं कारणं तल्लक्षणं कार्यं स्यात्, यथा कोद्रवेभ्यः कोद्रवाः व्रीहिभ्यो व्रीहयः स्युः। यदि चासत् कार्यं स्यात् तदा कोद्रवेभ्यः शालीनामपि निष्पत्तिः स्यात्। न च भवति। तस्मात् कारणभावादपि पश्यामः प्रधाने महदादि कार्यमस्तीति। साधितमेवमेतैः पञ्चभिर्हेतुभिः सत् कार्यम्।"–सांख्यका०माठरवृ० का० ९। अत्र युक्तिदीपिका-तत्त्ववैशारद्यादयोऽन्या अपि व्याख्या अवलोकनीयाः।

पृ० ३५ पं० १९. **क्रियागुण**···। दृश्यतां पृ० ४८९ टि० ६, टिपृ० ८ पं० २२–३५।

पृ० ३५ पं० २०. **अभियुक्त···निष्ठत्वात्**। "अन्येन अन्यथा प्रतिपादितोऽर्थः पुनरभियुक्ततरेण अन्यथा प्रतिपाद्यत इत्यनिष्ठा।"–तत्त्वसं० पं० पृ० ४२७।

पृ० ३६ पं० १२. **उक्तविधिना**। दृश्यतां पृ० ३५ पं० ९–१४।

पृ० ३६ पं० १७. **नियमाभाव**···। (नियमाभावे उक्तेऽन्यतरो···?)

पृ० ३७ पं० २, १६. **कार्यकारणा**···। अत्र '**कार्यकरणाव्यभिचाराभावात्**' इति भा०प्रतिपाठोऽपि 'कार्यकरणनियमाभावात्' इत्यर्थविवक्षायां समीचीन एव भाति।

पृ० ३७ पं० ३. **कार्यसदसत्त्वानियमात्तु**···। दृश्यतां पृ० ३८ पं० १५।

पृ० ३७ पं० १४. **बीजानां त्रिवर्ष**···। "अह भंते! सालीणं वीहीणं गोधूमाणं जवाणं जवजवाणं एएसिं णं धन्नाणं कोट्ठाउत्ताणं पल्लाउत्ताणं मंचाउत्ताणं मालाउत्ताणं ओलित्ताणं लित्ताणं लंछियाणं मुद्दियाणं पिहियाणं केवइयं कालं जोणी संचिट्ठइ? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि संवच्छराइं। तेण परं जोणी पमिलायइ पविद्धंसइ विद्धंसइ, तेण परं बीए अबीए भवइ, तेण परं जोणीवोच्छेदे पन्नत्ते।"–स्थानाङ्गसू० ३।२।१९७।

पृ० ३८ पं० २०. **सर्वसर्वात्मक**···। दृश्यतां पृ० ११ पं० २६।

पृ० ३८ पं० २२. **प्रकल्प्यत**। (प्रकल्पते?)।

पृ० ३८ पं० २७. **सेवा वा सन्निहिता, सा**···। अत्र 'सेवा वा सन्निहिता सा···' इति योजनीयम्।

पृ० ३९ पं० १, ९. **देशकाला**···। दृश्यतां पृ० ३२० टि० ३।

पृ० ३९ पं० १०–११. **प्रसाददानाभिमुख्या**······। (प्रसादानभिमुख्याकारावबन्धवत्?)। **द्वितीयकर्मण्यता** कार्यान्तरव्यापृततेत्याशयः।

पृ० ३९ पं० २७. **प्रकरणात्**। दृश्यतां पृ० १९१ पं० ३।

पृ० ४० पं० ३. **अनभिव्यक्ति**···। दृश्यतां पृ० ४३ पं० १४।

पृ० ४० पं० २४. **द्विविधपुरुषार्थ**···। दृश्यतां टिपृ० १५ पं० ३६।

पृ० ४० पं० २७. **प्रकृतिकारणत्यागेन**। अत्र भा० प्रतौ 'प्रकृतिकारणित्वत्यागेन' इति पाठः। सोऽपि समीचीनो

---

१ "कारणभावाच्च सत् कार्यम्। इहासति कार्ये कारणभावो नास्ति यथा वन्ध्यायाः।"–**सांख्यका० युक्तिदीपिका**।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाति। प्रकृतिः कारणमभिमतमस्यास्तीति प्रकृतिकारणी प्रकृतिकारणवादीत्यर्थः, तद्भावः प्रकृतिकारणित्वम्, तथा च प्रकृतिकारणवादित्वत्यागेनेत्यर्थः। एतस्मिंश्च पाठेऽभिरुचौ मूले [पृ० ४० पं० ४] "क्रियौदासीन्यवत्। कारणान्तरस्य वा···" इत्येवं रमणीयम्।

पृ० ४१ पं० १, ६, १०. **आत्मान्तर···ज्ञानार्थस्य**। दृश्यतां टिपृ० १५ पं० ३६।

पृ० ४१ पं० २. **नित्यप्रवृत्तेनैव**···। दृश्यतां पृ० ४२ पं० २०।

पृ० ४१ पं० १०. **धर्मज्ञान**···। "अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्। सात्त्विकमेतद् रूपं तामसमस्माद् विपर्यस्तम्॥ २३॥"–सांख्यका०। अस्याः **सांख्यकारिकाया युक्तिदीपिका-माठरवृत्ति-तत्त्ववैशारद्यादिव्याख्याभ्यो** धर्मादीनामष्टानां बुद्धिधर्माणां स्वरूपं विस्तरेणावगन्तव्यम्।

पृ० ४१ पं० १३–१४. **स्वतन्त्रत्वात्······सर्वगतत्वात्**। "हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्। सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥१०॥"–सांख्यका०। अस्या व्याख्यानं युक्तिदीपिकादिवृत्तिभ्योऽवसेयम्।

पृ० ४१ पं० १६. **त्रिगुणस्वभाव**···। "त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि। व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥११॥"–सांख्यका०। अस्य अर्थो **माठरवृत्त्यादे**र्ज्ञातव्यः।

पृ० ४१ पं० १८. **चैतन्यस्वरूपमध्यस्थ**···। "चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपम्"–योगभा० १।९। "तस्माच्च विपर्यासात् सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य। कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च॥ १९॥–सांख्यका०। अस्याः कारिकाया व्याख्यानं युक्तिदीपिकादिवृत्तिभ्योऽवसेयम्।

पृ० ४२ पं० ८. **दहनतपनयो**···। "तप १८१९ दाहे। तापयति, तपति।"–श० सिद्धान्तकौ०।

पृ० ४२ पं० ९. **चैतन्य**···। "तेजोऽपि सात्मकम्, आहारोपादानेन वृद्ध्यादिविकारोपलम्भात्, पुरुषाङ्गवत्"—स्याद्वादमं० का० २९।

पृ० ४२ पं० १४–१५. **अन्नपुलिका**···। अत्र लिप्यनुसारेण **अश्मुलिका** इति [अश्मुलिका इति वा?] पाठः शुद्धः सम्भाव्यते, अग्न्याश्रयभूतं किमपि पात्रं स्थानं वा अत्राभिप्रेतं भाति, कोषेषु **अश्मन्तक**शब्दः 'चुल्ली'वाचक उपलभ्यते। "अश्मन्तमुद्धानमधिश्रयणी चुल्लिरन्तिका।"—अमरको० २।९।२८। "अथान्तिका चुल्ल्यश्मन्तकमुद्धानं स्यादधिश्रयणी च सा।"—अभिधानचिं० ४।८४।

पृ० ४३ पं० ८–९. **स्वरूपभेद**···। दृश्यतां टिपृ० १५ पं० ३६। **श्रोत्रा**···। दृश्यतां टिपृ० १४ पं० २४। **शब्दबुद्ध्यादि**···"शब्दादिषु[1] पञ्चानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः। वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च पञ्चानाम्॥ २८॥"—सांख्यका०। अस्याः कारिकाया विस्तरार्थो युक्तिदीपिका-तत्त्ववैशारद्यादिवृत्तिभ्योऽवसेयः।

पृ० ४४ पं० १२. **पांशुमृत्पिण्ड**···। "मृत्पिण्ड-शिवक-स्थासक-कोशक-कुशूल-घट-कपाल-शकल-शर्करा-पांशु-त्रुटि-परमाणवः क्रमभुवः।"–तत्त्वार्थभाष्यसिद्धसेनवृ० ५। ३१।

पृ० ४५ पं० २. **अर्थ्यो हि क्रियाया**···। "आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्।"–मीमांसाद० १। २। १।

पृ० ४५ पं० ३, १६. **नैवं वेति**। अत्र **नैवं चेति** इति समीचीनः पाठः। दृश्यतां पृ० १४० पं० ११।

पृ० ४५ पं० ७. **पुत्रकामो यजेत**। इदं सत्याषाढश्रौतसूत्रे [१३।३।४१,४४] ताण्ड्यब्राह्मणे चोपलभ्यते। **पशुकामो यजेत**। एतत् सत्याषाढश्रौतसूत्रे [१७।३।१] ताण्ड्यब्राह्मणे च दृश्यते। **अन्नाद्यकामो यजेत**। "अन्नमत्तीत्यन्नादः प्रकृष्टान्न[स्त]स्य अन्नादस्य भावोऽन्नाद्यम्, तत्कामस्य यजमानस्य।" इति सत्याषाढश्रौतसूत्रव्याख्यायाम् पृ० ११४।

पृ० ४५ पं० ११. **चित्रपुस्तकाष्ठ**···। "कट्ठकम्मे वा पोत्थकम्मे वा चित्तकम्मे वा लेप्पकम्मे वा।"–अनुयोगद्वारसू० १०। अस्य मलधारिहेमचन्द्रसूरिकृता व्याख्या—"क्रियते इति कर्म, काष्ठे कर्म काष्ठकर्म, काष्ठनिकुट्टितं रूपकमित्यर्थः। चित्रकर्म चित्रलिखितं रूपकम्। पोत्थकम्मे वत्ति, अत्र पोतं वस्त्रमित्यर्थः, तत्र कर्म, तत्पल्लवनिष्पन्नं धीउल्लिकारूपकमित्यर्थः। अथवा पोत्थं पुस्तकम्, तच्चेह संपुटकरूपं गृह्यते, तत्र कर्म तन्मध्ये वर्तिकालिखितं रूपकमित्यर्थः। अथवा पोत्थं ताडपत्रादि, तत्र कर्म तच्छेदनिष्पन्नं रूपकम्। लेप्यकर्म लेप्यरूपकम्"।–अनुयोगद्वारसू० वृ०। "यः काष्ठपुस्तचित्रकर्माक्षनिक्षेपादिषु स्थाप्यते जीव

१ 'रूपादिषु' इति पाठान्तरम्।

इति स स्थापनाजीवः।"—तत्त्वार्थभा० १।५। अस्य सिद्धसेनगणिकृता व्याख्या—"काष्ठं दारु। पुस्तं दुहितृकादि सूत्रचीवरादिविरचितम्। चित्रं चित्रकराद्यालिखितम्। कर्मशब्दः क्रियावचनः प्रत्येकमभिसम्बध्यते 'काष्ठक्रिया' इत्यादि"—पृ० ४६। "काष्ठपुस्तचित्रकर्माक्षनिक्षेपादिषु सोऽयमिति स्थाप्यमाना स्थापना।"—तत्त्वार्थसूत्रसर्वार्थसि० १।५।

पृ० ४५ पं० १९. **न चैवम्**। अत्र **'न चैवम्'** इति न्याय्यः। दृश्यतां टिपृ० २७ पं० २९।

पृ० ४६ पं० ४–५, २७. **अलोमा**···। दृश्यतां पृ० १४० पं० १२। "सलोमा मण्डूकः, चतुष्पात्त्वे सति उत्प्लुत्य गमनात्, मृगवत्। अलोमा वा हरिणः, चतुष्पात्त्वे सति उत्प्लुत्य गमनात्, मण्डूकवत्। इत्यादिवद् निर्मूलयुक्त्यैव साध्यसाधकत्वम्।—" उत्तराध्ययनसूत्रबृहद्वृ० २।१३।

पृ० ४६ पं० १०. **नैवं वेति**। अत्र **नैवं चेति** इति न्याय्यः।

पृ० ४६ पं० १३–१४. **सिद्धे······व्याकरणादिशास्त्रमपि**। 'सिद्धे सति आरम्भो नियमार्थः' इत्यर्थसूचकानि भूयांसि वाक्यानि पातञ्जलमहाभाष्ये उपलभ्यन्ते, यथा—"सुबन्तं पदमित्येव सिद्धम्। नियमार्थोऽयमारम्भः।"—पा०म०भा० १।४।१५।

पृ० ४६ पं० १८–१९. **सर्वे**···। सांख्यमतम्। **गुणकर्म**···। वैशेषिकमतम्। **रथाङ्ग**···। बौद्धमतम्।

पृ० ४६ पं० २२. **प्रमाणानि प्रवर्तन्ते विषये**···। पृ० १२० पं० १७ इत्यत्र तु 'प्रमाणानि प्रवर्तन्ते विषयैः' इति पाठो दृश्यते। 'प्रमाणान्यनुवर्तन्ते विषये'—सिद्ध० द्वा०।

पृ० ४७ पं० ३. **शास्त्रनिरूपण**···। दृश्यतां पृ० ५३ पं० १३, पृ० ५० पं० १४। **न**······। दृश्यतां पृ० ५० पं० १६।

पृ० ४७ पं० ५. **आकार-गौरव**······। दृश्यतां पृ० ३२२ पं० ५।

पृ० ४७ पं० १७. **मोह एव**। अत्र यदि **मोघ एव** इति पाठः कल्प्येत तर्हि शोभनः। तथा च "**मोघं निरर्थकम्**" इति अमरकोष[३।१।८१]वचनात्, 'तत्र शास्त्रेण निरर्थको व्यापारः' इत्याशयो भाति।

पृ० ४८ पं० १३. **स्थावरस्य**···। दृश्यतां पृ० ११ पं० २६–३१।

पृ० ४८ पं० १७. **अर्थ**···। वैशेषिकमते द्रव्यगुणकर्मणामेव अर्थसंज्ञा। दृश्यतां पृ० ४८० टि० १।

पृ० ४८ पं० १८. **रूपरस**······। दृश्यतां टिपृ० १७ पं० १३।

पृ० ४८ पं० २०. **°रितरत्र**। अत्र **°रित्यत्र** इति भा० प्रतिपाठोऽपि संगच्छते।

पृ० ४९ पं० २. **द्रव्यादीना**···। दृश्यतां पृ० ५६ पं० ६।

पृ० ४९ पं० ३. **खपुष्पवत्**···। दृश्यतां पृ० ५१ पं० १६।

पृ० ४९ पं० ११. **अगुणकर्मत्वात् खपुष्पवत्**। अत्र **अगुणकर्मत्वात् खपुष्पवत्** इति पठितव्यम्।

पृ० ४९ पं० १९. **क्रियागुण**···। दृश्यतां पृ० ४८९ टि० ६, टिपृ० ८ पं० २२।

पृ० ४९ पं० २८. **अगुणकर्मत्वात् खपुष्पवत्**। अत्र **खपुष्पवत्** इति परित्याज्यम्।

पृ० ५० पं० २०. **न शक्यते**······। अत्र 'वक्तुम्' इति वाक्यशेषः।

पृ० ५० पं० २१. **हेतुदोष**···। "हेतुस्त्रिरूपः। किं पुनस्त्रैरूप्यम्? पक्षधर्मत्वं सपक्षे सत्त्वं विपक्षे चासत्त्वमिति। कः पुनः सपक्षः को वा विपक्ष इति? साध्यधर्मसामान्येन समानोऽर्थः सपक्षः, तद्यथा अनित्ये शब्दे साध्ये घटादिरनित्यः सपक्षः। विपक्षो यत्र साध्यं नास्ति, यद् नित्यं तदकृतकं दृष्टं यथाकाशमिति। तत्र कृतकत्वं प्रयत्नानन्तरीयकत्वं वा सपक्ष एवास्ति विपक्षे नास्त्येव इत्यनित्यादौ हेतुः।"—न्यायप्रवे० पृ० १। विस्तरार्थिभिरस्य वृत्तिः पञ्जिका न्यायबिन्द्वादयश्च ग्रन्था अवलोकनीयाः।

पृ० ५१ पं० ३. **धर्मपरिकल्प**···। "तदात्मत्वे साध्यसाधनभेदाभाव इति चेत्, न, धर्मभेदपरिकल्पनादिति वक्ष्यामः।"—प्रमाणवा० स्ववृ० १। २३। अत्र च "साध्यसाधनभूतानां धर्मभेदानां परिकल्पनादारोपात्।···आरोपितो धर्मभेदः। एतच्च वक्ष्यामोऽन्यापोहप्रस्तावे।" इति व्याख्यातं कर्णकगोमिना प्रमाणवार्तिकस्ववृत्तिटीकायां पृ० २३।

पृ० ५१ पं० ११. **प्रत्यक्षग्राह्ये च**···। दृश्यतां पृ० ९ पं० १५।

पृ० ५२ पं० ९. **आविर्भाव**···। सांख्यमते वस्तुन आविर्भावतिरोभावौ स्वीक्रियेते, न त्वत्यन्तोत्पत्तिविनाशौ। तथापि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अभूत्वा भावः' इति आविर्भावलक्षणम्, तदेव च कृतकत्वम्। 'भूत्वा अभावः' इति तिरोभावलक्षणम्, तदेव चानित्यत्वम्। तथा च 'नित्यः शब्दः, कृतकत्वात्, आकाशवत्' इत्यत्र अन्यपक्षादेः सत्त्वादविशेषैकान्ते न दोष इत्याशङ्कितुरभिप्रायः।

पृ० ५२ पं० १८. **सपक्षः**···। दृश्यतां टिपृ० २८ पं० २९।

पृ० ५३ पं० १. **लोकत्वापत्तेः**। दृश्यतां पृ० ५४ पं० ८।

पृ० ५३ पं० ४. **अनुकम्पितं**···। "प्रागिवात् कः। अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः। कस्य च दः। अज्ञाते। कुत्सिते। संज्ञायां कन्। अनुकम्पायाम्।" इति पाणिनीयव्याकरणे ५।३।७०-७६। एतदर्थः सिद्धान्तकौमुद्यादिव्याख्याभ्योऽवसेयः।

पृ० ५३ पं० ९. **दृष्टान्तस्य**···। "साधनीयस्य अर्थस्य यावति शब्दसमूहे सिद्धिः परिसमाप्यते तस्य पञ्च भागाः प्रतिज्ञादयः समूहमपेक्ष्यावयवा उच्यन्ते। तेषु प्रमाणसमवायः। आगमः प्रतिज्ञा हेतुरनुमानम् उदाहरणं प्रत्यक्षम् उपमानमुपनयः सर्वेषामेकार्थसमवाये सामर्थ्यप्रदर्शनं निगमनमिति। सोऽयं परमो न्यायः।"–न्यायभा० J. १।१।१।

पृ० ५३ पं० १०. **°मापन्नम्। तस्माच्च लोकत्वम्, द°**। अत्र **°मापन्नं तस्माच्च लोकत्वं द°** इति योजनीयम्।

पृ० ५३ पं० ११. **लौकिक**···। "लोकसामान्यमनतीता लौकिकाः, नैसर्गिकं वैनयिकं बुद्ध्यतिशयमप्राप्ताः। तद्विपरीताः परीक्षकाः, तर्केण प्रमाणैरर्थं परीक्षितुमर्हन्तीति। यथा यमर्थं लौकिका बुध्यन्ते तथा परीक्षका अपि सोऽर्थो दृष्टान्तः। दृष्टान्तविरोधेन हि प्रतिपक्षाः प्रतिषेद्धव्या भवन्तीति, दृष्टान्तसमाधिना च स्वपक्षाः स्थापनीया भवन्तीति, अवयवेषु चोदाहरणाय कल्पत इति।"–न्यायभा० १।१।२५।

पृ० ५४ पं० ६. **पृथुकुक्ष्या°**। अत्र **विकुक्ष्या°** इत्येव शुद्धः पाठः प्र०पाठानुसारी च। "केवलनाणित्ति अहं० गाहा॥ ८।२७॥ ७५०॥···इयाणिं लक्खणेत्ति दारं। तं च चोद्दसविहं। नामस्थापने पूर्ववत्। दव्वलक्खणं जहा अग्गिस्स उण्हता, णिंबस्स तित्तता, खंडस्स मधुरता एवमादि। अहवा आपो द्रवाः, स्थैर्यवती च पृथिवी। सारिस्सलक्खणं यथा अस्मिन् देशे घटा ऊर्ध्वग्रीवा अधस्तात् परिमण्डला **विकुक्षिणः** तथान्येष्वपि देशेषु।"–आवश्यकचू० C. J. पृ० ३७४।

पृ० ५४ पं० ३०. **अत्रापि**······। दृश्यतां टिपृ० २९ पं० १५।

पृ० ५४ पं० ११. **ऊषरभू**···। "ग्रीष्मे मरीचयो भौमेनोष्मणा संसृष्टाः स्पन्दमाना दूरस्थस्य चक्षुषा सन्निकृष्यन्ते। तत्रेदमिन्द्रियार्थसन्निकर्षात् उदकम् इति ज्ञानमुत्पद्यते किं तत् प्रत्यक्षम्? इत्यत आह–अव्यभिचारीति।"–न्यायभा० J. १।१।४।

पृ० ५५ पं० १०. **प्रागभिहित**···। दृश्यतां पृ० ४९ पं० ९।

पृ० ५५ पं० ११-१३. **अचाक्षुष···कार्यत्वात् कारणतो विकारात्**। एतानि सर्वाण्यपि P वैशेषिकसूत्राणि। दृश्यतां टिपृ० २० पं० १२-१९, पृ० ८७ पं० १४-१५, टिपृ० ८ पं० २२।

पृ० ५५ पं० २२. **सदसतो**···। "मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च। १।३१। सदसतोरविशेषाद् यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत्। १।३२।"–तत्त्वार्थसू०।

पृ० ५६ पं० १५. **स्वार्थे**···। "कुत्सिते।५।३।७४। इह कुत्सितकः अनुकम्पितकः इति स्वशब्देनोक्तत्वात् तस्यार्थस्य प्रत्ययो न प्राप्नोति। नैष दोषः। कुत्सितस्यानुकम्पायामनुकम्पितस्य कुत्सायाम्। अथवा–स्वार्थमभिधाय···।"–पा० म० भा०। "वृक्षद्रव्यं हि वृक्षत्वजातिद्वारेण शब्दः प्रकाशयति, ततो लिङ्गं संख्यां चेति शाब्दी प्रतीतिः क्रमत एव। तदुक्तम्—स्वार्थमभिधाय···। समवेतस्य तु वचने लिङ्गं संख्यां विभक्तीश्च॥"–अष्टसह० का० १६।

---

१ अस्य श्लोकद्वयस्य व्याख्या—"स्वशब्दोऽत्र आत्मीयवचनः, अर्थशब्दोऽभिधेयवचनः। स्वोऽर्थः स्वार्थः। स चानेकप्रकारो जातिगुणक्रियासम्बन्धस्वरूपलक्षणः गौः शुक्लः पाचको राजपुरुषो डित्थ इति। तं स्वार्थमभिधाय तेन स्वार्थेन समवेतं सम्बद्धं द्रव्यमाह शब्दो निरपेक्षः इत्यनेन चैतद् दर्शयति यथा द्रव्येऽभिधातव्ये स्वार्थोऽपेक्ष्यते न तथा स्वार्थेऽभिधातव्येऽर्थगतं निमित्तान्तरमपेक्ष्यते। द्रव्यशब्देन च 'इदं तत्' इति परामर्शयोग्यं वस्त्वभिधीयते।······समवेतस्य द्रव्यस्याभिधाने लिङ्गं वचनं विभक्तिं चाहेति सम्बन्धः। तान् विशेषानिति लिङ्गादीनामेव परामर्शः। लिङ्गं स्त्रीत्वादि, वचनं संख्या, विभक्तिः कारकं कर्मादि।······ एतान् विशेषानभिधाय स्वार्थादिपञ्चकवृत्तं कृत्स्नमात्मानमपेक्षमाणः शब्दः प्रियकुत्सनादिषु विभक्त्यन्तः पुनः प्रवर्तते। 'पुनः'शब्दः 'तु'शब्दस्यार्थे वर्तते, विभक्त्यन्तस्त्वित्यर्थः।······कुत्सितत्वं यदा कुत्स्यते 'नास्य सम्यकुत्सितत्वम्' इति तदा प्रत्ययः।"–पा० म० भा० प्रदीप. ५।३।७४। अस्य पा० म० भा० प्रदीपस्य व्याख्या उद्द्योते विलोकनीया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ५६ पं० १९. जातिराकारो···। दृश्यतां टिपृ० २९ पं० २९, पृ० ४४६ टि० ११। "आकृत्यभिधानाद्वैकं विभक्तौ वाजप्यायनः [पा० वा०]। यत् तर्हि भिन्नेष्वभिन्नं छिन्नेष्वच्छिन्नं सामान्यभूतं स शब्दः। नेत्याह। आकृतिर्नाम सा।"—पा० म० भा० १।२।६४। "व्यक्त्याकृतिजातयस्तु पदार्थः।"—न्यायसू० २।२।६७। अर्थस्त्वेषां व्याख्याभ्योऽवगन्तव्यः।

पृ० ५७ पं० १, ९. 'तस्याः' इति पञ्चम्यन्तं पदम्। पञ्चमी हेतौ।

पृ० ५७ पं० ६–८. न हि पद···शब्दार्थः। "द्विधा कैश्चित् पदं भिन्नं चतुर्धा पञ्चधापि वा। अपोद्धृत्यैव वाक्येभ्यः प्रकृतिप्रत्ययादिवत्॥ ३।१।१॥ वाक्यस्यैव निरंशस्य वाचकत्वादन्तरा पदप्रतिपत्तिर्विभ्रम इति किमसत्यपदव्युत्पादनेन? इत्याशङ्क्य 'अपोद्धृत्यैव वाक्येभ्यः' इत्याह। अपोद्धृत्य कल्पनाबुद्ध्या पृथक् पदं निष्कृष्य अखण्डवाक्यव्युत्पत्तावुपायः पदव्युत्पत्तिर्वाक्यवादिनाम्, अखण्डपदव्युत्पत्ताविव परिकल्पितरूपप्रकृतिप्रत्ययागमादेशादिव्युत्पत्तिः पदवादिनाम्। आनन्त्याद्धि वाक्यानां स्वालक्ष्ये(क्षण्ये?)न अशक्या व्युत्पत्तिः कर्तुमिति सदृशपदद्वारा तदुपपत्तिरित्यर्थः। उभयोरपि चापोद्धृत[त?]स्वस्यासत्यत्वं समानम्।······तत्र चांशांशिकल्पनया अपोद्धारे कारकात्मा क्रियात्मा च प्रविभागार्ह इति सिद्धसाध्यलक्षणांशद्वयविषयः पदापोद्धारो द्विविधो नामाख्यातरूपः।······तद्गतभेदान्तरविवक्षायां तु निपातोपसर्गयोरपि कैश्चित् पृथक्करणम्। ···कर्मप्रवचनीयास्तु······क्रियाविशेषप्रकाशना उपसर्गेष्वेव अन्तर्भवन्तीति चतुर्धैव कैश्चित् पदं भिन्नम्। साक्षात् क्रियाविशेषप्रकाशनाभावात् तदपि पञ्चमं पदमिति कैश्चित्।"—वाक्यपदीयहेलाराजवृ० ३।१।१।

पृ० ५७ पं. २२. लोकेन तुल्यं···। "तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः तत्र तस्येव।"—पा० ५।१।११५–११६।

पृ० ५८ पं० २२. तत्पूर्वकत्वा···। "अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत् सामान्यतो दृष्टं च।"—न्यायसू० १।१।५।

पृ० ५८ पं० २३. लोकनाद्धि···। "लोकृ दर्शने"—पा० धा० ७६।

पृ० ५९ पं० २, १५, २६. घटादिकल्पनापोढं···। "प्रत्यक्षं कल्पनापोढम्" इति बौद्धाचार्यदिङ्नागमतं महता विस्तरेण अत्र परीक्षितं मल्लवादिना। दिङ्नागविरचिताश्च प्रमाणसमुच्चयादयो ग्रन्थाः सम्प्रति यद्यपि संस्कृतभाषायां नोपलभ्यन्ते तथापि भोट[Tibet]देशवासिभिः भोटभाषायां विरचिताः तेषां प्राचीना अनुवादा उपलभ्यन्ते। अत एतत्सम्बन्धिनो विचारा अस्माभिर्भोटपरिशिष्टे संगृहीता इति तत्रैव द्रष्टव्यम्।

"अपरे तु मन्यन्ते 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढम्' [प्र० समु० १।३] इति। अथ केयं कल्पना? नामजातियोजना इति। यत् किल न नाम्ना अभिधीयते न जात्यादिभिर्व्यपदिश्यते विषयस्वरूपानुविधायि[1] परिच्छेदकमात्मसंवेद्यं तत् प्रत्यक्षमिति।"—न्यायवा० १।१।४। अस्य व्याख्या—"सम्प्रति दिङ्नागस्य लक्षणमुपन्यस्यति अपर इति। दूषयितुं कल्पनास्वरूपं पृच्छति—अथ केयमिति। लक्षणवादिन उत्तरं नामेति। यदृच्छाशब्देषु हि नाम्ना विशिष्टोऽर्थ उच्यते 'डित्थः' इति। जातिशब्देषु जात्या 'गौः' इति। गुणशब्देषु गुणेन 'शुक्लः' इति। क्रियाशब्देषु क्रियया 'पाचकः' इति। द्रव्यशब्देषु द्रव्येण 'दण्डी, विषाणी' इति। सेयं कल्पना यत्र[3] ज्ञाने नास्ति अर्थतः स्वरूपतो वा तत् कल्पनाया अपोढं प्रत्यक्षम्। तदिदमाह—यत् किल न नाम्ना अभिधीयतेऽर्थतः स्वरूपतश्च न च जात्यादिभिर्व्यपदिश्यते। अव्यभिचारार्थं विषयकारणत्वमाह—विषयस्वरूपानुविधायीति। प्रमाणत्वमाह—परिच्छेदकम्, व्यवस्थापकम्,। ज्ञानतामस्य दर्शयति—आत्मसंवेद्यम्, स्वसंवेदनादेव तस्य कल्पनारहितत्वमपि। यथाह—'प्रत्यक्षं कल्पनापोढं प्रत्यक्षेणैव सिध्यति' [प्रमाणवा० ३।१] इति। तत् प्रत्यक्षमिति।"—न्यायवा० तात्प० J. १।१।४।

"तत्रायं न्यायमुखग्रन्थः[2]—'यद् ज्ञानमर्थे रूपादौ विशेषणाभिधायकाभेदोपचारेण अविकल्पकं तदक्षमक्षं प्रति वर्तेत इति प्रत्यक्षम्' [न्यायमु०]। विशेषणं जात्यादि, अभिधायकं नाम, तयोरभेदोपचारो जात्यादिमद्भिः संज्ञिना च।··· तथा चायमर्थो भवति—यद् ज्ञानं नामाद्यभेदोपचारेण अविकल्पकं तत् प्रत्यक्षम्। यत्तु ज्ञानं तथा विकल्पकं तत् कल्पनात्मकत्वान्न प्रत्यक्षमिति।"—तत्त्वसं० पं० पृ० ३७२-३।

"As regards one's understanding there are two pramāṇas, I mean: inference and direct preception [प्रत्यक्ष and अनुमान], since the other pramāṇas [admitted by different schools] such as tradition [शब्द] analogy [उपमान] etc. are included in these two. Thus there are only two pramāṇas, by which we can apprehend the

---

१ °रूपभेदानुविधायि—न्यायवा० J.। २ दृश्यतां तत्त्वसं० पं० पृ० ३६९। ३ न यत्र ज्ञानेऽस्ति—न्यायवा० ता० J.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

thing in itself [स्वलक्षण] and its generality [सामान्यलक्षण]. There is no other knowable besides these two, which can be apprehended by a pramāṇa different from those [already referred to]. A kārikā says:

Direct preception must be devoid of every construction of thought [कल्पनापोढ]. The other [knowledge] is derived from the reason already explained.

The expression used here: 'direct preception must be devoid' etc. means this: direct preception is called that knowledge of the object itself रूप etc., which is devoid of every [determination] of class and name and which presupposes that all Vikalpas are not differentiated [from the thing itself]. Moreover [each direct preception] depends upon some conditions strictly peculiar to it, as its sphere is limited to each seperate sense. Therefore it is called प्रत्यक्ष. Therefore a KĀRIKĀ says:

All the DHARMAS which are existent do not possess one and a single characteristic. Each sense does not function of all [the others also]. The inner consciousness [संवेदन] only is inexprimible and it corresponds to the sphere of the material senses." इति दिङ्नागविरचितन्यायमुखस्य चीनभाषानुवादमवलम्ब्य Giuseppe Tucci इत्यनेन विहिते English भाषानुवादे पृ० ५० ।

"आत्मप्रत्यायनार्थं तु प्रत्यक्षमनुमानं च द्वे एव प्रमाणे । तत्र प्रत्यक्षं कल्पनापोढं यद् ज्ञानमर्थे रूपादौ नामजात्यादिकल्पनारहितं तदक्षमक्षं प्रति वर्तत इति प्रत्यक्षम् ।"–न्यायप्रवे० पृ० ७ । अस्य न्यायप्रवेशस्य विस्तरेण व्याख्या हरिभद्रसूरिविरचितवृत्तेः पार्श्वदेवगणिविरचितपञ्जिकातश्चावगन्तव्या । "यद् ज्ञानमर्थे रूपादौ विशेषणाभिधायकाभेदोपचारद्वारेण अविकल्पकं तदसाधारणकारणत्वादक्षमक्षं प्रति वर्तत इति प्रत्यक्षम् । अक्षाणि चेन्द्रियाणि केनचिदंशेन शक्तिरूपेण धर्मेण स्वविषयं परिच्छिन्दन्ति, न सर्वधर्मैः सत्त्वद्रव्यत्वादिभिर्विद्यमानैरपि । रूपादेरनेकधर्मणः कञ्चिदेकं धर्ममव्यपदेश्यमसाधारणं केषाञ्चित् कल्पनापोढत्वादविकल्पकं स्वरूपविकल्पेन स्वसंवेद्येन विकल्पकं परिच्छिन्दन्ति न सर्वधर्मैः सत्त्वद्रव्यत्वादिभिः, यत उक्तम्—[3]अनेकधर्मणोऽर्थस्य नेन्द्रियात् सर्वथा गतिः । स्वसंवेद्यं त्वनिर्देश्यं रूपमिन्द्रियगोचरः ॥ [[2]न्यायमु० पृ० ३०, [3]प्रमाणसमु० १।५] । तस्माद् धर्मान्तरेण शक्त्यादिना रूपादेरसाधारणधर्ममात्रस्य ग्राहीणि इन्द्रियाणि । "–विशेषावभा० कोट्यार्यवृ० पृ० ८५ ।

पृ० ५९ पं० ३. **प्रमाणज्येष्ठं**···। "प्रत्यक्षं पूर्वं प्राधान्यात्······सर्वप्रमाणानां प्रत्यक्षपूर्वकत्वात् "—न्यायवा० १।१।३। "सम्प्रति प्रमाणविशेषलक्षणावसरे प्रत्यक्षस्य सर्वप्रमाणज्येष्ठत्वात् तदधीनत्वाच्चानुमानादीनां सर्ववादिनामविप्रतिपत्तेश्च तदेव तावल्लक्षयति "—सांख्यतत्त्वकौ० का० ५ ।

पृ० ५९ पं० ९. **व्यञ्जनकाय** । दृश्यतां पृ० ६२ पं० ३ ।

पृ० ५९ पं० १३. **एकशेषः स्वरूपत्वात्** । "सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ "–पा० १।२।६४।

पृ० ५९ पं० १५–१६. **घटसंख्यो**···। अत्र घटादिशब्दैर्यथाक्रममवयविद्रव्यगुणकर्मसामान्यादीनां परिग्रहः । "एतेन समयाभोगाद्यन्तरङ्गानुरोधतः । घटोत्क्षेपणसामान्यसंख्यादिषु धियो गताः ॥ २।६ ॥ रूपरसगन्धस्पर्शानामधिष्ठानं घटोऽवयविद्रव्यम् । उत्क्षेपणं क्रिया । संख्या गुणः······।" प्रमाणवार्तिकालं० पृ० १८७। प्रमाणवा० मनो० पृ० ११४ ।

---

१ JAHRBUCH des Instituts für Buddhismvs-kunde. [Year-book of the Institute for Buddhism's lore]. Vol. I. Hearavsgegeben Von Max Walleser 1930 Heidelberg इत्यत्र प्रकाशितोऽयमनुवादः । २ दृश्यतां टिप्पृ० ३१ पं० १३ । ३ "धर्मिणोऽनेकरूपस्य नेन्द्रियात् सर्वथा गतिः । स्वसंवेद्यमनिर्देश्यं रूपमिन्द्रियगोचरः ॥" इति प्रमाणसमुच्चये पाठः १।५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ५९ पं० १६. 'तस्याः' इति पञ्चम्यन्तं पदम्। दृश्यतां पृ० ६० पं० १२।

पृ० ५९ पं० २१. **श्रोत्रादिवृत्तिः प्रत्यक्षम्** [षष्टित०]। अत्र 'षष्टित०' इति सन्दिग्धम्। वार्षगण्यस्य हि मतमेतम्। वार्षगण्यस्य च ग्रन्थः 'षष्टितन्त्र'नाम्ना प्रसिद्धो वार्षगणतन्त्रनाम्ना वेति निश्चितं वक्तुं न प्रभवामः। दृश्यतां 'गुणानां परमं रूपम्……' [पृ० ६२ पं० २५] इत्यस्य टिप्पणम्। पृ० ३२४ पं० १२ इत्यत्र वार्षगणतन्त्रस्योल्लेखोऽपि नयचक्रवृत्तौ दृश्यते। "श्रोत्रादिवृत्तिरिति वार्षगणाः"–सांख्यका० युक्तिदीपिका पृ० ३९। "वार्षगण्यस्यापि लक्षणमयुक्तमित्याह—श्रोत्रादिवृत्तिरिति। पञ्चानां खल्विन्द्रियाणामर्थाकारेण परिणतानामालोचनमात्रं वृत्तिरिष्यते। सा च संशयादिव्यापकत्वादलक्षणमिति।"—न्यायवा० तात्प० १।१।४। "श्रोत्रादिवृत्तिरविकल्पिका इति विन्ध्यवासिप्रत्यक्षलक्षणम्।"–सन्मतिवृ० पृ० ५३३। "श्रोत्रादिवृत्तिरविकल्पिका प्रत्यक्षमिति वृद्धसांख्याः।"–प्रमाणमी० १।१।२९। 'श्रोत्रादिवृत्तिरविकल्पिका' इति लक्षणं न्यायमञ्जर्यां तत्त्वोपप्लवसिंहेऽपि च उद्धृतं सांख्यमतनिर्देशावसरे।

पृ० ५९ पं० २२. **आत्मेन्द्रिय**…। वैशेषिकसूत्रे तृतीयेऽध्याये प्रथमाह्निके त्रयोदशं सूत्रमिदम्। दृश्यतां टिप्पृ० ८ पं० २२।

---

१ "एवं दिगन्तानां वैधर्म्यमुक्त्वा आत्मानमुपक्रमते–[P पृ० १५ B] **प्रसिद्धा इन्द्रियार्थाः** [वै० सू० ३।१।१], शब्दादयो यस्माद् गुणादिस्वभावाः सिद्धाः, तेभ्यश्चेन्द्रियाणि, अत इदानीम् **इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्योऽर्थान्तरत्वे हेतुः** [वै० सू० ३।१।२], ग्राह्याणामर्थानां शब्दादीनां येयं प्रसिद्धिः तया च श्रोत्रादीनां करणानाम् अनया इन्द्रियार्थप्रसिद्धया एभ्यो ग्राह्यग्रहणेभ्यः इन्द्रियार्थेभ्यः परो ग्रहीता आत्मा अनुमीयते। **सोऽनपदेशः** [वै० सू० ३।१।३], ग्राह्यग्रहणप्रसिद्ध्याख्यो ग्रहीतृसद्भावे यो हेतुरुक्तः सोऽनपदेशः, अकारणमित्यर्थः। किमात्मकल्पनया? कथमिन्द्रियाणि ग्रहीतॄण्येव न भवन्ति? नैतत्, **कारणाज्ञानात्** [वै० सू० ३।१।४], भूतानामिन्द्रियकारणानामज्ञत्वात् तत्कार्याणीन्द्रियाण्यपि अज्ञानि। भूताज्ञानं **कार्याज्ञानात्** [वै० सू० ३।१।५], अन्यस्य भूतकार्यस्य घटादेरज्ञत्वाद् भूतान्यप्यज्ञानि। **अज्ञानाच्च** [वै० सू० ३।१।६], भूतानामज्ञानादिन्द्रियाण्यपि अज्ञानि इत्युपसंहारार्थमिदं सूत्रम्। **अन्य एव हेतुरित्यनपदेशः** [वै० सू० ३।१।७], अन्यो हेतुलक्षणबाह्य इत्यर्थः, तथाहि–इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थधर्मत्वादात्मना असम्बन्धान्न तमनुमापयेत्, अतोऽनपदेशः। नैतत्, **संयोगि समवायि एकार्थसमवायि विरोधि च कार्यं कार्यान्तरस्य कारणं कारणान्तरस्य विरोधि अभूतं भूतस्य भूतमभूतस्य अभूतमभूतस्य भूतं भूतस्य** [वै० सू० ३।१।८], धूमोऽग्नेः संयोगि, विषाणं गोः समवायि, एकार्थसमवायि द्विधा–कार्यं कार्यान्तरस्य, यथा रूपं स्पर्शस्य; कारणं कारणान्तरस्य, यथा पाणिः पादस्य। चतुर्धा विरोधि–अभूतं वर्षकर्म वाय्वभ्रसंयोगस्य भूतस्य लिङ्गम्, भूतं वर्षकर्म वाय्वभ्रसंयोगस्याभूतस्य लिङ्गम्, अभूता श्यामता अभूतस्याग्निसंयोगस्य लिङ्गम्, भूतं कार्यं भूतस्य कारणसंयोगस्य [P पृ० १६ A] लिङ्गम्। तस्मादिह प्रसिद्धानामिन्द्रियार्थानां करणता कर्मता च समवायिनी आत्मलिङ्गम्। न ते आत्मनि समवायिनी इति चेत्, एवमेतत्, अन्यथा तु प्रयोगः—इन्द्रियाणि कर्तृप्रयोज्यानि करणत्वाद् वास्यादिवदिति। संयोग्यादीन्येव कथं लिङ्गमित्याह—[1]**प्रसिद्धिपूर्वकत्वादपदेशस्य** [वै० सू० ३।१।९], प्रसिद्धो यः संयोग्यादिर्नासम्बद्धो येन सह ज्ञातः स तस्यार्थान्तरस्यापि लिङ्गं सम्बद्धत्वात् नासम्बद्धम्। तथाहि–**अप्रसिद्धोऽनपदेशः** [वै० सू० ३।१।१०], [2]अप्रसिद्धो विरुद्धः यस्य साध्यधर्मेण सह नैवास्ति सम्बन्धः, अपि तु विपर्ययेण, असावनपदेशः अहेतुः। **असन् सन्दिग्धश्चानपदेशः** [वै० सू० ३।१।११], [3]असन्, यः पक्षे नास्ति, तेनार्थादसन् असिद्ध इत्यर्थः, सन्दिग्धश्चानपदेशः सन्दिग्धोऽनैकान्तिक इत्यर्थः। उदाहरणमाह—**विषाणी तस्मादश्वो विषाणी तस्माद् गौरिति च** [वै० सू० ३।१।१२], 'अयं पदार्थोऽश्वः' इति साध्ये विषाणित्वं विरुद्धम्, अश्वविपर्ययेण विषाणित्वस्य व्याप्तेः। 'अयं पदार्थो गौः' इति साध्ये विषाणित्वमनैकान्तिकम्, साध्यविपर्ययाभ्यां व्याप्तत्वात्। चशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः, 'शशो विषाणी' इति साध्येऽसिद्धं विषाणित्वम्, पक्षेऽवर्तमानत्वात्। प्रसङ्गादेतदुक्तम्। किञ्च, **आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षाद् यन्निष्पद्यते तदन्यत्** [वै० सू० ३।१।१३], चतुष्टयसन्निकर्षाद् यदुत्पद्यते ज्ञानाख्यं कार्यं तदन्यद् हेत्वन्तरमात्मज्ञापकमस्तीति। ज्ञानस्य समवायिकारणापेक्षित्वं कार्यत्वाद् घटवत्। **प्रवृत्तिनिवृत्ती च प्रत्यगात्मनि दृष्टे परत्र [4]लिङ्गम्** [वै० सू० ३।१।१४] इति। [5]प्रत्यगात्मेति शरीरम्। शरीरे प्रवृत्तिनिवृत्ती दृष्टे आत्मानमनुमापयतः। शरीरं प्रयत्नवता अधिष्ठितं हिताहितप्रवृत्तिनिवृत्तिमत्त्वाद् घटवत्। तृतीयस्याद्यमाह्निकम्। [P पृ० १६ B]

1 प्रसिद्धपूर्व°–वृसू०। 2 अप्रसिद्धा न विरुद्धः–वृ०। 3 असत्यः परो नास्ति–वृ०। 4 लिङ्गम्। तृतीयस्य प्रथममाह्निकम्।–सू०। 5 अन्यथात्मेति शरीरशरीरप्रवृत्ति°–वृ०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त आत्मेन्द्रियमनोर्थसन्निकर्षो ज्ञानहेतुः, तत्सिद्धयर्थं मनः कथयति—**आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानस्याभावो भावश्च मनसो लिङ्गम्** [वै० सू० ३।२।१], आत्मेन्द्रियार्थानां सन्निकर्षे यदभावाज्ज्ञानं न भवति यद्भावे च भवति तद् मनः । एवं ज्ञानोत्पत्त्यनुत्पत्ती मनसो लिङ्गम् । गुणाः संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वसंस्काराः । **द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते** [वै० सू० ३।२।२], यथा अद्रव्यवत्त्वात् परमाणुवायोर्द्रव्यत्वं नित्यत्वं च एवं मनसः । **प्रयत्नायौगपद्याज्ज्ञानायौगपद्याच्चैकं मनः** [वै० सू० ३।२।३], बहुषु कार्येषु ज्ञेयेषु च युगपत् प्रयत्ना ज्ञानानि वा न प्रादुर्भवन्तीत्यतः प्रयत्नज्ञानायौगपद्यादेकं मनः प्रतिशरीरं मूर्तमस्पर्शं निरवयवं नित्यमणु आशुचारीति । **प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्चेत्यात्मलिङ्गानि** [वै० सू० ३।२।४], प्राणापाननिमेषोन्मेषा मनोगतिश्च प्रयत्नकार्यत्वादात्मनो लिङ्गम्, जीवनमदृष्टकार्यत्वात्, इन्द्रियान्तरविकाराः स्मृतिप्रभवत्वात्, सुखादयो गुणत्वात् । तिर्यक्पवनस्य वायोर्देहस्थितस्य यत् प्राणापानकर्म तत् प्रयत्नकार्यम्, शरीरपरिगृहीतवायुविषयत्वे सति विकृतत्वात्, भस्त्रापरिगृहीतवायुकर्मवत् । निमेषोन्मेषक्रियापि प्रयत्नकार्या, निमेषोन्मेषक्रियाशब्दवाच्यत्वात्, दारुयन्त्रनिमेषोन्मेषक्रियावत् । मनसा संयोग आत्मनोऽदृष्टापेक्षो जीवनम्, शरीरवृद्धयादि तत्कार्यमपि जीवनम्, शरीरं प्रयत्नवताधिष्ठितम्, वृद्धिक्षतभग्नसंरोहणनिमित्तत्वात्, जीर्णगृहवत् । इन्द्रियान्तरं प्रति मनसो गमनं मनोगतिः प्रयत्नकार्या, अभिमतप्रदेशसम्बन्धनिमित्तत्वात्, पेल्लकक्रियावत्, [P पृ० १७ A] सा हि दारकप्रयत्नकृता । रूपालोचन-संस्कारव्यक्ति-रससमरण-प्रयत्न-मनःक्रिया-रसनमनःसम्बन्ध-रसनविकाराणां पूर्वस्य पूर्वस्य कारणत्वादुत्पत्तिः, ज्ञप्तिस्तु वैपरीत्येन, उत्तरोत्तरस्मात् पूर्वस्य पूर्वस्य स्मरणेन आत्मा अनुमीयते । न स्मृतिरिन्द्रियाणामन्येन दृष्टेऽर्थेऽन्यस्य । न शरीरावयवस्य, अवस्थाभेदेन भिद्यमानत्वात् । 'देवदत्तस्य रूपरसगन्धस्पर्शप्रत्यया एकानेकनिमित्ताः, 'मया' इति प्रत्ययेन प्रतिसन्धानात्, कृतसङ्केतानां बहूनामेकस्मिन् नर्तकीभ्रूक्षेपे युगपदनेकप्रत्ययवत्' इति **उद्द्योतकरः**[1] । सुखादयश्च गुणिसापेक्षाः, गुणत्वात्, रूपवत् । **द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते** [वै० सू० ३।२।५], अद्रव्यवत्त्वात् परमाणुवायोरिव द्रव्यत्वनित्यत्वे । ननु च **यज्ञदत्त इति सति सन्निकर्षे प्रत्यक्षाभावाद् दृष्टं लिङ्गं न विद्यते** [वै० सू० ३।२।६], यथा चाक्षुषार्थसन्निकर्षे[2] सति यज्ञदत्तोऽयमिति प्रत्यक्षं भवति न तथा प्राणादिसुखादिसम्बद्धोऽयमात्मेति ज्ञानं जायते । अथ कथमदृष्टसम्बन्धं प्राणादि आत्मनो लिङ्गम् ? तदाह—न प्राणादि दृष्टं लिङ्गम् । **सामान्यतो दृष्टाच्चाविशेषः** [वै० सू० ३।२।७], प्राणादीनां निर्निमित्तानां सुखादीनां चानाश्रितानामनुत्पत्तिः, अत एषां केनापि निमित्तेनाश्रयेण भाव्यम्[3], इत्यतोऽपि सामान्यतो दृष्टादाकाशादीनामनिरासादविशेषः, तेषामपि हेतुत्वसम्भवात् । **तस्मादागमिकम्** [वै० सू० ३।२।८], 'आत्मास्ति' इति प्रवादमात्रमित्यर्थः । नैतत्, **अहमिति शब्दव्यतिरेकान्नागमिकम्** [वै० सू० ३।२।९], अहमिति शब्देन क्षित्यादिभिन्नात्मद्रव्यविषयेण ऐकाधिकरण्यात् 'अहं प्राणादिमान्, अहं सुखवान्' इति । तस्मात् प्राणादिलिङ्गत्वान्नागमिकम् । ननु च **यदि च[4] दृष्टप्रत्यक्षोऽहं देवदत्तोऽहं यज्ञदत्त इति** [वै० सू० ३।२।१०], [P पृ० १७ B] यदि खल्वहं देवदत्तोऽहं यज्ञदत्त इत्यात्मनि दृष्टप्रत्यक्षमिदं भवेत् एवं युज्येत अहंशब्दस्यात्मवाचकत्वम्, यावता शरीराभिधायकदेवदत्तशब्दैकार्थाधिकरणत्वादहंशब्दोऽपि शरीरवाचकः । तस्मान्न प्राणादिसुखादीन्यात्मनिर्णयहेतुः[5] । देवदत्तशब्दः कथं शरीर इत्याह—**देवदत्तो गच्छति विष्णुमित्रो गच्छतीति चोपचाराच्छरीरप्रत्यक्षः** [वै० सू० ३।२।११], गमनवाचिना 'गच्छति' इति शब्देन सहप्रयोगाद् देवदत्तशब्दः शरीरवचनोऽवसीयते आत्मनो गत्यसम्भवात् । तस्मादहंशब्दोऽपि शरीर एव देवदत्तशब्देन सह दृष्टत्वात् । नैतत्, **सन्दिग्धस्तूपचारः** [वै० सू० ३।२।१२], देवदत्तशब्देन एकार्थाधिकरणत्वाद् योऽयमुपचारोऽहंशब्दस्य शरीरे स सन्दिग्धः, किं शरीरस्य आत्मोपकारकत्वादहंशब्द आत्माभिधायक उपचरित उत मुख्यतया शरीरस्याभिधायकः ? इति न शरीरात्मनोरहंशब्दस्य निश्चयः । स्वपक्षे निश्चयमाह—**अहमिति प्रत्यगात्मनि भावात् परत्राभावादर्थान्तरप्रत्यक्षः** [वै० सू० ३।२।१३], प्रत्यगात्मनीति आत्मनि, परत्रेति शरीरे । यदि अहंशब्दः शरीरवचनः स्यात् एवं सति तस्मिन् पिण्डे देवदत्तशब्द इव सर्वैः प्रयुज्येत । न त्वेवम्, अत आत्मनि अर्थान्तरे 'अहं'शब्दः प्रत्यक्षः । शरीरे इव आत्मन्यपि परैरप्रयोगान्न स्यादिति चेत्, अत आह—**न[6] तु शरीरविशेषाद् यज्ञदत्तविष्णुमित्रयोर्ज्ञानविशेषः** [वै० सू० ३।२।१४], यज्ञदत्तविष्णुमित्रसम्बन्धेन शरीरविशेषाद् यथा दृष्टाद् न तदीये सुखादावस्मदादीनां जायते ज्ञानं तथैव न तदीयाहङ्कारोऽस्माभिः संवेद्यते यतोऽहंशब्दः प्रयुज्येत । शरीरवाचकत्वे तु यथा शरीरं दृष्ट्वा तत्र देवदत्तं प्रयुञ्जते तद्वदिममपि प्रयुञ्जीरन्, [P पृ० १८ A] न त्वेवम् । तस्मान्न शरीरे । आत्मवृत्तित्वे तु परैरप्रयोगः । एवमहंशब्देन एकाधि-

1 दृश्यतां **न्यायवा०** ३।१।१० । **नयचक्रवृ०** पृ० ५४७ पं० १६ । 2 '**चक्षुषा अर्थसन्निकर्षे**' इति पाठोऽत्र शोभनो भाति । 3 वाच्यम्–वृ० । 4 चादृष्ट°–**सू०** । 5 सुखादीनां निर्णयहेतुः–वृ० । 6 ननु शरीर°–**सू० वृसू०** ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करणत्वात् सुखादय आत्मविषयाः प्राणादयश्च तच्चिमित्ताः । ननु सुखदुःखज्ञाननिष्पत्त्यविशेषादैकात्म्यम्[1] [वै० सू० ३।२।१५], यथा सलिङ्गाविशेषाद् विशेषलिङ्गाभावाच्चैको भावः तथैव सुखदुःखज्ञानानां निष्पत्त्यविशेषाद् विशेषलिङ्गाभावाच्चैकात्म्यम्। नैतत्, नाना व्यवस्थातः [वै० सू० ३।२।१६], अन्यस्य सुखादियोगेऽन्यस्य तदभावादनया व्यवस्थया नाना आत्मानः । शास्त्रसामर्थ्याच्च[2] [वै० सू० ३।२।१७] इति, 'ग्रामकामो यजेत, स्वर्गकामो[3] यजेत' इत्यतोऽपि शास्त्रसामर्थ्याद् नाना आत्मानः । तस्य गुणाः बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नादृष्टसंस्कारा वैशेषिकाः । अन्ये तु संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागाः । तृतीयोऽध्यायः ।

एवं द्रव्याण्युक्त्वा नित्यत्वमुपलब्ध्यनुपलब्धी च तेषु कथयति प्रसङ्गादन्यत्-सदकारणवत् तन्नित्यम् [वै० सू० ४।१।१], अद्रव्यवत्त्वादित्यनेन यत् सत् कारणरहितं तद् नित्यमुक्तं परमाण्वादि । उपलब्धौ तु तस्य कार्यं लिङ्गम् [वै० सू० ४।१।२], तस्य परमाण्वादेरिन्द्रियैरगृह्यमाणस्यापि शरीरमहाभूतादि कार्यं लिङ्गम् । यतः कारणभावाद्धि कार्यभावः [वै० सू० ४।१।३], यस्मात् कारणेभ्यस्तन्त्वादिभ्यः पटादि कार्यमुत्पद्यते त[स्मा]त् कार्यस्य कारणपूर्वकत्वात् कारणस्य कार्यं लिङ्गम् । अनित्यमिति[4] च विशेषप्रतिषेधभावः [वै० सू० ४।१।४], यदा खलु 'सर्वं कार्यमनित्यम्' इत्युच्यते तदानेन नित्यत्वस्य विशेषप्रतिषेधेन कार्यविषयेण[5] किञ्चित् कारणं नित्यमिति ज्ञायते । अविद्या च [वै० सू० ४।१।५], अविद्या अग्रहणमतीन्द्रियत्वेन परमाणूनाम्, तदपि [अ]नित्यत्वं निवारयति । अदृश्यमाने ह्यर्थे तद्गतमनित्यत्वं केन गृह्येत ? तस्मान्नानित्यता वक्तुं शक्या । उपलब्धिः कथमिति चेत्, महत्यनेकद्रव्यवत्त्वाद्रूपाच्चोपलब्धिः [वै० सू० ४।१।६], महत्त्वपरिमाणसमवायिनि [P पृ० १८ B] द्रव्ये समवायिकारणद्रव्यबहुत्वाद् रूपाच्च शुक्लादेर्ज्ञानं भवति । कुत एतत् ? यतः अद्रव्यवत्त्वात् परमाणावनुपलब्धिः [वै० सू० ४।१।७], सत्यपि रूपे परमाणोः समवायिकारणद्रव्याभावान्नोपलब्धिः । रूपसंस्काराभावाद् वायावनुपलब्धिः [वै० सू० ४।१।८], सत्यपि अनेकद्रव्यवत्त्वे महत्त्वे च रूपाख्यस्य संस्कारस्याभावाद् वायावनुपलब्धिः । अनेकद्रव्यताया विशिष्टाया अग्रहणात्[6] द्व्यणुकेऽपि अनुपलब्धिः सिद्धा । रूपे कथम् ? अनेकद्रव्येण[7] द्रव्येण समवायाद् रूपविशेषाच्चोपलब्धिः [वै० सू० ४।१।९], महता अनेकद्रव्यसमवायिद्रव्येण पटादिना रूपगुणस्य समवायाद् रूपविशेषाच्च रूपत्वाख्यात् सामान्यविशेषादुपलब्धिः । एतेन रसगन्धस्पर्शेषु ज्ञानं व्याख्यातम् [वै० सू० ४।१।१०], एतेन अनन्तरोक्तेन न्यायेन अनेकद्रव्येण द्रव्येण समवायाद् रसत्वादिसामान्यविशेषेभ्यश्च रसादीनामुपलब्धिः । तदभावादव्यभिचारः [वै० सू० ४।१।११], परमाणुरूपस्यानेकद्रव्येण द्रव्येण समवायाभावान्नोपलब्धिः, ततोऽनेकद्रव्येण [द्रव्येण] समवायस्य रूपोपलब्धेश्चाव्यभिचारः । संख्याः परिमाणानि *पृथक्त्वं[8] संयोगविभागौ परत्वापरत्वे कर्म च रूपिद्रव्यसमवायाच्चाक्षुषाणि* [वै० सू० ४।१।१२], [रूपेण] विशिष्टं रूपि, तेन उपलब्धियोग्येन रूपिणा समवायादेतानि चाक्षुषाणि स्वसामान्यविशेषेभ्यश्च । कुतः ? अरूपिष्वचाक्षुषत्वात् [वै० सू० ४।१।१३], यस्माद् रूपरहितेषु महत्सु[9] द्रव्यान्तरेषु स्थितानि न ज्ञायन्ते । एतेन गुणत्वे भावे च सर्वेन्द्रियं[10] ज्ञानं व्याख्यातम्[11] [वै० सू० ४।१।१४], यथैव महत्यनेकद्रव्येण समवायाद् रूपादीनां समवेतानामुपलब्धिरेवं महति समवेतेषु गुणेषु समवेतयोर्गुणत्वभावयोः तैस्तैर्गुणैः रूपादिभिः समवायाद् यथास्वं चक्षुरादीन्द्रियैरुपलब्धिः, न[12] तु सामान्यविशेषेषूपलम्भकास्तदभावात् । एवं तत्त्वादीनां[13] स्वैरिन्द्रियैः, द्रव्ये तु भावस्य समवायात् । [P पृ० १९ A] कर्मणि समवेतसमवायाद् गुणवत् । चतुर्थस्याद्यमाह्निकम् ।

इदानीमाध्यात्मिकमेषां कार्यमुच्यते, तत्र प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाणामप्रत्यक्षत्वात्[14] संयोगस्य पञ्चात्मकं न विद्यते [वै० सू० ४।२।१], क्षित्यादिपञ्चकेन शरीरारम्भे त्रयाणां प्रत्यक्षत्वाद् वायोरप्रत्यक्षत्वाद् यथा तद्वर्ती संयोगोऽप्यप्रत्यक्ष एवं शरीरमप्रत्यक्षं स्यात् प्रत्यक्षाप्रत्यक्षैरारब्धत्वात् । प्रत्यक्षत्वात्तु मन्यामहे – न पञ्चभिरारब्धमिति । ननु त्रिभिः प्रत्यक्षैरारभ्येत,

1 °षादैक्यम्-वृसू० । 2 शास्त्रसामर्थ्याच्च । तृतीयोऽध्यायः-सू० । 3 सर्वकामो-वृ० । 4 °मिति न विशेषे प्रति°-वृसू० । अनित्यमिति च विशेषतः प्रतिषेधभावः-ब्रह्मसूत्रशाङ्करभा० २।२।१५। 5 °षयेन-वृ० । 6 अग्रहणातुण्डकेऽपि-वृ० । (अग्रहणात् द्व्यणुकेऽपि ? ग्रहणात् द्व्यणुकेऽपि ?) । 7 अनेकद्रव्येण समवायाद्-सू० । 8 * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो नास्ति वृसू०मध्ये । 9 महत्सु वाय्वन्तरेषु-वृ० । 10 सार्वेन्द्रियज्ञानं-वृसू० । 11 व्याख्यातम् । चतुर्थस्य प्रथममाह्निकम् ।-सू० । 12 (न तु सामान्यविशेषाः सामान्यविशेषेषूपलम्भकास्तदभावात् ? न तु सामान्यविशेषा उपलम्भकास्तदभावात् ? न तु सामान्यविशेषेभ्यस्तदभावात् ?) । 13 तत्वादीनां-वृ० । 14 प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाभ्यामप्रत्यक्षत्वात्पंचात्मकं न विद्यते-वृ० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणान्तराप्रादुर्भावाच्च त्र्यात्मकमपि न [वै० सू० ४।२।२], क्षितिसलिलानलैरारम्भे विलक्षणेभ्यो रूपादिभ्यः कार्ये विलक्षणानि रूपाणि गुणान्तराणि जायेरन्। न त्वेवम्। अपि तु पार्थिवानेव रूपादीनुपलभामहे। तस्मान्न त्र्यात्मकम्। **आत्मसंयोगस्त्वविप्रतिषिद्धो मिथः पञ्चानाम्** [वै० सू० ४।२।३], आत्मशब्देन स्वरूपम्, स्वरूपेण पञ्चानामपि भूतानां परस्परसंयोगो न प्रतिषिध्यते शरीरे, नारम्भकत्वेन[1]। पार्थिवशरीरे जलादीनि संयोगीनि, न समवायीनि। जलादिभिरयोनिजमेव शरीरमारभ्यते वरुणलोकादौ। कुतः? **अनेकदेशपूर्वकत्वात्** [वै० सू० ४।२।४], अनेकदेशाः परमाणवः, तैरेवारभ्यते जलादिशरीरम्, न शुक्रशोणिताभ्याम्। तच्च **धर्मविशेषात्** [वै० सू० ४।२।५], धर्मविशेषापेक्षाः परमाणव एव शरीरमारभन्ते न शुक्रादि। कथं हि पुण्यवतां शुक्रादिमयं शरीरं स्यात्। इतश्च, **कार्यविशेषात्** [वै० सू० ४।२।६], शलभादिशरीराख्यात् कार्यविशेषाद् मन्यामहे–सन्त्ययोनिजानि। इतश्च, **समाख्याभावात्** [वै० सू० ४।२।७], 'अङ्गारेभ्यो जातोऽङ्गिराः' इत्येवमादिसमाख्याभावाद् मन्यामहे–सन्त्ययोनिजानि। कुतः? **संज्ञादिमत्त्वात्** [वै० सू० ४।२।८], यतः प्रत्यक्षेण अङ्गारजन्मादिकमर्थं दृष्ट्वा [P. पृ० १९ B] पुरुषैः प्रणीयन्ते संज्ञाः 'अङ्गिराः' इत्यादयः। अतः संज्ञानामादिमत्त्वात् समाख्या यथार्था। अतः **सन्त्ययोनिजा वेदलिङ्गाच्च** [वै० सू० ४।२।९] इति, 'चन्द्रमा मनसो जातः' इत्यादिकाच्च वेदलिङ्गात् सन्त्ययोनिजाः शरीरविशेषाः। एवं जलादिशरीरमयोनिजमेव। पार्थिवं तु योनिजमयोनिजं च। चतुर्थोऽध्यायः। समाप्तो द्रव्याधिकारः।

[2]·········[P. पृ० २२ B]······**दिक्कालावाकाशं च क्रियावद्भ्यो वैधर्म्यान्निष्क्रियाणि** [वै० सू० ५।२।२३], आकाश-काल-दिशोऽमूर्ताः क्रियावतः पृथिव्यादेरमूर्ततया वैधर्म्यान्निष्क्रियाः, 'च'शब्दादात्मापि निष्क्रियः। **एतेन कर्माणि गुणाश्च व्याख्याताः** [वै० सू० ५।२।२४], एतेनामूर्तत्वेन[3] गुणाः कर्माणि च निष्क्रियाणि, 'च'शब्दात् सामान्यादयः। **निष्क्रियाणां समवायः कर्मभ्यः प्रतिषिद्धः** [वै० सू० ५।२।२५], निष्क्रियाणामभिघातादीनां कर्म समवेतं न भवति स्वाश्रये कर्मजननात्। **कारणं त्वसमवायिनो गुणाः** [वै० सू० ५।२।२६], यस्य गुणाः कारणमुक्ताः तस्यासमवायिन एव कारणम्। **गुणैर्दिग् व्याख्याता** [वै० सू० ५।२।२७], 'पूर्वेण निष्क्रमणम्' इत्यादेः प्रत्ययभेदस्य दिग् निमित्तकारणं व्याख्याता, कारणत्वेनातिदेशो नासमवायित्वेन। **कारणेन कालः**[4] [वै० सू० ५।२।२८] इति, येनैव कारणेन प्रत्ययभेदहेतुत्वेन दिग् व्याख्याता तेनैव 'युगपत् कृतम्' इत्यादिप्रत्ययभेदस्य कालो निमित्तकारणं व्याख्यातः। पञ्चमोऽध्यायः। समाप्तः कर्माधिकारः।

कर्माणि व्याख्याय गुणा व्याख्यायन्ते। तत्र धर्म आदौ व्याख्यायते, शास्त्रादौ तस्योद्दिष्टत्वात्। तस्य वैदिको विधिः साधनम्। वेदस्य सत्यता कुत इति चेत्, [P. पृ० २३ A] यतः **बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे** [वै० सू० ६।१।१], 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' इत्येवंभूता रचना भगवतो महेश्वरस्य बुद्धिपूर्वा या अतः प्रमाणम्, आप्तप्रणीतत्वस्य सत्यताव्याप्तेः। अतीन्द्रियमशक्यं ज्ञातुमिति चेत्, **न चास्मद्बुद्धिभ्यो लिङ्गमृषेः** [वै० सू० ६।१।२], लिङ्ग्यतेऽनेनार्थ इति लिङ्गं विज्ञानम्। न हि यादृशमस्मद्विज्ञानं वर्तमानाव्यवहितसम्बद्धार्थविषयं तादृशमेव भगवतो विज्ञानम्। अतः सम्भवति भगवतोऽतीन्द्रियार्थविषयं विज्ञानम्। स कथं ज्ञायते? **तथा ब्राह्मणे संज्ञाकर्मसिद्धिर्लिङ्गम्** [वै० सू० ६।१।३], विनोपदेशेन ब्राह्मणादिकमर्थमस्माकमालोचयतां प्रत्यक्षेण न 'ब्राह्मणोऽयम्' इति ज्ञानमुत्पद्यते। प्रत्यक्षेण चार्थमालोच्य संज्ञाप्रणयनं दृष्टं पुत्रादिषु। सन्ति चैता ब्राह्मणादिसंज्ञास्ताः येन प्रत्यक्षमर्थमालोच्य प्रणीता इति सूत्रार्थं वर्णयन्ति। अतः **बुद्धिपूर्वो ददातिः**[5] [वै० सू० ६।१।४], यत एव परमेश्वरस्य कृतिर्वेदादौ वाक्यपदरचनाऽतो[6]ऽयं स्मार्तोऽपि दानादिविधिः तदीयमाम्नायमनन्तशाखाभिन्नमालोच्य संक्षेपमनुमन्यमानानां **भृगु**प्रभृतीनां बुद्धिपूर्वः। एवं दानादिविधयो धर्महेतवः। **तथा प्रतिग्रहः** [वै० सू० ६।१।५], तथैव प्रतिग्रहोऽपि प्रक्षीणवृत्तेरवदातजन्मनः प्रतिग्रहानुरूपगुणयुक्तस्य धर्मायैव भवति। **तयोः क्रमो यथाऽनितरेतराङ्गभूतानाम्** [वै० सू० ६।१।६], यथा भूतानि अनितरेतराङ्गं न परस्परेण कार्यकारणभूतानि, न ह्यरणी अग्नेः कारणम्, अपि तु स्वावयवा एव, अथ च अरण्योरग्नेश्च क्रमः। एवमेतयोः पूर्वं दानधर्मः पश्चात् प्रतिग्रहधर्मः, न तु कार्यकारणभावः। कुतः? **आत्मगुणेषु आत्मान्तरगुणानामकारणत्वात्** [वै० सू० ६।१।७], [P.

---

1. शरीरेणारम्भकत्वेन–**वृ०**। 2 पञ्चमाध्यायस्य प्रथमाह्निकं द्वितीयाह्निकस्य चाद्यानि १३ सूत्राणि **चन्द्रानन्दकृतवृत्त्या** सह 'पृ० ४८१ टि० १२' इत्यत्र विलोकनीयानि। १४ तः २२ पर्यन्तानि सूत्राणि तु 'पृ० ४३८ टि० ९' इत्यत्र विलोकनीयानि। 3 एतेन मूर्तत्वेन–**वृ०**। 4 कारणेन कालः। पञ्चमोऽध्यायः।–**सू०**। 5 बुद्धिपूर्वा याऽतः–**वृ०**। अत्र '**बुद्धिपूर्वा अतः**' इत्यपि भवेत् पाठः। 6 °नातोयं स्मार्तेपि–**वृ०**।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० २३ B] न ह्यन्यदीया आत्मगुणा अन्यदीयात्मगुणानां कारणं भवन्ति । तत्र **अदुष्टभोजनात् समभिव्याहारतोऽभ्युदयः** [वै० सू० ६।१।८], अदुष्टं ब्राह्मणं भोजयित्वा तदीयादाशीर्वादादिसमभिव्याहारात् पुरुषाभ्युदयः । तत्कारणं धर्मो भवतीत्यर्थः । **तद् दुष्टभोजने न विद्यते** [वै० सू० ६।१।९], सत्यप्याशीर्वादादिवचने दुष्टं ब्राह्मणं भोजयित्वा अभ्युदयो न प्राप्यते । अथ को दुष्टः ? **दुष्टं हिंसायाम्** [वै० सू० ६।१।१०], परस्य हिंसायां शारीरमानसदुःखरूपायां प्रवृत्तं दुष्टं जानीष्व । हिंसाशब्द उपलक्षणम्, यतः **समभिव्याहारतो दोषः** [वै० सू० ६।१।११], कृतमहापातकस्य संभाषणमात्रादेव दोषेण युज्येत, किमुत भोजनादिना ? इह समभिव्याहारः सम्भाषणम्, पूर्वत्राशीर्वादः । **तद् दुष्टे न विद्यते** [वै० सू० ६।१।१२], तत् समभिव्याहारदूषणं हिंसादिरहिते ब्राह्मणे न विद्यते । अदुष्टेऽपि **विशिष्टे प्रवृत्तिः** [वै० सू० ६।१।१३], न हिंसादिमात्ररहिते, अपि तु देशकालविज्ञानाचारैर्विशिष्टे ब्राह्मणेऽभ्युदयार्थिनः प्रवृत्तिः । ततः **समे हीने चाप्रवृत्तिः** [वै० सू० ६।१।१४], अदुष्टो ब्राह्मणो देशादियुक्तो विशिष्ट उच्यते । एषामेकेन गुणेन युक्तः समः । तौ त्यक्त्वा अन्यो दुष्टो वा क्षत्रियादिर्वा प्राणिमात्रं वा हीन उच्यते । तत्राभ्युदयेप्सोर्मन्त्रपूर्वके सुवर्णादिदाने वैशाख्यादिनिमित्ते समहीनयोरप्रवृत्तिः, अपि तु विशिष्टे । **एतेन हीनसमविशिष्टधार्मिकेभ्यः परादानं व्याख्यातम्** [वै० सू० ६।१।१५], एतेन विपरीतेन क्रमेणापदि परस्मादानं व्याख्यातम् । उक्तं च —

'हीनादादेयमादौ तु तदभावे समादपि । असम्भवे त्वाददीत विशिष्टादपि धार्मिकात् ॥'

तथा विरुद्धानां त्यागः [वै० सू० ६।१।१६], अनेनैव विपरीतक्रमेण ब्राह्मण [P. पृ० २४ A] आत्मनो हीनै रिपुभिर्मारणायाक्षिप्तस्तानेव शत्रूनभिहन्यात् । **सम आत्मत्यागः परत्यागो वा** [वै० सू० ६।१।१७], आत्मनस्तुल्यगुणेन शत्रुणा प्राप्तस्य ब्राह्मणस्य विकल्पः – आत्मनो वध आततायिनो वा । **विशिष्ट आत्मत्यागः** [वै० सू० ६।१।१८], आत्मनोऽधिकगुणेन शत्रुणा प्राप्तस्य आत्मन एव रिपुप्रयुक्तो वधोऽङ्गीकार्यः । इहात्मापेक्षया हीनादिव्यवहारः, प्रतिग्रहे प्रतिग्रहीतॄणां अन्योन्यापेक्षश्चेति षष्ठस्याद्यमाह्निकम् ।

एवं श्रुतिस्मृतिविधिभ्यो धर्मो भवतीत्युक्त्वा इदानीमेषां धर्मसिद्धौ प्रकारविशेषमाह । तथाहि — **दृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय** [वै० सू० ६।२।१], श्रुतिस्मृतिपरिदृष्टानां स्नानादीनां दृष्टस्य मलापकर्षादेरनभिसन्धाने प्रयोगोऽभ्युदयाय भवति । के ते ? **अभिषेचनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुलवासवानप्रस्थ्ययज्ञदानप्रोक्षणदिङ्नक्षत्रमन्त्रकालनियमाश्चादृष्टाय** [वै० सू० ६।२।२], विशिष्टदेशकालापेक्षेण अम्भसा यः शरीरस्य संयोगस्तदभिषेचनं स्नानम् । नक्तंदिनं वासो नियमपूर्वोऽनाहाररूप उपवासः । ब्रह्मशब्देन आत्मा, ब्रह्मणि चरणमात्ममनसोर्यः संयोगः स्त्र्यादिपरिहाररूपो ब्रह्मचर्यम् । विज्ञानाद्यर्थिनो गुरुचर्यापरस्य तद्गृहेषु वसनं गुरुकुलवासः । शास्त्रविधिना निःसृतोऽरण्यप्रस्थितो वानप्रस्थः, तस्य कर्म वानप्रस्थ्यम् । यज्ञाः पाकयज्ञादयः । दानं सुवर्णादिदानमभयदानं च । प्रोक्षणं सन्ध्योपासनादि । दिङ्नियमादयोऽन्ये विशेषाः । दिङ्नियमः – प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत । नक्षत्रनियमः – कृत्तिकास्वादधीत । मन्त्रनियमः – देवस्य त्वेति निर्वपति । कालनियमः – वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत । एवमेतत् सर्वं दृष्टप्रयोजनतिरस्कारेण प्रयुज्यमानं धर्माय सम्पद्यत इति । तत्र **चातुराश्रम्यमुपधाश्चानुपधाश्च** [वै० सू० ६।२।३], यदिदं चतुर्णामाश्रमिणां कर्म तदुपधया प्रयुज्यमानमधर्माय अनुपधया तु धर्माय भवति । का उपधा ? **भावदोष उपधा** [वै० सू० ६।२।४], भावस्य अभिसन्धेर्दम्भादिदोष उपधेत्यर्थः । काऽनुपधा ? **अदोषोऽनुपधा** [वै० सू० ६।२।५], अभिसन्धेर्दम्भादिरहितत्वमनुपधेत्यर्थः । **दृष्टरूपरसगन्धस्पर्शं प्रोक्षितमभ्युक्षितं च तच्छुचि** [वै० सू० ६।२।६], स्मृतौ यस्य रूपादयो न निषिद्धास्तच्छुचि मन्त्रपूर्वकं प्रोक्षितं केवलाभिरद्भिरभ्युक्षितं च । एतद्विपरीतमशुचि । किञ्च, **अशुचीति शुचिप्रतिषेधः** [वै० सू० ६।२।७], यस्य चात्यन्तशुचिप्रतिषेधस्तदप्यशुचि वाग्दुष्टादिकम् । **अर्थान्तरं च** [६।२।८], मद्यादि च यत् साक्षान्निषिध्यते तदप्यशुचि । ततः शुचि भोक्तव्यम् । ननु **अयतस्य शुचिभोजनादभ्युदयो न विद्यते यमाभावात्** [वै० सू० ६।२।९], अयतस्य विशिष्टप्रयत्नरहितस्य शुचिमाहारं यदृच्छयोपयुञ्जानस्य अभ्युदयो नास्ति विशिष्टस्याभिसन्धेरभावात् । नैतत् । **विद्यते चानर्थान्तरत्वाद्यमस्य** [वै० सू० ६।२।१०], न प्रयत्नव्यतिरेकी यमः, प्रयत्नाभावे सर्वस्याः क्रियाया अभावाद् विद्यते शुचि-

1 सह–वृ० । 2 °प्रस्थायश°–वृसू० । 3 शास्त्रविधिनान्निःसृतारण्यप्रस्थितो वानप्रस्थः–वृ० । 'शास्त्रविधिना ग्रामान्निःसृतोऽरण्यं प्रस्थितो वनप्रस्थः' इत्यपि पाठः सम्भवेदत्र । 4 वानप्रस्थाम्–वृ० । 5 °मुपधाचानुपधाच–वृसू० । 6 °भ्युषितं–सू० वृसू० । 7 (°पभुञ्जानस्य ?) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ५९ पं० २४. **तेनैव** । विशेषैकान्तवादिना बौद्धेनैवेत्यर्थः ।

पृ० ६० पं० १. **निरूपणानुस्मरण**···। “सवितर्कविचारा[1] हि पञ्च विज्ञानधातवः । अन्त्यास्त्रयस्त्रिप्रकाराः शेषा उभयवर्जिताः ॥ निरूपणानुस्मरणविकल्पेनाविकल्पकाः । तौ प्रज्ञा मानसी व्यग्रा स्मृतिः सर्वैव मानसी ॥”—अभिधर्मको० १।३२-३३। एतच्छ्लोकद्वयस्य व्याख्या तु स्वोपज्ञ[2]भाष्यात् तट्टीकातश्चावगन्तव्या ।

पृ० ६० पं० ७. **विशेषणविशेष्ययोः**···। “विशेषणं विशेष्यं च सम्बन्धं लौकिकीं स्थितिम् । गृहीत्वा संकलय्यैतत् तथा प्रत्येति नान्यथा ॥”—प्रमाणवा० २।१४५।

पृ० ६० पं० १४. **रूपालोक**···। दृश्यताम् अनेकान्तजयपताका व्या० पृ० १।२२८। प्रमाणमी० पृ० १६। “मनस्कारः कतमः ? चेतस आभोग आलम्बनचित्तधारणकर्मकः ।”—अभिधर्मसमु० पृ० ६।

पृ० ६० पं० १५. **चक्षुः प्रतीत्य**···। “चत्वारः प्रत्यया हेतुश्चालम्बनमनन्तरम् । तथैवाधिपतेयं च प्रत्ययो नास्ति पञ्चमः ॥ १।२ ॥ तत्र ‘निर्वर्तको हेतुः’ इति लक्षणात् यो हि यस्य निर्वर्तको बीजभावेनावस्थितः स तस्य हेतुप्रत्ययः । उत्पद्यमानो धर्मो येनालम्बनेन उत्पद्यते स तस्यालम्बनप्रत्ययः । कारणस्यानन्तरो निरोधः कार्यस्योत्पत्तिप्रत्ययः, तद्यथा बीजस्यानन्तरो निरोधोऽङ्कुरस्योत्पादप्रत्ययः । यस्मिन् यद् भवति तत् तस्याधिपतेयमिति त एते चत्वारः प्रत्ययाः ।”—मध्यमकवृ० पृ० ७६-७७। दृश्यतां ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यभामती २।२।१९ । सर्वदर्शनसं० । अभिधर्मसमु० पृ० २८।

पृ० ६० पं० १५. **समनन्तरनिरुद्धं**···। “षण्णामनन्तरातीतं विज्ञानं यद्धि तन्मनः ।”—अभिधर्मको० १।१७।

माहारमु[1]पयुञ्जानस्य प्रयत्नः । यदि प्रयत्न[:] प्रधानम्, विनापि या[2]गादिनाभ्युदयः स्यात् । नैतत्, **अ[3]सति चाभावात्** [वै० सू० ६।२।११], अ[4]सति यागाद्यनुष्ठाने प्रमेयमात्रस्य भावादभ्युदयः क्रियोपदेशवैयर्थ्यात् (?) । इदानीं निःश्रेयसहेतुं धर्ममाह – **सुखाद्रागः** [वै० सू० ६।२।१२], स्त्र्यादिविषयजनितात् सुखादेव रागो वर्धते । **तन्मयत्वात्** [वै० सू० ६।२।१३], यै[5]रप्यसुखहेतुभिः शरीरं भावितं [P. पृ० २५ A] तन्मय इवास्ते । ततस्तन्मयत्वाद् रागः । किञ्च, **तृप्तेः** [वै० सू० ६।२।१४], यदा तृप्तो भवति तदास्य तृप्तिनिमित्तो रागो भवति शरीरपुष्टेः । किञ्च, **अदृष्टात्** [वै० सू० ६।२।१५], अपूर्वदृष्टेषु अनुपकारकेषु च कस्यचिद् रागो जायतेऽत्रादृष्ट एव कारणम् । किञ्च, **जातिविशेषाच्च रागविशेषः** [वै० सू० ६।२।१६], यथा तिरश्चां तृणादिभोजने एवं जातिविशेषादपि रागः । सुखादिभ्यो रागो दुःखादिभ्यो द्वेषः, तत **इच्छाद्वेषपूर्विका धर्माधर्मयोः प्रवृत्तिः** [वै० सू० ६।२।१७], इच्छापूर्विका धर्मे प्रवृत्तिः, अन्येन धनमदादभिभूतस्य वा द्वेषपूर्विकापि ग्रामकामेष्ट्यादौ । अधर्मेऽपीच्छा[पूर्विका ?] परदारादिषु द्वेषपूर्विका । एवं धर्माधर्मयोः सञ्चयः । यत एवं **ततः संयोगो विभागश्च** [वै० सू० ६।२।१८], सञ्चितौ यदा धर्माधर्मौ भवतः तदा शरीरेन्द्रियैः संयोगो जन्माख्यो भवति, क्षीणयोश्च तयोर्मरणकाले वियोगः । पुनरप्याभ्यां धर्माधर्माभ्यां शरीरादिसंयोगो विभागश्चेत्येवमनादिरयं घटीयन्त्रवदावर्तते जन्तुः । एतद्विपरीतक्रमेणोच्यते, तथाहि – **आत्मकर्मसु मोक्षो व्या[6]ख्यातः** [वै० सू० ६।२।१९], आत्मेति मनः, मनःकर्मसु तदभावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च स मोक्षः इति मोक्षो व्याख्यातः । षष्ठोऽध्यायः ।” इति **चन्द्रानन्दविरचितायां वैशेषिकसूत्रवृत्तौ** P. पृ० १५-२५ । दृश्यतां **टिपृ० ८ पं० २२** ।

१ “कति अवितर्का अविचाराः ? ‘**स**वितर्कविचारा हि पञ्च विज्ञानधात**वः**’ । नियमेते वितर्कविचाराभ्यां सम्प्रयुक्ताः । अवधारणार्थो हिशब्दः । ‘**अन्त्यास्त्रयस्त्रिप्रकाराः**’ । मनोधातुर्धर्मधातुर्मनोविज्ञानधातुश्चान्त्याः । एते त्रयस्त्रिप्रकाराः । तत्र मनोधातुर्मनोविज्ञानधातुः सम्प्रयुक्तश्च धर्मधातुरन्यत्र वितर्कविचाराभ्यां कामधातौ प्रथमे च ध्याने सवितर्काः सविचाराः । ध्यानान्तरेऽवितर्काविचारमात्राः । द्वितीयाद् ध्यानात् प्रभृति आभवाग्राद् अवितर्का अविचाराः ।·········। ‘**शेषा उभयवर्जिताः**’ ॥ १ ॥ ३२ ॥ दश रूपिणो धातवः शेषा नित्यमवितर्का अविचारा असम्प्रयोगित्वात् । यदि पञ्च विज्ञानकायाः सवितर्काः सविचाराः कथमविकल्पका इत्युच्यते ? **निरूपणानुस्मरणविकल्पेनाविकल्पकाः** । त्रिविधः किल विकल्पः स्वभावाभिनिरूपणानुस्मरणविकल्पः । तदेषां स्वभावविकल्पोऽस्ति, नेतरौ, तस्मादविकल्पका इत्युच्यन्ते यथा एकपादोऽश्वोऽपादक इति । तत्र स्वभावविकल्पो वितर्कः । स चैतेषु पश्चान्निर्देक्ष्यते । इतरौ पुनः किंस्वभावौ ? यथाक्रमं ‘**तौ** प्रज्ञा मानसी व्यग्रा स्मृतिः सर्वैव **मानसी**’ ॥ १।३३ ॥ मनोविज्ञानसम्प्रयुक्ता प्रज्ञा मानसीत्युच्यते । असमाहिता व्यग्रेत्युच्यते । सा ह्यभिनिरूपणाविकल्पः ।

---

1 (°मुपभुञ्जानस्य ?) । 2 योगा°–**वृ०** । 3 असति भावात्–**वृसू०** । 4 ‘**असति यागाद्यनुष्ठाने न प्रयत्नमात्रस्य भावादभ्युदयः क्रियोपदेशवैयर्थ्यात्**’ इति पाठोऽत्र समीचीन इति भाति । 5 (यैरपि सुखहेतुभिः??) । 6 व्याख्यातः । षष्ठोऽध्यायः ।–**सू०** ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०६० पं०१६. **चतुर्भि**…। "चत्वारः प्रत्यया उक्ता हेत्वाख्याः पञ्च हेतवः ॥२।६१॥ 'चित्तचैत्ता अचरमा उत्पन्नाः समनन्तरः। आलम्बनं सर्वधर्माः कारणाख्योऽधिपः स्मृतः ॥ २।६२ ॥ निरुध्यमाने कारित्रं द्वौ हेतू कुरुतस्त्रयः । जायमाने ततोऽन्यौ तु प्रत्ययौ तद्विपर्ययात् ॥ २।६३ ॥ चतुर्भिश्चित्तचैत्ता हि समापत्तिद्वयं त्रिभिः । द्वाभ्यामन्ये तु जायन्ते नेश्वरादेः क्रमादिभिः ॥ २।६४ ॥"—अभिधर्मको० । अस्य व्याख्यानं तु अभिधर्मकोशभाष्यात् तट्टीकातश्चावगन्तव्यम् ।

पृ० ६१ पं० १, ५. **चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी**…**अभिधर्मागमोऽपि** । दृश्यतां पृ० ७९ टि० ७ । मध्यमकवृ० पृ० ७४ । अभिधर्मको० स्फुटार्था १।३३। तत्त्वसं० पं० पृ० १२। "**अभिधर्मेऽस्ति– मनोविज्ञानसमङ्गी तु 'नीलमिदम्' इति च ।**"–प्रमाणवा० मनो० टि० पृ० १९२। "तत्र प्रत्यक्षं भगवतैवोपदिष्टम्—नीलज्ञानसमङ्गी पुद्गलो नीलं जानाति, नो तु नीलमेवेति।"–प्रमाणवार्तिकालं० पृ० १६६। **अभिधर्मागमोऽपी**त्यनेन संस्कृतभाषानिबद्धम् अभिधर्मपिटकं ग्रहीतव्यम् । "श्रूयते हि **अभिधर्मशास्त्राणां** कर्तारः, तद्यथा—ज्ञानप्रस्थानस्य **आर्यकात्यायनीपुत्रः** कर्ता, प्रकरणपादस्य **स्थविरवसुमित्रः**, विज्ञानकायस्य **स्थविरदेवशर्मा**, धर्मस्कन्धस्य **आर्यशारिपुत्रः**, प्रज्ञप्तिशास्त्रस्य **आर्यमौद्गल्यायनः**, धातुकायस्य **पूर्णः**, संगीतिपर्यायस्य **महाकौष्ठिलः**। कः सौत्रान्तिकार्थः? ये सूत्रप्रामाणिका न तु शास्त्रप्रामाणिकास्ते सौत्रान्तिकाः। यदि न शास्त्रप्रामाणिकाः कथं तेषां पिटकत्रयव्यवस्था—सूत्रपिटको विनयपिटकोऽभिधर्मपिटक इति? सूत्रेऽपि ह्यभिधर्मपिटकः पठ्यते—त्रैपिटको भिक्षुरिति। नैष दोषः । सूत्रविशेषा एव ह्यर्थविनिश्चयादयोऽभिधर्मसंज्ञा येषु धर्मलक्षणं वर्ण्यते । एतदाशङ्कानिवृत्त्यर्थमाहुः—**स तु**

मानस्यैव सर्वा स्मृतिः समाहिता चासमाहिता चानुस्मरणविकल्पः ।" इति [विद्वद्वरश्री**प्रह्लादप्रधान**महाशयानां सौजन्यात् समुपलब्धे हस्तलिखिते] **वसुबन्धुविरचितेऽभिधर्मकोशभाष्ये ।**

१ '**चित्त**चैत्ता अचरमा उत्पन्नाः समनन्तरः ।' अर्हतः पश्चिमानपास्योत्पन्नाश्चित्तचैत्ताः समनन्तरप्रत्ययः । समश्चायमनन्तरश्च प्रत्यय इति समनन्तरप्रत्ययः । अत एव रूपं न समनन्तरप्रत्ययः, विषमोत्पत्तेः ।……उक्तः समनन्तरप्रत्ययः । **'आलम्बनं सर्वधर्माः'** । यथायोगं चक्षुर्विज्ञानस्य ससम्प्रयोगस्य रूपम् श्रोत्रविज्ञानस्य शब्दः घ्राणविज्ञानस्य गन्धः जिह्वाविज्ञानस्य रसः कायविज्ञानस्य स्प्रष्टव्यम् मनोविज्ञानस्य सर्वधर्माः ।……उक्त आलम्बनप्रत्ययः । '**कारणाख्योऽधिपः स्मृतः**' ॥२।६२॥ य एव कारणहेतुः स एवाधिपतिप्रत्ययः । अधिकोऽयं प्रत्यय इत्यधिपतिप्रत्ययः । आलम्बनप्रत्ययोऽपि सर्वधर्माः अधिपतिप्रत्ययोऽपीति किमस्याधिक्यम् ? न जातु सहभुवो धर्मा आलम्बनं भवन्ति, भवन्ति त्वधिपतिप्रत्यय इत्यस्यै(स्ये ?)वाधिक्यम् । अधिकस्य वा प्रत्ययः । सर्वः सर्वस्य संस्कृतस्य स्वभाववर्जस्य ।…। अथैते प्रत्ययाः कारित्रं कुर्वन्तः किमवस्थे धर्मे कुर्वन्ति ? हेतुप्रत्ययस्तावत् पञ्चविध उक्तः, तत्र '**निरुध्यमाने कारित्रं द्वौ हेतू कुरुतः**' । निरुध्यमानं नाम वर्तमानम्, निरोधाभिमुखत्वात् । तत्र सहभू-सम्प्रयुक्तकहेतू कारित्रं कुरुतः।…'**त्रयः जायमाने**' । जायमानं नामानागतमुत्पादाभिमुखम् । तत्र सभाग-सर्वत्रग-विपाकहेतवः कारित्रं कुर्वन्ति । एवं तावद्धेतुप्रत्ययः । '**ततोऽन्यौ तु प्रत्ययौ तद्विपर्ययात्**' ।२।६३।……समनन्तरप्रत्ययो जायमाने कारित्रं करोति, अवकाशदानात् । आलम्बनप्रत्ययो निरुध्यमाने, वर्तमानैश्चित्तचैत्तैर्ग्रहणात् । अधिपतिप्रत्ययस्तु सर्वस्यामवस्थायामनावरणभावेनावस्थितः……। अथ कतमो धर्मः कतिभिः प्रत्ययैरुत्पद्यते ? **चतुर्भिश्चित्तचैत्ता हि** । तत्र हेतुप्रत्यय एषां सर्वे पञ्च हेतवः । समनन्तरप्रत्ययः पूर्वकाश्चित्तचैत्ताः अन्यैरव्यवहिताः । आलम्बनप्रत्ययः यथायोगं पञ्च विषयाः सर्वे धर्माश्च । अधिपतिप्रत्ययः स्वभाववर्जाः सर्वधर्माः । '**समापत्तिद्वयं त्रिभिः**' । निरोधा-ऽसंज्ञिसमापत्त्योरालम्बनप्रत्ययो नास्ति । न हि ते आलम्बिके ।……'**द्वाभ्यामन्ये तु जायन्ते**' । अन्ये तु विप्रयुक्ता रूपिणश्च धर्मा हेत्वधिपतिप्रत्ययाभ्यां जायन्ते यथाविहितमेव । आह—हेतुप्रत्ययेभ्यो भावा उपजायन्ते, न पुनः सर्वस्यैव जगत ईश्वर-पुरुषप्रधानादिकं कारणमिति कोऽत्र हेतुः ? यदि खलु हेतुकृतां सिद्धिं मन्यसे ननु च अत एवास्य वादस्य व्युदासः प्राप्नोति एकं कारणमीश्वरादिकं सर्वस्येति । अपि च '**नेश्वरादेः क्रमादिभिः**' ।२।६४। यदि ह्येकमेव कारणमीश्वरः स्यादन्यद्वा युगपत् सर्वेण जगता भवितव्यं स्यात् । दृश्यते च भावानां क्रमसम्भवः । स तर्हि छन्दवशादीश्वरस्य स्यात्–अयमिदानीमुत्पद्यताम् अयं निरुध्यताम् अयं पश्चादिति । छन्दभेदात् तर्हि सिद्धमनेकं कारणं स्यात् । स चापि छन्दभेदो युगपत् स्यात् तद्धेतोरीश्वरस्याभिन्नत्वात् । कारणान्तरभेदापेक्षणे वा नेश्वर एव कारणं स्यात् । तेषामपि च क्रमोत्पत्तौ कारणान्तरभेदापेक्षणादनवस्थाप्रसङ्गः स्यादित्यनन्तभेदायाः कारणपरम्पराया अनादित्वाभ्युपगमादयमीश्वरकारणाधि(द्धि ?)मुक्तः शाक्यपुत्रीयमेव न्यायं नातिवृत्तः स्यात् । यौगपद्येऽपीश्वरच्छन्दानां जगतो न यौगपद्यं यथाच्छन्दमुत्पादनादिति चेत् । न ।

---

1 Principal, Fakir Mohan College, BALASORE, Orissa.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकीर्ण उक्तो भगवतेति विस्तरः । यथा स्थविरधर्मत्रातेन उदाना 'अनित्या बत संस्काराः' इत्येवमादिका विनेयवशात् तत्र तत्र सूत्रे उक्ता वर्गीकृताः एकस्थीकृताः, एवमभिधर्मोऽपि धर्मलक्षणोपदेशस्वरूपो विनेयवशात् तत्र तत्र भगवतोक्तः स्थविरकात्यायनीपुत्रप्रभृतिभिः ज्ञानप्रस्थानादिषु पिण्डीकृत्य स्थापित इत्याहुः वैभाषिकाः ।''—अभिधर्मको०स्फुटार्था १।३।

पृ० ६१ पं० ४. **अर्थेऽर्थसंज्ञी**···। कमलशीलरचिते न्यायबिन्दुपूर्वपक्षसंक्षेपेऽपि उद्धृतमेतत् । दृश्यतां मध्यमवृ० पृ० ७४ टि० ६।

पृ० ६१ पं० १४. **व्यञ्जन**···। ''चित्तविप्रयुक्तसंस्काराः कतमे ? प्राप्तिरसंज्ञिसमापत्तिर्निरोधसमापत्तिरासंज्ञिकं जीवितेन्द्रियं निकायसभागता जातिर्जरा स्थितिरनित्यता नामकायाः पदकाया व्यञ्जनकाया पृथग्जनत्वं प्रवृत्तिः प्रतिनियमो योगः जवोऽनुक्रमः कालो देशः संख्या सामग्री च। ···नामकायाः कतमे? धर्माणां स्वभावाधिवचने नामकाया इति प्रज्ञप्तिः। पदकायाः कतमे ? धर्माणां विशेषाधिवचने पदकाया इति प्रज्ञप्तिः । व्यञ्जनकायाः कतमे ? तदुभयाश्रयेष्वक्षरेषु व्यञ्जनकाया इति प्रज्ञप्तिः तदुभयाभिव्यञ्जनतामुपादाय । ''—अभिधर्मसमु० पृ० १०—११।

पृ० ६१ पं० १८. **भावनयाऽनया**···। (भावनया विशेषयति?)।

पृ० ६१ पं० १९. **तं भवन्तं**···। ''**हेतुमति च** [पा० ३।१।२६] प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात् । भवन्तं प्रेरयति भावयति ।''—पा० सिद्धान्तकौ० ।

पृ० ६२ पं० ३, १९. **नामकायः** । दृश्यतां टिपृ० ३९ पं० ८ ।

पृ० ६२ पं० ७. **चैतसिकया**···। ''चैतसिका धर्माः चित्तविप्रयुक्ताश्च संस्काराः संस्कारस्कन्ध इत्युच्यते ।''—अभिधर्मसमु० पृ० ५।

पृ० ६३ पं० १—४. **कल्पना···ज्ञानवत्** । दृश्यतां पृ० १०८ पं० २१ ।

पृ० ६३ पं० ५. **दिन्नभिक्षोः** । दृश्यतां पृ० ५४७ टि० ९।

पृ० ६३ पं० २३. **तदग्रहे तद्बुद्ध्यभावात्** । समूहिनामणूनामग्रहे समूहबुद्ध्यभावादित्यर्थः । दृश्यतां पृ० ९२ पं० २३। न्यायवा० १।१।१४।

पृ० ६३ पं० २६. **गुणानां**···। ''तथा च शास्त्रानुशासनम्—गुणानां परमं रूपं······।'' इति योगभाष्ये ४।१३।

तेषां पश्चाद् विशेषाभावात् । कश्च तावदीश्वरस्य इयता सर्गप्रयासेनार्थः ? यदि प्रीतिः, तां तर्हि नान्तरेणोपायं शक्तः कर्तुमिति न तस्यामीश्वरः स्यात् । तथैव चान्यस्मिन् । यदि चेश्वरो नरकादिषु प्रजां बहुभिश्चेतिभिरुपसृष्टां सृष्ट्वा तेन प्रीयते नमोऽस्तु तस्मै तादृशायेश्वराय । सुगतिश्चायं तमारभ्य श्लोको भवति — 'यन्निर्दहति यत् तीक्ष्णो यदुग्रो यत् प्रतापवान् । मांसशोणितमज्जादो यत् ततो रुद्र उच्यते ॥' इति । एकं खल्वपि जगतः कारणं परिगृह्णता अन्येषामर्थानां प्रत्यक्षः पुरुषकारो निह्नुतः स्यात् । सहापि च कारणैः कारकमीश्वरं कल्पयता केवलो भक्तिवादः स्यात्, कारणेभ्योऽन्यस्य तदुत्पत्तौ व्यापारदर्शनात् । सहकारिषु चार्थेषु कारणेष्वीश्वरो नेश्वरः स्यात् । अथादिसर्ग ईश्वरहेतुकः, तस्याप्यन्यानपेक्षत्वादीश्वरवदनादित्वप्रसङ्गः । एवं प्रधानेऽपि यथायोगं वाच्यम् । तस्माद् न लोकस्यैकं कारणमस्ति । स्वानि एवैषां कर्माणि तस्यां तस्यां जातौ जनयन्ति । अकृतबुद्धयस्तु वराकाः स्वं स्वं विपाकफलं चानुभवन्त ईश्वरमपरं मिथ्या परिकल्पयन्ति । गतमेतद् यत्तु खलु तदुक्तं 'द्वाभ्यामन्ये तु जायन्ते' इति ।'' इति [विद्वद्वर्यश्री**प्रह्लादप्रधान**महोदयानां सौजन्यात् समुपलब्धे हस्तलिखिते] **वसुबन्धुविरचितेऽभिधर्मकोशभाष्ये ।**

१ धर्माणां प्रविचयमन्तरेण नास्ति क्लेशानां यत उपशान्तयेऽभ्युपायः । क्लेशैश्च भ्रमति भवार्णवेऽत्र लोकस्तद्धेतोरत उदितः किलैष शास्त्रा ॥१।३॥ यतो न विना धर्मप्रविचयेनास्ति क्लेशोपशमाभ्युपायः । क्लेशाश्च लोकं भ्रामयन्ति संसारमहार्णवेऽस्मिन् । अतस्तद्धेतोः तस्य धर्मप्रविचयस्यार्थे शास्त्रा किल बुद्धेन अभिधर्म उक्तः । न हि विना धर्मोपदेशेन शिष्यः शक्तो धर्मान् प्रविचेतुमिति । **स तु प्रकीर्ण उक्तो भगवता,** भदन्तकात्यायनीपुत्रप्रभृतिभिः पिण्डीकृत्य स्थापितो भदन्तधर्मत्रातोदानवर्गीकरणवदित्याहुर्वैभाषिकाः ।'' इति [विद्वद्वरश्री**प्रह्लादप्रधान**महाशयानां सौजन्यादधिगते हस्तलिखिते] **अभिधर्मकोशभाष्ये ।**
२ ''गुणानां सत्त्वरजस्तमसां परमं प्रधानलक्षणं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति । यत्तु रूपं महदादि दृष्टिपथप्राप्तं तद् मायेव सुतुच्छकम् ।''—**न्यायकुमु०** पृ० ६३०।

---

1 Principal, Fakir Mohan College, Balasore, Orissa,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य योगभाष्यस्य तत्त्ववैशारद्यां व्याख्यायाम् "अत्रैव षष्टितन्त्रशास्त्रस्यानुशिष्टिः" इति व्याख्यातवान् वाचस्पतिमिश्रः, ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यव्याख्यायां भामत्यां [२।१।३।] तु "तस्मात् प्रमाणभूतादपि योगशास्त्रान्न प्रधानादिसिद्धिः । अत एव योगशास्त्रं व्युत्पादयिता आह स्म भगवान् वार्षगण्यः—'गुणानां परमं रूपं……॥' इति, योगं व्युत्पिपादयिषता निमित्तमात्रेणेह गुणा उक्ताः, न तु भावतः, तेषामतात्त्विकत्वादित्यर्थः । अलोकसिद्धानामपि प्रधानादीनामनादिपूर्वपक्षन्यायाभासोपेक्षितानामनुवाद्यत्वमुपपन्नम् ।" इत्यभिहितं तेनैव वाचस्पतिमिश्रेण । प्रमाणसमुच्चयेऽपोहपरिच्छेदे दिङ्नागेनापि उद्धृतेयं कारिका सांख्यमतनिर्देशावसरे । दृश्यतां लघीयस्त्रयस्ववृ० ५।४१। न्यायकुमु० पृ० ६२८। प्रमाणवार्तिकालं० पृ० ४८०। तत्त्वोपप्लव० पृ० ८०। अष्टसहस्री पृ० १४४। सिद्धिवि० टी० पृ० ७४ B । सांख्यका० जयमं० पृ० ६३। अस्याः कारिकाया विस्तरेणार्थो योगभाष्यव्याख्यादिभ्योऽवगन्तव्यः ।

पृ० ६४ पं० १–४. **रूपादि……मविषयता** । दृश्यतां पृ० १०८ पं० ५–पृ० १०९ पं० १६।

पृ० ६४ पं० ६. **केशोण्डुकादि**…। "केशोण्डुकं यथा मिथ्या गृह्यते तैमिरैर्जनैः ।"-लंकावतारसू० पृ० २७४। कथमसति अर्थादौ विज्ञानं तदाभासमुत्पद्यते ? न हि पुरुषेऽसति स्थाणुः पुरुषाभासो भवति । नैष दोषः । अर्थाभासं हि विज्ञानम् । बाला विज्ञानात् पृथगर्थास्तित्वमभिनिविशन्ति तैमिरिकस्य केशोण्डुकादिवत् । तस्मात् तदभिनिवेशत्याजनार्थमुच्यते विज्ञानमेवेदमर्थाभासमुत्पद्यते तैमिरिकाणामिव केशोण्डुकाद्याभासं विनापि अर्थसत्त्वादिना इति ।"—मध्यान्तविभागटी० पृ० १७–१८। "केशोण्डुका नाम पक्षिणः ये केशमूलान्युत्पाटयन्ति"–शिक्षासमु० पृ० ७०। "यथा चिरकालीनाध्ययनादिखिन्नस्योत्थितस्य नीललोहितादिगुणविशिष्टः केशोण्डूकाख्यः कश्चिन्नयनाग्रे परिस्फुरति, अथवा करसंमृदितलोचनरश्मिषु येयं केशपिण्डावस्था स केशोण्डूकः"-शास्त्रदीपिकायुक्ति० पृ० ९९।

पृ० ६४ पं० ९. **भ्रान्तिसंवृति**…। "भ्रान्तिसंवृति……प्रत्यक्षाभं सतैमिरम् ॥ द्विविधः प्रत्यक्षाभो विकल्पो विप्लवश्च । पुनश्चतुर्विधः, तदाह—त्रिविधं कल्पनाज्ञानमाश्रयोपप्लवोद्भवम् । अविकल्पकमेकं च प्रत्यक्षाभं चतुर्विधम् ।३।२८९॥ स एव द्विविधो विकल्पस्य त्रिधा भेदाच्चतुर्विधः । कल्पनापोढं प्रत्यक्षम् । ततो विकल्पस्त्रिविधोऽपि प्रत्यक्षाभासः । तत्र [3]※भ्रान्तिज्ञानं मृगतृष्णिकादिषु तोयादिकल्पनाप्रवृत्तत्वात् प्रत्यक्षाभासम्, संवृतिसत्सु अर्थान्तराध्यारोपात् तद्रूपकल्पनाप्रवृत्तत्वात्, अनुमानतत्फलादिज्ञानं पूर्वानुभूतकल्पनयेति न प्रत्यक्षम् ※। प्रभास्वरस्पन्दमानमरीचिनिचयप्रतिभासं प्रत्यक्षमेव । तोयादिकल्पना तु प्रत्यक्षाभासः, तोयेऽसाक्षात्करणाकारत्वात् । संवृतिसत्स्वपि रूपादिग्रहणमात्रमेव प्रत्यक्षम् । अवयविनि तत्समवायिकारणत्वाभिमते न साक्षात्करणम्, अर्थान्तरस्य पूर्वदृष्टस्याध्यारोपात् द्रव्यस्य वा पूर्वपूर्वप्रत्ययेन कल्पितस्य, नावयवी रूपादिव्यतिरेकेण क्वचित् प्रत्यक्षे प्रतिभासत इति । अनुमानज्ञानं लिङ्गज्ञानम्, तत्फलं लिङ्गिज्ञानं न पूर्वानुभूतिमन्तरेण ।"—प्रमाणवार्तिकालं० पृ० ३३२। "नन्वविकल्पकं प्रत्यक्षम्, ततस्त्रयमपीदं सविकल्पकत्वादेकः प्रत्यक्षाभासः । तत् किं भ्रान्तिज्ञानं मृगतृष्णिकायां जलावसायि, संवृतिसतो द्रव्यादेर्ज्ञानम्, अनुमानं लिङ्गज्ञानम्, आनुमानिकं लिङ्गिज्ञानम्, स्मार्तं स्मृतिः, आभिलाषिकं चेति विकल्पप्रभेद आचार्यदिङ्नागेन उक्तः ? इत्याह—अनक्षजत्वसिद्ध्यर्थम्………।"—प्रमाणवा० मनो० पृ० २०५ । "Therefore in this way I [implicitly] assume that memory, induction, desire, doubt, confused knowledge etc. perception of water in mirage etc. cannot be called direct perception, since those constructions of thought are present which are the result of previous experiences."–न्यायमुख. पृ० ५१ । दृश्यतां प्रमाणवा० मनो० टि० पृ० २०५ । तत्त्वसं० पं० पृ० ३९४ । सन्मतिवृ० ५२७ ।

पृ० ६४ पं० १०. **सतैमिरम्** तैमिरेण द्विचन्द्रादिज्ञानेन सहितं पूर्वोक्तं भ्रान्त्यादिज्ञानं प्रत्यक्षाभासमित्यर्थः ।

पृ० ६४ पं० १४. **°नित्यं सम्प्र०** । (चित्तसम्प्र° ???) ।

---

१ "अत्रैव षष्टितन्त्रशास्त्रस्यानुशिष्टिः—माया इव, न तु माया, सुतुच्छकं विनाशि । यथा हि माया अहार्यैव अन्यथा भवति एवं विकारा अपि आविर्भावतिरोभावधर्माणः प्रतिक्षणमन्यथा । प्रकृतिर्नित्यतया मायाविधर्मेण परमार्थेति ।"—**योगभाष्यतत्त्ववैशा०** ४।१३। २ "योगशास्त्रस्य हैरण्यगर्भपातञ्जलादेः" इति **भामत्याम्** [२।१।३] अभिहितत्वात् तदानीं हिरण्यगर्भादिरचितान्यपि योगशास्त्राण्यासन् इति भाति । ३ ※ ※ एतदन्तर्गतः पाठः दिङ्नागविरचितायां प्रमाणसमुच्चयवृत्तावपि विद्यते । ४ दृश्यतां टिप्पृ० ३१ टि० १ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ६४ पं० २२. **सङ्घात**···। "**भेदसङ्घाताभ्यां चाक्षुषाः** । ५ । २८ । भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः स्कन्धा उत्पद्यन्ते । अचाक्षुषास्तु यथोक्तात् संघाताद् भेदात् संघातभेदाच्चेति ।"–तत्त्वार्थभा० । "परस्परस्पृष्टगतिर्भावनापचया ध्वनिः । *स्पृष्टग्राह्यश्रुते सम्यगर्थभावोपयोगतः ॥ १९।११ ॥ संघातभेदोभयतः परिणामाच्च सम्भवः । * बद्धस्पृष्टग(स?)मद्व्यादिस्नेहरौक्ष्यातिशायनात् ॥१९।१२ ॥ "–सिद्ध० द्वात्रिं० ।

पृ० ६५ पं० १–४. **तत्र प्रतिविविक्त**······ । दृश्यतां पृ० १०९ पं० २५–२८, पृ० ११० पं० ३ ।

पृ० ६५ पं० ७. **रूपधातु**··· । "धातवोऽष्टादश–चक्षुर्धातुः, रूपधातुः, चक्षुर्विज्ञानधातुः, श्रोत्रधातुः, शब्दधातुः, श्रोत्रविज्ञानधातुः, घ्राणधातुः, गन्धधातुः, घ्राणविज्ञानधातुः, जिह्वाधातुः, रसधातुः, जिह्वाविज्ञानधातुः, कायधातुः, स्प्रष्टव्यधातुः, कायविज्ञानधातुः, मनोधातुः, धर्मधातुः, मनोविज्ञानधातुश्च । [पृ० १] ।······ धात्वर्थः कतमः ? सर्वधर्मबीजार्थः स्वलक्षणधारणार्थः कार्यकारणभावधारणार्थः सर्वप्रकारधर्मसंग्रहधारणार्थश्च । "–अभिधर्मसमु० पृ० १८ ।

पृ० ६५ पं० ८. **स्वविषय्या**······ । अत्र विषयि इन्द्रियमित्यर्थः । दृश्यतां टिपृ० ४६ पं० २८ ।

पृ० ६५ पं० १३. **नीलं** ······ । दृश्यतां पृ० ६१ पं० १ ।

पृ० ६५ पं० १५. **हेतुरपदेशो**······ । **वैशेषिकसूत्रस्य P[3]प्रतौ नवमेऽध्याये आह्निकविभागाभावात् नवमाध्यायस्य सप्तदशमिदं सूत्रम्, तत्र च 'हेतुरपदेशो लिङ्गं निमित्तं प्रमाणं कारणमित्यनर्थान्तरम्' इति पाठः ।**

---

१ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो यद्यपि मुद्रितायां द्वात्रिंशिकायां नास्ति तथापि पुण्यपत्तने भाण्डारकरप्राच्यविद्यामन्दिरे [Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona 4] विद्यमानायां हस्तलिखितायां विद्यते इति ध्येयम् । २ दृश्यतां टिपृ० ८ पं० २२ । ३ P **वै० सू०** नवमाध्यायस्य **चन्द्रानन्दविरचितवृत्तिसहितानि** आदितोऽष्टौ सूत्राणि पृ० ४८९ टि० ६ इत्यत्रावलोकनीयानि । नवमं तु सूत्रं सवृत्तिकं पृ० ४६० टि० १ इत्यत्र विलोकनीयम् । अवशिष्टानि सूत्राणि वृत्त्या सह अत्र प्रदर्श्यन्ते—"[P पृ० ३१ B] प्रत्यक्षपरोक्षविषयत्वाद् योगिप्रत्यक्षं प्रत्यक्षानुमानयोर्मध्ये व्याख्यायते–**आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम्** [वै० सू० ९।१०], आहृत्य विषयेभ्य इन्द्रियाणि तेभ्यश्च मन आत्मन्येव यदा समाधीयते तदा योगजधर्मापेक्षादात्मान्तःकरणसंयोगाद् विशिष्टात् तत्रभवतां स्वस्मिन्नात्मनि ज्ञानं प्रत्यक्षमुत्पद्यते । **तथा[1] द्रव्यान्तरेषु** [वै० सू० ९।११], प्रतिषिद्धात्मसंयोगेषु व्यापकद्रव्येषु आत्मना असंयुक्तेषु अप्रतिषिद्धात्मसंयोगेषु च परमाण्वादिषु उभाभ्यां संयुक्तेषु ज्ञानमुत्पद्यते । किञ्च, **आत्मेन्द्रियमनोर्थसन्निकर्षाच्च** [वै० सू० ९।१२], सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टेष्वर्थेषु तेषां चतुष्टयसन्निकर्षादपि प्रत्यक्षं जायते । तथास्मदादिप्रत्यक्षेषु । **तत्समवायात् कर्मगुणेषु** [वै० सू० ९।१३], यथा अन्तःकरणसंयोगाद् द्रव्यान्तरेषु ज्ञानमुत्पद्यते तथैव तद्द्रव्यसमवेतेषु कर्मगुणेषु ज्ञानमुत्पद्यते । यथा च चतुष्टयसन्निकर्षात् सूक्ष्मादिष्वस्मत्प्रत्यक्षेषु च ज्ञानं तथैव तत्समवेतेषु गुणकर्मसु ज्ञानमुत्पद्यते संयुक्तसमवायात् । **[2]आत्मसमवायादात्मगुणेषु** [वै० सू० ९।१४], यथा आत्ममनःसंयोगात् स्वस्मिन्नात्मनि ज्ञानं तथैव स्वात्मसमवेतेषु सुखादिषु ज्ञानमुत्पद्यते । योगिप्रत्यक्षं व्याख्यायानुमानं व्याचष्टे—**अस्येदं कार्यं कारणं सम्बन्धि एकार्थसमवायि विरोधि चेति लैङ्गिकम्** [वै० सू० ९।१५], अस्येदमिति सम्बन्धमात्रं दर्शयित्वा 'कार्यं कारणम्' इत्यादिना विशिनष्टि । 'कार्यकारण'ग्रहणेन समवायिमात्रोपलक्षणाज्जात्यादेरपि ग्रहणम्; 'सम्बन्धि'शब्देन संयोगिनो ग्रहणं धूमादेः । अन्यद् व्याख्यातं [3]संयोग्यादिसूत्रे । [P पृ० ३२ A] तत्र 'एवंविधप्रसिद्धसम्बन्धस्य अर्थैकदेशमसन्दिग्धं पश्यतः शेषानुव्यवसायो यः स लिङ्गाद्दर्शनात् (लिङ्गदर्शनात् ?) सञ्जायमानो लैङ्गिकम्' इति **वृत्तिकारः** । **एतेन शाब्दं व्याख्यातम्** [वै० सू० ९।१६], यथा कार्यादिस्मृतिसव्यपेक्षमनुमानं त्रिकालविषयमतीन्द्रियार्थं तथैव शाब्दं सङ्केतस्मृत्यपेक्षं त्रिकालविषयमतीन्द्रियार्थं च । अतोऽनुमानेनैकयोगक्षेमत्वादनुमानमेवेत्युक्तं भवति । कः शब्दोऽर्थस्य चेत्, तदुच्यते—**हेतुरपदेशो लिङ्गं निमित्तं प्रमाणं कारणमित्यनर्थान्तरम्** [वै० सू० ९।१७], हेत्वादिशब्दैस्तात्पर्येण कारणं कथयति । हेतुरपदेशः कारणमित्यर्थः । एवं शब्दः कारणं सदर्थस्य प्रतिपत्तौ लिङ्गं कुत इति चेत्, **अस्येदमिति बुद्ध्यपेक्षत्वात्** [वै० सू० ९।१८], यथा 'अर्थस्य प्रतिपत्तावियं हस्तचेष्टा कारणं प्रतिपत्तव्या' इति वृत्तसङ्केतः तां हस्तचेष्टां दृष्ट्वा ततः शब्दात् कारणात् अर्थं प्रतिपद्यते एवम्

---

1 'तथा' **वृसू०** मध्ये नास्ति । 2 सूत्रमिदं नास्ति **सू०** मध्ये । 3 **वै० सू०** ३।१।८ । दृश्यतां टिपृ० ३२ पं० २१ । **नय० टि०** ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अस्यार्थस्य प्रतिपत्तायं शब्दः कारणम्' इति प्रसिद्धसङ्केतः ततः शब्दात् कारणादर्थं प्रतिपद्यते, यथा अभिनयादेरपि अर्थं प्रतिपद्यन्ते लौकिकाः एवं शब्दोऽर्थस्य सङ्केतवशेन व्यञ्जकत्वात् कारणमिति **वृत्तिकारः।** एवमुपमा[ना]दीनामन्तर्भावः। एवं द्वे एव प्रमाणे। प्रमाणत्वं च प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणं प्रमा प्रमाणमिति वा। अनुमानाङ्गं स्मृतिरुच्यते[1]—**आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्मृतिः** [वै० सू० ९।१९], अग्न्यर्थिनो धूमदर्शनं यदुत्पन्नं तदपेक्षादात्मान्तःकरणसंयोगाद् विशिष्टाच्च भावनाख्यसंस्काराद् 'यत्र धूमस्तत्राग्निः' इति स्मृतिरुत्पद्यते। **तथा[2] स्वप्नस्वप्नान्तिकम्** [वै० सू० ९।२०], तथा स्वप्नः स्वप्नेऽपि स्वप्नज्ञानं स्वप्नान्तिकं च। उपरतेन्द्रियस्य प्रलीनमनस्कस्यान्तःकरणेनैव ज्ञानं स्वप्नः, [P पृ० ३२ A] स्वप्नेऽपि स्वप्नज्ञानं स्वप्नान्तिकम्, तदुभयं पूर्वप्रत्ययापेक्षादात्ममनःसंयोगविशेषाद् भावनासहायादुत्पद्यते। **धर्माच्च** [वै० सू० ९।२१], अननुभूतार्थविषयमपि स्वप्नज्ञानं शुभाशुभसूचकं धर्मात् 'च'शब्दादधर्माच्चेति। जाग्रतस्तु **इन्द्रियदोषात् संस्काराच्चाविद्या** [वै० सू० ९।२२], वातादिदोषेणोपहतेन्द्रियस्य पूर्वरजतानुभवजनितात् संस्कारादात्ममनःसंयोगाच्च विशिष्टादधर्मापेक्षात् अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं यथा शुक्तिकायां रजतमिति। अनध्यवसायो यथा दाक्षिणात्यस्योष्ट्रदर्शने। **तद्दुष्टं ज्ञानम्** [वै० सू० ९।२३], यदेतत् संशयविपर्ययानध्यवसायस्वप्नलक्षणं तद् दुष्टमप्रमाणमिति। **अदुष्टं विद्या** [वै० सू० ९।२३], यददुष्टं प्रत्यक्षानुमानाख्यं तद्विद्येत्युच्यते। **आर्षं सिद्धदर्शनं च धर्मेभ्यः[3]** [वै० सू० ९।२४], तत्र यल्लिङ्गनिरपेक्षमतीतानागतवर्तमानेषु धर्मादिषु अतीन्द्रियेषु ग्रन्थैरनुपात्तेषु देवर्षीणां यत् प्रातिभमुत्पद्यते विज्ञानं लौकिकानां कदाचिदेव 'श्वो मे भ्राता आगन्ता, हृदयं मे कथयति' इति अनवधारणफलं केवलं तर्केण नीयते तदार्षमित्युच्यते। अञ्जनरसायनादिसिद्धानां तु सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टार्थविषयं यद्वा दिव्यान्तरिक्षादिनिमित्तेभ्यः प्राणिनां धर्माधर्मविपाकपरिज्ञानं तत् सिद्धदर्शनम्। तच्च प्रत्यक्षानुमानाभ्यां न भिद्यते, आर्षं भिद्यत इति वर्णयन्ति। तदेतदार्षं सिद्धदर्शनं च विशिष्टाद् धर्मादात्ममनःसंयोगाच्चोत्पद्यत इति नवमोऽध्यायः।

बुद्धिप्रसङ्ग[4] एवं पर्यवसिते सुखदुःखबुद्ध्योरालम्बने सुखदुःखे च कथयति। तथाहि—'सुखदुःखमोहमयानि भूतानि' इत्याहुः। तदयुक्तम्, **आत्मसमवायः** [P. पृ० ३३ A] **सुखदुःखयोः पञ्चभ्योऽर्थान्तरत्वे हेतुस्तदाश्रयिभ्यश्च गुणेभ्यः** [वै० सू० [5]१०।१], आत्मन्येव यः समवायः सुखदुःखयोरसौ पञ्चभ्यः क्षित्यादिभ्यस्तदाश्रयिभ्यश्च गुणेभ्यो गन्धरसरूपस्पर्शेभ्योऽर्थान्तरत्वे हेतुः, अन्यगुणानामन्यत्रासमवायात्। आत्मसमवायश्चैतयोरहङ्कारेण एकवाक्यभावात्। आत्मसमवायित्वेऽपि **इष्टानिष्टकारणविशेषाद् विरोधाच्च मिथः सुखदुःखयोरर्थान्तरभावः** [वै० सू० १०।२], स्रगादिकारणजन्यं सुखम्। परस्परविरुद्धे च सुखदुःखे, अन्योन्यविनाशेनोत्पत्तेः। अतोऽनयोर्भेदः, नैकत्वमेकार्थसमवायात्। संशयनिर्णयौ परस्पराभावमात्रम् न वस्तुसन्ताविति चेत्, **संशयनिर्णययोरर्थान्तरभावश्च ज्ञानान्तरत्वे हेतुः** [वै० सू० १०।३], अर्थान्तरात् परस्परविलक्षणात् कारणाद् भाव उत्पत्तिः संशयनिर्णययोः। तथाहि—विशेषं जिज्ञासोरगृहीतविशेषस्य सामान्यालोचनात् संशयो जायते। संशयात् परतः प्रमाणान्तरेण विशेषग्रहणात् 'स्थाणुरेवायम्' इति निश्चयः। यदि चैतौ न वस्तुसन्तौ भवेतां नैतौ विलक्षणकारणाभ्यामुत्पद्येयाताम्। अतो ज्ञानान्तरभूतौ संशयनिर्णयौ परस्परतः। निर्णयस्तु प्रत्यक्षानुमानाभ्यां न भिद्यत इति केचित्। **तयोर्निष्पत्तिः प्रत्यक्षलैङ्गिकाभ्यां ज्ञानाभ्यां व्याख्याता** [वै० सू० १०।४], यथा स्मृतिमत आत्मनः प्रत्यक्षं लिङ्गं दृष्ट्वा अप्रत्यक्षे ज्ञानमुत्पद्यते तथैव सामान्यमात्रदर्शनात् स्मृतिमतो विशेषं जिज्ञासोरगृहीते विशेषे 'स्थाणुः पुरुषो वा' इति जायते संशयः। यथा च भूतार्थसम्बन्धवशेन 'अयमेवंभूतोऽर्थः' इति प्रत्यक्षमुत्पद्यते तथैव विशेषसम्बन्धवशेन निवृत्ते संशये 'इदमेवंभूतम्' इति निर्णयो जायते। [P. पृ० ३३ B.] इदानीं कार्यकारणबुद्धी निरूपयति—**भूतमिति प्रत्यक्षं व्याख्यातम्** [वै० सू० १०।५], स्वकारणेभ्य उत्पन्ने कार्ये भूतं निष्पन्नमिदं कार्यमिति कार्यज्ञानम्, 'विशेषणज्ञानाद् विशेष्यज्ञानम्' इति न्यायेन तद् व्याख्यातम्, तच्च मुख्यम्, अन्यत्र त्वौपचारिकं कार्याभावात्, तथाहि—निष्पत्स्यमाने कार्ये **भविष्यतीति कार्यान्तरे[6] दृष्टत्वात्** [वै० सू० १०।६], यथाभूतायाः सामग्र्या अनन्तरं घटादि कार्यमुत्पन्नं दृष्टं तथाभूतसामग्रीदर्शनादिदानीमनुत्पन्नेऽपि कार्ये कार्यशब्दमुपचर्य 'भविष्यति कार्यम्' इति जायते कार्यबुद्धिः। निष्पद्यमानेऽपि **तथा भवतीति[7] सापेक्षेभ्योऽनपेक्षेभ्यश्च** [वै० सू० १०।७], यदा प्रस्तारितांश्च[8]

---

1 °तुच्यते—वृ०। 2 'तथा स्वप्नस्वप्नान्तिकम्'–वृसू० मध्ये नास्ति। 3 धर्मेभ्यः। नवमोऽध्यायः।—सू०। 4 बुद्धिप्रसंगा एवापर्यवसिते सुखदुःखबुद्ध्योरालम्बनसुखदुःखे च–वृ०। 5 सू० मध्ये वृसू० मध्ये च दशमाध्याये आह्निकभेदो नास्ति। 6 कार्यान्तरदृष्टत्वाद्–सू०। 7 भवति–वृसू०। सूत्रमिदं प्रशस्तपादभाष्ये संयोगनिरूपणे उद्धृतम्, व्याख्यातं च तद् व्योमवत्यां न्यायकन्दल्यां च। 8 प्रस्तारिताः शून्यपूर्वपूर्व°—वृ०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ६६ पं० १–४. **ननु च···यावत्**। दृश्यतां पृ० ११० पं० ३–६।

पृ० ६६ पं० ८. **साध्यधर्म**···। "एतेनैव दृष्टान्तदोषा अपि निरस्ता भवन्ति, यथा नित्यः शब्दोऽमूर्तत्वात् कर्मवत् परमाणुवत् घटवदिति साध्यसाधनधर्मोभयविकलाः।"–न्यायबि०।

पृ० ६६ पं० ९. **इष्टविघाताद्**···। "इष्टविघातकृद् विरुद्धः, यथा परार्थाश्चक्षुरादयः संघातत्वात् शयनासनाद्यङ्गवदिति, तदिष्टासंहतपारार्थ्यविपर्ययसाधनाद् विरुद्धः।"—न्यायबि०।

पृ० ६६ पं० १७. **अन्यथा दाह**···। श्लोकोऽयं बहुषु ग्रन्थेषु उद्धृतो दृश्यते–शास्त्रवा० का० ६६७। अनेकान्तजय० पृ० १। ३९६। व्योमव० पृ० ५८४। तत्त्वसं०पं० पृ० २८०। न्यायकुमु० पृ० ५५३। न्यायमं०। **शास्त्रवार्तासमुच्चये अनेकान्तजयपताकायां** च अत्रवदेव पाठः। अस्य व्याख्या–"अन्यथा दाहसम्बन्धात् स्वलक्षणानुभवेन दाहं दग्धोऽभिमन्यते पुमान्। तथा अन्यथा दाहशब्देन सामान्यलक्षणाध्यवसायेन दाहार्थः सम्प्रतीयते।"–अनेकान्तजय० स्वो०। "यदि शब्देन यथावद् बाह्योऽर्थः प्रत्याय्येत तदा शब्दसन्निधापितोऽसौ तामर्थक्रियां कथं न कुर्यात्? यतश्चाग्निसम्बन्धाद् दग्धो दाहमन्यथा अनुभवति दाहशब्देन च दाहमन्यथाऽवगच्छतीति शब्दार्थयोर्नास्ति कश्चिद् वास्तवः समन्वय इति बोद्धव्यम्।"–वाक्यप० पुण्य० श्लो० ४२५।

पूर्वपूर्वसंयोगापेक्षानुपलभमानः पश्चात् पश्चादुत्तरोत्तरतन्तुसंयोगे सति अनपेक्षानुपलभते तदास्य पट्टिकार्यवान्तरकार्य[1] पश्यत उत्पद्यमाने कार्यद्रव्ये निष्पन्नानिष्पन्नसंयोगपर्यालोचनया भवति कार्यमुत्पद्यते कार्यमिति जायते बुद्धिः। यथा चोत्पत्तौ एवं विनाशेऽपि प्रयत्नानन्तरोत्पत्तीनां घटादिद्रव्याणां विनाशे 'अभूत्' इति प्रत्ययस्य '[2]भूतप्रत्यक्षाभावात्' [९।१।६] इत्यादिना कथितत्वादिदानीं पारिणामिके शरीरादौ कथ्यते। तत्र विनष्टे **अभूदित्यभूतात्** [वै० सू० १०।८], अभूताद् विनष्टादित्यर्थः। पाणिपादग्रीवादीनवयवान् विभक्तानुपलभ्य विनष्टादसमवायिकारणात् संयोगाद् विनष्टे कार्ये '[3]अभूत् कार्यं शरीराख्यम्' इति जायते बुद्धिः। विनश्यति पुनः **सति च कार्यासमवायात्** [वै० सू० १०।९], सति संयोगे 'च'शब्दादसति, घातकादिविनाशकारणव्यापारेऽपि केषाञ्चिद् ग्रीवाद्यवयवानामनिवृत्ते संयोगे विभागाच्च पाण्यादीनां विनिवृत्ते [P. पृ. ३४ A] कार्यस्य शरीरादेरसमवायाद् विनाशकारणाप्राप्तत्वेन प्रचलितत्वाद् विनष्टाविनष्टसंयोगालोचनेन 'कार्यं नश्यति' इति ज्ञानमुत्पद्यते। अन्ये तु '[4]अभूत् कार्यम्' इति व्याचक्षते तदयुक्तं तदभिप्रायेणैव [5]कार्यस्य विनष्टत्वात्। एषा च बुद्धिः **एकार्थसमवायिषु कारणान्तरेषु दर्शनादेकदेश [6]इत्येतस्मिन्** [वै० सू० १०।१०], शरीरादौ क्वचिदेकस्मिन्नर्थे यदा पाण्यादयोऽवयवाः समवायिन उपलब्धाः अथास्य तेषु एकदेशबुद्धिरुत्पन्ना इदानीं तान् विभज्य विभक्तानुपलभ्य [7]एतस्मिन्नेकदेशिनि 'अभूत् कार्यम्' इति ज्ञानोत्पत्तिः। के तेऽवयवाः? इत्याह—**शिरः पृष्ठमुदरं पाणिरिति तद्विशेषेभ्यः** [वै० सू० १०।११], स्वसामान्यविशेषेभ्यः शिरस्त्वादिभ्यो येषु ज्ञानं जायते [ते] शिरआदयोऽवयवा इत्यर्थः। कारणबुद्धिस्तु **कारणमिति द्रव्ये कार्यसमवायात्** [वै० १०।१२], कार्यं [8]द्रव्यं गुणान् कर्म वा समवेतं द्रव्ये पश्यतो 'द्रव्यं कारणम्' इति मुख्या बुद्धिः, कार्यस्य जातत्वात्। अजाते तु **संयोगाद्वा** [वै० सू० १०।१३], जनिष्यमाणेऽपि कार्ये तन्त्वादीनां परस्परेण संयोगादस्य पटं प्रति तेषु कारणबुद्धिरुत्पद्यते। **कारणसमवाया[9]↑त् कर्मणि↑** [वै० सू० १०।१४], संयोगविभागेषु निरपेक्षकारणत्वात् तत्कारणद्रव्ये समवेतत्वात् कर्मोत्पन्नमात्रमेव कार[ण]बुद्धिं जनयति। इदानीं गुणेषु, **तथा रूपे कारणकारणसमवायाच्च** [वै० सू० १०।१५], कार्यरूपस्य समवायिकारणे पटादौ यत् समवायिकारणं तन्तवः तेषु कारणकारणेषु समवेतत्वात् कारणं रूपादय इत्युच्यन्ते, 'च'शब्दादनुत्पन्नेऽपि कार्यरूपे कारणबुद्धिः। **कारणसमवायात् संयोगे** [वै० सू० १०।१६], कार्यस्य पटादेः समवायिकारणेषु तन्त्वादिषु समवेतत्वात् संयोगे द्रव्यं प्रति कारणबुद्धिः। [P. पृ० ३४ B] गुणकर्मारम्भे तु **[10]तथा कारणाकारणसमवायाच्च** [वै० सू० १०।१७], कारणे घटे अकारणे चाग्नौ अग्निसंयोगः समवेतत्वात् कारणं पाकजानाम्। [11]अभिघात्ये कर्मकारणे समवेतत्वाद् वेगवद्द्रव्यसंयोगः कर्मणः कारणम्। पाकजारम्भे

---

1 °षवान्तकार्य–**वृ०**। 2 दृश्यतां **नयचक्रवृ०** पृ० ४८९ टि० ६। 3 अभूतात्–**वृ०**। 4 अभूत–**वृ०**। 5 (कार्यस्याविनष्टत्वात्?)। 6 इत्येकस्मिन्–**सू०**। अत्र '**इत्येकस्मिन्**' इति पाठः समीचीनो भाति, **शङ्करमिश्रा**दिभिरपि स एव पाठः स्वीकृतः। 7 (एकस्मिन्नेकदेशिनि?)। 8 द्रव्यगुणाः कर्म वा–**वृ०**। 9 ↑↑ एतदन्तर्गतः पाठो **वृसू०** मध्ये नास्ति। 10 'तथा' **वृसू०** मध्ये नास्ति। 11 (अभिघाते?)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ६६ पं० २१. **सर्वत्रा**··· । (सर्वत्र अर्थान्तराध्यारोपवृत्ति अर्थान्तरहेयतयोत्पन्नं न तज्ज्ञानम् ? सर्वं नार्थान्तराध्यारोपवृत्ति अर्थान्तरहेयतयोत्पन्नं तज्ज्ञानम् ??) ।

पृ० ६७ पं० १-३. **कारकतापि···धूमानुमिताग्निवत्** । दृश्यतां पृ० ११० पं० ६-९ ।

पृ० ६७ पं० ७. **यस्मिन्**··· । दृश्यतां पृ० ९२ टि० ७ ।

पृ० ६८ पं० १-४. **कारकताया** ······ । दृश्यतां पृ० १ ० पं० ९-११ ।

पृ० ६९ पं० १-४. **रूपैक**··· । दृश्यतां पृ० ११० पं० ११-१५ ।

पृ० ६९ पं० ५. **भावानामेकवचसाधारण** ···। अत्र **भावानां मेचकवत् साधारणभवनत्वाभवनत्वात्** इति य०प्रत्यनुसारी पाठः समीचीनो भाति ।

पृ० ६९ पं० १२. **अनग्ने** ···। अत्र 'अनग्नेरन्यस्य' इति भा० प्रतिपाठे 'अग्नितोऽन्यस्य अनग्नेः' इत्यर्थो ज्ञेयः, 'अनग्नेरग्नेरन्यस्य' इति य० प्रति पाठेऽपि स एवार्थो ज्ञेयः ।

पृ० ७० पं० १-२. **नाणुषु**······। दृश्यतां पृ० ११० पं० १५-१६ ।

पृ० ७० पं० ३,२०,२३. **प्रत्यक्षविधि**···। दृश्यतां पृ० ७६ पं० २ ।

पृ० ७० पं० १७. **प्रमेय**···। "अनैकान्तिकः षट्प्रकारः– साधारणः, असाधारणः, सपक्षैकदेशवृत्तिर्विपक्षव्यापी, विपक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षव्यापी, उभयपक्षैकदेशवृत्तिः, विरुद्धाव्यभिचारी चेति । तत्र साधारणः 'शब्दः प्रमेयत्वाद् नित्यः' इति, तद्धि नित्यानित्यपक्षयोः साधारणत्वादनैकान्तिकम्—किं घटवत् प्रमेयत्वादनित्यः शब्द आहोस्विदाकाशवत् प्रमेयत्वाद् नित्यः ? इति । असाधारणः 'श्रावणत्वाद् नित्यः' इति । तद्धि नित्यानित्यपक्षाभ्यां व्यावृत्तत्वाद् नित्यानित्यविनिर्मुक्तस्य चान्यस्यासम्भवात् संशयहेतुः – किम्भूतस्यास्य श्रावणत्वम् ? इति ।"—न्यायप्र० ।

पृ० ७२ पं० ९. **मायेयदिग्नाविव** । मायाया अपत्यं मायेयो बुद्ध इत्यर्थः । "शाक्यमुनिस्तु यः ॥ १४ ॥ स शाक्यसिंहः सर्वार्थसिद्धः शौद्धोदनिश्च सः । गौतमश्चार्कबन्धुश्च मायादेवीसुतश्च सः ॥ १५ ॥"–अमरको० । '**दिग्न**'विषये दृश्यतां पृ० ५४७ टि० ९ ।

पृ० ७२ पं० १५. **सति सम्भवे**···। "सम्भवव्यभिचाराभ्यां स्याद् विशेषणमर्थवत् । न शैत्येन न चौष्ण्येन वह्निः क्वापि विशि(शे)ष्यते ॥"–तन्त्रवा० पृ० २०८ । "सम्भवव्यभिचाराभ्यां विशेषणविशेष्ययोः । दृष्टं विशेषणं लोके यथेहापि तथेक्ष्यताम् ॥"–बृहदा० वा० पृ० २०१२ । "सम्भवे व्यभिचारे च विशेषणविशेष्यभावः ।"–हेतुबि० टी० पृ० २१२ । दृश्यतां प्रमाणमी० ११२।

तु **संयुक्तसमवायादग्नेर्वैशेषिकम्** [वै० सू० १०।१८], अणूनां पाकजरूपाद्यारम्भे अणुभिः संयुक्तेऽग्नौ समवेतमुष्णस्पर्शं वैशेषिकं गुणमपेक्षते संयोगः । द्रव्यं वर्जयित्वा अन्यत्र संयोगः सापेक्षः कारणम् । अतीन्द्रिये भूतादावर्थे **लैङ्गिकं प्रमाणं व्याख्यातम्** [वै० सू० १०।१९], लैङ्गिकं परोक्षमुच्यते, 'भविष्यति' इत्यादि कार्याणां येनावगम्यते तदनुमानं प्रमाणं व्याख्यातम् । शास्त्रादौ धर्मो व्याख्येयतया प्रतिज्ञातः, अतस्तस्य प्रत्याम्नायानुसन्धानार्थं सूत्रद्वयं गतमपि पुनरुच्यते–**दृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय** [वै० सू० १०।२०], श्रुतौ स्मृतौ च दृष्टानां दृष्टस्य प्रयोजनस्याभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय धर्मायेत्यर्थः । तस्य चाम्नायात् समधिगम उक्तः । आम्नायस्य च सिद्धं प्रामाण्यम्, **तद्वचनादाम्नायप्रामाण्यमिति**[3] [वै० सू० १०।२१], तनुभुवनादिकार्यतया विज्ञातो भगवानीश्वरः, तत्प्रणयनाच्चाम्नायस्य सिद्धं प्रामाण्यम् । 'इति'शब्दः समाप्त्यर्थः । एवं द्रव्यादीनां साधर्म्यवैधर्म्यपरिज्ञानाद् वैराग्यद्वारेण ज्ञानोत्पत्तेः 'आत्मा ज्ञातव्यः' इत्यादिवाक्येभ्यश्चोपासनाक्रमेण विज्ञानात्प्राप्तेर्निःश्रेयसाधिगमः ।

जगतोऽस्यानन्दकरं [5]विद्याशर्वर्यां सदैव यश्चन्द्रम् ।
आनन्दयति स वृत्तिं **चन्द्रानन्दो** व्यधादेताम् ॥"

इति **चन्द्रानन्द**विरचितायां **वैशेषिकसूत्रवृत्तौ** P. पृ० ३१-३४ । दृश्यतां टिप्प० ८ पं० २२ ।

---

1 दृश्यतां **वै० सू०** १०।६ । 2 दृश्यतां **वै० सू०** ६।२।१ । टिप्प० ३६ पं० १९ । 3 दृश्यतां **वै० सू०** १।१।३ । पृ० ४४४ टि० ४ । 4 इत्यादिना वाक्येभ्यश्चोपासाक्रमेण विज्ञानात्प्राप्तेर्निःश्रेयसाधिगमः–**वृ०** । 5 विद्यासर्वर्योः–**वृ०** ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ७२ पं० १९. **रूपत इति रूप्यम्**। अत्र '**रूप्यत इति रूपम्**' इति पठनीयम्।

पृ० ७३ पं० १,८. **प्रत्येक**···। दृश्यतां पृ० ९६ पं० ३०।

पृ० ७३ पं० १३. **विजानाति**···। दृश्यतां तत्त्वार्थसूत्रसर्वार्थसिद्धिः १।१२। **शास्त्रवार्तासमुच्चये** [श्लो० ३३२] **अनेकान्तजयपताकास्वोपज्ञवृत्तौ** [पृ० १।२२३, २।२०२] च 'एकमर्थं विजानाति न विज्ञानद्वयं यथा। विजानाति न विज्ञानमेकमर्थद्वयं तथा॥' इति पाठो हरिभद्रसूरिभिः स्वीकृत इति ध्येयम्। "अयमत्र भावः—क्षणिकत्वाभ्युपगमे बौद्धस्य न कदाचित् क्वचित् कश्चिदप्यर्थं एकसन्तानवर्तिभ्यां द्वाभ्यां ज्ञानाभ्यां ज्ञातुं शक्यः क्रमभावित्वादुभयोः। तथा द्वावर्थक्षणौ क्रमभाविनावेकेन ज्ञानक्षणेन न बोद्धुं पार्येते क्षणिकत्वादेवेति।"–अनेकान्तजय० स्वो० वि० पृ० १।२२३।

पृ० ७३ पं० १६. **प्रत्यक्षं कल्पना**···। इदं न्यायमुखेऽप्यस्ति, दृश्यतां टिपृ० ३० पं० ३०, टिपृ० ३१ पं० ६।

पृ० ७३ पं० २५. **गुणसन्द्रावो**···। दृश्यतां टिपृ० १६ पं० ३५।

पृ० ७४ पं० ३. **मायेयीयः**। मायेयो बुद्धः। मायेयीयो बुद्धसम्बन्धीत्यर्थः।

पृ० ७४ पं० १३. **°पादनाय [अयं] त्वित्यादि**। (°पादनाद्यं त्वित्यादि? °पादनेऽयं त्वित्यादि?)।

पृ० ७४ पं० १४. **शब्दादिभि**···। दृश्यतां पृ० २६८ टि० १।

पृ० ७४ पं० २१. **संघाता एव**···। "उभाभ्यामपि चक्षुर्भ्यां पश्यति व्यक्तदर्शनात्। चक्षुःश्रोत्रमनोऽप्राप्तविषयं त्रयमन्यथा॥ १।४३॥ तद्यदि चक्षुः पश्यति किमेकेन चक्षुषा रूपाणि[1] पश्यति आहोस्विदुभाभ्याम्? नात्र नियमः। 'उभाभ्यामपि चक्षुर्भ्यां पश्यति व्यक्तदर्शनात्'। उभाभ्यामपि चक्षुर्भ्यां पश्यतीति आभिधर्मिकाः। तथाहि–द्वयोर्विवृतयोः परिशुद्धतरं दर्शनं भवति, एकस्मिंश्चोन्मीलिते चक्षुषि द्वितीये चार्धनिमीलिते द्विचन्द्रादिग्रहणं भवति, नैकतरान्यथाभावात्। न चाश्रयविच्छेदाद् विच्छेदप्रसङ्गः, विज्ञानस्य देशाप्रतिष्ठितत्वाद् रूपवदिति। यदि चक्षुः पश्यति श्रोत्रं शृणोति यावद् मनो विजानाति, किमेषां प्राप्तो विषयः आहोस्विदप्राप्तः? 'चक्षुःश्रोत्रमनोऽप्राप्तविषयम्'। तथाहि–दूराद्रूपं पश्यति, अक्षिस्थमञ्जनं न पश्यति। दूराच्छब्दं शृणोति। सति च प्राप्तविषयत्वे दिव्यं चक्षुःश्रोत्रमिह ध्यायिनां नोपजायेत घ्राणादिवत्। यद्यप्राप्तविषयं चक्षुः, कस्मान्न सर्वमप्राप्तं पश्यति दूरं तिरस्कृतं च? कथं तावदयस्कान्तो न सर्वमप्राप्तमयः कर्षति? प्राप्तविषयत्वेऽपि चैतत् समानम्, कस्माद् न सर्वं प्राप्तं पश्यति अञ्जनं शलाकां वा? यथा च घ्राणादीनां प्राप्तो विषयो न तु सर्वः सहभूगन्धाद्यग्रहणात् एवं चक्षुषोऽपि अप्राप्तः स्याद् न तु सर्वः। मनस्तु अरूपित्वात् प्राप्तुमेव अशक्तम्। केचित् पुनः श्रोत्रं प्राप्ताप्राप्तविषयं मन्यन्ते कर्णाभ्यन्तरेऽपि शब्दश्रवणात्। शेषं तु घ्राणजिह्वाकायाख्यं 'त्रयमन्यथा' प्राप्तविषयमित्यर्थः। घ्राणं कथं प्राप्तविषयम्? निरुच्छ्वासस्य गन्धाग्रहणात्। केयं प्राप्तिर्नाम? निरन्तरोत्पत्तिः। किं पुनः परमाणवः स्पृशन्ति [2]अन्योन्यमाहोस्विन्न? न स्पृशन्तीति काश्मीरकाः। किं कारणम्? यदि तावत् सर्वात्मना स्पृशेयुः, मिश्रीभवेयुर्द्रव्याणि। अथैकदेशेन, सावयवाः प्रसज्येरन्। निरवयवाश्च परमाणवः। कथं तर्हि शब्दाभिनिष्पत्तिर्भवति? अत एव। यदि हि स्पृशेयुः हस्तो हस्तेऽभ्याहतः सज्जेत उपलश्चोपले। कथं सञ्चितं प्रत्याहतं न विशीर्यते? वायुधातुसन्धारितत्वात्। कश्चिद्धि वायुधातुर्विकिरणाय प्रवृत्तो यथा संवर्तन्याम्। कश्चित् सन्धारणाय यथा विवर्तन्यामिति। कथमिदानीं निरन्तरप्राप्त्या प्राप्तविषयं त्रयमुच्यते? तदेवैषां निरन्तरत्वं यद् मध्ये नास्ति किञ्चित्। अपि खलु **संघाताः सावयवत्वात् स्पृशन्तीत्यदोषः**। एवं च कृत्वा अयमपि ग्रन्थ उपपन्नो भवति विभाषायां 'किं नु स्पृष्टहेतुकं स्पृष्टमुत्पद्यते आहोस्विदस्पृष्टहेतुकम्' इति प्रश्नयित्वा आह–कारणं प्रति कदाचित् स्पृष्टहेतुकम् * अस्पृष्टमुत्पद्यते यदा विशीर्यते। कदाचिदस्पृष्टहेतुकं स्पृष्टं यदा चयं गच्छति। कदाचित् स्पृष्टहेतुकं स्पृष्टं यदा चयवतां चयः। कदाचिदस्पृष्टहेतुकमस्पृष्टं यथा वातायनरज इति। यदि परमाणवः स्पृशेयुरुत्तरक्षणावस्थानं स्यादिति भदन्तवसुमित्रः। न स्पृशन्ति। निरन्तरे तु स्पृष्टसंज्ञेति भदन्तः। भदन्तमतं चैष्टव्यम्। अन्यथा हि सान्तराणां परमाणूनां शून्येष्वन्तरेषु गतिः केन प्रतिबध्येत यतः सप्रतिघा इष्यन्ते। न च परमाणुभ्योऽन्ये संघाता इति। त एव ते संघाताः स्पृश्यन्ते यथा रूप्यन्ते। यदि च परमाणोर्दिग्भागभेदः कल्प्यते स्पृष्टस्यास्पृष्टस्य वा सावयवत्वप्रसङ्गः।

---

१ अभिधर्मकोशभाष्यस्यायमंशः श्री**प्रह्लादप्रधान**महोदयानां [Principal, Fakir Mohan College, Balasore, Orissa] सौजन्यादधिगतः। * एतच्चिह्नपर्यन्तोऽल्पीयानंशः श्री**वासुदेवविश्वनाथगोखले**महोदयानां [Poona] सविधेऽपि एकस्मिन् पत्रे विद्यते। **प्र०** पुस्तके **वा०** पत्रात् क्वचित् क्वचित् पाठभेदोऽस्ति। 'रूपाणि' **प्र०** पुस्तके नास्ति। २ 'अन्योन्यम्' **प्र०** पुस्तके नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नो चेत् स्पृष्टस्याप्यप्रसङ्गः।" इति वसुबन्धुविरचितेऽभिधर्मकोशभाष्ये १।४३। विस्तरेण त्वस्य व्याख्यानं यशोमित्रविरचितायां स्फुटार्थायां व्याख्यायामवलोकनीयम्।

पृ० ७४ पं० २६. **पिण्डोऽणुमात्रकः**…। "न तदेकं न चानेकं विषयः परमाणुशः। न च ते संहता यस्मात् परमाणुर्न सिध्यति ॥ ११ ॥ इति, किमुक्तं भवति? यत् तद् रूपादिकमायतनं रूपादिविज्ञप्तीनां प्रत्येकं विषयः स्यात् तदेकं वा स्याद् यथा अवयविरूपं कल्प्यते वैशेषिकैः? अनेकं वा परमाणुशः? संहता वा त एव परमाणवः? न तावदेकं विषयो भवति अवयवेभ्योऽन्यस्य अवयविरूपस्य क्वचिदप्यग्रहणात्। नाप्यनेकम्, परमाणूनां प्रत्येकमग्रहणात्। नापि ते संहता विषयीभवन्ति, यस्मात् परमाणुरेकं द्रव्यं न सिध्यति। कथं न सिध्यति? यस्मात्, षट्केन युगपद् योगात् परमाणोः षडंशता। षड्भ्यो दिग्भ्यः षड्भिः परमाणुभिर्युगपद् योगे सति परमाणोः षडंशता प्राप्नोति, एकस्य यो देशस्तत्रान्यस्यासम्भवात्। षण्णां समानदेशत्वात् पिण्डः स्यादणुमात्रकः ॥ १२ ॥ अथ य एवैकस्य परमाणोर्देशः स एव षण्णाम्, तेन सर्वेषां समानदेशत्वात् सर्वः पिण्डः परमाणुमात्रः स्यात् परस्पर(रा?)व्यतिरेकादिति न कश्चित् पिण्डो दृश्यः स्यात्।" इति वसुबन्धुविरचितायां स्ववृत्तिसहितायां विंशतिकायां विज्ञप्तिमात्रतासिद्धौ।

पृ० ७४ पं० २६,३१. **सप्रतिघत्व**…। '**सनिदर्शन**…। "अपि खलु त्रिभिः कारणैः सप्रतिघं द्रष्टव्यम्। जातितोऽपि उपचयतोऽपि अपरिकर्मकृततोऽपि। तत्र जातितः यद्(द्)न्योन्यमावृणोति आव्रियते च। तत्रोपचयतः परमाणोरूर्ध्वम्। तत्रापरिकर्मकृततो यद् न समाधिवशवर्तिरूपम्। अपि खलु प्रकोपपदस्थानतः सप्रतिघम्।"–अभिधर्मसमु० पृ० १७।

पृ० ७५ पं० ८. **गतिप्रतिबन्धाभाव**…। दृश्यतां टिपृ० ४५ पं० ३४।

पृ० ७५ पं० २३. **प्रत्येकं**…। दृश्यतां पृ० ९६ पं० ३०।

पृ० ७६ पं० १९. **रूपरसा**…। अत्र 'रूपरसादिवदन्यरूपम्' इति यथाश्रुतपाठोऽपि कथञ्चित् सङ्गच्छते।

पृ० ७७ पं० १३. **यस्मिन् भिन्ने**…। दृश्यतां पृ० ९२ टि० ७।

पृ० ७७ पं० २४. **नामजात्यादि**…। दृश्यतां टिपृ० ३० पं० २१।

पृ० ७८ पं० ६. **प्रमाण**…। "प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः"–पाणिनि० ५।२।३७।

पृ० ७८ पं० २,९,३८. **यदेतद्**…। अस्य अभिधर्मकोशभाष्यस्य यशोमित्ररचिता स्फुटार्था व्याख्या—"यदा तत्प्रकारव्यवच्छेद इति यदा नीलादिप्रकारनिमित्ताभोगः। एवं श्रोत्रादिविज्ञानमिति। य एष बहुविधः शब्द उक्तः तत्र कदाचिदेकेन द्रव्येण श्रोत्रविज्ञानमुत्पद्यते यदा तत्प्रकारव्यवच्छेदो भवति कदाचिद्बहुभिर्यदा न व्यवच्छेदः। तद्यथा तूर्यशब्दसमूहमनेका-

---

१ "ये पुनरिमे अष्टादश धातव उक्तास्तेषां कति सनिदर्शनाः कति अनिदर्शनाः? **सनिदर्शन एकोऽत्र रूपम्**। स हि शक्यते निदर्शयितुम् 'इदमिहामुत्र' इति। उक्तं भवति अनिदर्शनाः शेषा इति। कति सप्रतिघाः कति अप्रतिघाः? **सप्रतिघा दश रूपिणः**। य एते रूपस्कन्धसंगृहीता दश धातव उक्तास्ते सप्रतिघाः। प्रतिघो नाम प्रतिघातः। स च त्रिविधः आवरणविषयालम्बनप्रतिघाततः। तत्र आवरणप्रतिघातः स्वदेशे परस्योत्पत्तिप्रतिबन्धः, यथा हस्तो हस्तेन प्रतिहन्यते उपले वा, उपलोऽपि तयोः। विषयप्रतिघातश्चक्षुरादीनां विषयिणां रूपादिषु विषयेषु। यथोक्तं प्रज्ञप्तौ–अस्ति चक्षुर्जले प्रतिहन्यते न स्थले, यथा मत्स्यानाम्। अस्ति स्थले न जले, प्रायेण मनुष्याणाम्। अस्त्युभयत्र शिशुमारमण्डूकपिशाचकैवर्तादीनाम्। अस्ति नोभयत्र, एतानाकारान् स्थापयित्वा। अस्ति चक्षुर्यद्रात्रौ प्रतिहन्यते, न दिवा, तद्यथा तितीलोलूकादीनाम्। दिवा, न रात्रौ, प्रायेण मनुष्याणाम्। रात्रौ दिवा च, श्वशृगालतुरगद्वीपिमार्जारादीनाम्। नोभयत्र, एतानाकारान् स्थापयित्वा। इत्ययं विषयप्रतिघातः। आलम्बनप्रतिघातश्चित्तचैत्तानां स्वेष्वालम्बनेषु। कः पुनर्विषयालम्बनयोर्विशेषः? यस्मिन् यस्य कारित्रं स तस्य विषयः, यच्चित्तचैत्तैर्गृह्यते तदालम्बनम्। कः पुनः [आलम्बनप्रतिघातः]? स्वस्मिन् विषये प्रवर्तमानमालम्बने वा प्रतिहन्यत इत्युच्यते तस्मात् परेणाप्रवृत्तेः। निपातो वात्र प्रतिघातः या स्वविषये प्रवृत्तिः। तदिहावरणप्रतिघातेन दशानां सप्रतिघत्वं वेदितव्यम्, अन्योन्यावरणात्।……'यत्रोत्पित्सोर्मनसः प्रतिघातः शक्यते परैः कर्तुम्। तत् सप्रतिघं ज्ञेयं विपर्ययादप्रतिघमिष्टम् ॥' इति भदन्तकुमारलातः। उक्ताः सप्रतिघा अप्रतिघाश्च। एषामष्टादशधातूनां कति कुशलाः कति अकुशलाः कति अव्याकृताः? **अव्याकृता अष्टौ**। कतमे अष्टौ? य एते सप्रतिघा दशोक्ताः **त एवारूपशब्दकाः**। पञ्चेन्द्रियाणि गन्धरसस्प्रष्टव्या धातवश्च, एतेऽष्टौ कुशलाकुशलभावेनाव्याकरणादव्याकृताः। विपाकं प्रति अव्याकरणादित्यपरे। एवमनास्रवेऽपि प्रसङ्गः।" इति वसुबन्धुविरचिते **अभिधर्मकोशभाष्ये** १।२९ [श्री**प्रह्लादप्रधान**महोदयानां] Principal, Fakir Mohan College, Balasore, Orissa [सौजन्यादधिगते हस्तलिखिते]।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारतारमन्दतादिशब्दरूपं शृण्वतः। एवं घ्राणजिह्वाविज्ञाने अपि स्वविषये योज्ये । कायविज्ञानं तु परं पञ्चभिरिति। कथम्? कदाचिदेकेन द्रव्येणोत्पद्यते यदा तत्प्रकारव्यवच्छेदो भवति । कदाचिद् द्वाभ्यां यावत्पञ्चभिर्यदा न व्यवच्छेदः। एकेन च श्लक्ष्णत्वादिनेति । किमत्र कारणं? कर्कशत्वादीनामन्यभूतचतुष्काश्रितत्वात् । ननु चैवम् इति विस्तरः । यथा चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकायविज्ञानालम्बनान्यभिसमस्य मनोविज्ञानं गृह्णातीति कृत्वा सामान्यलक्षणविषयं तद् व्यवस्थाप्यते तथा नीलपीतलोहितावदातालम्बनानां चतुर्णां चक्षुर्विज्ञानानां तानि चत्वारि बहुतराणि चालम्बनान्यभिसमस्य चक्षुर्विज्ञानमेकं गृह्णातीति सामान्यलक्षणविषयं तत् प्राप्नोति, रूपायतनसामान्यलक्षणमस्यालम्बनमिति कृत्वा। तथा श्रोत्रघ्राणजिह्वाकायविज्ञानान्यपि स्वविषयेषु योज्यानि । आयतनस्वलक्षणं प्रतीति । स्वं लक्षणं स्वलक्षणम्। आयतनानां स्वलक्षणमायतनस्वलक्षणम् चक्षुर्विज्ञानविज्ञेयत्वादि रूपायतनत्वादि वा । तत् प्रति एते पञ्च विज्ञानकायाः स्वलक्षणविषया इष्यन्ते प्रवचने। न द्रव्यस्वलक्षणं प्रति स्वलक्षणविषया इष्यन्त इति प्रकृतम् । द्रव्याणां नीलादिकानां स्वलक्षणं नीलाद्याकारचक्षुर्विज्ञानादिविज्ञेयत्वं नीलाकारादि वा । न तत्प्रत्येते पञ्च विज्ञानकायाः स्वलक्षणविषया इष्यन्त इत्यदोषः । युगपद्विषयसंप्राप्ताविति । कायजिह्वेन्द्रिययोर्युगपद्विषयसंप्राप्तिः संभवति । द्वयोश्च विज्ञानयोर्युगपत्प्रवृत्तिर्न संभवति। अतः पृच्छति कतरद्विज्ञानं पूर्वमुत्पद्यत इति । यस्य विषयः पटीयान्। यदि कायेन्द्रियस्य विषयः पटुतरः कायविज्ञानं पूर्वमुत्पद्यते। अथ जिह्वेन्द्रियस्य विषयः पटीयाञ्जिह्वाविज्ञानं पूर्वमुत्पद्यते । समे प्राप्ते तु विषये तुल्य इत्यर्थः। जिह्वाविज्ञानं पूर्वमुत्पद्यते, कस्मात्? भोक्तुकामतावर्जितत्वात् संततेः, भोजनेच्छाप्रवणत्वादास्मभावस्येत्यर्थः। पूर्वं जिह्वाविज्ञानमुत्पद्यते इति वचनात् पश्चात् कायविज्ञानमुत्पत्स्यत इत्यर्थादुक्तं भवति तेनात्र विचार्यते। किं योऽसौ जिह्वाविषयक्षणेन सह प्राप्तः कायविषयक्षण आसीत् तत्र तत्कायविज्ञानमुत्पद्यते आहोस्विदन्यस्मिन्कायविज्ञानविषयक्षण इति। अन्यस्मिन्नित्याह। कथमालम्बननियमो न भिद्यते । नैष दोषः। यत्तद्विषयालम्बनं विज्ञानं तदप्रसंख्यानिरोधनिरुद्धम् । अन्यत्तु तत्सदृशं कायविज्ञानमुत्पद्यत इति। अतः पश्चात् तदुत्पद्यत इत्युच्यते जातिसामान्येनैकत्वोपचारात्।"

पृ० ७८ पं० १६-२७. रूपं द्विधा··· किलास्ति। अस्य व्याख्या यशोमित्रविरचितस्फुटार्थावृत्तितोऽवगन्तव्या।

पृ० ७९ पं० ३. बुद्धवचनं···। यद्यपीदं वसुबन्धुवचनं तथापि तस्य बौद्धागमानुसारित्वाभिप्रायेण बुद्धवचनत्वेनोल्लेखोऽत्र विहित इति भाति।

पृ० ७९ पं० १७. ज्ञानतेत्यत्र। अत्र 'ज्ञानेत्यत्र' इति य० प्रतिपाठोऽपि साधुः।

पृ० ८१ पं० ५. संवृतिसत्सामान्या···। दृश्यतां पृ० ८२ पं० २१।

पृ० ८१ पं० १०. भेदाभेदविकल्पनात्। (भेदोऽभेदविकल्पनात् ??)।

पृ० ८२ पं० २. द्वयं प्रतीत्य···। "कतमो च भिक्खवे दुक्खस्स समुदयो? चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तिण्णं संगतिफासो। फासपच्चया वेदना। वेदनापच्चया तन्हा। अयं खो भिक्खवो दुक्खस्स समुदयो।··· कतमो च भिक्खवे दुक्खस्स अत्थंगमो? चक्खुं पटिच्च······सोतं च पटिच्च सद्दे च···घानं च पटिच्च गन्धे च···जिव्हं च पटिच्च रसे च···कायञ्च पटिच्च फोट्ठब्बे च······मनञ्च पटिच्च धम्मे च···।" इति संयुत्तनिकाये निदानवग्गे २२।४३।१-२।

पृ० ८२ पं० १६. विजानासि······। दृश्यतां पृ० ७३ पं० १३, टिप्पृ० ४४ पं० ३।

पृ० ८२ पं० १९. जात्याख्यायां···[पा० १।२।९]। अत्र 'पा० १।२।५८' इति पठनीयम् । अस्य व्याख्या- "एकोऽप्यर्थो वा बहुवद् भवति। ब्राह्मणाः पूज्याः ब्राह्मणः पूज्यः।"-पा० सिद्धान्तकौ०। "आकृत्यधिकरणन्यायेन घटादिशब्दानां जातिवाचकत्वाज्जातेश्चैकत्वादेकवचनमेव स्यादित्यारम्भः । जातिशब्दे एकत्वे बहुवचनं वा स्यादित्यक्षरार्थः।"-बालमनोरमा।

पृ० ८३ पं० ३. त्राता। अत्र 'त्राता सर्ववादभेदयाथार्थ्यपरिपालनात्' इति पठितव्यम्।

पृ० ८३ पं० १०. अतीन्द्रियत्वाच्चाक्षुषश्च···। अत्र 'अतीन्द्रियश्चाक्षुषश्च' इति पाठः स्यात्।

पृ० ८४ पं० ५. भद्दं···। "भद्दं मिच्छादंसणसमूहमइयस्स अमयसारस्स । जिणवयणस्स भगवओ संविग्गसुहाहिगम्मस्स ॥ [सन्मति० ३।६९]। भद्रं कल्याणं जिनवचनस्य अस्तु इति सम्बन्धः । मिथ्यादर्शनसमूहमयस्य···। न विद्यते मृतं मरणं यस्मिन् असौ अमृतो मोक्षः, तं सारयति गमयति प्रापयतीति वा, तस्य,···। 'अमयसायस्स' इति वा पाठे अमृतवत् स्वाद्यते इति अमृतस्वादम् अमृततुल्यमिति यावत्। तथा रागाद्यशेषशत्रुजेतृपुरुषविशेषैरुच्यत इति जिनवचनम्, तस्य···।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवतः···। संविग्नैः 'इदमेव जिनवचनं तत्त्वम्' इत्येवं सुखेनावगम्यते यत् तत् संविग्नसुखाभि(धि?)गम्यम्।···एवंविध-गुणाध्यासितस्य जिनवचनस्य सामायिकादिबिन्दुसारपर्यन्तश्रुताम्भोधेः कल्याणमस्तु।"—सन्मतिटी०।

पृ० ८४ पं० ६. द्रव्यस्य···। दृश्यतां टिपृ० १४ पं० १।

पृ० ८५ पं० ५. भेद···। दृश्यतां टिपृ० ४१ पं० १।

पृ० ८५ पं० १९. विरोध-सङ्करा···। शास्त्रवार्तासमु० ७।३४-३८। प्रमाणसं० पृ० १०३ पं० ४। तत्त्वार्थश्लोकवा० पृ० ४३५। अष्टसह० पृ० २२७। प्रमेयक० पृ० ५२६। न्यायकुमु० पृ० ३६०। सन्मतिटी० पृ० ४५२। स्याद्वादर० पृ० ७३८। प्रमेयरत्नमा० ४।१। प्रमाणमी० १।१।३२। स्याद्वादमं० श्लो० २४।—इत्यादिग्रन्थेभ्यो विरोधादिदोषस्वरूपमवगन्तव्यम्, तत्खण्डनमपि तेषु वर्तते। पूर्वोक्तग्रन्थेषु एते दोषाः क्वचित् संख्यानिर्देशं विना निर्दिष्टाः, क्वचित्तु सप्त क्वचिच्च अष्टौ परिगणिताः। "तदुक्तम्—'संशयविरोधवैयधिकरण्यसङ्करमथोभयं दोषः। अनवस्थाव्यतिकरमपि जैनमते सप्त दोषाः स्युः॥ १॥' इति।"—स्याद्वादर० पृ० ७३८। एतेषु कतिपये दोषा ब्रह्मसूत्रशाङ्करभा० २।२।३३। तत्त्वसं० का० १७२२-१७३०। हेतुबिन्दुटी०।—इत्यादिग्रन्थेषु आपादिता दृश्यन्ते।

पृ० ८५ पं० २१. परस्पर···। श्लोकार्धमेतदिति भाति।

पृ० ८५ पं० २२-२५. सर्वं···। अत्र यथाक्रमं साङ्ख्य-बौद्ध-वैशेषिकमतानि वर्णितानि।

पृ० ८६ पं० ९-१०. अनेकार्थं···। दृश्यतां पृ० ८९ पं० २७, पृ० ९१ पं० ९। प्रमाणवार्तिकालं० ३।११३ पृ० २७९, प्रमाणवा० मनो० २।१९४।

पृ० ८६ पं० २६. अन्यापृक्तत्वा···। (अन्यापृथक्त्वाद्···?)।

पृ० ८७ पं० १२. आरोटना···। (आरोहणा···?)।

पृ० ८७ पं० १४-१५. अचाक्षुष···। दृश्यतां पृ० ५५ पं० ११-१२, टिपृ० २० पं० १५-१६।

पृ० ८८ पं० १६. भेद···। अत्र 'भेद'शब्दस्य वस्तुविशेष इत्यर्थो भाति।

पृ० ८८ पं० ३२. ह्यनुमानम्। अत्र 'अनुमानम्' इति पठितव्यम्, दृश्यतां प्रमाणवार्तिकालं० पृ० १६९। तत्त्वार्थराजवा० १।१२ पृ० ५६ पं० ३०।

पृ० ८९ पं० ११. अदृष्टार्थम्, प्रत्यक्षदृष्टार्थ···। अत्र 'अदृष्टार्थं प्रत्यक्षम्, दृष्टार्थ···' इति प्रतिस्थः पाठ एव समीचीनः।

पृ० ८९ पं० १३. तद्विस्तरोऽपरो···। (तद्विस्तरपरोऽपरो?)। अत्र अपरो ग्रन्थः प्रमाणसमुच्चयादिर्ज्ञेयः।

पृ० ८९ पं० १८. तादृशः। षष्ठ्यन्तमेतत्।

पृ० ९० पं० २,१२. आरात्परा···। दृश्यतां पृ० ८७ पं० १।

पृ० ९० पं० ३. सामान्यानात्मकत्वात्। अत्र 'सामान्यात्मकत्वात्' इति पठनीयम्।

पृ० ९० पं० १३. °मननुमानत्व···। अत्र '···मनुमानत्व···' इति पाठः सङ्गत एव।

पृ० ९० पं० २० ते विषयो···। अत्र 'स विषयो' इति भा० प्रतिपाठः समीचीन एव।

पृ० ९१ पं० ३. स्वाभासां···। "आत्मधर्मोपचारो हि विविधो यः प्रवर्तते। विज्ञानपरिणामेऽसौ परिणामः स च त्रिधा॥ १॥······कथमेतद् गम्यते—विना बाह्येनार्थेन विज्ञानमेवार्थाकारमुत्पद्यत इति? बाह्यो ह्यर्थः स्वाभासविज्ञानजनकत्वेन विज्ञानस्यालम्बनप्रत्यय इष्यते; न कारणत्वमात्रेण, समनन्तरादिप्रत्ययादिविशेषाप्रसङ्गात्। सञ्चितालम्बनाश्च पञ्च विज्ञानकायाः, तदाकारत्वात्। न सञ्चितमवयवसंहतिमात्रादन्यद् विद्यते, तदवयवानपोह्य सञ्चिताकारविज्ञानाभावात्। तस्माद् विनैव बाह्येनार्थेन विज्ञानं सञ्चिताकारमुत्पद्यते। न च परमाणव एव सञ्चितास्तस्य आलम्बनम्, परमाणूनामतदाकारत्वात्। न ह्यसञ्चितावस्थातः सञ्चितावस्थायां परमाणूनां कश्चिदात्मातिशयः। तस्मादसञ्चितवत् सञ्चिता अपि परमाणवो नैवालम्बनम्।···एवं बाह्यार्थाभावाद् विज्ञानमेवार्थाकारमुत्पद्यते।"—इति वसुबन्धुरचितत्रिंशिकाविज्ञप्तिकारिकाणां स्थिरमतिविरचिते भाष्ये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ९१ पं० ३,१७. **स्वाभासां हि विज्ञप्तिं**···। अत्र 'स्वाभासं हि' इति य० प्रतिपाठानुसरणे तु **स्वाभासं हि विज्ञानं**···इति पाठो मूले [पं० ३] युक्तः ।

पृ० ९१ पं० १५. **वन्ध्यापुत्रपुत्रत्वा**···। (वन्ध्यापुत्रत्वा··· ?) ।

पृ० ९१ पं० २५–२६. **स्ववचन**···। दृश्यतां पृ० ६२ पं० ४ ।

पृ० ९२ पं० २५. चत्वार्यपि···। अस्य व्याख्या–"अत्रार्थे द्वे अपि सत्ये इति सत्यप्रसङ्गेनेदमुच्यते । घटाम्बुवदिति दृष्टान्तद्वयोपन्यासो भेदद्वयोपप्रदर्शनार्थः । उपक्रमभेदिनश्च घटादयः । बुद्धिभेदिनश्च जलादयः, जलादिषूपक्रमेण रसाद्यपकर्षणानुपपत्तेः । अथवा द्विविधा संवृतिः–संवृत्यन्तरव्यपाश्रया द्रव्यमात्रव्यपाश्रया च । तत्र यासौ संवृत्यन्तरव्यपाश्रया तस्यां भेदोऽपि सम्भवति अन्यापोहोऽपि । या त्वसौ द्रव्यमात्रव्यपाश्रया तस्यामन्यापोह एव सम्भवति, न भेदः । न हि परमाणोरष्टद्रव्यकस्य अवयवविश्लेषः शक्यते कर्तुमिति । संवृतिसदिति संव्यवहारेण सत् । परमार्थसदिति परमार्थेन सत् स्वलक्षणेन सदित्यर्थः । एवं वेदनादयोऽपि द्रष्टव्या इति वेदना-चेतना-संज्ञादयोऽपि द्रव्यसन्त एव द्रष्टव्याः । कथम् ? वेदनादीनां धर्माणाम(धर्मान ?)पोह्य बुद्ध्या वेदनास्वभावे बुद्धिर्भवतीति द्रव्यसती वेदना । एवं संज्ञा-चेतनादयोऽपि योज्याः । घटश्चाम्बु चास्तीति ब्रुवन्तः सत्यमेवाहुः, न मृषेति संवृतिसत्यस्य वचने प्रयोजनं दर्शयति । 'द्वे सत्ये समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना । लोकसंवृतिसत्यं च सत्यं च परमार्थतः ॥ १ ॥'[1] तथा परमार्थसत्यमिति परमस्य ज्ञानस्यार्थः परमार्थः, परमार्थश्च सत्यं च तत् परमार्थसत्यम् । यथान्येन ज्ञानेन गृह्यते तथा संवृतिसत्यम्, संवृत्या संव्यवहारेण ज्ञानेन वा क्लिष्टेन अक्लिष्टेन वा गृह्यत इति संवृतिसत्यम् । त्रिविधं हि योगाचाराणां सत्–परमार्थ[सत्] संवृतिसद् द्रव्यसच्च, द्रव्यतः स्वलक्षणतः सद् द्रव्यसदिति ।"–अभिधर्मकोशस्फुटार्था पृ० ५७४ ।

पृ० ९२ पं० ३०. **चेति**······**संवृतिसत्** । अत्र '**चास्तीति**···**संवृतिसत्यम्**' इति पठनीयम् ।

पृ० ९४ पं० ७. **विजानाति**···। दृश्यतां टिप्पृ० ४४ पं० २१ ।

पृ० ९५ पं० २–३. **कारकाद**···**कान्तवतः** । अयं पाठः प्रमादादायात इति परित्याज्यः ।

पृ० ९५ पं० १५. **हेतुप्रत्येयस्य** । (हेतुप्रत्ययस्य ??) ।

पृ० ९७ पं० ४, १७. **स्वनिर्भास**···। दृश्यतां टिप्पृ० ४८ पं० ३० ।

पृ० ९७ पं० ८. **प्रत्यक्षमितत्वात्** । प्रत्यक्षेण अवगतत्वादित्यर्थः ।

पृ० ९७ पं० १०. **अभ्युपगम्य** । अत्र **अभ्युपगमस्य** इति भा० प्रतिपाठः समीचीनो भाति ।

पृ० ९७ पं० २२. **प्रत्यक्षत्वाभावात्** । अत्र '**प्रत्यक्षाभावात्**' इति भा० प्रत्यनुसारी पाठोऽपि रम्यः ।

पृ० ९९ पं० ६, २७. **प्रत्येकं**···। दृश्यतां पृ० ९६ पं० ३० ।

पृ० १०४ पं० ६. **आकाश**···। "अनास्रवं मार्गसत्यं त्रिविधं चाप्यसंस्कृतम् । आकाशं द्वौ निरोधौ च तत्राकाशमनावृतिः ॥ प्रतिसङ्ख्यानिरोधो यो विसंयोगः पृथक् पृथक् । उत्पादात्यन्तविघ्नोऽन्यो निरोधोऽप्रतिसङ्ख्यया ॥ ते पुनः संस्कृता धर्मा रूपादिस्कन्धपञ्चकम् । त एवाध्वा कथावस्तु सनिःसाराः सवस्तुकाः ॥"–अभिधर्मको० १।५–७ ।

---

१ "अनास्रवाः कतमे ? **अनास्रवा मार्गसत्यं त्रिविधं चाप्यसंस्कृतम्** । कतमत् त्रिविधम् ? **आकाशं द्वौ निरोधौ च** । कतमौ द्वौ ? प्रतिसंख्यानिरोधोऽप्रतिसंख्यानिरोधश्चेति । एतदाकाशादि त्रिविधमसंस्कृतं मार्गसत्यं चानास्रवा धर्माः । किं कारणम् ? न हि तेष्वास्रवा अनुशेरते इति । यदेतत् त्रिविधमसंस्कृतमुद्दिष्टम् **तत्राकाशमनावृतिः** । अनावरणस्वभावमाकाशं यत्र रूपस्य गतिः । **प्रतिसंख्यानिरोधो यो विसंयोगः**, यः सास्रवैर्धर्मैर्विसंयोगः स प्रतिसंख्यानिरोधः । दुःखादीनामार्यसत्यानां प्रतिसंख्यानं प्रतिसंख्या प्रज्ञाविशेषः, तेन प्राप्यो निरोधः प्रतिसंख्यानिरोधः, मध्यपदलोपात्, गोरथवत् । किं पुनरेक एव सर्वेषां सास्रवाणां धर्माणां प्रतिसंख्यानिरोधः ? नेत्याह । किं तर्हि ? **पृथक् पृथक्** । यावन्ति संयोगद्रव्याणि तावन्ति विसंयोगद्रव्याणि । अन्यथा हि दुःखदर्शनहेयक्लेशनिरोधसाक्षात्करणात् सर्वक्लेशनिरोधसाक्षात्क्रिया प्रसज्येत । सति चैवं शेषप्रतिपक्षभावनावैयर्थ्यं स्यात् । यत् तर्ह्युक्तम् 'असभागो निरोधः' इति अस्य कोऽर्थः ? नास्य कश्चित् सभागहेतुरस्ति नासौ कस्यचिदित्ययमस्य वाक्यस्यार्थः, न तु नास्य कश्चित् सभागोऽस्तीति । उक्तः प्रतिसंख्यानिरोधः । **उत्पादात्यन्तविघ्नो-**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १०४ पं० ११. **अनभिलाप्यतथावस्थानां** । अत्र 'अनभिलाप्यतयावश्यं' इति भा०प्रत्यनुसारी पाठः समीचीनो भाति ।

पृ० १०५ पं० १४. **दोषाकाङ्क्षमेव** । (दोषाक्रान्तमेव ?) ।

पृ० १०५ पं० २२. **द्यौः क्षमा**······। "तथा च यदैकत्वं काष्ठामनुप्राप्तं तदा सर्वत्र तदेव प्रकार इत्याह—[१]द्यौः क्षमा वायुरादित्यः सागराः सरितो दिशः। अन्तःकरणतत्त्वस्य भागा बहिरव(रिव ?) स्थिताः ॥ [वाक्यप० ३।७।४१] अथवा आस्तां कतिपयवस्तुविषय एकत्वानेकत्वविचारः । चरमे द्यौश्च आकाशं पृथिवी च द्यावा-पृथिव्यौ महत्यौ महाभूतसंज्ञके जल-द्युती तदन्तरे च वायुरपि तृतीयः। यदादित्यलक्षणमपि सकलतेजसां प्रधानं दिव्यतेजः, आपः सरितः समुद्रः गौर्त्रीवितततरा (?) सर्वाण्येव एतानि महाभूतानि सकलजगज्जीवितभूतानि, दिशो वा लोकव्यवहारनियमनिमित्तभूताः, कालश्च वक्ष्यमाणः। तदेतत् **सर्वमन्तःकरणतत्त्वस्ये**ति। अन्तःकरणत्वेन अ(आ ?)न्तररूपतया प्रतिभासमानं यत् तस्यैवैते भागाः प्रतिबिम्बकाः आभासाः बहिरव(रिव ?)स्थिताः। परमार्थे तु कीदृशोऽन्तर्बहिर्भावः, एकमेव सच्चिन्मयं परं शब्दब्रह्म यथा तथाऽवस्थितमिति कारिकार्थः।"–वाक्यपदीयहेलाराजवृ० पृ० २०० ।

पृ० १०६ पं० २,१५. **विज्ञान**···। "रूपधातुररूपधातुः कामधातुरिति त्रैधातुकं जगत्"–न्यायवा० ता० १।१।१४। "महायाने त्रैधातुकं विज्ञप्तिमात्रं व्यवस्थाप्यते"–विंशतिकाविज्ञप्तिमात्रतासिद्धिवृ० पृ० १। "विज्ञप्तिमात्रमेवेदं त्रैधातुकम्"–तत्त्वसं० पं० पृ० ५५०। विस्तरेण धातुत्रयनिरूपणम् अभिधर्मकोशस्य तृतीये कोशस्थाने विलोकनीयम् ।

पृ० १०७ पं० ४,२४. **श्रोत्रादि**···। दृश्यतां टिपृ० ३२ पं० २ ।

पृ० १०८ पं० ८. **नपुंसक**···। दृश्यतां पृ० २४२ टि० ४ ।

पृ० १०८ पं० ४–५. **तत्तु···प्रत्यक्षम्** । एतत्स्थाने '**न तु त्वन्मतवत्**' इत्येतावन्मात्रमपि स्यात् ।

पृ० १०८ पं० १५ **तत्तु···प्रत्यक्षम्,**······। अत्र '**न तु त्वन्मतवत्,** न त्वेवं लक्षणं प्रत्यक्षं त्वन्मत इव त्वन्मतवत्' इत्येवमपि पाठो भवेत् । दृश्यतां टिपृ० ५० पं० १७ ।

ऽन्यो निरोधोऽप्रतिसंख्यया । अनागतानां धर्माणामुत्पादस्यात्यन्तविघ्नभूतो विसंयोगाख्योऽन्यो निरोधः सोऽप्रतिसंख्यानिरोधः। न ह्यसौ प्रतिसंख्यया लभ्यते । किं तर्हि ? प्रत्ययवैकल्यात्। यथैकरूपव्यासक्तचक्षुर्मनसो यानि रूपाणि शब्दगन्धरसस्प्रष्टव्यानि च अत्ययन्ते तदालम्बनैः पञ्चभिर्विज्ञानकायैर्न शक्यं पुनरुत्पत्तुम् । न हि ते शक्ता अतीतं विषयमालम्बयितुमिति । अतस्तेषामप्रतिसंख्यानिरोधः प्रत्ययवैकल्यात् प्राप्यते । चतुष्कोटिकं च भवति—सन्ति ते धर्मा येषां प्रतिसंख्यानिरोध एव लभ्यते, तद्यथा – अतीतप्रत्युत्पन्नोत्पत्तिधर्माणां सास्रवाणाम् । सन्ति येषामप्रतिसंख्यानिरोध एव, तद्यथा अनुत्पत्तिधर्माणामनास्रवसंस्कृतानाम् । सन्ति येषामुभयम्, तद्यथा – सास्रवाणामनुत्पत्तिधर्माणाम् । सन्ति येषां नोभयम्, तद्यथा – अतीतप्रत्युत्पन्नोत्पत्तिधर्माणामनास्रवाणामिति । उक्तं त्रिविधमसंस्कृतम् । यत्तूक्तं 'संस्कृता मार्गवर्जिताः सास्रवाः' इति कतमे ते संस्कृताः ? **ते पुनः संस्कृता धर्मा रूपादिस्कन्धपञ्चकम्** । रूपस्कन्धो वेदनास्कन्धः संज्ञास्कन्धः संस्कारस्कन्धो विज्ञानस्कन्धश्चेत्येते संस्कृता धर्माः, समेत्य सम्भूय प्रत्ययैः कृता इति संस्कृताः । न ह्येकप्रत्ययजनितं किञ्चिदस्तीति । तज्जातीयत्वादनागतेष्वविरोधो दुग्धेन्धनवत् । **त एवाध्वा कथावस्तु सनिःसाराः सवस्तुकाः** । त एव संस्कृता गतगच्छद्गमिष्यद्भावादध्वानः, अद्यन्तेऽनित्यतयेति वा । कथा वाक्यम्, तस्या वस्तु नाम, सार्थकवस्तुग्रहणात्तु संस्कृतं कथावस्तूच्यते, अन्यथा हि **प्रकरण**ग्रन्थो विरुध्येत – 'कथावस्तूनि अष्टादशभिर्धातुभिः संगृहीतानि' । निःसरणं निःसारः सर्वस्य संस्कृतस्य निर्वाणम्, तदेषामस्तीति सनिःसाराः। सहेतुकत्वात् सवस्तुकाः। हेतुवचनः किलार्थ(त्र?) वस्तुशब्द इति **वैभाषिकाः**। इत्येते संस्कृतपर्यायाः।" इति वसुबन्धुविरचिते**ऽभिधर्मकोशभाष्ये** १।५–७। हस्तलिखितोऽयमभिधर्मकोशभाष्यांशो विद्वद्वरश्री**प्रह्लादप्रधान**महोदयैः [Principal, Fakir Mohan College, Balasore, Orissa] सौजन्यात् प्रदत्तः ।

१ "यथाह भर्तृहरिः – 'द्यौः क्षमा वायुरादित्यः···बहिरिव स्थिताः' इति ।" इत्येवं महायानसूत्रालङ्कारटीकायामुद्धृतेयं कारिका **अस्वभावेन** । दृश्यताम् Tibetan citations of Bhartrihari's verses and the problem of his date by Hajime Nakamura, Professor, University of Tokyo, Japan, p. 122, 135. published in the *Studies in Indology and Buddhology*, Presented in Honour of Professor S. Yamaguchi, Kyoto: Hozokan, 1955, Japan. अत्र च अस्वभावस्य समयः 450–530 A. D. अथवा 470–550 A. D. इति सम्भावितः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १०९ पं० ५. **न परमार्थसत्समुदायः** । परमार्थसन् समुदायो नैन्द्रिय इति भावः।

पृ० १०९ पं० २६. **व्यपदेश्या**···। अयं पाठः संगत एव। तथा च पृ० १०९ इत्यत्र ११ टिप्पणं नादेयम्।

पृ० ११० पं० १. **आत्मेन्द्रिय**···। दृश्यतां टिपृ० ३२ पं० ३५।

पृ० १११ पं० ६. **गुणग्रहणेन** । (रूपग्रहणेन??)।

पृ० १११ पं० १२. **प्रागुक्ता**···। दृश्यतां पृ० ६५ पं० १।

पृ० ११२ पं० ४. **तत्रोक्तः, आज्ञानिकवादः** । इह '**तत्रोक्तः, तेष्वाज्ञानिकवादः**' इति पाठः समञ्जसः। **को ह वैतद् वेद**······। दृश्यतां पृ० ११८ पं० १२।

पृ० ११२ पं० १०–११. **भूयस्त्वाद्**···**विशेषात्**। दृश्यतां पृ० ४८० पं० २५–२८।

पृ० ११३ पं० ६, २६. **निर्णयावगमा**···। अत्र '**निर्णयानामवगमा**···' इत्यपि भवेत् पाठः। दृश्यतां पृ० ११७ पं० १२।

पृ० ११३ पं० २०. **अब्राह्मणवत्**···। दृश्यतां पृ० २७९ पं० ६। **न चाज्ञान**···। दृश्यतां पृ० ११६ पं० ३।

पृ० ११३ पं० २३, २४. **विशिष्य**···। अत्र '**विशेष्य**···' इति शोभनम्।

पृ० ११३ पं० २८. **अबुध वगमने** । अत्र '**बुध अवगमने**' इति पठितव्यम्।

पृ० ११४ पं० २. **अस्त्यर्थः**······। "सर्वशब्दानामपरामृष्टाकारविशेषमर्थमात्रं वाच्यमिति केचिदाहुः। एतत् सर्वशब्दानां प्रत्याय्यलक्षणम्, प्रत्याय्यस्य वाच्यस्य लक्षणं बोद्धव्यम्। केन तुल्यमेतत् स्यादित्याह–अपूर्वदेवता इत्यादि। अपूर्वदेवतादिपदेषु हि नाकारप्रथनम्। यत्तु गवादिपदेषु आकारप्रथनं तद् नान्तरीयकतया बोद्धव्यम्। अन्यथा अपूर्वशब्दाद् देवताशब्दात् स्वर्गशब्दादश्वगवादिशब्दवदाकारादिप्रथनं स्यात्। यतश्च तेभ्यो नास्त्याकारादिप्रथनमतोऽर्थमात्रमेव तैः प्रत्याय्यत इति युक्तम्।"–वाक्यपदीयपुण्यराजवृ० २।१२०। श्लोकोऽयं तत्त्वसंग्रहेऽप्युद्धृतो व्याख्यातश्च तस्य पञ्जिकायां पृ० २८३। तन्त्रवार्तिकेऽप्युद्धृतः १।३।९।

पृ० ११४ पं० ५. **द्रव्यशब्दो द्रुगति**···। अत्र '**द्रव्यशब्दो द्रोरवयवे, द्रुगति**···' इति पाठः शोभनः।

पृ० ११४ पं० १३. **प्रतिपत्तव्यम्। एतस्मिन्नेव** । अत्र 'प्रतिपत्तव्यम्। अस्मिन्नेव' इत्यपि भवेत् पाठः।

पृ० ११४ पं० १६. **अर्थैकत्वा**···। "अथ प्रश्लिष्टपठितेषु यजुःषु कथमवगम्येत 'इयदेकं यजुः' इति? यावता पदसमूहेन इज्यते तावान् पदसमूह एकं यजुः। कियता चेज्यते? यावता क्रियाया उपकारः प्रकाश्यते तावद् वक्तव्यत्वाद् वाक्यमित्युच्यते। तेनाभिधीयते–अर्थैकत्वादेकं वाक्यमिति। एतस्माचेत् कारणादेकवाक्यता भवति तस्मादेकार्थः पदसमूहो वाक्यम्, यदि च विभज्यमानं साकाङ्क्षं पदं भवति। किमुदाहरणम्? 'देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे' [तै० सं० १।१।४] इति।"—मीमांसासूत्रशाबरभा० २।१।४६। अत्र आक्षेपपरिहारादिकं **शाबरभाष्यात् तन्त्रवार्तिकाच्च** विज्ञातव्यम्।

पृ० ११४ पं० १८. **आख्यात**···। दृश्यतां पृ० ४४८ टि० २।

पृ० ११४ पं० २३. **लौकिकसम**···। अस्यार्थः सिद्धसेनगण्यादिविरचितव्याख्याभ्योऽवगन्तव्यः।

पृ० ११५ पं० ५. [भगवतीसू० १२।३।४६७]। अत्र '१२।३।४६७' इत्यस्य स्थाने '१२।१०।४६८' इति पठनीयम्। सम्प्रति तु "आया भंते! नाणे अन्नाणे? गोयमा! आया सिय नाणे सिय अन्नाणे, नाणे पुण नियमं आया।" इति पाठो भगवतीसूत्रे दृश्यते।

---

१ अस्य व्याख्या–"अथात्मन एव स्वरूपनिरूपणायाह–**आया भंते नाणे** इत्यादि, आत्मा ज्ञानम्, योऽयमात्मा असौ ज्ञानम्, न तयोर्भेदः, अथात्मनोऽन्यद् ज्ञानमिति प्रश्नः। उत्तरं तु–आत्मा स्याद् ज्ञानम्, सम्यक्त्वे सति मत्यादिज्ञानस्वभावत्वात् तस्य। स्यादज्ञानम्, मिथ्यात्वे सति तस्य मत्यज्ञानादिस्वभावत्वात्। ज्ञानं पुनर्नियमादात्मा, आत्मधर्मत्वाद् ज्ञानस्य। न च सर्वथा धर्मो धर्मिणो भिद्यते, सर्वथा भेदे हि विप्रकृष्टगुणिनो गुणमात्रोपलब्धौ प्रतिनियतगुणिविषय एव संशयो न स्यात्, तदन्येभ्योऽपि तस्य भेदाविशेषात्। दृश्यते च यदा कश्चिद्दरिततरुतरुणशाखाविसररन्ध्रोदरान्तरतः किमपि शुक्लं पश्यति तदा 'किमियं पताका किमियं बलाका?' इत्येवं प्रतिनियतगुणिविषयोऽसौ। नापि धर्मिणो धर्मः सर्वथैवाभिन्नः, सर्वथैवाभेदे हि संशयानुत्पत्तिरेव, गुणग्रहणत एव गुणिनोऽपि गृहीतत्वात्। अतः कथञ्चिदभेदपक्षमाश्रित्य ज्ञानं पुनर्नियमादात्मेत्युच्यत इति। इह चात्मा ज्ञानं व्यभिचरति, ज्ञानं त्वात्मानं न व्यभिचरति खदिरवनस्पतिवदिति सूत्रगर्भार्थ इति।"–इति **अभयदेवसूरिरचितायां भगवतीसूत्रवृत्तौ** १२।१०।४६८, पृ० ५९२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ११५ पं० ७. **दव्वट्ठियणय**…। "अत्र च कुण्ठधियोऽप्यन्तेवासिनो योग्यताप्रतिपादनार्थः प्रकरणारम्भः प्रतिपादितः। सा च विशिष्टसामान्यविशेषात्मकतदुपायभूतार्थप्रतिपादनमन्तरेणातः प्रकरणान्न सम्पद्यत इति प्रकरणाभिधेयं योग्यतोपायभूतमर्थं तित्थयरवयणसंगहविसेसपत्थारमूलवागरणी । दव्वट्ठिओ य पज्जवणओ य सेसा वियप्पा सिं ॥ १।३ ॥ इत्यनया गाथया निर्दिशति । अस्याश्च समुदायार्थः पातनिकयैव प्रतिपादितः। अवयवार्थस्तु—तरन्ति संसारार्णवं येन तत् तीर्थं द्वादशाङ्गं तदाधारो वा सङ्घः, तत् कुर्वन्ति उत्पद्यमानमुत्पादयन्ति तत्स्वाभाव्यात् तीर्थकरनामकर्मोदयाद्वेति…। तीर्थकराणां वचनम् आचारादि, अर्थतस्तस्य तदुपदिष्टत्वात् । तस्य सङ्ग्रह-विशेषौ द्रव्य-पर्यायौ सामान्य-विशेषशब्दवाच्यावभिधेयौ, तयोः प्रस्तारः, प्रस्तीर्यते येन नयराशिना सङ्ग्रहादिकेन स प्रस्तारः, तस्य सङ्ग्रह-व्यवहारप्रस्तारस्य मूलव्याकरणी आद्यवक्ता ज्ञाता वा द्रव्यास्तिकः, द्रुतिर्भवनं द्रव्यं सत्तेति यावत्, तत्र 'अस्ति' इति मतिरस्य द्रव्यास्तिकः,…द्रव्यमेव वार्थोऽस्येति द्रव्यार्थिकः, द्रव्ये वा स्थितो द्रव्यस्थितः। परि समन्तात् अवनम् अवः पर्यवो विशेषः तज्ज्ञाता वक्ता वा नयनं नयः नीतिः पर्यवनयः, अत्र छन्दोभङ्गभयात् 'पर्यायास्तिकः' इति वक्तव्ये 'पर्यवनयः' इत्युक्तम्, तेनात्रापि पर्याय एव अस्ति इति मतिरस्येति द्रव्यास्तिकवद् व्युत्पत्तिर्द्रष्टव्या। स च विशेषप्रस्तारस्य ऋजुसूत्रशब्दादेः आद्यो वक्ता।…शेषास्तु नैगमादयो विकल्पा भेदा अनयोः द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकयोः, सिं इति प्राकृतशैल्या…द्विवचनस्थाने बहुवचनम् ।…'दव्वट्ठिओ य पज्जवणओ य' इत्यादिपश्चार्धैकदेशस्य विवरणायाह सूरिः—दव्वट्ठियनयपगडी सुद्धा संगहपरूवणाविसओ । पडिरूवं पुण वयणत्थनिच्छओ तस्स ववहारो ॥ १।४ ॥ इति गाथासूत्रम्। अत्र च सङ्ग्रहनयप्रत्ययः शुद्धो द्रव्यास्तिकः, व्यवहारनयप्रत्ययस्त्वशुद्ध इति तात्पर्यार्थः। अवयवार्थस्तु द्रव्यास्तिकनयस्य व्यावर्णितस्वरूपस्य प्रकृतिः स्वभावः शुद्धा इत्यसङ्कीर्णा विशेषासंस्पर्शवती सङ्ग्रहस्य अभेदग्राहिनयस्य, प्ररूपणा प्ररूप्यतेऽनयेति कृत्वा उपवर्णना पदसंहतिः, तस्या विषयोऽभिधेयः, विषयाकारेण विषयिणो वृत्तस्य विषयव्यवस्थापकत्वादुपचारेण विषयेण विषयिप्रकथनमेतत् ।…सर्वं सन्मात्रतया सङ्गृह्णन् सङ्ग्रहः शुद्धा द्रव्यास्तिकप्रकृतिरिति स्थितम् । तामेवाशुद्धां 'पडिरूवं पुण' इत्यादिगाथापश्चार्धेन दर्शयत्याचार्यः । प्रतिरूपं प्रतिबिम्बं प्रतिनिधिरिति यावत्, विशेषेण घटादिना द्रव्येण सङ्कीर्णा सत्ता। पुनरिति प्रकृतिं स्मारयति । तेनायमर्थः—विशेषेण सङ्कीर्णा सत्ता प्रकृतिः स्वभावः **'वचनार्थनिश्चयः'** इति, हेयोपादेयोपेक्षणीयवस्तुविषयनिवृत्तिप्रवृत्त्युपेक्षालक्षणव्यवहारसम्पादनार्थमुच्यते इति वचनम्, तस्य 'घटः' इति विभक्तरूपतया 'अस्ति' इत्यविभक्तात्मतया प्रतीयमानो व्यवहारक्षमोऽर्थः, तस्य निश्चयः निर्गतः पृथग्भूतः चयः परिच्छेदः, **तस्य** इति द्रव्यास्तिकस्य **व्यवहारः** इति लोकप्रसिद्धव्यवहारप्रवर्तनपरो नयः। सोऽभिमन्यते—यदि हि हेयोपादेयोपेक्षणीयस्वरूपाः परस्परतो विभिन्नस्वभावाः सद्रूपतया शब्दप्रभवे संवेदने भावाः प्रतिभान्ति ततो निवृत्तिप्रवृत्त्युपेक्षालक्षणो व्यवहारस्तद्विषयः प्रवृत्तिमासादयति, नान्यथा, न चैकान्ततः सन्मात्राविशिष्टेषु भावेषु संग्रहाभिमतेषु पृथक्स्वरूपतया परिच्छेदोऽबाधितरूपो व्यवहारनिबन्धनं संभवतीति ।…यद्वा **प्रति**शब्दो वीप्सायाम्, रूपशब्दश्च वस्तुन्यत्र प्रवर्तते। तेनायमर्थः—रूपं रूपं प्रति वस्तु वस्तु प्रति यो **वचनार्थनिश्चयः तस्य** प्रकृतिः स्वभावः स **व्यवहारः** इति। तथाहि—प्रतिरूपमेव वचनार्थनिश्चयो व्यवहारहेतुर्न पुनरस्तित्वमात्रनिश्चयः, यतः 'अस्ति' इत्युक्तेऽपि श्रोता शङ्कामुपगच्छन् लक्ष्यते, अतः 'किमस्ति' इत्याशङ्कायां 'द्रव्यम्' इत्युच्यते । तदपि किम्? पृथिवी। सापि का? वृक्षः। सोऽपि कः? चूतः। तत्राप्यर्थित्वे यावत् 'पुष्पितः' 'फलितः' इत्यादि तावन्निश्चिनोति यावद् व्यवहारसिद्धिरिति । व्यवहारो हि नानारूपतया सत्तां व्यवस्थापयति, तथैव संव्यवहारसंभवात् । अतो व्यवहरतीति व्यवहार इत्यन्वर्थसंज्ञां बिभ्रत् अशुद्धा द्रव्यास्तिकप्रकृतिर्भवति।"—सन्मतिवृ०।

पृ० ११५ पं० ९. **द्रोरवयवो**…। "द्रोश्च"—पाणिनि० ४।३।१६१। दृश्यतां टिपृ० १६ पं० ३०।

पृ० ११५ पं० २०. **मन्यते लोकोऽलौकिकैकान्तं**…। (मन्यते–अलौकिकैकान्तं…?)।

पृ० ११६ पं० ३. **अज्ञानोक्तिविरोध**…। दृश्यतां पृ० ११३ पं० ५।

पृ० ११७ पं० १९. **क्षणसद्रूप**। (क्षणवद्रूप?)। **'क्षणतद्रूप'** इति य० प्रतिपाठोऽप्यत्र शुद्धो भाति।

पृ० ११८ पं० १६. **वातादि**…। प्रकोपादिस्वरूपं **चरकसंहितायां** प्रथमे सूत्रस्थाने द्वादशे वातकलाकलीयेऽध्याये विलोकनीयम्।

पृ० ११८ पं० २०. **रसवीर्य**…**विशेष**…। रसादिविशेषस्वरूपं **चरकसंहितायां सूत्रस्थाने** षड्विंशे आत्रेयभद्रकाप्यीयेऽध्याये विलोकनीयम्। **भागाभाग**। (भाव?) (भावाभाव?)। "यथास्वयुक्त्यपेक्षिणौ हि भावाभावौ"—चरकसं० १।११।४४। **संयोग**। "संयोगः पुनर्द्वयोर्बहूनां वा द्रव्याणां संहतीभावः…तद्यथा मधुसर्पिषोः…।"—चरकसं० ३।१।३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ११८ पं० २०, पृ० ११९ पं० २. **देशकाला**···। दृश्यतां चरकसं० १।५-६, १।९-१०, ३।१।

पृ० १२० पं० १३. **शक्येते**। अत्र प्रतिषु **वाक्येते** इति पाठः तदनुसारेण '**वाच्येते**' इत्यपि भवेत्।(उच्येते?)।

पृ० १२० पं० १७. **प्रमाणानि**···। दृश्यतां टिपृ० २८ पं० १३।

पृ० १२१ पं० १०. **विधिः, अनुवादः**···। "विधिर्विधायकः। स्तुतिर्निन्दा परकृतिः पुराकल्प इत्यर्थवादः। विधिविहितस्यानुवचनमनुवादः।"–न्यायसू० २।१।६३-६५। विस्तरार्थिभिर्न्यायभाष्यादिकमवलोकनीयम्।

पृ० १२१ पं० २०. **अग्निष्टोमादि**···। "अष्टका पार्वणः श्राद्धं श्रावणी आग्रहायणी चैत्री आश्वयुजीति सप्त[1] पाकयज्ञसंस्थाः। अग्न्याधेयम् अग्निहोत्रम् दर्शपूर्णमासौ आग्रयणं चातुर्मास्यानि निरूढपशुबन्धः सौत्रामणी इति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः। अग्निष्टोमः अत्यग्निष्टोमः उक्थ्यः षोडशी वाजपेयः अतिरात्रः अप्तोर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः।"–गौतमधर्मसू० ८।१६-१८। यज्ञशब्दो यागमात्रे वषट्कारप्रदाने रूढः। "वषट्कारप्रदाना···यजतयः।···स्वाहाकारप्रदाना जुहोतयः।"–कात्यायनश्रौतसू० १।२।६-७। "षडुत्तरे[2]–अत्यग्निष्टोमः उक्थ्यः षोडशी वाजपेयः अतिरात्रः अप्तोर्यामः"–कात्यायनश्रौतसू० १०।९।२६।

पृ० १२१ पं० २०. **वसन्ते ब्राह्मणो······वाजपेयेन[3] वैश्यः**। दृश्यतां पृ० २१० पं० २०-२१।

पृ० १२२ पं० ३. **न तु घटवद्**···। दृश्यतां पृ० १५२ पं० १०।

---

१ "'सप्त'ग्रहणमेकैकस्य गणनार्थम्। 'पाक'ग्रहणं स्थालीपाकसम्बन्धार्थम्। यज्ञग्रहणमग्निसम्बन्धार्थम्। संस्थाः सम्यक् स्थिता गृह्य एवोक्ता इत्यर्थः।"–**मस्करिभा०** पृ० १२९. Government Library Series, Mysore।
२ षडुत्तरे [अग्निष्टोमसंस्थायाः] षड् विकारा इत्यर्थः।"–**कर्कभा०**। ३ कात्यायनश्रौतसूत्रप्रस्तावनायां यज्ञादिस्वरूपं सम्यक् विचारितमस्ति, तथाहि—"**सूत्राणां प्रस्थानत्रयम्**–धार्मिकं विषयमवलम्ब्य सूत्राणि···श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्र-धर्मसूत्रात्मना प्रथितानि। तत्र वेदोक्तानां त्रेतासाध्यानां कर्मणामनुष्ठानक्रमबोधकानि श्रौतसूत्राणि। जातकर्मादिसंस्कारकर्मणामेकाग्निसाध्यानां कर्मणां प्रतिपादको ग्रन्थो गृह्यसूत्रम्। साधारणवर्णाश्रमधर्मप्रतिपादको ग्रन्थो धर्मसूत्रमिति।" [पृ० २८]······"**यज्ञादिस्वरूपम्**–तत्र श्रुतौ तावत् वैदिकानि कर्माणि पञ्चधा विभक्तानि। स एष यज्ञः पञ्चविधः–अग्निहोत्रं, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशुः, [1]सोमः। स्मृतौ तु औपासनहोमः, वैश्वदेवम्, पार्वणम्, अष्टका, मासि श्राद्धम्, श्रवणा, शूलगवः, इति सप्त पाकयज्ञसंस्थाः। अग्निहोत्रं, दर्शपूर्णमासौ, आग्रयणम्, चातुर्मास्यानि, निरूढपशुबन्धः, सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञादयो दर्वीहोमा इति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः। अग्निष्टोमः, अत्यग्निष्टोमः, उक्थ्यः, षोडशी, वाजपेयः, अतिरात्रः, अप्तोर्यामः, इति सप्त सोमसंस्था इति श्रौतानि स्मार्तानि मिलित्वा एकविंशतिरुक्तानि। तत्र स्मार्ताः सप्त पाकयज्ञसंस्थाः स्मृतौ गृह्ये वा निरूपिता इति न सूत्रकारेण तासामत्र निरूपणं कृतम्। तथापि तेषामपि स्वरूपमतिसंक्षेपेण निरूप्यते किञ्चिदिव। तत्र या इमाः स्मार्ताः संस्थाः ता गृहीतस्मार्ताग्निना पुरुषेण स्वाग्नावनुष्ठेयाः। [पृ. ३०-३१]································ततः श्रौताः सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः॥ [पृ. ३२]···**वाजपेययज्ञः**—अथ वाजपेयस्वरूपमुच्यते–स च ब्राह्मण-क्षत्रियमात्रकर्तृकः, न वैश्याधिकारिकः। एतदतिरिक्ते सप्तसंस्थान्तर्गते वाजपेये तु वैश्योऽप्यधिकारी। कालश्चास्य शरदृतुः। [पृ० ३८]······**अग्निहोत्रे द्रव्यं देवता च**—एवमाधानसिद्धेषु वैतानिकाग्निषु अग्निहोत्रादीनि कर्माण्यनुष्ठेयानि। तत्राग्निहोत्रं नाम अग्न्युद्देशेन सायं प्रातः क्रियमाणो होमविशेषः। अत्र द्रव्याणि पयआदीनि बहून्याम्नातानि। तत्र पयो मुख्यं द्रव्यं क्रत्वङ्गतया आम्नातम्, इतराणि च यवागूतण्डुलदधिघृतरूपाणि द्रव्याणि काम्यानि श्रुतावाम्नातानि।······। अत्रापि अग्निर्मुख्या देवता, प्रजापतिरङ्गदेवता स्विष्टकृत्स्थानीया सायंकाले। प्रातश्च सूर्यो मुख्या देवता, प्रजापतिरङ्गदेवता। अत एव च अग्निदेवताकत्वं प्रवृत्तिनिमित्तमादाय अग्निहोत्रशब्दः कर्मनामधेयम्। अस्यैव च श्रौतस्य कर्मणोऽग्निहोत्रमिति संज्ञा, न तु स्मार्तस्यौपहासनहोमस्य। अस्य च अग्निहोत्रस्य महत् प्राशस्त्यम्; अकरणे च महान् प्रत्यवायो जन्मनो वैयर्थ्यं च बहु प्रतिपादितं श्रुतौ स्मृतौ च। [पृ० ३३]······**अथ सोमयागनिरूपणम्**—[अग्निष्टोमः] अत्रानुष्ठाने कल्पद्वयम्। यदा सोमेन यियक्षति तदा कस्मिंश्चिद् वसन्तेऽग्नीनाधाय समनन्तरमेव सोमेन इष्ट्वा दर्श-पूर्णमासादिकमनुतिष्ठेदित्येकः। आधानादिकं दर्शपूर्णमासादिकम् इष्टे(ष्ट्वै)वानन्तरं सोमेन यजेतेत्यपरः। अत्र च द्रव्यं सोमरसः। सोमो नाम लताविशेषः। तं कस्माच्चित् पुरुषात् क्रीत्वा ततो रसं निष्कास्य तेन च होमः क्रियते, अत एवास्य सोमयाग इति व्यवहारः। इयं तु लता नेदानीं भारते देशे समुपलभ्यते, पूर्वमपि न सर्वत्रोपलब्धाऽभूत्, किं तर्हि? पवित्रे देशविशेषे एव। तानि च स्थानानि पूर्वाचार्यैः संगृहीतानि। इदानीमस्या

---

१ द्रष्टव्यताम् ऐतरेयब्रा०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १२२ पं० ४. **वायव्यं**······। "तत्र च प्रथमानुवाकस्यादावैश्वर्यकामिनः पशुं विधत्ते—'वायव्यꣳ श्वेतमालभेत भूतिकामः, वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता, वायुमेव स्वेन भागधेयेनोपधावति, स एवैनं भूतिं गमयति, भवत्येव ।२।१।१।' इति । वायुर्देवता यस्य पशोः सोऽयं वायव्यः । स च श्वेतवर्णः । तमालभेत संस्पृशेत्, बर्हिःप्लक्षशाखाभ्यां यागार्थमुपकुर्यादित्यर्थः । यद्यप्यत्र 'यजेत' इति न श्रूयते तथापि द्रव्यदेवतात्मकस्य यागरूपस्य श्रूयमाणत्वादन्यथानुपपत्त्या 'वायव्येन यजेत' इत्येवं यागः कल्पनीयः । न च सत्सु सहस्रसंख्याकेषु देवेषु कुतो वायुरेवापेक्ष्यत इति शङ्कनीयम्, वायोरतिशयेन क्षिप्रगामिदेवत्वात् । श्वेतपशुप्वतिप्रियत्वाद्वायोः स्वकीयो भागः, स्वार्थे 'धेय'प्रत्ययः । यद्वा वर्णव्यत्ययेन दातव्यत्वमुच्यते । तेन च भागधेयेनासाधारणेन वायुमेवोपधावति, समीपं प्राप्नोति, सेवत इत्यर्थः । इतरदेवानामस्मिन् पशावत्यन्तप्रियत्वाभावाद् 'वायुमेव' इत्यवधार्यते । यद्वा यजमानस्यानादरव्यावृत्त्यर्थम्, 'उपधावत्येव' इति योज्यम् । तेन तुष्टः स वायुरेवैनं यजमानमैश्वर्यं गमयति, पूर्ववद् 'गमयत्येव' इति योज्यम् । तदनुग्रहादयं भवत्येव, ऐश्वर्यं प्राप्नोत्येव ।" इति तैत्तिरीयसंहितायाः सायणभाष्ये २।१।१।

पृ० १२२ पं० १२. °**धान्याद्यर्थं ममीक्रिया** । अत्र "**धान्याद्यर्थमयी क्रिया**' इति शुद्धं भाति ।

पृ० १२३ पं० १९. **भेदसंसर्गाभ्यां**···। "समर्थः पदविधिः ।२।१।१।······परार्थाभिधानं वृत्तिरित्याहुः ।··· अथवा समर्थाधिकारोऽयं वृत्तौ क्रियते । सामर्थ्यं नाम [1]भेदः संसर्गो वा । अपर आह–भेदसंसर्गौ वा सामर्थ्यमिति । कः

अनुपलम्भात् तत्स्थाने पूतीकसंज्ञकं लतान्तरं गृहीत्वा तत्रैव सोमे क्रियमाणान् संस्काराननुष्ठाय तद्रसेनैव यागः क्रियते । यागोऽयं दिनैकसाध्यः, तथापि स्वाङ्गैः सहितः पञ्चभिः दिनैरनुष्ठीयते, तत्र ऋत्विजः षोडश ।············अयं सोमयागोऽग्निष्टोमसंस्थाकोऽग्निष्टोम इत्युच्यते । अग्निष्टोम इति साम्नः संज्ञा । सामवेदे 'यज्ञायज्ञा वोऽग्नये' इत्यृचि गेयत्वेन विहितं साम अग्निष्टोम इत्युच्यते । संस्थाशब्दः समाप्तिवाची । एतदेवात्र क्रतौ अन्तिमं साम, न ततः सामान्तरमस्ति । इति अनेनैव समाप्यमानत्वादयमेव क्रतुरग्निष्टोमसंस्थाकोऽग्निष्टोम इत्युच्यते । सोमयागस्य येन नाम्ना समाप्तिस्तेन नाम्ना व्यवहारः श्रुतौ बहुधा दृष्टः यथा [पृ. ४२] उक्थ्यः षोडशीत्यादि । अतोऽग्निष्टोमसाम्ना समाप्यमानत्वादस्य अग्निष्टोम इति युक्ता संज्ञा । इयं च ज्योतिष्टोमस्य प्रथमा संस्था । तस्य हि चतस्रः संस्थाः–अग्निष्टोमः, उक्थ्यः, षोडशी, अतिरात्रश्चेति । अग्निष्टोमसाम्ना समाप्यमानस्य क्रतोरग्निष्टोमशब्दवाच्यत्वमुक्तम् । अग्निष्टोमसामानन्तरं यत्र उक्थ्याख्यसाम्ना स्तूयते न ततः परमस्ति किंचित् साम स उक्थ्यसंस्थाको ज्योतिष्टोमः । उक्थ्यस्तोत्रानन्तरं यत्र षोडश्याख्यं स्तोत्रं क्रियते स षोडशिसंस्थाको ज्योतिष्टोमः । षोडशिस्तोत्रानन्तरं यत्र अतिरात्रसंज्ञकानि सामानि गीयन्ते सोऽतिरात्रसंस्थाको ज्योतिष्टोमः । एवं संख्याचतुष्टयविशिष्टस्य क्रतोर्ज्योतिष्टोम इति संज्ञा । त्रिवृत् पञ्चदश सप्तदश एकविंश इति चत्वारः स्तोमा ज्योतिःपदेन अभिधीयन्ते । ज्योतींषि स्तोमा यस्य स ज्योतिष्टोमः । एतत्पदनिर्वाचके ब्राह्मणे हि एवमेव निरुक्तमस्ति । 'त्रिवृत् पञ्चदश सप्तदश एकविंश एतानि वाव तानि ज्योतींषि य एतस्य स्तोमाः' [तै० ब्राह्म० १।५।११] इति । एतासामेव चतसृणां संस्थानां क्वचिदावापोद्वापादिना अपरास्तिस्रः संस्थाः सम्पाद्यन्ते । अत्यग्निष्टोमः, वाजपेय अप्तोर्यामश्चेति । अग्निष्टोमस्तोत्रानन्तरमुक्थ्यमकृत्वा यत्र षोडशी क्रियते सोऽत्यग्निष्टोमसंज्ञकः क्रतुः । [पृ. ४३]············इमा एव सप्त संस्थाः स्मृतौ नित्यतया विहिताः । [पृ. ४४]·········कल्पोऽयं ब्राह्मणयजमानके सोमयागेऽग्निष्टोमसंस्थाके उक्तः । कर्मणां त्रैवर्णिकाधिकारित्वात् राजन्य-वैश्यावप्यत्राधिक्रियेते इति तु निर्विवादमेव । एवं च यदि राजन्यो वैश्यो वा अग्निष्टोममाजिहीर्षति तदा न तत्र सोमो द्रव्यं भवितुमर्हति, किन्तु न्यग्रोधवृक्षस्य अङ्कुराणि फलानि वा आहृत्य तानि च सम्यक् पेषयित्वा लौकिकेन दध्ना साकं सम्मेल्य तदेव च द्रव्यं सोमस्थाने कृत्वा यजेरन् । सोमे क्रियमाणाः सर्वेऽपि संस्काराः क्रयादयोऽत्रापि भवन्त्येव । मन्त्राणामपि सोमपदघटितानामनूहेनैव प्रयोगः ।" [पृ० ५४]–**कात्यायनश्रौतसूत्रभूमिका** [अच्युतग्रन्थमालायां प्रकाशिता, काशी] ।

१ तत्र भेदः संसर्गाविनाभावित्वादनुमीयमानसंसर्गः सामर्थ्यम्, संसर्गो वा भेदाविनाभाव्यनुमेयभेदः, उभौ वा यौगपद्येनाश्रीयमाणौ सामर्थ्यमित्यर्थः ।···तत्र भेदपक्षे राजा पुरुषं स्वाम्यन्तरेभ्यो निवर्त्य स्वार्थं जहाति । पुरुषस्तु अजहदपि स्वार्थं स्वान्तरेभ्यो राजानं निवर्तयति ।···एवं संसर्गेऽपि योज्यम् ।" इति **कैयटविरचिते पातञ्जलमहाभाष्यप्रदीपे** । अस्य **प्रदीपस्य** विस्तरेण व्याख्यानं तु **उद्द्योते** विलोकनीयम् ।

---

1 "भेदसंसर्गवदर्थप्रतिपादकत्वमेवैकार्थीभावसामर्थ्यमित्यर्थः । तत्र युक्तिरुक्तैव । **तत्र भेद** इति । स्वत्वसमानाधिकरणो राजभिन्नस्वामिकभेदो राजसंसर्गव्याप्यः । एवं वृत्त्युपस्थाप्यराजसम्बन्धवद्व्यक्तिगतराजसम्बन्धो राजभिन्नस्वामिकभेदव्याप्य इति भावः ।" इति **नागोजीभट्टविरचिते उद्द्योते** ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनर्भेदः संसर्गो वा? इह 'राज्ञः' इत्युक्ते सर्वं स्वं प्रसक्तम्, 'पुरुषः' इत्युक्ते सर्वः स्वामी प्रसक्तः । इहेदानीं 'राजपुरुषमानय' इत्युक्ते राजा पुरुषं निवर्तयत्यन्येभ्यः स्वामिभ्यः, पुरुषोऽपि राजानमन्येभ्यः स्वेभ्यः । एवमेतस्मिन्नुभयतो व्यवच्छिन्ने यदि स्वार्थं जहाति कामं जहातु, न जातुचित् पुरुषमात्रस्यानयनं भविष्यति ।" इति पातञ्जलमहाभाष्ये २।१।१।

पृ० १२३ पं० २०. **येन समानो**···। (केन समानो ब्रह्मचारी?)। "चरणे ब्रह्मचारिणि"–पा० ६।३।८६।

पृ० १२४ पं० १,७. **प्रमादाधीत**। 'प्रमादपाठः' [शाबरभा० १।२।८] 'प्रमत्तगीतः' [पातञ्जलमहाभा० १।१।१ पस्पशा०] इत्यादयः शब्दप्रयोगा बहुलमुपलभ्यन्ते ग्रन्थेषु ।

पृ० १२४ पं० १-२. **अग्निहोत्राख्यं**।···"तत्प्रख्यं चान्यशास्त्रम् १।४।४।" इति मीमांसादर्शनसूत्रस्य शाबरभाष्ये कुमारिलभट्टविरचिते तन्त्रवार्तिके च 'अग्निहोत्र'शब्दस्य कर्मनामधेयत्वं सिद्धान्तितम् । "अग्निहोत्रं जुहोति [तै० सं० १।५।९।१, मै० सं० १।८।६] इत्यत्र 'अग्निहोत्र'शब्दस्य कर्मनामधेयत्वं तत्प्रख्यशास्त्रात् । तस्य गुणस्य प्रख्यापकस्य प्रापकस्य शास्त्रस्य विद्यमानत्वाद् 'अग्निहोत्र'शब्दः कर्मनामधेयमिति यावत् । नन्वयं गुणविधिरेव कुतो न इति चेत्, न, यदि 'अग्नौ होत्रमस्मिन्' इति सप्तमीसमासमाश्रित्य होमाधारत्वेनाग्निरूपो गुणो विधेयः तदा 'यदाहवनीये जुहोति' इत्यनेनैव अग्नेः प्राप्तत्वात् तद्विधानानर्थक्यम् । 'अग्नये होत्रम्' इति चतुर्थीसमासमाश्रित्य अग्निदेवतारूपगुणोऽनेन विधीयत इति चेत्, न, तद्देवतायाः शास्त्रान्तरेण प्राप्तत्वात् । किं तच्छास्त्रान्तरमिति चेत्, 'यदग्नये च प्रजापतये च सायं जुहोति' [मै० सं० १।८।७] इति केचित् । अपरे तु 'अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा' [मै० सं० १।६।१०] इति मन्त्रवर्ण एवाग्निरूपदेवताप्रापकः ।"–इति लौगाक्षिभास्करप्रणीते अर्थसंग्रहे । मीमांसान्यायप्रकाश[पृ० ६०]प्रभृतिग्रन्थेष्वपि चर्चितोऽयं विषयः ।

पृ० १२४ पं० ८. **दशदाडिमादिश्लोकावयववत्**। "अनर्थकानि–'दश दाडिमानि षडपूपाः कुण्डमजाजिनं पललपिण्डः । अधरोरुकमेतत् कुमार्याः स्फैयकृतस्य पिता प्रतिशीनः ॥' इति ।" इति पातञ्जलमहाभाष्ये १।१।१।, १।२।४५ ।

पृ० १२५ पं० ३–४. **नापि घटादि**···। दृश्यतां पृ० १५२ पं० ११–१२ ।

पृ० १२५ पं० ९–१०. **वाक्यभेदा**···। "भिन्नाविमावर्थौ, उभयाभिधाने वाक्यं भिद्येत ।"–शाबरभा० १।२।७। "आवृत्त्या उभयविधावावृत्तिलक्षणो वाक्यभेदः ।···एकवाक्यस्य प्रत्येकमुभयपदार्थे व्यापारभेदेनोभयविधायकत्वे वाक्यभेदो भवति ।······विधेयस्योभयत्वे तद्विधायकवाक्यस्यापि व्यापारभेदेनैव तद्विधायकत्वं सम्भवति, नान्यथा ।" इति लौगाक्षिभास्करप्रणीतस्य अर्थसंग्रहस्य रामेश्वरभिक्षुकृतायां कौमुद्यां व्याख्यायाम् ।

पृ० १२५ पं० १५. **नैतद्**···। "मेध्योऽनड्वान् विभाषित इति । नैतद् विचार्यते अनड्वान् नानड्वानिति । किं तर्हि? आलब्धव्यो नालब्धव्य इति ।"–इति पातञ्जलमहाभाष्ये १।१।४३। आलब्धव्यो हन्तव्य इत्यर्थो भाति ।

पृ० १२५ पं० १७. **स्वभावसिद्धं**···। "एवं तर्हि कर्मसाधनो भविष्यति 'भाव्यते यः स भावः' इति । क्रिया चैव हि भाव्यते । स्वभावसिद्धं तु द्रव्यम् ।" इति पातञ्जलमहाभाष्ये १।३।१ । दृश्यतां पृ० ३८३ पं० १२ ।

पृ० १२५ पं० २५, पृ० १२६ पं० १. **अथ पुन**···। दृश्यतां पृ० १५२ पं० १९ ।

पृ० १२६ पं० २४,३२. **पूर्वापरीभूतं**[3]···। अत्र विस्तरार्थिभिर्वाक्यपदीयतृतीयकाण्डस्याष्टमः क्रियासमुद्देशो विलोकनीयः । दृश्यतां पृ० ३८३ पं० १३, पृ० ४०६ पं० २२ ।

---

१ "भाष्ये 'अन्येभ्यः स्वामिभ्यो निवर्तयति' इत्युक्त्या स्वस्वरूपस्वामितो न निवर्तयतीत्यर्थलाभात् संसर्गो बोधितः । एतेन···भेदप्रतिपादनेऽपि संसर्गाप्रतिपादनान्न्यूनतेत्यपास्तम् ।" इति उद्द्योते । २ कृशः । ३ "अपूर्वमनपरं सन्तमेकत्वात् पूर्वापरीभूतं पूर्वापरमिव पौर्वापर्येणावस्थितमेकमनेकासु क्रियासु आश्रितम्···तदभिनिर्वृत्तिवशेनाभिनिर्वर्त्यमानम्···आचष्टे–व्रजतीति ।···उपक्रमप्रभृतीति । उपक्रम आरम्भः, तस्मादारभ्य अपवर्गपर्यन्तम्, यावदन्त्या क्रियेत्यर्थः ।···उपक्रमादारभ्य यच्च व्रजितं यच्च व्रज्यते यच्च व्रजिष्यमाणं तत् सर्वमेकीकृत्य वक्तारो भवन्ति–व्रजति देवदत्त इति ।···तस्मात् प्रसिद्धशास्त्रसमयोऽपि लौकिकप्रसिद्ध्यैव पूर्वापरीभूतं भावमाख्यातेन आचष्टे 'व्रजति, पचति' इत्युपक्रमप्रभृत्यपवर्गपर्यन्तम् । तस्मादुपपन्नमनेकक्रियाभिर्निर्वर्त्यमानो भाव आख्यातेनोच्यते । आह च–'क्रियासु बह्वीष्वभिसंश्रितो यः पूर्वापरीभूत इवैक एव । क्रियाभिनिर्वृत्तिवशेन सिद्ध आख्यातशब्देन तमर्थमाहुः ।' [बृह० १४।४] इति । '**मूर्तं सत्त्वभूतं सत्त्वनामभिः**'। कदाचित्तमेव भावं तथैव उपक्रमप्रभृत्यभिनिर्वर्त्यमानमपवर्गपर्यन्तं मूर्तं सन्तं सत्त्वभूतं सत्त्वरूपिणं लिङ्गसंख्यायुक्तैः सत्त्वनामभिराचष्टे । कथम्? व्रज्या पक्तिरिति । तत्रोक्तो विशेषः–कृदभिहितो भावो द्रव्यवद् भवति ।······आह च–'क्रियाभिनिर्वृत्तिवशोपजातः कृदन्तशब्दाभिहितो यदा स्यात् । संख्याविभक्तिव्ययलिङ्गयुक्तो भावस्तदा द्रव्यमिवोपलक्ष्यः ॥' [बृह० १।४] इति ।" इति **यास्क**विरचित**निरुक्तस्य दुर्गवृत्तौ** १।१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १२७ पं० ११-१४. **संसर्गो........शब्दस्यार्थव्यवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः** । उद्धृताविमौ श्लोकौ काव्यप्रकाश[२।१९]टीकादिषु व्याख्यातौ च तत्र । इदं पुनरवधेयम्—मुद्रिते वाक्यपदीयेऽन्यत्र च बाहुल्येन 'शब्दार्थस्यानवच्छेदे' इति पाठो दृश्यते तथापि 'शब्दस्यार्थव्यवच्छेदे' इति प्राचीनः पाठः, स च शुद्ध एव । अर्थव्यवच्छेदे स्वार्थनिर्णये कर्तव्ये इत्याशयः । सिद्धसेनगणिविरचितायां तत्त्वार्थवृत्तावपि उद्धृतमिदं श्लोकद्वयम्, तत्र च 'शब्दस्यार्थव्यवच्छेदे' इत्येव पाठो दृश्यते । पुण्यराजविरचिता वाक्यपदीयवृत्तिरपि एतत्पाठानुकूलैव भाति ।

पृ० १२७ पं० १५. **आसन्नश्रुतोऽग्निहोत्रशब्दः, तच्चोदित°** । अत्र य० प्रत्यनुसारी '**आसन्नश्रुताग्निहोत्रशब्दात्तच्चोदित**' इति पाठोऽपि समीचीन एव ।

पृ० १२८ पं० ७. **प्रलम्बते**...। "अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ।१।२।४५।......निपातस्यानर्थकस्य प्रातिपदिकसंज्ञा वक्तव्या । खञ्जति । निखञ्जति । लम्बते । प्रलम्बते । किं पुनरत्र प्रातिपदिकसंज्ञया प्रार्थ्यते ? 'प्रातिपदिका'दिति स्वाद्युत्पत्तिः । 'सुबन्तं पदम्' इति पदसंज्ञा । पदस्य पदादिति निघातो यथा स्यात् ।............अधिपरी अनर्थकौ ।१।४।९३ ।.........अथवा नेमावनर्थकौ । किं तर्ह्यनर्थकावित्युच्यते ? अनर्थान्तरवाचिनावनर्थकौ धातुनोक्तां क्रियामाहतुः । तद-

---

१ "वाक्यात् प्रकरणादर्थादौचित्याद् देशकालतः । शब्दार्थाः प्रविभज्यन्ते न रूपादेव केवलात् ॥ २।३१६ ॥ तत्र वाक्याच्छब्दार्थनिर्णयो यथा 'कटं करोति भीष्ममुदारं दर्शनीयम्' इति......भीष्मगुणान्वितस्यैव कटस्य करणं वाक्यार्थः ।...तथात्र प्रकरणमप्यशब्दं शब्दार्थनिर्णयनिमित्तम्, यथा ग्रामप्रस्तावे सैन्धवानां चोदनमश्वानयनपर्यवसायि भवति । भोजनप्रस्तावे तु तदेव लवणप्रतीतिमुपजनयतीति ।...अर्थस्तु शाब्दत्वाच्छब्दार्थनिर्णयं प्रकल्पयति, यथा 'अञ्जलिना जुहोति, अञ्जलिना सूर्यमुपतिष्ठते, अञ्जलिना पूर्णपात्रमाहरति' इत्यत्र जुहोतीत्याद्यर्थवशाद् विभिन्नार्थवाचकोऽञ्जलिशब्दः ।.........औचित्यादपि शब्दार्थव्यवस्थानं दृश्यते, यथा 'यश्च निम्बं परशुना यश्चैनं मधुसर्पिषा । यश्चैनं गन्धमाल्याभ्यां सर्वस्य कटुरेव सः ॥' इत्यत्र अनुक्तक्रियापदानि साधनान्येव औचित्यवशात् स्वसमुचितक्रियापदावगत्या......वाक्यार्थस्य प्रतीतिमुपजनयन्ति । तथा च यो निम्बं परशुना छिनत्ति यश्चैनं गन्धेनानुलिम्पति सर्वस्य तस्य 'दुस्त्यजा प्रकृतिः' इति कृत्वा कटुरेव, दौर्मनस्यदाननिपुण एव । इति कस्यचित् खलत्वप्रतिपादनमत्र तात्पर्यार्थः ।...देशाच्छब्दार्थनिर्णयो यथा 'मथुरायाः प्राचीनादुदीचीनाद्वा नगरादागच्छामि' इत्युक्ते नगरविशेषात् पाटलिपुत्रादागच्छामि इति गम्यते ।......कालात्तु खलु व्यवस्था दृश्यते, यथा शिशिरे 'द्वारम्' इत्युक्ते 'पिधेहि' इति, ग्रीष्मसमये त्वेवमभिधाने 'समुद्घाटय' इति गम्यते । एतच्च शब्दार्थनिर्णयोपायानां दिङ्मात्रप्रदर्शनं बोद्धव्यम् ।...तथा चापरैः संसर्गादयः **शब्दार्थविच्छेदहेतवः** प्रदर्शिता इत्याह—**संसर्गो विप्रयोगश्च**...... ॥ २।३१७ ॥......**विशेषस्मृतिहेतवः** ॥ २।३१८ ॥.........संसर्गादिभिरवच्छेदः क्रियते......संसर्गादिभिरर्थनिर्णयः क्रियते ।...सामर्थ्यमेव हि संसर्गादिभिर्व्यज्यत इति । तत्र संसर्गाद् यथा 'सकिशोरा धेनुरानीयताम्' इत्यत्र नियतेन संसर्गिणा किशोरलक्षणेन विशेषावसायनिमित्तेन वडवाया एव सम्प्रत्ययः । यथा च 'सवत्सा धेनुः' इत्यत्र वत्ससंसर्गाद् गोधेनोरेव सम्प्रत्यय इति संसर्गादर्थनिर्णयः ।...तथा संसर्गवद् विप्रयोगोऽपि अवच्छेदहेतुः ।...'अकिशोरा धेनुः अवत्सा अकरभा वा आनीयताम्' इति किशोरादिविप्रयोगेन विशिष्टजातीयाया एव धेनोरवगतिरुपजायत इति ।...साहचर्याद् यथा 'रामलक्ष्मणौ' इत्युक्ते लक्ष्मणसाहचर्याद् दाशरथेरेव प्रतीतिः ।...विरोधादप्यर्थोऽवधार्यते, यथा 'रामार्जुनौ' इत्यत्र अर्जुनसन्निधाने निसर्गवैरिणो जामदग्न्यस्यैव प्रतीतिः । अर्थप्रकरणदेशकालौचित्यैर्विशेषेऽवस्थापनं प्राक् प्रदर्शितम् । लिङ्गाच्च वाक्यान्तरे दृष्टाद् भेदः प्रसिद्धः प्रतीयते, यथा 'अक्ताः शर्करा उपदधाति' इत्यत्र अनेकस्याञ्जनद्रव्यस्य सम्भवे तेजोघृतस्य स्तुतिरुक्ता । एतस्माल्लिङ्गाद् घृतसाधनत्वमञ्जिक्रियायाः शर्कराकर्मिकाया निर्धार्यते ।...शब्दान्तरसंनिधानादपि विशेषावगतिः, यथा 'अर्जुनः कार्तवीर्यः' 'रामो जामदग्न्यः' इति । सामर्थ्याद् विशेषप्रतिपत्तिः, यथा 'अनुदरा कन्या' इति सामर्थ्यादुदरविशेषप्रतिषेधप्रतीतिः ।...व्यक्तिर्लिङ्गम् । तस्मान्निर्णयो यथा 'तद् ग्रामस्यार्धं लभेत' इत्यत्र समप्रविभागेऽर्धशब्दो नपुंसकेन परामर्शात् । तस्माद् ग्रामस्यार्धं सममेव प्रतीयते । 'तं ग्रामस्यार्धम्' इत्यत्र तु तमिति पुंलिङ्गेन परामर्शाद् ग्रामैकदेशमात्रं प्रतीयते ।...स्वराद् यथा 'स्थूलपृषतीमालभेत' इत्यत्रान्तोदात्तस्य श्रवणात् 'स्थूला चासौ पृषती' इत्येवंविधार्थप्रतीतिः । पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वदर्शने 'स्थूलानि पृषन्ति यस्याम्' इत्यन्यपदार्थप्रतीतिः ।...णत्वनत्वाभ्यां यथा प्रणायक इत्यत्र उपसर्गाश्रयणत्वसद्भावे प्रणयनक्रियाकर्तुः प्रतीतिः । णत्वाभावे तु प्रगता नायका अस्माद्देशादसौ 'प्रनायको देशः' इत्यन्यपदार्थप्रतीतिरिति । तदेवमेते शब्दार्थस्य सन्देहनिराकरणद्वारेण नियतार्थावसायहेतुत्वाद् विशेषस्मृतिहेतवो निर्णयहेतवः संसर्गादय इति बोद्धव्यम् ।" इति पुण्यराजविरचितायां वाक्यपदीयवृत्तौ २।३१६-३१८ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशिष्टं भवति।···उक्तार्थानामपि प्रयोगो दृश्यते। तद्यथा—अपूपौ द्वावानय, ब्राह्मणौ द्वावानयेति।" इति पातञ्जलमहाभाष्ये। "अधिपरी अनर्थकौ।१।४।९३। उक्तसंज्ञौ [=कर्मप्रवचनीयसंज्ञौ] स्तः। कुतोऽध्यागच्छति। कुतः पर्यागच्छति।"—पा० सिद्धान्तकौ०। "इदानीं संभूयार्थाभिधायकत्वमपि दर्शयितुमाह—अप्रयोगेऽधिपर्योश्च यावद् दृष्टं क्रियान्तरम्। तस्याभिधायको धातुः सह ताभ्यामनर्थकः॥ [वाक्यप० २।१९१],······समुदाय एव विशिष्टार्थाभिधायक इत्यधिपर्योः केवलयोर्धातोश्चात्रानर्थकत्वमनर्थान्तरवाचकत्वमित्यर्थः।" इति पुण्यराजविरचितायां वाक्यपदीयवृत्तौ।

पृ० १२८ पं० ७. **कुम्भकारवत्**···। "उपपदमतिङ्।२।२।१९। उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते। अतिङन्तश्चायं समासः। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। इह कुम्भ अस् कार इत्यलौकिकं प्रक्रियावाक्यम्।"—पा० सिद्धान्तकौ०।

पृ० १२८ पं० १०-११. **अस्तिक्षीराश्नीतपिबतादिषु···तिङन्तप्रतिरूपकनिपात**···। "अनेकमन्यपदार्थे।२।२।२४।······सुबधिकारेऽस्तिक्षीरादीनामुपसंख्यानं कर्तव्यम्। अस्तिक्षीरा ब्राह्मणी।······न वा कर्तव्यम्। किं कारणम्? अव्ययत्वात्। अव्ययमेषोऽस्तिशब्दः। नैषोऽस्तेर्लट्। कथमव्ययत्वम्? 'उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपातसंज्ञा भवन्ति' इति निपातसंज्ञा। 'निपातोऽव्ययम्' इत्यव्ययसंज्ञा।"—पा० म० भा०। "अनेकमन्यपदार्थे।२।२।२४। अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते। स बहुव्रीहिः। अस्तीति विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। अस्तिक्षीरा गौः। मयूरव्यंसकादयश्च।२।१।७२। एते निपात्यन्ते।···अश्नीत पिबत इत्येवं सततं यत्राभिधीयते सा अश्नीतपिबता।"—पा० सिद्धान्तकौ०।

पृ० १२८ पं० १४. **शङ्कुलाखण्डप्रातिपक्ष्येण**···। "तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन। उपादानविकलः, शङ्कुलाखण्डः, किरिकाणः। समर्थग्रहणं किमर्थम्? [१]तिष्ठ त्वं, शङ्कुलया, खण्डो धावति मुसलेन। किं त्वं करिष्यसि शङ्कुलया, खण्डो विष्णुमित्र उपलेन।" इति पातञ्जलमहाभाष्ये २।१।१।

पृ० १२८ पं० १५-१६. **देवदत्तस्य······सापेक्षस्यापि समासः**। "यदि सापेक्षमसमर्थं भवतीत्युच्यते 'राजपुरुषोऽभिरूपः' 'राजपुरुषो दर्शनीयः' अत्र वृत्तिर्न प्राप्नोति। नैष दोषः। प्रधानमत्र सापेक्षम्। भवति च प्रधानशब्दस्य सापेक्षस्यापि समासः। यत्र तर्ह्यप्रधानं सापेक्षं भवति तत्र वृत्तिर्न प्राप्नोति—'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' 'देवदत्तस्य गुरुपुत्रः' 'देवदत्तस्य दासभार्या' इति। नैष दोषः। समुदायापेक्षात्र षष्ठी सर्वं गुरुकुलमपेक्षते।"—इति पातञ्जलमहाभाष्ये २।१।१। विस्तरार्थिभिस्तु अस्य व्याख्यानं प्रदीपे उद्द्योते च विलोकनीयम्।

पृ० १२८ पं० १८-१९. **अपशब्दो हि नाम**·········। "भूयांसोऽपशब्दाः।···तद्यथा—'गौः' इत्यस्य शब्दस्य 'गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका' इत्यादयो बहवोऽपभ्रंशाः।" इति पातञ्जलमहाभाष्ये १।१। पस्पशाह्निके। "तत्र 'गौः' इति प्रयोक्तव्ये अशक्त्या प्रमादादिभिर्वा गाव्यादयस्तत्प्रकृतयोऽपभ्रंशाः प्रयुज्यन्ते। ते च साक्षादिमत्येव लब्धस्वरूपाः साधुत्वं विजहति। अर्थान्तरे तु प्रयुज्यमानाः साधव एव विज्ञायन्ते। न ह्येतेषां रूपमात्रप्रतिबद्धमसाधुत्वम्। अश्वगोण्यादयः शब्दाः साधवो विषयान्तरे।१।१४९। आवपने 'गोणी' इति स्वविप्रयोगाभिधाने च 'अश्वः' इत्येतयोरवस्थितं साधुत्वम्।" इति भर्तृहरिविरचितायां वाक्यपदीयस्ववृत्तौ १।१४९।

पृ० १२९ पं० ३. **पदान्तरविषयत्वात्, अज्ञात**···। अत्र 'पदान्तरविषयत्वात्, **वाक्यभेद एव वा** अज्ञात···' इति पाठः समीचीनो भाति। दृश्यतां टिपृ० ५७ पं० ३५।

पृ० १२९ पं० १४. **क्रियार्थत्वरूढस्य**। अत्र हस्तलिखितप्रत्यनुसारी '**क्रियार्थे च रूढस्य**' इति पाठः शोभन एव।

पृ० १२९ पं० १४-१६. **आख्यातस्य**···। दृश्यतां टिपृ० ५५ पं० २८।

पृ० १२९ पं० १९. **धातुप्रातिपदिक**···। "अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्।"—पा० १।२।४५। "भूवादयो धातवः।"—पा० १।३।१। "क्रियावचनो धातुः।"—पा० म० भा० १।३।१। "सुप्तिङन्तं पदम्।"—पा० १।४।१४।

पृ० १२९ पं० २३. **'न' इत्यनुवर्तनात्**। 'न' इत्यनुवर्तनाद् 'न केवलो वाक्यभेद एव वा' इत्याशयः प्रतीयते। एवं च मूलेऽपि [पृ० १२९ पं० ३] 'न पदभेद एव पदान्तरविषयत्वात्, वाक्यभेद एव वा, अज्ञातस्याग्निहोत्रस्य क्रियाविशेषणत्वेनानुवादात्' इति पाठः समीचीनो भाति। दृश्यतां टिपृ० ५७ पं० २८।

---

१ "तिष्ठ त्वम्, शङ्कुलया न प्रयोजनम्, मुसलेन कृतः खण्डो धावतीत्यर्थः। 'शङ्कुलयेति सहयोगे तृतीया' इत्यपि कश्चित्। हे विष्णुमित्र त्वं शङ्कुलया किं करिष्यसि? उपलेन पाषाणेन कृतः खण्ड इति द्वितीयार्थः।" इति **उद्द्योते**।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १३० पं० १०. **शब्दाव्यवस्थानात्** । अत्र य०प्रतिपाठानुसारेण 'शब्दाव्यवस्थानम्, तदव्यवस्थानात्, इत्यपि पाठः संभवेत् ।

पृ० १३० पं० १५–१६. **प्रतिज्ञात्यागप्रतिज्ञान्तरगमन**···। "प्रतिदृष्टान्तधर्माभ्यनुज्ञा स्वदृष्टान्ते प्रतिज्ञाहानिः । प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्मविकल्पात् तदर्थनिर्देशः प्रतिज्ञान्तरम् ।"–न्यायसू० ५।२।२–३ । विस्तरेण न्यायभाष्यादितो ज्ञेयम् ।

पृ० १३१ पं० ७,२६. **अनुवादादर** । कारिकेयं विशेषावश्यकभाष्यकोट्यार्यवृत्ति-कोट्याचार्यवृत्ति[पृ० ९७३]-बृहत्कल्पसूत्रवृत्ति[पृ० ४०१]-षड्दर्शनसमुच्चयबृहद्वृत्ति[पृ० १२३]प्रभृतिग्रन्थेषु उद्धृतास्ति ।

पृ० १३१ पं० १७,२४. **अर्थपुनरुक्तं** । दृश्यतां पृ० १५६ पं० २२ । टिपृ० ६२ पं० २४ ।

पृ० १३२ पं० १. **न चात्र कश्चि**···। दृश्यतां पृ० १४२ पं० १७ ।

पृ० १३२ पं० ६. **घनं घनं** । (दानं दानं ? द्रुतं द्रुतं ? धूतं धूतं ? ? ?) ।

पृ० १३२ पं० ६–७. **हेतौ कृतकत्वा**···। "अनित्यः शब्दः । कृतकत्वात् । कृतकमनित्यं दृष्टं यथा घटः । तथा च कृतकः शब्दः । तस्मात् कृतकत्वादनित्यः ।" इति चन्द्रकीर्तिविरचितायां मध्यमकवृत्तौ पृ० २० ।

पृ० १३३ पं० ४. **शब्दः, कर्तृ**···। 'शब्दः प्रयुज्यते, स च कर्तृ···' इत्याशयकः पाठोऽत्रापेक्ष्यते ।

पृ० १३४ पं० ८. **प्रत्यपेक्षित**···। (प्रत्यवेक्षित···?) । दृश्यतां पृ० १३० पं० ११ ।

पृ० १३४ पं० १३. **दशदाडिमादिश्लोक**···। दृश्यतां टिपृ० ५५ पं० १६ ।

पृ० १३४ पं० २०. **काकवाशितं**···। "[1]तिरश्चां वाशितं रुतम् ।" इति अमरकोषे १।७।२५।

पृ० १३५ पं० १,८,१०. **वातिकमन्त्रादि**···। अत्र सर्वत्र '**वातिक**'स्थाने '**धातिकं**[3]' इति पाठः शुद्धो भाति ।

पृ० १३५ पं० ७. **आदिमदनादिप्रसिद्धीनां** । आदिमत्प्रसिद्धीनामनादिप्रसिद्धीनां चेत्यर्थः । अत्र अस्वारस्ये तु 'आदिवद् अनादिप्रसिद्धीनाम्' इति कल्पनीयम् ।

पृ० १३५ पं० ९. [2]**°वातिकानां ज्ञानानि** । अत्र प्रतिस्थः '**°वादिकानां ज्ञानानि**' इति पाठ एवादरणीयः ।

पृ० १३५ पं० १३. **नक्षत्रं दृष्ट्वा** वाचो विसृजन्ति । "न पुरा नक्षत्रेभ्यो वाचं विसृजेत्, यत् पुरा नक्षत्रेभ्यो वाचं विसृजेत् यज्ञं विच्छिन्द्यात् । उदितेषु नक्षत्रेषु व्रतं कृणुतेति वाचं विसृजति ।" इति तैत्तिरीयसंहितायाम् ६।१।४।२७–२८। "नक्षत्रं दृष्ट्वा वाचं विसृजते ।" इति कठसंहितायाम् २३।५। "[4]सतोऽविवक्षा पारार्थ्यम्······॥१।१३७॥······'नक्षत्रं दृष्ट्वा वाचं विसृजेत्' इति कालोपलक्षणार्थं नक्षत्रदर्शनं तत् ।" इति भर्तृहरिविरचितायां वाक्यपदीयस्ववृत्तौ ।

पृ० १३६ पं० १,७. **युक्तरी तु** । (युक्तरा तु ?) ।

---

१ "तिरोऽञ्चन्ति ते तिर्यञ्चः, तेषां यद् रुतं तद् वाशितम् । 'वाशृ शब्दे' [पा० धा० दिवादि०] । '**वासिता** करिणीनार्यो**र्वासितं** सुरभीकृते । ज्ञानमात्रे खगारावे **वासितं** वस्त्रवेष्टिते ॥' इति **विश्व**कोषादिदर्शनेन तु दन्त्यवानपि । एकं पक्षिशब्दस्य ।" इति अमरकोष**सुधा**व्याख्यायाम् । २ "तपोयुक्तं च श्रेयांसं **भद्र**बाहुं निरामयम् ॥४॥·····प्रणम्य शिरसाचार्यमूचुः शिष्या वचस्पतिम् ।···॥६॥···विस्तीर्णं **द्वा**दशाङ्गं तु भिक्षवश्चाल्पमेधसः । भवितारो हि बहवस्तेषां चैवेदमुच्यताम् ॥१३॥ सुखग्राहं लघुग्रन्थं स्पष्टं शिष्यहितावहम् । सर्वज्ञभाषितं तथ्यं निमित्तं तु ब्रवीहि नः ॥१४॥ उल्कां समासतो व्यासात् परिवेषांस्तथैव च । विद्युतोऽभ्राणि सन्ध्याश्च मेघान् वातान् प्रवर्षणम् ॥१५॥ गन्धर्वनगरं गर्भान् यात्रोत्पातं तथैव च । ग्रहचारं पृथक्त्वेन ग्रहयुद्धं च कृत्स्नतः ॥१६॥ **वातिकं** चाथ स्वप्नांश्च मुहूर्तांश्च तिथींस्तथा । करणानि निमित्तं च शकुनं पाकमेव च ॥१७॥···बलाबलं च सर्वेषां विरोधं च पराजयम् । तत् सर्वमानुपूर्वेण प्रब्रवीहि महामते ॥१९॥ सर्वानेतान् यथोद्दिष्टान् भगवन् वक्तुमर्हसि । प्रश्नं शुश्रूषवः सर्वे वयमन्ये च साधवः ॥२०॥ इति नैर्ग्रन्थे **भद्र**बाहुके निमित्ते ग्रन्थाङ्गसञ्चयो नाम प्रथमोऽध्यायः ।" इति **भद्र**बाहुसंहितायाम् । ३ अत्र **धातिको** नाम कश्चिद् धातुविषयमन्त्रादिज्ञो धातुवादी सम्भाव्यते ।"सुवर्णरूप्यताम्राणि हरितालं मनःशिला । गैरिकाञ्जनकासीससीसलोहाः सहिङ्गुलाः । गन्धकोऽभ्रकमित्याद्या धातवो गिरिसम्भवाः ॥" इति **अमरकोषसुधा**व्याख्यायाम् २।४।८। ४ "**सतोऽविवक्षा** इति । शब्देनोपात्तस्याप्यर्थस्याविवक्षा **पारार्थ्य**मिति शब्दोपात्तस्याप्यर्थस्योपलक्षणता ।···पारार्थ्यस्योदाहरणं **नक्षत्र**मिति । शब्दोपात्तो हि वाग्विसर्गो नक्षत्रदर्शनपूर्वकः, तत्र नक्षत्रदर्शनेन काल उपलक्ष्यते, यदा नक्षत्रमुदेति तदा वाचंयमेन वाग्विसर्गः कर्तव्य इति ।"–**वृषभ**देवटी० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १३६. पं० ३–४,२१–२५. **त्वदभिप्रायवत्**…। दृश्यतां पृ० १५२ पं० २०।

पृ० १३६ पं० ८. **पुरुष एवेदं**। "पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥" इति ऋग्वेदे पुरुषसूक्ते १०।९०। वचनमिदं यजुर्वेदेऽप्युपलभ्यते। दृश्यतां पृ० १४४ पं० ११, पृ० १८९ पं० ५।

पृ० १३६ पं० ५. **विध्यन्तरविधान……मष्टाश्रिमित्यादि** [पृ० १३७ पं० १]। 'विध्यन्तरविधानशैल्या तत्सिद्धिः, यूपं छिनत्ति……पालाशमष्टाश्रिमित्यादिवत्' इत्यपि मूलं सम्भाव्यतेऽत्र।

पृ० १३७ पं० १,१०. **एतदपि**…। दृश्यतां पृ० १५३ पं० ५।

पृ० १३७ पं० २,१२. **संस्कृतः सन्**…। "संस्कारास्त्वावर्तेरन्, अर्थकालत्वात्। तत्कालास्तु यूपकर्मत्वात् तस्य धर्मविधानात् सर्वार्थानां च वचनादन्यकालत्वम्। सकृन्मानं च दर्शयति।" इति मीमांसादर्शने ११।३।४।५–७।

पृ० १३७ पं० ४,१५. **ननु तच्छब्दता**…। "तद्यत्तादर्थ्यात् ताच्छब्द्यं तस्येदं ग्रहणम्।" इत्यपि पातञ्जलमहाभाष्ये [१।१।२८,२९] उपलभ्यते पाठः। एवं च तदनुसारेण 'ननु तद्यत्तादर्थ्यात् ताच्छब्द्यं तस्येदं ग्रहणम्, यथेन्द्रार्था स्थूणेन्द्रः।' इत्यपि मूलं चिन्त्यम्। हस्तलिखितप्रतिषु तु अशुद्धः पाठोऽत्र।

पृ० १३७ पं० २३. **यथा यूपं**…। दृश्यतां टिपृ० ५९ पं० ५।

पृ० १३८ पं० ३,११ **न च च्छेदनमेवे**…। (न च च्छेदनेनैवे…?)।

पृ० १३८ पं० ८,२३. **शैली**…। दृश्यतां पृ० १५३ पं० ५।

पृ० १३९ पं० १,९. **ननु सेवादिवत्**…। दृश्यतां पृ० १५३ पं० २२–२३।

पृ० १४० पं० २,१४. **वेदवादासाधुता**…। दृश्यतां पृ० १५३ पं० २३।

पृ० १४० पं० ४,२२. **अथ अग्निहोत्र**…। दृश्यतां पृ० १५२ पं० १४।

---

१ '**भाव्यम्** इति **यजुर्वेदे** पाठः, तत्र चैवं व्याख्यायते—"स एव पुरुषः, पूर्वपर्यायविशेषिते 'एव'शब्दः, नान्यः। **इदं** वर्तमानकं **सर्वं** यच्च भूतमतीतं यच्च भाव्यं भविष्यत् तस्य कालत्रयस्य ईशानः। न केवलं कालत्रयस्य ईशानः, उत अमृतत्वस्यापि मोक्षस्यापि, 'उत'शब्दोऽपिशब्दार्थे। कस्मात् कारणात्? यत् अन्नेन अमृतेन अतिरोहति अतिरोहं करोति सर्वस्येश्वर इति।" इति **उवटविरचिते शुक्लयजुर्वेदभाष्ये** ३१।२। "यत् इदं वर्तमानं जगत् तत् सर्वं पुरुष एव। यद् भूतमतीतं जगत् यच्च भाव्यं भविष्यं जगत् तदपि पुरुष एव। यथास्मिन् कल्पे वर्तमानाः प्राणिदेहाः सर्वेऽपि विराट्पुरुषस्यावयवाः तथैवातीतागामिनोरपि कल्पयोर्द्रष्टव्यमिति भावः। उतापि च अमृतत्वस्य देवत्वस्य ईशानः स्वामी स पुरुषः, यद् यस्मात् **अन्नेन** प्राणिनां भोग्येन अन्नेन फलेन निमित्तभूतेन अतिरोहति स्वीयां कारणावस्थामतिक्रम्य परिदृश्यमानां जगदवस्थां प्राप्नोति तस्मात् पुरुष एव। प्राणिनां कर्मफलोपभोगाय जगदवस्थास्वीकारान्नेदं तस्य वस्तुत्वमित्यर्थः। यद्वा सर्वं पुरुषश्चेत् तर्हि परिणामीत्याशङ्क्याह—अमृतत्वस्य अमरणधर्मस्येशानः मुक्तेरीशः। यो हि मोक्षेश्वरो नासौ म्रियत इत्यर्थः। किञ्च, यज्जीवजातमन्नेनातिरोहति उत्पद्यते तस्य सर्वस्य चेशानः, ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तो भूतग्राम उक्तः, तस्यान्नेनैव स्थितेः। 'इतः प्रदानाद्धि देवा उपजीवन्ति' इति श्रुतेः।" इति **महीधरविरचितायां शुक्लयजुर्वेदवृत्तौ** ३१।२। **महीधरविरचितवृत्तिसदृश्येव** व्याख्यात्र **ऋग्वेदस्य सायणभाष्ये**। २ "**संस्कारा**…।११।३।४।५। यूपसंस्कारा ये पशुतन्त्रमध्ये क्रियन्ते तथा प्रोक्षणमञ्जनमुच्छ्रयणं परिव्याणं च, तेषु चिन्त्यते—किं तस्य तस्य पशोर्भेदेन कर्तव्याः अथवा तन्त्रमिति। किं प्राप्तम्? संस्कारास्त्वावर्तेरन् यूपस्य, न यथा यूपास्तन्त्रं तथा स्युः। किं कारणम्? अर्थकालत्वात्। अर्थः पशोर्नियोजनम्। तत्काला एते संस्काराः। तत्र गृह्यते विशेषः। यस्य पशोर्नियोजनकाले कृतास्तदर्था इति। इतरयोस्तु पश्वोरप्राप्तकालत्वात् तादर्थ्येन नास्ति प्रयोगः। तस्मादावर्तेरन्। यथा अग्नेः संमार्जनम्। **तत्कालास्तु**…।११।३।४।६। सत्यमावर्तेरन्, यद्येते नियोजनकाला भवेयुः। तत्कालास्त्वेते दीक्षाकालाः। कथं ज्ञायते? यूपकर्मत्वात्। नैते नियोजनार्थाः। यूप एतैः क्रियते। यूपो नियोजनार्थः। स च दीक्षासु कर्तव्यः। 'दीक्षासु यूपं छिनत्ति' इति वचनात्। संस्कारैश्च स क्रियते। तस्माद् दीक्षाकाला एवैते संस्काराः। ननु छेदनमात्रं तत्र यूपस्य श्रूयते, न यूपक्रिया। उच्यते—न किञ्चिद् द्रव्यं यूपाख्यमस्ति यस्य छेदनमुच्येत। तदेतदेवं ज्ञायते—दीक्षासु **छेदनादिभिर्यूपं** करोतीति। छेदनग्रहणं च मुख्यत्वात् प्रदर्शनार्थम्। यत् कारणम्। नासौ छेदनेन केवलेन यूपो भवति इति।…तस्माद् यूपवत् संस्कारा अपि तन्त्रम्।……**सकृन्मानं च दर्शयति**।११।३।४।७।…सकृन्मितं खातं यूपं दर्शयति।…तस्मादपि तन्त्रं संस्काराः।" इति **शाबरभाष्ये**।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १४० पं० २५. **यज्ञसंस्थाभिरग्निष्टोमादिभिरिष्टिभिश्च**···। दृश्यतां टिपृ० ५३ टि० ३।

पृ० १४१ पं० ४. **तदनुष्ठातव्यम्**। दृश्यतां पृ० १५२ पं० १५।

पृ० १४१ पं० ५. **मीमांसकैरेवं**। अत्र **'मीमांसकैरेव'** इति भा० प्रतिस्थः पाठः समीचीनतरः।

पृ० १४१ पं० ६. **यज्ञेन यज्ञम**···। "अथातो धर्मजिज्ञासा ।१।१।१। चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ।१।१।२।···तस्माच्चोदनालक्षणोऽर्थः श्रेयस्करः। एवं तर्हि श्रेयस्करो जिज्ञासितव्यः, किं धर्मजिज्ञासया? उच्यते—य एव श्रेयस्करः स एव धर्मशब्देनोच्यते। कथमवगम्यताम्? यो हि यागमनुतिष्ठति तं धार्मिक इति समाचक्षते। यश्च यस्य कर्ता स तेन व्यपदिश्यते, यथा पाचको लावक इति। तेन यः पुरुषं निःश्रेयसेन संयुनक्ति स धर्मशब्देनोच्यते। न केवलं लोके, वेदेऽपि 'य[1]ज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्' [ऋग्वेद० १०।९०।१५] इति यजतिशब्दवाच्यमेव धर्मं समामनन्ति।" इति **मीमांसादर्शनस्य** शाबरभाष्ये।

पृ० १४१ पं० १८. **भावनस्य······हेतुकर्तृसाधनसाध्यस्य**। भावयतीति भावनः, तस्य भावनस्य, भवन्तं धर्मं भावयत इत्यर्थः। तथा च हेतुकर्तृसाधनोऽयं भावनशब्दः, "[2]स्वतन्त्रः कर्ता। तत्प्रयोजको हेतुश्च।" [पा० १।४।५४–५५] इति हेतुसंज्ञायाः कर्तृसंज्ञायाश्च व्याकरणेन विधानात्।

पृ० १४२ पं० १. **तदनुबन्धाच्चे**···। दृश्यतां पृ० १४६ पं० १०,२०, पृ० १४७ पं० १२, पृ० १४९ पं० २१।

पृ० १४२ पं० १०. **योगविभागा**···।"चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः। [पा० २।१।३६।]·········योगविभागः करिष्यते–'चतुर्थी'। चतुर्थी सुबन्तेन सह समस्यते। ततः 'तदर्थार्थैः'।" इति पातञ्जलमहाभाष्ये ।२।१।३६।

पृ० १४३ पं० १०. **प्रागुक्तविधिना**। प्रथमे विधिनये विस्तरेणाभिहितमेतत्। दृश्यतां पृ० ३५।

पृ० १४३ पं० ११. **च्चानिष्ठ**···। दृश्यतां पृ० ३५ पं० २१ टि० ८, टिपृ० २६ पं० १७।

पृ० १४४ पं० ३–४. **प्राग् नासीत्**···**बाध्यत्वाच्च**। दृश्यतां पृ० १४६ पं० ७।

पृ० १४४ पं० ८. **'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।'** इति मुद्रितायां कैवल्योपनिषदि महानारायणोपनिषदि च दर्शनादस्माभिरप्ययं पाठः स्वीकृतः, तथापि "तथा च वेदेऽप्युक्तम्—न प्रजया न धनेन त्यागेनैकेनामृतत्वमानशुः॥" इति **उत्तराध्ययनसूत्रबृहद्वृत्तौ** [४।१७, पृ० ४०१] दर्शनात् सर्वासु हस्तलिखितनयचक्रप्रतिषु च 'न कर्मणा प्रजाय न धनेन त्यागेनैकेनामृतत्वमानसः' इति पाठोपलब्धेः **'न[3] कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैकेनामृतत्वमानशुः'** इत्यपि पाठः पुरा प्रसिद्ध आसीदिति प्रतिभाति। तथा च 'न[3] कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैकेनामृतत्वमानशुः' इति प्रत्यनुसारी पाठः शुद्ध एवात्र।

पृ० १४४ पं० ११. **पुरुष एवेदं**···। दृश्यतां टिपृ० ५९ पं० २।

पृ० १४५ पं० १७. **काक्वनुमत्या**। "काकुर्ध्वनिविकारः स्यात्···।" इति [4]अभिधानचिन्तामणौ ६।४६।

पृ० १४७ पं० २०. °**कारणभावादतथाता च**। (°कारणभावोऽतथाता च?)।

पृ० १४८ पं० २४. **परान्तर्बुभ्रादि**···। (परान्तबुभ्रादि···)। दृश्यतां पृ० ९० पं० ३,१६।

---

१ "देवाः प्रजापतिप्राणरूपाः यज्ञेन यथोक्तेन मानसेन यज्ञं यथोक्तयज्ञस्वरूपं प्रजापतिमयजन्त पूजितवन्तः। तस्मात् तानि प्रसिद्धानि धर्माणि जगद्रूपविकाराणां धारकाणि प्रथमानि मुख्यान्यासन्"। इति **सायणभाष्ये**। २ "**स्वतन्त्रः कर्ता १।४।५४।** क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्। **तत्प्रयोजको हेतुश्च ।१।४।५५।** कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात्। **हेतुमति च ।३।१।२६।** प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात्। भवन्तं प्रेरयति भावयति।" – **पा० सिद्धान्तकौ०।** ३ हस्तलिखितनयचक्रप्रत्यनुसारेण **'न कर्मणा प्रजया न धनेन त्यागेनैकेनामृतत्वमानशुः'** इत्यपि शुद्धः पाठः स्यादत्र। "न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनै**केनामृत**त्वमानशुः" इति सांख्यकारिकायुक्तिदीपिकायाम् [पृ० १९] उद्धृतः पाठः। ४ "कायत्यर्थान्तरं काकुः पुंस्त्रीलिङ्गः, 'कौशिशामि' –[हैमउणा० ७४९] इति कुः। ककते प्रकृतार्थातिरिक्तं वाञ्छतीति वा, हृदयस्थवस्तुप्रतीतेरीषद्भूमिर्वा काकुः, तद्व्यापारसम्पाद्यत्वाद्वा। ध्वनेर्विकारोऽन्यथापत्तिर्ध्वनिविकारः।" इति **हेमचन्द्रसूरिप्रणीतायाम् अभिधानचिन्तामणिस्वोपज्ञवृत्तौ**।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १४९ पं० १४. **वाचादिशासास्ना…प्रयुक्तस्य चैकार्थत्वात्।** (वाचादिक्सास्ना…प्रयुक्तस्य चैकार्थत्वात्? वा वाग्दिक्सास्ना……प्रयुक्तस्यैकार्थत्वात्?)। 'गौरुदके दृशि स्वर्गे दिशि पशौ रश्मौ वज्रे भूमाविषौ गिरि।" इति अनेकार्थसंग्रहे हैमे, श्लो० ६। दृश्यतां पृ० ५२४ पं० ५।

पृ० १५० पं० ५,२५. **वचनच्छलात्।** "वचनविघातोऽर्थविकल्पोपपत्त्या छलम्। तत् त्रिविधं वाक्छलं सामान्यच्छलमुपचारच्छलं चेति। अविशेषाभिहितेऽर्थे वक्तुरभिप्रायादर्थान्तरकल्पना वाक्छलम्। संभवतोऽर्थस्यातिसामान्ययोगादसंभूतार्थकल्पना सामान्यच्छलम्। धर्मविकल्पनिर्देशेऽर्थसद्भावप्रतिषेध उपचारच्छलम्।" — न्यायसू० १।२।१०–१४। अस्य विस्तरेणार्थो न्यायभाष्यादितोऽवगन्तव्यः।

पृ० १५० पं० १०. **°मिष्यते विवक्ष्यते।** अत्र **°मिष्टतो विवक्ष्यते** इति प्रतिस्थः पाठः समीचीन एवेति स एवादरणीयः, तुलना — "इष्टतो व्यवस्था।"–पा० म० भा० १।३।६०। "इष्टतोऽवधारणार्थः।"–पा० म० भा० २।२।२०।

पृ० १५० पं० १९. **प्राप्तिसंवादि।** दृश्यतां पृ० १४२ पं० ७।

पृ० १५१ पं० ३. **सर्वे…र्थाभावा…।** दृश्यतां पृ० १५१ पं० २५, पृ० १५२ पं० ४,१६।

पृ० १५१ पं० ५. **क्वेदमभिहितं……।** दृश्यतां पृ० १५२ पं० १६।

पृ० १५३ पं० ९. **इतिकर्तव्यताकर्तव्यतया।** इतिकर्तव्यतात्मिकया कर्तव्यतयेत्यर्थोऽत्र य०प्रतिपाठस्वीकारे। '**इतिकर्तव्यतया**' इति भा० प्रतिपाठोऽपि अत्र समीचीन इति ध्येयम्।

पृ० १५३ पं० १०. **कातरसतेन…।** 'कातरशतेन शूरं शूरसहस्रेण पण्डितं भर। अलसं येन वा तेन वा नवरं कृतघ्नं परिहर॥' इत्यर्थः।

पृ० १५३ पं० १८. **घृतं दाहयेदग्निम्।** अत्र 'घृतं दाहयेदग्नौ' इति रम्यं भाति।

पृ० १५४ पं० ११–१२. **इषे[1] त्वोर्जे त्वा…।** कृष्णयजुर्वेदस्य तैत्तिरीयसंहितायां काठकसंहितायां चोपलभ्यमानो मन्त्रपाठ उद्धृतोऽत्र नयचक्रवृत्तिकृता। शुक्लयजुर्वेदे तु '…**वायव स्थ देवो वः**…' इति पाठ इति ध्येयम्।

पृ० १५४ पं० १३. **द्वे विद्ये…।** 'द्वे[2] विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति–परा चैवापरा च॥४॥ तत्रापरा। ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा। यया तदक्षरम-

---

१ "**इषे त्वोर्जे त्वा।** दर्शयागं चिकीर्षुरमावास्यायां प्रातरग्निहोत्रं हुत्वा दर्शयागार्थं 'ममाग्ने वर्चः' इत्यादिभिर्मन्त्रैर्वह्निषु समिदाधानरूपमन्वाधानं कृत्वा वत्सापाकरणार्थमन्त्रेण पलाशशाखां छिन्द्यात्।…। इडित्यन्नम्, सर्वैः प्राणिभिरिष्यमाणत्वात्। **ऊर्क्** बलहेतू रसः। 'ऊर्ज बलप्राणनयोः' [पा० धा० चुरादि०] इति धातुः। ऊर्ज्यते बलं सम्पाद्यतेऽनया रसरूपयेति ऊर्क्। हे पलाशशाखे देवानां भागरूपदध्यर्थं त्वामाच्छिनद्मि। तस्य देवस्य बलप्रदरसार्थं त्वामाच्छिनद्मीति वाक्यार्थः।… **वायवः स्थोपायवः स्थ।**……उप समीपे यजमानगृहे पुनरायन्ति आगच्छन्तीत्युपायवः। हे वत्साः तृणभक्षणाय प्रथमं मातृसकाशादपेत्य स्वेच्छयैवारण्ये गन्तारो भवत। सायं पुनर्यजमानगृहे समागन्तारो भवत।……**देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे।** हे गावः प्रेरको देवोऽन्तर्यामी परमेश्वरोऽत्यन्तश्रेष्ठाय इन्द्रदधिरूपाय कर्मणे युष्मानरण्ये घासमत्तुं प्रार्पयतु प्रेरयत्विति प्रथममन्त्रार्थः।" इति **सायणभाष्ये।** २ "द्वे विद्ये वेदितव्ये ज्ञातव्ये इति एवं ह स्म किल यद् ब्रह्मविदो वेदार्थाभिज्ञाः परमार्थदर्शिनो वदन्ति। के ते इत्याह — परा च परमात्मविद्या, अपरा च धर्माधर्मतत्साधनफलविषया।……उपनिषद्वेद्याक्षरविषयं हि विज्ञानमिह परा विद्येति प्राधान्येन विवक्षितम्, नोपनिषच्छब्दराशिः। वेदशब्देन तु सर्वत्र शब्दराशिर्विवक्षितः। शब्दराश्यधिगमेऽपि यत्नान्तरमन्तरेण गुर्वभिगमनादिलक्षणं वैराग्यं च नाक्षराधिगमः सम्भवतीति पृथक्करणं ब्रह्मविद्यायाः — अथ परा विद्येति।…अद्रेश्यमदृश्यं सर्वेषां बुद्धीन्द्रियाणामगम्यम्।…अग्राह्यं कर्मेन्द्रियाविषयम्।…अगोत्रमनन्वयमित्यर्थः। न हि तस्य मूलमस्ति येनान्वितं स्यात्।…वर्णा द्रव्यधर्माः स्थूलत्वादयः शुक्लत्वादयो वा, अविद्यमाना वर्णा यस्य तदवर्णम्।…चक्षुश्च श्रोत्रं च नामरूपविषये करणे…अविद्यमाने यस्य तदचक्षुःश्रोत्रम्।…तदपाणिपादं कर्मेन्द्रियरहितम्।…नित्यमविनाशि। विभुं विविधं ब्रह्मादिस्थावरान्तप्राणिभेदैर्भवतीति विभुं सर्वगतमाकाशवत्।…शब्दादयः…स्थूलकारणानि, तदभावात् सुसूक्ष्मम्।…न व्येतीत्यव्ययम्।…यदेवंलक्षणं भूतयोनिं भूतानां कारणं परिपश्यन्ति…धीरा धीमन्तो विवेकिनः। ईदृशमक्षरं यया विद्ययाधिगम्यते सा परा विद्येति समुदायार्थः।" इति **शंकराचार्यकृते मुण्डकोपनिषद्भाष्ये।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धिगम्यते ॥५॥ यत् तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥६॥" इति मुण्डकोपनिषदि।

पृ० १५४ पं० २३. **नियोगार्थस्य**। "कोऽयं नियोगो नाम ? निशब्दो निःशेषार्थः, योगार्थो युक्तिः, निरवशेषो योगो नियोगः निरवशेषत्वम् अयोगस्य मनागप्यभावात्। अवश्यकर्तव्यता हि नियोगः।" –प्रमाणवार्तिकालं० पृ० ८। नियोगस्य स्वरूपं प्रकारादिकं च विस्तरेण प्रमाणवार्तिकालङ्कारे [पृ० ८–१५] अष्टसहस्र्यां [पृ० ५–१०] तत्त्वार्थश्लोकवार्तिके [पृ० २६१–२६५] न्यायकुमुदचन्द्र [पृ० ५८२–५८८]प्रभृतिग्रन्थेषु च विलोकनीयम्। "प्रमाणान्तरागोचरः शब्दमात्रालम्बनो 'नियुक्तोऽस्मि' इति प्रत्यात्मवेदनीयः सुखादिवत् अपरामृष्टकालत्रयो लिङ्गादीनामर्थो विधिः।" इति विधिविवेके पृ० ४८।

पृ० १५४ पं० २५,२६. **°जुहोत्यनुवाद इति। व्यत्यया···**। "°जुहोत्यनुवाद **इति चेत्। व्यत्यया···**" इत्यपि पाठः स्यादत्र। दृश्यतां 'पृ०१५४ टि० १२' इत्यत्र भा० प्रतिस्थं पाठान्तरम्।

पृ० १५५ पं० ४–५. **सुप्तिङ्···तदपि च······**। अत्र **'तदपि च'** इत्यस्य स्थाने **'सोऽपि च'** इति पातञ्जलमहाभाष्ये पाठः। अस्याः कारिकाया विस्तरेण व्याख्यानं पातञ्जलमहाभाष्य-सिद्धान्तकौमुद्यादिभ्योऽवगन्तव्यम्।

पृ० १५५ पं० ९. **कोशपान···**। "तुलाग्न्यापो विषं कोशो दिव्यानीह विशुद्धये। महाभियोगेष्वेतानि शीर्षकस्थेऽभियोक्तरि ॥ २।९५ ॥···देवानुग्रान् समभ्यर्च्य तत्स्नानोदकमाहरेत्। संश्राव्य पाययेत् तस्माज्जलं तु प्रसृतित्रयम् ॥२।११२॥ अर्वाक् चतुर्दशादह्नो यस्य नो राजदैविकम्। व्यसनं जायते घोरं स शुद्धः स्यान्न संशयः ॥२।११३॥" इति याज्ञवल्क्यस्मृतौ। "अतः परं प्रवक्ष्यामि कोशस्य विधिमुत्तमम्। शास्त्रविद्भिर्यथा प्रोक्तं सर्वकालाविरोधिनम् ॥ पूर्वाह्णे सोपवासस्य स्नातस्यार्द्रपटस्य च। सशूकस्याव्यसनिनः **कोशपानं** विधीयते ॥ इच्छतः श्रद्दधानस्य देवब्राह्मणसन्निधौ ॥ यद्भक्तः सोऽभियुक्तः स्यात् तद्दैवत्यं तु पाययेत्। अभ्यर्च्य देवतां स्नाप्य जलस्य प्रसृतित्रयम् ॥ सप्ताहाभ्यन्तरे यस्य द्विसप्ताहेन वाऽशुभम्। रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमर्थभ्रंशो धनक्षयः। प्रत्यात्मिकं तु दृश्येत सैव तस्य विभावना ॥" इति नारदस्मृतौ ४।३२७–३३०।

पृ० १५५ पं० १०. **कुत एव ज्ञायते**। (कुत एतज्ज्ञायते ?)।

पृ० १५५ पं० १४. **देशविशेषस्य वा**। दृश्यतां पृ० १२१ पं० ११–१२।

पृ० १५६ पं० ८. **प्रकृताध्ययनक्रियेणेति**। प्रकृता अध्ययनक्रिया येन स प्रकृताध्ययनक्रियः, तेन प्रकृताध्ययनक्रियेण सब्रह्मचारिणा इत्यर्थे यथाश्रुतं साध्वेव। अत्र अस्वारस्ये तु **'प्रकृताध्ययनक्रिययेति'** इति कल्पनीयमत्र।

पृ० १५६ पं० २२. **शब्दार्थयोः······पुनर्वचनं च**। अत्र **'पुनर्वचनं वा'** इति प्रतिस्थः पाठोऽपि सङ्गत एव। "शब्दार्थयोः पुनर्वचनं पुनरुक्तमन्यत्रानुवादात्। [न्यायसू० ५।२।१४], अन्यत्रानुवादात् शब्दपुनरुक्तमर्थपुनरुक्तं वा। 'नित्यः शब्दः, नित्यः शब्दः' इति शब्दपुनरुक्तम्। अर्थपुनरुक्तम् 'अनित्यः शब्दः, निरोधधर्मको ध्वनिः' इति। अनुवादे त्वपुनरुक्तम्, शब्दाभ्यासादर्थविशेषोपपत्तेः। यथा 'हेत्वपदेशात् प्रतिज्ञायाः पुनर्वचनं निगमनम्' [न्यायसू० १।१।३९] इति। अर्थादापन्नस्य स्वशब्देन पुनर्वचनम् [न्यायसू० ५।२।१५], पुनरुक्तमिति प्रकृतम्, निदर्शनम्–'उत्पत्तिधर्मकत्वादनित्यम्' इत्युक्त्वा अर्थादापन्नस्य योऽभिधायकः शब्दस्तेन स्वशब्देन ब्रूयात् 'अनुत्पत्तिधर्मकं नित्यम्' इति। तच्च पुनरुक्तं वेदितव्यम्। अर्थसंप्रत्ययार्थे शब्दप्रयोगे प्रतीतः सोऽर्थोऽर्थापत्त्येति।" इति न्यायभाष्ये।

पृ० १५७ पं० ३. **विधिविषयविप्रकृष्टीभूतार्थत्वात्**। दृश्यतां पृ० १५८ पं० १३।

पृ० १५७ पं० १८. **जुहोतेरनुवादत्वे [वा]**। अत्र '[वा]' इति त्याज्यम्।

पृ० १५८ पं० २४–२७. **गुडस्य चाक्षुष्यत्वात्···चक्षुस्तेजोमयं तस्य···**। अत्र **'गुडस्याचक्षुष्यत्वात्'** इत्येव शुद्धं प्रतीयते। गुडस्य चक्षुर्हितकरत्वाभावादित्यर्थः। एतच्च **'चक्षुस्तेजोमयं तस्य'** इत्यादिना दर्शयति ग्रन्थकारः।

पृ० १५९ पं० २७. **शङ्कुः कदल्यां···उन्मत्तगङ्गप्रतिमं बभूव**। 'उन्मत्तगङ्गप्रतिमम्' इति तत्त्वार्थश्लोकवार्तिके [पृ०२८९] प्रमेयकमलमार्तण्डे [पृ० ६६७] प्रमाणमीमांसायां [पृ० ६८] चोद्धृतः पाठः।

---

१ "शरीरावयवाद् यत्।"–पा० ५।१।६। २ "**चक्षु**रित्यादि। चक्षुरिन्द्रियस्य तैजसस्य **श्लेष्मत** आप्यात् तैजसविरुद्धत्वेन हेतुना **विशेषा**दिति वातपित्तभयादधिकत्वेन **भयं** भवति।" इति चक्रपाणिदत्तविरचितायां चरकसंहितावृत्तौ पृ० ३९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १६० पं० १,१०. त्वन्मतात्तु वेदो···। अत्र 'त्वन्मतात्तु वेदो न ज्ञानं न ज्ञानतः' इति पाठो मूलत्वेन बोध्यः। त्वन्मताद् वेदः स्वयं न ज्ञानम्, न च ज्ञानतो जायते वेदस्यापौरुषेयत्वाङ्गीकारात्। अतः परमार्थत उपचारतो वा वेदस्य चेतनत्वाभाव इत्याशयः।

पृ० १६० पं० ३. कुदुपादि···। अत्र 'कुतुपादि···' इत्यपि शुद्धः पाठः स्यात्। "कुतूः कृत्तेः[1] स्नेहपात्रम्, सैवाल्पा कुतुपः पुमान्।" इति अमरकोषे २।९।३३।

पृ० १६० पं० ४. यदेतद्···। इत आरभ्य पृ० १७१ पर्यन्तं विहितया चर्चया कथञ्चित् समाना चर्चा पृ० ४३०–४३५ मध्येऽपि वर्तत इति तत्रापि विलोकनीयं यथायोगम्।

पृ० १६० पं० १२. °प्राणाम्नत्ववदिति। "°प्राणेऽन्नत्ववदिति' इति भा० प्रत्यनुसारी पाठोऽपि समीचीन एवात्र। "अन्नं वै चन्द्रमाः, अन्नं प्राणाः, उभयमेवोपैत्यजामित्वाय।" इति तैत्तिरीयब्राह्मणे ३।२।३।१९।

पृ० १६१ पं० ३, १३. उभयसत्त्वकार्यसत्त्वयोः। सप्तम्यन्तमेतत्। एतस्मिन् विकल्पद्वये इत्यर्थः।

पृ० १६१ पं० ८, २७. ननु घटसत्त्वं···। तुलना–"सर्वमभावः, भावेष्वितरेतराभावसिद्धेः। न, स्वभावसिद्धेर्भावानाम्।"–न्यायसू० ४।१।३७–३८। अर्थोऽस्य न्यायभाष्यादितोऽवगम्यः।

पृ० १६२ पं० ६,७. सतो वैलक्षण्यात्। अत्र 'सतः' इति षष्ठ्यन्तं ज्ञेयम्।

पृ० १६२ पं० १५. तुल्यजातीयेन [अतुल्यजातीयेन] च। अत्र '[अतुल्यजातीयेन]' इति परिहर्तुं शक्यम्।

पृ० १६३ पं० ८,९. जात्युत्तरता···जातिवादः। असदुत्तरं जातिः। "साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः।" न्यायसू० १।२।१८। विस्तरेण त्वस्याश्चतुर्विंशतिर्भेदा न्यायसूत्रस्य पञ्चमाध्याये प्रथमाह्निके विलोकनीयाः।

पृ० १६५ पं० ५. सङ्गीत्या। सङ्केतेनेत्यर्थः। तुलना–"सङ्गीतिमात्रमत्र प्रत्ययहेतुः, अकृतसङ्केतस्य घटादिप्रत्ययाभावात्।" इति विशेषावश्यकभाष्यस्वोपज्ञवृत्तौ पृ० ५।

पृ० १६५ पं० ८. अग्नेर्मङ्गलनामवत्। "तत्र नाममङ्गलं यज्जीवस्य अजीवस्य उभयस्य वा मङ्गलमिति नाम क्रियते, तद्यथा–सिन्धुविषयेऽग्निर्मङ्गलम्। लाडविषये दवरकवलनकम्। उभयं वन्दनविषयं मालेत्यादि।" इति विशेषावश्यकभाष्यस्वोपज्ञवृत्तौ।

पृ० १६५ पं० ९. एकान्तः। 'कार्यमेव असत्' इत्युक्तौ कार्ये सत्त्वं न निषिध्यते। तथा च कार्यं सदपि असदपि च सम्भवतीत्यतः 'कार्यमसदेव' इत्येकान्तस्य त्यागो बोध्यः।

पृ० १६५ पं० १२. यदि कार्यं कथमसत्···दीपेनेव क्रियेयेति। दृश्यतां पृ० १७१ पं० ३–४।

पृ० १६५ पं० २१. परिहारार्थमथोच्यते। (परिहारार्थमथोच्येत?)।

पृ० १६६ पं० ३, १७. अनुपादानमबुद्धिसिद्धं···। "नासत्, न सत्, न सदसत्; सदसतोर्वैधर्म्यात्। उत्पादव्ययदर्शनात्। बुद्धिसिद्धं तु तदसत्।"–न्यायसू० ४।१।४८–५०। दृश्यतां पृ० ४६० टि० १, पृ० ५०४ टि० ३।

पृ० १६८ पं० १९. यत एव···। "यस्मात् प्रकरणचिन्ता स निर्णयार्थमपदिष्टः प्रकरणसमः।१।२।७।" इति न्यायसूत्रे पाठः। 'पृ० ४३५ पं० ९' इत्यत्र च स एव पाठः स्वीकृतो नयचक्रवृत्तिकृद्भिः। दृश्यतां पृ० ४३५ टि० ४।

पृ० १७२ पं० १०. अज्ञानप्रतिबद्धैकान्तेऽपि चाज्ञानप्रतिबद्धत्वे। दृश्यतां पृ० ११३ पं० १९–२०।

पृ० १७२ पं० २३. सामान्यादिविचारप्रत्याख्यायिनः। षष्ठ्यन्तमेतत्।

पृ० १७३ पं० १८. °सन्निश्रये। अत्र °सन्निश्रये इति भा० प्रतिपाठः समीचीनो भाति, 'तत्त्वेनैक्यम् आश्रित्य न्याय्यः' [पृ० १७३ पं० २,१६] इत्यभिहितत्वात्।

पृ० १७३ पं० २४–२५. भावे घञो······मिति वा। दृश्यतां पृ० १८ पं० २१, पृ० ३८२ पं० १३–१५।

पृ० १७४ पं० १,१०. न च विवि···। अत्र 'न विवि···' इत्यपि पाठः समीचीनो भाति।

---

१ कृत्तिः चर्म। तथा च स्त्रीलिङ्गः 'कुतू'शब्दः चर्ममयस्य तैलघृतादिस्नेहपात्रस्य वाचकः। सैवाल्पा कुतूः पुंलिङ्गेन 'कुतुप'-शब्देन अभिधीयते। २ दृश्यतां पृ० १९० पं० १२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १७४ पं० २,१६,१७. **विधिरुत्सर्गः** । (विधेरुत्सर्गः ?) ।

पृ० १७४ पं० ८. **विविच्यते च** । (विविच्यते न विविच्यते च ?) ।

पृ० १७४ पं० १०. **चेति, प्रतिज्ञा सा** । अत्र 'चेति प्रतिज्ञा, सा' इति सम्यग् भाति । दृश्यतां टिपृ० ६३ पं० ३५ ।

पृ० १७४ पं० १३. **विविच्यते चापि** । (विविच्यतेऽपि ?) ।

पृ० १७४ पं० २०. **विधिर्विधिर्भवति लोके, यथा** । 'विधेर्विधिर्भवति, लोके यथा' इति सम्यग् भात्यत्र ।

पृ० १७५ पं० २. **कः कर्ता ? यः स्वतन्त्रः** । दृश्यतां टिपृ० ६० टि० २ ।

पृ० १७५ पं० ६. **घटभवनव्यवहारवद् मृद्** । अत्र 'घटभवनव्यवहारे मृद्वत्' इत्याशयो भाति ।

पृ० १७५ पं० ७. **उक्तनिरुक्तः** । दृश्यतां पृ० १७३ पं० ७ । दृश्यतां पृ० १९० पं० १२–१३ ।

पृ० १७५ पं० ८. **ज्ञाता ज्ञानशीलो**···। "आ क्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ।३।२।१३४। क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु कर्तृषु बोध्याः । तृन् ।३।२।१३५। कर्ता कटान् ।" – पा० सिद्धान्तकौ० ।

पृ० १७५ पं० ९. **ज्ञानावयवो ज्ञानविकारो वा ज्ञानमयः स उपयोगलक्षणत्वात्** । "तस्य विकारः ।४।३।१३४। अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ।४।३।१३५।···मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ।४।३।१४३। प्रकृतिमात्राद् मयड् वा स्याद् विकारावयवयोः । अश्ममयम् । आश्मनम् । अभक्ष्येत्यादि किम् ? मौद्गः सूपः । कार्पासमाच्छादनम् ।" – पा० सिद्धान्तकौ० । **उपयोगलक्षणत्वात्** । दृश्यतां टिपृ० ४ पं० १६ ।

पृ० १७५ पं० १९. **शर्करा**···। "अथ इक्षुवर्गः – वृष्यः शीतः सरः स्निग्धो बृंहणो मधुरो रसः । श्लेष्मलो भक्षितस्येक्षोर्यान्त्रिकस्तु विदाहकृत् ॥१।२७।२३७॥" इति चरकसंहितायाम् ।

पृ० १७५ पं० २१. **°निष्पन्दनादि** । दृश्यतां पृ० १७५ पं० १२ ।

पृ० १७६ पं० १. **ज्ञस्यैव सुप्तावस्थत्वात्** । मूलमिदं परिहर्तुं शक्यम् ।

पृ० १७६ पं० १,२,१०,१४. **सुप्तावस्थत्वात्** । अत्र भा०प्रत्यनुसारी 'सुप्तावस्थात्वात्' इति पाठ एव साधुः ।

पृ० १७६ पं० ३,४,१६. **यथैव**···। दृश्यतां पृ० १८६ पं० १० ।

पृ० १७६ पं० २५. **कृमि**···। "कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ।" – तत्त्वार्थसू० १।२।२४ ।

पृ० १७६ पं० २६. **रसवीर्यविपाक**···। दृश्यतां टिपृ० ५२ पं० ३८ ।

पृ० १७६ पं० २८,३२. **चित्रकः**···। अयमेव ग्रन्थकारः 'पृ० ३२५ पं० ६' इत्यत्र 'पृ० ३५८ पं० १४' इत्यत्र च चरकसंहितायां दृश्यमानं 'कटुकः कटुकः पाके वीर्योष्णश्चित्रको मतः ।' इति पाठमेवोद्धरति । दृश्यतां पृ० २२५ पं० २६ ।

पृ० १७७ पं० १०. **स्वतत्त्वम्** । अत्र **'स्वं तत्त्वम्'** इत्यपि पाठः प्रत्यनुसारेण स्यात् ।

पृ० १७९ पं० ५. **आ द्रवो**···। आ ईषदित्यर्थः । "दुग्धं क्षीरं पयः समं, द्रप्सं दधि घनेतरत् ॥ घृतमाज्यं हविः सर्पिः, नवनीतं नवोद्धृतम् । तत्तु हैयङ्गवीनं यद् ह्योगोदोहोद्भवं घृतम् ॥ दण्डाहतं कालशेयमरिष्टमपि गोरसः । तक्रं ह्युदश्विन्मथितं पादाम्ब्वर्धाम्बु निर्जलम् ॥ मण्डं दधिभवं मस्तु ।" इति अमरकोषे २।९।५१–५३ ।

पृ० १७९ पं० १०. **जिनवचना**···। "सुनिश्चितं नः परतन्त्रयुक्तिषु स्फुरन्ति याः काश्चन सूक्तिसम्पदः । तवैव ताः पूर्वमहार्णवोत्थिता जगत्प्रमाणं जिनवाक्यविप्रुषः ॥" इति सिद्धसेनसूरिप्रणीतायां द्वात्रिंशिकायाम् १।३० ।

पृ० १७९ पं० १०. **से किं**···। 'अथ को भावपरमाणुः ? भावपरमाणुर्वर्णवान् गन्धवान् रसवान् स्पर्शवान्'

---

१ 'द्रप्सं शिथिलदध्नः 'दगडा' इति ख्यातस्य नाम । दण्डेन मथाहतं विलोडितं दण्डाहतम्, कलश्यां मन्थपात्रे भवं कालशेयम्, अरिष्टमक्षेमं यस्मात् तदरिष्टम्, गोरसस्य दुग्धस्य विकारत्वादुपचाराद् गोरसः । एतानि चत्वारि **घोलस्य** नामानि । तक्रम् उदश्वित् मथितमिति त्रीणि नामानि चतुर्थांशजलघोल-अर्धजलघोल-निर्जलघोलानां नामानि । **मण्डं** वस्त्रनिःसृतदधिजलस्य नाम, दध्न उपरिभागस्य इत्यन्ये ।' इति **अमरकोशसुधाव्याख्यायाम्** ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यर्थः। "कइविहे णं भंते! परमाणुपोग्गले पण्णत्ते? गोयमा! चउव्विहे परमाणुपोग्गले पण्णत्ते। तं जहा—दव्वपरमाणु, खेत्तपरमाणु, कालपरमाणु, भावपरमाणु।…" इति भगवतीसूत्रे।

पृ० १७९ पं० १५. **परस्परत उत्कर्षभेदः**। अत्र 'परस्परमुत्कर्षभेदः' इति प्रत्यनुसारी पाठोऽपि शुद्धः।

पृ० १८१ पं० १५. **सर्वप्रमाणज्येष्ठ**…। दृश्यतां टिपृ० ३१ पं० २७–२९।

पृ० १८१ पं० २५. **कुण्डका**…। "कणकुंडगं जहित्ता णं…॥" इति उत्तराध्ययनसूत्रे १।५।

पृ० १८२ पं० २,१५,१८. **सुख…ऊर्ध्वतिर्यग**…। "अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योनश्च पञ्चधा भवति। मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः॥ ५३॥ "ऊर्ध्वं सत्त्वविशालस्तमोविशालश्च मूलतः सर्गः। मध्ये रजोविशालो ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तः॥५४॥"—सांख्यका०।

पृ० १८२ पं० १३. **जं जं जे जे**…। दृश्यतां पृ० ४७८ पं० ४ टि० १, पृ० २१२ पं० १९।

पृ० १८२ पं० १६. **प्रसादलाघव**…। दृश्यतां पृ० १२ पं० १९।

पृ० १८२ पं० १९. **संज्ञिनः समनस्काः**। "संज्ञिनः समनस्काः।२।२५। सम्प्रधारणसंज्ञायां संज्ञिनो जीवाः समनस्का भवन्ति। सर्वे नारकदेवा गर्भव्युत्क्रान्तयश्च मनुजाः तिर्यग्योनिजाश्च केचित्। ईहापोहयुक्ता गुणदोषविचारणात्मिका सम्प्रधारणसंज्ञा, तां प्रति संज्ञिनो विवक्षिताः। अन्यथा हि आहार-भय-मैथुन-परिग्रहसंज्ञाभिः सर्वे एव जीवाः संज्ञिन इति।"—तत्त्वार्थभा०।

पृ० १८२ पं० २४. **मिथ्यादृष्ट्यादिका**। दृश्यतां टिपृ० ६६ टि० १।

पृ० १८२ पं० २५. **सम्यग्दर्शन**…। "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।"—तत्त्वार्थसू० १।१।

पृ० १८२ पं० २६. **ज्ञानदर्शना**…। "आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुष्कनामगोत्रान्तरायाः।"—तत्त्वार्थसू० ८।५। विघ्नोऽन्तराय इत्यर्थः।

पृ० १८३ पं० ५. **स्त्यानर्द्ध्युदय**…। "चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-**स्त्यानगृद्धि**वेदनीयानि।"—तत्त्वार्थसू० ८।८। **स्त्यानर्द्धि**र्नाम तीव्रो निद्राविशेषः।

पृ० १८३ पं० ६. **सुत्ता**…। 'सुप्ता अमुनयः सदा, मुनयः सदा जाग्रति' इत्यर्थः। "सुत्ता अमुणी मुणिणो सययं जागरंति।" इति आचाराङ्गसूत्रे सम्प्रति उपलभ्यते पाठः।

---

१ "**कई**त्यादि। तत्र द्रव्यरूपः परमाणुर्द्रव्यपरमाणुः एकोऽणुः, वर्णादिभावानामविवक्षणाद् द्रव्यत्वस्यैव च विवक्षणादिति। एवं क्षेत्रपरमाणुराकाशप्रदेशः। कालपरमाणुः समयः। भावपरमाणुः परमाणुरेव वर्णादिभावानां प्राधान्यविवक्षणात्, सर्वजघन्यकालत्वादिर्वा।" इति अभयदेवसूरिरचितायां वृत्तौ। २ "**कणा** णाम तंदुला, **कुंडगा** कुक्कुसाः, कणानां कुंडगाः, कणमिस्सो वा कुण्डकः कणकुंडकः, सो य वुद्धिकरो सूयराणं प्रियश्च।"—उत्तराध्ययनचूर्णि. पृ० २७। "**कणाः** तन्दुलाः, तेषां तन्मिश्रो वा **कुण्डकः** तत्क्षोदनोत्पन्नकुक्कुसः कणकुण्डकः।"—उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति. पृ० ४५ B। ३ अस्याः कारिकाया व्याख्या 'पृ० ३१५ टि० ५' इत्यत्र द्रष्टव्या। "**ऊर्ध्व**मिति ब्रह्मादिपिशाचान्तो योऽष्टविधः सर्गः असौ सत्त्वबहुलः।…तस्मात् सुखप्राया देवाः। **तमोविशालश्च मूलतः** पश्वादिषु तमस उद्रेकात् पश्वादिः स्थावरपर्यन्तः।…तस्मात् ते तमोबहुलाः। **मध्ये रजोविशालः**,…तस्मात् ते दुःखप्राया मनुष्याः।" इति **सांख्यकारिकाया माठरवृत्तौ**। "**ऊर्ध्वं** सत्त्वविशाल इति। द्युप्रभृतिसत्यान्तो लोकः सत्त्वबहुलः। **तमो**विशालश्च मूलतः सर्गः पश्वादिः स्थावरान्तः। सोऽयं मोहमयत्वात् तमोबहुलः। भूर्लोकस्तु सप्तद्वीपसमुद्रसन्निवेशो **मध्ये** रजोविशालः, धर्माधर्मानुष्ठानपरत्वाद् दुःखबहुलत्वाच्च। तामिमां लोकस्थितिं संक्षिपति—**ब्रह्मा**दिस्तम्बपर्यन्तः। स्तम्बग्रहणेन वृक्षादयः [=स्थावराः] संगृहीताः।" इति **सां**ख्यतत्त्वकौमुद्याम्। ४ "**सुत्ता** इत्यादि। इह सुप्ता द्वेधा द्रव्यतो भावतश्च। तत्र निद्राप्रमादापन्ना द्रव्यसुप्ताः, भावसुप्तास्तु मिथ्यात्वाज्ञानमयमहानिद्राव्यामोहिताः। ततो **येऽमुनयः** मिथ्यादृष्टयः सततं भावसुप्ताः [ते], सद्विज्ञानानुष्ठानरहितत्वात्, निद्रया तु भजनीयाः। मुनयस्तु सद्बोधोपेता मोक्षमार्गादचलन्तस्ते **सतत**मनवरतं **जाग्रति** हिताहितप्राप्तिपरिहारं कुर्वते।

1 द्यौः अन्तरिक्षं भूःसमीपे भुवर्लोकः, तथा च भुवःस्वर्महर्जनस्तपःसत्यलोका अत्र गृहीताः।

नय० टि० ९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १८३ पं० १२. **दर्शनचारित्र**···। "मोहनीयबन्धो द्विविधः–दर्शनमोहनीयाख्यश्चारित्रमोहनीयाख्यश्च।"–तत्त्वार्थभा० ८।९।

पृ० १८३ पं० १५,२५. **यदा तु···श्रमान्विताः**। अतिस्थौल्यकार्श्यचिकित्सायामयं चरकसंहितायां श्लोकः।

पृ० १८३ पं० १७,२७. **अष्टादश**···। "ज्ञानं चतुर्भेदं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं मनःपर्यायज्ञानमिति। अज्ञानं त्रिभेदं मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं विभङ्गज्ञानमिति। दर्शनं त्रिभेदं चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनमिति। लब्धयः पञ्चविधा दानलब्धिर्लाभलब्धिर्भोगलब्धिरुपभोगलब्धिर्वीर्यलब्धिरिति। सम्यक्त्वं चारित्रं संयमासंयम इत्येतेऽष्टादश क्षायोपशमिका भावा भवन्तीति।"–तत्त्वार्थभा० २।५।

पृ० १८३ पं० १८. **ज्ञानदर्शनवीर्य**···। दृश्यतां पृ० ४७७ पं० १,९, पृ० ३७२ पं० २२।

पृ० १८३ पं० १९–२१. **निर्वर्तितानि···भावेन्द्रियम्**। दृश्यतां पृ० ४७४ टि० १०, पृ० ४७६ टि० २।

पृ० १८३ पं० २३,३०. **णो सुत्ते**···, 'नो सुप्तः स्वप्नं पश्यति, सुप्तजागरिकायां वर्तमानः स्वप्नं पश्यति' इत्यर्थः।

पृ० १८५ पं० १६–१७. **निद्रा···चैतन्यविशेषः**[3]। दृश्यतां टिपृ० ६५ पं० १९।

पृ० १८६ पं० १,९. **प्रत्यग्र**···। "प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नवः॥ नूत्नश्च"–अमरको० ३।१।७७।

पृ० १८६ पं० ४. **आपद्यते**। अत्र 'आपद्यते कर्मादि पृथिव्यादि च' इत्यपि पाठः स्यात्। दृश्यतां पृ० १८६ पं० २४,२५।

पृ० १८६ पं० १५–१६. **मिथ्या**[4]···। "सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते।"–तत्त्वार्थसू० ८।२।

पृ० १८६ पं० १९ **पुव्विं**···। दृश्यतां पृ० ३६२ पं० ९–११। 'पूर्वं भदन्त! कुक्कुटी पश्चादण्डकम्? पूर्वमण्डकं पश्चात् कुक्कुटी? **रोह**! या सा कुक्कुटी सा कुतः? अण्डकतः। यत् तदण्डकं तत् कुतः? कुक्कुटीतः। एवं **रोह**! पूर्वमपि एते पश्चादप्येते। द्वावप्येतौ शाश्वतौ भावौ। अनानुपूर्वी एषा **रोह**!' इत्यर्थः।

पृ० १८६ पं० २३. **सव्वजीव**···। दृश्यतां पृ० ३६१ पं० ५–८। 'सर्वे जीवा भदन्त! एकैकस्य मातृतया पितृतया भ्रातृतया भार्यातया पुत्रतया दुहितृतया? **गौतम**! असकृत् अथवा अनन्तकृत्वः।' इत्यर्थः।

पृ० १८६ पं० २४–२५. **उच्छ्वासनिःश्वासभाषामनस्त्वादिकार्मण**···। दृश्यतां पृ० ३४८–३४९।

अतो द्रव्यनिद्रोपगता अपि क्वचिद् द्वितीयपौरुष्यादौ सततं जागरूका एव।" इति **आचाराङ्गसूत्रस्य शीलाङ्काचार्यरचितवृत्तौ**। "या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥" इति **भगवद्गीतायाम्** २।६९।

१ "सम्प्रति प्रस्तावागतं स्थौल्यकार्श्यचिकित्साप्रधानभूतं स्वप्नं निद्रारूपं सर्वतो निरूपयति–**यदा** त्वित्यादि। **मनसीति** अन्तःकरणे, किंवा मनोयुक्त आत्मा मन इत्युच्यते। तस्मिन् क्लान्त इति निष्क्रिये। **कर्मात्मान** इति इन्द्रियाणि। **क्लमान्विताः** क्रियारहिताः। **विषयेभ्यो** रूपादिभ्यः। मनसोऽप्रवृत्त्या इन्द्रियाण्यपि न प्रवर्तन्त इति भावः। **तदा** स्वपितीति स्वप्नगुणयुक्तो भवति। स्वप्नश्च निरिन्द्रियप्रदेशे मनोऽवस्थानम्। किंवा कर्मात्मानः संसार्यात्मानः। मनसि क्लान्ते आत्मानः क्लान्ता भवन्ति, मनोधीनप्रवृत्तित्वादात्मनाम्। ततश्च मनोनिवृत्त्या आत्मानोऽपि न विषयान् गृह्णन्ति। इन्द्रियाणि चात्मनोऽप्रवृत्त्यैव न प्रवर्तन्ते।"–इति **चक्रपाणिदत्तविरचितायां चरकसंहितावृत्तौ** पृ० ११८। २ "स्वप्नाधिकारादेवेदमभिधातुमाह–**सुत्ते ण**मित्यादि। **सुत्तजागरे**त्ति नातिसुप्तो नातिजाग्रदित्यर्थः।" इति **भगवतीसूत्रस्य अभयदेवसूरिरचितवृत्तौ**। ३ अचेतनस्य भाव आचैतन्यम्। ४ "मिथ्यादर्शनम् अविरतिः प्रमादः कषाया योगा इत्येते पञ्च बन्धहेतवो भवन्ति। तत्र सम्यग्दर्शनाद् विपरीतं मिथ्यादर्शनम्। तद् द्विविधम्—अभिगृहीतमनभिगृहीतं च। तत्र अभ्युपेत्य असम्यग्दर्शनपरिग्रहोऽभिगृहीतमज्ञानिकादीनां त्रयाणां त्रिषष्टानां कुवादिशतानाम्। शेषमनभिगृहीतम्। यथोक्ताया विरतेर्विपरीता अविरतिः। प्रमादः स्मृत्यनवस्थानं कुशलेष्वनादरो योगदुष्प्रणिधानं चैष प्रमादः। कषाया मोहनीये वक्ष्यन्ते [८।१०]। योगस्त्रिविधः पूर्वोक्तः [६।१]। एषां मिथ्यादर्शनादीनां बन्धहेतूनां पूर्वस्मिन् पूर्वस्मिन् सति नियतमुत्तरेषां भावः। उत्तरोत्तरभावे तु पूर्वेषामनियम इति। **सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते**। **कर्मयोग्यानिति** अष्टविधे पुद्गलग्रहणकर्मशरीरग्रहणयोग्यानि। **नामप्रत्ययाः सर्वतो योगप्रत्ययादिति** वक्ष्यते [८।२५]।" इति **तत्त्वार्थभाष्ये** ८।१-२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १८८ पं० १०. **श्वेतिका**···। अत्र 'श्वेतिका'शब्देन श्वेतवर्णा 'पीतिका'शब्देन च पीतवर्णा मृद् विवक्षिता।

पृ० १८९ पं० ५. **पुरुष एवेदं**···। दृश्यतां टिपृ० ५९ पं० २ टि० १।

पृ० १८९ पं० २१, २७. **औषधव्यञ्जनादीनि**। अत्र हस्तलिखितप्रत्यनुसारेण 'औषधाभ्यञ्जनादीनि' इति पाठः शुद्धः प्रतीयते, पादाभ्यञ्जनादेर्नेत्रोपकारित्वात्। दृश्यतां पृ० ४७५ पं० १, पृ० ३७२ पं० २१।

पृ० १८९ पं० २४, २८. **एकोऽप्यह**···। दृश्यतां पृ० २४५ पं० १-७।

पृ० १९० पं० ७-९. **अक्खरस्स···चंदसूराणं**। "सैव्वागासपएसग्गं सव्वागासपएसेहिं अणंतगुणिअं पज्ज-वग्गक्खरं निप्फज्जइ। सव्वजीवाणं पि अ णं अक्खरस्स अणंतभागो णिच्चुग्घाडिओ। जैति पुण सो वि वरिज्जेज्ज तेण जीवो

---

१ "अथ···भगवतो वस्तुतत्त्वज्ञानजिज्ञासयाह-**एगे भव**मित्यादि। एको भवानिति एकत्वाभ्युपगमे भगवता आत्मनः कृते श्रोत्रादिविज्ञानानामवयवानां चात्मनोऽनेकतोपलब्धित एकत्वं दूषयिष्यामीति बुद्ध्या पर्यनुयोगः **सो**मिलभट्टेन कृतः। द्वौ भवानिति च द्वित्वाभ्युपगमे अहमित्येकत्वविशिष्टस्यार्थस्य द्वित्वविरोधेन द्वित्वं दूषयिष्यामीति बुद्ध्या पर्यनुयोगो विहितः। **अक्खये भव**मित्यादिना च पदत्रयेण नित्यात्मपक्षः पर्यनुयुक्तः। **अणेगभूयभावभविए भवं**ति अनेके **भू**ता अतीता **भा**वाः सत्तापरिणामा **भ**व्याश्च भाविनो यस्य स तथा। **अनेन** चातीतभविष्यत्सत्ताप्रश्नेन अनित्यात्मपक्षः पर्यनुयुक्तः, एकतरपरिग्रहे तस्यैव दूषणायेति। तत्र च भगवता स्याद्वादस्य निखिलदोषगोचरातिक्रान्तत्वात् तमवलम्ब्य उत्तरमदायि-**एगेवि अह**-मित्यादि। कथमेतदित्याह-**दव्वट्ठयाए एगोऽहं**ति। जीवद्रव्यस्य एकत्वेन एकोऽहम्। न तु प्रदेशार्थतया, तया ह्यनेकत्वाद ममेत्यवयवादीनामनेकत्वोपलम्भो न बाधकः। तथा च कञ्चित् स्वभावमाश्रित्य एकत्वसंख्याविशिष्टस्यापि पदार्थस्य स्वभावान्तर-द्वयापेक्षया द्वित्वमपि न विरुद्धमित्यत उक्तं **नाणदंसणट्ठयाए दुवेवि अहं**ति। न चैकस्य स्वभावभेदो न दृश्यते, एको हि देवदत्तादिः पुरुष एकदैव तत्तदपेक्षया पितृत्वपुत्रत्वभ्रातृत्वभ्रातृव्यत्वादीननेकान् स्वभावाँल्लभत इति। तथा प्रदेशार्थतया असंख्येयप्रदेशतामाश्रित्य **अक्खतोऽप्यहं** सर्वथा प्रदेशानां क्षयाभावात्। तथा **अव्ययोऽप्यहम्**, कतिपयानामपि च व्ययाभावात्। किमुक्तं भवति? **अवस्थितोऽप्यहम्**, नित्योऽप्यहम्, असंख्येयप्रदेशिता हि न कदाचनापि व्यपैति, अतो नित्यताभ्युपगमेऽपि न दोषः। तथा **उवओगट्ठयाए**त्ति विविधविषयान् उपयोगानाश्रित्य **अनेकभूतभावभविकोऽप्यहम्**। अतीतानागतयोर्हि कालयोरनेकविषयबोधानामात्मनः कथञ्चिदभिन्नानां भूतत्वाद् भावित्वाच्चेत्यनित्यपक्षोऽपि न दोषायेति।" इति **अभयदेवसूरि**रचितायां **भ**गवतीसूत्रवृत्तौ। ज्ञाताधर्मकथासूत्रेऽपि पञ्चमाध्ययने **शु**कपरिव्राजकप्रश्ने एतादृश्येव **अभयदेवसूरि**रचिता वृत्तिः। २ "**सव्वागासे**त्यादि। सर्वं च तदाकाशं च सर्वाकाशम्, लोकालोकाकाशमित्यर्थः। तस्य प्रदेशा निर्विभागा भागाः सर्वाकाशप्रदेशाः, तेषामग्रं परिमाणं सर्वाकाशप्रदेशाग्रम्, तत् सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तगुणितमनन्तशो गुणितमेकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशेऽ-नन्तागुरुलघुपर्यायभावात् पर्यायाग्राक्षरं निष्पद्यते पर्यायपरिमाणाक्षरं निष्पद्यते। इयमत्र भावना-सर्वाकाशप्रदेशपरिमाणं सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तशो गुणितं यावत्परिमाणं भवति तावत्प्रमाणं सर्वाकाशपर्यायाणामग्रं भवति। एकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशे यावन्तोऽगुरुलघुपर्यायास्ते सर्वेऽपि एकत्र पिण्डिता एतावन्तो भवन्तीत्यर्थः। एतावत्प्रमाणं चाक्षरं भवति।·········इह यद्यपि **सर्वं** ज्ञानमविशेषेणाक्षरमुच्यते सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं च भवति तथापि श्रुताधिकारादिहाक्षरं श्रुतज्ञानमवसेयम्। श्रुतज्ञानं च मतिज्ञानाविनाभूतं ततो मतिज्ञानमपि।···**सव्वजीवाणं पी**त्यादि। सर्वजीवानामपि **ण**मिति वाक्यालङ्कारे अक्षरस्य श्रुतज्ञानस्य श्रुतज्ञानं च मतिज्ञानाविनाभावि ततो मतिज्ञानस्यापि **अनन्तभागः** अनन्ततमो भागो नित्योद्घाटः सर्वदैवाप्रावृतः।···तथा चाह-**जइ पुण** इत्यादि। यदि पुनः सोऽपि अनन्ततमो भाग आव्रियेत **तेन** तर्हि जीवोऽजीवत्वं प्राप्नुयात्। जीवो हि नाम चैतन्यलक्षणः, ततो यदि प्रबलश्रुतावरणस्त्यानर्द्धिनिद्रोदयभावे चैतन्यमात्रमप्याव्रियेत तर्हि जीवस्य स्वस्वभावपरित्यागादजीवतैव संपनीपद्येत।···अत्रैव दृष्टान्तमाह-**सुट्ठुवी**त्यादि। सुष्ठ्वपि मेघसमुदये भवति प्रभा चन्द्रसूर्ययोः।···यथा निबिडनिबिडतर-मेघपटलैराच्छादितयोरपि सूर्याचन्द्रमसोर्नैकान्तेन तत्प्रभानाशः···एवमनन्तानन्तैरपि ज्ञानदर्शनावरणकर्मपरमाणुभिरेकैकस्यात्म-प्रदेशस्य आवेष्टितपरिवेष्टितस्यापि नैकान्तेन चैतन्यमात्रस्याप्यभावो भवति।···अतः सिद्धोऽक्षरस्य अनन्ततमो भागो नित्योद्घा-टितः।" इति **नन्दीसूत्रस्य मलयगिरि**रचितायां वृत्तौ। ३ दृश्यतां पृ० ३५१ पं० ४,५,६,२८। "अहवा सव्वजहण्णो अणंतभागो निच्चुग्घाडो पुढविक्काए, चैतन्यमात्रमात्मनः। तं च उक्कोसथीणिद्धिसहितनाणदंसणावरणोदए वि णो आवरिज्जति। **जति पुण सो वि वरिज्जेज्ज तेण जीवो अजीवयं पावे। सुट्ठु**···" इति **जे**सलमेरस्थायां **जिनदास**गणिमहत्तर-रचितायां **नन्दीचूर्णौ** पाठं दृष्ट्वा 'पुरा अयं पाठो **नन्दीसूत्रे** प्रसिद्ध आसीत्' इत्यनुमाय निर्दिष्टोऽयमस्माभिः पाठः। सम्प्रति तु नन्दीसूत्रे '**जति पुण सो वि आवरिज्जा तेण जीवो अजीवत्तं पावेज्ज। सुट्ठु**···' ईदृशः पाठ उपलभ्यते इति ध्येयम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजीवयं पावे । सुट्ठुवि मेहसमुदए होइ पभा चंदसूराणं ॥ से तं साईयं सपज्जवसियं, से तं अणाइयं अपज्जवसिअं।" इति नन्दीसूत्रे [सू० ४२] पाठ उपलभ्यते। "तेन विज्ञानमविनाभावित्वात् सिद्धमेव, शब्दानुविद्धत्वं तु साध्यत इति। नैतत् स्वाभिप्रेतोपपत्तिबलादेव, किं तर्हि? भगवदाज्ञापि तथोपश्रूयते—सव्वजीवाणं पीत्यादि । 'अक्खराणक्खरसुता'-दिभेदेन श्रुतज्ञानप्ररूपणायामेकेन्द्रियादिस्वामिकमुक्तं सूत्रे, तथा भाष्येऽपि—तं पि जति आवरिज्जेज्ज तेण जीवो अजीवत्तं पावे। सुट्ठुवि मेहसमुदए होइ पभा चंदसूराणं॥" इति अष्टमारे नयचक्रवृत्तौ वक्ष्यते [पृ० ३७४-१], तदनुसारेण नयचक्रवृत्तिकृतां समये नन्दीसूत्रं तद्भाष्यं च पृथक् पृथगासीदिति प्रतीयते। कस्मिंश्चित् समये तु बृहत्कल्पसूत्रनिर्युक्ति-भाष्यवत् तदुभयं परस्परं सम्मील्य एकीभूतं 'नन्दीसूत्र'नाम्नैव च उभयमपि प्रसिद्धिमापन्नमिति प्रतिभाति।

पृ० १९० पं० १०. अद्यते। "अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते।"—इति तैत्तिरीयोपनिषदि २।२।

पृ० १९० पं० १०-११. अनाद्यनन्तशोऽपि विपरि°। अत्र 'अनाद्यनन्तशो विपरिवर्तितत्वात्' इति भा०-प्रत्यनुसारी पाठः साधुः प्रतिभाति।

पृ० १९० पं० १३. नाज्ञस्यैतत्। अत्र 'नान्यस्यैतत्' इति भा०प्रति पाठःसाधुर्भाति, पुरुषादन्यस्यैतत् सर्वं न घटत इत्याशयः। दृश्यतां पृ० १८९ पं० २६।

पृ० १९० पं० १८. भोक्तृभोग्य···। "भोज्यं भक्ष्ये ।७।३।६९। भोग्यमन्यत्।"—पा० सिद्धान्तकौ०। अत्र 'गिलति' इति शब्ददर्शनाद् भोज्यत्वं चेद् विवक्षितं तदा 'भोक्तृभोज्यभावाद्' इति हस्तलिखितप्रतिस्थः पाठोऽपि साधुः।

पृ० १९० पं० २५-२६. स्वात्मनि···छिनत्तीति। "स्वात्मनि वृत्तिविरोधात्। न हि तदेव अङ्गुल्यग्रं तेनैवाङ्गु-ल्यग्रेण स्पृश्यते सैवासिधारा तयैवासिधारया छिद्यते।"—अभिधर्मकोशस्फुटार्था० १।३९। मध्यमकवृत्ति० पृ० ६२-६३।

पृ० १९१ पं० १,५. तन्त्रवायक···। अत्र भा०प्रत्यनुसारी 'तन्त्रवायकोशकारक' इति पाठोऽपि साधुः। "लूता स्त्री तन्तुवायोर्णनाभमर्कटकाः समाः।२।५।१३।···तन्त्रं तन्तून् वयति तन्त्रवायः इति स्वामी।"—अमरकोषसुधा०।

पृ० १९१ पं० ७-८. [1]यथोर्णनाभिः···केशलोमानीति वा यथा सुदीप्तात्···तथाक्षरात्···। मुण्डकोप-निषदि 'केशलोमानि' इत्यस्यानन्तरं 'तथाक्षरात्···' इति पाठोपलम्भेऽपि तत्र वक्ष्यमाणं 'यथा सुदीप्तात्···' इति चतुर्थमुदाहरणं लाघवार्थात्रैवोपन्यस्तं नयचक्रवृत्तिकृद्भिरिति भाति।

पृ० १९१ पं० १७. अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां···। दृश्यतां पृ० २६६ पं० ६,२६।

पृ० १९१ पं० २२. कः कण्टकानां···। आचाराङ्ग-सूत्रकृताङ्गसूत्रयोः शीलाङ्काचार्यकृतवृत्तौ उत्पादादिसिद्धि-षड्-दर्शनसमुच्चयबृहद्वृत्तिप्रभृतिग्रन्थेषु चोद्धृतेयं कारिका। "कण्टकस्य च तीक्ष्णत्वं मयूरस्य विचित्रता। वर्णाश्च ताम्रचूडानां स्वभावेन भवन्ति हि॥" इत्यप्युद्धृतं पद्यं शीलाङ्काचार्यकृतायां सूत्रकृताङ्गवृत्तौ।

पृ० १९२ पं० २, २७. "बहुधानमिति, धाना बीजानि, तदेवैकं सर्वबीजकम्।"—वृषभदेवटी० पृ० २०।

---

१ दृश्यतां टिपृ० ९ पं० ३१ टि० ७। २ दृश्यतां पृ० १९१ टि० ४। "यथा लोके प्रसिद्ध उर्णनाभिर्लूताकीटः किञ्चित् कारणान्तरमनपेक्ष्य स्वयमेव सृजते स्वशरीराव्यतिरिक्तान् तन्तून् बहिः प्रसारयति पुनस्तानेव गृह्णते च गृह्णाति स्वात्म-भावमेवापादयति। यथा च पृथिव्यामोषधयो व्रीह्यादिस्थावराणीत्यर्थः, स्वात्माव्यतिरिक्ता एव सम्भवन्ति प्रभवन्ति। यथा च सतो विद्यमानाज्जीवतः पुरुषात्···केशाश्च लोमानि च सम्भवन्ति विलक्षणानि। यथैते दृष्टान्तास्तथा विलक्षणं सलक्षणं च निमित्तान्तराद्यनपेक्षाद् यथोक्तलक्षणादक्षरात् सम्भवति समुत्पद्यत इह संसारमण्डले विश्वं समस्तं जगत्। अनेकदृष्टान्तोपादानं तु सुखार्थप्रबोधनार्थम्।·········दृष्टान्तमाह—यथा सुदीप्तात् सुष्ठु दीप्तादिद्धात् पावकादग्नेर्विस्फुलिङ्गाः अग्न्यवयवाः सहस्र-शोऽनेकशः प्रभवन्ते निर्गच्छन्ति सरूपा अग्निलक्षणा एव, तथोक्तलक्षणादक्षराद् विविधा···हे सोम्य! भावा जीवाः···प्रजायन्ते तत्र चैव तस्मिन्नेवाक्षरेऽपियन्ति देहोपाधिविलयमनु विलीयन्ते···अक्षरस्यापि नामरूपकृतदेहोपाधिनिमित्तमेव जीवोत्पत्तिप्रलय-निमित्तत्वम्।" इति शंकराचार्यरचिते मुण्डकोपनिषद्भाष्ये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० १९२ पं० ३,१६, ३१. **तदुपान्तिके** । (तदु वान्तिके ?) ।

पृ० १९२ पं० १३. **बहूनामाश्रयः** । (बहूनां धानमाश्रयः ?) । दृश्यतां पृ० २६५ पं० ८ ।

पृ० १९२ पं० १४. **यच्च चेतनं** । अत्र **यच्चेतनं** इति य०प्रतिस्थः पाठः समीचीनः ।

पृ० १९२ पं० १६. **अलोके** । धर्माधर्मावच्छिन्नमाकाशं लोकः, तदनवच्छिन्नमाकाशमलोकः ।

पृ० १९३ पं० २, १७. **वितट** । "प्रपातस्त्वतटो भृगुः ॥" – अमरको० ।२।३।४।

पृ० १९३ पं० ९. **सर्वज्ञमेव** । (सर्वज्ञ एव ?) ।

पृ० १९४ पं० ३. **प्राप्तव्यो**··· । आचाराङ्गसूत्रवृत्तिप्रभृतिषु उद्धृतेयं कारिका ।

पृ० १९४ पं० १७. **जिनवचनोपजीवनम्** । (जिनवचनोपजीविनाम् ?) । दृश्यतां पृ० १९४ टि० ४ ।

पृ० १९५ पं० १५–१६. **कोऽसौ भेदो नाम नियतेरपि? क्रियासाध्यासाध्यार्थरूपत्वाद्** । अत्र '**कोऽसौ भेदो नाम? नियतेरपि क्रिया-क्रियासाध्यासाध्यार्थरूपत्वाद्**' इति य०प्रत्यनुसारी पाठो योजना च सम्यक् प्रतीयेते । दृश्यतां पृ० १९५ पं० २१ ।

पृ० १९५ पं० २२. **सत्यप्यभेदबुद्ध्याभासभावे सतीति** । अत्र '**सत्यप्यभेदबुद्ध्याभासभावेऽसतीति**' इति पाठः स्यात् ।

पृ० १९५ पं० २३. **परमार्थतो भेदः** । अत्र '**परमार्थतोऽभेदः**' इति पाठो रम्यो भाति ।

पृ० १९५ पं० २५. **तदा तदाभासाद्** । अत्र '**तदाऽभेदाभासाद्**' इति पाठो रम्यो भाति ।

पृ० १९६ पं० ४, २७. **बाल्यकौमार**··· । दृश्यतां पृ० २०६ पं० १४ ।

पृ० १९७ पं० ६–७. **नियतताया···उत्पत्तेः** । अत्र 'नियततायाः' इत्यस्य 'उत्पत्तेः' इत्यादिना सम्बन्धः ।

पृ० १९७ पं० २१–२२. **व्रीहि···भेदाद्वा भिन्ना** । व्रीहिरित्येका अङ्कुरादिभेदाद् भिन्ना । अथवा अङ्कुर इत्यभिन्ना रूपादिभेदाद् भिन्ना नियतिरित्याशयोऽत्र भाति ।

पृ० १९८ पं० ६,१६,१९,२३. **स्त्रीपुंस**··· । अचतुरविचतुर**स्त्रीपुंस**धेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीव-पदष्ठीवनक्तन्दिवरात्रिन्दिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः [पा० ५।४।७७] । एते पञ्चविंशतिरजन्ता निपात्यन्ते······ ।" – पा० सिद्धान्तकौ० ।

पृ० १९९ पं० १. **मृद्द्रव्य**··· । अत्र 'मृदूर्ध्वादित्वेन' इति 'मृदूर्ध्वादित्वघटत्वेन' इति वा पाठोऽपि स्यात् ।

पृ० १९९ पं० ४. **एवं** । अत्र '**एवं च**' इति पठनीयम् ।

पृ० १९९ पं० ५. **अन्यत्रविधानप्रतिषेध**° । अन्यत्र विधानं यस्मिन् प्रतिषेधे विवक्षितं सोऽन्यत्रविधानप्रतिषेधः ।

पृ० १९९ पं० ७. **अस्तिभवति**···। दृश्यतां पृ० ३२४ पं० २७–२८ ।

पृ० २०० पं० ६. **एकप्रयोजनेनान्योन्या**° । अत्र '**एकप्रबन्धेनान्योन्या**°' इत्येव शुद्धः पाठः । दृश्यतां पृ० २९४ पं० १७, पृ० ४५३ टि० २ ।

पृ० २०० पं० २४. **प्रविशीर्णो विशीर्य विशीर्यमाणो** । अत्र यदि '**प्र**'शब्दसूचितं प्रकर्षं दर्शयितुं '**विशीर्य**' इति पदमुपात्तं तर्हि यथाश्रुतं साध्वेव । अन्यथा तु '**प्रविशीर्णो विशीर्यमाणो**' इत्येतावतापि निर्वहिष्यति ।

पृ० २०१ पं० १,१०. **व्यवस्थावकाशक्रमेण** । (व्यवस्थाविकाशक्रमेण ?) ।

---

१ "एवं कारणरूपमात्मानमुद्दिश्य अथेदानीं कार्यरूपेणोद्दिशति – **तदेजति** ।···तदेव सर्वप्राणिरूपेणावस्थितं सत् एजति कम्पवद् भवति क्रियावद् भवति । **तन्नैजति**, तदेव च न चलति स्थावररूपावस्थितं सत् । **तद्दूरे**, तदेव च दूरे आदित्यनक्षत्रादिरूपेणावस्थितम् । **तत् उ अन्तिके**, उः समुच्चये, तदेव च अन्तिके पृथिव्यादिरूपेणावस्थितम् ।···**तदन्तरस्य सर्वस्य**, तदेव च अस्य सर्वस्य प्राणिजातस्य विज्ञानघनरूपेणावस्थितं सत् अन्तर्मध्यत आस्ते । **तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः**, तदेव च सर्वस्यास्य प्राणिजातस्य बाह्यतः जडरूपेणावस्थितमास्ते । चेतनाचेतनरूपमनन्तं सर्वगं ब्रह्मेत्यर्थः ।" इति **उवटविरचिते शुक्लयजुर्वेदभाष्ये** । **ईशावास्योपनिषद्यपि** दृश्यते इयं '**तदेजति**···' इति कारिका ६ ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

पृ० २०१ पं० २,१२. मायाकार…। दृश्यतां पृ० ३७८ पं० ३,१७–२४। मायाकार इन्द्रजालिकः[1]।

पृ० २०१ पं० ५,२०. षैष्टिकाः…। "षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते।"–पाणिनि० ५।१।९०।[2]

पृ० २०१ पं० ११. षाडव। षाडवो नाम मधुरो रस इति अर्थः शब्दकोषे दृश्यते।

पृ० २०१ पं० १६. दग्धे बीजे। "दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः।…॥८॥" तत्त्वार्थभा० १०।७।

पृ० २०१ पं० १७. अन्यथा च तथा दृश्यन्ते। अत्र 'अन्यथान्यथा च दृश्यन्ते' इति भा०प्रतिस्थपाठोऽपि साधुः।

पृ० २०२ पं० ३. द्रव्यान्तरसंयोगस्तम्भनादिभ्यः। अत्र 'द्रव्यान्तरसंयोगेन स्तम्भनद्रावणादिभ्यः' इत्यपि स्यात्।

पृ० २०२ पं० ४,१८. ज्ञातुरिच्छा…। दृश्यतां पृ० २०३ पं० २५।

पृ० २०२ पं० ७,२६. तथानियतित्वात्। दृश्यतां पृ० २०४ पं० ८।

पृ० २०२ पं० १३. कोद्रवपलाल…। फलपाचनविधिरयं बृहत्कल्पसूत्रभाष्येऽपि वर्णितः, गा० ८४२, पृ० २७१।

पृ० २०२ पं० १४. शाखायां बद्धायां। (शाखायां चार्द्रायां?)।

पृ० २०४ पं० २–३. अनादिमध्यान्तां…पश्यन्। दृश्यतां पृ० २२० पं० २५–२६।

पृ० २०४ पं० १०. सम्यग्दर्शन…। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।१।१।…मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्।१०।१। बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्याम्।१०।२। कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः।१०।३।"–तत्त्वार्थसू०।

पृ० २०५ पं० २, २४. न केचि…। दृश्यतां पृ० २१७ पं० ११, पृ० २१९ पं० ७।

पृ० २०५ पं० ९. लोगम्मि…। 'लोके जीवचिन्ता सर्वागमकाशिता (सर्वागमोत्कृष्टा?) दुरवगाहा। ततोऽपि कृष्टतरी (उत्कृष्टतरी?) चिन्ता बन्धे च मोक्षे च॥' इत्यर्थः प्रतिभाति।

पृ० २०५ पं० १५. अपरस्मिन्…। दृश्यतां पृ० ४५३ टि० २, टिपृ० १९ पं० ८।

पृ० २०५ पं० २३. कललं…। दृश्यतां पृ० २० पं० ४।

पृ० २०७ पं० ६. सप्ताहं कललं…। दृश्यतां पृ० २५९ पं० १९–२१, पृ० ३५४ पं० २२, पृ० ३१८ पं० ५।

पृ० २०७ पं० ९. ग्राहवद् ग्राहः। दृश्यतां पृ० ११ पं० १५, पृ० १७३ टि० ५, पृ० ३८२ टि० ५।

पृ० २०८ पं० १, ७. भवतीति भावितम्। अत्र 'भवति' इत्येतावदेव मूलम्, 'इति भावितम्' इति तु वृत्त्यंश इति भाति।

पृ० २०८ पं० १६. यमनियमादिः। दृश्यतां पृ० ३३२ पं० १६–२५। "योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेकख्यातेः। यम-नियमाऽऽसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि। अहिंसा-सत्या-ऽस्तेय-ब्रह्मचर्या-ऽपरिग्रहा यमाः। एते जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्। शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।" इति पातञ्जलयोगदर्शने २।२८–३२।

पृ० २०८ पं० १७. अहिंसानृता…। दृश्यतां पृ० २०४ टि० ८।

पृ० २०९ पं० ११. चान्तर्गतात्मरस…। (चान्तर्गताम्ररस…?)।

पृ० २१० पं० १, १९. तथा ब्राह्म…। अत्र 'तद्यथा ब्राह्म…' इत्यपि पाठः स्यात्। दृश्यतां पृ० २१० पं० २०।

पृ० २१० पं० ७. स्ववचनं…। अत्र 'स्वं वचनं…'इत्यपि पाठः स्यात्।

पृ० २११ पं० २,८. अप्पणो णिक्खमणकालं…। 'आत्मनो निष्क्रमणकालमाभोग्य [=विलोक्य] त्यक्त्वा राज्यम्' इत्यर्थः। सम्पूर्णस्यास्य सूत्रस्यार्थस्तु कल्पसूत्रस्य सुबोधिकादिव्याख्याभ्योऽवसेयः।

पृ० २११ पं० ७. उपशम…। "औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च।"–तत्त्वार्थसू० २।१।

---

१ "मायाकारस्तु प्रातिहारिकः।"–अमरको० २।१०।११। २ "शालयः कलमाद्याश्च षष्टिकाद्याश्च।"–अमरको० २।९।२४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० २१२ पं० १,९. **कलनात्मकं···लक्षणम्** । अत्र 'ध्रुवादिसर्वैर्नित्यलक्षणमेतदेव कलनात्मकं कारणमुपपद्यते' इत्यपि मूलं स्यात्। दृश्यतां पृ० २१२ पं० ११–१२।

पृ० २१२ पं० १९. **जं जं जे जे**··· । दृश्यतां पृ० १८२ पं० १३, पृ० ४७८ पं० ४ टि० १।

पृ० २१२ पं० ११, २८. **कूटस्थम**[1]··· । दृश्यतां टिपृ० २३ पं० ३-१२।

पृ० २१३ पं० ३–५. **तेन तस्मै···एकत्र मेघादिरेकत्र पटादिः** । अत्र 'तेन च तस्मै···एकत्र पटादिरेकत्र मेघादिः' इति पठितव्यम्।

पृ. २१३ पं० ८. **जरत्ता** । जरद्भावो जरत्ता इत्यर्थः।

पृ० २१३ पं० २०. **मेघे चोन्नतमात्रे वर्षति अयं 'ततः···** । अत्र मेघे चोन्नतमात्रे 'वर्षत्ययम्, ततः···' इति योजना समीचीना भाति।

पृ० २१५ पं० १,८. **कर्माभावः**······ । कर्माभावे पुरुषवादिमते संसारानादिता न युज्यत इत्याशयः।

पृ० २१५ पं० ५. **तस्मात्त्वनादिवर्तनात्मकत्वात्···न न युज्यते** [पृ० २१६ पं० ४] । एतत्स्थाने 'तस्मात्त्वनादिवर्तनात्मकत्वात् कालस्य यथा पृथिव्यादिव्रीह्यादिवृत्तिविवृत्तिप्रबन्धेन स्वात्मविषयक्रियाबन्धसंसरणं जीवपुद्गलयोरभिन्नवर्तनस्वतत्त्वयोः [2]स्वत एव बन्धक्रिया संसारक्रिया च वर्तनाभेदेन रूपभेदेन च एवं कालस्य आत्मस्वात्मन्येव क्रिया अनात्मस्वात्मनि चेति युगपदेव बन्धसंसरणविहिता बन्धसंसारानादिता न न युज्यते।' इत्याशयकमपि मूलमत्र स्यात्।

पृ० २१५ पं० १२. **अतत्त्वं चास्य संसारस्य** । अत्र हस्तलिखितप्रतिषु 'अतत्त्वं चास्य न भवति संसारस्य' इति पाठः, तदनुसरणे त्वत्र 'तत्त्वं चास्य न भवति संसारस्य' इति शुद्धः पाठो मन्तव्यः। 'अतत्त्वं चास्य भवति संसारस्य' इत्यपि पाठः स्यात्।

पृ० २१५ पं० २२. **पूर्वपरा**··· । (पूर्वापरा···?) । एवमग्रेऽपि।

पृ० २१६ पं० १–४. **स्वात्मविषय**··· । दृश्यतां टिपृ० ७१ पं० १२।

पृ० २१६ पं० ५. **°प्रभेदपूर्वापरादिक्रमाद् भावा°** । (°प्रभेदपूर्वापरादिक्रमा एव भावा° ? °प्रभेदभावा° ?)।

पृ० २१६ पं० २३. **कुण्डक°** । दृश्यतां पृ० १८१ पं० २५, टिपृ० ६५ पं० ५ टि० ३।

पृ० २१७ पं० ३,१३. **सुषमादि**··· । सुषमादिस्वरूपं तत्त्वार्थसूत्र[४।१५]प्रभृतिग्रन्थेभ्योऽवसेयम्।

पृ० २१७ पं० ५,२३. **लग्नवर्तनाद्** । "राशीनामुदयो लग्नम्।"–अमरको० १।३।२७।

पृ० २१७ पं० १०,२५. **द्रव्यं भूम्यादिव्रीह्यादि, द्रव्यात्मा** । 'द्रव्यम्, भूम्यादिव्रीह्यादिद्रव्यात्मा' इत्यपि योजना स्यादत्र।

पृ० २१८ पं० १,१०. **तन्मात्रभेदप्रभेदस्वामि°** । अत्र भा०प्रत्यनुसारी 'तन्मात्रभेदप्रभावात् स्वामि°' इति पाठः शोभनो भाति।

पृ० २१८ पं० ५,२०. **कालः पचति**··· । आचाराङ्गसूत्रवृत्तिप्रभृतिषु बहुषु ग्रन्थेषु उद्धृतोऽयं श्लोकः।

---

१ दृश्यतां पृ० २३९ पं० १९–२३। "**भाष्ये कूटस्थे**ष्विति, कूटमयोघनः, तद्वत् तिष्ठन्ति ये तेषु। संसर्गिनाशेऽपि स्वयमनष्टेष्वित्यर्थः।······अथावयवसंस्थानरूपाया जातिव्यञ्जिकाया आकृतेर्यावद्व्यवहारकालं मध्ये मध्ये उत्पत्तौ नाशेऽपि प्रकारान्तरेण नित्यत्वमाह **भाष्ये–अथवे**ति। नित्यत्वलक्षणे ध्रुवपदस्यैव व्याख्यानं **कूटस्थ**मिति। रूपान्तरापत्ति**र्विचालः**, यथा पयसो दध्यादिरूपता। अनेन परिणामानित्यता परास्ता। उत्पत्तेः सत्तापर्यन्तत्वाद् **अनुत्पत्ती**त्यनेन जन्म-सत्तारूपौ भावविकारौ निरस्तौ। **अवृद्धी**त्यनेन तृतीयो वृद्धिलक्षणः। **अनुपजने**ति चतुर्थः परिणामः। **अनपाये**ति पञ्चमोऽपचयः। एतद्रूपविकाररहितमिति तदर्थः। **अव्यये**ति षष्ठो विनाशः। इदं च ब्रह्मविषयं नित्यत्वं यावद्व्यवहारमेकरूपस्थितपदार्थविषयं च। अयमेव न नित्यशब्दार्थः, प्रवाहाविच्छेदेऽतादृश्यपि नित्यत्वव्यवहारादित्याह **भाष्ये–तदपी**ति। **यस्मिंस्तत्त्व**मिति, यस्मिन् विहतेऽपि तद्वृत्तिधर्मो न विहन्यत इत्यर्थः। प्रवाहनित्यता चानेनोक्ता। तन्नाशेऽपि तद्धर्मो न नश्यति, आश्रयप्रवाहाविच्छेदादिति भावः।" इति **पातञ्जलमहाभाष्यस्य उद्द्योते** १।१। पस्पशाह्निके। २ 'स्वत एव बन्धसंसारौ वर्तनाभेदेन···' इत्यपि पाठः स्यादत्र। दृश्यतां पृ० २१९ पं० ८।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पृ० २१९ पं० ३. **स्वपन्नपि स** । (स्वपन्नपि च ?) ।

पृ० २१९ पं० १३–१५. **ज्ञः···स्वातन्त्र्ये···सर्वत्र···** । क्रमेण पुरुषनियतिकालवादा अत्र विवक्षिताः ।

पृ० २१९ पं० १६. **द्रव्यार्थप्रसवाद्** । अत्र 'द्रव्यार्थप्रभवात् ।' इत्यपि सम्यग् भाति ।

पृ० २२१ पं० १,९,१४,१६. **सत्त्वस्य···सत्त्वस्य कालसत्त्वपुरुषसत्त्वयो···सत्त्वानत्यता···पूर्वत्र सत्त्वस्य** । 'पं० १,९,१४,१६' इत्यत्र यथासङ्ख्यं स्थितेष्वेतेषु पाठेषु 'सत्त्व'स्थाने 'स्वत्व'शब्दः समीचीनः स्यादित्यपि भाति । दृश्यतां पृ० २२० पं० ४, टि० ११ । प्रतिषु सर्वत्र 'सत्त्व'स्थाने 'सत्व'शब्द एव दृश्यते इत्यपि ध्येयम् ।

पृ० २२१ पं० ८. **समनन्तरानुलोमाः पूर्वविरुद्धा निवृत्तनिरनुशयाः** । दृश्यतां पृ० ४५५ पं० ७ । उद्धृतमिदं विशेषावश्यकभाष्यस्य कोट्टार्यवृत्तौ कोट्याचार्यवृत्तौ [पृ० ६५३] च ।

पृ० २२१ पं० १७. **सत्त्वाविनाभावित्वेन** । अयं पाठः शोभन एव भाति, दृश्यतां पृ० २२१ पं० ६ ।

पृ० २२२ पं० ५,१७,२९,३०. **मयूराण्डक···** । अत्र 'मयूरांगक' इति प्रतिस्थः पाठः शोभन एव भाति । एवं च **'तथा मयूराङ्गकबर्हादीनामेव पञ्चवर्णता, मयूरादिबर्हाण्येव च विचित्राणि'** इत्यपि मूलमत्र सम्भाव्यते ।

पृ० २२२ पं० ८,१९. **केनाञ्जितानि···** । उद्धृतेयं कारिका शीलाङ्काचार्यकृतायाम् आचाराङ्गसूत्रवृत्तौ ।

पृ० २२२ पं० १७. **मयूर···** । "मयूरचन्द्रिकादिर्वा विचित्रः केन निर्मितः ॥" – विशेषावश्यकमलधारिवृ० पृ० ७०२ ।

पृ० २२२ पं० १८. **नोदकादीनाम्** । (नोदरादीनाम् ?) ।

पृ० २२३ पं० ७. **तदपि** । हस्तलिखितप्रतिस्थः **'तमिति'** इति पाठोऽप्यत्र कथञ्चित् सङ्गच्छेत ।

पृ० २२४ पं० ४,१४. **क्रियाया···** । पञ्चम्यन्तोऽयं निर्देशः । दृश्यतां पृ० २२५ पं० २९ ।

पृ० २२४ पं० १०. **°घृताद्यवस्था°** । भा० प्रतावयं पाठः, स च समीचीनतरः । य० प्रतौ तु **°घृतावस्था°** इति पाठः ।

पृ० २२४ पं० १८. **अत्यासन्न···** । "तत्र बुद्धिमान् नास्तिक्यबुद्धिं जह्याद् विचिकित्सां च । कस्मात् ? प्रत्यक्षं ह्यल्पम्, अनल्पमप्रत्यक्षमस्ति यदागमानुमानयुक्तिभिरुपलभ्यते । यैरेव तावदिन्द्रियैः प्रत्यक्षमुपलभ्यते तान्येव सन्ति चाप्रत्यक्षाणि । सतां च रूपाणामतिसन्निकर्षादतिविप्रकर्षादावरणात् करणदौर्बल्याद् मनोनवस्थानात् समानाभिहारादभिभवादतिसौक्ष्म्याच्च प्रत्यक्षानुपलब्धिः । तस्मादपरीक्षितमेतदुच्यते – प्रत्यक्षमेवास्ति, नान्यदस्तीति ।" – चरकसं० १।११।७–८ ।

पृ० २२५ पं० ५,२६. **कटुकः···** । दृश्यतां टिपृ० ६४ पं० २३ ।

पृ० २२६ पं० १९–२०. **···नाहं कर्तेति भावानां** । "नाहं कर्तेति **भूतानां**" – आचाराङ्गसूत्रशीलाङ्कवृ० पृ० १७ ।

पृ० २२७ पं० ६. **तत्पट उत्पद्यते** । (न घट उत्पद्येत ?) ।

पृ० २२८ पं० १,४. **°स्थितः, योऽस्ति···** । अत्र **'°स्थितो योऽस्ति'** इति सम्यक् ।

पृ० २२८ पं० ५,६. **किमिदं···** । 'किमिदं भदन्त ! अस्ति इत्युच्यते ? गौतम ! जीवाश्चैव अजीवाश्चैव । किमिदं भदन्त ! 'समयः' इत्युच्यते ? गौतम ! जीवाश्चैव अजीवाश्चैव' इत्यर्थः ।

पृ० २२८ पं० ७. **आवलिको···** । "तत्कृतः कालविभागः ।४।१५।···तत्र **परमसूक्ष्मक्रियस्य सर्वजघन्यगतिपरिणतस्य परमाणोः स्वावगाहनक्षेत्रव्यतिक्रमकालः समय इत्युच्यते परमदुरधिगमोऽनिर्देश्यः ।······ते त्वसंख्येया आवलिका । ताः संख्येया उच्छ्वासस्तथा निश्वासः । तौ बलवतः पट्विन्द्रियस्य कल्यस्य मध्यमवयसः स्वस्थमनसः पुंसः प्राणः । ते सप्त स्तोकः । ते सप्त लवः । तेऽष्टात्रिंशदर्धं च नालिका । ते द्वे मुहूर्तः । ते त्रिंशदहोरात्रम् । तानि पञ्चदश पक्षः ।···**" इति तत्त्वार्थभाष्ये ।

पृ० २२८ पं० ९. **स्वशक्ति···** । "स्वाश्रये समवेतानां तद्वदेवाश्रयान्तरे । क्रियाणामभिनिष्पत्तौ सामर्थ्यं साधनं विदुः ॥ ३।७।१ ॥ **क्रियानिर्वृत्तौ द्रव्यस्य शक्तिः साधनं साध्यतेऽनेन क्रियेति भाष्यकारप्रभृतयो विदुः ।**" – वाक्यपदीयवृ० ।

पृ० २२९ पं० ९. **भरत-मरुदेव्या···** । "अहो योगस्य माहात्म्यं प्राज्यं साम्राज्यमुद्वहन् । अवाप केवलज्ञानं **भरतो भरताधिपः** ॥ पूर्वमप्राप्तधर्माऽपि परमानन्दनन्दिता । योगप्रभावतः प्राप **मरुदेवा** परं पदम् ॥" इति योगशास्त्रे १।१०,११ ।

पृ० २२९ पं० १९. **अधुनाऽनादित्व···** । प्रतिस्थपाठानुसारेण **'अथानादित्व°'** इति पाठः स्यादत्र ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० २२९ पं० २१,२२,२३. **निर्हेतुकहेतुक**…। भावप्रधानोऽयं 'निर्हेतुक'निर्देशः, तेन अन्तवत्त्वानुमाने आदिमत्त्वानुमाने च निर्हेतुकत्वस्य हेतुत्वेन विवक्षितत्वात् 'निर्हेतुकहेतुक' इत्युक्तमत्र, दृश्यतां पृ० २२९ पं० १८।

पृ० २३० पं० ९. **साधनदूषण**[…]। "साधनं दूषणं चैव साभासं परसंविदे। प्रत्यक्षमनुमानं च साभासं त्वात्मसंविदे॥ इति शास्त्रार्थसंग्रहः।" इति न्यायप्रवेशके हेतुतत्त्वोपदेशे च। **दिङ्नागविरचिते** न्यायमुखेऽपि अवश्यं '**साधनं दूषणं चैव**…' इदृशी कारिका ग्रन्थारम्भे आसीदिति 'साभासोक्त्याद्युपक्षेप…॥[४।२७]।' इति प्रमाणवार्तिककारिकाया व्याख्याविलोकनेन प्रतिभाति। यद्यपि अस्य **चीनभाषानुवादमवलम्ब्य** Prof. Giuseppe Tucci इत्येभिर्विहिते Englishभाषानुवादे "I have compiled this book, because I desire to assertain what is the real nature of the arguments to prove [a thesis as well] as to refute it." [न्यायमुख. पृ० ५] इति दृश्यते तथाप्ययं **चीनभाषानुवादो** बहुषु स्थलेषु संक्षिप्तोऽस्पष्टश्च भाति।

पृ० २३० पं० ९. **पक्ष**…। "पक्षादिवचनानि हि साधनं, तत्र तु स्वयम्। साध्येत्वेनेप्सितः पक्षो विरुद्धार्थानिराकृतः॥२॥ पक्षेत्यादि, पक्षहेतुदृष्टान्तवचनैर्हि परेषामप्रतीतोऽर्थः प्रतिपाद्यते।" इति **दिङ्नागरचिते** न्यायमुखे प्रतीयते। "परार्थमनुमानं तु स्वदृष्टार्थप्रकाशनम्। तत्रानुमेयनिर्देशो हेत्वर्थविषयो मतः॥३।१॥ स्वरूपेणैव निर्देश्यः स्वयमिष्टोऽनिराकृतः। प्रत्यक्षार्थानुमानाप्तप्रसिद्धेन स्वधर्मिणि॥३।२॥" इति **दिङ्नागविरचिते** प्रमाणसमुच्चये।

---

१ "स्वयूथ्यानां [=न्यायमुखटीकाकारादीनां] पूर्वपक्षपरिहारोक्तिः - पक्षवचनं साधनं साभासत्वादिति चेत्, न, प्रत्यक्षेणानेकान्तात्। प्रत्यक्षं साभासमपि न कस्यचित् प्रमाणस्य साधनम्। वचनात्मत्वे सति साभासत्वात् साधनत्वमिति चेत्, न, दूषणेनानेकान्तात्। दूषणं साभासवचनात्मत्वेऽपि न साधनम्।" इति **मनोरथनन्दिरचितायां प्रमाणवार्तिकवृत्तौ** पृ० ४२३, ४।२७ "अन्यः पुनराह—'प्रतिज्ञा साधनं साभासत्वेनोक्तेः, साभासत्वस्य साधनत्वेन सह दर्शनात्। दूषणवाद्याह—प्रत्यक्षेण अनेकान्तः। वचनात्मकत्वेन विशेषणाददोष इति परिहारः। दूषणेनानेकान्त इति चेत्, अदूषणत्वे सतीति परिहारः।' तदेतत् सकलमसत्।…" इति **प्रमाणवार्तिकालङ्कारे** पृ० ४९३। इयं च साभासत्वोक्त्यादिचर्चा **न्यायमुखे '**साधनं दूषणं चैव साभासं**……।'** इत्येतादृशपाठसम्भवे घटत इति ध्येयम्। २ दृश्यतां पृ० ३०६ पं० २२। ३ "**तत्र पक्षादिवचनानि साधनम्**। पक्षहेतुदृष्टान्तवचनैर्हि प्राश्निकानामप्रतीतोऽर्थः प्रतिपाद्यत इति। **तत्र पक्षः प्रसिद्धो धर्मी प्रसिद्धविशेषणविशिष्टतया स्वयं साध्यत्वेनेप्सितः**, 'प्रत्यक्षाद्यविरुद्धः' इति वाक्यशेषः। [पृ० १]…एषां [=पक्ष-हेतु-दृष्टान्तानां] वचनानि परप्रत्यायनकाले साधनम्।…एतान्येव त्रयोऽवयवा इत्युच्यन्ते।"—**न्यायप्रवेश०** पृ० १-३। "वादिना स्वयं साधयितुमिष्टोऽर्थः साध्यः साध्यते येन तत् **साधनं हेतोस्त्रिरूपवचनम्**।"-**हेतुतत्त्वोप०**। ४ "**न्यायमुखप्रकरणे 'तत्र तु स्वयं**………**कृतः'** इति पाठात्।"-**प्रमाणवार्तिकालं०** पृ० ५१०, ५१९,५२२,५६१। **प्रमाणवा०** मनो० पृ० ४४३। **न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका**. १।१।३३। ५ The proposition and the other terms are called the proof [साधन]. Here is called "proposition" only that particular argument that we want to prove in accordance with our own opinion. It must be such as no argument contradictory [to it] can exclude it. "The proposition etc."; this means that through the formulation of a proposition, a reason and an example, an argument which has not yet been understood by onother [man], is made evident to him.—**न्यायमुख**. पृ० ५। ६ **प्रमाणवार्तिकालंकार** पृ० ४८८। प्रमाणवा० मनो० पृ० ४२०। ७ **प्रमाणवार्तिकालंकार**. पृ० ५४५, ५४६,५४९। प्रमाणवार्तिकमनोरथनन्दिवृत्ति. पृ० ४२४,४४५,४५८,४५९। ८ यद्यपि **प्रमाणसमुच्चयो** नेदानीं संस्कृतभाषायामुपलभ्यते तथापि **भोट**भाषानुवादमवलम्ब्य प्राचीनेषु च ग्रन्थेषु विद्यमानानि **दिङ्नाग**वचनानि संगृह्य समालोच्य च मया सङ्कलिता इमाः कारिका इति ध्येयम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० २३० पं० १०. हेतुः पक्षधर्मः···। दृश्यतां टिपृ० २८ पं० २९। "अनुमानं द्विधा, स्वार्थं त्रिरूपाल्लिङ्गतोऽर्थदृक्। पूर्ववत् फलमर्थः स्वरूपं चातुल्यमेतयोः ॥२।१॥······परार्थमनुमानं तु स्वदृष्टार्थप्रकाशनम्। तत्रानुमेयनिर्देशो हेत्वर्थविषयो मतः ॥३।१॥···साध्यधर्मो यतो हेतुस्तदाभासश्च भूयसा। तस्मात् तद्विस्तरः पूर्वं हेत्वाद्यर्थात् प्रदर्श्यते ॥··· सपक्षे सन्नसन् द्वेधा पक्षधर्मः पुनस्त्रिधा। प्रत्येकमसपक्षेऽपि सदसद्द्विविधत्वतः ॥···तत्र यः सन् सजातीये द्वेधा चासंस्तदत्यये।

---

१ प्रमाणवा०मनो०परिशिष्ट. पृ० ५२४। "**अनुमानं द्विधा**–स्वार्थं परार्थं च। तत्र **स्वार्थं त्रिरूपाल्लिङ्गतोऽर्थदृक्।** वक्ष्यमाणत्रिलक्षणाल्लिङ्गाद् यदनुमेयार्थदर्शनं तत् स्वार्थमनुमानम्। **पूर्ववत् फल**मत्रापि। यथा प्रत्यक्षे [विषयसंवित्तिः स्वसंवित्तिश्चेति] प्रतीतिद्वयमेव आश्रित्य फलमुक्तमेवमत्रापि। यद्युभयमपि प्रतीतिलक्षणम् कोऽनयोर्विशेष इति चेत्, **अर्थः स्वरूपं चातुल्यमेतयोः।** प्रत्यक्षानुमानयोरर्थो [=आलम्बनं] भिन्नः। तदाकारविशेषाच्च स्वरूपमपि भिन्नम्।" इति **दिङ्ना**गविरचितायां **प्रमाणसमुच्चयवृत्तौ** पृ० २८ B, पृ० १११. Narthang edition.। अस्या वृत्तेः संस्कृतभाषाया-मनुपलम्भात् **भोट**भाषानुवादानुसारेण कल्पितमेतदस्माभिः संस्कृते अस्या **भोट**भाषानुवादोऽत्रैव टिप्पणेषु वक्ष्यमाणे **भोट**परिशिष्टे द्रष्टव्यः। २ **प्रमाणवार्तिकालं**० पृ० ४६७। **प्रमाणवा**० **मनो**० **टि**० पृ० ४१३। "यथा स्वस्मिन् त्रिरूपाल्लिङ्गाद् लिङ्गिनि ज्ञानमुत्पन्नं तथा परस्मिन् त्रिरूपाल्लिङ्गाल्लिङ्गिज्ञानोत्पिपादयिषया त्रिरूपलिङ्गाख्यानं परार्थमनुमानम्, कारणे कार्योपचारात्।" इति **दिङ्ना**गविरचितायां **प्रमाणसमुच्चयवृत्तौ** पृ० ४४ A, १२६ A, Narthang edition. संस्कृतभाषायामस्या वृत्तेरनुपलब्धेरस्या भोटभाषानुवादोऽत्रैव टिप्पणेषु वक्ष्यमाणे **भोट**परिशिष्टे द्रष्टव्यः। ३ **न्याय**वार्तिकतात्पर्यटीका. १।१।३५। **न्याय**मुख. पृ० ११। **प्रमाण**वार्तिकालंकारे त्वत्र 'पक्षधर्मः' [पृ० ५१०] इति पाठः तथापि **भोट**भाषानुवादेषु **'बस्ग्रुब् ब्यऽि छोस्'** इति पाठदर्शनात् 'साध्यधर्मः' इत्येव समीचीनम्। **न्याय**वार्तिक-तात्पर्यटीकायामपि 'साध्यधर्मः' इत्येव पाठः। ४ **प्रमाणवार्तिकालं**० पृ० ५८०। Therefore I shall now indicate the various characteristics of this.–**न्याय**मुख. पृ० ११। ५ यद्यप्यत्र **प्रमाणसमुच्चयस्य कनकवर्म-वसुधररक्षित**विरचित**भोट**भाषानुवादानुसारेण **प्रमाण**वार्तिकालङ्कारे च 'हेत्वाद्यर्थात्' इत्येव पाठः, तथापि **प्रमाण**वार्तिकालंकारे एव इत ऊर्ध्वम् "अत एव **'हेत्वाभासात् पूर्वम्'** इत्युक्तम्, हेतुश्चाभासश्च हेत्वाभासम्, आभासश्च प्रत्यासत्तेर्हेत्वाभास एव, नाभासमात्रम्।" इत्यभिहितत्वाद् **'हेत्वाद्यर्थात्'** इत्यस्य स्थाने **'हेत्वाभासात्'** इत्यपि पाठः स्यादिति सम्भाव्यते। **प्रमाणसमुच्चयस्य जिनेन्द्रबुद्धि**विरचितायां **'विशालामलवती'**टीकायां त्वेवं दृश्यते—"**सा**ध्यधर्मो यतो हेतुरित्यादि। **'भूयसा'** इति पदम् असिद्धस्य अपक्षधर्मस्यापि हेत्वाभासत्वज्ञापनार्थम्। अयं कारिकार्थः—यस्मात् हेतुस्तदाभासश्च भूयसा पक्षधर्म एव तस्मात् हेतु-विरुद्ध-अनैकान्तिकत्वेभ्यः पूर्वं पक्षधर्मविस्तरः प्रदर्श्यते इति। एतदुक्तं भवति—यस्मात् पक्षधर्मत्वमिदं बहूनां सामान्यं रूपं तस्मात् पक्षधर्मप्रभेद एव हेत्वादेः पूर्वं प्रदर्श्यते।"–**विशालामलवती**. पृ० १५४ A. Derge edition.। संस्कृतभाषायामस्याः टीकाया अनुपलम्भादस्या **भोट**भाषानुवादोऽत्र संस्कृतेऽस्माभिः परिवर्त्य लिखित इति ध्येयम्। ६ **प्रमाणवार्तिकालं**० पृ० ५८०,६०१। **न्याय**मुख. पृ० २९,३०। **न्याय**वार्तिक-तात्पर्यटीका. १।१।३५।

---

1 **धर्मकीर्ति**रपि **दिङ्नाग**मेवानुसृत्य **प्रमाणविनिश्चये** लक्षणमत्र प्रणीतवानिति वादिदेवसूरिप्रणीत**स्याद्वादरत्नाकरा**नुसारेण प्रतीयते। तथाहि—"अपि च··· धर्मकीर्तिरपि **न्यायविनिश्चय**स्य आद्य-द्वितीय-तृतीयपरिच्छेदेषु यथाक्रमं **'प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तम्'** इति **'तत्र स्वार्थं त्रिरूपाल्लिङ्गतोऽर्थदृक्'** इति **'परार्थमनुमानं तु स्वदृष्टार्थप्रकाशनम्'** इति त्रीणि लक्षणानि **तिमिराशुभ्रमणनौयानसंक्षोभाद्यनाहितविभ्रममविकल्पकं ज्ञानं प्रत्यक्षम्'** इति **'त्रिलक्षणाल्लिङ्गाद् यदनुमेयेऽर्थे ज्ञानं तत् स्वार्थमनुमानम्'** इति **'यथैव हि स्वयं त्रिरूपाल्लिङ्गतो लिङ्गिनि ज्ञानमुत्पन्नं तथैव परत्र लिङ्गिज्ञानोत्पिपादयिषया त्रिरूपलिङ्गाख्यानं परार्थमनुमानम्'** इति च व्याचक्षाणो लक्ष्यस्यैव विधिमन्वकीर्तयत्।" इति **स्याद्वादरत्नाकरे** पृ० २३। न्यायविनिश्चय इति प्रमाणविनिश्चयस्यैव नामान्तरं ज्ञेयम्। प्रमाणविनिश्चयस्य **भोट**भाषानुवादेऽक्षरशः सर्वमेतदुपलभ्यते, पृ० २६१ B, २७६ A, २९९ A. Narthang edition.। पृ० १५४,१६७ A, १८७ A. Derge edition.। अयं भोटभाषानुवादो **'बस्तन्-ऽग्युर्'** संग्रहे **'म्दो'** वर्गे **'चे'** [=९५] पुटे द्रष्टव्यः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स हेतुः[1] विपरीतोऽस्माद् विरुद्धोऽन्यस्त्वनिश्चितः ॥" इति प्रमाणसमुच्चये।

पृ० २३० पं० १०–११. **दृष्टान्तः साध्यानुगतः**…। "त्रिरूपो हेतुरित्युक्तं पक्षधर्मे च संस्थितः। रूढे[3] रूपद्वयं शेषं दृष्टान्तेन प्रदर्श्यते ॥ साध्येनानुगमो हेतोः साध्याभावे च नास्तिता। ख्याप्यते यत्र दृष्टान्तः स साधर्म्येतरो द्विधा ॥"– प्रमाणसमु० ४।१,२। "दृष्टान्तो द्विविधः – साधर्म्येण वैधर्म्येण च। तत्र साधर्म्येण तावत् यत्र हेतोः सपक्ष एवास्तित्वं ख्याप्यते, तद्यथा – यत् कृतकं तदनित्यं दृष्टं यथा घटादिरिति। वैधर्म्येणापि यत्र साध्याभावे हेतोरभाव एव कथ्यते, तद्यथा – यन्नित्यं तदकृतकं दृष्टं यथाकाशमिति। नित्यशब्देनात्रानित्यत्वस्याभाव उच्यते, अकृतकशब्देनापि कृतकत्वस्याभावः, यथा भावाभावोऽभाव इति।"– न्यायप्रवेश० पृ० १–२।

पृ० २३० पं० ११. **तद्विपर्यये तदाभासा**…। "साधयितुमिष्टोऽपि प्रत्यक्षादिविरुद्धः पक्षाभासः [पृ० २]।… असिद्धानैकान्तिकविरुद्धा हेत्वाभासाः [पृ० ३]।…दृष्टान्ताभासो द्विविधः साधर्म्येण वैधर्म्येण च [पृ० ५]।…एषां पक्षहेतुदृष्टान्तानां वचनानि साधनाभासम् [पृ० ७]।"– न्यायप्रवेश०।

पृ० २३० पं० १२. **तत्साधनदोषो**…। The refutation [दूषण] consists in showing that the formulation of a syllogism is defective [न्यून] etc. The fallacies of refutation [दूषणाभासाः] are called Jātis – **न्याय**मुख. पृ० ५४। "साधनदोषोद्भावनानि दूषणानि। साधनदोषो न्यूनत्वम्। पक्षदोषः प्रत्यक्षादिविरुद्धत्वम्। हेतुदोषोऽसिद्धानैकान्तिकविरुद्धत्वम्। दृष्टान्तदोषः साधनधर्माद्यसिद्धत्वम्। तस्योद्भावनं प्राश्निकप्रत्यायनं दूषणम्। अभूतसाधनदोषोद्भावनानि दूषणाभासानि। सम्पूर्णे साधने न्यूनत्ववचनम्। अदुष्टपक्षे पक्षदोषवचनम्। सिद्धहेतुकेऽसिद्धहेतुकवचनम्।…अदुष्टदृष्टान्ते दुष्टदृष्टान्तवचनम्। एतानि दूषणाभासानि। न ह्येभिः परपक्षो दूष्यते, निरवद्यत्वात् तस्य।"– न्यायप्रवेश० पृ० ८। "वाद्युक्ते साधने प्रोक्तदोषाणामुद्भावनम्। दूषणं निरवद्ये तु दूषणाभासनामकम् ॥२६॥" इति सिद्धसेनसूरिप्रणीते न्यायावतारे। "साधनदोषोद्भावनं दूषणम्। अभूतदोषोद्भावनानि दूषणाभासा जात्युत्तराणि।"– प्रमाणमीमांसा० २।१।२८–२९। न्यायबिन्दु[३।१३८–१४१]-हेतुतत्त्वोपदेश[पृ० २५८]प्रभृतिग्रन्थेष्वपि दूषण-तदाभासा लक्षिताः।

पृ० २३० पं० १६–१८. **शब्दब्रह्मतत्त्वभेदसंसर्गरूपविवर्तमात्रमिदं[6]**…… **अनादिनिधनं ब्रह्म**…। 'अनादिनिधनं ब्रह्म…' इतीयं वाक्यपदीयकारिका **कमलशीलेन** तत्त्वसंग्रहपञ्जिकायां [पृ० ६७] **अभयदेवसूरिभिः** सन्मति-

---

१ "एतेन '**ग्राह्यधर्मस्तदंशेन व्याप्तो हेतुः**' इति प्रत्युक्तम्।"– **न्याय**वा० १।१।३५। "**दिङ्नागस्यैव** प्रदेशान्तरहेतुलक्षणम् — **ग्राह्यधर्मः** पक्षधर्मः **तदंशेन** तस्यैव पक्षस्यांशेन साध्यधर्मसामान्येन **व्याप्तो** हेतुरिति। तदेव तद्धेतुलक्षणमुपन्यस्यास्मिन् पूर्वोक्तं दोषमतिदिशति – **एतेनेति**।"– **न्याय**वार्तिकतात्पर्यटीका. १।१।३५। "**आचार्यैरपि** निर्दिष्टमीदृक् संक्षेपलक्षणम्। **ग्राह्यधर्मस्तदंशेन व्याप्तो हेतुरितीदृशम्** ॥१३८५॥"– **तत्त्वसंग्रह**.। २ कारिकेयं **वाद**न्यायस्य **शान्तरक्षित**कृतटीकायाम् [पृ० ९२] उद्धृता, तत्र च यद्यपि 'पक्षध**र्मे च**' इति पाठो दृश्यते तथाप्यशुद्धः स स्यादिति भाति। प्रमाणसमुच्चयस्य विशेषतश्च **जिनेन्द्रबुद्धि**विरचित'**विशालामलवती**'टीकाया **भोट**भाषानुवादानुसारेण [पृ० २१२ B, Derge edition] 'पक्षध**र्मस्तु**' इति 'पक्षध**र्मो हि**' इति वा पाठोऽत्र स्यादिति भाति। अयं च **भोट**भाषानुवादोऽत्रैव टिप्पणेषु वक्ष्यमाणे **भोट**परिशिष्टे द्रष्टव्यः। ३ 'रूढेः' इति पञ्चम्यन्तं पदम्, 'रूढेः संस्थितः' इति अन्वयः। ४ **तत्त्व**संग्रहपञ्जिका. पृ० ४१९। ५ सम्पूर्णेयं कारिका **दशवैकालिकसूत्रस्य हरिभद्रसूरि**कृतवृत्तावुद्धृता पृ० ३४ B। **विशेषा**वश्यकभाष्यस्य **कोट्यार्य**वृत्तौ [पृ० १५४ B] **न्याय**वार्तिक-**तात्पर्य**टीका[१।१।३७]प्रभृतिषु च अंशत उद्धृता उपलभ्यते। ६ "सर्वपरिकल्पातीततत्त्वं **भेदसंसर्गसमतिक्रमेण** समाविष्टं सर्वाभिः शक्तिभिर्विद्याऽविद्याप्रविभागरूपमप्रविभागं काल-

---

1 एतदनुसार्येव प्रमाणवार्तिके [१।३] हेतुबिन्दौ च धर्मकीर्तिना "पक्षधर्मस्तदंशेन व्याप्तो हेतुस्त्रिधैव सः। अविनाभावनियमाद्, हेत्वाभासास्ततोऽपरे ॥" इति लक्षणं प्रणीतमिति ध्येयम्। 2 "**आचार्यैरि**ति तन्मताविरोधं प्रतिपादयति। ग्राह्यधर्म इति ग्राह्यस्य साध्यधर्मिणो धर्मः पक्ष इति यावत्।"– तत्त्वसंग्रहपञ्जिका. पृ० ४०९। 3 "**भेदसंसर्गसमतिक्रमेणे**ति भेदो व्यतिरेकः, संसर्ग एकत्वम्। एतद्द्वयसमतिक्रमेण ताभिः शक्तिभिरध्यासितम्…**विद्याऽविद्याप्रविभागरूपम्** इति…। एतदुक्तं भवति – विद्यारूपमङ्गीकृत्योक्तं 'सर्वविकल्पातीततत्त्वम्' इति। अविद्यानिबन्धनरूपमङ्गीकृत्योक्तं 'समाविष्टं सर्वाभिः शक्तिभिः' इति।……**अपूर्वापरे**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्तौ षष्ठगाथाव्याख्यायां वादिदेवसूरिभिश्च स्याद्वादरत्नाकरे [पृ० ९०] उद्धृता व्याख्याता च । अन्येष्वपि न्यायमञ्जरी-स्पन्दकारिकाप्रभृतिग्रन्थेषु उद्धृतेयम् ।

पृ० २३१ पं० ३,१५. **सम्भववद् व्यभिचार**…। दृश्यतां टिपृ० ४४ पं० २१–२४।

पृ० २३१ पं० २३. **भेदप्राधान्येनैव भावीकृतेनार्थोऽपि भिन्नो विशेषणत्वेनोपादातुं योग्यः, तद्यथा** । अत्र '**भेदप्राधान्येनैव । अभावीकृतेनार्थोऽपि**·········**तद्यथा**' इति भा०प्रतिस्थपाठ एव समञ्जसः ।

पृ० २३२ पं० २३–२४, २७–२८. **नञिव**…**ह्यर्थ[गतिः] इति** । यद्यपि कात्यायनविरचिते पाणिनीयवार्तिके '**ह्यर्थगतिः**' इति पाठः सम्प्रति उपलभ्यते तथापि '**ह्यर्थः**' इति पाठान्तरस्याप्यत्र पूर्वं प्रचार आसीदिति प्रतीयते, "नञिव-युक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथाह्यर्थं इति" इति **विशेषावश्यकभाष्यस्य** कोट्यार्यवृत्तौ [पृ० ९५] **उल्लेखदर्शनात्** । **एवं चात्र** हस्तलिखितप्रतिस्थः '**ह्यर्थः**' इति पाठः समीचीन एव । अतो '**[गतिः]**' इति पूरणमनावश्यकमत्रेति ज्ञेयम् ।

पृ० २३३ पं० ७. **अब्राह्मणवत्, वैधर्म्येण**…। अब्राह्मणवचने ब्राह्मणवदित्याशयः, दृश्यतां पृ० २३२ पं० २३,२९ । सत्त्वे साध्ये '**खपुष्पवत्**' इत्यस्य वैधर्म्यदृष्टान्तत्वादत्र '**वैधर्म्येण**' इत्युक्तमिति ध्येयम् ।

भेददर्शनाभ्यासेन मूर्तिविभागभावनया च व्यवहारानुपातिभिर्धर्माधर्मैः सर्वास्ववस्थासु **अनाश्रितादिनिधनं ब्रह्मेति** प्रतिज्ञायते । न हि कार्यकारणात्मकस्य विभक्ताविभक्तस्यैकस्य ब्रह्मणः सर्वप्रवादेष्वपूर्वापरे प्रवृत्तिनिवृत्तिकोटी परिसंख्यायेते । न चास्योर्ध्वमधस्तिर्यग् वा मूर्तिपरिवर्तप्रत्यङ्गानां क्वचिदवच्छेदोऽभ्युपगम्यते । तत्तु भिन्नरूपाभिमतानामपि विकाराणां प्रकृत्यन्वयित्वाच्छब्दोपग्राह्यतया शब्दोपग्राहितया च **शब्दतत्त्व**मित्यभिधीयते । स्थितिप्रवृत्तिनिवृत्तिविभागा हि शब्देनाक्रियन्ते । तच्चाक्षरनिमित्तत्वाद**क्षर**मित्युच्यते । प्रत्यक्चैतन्येऽन्तःसंनिवेशितस्य परसम्बोधनार्था व्यक्तिरभिष्यन्दते ।······**विवर्ततेऽर्थ-भावेन** । एकस्य तत्त्वादप्रच्युतस्य भेदानुकारेण असत्यविभक्तान्यरूपोपग्राहिता विवर्तः, स्वप्नविषयप्रतिभासवत् ।······ **प्रक्रिया जगतो यतः** । तत एव हि शब्दाख्यादुपसंहृतक्रमाद् ब्रह्मणः सर्वविकारप्रत्यस्तमये संवर्तादनाकृतात् पूर्वं विकार-ग्रन्थिरूपत्वेनाव्यपदेश्याज्जगदाख्या विकाराः प्रक्रियन्ते । तथा ह्युक्तम्—यः सर्वपरिकल्पानामाभासेऽप्यनवस्थितः । तर्कागमानुमानेन बहुधा परिकल्पितः ॥ १ ॥ व्यतीतो भेदसंसर्गौ भावाभावौ क्रमाक्रमौ । सत्यानृते च विश्वात्मा प्रविवेकात् प्रकाशते ॥२॥ ······[2]प्रकृतित्वमपि प्राप्तान् विकारानाकरोति सः । ऋतुधामेव ग्रीष्मान्ते महतो मेघसंप्लवान् ॥ ४ ॥ तस्यैकमपि चैतन्यं बहुधा प्रविभज्यते । अङ्गारकितमुत्पाते वारिराशेरिवोदकम् ॥ ५ ॥······यथा विशुद्धमाकाशं तिमिरोपप्लुतो जनः । संकीर्णमिव मात्राभिश्चित्राभिरभिमन्यते ॥ १० ॥ तथेदममृतं ब्रह्म निर्विकारमविद्यया । कलुषत्वमिवापन्नं भेदरूपं विवर्तते ॥ ११ ॥ ब्रह्मेदं शब्दनिर्माणं शब्दशक्तिनिबन्धनम् । विवृतं शब्दमात्राभ्यस्तास्वेव प्रविलीयते ॥ १२ ॥" इति भर्तृहरिविरचितायां **वाक्यपदीय-स्ववृत्तौ** । "**अनादिनिधन**मिति कालप्रदेशकृतपरिच्छेदाभावप्रकाशनाय । **ब्रह्मेति** नामकथनम् । **शब्दतत्त्वमिति** स्वरूपकथनम् । **यदक्षरं** विवर्ततेऽर्थभावेन इत्यनेन ब्रह्मणः सकाशाच्छब्दार्थयोरभेदकथनम् । **प्रक्रिया** जगतो यत इति अस्य **चिद्रूपस्य** विवर्तस्य प्रधानं परमाणवो वा अन्यद्वा न निमित्तम् अपि तु ब्रह्मैवेति दर्शयति ।"–इति **वाक्यपदीयस्य वृषभदेवरचित-टीकायाम्** ।

इति । कोटिर्मर्यादा । [अपूर्वा प्रवृत्तिमर्यादा] यस्यां कार्योत्पादात् **पूर्वं** न किञ्चिदासीत् । अपरा निवृत्तिमर्यादा यस्याः परं नास्ति । ते प्रवृत्तिनिवृत्तिमर्यादे अपूर्वापरे न संख्यायेते । ननु सर्वपरिकल्पातीततत्त्वं तत् कथं शब्दतत्त्वमित्युच्यत इत्याह–**विकाराणां प्रकृत्यन्वयित्वा**दिति । विकारा हि प्रकृतिरूपेणान्विता दृष्टा यथा शकल-कपाला-ऽमत्रभूषणानि । रूपादयश्चैते शब्दरूपानुगता दृश्यन्त इति प्रकृतिभूते ब्रह्मणि शब्दापदेशः ।······**स्वप्नविषयप्रतिभासव**दिति यथा स्वप्नावस्थायां ज्ञानक्षण एक एव भिन्नजातीयानेकपदार्थावभासी जायते ।······**प्रकृतित्वमपी**ति । य एते प्रधानपरमाण्वादयोऽपि कारणं महादादीनां प्रकृतित्वं प्राप्ताः तानप्यसावेव आकरोति जनयति । अत एव चैते विकारशब्देनोक्ताः, न तु तैः सांख्यादिभिर्विकारत्वमिष्टं तेषाम् । **ऋतुधामा** इति, ऋतवो हेमन्तादयः षट् तेषां सारभूतं तेजो ऋतुधामा वर्षारात्रयः । संवत्सरो वा ऋतुः तस्य सारभूता वर्षा इति । व्याप्तिः **संप्लवः** । व्यापकमेघान् जनयति । **तस्य** इति व्यपदेशिवद्भावेन पृथक्त्वापदेशः ।" इति **वृषभदेवरचितटीकायाम्** ।

1 **नयचक्र.** पृ० २३९ पं० १ । 2 "**प्रकृतित्वमनापन्नान्** विकारा…" – **नयचक्र.** पृ० २४१ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० २३४ पं० ४,१९. **यं तं** । एतादृशः शब्दप्रयोगः 'पृ० ३२ पं० २३, पृ० १३२ पं० २०' इत्यत्रापि दृष्टः ।

पृ० २३५ पं० ३,१९–२०. **भेदसंसर्गपरिणामैः** । दृश्यतां टिपृ० ४१ पं० ३ ।

पृ० २३५ पं० ४. **विकल्पेन च** । 'विकल्प्येत च' इत्यपि पाठोऽत्र संभवेत्, दृश्यतां पृ० २३६ पं० ९ ।

पृ० २३५ पं० ९. **चित्रलेप्य**···। दृश्यतां टिपृ० २७ पं० ३३···।

पृ० २३५ पं० १०. **एकत्रैवोपयुक्तार्थत्वाद् । घटादेरभवनस्य**···। 'एकत्रैवोपयुक्तार्थत्वाद् घटादेः । अभवनस्य···' इत्यन्वयविवक्षायां तु मूले [पृ० २३५ पं० ९] 'घटादेः' इति न ग्राह्यम् ।

पृ० २३५ पं० २१. **उक्ति-प्रयोजनादिनानात्वाद्** । दृश्यतां पृ० ४८ पं० २३,३०–३२ ।

पृ० २३५ पं० २४. **स एवात्मास्य भाव** । अत्र 'स एवात्मा भाव' इति य०प्रतिपाठः समीचीन एव भाति । दृश्यतां पृ० २६५ पं० १६ । (स एवात्मास्य भावस्य ?) ।

पृ० २३६ पं० २-३,११. **ननु भेदः प्रत्यक्षत एव···न गृह्यते** । दृश्यतां पृ० २३७ पं० २२, पृ० २३८ पं० ७ ।

पृ० २३६ पं० ७. **विकल्पेन च** । (विकल्प्येत च ?) । दृश्यतां पृ० २३६ पं० ९, टिपृ० ७७ पं० ३ ।

पृ० २३६ पं० २३. **निध्युपलिङ्गत्वेन** । दृश्यतां पृ० २२३ पं० १२ ।

पृ० २३८ पं० ५. **अभेदे भावे य**···। अत्र 'अभेदे भावे तस्य य···' इति पठितव्यम् । दृश्यतां पृ० २४० पं० ६ ।

पृ० २३८ पं० ६. **तस्य ह्येकोऽपि···नतिक्रान्तः** [पृ० २३९ पं० १] । दृश्यतां पृ० २४० पं० ५ । "यतश्चैते सर्वविकल्पातीते एकस्मिन्नर्थे सर्वशक्तियोगाद् द्रष्टॄणां दर्शनविकल्पाः तत एव खलु–सत्या विशुद्धिस्तत्रोक्ता विद्यैवैकपदागमा । युक्ता प्रणवरूपेण सर्ववादाविरोधिना ॥ [वाक्यप० १।९], इहैवैकस्मिन् सर्वरूपे ब्रह्मणि यः परिकल्पः स विरुद्धरूपाभिमतेभ्यः परिकल्पान्तरेभ्यो न भिद्यते । अपि खलु ब्रह्मविद आहुः–'प्रदेशोऽपि ब्रह्मणः सार्वरूप्यमनतिक्रान्तश्चाविकल्पश्च' इति ।"–वाक्यपदीयभर्तृहरिवृत्ति. ।

पृ० २३८ पं० २५. **पर्यायान्तरेण** । 'तद् व्याचष्टे···पर्यायान्तरेण' इति सम्बन्धोऽत्र भाति ।

पृ० २३९ पं० १,१३,२९. **न चास्यो**···। दृश्यतां टिपृ० ७६ पं० १४ ।

पृ० २३९ पं० ३. **ध्रुवः**···। दृश्यतां टिपृ० २३ पं० ११, टिपृ० ७१ टि० १ ।

पृ० २३९ पं० १४. **दक्षिणोत्तरमथुरयोरपि** । दक्षिणमथुरा सम्प्रति 'मदुरा' [Madura] इति व्यवह्रियते, सा च 'दक्षिणभारत'स्थत्वाद् 'दक्षिणमथुरा' इति गीयते, इयमेव 'पाण्डुमथुरा' 'पाण्ड्यमथुरा' इत्यपि चोल्लिख्यते स्म शास्त्रेषु । उत्तरभारतस्था मथुरा तु उत्तरमथुरा इति भाति ।

पृ० २४० पं० ३,१९. **तदभावे तदसिद्धेः** । प्रत्यक्षपूर्वकत्वाभावेऽनुमानासिद्धेरित्याशयः ।

पृ० २४० पं० ११–१४. **सम्बद्धादेकस्मात्**···। "एवं तावद् वैशेषिकस्यानुमानं दुर्घटम् । * सांख्यानामपि 'सम्बन्धादेकस्मात् प्रत्यक्षाच्छेषसिद्धिरनुमानम्' इति । तत्र सम्बन्धः सप्तविधः । तेन यथासम्भवं सम्बन्धात्* एकस्मात् प्रत्यक्षात् शेषस्य अप्रत्यक्षस्यार्थस्यावश्यं सिद्धेः कारणं तदनुमानम् ।" इति दिङ्नागरचितायां प्रमाणसमुच्चयवृत्तौ द्वितीये स्वार्थानुमान-

---

१ "यतश्चैते इति । य एते दर्शनभेदा उपन्यस्तास्ते इति वक्ष्यति । यत एते भिन्नरूपानुपातिनोऽसत्याश्च ततः······ अभिन्नत्वात् सत्यत्वाच्च विद्यैव वेदे उक्ता । तत्रेति वेदे । यत्तु अविद्यात्मकं ब्रह्म तत्प्राप्त्युपायमाह–**एकपदागमा** इति, एकं पदमागमो यस्याः । ततो हि पदात् सा गम्यते । तथाहि वेदे उक्तम्–'**ओमि**त्येकाक्षरमुद्गीथमुपासीत' । **प्रदेशोऽपि** इति, योऽयं प्रदेशस्तस्य प्रदेशान्तरेभ्यो भेदविकल्पः–अयमस्मादन्य इति, घट इति पटविलक्षणः । स नास्ति ।"–**वृषभदेवटी०** ।

२ * * एतदन्तर्गतः पाठो **विशालामलवती**टीकान्तर्गतप्रतीकानुसारेण प्रतीयते, **प्रमाणसमुच्चयवृत्तिभोटभाषानुवादानुसारेण** तु तत्स्थाने "**सांख्यास्तावत्** 'सम्बन्धादेकस्मात् प्रत्यक्षाच्छेषसिद्धिरनुमानम्' इत्याहुः ।···तेषु अन्यतमात्" इति पाठः प्रतीयते । "**सांख्यानामपी**त्यादि । अनुमानं विस्तरेण वेदितव्यमिति स्थिते तत्स्वरूपज्ञानाय परेण 'किमिदमनुमानं नाम' इत्युक्ते आह–**सम्बन्धादेकस्मा**दित्यादि । **सम्बन्धः सप्तविध** इति अर्थानां सम्बन्धस्य सप्तविधत्वम्, 'स्वस्वामिभावेन वा'

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

परिच्छेदे, Derge edition. पृ० ३५ B–३६ A। अत्र वक्ष्यमाणं भोटपरिशिष्टं द्रष्टव्यम्। "एतेन सम्बन्धादेकस्मात् प्रत्यक्षाच्छेषसिद्धिरनुमानम्' इति लक्षणं प्रत्युक्तम्।"–न्यायवा० १।१।५। "प्रत्यक्षादीन्यपि च तन्त्रान्तरेषूपदिश्यन्ते–श्रोत्रादिवृत्तिः प्रत्यक्षम्। सम्बन्धादेकस्माच्छेषसिद्धिरनुमानम्। यो यत्राभियुक्तः कर्मणि चादुष्टः स तत्राप्तः, तस्योपदेश आप्तवचनम्। इति।"–सांख्यकारिकायुक्तिदीपिकावृ० पृ० ४। तुलना—"अवगृहीते विषयार्थैकदेशाच्छेषानुगमनं निश्चयविशेषजिज्ञासा ईहा।"–तत्त्वार्थभा० १।१५।

पृ० २४० पं० १४. आत्मेन्द्रिय···। दृश्यतां टिप्प० ३२ पं० ३५।

पृ० २४० पं० १९. तदसिद्धेः प्रत्यक्षत्वा···। 'तदसिद्धेः। प्रत्यक्षत्वा···' इति योजनीयमत्र। टिप्प० ७७ पं० २५।

पृ० २४० पं० २३. सामान्यप्रत्यक्षाद्···। दृश्यतां टिप्प० १९ पं० २९।

पृ० २४० पं० २५. मात्रामात्रिकभावेन वा। एतदनन्तरं [सहचारिभावेन वा] इति पूरणीयम्।

पृ० २४१ पं० १,१५. विपर्येतव्य···। अत्र विपर्ययितव्य° इति ज्यायः प्रतिभाति, प्रत्यनुसारित्वात्।

पृ० २४१ पं० ४–११. यथा···तथेद···तस्यैक···अङ्गारकितम्···प्रकृतित्व···। दृश्यतां टिप्प० ७६ पं० २१···।

इत्यादिभाष्यवचनात्। 'सम्बन्धानामर्थानाम्' इति निर्देशात् सूत्रे कर्मसाधनः सम्बन्धशब्दो ज्ञेयः। स्वस्वामिभावेन वेति, राजसेवकवत् प्रधान-पुरुषवच्च। उदाहरणद्वयं लोक-शास्त्रप्रसिद्धिवशात्। एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम्। स्वस्वामिभावोऽन्योन्यापेक्षः। स्वस्य स्वामिनं प्रति सत्त्वं तद्योग्यत्वं च, एवं स्वामिनोऽपि स्वं प्रति सत्त्वम्। प्रकृतिविकारभावेन क्षीरदध्यादिवत् प्रधानमहदादिवच्च। प्रकृतिरविभागं कारणम्। विकारः तस्याः परिणामिन्या धर्मः। कार्यकारणभावेन अन्योन्योपकारलक्षणेन रथाङ्गवत् सत्त्वादिवच्च शब्दादिभावेन परिणामे। निमित्तनैमित्तिकभावेन अन्यतरोपकारलक्षणेन कुम्भकारघटादिवत् पुरुष-प्रधानप्रवृत्तिवच्च। मात्रामात्रिकभावेन च अवयवावयविभावलक्षणेन शाखादि-वृक्षवत् शब्दादि-महाभूतवच्च। सहचारिभावेन चक्रवाकवत् सत्त्वादिवच्च। वध्यघातकभावेन अहिनकुलवत् अङ्गाङ्गिभूतसत्त्वादिवच्च। सत्त्वादीनां यस्य अङ्गित्वं तेन इतरस्य अभिभूतत्वात्। अयं सप्तविधः सम्बन्धः। तेन यथासम्भवं सम्बन्धादेकस्मादिति। यथोक्तम्—'कश्चिदर्थः कस्यचिदिन्द्रियस्य प्रत्यक्षो भवति। तस्मादिदानीमिन्द्रियप्रत्यक्षादर्थात् पूर्वं समुदाये कृतसम्बन्धात् बुद्ध्या अविशिष्टस्यार्थस्यास्तित्वं प्रतिपद्यते, यथा पूर्वं धूमाग्न्योः सम्बन्धं दृष्ट्वा धूमदर्शनादग्नेप्यरस्तित्वं प्रतिपद्यते।' इति। सिद्धेः कारणमिति लिङ्गज्ञानं सम्बन्धस्मरणापेक्षम्, तद्विशे(तद्धि शे)षस्य अप्रत्यक्षस्य लिङ्गिनः सिद्धेः कारणम्। सिद्धिः कार्यम्। सूत्रे कारणे कार्योपचारात् 'शेषसिद्धिरनुमानम्' इत्युक्तम्।"—विशालामलवती० पृ० ११७ B–११८ B. Derge edition. अस्य भोटभाषानुवादोऽत्र वक्ष्यमाणे भोटपरिशिष्टे द्रष्टव्यः। "तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकमनुमानं चेति। लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धस्तु स्वस्वामिप्रकृतिविकारकार्यकारणमात्रिकाप्रतिपत्ति(क्षि ?)सहचरितनिमित्तनैमित्तिकभावैरिति।"–सांख्यकारिकावृ० A।

१ "सम्प्रति सांख्यीमनुमानलक्षणं दूषयति–एतेनेति। सम्बन्धोऽविनाभावः साधनस्य साध्येन। तस्मात् प्रत्यक्षाद् दृढतरप्रमाणावधारितात्। तथापि यत्राविनाभूते लिङ्गे भवत एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धाव्यभिचारिणी तयोरपि हेतुत्वं प्रसज्येतेत्यत उक्तम्–एकस्मादिति। शेषस्य अनुमेयस्य सिद्धिः।"–न्यायवार्तिकतात्पर्यटी०। २ 'श्रोत्रादिवृत्तिः प्रत्यक्षम्' इति वार्षगण्यरचितं लक्षणम्, दृश्यतां टिप्प० ३२ पं० २। तेन सहोपात्तत्वादिदमपि लक्षणं वार्षगण्यरचितं भवेदिति सम्भाव्यते। ३ बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक. पृ० १२४६। तत्त्वसंग्रहपञ्जिका. पृ० ७२। शास्त्रवार्तासमुच्चय. ५४४-५४५। सन्मतिवृत्ति. पृ० ३८३। प्रमेयकमलमार्तण्ड. पृ० ४४-४५। न्यायकुमुदचन्द्र. पृ० १४१। अष्टसहस्री. पृ० ९३। न्यायविनिश्चयटीका. पृ० १।३१२। स्याद्वादरत्नाकर. पृ० ९।—प्रभृतिग्रन्थेषु उद्धृतोऽयं श्लोकः। ४ बृहदा० वा० पृ० १२४६ इत्यत्र उद्धृतः। ५ अत्र 'अङ्गारकितम्' इति शुद्ध एव पाठः, तथा प्राचीनग्रन्थेषु प्रयोगदर्शनात्। "मैत्रक इव त्वगङ्गारकितादिभेदपलाशवतत्त्वस्य······त्वन्मात्रः अङ्गारकितः किशलयितः पत्रितः इत्यादि ब्रुवन् मैत्रकः पलाशं निरवयवप्रभेदं तत्र निरावरणज्ञान इति प्रसिद्धः।" इति वक्ष्यतेऽत्रैव नयचक्रवृत्तौ पृ० ५७१–१।

---

1 अत्र निर्दिष्टं सूत्रं भाष्यं च सांख्यप्रणीतमभिप्रेतमिति ध्येयम्। सूत्रं वार्षगण्यप्रणीतं भाति। 2 नयचक्रेऽष्टमारे [पृ० ४४६–१] उद्धृतोऽयं पाठो मल्लवादिनापि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० २४१ पं० १८. पुढविकायि···। 'पृथिवीकायिकादयो जीवा अन्धा मूढा तमःप्रविष्टाः' इत्यर्थः।

पृ० २४२ पं० ४. अनागम···। "यद्येवं किमविद्योपदर्शकशास्त्रप्रक्रियासमाश्रयेण प्रेक्षापूर्वकारिणामित्याह – अनागम···। अविद्योपमर्देन ह्युत्तरकालमागमविकल्परहिता शास्त्रप्रक्रियाप्रपञ्चशून्या विद्योपावर्तते प्रकटीभवति। एतदुक्तं भवति – अविद्यैव विद्योपाय इति।" – वाक्यपदीयपुण्यराजवृ०।

पृ० २४२ पं० १०. नर्तकहस्त···। (नर्तकीहस्त?)।

पृ० २४२ पं० २३. वेदशिरः। 'वेदशिरः'शब्देन उपनिषद्ग्रहणम्, यथा अथर्वशिरः अथर्ववेदस्योपनिषत्।

पृ० २४३ पं० ३. सर्वधातवो···। दृश्यतां पृ० २३४ पं० ४।

पृ० २४३ पं० ५. पण्णवणिज्जा···। दृश्यतां टिपृ० १० पं० ६।

पृ० २४३ पं० ८,९. विकल्प···नार्थाञ् शब्दाः···। दृश्यतां पृ० ५४७ पं० ७ टि० ५। 'नार्थान् शब्दाः स्पृशन्त्यमी' – न्यायकुमु० पृ० ५३७। न्यायविनिश्चयटी० पृ० १।६७,३५१। स्याद्वादरत्ना० पृ० ७०१।

पृ० २४३ पं० १०. शब्दा इति शब्दगडुमात्र···। दृश्यतां पृ० ५४७ पं० ६।

पृ० २४३ पं० १५. मयूरविरुत···। दृश्यतां पृ० २५१ पं० १६-१७।

पृ० २४३ पं० १६. कृतसङ्गीतेः। दृश्यतां टिपृ० ६३ पं० १७।

पृ० २४३ पं० २१-२२. गौर्विषाणी···। दृश्यतां टिपृ० १७ पं० २७।

पृ० २४४ पं० १. न तु सर्वाणि। सङ्ग्रह···। 'न तु सर्वाणीति सङ्ग्रह···' इति सम्यग् भाति।

पृ० २४४ पं० २,२३. विकारावयवौ। दृश्यतां पृ० ११५ पं० १।

पृ० २४४ पं० ७-१०. आख्यातशब्दः···। दृश्यतां पृ० ४४८ टि० २।

पृ० २४४ पं० १४. एक्किक्को···। दृश्यतां पृ० ५५० टि० १।

पृ० २४४ पं० १६. तित्थकर···। दृश्यतां टिपृ० ५२ पं० ३।

पृ० २४४ पं० १९-२१. द्रवतीति···इत्येवमादि। दृश्यतां टिपृ० १६ पं० २४—टिपृ० १७ पं० ८।

पृ० २४५ पं० १-३. किं भवं···। दृश्यतां टिपृ० ६७ टि० १। 'किं भवान्? एको भवान् द्वौ भवान् अक्षयो भवान् अव्ययो भवान् अवस्थितो भवान् अनेकभूतभव्यभविको भवान्? सोमिल! एकोऽप्यहं द्वावप्यहम् अक्षयोऽप्यहम् अव्ययोऽप्यहम् अवस्थितोऽप्यहम् अनेकभूतभव्यभविकोऽप्यहम्।' इत्यर्थः।

पृ० २४५ पं० ३. ६४७]। अत्र '६४७]। इति द्वितीयो विधिविध्यरः।' इत्यपि पाठः सम्भवेत्।

पृ० २४५ पं० ८. समाप्तः। एतदनन्तरं प्रतिषु दृश्यमाना 'कमलदलविपुलनयना···' [पृ० २४६ पं० ७-८] इति कारिका अत्र द्वितीयारसमाप्तौ निवेश्यमाना अधिकं शोभते। इयमपि च न नयचक्रवृत्तिकारस्य, किन्तु केनचित् प्रक्षिप्ता, वृत्तिकारस्य तथाविधशैल्यदर्शनादिति भाति।

पृ० २४६ पं० ३. अथ किं···। तुलना, पृ० २६० पं० २४-२५।

पृ० २४६ पं० ३-४. उक्ता···। (उक्तास्तासु पुरुषादि तत्त्वं तल्लक्षणम्? उक्ताः तल्लक्षणं पुरुषादि तत्त्वम्?)।

पृ० २४६ पं० ७. कमलदल···। दृश्यतां टिपृ० ७९ पं० २५।

---

१ "अंधत्ति अन्धा इवान्धा अज्ञानाः। मूढत्ति मूढास्तत्त्वश्रद्धानं प्रति। एत एवोपमयोच्यन्ते–तमंपविट्ठत्ति। तमःप्रविष्टा इव तमःप्रविष्टाः। तमपडलमोहजालपलिच्छण्णत्ति। तमःपटलमिव तमःपटलं ज्ञानावरणम्। मोहो मोहनीयम्, तदेव जालं मोहजालम्। ताभ्यां प्रतिच्छन्ना आच्छादिता ये ते तथा।" इति अभयदेवसूरिकृतायां भगवतीसूत्रवृत्तौ। २ न्यायविनिश्चयटीका. पृ० १।३९२, ५३३, २।२५८, ३२४। सिद्धिविनिश्चयटीका पृ० २६० B, ३६५ B, ४८४ B। न्यायमञ्जरी। न्यायावतारटीका। रत्नाकरावतारिका। स्याद्वादमञ्जरी।—प्रभृतिग्रन्थेष्वपि अंशतः सम्पूर्णो वोद्धृतोऽयं श्लोकः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० २४६ पं० १३. **पुरुषः सुप्तादि°**। अत्र सर्वासु हस्तलिखितप्रतिषु **'पुरुष सुप्तादि°'** इति पाठः। वक्ष्यमाणशैल्यनुसारेण **'पुरुष एव सुप्तादि°'** इत्यपि पाठः स्यादत्र।

पृ० २४८ पं० २. **विनिद्रा···प्रतिपादनवत्** [पृ० २५८ पं० ४]। एतत् सर्वं मूलं 'पृ० २७५ पं० २८–२७७ पं० १३' इत्यत्र वक्ष्यमाणेन ग्रन्थेन संवदति।

पृ० २४८ पं० ७. **यस्मात् परं···**। "कस्मात् पुनस्तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति इत्युच्यते। यस्मात् परं पुरुषात् परमुत्कृष्टमपरमन्यद् नास्ति। यस्माद् नाणीयोऽणुतरं न ज्यायो महत्तरं वास्ति। वृक्ष इव स्तब्धो निश्चलो दिवि द्योतनात्मनि स्वे महिम्नि तिष्ठत्येकोऽद्वितीयः परमात्मा। तेनाद्वितीयेन परमात्मनेदं सर्वं पूर्णं नैरन्तर्येण व्याप्तं पुरुषेण पूर्णेन।" इति शंकराचार्यकृते श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्ये।

पृ० २४८ पं० १६. **जागरितृत्वात्**। अत्र 'जागरितत्वात्' इति शुद्धः पाठः।

पृ० २४८ पं० १८. **पशवश्चा···**। "एवम्···अवध्यादिज्ञानप्राप्तिप्रसङ्गः····'पशवश्चाप्यनिवृत्तकेवलाः' इति वचनात्। ···न···, अवध्यादिज्ञानावरणानामक्षयोपशमादक्षयाच्च 'पशवः' इत्यादस्य च शक्तिमात्रोपवर्णनात्।" – विशेषावश्यकभाष्यकोट्याचार्यवृ० पृ० ४८।

पृ० २५१ पं० १९. **रूपस्य–तत्त्वस्य**। 'रूपस्य तत्त्वस्य –' इति योजनीयमत्र।

पृ० २५२ पं० १८. **'अर्यते' इत्यलक्षणत्वाच्छब्दाभिधेयो ज्ञानज्ञेयो वा नेति विनिद्रावस्थाऽविनिद्रावस्था वा स्याद्**। 'अर्यते इत्यरलक्षणत्वाच्छब्दाभिधेयो ज्ञानज्ञेयो वा विनिद्रावस्थाऽविनिद्रावस्था वा स्यात्', इति भा०प्रत्यनुसारी पाठ एवात्र समीचीनः। 'ऋ गतौ' इति धातुतः 'अर्थ'शब्दस्य निष्पत्तेः 'अर'लक्षणत्वादित्युक्तमत्रेति ध्येयम्।

पृ० २५२ पं० २१. **इतश्चेत्यवस्थातः**। भा०प्रत्यनुसारी 'इतश्चेत्यवस्थाभ्यः' इत्यपि पाठोऽत्रचिन्त्यः।

पृ० २५३ पं० ५,१७. **पितृपुत्रवत्**। (पितृत्वपुत्रत्ववत्? पितृपुत्रत्ववत्?)। दृश्यतां पृ० २७६ टि० ११।

पृ० २५३ पं० २५. **अथवा नावस्था···**। एवं समासे तु 'अनवस्थात्वात्' इति पाठान्तरेणापि मूले [पृ० २५३ पं० ६] भाव्यम्। दृश्यतां पृ० २५४ टि० १, पृ० २७६ टि० १३।

पृ० २५५ पं० १३. **प्राप्तावित्थ···**। प्रतिष्वत्र प्राप्तमित्थ° इति पाठः। लेखनदोषोऽयम्, दृश्यतां पृ० २२ पं० १६।

पृ० २५७ पं० ७. **अतिदिश्यात्**। अत्र **'अतिदिश्यते'** इति शुद्धः पाठः।

पृ० २५८ पं० ३. **त्वदभिप्राय एव एवं**। 'त्वदभिप्राय एवं' इत्यपि स्यादत्र, दृश्यतां पृ० २७७ पं० १२।

पृ० २५९ पं० १९–२१. **मातुओयं···**। 'मातुरोजः पितुः शुक्रं तत् तदुभयसंसृष्टं कलुषं किल्बिषं तत्प्रथममाहारमाहार्य जीवो गर्भतया व्युत्क्रामति। सप्ताहं कललं भवति सप्ताहं भवत्यर्बुदम्। अर्बुदाज्जायते पेशी पेशीतो जायते घनम्।' इत्यर्थः। दृश्यतां भगवतीसू० १।७।६१। सूत्रकृताङ्ग० २।३।५६।

पृ० २६१ पं० १,७, **तत्त्वं तावत्**। (नन्वेतावत्??), दृश्यतां पृ० २६१ टि० ३।

---

१ अत्र नयचक्रवृत्तिप्रत्यनुसारी **'मातुंतोयं पितुंसुक्कं'** इति पाठः शुद्ध एव भाति। भगवतीसूत्रस्य [१।७।६१] अहमदाबादे **'लवारनी पोळ'** इत्यत्रस्थायां प्रतावपि **'मातुंतेयं पितुंसुक्कं'** इति पाठदर्शनादीदृशस्य पाठस्यापि पुरा प्रचार आसीदिति भाति। "अयं जीवः···मातापित्रोः संयोगे 'माउओयं'ति मातुरोजो जनन्या आर्तवं शोणितमित्यर्थः, 'पिउसुक्कं'ति पितुः शुक्रम्, इह 'यत्' इति शेषः, 'तं'ति तदाहारं, तस्य गर्भव्युत्क्रमणस्य प्रथमता तत्प्रथमता तया 'आहारित'ति तैजसकार्मणशरीराभ्यां भुक्त्वा गर्भतया गर्भत्वेन व्युत्क्रामति उत्पद्यते इत्यर्थः। किम्भूतमाहारम्? 'तदुभयसंसिट्ठं'ति तयोः शुक्रशोणितयोरुभयं तच्च तत् संसृष्टं च मिलितं च तदुभयसंसृष्टं कलुषं मलिनं 'किब्बिसं'ति कर्बुरमिति। ततः केन क्रमेण शरीरं निष्पाद्यते? इत्याह—'सत्ताह'मित्यादि यावद् 'भवे'त्ति पद्यम्। सप्ताहोरात्राणि यावत् शुक्रशोणितसमुदायमात्रं कललं भवति। ततः सप्ताहोरात्राणि अर्बुदो भवति, ते एव शुक्रशोणिते किञ्चित् स्त्यानीभूतत्वं प्रतिपद्येते इति। ततोऽपि चार्बुदात् पेशी मांसखण्डरूपा भवति। ततश्चानन्तरं सा घनं समचतुरस्रं मांसखण्डं भवति।" इति तन्दुलवैचारिकवृत्तौ पृ० ७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० २६१ पं० ३. **सन्निध्या**…। "ज्ञः पुरुषः सन्निधिसत्तामात्रेण चुम्बक इव लोहस्य प्रवृत्तिकारणम् । अतः प्रधानस्य जडस्य प्रवृत्तिहेतुरयमस्तीति ।"–सांख्यकारिकामाठरवृत्ति. पृ० ९ ।

पृ० २६१ पं० १९. **भागः** । (भावः ? विभागः ?) । पृ० ३२४ पं० २१ इत्यत्र त्वन्यथा वर्णनम् ।

पृ० २६२ पं० १. **आपत्ति**…**तथावृत्ति** । एतत्स्थाने 'अस्तिभवनं सन्निहिततथावृत्ति आपत्तिभवनम्' इत्यपि स्यात् ।

पृ० २६३ पं० ७. **नैकैकस्मा**…। "कारणमस्त्यव्यक्तं प्रवर्तते त्रिगुणतः समुदयाच्च । परिणामतः सलिलवत् प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात् ॥१६॥"–सांख्यकारिका. ।

पृ० २६४ पं० २,१०. **संघातात्मकत्वात्** । दृश्यतां पृ० २७७ पं० २१ ।

पृ० २६५ पं० ३. **प्रसादलाघवाभि**° । 'प्रसादलाघवप्रसवाभि°' इति पठनीयमत्र । दृश्यतां टिपृ० १४ पं० २८ ।

पृ० २६६ पं० २. **यद् यन्मयै**…। दृश्यतां पृ० २९१ पं० २० ।

पृ० २६६ पं० ६. **अजामेकां**…। दृश्यतां पृ० १९१ पं० १७ ।[1]

पृ० २६६ पं० २३. **वैनाशिका**…। वैनाशिका क्षणभङ्गवादिनो बौद्धा ज्ञेयाः ।

पृ० २६७ पं० ३. **उभा सखायौ सयुजा सपर्णौ**…**न्योऽभिचाकशीति** । ऋग्वेदे [१।१६४।२०] मुण्डकोपनिषदि [३।१।१] श्वेताश्वतरोपनिषदि [४।६] च दृश्यते इयं कारिका, किन्तु तत्र सर्वत्र '**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया**' इति पाठः । मुण्डकोपनिषदि श्वेताश्वतरोपनिषदि च '**न्यो अभिचाकशीति**' इति पाठ उपलभ्यते ।[2]

पृ० २६७ पं० ६. **प्रधानीति** । भा०प्रतिस्थः '**प्रधानेति**' इति पाठ एवात्र शुद्धः ।

पृ० २६८ पं० ११. **गुणसन्द्रावो**…। दृश्यतां टिपृ० १६ पं० ३५ ।

पृ० २७० पं० २१. **एवं वक्ष्यमा**…। अत्र '**एव वक्ष्यमा**…' इति य०प्रतिपाठः शोभनः ।

पृ० २७१ पं० १३. **क्रियागुण**…। दृश्यतां पृ० ४८९ टि० ६ ।

पृ० २७१ पं० १४. **द्रव्याणि**…**येषां चाधिकृत**…। दृश्यतां पृ० ४३७ पं० ११–१२, पृ० ४५२ पं० ४ ।

पृ० २७२ पं० १. **एवं तु**…**तत्रैवोक्तत्वात्** [पृ० २७३ पं० ३] । सर्वमिदं मूलं पृ० २८३ पं० १५–२३ इत्यत्र वक्ष्यमाणेन ग्रन्थेन संवदति ।

पृ० २७२ पं० ३,१७,२०. **असदकरणा**…। दृश्यतां पृ० ३५ पं० १७, टिपृ० २६ पं० १–१५ ।

पृ० २७२ पं० ६. **करोति** । अत्र 'करोति परिणामित्वात्' इत्यपि स्यात्, दृश्यतां पृ० २८३ पं० २१ ।

पृ० २७३ पं० १. **पूर्ववदु**…। अत्र 'एवं तर्हि पूर्ववदु…' इत्यपि स्यात्, दृश्यतां पृ० २८३ पं० २१ ।

---

१ "इदानीं तेजोऽबन्नलक्षणां प्रकृतिं छान्दोग्योपनिषत्प्रसिद्धामजारूपकल्पनया दर्शयति–**अजामेकामिति** । अजां प्रकृतिं लोहितशुक्लकृष्णां तेजोऽबन्नलक्षणां बह्वीः प्रजाः सृजमानामुत्पादयन्तीं ध्यानयोगानुगतदृष्टां देवात्मशक्तिं वा सरूपाः समानाकाराः । **अजो** ह्येको विज्ञानात्मा अनादिकामकर्मविनाशितः स्वयमात्मानं मन्यमानो जुषमाणः सेवमानोऽनुशेते भजते । अन्य आचार्योपदेशप्रकाशावसादितविद्यान्धकारो जहाति त्यजति ।" इति **शंकराचार्यरचिते श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्ये** ।

२ "**द्वा** द्वौ **सुपर्णा** सुपर्णौ शोभनपतनौ सुपर्णौ पक्षिसामान्याद्वा सुपर्णौ **सयुजा** सयुजौ सहैव सर्वदा युक्तौ **सखाया** सखायौ समानाख्यानौ समानाभिव्यक्तिकारणावेवंभूतौ सन्तौ **समानमविशेषमुपलब्ध्यधिष्ठानतया एकं वृक्षं** वृक्षमिवोच्छेदनसामान्याच्छरीरं वृक्षं **परिषस्वजाते** परिष्वक्तवन्तौ, सुपर्णाविवैकं वृक्षं फलोपभोगार्थम् । अयं हि वृक्ष ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाखोऽश्वत्थोऽव्यक्तमूलप्रभवः क्षेत्रसंज्ञकः सर्वप्राणिकर्मफलाश्रयः, तं परिष्वक्तौ सुपर्णाविवाविद्याकामकर्मवासनाश्रयलिङ्गोपाध्यात्मेश्वरौ । तयोः परिष्वक्तयोरन्य एकः क्षेत्रज्ञो लिङ्गोपाधिर्वृक्षमाश्रितः पिप्पलं कर्मनिष्पन्नं सुखदुःखलक्षणं फलं स्वादु अनेकविचित्रवेदनास्वादरूपं स्वादु अत्ति भक्षयति उपभुङ्क्तेऽविवेकतः । अनश्नन्नन्यः इतर ईश्वरो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः सर्वज्ञः सत्त्वोपाधिरीश्वरो नाश्नाति, प्रेरयिता ह्यसावुभयोर्भोज्यभोक्त्रोर्नित्यसाक्षित्वसत्तामात्रेण । स त्वनश्नन्न**न्योऽभि**चाकशीति पश्यत्येव केवलम् । दर्शनमात्रं हि तस्य प्रेरयितृत्वं राजवत् ।" इति **शंकराचार्यकृते श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्ये** ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० २७३ पं० ६. **प्रवर्त्य···उक्तत्वम्** [पृ० २७५ पं० ६]। सर्वमिदं मूलं पृ० २८४–पृ० २८६ पं० २ इत्यत्र वक्ष्यमाणेन मूलेन संवदति।

पृ० २७५ पं० ५–६. **स्यान्मतम्···उक्तत्वात्**। 'स्यान्मतम्–प्रकर्षेण काशनं प्रकाशनम्, सत्त्वानुग्रहात् तद्रूपव्यक्तिः प्रकर्षेण काशनम्, रजोनुग्रहात् प्रवृत्तिवत्। तत्रापि सत्त्वस्यापि रजोवदपरिसमाप्तरूपत्वात् प्रवर्तकाभावस्य चापर्याप्तत्वेनोक्तत्वात्।' इत्यपि मूलमत्र सम्भवेत्। दृश्यतां पृ० २८६ पं० १४–१७, पृ० २७१ पं० ४–पृ० २७२ पं० ३।

पृ० २७६ पं० २३-२४. **न तर्हि ना**। अत्र सर्वप्रतिस्थः **'न तर्हि ता ना'** इति पाठः **'न तर्हि ता** अवस्था **ना** पुरुषः' इत्यर्थविवक्षायां सङ्गच्छेतापि कथञ्चिदिति ध्येयम्।

पृ० २७७ पं० २१. [1]**संघातपरार्थत्वात्**। दृश्यतां पृ० २६४ पं० १,१०–१७।

पृ० २७७ पं० २३–२४. **प्रवृत्तेरचेतनस्य**। (प्रवृत्तेश्चेतनस्य?)।

पृ० २७७ पं० २६. **तेच्चेव**···। 'त एव ते पुद्गलाः सुरभिगन्धतया परिणमन्ति, त एव ते पुद्गला दुरभिगन्धतया परिणमन्ति' इत्यर्थः। दृश्यतां पृ० ३५९ पं० २६, पृ० ३६१ पं० १९।

पृ० २७९ पं० ८. **अवरणाद्यात्मकं शोषादिप्रसादाद्यात्मकं**। अत्र भा०प्रतौ य०प्रतौ च 'अवरणात्मकं शोषादिप्रसादाद्यात्मकं' इति पाठः। एवं च 'अवरणात्मकशोषादिप्रसादाद्यात्मकं' इति प्रत्यनुसारी पाठोऽप्यत्र समीचीनो भाति।

पृ० २८३ पं० ७. **नाऽनाकाशादिर्वा**। अत्र य०प्रतौ **'नानाकाशादिर्वा'** इति पाठः। शब्दादाकाशस्य भेदात् **'नाकाशादिर्वा'** इति भा०प्रतिपाठ एव आदरणीयो भाति।

पृ० २८६ पं० १–२. **स्यान्मतम्···उक्तत्वात्**। 'स्यान्मतम्–प्रकर्षेण काशनं प्रकाशनम्, सत्त्वानुग्रहात् तद्रूपव्यक्तिः प्रकर्षेण काशनम्, रजोनुग्रहात् प्रवृत्तिवत्। तत्रापि सत्त्वस्यापि तमोवदपरिसमाप्तरूपत्वात् नियामकाभावस्य चापर्याप्तत्वेनोक्तत्वात्।' इत्यपि मूलमत्र सम्भवेत्। दृश्यतां टिपृ० ८२ पं० ३–५।

पृ० २८८ पं० २९. **रवाच्या। तत्साधन°**। '°रवाच्या। एतत्साधन°' इति प्रत्यनुसारी पाठ एवात्रादरणीयः।

पृ० २९५ पं० ५. **°वृत्तिता**। अत्र **'वृत्तितेति'** इति पठनीयम्।

पृ० २९५ पं० २७. **सत्त्वसत्त्वस्यैव**। अत्र **'सत्त्वस्य सत्त्वस्यैव'** इति य०प्रतिपाठः सम्यगेव।

पृ० २९६ पं० १. **सतो हि भावः सत्त्वम्। रजःसत्त्वेन**। अत्र **'सतो हि भावः सत्त्वं प्रवृत्तिनियमानपेक्षेण सत्त्वसत्त्वेन। एवं रजःसत्त्वेन'** इति मूलं बोध्यम्।

पृ० २९६ पं० ५,२५. **अत्थित्तं**···। 'अस्तित्वमस्तित्वे परिणमति' इत्यर्थः।

---

१ "**संघातपरार्थत्वात्**। इह संघाताः परार्था दृष्टाः, तद्यथा–शयनासनरथचरणादयः। अस्ति चायं शरीरलक्षणः संघातः, तस्मादनेनापि परार्थेन भवितव्यम्। योऽसौ परः स पुरुषः। तस्मादस्ति पुरुषः। [पृ० ९३]······**त्रिगुणादिविपर्ययात्**। त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि च बाह्याध्यात्मिकं तथा प्रधानम्। तत्र यद्येतावदेतत् स्यात्, किमपेक्ष्य व्यक्ताव्यक्तयोस्त्रैगुण्यादि? किञ्चान्यत्, **अधिष्ठानात्**। इहाकस्मिक्यां प्रधानप्रवृत्तावर्थवशः सन्निवेशविशेषनियमो न स्यात्।······तस्मादस्ति तद्व्यतिरिक्तो यदधिष्ठितानां गुणानामयं चित्ररूपो विपरिणामः।······**पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात्**। इह सुखदुःखमोहात्मकत्वादचेतनं व्यक्तमव्यक्तं च। तस्मादस्य परस्परेण भोगो नोपपद्यते इत्यवश्यं भोक्त्रा भवितव्यम्। योऽसौ भोक्ता स पुरुषः। [पृ० ९४]······**कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च**। इह प्रवृत्तिमतां निमित्तमन्तरेण निवृत्तिर्नोपपद्यते। प्रधानमपि च प्रवृत्तिमत्, व्यक्तदर्शनात्। तस्माद् यस्य कैवल्यं प्रधानप्रवृत्तिहेतुः स पुरुषः।"–**सां**ख्यकारिका**युक्तिदीपिका** पृ० ९३–९७। २ "**से** नूणमित्यादि। अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइत्ति, **अस्तित्व**मङ्गुल्यादेरङ्गुल्यादिभावेन सत्त्वम्।······तच्चेह ऋजुत्वादिपर्यायरूपमवसेयम्, अङ्गुल्यादिद्रव्यास्तित्वस्य कथञ्चिदृजुत्वादिपर्यायाव्यतिरिक्तत्वात्। **अस्तित्वे** अङ्गुल्यादेरेवाङ्गुल्यादिभावेन सत्त्वे वक्रत्वादिपर्याये इत्यर्थः, **परिणमति** तथा भवति। इदमुक्तं भवति–द्रव्यस्य प्रकारान्तरेण सत्ता प्रकारान्तरसत्तायां वर्तते, यथा मृद्द्रव्यस्य पिण्डप्रकारेण सत्ता घटप्रकारसत्तायामिति। **नत्थित्तं** नत्थित्ते परिणमइत्ति, **नास्तित्व**मङ्गुल्यादेरङ्गुष्ठादिभावेनासत्त्वम्, तच्चाङ्गुष्ठादिभाव एव। ततश्चाङ्गुल्यादेर्नास्तित्वमङ्गुष्ठाद्यस्तित्वरूपमङ्गुल्यादे**र्नास्तित्वे** अ**ङ्गुष्ठा**देः पर्यायान्तरेणास्तित्वरूपे परिणमति। यथा मृदो नास्तित्वं तन्त्वादिरूपं मृन्नास्तित्वरूपे पटे इति। अथवा अस्तित्वमिति धर्मधर्मिणोरभेदात् सद्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० २९६ पं० ९. **सत्त्वसत्त्वं**। य०प्रतिस्थः 'सत्त्वं सत्त्वं' इत्यपि पाठोऽत्र समीचीनः। दृश्यतां पृ० २९५ पं० २६।

पृ० २९७ पं० १८. **एवं समापितप्रसङ्गः**। 'एवमवसायितप्रसङ्गः' इत्यपि पाठोऽत्र प्रत्यनुसारेण स्यात्।

पृ० २९८ पं० ७-११. **ननूक्तमन्वयवीत एव, अत्राह–…गुरुरप्रकाशको दृष्टः**। अत्र 'अन्वयवीते' इति सप्तम्यन्तो निर्देशो भाति। "अत्राह—**कथं पुनः** [पृ० २९८ पं० ७]……**कार्यकारणात्मकानाम्**" [पृ० २९८ पं० ११] इति पाठः कुतश्चित् सांख्यग्रन्थाद् [वार्षगणतन्त्राद्] अत्र नयचक्रवृत्तिकृद्भिरुद्धृत इति भाति। अन्वयवीत-प्रयोगः पृ० ३०१ पं० ७, पृ० ३१४ पं० ७, पृ० १२ पं० १७ इत्यत्र च द्रष्टव्यः।

पृ० २९९ पं० १-२. **एतेनाध्यात्मिकानां कार्यकारणात्मकानां भेदानाम्**। पाठोऽयं मूले न ग्राह्यः। दृश्यतां टिपृ० ८३ पं० ४-५।

पृ० २९९ पं० ३४-३५. **एतेन……समन्वयदर्शनात्**। इदं मूले न ग्राह्यम्, दृश्यतां टिपृ० ८३ पं० ४-५,७।

पृ० ३०० पं० १४. **दृष्टं**। अत्र 'दृष्टः' इति युक्तं भाति।

पृ० ३०१ पं० ७-९. **अस्ति प्रधानं……चन्दनशकलादिवत्**। दृश्यतां पृ० २६५-२६६; पृ० ३१४ पं० ७, पृ० १२ पं० १७।

पृ० ३०१ पं० ९. **तदात्मकानि**। अत्र य०प्रत्यनुसारी '**तदारब्धानि**' इति पाठ एव समीचीनो भाति।

पृ० ३०२ पं० ९. **रातीति**। "रा दाने।"–पा० धा० अदादि०।

वस्तु अस्तित्वे सत्त्वे परिणमति, सत् सदेव भवति, नात्यन्तं विनाशि स्यात्, विनाशस्य पर्यायान्तरगमनमात्ररूपत्वात्, दीपादि-विनाशस्यापि तमिस्रादिरूपतया परिणामात्। तथा नास्तित्वमत्यन्ताभावरूपं यत् खरविषाणादि तद् नास्तित्वेऽत्यन्ताभाव एव वर्तते। नात्यन्तमसतः सत्त्वमस्ति खरविषाणस्येवेति। उक्तं च–'नासतो जायते भावो नाभावो जायते सतः।' अथवा अस्तित्वमिति धर्म्यभेदात् सदस्तित्वे सत्त्वे वर्तते यथा पटः पटत्वे एव। नास्तित्वं चेह नास्तित्वेऽसत्त्वे वर्तते, यथा अपटोऽपटत्वे एवेति।" इति अभयदेवसूरिरचितायां **भगवतीसूत्रवृत्तौ** १।३।३२।

१ 'षोऽन्तकर्मणि' [पा०धा०दिवादि०] इति धातोर्ण्यन्तस्य रूपमिदम्। 'समापितप्रसङ्गः' इति भावः।
२ "अत्राह—न खलु सत्त्वरजस्तमांसि जात्यन्तराणि, कुतः? स्वभावेष्ववस्थानात्।……तदेवमवस्थितस्वभावत्वादेकं सत्त्वरजस्तमांसि। अत्रोच्यते–जात्यन्तरममूनि त्रीणि, लक्षणपृथक्त्वव्यवस्थानात्। कथमिति चेत्, तदुच्यते–**सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः। गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः॥** [सांख्यकां० १३], अत्र यत् पूर्वस्यामार्यायामभिहितं सत्त्वं तल्लघुत्वलक्षणं प्रकाशकलक्षणं च। यदा सत्त्वमुत्कटं भवति देवदत्ते तदा लघून्यङ्गानि विशुद्धानीन्द्रियाणि स्वविषयग्रहणसमर्थानि भवन्ति। तदा मन्तव्यमद्य मे सत्त्वमुत्कटत्वेन वर्तते इष्टं च स्वरूप-साधनहेतुत्वात्। उपष्टम्भकं चलं च रजः। उपष्टम्भकं प्रेरकमुत्थाडिरित्यर्थः, यथा मत्तवृषो वृषं दृष्ट्वा उद्धतो भवति तद्वत्, अथवा गर्वः चला(कलह)क्रियेत्यर्थः। एवं यस्मिन् देवदत्ते यज्ञदत्ते वा रज उत्कटं भवति स कलहं मृगयते। किञ्चान्यत्, चल-चित्तश्च भवति–ग्रामं गच्छामि, स्त्रियं कामये, तपः करोमीत्यादि। एवं नित्यमुत्सुकमना भवति। एतद् रजोलक्षणम्। तम आह–**गुरु** वरणकमेव तमः। यद् गुरुत्वमावरणत्वं चास्ति तत्तमः। यदा गुरूण्यङ्गानि भवन्ति इन्द्रियाण्यलसानि स्वविषयग्रहणा-समर्थानि भवन्ति तदा मन्तव्यमेतत् तम उत्कटत्वेन वर्तत इति। तस्माज्जात्यन्तराण्येव सत्त्वरजस्तमांसि।……प्रदीपवत् **अर्थतः** कार्यवशात् परस्परविरुद्धानामप्यमीषां वृत्तिर्दृष्टा यथा तैलाग्निवर्तिकासंयोगात् परस्परविरुद्धा अपि पदार्थाः संहत्य एकमर्थं प्रकाशरूपं निष्पादयन्ति एवं गुणा अपि परस्परविरुद्धाः संहत्य पुरुषार्थं कुर्वन्ति।"–सांख्यकारिका**माठरवृत्ति.**।

---

1 "यत् किञ्चित् कार्य-करणे लघु प्रकाशकं च तत् **सत्त्वरूप**मिति प्रत्यवगन्तव्यम्। तत्र कार्यस्य तावदुद्गमनहेतुर्धर्मो लघुत्वम्, करणस्य वृत्तिपटुत्वहेतुः। प्रकाशस्तु पृथिवीधर्मस्य छायालक्षणस्य तमसस्तिरस्कारेण द्रव्यान्तरप्रकाशनम्, करणस्यापि ग्रहणसंकल्पा-भिमानाध्यवसायविषयेषु यथास्वं प्रवर्तनम्।…यः कश्चिदुपस्तम्भश्चलता चोपलभ्यते तद् रजोरूपमित्यवगन्तव्यम्। तत्रोपस्तम्भः प्रयत्नः, चलता क्रिया।……यत् किञ्चिद् गौरवं वरणं चोपलभ्यते तत् तमोरूपमिति प्रत्यवगन्तव्यम्। तत्र गुरुत्वं कार्यस्याधोगमनहेतुर्धर्मः, करणस्य वृत्तिमन्दता। वरणमपि कार्यगतं च द्रव्यान्तरतिरोधानम्, करणगता चाशुद्धिः प्रकाशप्रतिद्वन्द्विभूता।……एषां नानात्व-मवसीयते।"–सांख्यकारिका**युक्तिदीपिकावृत्ति.** पृ० ७०-७१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ३०३ पं० ४. १६. **गुणसन्द्रावो**…। दृश्यतां टिपृ० १६ पं० ३५।

पृ० ३०३ पं० २९. **पंचपलसइया तुला**। प्रायः सर्वासु प्राचीनासु अनुयोगद्वारसूत्रप्रतिषु 'पंचुत्तरपलसतिया तुला' इति पाठ उपलभ्यते। 'पंचपलसइया' इति पाठस्यापि 'पञ्चाधिकपलशतिका' इत्यर्थ उचितो भाति।

पृ० ३०४ पं० २,१३. **यथाहेत्वैकान्तिकत्वप्रयुक्तलक्षणवैलक्षण्यविशेषणपक्षविरचनया**…। दृश्यतां पृ० ३०५ पं० ९। लक्षणवैलक्षण्यं गुरुत्वादि विशेषणं यस्मिन् पक्षे साध्यनिर्देशे स तथा, तद्विरचनयेत्यर्थः। 'सुखं मोहाद् गुरोरन्यत्' [पृ० ३०० पं० १] इत्यादिषु मोहादेः गुरुत्वादिना लक्षणवैलक्षण्येन विशेषितत्वादेवमभिहितमत्रेति ध्येयम्।

पृ० ३०४ पं० ३,१३. **विपर्यसनीयाः**। दृश्यतां टिपृ० ११ पं० २०।

पृ० ३०४ पं० ५. **प्रवृत्ति**…। अत्र 'अप्रवृत्ति…' इति शुद्धम्। **मुक्त्वापि**…। दृश्यतां टिपृ० ८४ पं० ४-६।

पृ० ३०४ पं० २७. **शरीरेन्द्रिय**…। दृश्यतां पृ० ३०० पं० २।

पृ० ३०५ पं० ११,१३. **मुक्त्वापि**…। दृश्यतां टिपृ० ८४ पं० ४-६।

पृ० ३०५ पं० २०. **विरुद्धाव्यभिचारि**…। "अनैकान्तिकः षट्प्रकारः—साधारणः १, असाधारणः २, सपक्षैकदेशवृत्तिर्विपक्षव्यापी ३, विपक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षव्यापी ४, उभयपक्षैकदेशवृत्तिः ५, विरुद्धाव्यभिचारी चेति ६। तत्र साधारणः—शब्दः प्रमेयत्वान्नित्य इति।…असाधारणः—श्रावणत्वान्नित्य इति। तद्धि नित्यानित्यपक्षाभ्यां व्यावृत्तत्वाद् नित्यानित्यविनिर्मुक्तस्य चान्यस्यासम्भवात् संशयहेतुः—किंभूतस्यास्य श्रावणत्वमिति।…[1]विरुद्धाव्यभिचारी यथा—अनित्यः शब्दः कृतकत्वाद् घटवत्, नित्यः शब्दः श्रावणत्वात् शब्दत्ववदिति। उभयोः संशयहेतुत्वाद् द्वावप्येतावेकोऽनैकान्तिकः समुदितावेव।"—न्यायप्रवेशक, पृ० ३-५। प्रमाणसमुच्चयेऽपि परार्थानुमानपरिच्छेदे दिङ्नागेन निरूपितोऽयं विरुद्धाव्यभिचारी। "विरुद्धाव्यभिचार्यपि संशयहेतुरुक्तः। स इह नोक्तः, अनुमानविषये तस्यासम्भवात्। न हि सम्भवोऽस्ति कार्यस्वभावयोरुक्तलक्षणयोरनुपलम्भस्य वा विरुद्धतायाः। न चान्योऽव्यभिचारी। तस्मादवस्तुदर्शनबलप्रवृत्तमागमाश्रयमनुमानमाश्रित्य तदर्थविचारेषु विरुद्धाव्यभिचारी साधनदोष उक्तः।……" इति प्रमाणविनिश्चये, पृ० २२४. Choni edition। प्राय ईदृश एव पाठो न्यायबिन्दावपि दृश्यते ३।११०-१४। "स्वलक्षणयुक्तयोर्हेत्वोरेकत्र धर्मिणि विरोधेनोपनिपाते सति विरुद्धाव्यभिचारी।"—हेतुबिन्दु, पृ० ७०।

---

१ "अधिकृतहेत्वनुमेयविरुद्धार्थसाधको विरुद्धः। विरुद्धं न व्यभिचरतीति विरुद्धाव्यभिचारी। उपन्यस्तः सन् तथाविधार्थानिराकृतेः प्रतियोगिनं न व्यभिचरतीति भावः।…अन्ये तु विरुद्धश्चासाव्यभिचारी च विरुद्धाव्यभिचारीति व्याचक्षते। इदं पुनरयुक्तमेव विरोधादनेकान्तवादापत्तेश्च। उदाहरणमाह—यथा अनित्यः शब्दः कृतकत्वाद् घटवदिति वैशेषिकेणोक्ते मीमांसक आह—नित्यः शब्दः श्रावणत्वात् शब्दत्ववत्।……एकत्र धर्मिणि कृतकत्व-श्रावणत्वाख्यौ हेतू सन्देहं कुरुतः—किं कृतकत्वाद् घटवदनित्यः आहोस्विच्छ्रावणत्वाच्छब्दत्ववन्नित्य इति।……किं समस्तयोः सन्देहहेतुत्वम् उत व्यस्तयोः? यदि समस्तयोः सन्देहहेतुत्वं तदा असाधारणान्न भिद्यते, यतः श्रावणत्वं चासाधारणत्वेनोक्तम्। अथ व्यस्तयोः, तदपि न, व्यस्तयोः सम्यग्घेतुत्वात्। अत्रोच्यते समस्तयोरेव संशयहेतुत्वम्। ननूक्तम्—असाधारणान्न भिद्यते। तन्न, यतो भिद्यत एव, परस्परसापेक्षो विरुद्धाव्यभिचारी चेति। एकाकोऽसहायोऽसाधारणः। स चानेनांशेनाचार्येण भिन्न उपात्त इति। तस्माददोषः। उक्तं च मूलग्रन्थे—'द्वावप्येतावेकोऽनैकान्तिकः समुदितावेव'। अनुद्भाविते तु तदभाव इति।" इति हरिभद्रसूरिरचितायां **न्यायप्रवेशकवृत्तौ** पृ० २६-२७। २ दृश्यतां टिपृ० ८५ पं० ४। प्रमाणविनिश्चयस्य संस्कृतभाषायामिदानीमनुपलब्धेः **भोट**भाषानुवादमवलम्ब्य इदमस्माभिर्लिखितमिति ध्येयम्।

---

1 **पार्श्वदेव**रचितायां **न्यायप्रवेशकवृत्तिपञ्जिकायामस्य** व्याख्यानं विलोकनीयम्। 2 "विरुद्धार्थसाधनाद् विरुद्धौ च तावव्यभिचारिणौ चेति विरुद्धाव्यभिचारिणौ अवयवधर्मेण समुदाये निर्देशाद् 'विरुद्धाव्यभिचारी' इत्युच्यते। अथवा विरुद्धयोरव्यभिचारः, सोऽत्रास्तीति विरुद्धाव्यभिचारी। स विरुद्धैकार्थासम्भवात् संशयहेतुः।" इति **प्रमाणसमुच्चयस्य जिनेन्द्रबुद्धि**रचितायां '**विशालामलवती**'टीकायाम्, पृ० १६८ B-१६९ A. Derge edition.। संस्कृतेऽस्या अनुपलम्भादस्या **भोट**भाषानुवादः संस्कृते परिवर्त्यास्माभिर्लिखितः। "हेत्वन्तरसाधितस्य विरुद्धं यत् तन्न व्यभिचरतीति विरुद्धाव्यभिचारी। यदि वा विरुद्धश्चासौ साधनान्तरसिद्धस्य धर्मस्य विरुद्धसाधनात् अव्यभिचारी च स्वसाध्याव्यभिचाराद् विरुद्धाव्यभिचारी।" इति **धर्मोत्तर**रचितायां **न्यायबिन्दुटीकायाम्** ३।११०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ३०६ पं० १,९,२१. **प्रत्यक्षागमबलीयस्त्वात्**…। "यदि संशयहेतुः, कुतोऽत्र निश्चय उत्पद्यत इति चेत्, **अत्र** चेत्यादि। 'अत्र'शब्देन विरुद्धाव्यभिचारिविषयसामान्यं दर्श्यते, न तु अयमेकः। प्रत्यक्षेण अविसंवादी आगमः **प्रत्यक्षागमः** मध्यमपदलोपात् शाकपार्थिववत् वज्रमुद्रिकावच्च। 'प्रत्यक्ष'वचनं प्रमाणोपलक्षणार्थम्, प्रमाणाविसंवाद्यागमबलीयस्त्वादित्यर्थः। इदमुक्तं भवति—आगमसिद्धं लिङ्गमधिकृत्य विरुद्धाव्यभिचारी उक्तः। स एतैरेव च आगमो बलीयानभ्युपगम्यते। बलीयांश्च स प्रमाणेनानुग्रहाद् भवति। तस्मात् ततः प्रमाणाद् **निश्चयोऽन्वेष्यते**। तच्छब्देन गुणभूतमपि प्रमाणमभिसम्बध्यते। अथवा **तत एव** प्रमाणाविसंवाद्यागमाद् निश्चयोऽन्वेष्यते। तथोक्त्यापि 'प्रमाणादेव निश्चयोऽन्वेष्यते' इत्यर्थादुक्तं भवति।" इति प्रमाणसमुच्चयस्य जिनेन्द्रबुद्धिरचितायां 'विशालामलवती'टीकायाम्, परि० ३, पृ० १७२ A. Derge edition.

पृ० ३०६ पं० २,९,११,२१. **अन्विष्यते**। अत्र प्रतिस्थः 'अन्वेष्यते' इति पाठ एवाङ्गीकार्यः।

पृ० ३०६ पं० १०–११. **प्रत्यक्षीकृतार्थेनागमेन बलीयान् प्रत्यक्षसंवादिना, प्रत्यक्षेणैवा**…**व्याख्याविकल्पेषु**। क्रमेणात्र त्रयो व्याख्याविकल्पा निर्दिष्टा इति भाति।

पृ० ३०६ पं० १९. **यदा शब्दत्वं**…। अत्र "यदा तर्हि शब्दत्वं नित्यमभ्युपैति तदायं हेतुरेव स्यात्, यद्यत्र अनित्यत्वहेतुम् [अपि ?] कृतकत्वादि कश्चिन्न दर्शयेत्। उभयोपलब्धौ विरुद्धैकार्थासम्भवात् संशयहेतुः।" ईदृशः पाठः प्रमाणसमुच्चयवृत्तौ तृतीये परार्थानुमानपरिच्छेदे।

---

१ दृश्यतां टिपृ० ८४ पं० १८। २ "अन्वेष्यते स्म। 'एषृ गतौ' [पा० धा० भ्वादि०]। 'इषिः' [पा० धा० दिवादि०] ण्यन्तो वा।"—अमरकोषसुधा. ३।१।१०५। ३ दृश्यतां टिपृ० ८५ पं० २। ४ "**यदा तर्हीत्यादि**। अयमसाधारणत्वात् संशयहेतुरित्युक्तम्। यदा शब्दत्वश्रावणत्वे नित्ये अभ्युपगच्छति तदा कुतोऽस्य संशयहेतुभूतमसाधारणत्वम्। कथम्? **तदाऽय**मित्यादि। अनुभयाश्रितत्वावस्थायामसाधारणत्वात् संशयहेतुत्वमुक्तम्। यदा शब्दत्वमपि श्रावणमभ्युपगच्छति तदाऽयमुभयाश्रित एव स्यात्, न चायं तदा असाधारण इष्यते। तस्मात् **तदाऽयं हेतुरेव स्यात्** अनित्याद् व्यावृत्तत्वात् तद्व्यवच्छेदेन नित्यत्वगमकत्वाच्च। **यद्यत्र अनित्यत्वहेतुमपि** वैशेषिको **न दर्शयेत्** तदा हेतुत्वमपि स्यादिति सम्बन्धः। **विरुद्धैकार्थासम्भवा**दिति विरुद्धयोर्नित्यत्वानित्यत्वधर्मयोरेकस्मिन् धर्मिण्यसम्भवात्। विरुद्धत्वं च तयोः परस्परपरिहारस्थितिलक्षणत्वात्। विरुद्धस्यैकस्यार्थस्यासम्भवादिति अन्ये। अनेको हि विरुद्धः सम्भवति। यथा आकाशं नित्यमप्यनित्यमिति एकत्र नास्तीति। तस्मात् संशयः स्यात्, विरुद्धार्थाभिधायिकथाद्वयवत्।" इति **जिनेन्द्रबुद्धिरचितायां प्रमाणसमुच्चयटीकायाम्**, पृ० १७१ B–१७२ A. Derge edition. "यथाह—**यदा तर्हि शब्दत्वं नित्यमभ्युपगच्छति तदायं हेतुरेव स्यात्, यद्यत्रानित्यत्वहेतुं कृतकत्वादि कश्चिद् न दर्शयेत्** [प्र० समु० वृ०] इति। इदमप्रकाश्यमसंवरणीयमिति कष्टतरं व्यसनं कथं निर्वोढुं शक्येत।……पुरुषप्रतिभाकृतं च साधनत्वं भवति। तद् वस्तुतो न किञ्चित् साधनमसाधनं वा।"—**हेतुबिन्दु.** पृ० २५ B. Choni edition. "ननु 'अन्यतरत्वनिश्चितः' इति पञ्चप्रकारोऽनैकान्तिक उक्तः, न चेदं युक्तम्, शेषवतो विरुद्धाव्यभिचारिणश्चापरस्याप्यनैकान्तिकत्वात्। न, अभिप्रायापरिज्ञानात्।……अप्रतिबद्धोऽनैकान्तिक इति वाक्यार्थः। शेषवद्विरुद्धाव्यभिचारिणोरपीदमेव लक्षणमिति तयोरप्यनैकान्तिकत्वं न निवार्यम्।……अव्यभिचारित्वं कथमिति चेत्, अभ्युपग[म]द्वारेणेति न दोषः। तथा चाह—**यदा तर्हि शब्दत्वं नित्यमभ्युपैति तदायं हेतुरेव स्यात्।** ……**आचार्यः** प्राह—स्याद् गमकः **यद्यत्र कृतकत्वमपि कश्चिदनित्यत्वे हेतुं न ब्रूयात्।** उभयं तु गमकमुपलभमानस्य स्वाभ्युपगमादेव संशयः। तस्माद् वैशेषिकस्यैवमभ्युपगच्छतोऽतिसङ्कटप्रवेशः।……तस्मात् पराभ्युपगमेन विरुद्धाव्यभिचारी नान्यथेत्याचार्यस्याभिप्रायोऽवगन्तव्यः, '**यदा तर्हि शब्दत्वं नित्यमभ्युपैति**' इति वचनात्।"—**प्रमाणवार्तिकालंकार.** पृ० ६४६–७।

---

1 "अयं च किल पक्षो **दिङ्नागाचार्य**स्याप्यभिमत इति पर उपदर्शयन्नाह—यथाह **दिङ्नागाचार्यः**। किमाह? **यदा तर्हीत्यादि**। 'श्रावणत्वस्य हि न कथञ्चिद् व्यवच्छेदहेतुत्व'मिति **दिङ्नागाचार्ये**णोक्ते परेणाभिहितम्—**यदा तर्हि** वैयाकरणः **शब्दत्वं नित्यमभ्युपगच्छति तदायं** श्रावणत्वलक्षणः पक्षधर्मो **हेतुरेव स्यात्** 'नित्यः शब्दः श्रावणत्वात् शब्दत्ववत्' इति। एवं परेणोक्ते सति **आचार्ये**णोक्तम्—**यद्यत्र** शब्दत्वाख्ये धर्मिणि **अनित्यत्वहेतुं** कृतकत्वप्रयत्नानन्तरीयकत्वादिलक्षणं **कश्चिद्** वैशेषिकादि**र्न दर्शयेत्** तदायमप्रदर्शितप्रतिहेतुर्हेतुरेव भवेत् इति।" इति **अर्चटकृतायां हेतुबिन्दुवृत्तौ** पृ० २१८। 2 **हेतुबिन्दुभोटभाषानुवादानुसारे**णेदमस्माभिर्लिखितम्, मुद्रिते **हेतुबिन्दौ** [पृ० ७१] तु **टीकया** सह बहु मिश्रितोऽत्र पाठ इति ध्येयम्। 3 दृश्यतां टिपृ० ७५ पं० १।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ३०७ पं० ५,१४. किं त्वान्मात्रादेव…। 'प्रसादाद्यनात्मकत्वात्' इत्यादिहेतुषु 'त्वात्' इति पञ्चम्यन्तशब्द-प्रयोगमात्राद् न परिवर्तनमित्याशयः। "तस्य भावस्त्वतलौ" [पा० ५।१।११९] इति सूत्रेण भावे 'त्व'प्रत्ययः। अत्र मूले [पृ० ३०७ पं० ५] 'किं त्वान्मात्रादेव, त्रैलक्षण्यात्?' इत्यपि पाठः स्यात्, दृश्यतां पृ० ३०९ पं० १३।

पृ० ३०८ पं० ४, २१,२२. व्यपदेशिवद्भावं। दृश्यतां टिपृ० १४ पं० २०।

पृ० ३०८ पं० ५, १४. धर्मधर्मिस्वरूपविरोधौ। इमौ पक्षदोषौ[1]। अनयोश्च स्वरूपं प्रमाणसमुच्चयवृत्ति[३।२]-प्रमाणवार्तिकमनोरथनन्दिवृत्ति[४।१५१-१६३]-प्रमाणवार्तिकालंकारा[४।१५१-१६३]दिभ्योऽवसेयम्।

पृ० ३०८ पं० १२. बहुव्रीहेरन्यपदार्थविषयत्वात्। दृश्यतां टिपृ० ५७ पं० ११।

पृ० ३०८ पं० १३,१६. कप्। "उरःप्रभृतिभ्यः कप्। इनः स्त्रियाम्। नद्यृतश्च। शेषाद्विभाषा।"-पा० ५।४।१५१-४।

पृ० ३०८ पं० १७. तद्गुणसंविज्ञान…। "बहुव्रीहिसमासः। अयं च तद्गुणसंविज्ञानो[3]ऽतद्गुणसंविज्ञानश्च भवति। तत्र तद्गुणसंविज्ञानो यथा 'लम्बकर्णः' इत्यादि। लम्बौ कर्णौ यस्यासौ लम्बकर्णः, लम्बकर्णत्वं तस्यैव गुणः। अतद्गुणसंविज्ञानस्तु यथा 'पर्वतादि क्षेत्रम्' इत्यादि। पर्वत आदिर्यस्य तत् पर्वतादि क्षेत्रम्। न पर्वतः क्षेत्रगुणः, किं तर्हि? उपलक्षणमात्रमिति भावना।"-न्यायप्रवेशकवृ० पृ० १३।

पृ० ३०९ पं० २४. सुखादन्यस्य। अत्र 'सुखादनन्यस्य' इति शुद्धं प्रतीयते।

पृ० ३०९ पं० २६. भवतीत्यशक्यं। अत्र 'भवतीति शक्यं' इति सम्यग् भाति।

पृ० ३११ पं० २४-२५. लाघवगौरवे त्वपनीय……पञ्चषष्टिसहस्राणि पञ्च शतानि च षट्त्रिंशानि। प्राग् [पृ० ३११ पं० २४] निर्दिष्टे सप्तत्यधिके साधनशते लघुत्व-गुरुत्वयोरन्तर्भूतत्वाद् 'लाघवगौरवे त्वपनीय' इत्युक्तमत्र। एवं च अवशिष्टानां 'प्रसादात्, प्रसवात्, अभिष्वङ्गात्, उद्धर्षात्, प्रीतेः, शोषात्, तापात्, भेदात्, उपष्टम्भात्, उद्वेगात्, अपद्वेषात्, वरणात्, सदनात्, अपध्वंसनात्, बैभत्स्यात्, दैन्यात्' इति षोडशानां धर्माणां प्रत्येकं द्विकादिसंयोगेन

---

१ हेतुदोषा अपि एतादृशा अन्ये सन्तीति ध्येयम्, तथाहि-"विरुद्धश्चतुःप्रकारः, तद्यथा-धर्मस्वरूपविपरीतसाधनः धर्मविशेषविपरीतसाधनः, धर्मिस्वरूपविपरीतसाधनः, धर्मिविशेषविपरीतसाधनश्चेति। तत्र धर्मस्वरूपविपरीतसाधनो यथा-नित्यः शब्दः कृतकत्वात् प्रयत्नानन्तरीयकत्वाद्वेति। अयं हेतुर्विपक्षे एव भावाद् विरुद्धः। धर्मविशेषविपरीतसाधनो यथा-परार्थाश्चक्षुरादयः, संघातत्वात्, शयनासनाद्यङ्गवदिति। अयं हेतुर्यथा पारार्थ्यं चक्षुरादीनां साधयति तथा संहतत्वमपि परस्यात्मनः साधयति, उभयत्राव्यभिचारात्। धर्मिस्वरूपविपरीतसाधनो यथा-न द्रव्यं न कर्म न गुणो भावः, एकद्रव्यवत्त्वाद् गुणकर्मसु च भावात्, सामान्यविशेषवदिति। अयं हि हेतुर्यथा द्रव्यादिप्रतिषेधं साधयति तथा भावस्याभावत्वमपि साधयति। उभयत्राव्यभिचारात्। धर्मिविशेषविपरीतसाधनो यथा-अयमेव हेतुरस्मिन्नेव पूर्वपक्षेऽस्यैव धर्मिणो यो विशेषः सत्प्रत्ययकर्तृत्वं नाम तद्विपरीतमसत्प्रत्ययकर्तृत्वमपि साधयति उभयत्राव्यभिचारात्।"-न्यायप्रवेशक. पृ० ५। २ दृश्यतां टिपृ० ७३ पं० १३। ३ "तस्य बहुव्रीहेर्गुणा अवयवा आरम्भकविशेषा यैर्बहुव्रीहिरारभ्यते ते तद्गुणाः, तेषां संविज्ञानं यत्र। यद्वा तस्य बहुव्रीहिवाच्यस्य गुणस्तद्गुणः, तस्य संविज्ञानं यत्रेति स तथा। 'पर्वतादिकम्' इत्यत्र 'आदि'शब्दः समीपार्थः।"-न्यायप्रवेशकवृत्तिपञ्जिका. पृ० ४२।

---

1 "धर्मः पर्याय इत्यनर्थान्तरम्, तस्य स्वरूपमसाधारणमात्मलक्षणं धर्मस्वरूपम्, तस्य विपरीतसाधन इति समासः। एवं शेषेष्वपि द्रष्टव्यमिति। अधुनोदाहरणमाह—यथा नित्यः शब्दः कृतकत्वादित्यादि। अत्र धर्मस्वरूपं नित्यत्वम्, अयं च हेतुस्तद्विपरीतमनित्यत्वं साधयति तेनैवाविनाभूतत्वात्। तथा चाह-विपक्ष एव भावाद् विरुद्धः।……"-न्यायप्रवेशकवृ० पृ० २७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च हेतुत्वेन प्रयोगे सर्वसंख्यया ६५५३६ हेतवो भवन्ति। सांयोगिकभङ्गसंख्यानयनोपायः प्रवचनसारोद्धारवृत्त्यादौ विस्तरेण वर्णितः। तदनुसारेणात्र षोडश पदानि इत्थं स्थाप्यन्ते —

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१

अत्र च प्रवचनसारोद्धारवृत्त्यादिवर्णितप्रक्रियानुसारेण प्रत्येकं १६ भङ्गाः, द्विकसंयोगे १२०, त्रिकसंयोगे ५६०, चतुष्कसंयोगे १८२०, पञ्चकसंयोगे ४३६८, षट्कसंयोगे ८००८, सप्तकसंयोगे ११४४०, अष्टकसंयोगे १२८७०, नवकसंयोगे ११४४०, दशकसंयोगे ८००८, एकादशकसंयोगे ४३६८, द्वादशकसंयोगे १८२०, त्रयोदशकसंयोगे ५६०, चतुर्दशकसंयोगे १२०, पञ्चदशकसंयोगे १६, षोडशकसंयोगे १, इत्येवं सर्वसंख्यया ६५५३५ भङ्गा भवन्ति। प्रवचनसारोद्धारवृत्त्यादिवर्णनानुसारेण एतन्मध्ये एकस्य प्रक्षेपेण षोडशानां हेतूनां ६५५३६ भङ्गा लभ्यन्ते। अतो '**हेत्वग्रं पञ्चषष्टिसहस्राणि पञ्चशतानि च षट्त्रिंशानि**' इत्यभिहितमत्र नयचक्रवृत्तिकृद्भिरिति ध्येयम्।

---

१ "इदानीं 'थंडिल्लाण चउव्वीस उ सहस्से'त्ति द्वारमेकनवतितममाह – **अणावायमसंलोए** परस्साणुवघायए। समे अज्झुसिरे यावि अचिरकालकयंमि य ॥ ७०९ ॥ विच्छिन्ने दूरमोगाढेऽनासन्ने बिलवज्जिए। तसपाणबीयरहिए उच्चाराईणि वोसिरे ॥ ७१० ॥ अनापातमसंलोकम् १ परस्यानौपघातिकम् २ समम् ३ अशुषिरम् ४ अचिरकालकृतम् ५ विस्तीर्णम् ६ दूरमवगाढम् ७ अनासन्नम् ८ बिलवर्जितम् ९ त्रसप्राणबीजरहितम् १० यत् स्थण्डिलं तत्र उच्चारादीनि पुरीषप्रश्रवणप्रभृतीनि व्युत्सृजेत्। [पृ० २०४]······अमीषां चानन्तरोदितानां दशानां पदानामेकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्ताष्टनवदशकैः संयोगाः कर्तव्याः। तेषु च भङ्गाः सर्वसंख्यया चतुर्विंशत्यधिकं सहस्रम्। अथ कस्मिन् संयोगे कियन्तो भङ्गकाः ? उच्यन्ते, इह भङ्गानामानयनार्थमियं करणगाथा – '**उभयमुहं रासिदुगं हेट्ठिल्लाणंतरेण भय पढमं। लद्धऽहरासिविभत्ते तस्सुवरि गुणित्तु संजोगा॥**' [पञ्चवस्तु ॥ ४०३ ॥], अस्या अक्षरगमनिका – इह दशानां पदानां द्व्यादिसंयोगभङ्गा आनेतुमभिप्रेतास्ततस्तावत्प्रमाणौ द्वौ राशी उभयमुखौ स्थाप्येते। किमुक्तं भवति? एककादीन् दशकपर्यन्तानङ्कान् पूर्वानुपूर्व्या उपरि स्थापयित्वा तेषामधस्तात् पश्चानुपूर्व्या भूय एककादयो दशकपर्यन्ता अङ्काः स्थापनीयाः। स्थापना चेयम् —

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१

अत्राधस्तनराशिपर्यन्तवर्तिन एककस्योपरि यो दशकस्ते एककसंयोगे दश भङ्गा द्रष्टव्याः। न च तत्र करणगाथाया व्यापारः, द्व्यादिसंयोगभङ्गानयनायैव तस्याः प्रवृत्तत्वात्। ततोऽधस्तनराशिपर्यन्तवर्तिन एककस्यानन्तरेण द्विकलक्षणेनोपरितनराशौ पश्चानुपूर्व्या प्रथममङ्कं दशकरूपं भजेत्, तस्य भागाकारं कुर्यात्। ततो लब्धाः पञ्च। यतो दश द्विधा विभक्ताः पञ्चैव भवन्ति। 'लद्धऽहरासिविभत्ते'ति अधोराशिना द्विकलक्षणेनोपरितने प्रथमे अङ्के दशकलक्षणे विभक्ते सति लब्धेन अङ्केन पञ्चकेन तस्य द्विकलक्षणस्योपरितनमङ्कं नवकलक्षणं गुणयेत् ताडयेद्, जाताः पञ्चचत्वारिंशत्। इत्थं च गुणयित्वा संयोगाः संयोगभङ्गा वाच्याः, यथा द्विकसंयोगे भङ्गाः पञ्चचत्वारिंशदिति। ततो भूयोऽपि त्रिकसंयोगभङ्गानयनाय प्रथमपादरहिता करणगाथा व्यापार्यते यथा – अधस्तनराशिस्थितेन द्विकादनन्तरेण त्रिकेणोपरितनराशिव्यवस्थितं त्रिकोपरितनाष्टकरूपाङ्कापेक्षया आद्यं पञ्चचत्वारिंशल्लक्षणमङ्कं भजेत्, ततो लब्धाः पञ्चदश, यतः पञ्चचत्वारिंशत् त्रिधा विभक्ताः पञ्चदशैव भवन्ति। तैश्चाधोराशिना उपरितने अङ्के विभक्ते लब्धैः पञ्चदशभिस्त्रिकलक्षणस्याङ्कस्योपरितनमष्टकलक्षणमङ्कं गुणयेत्। गुणिते च सति जातं विंशत्युत्तरं शतम्। एतावन्तस्त्रिकसंयोगे भङ्गाः।··········एवं चैककसंयोगे १० दश भङ्गाः, द्विकसंयोगे ४५ पञ्चचत्वारिंशत्, त्रिकसंयोगे १२० विंशं शतम्, चतुष्कसंयोगे २१० द्वे शते दशोत्तरे, पञ्चकसंयोगे २५२ द्वे शते द्विपञ्चाशदधिके, षट्कसंयोगे २१० द्वे शते दशोत्तरे, सप्तकसंयोगे १२० विंशं शतम्, अष्टकसंयोगे ४५ पञ्चचत्वारिंशत्, नवकसंयोगे १० दश, दशकसंयोगे १ एकः। सर्वमीलने च त्रयोविंशत्युत्तरं सहस्रमशुद्धभङ्गानां भवति। चतुर्विंशस्तु शुद्धो भङ्गो यद्यपि करणेन नागच्छति तथाप्येतन्मध्ये तं प्रक्षिप्य भङ्गसङ्ख्या पूरणीया; यतः सर्वभङ्गप्रसारे क्रियमाणे पर्यन्ते शुद्धभङ्गस्यागतिः। उक्तं च [**पञ्चवस्तु**ग्रन्थे] – दस पणयाल विसोत्तरसयं च दो सय दसुत्तरा दो य। बावन्न दो दसुत्तर विसुत्तरं पंचचत्ता य ॥ ४०४ ॥ दस एक्को य कमेणं भंगा एगादिचारणाए सुं। सुद्धेण समं मिलिया भंगसहस्सं चउव्वीसं ॥ ४०५ ॥" इति **प्रवचनसारोद्धारवृत्तौ** पृ० २०४, २०६–२०७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ३१२ पं० ६. त्रिलक्षणतां । दृश्यतां टिपृ० ११ पं० ३४ ।

पृ० ३१२ पं० १३. आत्मनोऽपरिहारेण । अत्र आत्मपरिहारेण इति भा०प्रतौ य०प्रतौ [श्रीयशोविजयोपाध्यायैर्लिखितायां प्रतौ] च पाठः । स एव च समीचीन आदरणीयश्च ।

पृ० ३१२ पं० १४. °कत्वादभिन्न° । भा०प्रतिस्थः °कत्वादिभिन्न° इति पाठोऽत्र समीचीनतरो भाति । (°कसत्त्वादिभिन्न° ?) ।

पृ० ३१२ पं० १५. परस्परमुपकुर्वन्ति···। दृश्यतां पृ० २८८ पं० १, पृ० ३१८ पं० ८ ।

पृ० ३१२ पं० १६-१७. सुखादित्र्यात्मकत्वं न······अन्यत्वोक्तेश्चेति । 'सुखादित्र्यात्मकत्वं न, घटादावेकस्मिन्नेव चेति त्वयैवाभ्युपगतत्वात् । ऐक्यं न, अन्यत्वोक्तेश्चेति' इति योजना अत्र ज्ञेया ।

पृ० ३१३ पं० १. व्यवहारसम्प्रसिद्ध···। (व्यवहारसम्प्रसिद्धेः···?) । दृश्यतां पृ० ३२१ पं० ४ ।

पृ० ३१३ पं० २. °विघटनमेव । अत्र "°विघटनमेव । तस्मात् सर्वसर्वात्मकत्वपरिग्रहो न्याय्यः ।' इत्यपि मूलं स्यात् । दृश्यतां पृ० ३२४ पं० १२ ।

पृ० ३१३ पं० ७-८. °सम्प्रसिद्धेत्यादि । (°सम्प्रसिद्धेरित्यादि ?) । दृश्यतां पृ० ३२१ पं० ४ ।

पृ० ३१३ पं० ९. प्रागनुमानं···। अत्र वक्ष्यमाणं सर्वमपि सांख्यमतं वार्षगणतन्त्रानुसारेणाभिहितं भाति, दृश्यतां पृ० ३२४ पं० ११ । तथा च वार्षगणे तन्त्रे पूर्वं सप्रभेदमनुमानं व्याख्याय अनन्तरं 'तेषां यदेतत्···' इत्यादि तन्त्राभिहितं भाति । तदनुसारेणात्र नयचक्रवृत्तिकृतापि तथा अभिहितमिति भाति । सम्प्रति तु वार्षगणतन्त्रं नोपलभ्यत इति ध्येयम् ।

पृ० ३१३ पं० १०. वीत इति । अत्र 'वीत [आवीत] इति' इति पठितव्यम् ।

पृ० ३१४ पं० १३-१४. शकलकपालामत्रभूषण···। दृश्यतां टिपृ० ७६ पं० ३१ ।

पृ० ३१८ पं० ८. शब्दाद्यात्मना । अत्र 'शब्दात्मना' इति सम्यक् । दृश्यतां पृ० २८८ पं० २, पृ० ३२७ पं० २० ।

पृ० ३२१ पं० ८. द्वितीयस्य शिरसो···। "ननु प्रत्यक्षेण योऽर्थो नोपलभ्यते स सर्वथा नास्तीति मतं संगच्छते, यथा द्वितीयमनीश्वरशिरः, तृतीयो बाहुः, शशविषाणादयो वा । एवं प्रधानपुरुषौ नोपलभ्येते तस्मात्तावपि न स्तः ।" – सांख्यकारिकामाठरवृत्ति. पृ० १४ ।

पृ० ३२१ पं० १०. यदि व्यक्तस्या···। "यदि चासत् कार्यं स्यात् तदा सर्वं सर्वतः सम्भवेत्, ततश्च तृणपांसुवालुकादिभ्यो रजतसुवर्णमणिमुक्ताप्रवालादयो जायेरन् ।" – सांख्यकारिकामाठरवृत्ति. पृ० १७ ।

पृ० ३२१ पं० ४. °प्रसिद्धेरित्यादि । (°प्रसिद्धेत्यादि ???) । दृश्यतां पृ० ३१३ पं० ७ । टिपृ० ८८ पं० ९,१२ ।

पृ० ३२१ पं० ११. कस्मात्? अभावक्रिया गुरुकार्या भावक्रिया लघ्वीति । (कस्मात्? भावक्रिया गुरुकार्या, अभावक्रिया लघ्वीति) । 'कस्मादभावक्रिया गुरुकार्या, भावक्रिया लघ्वीति' इत्येवं सुष्ठु भाति । य०प्रतावत्र 'कस्मादभावक्रिया गुरुकार्या भावक्रिया लघ्विति' इति पाठः, । भा०प्रतौ तु 'कस्मादभावक्रिया लघ्विति' इति पाठः ।

पृ० ३२३ पं० १६,१७. °प्रवृत्तेरभावाच्चेत्यादिभिः············सर्वो ग्रन्थो । प्रतिस्थपाठानुसारेणात्र '°प्रवृत्तेरभावाच्चेत्यादिः·········सर्वो ग्रन्थो' इत्यपि पाठः स्यात् ।

पृ० ३२४ पं० २७. अस्ति···। दृश्यतां पृ० १९० पं० २३,१९९ पं० ७ ।

पृ० ३२५ पं० ४. भवति···। दृश्यतां पृ० ३३९ पं० १९ । 'भवति कर्ता स्वतन्त्रः, प्रवर्तनवृत्तत्वात्, प्रधानशब्दादिवत् । तथाभवनवृत्तत्वात्, तन्तुपटवत् ।' इत्यपि मूलमत्र स्यात् ।

पृ० ३२५ पं० १८. शब्दादि यथा प्रवर्तयत् । अत्र 'शब्दादि' इति द्वितीयान्तं पदम्, 'यथा शब्दादि प्रवर्तयत्' इति चान्वयोऽत्र ज्ञेयः ।

पृ० ३२६ पं० १. पूर्वपूर्व···। दृश्यतां पृ० ३३९ पं० २२ ।

पृ० ३२६ पं० ५. क्रियते । अत्र 'क्रियते इति यावत्' इत्यपि पाठः स्यात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ३२८ पं० १,८. **अष्टमूर्तिता**[1]। दृश्यतां पृ० ३३२ पं० २५, पृ० ३४० पं० १२। क्षितिर्जलं तथा तेजो वायुराकाशमेव च। यष्टाऽर्कश्च तथा चन्द्रो मूर्तयोऽष्टौ पिनाकिनः ॥ १ ॥

पृ० ३२८ पं० ३. **इतरथा अदृष्टाणु**···। "ईश्वरः कारणम्, पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्। ४।१।१९। न, पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तेः। ४।१।२०। तत्कारितत्वादहेतुः। ४।१।२१।"–न्यायसू०।

पृ० ३२८ पं० ५, पृ० ३२९ पं० २,१२,१९,२१. **तनुकरण···अचेतनत्वात् स्थित्वा प्रवृत्तेः**···। "अविद्ध-कर्णोपन्यस्तमीश्वरसाधने प्रमाणद्वयमाह–यत् स्वारम्भकेत्यादि। तदुक्तम्–'द्वीन्द्रियग्राह्याग्राह्यं विमत्यधिकरणभावापन्नं बुद्धिमत्कारणपूर्वकम्, स्वारम्भकावयवसंनिवेशविशिष्टत्वात्, घटादिवत्, वैधर्म्येण परमाणवः।' इति।···द्वितीयं च तदुक्तं प्रमाणं बोधयन्नाह–तन्वादीनामित्यादि।···यथोक्तम्–'तनु-भुवन-करणोपादानानि चेतनावदधिष्ठितानि स्वकार्यमारभन्ते इति प्रतिजानीमहे, रूपादिमत्त्वात्, तन्त्वादिवत्।' इति। उद्द्योतकरस्तु[3] प्रमाणयति–'भुवनहेतवः प्रधानपरमाण्वदृष्टाः स्वकार्योत्पत्तावतिशयबुद्धिमन्तमधिष्ठातारमपेक्षन्ते, **स्थित्वा प्रवृत्तेः**, तन्तुतुर्यादिवत्।' इति।···तथा अपराणि **उद्द्योत-करोक्तानि** प्रमाणानि–बुद्धिमत्कारणाधिष्ठितं महाभूतादिकं व्यक्तं सुखदुःखनिमित्तं भवति, **अचेतनत्वात्** कार्यत्वाद् विनाशित्वाद् रूपादिमत्त्वात्, वास्यादिवत्।' इति।" इति तत्त्वसंग्रहपञ्जिकायां पृ० ४१-४३। "स्थित्वा[4]प्रवृत्तिसंस्थान-विशेषार्थक्रियादिषु। इष्टसिद्धिरसिद्धिर्वा दृष्टान्ते संशयोऽथवा ।२।१०।" इति प्रमाणवार्तिके ईश्वरनिराकरणप्रसङ्गे।

पृ० ३३० पं० ९-१०. **सामादि**। 'साम'शब्देनात्र '**साम**'गानं विवक्षितं भाति।

पृ० ३३० पं० १०. **°चोदनम्**। '°चोदनं···जायते' [पृ० ३३० पं० १२] इत्यन्वयः।

पृ० ३३१ पं० ६, २५. **अन्योन्याभिभव**···। "अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः।"–सांख्यका० १२।

पृ० ३३१ पं० १८. **चित्रकरवेतनदाना**···। दृश्यतां टिपृ० ७ पं० २३–२४।

पृ० ३३२ पं० २-३. **एको वशी······तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्**। अत्र "एको[5] वशी·········तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।" इति पाठः श्वेताश्वतरोपनिषदि सम्प्रति दृश्यते।

---

१ "क्षिति-जल-पवन-हुताशन-यजमाना-ऽऽकाश-सोम-सूर्याख्याः। इत्येतेऽष्टौ भगवति वीतरागे गुणा मताः ॥ ३४ ॥ क्षितिरित्युच्यते क्षान्तिर्जलं या च प्रसन्नता। निःसङ्गता भवेद् वायुर्हुताशो योग उच्यते ॥ ३५ ॥ यजमानो भवेदात्मा तपोदान-दयादिभिः। अलेपकत्वादाकाशसंकाशः सोऽभिधीयते ॥ ३६ ॥ सौम्यमूर्तिरुचिश्चन्द्रो वीतरागः समीक्ष्यते। ज्ञानप्रकाशकत्वेन आदित्यः सोऽभिधीयते ॥ ३७ ॥ पुण्यपापविनिर्मुक्तो रागद्वेषविवर्जितः। श्रीअर्हद्भ्यो नमस्कारः कर्तव्यः शिवमिच्छता ॥ ३८ ॥" इति **हेम**चन्द्रसूरिप्रणीते **म**हादेवस्तोत्रे। २ "अथापर आह–**ईश्वरः कारणम्**······।४।१।१९।, पुरुषोऽयं समीहमानो नावश्यं फलमाप्नोति। तेनानुमीयते–पराधीनं पुरुषस्य कर्मफलाराधनमिति। यदधीनं स ईश्वरः। तस्मादीश्वरः कारणमिति। **न, पुरुष**······।४।१।२०।, ईश्वराधीना चेत् फलनिष्पत्तिः स्याद् अपि तर्हि पुरुषस्य समीहामन्तरेण फलं निष्पद्येतेति। **तत्कारितत्वादहेतुः** ।४।१।२१।, पुरुषकारमीश्वरोऽनुगृह्णाति। फलाय पुरुषस्य यतमानस्येश्वरः फलं सम्पाद-यति। यदा न सम्पादयति तदा पुरुषकर्माफलं भवतीति ईश्वरकारितत्वात् पुरुषकारफलस्येत्यहेतुः–'पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तेः' इति। गुणविशिष्टमात्मान्तरमीश्वरः। तस्यात्मकल्पात् कल्पान्तरानुपपत्तिः। अधर्ममिथ्याज्ञानप्रमादहान्या धर्मज्ञानसमाधिसम्पदा च विशिष्ट-मात्मान्तरमीश्वरः। तस्य धर्मसमाधिफलमणिमाद्यष्टविधमैश्वर्यम्। संकल्पानुविधायी चास्य धर्मः प्रत्यात्मवृत्तीन् धर्माधर्मसञ्चयान् पृथिव्यादीनि च भूतानि प्रवर्तयति। एवं च स्वकृताभ्यागमस्यालोपेन निर्माणप्राकाम्यमीश्वरस्य स्वकृतकर्मफलं वेदितव्यम्। आप्तकल्पश्चायं यथा पितुरपत्यानां तथा पितृभूतो हीश्वरो भूतानाम्। न चात्मकल्पादन्यः कल्पः संभवति। न तावदस्य बुद्धिमन्तरेण कश्चिद्धर्मो लिङ्गभूतः शक्य उपपादयितुम्। आगमाच्च द्रष्टा बोद्धा सर्वज्ञ ईश्वर इति। बुद्ध्यादिभिश्चात्मलिङ्गैर्निरुपा-ख्यमीश्वरं प्रत्यक्षानुमानागमविषयातीतं कः शक्त उपपादयितुम्। स्वकृताभ्यागमलोपेन च प्रवर्तमानस्यास्य यदुक्तं प्रतिषेधजात-मकर्मनिमित्ते शरीरसर्गे तत् प्रसज्यत इति ॥" इति **न्यायभाष्ये जे**सलमेरस्थे। ३ दृश्यतां पृ० ३२८ टि० १। ४ "यद् वस्तु स्थित्वा स्थित्वा प्रवर्ततेऽभिमतसाधनाय तद् बुद्धिमत्कारणाधिष्ठानाद्। यथा वास्यादि द्वैधीकरणादौ। न खलु वास्यादयः स्वयमेव प्रवर्तन्ते। प्रवर्तने वा सदा प्रवर्तनं भवेत्। स्थित्वा च प्रवर्तनम[भिमतम्, अतः] केनचित् प्रवर्तकेन भवितव्यम्। तथा यत् संस्थानविशेषपारिमाण्डल्यादियोगि तत् चेतनावदुत्पादितम्, तद्यथा घटादिकम्। तथा यदर्थक्रियाकारि तच्चेतनाव-त्पदार्थप्रेरितम्, तद्यथा घटादयः। अत्राह–**स्थित्वाप्रवृत्ति**······।" इति **प्रमाणवार्तिकालंकारे**, पृ० ३५। ५ "**एको**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ३३३ पं० ८. सायोज्यं···। यद्यपि 'सायुज्यम्, इति शब्दप्रयोगः सम्प्रति प्रसिद्धः तथापि नयचक्रवृत्तौ 'सायोज्यम्' इति शब्दप्रयोगस्य पुनः पुनः [पृ० ३४१ पं० २३–२४, पृ० ३४३ पं० १९] दर्शनात् स एवात्रादृतोऽस्माभिः।

पृ० ३३३ पं० २५. आख्यातशब्दः···। दृश्यतां पृ० ४४८ टि० २।

पृ० ३३३ पं० २७. यथा। अत्र भा०प्रत्यनुसारेण 'यस्माद्' इत्यपि स्यात्।

पृ० ३३४ पं० १. गुणसन्द्रावः। एतच्च लक्षणं कस्मिंश्चित् सांख्यग्रन्थे [वार्षगणतन्त्रे ?] सम्भाव्यते। दृश्यतां टिपृ० १६ पं० ३५–पृ० १७ पं० १६।

पृ० ३३४ पं० ३–५. दुविहा···किमिदं···। 'द्विविधा प्रज्ञापना प्रज्ञप्ता – जीवप्रज्ञापना अजीवप्रज्ञापना च। किमिदं भदन्त! लोक इति प्रोच्यते? गौतम! जीवाश्चैव अजीवाश्चैव। एवं रत्नप्रभा यावत् ईषत्प्राग्भारा समयावलिकादि।' इत्यर्थः। तुलना – पृ० २२८ पं० ५–६. टि० १–२।

पृ० ३३४ पं० ५. समयावलियादि [ ]। अत्र 'समयावलियादि [ ]। इति तृतीयो विध्युभयारः।' इत्यपि मूलं स्यात्।

पृ० ३३५ पं० २. नन्वेवं···। दृश्यतां पृ० ३३९ पं० १८।

पृ० ३३५ पं० ६. सदसद्वेद्या···। दृश्यतां तत्त्वार्थसू० ८।५–१४।

पृ० ३३५ पं० ७. सामान्यतोदृष्टा···। । "अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानम् – पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्टं च।" – न्यायसू० ।१।१।५। "त्रिविधमनुमानमाख्यातम्।" – सांख्यका० ५।

पृ० ३३५ पं० ८. अन्नप्राणत्ववत्। दृश्यतां पृ० १९९ पं० १२। "अन्नं वै प्राणिनः प्राणाः" – न्यायभा० १।१।१।

पृ० ३३६ पं० ७. स्वकर्म···। तुलना – "स्वकर्मणा युक्त एव सर्वो ह्युत्पद्यते जनः। स तथाकृष्यते तेन न यथा स्वयमिच्छति॥" इति शीलाङ्काचार्यकृतायां सूत्रकृताङ्गवृत्तौ पृ० २१०।

पृ० ३३६ पं० १६. यः स्वतन्त्रो भवितापि स एव। अत्र प्रतिस्थपाठानुसारेण 'कः स्वतन्त्रः? भविता यः स एव।' इत्यपि पाठः स्यात्।

पृ० ३३७ पं० २,१७. द्रव्यादिपञ्च···। दृश्यतां पृ० ३३८ टि० १।

पृ० ३३८ पं० ५. दोषौ। अत्र 'दोषौ' इत्यनावश्यकं भाति, दृश्यतां पृ० ३४१ पं० १३।

पृ० ३३९ पं० ३,१९. भवति···। दृश्यतां पृ० ३२५ पं० ४।

पृ० ३३९ पं० १०. यथा च······। दृश्यतां पृ० ३२७ पं० १।

पृ० ३४० पं० १,९,१०. शक्तिमत्प्रवृ···पक्त्रादिवत्। दृश्यतां पृ० ३२६ पं० ३।

पृ० ३४० पं० १२. एवमेव चास्य···। दृश्यतां पृ० ३२८ पं० १,८। टिपृ० ८९ पं० १ टि० १।

पृ० ३४० पं० २३. प्रवर्तत इति। अत्र 'प्रवर्तक इति' इत्येव पाठो युक्तः प्रतीयते।

पृ० ३४१ पं० ६, २२–२३. तद्दणमोक्षणवत्। नयचक्रवृत्तौ अत्र 'तद्दणमोक्षणात्' इति पाठः, अग्रे तु [पृ० ३४३ पं० १७] 'तद्दणमोक्षणवत्' इति पाठो दृश्यते। अत एकतर एव कश्चिदपि पाठ उभयत्राप्यादरणीयः। 'तद्दणमोक्षणात्' इति तु सम्यग् भाति।

वशीति। एको वशी स्वतन्त्रो निष्क्रियाणां बहूनां जीवानाम्। सर्वा हि क्रिया नात्मनि समवेताः, किन्तु देहेन्द्रियेषु। आत्मा तु निष्क्रियो निर्गुणः सत्त्वादिगुणरहितः कूटस्थः सन् अनात्मधर्मानात्मनि अध्यस्य अभिमन्यते – कर्ता, भोक्ता, सुखी, दुःखी, कृशः, स्थूलः, मनुष्यः, अमुष्य पुत्रः, अस्य नप्तेति।······एकं बीजस्थानीयं भूतं सूक्ष्मं बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं बुद्धौ स्थितं येऽनुपश्यन्ति साक्षाज्जानन्ति धीरा बुद्धिमन्तः तेषामात्मविदां सुखं शाश्वतम्, नेतरेषामनात्मविदाम्।" इति शंकराचार्यरचिते श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्ये।

१ "तत्पूर्वकमित्यनेन लिङ्गलिङ्गिनोः सम्बन्धदर्शनं लिङ्गदर्शनं चाभिसम्बध्यते। लिङ्गलिङ्गिनोः सम्बद्धयोर्दर्शनेन लिङ्गस्मृतिरभिसम्बध्यते। स्मृत्या लिङ्गदर्शनेन चाप्रत्यक्षोऽर्थोऽनुमीयते। पूर्ववदिति यत्र कारणेन कार्यमनुमीयते यथा मेघोन्नत्या भविष्यति वृष्टिरिति। शेषवत् तद् यत्र कार्येण कारणमनुमीयते। पूर्वोदकविपरीतमुदकं नद्याः पूर्णत्वं शीघ्रत्वं च दृष्ट्वा स्रोतसोऽनुमीयते – भूता वृष्टिरिति। सामान्यतोदृष्टम् – व्रज्यापूर्वकमन्यत्र दृष्टस्यान्यत्र दर्शनमिति, तथा चादित्यस्य, तस्मादस्ति अप्रत्यक्षापि आदित्यस्य व्रज्या इति।" इति न्यायभाष्ये। २ "अनुमानं त्रिप्रकारमाचार्यैः व्याख्यातम् – पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतो दृष्टं च।" इति सांख्यकारिकायुक्तिदीपिकायां पृ० ४३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ३४१ पं० ७, २३–२४. सायोज्यं। दृश्यतां टिपृ० ९० पं० १।

पृ० ३४१ पं० ९. रथकारे। अत्र 'ईश्वरे' इति पाठो युक्तः प्रतीयते।

पृ० ३४१ पं० १७. शरीरादीन्युत्पा°। अत्र 'शरीरादीनुत्पा°' इति सम्यग् भाति।

पृ० ३४३ पं० ३,१९. तत्सायोज्य···। दृश्यतां टिपृ० ९० पं० १।

पृ० ३४३ पं० १२. शीतलिका···। यथा लूता रोगत्वेऽपि 'शीतलिका' इति पर्यायेण लोकैरभिधीयते एवम् अत्यन्तपरवशत्वमपि त्वया 'ऐश्वर्यम्' इत्यभिधीयते इत्याशयः।

पृ० ३४३ पं० १४. हिंसा···सङ्गदोषे। दृश्यतां पृ० ३१७ पं० २ टि० २–३। (हिंसा···सङ्गदोषैः ?)।

पृ० ३४३ पं० १५. दुःखात्मकत्वाच्चानुग्रहः। अत्र 'दुःखहेतुत्वाद् दुःखात्मकत्वाच्चानुग्रहः' इत्यपि पाठः स्यात्।

पृ० ३४३ पं० २७. प्रोक्त इति। (प्राप्त इति ?)।

पृ० ३४४ पं० २, १२,१३. °कारण्ये प्रोक्ते। द्विवचनान्तमिदम्। आदौ स एव···। दृश्यतां पृ० ३४६ पं० १८।

पृ० ३४४ पं० १०, पृ० ३४५ पं० १. सर्गादौ······अन्तवत्। दृश्यतां पृ० ३४५ पं० १५–१६।

पृ० ३४५ पं० ३. धारणाद्धानाद्वा धर्मः। "दुर्गतिप्रसृतान् जन्तून् यस्माद्धारयते ततः। धत्ते चैतान् शुभे स्थाने तस्माद्धर्म इति स्मृतः॥" इति प्रसिद्धा कारिकात्रानुसन्धेया।

पृ० ३४५ पं० १९–२०. यस्याभावे···इतरत् कार्यम्। दृश्यतां पृ० ३४२ पं० २,३,१८।

पृ० ३४७ पं० १–४. आदिकरत्वं···तत्प्रयुक्तत्वात्। दृश्यतां पृ० ३५० पं० १–४, २०–२२।

पृ० ३४७ पं० ५,२६. तदेव। (तदिव ?)। 'दृष्टान्तत्वं च' [पृ० ३४७ पं० २६] इति वचनात् 'तदिव' इत्यपि स्यादत्र।

पृ० ३४७ पं० ७. अभिव्यञ्जयन्···। 'अभिव्यञ्जयन् पदार्थं आदिकरत्वाद् वस्तु भवति' इत्याशयः। अत्रार्थेऽस्वारस्ये तु 'अभिव्यञ्जयद्···भवति वस्तु' इति कल्पनीयम्।

पृ० ३४८ पं० ६. परमाणुवर्गणा अग्रहणवर्गणा···। ग्रहणयोग्यायोग्यवर्गणास्वरूपं कर्मप्रकृति[गा० १८–२०]-वृत्ति-तत्त्वार्थसूत्रसिद्धसेनीयवृत्ति[८।२]प्रभृतिग्रन्थेष्वपि निरूपितमस्ति। तेभ्यः कश्चिद् विशेषोऽप्यत्रत्यनिरूपणे विलोक्यते इति ध्येयम्।

पृ० ३४८ पं० ९. स्वेदेनेव···। विशेषावश्यकभाष्यकोट्यार्यवृत्तावपीदृश एव पाठः। "न स आदातुं स्कन्धानतिसूक्ष्मान् बादरांश्च शक्नोति। स्वेदेन न बध्यन्ते जात्वणवः शर्कराश्च तथा॥" इति सिद्धसेनगणिकृतायां तत्त्वार्थसूत्रवृत्तौ [८।२] उद्धृते श्लोकेऽपि दृश्यते।

पृ० ३४८ पं० १२. औदारिककारणत्वेन। अत्र प्रतिषु 'औदारिककारत्वेन' इति पाठः। तदनुसारेणात्र 'औदारिककायत्वेन' इत्यपि पाठः स्यात्।

पृ० ३४९ पं० १२. जोगेहि···। "जोगेहिं तयणुरूवं परिणमइ गिण्हिऊण पंच तणू। पाउग्गे वालंबइ भासाणुमणत्तणे खंधे॥ १७॥" इति शिवशर्मसूरिकृतायां कर्मप्रकृतौ।

---

१ अस्या मलयगिरिकृता व्याख्या इत्थम्-"जोगेहिं"ति। योगैरनन्तरोक्तस्वरूपैः प्रायोग्यान् स्कन्धान् पुद्गलस्कन्धान् गृहीत्वा यथायोगं पंच तणु त्ति पञ्च शरीराणि परिणमयति औदारिकादिपञ्चशरीरतया परिणमयतीत्यर्थः। कथं पुनर्गृह्णातीति चेत्, अत आह-तदनुरूपं योगानुरूपम्। तथाहि-जघन्ययोगे वर्तमानः स्तोकान् पुद्गलस्कन्धान् गृह्णाति, मध्यमे मध्यमान्, उत्कृष्टे च योगे वर्तमानः प्रभूतानिति।······अथवा तच्छब्देन पञ्च शरीराणि सम्बध्यन्ते। ततश्च तदनुरूपं पञ्चशरीरानुरूपं शरीरपञ्चकप्रायोग्यतयेत्यर्थः, पुद्गलस्कन्धान् गृह्णाति। तथा भाषाप्राणापानमनस्त्वप्रायोग्यान् पुद्गलस्कन्धान् प्रथमतो गृह्णाति, गृहीत्वा च भाषादित्वेन परिणमयति। परिणमय्य च तन्निसर्गहेतुसामर्थ्यविशेषसिद्धये तान् पुद्गलस्कन्धानालम्बते। ततस्तदवष्टम्भतो जातसामर्थ्यविशेषः सन् विसृजति, नान्यथा। तथाहि-यथा वृषदंशः स्वानि अङ्गानि ऊर्ध्वं गमनाय प्रथमतः संकोचव्याजेनावलम्बते ततस्तदवष्टम्भतो जातसामर्थ्यविशेषः सन् तानि अङ्गानि ऊर्ध्वं प्रक्षिपति, नान्यथा शक्नोति, 'द्रव्यनिमित्तं वीर्यं संसारिणामुपजायते' इति वचनप्रामाण्यात्। तथेहापि भावनीयमिति।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ३४९ पं० १६, २०, पृ० ३५० पं० ७–१०. **तेजोयोगाद्**…**ऊष्मगुणः**…**तद्वद्**…**स्नेहा**…। अस्य कारिकाचतुष्टयस्यार्थः **सिद्धसेनगणि**कृतायां [1]तत्त्वार्थसूत्रवृत्तौ [८।३] दृश्यते।

पृ० ३५० पं० १५. **नरनरकदेवतिर्यग्गतिसंग्रहभवनवास्याद्यनेकप्रभेद**…। संग्रहेण समासतो नर-नरक-देव-तिर्यग्गतिभेदेन चतुर्धा जीवाः। भवनवासिप्रभृतयो [2]देवादीनां प्रभेदाः।

पृ० ३५० पं० १७. **जीवपरिणामहेतू**…। जीवपरिणामो हेतुर्येषां ते जीवपरिणामहेतवः पुद्गलाः कर्मतया परिणमन्ति। एवं पौद्गलिकं कर्म निमित्तीकृत्य जीवोऽपि तथैव परिणमति इत्याशयोऽत्र भाति। "[3]**जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पोग्गला परिणमंति। पोग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि** ॥ ८६ ॥ ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे। अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हं पि ॥ ८७ ॥ एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण। पुग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥ ८८ ॥ णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि। वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥ ८९ ॥" इति कुन्दकुन्दाचार्यरचिते समयसारे। "जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो। भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो ॥ ७५ ॥ **जीवपरिणामहेदू कम्मत्तण पोग्गला परिणमंति**। ण दु णाणपरिणदो पुण जीवं(वो) कम्मं समादियदि ॥ ७६ ॥" इति मूलाचारे समयसाराधिकारे।

पृ० ३५० पं० २०–२२. **यथा चा**…**तत्प्रयुक्तत्वात्**। दृश्यतां पृ० ३४७ पं० १–४।

पृ० ३५० पं० २४. **ज्ञानदर्शनावरण**…**[4]सप्रभेदानि**। दृश्यतां टिपृ० ६५ पं० १७।

पृ० ३५० पं० २५, पृ० ३५१ पं० ४–६. **अक्षरानन्त**…**सव्वजीवाणं**…। दृश्यतां टिपृ० ६७ पं० ६ टि० २।

पृ० ३५१ पं० १५. **पुमांसं गिलति**…। दृश्यतां पृ० १९० पं० १७।

पृ० ३५२ पं० ३. **सम्भूय**…। दृश्यतां पृ० ३२९ पं० १–२।

पृ० ३५२ पं० ४,२४. **एवं च कृत्वा**…। दृश्यतां पृ० ३५९ पं० १६, पृ० ३५७ पं० १३।

पृ० ३५२ पं० ५,२८. **प्रधानमध्यमा**…। दृश्यतां पृ० ३६५ पं० १७।

पृ० ३५२ पं० ६. °**विकल्पसम्भव**…। अत्र '°**विकल्पासम्भव**…' इति सम्यग् भाति।

पृ० ३५४ पं० १५. **गङ्गास्रोतस्यान्यथा प्रवृत्तस्य कर्मणोऽन्यथा प्रवर्तनमिति**। अत्र '**गङ्गास्रोतस्यान्यथा प्रवृत्तस्यान्यथा प्रवर्तनम्, न त्वन्यथा प्रवृत्तस्य कर्मणोऽन्यथा प्रवर्तनमिति**।' ईदृशोऽपि पाठः सम्भाव्यते।

पृ० ३५५ पं० १०. **अकारणमपि कर्म, सहायापेक्षत्वात्। पुरुषकारम**……। 'अपि'शब्देन कारणत्वमपि ग्राह्यम्। अत्र अकारणत्वे साध्ये सहायापेक्षत्वं हेतुः। तथा च यतः पुरुषकारं सहायमपेक्षते ततोऽकारणमपि कर्म इत्याशयो भाति।

पृ० ३५६ पं० ७. **गम्यते**…। 'गम्यते **द्रव्येणैव द्रव्यं क्रियते**……' इत्यपि मूलं स्यादत्र, दृश्यतां पृ० ३७३ पं० २४।

---

१ "यथा दीप ऊष्मगुणयोगाद् वर्त्या स्नेहमादाय अर्चीरूपेण परिणमयति तथा रागादिगुणयोगात् कायादियोगवर्त्या आत्मदीपः स्कन्धानादाय कर्मतया परिणमनमापादयति। कायादिकरणयोगाच्चात्मनो वीर्यपरिणतिर्भवतीति योगशब्देनोच्यते। त(य?)था मृण्मयघटस्याग्निसंयोगाद् रक्तत्वादिपरिणतिर्घटस्यैव तथा आत्मनः कायादिकरणयोगे वीर्यपरिणतिरात्मन एव प्रादुरस्ति, न द्रव्यान्तरस्येति। यथा च स्नेहाभ्यक्ते वपुषि जलार्द्रवाससि वा परागो लगति मलीभवति च तथा रागादिस्नेहाभ्यञ्जनस्यात्मनः कार्मणशरीरपरिणामोऽपूर्वकर्मग्रहणे योग्यतामास्कन्दति।" इति **तत्त्वार्थसूत्रवृत्तौ** ८।३। २ प्रभेदजिज्ञासुभिः **तत्त्वार्थसूत्र**[अध्याय. २–४]प्रभृतिग्रन्था विलोकनीयाः। ३ "अथ यद्यपि जीवपुद्गलपरिणामयोरन्योन्यनिमित्तमात्रत्वमस्ति तथापि निश्चयनयेन तयोर्न कर्मकर्तृभाव इत्यावेदयति **जीवपरिणामहेतुं**……। यथा कुम्भकारनिमित्तेन मृत्तिका घटरूपेण परिणमति तथा जीवसम्बन्धिमिथ्यात्वरागादिपरिणामहेतुं लब्ध्वा कर्मवर्गणायोग्यं पुद्गलद्रव्यं कर्मत्वेन परिणमति। **पुग्गलकम्मणिमित्तं**……॥ ८६ ॥ यथैव च घटनिमित्तेन 'एवं घटं करोमि' इति कुम्भकारः परिणमति तथैवोदयागतपुद्गलकर्म हेतुं कृत्वा जीवोऽपि निर्विकारचिच्चमत्कारपरिणतिमलभमानः सन् मिथ्यात्वरागादिभावेन परिणमतीति।" इति **जयसेन**कृता व्याख्या। "यतो जीवपरिणामं निमित्तीकृत्य पुद्गलाः कर्मत्वेन परिणमन्ति पुद्गलकर्म निमित्तीकृत्य जीवोऽपि परिणमतीति… …इतरेतरनिमित्तमात्रभवनेनैव द्वयोरपि परिणामः।……ततः स्थितमेतज्जीवस्य स्वपरिणामैरेव सह कर्तृकर्मभावो भोक्तृभोग्यभावश्च।" इति **अमृतचन्द्र**कृता व्याख्या। ४ प्रभेदजिज्ञासुभिः **तत्त्वार्थसूत्र**[अध्याय. ८]–**कर्म**ग्रन्थादयो विलोकनीयाः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ३५६ पं० १३. **°साधनतां गतत्वात्** । (साधनताङ्गत्वात्? साधनताङ्गभूतत्वात्?) ।

पृ० ३५६ पं० २०. **पूर्वविधानु°** । सूत्रकृताङ्गवृत्त्यादिषु '**पूर्वकृतानु°**' इति पाठ उद्धृतः ।

पृ० ३५७ पं० ६. **कर्तुरेव भावः तच्छक्तेः** । 'कर्तुरेव भावः सर्वस्य, तच्छक्तेः' इत्यपि मूलं स्यात् ।

पृ० ३५९ पं० ११ **व्रीहेरप्यावर्तकत्वात्** । (व्रीहिरप्यावर्तकत्वात्??) ।

पृ० ३५९ पं० ११. **°मुपयाति, नासावतो व्रीहि°** (°मुपयाति नभो, नातो व्रीहि° ??) ।

पृ० ३५९ पं० १८. **परवचनेन स्ववचनेन चैकत्वात्** । (परवचनेन स्ववचनेन वा? एकत्वात्) ?? ।

पृ० ३५९ पं० २५. **सुरादिवत्** । अत्र सुरा मदिरा विवक्षिता भाति ।

पृ० ३६० पं० ६. **उक्तनिरुक्तिकः** । दृश्यतां पृ० १९० पं० १७, पृ० ३५१ पं० १५ ।

पृ० ३६१ पं० १,२१. **परिणाम्य°** । अत्र **परिणम्य°** इति भा०प्रतिपाठः शुद्धः ।

पृ० ३६१ पं० ५–८. **एगमेगस्स······आणपाणत्ताए** । दृश्यतां टिपृ० ६६ पं० १९ । 'एकैकस्य भदन्त! जीवस्य एकैको जीवो मातृतया······आजातपूर्वः? गौतम! असकृत् अथवा अनन्तकृत्वः । एवं सर्वजीवानामपि एकजीवः एकजीवस्यापि सर्वजीवाः । तथा सर्वपुद्गला एकजीवस्य सर्वजीवानां चाहारतया उच्छ्वासतया भाषातया शरीरतया इन्द्रियतया मनस्तया प्राणापानतया ।' इत्यर्थः प्रतिभाति ।

पृ० ३६१ पं० २५. **तदप्येवं** । अत्र भा०प्रतिस्थः '**तथेदं**' इति पाठश्चेदुपादीयते तर्हि तदनुसारेण मूले [पृ० ३६१ पं० १] '**तथात्मकर्मणोरपि । तथा क्षीरादेः······घटादेः ।**' इति पाठः सम्भाव्यते ।

पृ० ३६२ पं० ३, ५. **परिणाम्य°** । अत्र प्रतिस्थः '**परिणम्य°**' इति पाठः शुद्धः ।

पृ० ३६२ पं० १३. **परिणाम्य°** । अत्र '**परिणम्य°**' इति सम्यक् ।

पृ० ३६३ पं० १३. **अधिपत्यालम्बन···** । दृश्यतां टिपृ० ३७ पं० ९ ।

पृ० ३६३ पं० १६. **रूपालोकमनस्कार···** । दृश्यतां पृ० ६० पं० १४, टिपृ० ३७ पं० ७ ।

पृ० ३६३ पं० १८. **अनेकसम्बन्धि···** । दृश्यतां पृ० ८५ पं० १८, टिपृ० ८ पं० ३ ।

पृ० ३६३ पं० २४. **इत्यर्थः** । अतः परं '**रूपाद्यात्मकत्वमात्मनो नाभ्युपगम्यतेऽसङ्ख्यातप्रदेशस्यापि**' इत्यधिकः पाठोऽत्र य०प्रतिषु तदाधारभूतायां य०प्रतौ च उपलभ्यते, तथापि '**यद्येवं**' [पृ० ३६३ पं० २५] इत्यतः परं स पाठो योजनीयः इत्येतत्सूचनार्थं य०प्रतौ सङ्केतचिह्नं वर्तते इति तत्रैव स योजनीयः । भा०प्रतौ तु तत्रैव स लिखितोऽस्तीति ध्येयम् ।

पृ० ३६३ पं० २५. **यद्येवं···यातीति** । रूपादिमदेकद्रव्योपयोगकाले 'आत्मा ग्राह्ये तादात्म्यं याति' इति आत्मनो रूपाद्यात्मकत्वं चेन्नाभ्युपगम्यते ततोऽचेतन एव स स्यादित्याशयः ।

पृ० ३६४ पं० १२. **उदये भव औदयिकः** । 'तत्र भवः' [पा० ४।३।५३] इति सूत्रेणात्र 'ठञ्'प्रत्ययः ।

पृ० ३६५ पं० २. **तस्यैवोक्तवत् सर्वत्वात् कर्मापि । तस्यैव कर्मतापि** । एतत्स्थाने 'तस्यैवोक्तवत् सर्वत्वात् कर्मतापि' इत्यपि मूलं स्यात्, दृश्यतां पृ० ३६८ पं० ८ ।

पृ० ३६५ पं० १२. **कृतार्थस्य···** । असन्निहिते 'इनि'विधानादसन्निहितार्थत्वं दर्शयति ।

पृ० ३६६ पं० ३,२०,२१. **हटवत्** । "हठ इति चिरन्तनतडागोदकाच्छादि हरितद्रव्यमुच्यते । यथा तदुत्सार्यमाणमपि स्वच्छन्दतः पुनः पुनरुदकं छादयति एवं योऽन्योऽपि स्वच्छन्दव्यवहारः स हठ इति प्रसिद्धः ।" इति **कुमारिलविरचिते तन्त्रवार्तिके** १।४।२।

पृ० ३६७ पं० ४,२०. **भारोत्पाटवत्** । प्रागपि [पृ० ३५५ पं० १,१४] उपात्तोऽयं दृष्टान्तः । व्याख्यानं तु तत्र भिन्नमित्यपि ध्येयम् ।

---

१ अत्र एकवचनान्तेन 'य०प्रति'शब्देन श्री**यशोविजयो**पाध्यायैर्लिखिता प्रतिर्विवक्षिता, बहुवचनान्तेन 'य०प्रति'-शब्देन तु तदनुसारिण्यः **पा० डे० लीं० रं० ही० वि०** इत्यादयः प्रतयो विवक्षिता इति ध्येयम् । एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम् ।
२ य०प्रतीनां लेखकैस्तु इदं सङ्केतचिह्नमपरिज्ञातमिति भाति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ३६७ पं० ४. **पुरुषात्मना…तृणदाहवद्वा**। 'पुरुषात्मना सहैकीभूतस्य उदयोपशमक्षयोपशमक्षयाः…… तृणदाहवद्वा' इत्यपि मूलं स्यादत्र।

पृ० ३६७ पं० ११. **विपरिणाम्यं**। अत्र प्रतिस्थः 'विपरिणम्यं' इति पाठः शुद्धः।

पृ० ३६८ पं० १–२,१०. **तत्र तत्प्रदर्शित…**। प्रत्यनुसारी 'तत्र प्रदर्शित…' इति पाठोऽत्र युक्तो भाति।

पृ० ३६८ पं० ४. **उदयोपशमक्षयोपशमक्षयान्…सोदाहरणान्**। दृश्यतां पृ० ३६८ टि० १, पृ० ३३८ टि० १। सापेक्षाणामुदयोपशमक्षयोपशमानामुदाहरणानि तु शास्त्रान्तरेषु मृग्याणि।

पृ० ३७१ पं० ४, ५. **ज्ञानादि न भवत्यज्ञानादिर्वा इति**। (ज्ञानादिर्न भवत्यज्ञानादिर्वा इति? ज्ञानादि न भवत्यज्ञानादि वा इति?)।

पृ० ३७१ पं० २५. **ज्ञानाज्ञानात्मा°**। अत्र भा०प्रतिस्थः '**ज्ञानात्मा°**' इति पाठोऽपि संगच्छेतेति भाति।

पृ० ३७२ पं० ३. **तत्त्व एव चेतना**। अत्र 'तत्त्वमेव चेतना' इति पठनीयम्।

पृ० ३७२ पं० १९–२२. **निर्वृत्त्युपकरण……उपयोगो**। दृश्यतां पृ० १८३ पं० १८–२१, पृ० ४७४ टि० १०, पृ० ४७६ टि० २।

पृ० ३७३ पं० ४,२४. **द्रव्येणैव द्रव्यं क्रियते**। दृश्यतां पृ० ३५७ पं० १, टिपृ० ३५६ पं० ७।

पृ० ३७३ पं० २,१८. **द्रव्यमपि…**। तुलना पृ० ३३४ पं० १।

पृ० ३७३ पं० ११. **एक्केक्को य……**। दृश्यतां पृ० ५५० टि० १।

पृ० ३७३ पं० १२–१३. **द्रव्यस्थितनयप्रकृतयः**। दृश्यतां टिपृ० ५२ पं० १३, तत्र च 'दव्वट्ठियनयपगडी' इति सन्मति[१।४]गाथाया वृत्तौ अभयदेवसूरिकृतं व्याख्यान्तरमपि विलोकनीयम्।

पृ० ३७४ पं० ११,१२. **अवति रक्षति पाति……**। अत्र '**पाति**'स्थाने '**याति**' इति सम्यग् भाति, 'अव रक्षण-गति-कान्ति-प्रीति-तृप्त्य-वगम-प्रवेश-श्रवण-स्वाम्यर्थ-याचन-क्रिये-च्छा-दीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसादहनभाववृद्धिषु' [पा० धा० ६००] इति धातुपाठात्। हैमधातुपाठेऽपि [धा० ४८९] इमे एव एकोनविंशतिरर्था 'अव'धातोरुक्ता इति ध्येयम्।

पृ० ३७४ पं० २०. **नोकर्मा……**। दृश्यतां ३६५ पं० १४।

पृ० ३७४ पं० २१. **वान्वित°**। अत्र '**चान्वित°**' इति रम्यं भाति।

पृ० ३७४ पं० २. **जे एकणामे……**। "जे एगं णामे से बहुं णामे जे बहुं णामे से एगं णामे।"—आचाराङ्गसू०।

पृ० ३७५ पं० २. **इति**। अत्र '**इति चतुर्थोऽरः प्रथमश्च मार्गः**।' इत्यपि मूलं स्यात्।

पृ० ३७५ पं० ७. **घटादि तावत्तदनित्यत्वम्**। अत्र भा०प्रतौ '**घटादितावतदनित्यत्वम्**' इति पाठः। (**घटादिभाववदनित्यत्वम्?**)।

पृ० ३७५ पं० १५. **मार्गो नेमिरित्यर्थः**। अत्र '**मार्ग**'शब्दो 'नेमि'वाचकः; त्रिनेमि चेदं द्वादशारं **नयचक्रम्**। अतश्चतुर्षु चतुर्षु अरेषु एको **मार्गो** नेमिः परिसमाप्यत इति ज्ञेयम्। तुलना—"यस्मिन् समये **तथागतः त्रिपरिवर्तं** द्वादशारं धर्मचक्रं परिवर्तयति।" इति बौद्धग्रन्थे दिव्यावदाने पृ० २०५। "आर्यसत्यानां प्रथमपरिवर्तो **दर्शनमार्गः**। आर्यसत्यानां द्वितीयपरिवर्तो **भावनामार्गः**। आर्यसत्यानां तृतीयपरिवर्तो **शैक्षमार्गः**।" इति महाव्युत्पत्तौ पृ० ६४।

पृ० ३७५ पं० १६. **अर्धमेकपुस्तकं…**। अत्र य०प्रतौ 'अर्धमेकमेकपुस्तकं…' इति पाठः, भा०प्रतौ तु 'अर्धमेकं एकपुस्तकं…' इति पाठः। एतदनुसारेणात्र 'अर्धमेवमेकपुस्तकं…' इत्यपि पाठः स्यात्।

---

१ "उपशमः कर्मणोऽनुदयावस्था भस्मपटलावच्छन्नाग्निवत्।……क्षयोपशमाभ्यां निर्वृत्तो मिश्रः दरविध्या[ताव]च्छल-ज्वलनवत्।" इति **सिद्धसेनगणि**विरचितायां **तत्त्वार्थसूत्रवृत्तौ** २।१। २ "**जे एग**मित्यादि। यो हि प्रवर्धमानशुभाध्यवसायाधिरूढकण्डकः एकमनन्तानुबन्धिनं क्रोधं नामयति क्षपयति स बहून् मानादीन् नामयति क्षपयति, अप्रत्याख्यानादीन् वा स्वभेदान् नामयति। मोहनीयं चैकं यो नामयति स शेषा अपि प्रकृतीर्नामयति। यो वा बहून् स्थितिविशेषान् नामयति सोऽनन्तानुबन्धिनमेकं नामयति मोहनीयं वा।……यो बहुनामः स एव परमार्थत एकनाम इति क्षपकोऽभिधीयते उपशामको वा।" इति **आचाराङ्गसूत्रस्य शीलाङ्काचार्य**कृतायां वृत्तौ १।३।४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

॥ श्री ऋषभदेवाय नमः ॥

भोटपरिशिष्टम्[1] ।

आचार्यश्रीमल्लवादिक्षमाश्रमणपूज्यपादैर्नयचक्रे वृत्तिकृद्भिः सिंहसूरिवादिगणिक्षमाश्रमणैश्च नयचक्रवृत्तौ बौद्धदर्शननिरूपणावसरे बौद्धाचार्यदिङ्नागमतं बहुषु स्थानेषु निर्दिष्टं चर्चितं परीक्षितं च । श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणादिभिरपि विशेषावश्यकभाष्यवृत्त्यादिषु दिङ्नागमतमुल्लिखितम् । अतो दिङ्नागमतस्य परिज्ञानं बहु आवश्यकमिति विभाव्य पिपठिषूणामुपकाराय भोटपरिशिष्टमिदमस्माभिरारभ्यते । दिङ्नागेन प्रमाणसमुच्चय-न्यायमुख[2]-हेतुमुख[3]-आलम्बनपरीक्षा[4]-वृत्ति-त्रैकाल्यपरीक्षा[5]-न्यायपरीक्षा[6]-सामान्यपरीक्षा[7]-हस्तवालप्रकरण[8]-वृत्ति-द्वादशशतिका[9]-न्यायप्रवेशक[10]-हेतुचक्रह(ड)मरु[11]-कारणो[12]-पादानप्रज्ञप्तिप्रभृतयो बहवो ग्रन्था विरचिताः; किन्तु तेषु न्यायप्रवेशकं विना सर्वेऽपि संस्कृतभाषायां नष्टा इति प्रतिभाति, सम्प्रति क्वचिदपि तेषामनुपलब्धेः । तथापि केषाञ्चिद् ग्रन्थानां परःशतेभ्यो वर्षेभ्यः पूर्वं विहिता भोटभाषानुवादाः चीनभाषानुवादाश्च सम्प्रति उपलभ्यन्ते । एतेषु च सर्वेषु प्रमाणसमुच्चयो मुख्यो ग्रन्थः, स च कारिकात्मकः । अत्र दिङ्नागेन वृत्तिरपि विरचितास्ति । अयं च षट्सु परिच्छेदेषु विभक्तः । तत्र प्रथमे परिच्छेदे 'प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणे' [१।२] इत्यभिधाय तदनन्तरं प्रत्यक्षलक्षणविचारः, द्वितीये स्वार्थानुमानविचारः, तृतीये परार्थानुमानविचारः, चतुर्थे दृष्टान्तविचारः, पञ्चमेऽन्यापोहविचारः, षष्ठे जातिविचारः । प्रमाणसमुच्चयस्य तद्वृत्तेश्च वसुधररक्षित[13]विरचितौ कनकवर्मविरचितौ च भोटभाषानुवादौ सम्प्रति उपलभ्येते[14] । सवृत्तिकस्य प्रमाणसमुच्चयस्योपरि ईश्वरसेन[15]-जिनेन्द्रबुद्धि[16]प्रभृतिभिर्बहुभिष्टीका विरचिताः, तासु जिनेन्द्रबुद्धिविरचिताया 'विशालामलवती'टीकाया[17] भोटभाषानुवाद एव[18] सम्प्रति उपलभ्यते ।

---

१ 'भोट'शब्देन तिब्बत[Tibet]देशीयभाषा विवक्षिताऽत्र, तिब्बतदेशे तथा व्यवहारात् । २ दृश्यतां पृ० २०६ पं० २२–२३, टिपृ० ३१ टि० १ । ३ तत्त्वसंग्रहपञ्जिका. पृ० ३१२ पं० २१, पृ० ३३९ पं० १५ । ४ सवृत्तिकाया अस्या भोटभाषानुवादो 'ब्स्तन्-ऽग्युर'संग्रहे 'मदो'वर्गे 'चे'[=९५]पुटे विद्यते । N. ed. पृ० १८० A–१८२A । P. ed. पृ० १७७A–१७९A । D. ed. पृ० ८६A–८७B । The Adyar Library Series. No. 32. Adyar, Madras.–इत्यत्र संस्कृतानुवादेन सह प्रकाशितेयम् । ५ ब्स्तन्-ऽग्युर् मदो चे[=९५] । N. ed. पृ० १८२A–१८३B । P. ed. पृ० १७९A–१८०B । D. ed. पृ० ८७B–८८B । C. ed. पृ० ८७A–८८B । तन्त्रालोकवृत्तौ [Kashmir Series XXIX. ९।११, पृ० १८] उल्लिखितेयम् । भोटभाषानुवादे तु 'त्रिकालपरीक्षा' इति अभिधानम् । ६ दिङ्नागेन प्रमाणसमुच्चयस्य षष्ठपरिच्छेदे उल्लिखितेयम् । ७ नयचक्रवृत्तौ उल्लिखितेयम् । ८ एतद्विषयेऽधिकमग्रे वक्ष्यते । ९ दृश्यतां पृ० ५४८ पं० २४ । तत्त्वार्थसूत्रसिद्धसेनीयवृत्ति. ५।२४ । १० Gaekwad's Oriental Series. No. XXXVIII. Baroda इत्यत्र संस्कृतभाषायां प्रकाशितः । ११ ब्स्तन्ऽग्युर् मदो चे [=९५] इत्यत्र अस्या भोटभाषानुवादो विद्यते । N. ed. पृ० १९३B–१९४A । P. ed. पृ० १८९A–१९०A । D. ed. पृ० ९३A–अनुसारेणास्य संस्कृते 'हेतुचक्रहमा(समा ?)र्थ' इति नाम । 'हेतुचक्रनिर्णयः' इत्यपि अस्य नाम भोटभाषानुवादानुसारेण प्रतीयते । १२ चीनभाषानुवादानुसारेण इदं नाम । संस्कृतेऽस्य किं नाम आसीदिति न सुष्ठु ज्ञायते । अस्य चीनभाषानुवाद एवोपलभ्यते । तदनुसारेण Prof. Hidenori Kitagawa [Nagoya University, Nagoya, Japan] इत्येभिः सम्प्रति English भाषानुवादोऽपि विहितोऽस्ति । १३ C. ed.–D. ed. मध्ये तु अस्य 'सुधनरक्षित' इति नामोपलभ्यते इति ध्येयम् । १४ अनुवादा एते 'ब्स्तन्-ऽग्युर्'संग्रहे 'मदो'वर्गे चे [=९५] पुटे संगृहीताः । १५ ईश्वरसेनमतस्य धर्मकीर्तिना बहुत्र निराकृतत्वात् धर्मकीर्तेः प्रागयं सञ्जात इति प्रतीयते । १६ "धर्मकीर्तेरन्येषां च मतेभ्यः किञ्चित् संगृह्य" इति 'विशालामलवती'टीकाप्रारम्भे जिनेन्द्रबुद्धिना अभिहितत्वाद जिनेन्द्रबुद्धिः धर्मकीर्तेः पश्चादेव जातः । १७ 'ब्स्तन्ऽग्युर्'संग्रहे 'मदो'विभागे N. ed.–P. ed. मध्ये रे[=११५]पुटेऽयं वर्तते, C. ed.–D. ed. मध्ये तु ये [=११४] पुटे विद्यते इति ध्येयम् । नवसहस्रश्लोकपरिमितेयं टीका । C. ed. पृ० १–३२६ । D. ed. पृ० १–३१४ । P. ed. पृ० १–३५५ । N. ed. पृ० १–३६० । १८ केनचिद् भोटदेशीयविदुषा भोटभाषायां रचिता एका प्रमाणसमुच्चयटीका A complete catalogue of the Tibetan Buddhist canons [Published by Tohoku University, Sendai, Japan] इत्येतदनुसारेण D.ed. मध्ये 5437 ग्रन्थाङ्के विद्यते इति ध्येयम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक् शास्त्राशयापरिज्ञानात् अनुवादार्थमवलम्बितसंस्कृतग्रन्थस्याशुद्धत्वादेर्वा कारणात् प्रमाणसमुच्चयस्य तद्वृत्तेश्च भोटभाषानुवादौ अनुवादकाभ्यां न सम्यग् विहितौ अशुद्धौ च इति भाति । बहुषु स्थलेषु शब्दश एव न अनूदितम्, किन्तु आशय एव वर्णित इत्यपि दृश्यते । अतस्तदनुसारेण यथावत् संस्कृतेऽनुवदनमतीव दुष्करम् । वसुधररक्षितविरचितानुवादयोः कनकवर्मरचितानुवादयोश्च परस्परं साम्यमपि दृश्यते क्वचिच्च अल्पं बहुतरं वा वैषम्यमपि दृश्यते । विशालामलवती-टीकाया अनुवादस्तु अतीव समीचीनः प्रायः शुद्धश्च, किन्तु तत्र प्रमाणसमुच्चयस्य वृत्तेश्च कानिचिदेव पदानि प्रतीकतया उपादाय व्याख्यातानि, न तु सर्वाणि । अतस्तदनुसारेण प्रमाणसमुच्चयस्य वृत्तेश्च कानिचिदेव पदानि यथावत् संस्कृतेऽनुवदितुं शक्यन्ते इति ध्येयम् ।

एते चानुवादा अनेकेषु स्थानेषु उत्कीर्णकाष्ठफलकैर्मुद्रिता उपलभ्यन्ते । अतस्तेषामनेकानि संस्करणानि सन्ति । अस्माभिश्चत्वारि ज्ञायन्ते - Narthang edition 1, Peking edition 2, Derge edition 3, Choni edition 4 । तत्र N. ed -P. ed. मध्ये कनकवर्मविहितः प्रमाणसमुच्चयकारिकानुवादः, वसुधररक्षितविरचितः प्रमाणसमुच्चयवृत्त्यनुवादः, कनकवर्मविरचितः प्रमाणसमुच्चयवृत्त्यनुवादश्च इत्यनुवादत्रयमेव उपलभ्यते । C. ed.-D. ed. मध्ये तु वसुधररक्षितविरचितः प्रमाणसमुच्चयकारिकानुवादः प्रमाणसमुच्चयवृत्त्यनुवादश्च इत्यनुवादद्वयमेवोपलभ्यते । विशालामलवत्या भोटभाषानुवादस्तु सर्वेष्वपि संस्करणेषु उपलभ्यते । एतेषु च सर्वेषु संस्करणेषु N. ed. संस्करणमपरसंस्करणेभ्योऽधिकतरं शुद्धमिति विदुषामनुभवः । एतेषां पत्राणां मानम् २२" × ६" ईञ्च[Inch]प्रमितं ज्ञेयम् । प्रतिपत्रं पृष्ठद्वयम्, आद्यपृष्ठं विना प्रतिपृष्ठं च सप्त सप्त पङ्क्तयः प्रायशो दृश्यन्ते ।

सर्वानेताननुवादानवलम्ब्य अनेकेषु च प्राचीनग्रन्थेषु उल्लिखितं दिङ्नागमतं परिशील्य भोटभाषानुवादेभ्योऽस्माभिः संस्कृतभाषायां परिवर्तितस्य प्रमाणसमुच्चयस्य वृत्तेश्च प्रसक्तानुप्रसक्तव्याजेन उपयुक्तोंऽश इह उपन्यस्यते —

[अस्माभिरत्र प्रयुक्तानां **सङ्केतानां** स्पष्टीकरणम् । C. ed.=Choni edition. D. ed.=Derge edition. N. ed.=Narthang edition. P. ed.=Peking edition. । Ps^1=प्रमाणसमुच्चयकारिकाणां वसुधररक्षितविरचितो **भोट**भाषानुवादः । Ps^2=प्रमाणसमुच्चयकारिकाणां कनकवर्मरचितो **भोट**भाषानुवादः । $Psv.^1$=प्रमाणसमुच्चयवृत्तेः वसुधररक्षितरचितो **भोट**भाषानुवादः । Psv^2.= प्रमाणसमुच्चयवृत्तेः कनकवर्मरचितो **भोट**भाषानुवादः । VT.=सवृत्तिकस्य प्रमाणसमुच्चयस्योपरि **जि**नेन्द्रबुद्धिरचिताया '**वि**शालामलवती'**टी**काया **भोट**भाषानुवादः । **तत्त्वसं०**=तत्त्वसंग्रहः । **तत्त्वसं० पं०**=तत्त्वसंग्रहपञ्जिका । **तत्त्वार्थरा०**=तत्त्वार्थसूत्रस्योपरि **अ**कलङ्कप्रणीतं **रा**जवार्तिकम् । **न्या० र०**=मीमांसाश्लोकवार्तिकस्य **पार्थ**सारथिमिश्ररचिता **न्यायरत्नाकरा**ख्या व्याख्या । **परि०**=परिच्छेदः । **प्र० वा०**=**धर्म**कीर्तिरचितं **प्रमाण**वार्तिकम् । **प्र० वार्तिकालं०**=प्रज्ञाकरगुप्तरचितः प्रमाणवार्तिकालंकारः Tibetan Sanskrit Works Series. [Published by K. P. Jayaswal Research Institute, Patna] इत्यत्र प्रकाशितः । **प्र०वा०म०**=प्रमाणवार्तिकस्य **मनो**रथनन्दिकृता[१०]वृत्तिः । **प्र० वा० म० टि०**=प्र० वा० म० इत्यस्या **वि**भूतिचन्द्रलिखितं टिप्पणम् । **प्र० वा० म० परिशिष्ट.**=प्र० वा० म० इत्यस्या अन्ते **वि**भूतिचन्द्रलिखितं परिशिष्टम् । **भोट.**=भोटभाषानुवादः । **मी० श्लो० वा०**=कुमारिलरचितं मीमांसाश्लोकवार्तिकम् । **विशाला०**=विशालामलवत्या भोटभाषानुवादा[VT.]नुसारेणास्माभिः संस्कृतभाषायां विहितोऽनुवादः, पृष्ठाङ्कास्तु तत्र भोटभाषानुवादस्यैव अस्माभिर्लिखिता इति ध्येयम् । **सं.**=भोटभाषानुवादानुसारेण विहितः संस्कृतेऽनुवादः ।]

---

१ Xylographs । २ N. ed. P. ed. पृ० १-१३ A । ३ C. ed.-D. ed. इत्यत्र तु अस्य 'सुधनरक्षित' इति नाम । ४ C. ed.-D. ed. पृ० १४-८५ B. । N. ed. पृ० १३ A-९६ B । P. ed. पृ० १३ A-९३ B । ५ N. ed. पृ० ९६ B-१८० A । P. ed. पृ० ९३ B-१७७ A । ६ C. ed.-D. ed. पृ० १-१३ । ७ अस्माभिस्त्वत्र प्रायः सर्वत्र D. ed. इत्यस्यैवोपयोगो विहितः । Dr. Yensho Kanakura [Professor in Indology and specialist in Jain Philosophy, Tohoku University, Sendai, Japan], Prof. Hide ori Kitagawa [Lecturer in Indian Philosophy, Nagoya University, Nagoya, Japan] इत्यनयोर्महता सौहार्देन 'फोटो'[Photographs]प्रतिकृतिरूपेण लब्धोऽयं D. ed. **विशालामलवतीभोटभाषानुवादोऽस्माभिः** । ८ **भार**तीयज्ञानपीठ, **का**शी - इत्यत्र प्रकाशितम् । ९ इदं तु ध्येयम् - **प्र**माणवार्तिकपरिच्छेदानां द्विविधः क्रम उपलभ्यते - स्वार्थानुमानपरिच्छेदः १, प्रमाणपरिच्छेदः २, प्रत्यक्षपरिच्छेदः ३, परार्थानुमानपरिच्छेदः ४ इति एकः । अपरस्तु प्रमाण० १, प्रत्यक्ष० २, स्वार्थानु० ३, परार्थानु० ४ इति । आद्यो **धर्म**कीर्तिना स्वयमेव सहेतुकं स्वीकृतः तट्टीकाकारैश्च देवेन्द्रबुद्धि-प्रज्ञाकरगुप्तादिभिरनुसृतः । अतोऽयं मौलिकः क्रमः । **मनो**रथनन्दिना तु सुगमतायै द्वितीयः क्रमः स्वीकृतः । अस्माभिरपि '**प्र० वा०**'सङ्केते '**प्र० वा० म०**'सङ्केते च अयं द्वितीय एव क्रमोऽत्र श्लोकाङ्कनिर्देशाय विवक्षितः, '**प्र०वार्तिकालं०**'सङ्केते तु प्रथमः क्रम इति ध्येयम् । १० Journal of The Bihar and Orissa Research Society, PATNA इत्यत्र प्रकाशिता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिङ्नागविरचितः स्ववृत्तियुक्तः

[1]प्रमाणसमुच्चयः

[तत्र प्रथमस्य प्रत्यक्षपरिच्छेदस्य कतिपयोंऽशः]।

भोट. छेद्' मर्' ग्युर्' प' ऽग्रो' ल' फन्' पर्' बृशेद् ॥ स्तोन्' प' बदे' ग्शेग्स्' स्क्योब्' ल' फ्यग्' ऽछ्ल्' नस् ॥
छद्' मर्' स्ग्रुब्' पियर्' रङ्' गि' ग्शुङ्' कुन्' लस् ॥ ब्तुस्' ते' ल्र' छोग्स्' ऽथोर्' नेमूस्' ऽदिर्' ग्चिग्' ब्य ॥ १ ॥

ऽदिर्' यङ्' रब्' तु' ब्येद्' पऽि' दङ्' पोर्' ग्युं' दङ्' ऽब्रस्' बु' फुन्' सुम्' छोग्स्' पस्' छद्' मर्' ग्युर्' ब' जिद्' क्यिस्' ब्चोम्' ल्दन्' ऽदस्' ल' ब्स्तोद्' प' ब्र्जोद्' प' नि' गुस्' प' ब्स्क्येद्' पर्' ब्य' बऽि' दोन्' दुऽो ॥ दे' ल' ग्युं' नि' ब्सम्' प' दङ्' स्ब्योर्' ब' फुन्' सुम्' छोग्स्' पऽो ॥ ब्सम्' प' नि' ऽग्रो' ब' ल' फन्' पर्' बृशेद्' पऽो ॥ स्ब्योर्' ब' नि' ऽग्रो' ब' ल' ब्स्तन्' प' स्तोन्' पऽो ॥ ऽब्रस्' बु' नि' रङ्' दङ्' ग्शन्' ग्यि' दोन्' फुन्' सुम्' छोग्स्' पऽो ॥ रङ्' दोन्' फुन्' सुम्' छोग्स्' प' नि' ब्दे' बर्' ग्शेग्स्' प' जिद्' क्यिस्' ते ॥ दोन्' ग्सुम्' ने' बर्' ब्लङ्' बर्' ब्यऽो ॥ रब्' तु' मृजेस्' पऽि' दोन्' नि' स्क्येस्' बु' ग्सुग्स्' लेग्स्' ब्शिन्' नो ॥ पियर्' मि' ल्दोग्' पऽि' दोन्' नि' रिमूस्' नद्' लेग्स्' पर्' ब्यङ्' ब' ब्शिन्' नो ॥ म' लुस्' पऽि' दोन्' नि' बुम्' प' लेग्स्' पर्' गङ्' ब' ब्शिन्' नो ॥ [3]दोन्' ग्सुम्' पो' दे' यङ्' पियि' रोल्' बऽि' ऽदोद्' छग्स्' दङ्' ब्रल्' ब' दङ्' स्लोब्' प' दङ्' मि' स्लोब्' प' नेमूस्' लस्' रङ्' दोन्' फुन्' सुम्' छोग्स्' प' ख्यद्' पर्' दु' ब्य' बऽि' पियर्' रो ॥ ग्शन्' दोन्' फुन्' सुम्' छोग्स्' प' नि' स्ग्रोल्' बऽि' दोन्' ग्यिस्' न' स्क्योब्' प' जिद्' दो ॥ दे' ल्त' बुऽि' योन्' तन्' चन्' ग्यि' स्तोन्' प' ल' फ्यग्' ऽछ्ल्' नस्' छद्' म' ब्स्ग्रुब्' पर्' ब्य'

---

१ अस्योपरि **जिनेन्द्रबुद्धिना विशालामलवती** टीका विरचितास्ति । तस्या **भोट**भाषानुवादादुद्धृत्य **संस्कृते**ऽनूद्य च कतिपयोंऽश इह टिप्पणेषु वक्ष्यते । **सोऽप्यवश्यं द्रष्टव्यः** । २ **भोट**लिप्याः सीसकाक्षरा[Types]णामत्र देशे दुर्लभत्वात् **सवृत्तिकस्य प्रमाणसमुच्चयस्य** कतिपयांशात्मको भोटभाषानुवाद इह देवनागरीलिप्यां मुद्र्यते । इदं पुनरवधेयम्-प्रमाणसमुच्चयवृत्तौ प्रायः सर्वासामपि प्रमाणसमुच्चयकारिकाणां प्रतीकरूपेण अन्तर्गतत्वात् PSV^1 एवास्माभिरत्रोपन्यस्यते । यत्र तु कारिकाणां पृथग् निर्देशोऽप्यावश्यक इत्यस्माकं मतं तत्र PS^{1-2}. इत्यतो यथायोगमुद्धृत्य 卐 卐 एतादृशचिह्नमध्ये च निवेश्य पृथगपि विहितः कारिकाणां निर्देशः । C. ed. मुद्रित एव PS^1. अस्माभिरुपयुक्तोऽत्र । C. ed. मुद्रितौ PS^1. PSV^1. Mr. Walter H. Maurer इत्येतेषां महता प्रयत्नेन सौजन्येन च The Library of Congress, Washington. 25. D. C. [U. S. A.] इत्यतः 'मायक्रोफिल्म'[Microfilm]रूपेणास्माभिर्लब्धौ । PS^2. PSV^2. च N. ed. मुद्रितावेवास्माभिरुपयुक्तावत्र । तत्र PS^2. 'फोटोस्टाट'[Photostat]रूपेण India Office Library, London.–इत्यतो लब्धः । अत्र PSV^1. इत्यस्य सम्पादने C. ed., D. ed., N. ed.–इति त्रयाणामपि यथायोगं विहितोऽस्माभिरुपयोगः, पृष्ठाङ्कस्तु C. ed. इत्यस्यैवात्र दर्शितः । यत्र च PS^{1-2}., PSV^2., VT.-इत्येतेषु अत्यन्तमुपयोगी पाठभेदोऽस्माकमभिमतस्तत्र सोऽपि टिप्पण्यां दर्शितः । संस्कृतीकरणे तु PS^{1-2}., PSV^{1-2}., VT.-इत्येतेषां सर्वेषामपरेषां चानेकसंस्कृतग्रन्थानामप्यत्र विहित उपयोगः । D. ed. मुद्रितः PSV^1. अस्माभिः Dr. Susumu Yamaguchi [President of the Otani University, Kyoto, Japan], Dr. Jyosho Nozawa [Prof. Koyasan University, Koyasan, Japan], Dr. Hideo Kimura [Prof. Ryukoku University, Kyoto, Japan] इत्येतेषां महता सौजन्येन प्रयत्नेन च लब्धः । N. ed. मुद्रितौ PSV^{1-2}. तु Dr. H. R. R. Iyengar [Retired Director of the Oriental Research Institute, Mysore University, Mysore] इत्येतेषां महाशयानां सौहार्दादौदार्याद् महासौजन्याच्च लब्धौ । ३ "दोन्' ग्सुम्' पो' ऽदि' यङ्' शेस्' प' ल' सोग्स्' प' स्ते"–VT. पृ० ७ B ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बडि फ्यिर् रङ् गि रब् तु ब्येद् प रिग्स् पडि स्गो ल सोग्स् प नेम्स् लस् ऽदिर् ग्चिग् तु बेतुस् ते । छद् म कुन् लस् ब्तुस् प ब्र्त्सम् पर् ब्यऽो ॥ ग्शन् गिय छद् म द्गग् पर् ब्य बडि फ्यिर् दङ् रङ् गि छद् मडि योन् तन् ब्र्जोद् पर् ब्य बडि फ्यिर् दङ् ॥ गङ् गि फ्यिर् ग्शल् ब्य तोंग्स् प नि छद् म ल रग् लस् प यिन् पस् ऽदिर् यङ् लोग् पर् तोंग्स् प मङ् बस् नऽो ॥

सं. 5 [2]प्रमाणभूताय जगद्धितैषिणे प्रणम्य शास्त्रे सुगताय तायिने ।
प्रमाणसिद्धयै स्वमतात् समुच्चयः करिष्यते विप्रसृतादिहैकतः ॥ १ ॥

[3]अत्र [4]च भगवतो हेतुफलसम्पत्त्या प्रमाणभूतत्वेन स्तोत्राभिधानं प्रकरणादौ [5]प्रसादजननार्थम् । तत्र हेतुराशयप्रयोग-

---

१ "ब्तुस् नस् शेस् प ल सोग्स् प स्ते ।......छद् म नेम्स् क्यि कुन् लस् ब्तुस् प यङ् दग् पर् ब्स्दुस् पर् ब्यऽो ॥"–VT. पृ० ११ A । २ प्र० वा० म० परिशिष्टे उद्धृतो व्याख्यातश्चायं श्लोकः, पृ०५१८-५२१ । ३ "अत्र **भ**गवतो **हे**तुफलसम्पत्त्या **प्र**माणभूतत्वेन **स्तो**त्राभिधानं शास्त्रादौ शास्त्रार्थत्वात् । भगवानेव हि प्रमाणभूतोऽस्मिन् प्रसाध्यते । **तत्र हे**तुराशयप्रयोगसम्पत् सांव्यवहारिकप्रमाणापेक्षया । **आ**शयो **ज**गद्धितैषिता । **प्र**योगो **ज**गच्छासनाच्छास्तृत्वम् । **फ**लं **स्व**परार्थसम्पत् । **स्वा**र्थसम्पत् **सु**गतत्वेन **त्रि**विधमर्थमुपादाय, **प्र**शस्तत्वं(स्तार्थं ?) **सुरूपवत्**, अपुनरावृत्त्यर्थं **सु**नष्ट-ज्वरवत्, **निः**शेषार्थं **सु**पूर्णघटवत् । **प**रार्थसम्पत् जगत्तारणात् **ता**यित्वम् । सन्तानार्थं चापरिनिर्वाणधर्मत्वात् । एवम्भूतं **भ**गवन्तं **प्र**णम्य प्रमाणसिद्धिर्विधीयते । **प्र**माणाधीनो **हि** **प्र**मेयाधिगमः । भगवानेव च प्रमाणम् । [पृ० १]........नन्वाचार्येण शासनमुपायत्वेन दुःखप्रशमस्य निर्दिष्टम् । तथा चोक्तम्–'**प्र**योगो **ज**गच्छासनाच्छास्तृत्वम् । [पृ० ११५]...हेतुरुक्तमिदं द्वयम्–'**तत्र हे**तुराशयप्रयोगसम्पत् । **आ**शयो **ज**गद्धितैषिता, **प्र**योगो **ज**गच्छासनाच्छास्तृत्वम् ।'... किं तत् सुगतत्वम् ?...तस्य हेतोः प्रहाणं त्रिगुणं प्रशस्तत्वात् अपुनरावृत्तेः निःशेषप्रहाणं(णात् ?) चेति [पृ० ११६] ।"–**प्र०वार्तिकालं०** । "अत्रेति श्लोके, **भ**गवत इति 'भग'शब्दोऽयमैश्वर्यादिषु वर्तते यथोक्तम्–'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य रूपस्य यशसः श्रियः । [ये शेस् दङ्=] ज्ञानस्याथ च वीर्यस्य षण्णां भग इतीरणा ॥ १ ॥' इति ।...तस्य **स्तो**त्राभिधानम्......स्तोत्रेणाभिधानं स्तोत्रवचनेन गुणवत्त्वप्रकाशन-मित्यर्थः । केन गुणेन तथा प्रकाशनमित्याह–**प्र**माणभूतत्वेनेति । स च गुणः केन हेतुनेत्याह–**हे**तुफलसम्पत्त्येति [पृ० ४A]......तच्च किमर्थमित्याह–**प्र**करणादौ **प्र**सादजननार्थमिति [पृ० ४ B]...**तत्र हे**तुराशयप्रयोगसम्पदिति । आशयं दर्शयति–**आ**शयो **ज**गद्धितैषिता इति ।...**प्र**योगो **ज**गच्छासनात् इत्यादि [पृ० ५B] ।...**ज**गच्छासनाच्छास्तृत्वमिति [पृ० ६A] ।...तस्य **फ**लं **स्व**परार्थसम्पत् ।...**स्वा**र्थसम्पत् **सु**गतत्वेन इत्यादि । '**सु**'शब्दोऽयमत्र प्रभूतत्वाद्यर्थप्रकाशको वेद्यः । यदाह–**त्रि**विधमर्थमुपादाय इत्यादि [पृ० ७A] ।...**अ**र्थत्रयं **चे**दमित्यादि । तत्र बाह्या वीतरागाः......[पृ० ७B] ।.........'**प**रार्थसम्पत् **ता**रणार्थेन' इत्यनेन 'ताय'शब्दार्थमाह । तारणं स्वदृष्टमार्गोपदर्शनम् । स एवार्थः ।...सोऽत्रास्तीति तेनार्थेन भगवतः **ता**यित्वम् [पृ० ८A].........................भगवान् बाह्य-शैक्षा-ऽशैक्षेभ्योऽधिकः [पृ० ९B] ।......**स्व**प्रकरणेभ्य इतीदं '**स्व**मतात्' इत्यस्य विवरणम् । '**मु**ख'शब्देनैवापि पूर्वोक्त '**वि**प्रसृत'शब्दार्थो द्योतित एव प्रतीयते इति न व्याख्यातः । '**मु**खं द्वारं दिङ्मात्रप्रदर्शनं संक्षेपः ।......बहुष्वपि मतसामान्यात् श्लोके '**स्व**मतात्' इत्येकवचनम् । **वृ**त्तौ विशेष-विवक्षायां '**स्व**प्रकरणेभ्यः' इति बहुवचनम् [पृ० १०B] । **उ**च्चित्येत्यादि, पूर्वकृतमन्यच्च किञ्चिदपूर्वं बुद्धौ स्थितमपि समादाय **प्रमाणानां समुच्चयः** सम्यक् संग्रहः **करिष्यते** । अत्र च प्रमाण-प्रमेय-तदाभासादयः......'प्रमाण'शब्देनाभिधी-यन्ते । **प**रप्रमाणप्रतिषेधायेत्यादिना '**प्र**माणसिद्धि'शब्दार्थमाह ।......स्वप्रमाणमेव गुणः अर्थार्थिभिर्गुण्यते इति कृत्वा अर्थ-प्रापकत्वाच्च ।...**य**स्मादित्यादिना प्रमाणस्य पुरुषार्थोपयोगित्वं दर्शयति ।...प्रमेयं चात्र हेयमुपादेयं च । यस्मात् तदधिगमः प्रमाणाधीनः तस्मात् प्रमाणसिद्धयै प्रयत्नः सफल इत्याशयः । अत्र केचिदाहुः–प्रमाणानि स्वत एव सिद्धानीति । तन्मतानुयायि-नोऽपरे श्लोकं पठन्ति–'प्रसिद्धानि प्रमाणानि व्यवहारश्च तत्कृतः । प्रमाणलक्षणस्योक्तौ ज्ञायते न प्रयोजनम् ॥' [**न्यायावतारे** श्लोकोऽयं दृश्यते ॥ २ ॥] इति । तस्मात् तन्निराकरणायाह–अत्र **च** [पृ० ११A] **वि**प्रतिपत्तिर्बहुधा इति ।...यस्मात् प्रमाणे विप्रतिपत्तयो बहुधा तस्मात् तासां निराकरणाय शास्त्रमिति [पृ० ११B] ।"–**विशाला०** । ४ PSV[1]–[2]. अनुसारेणा-स्माभिः '**च**'शब्दोऽत्र लिखितः, किन्तु **वि**शालामलवत्यामव्याख्यातत्वादनर्थकोऽपि स्यादिति भाति । ५ तुलना–"भगवति प्रसादजनने श्रोतृजनानुग्रहार्थं च स्तुतिपूर्वकमाचार्यो नमस्कारश्लोकमाह ।"–**प्र० वा० म०** पृ० १ । "शास्तृपूजाविधानं तु भगवति सर्वश्रेयोधिगतिहेतोः प्रसादस्य उत्पादनार्थम् ।"–**तत्त्वसं० पं०** पृ० ७ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पत् । आशयो जगद्धितैषिता । प्रयोगो जगच्छासनाच्छास्तृत्वम् । फलं स्वपरार्थसम्पत् । स्वार्थसम्पत् सुगतत्वेन त्रिविधमर्थमुपादाय, प्रशस्तार्थे सुरूपवत् अपुनरावृत्त्यर्थे सुनष्टज्वरवत् निःशेषार्थे सुपूर्णघटवत् । अर्थत्रयं चेदं बाह्यवीतराग-शैक्षाऽशैक्षेभ्यः स्वार्थसम्पद्विशेषात् । परार्थसम्पत् तारणार्थेन तायित्वम् । ऐवंगुणं शास्तारं प्रणम्य प्रमाणसिद्ध्यै स्वप्रकरणेभ्यो न्यायमुखादिभ्य इह एकत उच्चित्य प्रमाणसमुच्चयः करिष्यते परप्रमाणनिषेधाय स्वप्रमाणगुणाभिधानाय च, यस्मात् प्रमाणाधीनो हि प्रमेयाधिगमः, अत्र च बहुधा विप्रतिपत्तिः ।

भोट. 卐 मूङोन्' सुम्' दङ्' नि' जेंस्' सु' दूपग् ॥ छद्' म' दग्' नि' मूछन्' जिद्' ग्जिस् ॥
गुशल्' ब्य' दे' ल' रब्' स्ब्योर्' फियर् ॥ छद्' म' गुशन्' नि' योद्' म' यिन् ॥ २ ॥
यङ्' यङ्' शेस्' पऽङ्' म' यिन्' ते ॥ थुग्' प' मेद्'ऽग्युर्' द्रन्' सोग्स्' ब्शिन् ॥ 卐 PS[2]. पृ० १–२ ।

दे' ल' । मूङोन्' सुम्' दङ्' नि' जेंस्' सु' दूपग्' छद्' म' ग्जिस्' खो' नऽो ॥ गङ्' गि' फ्यिर्' शे' न । मूछन्' जिद्' ग्जिस्' गुशल्' ब्य । रङ्' दङ्' स्पियिऽि' मूछन्' जिद्' दग' लस्' गुशन्' पऽि' मूछन्' जिद्' गुशल्' बर्' ब्य' ब' गुशन्' नि' मेद्' दो ॥ रङ्' गि' मूछन्' जिद्' किय' युल्' चन्' नि' मूङोन्' [14] सुम्' ल । स्पियिऽि' मूछन्' जिद्' किय' युल्' चन्' नि' जेंस्' सु' दूपग्' पऽो' शेस्' शेस्[5] पऽो । गल्' ते' ऽदि' मि' तँग्' चेस्' ब्य' ब' ल' सोग्स्' पऽि' नम्' पस्' ख' दोग्' ल' सोग्स्' प' ऽजिन्' प' दङ्' लन्' चिग्' म' यिन्' प' ऽजिन्' दे' जि' ल्तर्' शे' न' । दे' ल्तर्' ऽजिन्' प' नि' योद्' मोद्' कियस्' ऽोन्[6] क्यङ्' गुशल्' ब्य' देऽि' रब्' स्ब्योर्' बस् ॥ दे' ल' रब्' स्ब्योर्' छद्' म' गुशन्' म' यिन्' । रङ्' दङ्' स्पियिऽि' मूछन्' जिद्' थ' स्नद्' दु' म' ब्यस्' प' दङ्' ख' दोग्' जिद्' दग्' लस्' ख' दोग्' ल' सोग्स्' प' गसुङ्' नस्' स्पियिऽि' मूछन्' जिद्' नि' ख' दोग्' ल' सोग्स्' प' मि' तँग्' गो' शेस्' मि' तँग्' प' जिद्' ल' सोग्स्' पर्' यिद्' कियस्' रब्' तु' स्ब्योर्' बर्' ब्येद्' दो ॥ देऽि' फ्यिर्' छद्' म' गुशन्' म' यिन्' नो ॥ यङ्' यङ्' शेस्' पऽङ्' म' यिन्' ते । गङ्' लन्' चिग्' म' यिन्' पर्' दोन्' दे' जिद्' सो' सोर्[7] ङो' शेस्' प' योद्' मोद् । दे' ल्तर्' न' यङ्' छद्' म' गुशन्' नि' म' यिन्' नो ॥ चिऽि' फ्यिर्' शे' न । थुग्' प' मेद्' ऽग्युर् । गल्' ते' शेस्' प' थमस्' चद्' छद्' म' जिद्' दु' ऽदोद्' प' दे' ल्त' न' नि' छद्' म' थुग्' प मेद्' पर्' ऽग्युर्' ते । द्रन्' सोग्स्' ब्शिन् । द्रन्' प' नि' द्रन्' प' जिद्' दो ॥ दूपेर्' न' द्रन्' प' दङ्' ऽदोद्' प' दङ्' शे' स्दङ्' ल' सोग्स्' प' स्ङर्' तोंग्' पऽि' दोन्' ल' छद्' म' गुशन्' म' यिन्' प' ब्शिन्' नो ॥

सं. प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणे, लक्षणद्वयम् ।
प्रमेयं, तत्र सन्धाने न प्रमाणान्तरं, न च ॥ २ ॥
पुनः पुनरभिज्ञानेऽनिष्ठासक्तेः स्मृतादिवत् ।

---

१ "'सु'शब्दस्य त्रिविधोऽर्थः–प्रशस्तता सुरूपवत् । अपुनरावृत्तिः सुनष्टज्वरवत् । निःशेषता च सुपूर्णघटवत् ।"–**प्र० वा० म०** पृ० ५९ । तुलना–**प्र० वा०** १।१४१–४४ । **धर्मोत्तरप्रदीप**. पृ० ३ । २ तुलना–"तायात् तत्त्वस्थिराशेषविशेषज्ञानसाधनम् । बोधार्थत्वाद् गमेः **बाह्यशैक्षाशैक्षाधिक**स्ततः ॥"–**प्र० वा०** १।२८२–८३ । "स च भगवान्······बाह्यशैक्षाशैक्षेभ्योऽधिकः । ये लौकिकभावनामार्गेण वीतरागा **बाह्या** अतत्त्वदर्शिनस्तेभ्यस्तत्त्वदर्शित्वादधिकः । ये **शैक्षा** अबाह्याः परिहाणिधर्माणस्तेभ्योऽपुनरावृत्त्या । ये च **अशैक्षाः** श्रावका अप्रहीणक्लेशवासना असाक्षात्कृतसर्वाकारवस्तवस्तेभ्यो निःशेषप्रतीत्या ।"–**प्र० वा० म०** पृ० १०७ । "परार्थवृत्तेः खड्गादे**र्विशेषो**ऽयं महामुनेः ।"–**प्र० वा०** १।१४० । "अयमेव वासनाहानिलक्षणः, **खड्गः** प्रत्येकबुद्ध आदिर्यस्य श्रावकस्य तस्मात् सकाशात् **महामुनेः** सम्यक्सम्बुद्धस्य **विशेषः** स्वार्थसम्पत्तेः ।"–**प्र० वा० म०** पृ० ५८ । ३ "**वृत्तौ** 'एवंगुणं शास्तारं प्रणम्य' इति ।"–**विशाला०** पृ० २ B । ४ "किं पुनरस्य प्रमाणस्य फलम् ? प्रमेयाधिगतिः । उक्तं च – **प्रमाणाधीनो हि प्रमेयाधिगमः**" ।–**प्र० वार्तिकालं०** पृ० २४० । ५ "शेस्' पर्' ब्यऽो ॥ गल्' ते' ऽदि' ल्तर्' ऽदि'"–PSV[2] पृ. ९७ A । ६ "ऽोन्' क्यङ्' दे' ल' रब्' स्ब्योर्' फियर्' छद्' म' गुशन्' नि' योद्' म' यिन् ।"–PSV[2] पृ० ९७ A । ७ "ङेस्' प' यिन्' मोद्'"–PSV[2] । ८ "तदेवं **'प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणे लक्षणद्वयं प्रमेयम्'** इत्याख्याय **'तस्य सन्धाने न प्रमाणान्तरं न च पुनः पुनरभिज्ञानेऽनिष्ठासक्तेः स्मृतादिवत्'** इत्यस्य वृत्तिः **'यत् तर्हि इदमनित्यादिभिराकारैर्वर्णादि गृह्यतेऽसकृद्वा'** इति व्याख्याता ।"–**प्र० वा० म० टि०** पृ० १४० । ९ "तस्माद् योजनाद् वर्णसामान्ये न प्रमाणान्तरत्वम् । **न च पुनः पुनरभिज्ञानेऽनिष्ठासक्तेः स्मृतादिवत् ।**"–**प्र० वार्तिकालं०** पृ० २४२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र **प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणे** द्वे एव, यस्माद् **लक्षणद्वयं प्रमेयम्**, न हि स्वसामान्यलक्षणाभ्यामन्यत् प्रमेयमस्ति । स्वलक्षणविषयं हि प्रत्यक्षम्, सामान्यलक्षणविषयमनुमानमिति प्रतिपादयिष्यामः । यत् तर्हीदमनित्यादिभिराकारैर्वर्णादि गृह्यतेऽसकृद्वा तत् कथम् ? तद् ग्रहणमस्ति, अपितु तत्र सन्धाने न प्रमाणान्तरम् । *स्वसामान्यलक्षणाभ्यां हि अव्यपदेश्यवर्णत्वाभ्यां वर्णादि गृहीत्वा, सामान्यलक्षणं वर्णादि 'अनित्यम्' इति अनित्यत्वादिना मनसा सन्धत्ते* । तस्मान्न

---

१ "एवं सामान्यलक्षणमभिधाय विशेषलक्षणमाह–'**प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणे** ।'······यस्माल्लक्षणद्वयं प्रमेयम् । ······यदाह–'**न हि स्वसामान्यलक्षणाभ्यामपरं प्रमेयमस्ति । स्वलक्षणविषयं प्रत्यक्षम्, सामान्यलक्षणविषयमनुमानमिति प्रतिपादयिष्यामः** । [पृ० १७०]।······उक्तं चाचार्येण–'**यस्माल्लक्षणद्वयं प्रमेयम्**' इति [पृ० २१३]।"–**प्र० वार्तिकालं०** पृ० १६९ ।तुलना–**नयचक्र-वृत्ति.** पृ० ८८ पं० ३, ४, १८–२४, टि० १० । "**तत्र** फल-स्वरूप-गोचर-संख्यासु चतस्रो विप्रतिपत्तयः, तासु संख्याविप्रतिपत्तिनिराकरणार्थमाह–**प्रत्यक्षमनुमानं चे**त्यादि [पृ० ११ B]।··· 'प्रत्यक्षमनुमानं च' इत्येकं वाक्यम्, 'प्रमाणे' इति च द्वितीयम् । एवं च विव्रियते–प्रमाणे एव, न प्रमाणानि एकं प्रमाणं वेत्यर्थः । तस्मादेव **वृत्तौ** अवधारणं कृतम्–**द्वे एव** इति । वाक्यस्य व्यवच्छेदफलत्वात् 'एव'शब्दाभावेऽपि तदर्थो लभ्यते । ······के ते द्वे इति······उच्यते–**प्रत्यक्षमनुमानं चे**ति [पृ० १२ B] । ···अत्र कारणमाह–**यस्माल्लक्षणद्वयं प्रमेय**मिति । तद् विवृणोति–**न ही**त्यादिना [पृ० १३ A]···प्रमेयद्वित्वात् प्रमाणद्वित्वमिति कथमित्याह–**स्वलक्षणविषयं ही**त्यादिना । '**हि**'शब्दोऽवधारणार्थः–स्वलक्षणविषयं प्रत्यक्षमेव सामान्यलक्षणविषयमनुमानमेव । प्रमाणान्तरं नास्ति । इमं चार्थं विस्तरेण 'स्वलक्षणमनिर्देश्यं ग्राह्यभेदात्' [प्र० समु० २।२] इत्यादिना प्रतिपादयिष्याम इति दर्शयितुमाह–**प्रतिपादयिष्याम** इति [पृ० १४ B]।"–**विशाला०** । २ "°मन्यत्"–**नयचक्र वृत्ति.** पृ० ८८, **प्र० वा० म०** पृ० १३२ । "°मपरं"–**प्र० वार्तिकालं०** पृ० १६९ । ३ "स्वलक्षणविषयं हि प्रत्यक्षम्, सामान्यलक्षणविषयमनुमानम् ।"–**तत्त्वार्थरा०** पृ० ५६ पं० ३० । ४ दृश्यतां टिपृ० ९९ टि० ८ । "**यत् तर्हीदमनित्यादिभिराकारैर्वर्णादि गृह्यते तत् कथम्?**"–**प्र० वार्तिकालं०** पृ० २२७ । "**यत् तर्ही**त्यादि । यदि प्रमेयनियमः 'स्वसामान्यलक्षणाभ्यामन्यत् प्रमेयं नास्त्येव' इत्यभ्युपगम्यते तर्हि नीलादिषु कृतकत्वादिलिङ्गदर्शनात् 'रूपमनित्यम्' इत्यादि ग्रहणं न स्यात् । तथाहि–नीलादि स्वलक्षणम्, अनित्यत्वं च सामान्यलक्षणम् ।···तस्मादिदं सामान्यविशेषरूपं प्रमेयान्तरमेव ।···तस्मात् 'रूपमनित्यम्' इत्यादि सामान्यविशेषविषयग्रहणं प्रमाणान्तरमेव । तथाहि–न तत् प्रत्यक्षं सामान्यस्यापि ग्रहणात् । [पृ० १४ B] । नाप्यनुमानम्, विशेषस्यापि ग्रहणात् लिङ्गाभावेऽपि तथाप्रतीतिसम्भवाच्च । **तत् कथ**मिति **तद्** ग्रहणं **कथं** न प्रमाणान्तरमित्यर्थः । **असकृ**दिति । अनेनापि विशेष-दृष्टं नाम यदनुमानं तत् प्रमाणान्तरमिति दर्शयति ।······एकदा प्रत्यक्षेणाग्निधूमपरिच्छेदे पुनरपि परम्परया तेनैव धूमेन 'स एवायमग्निः' इति परिच्छिनत्ति तदा विशेषदृष्टं नाम अग्निग्रहणं प्रमाणान्तरम्, अनुमानस्य सामान्यतो दृष्टत्वात् । [पृ० १५ A]"—**विशाला०** । "प्रमेयनियमे वर्णानित्यता न प्रतीयते । प्रमाणमन्यत् तद्बुद्धिर्विना लिङ्गेन सम्भवात् ॥ २ । ७६ ॥ विशेषदृष्टे लिङ्गस्य सम्बन्धस्याप्रसिद्धितः । तत् प्रमाणान्तरं मेयबहुत्वात् बहुतापि वा ॥ २।७७ ॥ प्रमाणानामनेकस्य वृत्तेरेकत्र वा यथा । विशेषदृष्टेनैकत्रिसंख्यापोहो न वा भवेत् ॥ २।७८ ॥ विषयानियमादन्यप्रमेयस्य च सम्भवात् ।" इति **प्रमाणवार्तिककारिकाणां मनोरथनन्दिवृत्तेः** [पृ० १३९] **प्रमाणवार्तिकालङ्काराच्च** [पृ० २२७] अयं पूर्वपक्षो विस्तरेण वेदितव्यः । ५ "**असकृद्वे**ति. [प्रमाण]समुच्चयं व्याचष्टे ।"—**प्र० वा० म० टि०** पृ० १३९ । ६ "**तथा ग्रहणमस्ति**"–PSV[1]-[2] । "त्र्यादि-संख्या निरासश्च नास्ति, प्रमेयान्तरसंभवात् । यस्मात् प्रमेयद्वित्वेन प्रमाणद्वयोक्तौ यदा प्रमेयान्तरसम्भवः तदा तद्ग्रहकं प्रमाणान्तरं स्यादिति न द्वे एव प्रमाणे इति चेत्, **तद्ग्रहणमस्ति** इत्यत्र नापलापः क्रियते, **अपितु तत्र सन्धाने(ने?) न प्रमाणान्तरम्** [पृ० १५ A] । इदं तावत् पूर्वस्य उत्तरम् । **तत्र** इति अनित्यादौ वर्णादौ च, **सन्धानं** योजनम्, यत् तद्योजने प्रवृत्तं तन्निमित्तं ज्ञानं तद् न प्रमाणान्तरम् [पृ० १५ B] ।"-**विशाला०** । ७ * * PSV[1]–[2]. अनुसारेणेत्थमस्माभिः संस्कृते-ऽनूदितम् । **प्रमाणवार्तिकालंकारे** त्वत्र अन्यथा पाठः । तथाहि "**स्वसामान्यलक्षणाभ्यां ह्यव्यपदेश्य-वर्णत्वाभ्यां वर्णादि गृहीत्वा अनित्यतया च 'अनित्यं वर्णादि' इति मनसा सन्धत्ते**' [इति] यदुक्**तमाचार्येण** तत्रायं क्रमो वर्णितः 'योजनाद् वर्णसामान्ये' [प्र० वा० २।७९] इत्यादिना । अनुमानेन वर्णत्वसामान्येऽनित्यताप्रतिपत्तौ प्रमाणा-न्तरम् ।"—**प्र० वार्तिकालं०** पृ० २३६ । "तद्योजनमपि कथमित्याह—**स्वसामान्यलक्षणाभ्या**मित्यादि । आदौ तावद् वर्णादि अव्यपदेश्यं स्वलक्षणं प्रत्यक्षेण गृह्णाति, पश्चात् [दे' खो' नऽम् VT.=] तदेव वर्णत्वादिसामान्यलक्षणं वा सविकल्पेन मनोविज्ञानेन । तस्मात् सामान्यलक्षणमनित्यत्वाद्यपि 'यत् किञ्चित् कृतकं तत् सर्वमनित्यम्' इत्येवं गृहीत्वा ततः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाणान्तरम् । [1]**न च पुनः पुनरभिज्ञाने** । [2]यद्सकृत् तत्रैवार्थे प्रत्यभिज्ञानं [3]तथापि (तत्रापि ?) न प्रमाणान्तरम् । कस्मात् ? [4]**अनिष्ठासक्तेः** । यदि सर्वं ज्ञानं प्रमाणमिष्यते तर्हि प्रमाणानामनवस्था स्यात्, **स्मृतादिवत्** । स्मृतिरेव स्मृतम् । [5]यथा स्मृतीच्छाद्वेषादि पूर्वाधिगतार्थे न प्रमाणान्तरम्, तद्वत् ।

भोट. 卐 मृङोन् सुम् तोंग् प दङ् ब्रल् ब ॥ मिङ् दङ् रिगस् सोगस् प स्नेस् पऽो ॥ ३ ॥ 卐 PS[2]·

दे ल । मृङोन् सुम् तोंग् दङ् ब्रल् बऽो ॥ शेस् प गङ् ल तोंग् प मेद् प [दे नि PSV[2]] मृङोन् सुम् मो ॥ तोंग्. शेस् ब्य ब ऽदि जि ल्त बु शिग् यिन् शे न । मिङ् दङ् रिगस् सोगस् सु स्ब्योर् बऽो ॥ ऽदोद् र्ग्येल् बऽि स्ग्र नेमूस् ल मिङ् गि ख्यद् पर् दु ब्यस् नस् जोंद् पर् ब्येद् दे । ल्हस् ब्यिन् शेस् ब्य ब दङ् । रिगस् क्यि स्ग्र नेमूस् ल चि स्ते ब लङ् शेस् ब्य ब दङ् । योन् तन् ग्यि स्ग्र नेमूस् ल योन् तन् ग्यिस् ते द्कर् पो शेस् ब्य ब दङ् । ब्य बऽि स्ग्र नेमूस् ल ब्य बऽि स्गो नस् ते ऽछेद् प शेस् ब्य ब दङ् । र्जेस् क्यि स्ग्र नेमूस् ल र्जेस् क्यि स्गो नस् ते । द्ब्युग् प चन् वें चन् शेस् ब्य ब ल्त बुऽो ॥ ऽदि ल ख चिग् न रे ऽब्रेल् प ख्यद् पर् दु ब्यस् पऽि स्ग्र यिन् नो शेस् सेर् रो ॥ ग्शन् दग् नि दोन् ग्यिस् स्तोङ् बऽि स्ग्र ऽबऽ शिग् गिस् दोन् नेमूस् ख्यद् पर् दु ब्यस् शिङ् बर्जोद् दो शेस् ऽदोद् दो ॥ गङ् ल तोंग् प दे दग् मेद् प दे मृङोन् सुम् मो ॥

सं. *[6]**प्रत्यक्षं कल्पनापोढं, [7]नामजात्यादियोजना** * ॥ ३ ॥

तत्र [8]**प्रत्यक्षं कल्पनापोढम्** । यत्र ज्ञाने कल्पना नास्ति तत् प्रत्यक्षम् । [9]अथ केयं कल्पना नाम ? **नामजात्यादि-**

'वर्णादि इदं कृतकम्, तस्मादनित्यम्' इति मनसा वर्णत्वादिसामान्यमनित्यत्वसामान्येन सह योजयति तद्युक्तं करोति । **तस्मान्न प्रमाणान्तरम्,** अपि त्वनुमानमेव ।" —**विशाला०** पृ० १५ B । "योजनाद् वर्णसामान्ये नायं दोषः प्रसज्यते ॥" –**प्र० वा०** १।७९। "विकल्पकेन ज्ञानेन अनित्यताया वर्णसामान्ये योजनात् अयं सामान्यविशेषात्मकप्रमेयग्राहकप्रमाणान्तरलक्षणो दोषो न प्रसज्यते । न हि विशेषोऽनित्यतया योज्यते, विकल्पानामतद्विषयत्वस्योक्तेर्वक्ष्यमाणत्वाच्च ।" –**प्र० वा० म०** पृ० १४० ।

१ दृश्यतां **टिपृ०** ९९ टि० ८,९ । "**न च पुनः पुनरभिज्ञानम्(ने ?)** इति । **अभिज्ञाने** फले कर्तव्ये यद्विशेषदृष्टं ज्ञानं तद् न प्रमाणम् [पृ० १६ B] इत्यर्थः ।……'**च**'शब्देन प्रत्यक्षेण गृहीते एव पुनरपि 'वर्णादि अनित्यम्' इति यद ग्रहणं तदपि न प्रमाणमिति दर्शयति । '**पुनः पुनः**' इत्यनेन 'असकृद्' इत्यस्यार्थमाह [पृ० १७ A] ।" —**विशाला०** । २ PSV[1-2]. अनुसारेण 'यदसकृत् स एवार्थः प्रत्यभिज्ञायते तथापि न प्रमाणान्तरम्' इत्यपि पाठः स्यादत्र । ३ "दे ल्त न यङ् " PSV[1-2].=तथापि । ४ "**अनिष्ठासक्तेरिति** । संख्या-लक्षणाभ्यां प्रमाणानामियत्तापरिच्छेदो निष्ठा, तदभावप्रसङ्ग इत्यर्थः । 'अनधिगतार्थाधिगन्तृ प्रमाणम्' सामान्येन प्रमाणलक्षणम्, संख्या द्वे त्रीणि इत्यादि । तद् न स्यात् । '**यदि सर्वं ज्ञानं प्रमाणमिष्यते**' इत्यनेन पूर्वपक्षविरोधमाह । अनिष्ठाया व्यवस्थया निराकृतत्वात् । **स्मृ**तादिवदित्युदाहरणमाह । विषयेऽप्येवं निर्देशोऽस्तीत्याह –**स्मृतिरेव स्म**रणमिति भावे 'क्त'विधानात् । **यथे**त्यादिना साध्येन हेतोरनुगमं दृष्टान्ते दर्शयति । **तद्वत्** इति प्रमाणस्य फलम् । 'यदधिगतार्थविषयं [पृ० १७ A] तद् न प्रमाणम्, स्मृत्यादिवत्, विशेषदृष्टमपि तथा' [इति] व्यापकविरोधः [पृ० १७ B] ।" —**विशाला०** । ५ "यदुक्तं '**स्मृतीच्छाद्वेषादिवत् पूर्वाधिगतविषयत्वात् पुनः पुनरभिज्ञानं न प्रमाणम्**' इति, तद् व्याहन्यते ।" —**तत्त्वार्थरा०** पृ० ५६ पं० ८ । ६ * * **तत्त्वार्थरा०** पृ० ५३ । तुलना –**नयचक्र** पृ० ५९-६० । ७ **तत्त्वसं० पं०** पृ० ३६८,३६९,३७० । ८ दृश्यतां **नयचक्र.** पृ० ६० **टि०** १५, **टिपृ०** ३० पं० २१ –**टिपृ०** ३१ पं० २५ । "स्वरूपविप्रतिपत्तिनिराकरणायाह –**प्रत्यक्ष**मित्यादि । प्रतिगतमक्षं प्रत्यक्षम्, प्रादिसमासः । इदं लक्ष्यम् । 'कल्पनापोढम्' इति लक्षणम् । कल्पनया अपोढं [ल्दन् प मेद् चिङ् VT. =] रहितम् कल्पनाया वा अपोढं रहितं [ल्दन् प मेद् चिङ् VT. =] कल्पनापोढम् ।" –**विशाला०** पृ० १८A । ९ **नयचक्र-वृत्ति.** पृ० ५९ पं० २,२६ । टिपृ० ३० पं० २१ । "**अथ केयं कल्पना नाम** इति कल्पनानां बहुत्वादत्र का कल्पना विवक्षिता इति [थे छोम् स बऽि द्रि बऽो VT. =] संशयभाजः प्रश्नः । **नामजात्यादियोजना** । 'नामादि'शब्देन संग्रहेऽपि जात्यादिभिरसमानसामर्थ्यात् [लोगस् सु ब्यस् पऽो VT =] पृथक्कृता । असमानसामर्थ्यं च नाम्नः सत्त्वात् जात्यादीनां च तद्विपरीतत्वात् । जात्यादयः परिकल्पिताः, तत्त्वतस्तु असन्तः । नामजात्यादीनां योजना नामजात्यादियोजना, 'कृद्योगा च षष्ठी समस्यते [पा० म० भा० २।२।८]' इति समासः ।" –**विशाला०** पृ० १८A ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

योजना। *[1]यदृच्छाशब्देषु नाम्ना विशिष्टोऽर्थ उच्यते 'डित्थः' इति। जातिशब्देषु जात्या 'गौः' इति। गुणशब्देषु गुणेन 'शुक्लः' इति। क्रियाशब्देषु क्रियया 'पाचकः' इति। द्रव्यशब्देषु द्रव्येण 'दण्डी, विषाणी' इति*। [2]अत्र सम्बन्धविशिष्ट इति केचित्। [3]अन्ये त्वर्थशून्यैः शब्दैरेव विशिष्टोऽर्थ उच्यते इति। [4]यत्रैषा कल्पना नास्ति तत् प्रत्यक्षम्।

भोट. ꣼ थुन्' मोङ्' म' यिन्' पडि' र्ग्यु' यि' फ्यिर् ॥ दे' यि' थ' स्नद्' दूबङ्' पोस्' ब्यस् ॥ PS[1,2]

चि' गङ्' गि' फ्यिर्' ग्जिस्' ल' बर्तेन्' नस्' स्क्येस्' पडि' नेम्' पर्' शेस्' पडि' द्बङ्' पो' ल' बर्तेन्' पऽो ॥ शेस्' ब्र्जोद्' क्यि' युल्' ल' बर्तेन्' प' शेस्' चि' म' यिन्' शे' न। थुन्' मोङ्' मिन्' पडि' र्ग्यु' [पृ० १५ A] यि' फ्यिर् ॥ दे' यि' थ' स्नद्' द्बङ्' पो' लस् ॥ युल्' ग्सुग्स्' ल' सोग्स्' प' नि' म' यिन्' नो ॥ ऽदि' ल्तर्' युल्' नि' र्ग्युद्' ग्शन्' ग्यि' यिद्' क्यि' नेम्' पर्' शेस्' प' दङ्' यङ्' थुन्' मोङ्' यिन्' नो॥ थुन्' मोङ्' म' यिन्' प' ल' थ' स्नद्' ब्येद्' प' यङ्' मूथोङ् स्ते। द्पेर्' न' र्डडि' स्ग्र' नस्' क्यि' म्यु' गु' शेस्' प' ब्शिन्' नो ॥ [5]दे' ल्त' बस्' न' मूङोन्' सुम्' र्तोग्' प' दङ्' ब्रल्' बर्' ऽथद्' प' यिन्' नो ॥ [6]छोस्' मूङोन्' प' लस्' क्यङ्' मिग्' गि' नेम्' पर्' शेस्' प' दङ्' ल्दन्' पस्' स्ङोन्' पो' शेस्' क्यि' स्ङोन्' पऽो' स्नम्' दु' नि' म' यिन्' नो ॥ दोन्' ल' दोन्' दु' ऽदु' शेस्' क्यि' दोन्' ल' छोस्' सु' ऽदु' शेस्' प' नि' म' यिन्' नो' शेस्' ग्सुङ्स्' सो ॥

---

१ * * टिप्पृ० ३० पं० २४-२५। "यदृच्छाशब्देषु **हि**···नाम्ना······विषाणीति।" – **न्याय**वार्तिकतात्पर्यटीका [**जे**सलमेरस्था] १।१।४। "यद्येवं कथमाचार्यीयो **वृत्ति**ग्रन्थो नीयते – यदृच्छाशब्देषु **नाम्ना**········**विषाणीति**।" – **तत्त्वसं० पं०** पृ० ३६९। "**यदृच्छा**शब्देष्वित्यादि। जात्यादिप्रवृत्तिनिमित्तनिरपेक्षा यदृच्छाशब्दाः। यस्मात् कल्पना ज्ञानधर्मः न तु शब्दधर्मः तस्मात् नाम्ना विशिष्टोऽर्थो 'गृह्यते' इति वक्तव्ये कल्पनाया अभिधायकशब्देन समानविषयत्वदर्शनाय 'उच्यते' इत्युक्तं तदपि 'अभिधानवत् कल्पनाज्ञानमपि न स्वलक्षणविषयम्, तस्मादप्रत्यक्षमभीष्ट'मिति ज्ञापनार्थम्। **डित्थ** इति डित्थशब्दस्वरूपात्मना सोऽर्थः तदभेदरूपः प्रतीयते इति प्रसिद्धम्। एवं जात्यादिभिः तदभेदोपचारभूतोऽर्थः·········। '**दण्डी विषाणी**' इति संयोगिसमवायिद्रव्यभेदेनोदाहरणद्वयम्।" – **विशाला०** पृ० १८B। **न्याय**मञ्जर्यां तु प्रकारान्तरेण उपचारवर्णनम् – "पञ्च चैताः कल्पना भवन्ति – जातिकल्पना, गुणकल्पना, क्रियाकल्पना, नामकल्पना, द्रव्यकल्पना चेति। ताश्च क्वचिदभेदेऽपि भेदकल्पनात् क्वचिच्च भेदेऽप्यभेदकल्पनात् कल्पना उच्यन्ते। 'जातिजातिमतोर्भेदो न कश्चित् पारमार्थिकः। भेदारोपणरूपा च जायते जातिकल्पना॥' इदमस्य गोगोत्वमिति न हि कश्चिद् भेदं पश्यति। तेनाभेदे भेदकल्पनैव। एतया सदृशन्यायाद् मन्तव्या गुणकल्पना। तत्राप्यभिन्नयोर्भेदः कल्प्यते गुणतद्वतोः॥···भेदारोपणरूपैव गुणवत् कर्मकल्पना। तत्स्वरूपातिरिक्ता हि न क्रिया नाम काचन॥···विभिन्नयोरत्वभेदेन प्रवृत्ता नामकल्पना। चैत्रोऽयमित्यभेदेन निश्चयो नामनामिनोः॥···एवं दण्ड्ययमित्यादिर्मन्तव्या द्रव्यकल्पना। सामानाधिकरण्येन भेदिनोर्ग्रहणात् तयोः॥······एवं च पश्यता तासां प्रामाण्यामोदमन्दताम्। **भिक्षुणा** लक्षणग्रन्थे 'तदपोढ'पदं कृतम्॥" – **न्यायमञ्जरी.** पृ० ८७-८८। २ "ऽदि' ल' ख' चिग्' न' रे' ऽब्रेल्. पस्' ख्यद्' पर्' दु' ब्यस्' पडि' यिन्' नो' शेस्' सेर्' रो" इति PSV[2]अनुसारेण '**अत्र सम्बन्धविशिष्ट इति केचित्**' इति पाठो भाति। अयं च पाठः समीचीनो भाति। 'अत्र सम्बन्धविशिष्टोऽर्थ उच्यते इति केचिद् वदन्ति' इति तदाशयः। PSV[1]. अनुसारेण तु 'अत्र सम्बन्धविशिष्टः शब्द इति केचित्' इति संस्कृतेऽनुवादो भवति। "**अत्रे**ति क्रियाद्रव्यशब्देषु क्रियाद्रव्याभ्यां यस्तद्वतां सम्बन्धः स शब्दप्रवृत्तिनिमित्तम्। तथाहि – 'कारकत्वम्, दण्डित्वम्' इति भावप्रत्ययः क्रियाकारकादिसम्बन्धे भवति। यथोक्तम् – समासकृत्तद्धितेषु सम्बन्धाभिधानम् [ ] इति। शब्दप्रवृत्तिनिमित्ते च भावप्रत्ययो भवति। तथा चोक्तम् – 'यस्य गुणस्य भावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशः तदभिधाने त्वतलौ' [पा० म० भा० ५।१।११९] इति। 'पाचकः, [पृ० १८B] दण्डी' इति च कृत्तद्धितौ। तस्मादत्र सम्बन्धे भावप्रत्ययः। **अन्ये त्वर्थशून्यै**रिति स्वमतं दर्शयति तदर्थजात्यादिविशेषरहितैरित्यर्थः [पृ० १९A]।" – **विशाला०**। ३ "**अन्ये त्वर्थशून्यैः शब्दैरेव विशिष्टोऽर्थ उच्यते**' इत्यनेन ग्रन्थेन पृथक् स्वमतसिद्धा कल्पना पश्चादुपवर्णिता **आ**चार्येण।···अन्ये इति बौद्धाः अर्थशून्यैरिति जात्यादिनिरपेक्षैरपोहमात्रगोचरैः शब्दैरित्याचार्यग्रन्थस्यार्थः।" – **तत्त्वसं० पं०** पृ० ३७१। ४ "**प्रत्यक्षं कल्पनापोढ**मित्यादिः **यत्रैषा कल्पना नास्ती**त्यन्तः [**प्रमाण**]समुच्चयो व्याख्यातः।" – **प्र० वा० म० टि०** पृ० १७४। "**यत्रैषा कल्पना नास्ति तत् प्रत्यक्षम्**' इत्यनेन ग्रन्थेन लक्षणकारस्तादात्म्यप्रतिषेधं करोति, एवम्भूतं कल्पनात्मकं यद् ज्ञानं न भवतीत्यर्थः।" – **तत्त्वसं० पं०** पृ० ३७३। ५ "ऽदि' ऽथद्' दो' शेस्' प' रिग्स्' प' स्ते" – VT. पृ० १९B। ६ "छोस्' मूङोन्' पर्' यङ्' शेस्' प' ल' सोग्स्' पऽो" – VT N. ed. पृ० २५A।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं. **असाधारणहेतुत्वादक्षैस्तद् व्यपदिश्यते ।**

[1]अथ कस्माद् द्वयाधीनायामुत्पत्तौ 'प्रत्यक्षम्' उच्यते, न 'प्रतिविषयम्'? [2]**असाधारणहेतुत्वादक्षैस्तद् व्यपदिश्यते,** [3]न विषयै रूपादिभिः । [4]तथाहि – विषयो हि मनोविज्ञानान्यसन्तानिकविज्ञानसाधारणः । [5]असाधारणेन च व्यपदेशो दृष्टो यथा 'भेरीशब्दः' 'यवाङ्कुरः' इति । [6]इदमुपपन्नम् – प्रत्यक्षं कल्पनापोढम् । [7]अभिधर्मेऽप्युक्तम् – 'चक्षुर्विज्ञानसमङ्गी नीलं विजानाति नो तु नीलमिति । अर्थेऽर्थसंज्ञी न त्वर्थे धर्मसंज्ञी' [अभिधर्मपिटक[8]] इति ।

भोट. गल् ते [दे PSV[2].] ग्ञिग् तु मि तोंग् प न नेम् पर् शेस् प ल्ङ पो दे ऽदुस् प ल द्मिगस् प जि ल्तर् यिन् गङ् यङ् स्क्ये मूछेद् कि रङ् गि मूछन् जिद् ल सो सो रङ् गि मूछन् जिद् किय युल् चन् गिय जेस् किय रङ् गि मूछन् जिद् ल नि म यिन् नो शेस् क्यङ् जि ल्तर् ग्सुङ्स् शे न ।

देर् दोन् दु मस् ब्स्क्येद् पऽि फियर् ॥ रङ् दोन् रिप्य यि स्प्योद् युल् चन् ॥ ४ ॥

दे जेस् दु मस् ब्स्क्येद् पर् ब्य बऽि फियर् न रङ् गि स्क्ये मूछेद् ल रिप्यऽि स्प्योद् युल् चन् शेस् ब्र्जोद् किय । थ दद् प ल थ मि दद् पर् तोंगस् प लस् नि म यिन् नो ॥ [9]दोन् ऽदि जिद् स्म्रस् प ।

दु मऽि ङो बोऽि छोस् चन् नि ॥ द्बङ् पो लस् तोंगस् लिद् म यिन् ॥

[10]रङ् दङ् रिग् ब्य थ स्नद् कियस् ॥ ब्स्तन् ब्य मिन् न द्बङ् पोऽि युल् ॥ ५ ॥

दे ल्तर् न रे शिग् द्बङ् पो ल्ङ लस् स्क्येस् पऽि मूङोन् सुम् गिय शेस् प तोंग् प मेद् प यिन् यङ् ग्शन् गिय ऽदोद् प ल बर्तेन् नस् ऽदिर् ख्यद् पर् ब्यस् पर् रते । दे दग् नि थमस् चद् दु तोंग् प मेद् प ऽबऽ शिग् गो ॥

यिद् क्यङ् दोन् दङ् छगस् ल सोगस् ॥ रङ् रिग् तोंग् प मेद् प यिन् ॥

यिद् क्यङ् युल् ग्सुगस् ल सोगस् प ल द्मिगस् शिङ् जमूस् सु म्योङ् बऽि नेम् पस् ऽजुग् प स्ते । तोंग् प मेद् प ऽबऽ शिग् गो ॥ ऽदोद् छगस् द ङ शे स्दङ् दङ् ग्ति मुग् दङ् ब्दे ब दङ् स्दुग् ब्स्ङल् ल सोगस् प नि द्बङ् पो ल मि ल्तोस् पऽि फियर् रङ् रिग् पऽि मूङोन् सुम् मो ॥ दे ब्शिन् दु ।

---

१ * * **प्र० वार्तिकालं०** पृ० २७७ । **प्र० वा० म० टि०** पृ० १७५ । "**अथ कस्मा**दित्यादि" – **विशाला०** पृ० १९ A । तुलना – "अथ कस्माद् द्वयाधीनजन्म तत्तेन नोच्यते ।" – **प्र० वा०** २।१९१ । २ **प्र० वा० म० टि०** पृ० १७७ । **तत्त्वार्थरा०** पृ० ५३ । **न्यायप्रवेशकवृत्ति.** पृ० ३५ । "**अ**साधारणहेतुत्वादिति …" – **विशाला०** पृ० १९ A । ३ अत्र PSV [1–2] अनुसारेण "न विषये रूपादौ" इति संस्कृतेऽनुवादो भवेत् । ४ "तथाहि–विषया मनोविज्ञानान्यसन्तानिकविज्ञानसाधारणाः, अभिनवचन्द्रादिदर्शनेषु नानासन्तानिकचक्षुर्विज्ञानकारणत्वात् तदनुप्राप्तमनोविज्ञानकारणत्वाच्च …तस्माद् विषयैर्न व्यपदिश्यते ।" – **विशाला०** पृ० १९B । "तथा चाह – **विषयो हि मनोविज्ञानान्यसन्तानिकविज्ञानहेतुत्वात् साधारणः** ।" – **प्र० वार्तिकालं०** पृ० २७८ । ५ "अत एवाह – **असाधारणेन व्यपदेशो दृष्टो भेरीशब्दो यवाङ्कुर इति** ।" – **प्र० वार्तिकालं०** पृ० २७८ । "असाधारणेन व्यपदेशश्च दृष्टः" – PSV[1]–[2]. **विशाला०** पृ० १९B । "असाधारणेन च लोके व्यपदेशप्रवृत्तिर्यथा भेरीशब्दो यवाङ्कुर इति ।" – **न्यायप्रवेशकवृत्ति.** पृ० ३५ । दृश्यतां **नयचक्र.** पृ० ६० टि० १३ । ६ अत्र PSV [1–2]. अनुसारेण तु "**एवं प्रत्यक्षं कल्पनापोढमुपपन्नम्**' इति पाठः स्यात् । "**इदमुपपन्न**मिति युक्तम्, यस्मात् प्रत्यक्षं कल्पनापोढं प्रत्यक्षेणैव सिध्यति । अत्र युक्त्यन्तरेण किमिति प्रयोजनम् ।" – **विशाला०** पृ० १९ B । ७ दृश्यतां **नयचक्र.** पृ० ६१, पृ० ७९ टि० ७, टिपृ० ३८–३९ । "न केवलं प्रत्यक्षेणैव कल्पनापोढत्वं सिध्यति, अपि तु आगमादपि इति दर्शयन्नाह – **अभिधर्मे**ऽपीत्यादि ।… **चक्षु**र्विज्ञानसमङ्गी… **नीलं विजाना**ति इति नीलमर्थस्वरूपेण जानाति **नो तु नी**लमिति तन्नाम्ना 'इदं नीलम्' इति न जानाति । इदमेव उत्तरेण वचनद्वयेन स्पष्टीकरोति – **अर्थे**ऽर्थसंज्ञीति अर्थस्वरूपसंज्ञी **न त्वर्थे धर्म**संज्ञीति नार्थे नामसंज्ञीत्यर्थः ।" – **विशाला०** पृ० २१ A । ८ वचनमिदम् **अभिधर्मपिटकस्य विज्ञानकाये** विद्यते, Taisho Issaikyo, No. 1539, पृ० 559 b 27 । ९ "दोन् स्म्रस् प" – PSV[2]. । "स्म्रस् प यङ्" – VT. = '**उक्तं च**' इत्यपि अस्य संस्कृतं भवेत् । १० "रङ् गिस् रिग् ब्य ब्स्तन् मिन् प ॥ ग्सुगस् नि (ङो बो PS.[2].) द्बङ् पोऽि स्प्योद् युल् यिन् ॥ ५ ॥ – PS[2]. PSV[2]. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेल्[1] ऽब्योर् नॅम्स् क्यि ब्ल मै यिस् ॥ ब्स्तन् दोन् थ दद् चम् शिग् मृथोङ् ॥ ६ ॥

नेल् ऽब्योर् प नॅम्स् कियस् क्यङ् लुङ् लस् नॅम् पर् तोंग् प दङ् म ऽद्रेस् पऽि दोन् चम् मृथोङ् ब नि मृङोन् सुम् मो ॥ [पृ० १५B] रे शिग् गल् ते ऽदोद् छग्स् ल सोग्स् पऽि रङ् रिग् प मृङोन् सुम् यिन् न तोंग् पऽि शेस् प यङ् मृङोन् सुम् दु ऽग्युर् रो शे न । दे नि ब्देन् ते ।

तोंग् पऽङ् रङ् रिग् जिद् दु ऽदोद् ॥ दोन् ल म यिन् दे तोंग् फ्यिर् ॥

दे युल् ल नि ऽदोद् छग्स् ल सोग्स् प जिद् ब्शिन् दु मृङोन् सुम् म यिन् यङ् *रैङ्[2] रिग् गो शेस् क्य बऽि* स्क्योन् नि मेद् दो ॥ [दे ल्तर् PSV[2]] दे दग् नि मृङोन् सुम् मो ॥

सं. कथं[3] तर्हि 'सञ्चितालम्बना[4]: पञ्च विज्ञानकायाः' [अभिधर्मपिटक] इति, यदि तद् एकतो न विकल्पयति । *येनोक्तम्[5] – आयतनस्वलक्षणं[6] प्रति एते स्वलक्षणविषया न द्रव्यस्वलक्षणम् [अभिधर्मकोशभाष्य[7]. १।१०] इति तत् कथं ?*

तत्रानेकार्थजन्यत्वात्[8] स्वार्थे सामान्यगोचरम् ॥ ४ ॥

अनेकद्रव्योत्पाद्यत्वात्[9] तत् स्वायतने सामान्यगोचरमित्युच्यते, न तु भिन्नेष्वभेदकल्पनात् । आह[10] च —

***धर्मिणोऽनेकरूपस्य[11] नेन्द्रियात् सर्वथा गतिः ।**
स्वसंवेद्यमनिर्देश्यं[12] रूपमिन्द्रियगोचरः ॥ ५ ॥*

---

१ "मस् ब्स्तन् ॥ म ऽद्रेस् प थि दोन् चम् मृथोङ्" – PS[2] PSV[1-2] । २ * * "रङ् रिग् प ल म यिन् पऽि फ्यिर्" – PSV[2] । ३ नयचक्रवृत्त्यनुसारेण त्वत्र **'यत् तर्हीदं** सञ्चितालम्बनाः पञ्च विज्ञानकाया इति **तत् कथं** यदि तदेकतो न विकल्पयति' इति पाठ, पृ० ७९ पं० १५-१६ । "[ऽोन् चि ल्तर् शेस् प ल सोग्स् प VT.=] **कथं तर्ही**त्यादि । सञ्चितालम्बनाः पञ्च **विज्ञानकायाः** इत्ययं सिद्धान्तः, स कथं युक्तः **यदि त**देकतः [गूच्रिग् जिद् दु दूमिग्स. प ल VT.=] एकत्वेन आलम्बने **न विकल्पयति** ।" – **विशाला०** पृ० २१ A । ४ **नयचक्रवृत्ति.** पृ० ६४ पं० १, १३ । **प्र० वा० म०** पृ० १७६ । ५ * * **नयचक्रवृत्ति.** पृ० ७९ पं० १६, १८, १९ । "यच्च **वसुबन्धुना**ोक्तम् — आयतनस्वलक्षणं चक्षुर्ग्राह्यत्वादि, तत् **प्रति** ज्ञानानि **स्वलक्षणविषयाणि, न द्रव्य**स्वलक्षणं प्रति एकपरमाणुम्" । — **प्र० वा० म० टि०** पृ० १७६ । **"यच्चे**त्यादि **आ**यतनस्वलक्षणं चक्षुर्ग्राह्यत्वादि, तत् **प्रति** एते पञ्च विज्ञानकायाः **स्वलक्षण**विषयाः, **न द्रव्य**स्वलक्षणमिति [पृ० २१ A] । द्रव्यं नीलादयो विशेषाः । नीलादिद्रव्यस्वलक्षणविषयत्वनिषेधेन सामर्थ्यात् यत् सामान्यमभिन्नं स तेषां विषय इत्युक्तं भवति । ततश्च कल्पनापोढत्वविरोधः । तस्य **तच्छास्त्रं कथ**मन्यथा नेतुं शक्यते इति भावः [पृ० २१ B]" — **विशाला०** । ६ "उक्तं च – आयतनस्वलक्षणं प्रत्येते स्वलक्षणविषयाः न द्रव्यस्वलक्षणम् ।" – **प्र० वार्तिकालं०** पृ० २८० । ७ **नयचक्रवृत्ति.** पृ० ७९ पं० २४ । ८ **नयचक्र-वृत्ति.** पृ० ८६ पं० ९, पृ० ८९ पं० २७ । **प्र० वा० म०** पृ० १७६ । **प्र० वार्तिकालं०** पृ० २७९ । विस्तरेण एतत्सम्बन्धिनी चर्चा **प्रमाणवार्त्तिका**[२।१९४–२३०]दिग्रन्थेभ्योऽवसेया। "तदुभयस्यापि [लन् चिग् गसुङ्स् प VT =]युगपद्[उत्तरम्] आह – **त**त्रानेकार्थजन्यत्वादित्यादि । तत्रेति शास्त्रे **अने**कार्थजन्यत्वादिति अनेकपरमाणुजन्यत्वादित्यर्थः ।......यच्च 'आयतनस्वलक्षणं प्रति एते' इत्याद्युक्तमत्रापि तैरेव यथोक्तैः संहतैः परमाणुभिश्चक्षुरादिविज्ञानं जन्यते न त्वेकेनैव, तस्मात् अनेकार्थजन्यत्वात् 'स्वार्थे सामान्यगोचरम्' इत्युच्यते । सामान्यं गोचरोऽस्येति विग्रहः । ननु सामान्यमारोपितोऽभेदः, इन्द्रियज्ञानविषयः परमाणुर्नाम अनेको भावः, तत्कथं सामान्यगोचरत्वं प्रतिपाद्यते इति चेत्, नायं दोषः, यः स 'सञ्चित'शब्देन 'आयतनस्वलक्षण'शब्देन च परमाणुरनेको भाव उक्तः स एव प्रतिनियतविज्ञानजननसामर्थ्येन साधर्म्येण परस्परापेक्षया [थुन् मोङ् बस् ते VT.=] समानः । समान एव च सामान्यम् । स्वार्थे तद्धितविधानात् ।...तेन एतदुक्तं भवति — सञ्चितगोचरम् आयतनस्वलक्षणगोचरं चोच्यते इति । **न तु भिन्ने**ष्वभेदकल्पनादिति, 'सामान्यगोचरमुच्यते' इत्यनेन सम्बन्धः ।" – **विशाला०** पृ० २१ B २२ A । ९ **नयचक्र-वृत्ति.** पृ० ९१ पं० ९ । **टिपृ०** ३१ पं० १२ । १० दृश्यतां टिपृ० १०३ टि० ९ । **"आह चे**ति गोचरविप्रतिपत्तिं निराकुर्वन् तदेव अविकल्पकत्वं [गूशुङ् ऽजुग्स् ते VT.=] समर्थयति । **ध**र्मिणोऽनेकरूपस्येति ।...**नेन्द्रियात् सर्वथा गति**रिति ।... अथ कीदृशं तदालम्बनमित्याह – **स्वसंवेद्य**मित्यादि ।...अनिर्देश्यमवाच्यम् [पृ० २२ B] ।......एवं स्वसंवेद्यमनिर्देश्यं रूपं प्रत्यक्षस्य विषयः । ईदृशे आकारे कल्पनाप्रवृत्तिश्च नास्ति [पृ० २३ B]" – **विशाला०** । ११ * * **प्र० वार्तिकालं०** पृ० २९८ । **न्यायमुख.** पृ० ५० । "......स्वसंवेद्यं त्वनिर्देश्यं...॥" — **प्र० वा० म० टि०** पृ० १८९ । **"अनेकधर्मणोऽर्थस्य**...। स्वसंवेद्यं त्वनिर्देश्यं......॥" – **विशेषावश्यकभाष्यकोट्टार्यवृत्ति.** पृ० ८५ । दृश्यतां **टिपृ०** ३१ पं० २४ । एतत्सम्बन्धिनी चर्चा विस्तरेण **प्रमाणवार्त्तिका**[२।२३१–८]दिरवसेया । १२ **तत्त्वसं० पं०** पृ० २९३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]एवं तावत् पञ्चेन्द्रियजं प्रत्यक्षज्ञानमविकल्पकम् । [2]अत्र विशेषणं परमतापेक्षम्, सर्वे त्वविकल्पका एव ।

मानसं चार्थरागादिस्वसंवित्तिरकल्पिका ।

[3]मानसमपि रूपादिविषयालम्बनमविकल्पकमनुभवाकारप्रवृत्तं *[4]रागादिषु च स्वसंवेदनमिन्द्रियानपेक्षत्वाद् मानसं प्रत्यक्षम्* । [5]तद्वत्—

[6]योगिनां गुरुनिर्देशाव्यतिभिन्नार्थमात्रदृक् ॥ ६ ॥

---

१ "**एवं ताव**दित्यादिरुपसंहारः । अत्र 'एवं तावत् पञ्चेन्द्रियजम्' इति वचनात् तावच्छब्देन अपञ्चेन्द्रियजमपि अन्यदस्ति तथापि लक्षणस्य विशेषणं [पृ० २३ B] पृथग् वक्ष्यते इत्येतत् ख्याप्यते ।······**अत्र विशेषणं पर**मतापेक्षमिति । विशेषणं विशेषः विभाग इति पर्यायाः । स च प्रस्तुतत्वात् प्रत्यक्षलक्षणस्येति प्रतीयते । अत्रेति प्रकरणे । यदिदं लक्षणस्य पृथग् विशेषणं तत् परैर्यद् विप्रतिपन्नं लक्षणमिष्टं तदपेक्षया । तत्र मनोविज्ञानप्रत्यक्षे इन्द्रियज्ञानेनानुभूतोऽर्थः स एव गृह्यते इति केषाञ्चिद् विप्रतिपत्तिः, रागादिस्वसंवेदनं तद् नास्ति । योगिज्ञानेऽपि इदमेव । यस्मादेवं परेषां विप्रतिपत्तिः तस्मात् तदपेक्षया 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढम्' इत्यनेन संग्रहेऽपि अपञ्चेन्द्रियजस्य प्रत्यक्षस्य लक्षणस्य विशेषणं पृथगुच्यते परविप्रतिपत्तिनिराकरणायेत्याशयः [पृ० २४ A] ।·········**सर्वे त्व**विकल्पका **ए**वेति **तु**शब्देन लक्षणविशेषणस्य पृथगभिधानमिदं न स्वमतापेक्षया विप्रतिपत्त्यभावादिति अर्थः प्रकाश्यते । 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढम्' इत्यनेनैव विशेषणेन सर्वं लक्ष्यं संगृह्यते [पृ० २४ B] ।" – **विशाला०** । **प्र**माणवार्तिकालंकारे त्वस्य आशयोऽन्यथा वर्णितः – "परे तु सविकल्पकमपि साक्षात्करणाकारमभ्रान्तमिच्छन्ति तदनुरोधेन द्वयमेतदुच्यते । तथा चाह—**विशेषणं लक्षणे परमतापेक्षम्, सर्वे त्वविकल्पका एव** इति ।" – **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३३५, २५२ । २ **प्र० वा० म० टि०** पृ० १९१ । **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३०३ । तुलना – **प्र० वा० म०** २।२३९।२८० । "**मानसं चे**त्यादि । **च**शब्दः समुच्चयार्थः । अर्थशब्दोऽयं ज्ञेयपर्यायः । रागादीनां स्वं रागादिस्वम् । स्वशब्दोऽयमात्मवाचकः । अर्थश्च रागादिस्वं च, तत्संवित्तिरर्थरागादिस्वसंवित्तिः । संवेद्यते ज्ञायतेऽनयेति संवित्तिः । 'संवित्तिः' प्रत्येकमभिसम्बध्यते । अविकल्पिका सा मानसं प्रत्यक्षम् ।" – **विशाला०** पृ० २४ B । ३ "मानसमपि रूपादिविषयालम्बनमनुभवाकारप्रवृत्तमविकल्पक**मेव** रागद्वेषमोहसुखदुःखादिषु [च ?] इन्द्रियानपेक्षत्वात् स्वसंवेदनं प्रत्यक्षम् ।"— PSV[1]–[2] । "**वृत्तिः** – 'मानसमपि रूपादिविषयमविकल्पकमनुभवाकारप्रवृत्तम्' इति ।"– **प्र० वा० म० टि०** पृ० १९१ । तुलना– **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३०३ । "**मा**नसमपीत्यादि । **रू**पादयश्च ते [पृ० २४ B] **विषया**श्चेति कर्मधारयः ।······ रूपादिविषयाणां विकारः **रू**पादिविषयविकारः, स आलम्बनं यस्य तत् तथोक्तम् । 'समुदायविकारषष्ठ्याश्च बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्च' [पा० म० भा० २।२।२४] इति वचनात् समास उत्तरपदलोपश्च, यथा सुवर्णालंकार इति ।······**अनु**भवाकारप्रवृत्तमिति [पृ० २५ A] ।······**रागादिषु च स्व**संवेदनमिति··· [पृ० २५ B] ननु इन्द्रियज**स्या**पि सर्वस्यैव ज्ञानस्य आश्रयोऽस्ति इति एष्टव्यं 'पञ्च विज्ञानकाया द्वीन्द्रियाश्रिताः' इति **वचना**त्, तत् कस्मादिदमेव मानसमुच्यते इत्याह – **इन्द्रियान**पेक्षत्वादिति । रूपीन्द्रियानपेक्षत्वादित्याशयः । यस्य आश्रयो मन एव न तु रूपि इन्द्रियं तद् 'मानसम्' अभिधीयते [पृ० २६ B] ।" – **विशाला०** । "समुदायविकारषष्ठ्याश्च बहुव्रीहिर्वक्तव्यः उत्तरपदस्य च लोपो वक्तव्यः । केशानां समाहारश्चूडा अस्य केशचूडः । सुवर्णविकारोऽलङ्कारो यस्य सुवर्णालङ्कारः ।" – **पा**तञ्जलमहाभाष्य. २।२।२४ । ४ * * **प्र० वा० म० टि०** पृ० २२९,१९४ । "*अत्रापि मूलाचार्यवचनं विरुध्यते* — **रागद्वेषमोहसुखदुःखादिषु [च] स्वसंवेदनमिन्द्रियानपेक्षत्वाद् मानसं प्रत्यक्षम्** इति ।" – **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३०५ । ५ "[दे' बृशिन्' दु VT=] **तद्वद् यो**गिनामिति । *यथा मनोविज्ञानमविकल्पकं प्रत्यक्षं* **तद्वद्** *योगिनामपि । योगः समाधिः, स येषामस्ति ते योगिनः ।* [*पृ० २६ B*] ***गुरु****निर्देशाव्यतिभिन्नमिति, अत्र विषयेण विषयिनिर्देशः, आगमविकल्पो 'गुरुनिर्देश'शब्देन अभिधीयते । तेन* व्यतिभिन्नम् अपोढमित्यर्थः । अनेन स्पष्टावभासित्वमपि तत्र श्रूयते । अविकल्पकं स्पष्टत्वाव्यभिचारात् । 'मात्र'शब्द व्यारोपितार्थव्यवच्छेदार्थम्, तेन यत् सद्भूतार्थविषयमार्यसत्यदर्शनं तदेव प्रमाणम्, न तु असद्भूतार्थविषयम् 'अशुभा कृत्स्ना भेवी' इत्यादि [पृ० २७ A] ।" — **विशाला०** । तुलना – **प्र० वा०** २।२८१–२८७ । ६ **प्र० वा० म० टि०** १९१ । **तत्त्वार्थरा०** १।१२, पृ० ५४ ।

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

[1]योगिनामप्यागमविकल्पाव्यवकीर्णमर्थमात्रदर्शनं प्रत्यक्षम् । यदि ता[2]वद् रागादिस्वसंवित्तिः प्रत्यक्षं, क[3]ल्पनाज्ञानमपि प्रत्यक्षं स्यात् । सत्यमेतत् ।

क[4]ल्पनापि स्वसंवित्तावेष्टा नार्थे विकल्पनात् ।

तद् विषये रागादिवदेव अप्रत्यक्षमपि स्व[5]संवित्तौ न, इति न दोषः । ए[6]वं तावत् प्रत्यक्षम् ।

भोट. ऽखुल् दङ् कुन् जोंब् योद् शेस् दङ् ॥ जेंस् सु दूपग् जेंस् दूपग् लस् ब्युङ् ॥ ७ ॥
द्रन् दङ् मूङोन् ऽदोद् चेस् ब्य ब ॥ मूङोन् सुम् ल्तर् स्नङ् रब् रिब् बूचस् ॥

रे शिग् ऽखुल् पऽि शेस् प नि स्मिग् र्ग्यु ल सोगस् प ल छु ल सोगस् पर् [7]तोंग् पऽि फियर् मूङोन् सुम् ल्तर् स्नङ् बऽो ॥ कुन् जोंब् तु योद् प नि दोन् गशन् स्रो ऽदोगस् पस् न देऽि ङो बोर् बूतंगस् नस् ऽजुग् पऽि फियर् मूङोन् सुम् ल्तर् स्नङ् बऽो ॥ जेंस् सु दूपग् प दङ् देऽि ऽब्रस् बु ल सोगस् पऽि शेस् प नि स्ङर् ऽमूस् सु म्योङ् म्योङ् ब ल (ऽमूस् सु म्योङ् ब ल PSV[2]) तोंग् पऽि फियर् मूङोन् सुम् म यिन् नो ॥ ऽदिर् यङ् ।

ब्य दङ् बूचस् पर् तोंगस् पऽि फियर् ॥ छद् मऽि ऽब्रस् बु जिद् दु योद् ॥ ८ ॥

ऽदि ल फ्यि रोल् प र्नमस् क्यि बूशिन् दु छद् म लस् ऽब्रस् बु दोन् गशन् दु ऽग्युर् प नि मेद् क्यि । ऽब्रस् बुर् ग्युर् पऽि शेस् प दे जिद् युल् ग्यि र्नम् प चन् दु स्क्येस् प दङ् ब्य ब दङ् बूचस् पर् तोंगस् प दे ल्ते बर् ब्लङ्स् नस् ।

छद् म जिद् दु ऽदोगस् प स्ते ॥ ब्य ब मेद् पऽङ् म यिन् नो ॥

दूपेर् न ऽब्रस् बु र्ग्यु दङ् जेंस् सु मूथुन् पर् स्क्येस् प ल र्ग्युऽि गसुगस् ऽजिन् शेस् बूजोंद् दो ॥ ब्य ब मेद् पर् यङ् म यिन् प दे बूशिन् दु ऽदिर् यङ् यिन् नो ॥

卐 यङ् न रङ् रिग् ऽब्रस् बु यिन् ॥ दे यि ङो बो लस् दोन् ङेस् ॥
युल् ग्यि स्नङ् ब जिद् दे ऽदिऽि । छद् म दे यिस् ऽजल् बर् ब्येद् ॥ ९ ॥ 卐 PS[2].

रङ् रिग् ल यङ् ऽदिर् ऽब्रस् बु ॥ शेस् प नि स्नङ् ब ग्जिस् लस् स्क्येस् ते । रङ् गि स्नङ् ब दङ् युल् ग्यि स्नङ् बऽो ॥ स्नङ् ब ग्जिस् लस् (ल PSV[2]) गङ् रङ् रिग् प दे नि ऽब्रस् बुर् ऽग्युर् रो ॥ चिऽि फियर् शे न ॥ दे यि ङो बो लस् दोन् ङेस् ॥ गङ् गि छे शेस् प [8]दोन् ग्यि युल् दङ् बूचस् पऽि देऽि छे दे दङ् जेंस् सु मूथुन् पऽि रङ् रिग् प ऽदोद् पऽम् मि ऽदोद् पऽि दोन् तोंगस् पर् ब्येद् दो ॥ गङ् गि छे फ्यि रोल् ग्यि दोन् ऽबऽ शिग् ग्शल् बर् ब्येद् प देऽि छे नि । युल् ग्यि स्नङ् ब ऽदि जिद् ऽदि ॥ छद् म देऽि छे नि शेस् प रङ् रिग् प यिन् यङ् ल्तोस् प मेद् पऽि रङ् गि ङो बोऽि दोन् ग्यिस् स्नङ् ब ऽदि छद् मऽो । गङ् गि फियर् शे न (गङ् गि फियर् PSV[2]) । दोन् दे यिस् ऽजल् बर् ब्येद् ॥ जि ल्त जि ल्तर् दोन् ग्यि र्नम् प दूकर् [पृ० १६A] पो दङ् दूकर् पो म यिन् प ल सोगस् प जिद् शेस् प ल स्नङ् ब न दे दङ् देऽि ङो बो युल् दङ् बूचस् पर् ऽजल् बर् ब्येद् दे । दे ल्त र्नम् प दु म रिग् पऽि शेस् प जे बर् ब्लङ्स् प दे ल्त दे ल्तर् छद् म दङ् ग्शल् ब्य जिद् दु जे बर् ऽदोगस् प यिन् ते । छोस् थमूस् चद् नि ब्य ब दङ् ब्रल् ब यिन् पस् नऽो । दे जिद् (ऽदि जिद् PSV[2]) स्म्रस् प ॥

---

१ प्र० वा० म० टि० पृ० २०३ । २ 'तावत्' PSV[2] मध्ये नास्ति । ३ "कल्पनाज्ञानमपीति । अयमस्यार्थः – यत् स्वसंवेद्यं तत् स्ववेदनं प्रति प्रत्यक्षम्, रागादिज्ञानवत्, कल्पनाज्ञानमपि तथा इति स्वभावहेतुः । सत्यमेतदित्यादिना इष्टसाधनं दर्शयति । अयमाशयः – यस्मिन् विषये यद् ज्ञानं शब्दसंकेतग्राहि तत् तत्र शब्दद्वारेण विषयग्रहणात् सविकल्पकं स्यात्, स्वरूपं तु अशक्यसंकेतम्, पूर्वोक्तवत् । तस्मात् तस्मिन् अधिगम्ये सर्वं ज्ञानं प्रत्यक्षमेवेति ।" – **विशाला०** पृ० २७ A । ४ * * **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३३१ । **प्र० वा० म०** २।२८७, पृ० २०४ । **न्या० र०** पृ० १७५ । **मी० श्लो० वा० काशिका.** पृ० २५८ १।१।४ । ५ स्वसंवित्तिरिति न दोषः – PSV[1] । ६ "[दे ल्तर् रे शिग् मूङोन् सुम् शेस् प ल VT. =] एवं तावत् प्रत्यक्षमित्यत्र 'तावत्'शब्दः क्रमे, प्रत्यक्षमुक्त्वा तदाभासाभिधानमिति क्रमः ।" – **विशाला०** पृ० २७A-B । ७ "बूतंगस् नस् ऽजुग् पऽि फियर् रो" – PSV[2] । ८ "युल् दङ् बूचस् प दोन् यिन् प देऽि छे ।" – PSV[2] ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गङ् छे नेम् प [स्नङ् ब PSV[2]] दे ग्शल् ब्य ॥ छुद् म दङ् देऽि ऽब्रस् बु नि ॥
ऽजिन् नेम् रिग् पऽि दे यि" फियर् ॥ दे ग्सुम् थ दद् दु म• ब्यस् ॥ १० ॥

सं. *[1]भ्रान्तिसंवृतिसज्ज्ञानमनुमानानुमानिकम् ॥ ७ ॥
स्मार्ताभिला[2]षिकं चेति [3]प्रत्यक्षाभं सतैमिरम् ॥

[4]तत्र भ्रान्तिज्ञानं मृगतृष्णिकादिषु तोयादिकल्पनाप्रवृत्तत्वात् प्रत्यक्षाभासम्। संवृतिसत्सु अर्थान्तराध्यारोपात् तद्रूपकल्पनाप्रवृत्तत्वात्। अनुमानतत्फलादिज्ञानं पूर्वानुभूतकल्पनयेति न प्रत्यक्षम्*। [5]अत्र च

* [6]सव्यापारप्रतीतत्वात् प्रमाणं फलमेव सत् * ॥ ८ ॥

[7]अत्र बाह्यानामिव प्रमाणात् फलमर्थान्तरभूतं नास्ति। तस्यैव फलभूतस्य ज्ञानस्य विषयाकारतयोत्पत्त्या [8]सव्यापार-

---

१ * * **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३३२। दृश्यतां टिप्पृ० ४० पं० १७-३२। तुलना - **प्र० वा०** २।२८८-३००। २ °**लापिकं** - **प्र० वा० म०** पृ० २०५, **प्र० वा० म० टि०** पृ० २०५, "व्र्जोद् प लस् ब्युङ् [=आभिलापिकं]" - **प्र० वा० दे**वेन्द्रबुद्धिवृत्ति.भोट. पृ० २४७ A। ३ "तदाभासं" - **नयचक्रवृत्ति.** पृ० ६४ पं० १०। ४ "भ्रान्तिज्ञानं तावत् मृगतृष्णिकादिषु तोयादिकल्पनया प्रवृत्तत्वात् प्रत्यक्षाभासम्। संवृतिसत्सु अर्थान्तराध्यारोपात् तद्रूपकल्पनया प्रवृत्तत्वात् प्रत्यक्षाभासम्। अनुमानतत्फलादिज्ञानं पूर्वानुभूतकल्पनया न प्रत्यक्षम्।" - PSV[1,2] "अनेन चतुर्विधः प्रत्यक्षाभास उक्तः। **तत्र भ्रान्तिज्ञान**मित्यनेन अर्थान्तरकल्पनाज्ञानं तावदुक्तम्।······**संवृ**तिसत्सु इत्यनेन संकेताश्रयकल्पनाप्रवृत्तं द्वितीयम्। संवृतिसत्स्वपि यज्ज्ञानं तत् प्रत्यक्षाभासमित्यस्य किं कारणमित्याह - **अर्थान्तरा**ध्यारोपादिति।······सोऽपि कथं ज्ञायत इत्याह - **तद्रूप**कल्पनाप्रवृत्तत्वादिति। [पृ० २७ B]······"अनुमानतत्फलादिज्ञानमिति। अनुमीयतेऽनेनेति अनुमानं लिङ्गम्। तत्र 'स 'एवायं धूमः' इति सबन्धकालानुभूतार्थकल्पनाप्रवृत्तं ज्ञानम्। तत्फले लिङ्गिज्ञानेऽपि पूर्वानुभूतकल्पना अस्ति, 'स एवाग्निः' इत्यनुमानात्। स्मरणेऽपि पूर्वानुभूताकारकल्पना [पृ० २८ A] 'एवं मया [म्योङ् ङो VT.=] अनुभूतः' इति। आभिलाषिकमपि पूर्वानुभूतकल्पनानतिक्रान्तम्, तदभावेऽभिलाषाभावात्। आदिशब्देन संशयज्ञानग्रहणम्। तत्रापि 'किं स एव आहोस्विदन्यः' इत्येतादृशाकारा पूर्वानुभूतकल्पना जायते इति इदं पूर्वानुभूतार्थ कल्पनाज्ञानं तृतीयम्। **सतैमिर**मित्यनेन इन्द्रियोपघातजं तैमिरादिज्ञानं प्रत्यक्षाभासं चतुर्थमुक्तमिति [पृ० २८ B]।" - **विशाला०**। ५ "**अत्र चे**ति अस्मन्मते। **स**व्यापारप्रतीतत्वादिति व्यापारेण सह प्रतीतत्वादित्यर्थः। इदं प्रमाणत्वोपचारस्य कारणम्। **प्र**माणं **फ**लमेव **स**दिति। प्रमाणस्य फलम् अधिगतिः, तच्च स्वयमेव तदात्मकमिति। तस्मादभेदः।" - **विशाला०** पृ० ३०B। ६ * * **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३४९। **सन्मतिवृत्ति.** पृ० ५२५। **न्याय**मञ्जरी. पृ० ६६। "**स**व्यापारप्रतीतत्वात् **प्र**माणं **फ**लमेव **स**त्। **स्व**संवित्तिः **फ**लं **चा**त्र **तद्रू**पो **ह्य**र्थनिश्चयः। **वि**षयाभासतैवास्य **प्र**माणं **ते**न **मी**यते ॥ **य**दाभासं **प्र**मेयं **त**त् **प्र**माणफलते **पु**नः। **ग्रा**ह्यग्राहक(ग्राहकाकार ?)संवित्ती **त्र**यं **ना**तः **पृ**थक्कृतम्।" - **प्र० वा० म० टि०** पृ० २२१। तुलना - **प्र० वा०** २।३०१-३१९। **तत्त्वसं०** ॥१३४४॥ **न्याय**बिन्दु. १।१८,१९। **सां**ख्यकारिकायुक्तिदीपिकावृत्ति पृ० ४०। "उभयत्र तदेव ज्ञानं फलम्, अधिगमरूपत्वात्। सव्यापारवत्ख्यातेः प्रमाणत्वम्।" - **न्याय**प्रवेशक. पृ० ७। ७ "**अत्र बाह्यानामिव प्रमाणात् फलमर्थान्तरं नास्ती**ति। अत्रापि तादृश एव दोषो न भवति। **तस्यैवे**त्यादिना अयमर्थः प्रकाश्यते [पृ० ३०B]······। ज्ञानस्याधिगतिरूपत्वात् साध्यत्वप्रतीतिरिति फलत्वमुपचर्यते। तस्यैव च विषयाकारपरिग्रहणकर्मणा व्यापारेण च सह प्रतीतिरिति **प्रमाणत्वमुपचर्यते** व्यपदिश्यते इत्यर्थः [३१ A]" - **विशाला०**। ८ इदं **दिङ्**नागवचनं **देवेन्द्रबुद्धिना** **प्र**माणवार्तिकवृत्तौ उद्धृतम्। तस्य च "ऽब्रस् बुर् ग्युर् पऽि शेस् प दे जिद् क्यि युल् ग्यि नेम् पर्. स्क्येस् पऽि स्गो नस् [ब्य ब ?] तोंग् प दङ् ब्चस् प ल ब्र्तेन् नस् छुद् म• जिद् दु जे बद् ब्तग्स् प यिन् नो" इत्येवं **भोट**भाषानुवाद उपलभ्यते। तदनुसारेणेत्थमस्माभिः संस्कृतेऽनूदितम्। PSV[1,2] अनुसारेण '**व्या**पारेण **च** **सह** **प्र**तीतिः **ता**मुपादाय प्रमाणत्वमुपचर्यते' इति '**व्यापारेण च सह प्रतीततामुपादाय**' इति वा संस्कृतं भवेदिति ध्येयम्। तुलना - "तस्मिन्नधिगमरूपे फले **सव्यापारप्रतीततामुपादाय** प्रमाणोपचारः।" - **तत्त्वार्थरा०** पृ० ५६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतीततामुपादाय *[1]प्रमाणत्वमुपचर्यते, न[2] व्यापाराभावेऽपि* । यथा[3] फलं [4]हेत्वनुरूपमुत्पद्यमानं हेतुरूपं गृह्णाति इत्युच्यते, न व्यापाराभावेऽपि, एवमत्रापि ।

स्व[5]संवित्तिः फलं वात्र तद्रूपो ह्यर्थनिश्चयः* ।
[6]विषयाभासतैवास्य प्रमाणं तेन मीयते ॥९॥

स्व[7]*संवित्तिः फलं चात्र । [8]द्वयाभासं हि ज्ञानमुत्पद्यते—स्वाभासं विषयाभासं च । तस्योभयाभासस्य [9]यत् स्वसंवेदनं तत् फलम्* । कस्मात्? **[10]तद्रूपो ह्यर्थनिश्चयः** । [11]यदा हि सविषयं ज्ञानमर्थः तदा [12]स्वसंवित्त्यनुरूप इष्टोऽनिष्टो वार्थः प्रतीयते । [13]यदा

---

१ * * अयं पाठः PS¹-². PSV¹-². मध्ये "छ्द् म' चिद् दु ऽदोग्स् प' रते ॥ ब्य' ब' मेद् पऽङ् म' यिन् नो ॥" इत्येवं श्लोकार्धरूपेण अनूदितोऽस्ति तथापि अनुवादकैः **वृत्त्यंश** एव भ्रान्त्या श्लोकार्धरूपेण अनूदित इति प्रतिभाति । दृश्यतां **टिपृ०** १०७ टि० ६ । **२** तुलना—"सव्यापारमिवाभाति व्यापारेण स्वकर्मणि । तद्वशात् तद्व्यवस्थाना**दकारकमपि स्वयम्** ॥ २।३०८ ॥ यथा फलस्य हेतूनां सदृशात्मतयोद्भवात् । हेतुरूपग्रहो लोकेऽक्रियावत्त्वेऽपि दृश्यते ॥ २।३०९ ॥" इति **प्रमाणवार्तिके** । **३** "यथार्थव्यापाराभावेऽपि कथं तद्वत्त्वाभासो भवतीति चेत्, आह—**यथे**त्यादि ।"—**विशाला०** पृ० ३1B । **४** तुलना—"कार्यं ह्यनेकहेतुत्वेऽप्यनुकुर्वदुदेति यत् । तत् तेनार्पिततद्रूपं गृहीतमिति चोच्यते ॥"—**प्र० वा०** २।२४८ । **५** * * "यङ् न' रङ् रिग् ऽब्रस् बु यिन्........."—PS¹-² PSV² । **टिपृ०** १०७ टि० ६ । **प्र० वा० म० टि०** पृ० २१५,२२१ । **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३४९ । **न्या० र०** पृ० १५८ । **मी० श्लो० वा० काशिका.** पृ० २३७ । संस्कृतग्रन्थेषु सर्वत्र **'तद्रूपो ह्यर्थनिश्चयः'** इति पाठः । यद्यपि PS¹-², PSV¹-², VT. अनुसारेण **शाक्यमति**विरचितायाः **प्रमाण**वार्तिकटीकायां "दोन् ङेस् प' नि' दे' ङेस् यिन्" [पृ. २६७B] इति **भोट**भाषानुवादानुसारेण चात्र 'तद्रू**पेणार्थ**निश्चयः' इति पाठः प्रतिभाति तथापि **तद्रूपो ह्यर्थनिश्चयः** इति पाठ एव भोटभाषायां शैल्यन्तरेण तथानूदित इति ध्येयम् । **६ प्र० वा० म० टि०** पृ० २२१ । **"विषयाकारतैवास्य......"—प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३९३ । **"विषयाकार एवास्य..."—मी० श्लो० वा० काशिका.** पृ० २३७, **न्या० र०** पृ० १५८ । **७** अत्र PSV¹. अनुसारेण 'स्वसंवित्तिः फलं **चात्र**' इति पाठः । केषुचिच्च संस्कृतग्रन्थेष्वपि **'चात्र'** इति पाठ उपलभ्यते इति ध्येयम् । **"स्व**संवित्तिः **फलं वा**त्रेति । पूर्वं विषयसंवित्तिः फलमुक्तम् । तस्माद् 'वा'शब्दो विकल्पार्थः । अत्रेति पूर्वोक्तप्रत्यक्षे । **स्वाभासं विषयाभासं** चेति......। **तस्ये**त्यादि [पृ० ३२ A] । उभयाभासं विज्ञानमनुभूयते । तस्य **यत् स्वसंवेदनं** स्वानुभवः **तत फलं** भवति । **कस्मा**दिति, कया युक्त्या ?...स्वसंवित्तेः फलत्वमनुपपन्नमित्याशयेन पृच्छति [पृ० ३२ B]"—**विशाला०** । **८** * * **तत्त्वार्थरा०** पृ० ५६ पं० १०–११ । तुलना—**प्र० वा० म०** पृ० २२८ । **प्र० वा०** २।३३७ । **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३४९ । **९ "संवेदनं"**—तत्त्वार्थरा० पृ० ५६ । **प्र० वा०** २।३३७ । **"स्वसंवेदनं"**—प्र० वा० म० पृ० २२८ । प्र० वार्तिकालं० पृ० ३४९ । **१०** टिपृ० १०८ टि० ५ । "**तद्रू**पो ह्यर्थनिश्चय इति हेतुः । "**यदा ही**त्यादि अस्यैव विवरणम् । **हि**शब्दो यस्मादर्थे । यस्माद् यदा सविषयं ज्ञानमर्थः तदा स्वसंवित्त्यनुरूपोऽर्थ इष्टोऽनिष्टो वा प्रतिपत्त्रा प्रतीयते तस्मात् स्वसंवित्तिः फलं युज्यते । **स**विषयमिति विषयेण सहितं सविषयम् [पृ० ३२ B] । **'स्वसंवित्त्यनुरूप इष्टोऽनिष्टो वार्थः प्रतीयते'** इत्येतावन्मात्राभिधाने स्वसंवेदनप्रत्यक्षमेवाधिकृत्येयं फलव्यवस्थेति कस्यचिदाशङ्का स्यात् । इदं तु सर्वस्य प्रमाणस्य फलमिति । तस्मात् आशङ्कानिवृत्त्यर्थं **'यदा हि सविषयं ज्ञानमर्थः'** इत्युक्तम् । अयं च **'अर्थ'**शब्दः प्रमेयवाची [पृ० ३३ A] ।"—**विशाला०** । **११** तुलना—"यदा सविषयं ज्ञानं ज्ञानांशेऽर्थव्यवस्थितेः । तदा य आत्मानुभवः स एवार्थविनिश्चयः ॥ यदीष्टाकार आत्मा स्यादन्यथा वानुभूयते इष्टोऽनिष्टोऽपि वा तेन भवत्यर्थः प्रवेदितः ॥"—**प्र० वा०** २।३३९–३४० । **१२** एतदस्माभिः VT. अनुसारेणोपन्यस्तम्, दृश्यतां टिपृ० १०८ टि० १० । **शाक्यमति**ना विरचितायां **प्रमाण**वार्तिकटीकायामपि सङ्गृहीतमिदं **दिङ्नाग**स्य वचनम् । तस्य च "देऽि छे' रङ् रिग् प' दङ् जॅस् सु मृथुन् प'" इति **भोट**भाषानुवाद उपलभ्यते । तदनुसारेणापि '**त**दा स्वसंवित्त्यनुरूपः' इति पाठ एव समीचीनः । **१३** "यदा तु बाह्य एवार्थः प्रमेयः"—**प्र० वा० म० टि०** पृ० २२४,२३६ । "अत्रापि फले विषयाकारतैव प्रमाणम् । यदाह **आचार्यः**—**'यदा तु बाह्य एवार्थः प्रमेयः तदा विषयाकारतैवास्य प्रमाणम्, तथा(दा) हि ज्ञानं(न)स्वसंवेद्यमपि स्वरूपमपेक्ष्य अर्थाभासतैवास्य प्रमाणम् । यस्मात् सोऽर्थस्तेन मीयते । यथा ह्यर्थस्याकारः शुभादित्वेन प्रतिभाति निविशते तद्रूपः स विषयः प्रतीयते** यावदा**कारभेदेन प्रमाणप्रमेयत्वमुपचर्यते** ।"—**प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३९३ । **"यदा त्वित्यादि"—विशाला०** पृ० ३३ B । तुलना—**प्र० वा०** २।३४१ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तु बाह्य एवार्थः प्रमेयः तदा [1]**विषयाभासतैवास्य प्रमाणम्** । तदा हि ज्ञानस्वसंवेद्यमपि स्वरूपमनपेक्ष्य अर्थाभासतैवास्य प्रमाणम् । यस्मात् **सोऽर्थस्तेन मीयते** । [2]यथा यथा हि अर्थस्याकारः [4]शुभ्राशुभ्रादित्वेन ज्ञाने निविशते [5]तत्तद्रूपः स विषयः प्रमीयते । [6]तथा ज्ञानस्य संविर्त्ति नानाकारामुपादाय तथा तथा प्रमाणप्रमेयत्वमुपचर्यते । [7]निर्व्यापाराः [हि ?] सर्वधर्मा इति । [8]आह च—

---

१ दृश्यतां टिप्प० १०८ टि० ६ । "बाह्ये प्रमेये स्वसंवित्तिफलस्थितावपि **विषयाभासतैव** ज्ञानस्य प्रमाणमिष्यते, न तु विज्ञप्तिमात्रतावद् ग्राहकाकारः ।......**तदा हि ज्ञानस्वसंवेद्यमपी**त्यादि । **ज्ञानस्य स्व**संवेद्यमिति विग्रहः । **यस्मा**दित्यादिना- ......कारणमाह **मीयते** इति निश्चीयते । **यथा यथे**त्यादि ज्ञानस्य ज्ञेयाकारवशेन बाह्योऽर्थो निश्चीयते इत्यर्थः ।......यद्यपि '**सो**ऽर्थस्तेन **मीय**ते' इत्यभिहितं तथापि 'तत्साधनया स्वसंवित्त्या' इति अवगन्तव्यम् । तथा हि – यथा यथा अर्थाकारः शुभाशुभादिरूपेण ज्ञाने निविशते तथा तथा स्वसंवित्तिः प्रथते । यथा यथा स दृश्यते तथा तथा शुभाशुभादिः रूपादिरर्थो विनिश्चीयते [पृ० ३३ B] ।...तद्वशाद् विषयनिश्चयो भवति, नान्यथा, तस्माद् विषयाभासता प्रमाणम् ["पृ० ३४ A] ।" – **विशाला०** । तुलना – "तस्मात् प्रमेये बाह्येऽपि युक्तं स्वानुभवः फलम् । यतः स्वभावोऽस्य यथा तथैवार्थविनिश्चयः ॥ तदर्थाभासतैवास्य प्रमाणं, न तु सत्यपि । ग्राहकात्माऽपरार्थत्वाद् बाह्येष्वर्थेष्वपेक्ष्यते ॥ यस्माद् यथा निविष्टोऽसावर्थात्मा प्रत्यये तथा । निश्चीयते निविष्टोऽसावेवमित्यात्मसंविदः ॥ इत्यर्थसंवित् सैवेष्टा यतोऽर्थात्मा न दृश्यते । तस्माद् बुद्धिनिवेश्यार्थः साधनं तस्य सा क्रिया ॥ यथा निविशते योऽर्थः यतः सा प्रथते तथा । अर्थस्थितेस्तदात्मत्वात् स्वविदप्यर्थविद् मता ॥" – **प्र० वा०** २।३४६–३५० । २ "रङ् ङो बो ल मि ब्लतोस् पऽि" – PSV[2] । ३ "यथाकारमनादृत्य प्रामाण्यं च प्रकल्प्यते । अर्थक्रियाऽविसंवादात् **तद्रूपो ह्यर्थनिश्चयः** ॥ १३२८ ॥ इत्यादि गदितं सर्वं कथं न व्याहतं भवेत् । वासनापाकहेतूत्थस्तस्मात् संवादसम्भवः ॥ १३२९ ॥ नैव ह्यर्थक्रियाऽविसंवादित्वमात्रेणाकारमनपेक्ष्य प्रामाण्यं कल्पनीयम्, विषयाकारस्याप्रामाण्यप्रसङ्गात् । **तद्रूप** इति ज्ञानस्याभासरूपः । 'आदि'शब्देन **यथा यथा ह्यर्थस्याकारः शुभ्रादित्वेन सन्निविशते तद्रूपः स विषयः प्रमीयते** इत्यादिक**माचार्यीयं** वचनं विरुध्यत इति दर्शयति । अर्थक्रियासंवादस्तु पूर्वार्थानुभववासनापरिपाकादेव प्रमाणान्तराद् भवतीत्यवसेयम् ।" – **तत्त्वसं० पं०** पृ० ३९५ । ४ "शुभ्राशुभ्रादित्वेन" – PSV[1, 2] । "शुभ्रादित्वेन" – **तत्त्वसं० पं०** पृ० ३९५ । "शुभादित्वेन" – **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३९३ । [स्दुग् प मि स्दुग् प ल सोग्स् प VT.=] शुभाशुभादि° – **विशाला०** पृ० ३३ B । ५ "**तत्तद्रूपः**" – PSV[1, 2] । "**तद्रूपः**" – तत्त्वसं० पं० पृ० ३९५, **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३९३ । ६ "अभिन्नात्मकस्य ज्ञानस्य ग्राहकाकारादिविभागः कथमिति चेत्,...आह – [दे ल्तर् शेस् प ल सोग्स् प स्ते VT.=] **तथे**त्यादि । अयमस्य संक्षिप्तोऽर्थः—तत्त्वतस्तद्विभागोऽसन्नेव ।...यथादर्शनं प्रमाणप्रमेयव्यवस्थेयं क्रियते, न तु यथावत् तत्त्वतः । [पृ० ३४ A]... । **तथे**ति यथोक्तोभयाभासस्य ज्ञानस्येति । **ज्ञानस्य संवित्ति**मिति कर्मभूतस्य ज्ञानस्य संवित्तिं दर्शयति । किम्भूताम् ? **नानाकाराम्** । नाना आकारो यस्याः सा तथोक्ता ।...**उपादाये**ति तां प्रमाणभूतां गृहीत्वा **तथा तथा** इत्यादौ अविकल्पके तावद् ग्राहकाकारः कल्पनापोढः प्रत्यक्षप्रमाणम्, स्पष्टावभासि ग्राह्याकारस्वलक्षणं प्रमेयम् । लिङ्गजेऽपि ग्राहकाकारोऽनुमानप्रमाणम् । ...अस्पष्टाभं ग्राह्याकारसामान्यलक्षणं प्रमेयमिति । **उपचर्यते** इति व्यपदिश्यते [पृ० ३४B] ।"—**विशाला०** । ७ "अत एवोक्तम् – **निर्व्यापाराः सर्वधर्मा इति** ।" – **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३६६ । "**निर्व्यापाराः** [हि ?] **सर्वधर्मा** इति, अनेन तस्या ज्ञानसंवित्तेः भ्रान्तत्वं प्रकाश्यते ।" – **विशाला०** पृ० ३४ B । "न, व्यवस्थाश्रयत्वेन साध्यसाधनसंस्थितिः । निराकारे तु विज्ञाने सा संस्था न हि युज्यते [तत्त्वसं० ॥ १३४६ ॥], नेत्यादिना उत्तरमाह । नीलस्येदं संवेदनं न पीतस्येति विषयाधिगतिव्यवस्थाया अर्थसारूप्यमेव निबन्धनम्, नान्यत्, इति व्यवस्थाप्यव्यवस्थापकभावेन साध्यसाधनव्यवस्था नोत्पाद्योत्पादकभावेन । यस्मान्न पारमार्थिकः कर्तृकरणादिभावोऽस्ति क्षणिकत्वेन **निर्व्यापारत्वात् सर्वधर्माणाम्** । ज्ञानं हि विषयाकारमुत्पद्यमानं विषयं परिच्छिन्ददिव सव्यापारमिवाभाति ।......तस्मात् साकारमेव ज्ञानं प्रमाणं न निराकारम् ।" – **तत्त्वसं० पं०** पृ० ३९९ । ८ "[स्म्रस् प यङ्...VT.=] **आह चे**त्यादिना प्रमेयादिव्यवस्थां तां दर्शयति । य आभासोऽस्येति विग्रहः । स्वांशप्रमाणत्वसाधनात् अत्र विषयाभासो ग्राह्यः । **प्रमेयं तदि**ति स विषयाभासः प्रमेयः । **प्रमाणफलते पुनः ग्राहकाकारसंवित्ती** [पृ० ३५ A] इति । ग्राहकाकारः प्रमाणता, संवित्तिः फलता ।...**त्रयं नातः पृथक्कृत**मिति [पृ० ३५ B] ।" – **विशाला०** । दृश्यतां टिप्प० १०३ टि० ९ । '**तदेव** (एतदेव PSV[2]) **कथयति**'—PSV ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

*[1]यदाभासं प्रमेयं तत् प्रमाणफलते पुनः ।
ग्राहकाकारसंवित्ती त्रयं नातः पृथक्कृतम् ॥ १० ॥*

चि· स्ते· शेस्· प· छुल्· ग्निस्· सो· शेस्· जि· ल्तर्· तोंग्स्· पर्· व्य· शे· न ।
युल्· शेस्· प· दङ्· देऽि· शेस्· पऽो ॥ द्ब्ये· ब्रस्· ब्लो· यि· छुल्· ग्निस्· नि ॥

युल्· नि· ग्सुग्स्· ल· सोग्स्· प· स्ते । गङ्· गिस्· (गि· PSV[2]) दे· शेस्· प· नि· दोन्· दङ्· रङ्· स्नङ्· बऽो ॥ युल्· शेस्· प· नि· गङ्· युल्· दङ्· जैंस्· सु· मथुन्· पऽि· शेस्· प· स्ते । शेस्· प· स्ते· (दे· PSV[2]) स्नङ्· ब· दङ्· रङ· स्नङ् बऽो ॥ दे· ल्तर्· म· यिन्· ते· गल्· ते· ग्सुग्स्· जिद्· (ग्शन्· दु· न· गल्· ते· युल्· ग्यि· ङो· बो· ञिद्· PSV[2]) रङ् शेस्· पऽम्· रङ्· गि· ङो· बोर्· ऽग्युर्· प· नि· शेस्· प· [शेस्· प· PSV[2]] यङ् युल्· शेस्· प· दङ्· ख्यद्· पर्· मेद्· पर् ऽग्युर्· रो ॥ फ्यिस्· जैंस्· ल· स्क्ये· बऽि· शेस्· प· ल· यङ्· स्ङर्· रिङ्· दु· ऽदस्· पऽि· युल्· स्नङ्· बर्· मि· ऽग्युर्· ते । गङ्· गि· फियर्· शे· न (गङ्· गि· फियर्· PSV[2]) । दे· युल्· म· यिन्· पऽि· फ्यिर्· रो ॥ देऽि· फ्यिर्· शेस्· प· ल· छुल्· ग्निस्· योद्· पर्· ग्रुब्· बो ॥

卐 दुस्· फ्यिस्· द्रन्· प· लस्· कयङ्· स्ते ॥ ऽदिर्· म· म्योङ्· ब· मेद्· फियर्· रो ॥ ११ ॥ 卐 PS[1]

दुस्· फ्यिस्· द्रन्· प· लस्· कयङ्· स्ते ॥ छुल्· ग्निस्· ञिद्· दो· शेस्· ऽब्रेल्· तो ॥ गङ्· गि· फ्यिर्· छुल्· ग्शन्· दु· (युल्· ब्शिन्· दु· PSV[2]) शेस्· प· ल· यङ्· दुस्· फियस्· म्योङ्· बऽि· द्रन्· प· स्क्ये· स्ते । देऽि· फियर्· यङ्· शेस् पऽि· छुल्· ग्निस्· ञिद्· दु· ग्रुब्· प· यिन्· नो ॥ रङ्· रिग्· प· ञिद्· दु· यङ्· ङो ॥ चिऽि· फ्यिर्· शे· न । ऽदिर्· म· म्योङ्· ब· मेद्· फियर्· रो ॥ ञमुस्· सु· म· म्योङ्· बर्· दोन्· मुथोङ्· बऽि· द्रन्· प· नि· मेद् (दोन्· द्रन्· प· नि· मुथोङ· ब· मेद्· दे PSV[2]) । ग्सुग्स्· ल· सोग्स्· पऽि· द्रन्· प· व्शिन्· नो ।

[2]अथ द्विरूपं ज्ञानमिति कथं प्रतीयते ?

[3]† विषयज्ञानतज्ज्ञानविशेषात्तु द्विरूपता । †

[4]विषये हि रूपादौ यद् ज्ञानं तदर्थस्वाभासम् । विषयज्ञाने तु यद् ज्ञानं तद् विषयानुरूपज्ञानाभासं स्वाभासं च । अन्यथा यदि [5]विषयरूपमेव स्वज्ञानं[6] स्यात् स्वरूपं वा, ज्ञानज्ञानमपि विषयज्ञानाविशिष्टं स्यात् । न[7] चोत्तरोत्तराणि ज्ञानानि

---

१ * * प्र० वा० म० टि० पृ० २२१, २२९ । "······ग्राहकाकारसंवित्त्योः······"–मी० श्लो० वा० भट्टोम्बेकवृत्ति. पृ० १३९, मी० श्लो० वा० काशिका. पृ० २३८, न्या० र० पृ० १५९, तत्त्वालोकवृत्ति. । "ग्राहक-विषयाभास-संवित्तिशक्तित्रयाकारभेदात् प्रमाण-प्रमेय-फलकल्पनाभेद इति"–तत्त्वार्थरा० पृ० ५६ । २ "अथ द्विरूपमित्यादि ।"–विशाला० पृ० ३५ B । तुलना–प्र० वा० २।३९८ । "विषयाकारता प्रकृता साधयितुम्, 'कथं पुनर्ज्ञायते द्विरूपं विज्ञानम्' इति प्रक्रमात् । तत्रापि द्व्याभासं हि विज्ञानं स्वाभासं विषयाभासं च । तत्र विषयतायामेव महत्यास्था ।"–प्र० वार्तिकालं० पृ० ४२५, ४०३ । ३ † † प्र० वा० म० टि० पृ० २३४, २३२, २४४ । प्र० वार्तिकालं० पृ० ४२५ । "विषयज्ञानतज्ज्ञानविशेषात्त्वित्यादि"–विशाला० पृ० ३५ B । "घटविज्ञान-तज्ज्ञानविशेषात्तु······।"–मी० श्लो० वा० भट्टोम्बेकवृत्ति. पृ० २६७, न्या० र० पृ० २९८ । "विषयज्ञानतज्ज्ञानभेदाद् बुद्धेर्द्विरूपता"–PS. PSV. । ४ * * "विषये रूपादौ यद् ज्ञानं तदर्थस्वाभासम्, विषयज्ञाने तु यद् ज्ञानं तदर्थानुरूपज्ञानाभासं स्वाभासं च । अन्यथा यदि विषयज्ञानमर्थाकारमेव स्यात् स्वाकारमेव वा विषयज्ञानज्ञानमपि तदविशिष्टं स्यात् ।"–प्र० वार्तिकालं० पृ० ४०३ । "विषये हि इति । हिशब्दोऽवधारणार्थः भिन्नक्रमश्च । तदर्थस्वाभासमिति इदं प्रमाणफलम् । तत्र अर्थाभासं विषयाकारत्वात्, स्वाभासमनुभवाकारत्वात् । विषयानुरूपज्ञानाभासमिति ।······ स्वाभासमिति ।···अन्यथेति द्विरूपत्वाभावे यदि विषयानुरूपमेव विषयज्ञानं स्यादिति नानुभवरूपमपि [पृ० ३६ A]··· स्वरूपं वेति अनुभवाकारमेव वा, न विषयाकारमपि । ज्ञानज्ञानमपि विषयज्ञानाविशिष्टं स्यादिति । ज्ञानज्ञानं विषयज्ञानालम्बकं ज्ञानम्, तद् विषयज्ञानादविशिष्टं, विशिष्टं न स्यात् [पृ० ३६ ।"–विशाला० । तुलना प्र० वा० २।३६८–४२२ । ५ "युल्· ग्यि· ङो· बो· ञिद्"–PSV[1] । ६ PSV[1,2] अनुसारेण 'स्वज्ञानम्' इत्यस्माभिरत्र लिखितम् । 'विषयज्ञानम्' इति पाठश्चेत् तत्स्थाने स्यात् तदा सम्यग् भाति । ७ "यदाहाचार्यः–न चोत्तरोत्तराणि ज्ञानानि पूर्वपूर्वज्ञानविषयाभासानि स्युः, तस्याविषयत्वात् ।"–प्र० वार्तिकालं० पृ० ४०९। तुलना–"अन्यथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व[1]विप्रकृष्टविषयाभासानि स्युः, कस्मात् ? तस्याविषयत्वात् । [2]तस्माद् ज्ञानस्य द्विरूपता सिद्धा ।

*[3]**स्मृतेरुत्तरकालं च न ह्यसावविभाविते ॥ ११ ॥***

स्मृतेरुत्तरकालं च 'द्विरूपता' इति सम्बन्धः । [4]यस्माच्चानुभवोत्तरकालं विषये इव ज्ञानेऽपि स्मृतिरुत्पद्यते तस्मादस्ति द्विरूपता ज्ञानस्य। [5]स्वसंवेद्यता च । [6]कस्मात्? **न ह्यसावविभाविते** । न ह्यननुभूतेऽर्थे स्मृतिर्दृश्यते, रूपादिस्मृतिवत् ।

卐 शेस् प ग्शन् ग्यिस् ञमुस् म्योङ् न ॥ थुग् मेद् दे लऽङ् द्रन् प स्ते ॥
दे ब्शिन् युल् ग्शन् ल ऽफो ब ॥ मेद् ऽग्युर् दे यङ् [12]मुथोङ् ब जिद् ॥१२ ॥ 卐 PS[1]

चि स्ते गसुग्स् ल सोग्स् प ब्शिन् दु यङ् शेस् प ग्शन् ग्यिस् म्योङ् ब यिन् नो शे न । दे यङ् रिग्स् प म यिन् ते । गङ् गि फियिर् । शेस् प ग्शन् ग्यिस् ञमुस् म्योङ् न ॥ थुग् मेद् । थुग् मेद् प शेस् ब्यं ब नि । शेस् प ग्शन् ग्यिस् म्योङ् ब्यर् ब्येद् नऽो ॥ जि ल्तर् शे न । दे लऽङ् द्रन् प स्ते । शेस् प ग्शन् ग्यिस् शेस् प दे ञमुस् सु म्योङ् बर् ब्येद् न । दे ल यङ् फियिस् क्यि द्रन् प मुथोङ् दुगोस् पस् सो ॥ देस् न दे ल यङ् शेस् प ग्शन् ग्यिस् ञमुस् सु म्योङ् ब यिन् न नि थुग् मेद् पर् ऽग्युर् रो ॥ दे ब्शिन् युल् ग्शन् ल ऽफो ब ॥ मेद् ऽग्युर् दे यङ् मुथोङ् ब जिद् ॥ देऽि फियिर् ग्दोन् मि स बर् रङ् रिग् पऽि [16B] शेस् प खस् ब्लङ् बर् ब्यऽो ॥ दे यङ् ऽब्रस् बु [11]जिदे दु ग्नस् पर् ग्रुब् । दे ल्तर् न मुङोन् सुम् दु तोंग्स् प दङ् ब्रल् ब यिन् नो ॥ देऽि जेंस् सु ग्शन् ग्यिस् ब्यस् पऽि मुङोन् सुम् बर्तग् पर् ब्य स्ते ॥

चोंद् स्युब् स्लोब् दुपोन् ग्यिस् म यिन् ॥ [13]ङेस् पर् स्त्रिङ् पो मेद् पर् दुगोङ्स् ॥

ह्यायमेवैकं संयोज्येतार्थसम्भवात् । ज्ञानं नादृष्टसम्बन्धं पूर्वार्थेनोत्तरोत्तरम् ॥"–**प्र० वा०** २।३८७ **"उत्तरोत्तराणि चे**त्यादि । **च**कारोऽवधारणे । **उत्तरोत्तरा**णि विषयज्ञानज्ञानादीनि, तानि **पूर्वैः** अनुभवज्ञानस्य यो विषय उत्तरोत्तरज्ञानमपेक्ष्य ज्ञानेन अन्तरितत्वाद् [रिङ् ब VT=] **विप्रकृष्ट** इति तदाभासानि न स्युरेव ।···कस्मात् ? **तस्य अविषयत्वात्** । **तस्य** यथोक्तस्य अर्थस्य उत्तरोत्तरज्ञानानामविषयत्वात् ।"–**विशाला०** पृ० ३७A । PSV[1.2.] VT अनुसारेणात्र **'उत्तरोत्तराणि च ज्ञानानि पूर्वविप्रकृष्टविषयाभासानि न स्युः'** इत्यपि पाठः स्यात् ।

१ "रिङ् ब"–VT.=°**विप्रकृष्ट**° । "रिङ् दु ऽदस् प"–PSV[1.2.]=°**अतिक्रान्त**° (?) । २ "तस्मात् तस्यापि अर्थाभासत्वमेष्टव्यम् । तस्माच्च द्विरूपता सिद्धा"–**विशाला०** पृ० ३७ B । ३ * * **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ४२५ । **मी० श्लो० वा०** भट्टोम्बेकवृत्ति. पृ० २६७, **न्या० र०** पृ० २९८। ४ **"यस्माच्चानु**भवोत्तरकालं विषये इव ज्ञानेऽपि स्मृतिरुत्पद्यते **तस्मादस्ति द्विरूपता ज्ञानस्ये**त्यादि व्याचष्टे"–**प्र० वा० म० टि०** पृ० २४४ । **"यस्मादनु**भवोत्तरकालं विषये इव ज्ञानेऽपि स्मृतिरुत्पद्यते **तस्माच्च ज्ञानस्य द्विरूपता सिध्यति**"–PSV[1.2.] । "तदाह–**स्मृतेश्च द्विरूपता सिद्धे**ति ।"–**प्र० वार्तिकालं०** पृ० ४२५ । "सापि **सिध्यति** संस्मृतेः ।"–**प्र० वा०** २।४२३ । **"स्मृतेरुत्तरकालं चे**त्यादि ।···यस्माद् यथा परस्परविलक्षणेषु रूपादिष्वनुभूतेषु अन्योन्यविवेकेन स्मृतिः भवति तथा ज्ञानेष्वपि । **तस्मादस्ति द्विरूपता ज्ञानस्य** । [पृ० ३८A]······यतः भेदेन स्मृतिर्भवतीति··· अर्थसारूप्यमिष्यते । तस्माच्च ज्ञानं द्विरूपं सिध्यतीति । **स्वसंवेद्यता चे**ति ।······उत्तरकालं स्मृते**र्ज्ञानस्य द्विरूपता** केवला **न सिध्य**ति, अपि तु स्वसंवित्तिरपि या प्रमाणस्य फलत्वेन इष्यते [पृ० ३८B] ।"–**विशाला०** । ५ **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ४२५,४२६। तुलना–**प्र० वा०** २।४२६,४८५ । ६ "**कस्मा**दिति···[ऽदि ल शेस् प ल सोग्स् प VT=] **न ह्यसा**वित्यादि । अस्यायमर्थः–यत्र स्मृतिस्तत्र अनुभवः, रूपादिवत्, स्मृतिश्च [अत्र] अस्तीति कार्यहेतुः ।"–**विशाला०** पृ० ३८B । तुलना–**प्र० वा० म० टि०** पृ० २७१ । ७ "ऽदोद् फियिर् रो"–PS[2.] । ८ "ब्य ब ऽदि शेस् प शेस् प ग्शन् ग्यिस्"–PSV[2] । ९ "गङ् दग् गिस्"–PSV[2.] । १० "ऽदोद् फियिर् रो"–PSV[2.] । ११ "जिद् दे दे ल्तर् न मुङोन् सुम् तोंग् प दङ् ब्रल् ब शेस् ब्य ब ऽदि ग्नस् प यिन् नो ।"–PSV[2.] । १२ "ग्यि"–PSV[2.] VT । १३ "स्त्रिङ् पो ङेस् पर् म दुगोङ्स् सो । छ शस् ग्शन् दु स्म्र बऽि फियिर् ।"–PSV[2.] । "स्त्रिङ् पो मेद् चेस् ङेस् प ऽमू । ग्शन् दु न छ शस स्म्रस् फियिर्"–VT ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्शन् दु छ शस् सु ग्सुङ्स् ऽग्युर्। देस् न खो बोस् ब्र्तग् पर् ब्यऽो ॥ १३ ॥

चोंद् प ब्स्ग्रुब् प नि स्लोब् द्पोन् द्ब्यिग् ग्ञेन् ग्यि म यिन् नो ॥ *गङ् गि फ्यिर् चोंद् प स्ग्रुब् प दे ल नि स्लोब् द्पोन् ग्यिस् स्जिङ् पो मेद् पर् द्गोङ्स् प स्ते। दे ल्त म यिन् न छ शस् चन् दु मूजद् पर् ग्युर् रो* ॥ देस् न खो बोस् क्यङ् छद् म ल सोग्स् प चुङ् सद् चिग् ब्र्तग् पर् ब्यऽो ॥

*[2]ज्ञानान्तरेणानुभवेऽनिष्ठा, तत्रापि [3]हि स्मृतिः।
विषयान्तरसञ्चारस्तथा न स्यात्, [4]स चेष्यते ॥ १२ ॥ *

[5]स्यादेतत्–रूपादिवद् [6]ज्ञानस्यापि ज्ञानान्तरेणानुभव इति। तच्चायुक्तम्। यस्माद् **ज्ञानान्तरेणानुभवेऽनिष्ठा** [7]अनवस्था [8]इति, [9]अस्य ज्ञानस्य ज्ञानान्तरेणानुभवे। कथम्? **तत्रापि हि स्मृतिः**। [10]*येन ज्ञानेन तद् ज्ञानमनुभूयते* तत्रापि पश्चात् स्मृतिर्दृष्टा। तेन तत्रापि ज्ञानान्तरेणानुभवेऽनवस्था स्यात्। **विषयान्तरसञ्चारस्तथा न स्यात् [11]स चेष्यते।** तस्मादवश्यं [12]ज्ञानस्य स्वसंवेदनमभ्युपगन्तव्यं तस्य च फलत्वमिति स्थितमेतत् प्रत्यक्षं कल्पनापोढमिति। ततः परं परप्रणीतं प्रत्यक्षं परीक्ष्यते—

---

१ * * ''ग्यङ् न दे ल स्लोब् द्पोन् ग्यिस् स्जिङ् पो म द्गोङ्स् प यिन् ते। गङ् गि फ्यिर् चोंद् प ब्स्ग्रुब् पर् छ शस् ग्शन् दु ब्कोद् प यिन् पऽि फ्यिर् रो।''–PSV[2]। २ * * **मी० श्लो०** वा० भट्टोम्बेकवृत्ति पृ० २४७, **न्या० र०** पृ० २७७,३२१। **प्र० वा० म० टि०** पृ० २६१; २७१। तुलना–प्र० वा० २।५१३–२१। ३ **''च** स्मृतिः''–**न्या० र०** पृ० २७७। ४ **''स चेक्ष्यते''**–PS[1] PSV[1], **प्र० वा० म० टि०** पृ० २६१,२७१। ''गोचरान्तरसञ्चारस्तथा न स्यात् स **चेक्ष्यते** ॥ २०२६ ॥''–**तत्त्वसं०** पृ० ५६५। ५ ''चि स्ते ग्सुग्स् ल सोग्स् प ब्शिन् दु'' [=**अथ** रूपादिवत्···] PSV[1,2]। [ऽदिर् ऽग्युर् मोद् चेस् प ल सोग्स् पस् VT.=]। **स्यादेत**दित्यादिना 'ज्ञानान्तरेणानुभवोऽभीष्ट एव, तस्मात् सिद्धसाधनत्वम्' इति पराभिप्रायं प्रकाशयति। **ज्ञानान्तरेणे**त्यादिना सिद्धसाधनत्वं परिहरति। **येन ज्ञानेन ज्ञानमनुभूयते तत्रापि** उत्तरकाले **स्मृतिर्दृष्टा,** अननुभूते च स्मृतेरयोग इति। तस्मात् तदालम्बनं ज्ञानान्तरमुत्पद्यते, तत्रापि स्मृतिः, ततस्तत्राप्यन्येनेति। तस्माज्ज्ञानान्तरेणानुभवे ज्ञानानामनवस्था [पृ० ३८B]।······तथा सति को दोष इति चेदाह–**विषयान्तरसञ्चार** इत्यादि। विषयान्तरे ज्ञानप्रवृत्तिर्न स्यात्, **इष्यते च**।''–**विशाला०** पृ० ३९ A। ''अथापि स्यात्–ज्ञानान्तरेण तस्य सिद्धिर्भविष्यतीत्याह—**ज्ञा**नान्तरेणेत्यादि''–**तत्त्वसं० पं०** पृ० ५६४। ६ '**ज्ञा**नमपि **ज्ञा**नान्तरेणानुभूयते इति। **त**दप्ययुक्तम्।' इत्यपि अत्र संस्कृतं स्यात्। ७ ''किञ्च, यदि ज्ञानान्तरेणानुभवोऽङ्गीक्रियते तदा तत्रापि ज्ञानान्तरे स्मृतिरुत्पद्यते एव 'ज्ञानज्ञानं ममोत्पन्नम्' इति, तस्याप्यपरेणानुभवो वक्तव्यः, न ह्यननुभूते स्मृतिर्युक्ता। ततश्चेमा ज्ञानमालाः कोऽनन्यकर्मा जनयतीति वक्तव्यम्।······सैव पूर्वधीरुत्तरोत्तरां बुद्धिं जनयतीति चेदाह–**गो**चरान्तरेत्यादि। एवं हि विषयान्तरसञ्चारो न प्राप्नोति। तथाहि–पूर्वपूर्वा बुद्धिरुत्तरोत्तरस्य ज्ञानस्य विषयभावेनावस्थिता प्रत्यासन्ना चोपादानकारणतया। तां तादृशीमन्तरङ्गिकां त्यक्त्वा कथं च बहिरङ्गमर्थं गृह्णीयात्।''–**तत्त्वसं० पं०** पृ० ५६५। ''यदि ज्ञानस्य ज्ञानान्तरेणानुभवः, स कथं ज्ञातव्यः? तत्रापि स्मृतिर्दृष्टेति, तद्वेदनं तर्हि ज्ञानान्तरेणेति तत्रापि स्मृतिरेव प्रमाणम्। तदा चेमां मालां ज्ञानतद्वेदनानां को हेतुरनुबन्धवर्तीं जनयेत्।''–**प्र० वार्तिकालं०** पृ० ४५५-६। ८ ''शेस् ब्य ब''–PSV[1,2]। अत्र यथास्य '**इति**' इति संस्कृतं भवति तथा '**नाम**' इत्यपि संस्कृतं भवेदिति ध्येयम्। ९ '**अस्य ज्ञानस्य**' इति पाठः PSV[1] मध्ये नास्ति। १० * * PSV[1] अनुसारेण तु एतत्स्थाने '**ज्ञानान्तरेण तस्य ज्ञानस्यानुभवे**' इति पाठः प्रतिभाति। ११ दृश्यतां टिप्पृ० ११२ टि० ४। १२ '**ज्ञानस्य स्वसंवेद्यत्वमभ्युपगन्तव्यम्**' इति पाठोऽप्यत्र संस्कृते स्यात्। ''यदि ग्राह्यव्यक्त्यसिद्धावपि व्यक्तं वस्तु इष्यते [पृ० ३९A] सर्वमिदं जगद् व्यक्तं स्यात्, अव्यक्तव्यक्तिकत्वेन विशेषाभावात्। न च भवति। **तस्माद् ज्ञानस्य स्वसंवेद्यत्वमभ्युपगन्तव्यमिति** [पृ० ३९ B]''–**विशाला०**। तुलना–**प्र० वा० म०** २।५४१। ''तस्मात् **स्ववेदनमेष्टव्यम्**।'' **प्र० वा० म० टि०** पृ० २८१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]नाचार्यस्य वादविधिरसारो वेति निश्चितम् ।
अन्यथांशस्य वचनात् तेनास्माभिः परीक्ष्यते ॥ १३ ॥

वादविधिर्नाचार्यवसुबन्धोः, *[2]तेनाचार्येण असारो वाभिप्रेतः, [3]यस्माद् [4]वादविधाने* अन्यथा अंश उक्तः, तेनास्माभिरपि प्रमाणादिषु किञ्चित् परीक्ष्यते ।

[5]दोन्' दे' लस्' स्क्येस् '[6]पडि' नंम्' शेस्' ॥ मूङोन्' सुम्' यिन्' शेस्' ब्य' ब' ऽदिद् ॥
कुन्' ल' दोन्' ऽदि' शेस्' ब्जोंद्' न ॥ गङ्' दे' दे' ऽबऽ' शिग्' लस्' मिन् ॥

गल्' ते' दे' लस्' शेस्' ब्य' ब' ऽदिस्' क्यैन्' कुन्' ब्जोंद्' प' यिन्' न' नि' शेस्' प' गङ्' युंल्' गङ्' ल' स्क्येस्' प' देऽि' थ' स्नद्' दु' ब्यऽि' दे' ऽबऽ' शिग्' लस्' नि' म' यिन्' नो ॥ दुमिग्स्' पऽि' क्यैन्' ऽबऽ' शिग्' लस्' *[7]शेस्' प' नि' म' यिन्' नो ॥ सेमूस्' दङ्' सेमूस्' लस्' ब्युङ्' ब' नंमूस्' ब्शि' लस्' स्क्ये' बऽो' शेस्' ग्रुब्' पऽि' . मूथऽ' लस्' ऽब्युङ्' बऽि' फियर्' रो ॥

दुमिग्स्' पऽो' शे' न' द्रन्' सोग्स्' किय ॥ शेस्' पऽङ्' ग्शन्' ल' ल्तोस्' म' यिन् ॥ १४ ॥*

गल्' ते' दोन्' दे' लस्' शेस्' प' ऽदिस्' युल्' चम्' यिन्' न' नि' द्रन्' प' दङ्' । जेस्' सु' द्पग्' प' दङ्' मूङोन्' पर्' ऽदोद्' प' ल' सोग्स्' पऽि' शेस्' प' यङ्' दुमिग्स्' पर्' ब्य' ब' ग्शन्' ल' मि' ल्तोस्' ते । दुद्' प' ल' सोग्स्' † [8]पॅ' दुमिग्स्' नस्' † मे' ल' सोग्स्' पऽि' शेस्' प' स्क्ये' ब' नि' म' यिन्' नो ॥ ग्सुग्स्' ल' सोग्स्' प' जिद्' ल' दुमिग्स्'

---

१ "वादविधिर्नाचार्यस्य सारो वा नेति निर्णीतम् । अन्यथांशप्रणयनात् (उक्तत्वादन्यथांशस्य ?) तेनास्माभिः परीक्ष्यते ॥" इत्येवमपि अत्र संस्कृतं भवेदिति ध्येयम् । तथाच तदनुसारेण वृत्तौ विशालामलवत्यामपि च पठितव्यं संस्कृतम् । "अत्र 'आचार्यवसुबन्धोर्वादविधिः' इति लोकप्रसिद्धिरियम् । शास्त्रकारेण तु तेन कृतानां शास्त्रान्तराणां निर्दोषत्वमपेक्ष्य सदोषस्य वादविधेः तत्कृतत्वं न सम्भवतीत्याह—नाचार्यस्य वादविधिरिति । ननु अदृष्टकर्तृकानां शास्त्राणां कर्ता प्रसिद्ध्यैव निश्चीयते, अत्रापि सास्तीति कथं वादविधिर्नाचार्यस्येति चेत्, [स्निङ्' पो' मेद्' चेस्' ङेस्' प' ऽम् ॥ शेस्' प' स्ते । VP.=] असारो वेति निश्चितमिति, प्रकृतत्वात् 'आचार्येण तत्र' इति गम्यते । अनेन अयमर्थः प्रकाश्यते—प्रसिद्धिमात्रेण तावदर्थनिश्चयो न भवति, अर्थाभावेऽपि तत्संभवात् । यद्यपि तेन स कृतः तथापि [दङ्' पो' शेस्' रब्' फुल्' दु' ब्युङ्' ब' म' स्क्येस्' पर्' ग्युर्' प' स्ते । फियस्' ब्लो' ब्यङ्' बर्' ग्युर्' प' न' ऽदिस्' दे' ल' स्निङ्' पो' मेद्' पर्' ङेस्' प' स्क्येस्' सो' शेस्' पऽो VT=] आदौ प्रकृष्टा प्रज्ञा अनुत्पन्ना, पश्चात्तु बुद्धौ विशुद्धायाम् अनेन तत्र असारो निश्चित इति । [यङ्' जि' ल्त' बुर् VT=] यथा पुनरनेन तत्र असारो निश्चित इदं कथं ज्ञायत इति चेत्, [ग्शन्' दु' न' छ' शस्' स्मस्' फियर्' शेस्' प' स्ते VT=] अन्यथांशस्य वचनादिति निर्दोषांशाभिधानादित्यर्थः । यद्दोषदर्शनाद् आचार्येण [चोंद्' प' स्मुब्' प' ल' VT=] वादविधौ असारनिश्चयाद् [चोंद्' प' स्मुब्' पर्' ब्येद्' प' ल' VT=] वादविधाने अन्यथांशस्य वचनं त एव दोषाः [खो' बो' चग्' गिस्' VT=] अस्माभिः प्रकाश्यन्ते इति दर्शयितुमाह—तेनेत्यादि । तेनेति दोषवत्त्वेन । तथाहि—'अन्यथांशस्य वचनात्' इत्यनेन वादविधेः दोषवत्त्वं प्रकाशितम् । प्रमाणादिष्विति प्रमाणांश-तदाभास-जाति-तदुत्तरेषु ।"—विशाला० पृ० ३९ B । २ * * PSV[2] अनुसारेणायं पाठोऽस्माभिर्लिखितः । ३ 'यस्माद् वादविधाने अन्यथांशस्य वचनात्' इत्यपि संस्कृतमत्र भवेत् PSV[2] अनुसारेण । ४ 'वादविधान'नामा ग्रन्थो वादविधेर्भिन्नः, सोऽपि च वसुबन्धुना रचित इति ध्येयम् । दृश्यतां The Vādavidhi and the Vādavidhāna of Vasubandhu [Adyar Library Bulletin. Vol. XVII. Part I. Feb. 1953 pp. 9-19] by H. R. R. Iyengar । वादन्यायवृत्ति. पृ० १४२ । ५ "दोन्' दे' लस्' स्क्येस्' पऽि' नंम्' पर्' शेस्' प' मूङोन्' सुम्' यिन्' नो' शेस्' ब्य' ब' ऽदिद् । दोन् दे' शेस्' पस्' कुन्' ब्जोंद्' न ॥ गङ्' दे' दे' ऽबऽ' शिग्' लस्' मिन् ॥"—PSV[2] । ६ "युल्' ल' गङ्' लस्"—PSV[2] । ७ * * "शेस्' प' स्क्ये' ब' नि' म' यिन्' ते । ब्शि' यि' सेमूस्' दङ्' सेमूस्' ब्युङ्' नंमूस्' शेस्' ग्रुब्' पऽि' मूथऽ' लस्' ऽब्युङ्' बऽि' फियर्' रो ॥ दुमिग्स्' पऽो' शे' न' द्रन्' सोग्स्' किय । शेस्' प' ग्शन्' ल' ब्ल्तोस्' म' यिन् ।"—PSV[2] । ८ † † "प' ल' दुमिग्स्' प'"—PSV[2] ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प दोन् दु ब्जोंद् पर् ब्य ग्रङ् न । *[1]चि शेस् प स्क्ये ब दे ल्तर् स्नङ् ब दे ल दे ब्शिन् दु द्मिगस् नस् स्क्ये ब यिन् नम् दे स्ते ग्शन् दु स्नङ् दु सिन् क्यङ् जि ल्तर् योद् पडि दे ग्युर् ऽग्युर् ब यिन् ग्रङ् । दे लस् चिर् ऽग्युर् शे न । गल् ते जि ल्त ब दे लस् शेस् प स्क्ये न नि दे ल्तर् न ब्सगस् प ल द्मिगस् प यिन् पडि फ्यिर् ल्ङ बो कुन् जोंब् पर् ऽग्युर् ते । दे ल्तिद् ल द्मिगस् प यिन् पडि फ्यिर् रो ॥ रङोन् पो ल सोगस् पर् स्नङ् बडि शेस् प ल दोन् दे लस् स्क्येस् पडि शेस् प मूङोन् सुम् दु ऽग्युर् रो शेस् ऽदोद् प दे ल्त न नि छोगस् ल दे दग् ल खस् ब्लङ्स् प ब्देन् यङ् योद् पडि [पृ० 17 A] जेस् क्यि नेमू प ञिद् थोब् स्ते* । दे ञिद् [ल N. ed.] जेस् ल सोगस् प ञिद् दु स्नङ् बस् न [2]जेस् दङ् ग्रङ्स् ल सोगस् पडि नेमू प यङ् ऽथोब् बो ॥

* [3]दे स्ते जि ल्तर् योद् प ग्युर् ऽग्युर् न नि दे ल्तर् जेस् ल सोगस् प नि थल् बडि ञेस् पर् मि ऽग्युर् ते दे ल्तर् न दे दग् मेद् पडि फियर् रो ॥ दे ल्तर् न यङ् गङ् ल थ स्त्रद् दु ब्य ब स्ते दे नि ऽथोब् पर् मि ऽग्युर् ते । दे दग् सो सो ल शेस् प योद् प म यिन् नो ॥ सो सो ब दे दग् ऽदुस् प ग्यु यिन् यङ् दे ऽदुस् पर् योद् प ल सोगस् प नि खस् म ब्लङ्स् सो ॥ दे ञिद् स्म्रस् प ।

जि ल्तर् स्नङ् ब दे योद् मिन् ॥ दे यि फियर् न दोन् दम् दु ॥
सेमूस् क्यि द्मिगस् प ल्ङ नेमूस् सो ॥ दे ल थ स्त्रद् दु म ब्यस् ॥ १५ ॥*

द्मिगस् (मिग्) प ल सोगस् प यङ् द्मिगस् पर् ब्य ब ञिद् दु थल् बर् ऽग्युर् ते ।[4] दे दग् नि दोन् दम् पर् योद् पस् सो ॥ ग्शन् दु न योद् प यिन् प स्ल ब ग्ञिस् प ल सोगस् पर् स्नङ् ब य(द)ङ् स्ङोन् पो ल सोगस् पर् स्नङ् बडि शेस् पडि ग्युर् ऽग्युर् रो ॥

"ततोऽर्थाद् विज्ञानं प्रत्यक्षम्" [वादविधौ] इत्यत्र

---

१ * * "चि गङ् स्नङ् ब दे नेमूस् ल शेस् प स्क्येस् प दे ल्तर् दे दग् द्मिगस् पर् ब्जोंद् प यिन् नम् । चि स्ते ग्शन् स्नङ् दु सिन् क्यङ् जि ल्तर् योद् प शेस् पडि ग्युर् ऽग्युर् ग्रङ् । दे लस् चिर् ऽग्युर् शे न । गल् ते जि ल्तर् स्नङ् ब दे दे दग् ल शेस् प स्क्ये न नि दे ल्तर् न नेमू पर् शेस् पडि छोगस् ल्ङ नि ब्सगस् प ल द्मिगस् प यिन् पडि फ्यिर् कुन् जोंब् तु योद् पर् ञिद् द्मिगस् प शेस् ब्य ब खस् ब्लङ्स् नस् । स्ङोन् पो ल सोगस् पर् स्नङ् बडि शेस् प नेमूस् दोन् दे लस् स्क्येस् पडि नेमूस् पर् शेस् प यिन् पडि फ्यिर् मूङोन् सुम् ञिद् दु ऽग्युर् रो ॥ दे ल्तर् न दे दग् ल दे ब्सगस् प थ स्त्रद् दु योद् प यिन् यङ् जर्स् सु योद् पडि नेमू प ञिद् ऽथोब् स्ते ।"—PSV². । २ "जेस् दङ् ग्रङ्स् ल सोगस् पडि नेमू प ल ऽङ् थोब् बो" – PSV². पृ० १००A । "जेस् दङ् ग्रङ्स् ल सोगस् पडि नेमू प नेमूस् ल यङ् थोब् बो शेस् प" – VT. पृ० ४२A । ३ * * "जि स्ते जि ल्तर् योद् प लस् ग्शन् दु स्नङ् यङ् शेस् पडि ग्युर् ऽग्युर् न नि दे ल्तर् न जेस् ल सोगस् प ल थल् बडि ञेस् पर् नि मि ऽग्युर् ते । दे ल्तर् दे दग् मेद् पडि फ्यिर् रो ॥ दे ल्तर् न यङ् गङ् लस् गङ् शेस् थ स्त्रद् दु ब्य ब दे नि थोब् पर् मि ऽग्युर् ते । दे दग् सो सो ब ल शेस् प योद् प म यिन् नो ॥ दे दग् ब्सगस् प न यङ् सो सो ब ग्यु यिन् यिय दे ब्सगस् प नि म यिन् ते । थ स्त्रद् दु योद् पडि फ्यिर् रो ॥ दे ञिद् स्म्रस् प । गङ् शिग् स्नङ् ब दे लस् मिन् ॥ ल्ङ् पो ब्सगस् प द्मिगस् पडि फ्यिर् ॥ गङ् लस् दे नि दोन् दम् प ॥ दे ल थ स्त्रद् दु म ब्यस् ॥ शेस् ब्य ब नि बर् स्कब्स् क्यि छिगस् सु ब्चद् पऽो ॥" – PSV². । ४ "दे दग् क्यङ् दोन् दम् पर् ग्शन् दु योद् पडि फियर् रो ॥ स्ल. ब ग्ञिस् ल सोगस् पर् स्नङ् ब दङ् स्ङोन् पो ल सोगस् पर् स्नङ् ब यङ् शेस् पडि ग्यु यिन् नो ॥" PSV². । ५ भोटभाषानुवादे PSV¹ मध्ये भ्रान्त्या श्लोकार्धरूपेणानूदितमिदम् । तुलना – **नयचक्रवृ०** पृ० ९६ टि० १ । "**ततोऽर्थाद् विज्ञानं प्रत्यक्ष**मिति येन विषयेण विज्ञानं व्यपदिश्यते यदि तत एव तद् भवति नान्यस्मात्, न ततोऽन्यस्मादपि, तद् ज्ञानं प्रत्यक्षं रूपादिज्ञानसुखादिज्ञानवदिति । अनेन भ्रान्तिज्ञानमपक्षिप्तम्, यथा शुक्तौ रजतज्ञानम् । तद्धि 'रजतज्ञानम्' इति रजतेन व्यपदिश्यते, ततो रजताच्च न जायते, शुक्त्यैव तज्जन्यते । संवृतिज्ञानमप्यनेनापक्षिप्तम्, तथाहि – 'घटज्ञानं घटज्ञानम्' इत्येवं तद् घटादिभिर्व्यपदिश्यते, तेभ्यस्तद् नोत्पद्यते तेषां संवृतिसत्त्वेन अकारणत्वात् । रूपा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततोऽर्थादिति सर्वश्चेद् येन तत् तत एव न ।

यदि 'ततः' इत्यनेन सर्वः प्रत्यय उच्यते, यद् ज्ञानं यस्माद् विषयाद् भवति तस्य व्यपदिश्यते, तत एव तु न भवति, आलम्बनप्रत्ययादेव ज्ञानं न भवति **'चतुर्भिश्चित्तचैत्ताः'** [अभिधर्मकोशे २।६४] इति सिद्धान्तात् ।

आलम्बनं चेत् स्मृत्यादिज्ञानं नान्यदपेक्षते ॥ १४ ॥

दिभ्य एव तथा समुदितेभ्यस्तदुत्पद्यते । अनुमानज्ञानमप्येतेनैवापक्षिप्तम्, धूमज्ञानसम्बन्धस्मरणाभ्यामपि तदुत्पद्यते, न वह्नेरेवेति । तत उत्पन्नमेव, न अनुत्पन्नम्, इत्ययमप्यर्थोऽत्र अभिमतः ।" – **विशाला०** पृ० ३९B – ४०A । "अपरे पुनर्वर्णयन्ति – **ततोऽर्थाद् विज्ञानं प्रत्यक्ष**मिति । तत्र 'ततोऽर्थात्' इति यस्यार्थस्य यद् विज्ञानमपदिश्यते यदि तत एव तद् भवति नार्थान्तराद् भवति तत् प्रत्यक्षम् । एतेनानुमानादिज्ञानमपक्षिप्तं भवति, न हि तत एव तद् भवति, किं तर्हि ? ततश्च अन्यतश्च तद् भवति ।" – **न्यायवार्तिक.** १।१।४। "तदेवं प्रत्यक्षलक्षणं समर्थ्य **वासुबान्धवं** तावत् प्रत्यक्षलक्षणं दूषयितुमुपन्यस्यति – अपरे पुनरिति । लक्षणं व्याचष्टे – ततोऽर्थादिति । यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धाद् यस्यार्थस्य यद् विज्ञानं व्यपदिश्यते यदि तत एव तद् भवति नार्थान्तराद् व्यपदेशासम्बन्धिनः तत् प्रत्यक्षम् । अत एव व्यपदेशासम्बन्धिनोऽर्थान्तरात् शुक्तिरूपाज्जायमानं रजतेन व्यपदिश्यमानं शुक्तिज्ञानं न प्रत्यक्षम्, व्यपदेशकादनुत्पत्तेः, व्यपदेशकस्य रजतस्य तत्राभावात् ।" – **न्यायवार्तिकतात्पर्य**टीका १।१।४।

१ "तदेवं व्यवस्थिते इदं परीक्ष्यते – किमयं प्रत्ययापेक्षो नियम आहोस्विदालम्बनापेक्ष इति । ततः किम् ? उभयथापि दोषः । पूर्वनियममधिकृत्य तावदाह – **ततोऽर्थादिति सर्वश्चे**दिति । **यदि तत** इत्यादि अस्यैव विवरणम् ।…अत्र सर्वधर्मात्मकत्वादालम्बनप्रत्यय एव **'सर्व'**शब्देनोच्यते । कथं पुनः तस्य सर्वधर्मात्मकत्वमिति चेत्, 'आलम्बनं सर्वधर्माः' [अभिधर्मकोशे २।६२] इति लक्षणात् ।…ततश्चायमर्थो भवति – यदि सर्वधर्मस्वरूपः प्रत्यय उच्यते, यदि आलम्बनप्रत्यय उच्यते इति यावत् ।…**येन** आलम्बनप्रत्ययसम्बन्धित्वेन **ज्ञानं व्यपदिश्यते तत् तत एव न भवति,** किं तर्हि ? प्रत्ययान्तरादपि । 'चतुर्भिश्चित्तचैत्ताः' [अभि०को० २।६४] इति वचनात् । एवं प्रत्ययनियमपक्षे सिद्धान्तविरोधः प्रकाश्यते ।" – **विशाला०** पृ० ४०A – ४०B । **२** दृश्यतां टिप्पृ० ३८ टि० १ । **३** "आलम्बननियममधिकृत्याह – **आलम्बनं चे**दित्यादि । अत्र लक्षणस्यातिव्याप्तिरुक्ता । **'विषयमात्रम्'** इत्यत्र यत् तदा सन्निहितं रूपादि व्यक्तं तद् विज्ञानालम्बनत्वेन 'विषय'शब्देनोच्यते । 'मात्र'शब्द आलम्बनान्तरव्यवच्छेदकः । स्मृत्यादिज्ञानमपि रूपादिभिर्व्यपदिश्यते 'रूपस्मृतिः, आम्लाभिलाषः, अग्न्यनुमानम्' इति, आलम्बनान्तरानपेक्षं च । तस्मात् तदपि प्रत्यक्षं स्यात् । स्यादेतत् – अनुमेयविषयं ज्ञानमग्निमात्रान्न जायते, अपि तु पक्षधर्मत्व-सम्बन्धज्ञानाभ्यामपि । ततः कुतोऽयं प्रसङ्ग इत्याह – अग्न्यादिज्ञानमित्यादि । यद्यपि तदर्थान्तरादपि जायते तथापि तदर्थान्तरं तेन नालम्ब्यते, ततश्च आलम्बनान्तरानपेक्षजन्मत्वात् [शेस्' (शेस् ?) दे VT.=] तद् ज्ञानं प्रत्यक्षं स्यात् । ननु यदि 'येन विषयेण यद् ज्ञानं व्यपदिश्यते तद् यदि ततो भवति, न न भवति' इत्ययमपि नियमोऽत्र अभीष्टः, स्मरणादीनां येनालम्बनेन व्यपदेशः तत उत्पत्तिरपि नास्ति तदभावादिति चेत्, असदेतत्, परम्परयापि तत उत्पत्तेरभीष्टत्वात् । अन्यथा कथमिदं युज्यते यद् **वाद**विधावुक्तम् – 'अनुमानज्ञानमप्यत एव निराकृतम्, धूमज्ञानसम्बन्धस्मरणाभ्यामपि तद् भवति न तु अग्नेरेव' इति । अनेन 'धूमज्ञानसम्बन्धस्मरणाभ्याम् 'अपि'शब्दादग्नेरपि तदुत्पद्यते' इत्युक्तं भवति । तदिदं कथं युज्यते यदि व्यपदेशहेतोः परम्परयाप्यत्र जनकत्वं [न] इष्यते ? अन्यथा यदि स्मरणादीनां व्यपदेशहेतोर्विषयस्य तदानीमभावादजनकत्वं तदिदमजनकत्वमनुमानेऽपि समानमिति वाक्यमिदमप्रयोक्तव्यं स्यात् । अथ स्मरणादीनां विषयः कल्पितं सामान्यं व्यपदेशहेतुः, तस्य च संवृतिसत्त्वादजनकत्वमेव, तस्मात्तेषामप्रत्यक्षत्वमितीष्यते, अत्रापि इदमेवोत्तरम् । तथाहि – अनुमानमपि संवृतिसदेव आलम्बते, ततश्च 'धूमज्ञानसम्बन्धस्मरणाभ्यामपि तद् भवति, न तु अग्नेरेव' इति यदुक्तं तन्न युक्तं स्यात् । तस्मादतिव्याप्तिदोषः स्थित एव ।" – **विशाला०** पृ० ४०B—४१A । बाह्यार्थवादिनां परमार्थत एव बाह्यं प्रमेयं तद्विषयं च प्रमाणमपीष्टम् । तच्च यथा न युज्यते तथा साधनाय तदालम्बनमधिकृत्य विचारणामात्रमाह – **रूपा**दिष्वालम्बनार्थो **वक्तव्य** इति ।…बाह्यार्थवादिषु स्वयूथ्या बलवन्तः, तेषां निराकरणे इतरे निराकृता एव भवन्ति…इति तैरेव सह विचारयति । **आलम्बनार्थ** इति 'आलम्बन'शब्दार्थः । **किं यदाभास**मित्यनेन रूपादिपरमाणूनां प्रत्येकं स्वरूपेणाभासाभावात् समुदायाकारे[ण] च तेषु विज्ञानप्रतिभासादाभासार्थ आलम्बनार्थो दर्शितः । **अथ यथे**आदिना हेत्वर्थः । **यथा विद्यमाना** इति नीलादिस्वलक्षणत्वेन । **अन्याभासस्यापी**ति समुदायाभासस्यापि । 'यद्यपि स्वाभासं विज्ञानं न जनयति तथापि' इति **अपि**शब्दार्थः ।" – **विशाला०** पृ० ४१B ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि 'ततोऽर्थात्' इत्यनेन विषयमात्रम् [उच्यते] स्मृत्यनुमानाभिलाषादिज्ञानमपि आलम्बनान्तरं नापेक्षते। अग्न्यादिज्ञानं धूमा[1]द्यालम्ब्य न जायते। रू[2]पादिषु आलम्बनार्थो वक्तव्यः। किं यै[3]दाभासं तेषु ज्ञानमुत्पद्यते तथा ते आलम्बनम्, अ[4]थ यथा विद्यमाना अन्याभासस्यापि विज्ञानस्य कारणं भवन्ति? ततः किमिति चेत्, यदि यथाभासं तेषु ज्ञानमुत्पद्यते तथा सं[5]चितालम्बनत्वात् पञ्चानां विज्ञानकायानां संवृतिसदेवालम्बनमिति इष्टं नीलाद्याभासज्ञानेषु 'ततोऽर्थाद् विज्ञान'त्वात् प्रत्यक्षत्वं भवति, तथाहि—तेषु तत्समुदाये प्रज्ञप्तिसत्यपि द्रव्यसदाकारो लभ्यते । द्रव्यसंख्याद्याकारेष्वपि लभ्य(प्स्य?)ते। तै[6] एव हि द्रव्यादित्वेनाभासन्ते।

अ[7]थ यथा विद्यमाना अन्याभासस्यापि ज्ञानस्य कारणं भवन्ति तथा सति द्रव्यादिप्रसङ्गदोषो न भवति, तथा तेषामसत्त्वात्, तर्ह्यपि 'येन तस्य व्यपदेशः' इत्येतन्न लभ्यते। न हि तेषु प्रत्येकं ज्ञानमस्ति। *प्रै[8]त्येकं च ते समुदिताः कारणम्,*

---

१ "धूमाद्यालम्बनम्" - PSV[3]। २ नयचक्रवृत्ति. पृ० ९६ पं० ७। ३ नयचक्रवृत्ति पृ० ९६ पं० १, पृ० ९९ पं० २३। ४ नयचक्रवृत्ति. पृ० ९९ पं० २९। ५ "सञ्चितालम्बनत्वादिति समुदायालम्बनत्वात्, सञ्चितः सञ्चय इति कृत्वा, सञ्चयश्च समुदायः। सञ्चितालम्बनत्वं तेषां [पृ० ४१ B] समुदायाभासत्वात्। अथवा सञ्चितत्वेन आलम्बनत्वादिति समुदायाभासत्वादित्यर्थः। आलम्ब्यतेऽनेनेति करणकारकं कृत्वा आभास 'आलम्बन'शब्देनोच्यते। **संवृतिसदेवालम्बन**मिति अप्रत्यक्षत्वम् इति शेषः। संवृतिसदालम्बनत्वं संघातस्याद्रव्यसत्त्वात्। अनेन 'यत् संवृतिसदालम्बनं तदप्रत्यक्षम्, स्मृत्यादिज्ञानवत्, इन्द्रियज्ञानमपि तथा' इति व्यापकविरोधप्रसङ्ग उक्तः। ननु स द्रव्यसतामेव परमाणूनामाकारः, त एव हि परस्परोपकारकाः तथा प्रतिभासन्त इति नानाकारार्थवादे कदाचिदसिद्धत्वमुच्येत इत्याशङ्कायामाह—**इष्टमित्यादि**। **इष्टमिति** अभ्युपगमे। **नीलाद्याभासविज्ञानेषु 'ततोऽर्थात्'** इत्यस्माल्लक्षणाद् भवन्मतेन प्रत्यक्षत्वं भवति। कस्मादित्याह—**तथाहीत्यादि**। **तेष्विति** नीलाद्याभासज्ञानेषु [दे' छोगस्' प' ल' बतग्स्' पर् योद्' न' यङ्' शेस्' प' VT =] **तत्समुदाये प्रज्ञप्तिसत्यपीति** नीलादिपरमाणुसमुदाये। यद्यपि स प्रज्ञप्तिसन् तथापि नीलपीतादिज्ञानेषु **द्रव्यसदाकारो लभ्यते** भवदभिमतन्यायेन। अथवा **तेषु** इति नीलादिपरमाणुषु द्रव्यसदाकारो लभ्यते। **द्रव्यसंख्याद्याकारेष्वपि लभ्य(प्स्य?)ते**। यदि परमाण्वाकारत्वात् समुदायाकारस्य परमार्थसत्त्वं द्रव्यसंख्यादीनामपि परमाण्वाकारत्वात् परमार्थसत्त्वं स्यात्। ततश्च तदाकाराणि विज्ञानानि [पृ० ४२ A] प्रत्यक्षाभासाभिमतान्यपि प्रत्यक्षाणि स्युः। तत्रापि अयं न्यायो वक्तुं शक्यते यः **त एवे**त्यादिरुक्तः [पृ० ४२ B]।"—**विशाला०**। ६ तुलना—**नयचक्रवृत्ति**. पृ० ९८ पं० ४,१९। ७ तुलना—**नयचक्र**-वृत्ति. पृ० ९८ पं० २,६,१५,२३। ७ "**अथ यथे**त्यादि पक्षान्तरमुपन्यस्यति। [दे' ल्तर् ग्युर्' न' शेस्' प' ल' सोग्स्' प' नि' VT.=] **तथा सति** इत्यादि। द्रव्यादिषु यद् ज्ञानं तस्य प्रत्यक्षत्वप्रसङ्गो नास्तीत्यर्थः। कस्मादित्याह—[दे' ल्तर्' दे' नंमुस्' शेस्' प' ल' सोग्स्' प' स्ते VT=] **तथा ते** इत्यादि। **तथा** इति घटादिरूपेण [दे' नमुस्' शेस्' प' VT.=] **ते** इति द्रव्यादयः। ते नीलादिपरमाणुवत् तत्त्वतोऽसन्तः। 'घटज्ञानम्, द्वित्वज्ञानम्' इति तैरपि ज्ञानं व्यपदिश्यते, ततश्च न तदुत्पत्तिः, तेषां तत्त्वतोऽसत्त्वात्। तस्मान्न तज्ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वप्रसङ्गः। संवृतिसदालम्बनत्वमप्यसिद्धम्, यस्मात् स्वरूपेण परमाण्वालम्बनत्वे इन्द्रियज्ञानं संवृतिसदालम्बनं न भवति। तर्हि को दोष इत्याह—**तर्हि** इत्यादि। **नेत्यादिना** तत्रैवोपपत्तिमाह। यदि परमाणुषु प्रत्येकं ज्ञानं स्यात् तथा सति एकैकेन परमाणुना तद्व्यपदेशः स्यात्, ततश्च ते प्रत्येकं ज्ञानस्य कारणं तैश्च प्रत्येकं तद्व्यपदेशः स्यादिति तदालम्बनज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वं लभ्येत। तथा च नास्ति। तस्माद् **येन तस्य व्यपदेश इत्येतन्न लभ्यते**। अथ संघाताभासत्वात् 'तस्य व्यपदेशः' इष्यते, परमाणवोऽपि संघातावस्था एव परस्परोपकारका ज्ञानस्य हेतवः, तस्माद् येन तद्व्यपदेशः तत एव जन्म इति नीलादिज्ञानानां प्रत्यक्षत्वं सिद्धमित्याह—**प्रत्येकं चे**त्यादि। संघातावस्थायामपि प्रत्येकमेव हेतुभावः, न समुदायस्य [पृ० ४२ B] इत्यर्थः। तेन '**येन तस्य व्यपदेश इत्येतन्न लभ्यते**' इति स एव प्रसङ्गः। **यदाभासा न सा तस्मा**दिति समुदायाभासा। कस्मान्न भवतीत्याह—**चितालम्बं हि पञ्चक**मिति, समुदायाभासमित्यर्थः। करणकारकं कृत्वा आभास आलम्बनशब्देन उच्यते। [गङ्' लस्' दे' नि' दोन्' दम्' पर् VT.=] **यतः सा परमार्थेने**ति परमाणुतः। [दे' ल' थ स्नद्' दु' म' ब्यस् VT.=] **तत्र(स्?) न व्यपदिश्यते** इति, अतदाभासत्वेन तदप्रतीतत्वात्।"—**विशाला०** पृ० ४३ A। ८ * * तुलना—**नयचक्रवृत्ति** पृ० ९९ पं० ६,२७, पृ० १०१ पं० ९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न[1] तत्समुदायः प्रज्ञप्तिसत्त्वात् । त[2]देवाह —

य[3]दाभासा न सा[4] तस्माच्चितालम्बं हि पञ्चकम् ।
यतः सा परमार्थेन तत्र न व्यपदिश्यते ॥ १५ ॥

[इत्यान्तरश्लोकः PSV².] । चक्षुरादीनामप्यालम्बनत्वप्रसङ्गः । तेऽपि हि परमार्थतोऽन्यथा विद्यमाना नीलाद्याभासस्य द्विचन्द्राद्याभासस्य च ज्ञानस्य कारणीभवन्ति ।

卐 दोन् ग्यि छ्सुल् ग्यिस् द्बेन् प यङ् ॥ ब्र्जोद् ब्य म यिन् युल् ऽदिऽि यङ् ॥
स्प्य यि छ्सुल् ग्यिस् ब्स्तन् पर् ब्य ॥ देस् न थ स्न्यद् दु मि ब्य ॥ १६ ॥ 卐 PS².

दोन् ग्यि छ्सुल् ग्यिस् द्बेन् प यङ् ब्र्जोद् ब्य म यिन् । शेस् प *[5]थमूस् चद् दोन् ग्यि छ्सुल् दङ् ब्रल् न यङ् * थ स्न्यद् दु ब्य बर् मि नुस् सो ॥ युल् ऽदिऽि यङ् । स्प्य यि छ्सुल् ग्यिस् ब्स्तन् पर् ब्य ॥ देस् न थ स्न्यद् दु मि ब्य ॥ र्नम् पर् शेस् प ल्ङ र्नमूस् क्यि युल् [नि युल् PSV².] देऽि [स्प्य ऽि N. ed.] छ्सुल् ग्यिस् थ स्न्यद् दु ब्य ब यिन् ग्यि रङ् गि ङो बोऽि छ्सुल् ग्यिस् थ स्न्यद् दु ब्य ब नि म यिन् नो ॥ स्प्यिऽि ङो बोऽि छ्सुल् लस् (नस् PSV².) नि ग्सुग्स् ल सोग्स् प [ञिद् क्यि PSV².] थ स्न्यद् दु ब्येद् दो ॥[6] देऽि फ्यिर् र्नम् पर् शेस् प ल्ङ र्नमूस् क्यि युल् नि थ स्न्यद् दु ब्य बर् (बस् PSV².) मि नुस् सो शेस् ब्य ब नि र्जोद् प [7]स्ग्रुब् लऽो (पऽो N. ed.) ॥

रिग्स् प चन् र्नमूस् नि द्बङ् पो दङ् दोन् फ्रद् प लस् स्क्येस् पऽि शेस् प थ स्न्यद् दु ब्यस् प म यिन् प ऽखुल् प मेद् प शेन् पऽि ब्दग् ञिद् नि मूङोन् सुम् मो शेस् सेर् रो ॥[8] ऽदि यङ् रिग्स् प म यिन् ते ख्यद् पर् ऽदि दग् नि मि ग्शऽो । गङ् गि फ्यिर् ।

द्बङ् पो लस् ब्युङ् दोन् ब्लो लस् ॥ थ स्न्यद् ल सोग्स् ञिद् म यिन् ॥ [पृ० १७B] ।

† [9]ऽखुल् प ञिद् पऽि युल् ल नि ख्यद् पर् दु ब्य ग्रङ् न । थ स्न्यद् दु ब्य बऽि युल् ल नि

---

१ PSV². अनुसारेणैतत् । PSV¹ अनुसारेण तु '**न** तत्समुदायः प्रज्ञप्तिसन्' इति संस्कृतं भवेदिति भाति । २ अत्र 'तदेव आह' इत्यस्य स्थाने '**आह च**' इति यद्वा '**उक्तं च**' इति सम्यक् सम्भाव्यते, तुलना—टिपृ० १०३ पं० ११ टि० ९, टिपृ० १०४ पं० १० । ३ "ततोऽर्थाज्ज्ञानं प्रत्यक्षम्' इति तु लक्षणमेव ।......कथं तर्हि **आचार्येणोक्तं 'यदाभासा न सा तस्माच्चितालम्बं हि पञ्चकम्** । न हि परमाणुभ्य उत्पद्यमानं तदाकारं चक्षुरादिज्ञानम् । अन्याकारस्यापि विज्ञानस्य कारणत्वेनालम्बनत्वे **चक्षुरादिपरमाणूनामप्यालम्बनत्वप्रसङ्गः । तेऽपि हि** तथाऽन्यथा वा भवन्तो द्विचन्द्रनीलाद्याभासविज्ञानहेतुः' इति । परमार्थमधिकृत्योक्तमेतत् । लोकप्रसिद्ध्या तु **वादविवे(विधिव ?)**चनम् । लोके हि न परमाण्वादिकल्पना ।" — **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३३९ । "मानसं तदपीत्येके तेषां ग्रन्थो विरुध्यते । नीलद्विचन्द्रादिधियां हेतुरक्षाण्यपीत्ययम् ॥२।२९४॥ **तद्** द्विचन्द्रादिज्ञानं **मानसं** मनोभ्रम **इत्येके** आचार्याः । **तेषा**मेवंवादिनां **नील**द्विचन्द्रादिधियामक्षाण्यपि **हेतु**रित्येतदर्थवाचको ग्रन्थो विरुध्यते । ग्रन्थः पुनरयं याव**च्चक्षुरादीनामप्यालम्बनत्वप्रसङ्गः । तेऽपि हि परमार्थतोऽन्यथा विद्यमाना नीलाद्याभासस्य द्विचन्द्राद्याभासस्य च ज्ञानस्य कारणीभवन्तीति** । स्यादेतत्—मानसस्य प्रत्यक्षस्येन्द्रियं पारम्पर्येण हेतुः, तेन विरोधाभावश्चेत्, **वादविधि**प्रकरणे इन्द्रियज्ञानस्य प्रत्यक्षस्य गोचरे विचार्यमाणे मानसस्य विकल्पस्येहावसरे कीदृशः प्रस्तावः येन परम्परया तद्धेतुरिन्द्रियमुच्यते ।" — **प्र० वा० म०** पृ० २०६–२०७ । "तेषां ग्रन्थविरोधः । '**य**द्यपीन्द्रियविज्ञप्तेः **कारणं परमाणवः** । अतदाभतया **नास्या अक्षवद् विषयोऽणवः** ॥ १ ॥ [**आलम्बनपरीक्षा**], त एव हि चक्षुरादिपरमाणवः तथाऽन्यथा च भवन्तो द्विचन्द्रनीलाद्याभासहेतवः ।' द्विचन्द्रप्रतिभासस्य हि मानसत्वे नेन्द्रियहेतुतोक्तिः समर्था ।" — **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३३६। **४ सा** विज्ञप्तिरित्यर्थः । इयं कारिका कुतश्चिदन्यस्माद् ग्रन्थादत्रोद्धृता प्रतीयते । ५ * * "थमूस् चद् क्यि दोन् ग्यि ङो बो लस् ग्शन् दु" – PSV² । ६ PSV² मध्ये "देऽि फ्यिर्" नास्ति । ७ "ब्स्ग्रुब् पऽि ऽो ॥" – PSV². । ८ "ऽदिर् यङ् ख्यद् पर् र्नमूस् रिग्स् प म यिन् ते । गङ् गि फ्यिर् ।" – PSV² । ९ "ऽखुल् प ञिद् प योद् प ल नि ख्यद् पर् दु ब्य ग्रङ् न । द्बङ् पोऽि ब्लो ल ब्स्तन् पर् ब्य बऽि युल् ञिद् ञिद् प म यिन् ते । ब्स्तन् पर् ब्य ब नि जैस् सु द्पग् पऽि युल् यिन् पऽि फ्यिर् रो ॥ बस्तन् पर् ब्य ब यिन् प ञिद् ल यङ् ऽखुल्

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

[1]जेंस् सु द्पग् प लस् यिन् गिय। द्बङ् पोऽि ब्लो नि थ स्नद् किय युल् जिद् दु स्निद् प म यिन् ते। [2]देऽि फियर् म ऽखुल् पऽि ख्यद् पर् ब्स्तन् पर् मि ब्य ब जिद् दो॥ द्बङ् पोऽि ब्लो थ स्नद् दु ब्य बर् मि नुस् प देऽि फियर् ख्यद् पर् दु ब्य ब [पृ० १८ A] (छिग्स् ख्यद् पर् गिय छिग् N. ed.) मि ब्य ब जिद् दो॥ ऽखुल् पऽि ख्यद् पर् जिद् क्यङ् स्निद् प म. यिन् ते। ऽखुल् प नि यिद् ल स्ते। दे [3]ऽखुल् पऽि युल् चन् यिन् पऽि फियर् रो॥

[4]अर्थरूपविविक्तं च [5]नोच्यते, विषयोऽस्य च।
सामान्यरूपनिर्देश्यः, [6]तस्मान्न व्यपदिश्यते॥ १६॥

अर्थरूपविविक्तं च नोच्यते। सर्वं ज्ञानमर्थरूपरहितं व्यपदेष्टुं न शक्यते। **विषयोऽस्य च सामान्यरूपनिर्देश्यः तस्मान्न व्यपदिश्यते।** पञ्चानां विज्ञानानां विषयः तत्सामान्यरूपेण व्यपदिश्यते, स्वरूपेण तु न व्यपदिश्यते। सामान्यरूपेण [7]रूपादित्वेन व्यपदिश्यते। तस्मात् पञ्चानां विज्ञानानां विषयो व्यपदेष्टुं न शक्यते इति [8]वादविधिः।

[9]**नैयायिकानाम् इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्**

प योद् प म यिन् ते। द्बङ् पोऽि ब्लो थमूस् चद् (थ स्नद् ?) दु ब्य बर् मि नुस् प देऽि फियर् ख्यद् पर् गिय छिग्स् सु मि ब्य ब जिद् दो॥ ऽखुल् पऽि युल्. जिद् वियस् स्निद् प म यिन् ते। यिद् किय युल् नि ऽखुल् पऽि युल् यिन् पऽि फियर् रो॥"–PSV[2]। † 'ख्यद् पर् नि' शेस् प ल सोग्स् प स्ते।"–VT. पृ० ४४ B।

१ 'जेंस् सु द्पग् पऽि युल् जिद् किय फियर्' शेस् प ल सोग्स् प स्ते।–VT. पृ० ४५ A। २ 'थ स्नद् दु ब्य ब म यिन् प जिद् लऽङ् ऽखुल् प मेद् प स्ते' शेस् प स्ते।"–VT. पृ० ४५ A। ३ 'खुल् पऽि युल् जिद् ल यङ् म यिन् ते।' स्निद् प योद् प. शेस् जेंस् सु ऽजुग् गो॥ 'यिद् नि ऽखुल् पऽि युल् जिद् किय फियर्' शेस् प ल सोग्स् प स्ते।–VT. पृ० ४५ B। ४ तुलना–"घटज्ञानमिति ज्ञानं घटज्ञानविलक्षणम्। घट इत्यपि यज्ज्ञानं विषयोपनिपाति तत्॥ यतो विषयरूपेण ज्ञानरूपं न गृह्यते। **अर्थरूपविविक्तं च स्वरूपं (तद्रूपम्–**इति पाठान्तरम्) नावधार्यते॥"–**वाक्यपदीय.** ३।१।१०५,१०६। "**अर्थ**रूपविविक्तमित्यादि। सर्वस्य ज्ञानस्य 'रूपज्ञानम्' 'शब्दज्ञानम्' इति विषयेण निर्देशो दृश्यते, [युल् गिय छुल् दङ् ब्रल् ब नि VT.=] विषयरूपरहितं तद् व्यपदेष्टुं न शक्यते। ननु ज्ञानस्य 'बुद्धिः' इति विषयाभावेऽपि व्यपदेशो दृश्यते इति चेत्, न, आशयापरिज्ञानात्। अत्र च क आशय इति चेत्, विषयसम्बन्धित्वमर्थरूपेण विविक्तं वक्तुं न शक्यते इत्याशयः। तथाहि–'येनार्थेन यद् ज्ञानं व्यपदिश्यते यदि तत एव तज्जायते' इति विषयेण विचारस्य प्रस्तुतत्वम्, अन्यथा 'ज्ञानम्' इति दर्शितमेव। अथैवं ब्रूयात्–तर्हि तदा विषयरूपेण अस्य व्यपदेशः स्यादित्याह–[ऽदि यङ् युल् शेस् प स्ते VT.=] **विषयोऽस्य चे**ति। **सामान्यरूपेण** रूपत्वादिना **निर्देश्यः**। सामान्यं च आरोपबुद्धिस्थमेव, इन्द्रियविषयाभिमतवस्तुनि नास्ति, तत् कथं तस्मिन् व्यपदिष्टे तद् व्यपदिष्टं स्यात्? ततो 'येन व्यपदिश्यते' इति तन्न संभवतीति दर्शयितुमाह–[देऽि फियर् थ स्नद् दु मि ब्य॥ शेस् पऽो VT.=] **तस्मान्न व्यपदिश्यते** इति। [पृ० ४३A]। ततश्च बाह्यार्थाश्रिता प्रमाणादिव्यवस्था न युक्तेति स्थितमेतत् [पृ० ४३B]।"–**विशाला०**। ५ **'न वाच्यम्'** इत्यपि संस्कृतं स्यात्। ६ PS[1-2] PSV[1-2] अनुसारेण **'तेन न'** इति **'ततो न'** इति वा संस्कृतमपि स्यादत्र। ७ **'रूपादि'** PSV[1]। ८ **"वादविधौ"**–PSV[1] [c. ed.]। ९ "[रिग्स् प चन् नंमूस् किय नि शेस् प VT=] **नैयायिकाना**मिति।········इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमित्यादि। इन्द्रियाणि [पृ० ४३B] घ्राण-रसन-चक्षुः-त्वक्-श्रोत्राणि। अर्थाः पञ्च गन्धादयः, तदाश्रिताः कर्मसत्तादयः। तेषां सन्निकर्षः सम्बन्धः। स पञ्चविधः–संयोगः संयुक्तसमवायः संयुक्तसमवेतसमवायः समवायः समवेतसमवायः।······[पृ० ४४ A]······तत उत्पन्नं नाभिव्यक्तम्। ज्ञानं प्रत्यक्षम्। ज्ञानवचनं सुखादिव्यवच्छेदार्थम्। व्यपदेश्यः [स्ब्योर् बर् रुङ् ब ल सोग्स् पऽि तंग्स् वियस् VT=] प्रयोगयोग्यतादिलिङ्गेन (?) ज्ञेय इति व्यपदेश्यो विषयः। न विद्यते व्यपदेश्यो विषयोऽत्रेत्यव्यपदेश्यम्। अथवा तदेव ज्ञानमव्यपदेश्यमनिर्देश्यमित्यव्यपदेश्यम्। मरीचिकादिर्विषयो व्यभिचारी, यथा जलादिरूपेण गृह्यते तथाऽसत्त्वात्। न विद्यते व्यभिचार्यत्रेत्यव्यभिचारि। अथवा तदेव ज्ञानमतस्मिंस्तद्ग्रहणाद् व्यभिचारि। व्यवसाय आत्मा अस्येति व्यवसायात्मकम्। आत्मशब्दः स्वरूपवाचकः [ऽब्रस् बु VT=] फलवाचको वा।······**इन्द्रियार्थोद्भव** इति। उद्भवत्यस्मादित्युद्भवः। इन्द्रियार्थ उद्भवोऽस्येति विग्रहः। इन्द्रियार्थवचनं तत्सन्निकर्षोपलक्षणार्थम्। **नास्ति**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[न्यायसू० १।१।४] इति, [1]अत्रापि विशेषणान्ययुक्तानि । यस्मात्

[2]इन्द्रियार्थोद्भवे नास्ति व्यपदेश्यादिसम्भवः ।

विशेषणं व्यभिचारसम्भवे सति क्रियेत । इन्द्रियबुद्धौ व्यपदेश्यविषयत्वस्य न सम्भवः, [3]अनुमानविषयत्वाद् व्यपदेश्यस्य । अव्यपदेश्यत्वेऽपि न व्यभिचारः, इन्द्रियबुद्धिः व्यपदेष्टुं न शक्यते । तस्माद् विशेषणवचनं नैव कर्तव्यम् । व्यभिचारिविषयत्वेऽपि न, [4]मनोभ्रान्तिविषयत्वाद् व्यभिचारिणः ।

× × × × × × × × × × × × × × ×

卐 अर्' दङ्' ब्चस्' प' ऽजिन्' प' दङ्' ॥ शेस्' प' ल्हग्' पऽम्' मि' थोब्' ऽग्युर् ॥ १७ ॥
[5]तैन्' लस्' द्बङ्' पो' फियर्' मिन्' पर्' ॥ [···[6]देर्' ग्सो' ब' ल' सोगस्' प' ल' रब्' तु' स्ब्योर्' बऽि' फियर्' रो॥
······फिय' रोल्' तु' ऽफो' ब' ब्देन्' दु' छुग्' न' यङ्' PSV] युल्' ल' ऽजिन्' पर्' नुस्' म' यिन् ॥
[[7]ग्शन्' दु' न' तैन्' ब्स्ग्रिब्स्' क्यङ्' युल्' ऽजिन्' पर्' ऽग्युर्' रो ॥ PSV]

व्यपदेश्यादिसम्भव इति । 'आदि'वचनाद् व्यभिचारित्वं व्यवसायात्मकत्वं च । यदि नास्ति, विशेषणायोगः कस्मादिति चेत्······**विशेषण**मित्यादि । यदि अव्यपदेश्यादिस्वरूपमितरस्वरूपं च इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानं स्यात् ततो विशेषणत्रयमिदं युज्येत । अथवात्र 'अव्यपदेश्यमव्यभिचारि' इति विशेषणद्वयं सम्भवत्येव, न व्यभिचरति । व्यवसायात्मकं न सम्भवत्येव । तदेव च विशेषणं भवति यत् तत्राश्रये भवति तत्रासत्त्वात् तत्र च व्यभिचरति यथा उत्पलनीलत्वादि । पृ० ४४B] **न इन्द्रियबुद्धौ सम्भवती**ति यदा बहुव्रीहिपक्षस्तदेदमुच्यते । अनेन व्यपदेश्यत्वासम्भवेन अव्यपदेश्यत्वस्याव्यभिचारो दर्श्यते । कुत इत्याह–**अनुमानविषयत्वा**दित्यादि । व्यपदेश्यं सामान्यम्, न तु स्वलक्षणम् तस्य पूर्वमदृष्टत्वात् । तच्च सामान्यमनुमानस्यैव विषयः, धूमादिभिः पूर्वदृष्टसाधारणस्याग्न्यादेरनुमानात्; न प्रत्यक्षस्य, तस्यासाधारणविषयत्वात् । अथापि विषयोऽव्यपदेश्यो भवतु मा वा तथापि ज्ञानं व्यपदेश्यम् । अतो व्यपदेश्यत्वमस्ति, ततश्च व्यभिचारात् 'अव्यपदेश्यत्वं' विशेषणं युज्यते इति चेत्, अत्रापि तदेव ज्ञानं स्वरूपेण यदनिर्देश्यं, तस्य अव्यपदेश्यत्वं युज्यते इत्याह–**अव्यपदेश्यत्वेऽपि न व्यभिचार** इति । कुत इत्याह–**इन्द्रियबुद्धि**रित्यादि । सर्वं ज्ञानमव्यपदेश्यस्वरूपमेवेति अव्यपदेश्यत्वे व्यभिचारोऽपि नास्त्येव ।······अनेन तत्पुरुषपक्षेऽपि दोष उक्तः [पृ० ४५A] ।···**व्यभिचारिविषयत्वेऽपि न** सम्भव इत्यनुवर्तते । **मनोभ्रान्तिविषयत्वा**दित्यादि । व्यभिचारः तथा असद्भावः । यथा अनेन उपलभ्यते तथा स नास्त्येव, यथा मरीचिकादिर्विषयः । स च यस्मिन् ज्ञाने स्वरूपेण भासते तदपेक्षया अव्यभिचारिभूत एव । यस्मिन् ज्ञानेऽतथारूपेण प्रतिभासते तदेव प्रति तस्य व्यभिचारित्वम् । मनोविज्ञानभ्रान्तौ च स तथा प्रतिभासते । तथाहि–अजलादिस्वरूपभूतेऽपि समुदाये जलादिस्वरूपाध्यवसायिनी मनोभ्रान्तिरुत्पद्यते । तस्मात् तत्कल्पितत्वात् तस्या एव स विषयः, न इन्द्रियज्ञानस्य । तस्मात् तद्व्यवच्छेदार्थम् [ऽखुल्' प' मेद्' प' स्मोस्' पर्' ब्य' ब' म' यिन्' नो VT=] 'अव्यभिचारि'वचनं न कर्तव्यम् ।···इदं बहुव्रीहिमधिकृत्योक्तम् । यदा [पृ० ४५B] तदेव ज्ञानं स्वयमव्यभिचारि इति तत्पुरुषः परैराश्रीयते तदा इत्थं वक्तव्यम्–अव्यभिचारित्वे न व्यभिचार इति । इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानं न व्यभिचारि, मनोविज्ञानस्यैव व्यभिचारित्वात् । द्विचन्द्रादिज्ञानं 'सन्निकर्षोत्पन्न'वचनेनैव निराकृतम् । **आचार्येणा**त्र तत्पुरुषपक्षे दोषो नोक्तो दिङ्मात्रदर्शनेनैव पूर्वानुसारेणावगम्यत इति कृत्वा [पृ० ४६ A]"–**विशाला०** ।

१ अत्र PSV[1] अनुसारेण "इदमप्ययुक्तम् । इमानि विशेषणानि न युज्यन्ते" इति संस्कृतं स्यात् । २ "तथा चोक्तम्–**इन्द्रियार्थोद्भवे नास्ति व्यपदेश्यादिसम्भवः** ।"–**प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३३८ । ३ PSV[2], VT अनुसारेणायमनुवादः । ४ "तथा चाह–**मनोभ्रान्तिविषयत्वाद् व्यभिचारिणः** ।"–**प्र० वार्तिकालं०** पृ० २५३, ३३८ । ५ "तैन्' लस्' फियर्' द्बङ्' ऽफो' मिन्' फियर्"—PS[2], PSV[2] । ६ [ ] एतादृशचिह्नान्तर्गतः पाठः PS मध्ये नास्त्येव, PSV मध्येऽपि गद्यरूपेणैवोपलभ्यते, तथापि **न्याय**वार्तिकतात्पर्यटीकया 'तच्चिकित्सादियोगतः सत्यपि च बहिर्भावे' इति कारिकांशस्य सूचितत्वादत्रास्माभिरुपन्यस्तः । PSV मध्ये कारिकांश एव भ्रान्त्या गद्यत्वेनानूदितो भाति । यतश्च PSV' मध्यात् पृथक्कृत्य PS समुद्धृतोऽत एव PS मध्येऽपि क्वचित् त्रुटिरत्रायातेति सम्भाव्यते । ७ [ ] एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठः PSV मध्ये गद्यरूपेणैव वर्तते, तस्य च **तत्त्वार्थराज**वार्तिकानुसारेण **'अन्यथा अधिष्ठानपिधानेऽपि विषयग्रहणप्रसङ्गः'** इत्येव संस्कृतं भवति तथापि **न्याय**वार्तिकतात्पर्यटीकायां 'यदि च स्यात् तदा पश्येदप्युन्मील्य

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

ब्दे' सोग्स्' ग्सल्' ब्य' मिन्' प' ऽम् ॥ द्बङ्' पो' ग्शन्' योद्' यिद्' द्बङ्' पो ॥
ब्कग्' प' मेद्' पऽि' फ्यिर्' थोब्' बे' न ॥ द्बङ्' पो' ग्शन्' ग्यि' स्य्र' दोन्' मेद् ॥ 卐

सं. [1]सान्तरग्रहणं न स्यात् [2]प्राप्तौ ज्ञानेऽधिकस्य च ॥ १७ ॥
अधिष्ठानाद् बहिर्नाक्षं [तच्चिकित्सादियोगतः ।
सत्यपि च बहिर्भावे] न शक्तिर्विषयेक्षणे ॥ १८ ॥
[यदि च स्यात् तदा पश्येदप्युन्मील्य निमीलनात् ।]
[3]न सुखादि प्रमेयं वा मनो वास्तीन्द्रियान्तरम् ॥ १९ ॥
अनिषेधादुपात्तं चेदन्येन्द्रियरुतं वृथा ।

× × × × × × ×

निमीलनात्' इति भासमानस्य कारिकार्धस्य सूचकत्वादेवात्रास्माभिरयं PSV पाठ उपन्यस्त इति ध्येयम् । PS PSV मध्येऽत्र काचित् त्रुटिराशङ्क्यते ।

१ एतत् सार्धकारिकाद्वयं वृत्तिं विना मूलमात्रमेवात्रास्माभिरुपन्यस्तमिति ध्येयम् । तुलना–"यथोक्तं **दिङ्नागेन–सान्तरग्रहणं न स्यात् प्राप्तौ ज्ञानेऽधिकस्य च ।** बहिर्वर्तित्वादिन्द्रियस्य उपपन्नं सान्तरग्रहणमिति चेत्, अत उक्तम्–**अधिष्ठानाद् बहिर्नाक्षम्,** किन्तु 'अधिष्ठानदेश एवेन्द्रियम्' [PSV] । कुतः ? **तच्चिकित्सादियोगतः । सत्यपि च बहिर्भावे न शक्तिर्विषयेक्षणे । यदि च स्यात् तदा पश्येदप्युन्मील्य निमीलनात् ।** यदि च स्यात्, उन्मील्य निमीलितनयनोऽपि रूपं पश्येत्, उन्मीलनादस्ति बहिरिन्द्रियमिति ।"–**न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका** १।१।४। पृ० ११८ । "किञ्च, यदि प्राप्यकारि चक्षुः स्यात् सान्तराधिकग्रहणं न प्राप्नोति [1]**न हीन्द्रियनिरन्तरे विषये गन्धादौ सान्तरग्रहणं दृष्टम्, नाप्यधिकग्रहणम् । अथ मतम्–बहिरधिष्ठानाद् वृत्तिरिन्द्रियस्य, अत उपपन्नं सान्तराधिकग्रहणमिति तदयुक्तम्, यस्माद्** [PSV] न बहिरधिष्ठानादिन्द्रियम्, तत्र चिकित्सादिदर्शनात् । **अन्यथा अधिष्ठानपिधानेऽपि ग्रहणप्रसङ्गः** [PSV] । मनसश्चाबहिर्भावात् । मनसाधिष्ठितं हीन्द्रियं स्वविषये व्याप्रियते । न च मनो बहिरधिष्ठानादस्ति । तदभावादग्रहणप्रसङ्गः । अनुवृत्तौ च सम्भवाभावात् विप्रकीर्णं चक्षूरश्मिसमूहं कथमणुमनोऽधिष्ठास्यति ।" –**तत्त्वार्थरा०** १।१९, पृ०६८ । २ इन्द्रियाणां प्राप्यकारित्वे **सान्तरस्य** विच्छिन्नस्य इन्द्रियासम्बद्धस्य **अधिकस्य** पृथुतरस्य च ग्रहणं ज्ञाने न स्यादित्याशयः । ३ "आत्मादिषु सुखादिषु च प्रत्यक्षलक्षणं वक्तव्यम् । अनिन्द्रियार्थसन्निकर्षजं हि तदिति । इन्द्रियस्य वै सतो मनस इन्द्रियेभ्यः पृथगुपदेशो धर्मभेदात् ।·········मनसश्चेन्द्रियभावात् तत्र वाच्यं लक्षणान्तरमिति । तन्त्रान्तरसमाचाराच्चैतत् प्रत्येतव्यमिति । परमतमप्रतिषिद्धमनुमतमिति हि तन्त्रयुक्तिः ।"–**न्यायभाष्य.** १।१४। "तन्त्रान्तरसमाचाराच्च । तन्त्रान्तरे मन इन्द्रियमिति पठ्यते । तच्चेह न प्रतिषिध्यते । अप्रतिषेधादुपात्तं तदिति । न, शेषाभिधानवैयर्थ्यात् । **अनिषेधा**दिति । [2]**अथ मतान्तरानिषेधेन सिद्धस्य मनस इन्द्रियत्वाप्रतिषेधादुपात्तं तदिति चेत्**

---

1 "फ्रद्' नस्' स्क्ये' ब' मूङोन्' सुम्' दु' ऽदोद्' ग्सुग्स्' दङ्' स्प्र' दग् ॥ बर्' दङ्' ब्चस्' पर्' ऽजिन्' प' दङ् ॥ शेस्' प' ल्हग्' पऽम्' मि' थोब्' ऽग्युर् ॥ द्रि' ल' सोग्स्' प' नि' युल्' दङ्' द्बङ्' पोऽि' बर्' मेद्' प' स्ते' । बर्' दङ्' ब्चस्' प' म' यिन्' ध' ब्शिन्' दु' ऽजिन्' प' म्थोङ्' मोद्' क्यि । द्बङ्' पो' ल्हग्' पर्' ऽजिन्' प' नि' रिग्स्' प' म' यिन्' नो ॥ गल्' ते' फ्यि' रोल्' दु' ऽजुग्' पऽि' फ्यिर्' ऽथद्' प' ञिद्' दो ॥ द्बङ्' पो' ग्नस्' क्यि' नि' तेंन्' लस्' फ्यि' रोल्' दु' ऽजुग्' प' स्ते । देस्' न' युल्' दे' बर्' दङ्' ब्चस्' प' दङ्' ल्हग्' म' ऽजिन्' पऽङ्' ऽथद्' प' यिन्' नो' शे' न । दे' यङ्' रिग्स्' प' म' यिन्' ते । गङ्' गि' फ्यिर् । तेंन्' लस्' फ्यिर्' द्बङ्' ऽफो' मिन्' पर् ॥ ग्रुब्' बो' शेस्' ब्य' ब' नि' छिग्' गि' ल्हग्' मऽो ॥ द्बङ्' पो' नि' तेंन्' ग्यि' युल्' ञिद्' न' ग्नस्' प' स्ते । दे' ल' ग्सो' ब' ल' सोग्स्' प' रब्' तु' स्ब्योर्' बऽि' फ्यिर्' रो ॥ देस्' न' द्बङ्' पो' खो' नस्' बर्' दु' छोद्' पऽि' दोन्' ऽजिन्' पर्' ब्येद्' दो ॥ द्बङ्' पो' फ्यि' रोल्' तु' ऽफो' ब' ब्देन्' दु' छुग्' न' यङ् । युल्' ल' ऽजिन्' पर्' नुस्' म' यिन् ॥ ग्शन्' दु' न' तेंन्' ब्स्ग्रिब्स्' क्यङ्' युल्' ऽजिन्' पर्' ऽग्युर्' रो ॥"–PSV[2] पृ० १०१ A–B । तुलना PSV[1] पृ० १८ B ।

2 "जि' स्ते' यङ्' ग्शन्' ग्यि' ऽदोद्' प' ल' म' ब्कग्' प' ब्स्ग्रुब्' प' ल' यिद्' क्यि' द्बङ्' पो' ञिद्' ब्कग्' प' मेद्' पऽि' फ्यिर्' थोब्' प' ञिद्' दो' शे' न । ग्शन्' ग्यि' ऽदोद्' प' ल' नि' यिद्' क्यि' द्बङ्' पो' योद्'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेर्' स्क्य' ब' नॅमूस्' क्यिस्' नि' (क्यि' यङ्' PSV^{2}) नॅ' ब' ल' सोग्स्' पऽि' ऽजुग्' प' मूङोन्' सुम्' दु' ऽदोद्' दो ॥ नॅ' ब' दङ्' पग्स्' प' दङ्' मिग्' दङ्' ल्चे' दङ्' ल' नॅमूस्' यिद्' क्यिस्' ब्यिन्' ग्यिस्' बर्लॅब्स्' नस्' युल्' ल' ऽजुग्' प' स्ते । स्ग्र' दङ्' रग्' ब्य' दङ्' ग्सुग्स्' दङ्' रो' दङ्' [1]द्रि' द' ल्तर्' प' नॅमूस्' ल' गो' रिम्स्' ब्शिन्' दु' ऽजिन्' प' नि' मूङोन्' सुम्' ग्यि' छद्' मऽो' शेस्' सो [पृ० २१B] ॥

[2]कापिलानां * [3]श्रोत्रादिवृत्तिः प्रत्यक्षम्** [[4]वार्षगणतन्त्रे] । **श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानां मनसाधिष्ठिता वृत्तिः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु यथाक्रमं ग्रहणे वर्तमाना [5]प्रत्यक्षं प्रमाणम्*** [वार्षगणतन्त्रे तद्भाष्ये वा] इति ।

× × × × × × × × × × × × × × ×

[अथ द्वितीयस्य स्वार्थानुमानपरिच्छेदस्य कतिपयोंऽशः]

卐 जॅस्' द्पग्' नॅम्' ग्ञिस्' रङ्' दोन्' नि ॥ छुल्' ग्सुम्' तॅग्स्' लस्' दोन्' मृथोङ्' बऽो ॥

ऽब्रस्' बु' स्ङर्' ब्शिन्' ऽदि' ग्ञिस्' क्यि ॥ दोन्' (युल्' PS^{1} VT.) दङ्' रङ्' ब्शिन्' मूछुङ्स्' म' यिन् ॥ १ ॥ 卐

जॅस्' सु' द्पग्' नॅम्' ग्ञिस्' ते । रङ्' गि' दोन्' दङ्' ग्शन्' ग्यि' दोन्' तो ॥ दे' ल्तर्' (ल' PSV^{2}) रङ्' दोन्' नि । छुल्' ग्सुम्' तॅग्स्' लस्' दोन्' मृथोङ्' बऽो ॥ ऽछद्' पऽि' (पर्' PSV^{2}) ऽग्युर्' पऽि' मूछन्' ञिद्' ग्सुम्' पऽि' तॅग्स्' लस्' जॅस्' सु' द्पग्' पर्' ब्य' बऽि' (द्पग्' पऽि' PSV^{2}) दोन्' मृथोङ्' ब' नि' [गङ्' यिन्' प' PSV^{2}] दे' नि' रङ्' गि' दोन्' ग्यि' जॅस्' सु' द्पग्' पऽो ॥ ऽदि' यङ्' ऽब्रस्' बु' स्ङर्' ब्शिन्' ते ॥ जि' ल्तर्' *[6]मूङोन्' सुम्' लस्' तॉग्स्' प' नॅम्' प' ग्ञिस्' खो' न' ल' ब्रॅतॅन्' नस्' ऽब्रस्' बु' ब्शद्' प * दे' ब्शिन्' दु' ऽदिर्' यङ्' यिन् नो ॥ गल्' ते' ऽदि' ग्ञिस्' ग' यङ्' तॉग्' पऽि' मूछन्' ञिद्' चन्' यिन्' न' ऽदि' ग्ञिस्' (दग्' PSV^{2}) ल' ब्ये' ब्रग्' (ख्यद्' पर्' PSV^{2}) चि' शिग्' योद्' चे' न । युल्' (दोन्' PSV^{2}) दङ्' नि । ङो' बो' मूछुङ्स्' मिन्' दे' ग्ञिस्' क्यि' मूङोन्' सुम्' दङ्' जॅस्' सु' द्पग्' प' ग्ञिस्' क्यि' युल्' नि' थँ' दद्' प' स्ते । देऽि' नॅम्' प' दङ्' ब्ये' ब्रग्' गि' स्गो' नस्' सो ॥ रङ्' गि' ङो' बो' यङ्' [7]थ' दद्' प' यिन्' नो ॥ [पृ० २७A]

[PSV], अन्येन्द्रियेत्यादि । **यदि परेण पठितस्य मनसोऽप्रतिषेधादिन्द्रियत्वं 'घ्राणादीनि इन्द्रियाणि'** [न्यायसूत्र. १।१।१२] **इति यदुक्तं तद् वृथा** [PSV]"**—न्यायवार्तिक.** १।१।४। "तदिदमुक्तं **दिग्नागेन—न सुखादि प्रमेयं वा मनो वास्तीन्द्रियान्तरम्** । न च तत् सम्भवति घ्राणादिसूत्रेण विभागपरेण निषेधादिति **भावः** । ………**तन्त्रान्तरेति** । तन्त्र्यते व्युत्पाद्यतेऽनेन तत्त्वमिति तन्त्रं शास्त्रम् । तदनेन 'मनसश्च' इत्यादि भाष्यं व्याख्यातम् । तद्दूषितं **दिङ्**नागेन—**अनिषेधादुपात्तं चेदन्येन्द्रियरुतं वृथा ।"—न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका.** १।१।४, पृ० १४६–१४७।

१ "द्रि' नॅमूस्' ल' गो' रिम्' जि' ल्त' ब' ब्शिन्' दु' ऽजिन्' प' ल' ऽजुग्' प' नि' मूङोन्' सुम्' ग्यि' छद्' मऽो' शेस्' सेर्' ब ।"–PSV^{2} । २ "**कापिलानामपि**"–PSV^{2} । "**का**पिलानामित्यादि । तत्रोक्तम्—'किमनुमानमेकमेव प्रमाणम्? नेत्युच्यते । **श्रोत्रादिवृत्तिरपि प्रत्यक्षं** 'प्रमाणम्' इति शेषः । श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानां मनसाधिष्ठित वृत्तिः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु यथाक्रमं ग्रहणे वर्तमाना प्रत्यक्षं प्रमाणम् ।' **मनसेति** मनोवृत्तिः प्रकृतिविकारयोरभेदोपचारात् तथोच्यते । **अधिष्ठिते**ति तेन सह एकस्मिन् विषये वर्तमानेत्यर्थः । अत्र अधिष्ठितार्थः सहितार्थः । यथा राजपुरुषेणाधिष्ठिता वृत्तिः तेन सहितेति गम्यते ।"—**विशाला०** पृ० ६१B । ३ * * **नयचक्रवृ०** पृ० १०७ पं० २४–२५ । ४ दृश्यतां टिपृ० ३२ पं० २–९ । वस्तुतस्तु **वार्षगणतन्त्रस्यैव 'षष्टितन्त्रम्'** इति संज्ञा इत्यपि केचिदाहुः । दृश्यतां टिपृ० ४० पं० १–१० । ५ **विशाला०** पृ० १९८१ । **नयचक्रवृत्तौ 'प्रमाणं प्रत्यक्षम्'** इति पाठः । ६ * * "मूङोन्' सुम्' लस्' तॉग्' प' ग्ञिस्' ञिद्' लस्' ऽब्रस्' बुर्' ब्जॉद्' प"–PSV^{2} । ७ "थ' दद्' प' यिन्' ल । देऽि' नॅम्' पऽि-ख्यद्' पर्' चन्' ग्यि' (ग्यिस्' ?) रङ्' ब्शिन्' ङो' बो' यङ्' थ' दद्' प' यिन्' नो ॥"–PSV^{2} ।

~~~~~~

ल' रब्' न' दे' ल्त' न' नि । द्बङ्' पो' ग्शन्' ग्यि' स्ग्र' दोन्' मेद् ॥ गल्' ते' ग्शन्' ग्यिस्' स्म्रस्' पऽि' यिद्' ल' ब्कग्' प' मेद्' पऽि' फ्यिर्' द्बङ्' पो' यिन्' न' देस्' न' ल' सोग्स्' प' द्बङ्' पोर्' ब्जॉद्' दो ॥ शेस्' ब्स्तन्' प' दोन्' मेद्' पर्' ऽग्युर्' ते । ब्कग्' प' मेद्' प' ञिद्' लस्' दे' ग्रुब्' पऽि' फ्यिर्' रो ॥"—PSV^{2} पृ० १०१ B । तुलना PSV^{1} पृ० ९८ B ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org
~~~~~~

*अनुमानं द्विधा स्वार्थं त्रिरूपाल्लिङ्गतोऽर्थदृक् ।
पूर्ववत् फलमर्थः स्वरूपं चातुल्यमेतयोः ॥ १ ॥*

अनुमानं द्विधा स्वार्थं परार्थं च । तत्र **स्वार्थं त्रिरूपाल्लिङ्गतोऽर्थदृक्** । वक्ष्यमाणैस्त्रिलक्षणाल्लिङ्गाद् [यत् PSV[2]] अनुमेयार्थदर्शनं तत् स्वार्थमनुमानम् । अत्र च **पूर्ववत् फलम्** । यथा प्रत्यक्षेऽधिगतिद्वैविध्यमाश्रित्य फलमुक्तमेवमत्रापि । यद्युभयमपि अधिगतिलक्षणं कोऽनयोर्विशेषः ? **अर्थः स्वरूपं चातुल्यमेतयोः** । प्रत्यक्षानुमानयोर्विषयो भिन्नः । तदाकारविशेषाच्च स्वरूपमपि भिन्नम् ।

× × × × × ×

भोट. ग्रङ्स्' चन्' प' नंमूस्' नि' 'रे' शिग्' ऽब्रेल्' प' मूङोन्' सुम्' प' ग्चिग्' लस्' ल्हग्' पर्' ग्रुब्' प' नि' जेंस्' सु' द्पग्' पऽो' शेस्' सेंद्' रो ॥ दे' ल' (दे' ल्तर्' PSV[2])ऽब्रेल्' प' नि' नंमू' प' ब्दुन्' ते । 'दे' नंमूस्' [नस् N. ed.] गङ्' यङ्' रुङ्' बऽि' मूङोन्' सुम्' प' ग्चिग्' गिस्' ल्हग्' पऽि' दोन्' मूङोन्' सुम्' प' म' यिन्' प' ङेस्' पर्' ग्रुब्' पऽि' ग्तन्' छिग्स्' दे' नि' जेंस्' सु' द्पग्' पऽो ॥ [पृ० ३६ A]

सं. **साङ्ख्यानामपि 'सम्बन्धादेकस्मात् प्रत्यक्षाच्छेषसिद्धिरनुमानम्'** [वार्षगण्यकृततन्त्रे] इति । तत्र

---

१ * * "अनुमानं द्विधा स्वार्थं त्रिरूपाल्लिङ्गतोऽर्थदृक् । पूर्ववत् फलमर्थः स्वरूपं चातुल्यमेतयोः ॥ १ ॥ अत्र प्रमाणसमुच्चये द्वितीयपरिच्छेदश्लोके पूर्ववदिति प्रत्यक्ष इव विषयाधिगतिरूपं प्रमाणादव्यतिरिक्तं फलमनुमानेऽपि ज्ञेयम् । अर्थस्त्वालम्बनं प्रत्यक्षस्य स्वलक्षणम् । इतरस्य तु सामान्याकारोऽन्यापोहो विषयः । स्वरूपं च स्पष्टास्पष्टप्रतिभासमतुल्यं प्रत्यक्षानुमानयोरिति ।"— **प्र० वा० म० परि०** पृ० ५२४ । दृश्यतां टिप्पृ० ७४ टि० १ । २ °**त्रिरूपा**°—PSV[2] । ३ तुलना—"यत्तु विषयैकत्वतृष्णया भिक्षुणा ज्ञानमेव प्रमाणं फलं चेति प्रत्यक्षे दर्शयित्वा तदेवानुमानेऽप्यतिदिष्टं **पूर्ववत् फलमस्ये**ति तस्य निराकरणमपि प्रत्यक्षोक्तमेव ।"—**न्या० र०** पृ० ३६१ । ४ "**पूर्ववत् फल**मिति । यथा प्रत्यक्षे फलं द्विविधमुक्तं विषयसंवित्तिः स्वसंवित्तिश्च [इति] एवमत्रापि । प्रत्यक्षवदनुमानस्याधिगत्यात्मकं फलमभिन्नमिति वचनेन अनुमानमपि अधिगतिस्वरूपमित्युक्तं भवति । तत आशङ्कते—**यद्युभयमपी**त्यादि । [युल्' दङ्' नि' VT=] **अर्थः स्वरूपं चातुल्यमेतयो**रिति ।·········यत् तस्य विषयसारूप्यं प्रमाणव्यवस्थापकं तदतुल्यमित्युच्यते । तथाहि—प्रत्यक्षस्य स्पष्टम्, अनुमानस्य अस्पष्टम् ।"—**विशाला०** पृ० ८३B । ५ '**युल्**' इति शब्दस्य PS[1]· PSV[1]· VT. मध्येऽत्र प्रकरणे **अर्थ**पर्यायत्वेन प्रयोगादत्र '**अर्थः**' इत्यपि संस्कृतेऽनुवादः स्यात् । तथा च **विशालामलवत्या**मपि ज्ञेयम् । "**विषय** इत्यादौ '**विषय**'-शब्देनात्रालम्बनं विवक्षितम् ।······तस्मादालम्बनभेदात् प्रमाणयोर्विषयो भिन्न उच्यते । आलम्बनभेदोऽपि कथमिति चेत्, प्रतिभासभिन्नत्वात् ।···**तदाकारविशेषाच्चे**त्यत्र **त**दिति प्रत्यक्षानुमानयोर्विषयः [स्नेग्' गो VT.] अनुकृष्यते । तस्य आकारः स्वरूपम् [पृ० ८३B], आक्रियते परिच्छिद्यत इति कृत्वा । तदाकारस्य विशेषो भेद इत्यर्थः [पृ० ८४A] ।"—**विशाला०** । ६ "रे' शिग्"—PSV[2]. मध्ये नास्ति । ७ "दे' दग्' ल' जि' ल्तर्' ऽब्रेल्' प' ग्चिग्' लस्' ल्हग्' प' नि' मङोन्' सुम्' म' यिन्' पऽि' ऽब्रेल्' प' चन्' ग्रुब्' पऽि' ग्युं' गङ्' यिन्' प' दे' जेंस्' सु' द्पग्' पऽो ॥" — PSV[2]. । ८ दृश्यतां टिप्पृ० ७७ पं० २६–२८ । "[ग्रङ्स्' चन्' प' नंमूस्' क्यि' यङ्' शेस्' प' ल' सोग्स्' प' स्ते VT.=] **सांख्यानामपी**त्यादि । अनुमानं विस्तरेण वेदितव्यमिति स्थिते तत्स्वरूपज्ञानाय परेण 'किमिदमनुमानं नाम' इत्युक्ते आह—**सम्बन्धादेकस्मादि**त्यादि । **सम्बन्धः सप्तविध** इति । अर्थानां सम्बन्धस्य सप्तविधत्वं 'स्वस्वामिभावेन वा' [शेस्' प' ल' सोग्स्' प' ब्शद्' ऽग्रेल्' दु' ब्शद्' पऽि' फ्यिर्' रो VT.=] इत्यादि**भाष्य**वचनात् । 'सम्बद्धानामर्थानाम्' इति [वार्षगणतन्त्रभाष्ये] निर्देशात् **सूत्रे** कर्मसाधनः सम्बन्धशब्दो ज्ञेयः । स्वस्वामिभावेन चेति राजसेवकवत् प्रधान-

---

1 'सम्बन्धादेकस्मात् प्रत्यक्षाच्छेषसिद्धिरनुमानम्' इति वार्षगणतन्त्रसूत्रस्य 'सम्बद्धानामर्थानां स्वस्वामिभावेन वा प्रकृतिविकारभावेन वा कार्यकारणभावेन वा निमित्तनैमित्तिकभावेन वा मात्रामात्रिकभावेन वा सहचारिभावेन वा वध्यघातकभावेन वा कश्चिदर्थः कस्यचिदिन्द्रियस्य प्रत्यक्षो भवति । तस्मादिदानीमिन्द्रियप्रत्यक्षादर्थात् पूर्वं समुदाये कृतसम्बन्धमतिरविशिष्टस्यार्थस्यास्तित्वं प्रतिपद्यते, यथा पूर्वं धूमाग्न्योः सम्बन्धं दृष्ट्वा धूमदर्शनादग्नेरप्यस्तित्वं प्रतिपद्यते' इति **भाष्यं** प्रतीयते । दृश्यतां **न**यचक्रवृत्ति पृ० २४० पं० १२–१३ । तथा **नयचक्रस्याष्टमेऽ**प्यरे [पृ० ४४६–१] द्रष्टव्यम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्धः सप्तविधः । [1]तेषु य[2]थायोगमेकस्मात् प्रत्यक्षाच्छेषस्य अप्रत्यक्षस्यार्थस्य नियमेन सिद्धेः [यत् PSV^{2}] कारणं तदनुमानम् ।

× × × × × × × × × × × × × × ×

[अथ तृतीयस्य परार्थानुमानपरिच्छेदस्य कतिपयोंऽशः]

भोट.

ग्शन्' दोन्' जॆस्' सु' द्पग्' प' नि ॥ रङ्' गिस्' मथोङ्' दोन्' रब्' ग्सल्' ब्येद ॥

जिल्तर्' र[3]ङ्' गि' छुल्' ग्सुम्' पऽि' र्तगस्' लस्' र्तगस्' चन्' ग्यि' शेस्' प' स्क्येस्' प' दे' ब्शिन्' दु' ग्शन्' ल' [छुल्' ग्सुम्' पऽि' र्तगस्' लस्' PSV^{2}] र्तगस्' चन्' ग्यि' शेस्' प' ब्स्क्येद्' पर्' ऽदोद्' नस्' छुल्' ग्सुम्' पऽि' र्तगस्' ब्र्जोद्' प' नि' ग्शन्' ग्यि' दोन्' ग्यि' जॆस्' सु' द्पग्' प' स्ते । र्ग[4]यु' लस्' ऽब्रस्' बु' ब्तगस्' पऽि' फियर्' रो । ऽदिर्' यङ्' छुल्' गङ्' यङ् *र[5]ङ्' ब' चिग्' म' स्त्रस्' न' यङ्' म' छङ्' ब' ब्र्जोद्' पर्' ऽग्युर्' रो* ॥ *ग[6]ल्' ते' जॆस्' सु' द्पग्' पर्' ब्य' ब' स्तोन्' प' नि । दम्' ब्चऽ' ब' [ब्र्जोद्' पर् N] ब्य' स्ते । र्तोग्' गेऽि' ब्स्तन्' ब्चोस्' नॆमुस्' सु' ग्शन्' ग्यि' दोन्' ग्यि' जॆस्' सु' द्पग्' प' ऽगोद्' प' (ब्कोद्' प' PSV^{2}. VT) दे' जि' ल्तर्' यिन्' शे' न । दे' ञिद्' द्रि' बर्' ब्यऽो* ॥ खो' बो' चग्' नि ।

दे' ल' द्पग्' ब्य' ब्स्तन्' प' नि ॥ र्तगस्' क्यि' दोन्' ग्यि' युल्' दु' ऽदोद् ॥ १ ॥

पुरुषत्त्वच । उदाहरणद्वयं लोकशास्त्रप्रसिद्धिवशात् । एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम् [पृ० ११७ B] । स्वस्वामिभावोऽन्योन्यापेक्षः । [नोर्' ब्दग्' पोऽि' ङोर्' योद्' प' दङ्' । देर्' रुङ्' ब' ञिद्' दे । दे' ब्शिन् दु' नोर्' चन्' ग्यि' यङ्' नोर्' ग्यि' ङोर्' योद्' पऽो VT=] स्वस्य स्वामिनं प्रति सत्त्वं तद्योग्यत्वं च, एवं स्वामिनोऽपि स्वं प्रति अस्ति । प्रकृतिविकारभावेन क्षीरदध्यादिवत् प्रधानमहदादिवच्च । प्रकृतिरविभागं कारणम्, विकारस्तस्याः परिणामिन्या धर्मः । कार्यकारणभावेन अन्योन्योपकारलक्षणेन रथाङ्गवत् सत्त्वादिवच्च शब्दादिभावेन परिणामे । निमित्तनैमित्तिकभावेन [गङ्' यङ्' रुङ्' बस्' VT.=] अन्यतरोपकारलक्षणेन कुम्भकार-घटादिवत् पुरुष-प्रधानप्रवृत्तिवच्च । मात्रामात्रिकभावेन च अवयवावयविभावलक्षणेन वृक्ष-शाखादिवत् शब्दादि-महाभूतवच्च । सहचारिभावेन [ङुर्' ब' ल्त' बु VT=] चक्रवाकवत् सत्त्वादिवच्च । वध्यघातकभावेन अहिनकुलवत् अङ्गाङ्गिभूतसत्त्वादिवच्च । सत्त्वादीनां यस्याङ्गित्वं तेन इतरस्य [ग्नोन्' पऽि' फियर्' रो VT.=] अभिभूतत्वात् । अयं सप्तविधः सम्बन्धः । [देस्' न' जि' ल्तर्' स्रिद्' प' ब्शिन्' VT.=] **तेन यथासम्भवं सम्बन्धादेकस्मा**दिति । यथोक्तम्—'कश्चिदर्थः कस्यचिदिन्द्रियस्य प्रत्यक्षो भवति । तस्मादिदानीमिन्द्रियप्रत्यक्षादर्थात् [स्ङर्' छोग्स्' प' ल' ऽब्रेल्' प' ब्यस्' प' लस्' ब्लोस्' नि'=VT=] पूर्वं समुदाये कृतसम्बन्धमतिरविशिष्टस्यार्थस्यास्तित्वं प्रतिपद्यते, यथा पूर्वं धूमाग्न्योः सम्बन्धं दृष्ट्वा धूमदर्शनादग्नेरप्यस्तित्वं प्रतिपद्यते' [षष्टितन्त्रभाष्ये] इति । **सिद्धेः कारण**मिति लिङ्गज्ञानं सम्बन्धस्मरणापेक्षम् । तद्धि **शेषस्य अप्रत्यक्षस्य** सिद्धेः कारणम् । लिङ्गिनः सिद्धिः कार्यम् । [मृदो' रु [पृ० ११८ A] नि' र्ग्यु' लस्' ऽब्रस्' बुर्' ञे' बर्' ब्तगस्' पऽि' फियर्' ल्हग्' म' ऽग्रुब्' प' नि' जॆस्' सु' द्पग्' प' शेस्' ब्शद्' दो VT=] **सूत्रे** कारणे कार्योपचारात् **'शेषसिद्धिरनुमानम्'** इत्युक्तम् [पृ० ११८ B] ।"— **विशाला०** । ९ **नयचक्रवृत्ति.** पृ० २४० पं० ११ । टिपृ० ७८ पं० १–५ । १० दृश्यतां टिपृ० ७८ टि० २ ।

१ PSV^{2} अनुसारेण तु **'तेषु यथा**[सम्भवं ?] **सम्बन्धादेकस्मात् शेषस्य अप्रत्यक्षस्य सम्बन्धिनः सिद्धेः यत् कारणं तदनुमानम्'** इति संस्कृतेऽनुवादः स्यात् । विशालामलवत्यनुसारेण तु **'तेन यथासम्भवं सम्बन्धादेकस्मात् प्रत्यक्षात् शेषस्य अप्रत्यक्षस्यार्थस्य सिद्धेः कारणं तदनुमानम्'** इति पाठो भाति स च समीचीनतरः प्रतीयते । २ अत्र **'तेषु यथायोगम्'** इत्यस्य स्थाने **'तेषामन्यतमात्'** इत्यपि संस्कृतेऽनुवादो भवेत् । ३ "रङ्' ल'"–PSV^{1}, N. ed. PSV^{2} । ४ "र्ग्यु' ल'"–VT. पृ० १३३ B । ५ * * "रङ्' ब' म' ब्र्जोद्' प' नि' म' छङ्' ब' ञिद्' चेस्' ब्शद्' पर्' ऽग्युर्' रो' शेस्'"–VT. पृ० १३५ A । "रुङ्' ब' म' ब्र्जोद्' न' नि' म' छङ्' ब' शेस्' ब्य' ब' ब्र्जोद्' प' यिन्' नो ॥"–PSV^{2} । ६ "ऽोन्' ते' र्तोग्' गेऽि' ब्स्तन्' ब्चोस्' नॆमुस्' सु' ग्शन्' ग्यि' दोन्' ग्यि' जॆसु' द्पग्' प' ल' जॆसु' द्पग्' पर्' ब्य' ब' स्तोन्' प' दम्' ब्चऽ' ब' ब्कोद्' प' गङ्' यिन्' प' दे' चि' ल्तर्' शे' न । दे' ञिद्' ल' द्रि' बर्' ब्यऽो ॥"–PSV^{2} ।

यन् लग् नमूस् नस् गङ् जैस् सु द्पग् पर् ब्य ब ब्स्तन् प दे नि खो बो चग् गि स्ग्रुब् ब्येद् जिद् दु मि ऽदोद् दे ॥ दे जिद् थे छोम् स्कयेद् पर् ब्येद् पऽि फियर् रो ॥ ऽोन् क्यङ् तेगस् क्यि दोन् दु युल् ब्स्तन् पऽि फियर् दे[1] नि देस् ब्स्ग्रुब् पर् ब्यऽो ॥

卐 रङ् गि ङो बो खो न ब्स्तन् ॥ ब्दग् ऽदोद् रङ् गि छोस् चन् ल ॥

मूङोन् सुम् दोन् दङ् जैस् द्पग् दङ् ॥ यिद् छेस् ग्रगस् पस् म ब्सल् बऽो ॥ २ ॥ 卐 PS[2]

दे यङ् । रङ् गि ङो बो दङ् जिद् ब्स्तन् ॥ रङ् दङ् ऽदोद् ऽग्युर् । रङ् गि ङो बो [3]खो न शेस् ब्य ब नि ब्स्ग्रुब् पर् ब्य बऽि ङो बोस् यिन् गि ग्रुब् प लस् स्ग्रुब् पऽि ङो बोस् नि म यिन् नो ॥ [4]दे बशिन् दु [5]तेगस् म ग्रुब् प दङ् । द्पे ल्तर् स्नङ् ब दग् क्यङ् योङ्स् सु स्पङ्स् पर् ब्जोंद् प स्ते । दे[7] दग् स्ग्रुब् पर् ऽोस् पऽि ङो बो ब्जोंद् पर् मि ब्यऽो ॥ रङ् दङ् ऽदोद् ऽग्युर् शेस् [8]स्मोस् प ऽदिस् नि रङ् गि ब्स्तन् ब्चोस् ल [म PSV[2] VT]ब्ल्तोस् नस् खस् ब्लङ्स् पर् ब्स्तन् प यिन् नो ॥ दे यङ् म ब्सल् पऽो ॥ मूङोन् सुम् दोन् दङ् जैस् द्पग् दङ् ॥ यिद् छेस् ग्रगस् पस् रङ् तेन् लऽो ॥ [9]गङ् स्ग्रुब् पर् ऽदोद् पऽि छोस् क्यिस् ख्यद् पर् दु ब्यस् पऽि छोस् चन् दे ल ब्स्ग्रुब् पर् ब्य ब नि छोस् दङ् ऽगल् पऽि मूङोन् सुम् दङ् । जैस् सु द्पग् प दङ् । [10]लुङ् दङ् ग्रगस् प नमूस् ते । छोस् ग्शन् गियस् म ब्सल् पऽो ॥ * [11]दे ल्तर् न ब्स्ग्रुब् पर् ब्य ब ख न म थो ब मेद् पर् ब्स्तन् प यिन् नो ॥ दे ल्त म यिन् न नि * दे ल्तर् स्नङ् ब स्ते । द्पेर् न स्ग्र मूजन् दु मि रुङ् ङो ॥ बुम् प तेग् गो ॥ छुद् मस् ग्शल् पर् ब्य बऽि दोन् स्ग्रुब् पर् मि ब्येद् दो शेस् प ल्त बु दम् ब्चऽ ब चम् दङ् ऽगल् ब दङ् । *[12]गङ् यङ् थुन् मोङ् म यिन् पऽि फियर् जैस् सु द्पग् प नि [पृ० ४० B] योद् प म यिन् शिङ् स्ग्र ग्रगस् प दङ् ऽगल् बऽि दोन् स्ब्योर् ब नि [द्पेर् न PSV[2]] रि बोद् चन् नि स्ल ब म यिन् ते योद् पऽि फियर् रो शेस् ब्य ब ल्त बु स्ते । *[13]दे दग् गिस् नि छोस् क्यि रङ् गि ङो बो ब्सल् बऽि स्गो चम् चिग् (शिग् N. ed.) ब्स्तन् प यिन् नो ॥ फ्योगस् ऽदिस् नि छोस् दङ् छोस् चन् गियि ब्ये ब्रग् गि रङ् गि ङो बो ब्सल् ब यङ् मूछोन् पर् रिग् पर् ब्य स्ते । ऽदि ल्तर् द्पेर् न * यन् लग् चन् नि यन् लग् लस् ग्शन्. म यिन् नो ॥ स्नङ् मूथो द्मन् गियि ब्ये ब्रग् म ग्सुङ् बऽि फियर् रो ॥ यन् लग् दङ् यन् लग् चन् दग् नि ग्शन् म यिन् ते । मूङोन् सुम् म यिन् पर् थल् बर् ऽग्युर् पऽि फियर् रो ॥ जैस् नि योद् प म यिन् ते । योन्

---

१ * * "यन् लग् ल नमूस् ल जैसु द्पग् पर् ब्य ब ब्स्तन् प गङ् यिन् प दे नि खो बो चग् गि स्ग्रुब् ब्येद् जिद् दु ब्स्तन् प नि म यिन् ते । दे जिद् लस् थे छोम् स्कये बऽि फियर् रो ॥"–PSV[2] । २ दे नि देस् स्ग्रुब् पर् ब्येद् दो ॥" – PSV[2] । "दे नि देस् ग्सल् बर् ब्य बऽो" – VT. पृ० १३६ A । ३ 'खो न' PSV[3] मध्ये नास्ति । ४ "ग्रुब् प दङ् स्ग्रुब् पर् ब्येद् पऽि ङो बोस् नि म यिन् नो शेस् प ।"–VT. पृ० १३६ B । "स्ग्रुब् पर् ब्येद् म ग्रुब् पऽि ङो बोस् नि म यिन् नो"–PSV[2] पृ० १२६ A । ५ "दे ल्त म यङ्"–PSV[2]. VT. । ६ "ग्तन् छिग्स् म ग्रुब् प दङ् द्पे ल्तर् स्नङ् ब ब्जोंद् प योङ्स् सु स्पङ्स् प यिन् नो ॥"–PSV[2] । "म ग्रुब् पऽि ग्तन् छिग्स् दङ् द्पे ल्तर् स्नङ् ब दग् ब्जोंद् प योङ्स् सु स्पङ्स् पर् ऽग्युर् ते ।"–VT. पृ० १३६ B । ७ "दे दग् नि ब्स्ग्रुब् पर् ब्य बऽि ङो बो जिद् दु ब्स्तन् प म यिन् नो ॥"–PSV[2] । "दे दग् ब्स्ग्रुब् पर् ब्य बऽि छुल् गियस् ब्स्तन् पर् ब्य ब नि म यिन् नो शेस् प स्ते ।"–VT. पृ० १३७ A । ८ "स्मोस् प"–PSV[3] VT. मध्ये नास्ति । ९ "छोस् चन् गङ् छोस् क्यिस् ख्यद् पर् दु ब्यस् प शेस् प"–VT. पृ० १४० A । १० "लुङ् दङ् ग्रगस् पऽि छोस् ग्शन्"–PSV[3] पृ० १२६ B । ११ ** "दे ल्तर् न ब्स्ग्रुब् ब्य ब्स्तन् ख न मूथो ब मेद् प यिन् ल । ग्शन् दु नि"–PSV[2]. पृ० १२६ B । १२ गङ् ल थुन् मोङ् म यिन् पऽि फियर् जैस् सु द्पग् प मेद् प ल यङ् स्ग्र ग्रगस् पऽि ऽगल् प सेल् बर् ब्येद् प स्ते"–PSV[2]. १२६ B । १३ "ऽदि यङ् छोस् क्यि रङ् गि ङो बो दङ् ऽगल् पस् सेल् बऽि स्गो चम् शिग् ब्स्तन् प यिन् ल । फ्योगस् ऽदिस् नि छोस् दङ् छोस् चन् गियि ख्यद् पर् दङ् रङ् गि ङो बो सेल् बर् ब्येद् प रिग् पर् ब्य स्ते । द्पेर् न"–PSV[2]. पृ० १२६ B–१२७ A ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तन् ग्यि जेस् नंमुस् क्यि जेस् जेस् म यिन् पर् थल् बर् ऽग्युर् पऽि [1]फ्यिर् रो ॥ गजिस् कऽि रङ् गि ङो बोऽि ब्ये ब्रग् नि । दपेर् न [2] स्त्र बऽि दोन् थमुस् चद् बर्जुन् नो शेस् ब्य ब ल्त बुऽो ॥ [3]स्त्र ब योद् मोद् क्यिस् क्यङ् स्त्र ब दङ् स्त्र बऽि ब्दग् जिद् बर्जुन् प जिद् दु ऽग्युर् बऽि ल्त न नि [4]दिऽि स्त्र बऽि ब्दग् जिद् दङ् यङ् बर्जुन् प जिद् गजिस् क नंमू प थमुस् चद् दु ब्सल् बर् ऽग्युर् रो ॥ दे ल्तै बु नि गजिस् कऽि रङ् गि ङो बो ब्सल् लो ॥ [7]चि स्ते स्त्र बऽि ब्दग् जिद् क्यि बर्जुन् प जिद् ब्सल् ब म यिन् नो शे न । [10]दे ल्त न नि गजिस् कऽि ब्ये ब्रग् ब्सल् ब यिन् नो ॥ [पृ० ४१ A]

[11]परार्थमनुमानं तु स्वदृष्टार्थप्रकाशनम् ।　　सं.

[12]यथा स्वस्मिंस्त्रिरूपाल्लिङ्गतो लिङ्गिनि ज्ञानमुत्पन्नं तथा परत्र [त्रिरूपाल्लिङ्गतो PSV[2]] लिङ्गिज्ञानोत्पिपादयिषया [13]त्रिरूपलिङ्गाख्यानं परार्थमनुमानम्, कारणे कार्योपचारात् । [14]अत्र चान्यतमस्यैकस्यापि रूपस्यानुक्तौ न्यूनतेत्युक्तं भवति । [15]ननु

---

१ "फ्यिर् रो शेस् ब्य ब दङ् । दे ब्शिन् दु ङग् थमुस् चद् बर्जुन् पऽि दोन् चन् यिन् नो शेस् ब्य ब ऽदि नि ङग् दङ् ङग् गि ब्दग् जिद् बर्जुन् पऽि दोन् चन् जिद् दु ङग् योद् प गङ् यिन् प दे नि बर्जुन् प जिद् यिन् न । गल् ते ङग् दङ् बर्जुन् प दग् थमुस् चद् दु सेल् बर् ब्येद् दे ल्त न गजि गऽि रङ् गि ङो बो सेल् बर् ब्येद् प यिन् नो ॥ चि स्ते ङग् गि बद्ग् जिद् क्यि बर्जुन् प जिद् क्यि सेल् ब दे ल्त न गजि गऽि ख्यद् पर् सेल् ब यिन् नो ।"–PSV[2]. पृ० १२७ A । २ "ङग् थमुस् चद् बर्जुन् पऽि दोन् चन् नो शेस्"–VT. पृ० १४६ B । ३ "ङग् योद् दे । ङग् गि ब्दग् जिद् क्यिस् दङ् बर्जुन् पऽि दोन् चन् जिद् क्यिस् क्यङ् शेस् प स्ते ।"–VT. पृ० १४६ B । ४ "ऽदिऽि शेस् प"–VT. पृ० १४६ B । ५ "दे ल गल् ते ङग् दङ् ब्देन् मिन् जिद् दग् ल नंमू प थमुस् चद् दु ङेस् पर् ब्सल् ब यिन् न शेस् प ।"–VT. पृ० १४७ A । ६ "दे ल्तर् ग्युर् न गजिस् कऽि रङ् गि ङो बो ब्सल् ब शेस् पऽो ॥"–VT. पृ० १४७ A. । ७ "चि स्ते"–VT. । ८ "ङग् ब्दग् जिद् क्यि शेस् प ।"–VT. पृ० १४७ A । ९ "ब्देन् प मिन् प दोन् चन् जिद् क्यिस् क्यङ् शेस् प ।"–VT पृ० १४७ A । १० "दे ल्तर् गजिस् क दग् गि ख्यद् पर् ब्सल् बऽो शेस् पऽो ॥"–VT. पृ० १४७ B । ११ * * **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ४६७, **प्र० वा० म०** पृ० ४१३ । "स्वार्थपरार्थविभागेनानुमानं द्विविधमित्युक्तम् । तत्र स्वार्थमुक्तम् । इदानीं परार्थं निर्णेतुकाम आह–**परार्थ**मित्यादि । स्वार्थस्य अनुमानत्वं वस्तुतः, इदं तूपचरितमिति विशेषार्थे तुशब्दः । स्वेन दृष्टः स्वदृष्टः, स्वदृष्टश्चासावर्थश्चेति स्वदृष्टार्थः त्रिरूपो हेतुः, स येन वचनेन प्रकाश्यते तत् परार्थमनुमानम् ।" – **विशाला०** पृ० १३३ B । १२ * * तुलना – **प्रमाणविनिश्चय.** D. ed. पृ० १८७ A, N. ed. पृ० २९९ A । अत्र **'यथा स्वयम्'** इत्यपि पाठः स्यात्, दृश्यतां **स्या**द्वादरत्नाकरः पृ० २३ । दृश्यतां टिपृ० ७४ **टि०** २ । "कथं पुनस्तस्य परार्थत्वमित्याह–**यथे**त्यादि । ननु अनुमेयविषयं ज्ञानमनुमानम्, ज्ञानस्यैव प्रमाणत्वात् । तत् कथं वचनस्यानुमानत्वमित्याह – **कारणे कार्योपचारा**दिति ।" – **विशाला०** पृ० १३३ B । **१३** तुलना – "त्रिरूपलिङ्गाख्यानं परार्थानुमानम् ३।१।१। कारणे कार्योपचारात् ।३।१।२।" – **न्यायबिन्दु** । "त्रिरूपलिङ्गाख्यानं परार्थानुमानमिति **प्रमाणसमुच्चयवृत्तिः** । [पृ० ४६८]···'त्रिरूपलिङ्गाख्यानं परार्थमनुमानम्'···[पृ० ४६९,४८५]" – **प्र० वार्तिकालं०** । "त्रिरूपलिङ्गाख्यानं परार्थमनुमानम्' इत्यादि **आचार्य**वचः ।" – **वादन्यायवृत्ति** [विपञ्चितार्था] पृ० ६६ । १४ "अत्र चान्यतमस्यैकस्यापि रूपस्यानुक्तौ न्यूनतोक्ता भवति" – PSV[1]. । **"अत्र चान्यतमरूपस्यानुक्तिर्न्यूनतेत्युक्तं भवति"** इति पाठ एव आदरणीयः प्रतिभाति । "**अत्र च अन्यतमरूपस्यानुक्तिर्न्यूनतेत्युक्तं भवति** इति पुनर्नोच्यते, अनेनैव निर्देशेन अर्थत उक्तत्वात् । यस्माद् यथा 'त्रिरूपो हेतुः' इति वचनेन 'एकैकद्विद्विरूपोऽर्थो न हेतुः' इति उक्तं भवति तथा 'त्रिरूपाख्यानं परार्थमनुमानम्' इति वचनेन एकैकद्विद्विरूपाख्यानं नानुमानम्, किं तर्हि ? न्यूनता साधनदोषः, ततः परस्य सम्यग् निश्चयानुत्पत्तेः ।" – **विशाला०** पृ० १३५ A । तुलना – "अनुक्तावपि पक्षस्य सिद्धेरप्रतिबन्धतः । त्रिष्वन्य**तमरूपस्यैवानुक्तिर्न्यूनतो**दिता ॥" – **प्र० वा०** ४।२३ ॥ "त्रिरूपलिङ्गाख्यानं परार्थानुमानमित्युक्तम् । तत्र त्रयाणां रूपाणामेकस्यापि रूपस्यानुक्तौ साधनाभासः ।" – **न्यायबिन्दु** ३।५७ । १५ ["ऽोन् गङ् शेस् प ल सोगस् पस् VT =] **ननु** य इत्यादिना त्रिरूपलिङ्गाख्यानमात्रस्यानुमानत्वेनोक्तेः [रिगस् प फ्र मो ल सोगस् प VT. =] **न्याय**सूत्रादितर्कशास्त्रेषु पक्षवचनस्यापि साधनत्वेन निर्देशादाशङ्कते । **परार्थानुमाने प्रयोगः** तदन्तर्भावः, साधनावयवत्वेन निर्देशात् । **स कथ**मिति तच्छास्त्रकृतां तत्र का उपपत्तिरिति । [दे नंमुस् खो न ल द्रि बर् ब्यऽो शेस् प VT. =] **त एव प्रष्टव्या** इति ये साध्यसिद्धिं प्रति अशक्तस्यापि पक्षवचनस्य साधनत्ववादिन इत्याशयः ।" – **विशाला०** पृ० १३५ A ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

यस्तर्कशास्त्रेष्वनुमेयनिर्देशस्य प्रतिज्ञायाः परार्थानुमाने प्रयोगः स कथम् ? त एव प्रष्टव्याः । [1]अस्माकं तु—

तत्रानुमेयनिर्देशो हेत्वर्थविषयो मतः ॥ १ ॥

अवयवेषु योऽनुमेयनिर्देशः सोऽस्माकं न साधनत्वेन [2]मतः, [3]तत एव संशयोत्पत्तेः; अपि तु हेत्वर्थविषयत्वेन । स तेन [4]प्रकाश्यते ।

[5]स्वरूपेणैव निर्देश्यः स्वयमिष्टोऽनिराकृतः ।
प्रत्यक्षार्थानुमानाप्तप्रसिद्धेन स्वधर्मिणि ॥ २ ॥

---

१ "ततः पक्षानुक्तावपि सिद्धेरप्रतिबन्धात् त्रिषु रूपेष्वन्यतमस्यैवानुक्तिर्न्यूनतोक्ता साधनदोषः, न तु पक्षानुक्तिः । ननु यदि पक्षवचनमसाधनं तदा साधनाङ्गावसरे भवतामपि अनुमेयलक्षणनिर्देशो न युक्त इत्यत आह—**अस्माकं त्वित्या**दि । निर्दिश्यतेऽनेन [इति निर्देशः] अनुमेयस्य निर्देशोऽनुमेयनिर्देशः, स चात्र लक्षणनिर्देशो वेद्यः, न प्रतिज्ञावचनम् । हेतुस्त्रिरूपं लिङ्गम्, तस्यार्थः हेत्वर्थः, स विषयो यस्य स **हेत्वर्थविषयः** । यस्मादनुमेयलक्षणनिर्देशेन हेत्वर्थोऽविपरीतः प्रकाश्यते तस्मात् तद्विषयत्वात् साधनप्रस्तावेऽपि तदुपन्यास इति वाक्यार्थः । **अवयवेष्वि**त्यादि । अवयवेषु प्रस्तुतेषु **योऽनुमेयनिर्देशः सोऽस्माकं न साधनत्वेन,** कस्मात् ? **तत एव संशयोत्पत्तेः । तत** इति आद्यादित्वात् सप्तम्यर्थे तसिः । तत्रैव अनुमेये संशयोत्पत्तेः [पृ० १३५ B] इत्यर्थः । अथवा हेतुपञ्चम्यन्तादेवायं तसिः, तत एव अनुमेयोपलब्धिहेतोः संशयोत्पत्तेरित्यर्थः । एतेन अनुमेयस्य सन्दिग्धत्वं दर्शयन्निममर्थं प्रकाशयति—सिद्धः साधनम्, नेतरः । अनुमेयं च सन्दिग्धम् ।······ अनुमेयस्य चासाधनत्वदर्शनेन तद्वाक्यस्यापि दर्शितं भवति । तथाहि—अर्थ एव साक्षाद् गमकः, न वचनम् । तत् शक्तार्थसूचकत्वात् परम्परया साधनं भवति । यत्र अर्थे एव साध्यसाधनाशक्तिर्निश्चिता तत्र वचने सुतरामशक्तिरिति व्यक्तमेव प्रतीयते । **अपि त्वित्या**दिना 'हेत्वर्थविषयो मतः' इत्यस्यार्थो व्याख्यायते । ननु हेत्वर्थलक्षणनिर्देशः तर्कशास्त्रेऽन्यथा कृतः, स कस्मादत्र क्रियत इत्यत आह—**स तेन प्रकाश्यते** इति । यस्मादस्मदिष्टो [यो]ऽनुमेयः स एव तेन हेतुना साध्यते न परपरिकल्पितः तस्मात् तस्य लक्षणं निर्दिश्यते, 'एतादृश एवार्थो हेतुना साध्यः, न तद्विपरीतः' इति यथा ज्ञातं स्यादित्याशयः । तस्मादत्र संक्षेपेण निर्देशः । बहूनां साध्यविषया विप्रतिपत्तिर्दृश्यते, तस्मात् तन्निराकरणार्थं शास्त्रे पक्षलक्षणं दर्शितम् । न तु प्रयोगकाले स निर्देश्य उपयोगाभावात् [पृ० १३६ A] ।"—**विशाला०** । "**ननु च विष**योपदर्शनाय **प्र**तिज्ञावचनमसाधनाङ्गमप्युपादेयमेव । **न** । **वै**यर्थ्यात् [**वादन्याय.** पृ० ६५] । **समुच्चयटीकाकारा**स्त्वाहुः—**नन्वि**त्यादि । **नै**त्याद्युत्तरम् ।······अप्रदर्शिते तु सम्बन्धे संशयोत्पत्तिहेतुत्वादिदमुक्तम्—**तत एव संशयोत्पत्ते**रिति ।······'अस्माकं **तु त**त्रानुमेयनिर्देशो **हे**त्वर्थविषयो **म**तः' इत्यपि वचनं विरुध्यते, यस्मात् '**त**त्रेति **त**र्कशास्त्रस्य सम्बन्धोऽत्राभिधीयते । **प्रयोगस्य** तु सम्बन्धे बहु स्यादसमञ्जसम् ॥ १ ॥"—**वादन्यायवृत्ति** [विपञ्चितार्था] पृ० ६५–६६ । "नन्वाचार्यस्य पक्षवचनमसाधनत्वेनेष्टमिति कथं ज्ञायत इत्याह—**हेत्वर्थविषयत्वेन तदशक्तोक्तिरीरिता** । हेतोरर्थः साध्यः, स विषयोऽस्येति हेत्वर्थविषयः, तत्त्वेन साध्यार्थोपदर्शकत्वेन तस्य पक्षवचनस्य साध्यसाधनं प्रति अशक्तस्योक्तिरीरिता निर्दिष्टा **आचार्येण** '**त**त्रानुमेयनिर्देशो **हे**त्वर्थविषयो मतः' इत्यनेन ग्रन्थेन । ततो ज्ञायते पक्षवचनमसाधनमिष्टमाचार्यस्येति ।"—**प्र० वा० म०** ४।१८ । "नन्वाचार्यस्य पक्षवचनमभिमतमेव, यदाह—**स्वनिश्चयवदन्येषां निश्चयोत्पादनेच्छया । पक्षधर्मत्वसम्बन्धसाध्योक्तेरन्यवर्जनम् ॥** [**प्र**माणसमुच्चय ४।६] । नैतदस्ति । यतः **हे**त्वर्थविषयत्वेन **त**दशक्तोक्तिरीरिता ॥ [**प्र० वा०** ४।१८], यदाह—'**तत्रानु**मेयनिर्देशो **हे**त्वर्थविषयो **म**तः । अस्माकं तु **योऽनुमेयनिर्देशः स हेत्वर्थविषयत्वेन, न साधनत्वेन**' ।········ [पृ० ४८८]···कथं तर्हि इदमुक्तम्—'अस्माकं **तु** पक्षनिर्देशो **यः स न सा**धनत्वेन अपि **तु हे**त्वर्थविषयत्वेन' इति [पृ० ४९०] ।"—**प्र० वार्तिकालं०** । २ '**मतः**' PSV[2]. VT. मध्ये नास्ति, **प्र० वार्तिकालङ्कारे**ऽपि नास्ति । PSV[3] मध्ये '**मतः**' इत्यस्य स्थाने '**निर्देशः**' इति दृश्यते । ३ दृश्यतां टिपृ० १२४ पं० १० । **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ४८९ । **प्र० वा०** ४।१६ । ४ "**साध्यते**" PSV[1,2] । '**उपदर्श्यते**' इति '**ख्याप्यते**' इति वा इत्यपि पाठोऽप्यत्र चिन्त्यः । "तस्मा**दनुमेयस्योपदर्शनार्थं** सिद्ध्यर्थं **पक्षवचन**मुपादेयं नान्यदित्युपस्कारः ।"—**वादन्यायवृत्ति.** पृ० ६६ । ५ **प्र० वार्तिकालं** पृ० ५४५,५४६,५४९ । **प्र० वा० म०** पृ० ४२४,४४५,४५८, ४५९ । तुलना—**दिङ्नाग**प्रणीत**न्यायमुखस्य चीन**भाषानुवादमवलम्ब्य Prof. Giuseppe Tucci इत्येभिर्विहिते English भाषानुवादे पक्षस्वरूपमित्थमुपलभ्यते—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

I have compiled this book, because I desire to ascertain what is the real nature of the arguments meant to prove [a thesis as well] as to refute it. The proposition and the other terms are called the proof [साधन.] Here is called 'proposition' only that particular argument that we want to prove in accordance with our own opinion. It must be such as no argument contradictory [to it] can exclude it. "The proposition etc."; this means that through the formulation of a proposition, a reason and an example, an argument which has not yet been understood by another [man], is made evident to him. That many terms represent the sādhana, syllogism, was already asserted by Vasubandhu in his Vādavidhi etc. but they are called here: "the sādhana" in the singular, in order to show that they have as a whole the nature of a syllogism. Therefore we must acknowledge that when [some terms] are defective there is an error of the syllogism. The word "here" (atra) is meant either to introduce the beginning [आरम्भ] of the śāstra, or has the meaning of restriction (avadhārana); that is: among these terms, such as: "proposition etc." Therefore [the author] uses the word: "here". "Only" is used in order to distinguish [the proposition from the other members of a syllogism]. "In accordance with our opinion" is used here in order to express that the proposition is independent of the sāstra, but is established in accordance with one's own opinion. "That we want to prove" means that we do not want as a proposition [a sentence] having the nature of the proof (sādhana). Were not the probandum defined in this way, that is as a proposition that "one wants to prove", then even a fallacious reason or a fallacious example [hetvābhāsa, dṛṣṭānta-ābhāsa] could be called a proposition. In order to show that it must be devoid of any fallacy, [such as those admitted] by other schools, [the author] says: "it must be such as no argument contradictory [to it] can exclude [it]." [This can mean] also that it is not excluded by a sentence having a contradictory meaning. [A proposition is called a fallacious proposition] when one of the [five] following cases happens to be: 1. [If it is self-contradictory:] e. g. if one says: "all words are false." 2. If it is contradictory to the proposition that one has already assumed as the probandum; e. g. if a Vaiśeṣika says: "sound is eternal." 3. If it is excluded by a statement generally accepted as true [prasiddha], when the proposition is concerned with some notion that cannot be the object of inference, because there is no other homogeneous thing, which can be referred to as a positive instance [sapakṣa]; e. g. if one says: "śasi [an epitheton of the moon] is not the moon, because it exists." 4–5. If [the particular attribute] of the subject [dharmin], that one wants to prove, is contradicted either by an inference or by direct perception, the validity of which is generally admitted. E. g. if one says: "sound cannot be heard", this proposition is contradicted by the evidence of direct perception. [If on the other hand somebody says]; "the pot is eternal", this proposition is

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स च **स्वरूपेणैव निर्देश्यः स्वयमिष्टः** । स्वरूपेणैवेति साध्यरूपेण, न तु सिद्धसाधनरूपेण । तथाच असिद्ध-

contradicted by inference.—न्यायमुख. पृ० ५–७ । **चीन**भाषानुवादानुसारेणास्य संस्कृतमीदृशं सम्भाव्यते –"साधनदूषणस्वरूपव्युत्पादनार्थमिदमारभ्यते । **पक्षादिवचनानीति साधनं तत्र तु स्वयम् । साध्यत्वेनेप्सितः पक्षो विरुद्धार्थानिराकृतः** ॥२॥ पक्षादीति, पक्षहेतुदृष्टान्तवचनैर्हि परेषामप्रतीतोऽर्थः प्रतिपाद्यते । [**वसुबन्धुना**] **वाद**विध्यादौ बहूनां वचनानां साधनत्वाभिधानेऽपि अनेकवचननिर्देशः समस्तानां साधनत्वप्रतिपादनाय । तेनान्यतमस्य न्यूनतायां साधनदोषः । '**तत्र**'शब्दः शास्त्रोपन्यासार्थोऽवधारणार्थो वा 'तेष्वेव पक्षादिषु' इति । '**तु**'शब्दो विशेषणार्थः [पक्षमितरेभ्यो व्यावर्तयति] । स्वयमिति शास्त्रानपेक्षमभ्युपगमं दर्शयति । 'साध्यत्वेनेप्सितः' इति अनभिधाने असिद्धहेतुदृष्टान्ताभासयोरपि पक्षत्वं स्यात् ।··· **विरुद्धार्था**निराकृत इति । [यदि विरुद्धार्थेन न निराक्रियते स पक्षः, अन्यथा तदाभासः] । **यदि विरुद्धार्थवाचिना स्ववचनेन बाध्यते यथा 'सर्वमुक्तं मृषा' इति, पूर्वाभ्युपगमेन वा यथा औलूक्यस्य 'नित्यः शब्दः' इति साधयतः**, यत्राप्यसाधारणत्वादनुमानाभावे शाब्दप्रसिद्धेन विरुद्धेनार्थेनापोद्यते यथा 'अचन्द्रः शशी सत्त्वात्' इति, यो वा धर्मी धर्मविशिष्टः साधयितुमिष्टः तत्र यदि प्रत्यक्षानुमानप्रसिद्धेन बाध्यते यथा 'अश्रावणः शब्दः' 'नित्यो घटः' इति [नासौ पक्षः] ।"

१ "**स्वरूपेणैवे**त्यादि । अत्र रूप-निपात-इष्ट-स्वयंपदैश्चतुर्भिर्यथाक्रमम् १ असिद्धः २ असाधनम् ३ इच्छाविषयीकृतः ४ साधनकर्त्रा सिसाधयिषितश्च गृह्यते । ततश्च चतूरूपं साध्यमिति दर्शितं भवति । **न सिद्धसाधनरूपेणे**ति यथाक्रमं रूपनिपाताभ्यां व्यवच्छेद्यं दर्शयति । तथाहि – स्वरूपशब्देन असिद्धं गृह्यते, तद्व्यवच्छेद्यं सिद्धम्, [यथा] 'शब्दः श्रावणः' इति । स्वरूपेणैव इति निपातेन असाधनं गृह्यते, असिद्धमपि साधनत्वेनेष्टं तद्व्यवच्छेद्यम्, यथा असिद्धहेतुदृष्टान्तौ 'शब्दो नित्यः चाक्षुषत्वाद् बुद्धिवत्' इत्येतादृशरूपौ । तत्र सिद्धव्यवच्छेदफलस्य [गो' रल' ब' थिद्' किय' कियद्' VT =] सुगमत्वात् साधनव्यवच्छेदफलमेव '**तथाच**' इत्यादिना दर्शयति । **तथाचे**त्यवधारणे सतीत्यर्थः । हेतुश्च दृष्टान्ताभासश्च, तौ असिद्धौ चेति विग्रहः । **असिद्धहेतुदृष्टान्ताभासवचनं परिहृतं भवति** । प्रतिज्ञात्वेन [दोर् बर् ऽग्युर्' VT=] प्रतिक्षिप्तं भवतीत्यर्थः ।······[पृ० १३६ B]··· **तौ साध्यरूपेण न निर्देश्या**विति, असिद्धयोरपि साधनत्वेनाभिधानात् ।···[पृ० १३७ A]··· **शास्त्रानपेक्ष**मिति शास्त्रनिरपेक्षमित्यर्थः । **अभ्युपगम** इति प्रतिज्ञार्थः, सोऽभ्युपगम्यत इत्यभ्युपगमः ।··· **स्वयमिष्ट इत्यनेन शास्त्रानपेक्षमभ्युपगमं दर्शयति**···[पृ० १३७ B]···तस्मादनुक्तोऽपि इच्छया व्याप्तः साध्यः । तदन्वयाभावे साध्यवैकल्यादयो दृष्टान्तादिदोषा इति । **अनिराकृत** इत्यादि । प्रत्यक्षश्चासावर्थश्चेति प्रत्यक्षार्थः, स चानुमानं चाप्तश्च प्रसिद्धश्चेति विग्रहं कृत्वा द्वन्द्वैकवद्भावेन तथा निर्देशः । **स्वधर्मिणी**ति निमित्ते सप्तमी । स्वधर्मिनिमित्तेन अनिराकृत इत्यर्थः । एतदुक्तं भवति – स्वधर्मिणि बाधायां तद्द्वारेणायाता बाधा यदि साध्यधर्मेऽपि न भवतीत्यर्थः [पृ० १३८ B]"– **विशाला०** । तुलना – "कीदृशः पुनः पक्ष इति निर्देश्यः । स्वरूपेणैव स्वयमिष्टोऽनिराकृतः पक्ष इति । स्वरूपेणेति साध्यत्वेनेष्टः । स्वरूपेणैवेति साध्यत्वेनैवेष्टो न साधनत्वेनापि । यथा शब्दस्यानित्यत्वे साध्ये चाक्षुषत्वं हेतुः शब्देऽसिद्धत्वात् साध्यम्, न पुनस्तदिह साध्यत्वेनैवेष्टं साधनत्वेनाभिधानात् । स्वयमिति वादिना । यस्तदा साधनमाह । एतेन यद्यपि क्वचिच्छास्त्रे स्थितः साधनमाह तच्छास्त्रकारेण तस्मिन् धर्मिणि अनेकधर्माभ्युपगमेऽपि यस्तदा तेन वादिना धर्मः स्वयं साधयितुमिष्टः स एव साध्यो नेतर इत्युक्तं भवति । इष्ट इति यत्रार्थे विवादेन साधनमुपन्यस्तं तस्य सिद्धिमिच्छता सोऽनुक्तोऽपि वचनेन साध्यः । तदधिकरणत्वाद् विवादस्य । यथा परार्थाश्चक्षुरादयः, सङ्घातत्वात्, शयनासनाद्यङ्गवदिति, अत्रात्मार्था इत्यनुक्तावपि आत्मार्थता साध्या, तेन नोक्तमात्रमेव साध्यमित्युक्तं भवति । अनिराकृत इति एतल्लक्षणयोगेऽपि यः साधयितुमिष्टोऽप्यर्थः प्रत्यक्षानुमानप्रतीतिस्ववचनैर्निराक्रियते न स पक्ष इति प्रदर्शनार्थम् ।" – **न्यायबिन्दु.** ३।३७–४८ । २ "असिद्धहेतुदृष्टान्ताभासवचनं परिहृतम्" – PSV. ।

1 टिप्पृ० ७३ पं० १०–११ । 2 **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ५१०,५१९, ५२२,५६१ । **प्र० वा० म०** पृ० ४४३ । **न्याय**वार्तिकतात्पर्यटीका. १।१।३३ । टिप्पृ० ७३ टि० ३,४ । 3 तुलना – "पक्षादिवचनेन हेतुदृष्टान्तयोः परिग्रहः । बहूनामवयवानां साधनत्वाभिधानेऽपि 'साधनम्' इति चैकवचननिर्देशः समस्तसाधनत्वख्यापनार्थम् ।" – **न्यायप्रवेशवृत्ति** पृ० १३–२३ । 4 "**न्यायमुखे – यदि······साधयतः** ।" – **प्र० वार्तिकालं०** ४।१०३, पृ० ५२६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेतुदृष्टान्ताभासवचनं परिहृतं भवति । [1]तौ [हि ?] साध्यरूपेण न निर्देश्यौ । [2]स्वयमिति शास्त्रानपेक्षमभ्युपगमं दर्शयति । स च **अनिराकृतः प्रत्यक्षार्थानुमानाप्तप्रसिद्धेन स्वधर्मिणि** । [3]यो हि धर्मी धर्मविशिष्टः साधयितुमिष्टस्तत्र यदि साध्यधर्मविरुद्धेन प्रत्यक्षानुमानागमप्रसिद्धेन धर्मान्तरेण अनिराकृतस्[4]तर्हि साध्यनिर्देशो निरवद्यः । अन्यथा तदाभासः, [5]यथा–अश्रावणः शब्दः, नित्यो घटः, न सन्ति प्रमाणानि [6]प्रमेयार्थानीति प्रतिज्ञामात्रेण, यत्राप्यसाधारणत्वादनुमानाभावे

---

१ 'तौ हि साध्यरूपेण न निर्दिश्येते' इत्यपि पाठोऽत्र भवेत् । २ "उक्तमाचार्येण – **स्वयमिति शास्त्रानपेक्षमभ्युपगमं दर्शयति** इति ।"–**प्र० वार्तिकालं०** पृ० ४९५ । "**आचार्यो वृत्तौ** आह – **स्वयमिति शास्त्रानपेक्षमभ्युपगमं दर्शयति ।**"–**प्र० वा० म०** ४।३०, पृ० ४२५ । "**स्वयमिष्ट इत्यनेन** [वचनेन PSV[1]] शास्त्रानपेक्षमभ्युपगमं दर्शयति ।"–PSV. VT. । ३ "अत एवाह – '**यो हि धर्मी धर्मविशिष्टस्तत्र यदि साध्यधर्मविरुद्धेन प्रत्यक्षानुमानागमप्रसिद्धेन न बाध्यते** स पक्षः, **अन्यथा तदाभासः**' इति ।"–**प्र० वार्तिकालं०** पृ० ५५१ । तुलना–**प्र० वा०** ४।१३६–१४८ । "**यो धर्मी धर्मविशिष्टः**' इत्यनेन साध्यधर्मविशिष्टस्यैव धर्मिणः साध्यतां दर्शयन् केवलस्य धर्मिण उपरोधेऽपि बाधा न भवतीति प्रकाशयति । **यदि तत्रे**ति साध्यधर्मनिषेधनिमित्तेन तेन धर्मान्तरेण यदि निराकृतः, यदि तस्मिन् बाध्ये तद्द्वारेणायाता बाधा साध्यधर्मेऽपि न भवतीत्यर्थः ।"–**विशाला०** पृ० १४० A । ४ '**तर्हि**' इत्यस्य स्थाने '**तदा**' इति '**एवं हि**' इति वा पाठोऽपि भवेत् । ५ तत्रा**चार्ये**णेदमुक्तम्–**स्वरूपेणैव निर्देश्यः स्व**यमिष्टोऽनिराकृतः पक्षः यदि **प्रत्यक्षानुमानागमप्रसिद्धेन । तद्यथा अश्रावणः शब्दो नित्यो घट** इति **न सन्ति प्रमाणानि प्रमेयार्थानीति प्रतिज्ञामात्रेण, यत्राप्यसाधारणत्वादनुमानाभावे शाब्दप्रसिद्धेन विरुद्धेनार्थेन अपोद्यते न स पक्ष** इति ।"–**प्र० वार्तिकालं०** पृ० ५४५. । "आह **चाचार्यः – यत्राप्यसाधारणत्वादनुमानाभावे शाब्दप्रसिद्धेन विरुद्धेनार्थेनापोद्यते न स पक्ष** इति यत्र विषये प्रतिपक्षभूतस्यानुमानस्यासाधारणता तत एव तदभावः । अभावे शाब्दप्रसिद्धमनुमानं बाधकं न स पक्षः ।" [पृ० ५३४]···**अचन्द्रः शशी सत्त्वा**दिति [पृ० ५३५]······यत्राप्यसाधारणत्वादनुमानाभावे······प्रसिद्धेन विरुद्धेनार्थेनापोद्यते न स पक्ष इति [पृ० ५३६]···उक्तम्–'असाधारणत्वादनुमानाभावे' इति··· अचन्द्रः शशी सत्त्वादिति ।"–**प्र० वार्तिकालं०** । "अनुमानबाधायामन्तर्भावादनयोरभ्युपगमप्रतीतिबाधयोः सिद्धयोरपि पृथगाख्याने प्रयोजनं दर्शयन्ना**चार्य** एते अभ्युपगमप्रतीतिबाधे सहेतुके प्राह – **न सन्ति प्रमाणानि प्रमेयार्थानीति प्रतिज्ञामात्रेणे**ति । अत्र प्रतिज्ञामात्रं शास्त्रस्ववचनयोः सिद्धयोरप्रामाण्यप्रतिज्ञाबाधकमुक्तम् । **यत्राप्यसाधारणत्वादनुमानाभावे शाब्दप्रसिद्धेनापोद्यते न स पक्ष** इति । अत्र शाब्दप्रसिद्धेन शशिनश्चन्द्रत्वेन अचन्द्रत्वप्रतिज्ञाया बाधनमुक्तम् । अनुमानाध्यक्षबाधने तु न सहेतुके प्राह '**अश्रावणः शब्दो नित्यो घटः**' इति ॥ तस्माद् विषयभेदोपलक्षणार्थं सहेतुत्वाहेतुत्वदर्शनम् । प्रत्यक्षानुमानबाधे सर्वविषये, अभ्युपगमप्रतीतिबाधे तु नियतविषये इत्यर्थः ।"–**प्र० वा० म०** ४।१२०, पृ० ४५७। "उदाहरणमप्यत्र सदृशं तेन वर्णितम् [प्र० वा० ४।९६] । अत्र शास्त्र-[स्व]वचनयोर्व्याघातेन आचार्येण उदाहरणमपि सदृशमभिन्नं वर्णितम्, यथा **न सन्ति प्रमाणानि प्रमेयार्थानी**ति ।"–**प्र० वा० म०** पृ० ४४६। "योऽचन्द्रत्वं शशिनि प्रतिजानीते तं प्रति चन्द्रत्वसाधनाय लोकस्य ब्रुवतोऽनुमानाभाव **आचार्ये**णोक्तः–'**यत्राप्यसाधारणत्वादनुमानाभावे शाब्दप्रसिद्धेन विरुद्धेनार्थेनापोह्य(द्य)ते यथा** 'अचन्द्रः शशी सत्त्वात्' **इति नासौ पक्षः**' इत्येतेन ग्रन्थेन ।"–**तत्त्वसं० पं०** ॥ १३९६ ॥ पृ० ४११। "**अश्रावणः शब्द** इति ।···[पृ० १४० A]···इति प्रत्यक्षेण बाधनम् ।······अनुमानविरोधस्योदाहरणं **नित्यो घट** इति ।······[पृ० १४० B] **न सन्ति प्रमाणानी**ति आप्तबाधाया उदाहरणम् [पृ० १४१ A] । येनैवमेते समाने तेन उदाहरणमपि अत्र सदृशं दर्शितमा**चार्येण**–**न सन्ति प्रमाणानि प्रमेयार्थसाधना**नीति ।·········**प्रतिज्ञामात्रेणे**ति ।···[पृ० १४१ B] **यत्रापी**त्यादिना प्रसिद्धिबाधामुदाहरति । अत्र अचन्द्रः शशीति प्रतिज्ञा । 'शशिनश्चन्द्रवाच्यत्वं नास्ति' इति अस्या अर्थः । स च **शाब्दप्रसिद्धेन विरुद्धेनार्थेनापोद्यते** । शाब्दी प्रसिद्धिरनुमानम्, तेन प्रसिद्धो निश्चितः शाब्दप्रसिद्धः । [पृ० १४२ A]···असाधारणत्वादिति ।···सत्त्वादिबाधकस्य हेतोरसाधारणत्वात् । तस्माच्चानुमानाभावः ।···[पृ० १४२ B] ।"–**विशाला०** । विस्तरार्थिभिः सवृत्तिकं **प्रमाणवार्तिकम्** [४।९२-१४८] अत्र द्रष्टव्यम् । "तत्र प्रत्यक्षनिराकृतो यथा अश्रावणः शब्द इति । अनुमाननिराकृतो यथा नित्यः शब्द इति । प्रतीतिनिराकृतो यथा अचन्द्रः शशीति । स्ववचननिराकृतो यथा नानुमानं प्रमाणम् । इति चत्वारः पक्षाभासा निराकृता भवन्ति । एवं सिद्धस्यासिद्धस्यापि साधनत्वेनाभिमतस्य स्वयं वादिना तदा साधयितुमनिष्टस्योक्तमात्रस्य निराकृतस्य च विपर्ययेण साध्यः तेनैव स्वरूपेणाभिमतो वादिन इष्टोऽनिराकृतः पक्ष इति पक्षलक्षणमनवद्यं दर्शितं भवति ।"–**न्यायबिन्दु.** ३।५०-५६। ६ "प्रमेयार्थसाधनानि"–PSV. VT. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शाब्दप्रसिद्धेन विरुद्धेन अर्थेन[1] अपोह्यते यथा अचन्द्रः शशी सत्त्वादिति। इदं[2] धर्मस्वरूपनिराकरणद्वारमात्रं दर्शितम्। अनया दिशा धर्मधर्मिविशेषस्वरूपनिराकरणमपि[3] वेदितव्यम्। तद्यथा[4] – नान्योऽवयवी[5] अवयवेभ्यः, तुलानतिविशेषाग्रहणात्।

---

१ "अर्थेन" – PSV[2] अनुसारेण नास्ति। २ "इदं **च** धर्मस्वरूप**विरोधेन** निराकरणद्वारमात्रं दर्शितम्" – PSV[2]। "एभिर्धर्मस्वरूपनिराकरणद्वारमात्रं दर्शितम्" – PSV[1]। "इदं धर्मस्वरूपनिराकरणेन दिङ्मात्रमुक्तम्" इति पाठोऽपि VT. अनुसारेण भवेदिति भाति। "[ऽदि नि शेस् प ल सोगुस् प स्ते। VT =] इदमित्यादि। अत्र धर्मधर्मिसमुदाय एव साध्यः। ततः सर्वथा समुदायनिराकरणादेव [जे बर् ऽगोग् चिङ् VT =] उपरोधः। स क्वचिद् धर्मद्वारेण धर्मिद्वारेण तदुभयद्वारेण तद्विशेषद्वारेण वा क्रियते इति तेन व्यपदिश्यते। इदमुदाहरणचतुष्टयं **धर्मस्वरूपनिराकरणेन** धर्मस्वरूपनिराकरणमुखेन एकस्य प्रकारस्य दर्शनाद् **दिङ्मात्रम्** [बशद् प VT =] उक्तम्। **अनया दिशा** धर्मधर्मिविशेषाणाम् [जे स्कब्स् सु बब् पऽि VT =] उपस्थितसाध्याविनाभाविनां धर्मिस्वरूपस्य च निराकरणद्वारेण प्रकारान्तराणि वेदितव्यानि।" – **विशाला०** पृ० १४४ A। "ननु 'अश्रावणः शब्दः, नित्यो घटः, नानुमानं प्रमाणम्, अचन्द्रः शशी' इत्युदाहरणैरेभिर्धर्मस्वरूपनिराकरणेन बाधा दर्शिता यथाप्रतिज्ञातधर्ममात्रस्य विपरीतधर्मोपस्थापनेन निराकरणात्। धर्मिविशेषस्य धर्मविशेषस्य धर्मिस्वरूपस्य च बाधनेन पक्षबाधास्ति सा कथमवगन्तव्येत्याह – 'धर्मिधर्मविशेषाणां स्वरूपस्य च धर्मिणः। बाधा साध्याङ्गभूतानामनेनैवोपदर्शिता' [**प्र० वा०** ४।१५१], धर्मिधर्मयोर्विशेषाणां, व्यक्तिभेदापेक्षया बहुवचनम्, धर्मिणः स्वरूपस्य च, सर्वेषामेषां साध्यं प्रति अङ्गभूतानां बाधा अनेनैव धर्मस्वरूपनिराकरणपरेणोदाहरणेन साध्यतोपलक्षणत्वाद् बाधा उपदर्शिता। 'तत्रोदाहृतिदिङ्मात्रमुच्यतेऽर्थस्य दृष्टये' [**प्र० वा०** ४।१५२], तत्र 'अश्रावणः शब्दः' इत्यादिषु उदाहरणदिङ्मात्रमुच्यते 'साध्याङ्गभूतस्य सर्वस्यैव बाधा भवति' इत्यर्थस्य दृष्टये दर्शनार्थम्।" – **प्र० वा० म०** ४।१५१-२, पृ० ४६४-५। तुलना – "कथं तर्हि धर्मधर्मितत्समुदायविशेषनिराकरणभेदः? तद्द्वारेण निराकरणात्। यद्द्वारेण हि समुदायो निराक्रियते तेन व्यपदिश्यते। परमार्थतः समुदायनिराकरणमेव।" – **प्र० वार्तिकालं०** ४।४०, पृ० ५०१। ३ "°करणं वेदितव्यम्।" – PSV[2]। "°रणमपि लक्षितं वेदितव्यम्" – PSV[1]। ४ "**यथा**" – PSV[1]। ५ "'अवयवी अवयवेभ्योऽन्यः' इति प्रतिज्ञायां कृतायां **नान्योऽवयवी अवयवेभ्यः तुलानतिविशेषाग्रहणादिति**। इदं [सुन् ऽब्यिन् पऽो VT.=] प्रतिवचनम्। अनेन च अन्यविशेषो निराक्रियते नान्यत्वमात्रम्। तथाहि……। [पृ० १४४ A]……**नान्येऽवयवा अवयविन** इति धर्मविशेषनिराकरणम्। अवयवा अवयविनोऽन्ये इति प्रतिज्ञा। अत्र अवयवा धर्मिणः, तेषामन्यत्वं धर्मः साध्यः। तेषां च केषाञ्चित् प्रत्यक्षत्वं विशेषः परेणाभिमतः ततोऽन्यत्वे ततो भेदेन अभासनादनुपपन्नः। [पृ० १४५ B]……**नास्ति द्रव्य**मित्यादि।……द्रव्यमस्तीति प्रतिज्ञा। द्रव्यं पृथिव्यादि, तदस्ति सदित्यर्थः। सत्तायोगात् **काणभुजस्य** द्रव्यादि त्रयं सदित्यभिमतम्। ततो गुणानामपि द्रव्यतापत्तिः, द्रव्यस्थितात्मसत्तासम्बन्धात्। [पृ० १४६ A]………यत् सत्तावद् न तद्द्रव्यम्, गुणवत्। द्रव्याभिमतं च वस्तु सत्तावदिति विरुद्धव्यासेन धर्मिस्वरूपनिराकरणात् प्रतिज्ञादोषः।"—**विशाला०**। तुलना–**प्र० वा० म० टि०** पृ० ४६८-४६९। "परस्यावयवेभ्योऽवयविनो गुरुत्वादिगुणयोगिनोऽन्यत्वेऽभिमते यदोच्यते–"**नान्योऽवयवी अवयवेभ्यः तुलानतिविशेषाग्रहणादिति,** एतद् धर्मविशेषनिराकरणेनोदाहरणं बोद्धव्यम्। तथाहि नात्रान्यत्वमात्रं निषेद्धुमिष्टम्, तथात्वे धर्मस्वरूपनिराकरणोदाहरणमेतत् स्यात्। तस्मादन्यत्वस्य साध्यधर्मस्य नान्तरीयका गौरवादयो विशेषा निराकर्तुमिष्टाः। तथा च धर्मविशेषोदाहरणमेव तत्। [४।१५२, पृ० ४६५] तत्र परेणावयविनः सकाशादवयवानामन्यत्वे प्रतिज्ञाते यदुच्यते **नान्येऽवयवा अवयविनः, अप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गा**दिति तद् धर्मिविशेषनिराकरणोदाहरणम्। तथाहि–अवयवानां भेदमिच्छन् प्रत्यक्षतामपीच्छति। अन्यत्वे च निराकृते प्रत्यक्षतायाश्च निरासादवयवानां धर्मिविशेषनिराकरणोदाहरणत्वं व्यक्तम्। अभ्युपगम एव चात्र बाधकः, अवयवादर्शने द्रव्यादर्शनस्वीकारात्। गुणव्यतिरिक्तं द्रव्यमस्तीति परेणोक्ते यदोच्यते **नास्ति द्रव्यं गुणद्रव्याणां द्रव्याद्रव्यत्वप्रसङ्गात्** तद् धर्मिस्वरूपनिराकरणोदाहरणम्। तथाहि–धर्मिण एव द्रव्यस्य स्वरूपमात्रं(पमत्र ?) निराक्रियते। गुणद्रव्याणामन्योन्यं भेदः। गुणोऽपि द्रव्यं स्याद् द्रव्यं च गुणः भेदाविशेषादित्यभ्युपायस्य बाधकत्वम् [पृ० ४६८-४६९]।"—**प्र० वा० म०**। "**नान्योऽवयवी अवयवेभ्यस्तुलानतिविशेषाग्रहणात्। नान्येऽवयवा अवयविनो** वा, **अप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात्। नास्ति द्रव्यं गुणद्रव्याणां द्रव्याद्रव्यत्वप्रसङ्गात्** [पृ० ५५३]……**नान्येऽवयवा अवयविनः,** तस्य **अप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात्।** अन्यत्वे हि तेषामप्रत्यक्षतायामवयविनोऽप्यप्रत्यक्षताप्रसङ्गात्।…………**नास्ति द्रव्य**मिति गुणव्यतिरिक्तमिति सम्बन्धः। **गुणद्रव्याणां द्रव्याद्रव्यत्वप्रसङ्गा**दिति गुणस्य वा द्रव्यत्वं द्रव्यस्य वा गुणत्वमित्यर्थः। तथाहि–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नान्येऽवयवा अवयविनः, अप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात् । नास्ति द्रव्यम्, गुणद्रव्याणां द्रव्याद्रव्यत्वप्रसङ्गात् । *उभयस्वरूपविशेष[निराकरणं] यथा* सर्वं[1] वाक्यमनृतार्थमिति । यदेतद् वाक्यं 'वाक्यमस्ति वाक्यात्मना अनृतार्थत्वेन च' इति, अस्य अनृतत्वे

व्यतिरेके सति परस्परव्यावृत्तत्वाद्रूपं सत्तयाधिष्ठितं द्रव्यस्य ग्राह्यं गुणानामपि तथैवेति न्यायः । ततो द्वयोः परस्परपरिहारेण स्थितयोरेको गुणोऽन्यद् द्रव्यमिति कुतो विवेकः ? अपरस्परपरिहारेऽपि कुतो विवेकः ? [पृ० ५५४]"—**प्र० वार्तिकालं०।** विस्तरार्थिभिः सव्याख्याः **प्रमाणवार्तिक**कारिका [४।१५२-१६३] अत्र विलोकनीयाः । **न**यचक्रवृत्ति. पृ० १७२ पं० १६–१९

१ * * PSV[2] मध्ये एतत्स्थाने 'एवम्' इति पाठः । * * एतच्चिह्नान्तर्गतपाठात् परतस्तु PSV[2] अनुसारेण सर्वः संस्कृतानुवादः, PSV[1] मध्ये तु तत्र विशृङ्खलोऽनुवादः । VT. अनुसारेण तु यादृशः पाठः संभवति स **विशालामलवत्य**न्तर्गतप्रतीकत उन्नेयः । "उभयस्वरूपनिराकरणमुखेनोदाहरणं तद्यथा **सर्वं वाक्यमनृतार्थ**मिति । 'अनृतार्थं वचः सर्वमिति **वाक्यानृतत्वयोः** । तत्स्वरूपविशेषस्य क्षेपे दोषो विवक्षिते ॥ २७५ ॥' **वाक्यत्वमनृतत्वं** च सामान्येन यदा निराकर्तुमभिप्रेतं तदोभयस्वरूपनिराकरणम्, यदा तु वाक्यस्य धर्मिणो धर्मो**ऽनित्यत्व**[मनृतत्व]श्चा**नृताभिधेयत्वं** तदोभयविशेषनिराकरणम्, सर्वस्य वाक्यविशेषस्यानृताभिधेयत्वस्य च निराकरणात् । प्रामाण्यं हि वचनसामर्थ्यात्, अतस्तेन वाक्यत्वानृताभिधेयत्वाभाव(त्वोभय ?)निराकरणं धर्मिविशेषश्चात्र कश्चिदनित्यत्वादिको द्रष्टव्यः । यदि ह्यनित्यत्वं न साध्यते व्यर्थकमेव वक्तृप्रामाण्याङ्गीकरणम् । यदि नित्यता स्याच्च वक्त्रा किञ्चित् क्रियेतेति व्यर्थ एव वक्ता स्यादतः स्ववचनविरुद्धमेतत् । 'यदि नित्यं भवेद्वाक्यं वक्तुर्व्यर्थत्वमापतेत् । अवाक्यरूपोपकृतौ सिद्धोपस्थायितापतेत् ॥ २७६ ॥' वक्तुर्हि वाक्यस्वरूपमनुपकुर्वाणस्य न वाक्योपकारिता । अतत्कृतोपकारे न तस्य किञ्चिदित्यनुपकारी न वाक्येन वक्तापेक्ष्येत । अपेक्ष्यते च । तस्मादनित्यता तस्य साधनीया । ततस्तद्विशेषनिराकरणमुखेनायं पक्षाभास इति कथितम् ।"–**प्र० वार्तिकालं०** पृ० ५५४–५ । २ "**सर्वं वाक्यमनृतार्थ**मिति प्रतिज्ञा । अनेन च [1]स्वस्मादन्यत् सर्वं वाक्यमनृतार्थमिति प्रतिज्ञायते । परप्रतिपादनाय वचनमुच्चारयतैव वादिना स्ववचनं प्रमाणमभ्युपगतम् । तस्मात् तदत्राविवक्षितम् । तस्मात् 'सर्व'शब्दोऽत्र [2]वाक्यैकदेशे परस्यैव [वाक्ये] वर्तते । यच्च 'वाक्यम्' इत्यनूद्यते तद् वाक्यं कीदृशमित्याह–**वाक्यमस्ति [3]वाक्यात्मना अनृतार्थत्वेन [4]च** इति । वाक्यात्मनेति वाक्यस्वरूपेण, अनेन धर्मिस्वरूपमनूद्यते । **अनृतार्थत्वेन चे**ति अयथार्थत्वेन, अनेन च धर्मस्वरूपम् । इत्थम्भूतलक्षणे इयं तृतीया । **च**शब्दो धर्मिधर्मविशेषानुवादवाक्यसंग्रहार्थः । तत् पुनः कीदृशमिति चेत्, 'वाक्यस्य विशेषो ऽनित्यत्वादिरस्ति, अनृतार्थत्वस्य च [5]अनृतपदाभिधेयत्वादिरस्ति' एवंविधम् । **[6]अस्ये**ति अनुवादवाक्यस्य । अस्यापि प्रतिज्ञावाक्येन भारतादिवाक्यवदनृतार्थत्वं प्रतिज्ञायते । तस्य चानृतार्थत्वे भारतादिवाक्यस्वरूपमवाचकमपि सत्यार्थं सम्भवति यच्चासत्यार्थत्वं तद्विशेषः सोऽपि हीयते । तस्मात् प्रतिज्ञा स्ववाच्ये निराकृता भवति तत्स्वरूपद्वारेण [पृ० १४६ B] विशेषद्वारेण वा । तत्र **यदि वाक्यासत्यत्वयोः सर्वथा निराकरण**मिति अनेन धर्मधर्मिस्वरूपनिराकरणद्वारेण प्रतिज्ञार्थनिराकरणं दर्श्यते । कथं कृत्वेति चेत्, **[7]वाक्यासत्यत्वयो**रिति निमित्तार्था सप्तमी । तेनायमर्थो भवति—यदि वाक्येन धर्मिणा असत्यार्थेन साध्यधर्मेण च निमित्तेन सर्वथा निराकरणं पक्षीभूतम् । इदमुक्तं भवति—यदि धर्मिरूपे धर्मरूपे वा बाध्यमाने तद्द्वारेण साध्ये समुदाये बाधा भवति **तथा सति उभयस्वरूपनिराकरण**मिति । 'सर्वथा' इत्यनेन सर्वप्रकारेण समस्तं साध्यं यदि उपरुध्यते तर्हि प्रतिज्ञादोषः न तु यथा केचिदाहुः धर्मिमात्रबाधयेति दर्शयति।......एवं तावत् [स्त्र जि ल्त बृशिन् पऽि ङग् गि VT. =] यथाशब्दं वाक्यस्यानृतार्थत्वे उभयस्वरूपद्वारेण निराकरणम् । [द नि स्ग्रस् शिन् प VT. =] इदानीं शब्दितस्य अयथार्थत्वे विशेषद्वारेण प्रतिज्ञार्थनिराकरणप्रतिपादनायाह—**अथे**त्यादि । **वाक्यात्मन** इति ।.........अयमपि क इति चेत्, धर्मिवाक्यविशेषः । कुतोऽयमिति चेत्, यतः स वाक्यात्मभूतः । अपि च धर्मिधर्मविशेषनिराकरणप्रतिपादनं प्रकृतम्, यतस्तदनन्तरमेवोक्तम्-**तथासति उभयविशेषनिराकरण**मिति । तस्मादयं सामान्यशब्दोऽपि प्रकरणात् सामर्थ्याच्च वाक्य-

---

1 "रङ् जिद् लस्"—VT. । तुलना–"सर्वं मिथ्या ब्रवीमीति नैतद् वाक्यं विवक्ष्यते । तस्य मिथ्याभिधाने हि प्रक्रान्तोऽर्थो न गम्यते ॥३।३।२३॥ न च वाचकरूपेण प्रवृत्तस्यास्ति वाच्यता । प्रतिपाद्यं न तत् तत्र येनान्यत् प्रतिपाद्यते ॥३।३।२४॥ **असाधिका प्रतिज्ञे**ति नेयमेवाभिधीयते । यथा तथास्य धर्मोऽपि नैव कश्चित् प्रतीयते ॥३।३।२५॥"—**वाक्यपदीय.** । प्र० वा० ४।९४,१०२। **न्याय**बिन्दुटीका ३।५४ । 2 'ङग् फ्योग्स् ग्चिग् फ रोल् बोऽि खो न ल ऽजुग् गो ॥"—VT. । 3 'ङग् गि ब्दग् जिद् क्यिस्–VT. = **वाक्यात्मत्वेन** ? । 4 'क्यङ्'–VT. = **अपि** ? । 5 'ब्र्जुन छिग् गि ब्र्जोद् पर् ब्य ब चन् जिद् ल सोगस् प'–VT. । (अनृताभिधेयत्वादिः ?) । 6 "ऽदिऽि शेस् प"–VT. । 7 'ङग् दङ् ब्र्देन् मिन् जिद् दग् ल' VT. । (वाक्यानृतत्वयोः ?) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि वाक्यानृतत्वयोः सर्वथा निराकरणं तर्हि उभयस्वरूपनिराकरणम् । अथ वाक्यात्मन अनृतत्वेन निराकरणं तर्हि उभयविशेषनिराकरणम् ।

× × × × × × ×

[अथ चतुर्थस्य दृष्टान्तपरिच्छेदस्य कतिपयोंऽशः]

* छुल्' ग्सुम्' तेंग्स्' शेस्' ब्र्जोद्' प' लग् ॥ फैयोग्स्' क्यि' छोस्' सु' लेग्स्' ग्नस्' पडि ॥
ल्हग्' म' छुल्' ग्ञिस्' सु' ग्रग्स्' प ॥ द्पे' यिस्' रब्' तु' स्तोन्' पर्' ब्येद् ॥ १ ॥

तोंग्'[3] गेडि' ब्स्तन्' ब्चोस्' नंमूस्' सु' नि' फ्योग्स्' क्यि' छोस्' जिद्' चम्' ग्तन्' छिग्स्' क्यि' स्ब्योर्' ब' यिन्' नो' शेस्' ग्रग्स्' ते । द्पेर्' न' ऽदि' ब्यस्' पडि' फियर्' शेस्' पस्' स्ग्र' मि' तैंग्' पर्' गो' बर्' ब्येद्' प' ल्त' बुऽो । मूछन्'[4] जिद्' ल्हग्' म' नि' स्ब्योर्' ब' ल' म' ब्र्जोद्' पस्' देडि'[5] दोन्' दु' द्पे' ब्र्जोद्' पर्' ब्यऽो ।

ब्स्ग्रुब्' ब्यडि' जैंस्' सु' ऽग्रो' बडि' तैंग्स् ॥ ब्स्ग्रुब्' ब्य' मेद्' न' मेद्' जिद्' गङ् ॥
छोस्' मृथुन्' चिग्' शोस्' दङ्' ब्चस्' ग्ञिस् ॥ द्पे' ल' रब्' तु' ब्स्तन्' पर्' ब्य ॥ २ ॥

जैंस्'[6] सु' ऽग्रो' ब' थमूस्' चद्' दु' ऽग्रोऽो ॥ गङ्'[7] शेस्' प' नि ब्र्जोद्' पर्' ब्यऽो ॥ छोस्' मृथुन् प' नि' रे' शिग्' स्ग्र' मि' तैंग्' स्ते' ब्यस्' पडि' फियर्' शेस्' ब्य' ब' ल्त' बुऽो ॥ गेल्'[8] ते' गङ्' चोंल्' ब' लस्' ब्युङ्' ब' दे' मि' तैंग्' पर्' बुंम्' प' ल' सोग्स्' प' ल' मृथोङ्' ब' दे' ब्शिन्' दु' छोस्' मि' मृथुन्' प' ल' यङ्' तैंग्' प' चोंल्' ब' लस्' म' ब्युङ्' बर्' नम्' मूखऽ' ल' मृथोङ्' बडि' फियर् [पृ० ६१] * ।...

विशेषे एव वर्तते । [पृ० १४७ A]......**असत्यार्थत्वेनापि** इति । असत्योऽर्थोऽभिधेयो[1] यस्य, तद्भावोऽसत्यार्थत्वम्[2] । स च साध्यधर्मस्य विशेषः । इदं चानन्तरोक्तोपपत्त्यैव प्रतीयते । **अपिशब्दात्** केनचिद् विशेषान्तरेणापि । तृतीयेयं हेतौ । ततोऽयं वाक्यार्थो भवति–अथ धर्मिविशेषेण अनित्यत्वादिना धर्मविशेषेणानृतपदाभिधेयत्वादिना च निमित्तेन तन्निराकरणद्वारेण सर्वथा प्रतिज्ञातार्थो निराक्रियते तर्हि उभयविशेषनिराकरणमिति । एवमत्र प्रतिज्ञावाक्येन अनुविधानवाक्येन च अयथार्थत्वप्रतिज्ञयापि स्वार्थ एव निराकृतो भवतीति स्ववचनविरोधः प्रतिज्ञादोषः [पृ० १४७ B]"–**विशाला०** ।

१ **"छुल्' गसुम्' ग्तन् छिग्स्' शेस्' ब्शद्' पडि ॥ ऽदिर्' नि' फ्योग्स्' छोस्' ब्स्तन्' प' नि ॥ ग्नस्' यिन्' ल्हग्' मडि' छुल्' ग्ञिस्' नि ॥ द्पे' यिस्' रब्' तु' स्तोन्' पर्' ब्येद् ॥ तोंग्' गेडि' ब्स्तन्' ब्चोस्' नंमूस्' सु' स्ब्योर्' ब' ल' ग्तन्' छिग्स्' शेस्' ब्य' बस्' फ्योग्स्' क्यि' छोस्' चम्' जिद्' ब्स्तन्' प' यिन्' ते । द्पेर' न' ब्यस्' पडि' फियर्' शेस्' ब्य' ब'ऽदिर्' स्ग्रडि' शेस्' ब्य' ब' तोंग्स्' प' यिन्' नो ॥ मूछन्' जिद्' ल्हग्' म' नि स्ब्योर्' ब' ल' म ब्र्जोद्' पडि' फियर्' देडि' दोन्' दु' द्पे' ब्र्जोद्' पर्' ब्यऽो ॥ ग्तन्' छिग्स्' ब्स्ग्रुब्' ब्यडि' जैंस्' ऽग्रो' ब ॥ ब्स्ग्रुब्' ब्य' मेद्' ल' मेद्' प' जिद् ॥ द्पे' गङ्' ल' नि' ब्स्तन्' ब्य' ब ॥ दे' छोस्' मृथुन्' दङ्' चिग्' शोस्' ग्ञिस् ॥ गङ्' ल' शेस्' ब्र्जोद्' पर' ब्य' ब' ल' थमूस्' चद्' ल' ऽग्रो' ब' नि' जैंस्' सु' ऽग्रो' बऽो ॥ रे शिग्' छोस्' मथुन्' पस्' नि' स्ग्र' मि' तैंग्' ते । चोंल्' ब' लस्' ब्युङ्' बडि' फियर्' रो ॥ गङ्' चोंल्' ब' लस्' ब्युङ्' ब' दे' नि' मि' तैंग्' पर्' मृथोङ्' ब' स्ते । द्पेर्' न' बुम् प' ब्शिन्' शेस्' ब्य' ब' दङ्' छोस्' मि' मृथुन्' पस्' तैंग्' प' नि' चोंल्' ब' लस्' ब्युङ्' ब' म' यिन्' पर्' मृथोङ्' स्ते । [द्पेर्' न' ?] नम्' मूखऽ' शेस्' ब्य' ब' ल्त बुऽो ॥"—PSV[2] पृ० १४९ A–B । २ "फ्योग्स्' छोस्' सु' नि' लेग्स्' ग्नस्' प"—VT. पृ० २१२ B । ३ "तोंग्' गेडि' ब्स्तन्' ब्चोस्' नंमूस् सु'नि' शेस्'प'ल'सोगस्'प' स्ते ।" VT. पृ० २१२ B । ४ "मूछन्' जिद्' ल्हग् म' नि' स्ब्योर्' ब' ल' मो' ब्र्जोद्' चेस्' प"—VT. पृ० २१३ A । ५ "देडि' फियर्' देडि' दोन् दु' द्पे' ब्र्जोद्' पर्' ब्य' बऽो' शेस्' प"—VT. पृ० २१३ A । ६ "थमूस्' चद्' ल' ऽग्रो' ब' नि' जैंस्' सु' ऽग्रो' बऽो' शेस्' प"—VT. पृ० २१३ B । ७ "गङ्' ल' शेस्' प' ब्र्जोद्' पर्' ब्य' ल' शेस्' प"—VT. पृ० २१३ B । ८ "गङ्' चोंल्' ब' लस्' ऽब्युङ्' ब' दे' नि' शेस्' प"—VT' पृ० २१३ B । ९ " द्पेर्' न' बुम्' प' ब्शिन्' शेस्' पऽो ।"—VT. पृ० २१० B । १० "तैंग्' प' नि' चोंल्' म' थग्' तु' ब्युङ्' ब' म' यिन्' शेस्' प"—VT. पृ० २१३ B ।

1 'ब्देन्' मिन्' पडि' दोन्' ते' ब्र्जोद्' ब्य' चन्' नो ।–' VT. = असत्यार्थाभिधेयवत् । अस्माकं तु 'असत्योऽर्थोऽभिधेयो यस्य' इति विग्रहोऽत्र समीचीनो भाति । 2 "ब्देन्' प' मिन्' पडि' दोन्' चन् जिद्' दो"–VT. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

卐 जेंस्' सु' ऽग्रो' ब' मूअम्' ल' तेंग्' प' जिद् ॥ म' ब्यस्' पियर्' दङ्' ऽजिग्' पऽि' पियर् ॥
ऽदि' नि'ऽग्रस्' जिद्' म' बूर्जोद्' प ॥ ऽजुग्' म' रूयब्' मि' ऽदोद्' ऽग्युर् ॥ ४ ॥······
रङ्' ल' ङेस्' बूशिन्' ग्शन्' दग्' ल ॥ ङेस्' प' बूस्क्येद्' पर्' ऽदोद्' प' यिस् ॥
फ्योग्स्' छोस्' जिद्' दङ्' ऽब्रेल्' प' दङ् ॥ बूसुब्' ब्य' बूर्जोद्' ब्य' ग्शन्' दग्' स्पङ्' ॥६॥ 卐 PS[2]

[1]त्रिरूपो हेतुरित्युक्तं पक्षधर्मे तु संस्थितः ।
[2]रूढे [3]रूपद्वयं शेषं दृष्टान्तेन प्रदर्श्यते ॥ ४ । १ ॥

[5]तर्कशास्त्रेषु प्रयोगे पक्षधर्ममात्रमेव हेतुरिति रूढम् । यथा कृतकत्वादित्यत्र 'शब्दस्य' इति प्रतीयते । शेषं लक्षणद्वयं प्रयोगेऽनुक्तमिति तदर्थं दृ[6]ष्टान्तो वक्तव्यः ।

***[7]साध्येनानुगमो हेतोः साध्याभावे च ना[8]स्तिता ।**
ख्याप्यते यत्र दृष्टान्तः स साधर्म्येतरो द्विधा ॥ ४।२ ॥*

---

१ दृश्यतां टिपृ० ७५ टि० २ । **वादन्यायवृत्ति.** पृ० ९२। "अत्र तादात्म्य-तदुत्पत्तिलक्षणसम्बन्धकथनाय हेतोः सजातीयविजातीययोः सत्त्वासत्त्वे दृष्टान्तप्रयोगेण वक्तव्ये। तयोश्च हेतुलक्षणादेव सिद्धिः । तस्माद् दृष्टान्तलक्षणं निरर्थकमित्यत आह – **त्रिरूपो हेतु**रित्यादि । यद्यपि **त्रिरूपो हेतुरित्युक्तं** तथापि प्रयोगकाले **पक्षधर्मे तु संस्थितः** । [निऽि' स्त्र' VT. =] **तु**शब्दोऽवधारणे, पक्षधर्ममात्रस्वरूपेण स्थितो हेतुवचनेन दर्श्यते। पक्षधर्ममात्रमुच्यत इत्यर्थः । कुत इत्याह – **रूढेरि**ति । **किं** पुनस्तया रूढ्या क्रियत इत्याह – **तर्कशास्त्रे**ष्वित्यादि । निमित्तार्थे सप्तमी । [रिग्स्' फ्र' मो' ल' सोग्स्' प' नंमूस्' सु' फ्योग्स् छोस्' च्म्' ग्तन्' छिग्स्' सु' बूशद्' दे VP=] **न्याय**सूत्रादिषु पक्षधर्ममात्रं हेतावुक्तम् । तस्मात् तद्वारेण लोक**प्रयोगेऽपि पक्षधर्ममात्रं** [ग्तन् छिग्स्' जिद्' रब्' तु' ग्रग्स्' सो VT. =] **हेतुत्वेन प्रसिद्धम्** । एवं तत्र हेतुवचनमुक्तम् ।··· [पृ० २१२ B]···तामेव रूढिं दर्शयन्नाह – **यथे**त्यादि । 'शब्दोऽनित्यः **कृतकत्वात्**' इत्युक्ते कृतकत्वमात्रं(मत्र) हेतुः पक्षीकृत**शब्दस्य** धर्म इत्येतन्मात्रं **प्रतीयते** इत्यर्थः । **शेषं लक्षणद्वयं प्रयोगेऽनुक्त**मिति, 'कृतकत्वात्' इत्यनेनैव सपक्षविपक्षयोरस्य सत्त्वासत्त्वे नोक्ते। तस्मात् **तदर्थं दृष्टान्तो वक्तव्य** इति 'दृष्टान्तेन प्रदर्श्यते' इति च वाच्यवाचकयोरभेदोपचारे[ण] एवमुक्तम् । अन्यथा **'यत्र इति अभिधेये'** इति वचनात् अर्थस्यैव दृष्टान्तत्वम्, अर्थेन च प्रदर्शनं नास्तीति अयुक्तं स्यात् । तस्मादभेदोपचाराद् दृष्टान्ताभिधानरूपं वचनमत्र दृष्टान्तशब्देनोच्यते [पृ० २१३ A] ।"–**विशाला०** । २ दृश्यतां **टिपृ० ७५ टि० २** । **३** 'रूढेः' इति पञ्चम्यन्तं पदम् । 'रूढेः पक्षधर्मे तु संस्थितः' इत्यन्वयः । **४ तत्त्वसंग्रहपञ्जिका.** पृ० ४१९। ५ 'तर्कशास्त्रेषु प्रयोगे हेतुवचनेन पक्षधर्मत्वमात्रं दर्श्यते, यथा कृतकत्वादित्यत्र 'शब्दस्य' **इति** प्रतीयते' इत्यपि PSV[1] अनुसारेण संस्कृतेऽनुवादः स्यादत्र । ** PSV.[2] अनुसारेणायं संस्कृतेऽनुवादः । यद्यपि कचित् PSV[2] अपेक्षया PSV[1] समीचीनतरः । तथापि PSV[1] अपेक्षया PSV[2] **एव बहुषु स्थानेषु समीचीनतर** इत्यस्माकमनुभव इति ध्येयम् । PSV[1] मध्ये त्वत्र किञ्चिदसंगतो भोटभाषानुवादः प्रतीयते, तदनुसारेण तु 'तर्कशास्त्रेषु पक्षधर्मत्वमात्रस्य हेतोः प्रयोग इति प्रसिद्धम् । यथा इदं कृतकत्वादिति 'शब्दोऽनित्यः' गम्यते' इत्यनुवादः संस्कृते स्यात् । **६ 'दृष्टान्त उच्यते'** इत्यपि पाठः स्यादत्र । **७** ** दृश्यतां टिपृ० ७५ टि० ५। **दशवैकालिकसूत्रहारिभद्रीवृत्ति.** पृ० २४ B । **न्यायमुख.** ॥ ११ ॥ **"साध्येनानुगमो हेतो**रिति, **साध्य**शब्दोऽत्र जिज्ञासितधर्ममात्रे वर्तते । अनुगमो हेतोरन्वयः । यत्र हेतोर्भावस्तत्र साध्यस्य भाव एव, न सहभावमात्रम् । साध्येनैव हेतोः, न हेतुना साध्यस्य । **साध्याभावे नास्तिता** साध्याभावे एव हेतोर्नास्तिता, न हेत्वभावे साध्यस्य ।·········**नास्तिता** इति 'नास्ति'शब्दोऽयं वाक्यरूपं शब्दान्तरमभावप्रतिपादकं द्रष्टव्यम् । **स साधर्म्येतर** इति, साधर्म्यदृष्टान्तो वैधर्म्यदृष्टान्तश्चेति कुब्जखञ्जादिवद् विशेषणसमासः । अथवा साधर्म्येण इतरेण च सहित इति **ससाधर्म्येतर** इति बहुव्रीहिः । अस्मिन् व्याख्याने **'सः'** इति सर्वनामपदमनुक्तमपि [पृ० २१३ A] यत्तदोर्नित्यसम्बन्धाद् लभ्यते । **सर्वत्र गमनमनुगम** इत्यनेन **अनु**शब्दोऽत्र व्याप्तिद्योतक इति दर्श्यते । **यत्रेति अभिधेये** इत्यनेन अर्थस्य दृष्टान्तत्वमाह । पदं तु तद्वाचकत्वाद् उपचरितो दृष्टान्तः । इदं च **'दृष्टान्तेन प्रदर्श्यते'** इत्यनेन पूर्वमेव [टिपृ० १३३ पं० २०] आवेदितम् । **यत् प्रयत्नजं तद्धी**ति **हि**शब्दो वीप्सार्थः । एवं हि हेतोः सपक्ष एव सत्त्वमुक्तं भवति यदि यद् यत् प्रयत्नानन्तरीयकं तत् तदनित्यमिति दर्श्यते । नान्यथा । एवं सर्वोपसंहारेण व्याप्तिं दर्शयित्वा स्पष्टीकरणार्थमेकदेशे उदाहरति—**यथा घट** इति । **नित्यमप्रयत्नानन्तयरीक**मिति **नित्य**शब्देनानित्यत्वाभावो लक्ष्यते । एवं हि हेतोः साध्याभावे नास्तित्वमुक्तं भवति । न प्रकारान्तरेण [पृ० २१३ B] ।"—**विशाला०** । ८ **विशे**षावश्यकभाष्यकोट्यार्यवृत्ति. पृ० १५४ B । **न्याय**वार्तिक-तात्पर्य-टीका. १।१।३७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]सर्वत्र गमनमनुगमः । यत्रेति अभिधेये । *[2]साधर्म्येण तावत् शब्दोऽनित्यः प्रयत्नजत्वात् । यत् प्रयत्नजं तद्धि अनित्यं दृष्टं यथा घट इति । वैधर्म्येण नित्यमप्रयत्नानन्तरीयकं दृष्टम् [यथा] आकाशमिति ।* ......

[3]अन्यच्च —

[4]नित्यताऽकृतकत्वेन नाशित्वाद्वा(च्चा ?)त्र कार्यता ।
स्यादनुक्ता कृताऽव्यापिताऽनिष्टा च समान्वये ॥ ४।४ ॥......
[5]स्वनिश्चयवदन्येषां निश्चयोत्पादनेच्छया ।
पक्षधर्मत्वसम्बन्धसाध्योक्तेरन्यवर्जनम् ॥ ४।५ ॥

× × × × × × × × × × × × × × ×

॥ इति भोटभाषानुवादात् संस्कृते परिवर्तितस्य सवृत्तिकस्य **प्रमाणसमुच्चयस्य** कतिपयोंऽशः ॥

अथ पूर्ववद् नयचक्रवृत्तिटिप्पणान्यारभ्यन्ते—

पृ० ६२ पं० २२. **वर्णो गन्धो रसः**···। कारिकेयं [6]तामीलभाषानिबद्धे नीलकेशीनामके प्राचीने **जैन**ग्रन्थेऽप्युद्धृता।

पृ० ६३ पं० २५. **गुणानां परमं रूपं**···। कारिकेयं **दिङ्नागे**नापि प्रमाणसमुच्चये पञ्चमेऽपोहपरिच्छेद उद्धृता । तस्याश्चेदृशो भोटभाषानुवादः—

ह्योद् चग्' गि' यङ् । योन्' तन्' र्नमूत्' क्यि' रङ्' ब्शिन्' म्छोग् ॥ मूथोङ्' बडि'' लम्' दु' ऽग्रो' ब' मिन् ॥

मूथोङ्' बडि' लम्' दु' गङ्' ग्युर्' ब ॥ दे' नि' स्गु' म' ल्त' बुर्' गैंसोग् ॥"—PS^{2} । PSV^{2} पृ० ११९ A ।

पृ० ७३ पं० १३. पृ० ८२ पं० १६. **विजानाति न विज्ञान**···। **आर्यदेव**विरचितचतुःशतकस्य पञ्चविंशति-श्लोकपरिमितेषु षोडशसु प्रकरणेषु एकादशे प्रकरणेऽष्टादशीयं कारिका । ईदृशश्च तस्या भोटभाषानुवादः—

---

१ PSV^{1} अनुसारेणायं संस्कृतेऽनुवादः । २ तुलना **न्याय**प्रवेशक. पृ० १-२ । टिपृ० ७५ पं० ४-६ । * * "साधर्म्यं तावत् शब्दोऽनित्यः कृतकत्वादिति । यद् यद् प्रयत्नजं तदनित्यं घटादौ दृष्टम् । एवं वैधर्म्येऽपि नित्यमप्रयत्नजमाकाशादौ दृष्टत्वात्"—PSV^{1} । ३ दिङ्नागरचितां वृत्तिं विना केवलमेवेदं कारिकाद्वयमत्रास्माभिरुपन्यस्यत इति ध्येयम् । "विपरीतप्रयोगेण [न] केवलं हेतोर्व्याप्तिर्दर्शयितुं न शक्यते, दोषान्तरमप्यापद्यत इति दर्शयन्नाह-**अन्यच्चे**त्यादि । अकृतकत्वेन नित्यता अनुक्ता कृता स्यात्, नाशित्वाच्च कार्यतापि अनुक्ता कृता स्यात्, अव्यापिता चानिष्टा स्यादत्र समान्वये इति पदानां सम्बन्धो योज्यः । **चकारः** समुच्चयार्थः । **कार्यते**ति कृतता । **अनुक्ते**ति अप्रतिज्ञाता । **कृते**ति साधिता ।"-**विशाला०** पृ० २१५ A । ४ न्यायमुख. ॥ १२ ॥ **वादन्यायवृत्ति.** पृ० ६ । ५ न्यायमुख. ॥ १३ ॥ **वादन्यायवृत्ति.** पृ० ६६ । **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ४८७ । **विशेषावश्यकभाष्यकोट्यार्यवृत्ति.** । ६ दृश्यतां Gleanings from the **नीलकेशी,** Journal of the Oriental Institute, Tirupati. Vol. II. by N. Aiyaswami Shastri. । ७ प्रायः सर्वमपि **साङ्ख्यमतं दिङ्नागेन वार्षगणतन्त्रं** मनसि निधाय वर्णितमत इयमपि कारिका **दिङ्नागेन वार्षगणतन्त्रा**दुद्धृतेति भाति । दृश्यतां टिपृ० ३९ पं० २१-टिपृ० ४० पं० ८ । ८'भवतामपि-गुणानां परमं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति । यत्तु दृष्टिपथप्राप्तं तद् मायेव सुतुच्छकम् ॥' इति **संस्कृतमस्य** । "**भवतामपी**त्यादि । **गुणानां परमं रूपं** यत् साम्यावस्थायामविपरीतं स्वरूपं तदतीन्द्रियत्वाद् दृष्टिविषयभावं नोपयाति । व्यक्तावस्थायां तेषां रूपं **तद् मायेव सुतुच्छकम्** स्वरूपेण शून्यमित्यर्थः । ततश्च भवतापि भावस्य तत्त्वतो निर्निमित्त एव व्यपदेशोऽभ्युपगम्यते इति समानो वादः ।"-**विशाला०** पृ० २८३ B । ९ "शिन्' तु' ग्सोग्"-VT. पृ० २८३ B । "शिन्' तु' स्तोङ्"-PSV^{1} । १० दृश्यतां टिपृ० ४५ पं० ३-७ । ११ सम्प्रति अस्य **चीन-भोट**भाषानुवादावेवोपलभ्येते । अन्त्यस्य प्रकरणाष्टकस्य [२०१-४०० कारिकाणां] तदुपरि **धर्मपाल**विरचितवृत्तेश्च चीनभाषानुवादो यथाक्रमं B. Nanjio's Catalogue of the Chinese Translation of the Buddhist Tripitakas, Oxford University 1883 अनुसारेण No. 1189-1198 मध्ये उपलभ्यते । समग्रग्रन्थस्य भोटभाषानुवादो 'ब्स्तन्' ऽग्युर्' म्दो'वर्गे **छ** [=१८] पुटे विद्यते. D. ed. No. 3846. पृ० १-१८ A । P. ed. पृ० १-२० B । एतदुपरि **चन्द्रकीर्ति**रचिता टीका 'ब्स्तन्' ऽग्युर्' म्दो'वर्गे **य**[=२४]पुटे विद्यते. D. ed. No. 3865. पृ० ३० B-२३९ A । P. ed. पृ० ३३ B-२७३ B । अन्तिमस्य प्रकरणाष्टकस्य **भोटतः** P. L.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जि' ल्तर्' नंम्' शेस्' ग्चिग्' गिस्' नि ॥ दोन्' ग्जिस्' नंम्' पर्' मि' शेस्' प ॥
दे' ब्शिन्' नंम्' पर्' शेस्' ग्जिस्' क्यिस् ॥ दोन्' ग्चिग्' नंम्' पर्' मि' शेस्' सो ॥ २६८ ॥

पृ० ९१ पं० १७ **विषयो हि नाम**...। दिङ्नागविरचिताया **आलम्बनपरीक्षावृत्ते**र्वाक्यमेतदुद्धृतमत्र तथाहि ।–

गङ्' दग्' मिग्' ल' सोगस्' पऽि' नंम्' पर्' शेस्' पऽि' द्मिगस्' प' फ्यि' रोल्' ग्यि' दोन्' यिन्' पर्' ऽदोद्' प' दे' **भोट.** दग्' नि' देऽि' ग्र्यु' यिन्' पऽि' फ्यिर्' र्दुल्' फ्र' रब्' दग्' यिन्' पऽम्' देर्' स्नङ्' बऽि' शेस्' प' स्क्येस्' पऽि' फ्यिर्' दे' ऽदुस्' प' यिन्' पर्' तोंग्' ग्रङ्' न । दे' ल' रे' शिग्'

द्बङ्' पो' नंम्' पर्' रिग्' पऽि' ग्र्यु ॥ फ्र' रब्' र्दुल्' दग्' यिन्' मोद्' क्यि ॥
देर्' मि' स्नङ्' फ्यिर्' देऽि' युल्' नि ॥ र्दुल्' फ्रन्' म' यिन्' द्बङ्' पो' ब्शिन् ॥ १ ॥

युल्' शेस्' ब्य' ब' नि' शेस्' पस्' गैङ्' गि' रङ्' गि' ङो' बो' ङेस्' पर्' ऽजिन्' प' यिन्' ते । देऽि' नंम्' पर्' स्क्ये' बऽि' फ्यिर्' रो ॥ र्दुल्' फ्र' मो' दग्' नि' देऽि' ग्र्यु' ञिद्' यिन्' दु' सिन्' क्यङ्' दे' ल्त' म' यिन्' ते' द्बङ्' पो' ब्शिन्' नो ॥ दे' ल्तर्' न' रे' शिग्' र्दुल्' फ्र' मो' दग्' द्मिगस्' प' म' यिन्' नो ॥–D. ed. पृ० ८६ A-B ।

ये चक्षुरादिविज्ञानस्य बाह्योऽर्थं आलम्बनमिति मन्यन्ते ते तत्कारणत्वात् परमाणून् तदाभासज्ञानजनकत्वात् तत्सञ्चयं **सं.** वा कल्पयेयुः ? तत्र तावत्—

य[१]द्यपीन्द्रियविज्ञप्तेः कारणं परमाणवः ।
अतदाभतया नास्या अक्षवद् विषयोऽणवः ॥ १ ॥

[४]विषयो हि नाम यस्य ज्ञानेन स्वभावोऽवधार्यते तदाकारोत्पत्तेः । परमाणवः तत्कारणत्वेऽपि न तथा इन्द्रियवत् । एवं तावत् परमाणवो नालम्बनम् ।

Vaidyaरचितः संस्कृतानुवादः' Etudes sur Āryadeva et son Catuḥśataka, Paris, France, 1923 इत्यस्मिन् ग्रन्थे वर्तते, तत्र "विजानाति यथा नैकं विज्ञानं वस्तुयुग्मलम् । विजानाति तथा नैकं वस्तु विज्ञानयुग्मलम् ॥ ११।१८ ॥" ईदृशमनूदितमिति ध्येयम् । **चन्द्रकीर्ति**प्रणीतवृत्तिसहितस्य अन्तिमस्य प्रकरणाष्टकस्य **भोट**तः **संस्कृते विधुशेखर**-भट्टाचार्यरचितोऽनुवादः Viśva-Bharati Series. No. 2 – मध्ये विद्यते, तत्र चेदृशोऽनुवादः – "इतश्च स्थिति-र्नास्ति । तथाहि – विजानाति यथा नार्थद्वयं विज्ञानमेककम् । विज्ञानद्वयमेवं न विजानात्यर्थमेककम् ॥ ११।१८ ॥ यदि भावस्य स्थितिर्नाम भवेत् तदा क्रमेणानेकविज्ञानज्ञेयो भवेत् । नास्य सम्भावनापि, ज्ञानज्ञेययोर्द्वयोः क्षणिकत्वाद् यदेकेन गृहीतं न तदन्येन ग्रहीतुं शक्यते । तस्मान्नास्ति स्थितिः । स्थितेरभावाच्च न भावो नापि काल इति सिद्धम् ।"–**चतुःशतक-वृत्ति.** पृ० १२५ । वस्तुतस्तु 'विजानाति न विज्ञानमेकमर्थद्वयं यथा । एकमर्थं विजानाति न विज्ञानद्वयं तथा ॥' इत्येवं यथा **नयचक्रवृत्तौ** [पृ० ७३ पं० १३, पृ० ८२ पं०१६] इयं कारिकोद्धृता तथैव **चतुःशतके** पाठ आसीदिति ध्येयम् ।

१ अस्या मूलसंस्कृतं सम्प्रति नोपलभ्यते, प्राचीनौ **चीन-भोट**भाषानुवादौ केवलं प्राप्येते । दृश्यतां टिपृ० ९५ टि० ४ । अत्र Prof. Dr. E. Frauwallner इत्येभिर्महाशयैर्विहिता सूचनाप्यनुसन्धेया–

As to the Ālambanaparīkṣâ the following editions might be mentioned: Susumu Yamaguchi, Examen de l'objet de la connaissance, Journal Asiatique 1929 [Tibetan and Chinese texts with translation and notes]; E. Frauwallner, Dignâga's Ālambanaparīkṣā, Wiener Zeitschrift für die Kunde des Morgenlandes. Bd. 37/1930 [Tibetan text with translation and notes]; further Susumu Yamaguchi has added the Tibetan text and a translation into Sanskrit to his studies in Vijnaptimātratā, which were published in Japanese (Kyoto 1953).

२ "गङ्' गि'" N. ed. मध्ये नास्ति । ३ **प्र० वार्तिकालं०** पृ० ३३६ । ४ * * **नयचक्रवृत्ति.** पृ० ९१ पं० १७ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ९३ पं० १. रज्ज्वां सर्प इति ज्ञानं...। आचार्यश्रीमल्लवादिक्षमाश्रमणैरियं कारिका हस्तवालप्रकरणादत्रोद्धृता प्रतीयते। अस्या भोटभाषानुवाद इत्थमुपलभ्यते—

थग्' प' ल' नि' स्बुल्' स्लम्' ऽज़िन्॥ थग्' प' मृथोङ्' न' दोन्' मेद्' दो॥
दे' यि' छ' मृथोङ्' दे' ल' यङ्॥ स्बुल्' बृशिन्' शेस्' प' ऽख्रुल्' प' यिन्॥ १॥

पृ० ३१३ पं० ९. प्रागनुमानं सप्रभेदं व्याख्याय तेषां यदेतत्...। इत आरभ्य पृ० ३२३ पर्यन्तं वर्णितं

---

१ सम्प्रति सवृत्तिकोऽयं ग्रन्थो मूलसंस्कृते नोपलभ्यते। चीनभोटभाषानुसारेण षट्कारिकात्मकोऽयं मूलग्रन्थः। वृत्तावपि सर्वाः कारिकाः प्रतीकरूपेणान्तर्गता एवेति मुद्रितेषु लिखितेषु च वृत्त्यनुवादेष्वपि षडेव कारिका लभ्यन्ते। 'बूस्तन्' ऽग्युर्' मृदो'वर्गे चपुटान्तर्गते ग्रन्थे तु सप्तम्यपि कारिका वृत्त्या सह उपलभ्यते तथापि सा पश्चात् प्रक्षिप्तेति भाति। P. Cordier's Catalogue du fonds Tibetain de la Bibliotheque Nationale, Troisieme partie, 1915 इत्यत्र छु [=१८]पुटवर्णनानुसारेण अस्य Tibetan index मध्ये 'मध्यमकहस्तवाल' इति नामदर्शनादयं मध्यमकसम्प्रदायस्य ग्रन्थः प्रतीयते। एतद्ग्रन्थाध्ययनादपि प्रतीयत एवैतत्। [557–569 A. D वर्षमध्ये] परमार्थविहितः [703 A. D. वर्षे] इत्सिंगविहितश्च चीनभाषानुवादः B. Nanjio's Catalogue अनुसारेण यथाक्रमं Nos. 1255–6 मध्ये उपलभ्यते। अस्य द्वौ भोटभाषानुवादौ, [1000 A. D. निकटवर्षे] एकः श्रद्धाकरवर्मरचितः, अपरस्तु दानशीलरचितः। उभयमपि परस्परं समानप्रायमेव। तत्र श्रद्धाकरवर्मकृतौ मूलवृत्त्यनुवादौ 'बूस्तन्' ऽग्युर्' मृदो'वर्गे च [=१७] पुटे यथाक्रमं स्तः। D. ed. No. 3844. पृ० २८२ B, No. 3845 पृ० २८२ B–२८४ A। N.ed. पृ० ३१२ B, पृ० ३१२ B–३१५ A। P. ed. पृ० ३१९ A-B, पृ० ३१९ B–३२१। दानशीलरचितौ तु छु [=१८]पुटे स्तः—D. ed. No. 3848 पृ० २२ B, No' 3849 पृ० २२ B–२८ A.। N. ed. पृ० २१ B, पृ० २१ B–२३ A। P. ed. पृ० २८ A–B, पृ० २४ B–२६ B। अस्य ग्रन्थस्य किमभिधानमासीदिति निश्चेतुं न पार्यते। भोटानुवादेषु P. ed. N. ed. मध्येऽनयोर्मूलवृत्त्योः 'हस्तवालप्रकरणकारिका, हस्तवालप्रकरणवृत्ति' इति च यथाक्रमं संस्कृतं नामोपलभ्यते। C. ed. D. ed. मध्ये तु चपुटे 'हस्तपास(श?)प्रकरण, हस्तपास(श?)प्रकरणवृत्ति' इति नाम दृश्यते, छुपुटे तु 'हस्ताभावप्रकरण, हस्ताभावप्रकरणवृत्ति' इति दृश्यते। C. ed. D. ed. N. ed. P. ed. मध्ये चपुटे मूलनाम्नो वृत्तिनाम्नश्च यथाक्रमं 'छ' शस्' क्यि' यन्' लग्' चेस्' ब्य' बऽि' रब्' तु' ब्येद्' प।, छ' शस्' क्यि' यन्' लग्' चेस्' ब्य' बऽि' रब्' तु' ब्येद्' पऽि' ऽग्रेल्' प।' इति भोटानुवाद उपलभ्यते। छुपुटे तु 'रब्' तु' ब्येद्' प' लग्' पऽि' छद्' क्यि' छिग्' लेऽुर्' ब्यस्' प।, लग्' पऽि' छद्' क्यि' ऽग्रेल्' प।' इति भोटानुवादो दृश्यते। चीनभाषानुवादेषु संस्कृतनाम्नो न निर्देशः, तथापि कथञ्चित् चीननामसाहाय्येन 'हस्तवालप्रकरण' इति नाम सम्भाव्यते। अनयोः कः कर्ता इत्यत्रापि विप्रतिपत्तिः। दिङ्नागग्रन्थानां चीनभाषानुवादेषु एतद्भाषानुवादस्यान्तर्गतत्वाच्चीनपरम्परानुसारेण उभयोरपि दिङ्नागो रचयिता। भोटग्रन्थेषु तु सर्वत्र उभयोरपि आर्यदेवः कर्ता इति स्पष्टमेव निर्दिष्टम्। दिङ्नागरचितमिदं हस्तवालप्रकरणं मनसि निधाय 'अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभिर्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः। स्थानादस्मात् सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्॥ १४॥' इत्येवं मेघदूते कालिदासेन अर्थान्तरं ध्वनयतोक्तमित्यपि केचिदैतिह्यान्वेषका विद्वांसस्तर्कयन्ति। अन्ये तु विद्वांस ईदृशमर्थान्तरकल्पनमत्र कालिदासवचने सर्वथैवानुचितमिति प्रतिपादयन्तीत्यपि ध्येयमत्र। उपरि निर्दिष्टाश्चीन-भोटानुवादाः काष्ठमुद्रित हस्तलिखितग्रन्थान्तर्गतपाठभेदैः सह महता परिश्रमेण सम्पाद्य Journal of the Royal Asiatic Society, London, April, 1918 इत्यत्र Dr. F.W. Thomas इत्येभिः प्रकाशिताः। तत्र च स्वीयः संस्कृतानुवाद आङ्ग्लभाषानुवादश्चापि तैर्योजितः। तत्र संस्कृते तैः प्रथमा कारिका इत्थमनूदिता–'रज्ज्वां सर्पमनस्कारो रज्जुं दृष्ट्वा निरर्थकः। तदंशान् वीक्ष्य तत्रापि भ्रान्ता बुद्धिरहाविव।'–पृ० २७७। वस्तुतस्तु 'रज्ज्वां सर्प इति ज्ञानं रज्जुदृष्टावनर्थकम्। तदंशदर्शे तत्रापि सर्पवद् रज्जुविभ्रमः।' इत्येवं यथा नयचक्रे [पृ० ९३ पं० १] इयं कारिकोद्धृता तथैव मूलसंस्कृतग्रन्थ आसीदिति ध्येयम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वं सांख्यमतं वार्षगणतन्त्रं मनसि निधायात्र नयचक्रवृत्तिकृतोपन्यस्तम्। तत्र कश्चिद् वार्षगणतन्त्रस्य पाठोऽक्षरश इहोपन्यस्तः कश्चित्तु संक्षिप्योपन्यस्त इति ध्येयम्। प्रमाणसमुच्चयवृत्ति-विशालामलवतीटीकयोर्दिङ्नागजिनेन्द्रबुद्धिभ्यामपीदमेव वार्षगण्यप्रणीतं शास्त्रमवलम्ब्य सांख्यमतमुपन्यस्तम्। तथा च तदनुसारेण वार्षगण्यप्रणीते तन्त्रेऽत्र निम्नलिखितः पाठ आसीदिति भाति—

"अनुमानं द्विविधम्—विशेषतो दृष्टं सामान्यतो दृष्टं च[2]। *तत्र विशेषतो दृष्टं यदा अग्निधूमयोः सम्बन्धं दृष्ट्वा तेनैव धूमेन तस्यैव अग्नेः पुनः पुनः 'स एवायमग्निः' इति अस्तित्वं प्रतिपद्यते। सामान्यतो दृष्टं यत् क्वचिद् धूमाग्न्योः सम्बन्धं दृष्ट्वा उत्तरकालं धूममात्रदर्शनादग्निसामान्यमनुमिमीते। इदं[3] च सामान्यतो[4] दृष्टमनुमानं द्विविधम्-पूर्ववत् शेषवच्च। तत्र पूर्ववद् यदा अविकलं कारणं दृष्ट्वा कार्यस्य भविष्यत्त्वं[5] प्रतिपद्यते यथा मेघं भूतं दृष्ट्वा वृष्टेर्भविष्यत्त्वम्। शेषवद् यदा कार्यं[6] सिद्धं दृष्ट्वा कारणस्य भूतत्वं प्रतिपद्यते यथा नद्या नवीनं जलोपचयं दृष्ट्वा मेघस्य भूतत्वम्। तत्र पूर्ववदनुमानं[7] व्यभिचारि। शेषवत् सविचारमव्यभिचारि। '**तेषां यदेतत्[8] सामान्यतो दृष्टमनुमानं शेषवदेष हेतुरतीन्द्रियाणां[9] भावानां समधिगमे***।

---

१ पृ० ३२४ पं० ११ इत्यत्र यद्यपि **नयचक्रवृत्तिकृता वार्षगणतन्त्रस्यैव** निर्देशो विहितस्तथापि **वार्षगणतन्त्रस्यैव षष्टितन्त्रमि**ति संज्ञा [दृश्यतां टिपृ० ४० पं० १-५] आसीदिति Prof. Dr. E. Frauwallner [Head, Indological Institute, University of Vienna, Austria] इत्येतेषां महाशयानामभिप्रायः। अस्मिंश्च विषये तैर्महानुभावैर्महता विस्तरेण लिखितः Die Erkenntnislehre des klassischen Sāṃkhya Systems [=The Epestemology of The Classical Sāṃkhya System] इति निबन्ध एव द्रष्टव्यः। अस्मिंश्च निबन्धे संस्कृत-चीन-भोटादिभाषानिबद्धानेकप्राचीनार्वाचीनग्रन्थानुसारेण प्राचीनं **सांख्यमतमपि** महता विस्तरेण तैरुपदर्शितमस्ति। अयं च निबन्धः Wiener Zeitschrift für die Kunde Süd-und-Ostasiens, Band II. 1958 इत्यत्र मुद्रितोऽस्ति। २ "यच्चोक्तम् '**अनुमानं द्विविधम्-सामान्यतो दृष्टं विशेषतो दृष्टं च**' इति, तत्र विशेषतो दृष्टं तावदनुमानमेव नेष्यते।" इति **प्रमाणसमुच्चयवृत्तौ** द्वितीयपरिच्छेदे PSV¹ N.ed. पृ० ४१B, PSV² पृ० १२३ B। अतः परम् * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठोऽस्माभि**र्विशालामलवत्या** भोटभाषानुवादानुसारेणेह संस्कृतीकृत्योपन्यस्तः। स चेदृशो भोटभाषानुवादः—

"दे' ल' ख्यद्' पर्' मृथोङ्' ब' नि। गङ्' गि' छे' मे' दङ् दु' ब' ऽब्रेल्' प' मृथोङ्' नस्। दु' ब' दे' खो' नस्' मे. दे' खो' नऽि' यङ् दङ्' यङ्' दु' मे' दे' खो' न' ऽदिऽो' शेस्' योद्' प' ञिद्' दु' तोंग्स्' पर्' ब्येद्' पऽो॥ स्प्यिर्' मृथोङ्' ब' नि' गङ्' ऽगऽ' शिग्' तु' दु' ब' दङ्' मे' ऽब्रेल्' पर्' मृथोङ्' नस्। दुस्' फ्यिस्' दु' ब' च्म्' [पृ० १२४ A] मृथोङ्' ब' लस्' मे' स्प्यिर्' जेस्' सु' द्पोग्' पऽो॥ स्प्यिर्' मृथोङ्' बऽि' जेस्' सु' द्पग्' प' ऽदि' यङ्' नम्' प' ग्ञिस्' ते। स्ङ' म' दङ्' ल्दन्' प' दङ्' ल्हग्' म' दङ्' ल्दन्' पऽो॥ दे' ल' स्ङ' म' दङ्' ल्दन्' प' नि' गङ्' गि' छे' र्ग्यु' म' छङ्' ब' मेद्' प' मृथोङ्' नस्' ऽब्रस्' बु' ऽब्युङ्' बर्' ऽग्युर्' प' ञिद्' तोंग्स्' प' स्ते। द्पेर्' न' स्प्रिन्' ब्युङ्' ब' मृथोङ्' नस्' छर्' ब' ऽब्युङ्' बर्' ऽग्युर्' प' ञिद्' ल्त' बुऽो॥ ल्हग्' म' दङ्' ल्दन्' प' नि' गङ्' गि' छे' ऽब्रस्' बु' ग्रुब्' प' मृथोङ्' नस्' र्ग्यु' ब्युङ्' सिन्' प' ञिद्' तोंग्स्' प' स्ते। द्पेर्' न' छु' क्लुङ्' ग्सर्' दु' छु' ऽफेल्' ब' मृथोङ्' नस्' स्प्रिन्' ब्युङ्' प' ञिद्' ल्त' बुऽो॥ दे' ल' स्ङ' म' दङ्' ल्दन्' पऽि' जेस्' सु' द्पग्' प' नि' ऽखुल्' पऽो॥ ल्हग्' म' दङ्' ल्दन्' प' नेम्' पर्' द्प्यद्' प' दङ्' ब्चस्' प' नि' ऽखुल' प' मेद्' पऽो॥ दे' नेमूस्' क्यिस्' (क्यि') गङ्' ऽदि' स्प्यिर्' मृथोङ्' बऽि' जेस्' सु' द्पग्' प' ल्हग्' म' दङ्' ल्दन्' प' ऽदि' नि' द्बङ्' पो' लस्' ऽदस्' पऽि' द्ङोस्' पो' नेमूस्' यङ्' दग्' पर्' तोंग्स्' पर्' ब्येद्' पऽो' शेऽो॥ [पृ० १२४]"—VT.।

३ इदमपि सामान्यतो...(?)। ४ "सामान्यतो दृष्टं द्विविधम्"—PSV¹ पृ० N. ed. ४१ B, PSV² पृ० १२३। ५ तुलना-युक्तिदीपिका, पृ० ४४। ६ कार्योत्पत्तिं (?)। ७ "पूर्ववदनुमानं व्यभिचारि"—PSV¹ N. ed. पृ० ४२ A PSV² पृ० १२४ A। ८ " "तेषां यदेतत् सामान्यतो दृष्टं शेषवदेष हेतुरतीन्द्रियाणां भावानां समधिगमे"—**नयचक्रवृत्ति** पृ० ३१३ पं० ६। दृश्यतां टिपृ० ८८ पं० १३-१६। ९ PSV¹ N. ed. पृ० ४२ B PSV² पृ० १२४। १० "ग्तन्' छ्गिस्' यिन्' नो"-PSV² VT. पृ० १९३ A। "ब्येद्' दो"—PSV²।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

पृ० ३१३ पं० १०.–पृ० ३१४ पं० ४. **तस्य प्रयोगो…निगमनमिति** । तुलना—

"कापिलानां परप्रतिपादनार्थं [1]वीतावीतविशेषाद् द्विविधमनुमानम् । तत्र **वीतस्य वाक्यभावः पञ्चप्रदेशः** प्रतिज्ञादिभेदात्[2] । ………[3]**परिशेषादावीतसिद्धिः । परपक्षप्रतिषेधेन स्वपक्षपरिग्रहक्रिया आवीत** [इति PSV¹] । **प्रतिषेधस्य** [च PSV²] **उपायद्वयम्–लोकदृष्टान्तविरोधोऽभ्युपगमहानिश्च**[4] [इति PSV¹] ।"–इति प्रमाणसमुच्चयवृत्तौ तृतीये परार्थानुमानपरिच्छेदे ।

पृ० ३१४ पं० ४. **वीतस्य [आवीतस्य] वा भावः** । वस्तुतोऽत्र **'वीतस्य वाक्यभावः'** इत्येव शुद्धः पाठः । दृश्यतां टिपृ० १३८ पं० २ ।

पृ० ३१४ पं० ४–५. **साध्यावधारणं…पसंहारः** । तुलना – टिपृ० १२९ पं० १९–२७ ।

पृ० ३१४ पं० ७–१४. **प्रयोगश्च दृष्टान्तबाहुल्यम्** । नयचक्रवृत्तिकृता सर्वमिदं सांख्यमतं **वार्षगणतन्त्रं** मनसि निधायाभिहितम् । तथा च नयचक्रवृत्ति-PSV-VT-युक्तिदीपिकाद्यनुसारेण निम्नलिखितः पाठो **वार्षगणे तन्त्रे**ऽत्र आसीदिति सम्भाव्यते –

"प्रयोगश्च – [5]अस्ति प्रधानम्, भेदानामन्वयदर्शनात् । [6]आध्यात्मिकानां भेदानां कार्यका(क ?)रणात्मकानामेक-

---

१ "**वीतावीतविशेषा**दिति । तत्रोक्तम् – **यदेतत् सामान्यतो दृष्टमनुमानं शेषवदेष हेतुरतीन्द्रियाणां भावानां समधिगमे । तस्य प्रयोगोपचारविशेषाद् द्वैविध्यम्–वीत आवीत** इति । प्रयोगोपचारविशेषात् [स्ब्योर् ब' तॊंगस्' पडि' ब्ये' ब्रग्' लस् VT.=] प्रयोगप्रतिपादनविशेषादित्यर्थः । अन्ये वदन्ति–प्रयोगः परप्रतिपादनकालः, 'प्रयुज्यतेऽत्र' इति कृत्वा । उपचारोऽभिधानम् । तद्विशेषाद् द्वैविध्यम्, न पुनरर्थविभागः । क्वचित् स्वपक्षसाधनाय हेतुरुपादीयते क्वचित् परपक्षप्रतिषेधाय । प्रतिपाद्यार्थस्य विशेषेण अधिगतिः **वीतः** । परपक्षनिषेधेन स एवार्थ आयातीति **आवीतः । तत्र वीतस्य वाक्यभाव** इति वाक्यभावो वाक्यस्वभावो वाक्यस्वरूपम् । **पञ्चप्रदेश** इति पञ्चावयवः । **प्रतिज्ञादिभेदा**दिति 'आदि'शब्दो हेतुदृष्टान्तोपसंहारनिगमनसङ्ग्रहार्थम् ।"–**विशाला०** पृ० १९३ । २ "स्क्येद्' स्क्य' ब' नॆमूस्' न' रे' ग्शन्' ल' ब्स्तन्' पर्' ब्य' बडि' दोन्' दु' नॆमू' पर्' ल्दन्' प' दङ्' ब्सल्' ते' ऽोङ्स्' पडि' ब्ये' ब्रग्' गिस्' जॆस्' सु' द्पग्' प' नॆमू' प' ग्ञिस्' ते । दे' लस्' नॆमू' पर्' ल्दन्' पडि' ङग्' गि' द्ङोस्' पोडि' युल्' नॆमू' प' ल्ङ' स्ते । दमू' ब्चऽ' ब' ल' सोग्स्' पडि' द्ब्ये' बस्' सो' शेस्' सेर्' रो ॥"–PSV¹ N. ed. पृ० ५९ b । "सेर्' स्क्य' ब' नॆमूस्' क्यङ्' ग्शन्' तॊंग्स्' पडि' दोन्' गियि' जॆस्' सु' द्पग्' प' नि' ब्सल्' ते' ऽोङ्स्' प' दङ्' ल्दन्' पडि' स्ग्यद्' पर्' ग्यिस्' नॆमू' प' ग्ञिस्' सो ॥ दे' ल' ल्दन्' प' नि' दमू' ब्चऽ' ब' ल' सोग्स्' पडि' स्ग्यद्' पर्' ग्यिस्' ङग्' गि' रङ्' ब्शिन्' ल्ङडि' फ्योग्स्' सो ॥"–PSV² N. ed. पृ० १४२ b । ३ "**परिशेषादावीतसिद्धि**रिति इदमावीतस्य लक्षणम् । [ऽदिडि' ब्शद्' प' नि VT=] अस्य भाष्यम् – **यदा नेदमतोऽन्यथा सम्भवति, अस्ति चेदम्, तस्मात् परिशेषतो हेतुरेवायमित्यवधार्य कार्यसिद्धावपदिश्यते तदा आवीताख्यो भवती**ति । परपक्षप्रतिषेधेनेत्यादिना आवीतलक्षणार्थं संक्षिप्य कथयति । **लो[क]**शब्दोऽनभिमतनिराकरणार्थः । प्रतिषेधस्योपायद्वयमिति द्वौ मार्गावित्यर्थः । उदाहरणे दृष्टान्तः प्रसिद्धः, तद्व्यवच्छेदार्थमुक्तं **लोकदृष्टान्ते**ति । यद् लोकप्रसिद्धिविरुद्धं वचनं तद् दृष्टान्तविरुद्धम् । तस्य तद्विरुद्धाभिधानेनैव निराकरणे **'लोकदृष्टान्तः'** इति 'अनुमानम्' इत्यन्ये । …शास्त्रस्य प्रमाणत्वमभ्युपेत्य यत् तद्विरुद्धाभिधानं सा अभ्युपगमहानिः ।"–**विशाला०** पृ० २०० B–२०१ A । ४ PSV¹ N. ed. पृ० ६१ B–६२ A । PSV² N. ed. पृ० १४४ B । ५ तुलना—"**अस्ति प्रधानं भेदानामन्वयदर्शनात्**' इति । तत्र यदि प्रधानस्य अस्तित्वं साध्यते तदसम्यक्, प्रमाणविषयाज्ञानात् । असामान्यलक्षणविषयमनुमानमिति दर्शितम् ।" PSV¹ N. ed पृ० ५९ b, PSV² पृ० १४२ b । "अस्ति प्रधानमिति प्रतिज्ञा ।……प्रधानं सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था । भेदानामन्वयदर्शनादित्यादिर्हेतुः । परस्परं भिद्यन्ते विभज्यन्त इति भेदा विकाराः । तेषामन्वयोऽनुगमः, सुखदुःखमोहात्मकत्वात् ।……तथोक्तम्–**आध्यात्मिकानां बाह्यानां च भेदानामेकजातिसमन्वयोऽयमस्ति । ते मन्यामहे भेदात् पूर्वमेते क्वचित् सामान्यभूता** इत्यादि [पृ० १९३ B] ।……**अस्ति प्रधानं भेदानामन्वयदर्शनात् । आध्यात्मिकानां भेदानां कार्यकारणभूतानामेकजातिसमन्वयो दृष्टः** । [जि' स्ञिद्' दु VT=] यावत् **शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धाः पञ्च त्रयाणां सुखदुःखमोहानां सन्निवेशविशेषाः । कस्मात्? पञ्चानां पञ्चानामेककार्यभावात्** इत्यादि विस्तरवाक्यं हेतुर्न भवति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जातिसमन्वयो दृष्टः । आध्यात्मिकाः कार्यात्मका भेदाः शब्दस्पर्शरसरूपगन्धाः पञ्च त्रयाणां सुखदुःखमोहानां सन्निवेशविशेषाः । कस्मात् ? पञ्चानां पञ्चानामेककार्यभावात् । सुखानां शब्दस्पर्शरसरूपगन्धानां प्रसादलाघवप्रसवाभिष्वङ्गोद्धर्षप्रीतयः कार्यम् । दुःखानां शोषतापभेदोपष्टम्भोद्वेगापद्वेषाः । मूढानां वरणसदनापध्वंसनबैभत्स्यदैन्यगौरवाणि । *शब्दाद्यारब्धानि चाकाशादीनि भूतानि सुखादिमयान्येव, तन्मयकारणारब्धत्वात्, यद् यन्मयैः कारणैरारब्धं तन्मयं तत्, कार्पासिकपटवत् । भूतैरारब्धानि पुनः शरीरादीनि पटकुटीवत् परम्परारब्धत्वात्* । तथा करणात्मकाः श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाग्हस्तपादपायूपस्थमनांस्येकादश तैर्यग्योनमानुषदैवानि बाह्याश्च भेदाः सत्त्वरजस्तमसां कार्ये समन्वयदर्शनात् । एवं पृथिव्यादि गवादि घटादि । सामान्यपूर्वकाणां च भेदानां लोके एकजातिसमन्वयो दृष्टो यथा शकलकपालामत्रभूषणप्रभृतीनां चन्दनादिजातिसमन्वयः । आध्यात्मिकानां बाह्यानां च भेदानामेकजातिसमन्वयोऽयमस्ति, तस्माद् मन्यामहे–भेदात् पूर्वमेते क्वचित् सामान्यभूताः । यच्च सामान्यं तत् प्रधानम् । तस्मादस्ति प्रधानमिति ।"

इदमत्रावधेयम्–अन्वय-परिमाण-कार्यकारणभाव-शक्तितःप्रवृत्ति-वैश्वरूप्याख्याः प्रधानास्तित्वसाधकाः पञ्च हेतवो येन क्रमेणात्र नयचक्रवृत्तौ वर्णिताः स एव क्रमो दिङ्नागादिभिरप्याहतोऽतो वार्षगणतन्त्रेऽपि स एव क्रमः प्रत्येतव्यः । दृश्यतां PSV[1] N. ed. पृ० ४० b, PSV[2] पृ० १२२ a । विशाला० पृ० १२१ b. । ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य. २।२।१। ईश्वरकृष्णरचितायां सांख्यसप्ततौ [का० १५] तु भिन्नः क्रमः, दृश्यतां पृ० ३१४ टि० ५ ।

पृ० ३१८ पं० ७. शब्दाद्यात्मना··· । दृश्यतां पृ० २८७ पं० २४, पृ० २८८ पं० १ । तुलना–"सत्त्वरजस्तमांसि परस्परोपकारकभावेन प्रवर्तमानानि शब्दाद्यात्मना व्यवतिष्ठन्ते इति शब्दादि एकं कार्यमुक्तम्, सत्त्वादीनां चैकजातिसमन्वयो नास्ति अत्यन्तं भेदात् । लोकेऽपि चक्षूरूपालोकमनस्काराणामेकजातिसमन्वयाभावेऽपि विज्ञानमेकं कार्यमस्ति । तस्माच्चानैकान्तिकत्वादेकजातिसमन्वयोऽसिद्धः ।"–विशाला० पृ० १९७ a ।

पृ० ३२० पं०७. इति एभिः पञ्चभिर्वीतैः । दृश्यतां टिपृ० १३९ पं० ३४ ।

कस्मात् ?······'**साधनसमासवचनं हेतुः**' इति लक्षणात् । [पृ० १ E ४ A]·········'**तन्निदर्शनं दृष्टान्तः**' इत्यत्राधिकरणसाधनमाश्रीयते 'ते साध्यसाधने निदर्श्येते यस्मिन्' इति, करणं वा 'ते निदर्श्येतेऽनेन' इति ।······दृष्टान्तदोषान्तरमाह—**अन्वयाभावा**दिति । साध्येन साधनस्य व्याप्त्युपदर्शनमन्वयः । अत्र साधनेन साध्यव्याप्तिरुच्यते–**सामान्यपूर्वकाणां च भेदानां लोके एकजातिसमन्वयो दृष्ट** इति । एवं साधनार्थः कश्चिदपि नास्तीति दृष्टान्ताभासत्वे हेतुः । ······[पृ० १९४ B]······**उपसंहारो** न युक्त इति । **साध्यदृष्टान्तयोरेकक्रिया [उपसंहार** इति] उपसंहारलक्षणम् । तद् वाक्यस्य दृष्टान्तत्वेऽनुपपन्नम् । [द्पेर्' न' दुम्' शोग्स्' दङ्' थोद्' प' दङ्' ल्नोद्' स्व्यद्' दङ्' गयेन्' ल' सोग्स्' प' VT=] '**यथा शकलकपालामत्रभूषणप्रभृतीनाम्**' इति यादृशं वाक्यं न तथा प्रधानादि साध्यम् । एवमवयवलक्षणं **साक्षात् प्रधानास्तित्वे** इति 'अस्ति प्रधानम्' इत्यव्यवहिते साध्ये **सर्वथाऽसम्बद्धम्** । तथाहि–**साध्यावधारणं प्रतिज्ञा** इति प्रतिज्ञालक्षणम् ।······**तन्निदर्शनं दृष्टान्त** इति दृष्टान्तलक्षणम् । तयो**रेकक्रिया उपसंहार** इत्युपसंहारलक्षणम् । तदुभयमप्यत्र नास्तीति प्रतिपादितम् । **न्यायमुखदिशे**ति । तेन प्रधानमर्थतः साध्यते, न साक्षात् । साक्षाद् भेदा एव साध्यन्ते । 'भेदा एव तत्र एककारणत्वेन साध्यत्वात् पक्षः' इति वचनात् ।······**प्रतिज्ञार्थविरोधो भवती**त्यभ्युपगमविरोध उच्यते ।······यत् तत् **शकलकपालामत्रभूषणप्रभृतीनां** भेदत्वे सति [पृ० १९५ a] चन्दन-घट-मृत्पिण्ड-सुवर्णादिनानाकारणपूर्वकत्वमभ्युपगम्यते तेन एककारणपूर्वकत्वनिरासात् प्रतिज्ञार्थविरोधः । **अथ** सत्पूर्वकत्वेनेति । 'अस्ति प्रधानम्' इति प्रतिज्ञायाः **तस्मादस्ति प्रधान**मिति निगमनाच्च सत्पूर्वका एव भेदाः साध्यन्ते दृष्टान्ताभावो नास्ति, शकलादीनां सत्पूर्वकत्वेन प्रतीतेरिति चेत्, न, **एकत्वेऽपी**त्यादि । एकत्वेऽपि प्रधानस्य साध्ये इदमेव साधनं दर्श्यते, '**एभिः पञ्चभिर्वीतैः प्रधानस्यास्तित्वं सिद्धम्, अत एवास्यैकत्वमपि सिध्यति**' इति वचनात् ।·········य(अ?)थोक्तदोषपरिहाराय पक्षान्तरमाश्रीयते [पृ० १९५ b]······तथाहि–**यद् यन्मयैरारब्धं तन्मयमेव तद्** इति शास्त्रं कार्यकारणयोरेकस्वरूपत्वं प्रतिपादयति । इदमुक्तं भवति–यद् यज्जातिमत् तत् तन्मयकारणकम्, शकलादिवत्, भेदा अपि सुखादिजातिमन्त इति [पृ० १९६ a] ।"–**विशाला०** । ६ **सांख्यकारिकायुक्तिदीपिकावृत्ति**, पृ० ४९ पं० ११ ।

१ **नयचक्रवृत्ति** पृ० १२ पं० १९–२३ । २ * * एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठो **नयचक्रवृत्तेः** 'पृ० २६५, पृ० २६६ पं० २-३, पृ० २९१ पं० २०-२१' अनुसारेण कल्पनयैवास्माभिरिहोपन्यस्तः, **वार्षगणतन्त्रे** तु यथावत् कीदृशः पाठ इति निश्चित्य वक्तुं न पार्यते । ३ दृश्यतां टिपृ० १४ पं० ३१–३२ । ४ तुलना–**नयचक्रवृत्ति**, पृ० ३२० पं० ४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ० ३२० पं. २४. **[दश मूलिकार्थाः]**। सर्वेषु सांख्यग्रन्थेषु **'मूलिकार्थाः'** इति प्रयोगदर्शनेऽपि प्रमाणसमुच्चये तद्वृत्तौ विशालामलवत्यां च **'चूलिकार्थाः'** इति पाठो दृश्यत इति ध्येयम् । तथाहि –

"दशै चूलिकार्थाः" – प्र० समु० पृ० [परार्थानुमानपरिच्छेदे]। "एकत्वार्थवत्त्वपारार्थ्यादयश्चूलिकार्थाः" – विशाला० पृ० १२१ b। "दशै चूलिकार्था इति 'अस्तित्वमेकत्वमथार्थवत्त्वं पारार्थ्यमन्यत्वमकर्तृभावः । योगो वियोगो बहवः पुमांसः स्थितिः शरीरस्य च शेषवृत्तिः' इत्येते वेदितव्याः ।" – विशाला० पृ० १२२ b।

पृ० ३२१ पं० ५. **एवमेभिः**··· । तुलना – "ततश्च यदुक्तम् **'एवमेभिः पञ्चभिर्वीतैः प्रधानस्य परिग्रहं कृत्वा पुनरावीतैः करिष्यामः'** इति अयुक्तमेतत् ।" – विशाला० पृ० २०४ a।

पृ० ३२१ पं० १२–१६. **निर्विशेषमित्येतत्**। अत्र 'निर्विशेषमित्येतत् **प्रसज्येत**' इति शुद्धः पाठः । तुलना –

"नायं दोषः, **'योन्यभावादेकत्वप्रसङ्गः'** इत्युक्तमिति चेत् । अयुक्तमिदमुक्तम् ।" इति प्रमाणसमुच्चयवृत्तौ । अस्या व्याख्या – '**नायं** दोष इति नाभ्युपगमहानिः, एकजातिसमन्वयप्रसङ्गस्यापीष्टत्वात् । तदिष्टत्वं दर्शयति – उक्तमिति । शास्त्रे उक्तमेव –

'योन्यभावादेकत्वप्रसङ्ग इति । सामान्यपूर्वकत्वाद् विशेषाणाम् । सामान्यपूर्वका हि लोके विशेषा एकजातिमन्तो दृष्टाः, तद्यथा – क्षीरपूर्वकाः [शो॰ दङ्॰ स्रिस्॰ म॰ दङ्॰ दर्॰ ब॰ दङ्॰ मर्॰ ल॰ सोग्स्॰ प॰ नैमुस्॰ ऽग्युर्. शिङ्॰ VT=] दधिमस्तुद्रप्सनवनीतादिभावाः । न त्वसति भावः कश्चिदस्ति यत्पूर्वका व्यक्तविशेषाः स्युः । तस्मात् सामान्यमात्रमिदं व्यक्तं निर्विशेषमित्येतत् **प्रसज्येत**' इति" – विशाला० पृ० २०२ b – २०३ a।

पृ० ३२२ पं० १३–१५. **आकारो गौरवं**······**इति ते**···**निबोधत** । उद्धृते इमे कारिके विशालामलवत्याम्, पृ० १९८ a।

पृ० ३२३ पं० १. **योन्यभावाद्**··। तुलना—"तत्र तावदन्वय[वीत]स्यावीतः – **यदि व्यक्तमसदुत्पद्यते योन्यभावाद् भेदप्रसङ्गः** ।" – इति प्र० समु० वृ० ।

पृ० ३२१ पं० १६. **नेदं व्यक्तमसत उत्पद्यते**··· । तुलना – "**असतो नोत्पद्यते, परिशेषात्** [**च** VT.] **प्रधानादेवोत्पद्यते**" इत्यप्ययुक्तम् ।" – प्र० समु० वृ० ।

पृ० ३२४ पं० ११. **वार्षगणे तन्त्रे** । दृश्यतां टिपृ० १३७ टि० १।

---

१ "ग्चुग्॰ फुद्॰ चन्॰ ग्यि॰ दोन्॰ [ब्चु॰]" – PSV[1.] N. ed. पृ० ४० b। "सिल्॰ बुऽि॰ दोन्॰ ब्चु॰ पो" – PSV[2] पृ० १२२ b। "ग्चुग्॰ फुद्॰ चन्॰ दोन्" – PS[1.], PSV[1.] N. ed. पृ० ४२ b। "सिल्॰ बुऽि॰ दोन्" – PS[2.] PSV[2.] पृ० १२४ b। "ग्चुग्॰ फुद्॰ चन्॰ नम्॰ सिल्॰ बु॰ चन्॰ ग्यि॰ दोन्॰ ब्चु॰ नैमुस्" – VT. पृ० १२७ b। २ "**चू॰ लि॰ कऽि॰** दोन्॰ नैमुस्॰ सो" – VT. पृ० १२१ b। ३ "ग्चुग्॰ फुद्॰ चन्॰ ग्यि॰ दोन्॰ ब्चु॰ शोस्॰ प" – VT.। ४ "ब्येद्॰ प॰ पोऽि॰ द्ब्रोस्॰ पो॰ म॰ यिन्॰ प," – VT.। ५ "इत्येते" – **विशाला०**। ६ "**यदि व्य**क्तमसत **उत्पद्यत** इति। **असतो**ऽसत्कारणादित्यर्थः । **योन्य**भावादिति कारणाभावादित्यर्थः ।···भेदानामन्वयव्यावृत्तिः, **भेदप्रसङ्गाद्**न्वयाभावप्रसङ्गादित्यर्थः ।" **विशाला०**। पृ० २०२ a। ७ PSV[1.] N. ed. पृ० ६२ a। PSV[2.] पृ० १४५ a। ८ "**परिशेषाच्चे**ति । सर्वतः शेषः परिशेषः । किमत्र सर्वमिति चेत्, प्रतिपक्षाः । ते चानेकप्रकाराः सर्वैकान्तिपुरुषेश्वरादिविभागात् । तेषां सर्वेषां प्रतिषेधेन परिशेषो युज्यते । **'न चेदमसत उत्पद्यते नापीश्वरादिभ्यः, परिशेषात् प्रधानादेव'** इति । अन्यथा असतो नोत्पद्यत इति परिशेषादीश्वरादेरेवेत्यपि स्यात् ।·········अयुक्तोऽयं परिशेषः । कस्मात् ?······**नेदमसत उत्पद्यते, पारिशेष्यात् प्रधानादेवेदं व्यक्तमुत्पद्यत** इत्येतत् परिशेषलक्षणमसम्बद्धम् ॥" **विशाला०** पृ० २०४ b। ९ PSV[1] N. ed. पृ० ६३ a PSV[2.] पृ० १४६ a–b।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैशेषिकसूत्रसम्बन्धि परिशिष्टम् ।

प्राक् 'टिपृ० ८ पं० २२–टिपृ० ९' इत्यत्रोपवर्णितस्वरूपां P. प्रतिमवलम्ब्य चन्द्रानन्दविरचितवृत्तिसहितं समग्रमपि वैशेषिकसूत्रं नयचक्रवृत्तेष्टिप्पणेषु पृथक् पृथग् मुद्रितमत्रास्माभिः । तत्र यानि यानि सूत्राणि यस्मिन् यस्मिन् पृष्ठे टिप्पणरूपेण मुद्रितानि तदत्र दर्शयामः—

वैशेषिकसूत्रम्	[3]पृ०	[4]टिपृ०
*१।१।१–६	४४४	...
१।१।७	४५८	...
१।१।८–९	४३७	...
१।१।१०	...	२४
१।१।११–१६	४४०	...
१।१।१७–२९	४३७–३८	...
१।२।१–२	...	१४१
१।२।३–४	४४५	...
१।२।५–६	४४६	...
१।२।७–१७	...	९
१।२।१८	५२६	...
२।१।१–२८ २।२।१–४३	...	१७–२०
३।१।१–१४ ३।२।१–१७ ४।१।१–१४ ४।२।१– ९	...	३२–३५
५।१।१–१८ ५।२।१–१३	४८१–४८३	...

वैशेषिकसूत्रम्	[3]पृ०	[4]टिपृ०
*५।२।१४–२२.	४३८	...
५।२।२३–२८ ६।१।१–१८ ६।२।१–१९	...	३५–३७
७।१।१–१४.	४५२–४५३	...
७।१।१५–३२.	...	२१–२२
७।२।१–३.	४५३	...
७।२।४–९.	...	२२
७।२।१०–१४.	५१६	...
७।२।१५–२८	...	२३
७।२।२९	४४५	...
७।२।३०–३१.	५२६	...
卐८।१–१३.	४४२–४४३	...
८।१४–१७	४८०	...
९।१–८.	४८९–४९०	...
९।९–११.	४३४–४३५	...
९।१२.	४६०	...
९।१३–२८. १०।१–२१.	...	४१–४४

---

१ केवलं द्वे एव सूत्रे ये प्रागमुद्रिते तेऽत्रोपदर्श्येते—

"**कारणाभावात् कार्याभावः** [वै० सू० १।२।१], कार्यकारणशब्दौ पूर्वमुक्तौ, तन्निरूपणार्थमाह—यस्याभावात् तन्त्वादेः समवायिकारणस्य तत्संयोगानां वा असमवायिकारणानां कार्यद्रव्यं न जायते पटादिविनाशे वा विनश्यति तत् कारणम्, अन्यत् कार्यम् । **न तु कार्याभावात् कारणाभावः** [वै० सू० १।२।२], न पुनः पटादेरनुत्पत्तौ द्रव्यस्य तन्तूनां तत्संयोगानां वानुत्पत्तिः ।"

२ एतदनन्तरम् Oriental Institute, Baroda [प्राच्यविद्यामन्दिरम्, वडोदरा] इत्यतोऽपि **शारदा**लिप्यां लिखिता चन्द्रानन्दवृत्तेरेका प्रतिरस्माभिर्लब्धा, सा च यद्यप्यशुद्धिबहुला, तथापि क्वचित् क्वचित् P प्रत्यपेक्षयातीव शुद्धा, ते च शुद्धपाठाः शुद्धिपत्रके O सङ्केतसहिता द्रष्टव्याः । ३ **'पृ०'** शब्देन **नयचक्रवृत्तेः** पृष्ठाङ्को ज्ञेयः । ४ **'टिपृ०'** शब्देन नयचक्रवृत्तिमुद्रणानन्तरं पश्चाद् योजितानां टिप्पणानां पृष्ठाङ्को वेदितव्यः । * अत्र प्रथमोऽङ्कोऽध्यायस्य, द्वितीय आह्निकस्य, ततः परं तु सूत्रस्येति ध्येयम् । 卐 अष्टम-नवम-दशमाध्यायेषु O.P.चन्द्रानन्दवृत्तौ P.सूत्रपाठे चाह्निकविभागो नास्त्येव, अतः प्रथमोऽङ्कोऽध्यायस्य, ततः परं तु सूत्राङ्क एवेत्यवधेयमत्र ।

---

1 अयं ग्रन्थः 'Oriental Institute Collection No. 1831 तर्कभाषादिद्वादशपुस्तकानि' इत्यस्मिन् पुस्तके षड्विंशतिपत्रात्मको [पृ० २०३–२२८ मध्ये] वर्तते । तत्र च प्रतिपत्रं पृष्ठद्वयम्, प्रतिपृष्ठं च षड्विंशतिः सप्तविंशतिर्वा पङ्क्तयः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य० प्रतिपाठपरिशिष्टम्।

भगवद्भिः श्रीयशोविजयोपाध्यायैर्नयचक्रवृत्तेरतिदुर्लभं किञ्चित् प्राचीनं पुस्तकमवलम्ब्य [अणहिलपुर]-पत्तननगरेऽनेकसाधुसाहाय्येन एकपक्षाभ्यन्तरे एव नयचक्रवृत्तेरादर्शो लिखितः। अस्माभिरस्य य० इति संज्ञा व्यवहारार्थं कृता। एतद्गवेषणार्थं सुमहति प्रयत्ने कृतेऽप्यस्माभिरियं य० प्रतिः नयचक्रमुद्रणारम्भसमये क्वचिदप्यनुपलब्धा। अतो निम्नलिखिताः प्रतीरवलम्ब्यास्माभिरेतन्मुद्रणमारब्धम्—

³पा० डे० लीं० वि० रं० ही० भा०।

अत्र पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतयः साक्षात् परम्परया वा य० प्रतिमनुसृत्यैव लिखिता इत्यस्माभिस्तत्स-मूहस्यापि य० इत्येव संज्ञा कृता। भा० प्रतिस्तु य० प्रतितः प्राचीनतरा विधिपक्षगच्छीयाचार्यश्रीधर्ममूर्तिसूरीणा-मुपदेशेन गोविन्दमश्रितनुजेन मुञ्जेन संवत् १६५० वर्षनिकटसमये लिखिता। तत्र तु य० प्रत्यपेक्षया बहवो विशिष्टाः पाठभेदा उपलभ्यन्ते। अत इत्थमत्र प्रतीयते—

---

१ "भट्टारकश्रीहीरविजयसूरीश्वरशिष्यमहोपाध्यायश्रीकल्याणविजयगणिशिष्यपण्डितश्रीलाभविजयगणिशिष्य-पण्डितश्रीजीतविजयगणिसतीर्थ्यपण्डितश्रीनयविजयगणिगुरुभ्यो नमः। प्रणिधाय परं रूपं राज्ये श्रीविजयदेवसूरीणाम्। नयचक्रस्यादर्शं प्रायो विरलस्य वितनोमि ॥१॥ ऐँ नमः ॥"—य० पृ० १।

२ "इति श्रीमल्लवादिक्षमाश्रमणपादकृतनयचक्रस्य तुम्बं समाप्तम् ॥ छ ॥ ग्रन्थाग्रं १८००० ॥
यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मया। यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ॥ १ ॥
संवत् १७१० वर्षे पोसवदि १३ दिने श्रीपत्तननगरे ॥ पं० श्रीयशोविजयेन पुस्तकं लिखितं। शुभं भवतु ॥
उदकानलचौरेभ्यो मूख(=ष)केभ्यो विशेषतः। कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन प्रतिपालयेत् ॥ १ ॥
भग्नपृष्ठकटिग्रीवा दृष्टिस्तत्र अधोमुखी। कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन प्रतिपालयेत् ॥ २ ॥
पूर्वं पं. यशोविजयगणिना श्रीपत्तने वाचितम् ॥ छ ॥
आदर्शोऽयं रचितो राज्ये श्रीविजयदेवसूरीणाम्। सम्भूय यैरमीषामभिधानानि प्रकटयामि ॥ १ ॥
विबुधाः श्रीनयविजया गुरवो जयसोमपण्डिता गुणिनः। विबुधाश्च लाभविजया गणयोऽपि च कीर्तिरत्नाख्याः ॥ २ ॥
तत्त्वविजयमुनयोऽपि प्रयासमत्र स्म कुर्वते लिखने। सह रविविजयैर्विबुधैरलिखच्च यशोविजयविबुधः ॥ ३ ॥
ग्रन्थप्रयासमेनं दृष्ट्वा तुष्यन्ति सज्जना बाढम्। गुणमत्सरव्यवहिता दुर्जनदृक् वीक्षते नैनम् ॥ ४ ॥
तेभ्यो नमस्तदीयान् स्तुवे गुणांस्तेषु मे दृढा भक्तिः। अनवरतं चेष्टन्ते जिनवचनोद्भासनार्थं ये ॥ ५ ॥ श्रेयोऽस्तु ॥
सुमहानप्ययमुच्चैः पक्षेणैकेन पूरितो ग्रन्थः। कर्णामृतं पटुधियां जयति चरित्रं पवित्रमिदम् ॥ ६ ॥ श्रीः ॥"—य० पृ० ३०९।

३ पा० = 'पाटण, तपागच्छजैनज्ञानभंडार'सत्का प्रतिः। डे० = 'डेलानो उपाश्रय, अमदावाद'सत्का प्रतिः। संवत् १७२९ वर्षे कार्तिकवदि ७ दिने शुक्रवासरे लिखितेयं प्रतिः। लीं० = 'लींबडी जैनग्रन्थसंग्रह'सत्का प्रतिः। वि० = 'विजयानन्दसूरिज्ञानमन्दिर, जीरा'सत्का प्रतिः। संवत् १७५३ वर्षे पौषमासे कृष्णपक्षे ३ तिथौ शरषे(=खे)जग्रामे लिखि-तेयं प्रतिः। रं० = 'रंगविमलजीगणिजैनग्रन्थभंडार, विजापुर'सत्का प्रतिः। संवत् १७२४ वर्षे फाल्गुने कृष्णपक्षे १ तिथौ भौमवासरे लिखितेयं प्रतिः। ही० = 'हीराचन्द्रजीयति, श्रीसुपार्श्वनाथजैनमन्दिर, काशी'सत्का प्रतिः। इमाश्च सर्वाः प्रतयः श्रीयशोविजयोपाध्यायलिखितप्रत्यनुसारिण्यः। भा० = 'भावनगर, डोसाभाई अभेचंदनी पेढी'सत्का य०प्रतेरपि प्राचीना प्रतिः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

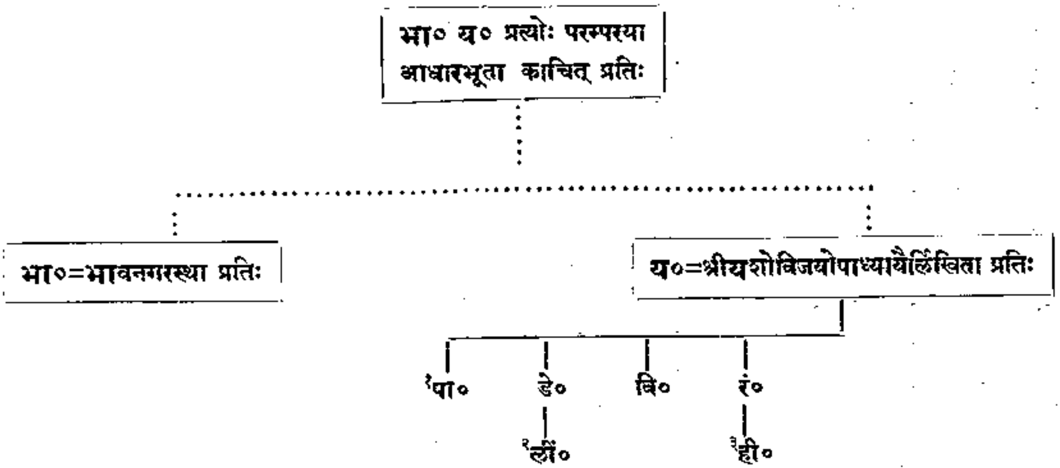

केषाञ्चिदशुद्धपाठानामुभयत्र सर्वथा समानरूपेणोपलम्भाद् भा०य०प्रत्योः परम्परयाधारभूता काचिदेकैव प्रतिः प्रतिभाति। एते चोभयत्र समाना अशुद्धपाठा अस्माभिः 'प्र[4]०' सङ्केतेन टिप्पणेषु दर्शिताः। पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतयस्तु साक्षात् परम्परया वा य० प्रतिमवलम्ब्यैव लिखिताः, तत्र यशोविजयोपाध्यानां नामोल्लेखादिदर्शनात्। इत्थं पा०डे०लीं०वि०रं०ही०प्रतीनां य०प्रत्यनुसारित्वात् प्राय एकरूप एव पाठस्तासूपलभ्यते। यस्तु कश्चित् स्वल्पीयान् पाठभेदस्तासु दृश्यते स लेखकहस्तेन सञ्जातः। अतो नयचक्रवृत्तेःससारमुद्रणपर्यन्तं यः पाठभेदः पा० डे० लीं० वि० रं० ही० प्रतिषु सर्वत्रैकरूप उपलब्धः सोऽस्माभिः 'य०' इति सङ्केतेन टिप्पणेषु दर्शितः। यत्र तु तासु परस्परं भेदः स 'पा०' 'डे०' 'लीं०' इत्यादिसङ्केतैष्टिप्पणेषु दर्शितः। मूल'य०'प्रतौ तत्र कीदृशः पाठोऽस्ति इति तु तदानीं निर्णेतुमशक्यमासीत्। इदानीं तु ससारमुद्रणानन्तरमसमद्भाग्येन मूल'य०'प्रतिरपि लब्धा। अतः ससार[पृ० १–५५२]-मुद्रणपर्यन्तं य०शब्देन पा०डे०लीं०वि०रं०ही०प्रतीनां समूहोऽवगन्तव्यः। अतः परं तु य०शब्देन श्रीयशोविजयो-पाध्यायैर्लिखिता मूल'य०'प्रतिरेवावगन्तव्या। एवं च पा० डे० लीं० इत्यादिसङ्केतैर्यत्र पाठभेदा नयचक्रवृत्तावधस्तात् टिप्पणेष्वस्माभिर्दर्शितास्तत्र मूल'य०'प्रतौ यादृशः पाठो विद्यते तं दर्शयितुमिदं य०प्रतिपाठपरिशिष्टमारभ्यते। यस्मिन् पृष्ठे यस्मिंष्टिप्पणे 'पा० डे०' आदि सङ्केतेनास्माभिः पाठभेदो दर्शितस्तत्र मूल'य०'प्रतौ यादृशः पाठो वर्तते सोऽत्रोपदर्श्यते—

---

१ पा० डे० वि० रं०–इमाश्चतस्रः प्रतयः साक्षात् परम्परया वा य०प्रतिमनुसृत्य लिखिताः। २ लीं०प्रतिः डे०प्रतिमनुसृत्य लिखिता भाति। लीं०प्रतेरुपयोगोऽस्माभिररचतुष्टयमुद्रणपर्यन्तमेव कृत इति ध्येयम्। ३ ही० प्रतिः रं० प्रतिमवलम्ब्य लिखिता भाति। रं० प्रतितो ही० प्रतौ क्वचिद् दृश्यमानः पाठभेदो लेखकहस्तेन जात इति अरषट्कमुद्रणा-नन्तरं प्रायशो नास्माभिर्विहितो ही०प्रतेरुपयोगः। ४ प्र०=सर्वासु प्रतिषु दृश्यमानः पाठः। ५ पं० श्रीमहेन्द्रविमलजीजैन-ज्ञानभंडार, देवशानो पाडो, अमदावाद – इत्यत्र लभ्येयं प्रतिः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०[1]	टि०[2]	य०[3]	पृ०	टि०	य०	पृ०	टि०	य०
२	११	द्रव्यापर्या°	५५	११	साक्षाल्लोकपक्षाभ्युपगम°	११८	४	विप्रतिषेधात् यद्यप्युक्तमनर्थको विवेकयत्नः शास्त्रेष्विति । तत्रापि विप्रतिषेधात । तद् ज्ञानमफलमेव [सं०]
५	२	गम्यत्वेनभि°	५६	१४	न म्व इति	११८	१७	°णामः तद° [सं०]
५	४	°मन्यमिथ्या°	५८	१	°पातीत्यनिष्टन्तैरपि	११८	२०	अज्ञातवैद्यवस्तु°[सं०]
५	५	बौद्धे [४सं०]	५९	५	°कार्यं इति	११९	५	°ध्वानादि
५	१०	°वादं च	६०	२	यादच्छिकी	११९	१४	वत् तस्य तद्विषयं [सं०]
७	३	किमेवं	६०	५	°काया कल्पनया	११९	१५	तत्त्वज्ञानं [सं०]
७	६	अनंतान्नाविकल्पाः	६१	२	कल्प्यमानचीक्लृपः	११९	१८	°समायित्वात्
७	१४	पदार्थावव्योतमद्योतमादनेका°	६१	१७	भावनात् । तुशब्दो	११९	१९	रूपत्रिबंधः सम्बद्धः
१५	७	°तदोर्निर्धा°	६२	९	°मभिधर्मे उक्तं	१२१	११	पुनरु°
१५	१०	°तमवस्त्विति	६३	६	आचार्यो नु तत्साध°	१२१	१४	°कर्तृकामाकाला°
२०	८	°कर्मगवाश्च	६४	२	आदिग्र°	१२२	२	भूमिं निश्चत्ते
२१	११	प्रकल्प्यते	६५	११	यद्यदर्थो°	१२३	४	उत्पन्नः सत्कर्त्तव्यता
२४	१०	अपेक्षाभावात्	६६	८	स्यावकारका°	१२३	८	प्रवर्त्तते । ऽन्यत्र
३१	३	°शकलयोः	६७	४	°म्बुवत् [सं०]	१२३	१२	तयाकांक्षया [सं०]
३१	४	त्रुव्योः	६९	२	भावनामेकवचसाधारणभवनत्वा२ त् पर°	१२३	१६	ननु
३२	४	इत्येतो प्रागुक्तौ विक°	७०	९	**सम्बद्धमर्थं** [सं०]	१२३	१८	°स्यार्थवत्त्ववद°[सं०]
३२	७	°दोषो	७४	६	°स्तस्मात्रै°	१२३	२०	°त्वायेष्यते
३३	८	°हरणासक्ता°	७५	४	नील विजानाति	१२४	१	°कांक्षेष्यते [सं०]
३३	१३	°सामान्यांश एव	८७	११	न तत् प्रत्यक्षं	१२४	४	वचनं
३४	४	प्रकल्प्यन्ते	९१	३	कार्यीभूताः	१२४	१०	°कांक्षाकृत° [सं०]
३४	५	°तरवारणाय	९२	८	°व्वप्यपो°	१२४	११	वैधर्म्येण [सं०]
३४	१०	लोके प्रसिद्धं	९४	५	°संचय स तस्मा°	१२४	१६	एकार्थत्वे विशेषेण
३४	११	सत्वार्थाः	१००	३	सहात्सहार्थेना°	१२५	४	°कं ह्यनु° [सं०]
३४	१५	वादे च	१०१	३	यावदन्वयंपंक्ति च प्रत्येका°	१२५	५	कुशलयोदे°
३८	२	करोत्येव न करोत्येव वेति	१०२	७	°नन्यथात्	१२६	१०	कर्त्रर्थे
३८	८	°रूप्यदर्शनात्	१०६	६	°स्येयमवस्था	१२६	१५	प्रजति [सं०]
४०	१२	प्रवृत्तयो	१०७	११	च कारक°	१२६	१६	°बत्तिः°
४३	९	इत्यवधार्यते	१०८	७	प्रत्यक्षा	१२७	६	°श्रुताग्नि° [सं०]
४३	१०	अदृष्टं कारणा°	१०८	८	तत्तु त्वन्मत°	१२७	८	°च्छब्दार्थ°[लि०सं०]
४५	१	°**वाचिना** [सं०]	१०९	७	°न्तः । तत्र	१२७	११	°श्रुताग्नि°
४८	५	सर्वं विशिष्ट°	१११	१४	अर्थो	१२७	१३	°स्तत्कसत्कर्तृ° [सं०]
४९	३	संबद्धाणु°	११२	४	°मन्यो	१२८	११-१२	निपातमुपातंत्वाच्च
५५	१०	व्याख्यानार्थं प्रति°	११७	३	भावनात्समभि° [सं०]			
			११७	४	°वृत्तिभिर्विदित°[सं०]			

१ पृष्ठाङ्कः । २ टिप्पणाङ्कः । यत्र तु पूर्वत्राशुद्धष्टिप्पणाङ्को मुद्रितस्तत्स्थानेऽस्माभिरत्र संशोधितष्टिप्पणाङ्क उपदर्शित इति ध्येयम् । ३ श्री**यशोविजयो**पाध्यायैर्लिखितायां प्रतौ विद्यमानः पाठः । ४ **सं०** = पूर्वमन्यथा लिखित्वा पश्चात् संशोधितः पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	टि०	य०
१२९	६	°ध्यस्वककर्तृत्वं
१२९	८	क्रियार्थं च रूढस्य
१२९	१०	सत्त्वान्नर्त्ति
१२९	१४	°योरता [सं०]
१२९	१६	न पदमेद [सं०]
१३०	५	°स्यात् तदव्यवस्था-नात्
१३०	७	°वादन्या° [सं०]
१३२	१	यूनं यूनं
१३२	३	तल्लक्ष°
१३३	७	स्वन्मन्यसे
१३९	२	°मष्टाश्वादि°
१४०	१८	विशेष्यन्ते
१४३	७	तत्शब्दा°
१४४	६	°नाजप्रक्षे°
१४५	१	क्रियतां सत्का° [सं०]
१४७	५	कर्त्तव्यतां
१४७	६	°व्यता । समाप्ते°
१४७	९	°णाभावात्तथा ताव-द्यदि
१४८	१३	परेण पिते
१४९	१	यययमेकस्य
१४९	३-४	वाचा दिसाम्रादिमदर्थे युगपदप्रयुक्तचैकार्थ-त्वात्°
१४९	७	त्कार्यत्व
१५०	५	°नवत् [सं०]
१५०	१०	नेति कर्त्त° [सं०]
१५१	६	त्वाद्य घृत°
१५१	१०	°वासिद्धे ।
१५२	५	°क ईष्यते
१५२	६	°च्छब्द°
१५२	१६	प्रामाणल्या° [सं०]
१५२	१९	°त्वादिति [सं०]
१५२	२४	°मिहोत्रत्वं तथाम्रिहो-त्रत्वं तथा [सं०]
१५३	१४	दूत एवा°
१५३	१८	चेति नय० टि० १९
१५५	६	°त्तमेतेनैव
१५७	७	°वादत्वे [सं०]
१५७	८	प्राङ्यर्थप्राप्तो
१६२	३	तत्सत
१६२	१०	°व्यत्रवद्दष्टान्तो
१६३	३	तेऽत्रावि°
१६८	१०	°त्यप्रत्यक्षाणां तथा
१६९	२	असतसतद्विलक्षण°
१७४	३	°दंशेन विवेकात्२ च। यत्राप्यंशेन विवेकस्तत्र
१७४	१२	विधिविधि°
१७५	५	°त्यज्ञानकर्तृणः
१७९	२	मूलमद्रुः
१८१	२	°लभ्यं च यावद्व-स्तुत्वा°
१८१	३	किं चा
१९०	१३	हांगुल्यग्रमङ्गुल्यग्रं स्पृशति
१९५	३	स्वं स्वरूपं
१९६	४	°बंध°
१९७	३-४	चाभावा
१९७	५	°रन्यतोवतिष्ठत
१९८	१०	°स्यासाध्यत्वाभावा°
१९९	५	°त्वाहमूर्द्धादित्वं घत्वेन भेदेनैव
२०१	७	°ण सिद्धाः
२०१	८	°केर्व्यतिरेकमतिः
२०६	१	°द्भाविनो भाविनो भवितु°
२०६	८	। चेत्तत्
२०७	८	°दित्यकाल°
२०८	६	सिद्धेचोदन°
२०९	२	क्रियात एवोदन°
२११	१	आभोएत्ता
२११	४	°गरूपा° [सं०]
२१२	१	°त्तिः वृत्तैव वृत्तेः
२१२	४	अवृद्धिव्ययायोगी°
२१२	५	°कषट्कारण°
२१३	१	पटतया घटे समभवति
२१३	८	°योरेव
२१६	८	°क्रमात् त एव [सं०]
२१७	४	°कालात् सुषमसुष-मादि° [सं०]
२१७	९	भूयिष्यसुखत्वात्
२२०	३	खस्य
२२२	६	वैचित्राणि
२२३	८	°दिस्वभावः
२२४	४	°वेक्ष्याभिव्यंग्य°
२२५	१	न स्वस्माभि° [सं०]
२२६	५	°र्निवृत्तेश्च
२२६	७	प्रवर्त्तन्ते । प्रतर्कतो [सं०]
२२६	८	°ऽप्रतर्कत एव [सं०]
२३०	६	°वर्त्तन । त्वात्
२३४	२	इत्यव्यति° [सं०]
२३४	६	°**कथा इश्य**°
२३५	१	तथा २ अहेय°
२३५	१५	इलेचैक°
२३६	५	महाकालमतो उष्मा
२३७	४	तत्र तत् । त्रय°
२३८	५	°त्वादिति विशेषं
२३९	९	°मेकोत्याभेदः
२४०	९	तदसिद्धेः । प्रत्यक्ष-त्वात् सिद्धेरनन्तरो°
२४१	५	°भानो नोप्याह
२४६	१	भवता
२५४	८	यैवान्या°
२७०	३	°पत्तिप्रवृत्ते° [सं०]
२७०	१४	°श्च प्रकाशते । तथा
२७४	२	°क्याः प्रवर्त्तमानः प्रवर्त्तकः
२७५	३	°रूपः पवनः पल्लवः पल्लवमा° [सं०]
२७९	१	°णात्मकं
२७९	१०	°त्मकत्वे अपि सुख-दुःखयो **वरणात्म-कत्वतो** [सं०]
२८१	६	निरुध्यते
३०६	२	ह्युक्तं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	टि०	य०
३०६	४	°मैयोर्यत् पक्षी°
३१२	५	°त्मपरि [सं०]
३२२	४	°त्थाप°
३४०	१०	रथार्थं दार्वा°
३४९	१	°वगाढगाढनिचिते
३६६	३	°ष्योऽपि जडः [सं०]
३७५	७	अर्द्धमेकमेकपु°
३७८	८	तद्व्यक्तिः वस्तुत्वव्यक्तिः । वस्तुशक्त्यभिव्यक्तिः
३८९	१	कटकर्तु° [सं०]
३८९	२	तत्तत्
३९४	४	°रोक्तः
३९५	४	गन्त्राद्यु°
४०४	६	भावावाव्यस्तुस्थितिः
४०६	९	भवन् मे°
४०७	१०	तथातथासर्वं° [सं०]
४२५	३	तवैव
४२५	७	°र्थव्याख्याशंक्य
४३०	७	स्यामहमतो वादा° [सं०]
४३०	८	°विर्भाववसरकार्या°
४५६	२	किंकरत्वं
४५६	६	घंटादिभिः सम्ब° [सं०]
४६०	५	सन्तं
४६१	६	°मतिना न शोच्येना°
४६२	११	°माने । प्रश्ना°
४७१	६	सापेक्षऽनिर°
४७४	४	°सिद्ध्यर्थे स्वसामा°
४७६	१	°णातयो°
४७९	५	°सदसत्त्वे सत्त्वेना°
४८३	२	°शयिनः
४८५	१०	तत्कारण°
४९०	७	वीरणोन्धिवद् घटो
४९३	२	°कत्वं प्रदर्शन
४९३	३	सत एवं चंपकस्य
४९८	९	°लभ्यस्वरूपं वास्येति
५००	१०	लक्षणभेदां सहा°
५०३	४	°कृतकर्घटा°
५१५	२	सर्वत्र [सं०]
५२२	४	अत्र
५३०	६	°भावभावगतं गतार्थं
५३५	५	°स्य बहु°
५३६	६	°र्थयोरुभयोरुभयो नियमो
५४०	२	इति न तर्हि
५४२	४	मनोंतर्देशः
५४६	१	दविष्ठा° [सं०]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयचक्रे वृत्तौ वा चतुर्ष्वरेषूल्लिखितानां वाद-वादि-ग्रन्थ-ग्रन्थकृन्नाम्नां सूचिः[1]

अक्षिवैद्यक वृ. १५८
अनेकान्तवाद मू. १०३, १११, वृ. १०३, १११
अभिधर्म-अभिधर्मागम मू. ६१, ६२, ६४, वृ. ६१, ६२, ६४, ६५, ७५
अभिधर्मकोश मू० ७८, वृ. ७८, ७९
अभिधर्मपिटक वृ. ६२, ६४
असत्कार्यवादिनः वृ. २७१
आगम मू. ९, ६१, ७४, वृ. ९, ६१, ७४
आचार्य वृ. ७, २९, ३५, ६६, ९६, ९९, १०२, १३३ १३४, १३७, १८०, १८१, १९५, २६१, २८०, ३२३, ३४४, ३४५, ३४६
आज्ञानिकवाद मू. वृ. १११
आर्ष मू. २४४, वृ. १११, ३५९
आर्हत वृ. १५, ६४
कणाद वृ. ८
कपिल वृ. ५, ८, २३१, २३९
कर्मवादी वृ. ३५९
क्षणिकवाद, क्षणभंगवाद } मू. २४७, वृ. १०५, १४०, २४७, २६०
काणभुज वृ. ५
कालवाद वृ. ३७३
गाहा वृ. ८४
गुरु वृ. ९६
गोतमा-गौतमस्वामी मू. वृ. ३, ११५
चित्राचार्य, चित्रकराचार्य } मू., वृ. } ३४६
जिनप्रवचन वृ. ११५
जिनवचन वृ. १, १७९, १९४, २२२
जिनशासन मू. १, ९, वृ. २, ४, ९
जैन मू. वृ. १० वृ. ४, ११, ११७, १८९, १९२, ३३२, ३४९
जैनी प्रक्रिया वृ. ९
टीकाकार वृ. ९३
तर्कशास्त्र वृ. १२०
तार्किक वृ. ४७
तीर्थंकर मू. वृ. ९
दिग्नभिक्षु (अपरनाम दिङ्नाग) वृ. ६३,७२,९६
द्रव्यप्रकृतिनय मू. वृ. ३७३
द्वैत-अद्वैत मू. वृ. २६४,२६५,३४४,३४६
नयचक्र मू. ९, वृ. १,२,९
नयचक्रकार वृ. ९६
नयप्राभृत वृ. ९
नाटकाचार्य वृ. १३
नियतिवाद वृ. ३७३
निरुक्ति वृ. १८,१७४,१७७,३४६
पतंजलिः वृ. २१
पुरुष मू. वृ. २०३,२१४,२३५,२५३,२५४,२५५,२५६, २५७,२५८,३५६,३५७, ३५९
पुरुषकारवाद मू. ३५९,६०,३६७,३६८
पुरुषकारैकान्तवाद वृ. ३६८
पुरुषवाद मू. २४६, वृ. २३०,२४७,३७३
पूर्वमहोदधि वृ. ९
पूर्वाचार्य वृ. २६१
प्रकरणपाद मू. वृ. ६१
प्रधानकारणवाद वृ. ३२७
प्रधानमीमांसक वृ. १२९,१४१
बुद्ध-बौद्ध मू. ८२,१०३,२९२ वृ.५,१९,३२,३४,३५, ६४,१९,८०,८२,१०३,१७४,२४७,२९२,२९३, ३४१
ब्रह्मन् मू. २४३,३४४ वृ. १३४,२३०,२४३,३४४, ३४६,३७४
भागुरि वृ. ३७

१ अस्यां सूचौ मू. नयचक्रमूलम् वृ.=नयचक्रवृत्तिरित्यर्थो ज्ञेयः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारत वृ. ११९
भाष्य वृ. ६२,२८७,२९७,३००
मनु वृ. ३४६
मल्लवादिसूरि वृ.१,७२
मस्करि वृ. ८
मायासूनवीयाः वृ. ७४
मायेयीय मू. वृ. ७४
माहेश्वरो योगविधिः वृ.३४१
मीमांसा वृ. १२०
योनिप्राभृत मू. वृ. २०२
रामायण वृ. ११९
लौकिक मू. ८, वृ. ८,१५,३३,३९,६४,१८९
वसुबंधु वृ. ९६,९९
विज्ञानमात्रतावाद वृ. १८९,२६०
विज्ञानवाद वृ. १०५
विष्णु वृ. ३४६
वृक्षायुर्वेद वृ. २०२,३६७
वेद मू. ११९,१३३,१३४, १४०, वृ. ११९-१२०,
१३४,१४०
वेदवाद मू. वृ. १११
वैदिक वृ. १३४
वैशेषिक मू. ८७, २९१, १. ३४,३५,६४,७३,८७,१७४,
२९१,२९२,३२७,३२९
व्यवहारनय वृ. १५,३३
व्याकरण मू. १८१, वृ. १२०,१८१,३६२
व्यास वृ. ८
शाक्यपुत्रीय वृ. ९३
शास्त्र मू. ४७,५३,५९,१०८,११७,१२१,२०८,३३८
वृ. २,४७,५०,५३,५४,५६,५७,५९,१०८,११७,
११८,१३५,२०८,२०९,२१०
शास्त्रकाराः वृ. १५
शासन मू. ६,७,९, वृ. १,४,६,७,९
शिष्य वृ. ९६
शून्यवाद मू. २४७, वृ. १०५,२४७,२६०
शौद्धोदनि वृ. ८
श्रुति वृ. १३०, १५५,१५६
समुद(दा)यवाद मू. २४७, वृ. २४७,२६०
सामान्यवाद वृ. ३३
सार्वज्ञ्य-सर्वज्ञता मू. वृ.१७९, १८०,१८२,२०४
सांख्य मू. १२०, वृ. ११,१८,३२,३४,३५,४०,६४,
१०७,११५,११९, १२०,१२१,१२२,१३६,१४५
१७४,२८७,२९३
सिद्धसेन वृ. ३५,३२४
सूरि वृ. १०,५९,९३
सौनाग वृ. ३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संम्पादनोपयुक्तग्रन्थसूचिः सङ्केतादिविवरणं च

अत्रिस्मृतिः, आनन्दाश्रम, पुना
अनुयोगद्वारसूत्रम्, आगमोदयसमिति, सुरत
अनुयोगद्वारसूत्रवृत्तिः ,, ,,
अनेकान्तजयप. स्वो. वृ. अनेकान्तजयपताकास्वोपज्ञवृत्तिः Gaekwad's Oriental Series, Baroda.
अनेकान्तजय. स्वो. वि. अनेकान्तजयपताकास्वोपज्ञवृत्तिविवरणम् ,,
अनेकार्थसंग्रहः हेमचन्द्राचार्यरचितः
अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका, आर्हतमतप्रभाकर कार्यालय, पुना.
अभिधर्मागमः } अभिधर्मपिटकम् (चीनभाषानुवादात्मकम्)
अभि. पि. }
अभि. को. अभिधर्मकोशः, Royal Asiatic Society Journal, Bombay.
अभि. को. भा. अभिधर्मकोशभाष्यम्
अभि. को. स्फुटा. अभिधर्मकोशभाष्यस्फुटार्थावृत्तिः (i) Bibliotheca Buddhica, Russia. (ii) Calcutta Oriental Series. (iii) The Publishing Association of अभिधर्मकोशव्याख्या, Tokyo, Japan.
अभिधर्मदीपः सवृत्तिकः, काशीप्रसाद जायस्वाल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पटना
अभिधर्मसमुच्चयः, शान्तिनिकेतन
अभिधानचिन्तामणिः, यशोविजयजैनग्रन्थमाला, काशी
अभि० चिन्ता० स्वो० अभिधानचिन्तामणिस्वोपज्ञवृत्तिः, यशोविजयजैनग्रन्थमाला, काशी
अमरकोशः, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
अमरकोशटीका क्षीरस्वामिकृता, Oriental Book Agency, Poona.
अमरकोशसुधाव्याख्या निर्णय सागर प्रेस, मुंबई
अमृतनादोपनिषद्
अर्थसंग्रहः, Oriential Book Agency, Poona.
अर्थसंग्रहकौमुदीवृत्तिः ,,
अष्टशती, जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता
अष्टसह० अष्टसहस्री, गांधी नाथारंग जैनग्रन्थमाला, मुंबई
अष्टसहस्रीतात्पर्यविवरणम्, जैनग्रन्थप्रकाशकसभा, अमदाबाद
आचाराङ्गसू० आचाराङ्गसूत्रम्, आगमोदयसमिति, सुरत
आचाराङ्गसूत्रवृत्तिः शीलाङ्काचार्यरचिता, सुरत

---

१ प्राक्कथने प्रस्तावनायां चोपयुक्ता अपि ग्रन्था अस्यां सूच्यां निर्दिष्टा इति ध्येयम्। किञ्चान्यत्, अकारादिक्रमेण सङ्कलितायामप्यस्यां सूच्यां तत्तद्ग्रन्थानां व्याख्यानानि उपव्याख्यानानि च क्रममुल्लङ्घ्यापि यथायोगं तत्तद्ग्रन्थानामधस्तादेव प्रायो दर्शितानीति ध्येयम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपस्तम्बश्रौतसूत्रम्, Adiyar Library मद्रास
आप्तमीमांसा, जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता
आलम्बनपरीक्षा वृत्तिश्च, Adiyar Library, मद्रास
आव० नि० आवश्यकनिर्युक्तिः, आगमोदयसमिति, सुरत
आवश्यकचू० आवश्यकचूर्णिः, ऋषभदेवजी केशरीमलजी, रतलाम
आवश्यकसूत्रवृत्तिः हरिभद्रसूरिरचिता, आगमोदयसमिति, सुरत.
आवश्यकसूत्रवृत्तिः मलयगिरिसूरिरचिता, देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड, सुरत
ईशावास्योपनिषद्, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई.
उत्तराध्य० उत्तराध्ययनसूत्रम्, आगमोदयसमिति, सुरत
उत्तराध्ययनसूत्रचूर्णिः, ऋषभदेवजी केसरीमलजी, रतलाम
उत्तराध्ययनसूत्रबृहद्वृत्तिः, आगमोदयसमिति, सुरत.
उत्तराध्ययनसूत्रटीका नेमिचन्द्ररचिता, पुष्पचन्द्र क्षेमचन्द्र, वलाद
उत्पादादिसिद्धिस्वोपज्ञवृत्तिः, ऋषभदेवजी केसरीमलजी, रतलाम
ऋग्वेदः, स्वाध्यायमण्डल, औंध
कठसंहिता, स्वाध्यायमण्डल, औंध
कर्कभा. कर्कभाष्यम्
कर्मप्रकृतिः, मुक्ताबाई जैनज्ञानमन्दिर, डभोई
कर्मग्रन्थवृत्तिः, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर
कल्पसूत्रम्, देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, सुरत
कल्पसूत्रसुबोधिका ,, ,,
काठकसं. काठकसंहिता, स्वाध्यायमण्डल, औंध.
कातन्त्रव्याकरणम्
कात्यायनश्रौतसूत्रम्, अच्युतपटवर्धनग्रन्थमाला, काशी
कात्यायनश्रौतसूत्रप्रस्तावना
कारणोपादानप्रज्ञप्तिः दिङ्नागरचिता (चीनभाषानुवादः)
काव्यप्रकाशः, Bombay University Series
काव्यप्रकाशवृत्तिः ,,
कैवल्योप० कैवल्योपनिषद्, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
कौटिलीयमर्थशास्त्रम्, Government Oriental Library Series, Mysore.
क्षेत्रसमासः, जैनधर्मप्रसारकसभा, भावनगर
गुरुतत्त्वविनिश्चयटीका, जैन आत्मानंदसभा, भावनगर
गौतमधर्मसूत्रम्
चतुःश० चतुःशतकम्, विश्वभारती ग्रन्थमाला, शान्तिनिकेतन
चतुशतकवृत्तिः चन्द्रकीर्तिरचिता ,,
चतुःशतकवृत्तिः धर्मपालरचिता ,,
चरकसं० चरकसंहिता, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
चरकसंहितावृत्तिः ,,
चान्द्रव्याकरणम्
छन्दोनुशासनवृत्तिः हेमचन्द्राचार्यरचिता, मुंबई
जाबालदर्शनोपनिषद्, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनागमस्तवः (काव्यमाला, सप्तमगुच्छकः) निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
जीवसमासवृत्तिः, आगमोदयसमिति, सुरत
जीवाभि० जीवाभिगमसूत्रम्, आगमोदयसमिति, सुरत
ज्ञाताधर्म० ज्ञाताधर्मकथासूत्रम्
ज्योतिष्करण्डकः, ऋषभदेवजी केसरीमलजी, रतलाम
तत्त्वसं०
तत्त्वसं० का० } तत्त्वसंग्रहकारिका Gaekwad's Oriental Series, Baroda.
तत्त्वसं० पं० तत्त्वसंग्रहपञ्जिका
तत्त्वार्थसूत्रम्, देवचंद लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, सुरत
तत्त्वार्थभाष्यम्
तत्त्वार्थ० सिद्धसेनवृ० तत्त्वार्थाधिगमसूत्रस्य सिद्धसेनगणिकृता वृत्तिः, देवचंद लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, सुरत.
तत्त्वार्थ० हारिभद्रीवृ० तत्त्वार्थाधिगमसूत्रस्य हरिभद्रसूरिकृता वृत्तिः, जैनानन्द पुस्तकालय, सुरत.
तत्त्वार्थरा० तत्त्वार्थराजवार्तिकम्, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकम्, गांधी नाथारंग जैन ग्रंथमाला, मुंबई
तत्त्वार्थसूत्रसर्वार्थसिद्धिवृत्तिः, कोल्हापुर
तत्त्वोपप्लवसिंहः, Gaekwad's Oriental Series, Baroda.
तन्त्रवा० तन्त्रवार्तिकम्, आनन्दाश्रम, पुना
तन्त्रालोकवृत्तिः Kashmir Series.
तन्दुलवै० तन्दुलवैचारिकप्रकीर्णकम्, आगमोदयसमिति, सुरत
तन्दुलवैचारिकवृत्तिः ,, ,,
तिलोयपण्णत्ति, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापूर
तैत्तिरीयब्राह्मणम्
तै. सं. तैत्तिरीयसंहिता, स्वाध्यायमण्डल, औंध.
तैत्तिरीयोपनिषद्, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
त्रिकालपरीक्षा दिङ्नागरचिता (भोटभाषानुवादात्मिका)
त्रिंशिकाविज्ञप्तिकारिकाभाष्यं स्थिरमतिकृतम्, पेरीस.
दशवैकालिकसूत्रवृत्तिः हरिभद्रसूरिरचिता, आगमोदयसमिति, सुरत
दशाश्रुतस्कन्धसूत्रम्
दिव्यावदानम् बौद्धग्रन्थः
द्रव्यालङ्कारः स्वोपज्ञवृत्तिसहितः मुनिराजश्रीपुण्यविजयमहोदयेभ्योऽधिगतः (हस्तलिखितः)
द्वादशशतिका दिङ्नागरचिता
धर्मोत्तरप्रदीपः, काशीप्रसाद जायस्वाल रीसर्च इन्स्टीट्यूट, पटना.
धवलाटी. षट्खण्डागमस्य धवला टीका, जैनसाहित्योद्धारक फण्ड, अमरावती.
नन्दीसू. नन्दीसूत्रम्, आगमोदयसमिति, सुरत.
नन्दीसूत्रचूर्णिः
नन्दीसूत्रवृत्तिः हरिभद्रसूरिरचिता
नन्दीसूत्रस्य मलयवृ० नन्दीसूत्रस्य मलयगिरिरचिता वृत्तिः, आगमोदयसमिति, सुरत
नारदस्मृतिः
निरुक्तम् यास्कनिरुक्तम्, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
निरुक्तस्य दुर्गवृत्तिः
नीलकेशी तामिलभाषानिबद्धो जैनग्रन्थः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्यायकुमु० न्यायकुमुदचन्द्रः, माणिक्यचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, मुंबई
न्यायकन्दली, Vizianagaram Sanskrit Series.
न्यायपरीक्षा दिङ्नागरचिता
न्यायप्र० न्यायप्रवेशकः, Gaekwad's Oriental Series, Baroda.
न्यायप्रवेशकवृत्तिः ,,
न्यायप्रवेशकवृत्तिपंजिका ,,
न्यायबिन्दुः, चौखम्बा सीरीझ, काशी
न्यायबिन्दुटीका ,,
न्यायबिन्दुपूर्वपक्षसंक्षेपः कमलशीलरचितः (भोटभाषानुवादात्मकः)
न्यायमञ्जरी, काशी संस्कृत सीरीझ
न्यायमु० न्यायमुखं दिङ्नागरचितम्,
न्यायविनिश्चयः, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
न्यायविनिश्चयटीका ,,
न्यायसू० न्यायसूत्रम्, चौखम्बा सीरीझ, काशी
न्यायभाष्यम् ,,
न्यायवा० न्यायवार्तिकम् चौखम्बा संस्कृत सीरीझ, काशी.
न्यायवा० ता० न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका, कलकत्ता संस्कृत सीरीझ.
न्यायावतारः, जैन श्वेताम्बर कोन्फरन्स, मुंबई
न्यायावतारटीका ,, ,,
न्यायावतारवार्तिकवृत्तिः, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, मुंबई
पंचवस्तु हरिभद्रसूरिरचितम्, देवचंद लालभाई पुस्तकोद्धार फंड, सुरत
पंचसं० पंचसंग्रहः, मुक्ताबाई जैन ज्ञानमंदिर, डभोई.
पंचसंग्रहस्वोपज्ञवृत्तिः ,, ,,
पा० पाणिनीयव्याकरणम्, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
पा० धा० पाणिनीयधातुपाठः, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई.
पा० वा० पाणिनीयव्याकरणस्य वार्तिकम्, राजस्थान संस्कृत कोलेज ग्रन्थमाला, बनारस
पा० म० भा० प्रदीपः पातञ्जलमहाभाष्यस्य प्रदीपः कैयटकृतः, राजस्थान संस्कृत कोलेज ग्रन्थमाला, बनारस.
पा० म० भा० राजलक्ष्मीः पातञ्जलमहाभाष्यस्य राजलक्ष्मीवृत्तिः, राजस्थान संस्कृत कोलेज ग्रन्थमाला, बनारस.
पातञ्जलमहाभाष्यस्य उद्द्योतः, राजस्थान संस्कृत कोलेज ग्रन्थमाला, बनारस.
पातञ्जलमहाभाष्यस्य त्रिपादी वृत्तिः भर्तृहरिरचिता
पाणिनीयव्याकरणस्य काशिका वृत्तिः, चौखम्बा, काशी
पा० सिद्धान्त कौ० पाणिनीयव्याकरणस्य सिद्धान्तकौमुदी-व्याख्या, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
पा० बालमनोरमा पाणिनीयसिद्धान्तकौमुद्या बालमनोरमा व्याख्या, चौखम्बा काशी.
पातञ्जलयोगदर्शनम् चौखम्बा सीरीझ, बनारस
पातञ्जलयोगदर्शनभाष्यं व्यासप्रणीतम् ,,
पातञ्जलव्यासभाष्यवृत्तिः तत्त्ववैशारदी ,,
पाशुपतसूत्रस्य पंचार्थभाष्यम् Trivandrum Sanskrit Series
प्रज्ञापनासू० प्रज्ञापनासूत्रम्, आगमोदयसमिति, सुरत
प्रज्ञापनासूत्रवृत्तिः ,,
प्रभावकचरितम्, सिंघी जैन ग्रन्थमाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभावक० मल्लवादिप्र० प्रभावकचरिते मल्लवादिप्रबन्धः
प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारः, बनारस
प्रमाणमी० प्रमाणमीमांसा, सिंघी जैन ग्रन्थमाला
प्र० वा० प्रमाणवार्तिकम्, पटना
प्रमाणवा० स्ववृ० प्रमाणवार्तिकस्य स्ववृत्तिः, बनारस हिन्दु युनिवर्सिटी
प्रमाणवार्तिकस्ववृत्तेष्टीका, किताब महाल, इलाहाबाद
प्र० वा० देवेन्द्र० प्रमाणवार्तिकस्य देवेन्द्रबुद्धिकृता वृत्तिः (भोटभाषानुवादः)
प्रमाणवार्तिकटीका शाक्यमतिरचिता (भोटभाषानुवादः)
प्र० वा० म० } प्रमाणवार्तिकस्य मनोरथनन्दिनी टीका,
प्रमाण वा० मनो० } Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Patna.
प्र० वा० म० टि० प्रमाणवार्तिकमनोरथनन्दिनीटिप्पणम् ,,
प्र० वा० म० परि० प्रमाणवार्तिकमनोरथनन्दिनीपरिशिष्टम् ,,
प्र० वार्तिकालं० } प्रमाणवार्तिकालङ्कारः, काशीप्रसाद जायस्वाल रीसर्च इन्स्टिट्यूट, पटना
प्रमाणवार्तिकालं० }
प्रमाणविनिश्चयः धर्मकीर्तिरचितः (भोटभाषानुवादात्मकः) ,,
प्र० समु० प्रमाणसमुच्चयः
प्र० समु० स्ववृ० प्रमाणसमुच्चयस्य दिङ्नागरचिता स्ववृत्तिः (भोटभाषानुवादात्मिका)
प्रमाणसं० प्रमाणसंग्रहः, सिंघी जैन ग्रन्थमाला
प्रमालक्ष्म जिनेश्वरसूरिरचितम्
प्रमेयकमलमार्तण्डः, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई,
प्रमेयरत्नमाला अनन्तवीर्यरचिता, अमरावती
प्रवचनसारोद्धारटीका, देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड, सुरत.
प्रशमरतिप्रकरणम् उमास्वातिरचितम्
प्रशस्तपा० प्रशस्तपादभाष्यम्, चौखम्बा सीरीझ, काशी
प्रशस्तपादभाष्यकिरणावली, चौखम्बा सीरीझ, काशी
प्रा० व्या० प्राकृतव्याकरणम्, Bombay Government
बृहट्टिपनिका 'जैन साहित्य संशोधक' पत्रपरिशिष्टान्तर्गता
बृहत्कल्पसूत्रम्, जैन आत्मानंद सभा, भावनगर
बृहत्संग्रहणी जिनभद्रगणिरचिता
बृहदा० वा० बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिकम्, आनन्दाश्रम, पुना
बोधिचर्याव० बोधिचर्यावतारः, एशियाटीक सोसाइटी, कलकत्ता.
ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम्, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यभामती वाचस्पतिमिश्ररचिता
भगवतीसू० भगवतीसूत्रम्, आगमोदयसमिति, सुरत.
भगवतीसूत्रस्य वृत्तिः
भगवद्गीता
भद्रबाहुसं० भद्रबाहुसंहिता, सिंघी जैन ग्रंथमाला, मुंबई
मध्यमकवृ० मध्यमककारिकावृत्तिः, Leningrad, Russia.
मध्यान्तविभागटीका, जापान
मस्करिभा० मस्करिकृतभाष्यम्, Government Library Series, Mysore,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महादेवस्तोत्रम्, जैन आत्मानन्दसभा, भावनगर
महानारायणोपनिषद्
महाभा० आश्व० महाभारत आश्वमेधिकं पर्व, चित्रशाला प्रेस, पुना.
महाभा० वनप० महाभारतवनपर्व. ,,
महाव्युत्पत्तिः जापानदेशे प्रसिद्धा टिबेटन–संस्कृतशब्दकोशरूपा
मीमांसाद० } मीमांसादर्शनम्, आनन्दाश्रम, पुना.
मीमांसासू० }
मीमांसान्यायप्रकाशः, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
मीमांसाश्लोकवा० } मीमांसाश्लोकवार्तिकम्,
मी० श्लो० वा० } चौखम्बा सीरीझ, काशी
मीमांसाश्लोकवार्तिकस्य शर्करिकावृत्तिः, मद्रास युनिवर्सिटी संस्कृत सीरीझ
मीमांसाश्लोकवार्तिकस्य भट्टोम्बेककृता वृत्तिः, मद्रास युनिवर्सिटी संस्कृत सीरीझ
मुण्डको० मुण्डकोपनिषद्, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
मुण्डको० भा० मुण्डकोपनिषद्भाष्यम्
मूलाचारः, माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, मुंबई.
मेघदूतम्, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
मै० सं० मैत्रायणीसंहिता, स्वाध्यायमण्डल, औंध
यजुर्वेदः ,,
याज्ञवल्क्यस्मृतिः, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई.
योगभाष्यम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीझ, काशी.
योगभाष्यस्य तत्त्ववैशारदी वृत्तिः ,,
योगवार्तिकम् ,,
योगशास्त्रम्, जैनधर्मप्रसारकसभा, भावनगर
योगशास्त्रस्य स्वोपज्ञवृत्तिः ,,
रत्नाकरावतारिका, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, काशी.
लङ्कावतारसू० लङ्कावतारसूत्रम्
वसुदेवहिण्डी, जैन आत्मानंदसभा, भावनगर.
वाक्यप० वाक्यपदीयम् (i) रामलाल कपूर ट्रस्ट सोसाइटी, लाहोर, (ii) चौखम्बा संस्कृत सीरीझ, काशी
वाक्यपदीयस्ववृत्तिः, रामलाल कपूर ट्रस्ट सोसाइटी, लाहोर
वाक्यपदीयस्ववृत्तेः वृषभदेवकृता वृत्तिः ,,
वाक्यपदीयस्य पुण्यराजकृता वृत्तिः, चौखम्बा संस्कृत सीरीझ, काशी
वाक्यपदीयस्य हेलाराजकृता वृत्तिः ,,
वादन्यायः, महाबोधि सोसाइटी, सारनाथ
वादन्यायवृत्तिः ,,
वादविधानम् वसुबन्धुरचितम्
वादवि० वादविधिः ,,
वार्षगणतन्त्रम्
वार्षगणतन्त्रभाष्यम्
विधिविवेकः, लाजरस प्रेस, काशी
विशाला० प्रमाणसमुच्चयस्य विशालामलवती टीका (भोटभाषानुवादात्मिका)
विशेषणवती जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणरचिता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषाव० भा० विशेषावश्यकभाष्यम्, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, काशी
विशेषावश्यकभाष्यस्य स्वोपज्ञा वृत्तिः हस्तलिखिता
विशेषावश्यकभाष्यस्य कोट्टार्यवादिगणिरचिता वृत्तिः हस्तलिखिता
विशेषावश्यकभाष्यस्य कोट्याचार्यरचिता वृत्तिः
विशेषावश्यकभाष्यस्य मलधारिहेमचन्द्रसूरिरचिता वृत्तिः, यशोविजय जैन ग्रंथमाला, काशी
विंशतिकाविज्ञप्तिमात्रतासिद्धिवृत्तिः Edited by Sylvain Levi, France.
वैशेषिकदर्शनस्य भूमिका, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, मुंबई.
वै० सू० वैशेषिकसूत्रम्, काशी संस्कृत सीरीझ.
वैशेषिकसूत्रस्य चन्द्रानन्दरचिता वृत्तिः, गायकवाड ओरिएन्टल सीरीझ, वडोदरा.
वैशेषिकसूत्रव्याख्या, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा
वै० सू० उप० वैशेषिकसूत्रस्य उपस्कारः, चौखम्बा संस्कृत सीरीझ, काशी
शतपथब्राह्मणम्, स्वाध्यायमण्डल, औंध
शाकटायनव्याकरणम्
शाण्डिल्योपनिषद्, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
शाबरभा० शाबरभाष्यम्, आनन्दाश्रम, पुना
शास्त्रदीपिकायुक्ति० शास्त्रदीपिकाया युक्तिस्नेहप्रपूरणी सिद्धान्तचन्द्रिका, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
शास्त्रवार्तासमुच्चयः, देवचंद लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, सुरत.
शिक्षासमुच्चयः, Bibliotheca Buddhica, Russia
शुक्लयजुर्वेदस्य वाजसनेयी संहिता, स्वाध्यायमण्डल, औंध
शुक्लयजुर्वेदभाष्यम्
शुक्लयजुर्वेदस्य महीधरकृता वृत्तिः
श्लोकवार्तिकम् मीमांसाश्लोकवार्तिकम्
श्वेताश्व० श्वेताश्वतरोपनिषद्, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्यम् शङ्कराचार्यरचितम्
षड्दर्शनसमुच्चयस्य बृहद्वृत्तिः, जैन आत्मानंद सभा, भावनगर.
षष्टित० षष्टितन्त्रम्
सत्याषाढश्रौतसूत्रम्
सत्याषाढश्रौतसूत्रटीका
सन्मति० सम्मति० सन्मतितर्कप्रकरणम्, गुजरातपुरातत्त्वमंदिर, अमदावाद
सन्मतिवृ० सन्मतिवृत्तिः, ,,
समयसारः कुन्दकुन्दाचार्यरचितः
समयसारस्य व्याख्या अमृतचन्द्ररचिता
समयसारस्य व्याख्या जयसेनरचिता
सरस्वतीकण्ठाभरणम् भोजरचितम्
सर्वदर्शनसं० सर्वदर्शनसंग्रहः, आनन्दाश्रम, पुना.
संयुक्तनिकायः, Pali Text Society, London
सामान्यपरीक्षा दिङ्नागरचिता
सायणभाष्यम् ऋग्वेदादीनां सायणविरचितं भाष्यम्
सारस्वतव्याकरणम्, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
सांख्यका० सांख्यकारिका सांख्यसप्ततिः, सुवर्णसप्ततिः, चौखम्बा सीरीझ, काशी आदि

---

१ **सांख्यकारिकाया** एव '**सांख्यसप्ततिः**' '**सुवर्णसप्ततिः**' इति च नामान्तरे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सांख्यकारिकाया गौडपादभाष्यम्
सांख्यका० जयमं० सांख्यकारिकाया जयमंगलावृत्तिः
सांख्यका० जे. वृ. A सांख्यकारिकायाः जेसलमेरस्था हस्तलिखिता वृत्तिः
सांख्यका० जे. वृ. B सांख्यकारिकायाः जेसलमेरस्था हस्तलिखिता वृत्तिः
सांख्यका० माठर० सांख्यकारिकामाठरवृत्तिः, चौखम्बा संस्कृत सीरीझ, काशी
सांख्यका० युक्तिदीपिका सांख्यकारिकायुक्तिदीपिकावृत्तिः, कलकत्ता संस्कृत सीरीझ
सांख्यतत्त्वकौ० सांख्यकारिकायाः सांख्यतत्त्वकौमुदीवृत्तिः
सिद्ध० द्वा० सिद्धसेनदिवाकररचिता द्वात्रिंशिका, जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर
सिद्धप्राभृतम्
सिद्धहेम० सिद्धहेमशब्दानुशासनम्, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, काशी.
सिद्धहेमशब्दानुशासनस्य बृहद्वृत्तिः
सिद्धहेमशब्दानुशासनस्य लघुन्यासः
सिद्धिविनिश्चयटीका हस्तलिखिता[3]
सुवर्णसप्ततिः सांख्यकारिका सटीका, तिरुपति, मद्रास.
सुश्रुतसंहिता, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई
सूत्रकृताङ्गम्, आगमोदयसमिति, सुरत
सूत्रकृताङ्गवृत्तिः ,,
सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रम् ,,
स्थानाङ्गसूत्रम् ,,
स्थानाङ्गसूत्रटीका ,,
स्पन्दकारिका, काश्मीर सीरिझ IV
स्याद्वादमं० स्याद्वादमंजरी, आर्हतमतप्रभाकरकार्यालय, पुना
स्याद्वादरत्नाकरः वादिदेवसूरिरचितः ,,
हस्तवालप्रकरणं सटीकम् Journal of the Royal Asiatic Society, London
हेतुचक्रह(ड)मरुः दिङ्नागरचित (भोटभाषानुवादात्मकः)
हेतुतत्त्वोपदेशः Seres Oriental Rome, Italy
हेतुबिन्दुः Gaekwad's Oriental Series, Baroda.
हेतुबि० टी० हेतुबिन्दुटीका ,,
हेतुमुखम् दिङ्नागरचितम्
हैम उणा० हैम उणादिः (सिद्धहेमबृहद्वृत्त्यन्तर्गतः)
हैमकोशः हेमचन्द्राचार्यरचितः अनेकार्थसंग्रहः
हैमधा० हैमधातुपाठः
हैमधातुपारायणम्, Vienna, Austria, Europe.

अ.—अध्यायः अनुवाको वा। **का.**—कारिका। **टि.**—टिप्पणम्। **टिपृ.**—टिप्पणपृष्ठाङ्कः। **पं.**—पङ्क्तिः। **भोट.**—भोटभाषानुवादः। **श्लो.**—श्लोकः। **सू.**—सूत्रम्। **सं.**—संस्कृते विहितोऽनुवादः।
A = उपरितनं पृष्ठम्। B = अधस्तनं पृष्ठम्। T = Text सूत्रपाठः

---

१ इयं वृत्तिः **सुवर्णसप्ततिव्याख्यया** (चीनभाषानुवादतः N. Aiyaswami Shastri इत्येभिः संस्कृतेऽनूदितया) बहुषु स्थलेषु समानप्राया इत्यस्माकमनुभवः॥

२ इयं वृत्तिः **माठरवृत्त्या** बहुषु स्थानेषु समानप्राया इत्यस्माकमनुभवः॥

३ सम्प्रति भारतीयज्ञानपीठतः (काशी) प्रकाशिता॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

C. ed. = Choni edition

D. ed. = Derge edition

N. ed. = Narthang edition

O. = चन्द्रानन्दरचितवृत्तियुक्तस्य वैशेषिकसूत्रस्य Oriental Institute Baroda सत्का प्रतिः

P. = चन्द्रानन्दरचितवृत्तियुक्तस्य वैशेषिकसूत्रस्य मुनिराजश्रीपुण्यविजयमहोदयेभ्योऽधिगता प्रतिः

P. ed. = Peking edition

PS[1]—प्रमाणसमुच्चयकारिकाणां वसुधररक्षितविरचितो भोटभाषानुवादः, संस्कृते तत्परिवर्तनं वा

PS[2]—प्रमाणसमुच्चयकारिकाणां कनकवर्मविरचितो भोटभाषानुवादः, संस्कृते तत्परिवर्त्तनं वा

PSV[1]—प्रमाणसमुच्चयवृत्तेर्वसुधररक्षितविरचितो भोटभाषानुवादः, संस्कृते तत्परिवर्त्तनं वा

PSV[2]—प्रमाणसमुच्चयवृत्तेः कनकवर्मविरचितो भोटभाषानुवादः, संस्कृते तत्परिवर्त्तनं वा

VT.—'विशालामलवती' इत्यभिधाया जिनेन्द्रबुद्धिरचितायाः प्रमाणसमुच्चयटीकाया भोटभाषानुवादः, संस्कृते तत्परिवर्त्तनं वा

WZKSO—Wiener Zeitschrift für die Kunde Süd-und-Ostasiens.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रानन्दरचितवृत्तियुतस्य वैशेषिकसूत्रस्य अध्यायक्रमेण

O. पुस्तके[1] शुद्धपाठाः

प्रथमोऽध्यायः

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०[2]	पंक्तिः
हेतुत्वेनोप°	हेतुत्वेनाप°	४४४	१९
द्रव्याणि	द्रव्यगुणकर्माणि	४४४	२६
द्रव्याणि नाधिकानि	द्रव्याणि पृथिवीत्वाभिसम्बन्धात् पृथिवी । एवमबादिसंज्ञा । ' नवैव द्रव्याणि नाधिकानि	४४४	२७
°मर्थः	°मर्थम्	४४४	२७
अपोंबूनि	अब्रोऽम्बूनि	४४४	३४
" द्रव्याणि	" त्रयाणामेकत्वे प्राप्ते वैधर्म्यमुच्यते... तथा हि—द्रव्याणि*	टि.[3] पृ० २४	३४
°नुपलम्भात् । एवं कानिचिद् द्रव्या—ण्यारम्भकानि	°नुपलम्भः स्यात् । एवं च कानिचिद् द्रव्याण्यारम्भकाणि		
काराणाविरोधि	कारणाविरोधि*	पृ० ४४०	२४
कारणः विरोधः	कारणविरोधः	,, ४४०	२८
रूपादयः कारणैः°	रूपादयः कार्योभयकारणै–°	,, ४४०२	९
तदैव	तदेव	,, ४४०	१६
सापेक्षकारणम्	सापेक्षः कारणम्	,, ४४०	१९
°दुत्पाद्या°	°दुत्पाद्य°	,, ४४०	२३
°र्बहूनां द्रव्याणां	°र्बहूनां वा द्रव्याणां	,, ४३८	१८
" आनुषङ्गिकाः'	'उक्ता आनुषङ्गिकाः*	,, ४४५	२४
सत्ता सामान्यमेव	भावः सत्ता सामान्यमेव*	,, ४४५	२७
कर्मसु कर्मणाम्	कर्मसु च कर्मणाम्	टि. पृ० ९	१४
सत्तात्वादयः	द्रव्या (व्यत्वा) दयः	,, ९	१६
तथैकद्रव्यत्वाच्च	तथैकद्रव्यवत्त्वात्र	,, ९	१७
चावृत्तेः [कर्म न]	चावृत्तेर्न कर्म		
कर्मत्वम्	कर्मत्वम्	,, ९	२२

द्वितीयोऽध्यायः

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पंक्तिः
°परत्वसंस्काराश्च	°परत्वगुरुत्वसंस्काराश्च	,, १७	२१
पुच्छः	पुच्छम्	,, १७	२९
वायुरिति सन्निकर्षे	वायुरिति सति सन्निकर्षे	,, १८	२
[चक्षुषा गोः] सन्निकर्षे यथा 'अयं गौः' इति			
परोक्षत्वात्	गोश्चक्षुषा सन्निकर्षे परोक्षत्वात्	,, १८	२
प्रतिषेधेन	तत्प्रतिषेधेन	,, १८	५
भावप्रतिघात	भावानां प्रतिघात	,, १८	६
तत्र	तत्र*	,, १८	१५
चाकाशकृतं	चाकाशकृतत्वाद्		
द्वारादिना	द्वारादिना	,, १८	१९
कार्यगुणो	का(र्ये) गुणो	,, १८	२२

१ Oriental Institute, Baroda सत्कस्य O पुस्तकस्य निर्देशो वैशेषिकसूत्रसम्बन्धिपरिशिष्टे [टि० पृ० १४१ पं० ३०] विहित एवास्माभिः । P प्रत्यपेक्षया O प्रतौ ये शुद्धाः पाठास्तेऽत्राध्यायक्रमेण संगृहीताः । किञ्च P प्रतौ विद्यमाना अपि ये शुद्धपाठा अशुद्धा मुद्रितास्तेऽपि शुद्धीकृता अत्र, तेषां च पुरतः * ईदृशं चिह्नं स्थापितमिति ध्येयम् ।

२ ' पृ० ' इत्यनेन सवृत्तिकस्य नयचक्रग्रन्थस्य पृष्ठं ज्ञेयम् ॥

३ ' टि० पृ० ' इत्यनेन नयचक्रस्य चतुर्णामराणामन्ते योजितानां टिप्पणानां पृष्ठं ज्ञेयम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पंक्तिः
अनारब्धकृतेऽपि	अनारब्धेऽपि	,, १८	३४
न यावद्द्रव्यभा-विनो	ननु(न्व)याऽद्रव्यभावेनो	,, १९	४
°नुपलब्धेः ।	°नुपलब्धेः । न ।		
व्यवस्थितः	व्यवस्थितः	,, १९	४
सलिलशीतता	सलिले शीतता	,, १९	८
तथैक क्रिया°	तथैकं क्रिया	पृ० ४५३	२०
तुल्यकर्तरि	तुल्ये कर्तरि	पृ० ४५३	२१
ऊर्ध्वादीनि	पूर्वदक्षिणादीनि		
दिगन्तराणि	दिगन्तराणि	टि. पृ० १९	२७
[गुण]त्वमसिद्धं	गुणत्वमसिद्धं	,, १९	२८
स्थाणुः पुरुषो नु वा	स्थाणुः स्यात् पुरुषो न वा	,, १९	३०
बाह्योऽभ्यन्तरश्च ।	बाह्य आभ्यन्तरश्चेति ।	,, १९	३१
°रवगतः आलाप-मात्रेण च	°रवगते आरूप-मात्रेण च	,, १९	३५
अभ्यन्तरस्तु	आभ्यन्तरस्तु	,, १९	३६
श्रोत्रेण यो गृह्यतेऽर्थः	श्रोत्रेण गृह्यते योऽर्थः	,, २०	९
स शब्दः । श्रोत्रेण यो गृह्यते सामान्या°	स शब्दः सामान्या°		
°भूतेषु विशेषस्यो°	°भूतेषु च विशेषस्यो°	टि. पृ० २०	११
असजातीयाभ्यां [च गुणकर्मभ्याम्] ततः	असजातीयाभ्यां च गुणकर्मभ्यां । ततः	,, २०	१२
अचाक्षुषत्वाच न कर्म	अचाक्षुषत्वान्न कर्म	,, २०	१५
तेभ्यस्त्रयं वेदा	तेभ्यस्त्रयो वेदा	,, २०	२६
शब्द[स्य] प्रथमाया	शब्दस्य प्रथमाया	,, २०	३१
शब्दस्य [स] एवायं	शब्दस्य स एवायं	,, २०	३२

तृतीयोऽध्यायः

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पंक्तिः
°स्वभावाः सिद्धाः	°स्वभावाः प्रसिद्धाः	टि. पृ. ३२	१३
अन्य एव हेतुरित्यनप-देशः	अन्य[3] एव हेतुरित्यनप-देशः ३।१।७। अर्थान्तरं ह्यर्थान्तरस्यानपदेशः ३।२।८	,, ३२	१९
प्रसिद्धिपूर्वं°[4]	प्रसिद्धपूर्वं°[4]	,, ३२	२८

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पंक्तिः
°मित्रसम्बन्धेन	°मित्रयोः सम्बन्धिनः	,, ३३	३६
देवदत्तं प्र°	देवदत्तशब्दं प्र°	,, ३३	३७

चतुर्थोऽध्यायः

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पंक्तिः
°मुत्पद्यते त[स्मा]त् कार्यस्य	°मुत्पद्यतेऽतः कार्यस्य	,, ३४	१०
तदपि [अ]नित्यत्वं	तदपि अनित्यत्वं	,, ३४	१३
विशिष्टाया अग्रहणात्	विशिष्टाया ग्रहणा	,, ३४	१८
द्व्यणुकेऽपि	त्र्यणुकेऽपि	,, ३४	१८
पटादिना	घटादिना*	,, ३४	२०
[रूपेण] विशिष्टं	रूपीति विशिष्टं	,, ३४	२४
सर्वेन्द्रियं ज्ञानं	सर्वेन्द्रियज्ञानं	,, ३४	२७
सामान्यविशेषेषूप-लम्भ°	सामान्यविशेषास्ते-षूपलम्भ°	,, ३४	२९
शरीरे, नारम्भकत्वेन	शरीरेऽनारम्भकत्वेन	,, ३५	४

पञ्चमोऽध्यायः

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पंक्तिः
°संयोगादे [व]	संयोगादेव	पृ० ४८२	८
च कर्मारम्भे	च गुणकर्मारम्भे*	,, ४८२	११
वा अयस्कान्तं	न्वायस्कान्तं	,, ४८२	२९
°विशेषात्कर्मान्यत्वे	°विशेषः(षाः) कर्मान्यत्वं	,, ४८२	३०
नोदनाद्यभिघातात्	नोदनादभिघातात्*	,, ४८२	३७
नोदनाद्विभागहेतोः	नोदनात् प्रेरणाद्वि-भागहेतोः	,, ४८३	१४
पदादि°	पादादि°	,, ४८३	१४
वभूषा	विरूपाः' [यजुर्वेदः २।१३।३]	,, ४८३	२८
तरङ्ग(ङ्गी)भूतानां	तरङ्गभूतानां	,, ४८३	३०
मनसि शरीरस्य	मनसि सशरीरस्य	,, ४३९	१८
नाड्यानुप्रविष्टेन	नाड्यनुप्रविष्टेन	,, ४३९	२५
°संयोगाः ते तान्य°	°संयोगाः तान्य°	,, ४३९	२६
°न्यदृष्टेनैव	°न्यदृष्टेनैव*	,, ४३९	२६
भाऽभावमात्रं	भावाभावमात्रं*	,, ४३९	२९
निष्क्रियाणि	निष्क्रियाणि द्रष्टव्यानि	टि.पृ० ३५	१६

१ चन्द्रानन्दरचितवृत्ताविदमेकमेव सूत्रं दृश्यते ॥ २ केवले वैशेषिकसूत्रपाठेऽत्र सूत्रद्वयमुपलभ्यते । अतस्तदनुसारेणोत्तरसूत्रेष्वेकोऽङ्कः सर्वत्र वर्धनीयः ॥ ३ केवले सूत्रपाठेऽयं पाठः ॥ ४ चन्द्रानन्दरचितवृत्तावयं पाठः ॥

नय. टि. २१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठोऽध्यायः

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पंक्तिः
द्विपूर्वा या अतः	बुद्धिपूर्वा सा ततः	टि.पृ० ३५	२५
युज्येत	युज्यते	,, ३६	६
समः । तौ त्यक्त्वा अन्यो°	समः । सर्वैर्युक्तो विशिष्टः । तौ त्यक्त्वान्यो°	,, ३६	९
प्रतिग्रहीतृणा अन्यो-न्यापेक्षश्चेति	प्रतिग्रहीतृणामन्यो-न्यापेक्षयेति	,, ३६	१७
°वानप्रस्थयज्ञदान°	°वानप्रस्थ्ययज्ञदान°	,, ३६	२१
गुरुचर्यापरस्य	गुरुपरिचर्यापरस्य	,, ३६	२४
°विधिना निःसृतो-ऽरण्यप्रस्थितो°	°विधिना गेहान्निः-सृत्यारण्यप्रस्थितो°	,, ३६	२४
वानप्रस्थम्	वानप्रस्थ्यम्	,, ३६	२५
°मुपधाश्चानुपधाश्च	°मुपधाच्चानुपधाच्च	,, ३६	२८
यदि प्रयत्न [:] प्रधानम्	यदि प्रयत्नः प्रधानम्	टि० पृ० ३७	१५
प्रमेय-मात्रस्य भावा°	न प्रयत्नमात्रस्य भावा°	,, ३७	१६
सैरध्यसुख°	यैर्यैरस्य सुख°	,, ३७	१७
अधर्मेऽपीच्छा-[पूर्विका] पर°	अधर्मेऽपीच्छा-पूर्विका पर°	,, ३७	२३

सप्तमोऽध्यायः

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पंक्तिः
पार्थिवस्य विनाशात्	पार्थिवस्य द्रव्यस्य विनाशात्	पृ० ४५२	२५
नित्या [आ]श्रय°	नित्या आश्रय°	,, ४५२	३०
°मनसा[म]नुप-लब्धिः	°मनसामनुपलब्धिः	टि० पृ० २१	३२
एकस्मिन्नेव वस्तुनि	एकस्मिन्नेव काले तस्मिन्नेव वस्तुनि	,, २२	९
°दित्वौपचारिकत्वम् ।	°दित्यौपचारिकत्वं	,, २२	१६
इत्या(त्य) तिदेशः	इत्यतिदेशः	,, २२	१६
द्रव्यस्या[त्यन्त]-मसम्भवः	द्रव्यस्यासम्भवः	पृ० ४४६	१६
°नित्यत्वाच्चानित्यौ	°नित्यत्वादनित्यौ*	,, ४५३	३४
निव्र (र्वृ) त्तिश्च	निष्पत्तिश्च	,, ४५३	३४
एकत्वैकपृथक्त्वयो°	एकत्वपृथक्त्वयो°	टि० पृ० २२	२५
गुणादिषु भाक्तमित्यत एतीप्रसंगात्	गुणादिषु भाक्तं यदे-कत्वं कल्प्यते तद् भवत एकत्वसिद्धौ न पर्याप्नोति, 'द्रव्येषु मुख्यम्, गुणेषु भाक्तम्' इत्यत एव भेद-प्रसङ्गात् ।	टि० पृ० २२	२९
एतदनित्ययोर्व्या-ख्यातम्	एतदनित्यनित्ययोर्व्याख्यातम्	,, २२	३१
°कारणयोरेकत्वं [न],	°कारणयोर्नैकत्वं	,, २२	३३
चाऽनित्ययोः त्वगि-न्द्रिय°	चाऽनित्ययोः त (य)था घटपटयोः त्वगि-न्द्रिय° ।	पृ० ५१६	३०
शब्दा [द] र्थ°	शब्दादर्थ°	टि.पृ० २३	२३
सम्बन्ध°	सम्बद्ध	,, २३	२६
चार्थाः	चार्थः	,, २३	२७
सङ्केतनिमित्त [:] शब्दा [द] र्थे	सङ्केतनिमित्तः शब्दादर्थे	,, २३	२९
°गुणत्वप्रतिषेधो	°गुणत्वकर्मत्व-प्रतिषेधो	पृ० ५२६	३१

अष्टमोऽध्यायः

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पंक्तिः
न तथा गुणादिषु	न तु गुणादिषु	पृ० ४४२	२६
गुणादीनां यतः	गुणादीनां चेन्द्रियेण सन्निकर्षो नास्तीत्यत-स्तदानीं ज्ञान-मुच्यते तेषामसन्नि-कर्षे विज्ञानं यतः	,, ४४२	२७
संयुक्तसमवायं ज्ञानम्,	संयुक्तसमवाया-ज्ज्ञानम्	,, ४४२	३०
प्रसिद्धयर्थशब्दः	प्रसिद्धया अर्थशब्दः	,, ४८०	२०
आरम्भकानि	आरम्भकाणि*	,, ४८०	२४
आकाशे	आकाशं	,, ४८०	३१
शष्कुल्यावच्छिन्नं	°शष्कुल्यवच्छिन्नं	,, ४८०	३१

नवमोऽध्यायः

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पंक्तिः
भूतप्रत्ययाभावाद्	भूतस्य प्रत्यक्षाभावाद्	,, ४८९	३१
स असदिति	असदिति	,, ४८९	३२
अन्यथा कथमिव	अन्यथा तत् कथमिव	,, ४९०	१५
यथा हि	यदा हि	,, ४९०	१८
कारणान्तरितसम्यक्	कारणान्तरतः सम्यक्	,, ४९०	१९
त[था] सा°	तथा सा°	,, ४९०	२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पंक्ति
घटादेः स्वरूपतो निषेधः क्रिय[त] इति	घटादेः न स्वरूपतो निषेधः क्रियत इति	,, ४३५	२१
लिङ्गादर्शनात्	लिङ्गदर्शनात् टि. पृ०	४१	३१
°मतीन्द्रियार्थे	°मतीन्द्रियार्थे च	,, ४१	३२
तथा स्वप्नस्वप्नान्तिकम् [वै० सू० ९।२०] तथा स्वप्नः स्वप्नेऽपि स्वप्नज्ञानं स्वप्नान्तिकं च । उपरतेन्द्रियस्य	तथा स्वप्नः स्वप्नान्तिकं च [वै० सू० ९।२३] उपरतेन्द्रियस्य	,, ४२	५

दशमोऽध्यायः

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पंक्ति
सुखम् । परस्परविरुद्धे	सुखम् । विषादि कारणजन्यं दुःखम् । परस्परविरुद्धे	,, ४२	२४
°विति चेत् संशय°	°विति चेत्, न, संशय°	,, ४२	२३
इत्येतस्मिन्	इत्येकस्मिन्	,, ४३	२२
कार[ण]बुद्धी	कारणबुद्धि	,, ४३	२९
कर्मकारणे समवेतत्वाद्	कर्मकारणेऽभिहन्तरि च(चा)कारण(णे) समवेतत्वाद्	,, ४३	३४
लैङ्गिके	लैङ्गिकं	,, ४४	२६
°श्चोपासनाक्रमेण	°श्चोवासाक्रमेण*	,, ४४	३२
विद्याशर्वर्यो	विद्याशर्वर्योः	,, ४४	३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयचक्रप्रथमविभागस्य शुद्धिपत्रकम्[1][2]

पृ०	पं०	मुद्रितम्	शुद्धम्
२	२२	भावः ।	भाव इति भाति
४	५	स्याश्चित्यः	'स्याश्चित्यः
७	७	किमेव	किमेवं
७	२, ५, १८	एवम्विध°	एवंविध°
८	३०	च	च ॥
१०	१	स्थितिः	स्थितिः प्रवृत्तिर्मर्यादा
१२	९	°रात्मनश्च	°रात्मनश्च,
१२	१९	°लाघवाभिष्व°	लाघ**वप्रस**वाभिष्व°
१५	१०	तद्यातिशयिकः	तद्यातिश**ा**यिकः
२२	३०	उक्तिप्र	उक्तिप्र°
२४	५	जातेरिवाजातेः	जातेरिवाजातेः,
२५	१	तदात्मत्वं,	तदात्मत्वं
२५	१८	प्राप्तषु	प्राप्तेषु
२६	१०	क्षेत्रतो प्यूर्ध°	क्षेत्रतोऽप्यूर्ध°
२६	१०-११	°मर्वाग्भाग°	°मधोभाग°
२६	३१	अवाग्भाग	अर्वाग्भाग
३२	६	प्रकल्पते,	प्रक**ल्पे**ते
३२	२५	25	**२१**-२ 25
३२	२७	प्रकल्पते,	प्रकल्प्यते,
३३	६	प्रधानत्वाच्च तदेव	प्रधानत्वाच्च तदेव
३३	२३	°षापरिभाषा	°षा परिभाषा
३४	४	कार्यम्	कार्यम्, यदि सामान्यं, यदि विशेषः
३४	११	तथाविशेषे	तथा विशेषे
३५	३	पुणअदिट्ठ°	पुण अदिट्ठ°
३९	२१	स्वकारण वसं°	स्वकारणवसं°
४०	५	देशादिकारणं	देशादि कारणं
४०	२५	20	25
४२	१६	ज्ञायते	ज्ञायते
४२	२८	जाघटीति ।	जाघटीति,
४५	३, १६	नैवं वेति	नैवं चेति
४५	१९	वैवम्'	चैवम्'
४६	१०	नैवं वेति	नैवं चेति
४६	३२	लोमश [शो ?]	लोमश (शो)
४७	१४	°स्तोव्युत्पन्नबुद्धयनु°	स्तोव्युत्पन्नबुद्धयनु°
४७	१६	वैस्तूच्य°	वैस्तूच्य°
४७	१७	मोह	मोह
४९	११	°त्वात् खपुष्पवत्	°त्वात् खपुष्पवत्
४९	२८	°त्वात् खपुष्पवत्	त्वात्
५१	१०	°मन्विष्यते	°मन्वेष्यते
५४	६	पृथुकुक्ष्या°	**विकुक्ष्या°**
५५	२५	20	25
५६	२६	सूत्रण	सूत्रेण
६१	२१	°ल्लोकिक°	°ल्लौकिक°
६१	३०	°नाभि° ॥	°नाभि° य० ॥
६३	६	**४३२**	**४३**-२
६३	१४	आँचार्योऽत्र	आँचार्योऽत्र
६४	२१	इति ।	इति
६७	५	संवृतिसत्वाद्	संवृतिसत्वाद्
६९	१५	न्नयनु-°	अन्नयनु-
७२	१९	रूप्यत इति रूप्यम्	रूप्यत इति रूपम्
७८	१४	एवम्विधः	एवंविधः
७८	३६	बहुविध रूपमुक्त	बहुविधं रूपमुक्तं
७९	२१	स्वलक्षणाविषया	स्वलक्षणविषया
८०	२, २७	पञ्चविज्ञान°	पञ्च विज्ञान°
८२	२०	१।२।९	१।२।५८
८३	३	त्राता ।	त्राता **सर्ववादभेदयाथार्थ्यपरिपालनात्**

१ यत्र वृद्धिरावश्यकी तत्र वृद्धिरपि अत्र शुद्धिपत्रके समावेशितेति ध्येयम् ॥

२ ये पाठाः परित्याज्या अनावश्यका वा तत्र × एतादृशं चिह्नं विहितमस्मिञ्छुद्धिपत्रके इति ध्येयम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पं०	मुद्रितम्	शुद्धम्
८८	३१-३२	विषयं ह्यनुमानम्	"विषयमनुमानम्"
८८	३३	अर्यते	अर्यते
८९	२१	स्वविषयः	स्वविषयः,
९०	३, ४	सामान्यानात्म°	सामान्यात्म°
९२	३०	चेति	चास्तीति
९२	३०	संवृतिसतम्	संवृतिसत्यम्
९५	२, ३	कारकादप्यने-	×
		कस्मादर्थाज्जायते	×
		साध्यसाधनधर्मा	×
		न्वयैकान्तवतः।	×
९६	९	°मित्यादि	°मित्यादि,
९६	२७	°ज्ञानेषु	°विज्ञानेषु
९६	३१	तत्र	तस्य
९७	१०	°गम्य	°गमय्य
९९	२८	व्याख्यायां	व्याख्यायां
१००	२	एवम्विधा°	एवंविधा
१०४	११	°तथार्वस्थानां	°तथार्वस्थं
१०४	२९	४।२२	२।२२
१०५	२४	°मेवविधः	°मेवंविधः
११३	२८	अबुध वगमने	बुध अवगमने
११४	५	द्रव्यशब्दो	द्रव्यशब्दो द्रोरवयवे
११४	२६	भिन्न	भिन्नं
११५	५	१२।३।४६७	१२।१०।४६८
१२०	९	व्याख्यायते,	व्याख्यायते
१२१	४	बायव्यं	वायव्यं
१२१	९	°प्रतिपत्ति	प्रतिपत्ति-
१२१	१३	किम्विषया	किंविषया
१२५	३१, ३२	१०७-२	१०८-१
१२६	५	सामान्यस्या	सामान्यस्या·
१२८	१६	पा० म० भा०	पा० म० भा०
१२९	३	°त्वात्,	°त्वात् वाक्यभेद एव वा,
१३०	१३	श्रति°	श्रुति°
१३१	१५	प्राप्तिरस्ति	प्राप्तिरस्ति
१३३	१६	जुहोत्य°	जुहोत्य°
१३३	३०	°भाष्ये	°भाष्ये १।१।४४
१३६	१, ७	युक्ततरी	युक्ततरा
१४१	२५	कार्थ	कार्यं
१४४	५	°त्वम्	त्वम्,
१४७	१८	कर्तव्यता	कर्तव्यता
१४८	२३	घटस्या°	घटस्या°
१४८	२४	सैषा	सैषा

पृ०	पं०	मुद्रितम्	शुद्धम्
१४८	२५	°पपत्तेः	पपत्तेः
१४८	२५	°भावस्यो°	°भावस्यो°
१५०	१०	°मिष्यते	°मिष्यते
१५२	२२		१०८-२
१५६	१९	पुनरुक्तत्वात	पुनरुक्तत्वात्
१५७	१८	[वा]	×
१५८	२४	गुडस्य चाक्षु°	गुडस्याचक्षु
१६२	७	तत्	तत्,
१६३	५	वा	वा,
१६५	२८	पृ० १६३ पं० ७	पृ० १६८ पं० ५
१६६	१२	वार्थास्तुल्याः	वार्थास्तुल्याः
१६६	१७	°पादानाबुद्धि°	°पादानाबुद्धि°
१६७	२५	घटव	घटव-
१६७	२६	चक्रकमेव°	चक्रकम्, एव°
१७३	३१	जिनेन्द्रबुद्धिवि°	वामनवि°
१७६	१, २, १०, १४	°वस्थत्वात्	°वस्थात्वात्
१७६	३०	सूक्ष्मा मूर्त°	सूक्ष्मामूर्त°
१८१	२०	तद्वस्तुप्रत्यक्षं	तद्वस्तु प्रत्यक्षं
१८२	४, २३	विमुक्तिक्रमात्,	विमुक्तिक्रमात्।
१८४	५	हि हि	हि
१८५	१८	°विशु त्कर्ष°	विशुद्ध्युत्कर्ष°
१८६	२५	°मनस्त्वादिकार्म°	मनस्त्वादि कार्म
१८७	५	तथाहि-	तथा हि
१८८	२१	औषधाव्यञ्ज°	औषधाभ्यञ्ज°
१८८	२७	(न्य ?)	(भ्य)
१९१	२९	संहरति	संहरते
१९४	७	देवेवत्तो	देवदत्तो
१९४	१०	तस्मा°	तस्मा°
१९४	१६	कदाचि°	कदाचि°
१९४	१७	°पजीवनमे°	°पजीवितमे°
१९४	१९	°नुरूप°	°नुरूप°
१९४	२१	मूर्ता°	मूर्ता°
१९४	२२	तथातथा°	तथातथा°
१९५	२८	भा० पा०।	भा०।
१९५	२८	भा० पा० विना ॥	य० ॥
१९५	२९	वि० रं०ही० विनान्यत्र	×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पं०	मुद्रितम्	शुद्धम्
१९५	२९	पा० डे० लीं० ।	य० ।
१९७	७	नियता	नियता-
१९७	२९	पृथिवीलोका	पृथिवी लोका
१९८	१२	चँ	चैं
१९८	१४	सलिलै	सलिलैं
१९८	१५	र्व्यैङ्गम्	र्व्यैङ्गयम्
१९८	१७	निर्यैत्या	निर्यैत्ता
१९८	१८	°नाविष्टैायाः	°नाविष्टैँायाः
१९८	१९	°योगैँ°	°योगँ°
१९८	२१	°र्नादिक°	°नैदिक°
१९८	२२	°ह्रुपनि°	°ह्रुपनि°
१९८	२७		
१९८	२७	३ ४ न्धदिति प्र० ॥ ५	४
१९८	२८	५...६...७...८	६...७...८...९
१९८	२८-२९	९अत्र **निधानाद्यर्थेषु** इत्यपि पाठः स्यात्	×
१९९	४	एवं	एवं च
२००	६	एकप्रयोजनेन°	एकप्रबन्धेना°
२०१	१८	तिलभस्मत्य	तिलभस्मेत्य°
२०२	६	शाखायां	शाखायां
२०२	२८	पा० डे०	य० ॥
२०२	२९	लीं० त्रि० । शाखायां वाम्रयां रं० ही० ॥	×
२०३	१५	भावोङ्कुर°	भावोऽङ्कुर°
२०३	३०	१।७।४५	१।६।४५
२०८	७	[कारण	[कारणं
२०८	२०	ब्रुयात्	ब्रूयात्
२०९	१०	तृप्तिः	तृप्तिः,
२०९	२०	ब्रवता	ब्रुवता
२१०	१४	चतुर्वर्ग°	चतुर्वर्ग°
२१०	२०	शास्त्रैरेवं	शास्त्रैरेवं
२१०	२०	वैसन्ते	वैसन्ते
२१०	२३	सन्धि°	सन्धि°
२११	१०	अतेउरं	अंतेउरं
२१३	२	तेन तस्मै	तेन च तस्मै
२१३	४	मेघादिरेकत्र पटादिः	पटादिरेकत्र मेघादिः

पृ०	पं०	मुद्रितम्	शुद्धम्
२१३	२०	वर्षति अयं 'ततः	वर्षत्ययम्, ततः
	२५	आख्याशब्दः	आख्या शब्दः
२१५	२२	पूर्वेपरादि°	पूर्वापरादि°
२१६	२०	,,	,,
२१६	३०	इत्यादिना°	इत्यनादिना°
२१८	१०	°प्रभेखामि°	°प्रभावात् स्वामि°
२२१	२	पृथक् पृथ°	पृथक्पृथ°
२२३	१९	ब्रवता	ब्रुवता
२३६	२३	भूम्यर्बादि	भूम्यर्बादि°
,,	,,	महाकाल°	मेहाकाल°
२३८	५	भावे	भावे तस्य
,,	१५	°त्वैादि°	°त्वैादि
२३९	८	°प्राण्याद्य°	°पाण्याद्य°
,,	३१	°मेको°	°मेको°
२४०	२६	वध्य	[सहचरिभावेन वा] वध्य°
२४२	५	स्तिमितं	**निस्तिमिरं**
,,	१२	°व्यवं°	°व्यव°
२४४	२६	°भाष्ये ॥	भाष्ये १।३।१॥
२५४	१	°दिति । सर्वे°	°दिति सर्वे°
२५७	७	अतिदिश्यात्	अतिदि**श्यते**
,,	३०	**२०१–२**	**२०२–१**
२५९	५	°माणम्–	°माणम्
२६५	३	°लाघवा°	लाघव**प्रसवा**°
२६६	३०	२५७	२६५
२६७	२३	[१२]पुँल्लिङ्गम्	[१२]पुल्लिङ्गम्
,,	२९	**°सत्य°** पा० डे० लीं० ॥	**°सत्य°** य० ॥
;,	,,	डे० लीं० रं० ही०	य० ॥
२७१	१९	°पर्यायः	°पर्यायः,
,,	,,	°त्वात्	°त्वात्,
२७३	३	°कत्वात्	°कत्वात्,
,,	१२	विशिष्टा	विशिष्टा,
२७४	१३	सत्त्वेन	सत्त्वेन,
२७९	४	सुखदुःखे	सुखदुःखे
,,		णात्मक	णात्मकं
२८२	१	वैन्ध्या°	वन्ध्या°
,,	२९	भा० ॥	प्र० ॥
२८३	,,	पं० १	पं० ४
,,	,,	भा० ॥	प्र० ॥
२८७	३	वात्	वात्'
२८७	१०	संनिहित	संनिहितं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पं०	मुद्रितम्	शुद्धम्
२८७	१५	सत्त्वरजः संयोगे	सत्त्वरजःसंयोगे
,,	३१	एवं त्वऽन—	एवं त्वऽन°
२८९	३०	किञ्चिद्	किञ्चिद् गुरु
२९०	१८	—	×
२९४	२९	प्र ॥	प्र० ॥
२९५	५	वृत्तिता ।	वृत्तितेति ।
२९६	१९	नियमेनवेति,	नियमेनैवेति,
२९८	१	पृथग्भवना°	पृथग्भवना°
३००	१४	दृष्टं	दृष्टं (दृः ?)
३०१	९	तैदात्मकानि	तैदर्थानि
३०३	२८	इत्यर्थः	इत्यर्थः,
३०४	५	प्रवृत्तिशीलत्वात्	अप्रवृत्तिशीलत्वात्
३०६	२,९,११	न्विष्यते	न्वेष्यते
,,	३३	।°युक्तम्	॥२°युक्तम्
३०८	१८,३१	२।१।६६	२।१।६९
३०९	२	तद्वत्	त्वद्वत्
३११	१७	हेतुभ्यो	हेतुभ्यः,
३१२	१३	°त्मनोऽपरि°	°त्मपरि°
३१३	१०	वीत	वीत [आवीत]
३१४	३	[आवीतस्य] वा भावः	वाक्यभावः
३१६	१	°नवत्त्वाद्	नवत्वाद्
३१८	८	शब्दाद्यात्मना	शब्दात्मना
,,	३५	२६०	२६८
३१९	१८	°नादिकार्यस्य	नादि कार्यस्य
,,	१९	नानि	नानि ।
,,	२०	°हारं संव्य°	°हारसंव्य°
,,	२२	]	[,
३२३	१६	°त्मादिभिः	°त्मादिः
३३०	७	]	] इति ।
,,	२८	तदवस्थमात्रं	तदवस्थामात्रं
३३१	११	सन्निविशिष्टा°	सन्निविष्टा°
,,	१८	चित्रैकर°	चित्रैकर°
,,	२२	°दर्कयो°	°दर्कयो°
,,	२५	°त्वविपरिणामौ	त्वविपरिणामौ
,,	२८	३ सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्" इति श्वेताश्वतरोपनिषदि पाठः ॥	×
,,	२९	४ ५ ६	३ ४ ५
,,	३०	७ ८ ९	६ ७ ८
,,	,,		९ °त्वपरि° य० ॥
,,	,,		१० °मादि चेत् प्र० ॥
३३२	२८		१ °त्वपरि° य० ॥ १ "सुखं शाश्वतं
,,	,,		२ °मादि चेत्° नेतरेषाम् ।" इति श्वेताश्वतरोपनिषदि पाठः ॥

पृ०	पं०	मुद्रितम्	शुद्धम्
३३६	४	चेत्—	चेत्,
३३९	२५	तेनैश्वरेणा°	तेनैवेश्वरेणा°
३४०	११	यावदेवमेवास्य	यावदे[वमे]वास्य
,,	२४	तु	तु,
३४२	६	°मप्यनुग्रहक्रियाया अपि,	°मनुग्रहक्रियाया अपि
,,	९	तन्निरपेक्ष	तन्निरपेक्ष—
,,	१०	°नैश्वर्यं	°नैश्वर्यम्,
३४३	७	प्रोक्तं	प्रोक्तं (प्राप्त ?)
३४४	८	तदनुध्यानात्	तदनु ध्यानात्
३४८	२७	टीकायां पाठः	टीकायाम्
३५२	६	°त्पसम्भव	°त्प(त्पा)सम्भव
,,	१६	सुखादयः	सुखादयः,
,,	२१	मिथैः प्रत्य°	मिथैःप्रत्य°
,,	२२	णिच्छैयतो	णिर्च्छयतो
,,	२३	अनेके°	अनेके°
३५४	१९	स्रोतस्यन्यथा	स्रोतस्यान्यथा
३५९	७	इति मम	इति । मम
३६०	१	°कायः ।	°कायः,
३६१	१	°परिणाम्यपरिणामक°	°परिणम्यपरिणमक°
,,	१४	°मतमस्मा—	मतम्, अस्मा—
,,	२१	परिणाम्यस्य	परिणम्यस्य
३६२	३	परिणाम्यपरिणा°	परिणम्यपरिण°
,,	५	परिणाम्यत्वम्	परिणम्यत्वम्
३६७	११	विपरिणाम्यम्	विपरिणम्यम्
,,	२९	(°क्रिया°	(क्रिया°
३७२	३	तत्त्व एव	तत्त्वमेव
३७३	११	आवनि°	आव० नि०
३७४	१	इति स एव परमार्थः	स एव परमार्थ [ ]
,,	१०	सन्ति	सन्ति,
,,	११	पाति	याति
,,	२४–२५	गच्छत इति । स च...नित्यः ।	गच्छत इति स च . . . नित्यः ।
१	१३	नैयचक्र	नैयचक्र
२	११	कानिचित् प्रतीकानि	केचित् प्रतीकाः
२	२७	द्धरणं	द्धरणं......
९	१५	सत्तात्वादयः	सैत्तात्वादयः
९	३६	......।	×
१४	२१	वस्तुति	वस्तुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पं०	मुद्रितम्	शुद्धम्
१४	२२	दमुख्यो	द् मुख्यो
१४	२३	कार्य़ँ	कार्यं
१४	३२	शोभनो भाति	×
१६	१४	॒म्योड़तर	म्यो इतर
२१	२	)	व्रीहीक्षीरौदना° ?)
२३	३६	५५२	४५३
२६	१४	तत्त्ववैशारद्या	तत्त्वकौमुद्या°
२७	७	,,	,,
२८	१३	विषयैः	प्रमेयैः
३०	२६	यैत्र	यैत्र
३०	३५	Preception	Perception
३१	४, ६	,,	,,
३२	४	पृ० ६२	पृ० ६३
३४	३५	प्रतिषेधभावः	प्रतिषेधाभावः
३७	७	पताका वृ०	पताकावृ०
३९	२१	पं० २६	पं० २५
,,	२४	सुगति	सुगीत
४०	३४	°नित्यं सम्प्र°	नित्यं सम्प्र०
४१	१७	नवमं तु	नवमं दशममेकाद- शं च पृ० ४३४ ४३५ इत्यत्र द्वादशं तु
४१	१९,२१,	१०,११,	१३,१४,
	२३,२४,	१२,१३,	१५,१६,
	२६,२८,	१४,१५,	१७,१८,
	३१,३४,	१६,१७,	१९,२०,
	३५.	१८.	२१.
४२	४,६,८,	१९,२०,	२२,२३,
	९,११,	२१,२२,	२४,२५,
	१२.	२३,२४.	२६,२७.
,,	४०	योमवत्यां	व्योमवत्यां
४६	३९	]	[
,,	४०	[	]
४७	२९	४४	४५
५०	१८	त्वेवं लक्षणं	त्वेवंलक्षणं
५५	२१	लौगाक्षि	लौगाक्षि–
५९	२२	विराट् पुरु	विराट्पुरु
६८	११	प्रति पाठः साधु	प्रतिपाठः साधु
७३	१७	४।२७	४।२७।
७५	३५	ग्राह्यधर्मे	ग्राह्यधर्मे
७८	३७	४४६	[पृ० ४४६
८०	१०	...'	...;
,,	१८	ऽत्रचिन्त्यः	ऽत्र चिन्त्यः
८४	२३	विरुद्धश्वासा	विरुद्धश्चासौ
९५	३६	Japan	Japan 1953

पृ०	पं०	मुद्रितम्	शुद्धम्
१००	३१	संख्या निरासश्च	संख्यानिरासश्च
१०१	३८	जात्यादिभिरसमान	जात्यादयोऽसमान
,,	,,	पृथक्कृता	पृथक्कृताः
१०२	३४	विशेषरहितै	विशेषणरहितै
१०४	९	कथं ?	कथम् ?
१०५	१६.१७	प्र० वा० म० २८०	प्र० वा० २८७
१०६	५	सु° दूपग्° जैस्°	दूपग्° जैस्° सु°
१०८	१६	डोस्°	दूडोस्°
,,	३८	स्वरूपमपेक्ष्य	स्वरूपमनपेक्ष्य
११०	४	डो	डि
,,	,,	नि	जिद्
,,	३०	Psv[1]	Psv[2]
१११	७	ब जिद् ॥	पियर् रो ॥
,,	१३	मूथोङ्	मेंथोङ्
११२	१	गसुङ्स्	गसुङ्
,,	४	ग्युर	ऽग्युर
११३	१	निश्चितम्।	निश्चयः।
,,	२४	प्रकृष्टा प्रज्ञा	प्रज्ञातिशयो
		अनुत्पन्ना,	ऽनुत्पन्नः,
११४	१९	स्कयेस् प	स्कये ब
११९	२०	व्यभिचारोऽपि	व्यभिचारो
१२०	२४	१।१४।	१।१।४।
,,	२५-२६	तन्त्रान्तर...चेत्	×
१२१	२०-२१	[Psv] १।१।४	×
,,	२७	स्थिष्ठित	स्थिष्ठित।
,,	३२	१९८१	१९८ A
१२६	१३	पञ्चम्यन्ता	पञ्चम्यन्ता
१२८	५	अत्रैक	अत्र साधनमिति चैक
,,	५	समस्तानां साधनत्व-	समस्तसाध-
,,	,,	प्रतिपादनाय।	नत्वख्यापनार्थः।
,,	३६	तुलना–" पक्षादि- वचनेन हेतुदृष्टान्तयोः परिग्रहः। बहूनामवयवानां साधनत्वाभिधानेऽपि	तुलना– " उक्तं च दिङ्नागाचार्येण
साध		साध॰ नमिति	'साधन- मिति
,,	३७	ख्यापनार्थम्	ख्यापनार्थः
,,	३८	१३–३३	१३, २३
१४१	६	४३८	४३८–४३९
१४२	८	मुञ्जेन	पुञ्जेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org